आधुनिक शासन-ि

[इगलैड, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, सोवियत रूस, कनाडा, कम्युनिस्
फ्रांस, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, आयरलैंड, बर्मा, श्रीलंका तथा

लेखक

विद्याधर महाजन

एम० ए० (ऑनर्ज), पी-एच० डी०

भूतपूर्व प्राध्यापक, राजनीति विभाग,

पंजाब यूनिवर्सिटी कालिज, नई दिल्ली।

Author of : Select Modern Governments, Constitutional History of India, Recent Political Thoughts, English Constitutional Law, Public International Law, International Politics Since 1900, The Constitution of India, Legal History of India etc., etc.

चौथा संस्करण, 1965

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली : नई दिल्ली : जालन्धर : लखनऊ

बम्बई : कलकत्ता : मद्रास

विषय-सूची

अध्याय | विषय | पृष्ठ

इंगलैंड का संविधान

(The English Constitution)

सोवियत रूस का संविधान

(Constitution of Soviet Russia)

अध्याय | विषय

इंगलैंड का संविधान

(The English Constitution)

अध्याय १

इंगलैंड के संविधान की प्रकृति

(Nature of the English Constitution)

प्रस्तावना—इंगलैंड के संविधान का अध्ययन राजनीति के सभी विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसका अध्ययन अंग्रेजों के शासन-काल में ही आवश्यक नहीं था, बल्कि आज स्वतन्त्र भारत मे भी यह उतना ही आवश्यक है। राष्ट्र तभी उन्नत हो सकता है जब देश के नागरिक उसके प्रशासन मे गहरी दिलचस्पी लें और उनकी इसमें तभी दिलचस्पी हो सकती है जब वे इसे समझते हों। देश के नागरिकों के लिए राजनीति के सिद्धान्तो का ही ज्ञान प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है, अपितु विश्व के विभिन्न भागों मे चालू राजनैतिक सस्थाओं के कार्य करने के बारे मे ठीक परिचय की भी उन्हें आवश्यकता है। हमारी आज की अवस्था के अनुसार भारतीयो के लिए इंगलैंड के संविधान का अध्ययन आदर्श समझा जा सकता है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारत का वर्तमान संविधान पिछली कुछ शताब्दियों में विकसित हुआ है जबकि ग्रेट ब्रिटेन के साथ हमारा नज़दीकी सम्बन्ध था। इसमें कोई आश्चर्य नही कि भारतीय राजनैतिक संस्थाओं का विकास इंगलैंड के ढंग पर ही हुआ है।

ब्रिटिश संविधान के परिवर्धन की विस्तृत जाँच करने का प्रयत्न करना सम्भव नही है। इसका परिवर्धन काल एक हजार वर्ष से भी अधिक लम्बा है अतः वे विद्यार्थी जो इस विषय को अधिक गहराई मे समझना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे उन पुस्तको का अध्ययन करें, जो पुस्तकें इंगलैंड के संवैधानिक इतिहास से सम्बन्ध रखती हैं। यद्यपि इस विषय पर लिखी गई पुस्तको की संख्या बहुत अधिक है परन्तु उदाहरण के रूप मे उन पुस्तकों की ओर निर्देश किया जा सकता है जो हाल, ऐडम्स (Adams), टैसवैल-लैंगमीड (Taswell-Langmead) और मेटलैंड ने लिखी हैं। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि नार्मन-विजय के समय से ही अंग्रेजी संविधान का विकास हो रहा है। एकत्रीकरण काल (period of consolidation) के पश्चात् ब्रिटिश संसद् का क्रमिक परिवर्धन शुरू हुआ। उसके बाद ब्रिटिश संसद् ने राजा के अधिकारों पर रोक लगाने के प्रयत्न आरम्भ किये। यह संघर्ष लम्बा था, परन्तु अन्त में संसद् राजा को अपने अधीन करने में सफल हुई। इसके बाद देश में मन्त्रिमण्डल (Cabinet) प्रणाली का विकास हुआ जो आज तक बिना किसी रुकावट के चल रही है।

इंगलैंड के संविधान की अनेक व्यक्तियों ने प्रशंसा की है और उनमें से कुछ एक की ओर निर्देश करना विषयसंगत प्रतीत होता है। विलियम पिट के शब्दों में, "इस देश का संविधान इस देश का गौरव है। यह जनतन्त्र द्वारा विनाश की संभावना और राजतन्त्र की कठोरता से विमुक्त है और इन दोनों के मिश्रण में ही इस देश की सुख-शान्ति निहित है। इस मिश्रित राज्य-व्यवस्था को जन्म देने वाली हमारे पूर्वजों की दूरदर्शिता थी और इसी का स्थिर रूप से पोषण करना हमारी बुद्धिमत्ता होगी। उन्होंने गणराज्य प्रणाली के अन्तर्गत होने वाली क्रान्तियों और विनाशों का अनुभव किया। उन्होंने राजतन्त्र के दासत्व और स्वेच्छाचारिता को भी समझा। इन्हीं दोनों को एक स्थान पर मिलाकर उन्होंने एक ऐसी प्रणाली का आविष्कार किया जो आज समस्त ससार की ईर्ष्या तथा प्रशंसा का पात्र बनी हुई है।" मनरो (Munro) के शब्दों में, "इंगलैंड का संविधान विभिन्न संस्थाओं, आदर्शों व व्यवहारों का विचित्र मिश्रण है। यह राज-पत्रों (charters), न्यायिक निर्णयों, रूढ़ि विधि (Common Law), नजीरों (precedents), प्रथाओं तथा परम्पराओं का मिश्रण है। यह कोई एक लेख्य (document) नहीं है, बल्कि हजारों लेख्य हैं। इसको एक ही स्रोत से न लेकर अनेक स्थानों से लिया गया है। यह कोई पूर्णता प्राप्त वस्तु न होकर विकासशील वस्तु है। यह बुद्धिमत्ता और संयोग की सन्तान है जिसका मार्ग-प्रदर्शन कहीं आकस्मिकता ने और कहीं उच्च कोटि की योजनाओं ने किया है।" माननीय श्री जे० जी० लेथम (J. G. Letham) के मतानुसार, "ब्रिटिश संविधान अधिकतर इसलिए सफल रहा है कि यह लिखित लेख्यों (documents) का अर्थ लगाने में सूक्ष्मताओं (precision) में उलझने वाली वकीलों की छान-बीन द्वारा निर्णीत न होकर अपनी बनावट में लचीला और बन्धन-मुक्त है, और इसमे राजनीतिज्ञों की समझदारी पर परिस्थितियों के अनुसार समस्याओं के निर्णयों का भार छोड़ दिया गया है।" कनाडा के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्री मैकेन्जी किंग (Mackenzie King) ने अंग्रेजी संविधान को इन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित की है—"इस अंग्रेजी संविधान को हम प्यार करते हैं, यह अंशतः अलिखित और अंशतः लिखित है। इसका मूल आदिकाल की गहराई में मिलता है। यह रूढ़ियों व परम्पराओं के रूप में सामने आता है; यह रूढ़ि विधि (Common Law) पर खड़ा है, यह नजीरों (precedents), मैग्ना कार्टा (Magna Carta), पेटीशन ऑफ राइट्स और बिल ऑफ राइट्स (Petition and Bill of Rights) से मिलकर बना है। यह अंशतः संसद् के परिनियमों (statutes) में और अंशतः संसद् की अपनी प्रथाओं तथा प्रचलनों में मिलता है। यह इंगलैंड के निवासियों की उत्कृष्टतम प्रतिभा की सर्वोच्च सफलता को प्रस्तुत करता है। यद्यपि न तो कभी किसी ने इसे देखा है और न किसी ने इसका पर्याप्त रूप से कभी वर्णन ही किया है, तथापि जब भी स्वतन्त्रता व अधिकार पर कोई आंच आती दीखती है तब इसके अस्तित्व का अनुभव होने लगता है। कारण यह है कि यह जुल्म व अधर्म के विरुद्ध शताब्दियों तक संघर्ष करने के परिणामस्वरूप बना है और इसमें स्वतन्त्रता की मानो आत्मा का समावेश है।"

सर हेनरी मेन के अनुसार, "बहुत से लोग, जो अति-परिचय के कारण ब्रिटिश संविधान को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, इस कथन को उपेक्षणीय समझ सकते हैं कि यह सविधान एक अनुपम और विशिष्ट वस्तु है (यद्यपि कुछ लोग इसे पवित्र वस्तु भी मानते हैं)—अपने इस रूप के कारण यह सचमुच संसार की ईर्ष्या का विषय बन गया और दुनिया इसकी नकल करने लगी।"

अंग्रेजी संविधान के स्रोत (Sources of the Constitution)—डी टॉकेविल (De Tocqueville) का यह कथन बड़ा प्रसिद्ध है, "इंगलैंड में 'संविधान' जैसी कोई वस्तु नहीं है।" इसी प्रकार की बात टामस पेन (Thomas Paine) ने इन शब्दों में कही थी—"क्या श्री बर्क (Burke) अंग्रेजी संविधान पेश कर सकते हैं? यदि नही, तो हमारा यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि यद्यपि इसकी चर्चा बहुत अधिक है, तो भी संविधान नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व न आज है और न कभी पहले था।" जॉर्ज बर्नार्ड शा (George Bernard Shaw) कहते हैं कि "हमारा एक ब्रिटिश सविधान है, परन्तु कोई भी नहीं जानता कि यह क्या है; यह कहीं लिखा हुआ नही है; और न इसमें कोई संशोधन ही किया जा सकता है। परन्तु यूनाइटेड स्टेट्स का संविधान एक वास्तविक, मूर्त्त, पढ़ा जा सकने योग्य लेख्य (document) है। मैं आपको उसका प्रत्येक वाक्य समझा सकता हूँ।"

यह मानना गलत है कि अंग्रेजो का कोई संविधान नही है। यह सत्य है कि जिस अर्थ मे भारत, यूनाइटेड स्टेट्स और सोवियट संघ के लोगों के संविधान हैं, उस अर्थ में उनका सविधान नहीं है। अंग्रेजी सविधान इस प्रकार का कोई एक लिखित लेख्य (document) नहीं है जिसकी ओर सरलतापूर्वक निर्देश किया जा सके। यद्यपि ऐसी बात नही है कि आप किसी पुस्तकालय में जायें और वहाँ "इंगलैंड का संविधान" नाम की कोई एक पुस्तक आपको मिल जाय, जैसे कि भारत व यूनाइटेड स्टेट्स के संविधान पुस्तक के रूप मे मिल जाया करते हैं, तो भी अंग्रेजी संविधान निश्चित रूप से उपलब्ध है और इसका अध्ययन निरूढियों (Conventions) तथा इसके लिखित अशों मे किया जा सकता है। लॉर्ड ब्राइस के मतानुसार, "इंगलैंड का विधान जनता की स्मृति मे मौजूद है। हम यों भी कह सकते है कि इगलैंड का संविधान लिखित पूर्व-निदर्शनो, न्यायशास्त्रियों या राजनीतिज्ञों की व्याख्याओं, रूढ़ियों (customs), प्रथाओ, राज्य की विधियों पर प्रभाव डालने वाले समझौतों और विश्वासों तथा कुछ परिनियमों का समूह है। इन परिनियमों मे से कुछ में छोटी-छोटी ब्यौरे की बातें हैं, और कुछ प्राइवेट लॉ (private law), पब्लिक लॉ (public law) से सम्बन्धित बातें है। लगभग इन सब में नजीरें तथा रूढ़ियाँ आधाररूप में मौजूद हैं। इन सब पर कानूनी निर्णय व राजनीतिक स्वभाव छाये हुए हैं, जिनके बिना उन परिनियमों को लागू करना प्रायः असम्भव है, या यों कहिए कि तब उनका कार्य उनके वर्तमान असली कार्य से बिलकुल भिन्न है ... का संविधान बड़ी-बड़ी संवैधानिक घटनाओं, कानूनों, न्यायिक [illegible] तथा निरूढ़ियों मे पाया जाता है।

(१) बड़ी-बड़ी संवैधानिक घटनाएँ १२१५ का मैग्ना कार्टा[1], १६२८ की पेटीशन ऑफ़ राइट्स (Petition of Rights), १६८९ का बिल ऑफ़ राइट्स (Bill of Rights), १७०१ का ऐक्ट ऑफ़ सेटलमेंट (Act of Settlement), १७०७ का स्काटलैंड व इंगलैंड का एकीकरण अधिनियम, १९११ का संसदीय अधिनियम (Parliament Act) इत्यादि हैं। वे सब वैधानिक घटनाएँ "संविधान के केवल एक परिशिष्टमात्र हैं" यद्यपि इनमें से बहुत से कानूनों को संसद् ने कभी अधिनियमित नहीं किया, किन्तु कोई भी अंग्रेज राजनीतिज्ञ इनको अस्वीकार करने का साहस नहीं कर सकता।

(२) ब्रिटिश संविधान का एक अन्य स्रोत समय-समय पर संसद् द्वारा पास किये गये बहुत से परिनियम हैं। इस सम्बन्ध में १८३२, १८६७, १८८४, १९१८, और १९२८ के सुधार अधिनियमों (Reform Acts) का निर्देश किया जा सकता है। १९४८ के जन-प्रतिनिधान अधिनियम (Representation of the People Act) ने विश्वविद्यालय निर्वाचन-क्षेत्र समाप्त कर दिये। यदि किसी निर्वाचन-क्षेत्र में किसी व्यक्ति का व्यापारिक धन्धा हो और वह वहाँ रहता न हो तो उस व्यक्ति को उस व्यापार के नाते किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र में मत देने का जो अधिकार प्राप्त था, वह वापस ले लिया गया। वर्तमान कानून इस प्रकार है—"उन व्यक्तियों को किसी भी निश्चित क्षेत्र में मत देने का अधिकार प्राप्त है, जो उस निश्चित तिथि पर वहाँ के निवासी हों, जो उस तिथि पर और इस कानून के बनने के दिन इंगलैंड की वयस्क प्रजा हो और मतदान करने की कोई कानूनी अयोग्यता न रखते हों।" १९३६ का गद्दी-त्याग-अधिनियम (Abdication Act), १७१६ का सप्तवर्षीय (Septennial) अधिनियम, १९२२ का 'आइरिश फ्री स्टेट अधिनियम', १९३५ का नगरपालिका निगम (corporation) अधिनियम, १८७२ का संसदीय तथा नगरपालिका निर्वाचन अधिनियम, १८७३-७६ के न्यायपालिका अधिनियम, (Judicature Act), १८८८, १८९४, १९२९ और १९३३ का स्थानीय (local) शासन अधिनियम, १९२० का आयरलैंड सरकार अधिनियम, १९३६ का सार्वजनिक व्यवस्था अधिनियम, १९३७ का सम्राट् के मंत्रियों का अधिनियम और १९३१ का वैस्टमिंस्टर परिनियम (Statute of Westminster) इसी श्रेणी में आते हैं।

(३) न्यायिक निर्णय इंगलैंड के संविधान का ही अंग है। इस सम्बन्ध में Bainbridge *v.* Postmaster General (1906), Beatty *v.* Gillbanks, Wise *v.* Dunning आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

विल्कीज विपरीत वुड (Wilkes *v.* Wood) में यह निर्णय किया गया था कि किसी भी अ-नाम-निर्दिष्ट (unnamed) लेखक की तलाशी अथवा उसके कागजात को

---

१. आर० के० गूच (R. K. Gooch) के मतानुसार, मैग्ना कार्टा "प्राविधिक रूप से (technically) राजा की महान् परिषद् (Great Council) के परामर्श से बनी हुई अधिनियमिति (enactment) है। संसद् महान् परिषद् से ही विकसित हुई है और आज भी प्राविधिक रूप से संसद् का कानून संसद् की सम्मति से राजा द्वारा अधिनियमित किया जाता है।" इसी. ऑफ़ राइट्स संसद् का एक अधिनियम (Act) था।

अधिकार में लेने का सामान्य अधिपत्र (general warrant) अवैध है। लीच विपरीत मनी के अभियोग में यह कहा गया है कि किसी अ-नाम-निर्दिष्ट व्यक्ति की तलाशी या गिरफ्तारी के लिए सामान्य अधिपत्र गैर-कानूनी है। सामर सैट (Somerset) के अभियोग में अंग्रेजों की भूमि से दासत्व को सदा के लिए हटा दिया गया। हावल (Howell) के अभियोग में न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता की गारण्टी हो गई। जूरी अर्थात् न्यायसभ्यों की स्वतन्त्रता बुशल के अभियोग से संस्थापित हो गई। प्रो० डायसी ने ठीक कहा है कि इंगलैंड का संविधान प्रचलित अर्थ में संसद् के प्रतिनिधियों के प्रयत्नों का फल होने के स्थान पर लोगों के अधिकारों के लिए न्यायालयों में लाए गए अभियोगों का परिणाम है।

(४) इंगलैंड के संविधान का एक और स्रोत है रूढ़िविधि या कामन लॉ (Common Law), जिसको डॉ० ऑग ने इस प्रकार परिभाषित किया है "विधि सम्बन्धी नियमों (precepts) तथा प्रथाओं का एक विस्तृत समूह जो कि सदियों तक लागू होकर बन्धनकारी (binding) और अपरिवर्तनीय रूप प्राप्त कर चुका है।" प्रो० मनरो ने ठीक ही कहा है कि "रूढ़ि विधि संसदीय अधिनियमों की भाँति न्यायिक निर्णयों के साथ-साथ निरन्तर प्रगति करती रहती है।" रूढि विधि न्यायाधीशों के बनाए कानूनों का एक समूह है जिसे न तो कभी सम्राट् ने आदिष्ट किया है और न संसद् ने अधिनियमित किया है। रूढि विधि क्राउन या ताज के परमाधिकारों (prerogatives), फौजदारी अभियोगों में जूरी द्वारा सुनवाई के अधिकार, भाषण तथा सम्मेलन की स्वतन्त्रता के अधिकार, राज-कर्मचारियों की ओर से जो कठिनाइयाँ हों, उनको दूर कराने के अधिकारों आदि का आधार है।[1]

(५) अंग्रेजी संविधान का एक अन्य स्रोत संवैधानिक विधि पर लिखी गई सिद्धान्तों की पुस्तकें हैं। ऐनसन का ला एण्ड कस्टम ऑफ दि कॉन्स्टीट्यूशन (Anson's Law and Custom of the Constitution), मे की पार्लिमेंटरी प्रैक्टिस (May's Parliamentary Practice), डायसी की लॉ ऑफ दि कान्स्टीट्यूशन (Dicey's Law of the Constitution) और बैजहॉट की इंग्लिश कॉन्स्टीट्यूशन (Bagehot's English Constitution) इस श्रेणी में रखी जा सकती हैं। इंगलैंड की विधि क्या है—इसका निश्चय करने के लिए इन पुस्तकों का निर्देश किया जा सकता है।

(६) किन्तु अंग्रेजी संविधान का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत संविधान की निरूढियाँ (conventions) हैं। ऑग (Ogg) के अनुसार, उनमें "समझौते (understandings), रीतियाँ (practices) और आदतें (habits) सम्मिलित हैं जो कि सरकारी अधिकारियों की वास्तविक कार्यवाहियों और आपसी सम्बन्धों के एक बड़े अंश को विनियमित करते हैं।" बाल्डविन (Baldwin) के मतानुसार, "इतिहासकार सम्भवतः आपको बिलकुल स्पष्ट रूप से बता सकता है कि भूतकाल में किसी समय संवैधानिक चलन क्या था, परन्तु किसी भी जीवित लेखक के लिए अपने जीवन-

---

१. हैरिसन के अनुसार "रूढि या कामन (common) विशेषण की यह व्याख्या है कि मध्य काल में राजा के उच्च न्यायालयों द्वारा प्रशासित कानून सारे राज्य की सामान्य रूढि था, उसके मुकाबले में स्थानीय रूढ़ियाँ अमान्य होती थीं।"

काल मे एक विशेष समय पर यह बता देना बहुत कठिन है कि हमारे देश का संविधान पूर्ण रूप में यह है। यही कारण है कि प्रायः एक विशेष समय पर......एक रीति सवैधानिक कही जा सकती है, जिसका कि प्रयोग समाप्त हो रहा है, और एक दूसरी इस प्रकार की भी रीति हो सकती है, जो कि शनैः-शनैः प्रयोग में लाई जा रही है, परन्तु जो अभी संवैधानिक नही है।" लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) के अनुसार, ब्रिटिश संविधान "समझौतों के एक ऐसे समूह द्वारा कार्य करता है, जिसको कोई भी लेखक लेखबद्ध नही कर सकता।" निरूढ़ियों की अधिकता के कारण ही इंग्लिश संविधान को निरूढ़ियों से जकडा हुआ कहा जाता है।

अंग्रेजी संविधान की मुख्य विशेषताएँ (Salient Features of the English Constitution)—प्रो० मनरो (Prof. Munro) के अनुसार, "अंग्रेजी संविधान अन्य संविधानों का जनक है और ब्रिटिश संसद् सब संसदों की जननी है।" अन्य देशों की विधायक सभाएँ चाहे किसी भी नाम से पुकारी जाती हों उनकी उत्पत्ति का केन्द्र एक ही है।

(१) ब्रिटिश संविधान की बहुत-सी विशेषताएँ हैं। अंग्रेजी संविधान का सर्वप्रथम विशेष गुण इसकी विकासशील प्रकृति (evolutionary nature) है। मनरो का कथन है कि "अंग्रेजी संविधान एक पूर्ण की हुई वस्तु नही है, परन्तु वृद्धि का एक प्रक्रम है। यह बुद्धिमत्ता व सयोग के मिलन से उत्पन्न बालक है जिसका मार्ग-प्रदर्शन कभी आकस्मिक घटनाओं द्वारा और कभी-कभी उच्चकोटि की योजनाओं द्वारा हुआ है। अंग्रेजी संविधान "एक नदी की भाँति है जिसका कि गतिशील तल-पृष्ठ (surface) भाग मानो किसी के पैर से इधर-उधर से निकलकर कभी अन्दर व कभी बाहर की ओर घूमकर धीरे से बह निकलता है और कभी-कभी पत्तों के झुरमुट में खो भी जाता है।" साथ ही "यह जनसमुदाय का ऐसा भवन है जिसमें एक के पश्चात् दूसरे अधिकारियों ने अपनी-अपनी सुविधा व समय की परिस्थिति के अनुसार सुधारने के लिए कक्ष-पंक्तियों (wings), खिड़कियो, बरामदों अथवा स्तम्भों के रूप मे योग दिया है।"

यह एक मध्यकालीन भवन है जिसको वर्तमान युग के अनुसार नया किया गया है, केवल इसके बुर्ज के ऊपरी भाग में कभी कोई परिवर्तन नही हुआ है। डा० जैनिंग्ज (Jennings) के अनुसार, "यदि संविधान संस्थाओ से मिलकर बनता है और कागज से नही जो उनकी व्याख्या करता है, तो ब्रिटिश संविधान बनाया नहीं गया है बल्कि विकसित हुआ है—अतः वह कोई कागज नही है।" पुनः "तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाई गई वे संस्थाएँ अधिक विस्तृत तथा कभी-कभी विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए स्वीकार की गई थीं। समय-समय पर राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण उनमें सुधार की आवश्यकता पड़ी। उलट-फेर (inversion), सुधार और शक्तियों के संशोधित वितरण (distribution) की स्थिर परिपाटी (constant process) रही है। भवन सदैव ही बढ़ता रहा है, इसकी मरम्मत की गई है और इसे आंशिक रूप से दुबारा बनाया ...स तरह उसे हर सदी में नया रूप मिलता रहा है, लेकिन उसे पूरी तरह

नष्ट करके नई नीव पर कभी दीवारा नही बनाया गया है।" अंग्रेजी संविधान एक विकासोन्मुखी बालक (Child of Evolution) है। इसका आरम्भ शताब्दियों पहले दिखाई देता है। इस प्रकार इसका रूप बहुत से उन संविधानों से पृथक् है, जो कि संविधान सभा या संसद् द्वारा बनाए गए हैं।

बौट्मी (Boutmy) के शब्दों में, "अंग्रेजों ने अपने संविधान के विभिन्न भागो को उसी स्थान पर रहने दिया है, जहाँ इतिहास की लहर ने उन्हे ला फेंका। उन्होंने उन्हें एकत्र करने, उनका वर्गीकरण करने, उन्हे पूर्ण करने, अथवा उनमे सम्बद्धता लाने का प्रयत्न नही किया। यह बिखरा हुआ संविधान पुस्तकें पढ जाने वालो या अपनी कठिनाई हल करने वालों की सहायता नही करता। इसे भूल प्रदर्शित करने वाले आलोचकों, या किसी भाग की नुक्ताचीनी करने वाले समीक्षकों से भय नहीं लगता। इस प्रकार से आप इसकी सुखद असम्बद्धता (incoherence), लाभदायक विषमताएँ (incongruities), सरक्षणकारी परस्पर विरोध (contradictions) बनाए रख सकते हैं। ये बातें ऐसी संस्थाओं में होनी ही चाहिएँ क्योंकि वे वस्तुओं की प्रकृति ही में बसी हुई हैं, और यद्यपि वे सभी सामाजिक शक्तियों को मुक्त रूप से कार्य करने देती हैं, फिर भी वे कभी किसी को दायरे से बाहर नही जाने देती हैं, और न ही कभी भवन की नीव अथवा दीवारों को धक्का पहुँचाने देती हैं। *यह है वह परिणाम जिस पर, अंग्रेज अपने संविधान के मूल शब्दों को असाधारण* रूप से छितराकर पहुँचे हैं और जिसका उन्हें गर्व है, और एक संहिता (code) बनाने के प्रस्ताव को स्वीकार कर जिसे नष्ट करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।"

ऑग (Ogg) के मतानुसार, "अंग्रेजी संविधान एक जीवित जीव पिण्ड (living organism) है।" यह जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सतत आगे बढ़ रहा है।

(२) इंगलैंड में संसदीय प्रणाली (parliamentary form) की सरकार है। कार्यपालिका (Executive), विधायिका (Legislature) के प्रति उत्तरदायी है। केवल वही दल मन्त्रिमण्डल स्थापित कर सकता है जिसका संसद् में बहुमत हो। यह मन्त्रिमण्डल तभी तक पदारूढ रह सकता है जब तक इसे संसद् का विश्वास बना रहे। यदि मन्त्रिमण्डल किसी विषय पर पराजित हो जाए तो उसे त्याग-पत्र देना पड़ता है। *मन्त्रिमण्डल अपने कार्यों तथा अकार्यों (omission and commission) के लिए* भी संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है। इंगलैंड मे प्रशासन जनता की इच्छाओ के अनुसार चलता है, और जनता की उस इच्छा की अभिव्यक्ति (expression) संसद् में उसके प्रतिनिधियों द्वारा होती है। इस विषय में इसकी अमेरिकी संविधान से मौलिक भिन्नता है।

ग्रीव्ज (Greaves) के कथनानुसार, "इगलैंड मे शासन करने का अधिकार विधायिका (legislature) के माध्यम से कैबिनट को प्राप्त होता है; यह जनता द्वारा निर्वाचित मुख्य कार्यपालिका (chief executive) और जनता द्वारा निर्वाचित संसद् को अलग-अलग नहीं सौंपा जाता है। इसलिए जनता की ओर से समान नैतिक आधार पर बोलने का अधिकार रखती हुई दोनों संस्थाएं परस्पर-विरोधी व्याख्या करने में समर्थ नहीं हैं। ऐसे शक्ति-विभाजन का परिणाम परस्पर-वि॰

निर्जीविता (inanition) होती है जिसका सहज अनुमान जर्मनी के वीमर संविधान (Weimar Constitution) या अमेरिका के संघात्मक (federal) संविधान या १८४८ ई० के स्विस के संविधान से ही हो सकता है।

(३) इंगलैंड में एक सीमित राजतन्त्र (limited monarchy) है। सैद्धान्तिकतः सम्राट् के अधिकार असीम रखे गए हैं और इन अधिकारों का प्रयोग मन्त्रि-गण सम्राट् के नाम पर करते हैं। सम्राट् मन्त्रिमण्डल की सलाह एवं सम्मति के बिना कुछ नहीं कर सकता। ओग (Ogg) के अनुसार, "इंगलैंड की राज्य व्यवस्था शुद्ध सिद्धान्त की दृष्टि से तो निरंकुश राजतन्त्र (Absolute Monarchy) है, किन्तु व्यवहार में एक संवैधानिक सीमित राजतन्त्र और वास्तव में एक लोक-तन्त्रीय गणराज्य (Democratic Republic) है।"

(४) इंगलैंड का संविधान लचकदार (flexible) है। अमेरिका में संविधान के संशोधन की प्रणाली बड़ी ही कठिन है, पर इंगलैंड में संशोधन करना बहुत आसान है। अंग्रेजी संविधान में संशोधन ठीक उसी प्रकार हो सकता है, जिस प्रकार देश के साधारण कानूनों में। वास्तव में संविधान में संशोधन के लिए कोई भिन्न प्रणाली नहीं है। सन् १९३६ का गद्दी-त्याग अधिनियम (Abdication Act) जब संसद् में उपस्थित किया गया तो आधे घन्टे के अन्दर अन्दर पास हो गया था।

(५) भारत व अमेरिकी शासन-पद्धति का रूप संघीय (federal) है और इसके विपरीत इंगलैंड की शासन-पद्धति एकीय (unitary) है। केन्द्रीय सरकार में सम्पूर्ण शक्तियाँ निहित हैं और ब्रिटिश संसद् जो कुछ चाहे कर सकती है। शक्तिमन्तः (*intra vires*) तथा शक्ति-बाह्य (*ultra vires*) का कोई झंझट खड़ा नहीं होता।

(६) अंग्रेजी संविधान की दूसरी विशेषता संसद् की सर्वोच्चता (supremacy) है। ऐसी कोई बात नहीं, जिसे ब्रिटिश संसद् न कर सकती हो। सर एडवर्ड कोक (Sir Edward Coke) के अनुसार, संसद् का अधिकार-क्षेत्र पूर्ण तथा अति श्रेष्ठ (transcendent) है। मनरो (Munro) के शब्दों में, "यदि एकमात्र कार्य यह नहीं कर सकती तो वह कार्य है कि यह अपने उत्तराधिकारियों पर कोई रोक नहीं लगा सकती। यह संवैधानिक परिवर्तनों के क्रम में भी कोई रोक नहीं लगा सकती और न ही उन्हें समाप्त कर सकती है।" रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) के शब्दों में "यदि शक्तियों का विभाजन (Separation of Powers) अमेरिकी संविधान का एक आवश्यक सिद्धान्त है तो उत्तरदायित्व का केन्द्रीयकरण अंग्रेजी संविधान का एक आवश्यक अंग है।"

(७) अंग्रेजी संविधान की अवास्तविकता (unreality) भी एक विशेषता है। यह ठीक ही निर्देश किया गया है कि यह संविधान जैसा दीखता है वैसा नहीं है और जैसा है वैसा दिखलाई नहीं देता। इंगलैंड में राजा है, परन्तु वह किसी शक्ति का प्रयोग नहीं करता। हम संसद् की सर्वोच्चता की बात करते हैं, परन्तु वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित है। लार्ड सभा (House of Lords) पुनर्विचार peal) के लिए उच्चतम न्यायालय है, परन्तु जिस समय यह इस विशेष कार्य के ठती है, तब केवल वे सदस्य इसमें सम्मिलित हो सकते हैं जो किसी कानून

सम्बन्धी उच्च पद पर हों, या रहे हों—ये सदस्य विधिज्ञ लार्ड (law-lords) कहलाते हैं। कोई विस्मय की बात नहीं यदि यह कहा जाय कि इंगलैंड की राज्य-पद्धति शुद्ध सिद्धान्त की दृष्टि से निरंकुश राजतन्त्र है, प्रकृति में एक संवैधानिक राजतन्त्र है और वास्तविक व्यवहार मे एक लोकतन्त्रीय गणराज्य है। इंगलैंड के संवैधानिक ढांचे (जिस पर विभिन्न प्रभावों के चिह्न स्पष्ट है) की तुलना सर विलियम एन्सन ने उस असम्बद्ध भवन से की है जिसके बाद के क्रमागत स्वामियों ने उसमे बिना किसी पद्धति और सममिति (symmetry) के नये कमरे और शिखर, ड्योढी और खम्बे जोड़ दिए हैं। इसमे असगतियों (anomalies) की भरमार है और अंग्रेज उन्हें बनाए रखना पसंद करते हैं। सवैधानिक सिद्धान्त और शासन-व्यवहार के बीच का अन्तर ही ब्रिटिश संविधान की विशेषता है।

(८) अंग्रेजी सविधान की एक और विशेषता इसमे निरूढ़ियों (conventions) की अधिकाधिक मात्रा है। इन निरूढ़ियों ने अंग्रेजी संविधान की प्रकृति को सिर से पैर तक बदल दिया है। उनके होने के कारण ही अंग्रेजी संविधान को एक अलिखित संविधान कहा जा सकता है। सर जे० ए० आर० मैरियट (Sir J. A. R. Marriot) के शब्दों में, "इन अवास्तविकताओं—सिद्धान्त व वास्तविकता के विस्तृत अन्तर—ने अंग्रेजी संविधान की वास्तविक कार्य-शैली का विश्लेषण करने में या वर्णन करने में एक विचित्र कठिनाई उपस्थित कर दी है।"

(९) विधि का शासन (Rule of Law) अंग्रेजी संविधान की एक और विशेषता है। यह इंगलैंड मे विधि की सर्वोच्चता को प्रकट करता है। किसी व्यक्ति को कोई दण्ड नहीं मिल सकता जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि उसने देश के किसी न किसी कानून को भंग किया है। किसी भी व्यक्ति को स्वेच्छाचारी (arbitrary) दण्ड नही दिया जा सकता। कोई मनुष्य कानून से ऊपर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति पर चाहे उसका कोई भी पद व स्थिति हो, देश का सामान्य कानून लागू है। जो कानून एक व्यक्ति पर लागू होता है, वही सब पर लागू होता है।"

(१०) अंग्रेजी सविधान की एक और विशेषता यह है कि यह सारतः (essentially) न्यायाधीशों द्वारा बनाया गया संविधान है। यह ठीक ही कहा गया है कि जो अधिकार इगलैंड की जनता को प्राप्त हैं, उनमें से अधिकांश इंगलैंड के न्यायाधीशों द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्णयों के परिणामस्वरूप मिले हैं। वे उद्देश्य, जिनकी पूर्ति भारतीय संविधान में मूलाधिकारों (fundamental rights) द्वारा होती है, इंगलैंड में न्यायालय के निर्णयों द्वारा प्राप्त किए गए हैं।

(११) अंग्रेजी संविधान भी कुछ अवरोधों व सन्तुलनों (Checks and Balances) के आधार पर स्थिर है। ब्रिटिश संसद् के दोनों सदन एक विधेयक को स्वीकार करते हैं किन्तु वह राजा के हस्ताक्षर हुए बिना लागू नहीं हो सकता। इसी प्रकार राजा की कोई भी आज्ञा उस समय तक कानूनी रूप से मान्य नहीं; जब तक उस पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर न हों। इंगलैंड में मन्त्री संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं और संसद् को अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रिमण्डल को हटाने का पूर्ण अधिकार है। यह अधिकार मन्त्रिमण्डल के किसी विधेयक या बजट को रद्द करके

कार्यान्वित किया जाता है। इसी प्रकार प्रधान मन्त्री राजा से कह सकता है कि संसद् को भंग कर दिया जाय। यदि संसद्-सदस्य मन्त्रिमण्डल को हटा सकते हैं तो मन्त्रिमण्डल भी उन सब ससद्-सदस्यों को वापस घर भेज सकता है। राज्य पदाधिकारियों का नियन्त्रण मन्त्रीगण ही करते हैं। किन्तु मन्त्री भी अपनी नीतियों को सुचारु रूप से पूरा करने के लिए प्रशासकीय पदाधिकारियों की ओर देखते हैं। यद्यपि न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका करती है, तथापि एक बार पदारूढ़ करने के पश्चात् वह उनको नही निकाल सकती। वे सदाचरणपर्यन्त अपने पदों पर बने रहते हैं। वे कार्यपालिका के स्वेच्छाचारी शक्ति-प्रयोग की आलोचना कर सकते हैं तथा उन पर रोक भी लगा सकते हैं। लार्ड ब्राइस के मतानुसार, "इंगलैंड के संविधान की सफलता का रहस्य वह नाजुक सन्तुलन है, जो मन्त्रिमण्डल, लोक सभा और आम चुनावों के समय मतदान करने वाले राष्ट्र मे परस्पर कायम है।"

(१२) सहनशीलता का सिद्धान्त इंगलैंड के सविधान का एक और विशेष गुण है। डा० जैनिग्ज़ ने कहा है कि "इसका १७वी सदी के संघर्षों द्वारा क्रमिक विकास हुआ है; यह कानूनो में भी समाविष्ट की गयी है परन्तु अब भी यह अधिकतर मानसिक अभिवृत्ति (attitude of mind) के रूप मे ही है। प्रजातन्त्रीय शासन-व्यवस्था केवल सहनशीलता के आधार पर नही चल सकती, क्योंकि बहुमत सदैव स्थायी नही रहता। यह व्यक्तिगत व राष्ट्रीय हित के विभिन्न विचारों पर आधारित है। ये विचार परिवर्तनशील होते हैं और काफी व्यक्तियों के विचारों में अवश्य ही समय-समय पर परिवर्तन होता है। विचार केवल थोड़े ही अस्थिर नहीं होते वरन् कभी-कभी भीषण रूप से अस्थिर हो जाते हैं। अंग्रेजी राजनीति में राजनैतिक दलों के अधिकार आमतौर पर उलट-पुलट होते रहते हैं।

अतः पार्टियां विवेक-बुद्धि को अपील करती हैं। बहुमत अस्थायी रहते हैं और आज का विरोधी दल कल का शासक-दल बन सकता है। इस महत्त्वपूर्ण वास्तविकता को कभी नही भुलाना चाहिये, कारण कि यह अल्पसंख्यक दलों को बहुमत प्राप्त दलो की नीतियों को प्रसन्नतापूर्वक पूरा करने तथा शान्तिपूर्वक स्वीकार करने में समर्थ बनाती है।"

निरूढ़ियाँ (Conventions)—अंग्रेजी संविधान में निरूढ़ियों के महत्त्व पर जितना बल दिया जाए, उतना ही थोड़ा है। इन निरूढ़ियों द्वारा किए गए कार्यों के कारण ही अंग्रेजी सविधान एक अलिखित संविधान कहा जाता है। शासन के संचालन के विषय में महत्त्वपूर्ण उपबन्ध इंगलैंड की निरूढ़ियों पर ही आधारित हैं। जिनको डायसी ने संविधान की निरूढ़ियाँ कहा है, उनको जे० एस० मिल (J. S. Mill) ने "संविधान के अलिखित सूत्र (maxims)" और एनसन (Anson) ने "संविधान की रूढियाँ (Customs)" कहा है।

निरूढ़ियों की प्रकृति (Their Nature)—निरूढियों के गुणों के सम्बन्ध मे श्री फ्रीमैन (Freeman) ने इस प्रकार कहा है कि "हमारे पास राजनैतिक नैतिकता (morality) की पूरी प्रणाली, सार्वजनिक व्यक्तियों के मार्ग-दर्शन के लिए मर्यादाओं (precepts) की पूर्ण नियमावली है जो कि न तो परिनियम (statute) के और

न ही रूढ़िविधि नियम (Common Law) के किसी पृष्ठ पर मिलेगा, परन्तु व्यवहार में उन सिद्धान्तों से कुछ कम पवित्र नहीं है जिनका कि महान् राज-पत्रों (Great Charters) अथवा अधिकार के प्रार्थना-पत्रों (Petition of Rights) में समावेश है। संक्षेप में, हमारे लिखित कानून के साथ-साथ एक अलिखित या निरूढ़ि-गत संविधान (Conventional Constitution) का विकास हुआ है। जब कभी कोई इंगलैंडवासी किसी सार्वजनिक व्यक्ति के विषय में इस प्रकार कहता है कि अमुक व्यक्ति का अमुक आचरण सवैधानिक अथवा असंवैधानिक है तब उसका तात्पर्य वैधता (legal) अथवा अवैधता के आशय से बिलकुल भिन्न होता है। एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ के प्रस्ताव पर किए गए एक प्रसिद्ध निर्णय में संसद् ने यह घोषित किया था कि उस समय के मन्त्रियों को संसद् का विश्वास प्राप्त नही है, अतः उनका पदारूढ़ रहना संविधान की भावना के विपरीत है। इस प्रकार की स्थिति की सत्यता पर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती, जिसके आधार पर परम्परागत (traditional) सिद्धान्तों के अनुसार पिछली कुछ पीढ़ियों मे सार्वजनिक नेता कार्य करते आए हैं। परन्तु इस प्रकार के उच्च सिद्धान्तों की खोज किसी लिखित पुस्तक के पृष्ठों में करने का प्रयत्न व्यर्थ है। उस पुस्तक के प्रस्तावक का तात्पर्य मन्त्रिमण्डल की किसी गैर-कानूनी कार्यवाही से नही था, जो कि किसी छोटे न्यायालय मे या स्वयं ससद् के उच्च न्यायालय में अभियोग का रूप लेती। उसका यह भी अभिप्राय नहीं था कि उन मन्त्रियों ने, जिनकी नियुक्ति राजा द्वारा की गई थी; अपने मन्त्रित्व-काल मे कोई गैर-कानूनी कार्य किया है। वास्तव में इसका अभिप्राय यह था कि मंत्रिमण्डल की नीति ऐसी थी जिसे कि संसद् के अधिकतर सदस्य बुद्धिमत्तापूर्ण और देश के लिए लाभदायक नहीं समझते, और उस निरूढ़ि के अनुसार जिसको सब ठीक प्रकार से समझते हैं और जो उतनी ही कार्यसाधक (effectual) है जितना कि लिखित कानून-मन्त्रियों को अपने इस मन्त्री-पद से त्याग-पत्र देना आवश्यक है जिनके लिए ससद् उनको बिलकुल योग्य नही समझती।"

डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के मतानुसार, "कानून की सूखी हड्डियो के ऊपर निरूढ़ियाँ मानो मास रूपी आवरण हैं। इनसे कानूनी संविधान कार्यरूप मे लाया जाता है और वे इसका विचारों के विकास के साथ मेल रखती हैं। संविधान स्वयं कार्य नही करता; यह मनुष्यो द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। यह राष्ट्रीय सहयोग का साधन है और सहयोग की भावना उतनी ही आवश्यक है जितना कि उसका साधन। संवैधानिक निरूढ़ियाँ उस सहयोग (co-operation) की कार्य-साधना के हेतु विस्तृत किए हुए नियम हैं। राष्ट्रीय जीवन की परिवर्तनशील अवस्थाओं के साथ-साथ संविधान के तथ्यो में भी परिवर्तन आवश्यक है। कानून वही रहने पर भी नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नयी बातों को महत्व देना और नई दिशा मे उसका अर्थ लगाना आवश्यक होता है। मनुष्यों को पुराने कानून से नई आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है। संवैधानिक निरूढ़ियाँ ही वे नियम हैं जिनका वे विस्तार करते हैं।

सर विलियम होल्डजवर्थ (Sir William Holdsworth) के मतानुसार,

"जहाँ भी शासन-शक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अथवा संस्थाओं में निहित (vested) हो, दूसरे शब्दों मे, जहाँ मिश्रित संविधान हो, वहाँ निरूढियों का विकास प्रत्येक काल मे और प्रत्येक स्थान पर होना चाहिये।" बर्क (Burke) का कथन है कि "किसी एक राज्य के घटक भागों को एक-दूसरे पर सरकारी रूप में आस्था रखनी ही पड़ती है और वह आस्था उन सब पर भी रखनी पड़ती है जो इनकी कृतियों (engagements) से कुछ लाभ प्राप्त करते हैं और इस प्रकार सारे राज्य को भिन्न-भिन्न समुदायों में निश्चित रूप से आस्था रखनी पड़ती है।" अवश्य ही, निरूढियों के नियमों की उत्पत्ति संविधान के भिन्न-भिन्न भागों के कार्य, उनके आपसी सम्बन्धों तथा विषय के साथ उनके सम्बन्ध को विनियमित करने के लिए होती है। इतना ही नहीं कि इन परिस्थितियो मे ये निरूढियाँ पैदा होंगी अपितु इनमे सदा दो सामान्य विशेषताएँ रहती हैं। प्रथम, यदि हमें संविधान के वास्तविक प्रचलन के विषय में खोज करनी हो तो हमे इन निरूढियों की ओर ही देखना पड़ेगा। वे यह निर्धारित करती हैं कि विधि के नियम, जिन्हें वे पहले ही मान कर चलती है, किस तरह लागू किए जाएँ कि वह संविधान की प्रेरक शक्ति बन सके। दूसरे, इन निरूढ़ियों का उपयोग इसलिए भी होता है कि संविधान का वास्तविक प्रचलन उस समय प्रचलित संवैधानिक सिद्धान्त के अनुसार ही हो।

निरूढ़ियों का मूल्य—प्रो० डायसी (Prof. Dicey) के मतानुसार, अधिकतर निरूढियाँ यह निर्णय करने की प्रणाली के लिए नियम रूप हैं और यह बताती हैं कि ताज यानी क्राउन की विवेक-शक्तियो का प्रयोग किस तरह हो। निरूढियो का दूसरा ध्येय है कि संसद तथा मन्त्रिमण्डल द्वारा अन्त मे मतदाताओं की इच्छा-पूर्ति हो। उसके शब्दों में, "हमारी वर्तमान सवैधानिक धर्म-संहिता (constitutional morality) इस चीज को सिद्ध करती है जिसे दूसरे देशों में जनता की प्रभुता (sovereignty) कहा जाता है।" वह नियम जिसके द्वारा शासको की नियुक्ति का अधिकार विशेष रूप से लोक सभा को प्राप्त है, वास्तव में कार्यपालिका का अन्तिम नियन्त्रण राष्ट्र को सौंपता है।

डा० जैनिंग्ज के मतानुसार, निरूढ़ियाँ दो महत्त्वपूर्ण कार्यों की पूर्ति करती हैं। प्रथम, वे एक कठोर ढांचे को बदलने के साथ-साथ सामाजिक आवश्यकताओ तथा राजनैतिक विचारों को बनाए रखने मे सहायक है। दूसरे, निरूढियो द्वारा शासन-कर्त्ताओ के इस शासन-यन्त्र के चलने मे सहायता मिलती है। मन्त्रिमण्डल प्रणाली शासन-कार्य में सूत्रबद्धता लाती है, शासक तथा विरोधी पक्ष, दोनों मिल-जुल कर कार्य करते हैं। निरूढियों द्वारा डोमीनियन (Dominions) तथा ब्रिटेन को मिल-जुल कर कार्य करने मे सहायता मिलती है।

विधियाँ और निरूढ़ियाँ (Laws and Conventions)—विधियों और निरूढ़ियों में अन्तर दिखाया जा सकता है। विधियाँ विधानमण्डलों (legislatures) द्वारा बनाई जाती हैं; लेकिन निरूढियाँ ऐसे नही बनती। तो भी; यह सम्भव है कि आज की निरूढि कल को कानून बन जाये। इसके अतिरिक्त विधियाँ न्यायालयों द्वारा लागू की जाती हैं, परन्तु निरूढियाँ इस प्रकार लागू नही होती। विधियाँ जड होती

हैं और निरूढ़ियां परिवर्तनशील। निरूढ़ियों की वृद्धि की तुलना एक वृक्ष की वृद्धि के साथ की जा सकती है। निरूढ़ियों की वृद्धि निरंतर किन्तु शनैः-शनैः होती रहती है, जिसकी ओर ध्यान आकर्षित नही होता, परन्तु कानून एकाएक बदल जाते है। पुराने कानून को हटाकर इसका स्थान नया कानून ले लेता है, वह भी क्रमशः नहीं, प्रत्युत् एकाएक। डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "यद्यपि पहले निरूढ़ियां कानूनों की नीव पर ही बनती हैं, परन्तु जब एक बार वे स्थिर हो गयीं, तब फिर वे कानूनो का आधार बन जाती हैं।" सन् १९१९ मे डोमीनियनो की विधान सभाओं के सचालन के विषय मे हुए सम्मेलन की रिपोर्ट के अनुसार, "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth) के इतिहास मे संवैधानिक निरूढियो का कानून के साथ सम्बन्ध सुविदित है। इन डोमीनियनों के अपने-अपने घरेलू राज्य-सचालन मे तथा आपसी सम्बन्धों में जो राजनैतिक विकास हुआ है, उसकी एक विशेषता ये निरूढ़ियां रही हैं। कार्यपालिका तथा विधायिका दोनों शक्तियों मे इनका प्रवेश हुआ है। यह उस जगह आपसी सम्बन्धो में समन्वय करने का एक साधन है, जहां प्रत्यक्ष व्यावहारिक समस्याओ का निरा कानूनी हल है, या वह स्वतन्त्र विकास मे बाधक होता है या उस भावना को समझने मे असमर्थ होता है, जिससे संस्थाओं को जीवन प्राप्त होता है। इस प्रकार की निरूढियां संवैधानिक सिद्धान्तो में अपना एक स्थान रखती हैं जो कि आचरण मे बाध्यकर अथवा पवित्र मानी जाती हैं, चाहे ससद् की सिद्धान्त रूप में कुछ भी शक्तियां हों।"

निरूढ़ियां और रूढ़िविधि (Conventions and Common Law)—जहां तक निरूढियों व रूढ़िविधि का सम्बन्ध है, दोनों ही विधानमण्डलों द्वारा अधिनियमित नही होते। तो भी, रूढ़िविधि देश के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तित की जाती है; निरूढ़ियों को प्रवर्तित नही किया जा सकता। निरूढ़ियां देश की रूढ़ियों (customs) से पैदा होती है, पर रूढिविधि देश के न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों (decisions) का परिणाम है।

महत्त्वपूर्ण निरूढ़ियां (Important Conventions)—अंग्रेजी संविधान मे निम्नलिखित निरूढ़ियां महत्त्वपूर्ण हैं—

(१) इंगलैंड में समूची मन्त्रिमण्डल पद्धति निरूढियों पर आधारित है। जब आम चुनाव समाप्त हो जाते हैं तब निरूढि के अनुसार इगलैंड के राजा को बहुमत प्राप्त दल के नेता को मन्त्रि-परिषद् बनाने के लिए बुलाना पडता है। अपने सहयोगियो को चुनने की प्रधान मन्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रता है। उस निर्णय मे राजा कोई हस्तक्षेप नहीं करता। वह प्रधान मन्त्री पर अपने मनचाहे व्यक्तियो के लिए दबाव नही डालता है।

(२) मन्त्रि-परिषद् उसी समय तक पदारूढ़ रह सकती है जब तक उसे लोक-सभा का विश्वास (confidence) प्राप्त है। यदि मन्त्रि-परिषद् के विरुद्ध बहुमत हो जाए तो इसके सामने दो मार्ग होते हैं। यह तुरन्त ही त्याग-पत्र दे सकता है और विरोधी दल के नेता को मन्त्रि-परिषद् बनाने के लिए बुलाया जा सकता है, अथवा हारी हुई मन्त्रि-परिषद् के प्रधान मन्त्री को यह अधिकार है कि वह राजा से लोक सभा (House of Commons) को भंग करने के लिए कहे। निरूढ़ि ऐसी है कि

यदि इस प्रकार की प्रार्थना की जाये, तो राजा को लोक-सभा को भंग करने की आज्ञा देनी ही पड़ती है। फिर आम चुनाव कराये जाते हैं। यदि हारी हुई मन्त्रि-परिषद् को चुनावों में बहुमत प्राप्त हो जाए, तो वह पदारूढ़ हो जाती है। यदि यह नये चुनावों में हार जाए तो फिर इसे नई लोक सभा की बैठक होने से पहले ही त्याग-पत्र देना पड़ता है। यह दूसरी बार लोक सभा को भंग करने की मांग नहीं कर सकती।

(३) मन्त्रिगण सामूहिक रूप से (collectively) लोक सभा के प्रति उत्तरदायी हैं। यदि एक मन्त्री भी हार जाता है तो सारी मन्त्रि-परिषद् को त्याग-पत्र देना पड़ता है। लार्ड मॉरले (Lord Morley) के मतानुसार, "साधारणतया विभागों की नीतियों के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अंश के लिए समस्त मन्त्रि-परिषद् उत्तरदायी है। और सब मन्त्री एक साथ खड़े रह सकते हैं और इकट्ठे ही गिरते हैं। वित्त-मन्त्री (Chancellor of the Exchequer) का मन्त्रित्व विदेश मन्त्रालय (Foreign Office) की गलती होने पर भी समाप्त हो सकता है और कुशल गृह-मन्त्री को एक मूर्ख युद्ध-मन्त्री की गलती से हानि पहुँच सकती है। मन्त्रि-परिषद् राजा व संसद् दोनों के सामने इकाई रूप है। इसके विचार राजा व संसद् के सामने इस प्रकार से रखे जाते हैं मानो वे एक व्यक्ति के विचार हों। यह अपनी सलाह इकाई रूप में ही देती है, चाहे यह राजा को दी जाए, लार्ड सभा को दी जाए, या लोक सभा को दी जाए। मन्त्रि-परिषद् की प्रथम विशेषता जैसा कि अब समझा जाता है, उसका संयुक्त और अविभाज्य उत्तरदायित्व (united and indivisible responsibility) है।

(४) एक दूसरी निरूढ़ि लोक सभा के अध्यक्ष (Speaker) के विषय में है। लोक सभा के अध्यक्ष का चुनाव दलों के आधार पर होता है परन्तु चुनाव के पश्चात् वह अपने दल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है। वह स्वतन्त्र हो जाता है और किसी दल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह बिलकुल निष्पक्ष रूप से व्यवहार करता है। परिणाम यह होता है कि उसको अगले आम चुनाव में निर्विरोध चुना जाता है और जब तक वह चाहे तब तक वह अध्यक्ष रह सकता है।

(५) विधि के अनुसार लार्ड सभा इंगलैंड में पुनर्विचार (appeal) के लिए सर्वोच्च न्यायालय है। परन्तु निरूढ़ि के अनुसार, जिस समय लार्ड सभा अपील के उच्चतम न्यायालय के नाते कार्य करती है तब केवल विधिज्ञ-सदस्य (Law Lords) ही उसमें भाग लेते हैं और लार्ड सभा के दूसरे सदस्य नहीं होते। इन कानून विशेषज्ञों की नियुक्ति उनके कानून सम्बन्धी ज्ञान के कारण जीवन भर के लिए की जाती है।

(६) एक अन्य निरूढ़ि के अनुसार राजा अपने निषेधाधिकार (veto) को काम में नहीं लाता। जब कोई विधेयक(bill) लार्ड सभा और लोक सभा दोनों में स्वीकृत हो जाता है तब वह विधेयक राजा के पास हस्ताक्षरों के लिए भेजा जाता है। राजा की अनुमति के बिना कोई विधेयक अधिनियम (act) नहीं बनता। राजा उस विधेयक को अस्वीकार कर सकता है, उसे स्वीकार करने से इन्कार कर सकता है, परन्तु इस निरूढ़ि के कारण राजा अपनी 'वीटो' को काम में नहीं लाता।

(७) इंगलैंड के प्रधान मन्त्री के विषय में भी एक निरूढ़ि है। यह सत्य है कि

१६ वीं सदी में पामर्स्टन, सैलिसबरी इत्यादि अनेक प्रधान मन्त्री लार्ड सभा के सदस्य थे। किन्तु निरूढि की माँग है कि प्रधान मन्त्री को लोक सभा का सदस्य होना चाहिए। यह प्रसिद्ध है कि १९२२ में लार्ड कर्जन को जार्ज पंचम ने इसलिए प्रधान मन्त्री नियुक्त नहीं किया कि वह लार्ड सभा का सदस्य था।

(८) एक अन्य निरूढि के अनुसार, संधियाँ संसद् के किसी अधिनियम के अधिकार के बिना ही की जा सकती हैं। किन्तु कोई भी मन्त्री किसी सधि को करने का साहस नहीं करेगा जब तक कि उसे यह विश्वास न हो जाए कि लोक सभा का बहुमत अमुक संधि के हक में है।

(९) एक अन्य निरूढ़ि यह है कि यदि लार्ड सभा लोक सभा के स्वीकृत विधेयक का विरोध करती रहे, तो राजा का यह कर्त्तव्य है कि उस लार्ड सभा में इतने और 'लार्ड' नियुक्त करे, या नियुक्त करने की धमकी दे जिससे कि लार्ड सभा में विरोधी दल कम रह जाय। यह बात सब जानते हैं कि इस प्रकार की धमकी १८३२ व १९११ में दी गई थी।

(१०) एक निरूढि यह है कि ससद् का अधिवेशन वर्ष में एक बार अवश्य बुलाना पड़ता है। ससद् के दो आह्वान (summoning) के बीच एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत नही होना चाहिए।

(११) डोमीनियन स्थिति (Dominion Status) की उत्पत्ति भी निरूढियो द्वारा ही हुई है। यह सत्य है कि कुछ निरूढियों को १९३१ के वैस्टमिंस्टर व्यवस्थापन (Statute of Westminster) द्वारा कानून का रूप दे दिया गया है, परन्तु अभी ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिन पर निरूढ़ियाँ लागू होती है। डोमीनियनों की सधियाँ करने के विषय मे वे निरूढ़ियाँ ही लागू होती है, जो १९२६ तथा सन् १९३० की इम्पीरियल कान्फ्रेंसों की रिपोर्टों में निहित हैं। साथ ही ऐसे कानून में किसी परिवर्तन के लिए, जिसका सम्बन्ध राज्यसिंहासन पर उत्तराधिकार तथा राजा के अभिधान (Royal Style and Titles) से हो तो ब्रिटिश डोमीनियनों की संसदों की सम्मति (consent) की आवश्यकता होती है।

(१२) एक निरूढि यह भी है कि किसी भी विधेयक को लोक सभा व लार्ड सभा में कुछ क्रमिक अवस्थाओं में से गुज़रना पड़ता है। तीन वाचनों सम्बन्धी व्यवस्था निरूढि की ही बात है।

(१३) एक और निरूढि जोड़ी बनाने (pairing) की है। यदि बहुमत प्राप्त दल के किसी सदस्य के अनुपस्थित रहने की सम्भावना है तो वह सदस्य अपने दल के सचेतक (Whip) को सूचित करता है और फिर वह सचेतक विरोधी दल के सचेतक से मालूम करता है कि क्या उसके दल का भी कोई सदस्य अनुपस्थित रहने वाला है। यदि विरोधी दल का भी ऐसा कोई सदस्य हो तो वे दोनो सदस्य अनुपस्थित रह सकते हैं और मत-गणना के अवसर पर उनकी अनुपस्थिति से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार की योजना में उन सदस्यों की 'जोड़ी बन गयी' (paired), ऐसा कहा जाता है।

(१४) एक और निरूढ़ि यह है कि लोक सभा की समितियों (
में दलों के प्रतिनिधियों की संख्या सभा में दलों की संख्या के अनुसार होती

कोई बहुमत प्राप्त पदासीन दल (party in power) सब समितियों में अपने ही दल के सदस्यों की नियुक्ति करे तो यह कानून के विरुद्ध नही होगा, परन्तु चलन का आधार निरूढि ही है।

(१५) एक और निरूढ़ि यह है कि शासक दल की ओर से एक भाषण होने के पश्चात् दूसरा भाषण विरोधी दल के सदस्य का होगा। तथ्य तो यह है कि विरोध का विचार स्वयं ही निरूढि की बात है।

(१६) एक और निरूढ़ि यह है कि सामाजिक विधान (social legislation) तैयार करते समय सम्बन्धित विभाग के लिए यह आवश्यक है कि वह बाहरी समाज के उसी विषय से सम्बन्ध रखने वाले लोगों से परामर्श करे। यदि कारखानों के विषय में कोई नया विधेयक स्वीकार करना है तो गृह-विभाग (Home office) का यह कर्त्तव्य है कि वह ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल से परामर्श ले। किसी ने कहा है, "पिछले समय से यह रीति रही है और इसकी प्रशंसा हुई है कि मन्त्री वैधानिक प्रस्तावों के विषय में इस संस्था से परामर्श करे······और यह खेद की बात है कि मन्त्री इस रीति का अनुसरण आर्थिक सहायता (subsidies) बन्द करने जैसी महत्त्वपूर्ण बात के लिए नही कर सका।"

(१७) एक अन्य निरूढि यह है कि सरकार विवादास्पद प्रश्नों पर निर्वाचकों (electorate) के विनिर्दिष्ट अधिदेश (specific mandate) के बिना विधान सूत्रपात नही करती। यह अधिदेश निरूढि (Mandate Convention) के नाम से प्रसिद्ध है, और इससे जनप्रभुत्व (popular sovereignty) के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। १९४५ में लेबर पार्टी के घोषणा-पत्र (Manifesto) में हाउस ऑफ लार्ड्स की शक्तियों को कम करने की आवश्यकता पर स्पष्ट रूप से इन शब्दों में कहा गया था—"हम यह स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि हम, हाउस ऑफ लार्ड्स के, जनमत में रुकावट डालने वाले कार्यों को बर्दाश्त नही करेंगे।" फलस्वरूप, जब लेबर पार्टी ने राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी कानूनों को पास किया, उस समय हाऊस ऑफ लार्ड्स के अनुदार (Conservative) बहुमत ने उनको अस्वीकृत नही किया। हाऊस ऑफ लार्ड्स में अनुदार दल के नेता, लार्ड क्रैनबोर्न (Lord Cranborne) ने कहा था—"हमारे व्यक्तिगत विचार कुछ भी क्यों न हों, हमें स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहिए कि ये प्रस्ताव हाल के आम चुनाव में देश की जनता के सम्मुख रखे गये थे और उसने इन प्रस्तावों का पूरा ज्ञान होते हुए, लेबर पार्टी को सत्तारूढ़ किया। इसलिए, मेरे विचार से, सरकार उचित रूप से यह दावा कर सकती है कि उसे इन प्रस्तावों को पेश करने का अधिदेश (mandate) प्राप्त है। मेरे विचार से, इस सदन के लिए इन प्रस्तावों का विरोध करना, जो कि निर्वाचकों के सम्मुख रखे गए थे, संवैधानिक तौर पर त्रुटिपूर्ण होगा, जब कि हाल ही मे देश ने उन पर अपने विचार प्रकट कर दिये हैं। इसी प्रकार हाऊस ऑफ लार्ड्स के सुधार के प्रश्न पर जब उदार दल को जनता का अधिदेश प्राप्त हो गया था, तब हाउस ऑफ लार्ड्स ने अपना विरोध समाप्त कर दिया था और इस प्रकार १९११ का पार्लियामेन्ट ऐक्ट पास हुआ था।

निरूढ़ियों के पीछे क्या शक्ति है? (Sanction behind Conventions)—

प्रो० डायसी (Prof. Dicey) के मतानुसार, संवैधानिक समझौते निश्चित रूप से कानून नहीं है। ये वे नियम नहीं हैं जिन्हें न्यायालय लागू कर सकें। यदि कोई प्रधान मन्त्री लोक सभा द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर भी जमा रहे, यदि वह (जैसा कि इसी प्रकार की परिस्थिति में लार्ड पामर्स्टन ने किया) लोकसभा को भंग करे, या राजा से कहकर भंग करवाये, परन्तु, लार्ड पामर्स्टन के असदृश नयी चुनी गई लोक सभा द्वारा दूसरी बार भी विश्वास प्राप्त न कर सके और सब कुछ होने पर भी अपने पद पर जमा रहे, तो कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि उस प्रधान मन्त्री ने संविधान के बिलकुल विपरीत कार्य किया है। तो भी, कोई न्यायालय उसके आचरण पर विचार नहीं कर सकता। इसी तरह मान लीजिए कि दोनों सभाओं के किसी महत्त्वपूर्ण विधेयक को स्वीकार करने के पश्चात् यदि राजा उस पर अनुमति नहीं देता हो, यानी अपना निषेध (veto) का अधिकार काम मे लाता है, तो यह *प्रथा (usage) का घोर उल्लंघन (gross violation) होगा, परन्तु किसी भी अंग्रेजी* कानून के अनुसार यह बात न्यायालय में नही लाई जा सकती। एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि संसद् का अधिवेशन कार्य-संचालन के हेतु एक वर्ष से अधिक समय तक नहीं बुलाया गया तो यह एक अत्यन्त असंवैधानिक आचरण माना जाएगा, परन्तु देश में ऐसा कोई न्यायालय नही है, जिसके सामने यह अभियोग ले जाया जा सके कि संसद् का अधिवेशन नहीं बुलाया गया। फिर भी जो निरूढ़ि-सम्बन्धी नियम हैं, ये यदि पूर्ण रूप से कानून नहीं हैं तो भी लगभग कानून की तरह ही बन्धनकारी माने जाते है। ये बहुत से संसदीय अधिनियमो (statutory enactments) की तरह ही मान्य हैं। या ऐसे मालूम होते है और कुछ अंशों में तो और भी अधिक मान्य हैं। समस्या यह है कि वह कौन-सा बल है जो स्वाभाविक रूप से ही इन नियमो को मानने के लिए बाध्य करता है और जिसके पीछे कोई न्यायिक कठोर शक्ति (coercive power) नहीं है।"

प्रो० डायसी ने निरूढ़ियों के पीछे मौजूदा बल के विषय में दो विचारों की ओर संकेत किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि निरूढियों के पीछे वास्तविक बल नहीं है। पहले विचारानुसार, महाभियोग (impeachment) के डर के कारण निरूढ़ियों का पालन किया जाता है। डायसी (Dicey) इस सत्य को स्वीकार करता है कि निरूढियों के पालन की आदत, शुरू में, महाभियोग ने ही पैदा और पुष्ट की, परन्तु आधुनिक काल मे ऐसा नही है। आधुनिक काल के राजनीतिज्ञों (statesmen) पर जेल तथा फाँसी (Tower and the block) के डर का प्रभाव नहीं पड़ता। अनेक वर्षों से संविधान के उल्लघन के विषय में कोई महाभियोग नही लाया गया है और वास्तव में महाभियोग की प्रथा का अब चलन नहीं रहा है। भविष्य मे भी इसके प्रयोग की कोई सम्भावना नही है। देश में मन्त्रिमण्डलीय पद्धति के विकास ने इसको व्यर्थ बना दिया है। मन्त्रीपद के उत्तरदायित्व तथा महाभियोग दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं।

डायसी ने इस विचार की ओर भी संकेत किया है कि निरूढियों का जनमत (public opinion) द्वारा सुनिश्चित हो गया है। डायसी के

"यह समझना कि संवैधानिक समझौतों को केवल जनता के अनुमोदन द्वारा ही बाध्य करने वाली शक्ति (coercive power) प्राप्त है, ठीक ऐसा होगा जैसे यह स्वीकार कर लिया जाए कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि की निरूढ़ियाँ केवल नैतिक बल (moral force) के कारण प्रचलित हैं। कुछ ऊँचे स्वप्न-द्रष्टाओं (dreamers) को छोड़कर प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता बहुत हद तक नैतिक शक्ति के आधार पर नहीं, प्रत्युत् बहुत भौतिक शक्तियों पर, यानी जल व स्थल सेनाओं पर, निर्भर करती है, जिनके द्वारा प्रचलित लोकमत की इच्छा का समर्थन किया जाता है, और कम-से-कम इगलैंड मे तो, संवैधानिक निरूढ़ियों का पालन और समर्थन जनता के अनुमोदन से बढ़ी या उसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु के कारण किया जाता है।"

डायसी के मतानुसार, "राजनीतिक शास्त्र को आचारनीति (ethics) के सिद्धान्तों को चाहे महाभियोग (impeachment) के भय ने स्थापित किया हो, या जनमत ने प्रभावित किया हो, परन्तु निरूढ़ियों के पीछे यह बल है कि इनका भंग दोषी को तुरन्त ही देश के नियमों तथा न्यायालयों के साथ संघर्ष में ले आता है। मान लो कि संसद् का सत्रावसान (prorogation) हुए एक वर्ष से अधिक समय हो जाए और दो वर्ष तक संसद् न बुलाई जाए। इसका परिणाम यह होगा कि सेना अधिनियम (Army Act) का अन्त हो जाएगा और सेना को बिना कानून भंग किये, वश मे रखने का कोई उपाय नहीं है। या तो सेना भंग कर दी जाए और न्याय व शान्ति व समाज-व्यवस्था नष्ट हो जाए, या फिर किसी भी कानूनी प्राधिकार के बिना ही सेना को कायम रखा जाए। यदि दूसरा मार्ग अपनाया जाए, तो मुख्य सेनापति से लेकर छोटे-से-छोटा अधिकारी तक प्रत्येक व्यक्ति देश के कानून के विरुद्ध कार्य करता है। इसके अतिरिक्त, कोई बजट (Budget) स्वीकृत नहीं हो सकता और करों की उगाही अवैध हो जाती है। संसद् की स्वीकृति के बिना ये सब कर उगाहने वाले व्यक्ति गिरफ्तार हो जायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि वह शासन, जिसने संसद् के वार्षिक सम्मेलन की निरूढ़ि को भंग किया है, अपने आपको बड़ी कठिन आपत्ति में उलझा हुआ पाएगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि निरूढ़ियाँ वास्तव में देश के कानून पर आधारित तथा उसके द्वारा सुरक्षित है। डायसी (Dicey) मानता है कि यदि लोकसभा का विश्वास खो बैठने के पश्चात् भी कोई मन्त्रिमण्डल त्याग-पत्र न दे तो उसका भी यही परिणाम होगा।

आलोचकगण प्रो॰ डायसी (Prof. Dicey) के इस विचार में कुछ त्रुटियाँ बतलाते हैं। यह कहा गया है कि डायसी ने इसे स्वयं स्वीकार किया है कि प्रत्येक निरूढ़ि के उल्लंघन के लिए देश का कानून दोषी को दण्ड नहीं देता। उदाहरण-स्वरूप, यदि कोई विधेयक संसद् में उतनी बार नहीं पढ़ा गया, जितनी बार कि प्रथा है, तो इसमें देश के किसी कानून का उल्लंघन नहीं है। इसके अतिरिक्त, अविश्वास का प्रस्ताव पास होने पर त्याग-पत्र देने की निरूढ़ि के उल्लंघन पर कानून का मन्त्रि-मण्डल के साथ तुरन्त ही झगड़ा खड़ा नहीं होगा। यदि कोई मन्त्रिमण्डल किसी वर्ष का बजट स्वीकृत हो जाने पर और सेना के जीवन में एक वर्ष की अवधि बढ़ जाने

के पश्चात् पराजित हो जाता है तो वह पराजित मन्त्रिमण्डल अगले वर्ष तक, जबकि बजट दूसरी बार स्वीकृत कराया जावेगा, पदारूढ़ रह सकता है। लौवेल (Lowell) के मतानुसार, इंगलैंड प्रति वर्ष नया सेना अधिनियम बनाने और प्रत्येक बारह मास के लिए नए विनियोग कराने के वास्ते सदा संसद् के वार्षिक अधिवेशन के लिए मजबूर नहीं है। संसद्, जिसका कि असीम अधिकार है, स्थायी रूप से सेना अधिनियम स्वीकार कर सकती है और प्रचलित करो को कुछ निश्चित वर्षों के लिए प्रमाणित कर सकती है और सारे साधारण खर्चों को संचित निधि (Consolidated Fund) पर स्थायी रूप से प्रभारित (charged) कर सकती है जिसमें से समस्त व्यय बिना वार्षिक स्वीकृति (annual authorization) के किया जा सके।

समालोचकों का यह भी कहना है कि निरूढ़ियों के पीछे जो बल है, वह महाभियोग का भय भी नहीं है। महाभियोग अब बेकार हो गया है, अब उसके पुनर्जीवित होने की सम्भावना नहीं है।

डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के मतानुसार, यह आज्ञा-पालन व्यापक स्वीकृति पर आधारित है, किसी बल पर नहीं। यदि जनता उनको मानना न चाहे, तो कोई भी बल उनको मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता।

आॅग (Ogg) के अनुसार, निरूढ़ियों के पीछे वास्तविक सत्ता जनमत का बल है। निरूढ़ियों का पालन इसलिए किया जाता है कि जनता की माँग है कि उनका पालन होना चाहिए। जनता कभी भी इनके उल्लघन को सहन नहीं करेगी। एक पराजित मन्त्रिमण्डल को पद छोड़ना ही चाहिए। जनता ऐसे मन्त्रिमण्डल के स्थिर रहने को सहन नहीं करेगी, क्योंकि वह जनता के प्रतिनिधियों का विश्वास खो चुका है। जनता की माँग यह भी है कि प्रति वर्ष संसद् का सम्मेलन बुलाना ही चाहिए ताकि राज्य के कार्य-व्यापार पर जनता के प्रतिनिधि विचार-विनिमय कर सकें। इसी प्रकार जनता यह भी स्वीकार नहीं करेगी कि जब कभी लार्ड-सभा एक उच्चतम अपीलीय न्यायालय के नाते कार्य करे तब उस बैठक में सभी सदस्य सम्मिलित हों। विधि एक प्राविधिक (technical) वस्तु है, और लॉर्ड-सभा के सभी सदस्यों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे इसे ठीक प्रकार से समझ सकेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लार्ड-सभा के सभी सदस्य उस उच्चतम न्यायालय में पुनर्विचार के प्रार्थना-पत्रों पर न्याय करने के हेतु भाग लेने के लिए आग्रह करें तो फिर जनता की ओर से यह माँग होने लगेगी कि उस सभा से यह अधिकार वापस ले लिया जाए। दूसरी निरूढ़ियों के विषय में भी इसी प्रकार कहा जा सकता है। जनता यह आशा करती है कि किसी विधेयक पर, जो लोकसभा व लार्ड-सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, राजा को अपना निषेधाधिकार काम में नहीं लाना चाहिए। यदि किसी एक विषय को जनता के प्रतिनिधि स्वीकार कर चुके हों और इसकी स्वीकृति में मन्त्रिमण्डल की ओर से कोई विरोध नहीं है तो राजा के उसे वीटो करने का कोई अर्थ नहीं। इन परिस्थितियों में यह कहा जा सकता है कि निरूढ़ियों के पीछे वास्तविक बल जनमत का बल है।

Suggested Readings

Amery, L. S. Thoughts on the Constitution, 1953.
Amos, M. : The English Constitution, 1930.
Anson, W. R. : The Law and Custom of the Constitution.
Bagehot, Walter : The English Constitution.
Carter & others : The Government of Great Britain.
Dicey, A. V. : The Law of the Constitution.
Gooch, R. K. : The Government of England, 1947.
Greaves, H. R. G. : The British Constitution.
Harrison · The Government of Britain.
Jennings, W. I. : The Law and the Constitution.
Laski, H. J. : Reflections on the Constitution, 1951.
Laski, H. J. : Parliamentary Government in England.
Low, S. : The Governance of England.
Lowell, A. L. : Government of England.
Marriott, J.A.R. : British Political Institutions.
Mathiot, Andre : The British Political System.
Muir, Ramsay : How Britain is Governed.
Munro : Governments of Europe.
Ogg, F. A. : English Government and Politics, 1936.
Ogg and Zink : Modern Foreign Governments.
Plaskitt & Jordan : Government of Britain.
Rosenberg : How Britain is Governed ?
Stannard : Two Constitutions.
Stewart, M. : The British Approach to Politics.
Wade & Phillips : Constitutional Law.

अध्याय २

इंगलैंड का सम्राट्

(King of England)

इंगलैंड में राजा का पद (Kingship) पुराने ऐंग्लो-सैक्सन काल से चला आता है। इसका इतिहास रंग-बिरंगा है। एक समय था जबकि इंगलैंड का राजा जो चाहता था कर सकता था। वह राज्य-कार्यों में पूरी तरह स्वेच्छाचारी (absolute) था। उसकी इच्छा ही कानून थी। किन्तु जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया और संसद् की शक्ति बढ़ती गई, त्यों-त्यों राजा के अधिकारों में कमी होती गई। हालांकि बहुत से झगड़े हुए, परन्तु शानदार राज्य-क्रान्ति (Glorious Revolution, १६८८) के बाद राजा का पद आखिरकार संसद् के आधीन हो गया। उसके बाद मन्त्रिमण्डल प्रणाली का विकास हुआ, जिसके कारण राजा की स्थिति नामधारी शासक (figurehead) की हो गई।

राजा और ताज (King and Crown)—राजा और क्राउन मे एक मौलिक (fundamental) भेद है। ब्रिटिश शासन की शब्दावली में बहुत से सूक्ष्म भेद (subtle distinction) हैं, किन्तु इस भेद को जिन मार्मिक शब्दों में ग्लैडस्टोन (Gladstone) ने व्यक्त किया है, उतने मार्मिक शब्दों में कोई और व्यक्त नही कर सका।

राजा और क्राउन के बीच भेद को इस कहावत में, कि "राजा मर गया, राजा चिरंजीवी हो" (The King is dead, long live the King) बड़ी ही अच्छी तरह से स्पष्ट किया गया है। इसका मतलब यह है कि कोई खास राजा मर सकता है किन्तु राजा-पद की संस्था (institution of kingship) स्थिर रहती है। यह ठीक ही कहा गया है कि "क्राउन कभी नही मरता" (Crown never dies)। "क्राउन के अधिकार, कर्त्तव्य तथा परमाधिकार (prerogatives) कभी एक क्षण के लिए भी नहीं रुकते। वे एक पद से सम्बन्धित हैं, न कि व्यक्ति विशेष से।" प्रो० मनरो (Prof. Munro) के शब्दों में, "क्राउन एक कृत्रिम तथा विधि-निर्मित व्यक्ति (artificial and juristic person) है। यह न शरीर धारण करता है और न कभी मरता ही है।" सर सिडनी लो (Sir Sidney Low) के शब्दों में, "क्राउन एक सुविधाजनक कार्यानुकूल कल्पना (convenient working hypothesis) है।" डा० फाइनर के कथनानुसार, "जब हम राजनीति में क्राउन के कार्यों की विवेचना करते हैं तब हमारा मतलब उस प्रेरक शक्ति से होता है जिसका निर्माण जनता, संसद् तथा मन्त्रि-परिषद् ने सदियों के संवैधानिक विकास से स्थापित कुछ औपचारिक प्रबन्धों (formal arrangements) के अनुसार किया है।" क्राउन इन राजनैतिक शक्तियों के असली केन्द्रो (effective centres) के ऊपर एक अलंकृत उपाधि (ornamental cap) है। क्राउन शक्ति का एक चिह्नमात्र है। यह एक वैधानिक कल्पना (legal fiction) है। यह सर्वोच्च सत्ता का संकलन है।

से अपरिचित व्यक्ति इसमें सन्देह नहीं कर सकता कि राजा के पास बहुत-सी शक्तियाँ हैं और वह उनका प्रयोग करता है। उसे सहायता, नियुक्ति, नाविक, सैनिक, धार्मिक एवं नागरिक विषयों में स्वच्छन्द महत्त्वपूर्ण प्रभावी शक्ति प्राप्त है। विदेश नीति के ऊपर उसका व्यक्तित्व उसकी विदेशी दरबारों की गहरी जानकारी एवं विदेशी राजा-महाराजाओं से उसके सम्बन्ध के अनुरूप प्रभाव डालता है।·········

"यदि राजा का मन्त्री राजा से संविधान का उल्लंघन करने को कहे तो राजा उस समय क्या करेगा ?"

"उत्तर यह है, कि जब तक राजा लोक सभा के समर्थित मन्त्री की सम्मति पर कार्य करता है तब तक वह अवैधानिक रूप से कार्य नहीं कर सकता। मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व राजतन्त्र का संरक्षक है। इसके अभाव में राजतन्त्र राजनीतिक झगड़ों की आँधियों तथा राजनीतिक तूफानों के बीच अधिक समय तक नहीं ठहर सकता था।"

अन्ततोगत्वा राजा कोई राय नहीं रखता। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का संवैधानिक विचार यदि कुछ भी अर्थ रखता है तो राजा को अपने स्वयं के मृत्यु-पत्र (death warrant) पर हस्ताक्षर करने होंगे, यदि वह संसदीय बहुमत प्राप्त मन्त्री द्वारा हस्ताक्षर के लिए पेश किया जाए। यदि इस मूल सिद्धान्त में कोई रुकावट पड़ेगी तो राजतन्त्र (monarchy) का अन्त अवश्यम्भावी है।

प्रधान मन्त्री एसक्विथ (Asquith) के शब्दों में, "हम यह दो सौ वर्ष की सुस्थापित परम्परा रखते हैं कि राजा अन्ततः अपने मन्त्रियों की सम्मति को स्वीकार करके उस पर कार्य करता है।·············यदि राजा इस नियम को तोड़े तो, वह चाहे या न चाहे, पर उसे राजनीतिक दलबन्दी के अखाड़े में अवश्य खींच लिया जावेगा और यह कहने में भी कोई अत्युक्ति न होगी कि क्राउन राजनीतिक दलों की फुटबाल बन जावेगा।"

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के परिणामस्वरूप राजा राजनीतिक दलबन्दी से अलग हो गया है। उसको राजा की लोकप्रियता (popularity) के लिए छोड़ा गया है। पदारूढ मन्त्रिमण्डल को ही यश अथवा अपयश प्राप्त होता है, न कि राजा को।

वैधानिक सूत्र (legal maxim) "राजा मर गया, राजा अमर रहे" का अर्थ यह है कि कोई खास राजा मर सकता है लेकिन सिंहासन कभी खाली नहीं रह सकता। एक राजा के स्थान पर दूसरा राजा आ जाता है। यह उत्तराधिकार स्वतः हो जाता है, जैसा कि एडवर्ड अष्टम की, अपने पिता की मृत्यु के तुरन्त पश्चात् प्रिवी कौंसिल में की गई घोषणा से पता चलता है। नये राजा ने कहा था कि "मेरे प्रिय पिता राजा की मृत्यु से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की अपरिमित हानि हुई है और मुझ पर राज्य-सत्ता के कर्त्तव्यों का बोझ आ पड़ा है। मैं जानता हूँ कि आपकी और मेरी सब प्रजा की—और मैं आशा करता हूँ कि मैं कह सकता हूँ कि समस्त संसार की—मेरे साथ सहानुभूति है और मुझे उस स्नेहपूर्ण सहानुभूति का विश्वास है जो कि मेरी माँ को उसके अत्यधिक शोक में प्रदान की जायेगी।

जब मेरे पिता यहाँ २६ वर्ष पूर्व खड़े हुए थे, तब उन्होंने घोषणा की थी कि उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य सवैधानिक सरकार को बनाए रखना होगा। उसी स्थान पर मैंने भी अपने पूज्य पिता के पद-चिह्नों पर चलने का निश्चय किया है, और जिस तरह उन्होंने जीवन भर कार्य किया उसी तरह मैं भी अपनी प्रजा के कल्याण और सुख के लिए कार्य करूँगा। इस कठिन कार्य में सहायता के लिए मैं सम्पूर्ण साम्राज्य की प्रजा में प्रेम और उनकी संसदों की बुद्धिमत्ता में विश्वास रखता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर इस कार्य को पूरा करने मे मेरा मार्ग-दर्शन करे।" दूसरे दिन सेंट जेम्स पैलेस के छज्जे (balcony) से यह घोषणा की गई—"सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की प्रसन्नता इसी में थी कि वह हमारे स्वर्गीय सर्वोच्च स्वामी राजा जार्ज पंचम को अपनी शरण में बुला ले जिसकी मृत्यु से ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड का राजमुकुट (Imperial Crown) पूर्णतया तथा उचित रूप से राजकुमार एडवर्ड अलबर्ट क्रिश्चियन जार्ज एण्ड्रयू पैट्रिक डैविड के सिर पर आ गया है, इसलिए हम जो इस राज्य (realm) के आध्यात्मिक (Spiritual) और लौकिक (Temporal) सरदार हैं मृत सम्राट् की प्रिवी कौंसिल की सहायता से, अन्य गुणवान् सज्जनों, लार्ड मेयर, एल्डरमैन और लन्दन के नागरिकों सहित एक स्वर, मत और हृदय से यह प्रकाशित और घोषित करते हैं कि राजकुमार एडवर्ड अलबर्ट क्रिश्चियन जार्ज एण्ड्रयू पैट्रिक डैविड अब हमारे सरदार स्मरणीय स्वर्गीय राजा की मृत्यु के कारण उचित तथा वैधानिक आधार पर ईश्वर की कृपा से हमारे, ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड, समुद्र-पार के ब्रिटिश उपनिवेशों के धर्म-रक्षक, भारत के सम्राट् राजा एडवर्ड अष्टम हो गए हैं। इनको हार्दिक और नम्र स्नेह सहित हमारी श्रद्धा और सतत आज्ञा-पालन समर्पित है। जिसकी कृपा से राजा और रानी राज्य करेंगे उस ईश्वर से प्रार्थना है कि राजा एडवर्ड अष्टम को हम पर राज्य करने के लिए लम्बे और सुखपूर्ण वर्ष प्रदान करे।"

क्राउन की शक्तियाँ (Powers of the Crown)—क्राउन के प्राधिकार के अनेक स्रोत हैं। उनमें से कुछ परमाधिकारों से तथा अन्य ब्रिटिश संसद् द्वारा समय-समय पर स्वीकृत किए गए परिनियमों (statutes) से लिए गए हैं। क्राउन के परमाधिकारों की प्रो० डायसी (Prof. Dicey) ने इन शब्दों मे व्याख्या की है कि "परमाधिकार ऐतिहासिक-सा प्रतीत होता है और वास्तविक व्यवहार की दृष्टि से यह उस विवेकाधिकार एवं स्वेच्छाचारी शक्ति (arbitrary power) का अवशेष (residuary) है जो सदा कानूनी तौर से क्राउन के हाथों मे छोड़ दिए जाते हैं।"

नॉविल के अनुसार, "कानून की निगाहों में क्राउन (Crown) की प्रशासनिक शक्ति (administrative power) बहुत विस्तृत है, यह बहुत से देशों के मुख्य शासकों की शक्तियों से बहुत अधिक और लगभग उतनी ही विस्तृत है जितनी कि ऐसी किसी सरकार में एक राजा की होती है जो निरंकुशतन्त्र नहीं है और यद्यपि, बिना संसद् (Parliament) की सलाह के, क्राउन को कानून बनाने की सहज (inherent) शक्ति नहीं है, फिर भी कानून ने उसे अधीनस्थ (subordinate) कानून बनाने की विस्तृत शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं।

क्राउन समस्त पदाधिकारियों की नियुक्ति के लिए अनन्य (exclusive) अधिकारी है। वह न्यायाधीशों के अलावा अन्य कर्मचारियों को अपने विवेकानुसार अलग कर सकता है। किन्तु, इस शक्ति को वास्तविक व्यवहार में काम मे नही लाया जाता, जैसे कि प्रशासकीय अधिकारियों को उनसे सम्बन्धित प्रशासकीय सेवा-विनियमों (Civil Service Regulations) द्वारा नियंत्रित एवं व्यवस्थित किया जाता है। राजा स्थल सेना, नौ सेना तथा वायु सेना का सेनापति (Commander) भी है। राजा स्थानीय सरकारों के कार्यो का पर्यवेक्षण (supervision) तथा निर्देशन भी करता है। यह कार्य वास्तव में अनेक महकमों द्वारा किया जाता है। राजा राजदूतों, मन्त्रियों तथा वाणिज्य-दूतो को नियुक्त करता है और उनसे भेंट करता है। वह युद्ध की घोषणा एवं सन्धियाँ करता है। समस्त सन्धियाँ एवं समझौते उसके द्वारा किये जाते हैं और संसदीय स्वीकृति के बिना भी पुष्ट किए जा सकते हैं। राजा स-परिषद् आदेश (Order-in-Council) निकालता है और उपनिवेशों के सम्बन्ध मे निषेधशक्ति (veto power) का प्रयोग करता है। उसे क्षमा करने एव प्राणदण्ड को घटाने का परमाधिकार भी प्राप्त है। राजा न्याय का स्रोत है। समस्त न्याय राजा के नाम से किया जाता है। सारे न्यायाधीश राजा के ही न्यायाधीश हैं। वह उनको नियुक्त तो करता है, किंतु वह उनको हटा नही सकता। समस्त अपराधियों को उसी के नाम से दण्ड दिया जाता है। राजा डोमीनियनों एव उपनिवेशों की अन्तिम अपीलें सुनता है। यद्यपि अपील सुनने का कार्य प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति करती है, तथापि वह प्राविधिक रूप मे, राजा को किसी विशेष प्रकार से निर्णय करने का परामर्श देती है।

राजा इंगलैंड के चर्च का प्रधान है। केवल वह ही अकेला व्यक्ति है, जो कैन्टरबरी तथा यार्क (Canterbury and York) के मुख्य धर्माध्यक्षों (Archbishops), बिशपों (Bishops) तथा अन्य चर्चों के पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। राजा की अनुमति, चर्च ऑफ इंगलैंड की राष्ट्रीय सभा (National Assembly of the Church of England) की समस्त कार्रवाइयों के लिए आवश्यक है। धार्मिक अदालतो (Ecclesiastical Courts) से अपीलें प्रिवी कौंसिल (Privy Council) की न्यायिक समिति के पास आती है। राजा चर्च के अनुशासन-सम्बन्धी विषयो मे अन्तिम शक्ति है।

राजा न केवल न्याय का, प्रत्युत् समस्त सम्मानित पदों (honours) का भी स्रोत है। यद्यपि राजा को लार्ड (peers) बनाने की असीमित शक्ति प्राप्त है, जितने वह चाहे उतने ही लार्ड वह बना सकता है तो भी यह शक्ति राजा द्वारा प्रधान मन्त्री की सम्मति पर ही कार्यान्वित की जाती है। राजा द्वारा सम्मान की उपाधियाँ भी प्रधान मन्त्री की सलाह पर ही दी जाती हैं। यह सत्य है कि रानी विक्टोरिया कुछ विशेष उपाधियाँ देने पर ऐतराज किया करती थी, परन्तु जब प्रधान मन्त्री ने ऐसा करने का आग्रह किया तब उसे भी मानना पड़ा।

राजा संसद् को बुलाने, सत्रावसान (prorogue) करने तथा लोकसभा को विघटित करने का अधिकार रखता है। किन्तु सभा-विघटन की शक्ति राजा द्वारा

केवल प्रधान मन्त्री की सलाह पर कार्यान्वित की जाती है। जब कोई विधेयक संसद द्वारा स्वीकृत हो गया है तब सरकार द्वारा भी अनुमोदित होना चाहिए। राजा निषेधशक्ति (veto power) रखता है, परन्तु यह कभी प्रयुक्त नहीं की गई।

क्राउन के परमाधिकार (Prerogatives of the Crown)—पहले बताया जा चुका है कि राजा की शक्तियों के स्रोतों में क्राउन के परमाधिकार भी हैं। डायसी (Dicey) के कथनानुसार, परमाधिकार स्वाधीन एवं स्वेच्छाचारी शक्तियों के अवशेष मात्र हैं। कोक (Coke) के अनुसार, "परमाधिकार वे शक्तियाँ, श्रेष्ठताएँ (Pre-eminences) तथा विशेषाधिकार हैं जो कानून क्राउन को देता है।" ब्लैकस्टोन (Blackstone) के मतानुसार, "परमाधिकार वह श्रेष्ठता है जो राजा को किसी कानून द्वारा प्राप्त न होकर उसके अपने राजसी महत्त्व (royal dignity) के सामान्य अधिकार के *कारण अन्य समस्त व्यक्तियों के अतिरिक्त प्राप्त है।"*

एक समय था जब राजा को बहुत सारे परमाधिकार प्राप्त थे, परन्तु समय के साथ-साथ उनके परिमाण में भी कमी होती गई। इसमें से कुछ परमाधिकार तो संसद् के अधिनियमों द्वारा ले लिए गए तथा अन्य इस कारण लुप्त हो गये कि उनका बहुत समय से प्रयोग नहीं किया गया। तो भी क्राउन के परमाधिकारों से सम्बन्धित एक विशेष ध्यान देने की बात यह है कि राजा के परमाधिकार जनता के विशेषाधिकार बन गये।

क्राउन के कुछ महत्वपूर्ण परमाधिकार नीचे दिए गए है—

(१) राजा न्याय का स्रोत है। समस्त न्याय राजा के नाम से किया जाता है। उसका कर्त्तव्य है कि वह देश में शान्ति रखे। अपराधी को दण्ड दिया जाता है, क्योंकि वह राजा की शान्ति भंग करने का दोषी है। क्राउन किसी भी अभियोग को रोक सकता है। वह किसी भी सजा पाये हुए अपराधी को क्षमा कर सकता है। गृहमन्त्री (Home Secretary) की सलाह पर वह दण्ड को पूर्णतया अथवा अंशतया कम कर सकता है। समस्त ब्रिटिश साम्राज्य मे प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के लिए अपील की विशेष स्वीकृति दे सकता है।

(२) राजा संसद् को बुलाता, सत्रावसान करता तथा भंग करता है। हाऊस ऑफ कामन्स (House of Commons) को भंग करते समय राजा को जनमत के अनुसार कार्य करना पड़ता है। वास्तविक वैधानिक स्थिति का वर्णन सन् १९२३ में अर्ल ऑफ आक्सफोर्ड और ऐस्क्विथ (Earl of Oxford and Asquith) ने इन शब्दों में किया था, "इस देश में पार्लियामेंट को भंग करने का अधिकार क्राउन के परमाधिकारों मे से एक है। यह सामन्तशाही से चली आने वाली परम्परा मात्र ही नही बल्कि यह हमारी वैधानिक प्रणाली का एक भाग है, जो मेरे विचार में एक लाभदायक भाग है। किसी अन्य देश मे, उदाहरण के तौर पर अमेरिका में, ऐसी कोई प्रणाली नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि क्राउन को मनमानी करनी चाहिए या जिम्मेदार मन्त्रियों की सलाह के बगैर कार्य करना चाहिए, बल्कि इसका अर्थ यह है कि क्राउन *किसी मन्त्री-विशेष की सलाह मानकर जनता को आम चुनावों* के झंझट में डालने के लिए उस समय तक बाध्य नहीं है, जब तक कि उसे काम

चलाने के लिए अन्य मन्त्री प्राप्त हो सकते हो। हाऊस ऑफ कामन्स को उसी समय भंग किया जा सकता है, जबकि वह देश की जनता का प्रतिनिधित्व न करता हो।

(३) राजा देश की सैनिक शक्तियों का मुख्य सेनापति होता है। क्राउन के परमाधिकार के अन्तर्गत नौसेना भी स्थापित की जाती है। संसद् का वार्षिक अधिनियम सेना, वायु सेना तथा नौसेना की व्यवस्था करता है। किन्तु उनका नियन्त्रण, संगठन तथा प्रबन्ध क्राउन के परमाधिकारों के अन्तर्गत है। राजा सेना और वायु सेना के सब अधिकारियों को नियुक्त करता है।

(४) राजा सम्मान का एकमात्र स्रोत है। केवल उसको ही 'पीअर' बनाने की शक्ति है। वह ही सम्मान (honours) एवं सैनिक-विभूषण (decoration) प्रदान कर सकता है।

राजा असीमित सख्या मे पीअरों की नियुक्ति कर सकता है। यह परिस्थिति पर निर्भर करता है। विलियम चतुर्थ ने अर्ल ग्रे को यह विश्वास दिलाया था कि लार्ड-सभा मे सुधार अधिनियम (Reforms Act) को पास करवाने के लिए वह आवश्यकतानुसार 'पीअर' नियुक्त करेगा। उसके शब्द ये थे, राजा अर्ल ग्रे और उसके चांसलर लार्ड ब्रोगहम (Lord Brougham) को इतने पीअर नियुक्त करने की शक्ति प्रदान करता है जितने सुधार विधेयक को पास कराने के लिए आवश्यक हैं। (—विलियम आर० विंडसर, १७ मई, १८३२ ई०।) लेकिन पीअरों की नियुक्त करने की शक्ति को राजा मनमाने ढग से प्रयोग में नहीं ला सकता। लार्ड लिण्डहर्स्ट (Lord Lyndhurst) के शब्दों मे, इसका अर्थ यह नही है कि इस या अन्य परमाधिकार का उपयोग सिर्फ वैध होने के कारण ही संविधान के सिद्धान्तों के अनुरूप होगा। यदि राजा उचित समझे तो अपने परमाधिकार द्वारा, एक ही दिन में १०० लार्ड बना सकता है। ऐसा करना पूर्णतया वैधानिक होगा। लेकिन प्रत्येक को यह बात महसूस होनी चाहिए कि क्राउन का अपने परमाधिकार का ऐसा प्रयोग सविधान के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा।

(५) राजा कभी शिशु नही होता। जब राजा वास्तव में शिशु हो, तब भी संसद् द्वारा स्वीकृत विधेयकों पर उसकी अनुमति उनको वैध बना देती है और यह धारणा की जाती है कि वह राज्य के कार्य-व्यापारों की निपटाने के लिए सदैव उपयुक्त है।

(६) राजा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जनता का प्रतिनिधि है। उसके द्वारा समझौते एवं संधियाँ की जाती हैं और उनके लिए संसद् की पूर्व अनुमति की आवश्यकता नही।

(७) राजा विदेशी राज्यों के राजदूतों का स्वागत करता है।

(८) राजा कभी नही मरता, वह अमर है। ज्योंही एक राजा मरता है दूसरा राजा उसके स्थान पर आ जाता है। चार्ल्स प्रथम को १६४६ में फाँसी दी गई और उसका पुत्र १६६० में सिंहासन पर बैठा। परन्तु उस वर्ष को चार्ल्स द्वितीय के राज्य-काल का ११वाँ वर्ष माना जाता है।

(९) आपत्तिकाल में राजा राज्य के अन्दर अनिवार्य सैन्य-भरती की आज्ञा दे सकता है। क्राउन अत्यन्त राष्ट्रीय आवश्यकता के समय ब्रिटिश जहाजों

सागर (Territorial Waters) में ही रहने की आज्ञा दे सकता है। राष्ट्रीय आवश्यकता केवल निकट भय अथवा बाह्य आक्रमण मात्र ही नहीं है। अंगेरी (Angary) के अधिकार के अनुसार क्राउन युद्ध-काल में राज्य के अन्तर्गत मौजूद, किसी नागरिक अथवा तटस्थ राज्य की जल-सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर सकता है, किन्तु उसको मुआवजा (compensation) देना पड़ता है।

(१०) न्याय से बचने के वास्ते राज्य छोड़कर जाने वाले व्यक्ति को क्राउन राज्य छोड़ने से रोक सकता है। वह ऋण लेकर भाग जाने वाले व्यक्तियों को रोक सकता है। क्राउन ब्रिटिश नागरिकों को युद्ध-काल में देश छोड़ने से रोक सकता है और उनको बाहर से भी बुला सकता है।

राजा अपने परमाधिकारों का उपयोग मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही करता है। वास्तव में क्राउन के परमाधिकार जनता के विशेषाधिकार (privileges) बन गए हैं और उनका उपयोग जनता के लाभ के लिए ही किया जाता है।

यदि ऐसा कोई मतभेद है कि किसी शक्ति-विशेष को परमाधिकार के बल से कार्यान्वित किया जाय या परिनियम (statute) के बल पर, इस विषय का निर्णय न्यायिक अदालतें (Courts of Law) करती हैं। यह निश्चय करना अदालतों का काम है कि किसी विषय में परमाधिकार आता है अथवा नहीं; किन्तु जब किसी न्यायिक अदालत द्वारा परमाधिकार का अस्तित्व एवं स्वभाव निश्चित कर दिया गया है तब *किसी भी न्यायालय में उसकी कार्य-प्रणाली में आपत्ति नहीं की जा सकती।* यह केवल ब्रिटिश संसद् में ही किया जा सकता है। किसी अवैधानिक कार्य के लिए राज्य की आवश्यकता का तर्क उपस्थित करना उपयुक्त नहीं है। लार्ड कैमडन (Lord Camden) के अनुसार, "राज्य-आवश्यकता (state necessity) की दलील के सम्बन्ध में, राज्य तथा अन्य अपराधों में भेद करने का प्रयास किया गया है उस प्रकार के अन्तर को रूढ़ि विधि (Common Law) नहीं समझती और न हमारी पुस्तकें ही ऐसे किसी भेद का ध्यान रखती हैं।" (Entick *v* Carrington)

इस बात पर ध्यान देना होगा कि आजकल क्राउन के बहुत से परमाधिकार परिनियम (statute) द्वारा लागू किये जाते है। Attorney-General *v.* De *Keyser Royal Hotel के अभियोग में परमाधिकार शक्तियों तथा परिनियम* शक्तियों के बीच के सम्बन्ध को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया गया था। १६२० में लार्ड-सभा द्वारा यह स्वीकार किया गया था कि यदि परमाधिकार को परिनियम (statute) द्वारा स्थगित किया गया है तो क्राउन परमाधिकार के अन्तर्गत कार्य करने का अधिकारी नहीं रह जाता। परमाधिकार शक्तियों की पुनः प्राप्ति का कोई बहाना नहीं हो सकता, जबकि क्राउन को विधानमण्डल ने परिनियम शक्तियाँ दे दी हैं जो कि देश की रक्षा के निमित्त समस्त आवश्यक कार्यों की पूर्ति कर देती हैं। परमाधिकारों को संसद् के अधिनियम स्पष्ट शब्दों में रद्द कर सकते है। यदि किसी परमाधिकार की किसी परिनियम द्वारा क्षेत्र-पूर्ति होती है, तो वह परिनियम परमाधिकार को रद्द नहीं करता, बल्कि उसको कार्यान्वित होने से स्थगित करता है।

इंगलैंड में राजा का स्थान (Position of the King in England)—आरम्भ

में इंगलैंड के राजा को अत्यधिक शक्तियाँ प्राप्त थीं और वह उनका प्रयोग करता था। किन्तु समय बीतने पर उसकी बहुत-सी शक्तियों को मन्त्रिमण्डल और ससद् ने छीन लिया है। इंगलैंड में राजा को मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के वास्तविक रूप ने निरर्थक (non-entity) कर दिया है। कोई आश्चर्य की बात नही कि इगलैंड के राजा को नाम मात्र का प्रधान कहा जाता है। उसे रबर की मोहर की सज्ञा भी दी जाती है।

यह निर्विवाद है कि इंगलैंड का राजा अपने मन्त्रियो की सम्मति पर ही कार्य कर सकता है। राजा के प्रत्येक कार्य पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर होने चाहिएँ, अन्यया अकेले उसका कोई भी आदेश पालन नही किया जा सकता।[1] किन्तु, इसका यह तात्पर्य नही कि इंगलैंड का राजा अनावश्यक होता है। बैजहॉट (Bagehot) ने ठीक ही कहा है कि इंगलैंड का राजा तीन शक्तियाँ रखता है और एक बुद्धिमान् राजा को इनसे अधिक अधिकार रखने की आवश्यकता नही। उसके मतानुसार, राजा मन्त्रियों को सलाह देने, मन्त्रियों को सावधान करने तथा उनको उत्साहित करने की शक्ति रखता है।

(१) सलाह के विषय में कहा जा सकता है कि पदारूढ मन्त्रिमण्डल राजा से राज्य के समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर सामान्य रूप से परामर्श लेता है। प्रधान-मन्त्री या किसी अन्य मन्त्री द्वारा राजा की सलाह ली जाती है और प्राय. यह सलाह अन्तिम निर्णय पर पहुँचने में निर्णायक होती है। इसका भी एक विशेष कारण है कि राजा की सम्मति को इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है। राजा राजनीतिक दलबन्दी से ऊपर होता है, इसमें कोई सन्देह नही है। उसका अपना कोई स्वार्थ नही होता। देश का सर्वोच्च हित ही उसका लक्ष्य होता है। कोई आश्चर्य नहीं यदि यह आशा की जाय कि इंगलैंड के राजा द्वारा दी गई निष्पक्ष सम्मति को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि राजा की सलाह अनुभव तथा ज्ञान पर आधारित होती है। मन्त्री तो आते हैं और चले जाते हैं, परन्तु राजा स्थिर रहता है। रानी विक्टोरिया ने इंगलैंड पर ६४ वर्ष तथा जार्ज पंचम ने २६ वर्ष राज्य किया। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि राज्य से सम्बन्धित विषयों में राजा बहुत-सा ज्ञान अर्जित करता है। और यह समस्त अनुभव पदारूढ़ मन्त्रिमण्डल को सुविधापूर्वक प्रयोग करने के लिए मिल सकता है।

सर राबर्ट पील के अनुसार, "राजा को, राज्य करने के पश्चात्, सरकारी तन्त्र का ज्ञान देश भर में सब से अधिक हो जाना चाहिए।"

(२) राजा मन्त्रिमण्डल को चेतावनी देने का अधिकार रखता है। राजा यह अनुभव करने पर कि मन्त्रिमण्डल की नीति देश को संकट में डाल सकती है, चेतावनी देगा और उस चेतावनी को मन्त्रिमण्डल उपेक्षित नही कर सकता। यदि

---

१. ग्लैडस्टोन (Gladstone) के अनुसार, "राजा के जीवन में गद्दी पर बैठने से लेकर मरने तक कोई क्षण ऐसा नहीं है, जिसमें उसके सार्वजनिक कार्यों के लिए कोई अन्य व्यक्ति संसद् के प्रति उत्तरदायी न हो और क्राउन की किसी भी शक्ति का प्रयोग उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके लिए उत्तरदायी कोई मन्त्री न मिल जाये।"

जनता उस बात को जान जाती है कि राजा के नियमानुसार चेतावनी देने पर भी मन्त्रिमण्डल ने कोई त्रुटि छोड़ी है तो सत्ताधारी दल को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। चेतावनी की शक्ति के विषय में बैजहाट लिखता है, "क्योंकि राजा को कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, इसलिए वह उन शक्तियों का प्रयोग पूर्ण निपुणता से करता है। वह अपने मन्त्रियों से कहता है कि इन कार्य-व्यापारों का उत्तरदायित्व आप लोगों पर है। जो कुछ आप अच्छा समझते हैं, वह अवश्य होना चाहिए। जिसे आप अच्छा समझते हों, उसको मेरा पूर्ण तथा प्रभावी समर्थन प्राप्त है। परन्तु इस कारण से या उस कारण से, आपका प्रस्ताव दोषयुक्त है, और इस कारण से या उस कारण से ऐसा करना अच्छा होगा। मैं विरोध नहीं करता और न यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं विरोध करूँ, परन्तु मैं चेतावनी दे रहा हूँ।"

(३) इंगलैंड का राजा मन्त्रिमण्डल को उत्साहित करने की भी शक्ति रखता है। यदि वह देखता है कि मन्त्रिमण्डल द्वारा अपनायी गई अमुक नीति देश के हित में है तो उसके लिए प्रोत्साहन दे सकता है। मन्त्रिमण्डल के हृदय में यह भावना कि उसकी नीति को राजा का पूर्ण समर्थन प्राप्त है, उसके लिए शक्ति पैदा करेगी।

उपर्युक्त तीनों शक्तियों के साथ इंगलैंड का राजा देश के विभिन्न विषयों पर बहुत बड़ी सीमा में प्रभाव रखता है। इस विषय में, व्यक्तिगत कारण ने महत्त्व-पूर्ण कार्य किया है। यह सर्वविदित है कि एडवर्ड सप्तम का इंगलैंड तथा फ्रांस को निकट लाने का कार्य महत्त्वपूर्ण था। उसके फ्रांस के प्रति प्रेम तथा जर्मनी के प्रति घृणा के व्यापक परिणाम हुए। यही इंगलैंड तथा फ्रांस के बीच १९०४ की हार्दिक मैत्री (Entente Cordiale) के लिए अंशतः उत्तरदायी था। १९३९ में जार्ज षष्ठ फ्रांस गए और वे भी दोनों देशों को द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारम्भ में निकटतर लाये। वही राजा अमेरिका तथा कनाडा (U.S.A. and Canada) गये और यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनकी यात्रा उन देशों को अवश्य ही इंगलैंड के निकट लाई। व्यक्तिगत सम्बन्धों को जितना महत्त्व दिया जाए, उतना ही थोड़ा है। राजा की स्थिति के विषय में कुछ महान् लेखकों के मतों का उल्लेख किया जा सकता है। लार्ड इशर (Esher) के मतानुसार, "मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का वैधानिक विचार यदि कुछ भी अर्थ रखता है तो राजा को अपने स्वयं के मृत्यु-पत्र पर भी हस्ताक्षर करने होंगे यदि वह संसदीय बहुमत-प्राप्त मन्त्री के द्वारा हस्ताक्षरार्थ प्रस्तुत किया जाए।" कीथ के मतानुसार, "राजा संविधान का संरक्षक है और यह उसका कर्त्तव्य है कि वह संविधान के सारभूत सिद्धान्तों को सुरक्षित रखे।" लास्की के कथनानुसार, "श्री मैकडोनल्ड के लिए जार्ज पंचम की उतनी ही व्यक्तिगत पसन्द थी जितनी कि जार्ज तृतीय की लार्ड बूट के लिए। आधुनिक प्रधान मन्त्रियों में से केवल यह व्यक्ति है जिसको अपने कार्य-काल में दल के समर्थन की चिन्ता नहीं करनी पड़ी। फिर भी यह तथ्य है कि राजकी प्रभाव स्थायी और व्यापक है। केवल इस अर्थ में कि एडवर्ड सप्तम श्री बाल्डविन की पीड़ित देशों की नीति से असन्तुष्ट था, उसके अल्प राज्य-काल में उस नीति को तीव्र एवं कुपित राष्ट्रीय विचार प्रश्न बना दिया था।"

इंगलैंड में राजा के पद को समाप्त क्यों नहीं कर दिया जाता (Why Kingship is not abolished in England)—एक अत्यन्त उपयुक्त प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि यदि इंगलैंड का राजा नाम-मात्र का प्रधान है तो इंगलैंड में राजा पद की संस्था को समाप्त क्यों नहीं कर दिया जाता ? यह सत्य है कि रानी विक्टोरिया के राज्य काल में जनतन्त्र को स्थापित तथा राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग थी। परन्तु इस समय ग्राम भावना ऐसी प्रतीत होती है कि राजा का पद बना रहने दिया जाय। इंगलैंड में राजा-पद की संस्था अत्यन्त जनप्रिय हो गई है। इसको देश की प्रशासकीय प्रणाली का एक आवश्यक अंग समझा जाता है। राजा से रहित अंग्रेजी प्रशासकीय प्रणाली की कल्पना कठिन है। अंग्रेजी राजा की जनप्रियता का विचार इस तथ्य से किया जा सकता है कि जब जार्ज पंचम रोगी हुए तो प्रत्येक संध्या को हजारों अंग्रेज राजा के स्वास्थ्य-सम्बन्धी समाचारों को सुनने के लिए एकत्र हो जाते थे। अंग्रेज राजा ने अपने को जनप्रिय बनाने के लिए ऐसे बहुत से कार्य किये हैं जो दरिद्र जनता को लाभ पहुँचाने का लक्ष्य रखते हैं। यह बताया जा चुका है कि दरिद्र जनता के समाचारपत्रों में राज-परिवार (Royal Family) के चित्र धनाढ्यों के पत्रों की अपेक्षा अधिक होते हैं।

प्रोफेसर लास्की के शब्दों में, "यदि स्पष्ट कहे तो यों कहेंगे कि राजतन्त्र को प्रजातन्त्र के हाथ बेच दिया गया है। विश्व भर में इस बिक्री के साथ इतनी प्रशंसा हुई है कि इसके विरोध मे कोई आवाज नहीं सुनाई देती। यह कोई कम महत्त्व की बात नहीं है कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Trade Union Congress) के अधिकृत अखबार शाही परिवार के चित्रों और समाचारों को अन्य अखबारों की अपेक्षा अधिक स्थान देते हैं।" आपने आगे लिखा है—"युद्ध के बाद से राजाओं को दी गई श्रद्धाञ्जलियाँ, पिछले साठ वर्षों में सिंहासनारूढ़ होने वाले राजाओं की अपेक्षा अर्ध-देवताओं (demigods) के लिए अधिक उपयुक्त होंगी।" डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के मतानुसार, "प्रजातन्त्रीय सरकार केवल तर्क अथवा ठोस नीतियों के आधार पर ही नहीं चलाई जा सकती। इसमें कुछ दिखावा भी होना चाहिए और वह शाही शानशौकत के अलावा और कहीं नहीं है।" विन्स्टन चर्चिल के शब्दों में, "अंग्रेजी राजतन्त्र हमारी जनता में गहराई से स्थापित और सबसे अधिक प्रिय है।" पुनः, जैनिंग्ज के अनुसार, "हम सरकार की निन्दा कर सकते हैं, लेकिन राजा की तो प्रशंसा ही करेंगे।" अर्ल ग्राफ बालफोर (Earl of Balfour) के कथन के अनुसार, "अंग्रेजी राजतन्त्र का, हमारे संविधान के अन्य बहुत से भागों के समान, एक आधुनिकतम पक्ष भी है; हमारा राज्य अपनी परम्परा और पद के कारण, हमारे राष्ट्रीय इतिहास का जीवित प्रतिनिधि है, हमारी संस्थाओं के लोकप्रिय रूप को छिपाने के बजाय वह उनको प्रकाश में लाता है। वह किसी एक राजनीतिक दल का नेता... किसी एक वर्ग का प्रतिनिधि नहीं है, वह राष्ट्र का नेता है, वह प्रत्येक का राजा

सन् १९५७ के अगस्त मास मे आल्ट्रिंचम (Lord Altrincham, एक अनुदार (Conservative) व्यक्ति ने महारानी एलिजाबेथ को। उसने महारानी के भाषण और कथन को क्रमशः 'नीरस

'पाठशाला की अयोग्य किन्तु घमण्डी छात्रा का कथन' कह कर पुकारा। उसने महारानी के अयोग्य अनुयायियों को हटा कर 'वर्ग-विहीन कामनवैल्थ कोर्ट' की मांग की। दी रेनॉल्ड न्यूज़ (The Reynold News) नामक एक समाचारपत्र ने उपरोक्त व्यक्ति के कथन का समर्थन करते हुए लिखा था, "इस व्यक्ति ने वह बात उच्च स्वर से कह डाली है, जो अभी तक अधिक से अधिक जनता के केवल मस्तिष्क का विषय थी।" उसने आगे लिखा, "बकिंघम प्रासाद जनता के साथ नहीं चल रहा।" किन्तु इस समाचारपत्र द्वारा लार्ड आल्ट्रिचम को समर्थन प्राप्त होने पर भी जनता द्वारा तो उसकी इस आलोचना को निन्दित ही ठहराया गया। और फिर मजे की बात यह कि निन्दा खुले आम की गई। इस आलोचना को लेकर देश भर में गरमागरम विवाद हुए। परिणामस्वरूप भाषण देकर, चित्रप्रेषणशाला (television studio) से निकलते समय लार्ड आल्ट्रिचम को किसी व्यक्ति ने एक चाँटा रसीद करते हुए कहा—"यह लो महारानी के अपमान करने का इनाम!"

राजा सामाजिक ढांचे का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और इसी स्थिति के कारण उसका काफी प्रभाव है। राजकीय परिवार नैतिकता, फैशन, कला और साहित्य के लिए उदाहरण स्थापित करता है। जब १६३६ में राजकुमारी एलिजाबेथ (अब महारानी एलिजाबेथ द्वितीय) और राजकुमारी मारगरेट ने शाम की सैर के लिए बिना हैट के जाना प्रारम्भ किया तब इंगलैंड के बच्चों ने उसे फैशन के रूप में अंगीकार कर लिया। इसके कारण इंगलैंड में बच्चों के हैटों की बिक्री गिर गई। कहा जाता है कि बच्चों के टोप बेचने वालों का एक प्रतिनिधिमण्डल महारानी से मिला और इस बरबादी से बचाने की प्रार्थना की। फलस्वरूप महारानी ने अपनी पुत्रियों को शाम को टहलने जाते समय टोप का आदेश दिया ताकि और बच्चे भी वैसा ही करें। आधारशिला रखने, नया जहाज पानी में उतारने और नये कारखाने खोलने के उत्सवों के समय राजकीय परिवारों के सदस्यों की उपस्थिति से विभिन्न विचार के लोगों को अपने परस्पर-विरोधी विचारों को खत्म किए बगैर आपस में मिलने-जुलने का अवसर प्राप्त हो जाता है। महारानी विक्टोरिया के राज्य-काल में जुबली-समारोह के कारण "अनुदार सरकार के साम्राज्यवादी दृष्टिकोणों को सार्वजनिक समर्थन प्राप्त हुआ।" १६३५ में जार्ज पञ्चम के शासन-काल में जुबली समारोह ने राष्ट्रीय सरकार को, जिसका प्रभाव कम होने लगा था, मजबूत बनाया।

राजा के पद के समर्थक कहते हैं कि देश में संसदीय प्रणाली के सुचारु रूप से चलने के मार्ग में राजपद की संस्था बाधक सिद्ध नहीं होती। यदि इंगलैंड संसदीय प्रणाली रखना चाहता है तो उसको नाम-मात्र का प्रधान रखना पड़ेगा। वह या तो इंगलैंड के राजा की अथवा फ्रांस के राष्ट्रपति की भांति हो सकता है। यदि फ्रांस के आदर्श को ग्रहण किया जाए तो भी कोई लाभ नहीं होगा। राष्ट्रपति भी इंगलैंड के राजा की भांति खर्च कराएगा। किन्तु, उसके निर्वाचन की एक अतिरिक्त मुसीबत और उठानी पड़ेगी। ऐसे व्यक्ति के निर्वाचन के लिए क्यों कष्ट उठाया जाए जिसे कोई वास्तविक शक्ति प्राप्त नहीं है: यह सब व्यर्थ का बखेड़ा होगा।

इगलैंड का राजा साम्राज्य की एकता (Imperial Unity) का प्रतीक है। वह 'साम्राज्य की स्वर्णिम श्रृंखला'[1] (golden link) है। वह डोमीनियनों को सम्बद्ध करने वाली आवश्यक कड़ी के सदृश है। जनरल स्मट्स के मतानुसार, "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल को गणराज्य नहीं बनाया जा सकता।" प्रो० डायसी के कथनानुसार, "इंगलैंड के संविधान के रूप मे कोई महान् परिवर्तन अर्थात् सीमित राजतन्त्र के स्थान पर अंग्रेजी गणराज्य बनाने से ब्रिटिश उपनिवेशो की निष्ठा पर कुठाराघात हो सकता है। क्या किसी को विश्वास हो सकता है कि न्यूजीलैंड अथवा कनाडा, ब्रिटेन की संसद् के आदेश पर ब्रिटिश निर्वाचकों द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति के प्रति जार्ज पंचम के समान ही निष्ठा रख सकेंगे, चाहे यह क्रान्ति पूर्ण कानूनी औपचारिकता के पश्चात् लाई जाए और उसे राजा की मान्यता भी प्राप्त हो, और चाहे स्वयं राजा को ही नए राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष निर्वाचित क्यो न किया जाए ''राजा की ममता संसद् भी नहीं कर सकती। राजा साम्राज्य के प्रत्येक भाग मे साम्राज्य की एकता का प्रतिनिधि है।"

इंगलैंड मे राजपद की संस्था व्यर्थ नहीं है। राजा कुछ बहुत आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित करता है। वह दो मन्त्रिमण्डलों के बीच के समय मे महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। राजा प्रधानमन्त्री छाँटता है, तथापि अनेक अवसरो पर वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र नहीं होता। अनेक अवसरो पर रानी विक्टोरिया ने सार्वजनिक नीति तथा कानूनों के रूप को निश्चित कराने मे निर्णायक भाग लिया था। उन्होंने १८४० में इगलैंड और फ्रांस की लड़ाई को रोका। सन् १८६१ ई० मे उन्होंने टैंट घटना के सम्बन्ध मे इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के युद्ध को रोका। सन् १८६६ ई० में उन्होंने आयरिश चर्च को भंग करने के प्रश्न पर मध्यस्थता की। सन् १८८४ में उन्होंने कन्जरवेटिव लार्डसभा और लिबरल लोकसभा में समझौता कराया। सन् १८५० मे उन्होंने लॉर्ड पामर्स्टन को यह लिखा, "रानी की इच्छा है कि (१) लार्ड पामर्स्टन स्पष्ट रूप मे प्रकट करे कि उल्लिखित विषय मे वह क्या चाहते है ताकि रानी स्पष्ट रूप से जान सके कि वह किस वस्तु को राजकीय स्वीकृति प्रदान कर रही है। (२) किसी ऐसे कानून को मान्यता मिलने के पश्चात् कोई मन्त्री उसे स्वेच्छानुसार परिवर्तित अथवा संशोधित न करे.........। वह आशा करती है कि उसे उसके तथा अन्य विदेशमन्त्रियों के मध्य होने वाली बात-

१. जी० एम० ट्रिवेलियन (G. M. Trevelyan) के अनुसार, "ब्रिटिश साम्राज्य संवैधानिक राजतन्त्र द्वारा संगठित है, जो इंगलैंड के प्राचीन संवैधानिक राजतन्त्र के अलावा, जिसका गठबन्धन स्काटलैंड के पुराने राजतन्त्र से हो गया है और जिसमें समुद्र-पार के नये राष्ट्र मिल गए हैं, और कुछ नहीं है। इसके संवैधानिक स्वरूप का निर्माण किसी एक घटना या आन्दोलन के कारण नहीं हुआ है, लेकिन इसका विकास हुआ है, जो नार्मन विजय (Norman Conquest) के समय से हो रहा है। हम इससे भी पीछे सैक्सन राजाओं के काल तक जा सकते हैं, जिनके दिनों में इंगलैंड के प्रदेश और उनके शायर (Shires) निर्मित हुए, विशेष रूप से अलफ्रेड के काल तक, जो कि हमारे राजाओं की कसौटी है और जो अपने जीवन और चरित्र में अंग्रेजी संविधान का मूर्त स्वरूप दिखाई देता है।"

चीत और उस बातचीत के आधार पर किसी प्रकार का निर्णय करने से पहले जानकारी दी जाएगी। विदेशों से आने वाली डाक ठीक समय प्राप्त हो; और उसकी स्वीकृति के लिए मसविदे काफी समय पहले प्राप्त हों, ताकि वह भेजे जाने से पूर्व उनको पढ़ सके।" यह भी निर्देश किया जाता है कि एडवर्ड सप्तम ने इंगलैंड को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सम्बन्धित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होंने यूरोप की अनेक यात्राएँ ही नहीं कीं, प्रत्युत् अनेक विदेशी नेताओं का स्वागत भी किया और विदेशी राज्यों के प्रमुखों से व्यक्तिगत रूप में पत्र-व्यवहार किया। इसके परिणामस्वरूप सन् १६०४ ई० में हार्दिक मैत्री-सन्धि (Entente Cordiale) तथा सन् १६०७ ई० में अंग्रेजी-रूसी अभिसमय हुआ। उन्होंने न केवल हैलडेन के सैनिक सुधारों का समर्थन किया, प्रत्युत् लार्ड सभा को प्रेरणा दी कि वह सन् १६०६ के बजट को अस्वीकृत न करे। मन्त्री उससे हमेशा मिलते रहते थे और वे उनसे राज्य के विषयों पर वार्ता करने में आनन्द लेते थे। जार्ज पंचम ने भी आयरिश प्रश्न तथा सन् १६११ के संसदीय अधिनियम के सम्बन्ध में अपने व्यक्तित्व का प्रयोग किया। सन् १६१४ में उन्होंने इंगलैंड तथा आयरलैंड के नेताओं का सम्मेलन किया और सम्बन्धित दलों से शान्तिपूर्वक किसी समझौते पर पहुँचने की प्रार्थना की। सन् १६३१ ई० में उन्होंने रैम्जे मैकडोनल्ड को राष्ट्रीय सरकार बनाने में सहायता दी। यद्यपि वह अपनी पार्टी का विश्वास खो चुका था, तथापि राजा की सहायता से वह चार वर्ष तक अपने पद पर बना रहा। राजकीय संस्थान (Royal Establishment) का व्यय-भार अधिक नहीं है। यदि राजतन्त्र को समाप्त कर गणराज्य की स्थापना की जाए तो वित्तीय दृष्टि से लाभ नहीं होगा। प्रत्येक देश में राज्य के अध्यक्ष पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है, कोई आश्चर्य नहीं कि चतुर स्काट लोगों ने राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग नहीं की।

इंगलैंड का राजा नैतिकता, सभ्यता तथा संस्कृति के क्षेत्र में नेता होता है। वह स्थायिता की भावना पैदा करता है। यह ठीक ही कहा जाता है कि "यदि राजा बकिंघम प्रासाद में हो तो जनता सुख की नींद सोती है।"

एडवर्ड जेंक्स (Jenks) ने राजपद का मूल्यांकन निम्न शब्दों में किया है—"प्रथमतः, राजा सरकार के कार्य-व्यापारों में व्यक्तिगत रुचि के अति आवश्यक तत्त्वों की पूर्ति करता है। सामान्य व्यक्तियों के लिए एक संस्था की अपेक्षा एक व्यक्ति को समझना सरल है। यूनाइटिड किंगडम (United Kingdom) में भी केवल कुछ शिक्षित व्यक्ति ही संसद्, मन्त्रिमण्डल अथवा 'क्राउन' जैसी कल्पनाओं को समझते हैं। परन्तु मनुष्यों का विस्तृत समुदाय राजा-रूपी व्यक्ति में अत्यधिक आस्था रखता है, जैसा कि इस बात से सिद्ध होता है कि जब कभी लोग उसे देखने का अवसर पाते हैं तब वे एकत्र हो जाते हैं। और यह सम्भव है कि जनता के अधिकांश लोग, यह विश्वास करते हैं कि राज्य का शासन व्यक्तिगत रूप से राजा द्वारा चलाया जाता है। अतः वह व्यक्तिगत अंश की पूर्ति करता है, जो वैधानिक प्रबन्धों की अपेक्षा सार्वजनिक ध्यान को अधिक शीघ्र आकृष्ट करता है, जो न देखा जा सकता है, और न सुना जा सकता है·········राज-परिवार का धार्मिक विषयों, नैतिकता, परोप-

कारिता, शृंगार (fashion), और यहाँ तक कि कला तथा साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है। इस दिशा में रानी विक्टोरिया द्वारा किया गया कार्य सब को मालूम है। उसके दीर्घकालीन शासन की प्रभावोत्पादक सफलताओं में से यह एक है। और स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे विषयों में राजा किसी भी प्रकार से अनुकरण अथवा अपने मन्त्रियों की सलाह मानने को बाध्य नहीं, क्योंकि ऐसे विषय राजनीति के क्षेत्र से बाहर आते हैं। एक राजा, जो घटनाओं से पूर्णरूपेण अवगत है, धीरे-धीरे राजनीतिक अनुभव का संग्रहालय बन जाता है। मन्त्रीगण आते हैं और जाते हैं। उन्हें अपने दल तथा क्षेत्र के हित के आगे झुकना पड़ता है। समर्थन प्राप्त करने के लिए उन्हें सौदे करने पड़ सकते हैं जो उनके हाथों को बाँध देते हैं। वे भविष्य के लिए महत्त्वाकांक्षाएँ रखते हैं। पर राजा स्थायी है; वह दलीय भावना से ऊपर है। वह स्थान तथा सम्मान के लिए सौदा नहीं करता। वह महत्त्वाकांक्षा की दिशा में अपने देश की भलाई की महत्त्वाकांक्षा के अतिरिक्त कुछ भी आकांक्षा नहीं रखता। अतः वह अपने अनुभव तथा स्थिति की सम्पूर्ण शक्ति के साथ अपने मन्त्रियों से कह सकता है—"हाँ! यदि आप हठ करते हैं तो मैं, जो आप चाहते हैं, करूँगा, परन्तु मैं चेतावनी देता हूँ कि आप अविवेकपूर्ण कार्य कर रहे हैं। क्या आपको अमुक-अमुक बात स्मरण है? राजा सार्वजनिक रूप से चेतावनी नहीं देगा, क्योंकि उसे मन्त्रियों के ऊपर शासन करते हुए दिखलाई नहीं पड़ना चाहिए। परन्तु एक मन्त्री यदि वह एक पूर्णरूपेण अविवेकी मनुष्य नहीं है, राजा द्वारा दी गई चेतावनी का उल्लंघन करने से पूर्व अनेक बार सोचेगा।" (Government of British Empire, pp. 37-40.)

ऑग और जिन्क (Ogg and Zink) के मतानुसार, "राजतन्त्र के जारी रहने से आन्तरिक शासन के विकास में बाधा नहीं पड़ी है। यदि राजवंश, जनता के शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने के मार्ग में बाधक होता तो परम्पराओं का ३०० वर्ष तक निभाव कैसे होता! राज-परिवार पर व्यय भी अधिक नहीं होता, ब्रिटिश बजट के एक प्रतिशत से भी बहुत कम इस पर व्यय होता है। मन्त्रिमण्डल प्रणाली, जिस पर ब्रिटिश सरकार टिकी हुई है, बिना किसी नाममात्र के प्रधान के, किसी निष्पक्ष, गौरवयुक्त व्यक्ति के, चाहे वह राजा हो या राजतन्त्र-गुणभूषित फ्रांसीसी राष्ट्रपति, कहीं सफल ही नहीं हुई है।"

प्रोफेसर लास्की (*Prof Laski*) के मतानुसार, "सीमित राजतन्त्र (limited monarchy) की प्रणाली अवश्य ही एक सफलता है। अब तक इसने समय के परिवर्तन के साथ बड़ी कुशलता से कदम मिलाया है। कोई सन्देह नहीं कि इसकी सफलता इस तथ्य का परिणाम है कि इसने शक्ति देकर प्रभाव हासिल किया है। नीति की त्रुटियों का दोष मन्त्रियों पर डाला गया है, जिन्हें अपने पदों से हाथ धोना पड़ा है।" (Parliament [illegible])

प्रिवी कौंसिल (Privy [illegible]

एंग्लो-सैक्सन लोगों के विटेनागमट (Witenagemot) से प्रिवी [illegible] Council) विकसित हुई है। ट्यूडर-काल में यह सर्वशक्तिमान थी।

कौंसिल की सदस्यता बढ़ती गई, यह विचार-विमर्श के कार्यों में समर्थ संस्था न रह सकी। तब चार्ल्स द्वितीय ने केवल (Cabal) की स्थापना की। ब्रिटिश संसद् ने प्रिवी कौंसिल के उल्लंघन करने की प्रवृत्ति का विरोध किया और ऐक्ट ऑफ सैटिलमैंट (Act of Settlement) में इसकी पुनः स्थापना का उपबन्ध किया। १७०१ ई० का अधिनियम उपबन्धित करता था कि प्रिवी कौंसिल का समस्त कार्य प्रिवी कौंसिल में ही होना चाहिए। किन्तु, यह प्रयत्न असफल सिद्ध हुआ और मन्त्रिमण्डल की प्रणाली ने प्रिवी कौंसिल को गौण बना दिया।

आरम्भ में, प्रिवी कौंसिल, कार्यकारिणी तथा विचार-संस्था, दोनों ही थी। रानी ऐन (Queen Anne) की मृत्यु सन् १७१४ में हुई और वह समस्त प्रिवी कौंसिल का विचारपूर्ण कार्यों के लिए एकत्र होने का अन्तिम अवसर था। आधुनिक समय में भी यह सरकार की कार्यकारिणी है।

प्रिवी कौंसिल में ३३० सदस्य हैं। कैंटरबरी तथा यार्क के धर्माध्यक्ष (Archbishops of Canterbury and York) प्रिवी कौंसिल के अधिकारतः सदस्य होते हैं। लन्दन का बिशप, कानून जानने वाले लार्ड्स (Law Lords), विदेशों के लिए राजदूत, लोकसभा (House of Commons) का अध्यक्ष (Speaker) इत्यादि प्रायः प्रिवी कौंसिल में सम्मिलित कर लिये जाते हैं। डोमीनियनों (Dominions) के कुछ व्यक्ति भी प्रिवी कौंसिलर बना दिये जाते हैं। विज्ञान, कला तथा साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों को भी प्रिवी कौंसिल का सदस्य बना लिया जाता है। मन्त्रिमण्डल के सदस्य भी प्रिवी कौंसिलर बना लिये जाते हैं।

सम्पूर्ण प्रिवी कौंसिल को कभी नहीं बुलाया गया। किन्तु यह राज्याभिषेक-उत्सव के लिए तथा राजा की मृत्यु के समय पर स्वतः एकत्र हो जाती है। प्रिवी कौंसिल की बैठकें औपचारिक कार्य करने के लिये होती हैं। ये घोषणाएँ तथा सपरिषद् आदेश जारी करती है और स्वीकार करती है। इसके कार्य के लिए ३ का 'कोरम' है।

यह सत्य है कि प्रिवी कौंसिल ने अपने प्रशासकीय तथा सम्मति देने के कार्य छोड़ दिये हैं परन्तु प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति, जो सन् १८३३ में स्थापित की गई थी, अत्यन्त लाभदायक कार्य करती है।

Suggested Readings

Barker, E. : Britain and the British People.
Jennings, W. I. : The British Constitution.
Jennings, W. I. : Cabinet Government.
Keith, A. B. : The Constitution of England from Queen Victoria to George VI.
Keith, A. B. : The King and the Imperial Crown.
Keith, A. B. : The British Cabinet System.
Laski, H. J. : The Crisis and the Constitution, 1932.
Martin, K. : The Magic of Monarchy.
Petrie, Charles : The Modern British Monarchy.

अध्याय ३

मन्त्रिमण्डल-प्रणाली

(The Cabinet System)

इंगलिश मन्त्रिमण्डल का विकास (Development of the English Cabinet)—सिडनी लो के मतानुसार, "मन्त्रिमण्डल वह उत्तरदायी कार्यपालिका है जो राष्ट्रीय कार्यों के सामान्य सचालक के प्रशासन को पूर्णरूपेण नियन्त्रित करती है, लेकिन इस विस्तृत शक्ति का प्रयोग प्रतिनिधि-सदन (representative chamber) के कठोर निरीक्षण मे किया जाता है जिसके प्रति वह अपनी समस्त भूलों और कार्यों के लिए उत्तरदायी है।" प्रो० मनरो के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल संक्षेप मे क्राउन के नाम पर प्रधानमन्त्री द्वारा नियुक्त किये हुए उन राजकीय परामर्शदाताओं की संस्था को कहा जा सकता है जो लोकसभा के बहुमत मे समर्थित होते हैं।" मन्त्रिमण्डल प्रणाली के विकास के विषय मे स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि इसका विकास बहुत धीमी गति से हुआ है।

चार्ल्स द्वितीय की कथित 'केबल' (Cabal) को मन्त्रिमण्डल का ठीक अग्रदूत माना जाता है। केबल (Cabal) कुछ व्यक्तियो का एक समूह था, जिसे चार्ल्स द्वितीय ने प्रिवी कौंसिल मे से छाँटा था और जिसकी सलाह वह अनौपचारिक रीति से लेता था। जिस प्रकार प्रिवी कौंसिल का उद्‌गम नार्मनों की महा-परिषद् थी, उसी प्रकार प्रिवी कौंसिल से केबल का जन्म हुआ। किन्तु वस्तुतः प्रिवी कौंसिल के महत्त्व-पूर्ण विषयों को एक छोटी समिति मे भेजने की प्रथा चार्ल्स द्वितीय के बहुत पहिले आरम्भ हो चुकी थी। चार्ल्स प्रथम के समय मे भी इस प्रथा तथा मन्त्रिमण्डल दोनों का ही अस्तित्व था। किन्तु १६६० ई० के पश्चात् की परिस्थितियाँ मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली के विकास के लिए अधिक उपयुक्त थी। ससद् ने राजा पर विजय प्राप्त की थी और यह आशा की गई थी कि कोई भावी राजा उसकी सत्ता को चुनौती नही देगा। मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का विकास तभी हो सका जबकि संसद् की प्रभुता स्थिर हो गई और राजा का स्थान गौण हो गया। ऐसी बात 'रेस्टोरेशन' (Restoration) और खास तौर से 'रक्तहीन क्रान्ति' (१६८८) के बाद ही सम्भव थी।

चार्ल्स द्वितीय के काल मे अधिक प्रगति नही हुई, क्योंकि "परिषद् के बड़ा होने के कारण कोई बात गुप्त नही रह सकती थी।" अत चार्ल्स ने अपने चारों ओर आधे दर्जन मन्त्रियों को इकट्ठा किया। ये न केवल उसके विश्वस्त ही थे, प्रत्युत् संसद् में अपना प्रभाव भी रखते थे। वह उनकी सहायता से संसद् से आवश्यक कानून पास करा लेता था। वह उन महत्त्वपूर्ण समस्याओ को भी उनके सामने रखता था, जो उसे परेशान करती थी।

उपर्युक्त मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का मूल चार्ल्स द्वितीय के काल मे पाया जा सकता है। उस समय मन्त्रियो का एक छोटा समूह राजा को सामूहिक परामर्श देता

था और चार्ल्स द्वितीय द्वारा वांछित कानूनों को संसद् मे पास करता था। किन्तु प्रणाली उस समय तक अधूरी थी। मन्त्रियों की नियुक्ति मे राजा यह विचार नहीं करता था कि उनको संसद् में बहुमत प्राप्त है या नही। वह उनकी पार्टी की ओर भी ध्यान नही देता था। वे मन्त्री संसद् के प्रति उत्तरदायी न होकर स्वयं राजा के प्रति उत्तरदायी थे। उनको राजा के अधिकारों पर नियन्त्रण रखने वाला संसद् का आढ़तिया (agent) नहीं समझा जाता था। वस्तव में मन्त्रिमण्डल शब्द को आरम्भ मे निन्दा की दृष्टि से देखा जाता था। इसका जन्म राजा द्वारा सदस्यों को एक छोटे निजी कक्ष अथवा महल के 'मन्त्रिमण्डल' में स्वागत करने की आदत से हुआ है।

मन्त्रिमण्डल-पद्धति से अत्यधिक आवश्यकता की पूर्ति हुई। १६६० के समझौते के पश्चात् तो यह अनिवार्य हो गई। यह ठीक ही कहा गया है कि संसद्-सदस्यों से मिलकर बने हुऐ शान्ति से चुने हुए तथा संसद् की देख-रेख में काम करने वाले मन्त्रिमण्डल की वास्तविक नियुक्ति कार्यपालिका के रूप मे की गई थी। अंग्रेजी परम्परा तथा संसद् की प्रभुता (sovereignty) को, जिसका १७वीं सदी की संवैधानिक प्रगति के परिणामस्वरूप जन्म हुआ था, अमल मे लाने के लिए अन्त मे सरकारी तौर से अपनाया गया।

रक्तहीन क्रान्ति (१६८८) के होने तक मन्त्रिमण्डल भ्रमात्मक, अधूरी और ठीक तरह न समझी गई संस्था थी। मन्त्रिमण्डल-प्रणाली की कल्पना उस समय तक नहीं की गई थी। किन्तु रक्तहीन क्रान्ति और उसके पश्चात् सैटिलमेंट (Settlement) ने संसदीय प्रभुता के मार्ग को प्रशस्त किया और इस प्रकार मन्त्रिमण्डल-प्रणाली का विकास अवश्यम्भावी हो गया। विलियम तृतीय अपनी इच्छानुसार मन्त्री नियुक्त करने के लिए स्वतन्त्र था। अतः वह उनकी गतिविधियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखता था। किन्तु उसके शासन-काल मे एक महत्त्वपूर्ण विकास हुआ। आरम्भ में उसने शासन-कार्य को चलाने के लिए विग और टोरी दोनों दलों के सदस्यों को मन्त्रिमण्डल में लिया। किन्तु बाद मे उसने अनुभव किया कि यह प्रणाली ठीक नही। फलतः १६९३-९६ मे, उसने अपने परामर्शदाता केवल विग पार्टी से ही चुने। यद्यपि यह कार्य विलियम तृतीय ने अपनी सुविधा के लिए किया था, तो भी यह निरूढ़ि (convention) स्थापित हो गई कि मन्त्रियों की नियुक्ति केवल उस पार्टी अथवा वर्ग से की जाए जिसका लोकसभा मे स्पष्ट रूप से बहुमत हो।

संसद् ने इस नयी निरूढि को अच्छा नहीं समझा। वास्तविकता तो यह है कि १७०१ मे ऐक्ट ऑफ सैटलमेंट (Act of Settlement) द्वारा मन्त्रिमण्डल प्रणाली को उसके शैशव-काल में ही समाप्त कर देने का प्रयास किया गया था। इसमें शर्त थी कि "वह व्यक्ति लोकसभा का सदस्य नही बन सकता, जो राजा के अधीन किसी लाभ के पद पर है अथवा क्राउन से पेंशन प्राप्त करता है।" जहाँ तक उस शर्त का उद्देश्य संसद् पर राजा के नियन्त्रण को समाप्त करना था, वहाँ तक यह प्रयास प्रशंसनीय था, क्योंकि राजा सदस्यों को पेंशन अथवा पद देकर अपनी इच्छानुसार कार्य करा लेता था। किन्तु उक्त कानून में बाधा यह थी कि यदि उसका

किया जाता तो मन्त्रिमण्डल-प्रणाली का नष्ट होना अवश्यम्भावी था।

यदि राजा के सेवक (servants) लोकसभा के सदस्य नही बनते तो मन्त्रिमण्डल-प्रणाली के अनुसार मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का विकास होना कठिन था। कोई आश्चर्य नही यदि १७०७ के प्लेस ऐक्ट (Place Act) के द्वारा यह व्यवस्था की गई कि अक्तूबर सन् १७०५ के पश्चात् बनाये गये पदों अथवा कुछ विशेष उल्लिखित पदों पर नियुक्त व्यक्ति लोकसभा का सदस्य नही बन सकता और उन पदों के अतिरिक्त किसी अन्य पद को स्वीकार करने पर सदस्यता से त्यागपत्र देना पडता था, किन्तु वह पुनः निर्वाचित (re-elected) हो सकता था।

ऐक्ट ऑफ सैटिलमेंट (Act of Settlement) की एक अन्य धारा मे यह एक शर्त रखी गई कि प्रिवी कौसिल के कार्य-व्यापार प्रिवी कौंसिल मे ही किये जाएँ और कहीं नही। प्रिवी कौंसिल के सदस्यों को अपने उत्तरदायित्व के प्रमाण के लिए संकल्पों (resolutions) पर अपने हस्ताक्षर करने पड़ते थे। राबर्टसन के अनुसार, उसका उद्देश्य प्रिवी कौंसिल की नीति को सर्वैधानिक उपकरण बनाना, मन्त्रिमण्डल की निन्दा करना,...यह सुनिश्चित करना था कि प्रशासक प्रिवी कौसिल के सदस्य के नाते वह परामर्श देने के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी हों अर्थात् उनको अभियोजित किया जा सके, जिसे ससद् अस्वीकार करे, और न्यायालय मे मामला लाया जा सके," इस उपबन्ध का कारण विलियम तृतीय द्वारा की गई विभाजन-सधियों (Partition Treaties)के दायित्वों की जाँच करना था। यदि यह कानून लागू रहता, तो मन्त्रिमण्डल का विकास रुक जाता। यदि प्रिवी कौंसिल का सारा कार्य प्रिवी कौंसिल में ही किया जाता तो मन्त्रिमण्डल की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, जो प्रिवी कौंसिल की अन्तः परिषद् है। यदि मन्त्रियों को अपने द्वारा राजा को दिए गए परामर्श पर अपने हस्ताक्षर करने पडते तो वे परामर्श देना ही अच्छा नही समझते। इससे मन्त्रिमण्डल के स्वतन्त्र विचार-विनिमय (free discussion) मे बाधा पडती थी। मन्त्री दोषारोपण के भय से राजा को परामर्श देने की अनिच्छा प्रकट करते थे। सरकार के कार्यों के लिए मन्त्रियों को उत्तरदायी ठहराने की यह बहुत घटिया रीति है। इंगलैंड के लिए सौभाग्य की बात है कि १७०३ में रानी ऐन के काल में इस शर्त को वापस ले लिया गया था।

इसके अतिरिक्त, यह प्रथा चल पडी कि जब कभी कोई महत्त्वपूर्ण राजनैतिक पद बनाया जाता तब एक कानूनी शर्त द्वारा पदासीन व्यक्ति को लोकसभा का सदस्य बने रहने की आज्ञा दी जाती थी। यह सत्य है कि १७०५ के पूर्व अथवा पश्चात् बनाए गये पदो पर नियुक्त अधीनस्थ कर्मचारियों के लिए संसद् के द्वार सदा के लिए बाद के कानूनों द्वारा बिना किसी शर्त के बन्द कर दिए गए, लेकिन मन्त्रियों के पदों की ओर इन कानूनो ने आँख उठाकर भी नहीं देखा। इस प्रकार से दीर्घकालीन विकास का मार्ग अवरुद्ध न हुआ, जिससे इंगलैंड को मन्त्रिमण्डल-प्रणाली प्राप्त हो सकी।

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली के निर्विघ्न (unhampered) विकास का स्वर्णिम युग जार्ज प्रथम और जार्ज तृतीय का शासन-काल था। १७१४ से १७७० तक विग-अल्पतन्त्र (Whig Oligarchy) व्यावहारिक रूप से सत्ताधिकारी रहा। जार्ज प्रथम

अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ था, इसी कारण वह मन्त्रियों की बैठकों की अध्यक्षता करने में कठिनाई अनुभव करता था। आयु अधिक होने के कारण उसने सिंहासनारूढ होने के पूर्व अथवा पश्चात् अंग्रेजी भाषा को सीखने का कठिन परिश्रम नहीं किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी प्रशासन-व्यवस्था पेचीदा थी और जार्ज प्रथम न उसे समझना ही चाहता था और न ही उसके पास उसे समझने के लिए बुद्धि थी। परिणाम यह हुआ कि उसने प्रत्येक वस्तु विग पार्टी पर छोड दी। विग पार्टी ने अपने हाथों में आये हुए अवसर का पूर्णरूपेण लाभ उठाया। विग पार्टी ईमानदारी अथवा छल-कपट से लोकसभा मे अपना बहुमत कर लेती थी। राजा की अनुपस्थिति में वालपोल (Walpole) ने मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करनी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार प्रधानमन्त्री के पद का प्रादुर्भाव हुआ। यह सत्य है कि जनता इस पद को अच्छा नहीं समझती थी और वालपोल पर लगाए गए दोषों मे से एक यह भी था कि वह प्रधान बन गया था; लेकिन यह घटना जार्ज प्रथम तथा द्वितीय की ब्रिटिश राजनीति के प्रति उदासीनता के कारण अवश्यम्भावी हो गई। राजा की अनुपस्थिति एक स्थायी बात हो गई, जब जार्ज तृतीय ने अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित किया, तब भी वह मन्त्रिमण्डल की बैठको से अनुपस्थित रहा करता था। विग के प्रभुत्वकाल में मन्त्रिमण्डल प्रणाली के अनेक गुणों का विकास हुआ। सब मन्त्री एक ही दल से सम्बन्धित होते थे। वे सब प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता मे कार्य करते थे। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भी स्थापित किया गया। जब १७४२ मे लोकसभा ने वालपोल में अविश्वास प्रकट किया, तब उसने पद-त्याग कर दिया।

सन् १७६० मे जार्ज तृतीय इंगलैंड का राजा बना। उसने मन्त्रिमण्डल-प्रणाली को नष्ट करके अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित करने का निश्चय किया। वह अपने आप को क्रान्ति का विग (Whig of the Revolution) मानता था। उसका कहना था कि वह बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) तथा ऐक्ट ऑफ सैटिलमेंट द्वारा निर्धारित प्रतिबन्धो के अतिरिक्त अन्य कुछ भी मानने के लिए बाध्य नहीं था। उसने यह भी कहा कि विग-प्रभुत्व के काल मे मन्त्रिमण्डल का जो कुछ विकास हुआ है वह अवैध है और इसीलिए वह उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं है। यह हो सकता है कि जार्ज प्रथम तथा जार्ज द्वितीय के काल मे अंग्रेजी भाषा और ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के अज्ञान ने मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली के विकास मे सहायता पहुँचाई हो, लेकिन जार्ज तृतीय स्वयं शासन करने के लिए दृढ-संकल्प था। वास्तविकता तो यह है कि वह विगों से छुटकारा पाने और लार्ड नार्थ के नेतृत्व मे अपनी इच्छा का मन्त्रिमण्डल स्थापित करने मे सफल हो गया था। किन्तु अमरीका के स्वतन्त्रता-संग्राम में तथा उसमें ब्रिटिश पराजय ने उसके प्रयास को असफल कर दिया। सन् १७८३ के पश्चात्, जब छोटा पिट प्रधानमन्त्री बना, तब जार्ज तृतीय ने उसे ही सर्वेसर्वा बना दिया, क्योंकि वह उसका अपना मनोनीत व्यक्ति था और जनता ने भी उसे स्वीकार किया।

यह स्मरणीय है कि अठारहवी शताब्दी के अन्तिम चरण तक भी मन्त्रिमण्डलीय सरकार की सामान्य मान्यताओं का स्पष्ट चित्र नहीं खीचा जा सका था। किन्तु ...संविधान-निर्माताओं ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया। सन् १७९१ के

अधिनियम मे भी मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली नही रखी गई थी जिसके द्वारा उत्तरी तथा दक्षिणी कनाडा में इंगलैंड के सदृश सरकार स्थापित की गई। अंग्रेजी सविधान पर टीका करते हुए 'ब्लैकस्टोन' ने भी मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का निर्देश नही किया। डी लाल्मे (De Lolme) ने भी अंग्रेजी सविधान के वर्णन मे मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का उल्लेख नही किया। सन् १८६७ में ही बैजहॉट (Bagehot) ने अंग्रेजी सविधान की प्रसिद्ध पुस्तक में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का पूर्ण विवरण दिया है।

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का निश्चित स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी मे निखरा। यह बात स्थिर हो गई थी कि मन्त्रिमण्डल के सदस्य ससद् के सदस्य होने चाहिएँ। उनका लोकसभा मे स्पष्ट बहुमत भी होना चाहिए। उनका दायित्व सामूहिक होना चाहिए। उनमें समरूपता हो और वे प्रधानमन्त्री को अपना नेता माने।

सन् १९१४ मे प्रथम विश्व-युद्ध आरम्भ होने पर श्री एसक्विथ (Asquith) प्रधानमन्त्री थे। सन् १९१६ मे श्री लॉयड जार्ज (Lloyd George) प्रधानमन्त्री बने। उन्होंने सम्मिलित मन्त्रिमण्डल (Coalition Cabinet) बनाया, जो युद्ध के अन्त तक रहा। कार्य को शीघ्र तथा ठीक रूप मे निपटाने के लिए श्री लॉयड जार्ज ने पाँच सदस्यों की युद्ध-परिषद् (War Cabinet) स्थपित की। सन् १९१७ मे छठा सदस्य नियुक्त किया गया, और वह दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमन्त्री जनरल स्मट्स थे।

सन् १९३१ के अर्थ-संकट (Economic Crisis) का सामना करने के लिए रैम्जे मैक्डोनल्ड के नेतृत्व में सम्मिलित सरकार स्थापित की गई, यद्यपि वह स्वय अल्पमत में था। जब सरक्षण का प्रश्न (Question of Protection) उठा, तब उदार सदस्यों को इस सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र मत रखने का अधिकार दे दिया गया। यह अधिकार केवल इसलिए दिया गया था कि अपेक्षित परिस्थिति का सामना किया जा सके।

द्वितीय महासभा मे समस्त दलों के नेताओं को मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित किया गया। परिणाम यह हुआ कि श्रमिक तथा उदार दोनों दल श्री चर्चिल की सरकार में सम्मिलित हो गए।

१९१६ मे मन्त्रिमण्डल को उसके कार्य मे सहायता पहुँचाने के लिए एक मन्त्रिमण्डल सचिवालय की स्थापना की गई है। डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के अनुसार, उसके कर्तव्य इस प्रकार हैं—

१. मन्त्रिमण्डल और इसकी समितियो की कार्रवाइयो के लिए स्मरण-पत्र तथा अन्य कागजात का वितरण करना।

२. प्रधान मन्त्री के निर्देश में मन्त्रिमण्डलीय समिति की कार्य-सूची तैयार करना।

३. मन्त्रिमण्डल तथा इसकी समितियो की बैठकें बुलाने के लिए सूचना भेजना।

४. मन्त्रिमण्डल और इसकी समितियों के निर्णयो को लिखना, उनका वितरण करना और मन्त्रिमण्डलीय समितियों की रिपोर्टें तैयार करना।

५. मन्त्रिमण्डल के विशेष निर्देशों, मन्त्रिमण्डल के पत्रों और निर्णयों को सँभाल कर रखना।

अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ था, इसी कारण वह भ...
करने में कठिनाई अनुभव करता था। आयु अधिक होने के प...
होने के पूर्व अथवा पश्चात् अंग्रेजी भाषा को सीखने का कठि...
इसके अतिरिक्त अंग्रेजी प्रशासन-व्यवस्था पेचीदा थी और जा...
ही चाहता था और न ही उसके पास उसे समझने के लिए बुद्धि...
हुआ कि उसने प्रत्येक वस्तु विग पार्टी पर छोड़ दी। विग...
आये हुए अवसर का पूर्णरूपेण लाभ उठाया। विग पार्टी ईमानद...
से लोकसभा में अपना बहुमत कर लेती थी। राजा की अनु...
(Walpole) ने मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करनी...
प्रकार प्रधानमन्त्री के पद का प्रादुर्भाव हुआ। यह सत्य है कि ज...
अच्छा नहीं समझती थी और वालपोल पर लगाए गए दोषों में...
कि वह प्रधान बन गया था, लेकिन यह घटना जार्ज प्रथम तथा द्वि...
राजनीति के प्रति उदासीनता के कारण अवश्यम्भावी हो गई। राज...
एक स्थायी बात हो गई, जब जार्ज तृतीय ने अपना व्यक्तिगत शासन...
तब भी वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों से अनुपस्थित रहा करता था। विग...
में मन्त्रिमण्डल प्रणाली के अनेक गुणों का विकास हुआ। सब मन्त्री ए...
सम्बन्धित होते थे। वे सब प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में कार्य करते थे।...
उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भी स्थापित किया गया। जब १७४२ में...
वालपोल में अविश्वास प्रकट किया, तब उसने पद-त्याग कर दिया।

सन् १७६० में जार्ज तृतीय इंगलैंड का राजा बना। उसने मन्त्रिमण्ड...
को नष्ट करके अपना व्यक्तिगत शासन स्थापित करने का निश्चय किया। वह...
को क्रान्ति का विग (Whig of the Revolution) मानता था। उसका क...
कि वह बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) तथा ऐक्ट ऑफ सैटिलमेंट द्वारा...
रित प्रतिबन्धों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी मानने के लिए बाध्य नहीं था। उस...
भी कहा कि विग-प्रभुत्व के काल में मन्त्रिमण्डल का जो कुछ विकास हुआ है वह...
है और इसीलिए वह उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य नहीं है। यह हो सक...
है कि जार्ज प्रथम तथा जार्ज द्वितीय के काल में अंग्रेजी भाषा और ब्रिटिश शासन-व्यवस्था
के अज्ञान ने मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली के विकास में सहायता पहुँचाई हो, लेकिन जार्ज तृतीय
स्वयं शासन करने के लिए दृढ़-सकल्प था। वास्तविकता तो यह है कि वह विगों से
छुटकारा पाने और लार्ड नार्थ के नेतृत्व में अपनी इच्छा का मन्त्रिमण्डल स्थापित
करने में सफल हो गया था। किन्तु अमरीका के स्वतन्त्रता-सग्राम में तथा उसमें ब्रिटिश
पराजय ने उसके प्रयोग को असफल कर दिया। सन् १७८३ के पश्चात्, जब छोटा
पिट प्रधानमन्त्री बना, तब जार्ज तृतीय ने उसे ही सर्वोसर्वा बना दिया, क्योंकि वह
उसका अपना मनोनीत व्यक्ति था और जनता ने भी उसे स्वीकार किया।

यह स्मरणीय है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक भी मन्त्रिमण्ड-
लीय सरकार की सामान्य मान्यताओं का स्पष्ट चित्र नहीं खींचा जा सका था। किन्तु
के संविधान-निर्माताओं ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया। सन् १७९१ के

है यदि नवीन निर्वाचनों मे उसे स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाए। यदि लोकसभा मे उसे बहुमत न मिले तो उसे त्यागपत्र देना पड़ता है।

मन्त्री अपने-अपने विभागों के कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से तथा सम्पूर्ण प्रशासन के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि लोकसभा मे किसी मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का मत पारित हो जाए या उसके विधेयक को रद्द कर दिया जाये तो सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है। इसी कारण समस्त महत्व-पूर्ण विषयों पर मन्त्री परस्पर विचार-विनिमय करते हैं तथा एक-दूसरे की सहायता करते हैं। सन् १७७८ में लार्ड सैलिसबरी ने सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का निम्न शब्दों में विवेचन किया था, "मन्त्रिमण्डल में जो कुछ होता है उसके लिए उसका प्रत्येक सदस्य, जो त्यागपत्र नही दे चुका है, पूर्णरूपेण उत्तरदायी है, और उसे यह कहने का तनिक भी अधिकार नही है कि वह अमुक विषय पर समझौता करने के लिए सहमत हुआ और अमुक विषय पर उसके साथियो ने उसे राजी किया है।" लार्ड मार्ले के शब्दों मे, "साधारण नियम के अनुसार, विभागीय नीति का प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रश्न संपूर्ण मन्त्रिमण्डल के विचार के लिए प्रस्तुत किया जाता है, और उसके सदस्य एक साथ ही तैरते हैं और एक साथ ही डूबते हैं। वित्त-मन्त्री को विदेश-विभाग के दुष्कार्यों का फल भोगना पड़ता है और अच्छे गृह-मन्त्री को मूर्ख युद्ध-मन्त्री (Minister of War) की गलतियों के लिए पश्चात्ताप करना पड़ता है। मन्त्रिमण्डल राजा (sovereign) तथा संसद् के लिए इकाई है। उसके विचार राजा और संसद् के सम्मुख इस प्रकार से प्रस्तुत किए जाते हैं जैसे वे एक मनुष्य के विचार हों। वह राजा को तथा लार्ड-सभा अथवा लोकसभा को अपना परामर्श इकाई के रूप में देता है। मन्त्रिमण्डल का प्रथम चिह्न······संयुक्त तथा अविभाज्य उत्तर-दायित्व है।" लार्ड मैकवोर्न ने अपने सहयोगियों से कहा था, "इस बात का कोई महत्त्व नही कि हम क्या कहते हैं, लेकिन हम सब को एक ही बात कहनी चाहिए।"

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का एक अन्य गुण दल की समरूपता है जिस पर मन्त्रि-मण्डल आधारित है। प्रबल (vigorous), स्पष्ट (frank) तथा स्वतन्त्र रचनात्मकता की, जिससे इतना लाभ होता है, आत्मिक शर्त (spiritual condition) यह है कि टूट-फूट तथा स्वार्थपरता की जोखिम बहुत कम हो। इसकी व्यवस्था मन्त्रिमण्डल की राजनैतिक विचार की एकता (political unanimity) करती है। यह सत्य है कि सकटों का सामना करने के लिए सम्मिलित सरकारें (coalition) स्थापित की गई हैं, किन्तु इगलैंड में वे लोकप्रिय नही रहीं। मिश्रित सरकारें संकट समाप्त होते ही भंग हो जाती हैं।

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का एक अन्य गुण गोपनीयता (secrecy) है। मन्त्रि-मण्डल की कार्रवाई की गोपनीयता कानून तथा निरूढ़ि द्वारा संरक्षित है। सन् १६२० के सरकारी रहस्य अधिनियम (Official Secrets Act) मे सरकारी पत्रों तथा सूच-नाओं को किसी अनधिकृत (unauthorised) व्यक्ति को देने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है। सन् १६३४ में भूतपूर्व श्रम-मन्त्री जार्ज लैन्सबरी के पुत्र एडगर लैन्सबरी (Edgar Lansbury) पर जुर्माना किया गया था क्योंकि उसने जीवन-चरित्र

कानूनी रूप मे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य नही है, किन्तु यह एक निरूढि है। यह स्मरणीय है कि मन्त्रिमण्डल दोनों सदनो के प्रति उत्तरदायी न होकर केवल लोक-सभा के प्रति उत्तरदायी है। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की उपयोगिता को इन शब्दों में रखा जा सकता है "कुशासन (maladministration) को रोकने का कोई और अधिक उपयोगी उपाय नही है।"

मन्त्रि-वर्गीय उत्तरदायित्व का यह अर्थ है कि जो कोई त्रुटि अथवा भूल सरकार के किसी विभाग मे होती है उस के लिए उस विभाग का मन्त्री उत्तरदायी होता है। कोई मन्त्री यह नही कह सकता कि भूल अथवा त्रुटि करने वाले अधिकारी की है, उसकी नहीं। यदि ऐसा न हो तो मन्त्रियो के उत्तरदायित्व का कोई प्रयोजन ही नही रहता और लोगों के अहित होने की आशका ही रहती है।

१९५४ मे कृषि मन्त्री ने एक सार्वजनिक जाँच के लिए आदेश दिया। पता यह किया जाना था कि किस अवस्था मे वह जमीन बेची गई जो कि सरकार ने पहिले (acquire) की थी परन्तु बाद मे उसकी सरकार को आवश्यकता न रही। जाँच करने मे पता चला कि ऐसा करने मे सरकार के कई कर्मचारियों का हाथ था। इस विषय पर लोकसभा मे वाद-विवाद हुआ और गृह मन्त्री को यह मानना पडा कि अमुक अधिकारी पूरे तौर से उसके सन्मुख उत्तरदायी था और वह उसे पद-च्युत भी कर सकता था। मन्त्री का यह कर्त्तव्य था कि वह उस अधिकारी की रक्षा करे जिसने मन्त्री की आज्ञा के अनुसार कोई कार्य किया हो अथवा उसकी निर्धारित नीति के अनुसार कोई कार्य किया हो। यदि कोई सरकारी नौकर सरकार की नीति के विरुद्ध कोई कार्य करता है अथवा मन्त्री को बिना पूछे कोई ऐसा कार्य करता है जो मन्त्री की इच्छा के विरुद्ध है, ऐसी अवस्था मे मन्त्री का कोई कर्त्तव्य नही कि वह ऐसे कर्मचारी की रक्षा करे। परन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि मन्त्री उस गलती के लिए लोकसभा के सम्मुख उत्तरदायी नही।

प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के समय युद्ध-मन्त्रिमण्डल (War Cabinet) की स्थापना की गई। उसके सदस्य ५ से लेकर ९ थे। शेष मन्त्री उसमे न थे। प्रश्न यह उठा कि वे मन्त्रि-गण जो War Cabinet मे न थे क्या वे भी उस के निर्णयो के लिए उत्तरदायी थे अथवा नही। एक मत यह था कि केवल War Cabinet के सदस्य तथा वे मन्त्री जिनको परामर्श के लिए बुलाया जाता था, War Cabinet के निर्णयो के लिए उत्तरदायी थे। दूसरा मत यह था कि सब के सब मन्त्री War Cabinet के निर्णयों के लिए उत्तरदायी थे। जो उसके सदस्य न थे उनकी अनुमति ऐसे ही समझ ली जानी चाहिए। युद्ध-काल मे सरकार को कई निर्णय अकस्मात् करने पडते है और उस समय कई मन्त्री कही बाहर गये होते है। उनकी अनुपस्थिति में भी निर्णय किये जा सकते है और वे उनके लिए उत्तरदायी है।

जब द्वितीय महायुद्ध समाप्त हुआ, उस समय मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या ३५ थी। उन मे से २९ तो कैबिनेट के सदस्य थे और बाकी उससे बाहर थे। वे मन्त्री जो कैबिनेट से बाहर थे वे भी कैबिनेट के निर्णयो के लिए उत्तरदायी थे और उनकी आलोचना न कर सकते थे।

मे मन्त्रिमण्डल को दिए गए ज्ञापन (memorandum) को प्रकाशित कर दिया था। किन्तु जब सन् १९३१ मे राष्ट्रीय सरकार बनी, तब श्रमिक दल के मन्त्रियों तथा भूतपूर्व मन्त्रियों मे छँटनी (retrenchment) के विषय मे मन्त्रिमण्डल की कार्रवाई को सार्वजनिक रूप देने मे एक होड-सी लग गई। सन् १९२२ मे, भारत-मन्त्री (Secretary of State for India) को भारत के विषय मे कुछ रहस्य प्रकट हो जाने के कारण त्यागपत्र देना पड़ा।

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली का एक अन्य गुण प्रधान मन्त्री का नेतृत्व है। लार्ड मार्ले के अनुसार, "यद्यपि मन्त्रिमण्डल के समस्त सदस्यों की स्थिति समान होती है, वे सब समान दायित्व से बोलते हैं और विशेष अवसरों पर जब मत-विभाजन किया जाता है तब एक व्यक्ति का एक मत गिना जाता है, तो भी मन्त्रिमण्डल का प्रमुख प्रधान मन्त्री होता है जिसकी शक्ति तब तक अपवाद-रूप और विलक्षण (exceptional and peculiar) होती है जब तक वह उस पद पर रहता है।"

मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्य लोकसभा अथवा सामन्त सभा के सदस्य होते हैं। यदि नियुक्ति के समय कोई मन्त्री दोनों सदनों मे से किसी सदन का सदस्य न हो तो उसे या तो लार्ड बना दिया जाए या उसे किसी निर्वाचन-क्षेत्र से निर्वाचित होना चाहिए। साधारणतः सत्ताधारी दल का कोई सदस्य अपने स्थान से जिसे सुरक्षित समझा जाता है, त्यागपत्र दे देता है और फिर उप-चुनाव होता है। संसद् मे मन्त्रियों का उपस्थित रहना कई कारणों से अनिवार्य है। इससे कार्यपालिका तथा विधायिका में सहयोग होता है।

मन्त्रि-वर्गीय उत्तरदायित्व (Ministerial Responsibility)—मन्त्रि-वर्गीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के अनुसार मन्त्रिगण तीन प्रकार से उत्तरदायी हैं। प्रथमतः, मन्त्री राजा के प्रति उत्तरदायी है। निस्सन्देह यह केवल प्राविधिक उत्तरदायित्व है। इगलैंड के राजा को अपने मन्त्री को पदच्युत करने की वह शक्ति प्राप्त नही है जो अमेरिका के राष्ट्रपति को प्राप्त है। इगलैंड मे मन्त्री उस समय तक अपने पद पर बने रहते हैं जब तक लोक-सभा का बहुमत उनका समर्थन करता है। राजा उस समय अपने लिए आपत्ति मोल लेगा जब वह किसी ऐसे मन्त्री को पदच्युत करेगा जिसको लोकसभा का समर्थन प्राप्त हो। यह सम्भव है कि ऐसा मूर्खतापूर्ण पग उठाते ही राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग उत्पन्न हो जाये। किन्तु राजा के प्रति उत्तरदायी होना असम्भव होते हुए भी उस उत्तरदायित्व की कानूनी कल्पना रहती ही है।

दूसरे, मन्त्री एक-दूसरे के प्रति उत्तरदायी हैं। कोई भी ऐसा पग उठाने से पूर्व प्रत्येक मन्त्री अपने सहयोगियों से परामर्श करता है जिसकी आलोचना की जा सकती है। एक मन्त्री की पराजय का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का पतन होता है। इस विषय मे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और फ्रेंच मन्त्रिमण्डल में अन्तर है, क्योंकि वहाँ मन्त्रियों का दायित्व सामूहिक होने के स्थान पर व्यक्तिगत है।

तीसरे, मन्त्री लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। यह उसके दायित्व का वास्तविक रूप है। यह सत्य है कि लोक सभा में पराजित होने पर मन्त्रिमण्डल

मन्त्रिमण्डल का महत्त्व (Importance of the Cabinet)—ग्लैडस्टोन के अनुसार, मन्त्रिमण्डल एक ऐसी कड़ी है, जो ब्रिटिश संविधान में राजा या रानी, लार्ड्स और कामन्स को कार्य करने के लिए जोड़ती है। एक मजबूत बफरस्प्रिङ्ग (buffer spring) के समान यह सारे धक्कों को बरदाश्त करती है, और इसके अन्दर परस्पर-विरोधी तत्त्व एक-दूसरे को व्यर्थ कर देते हैं। यह अपनी गरिमा के कारण नहीं, बल्कि अपनी सूक्ष्मता, लचीलेपन और अपनी बहुमुखी शक्तियों के कारण आधुनिक काल के राजनैतिक विश्व की शायद सबसे अधिक आश्चर्यजनक रचना है। इसका जीवन और कार्य मानसिक समझौते (understanding) के आधार पर चलता है, इस के तथा राजा या संसद् या राष्ट्र के, सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध, या इसके प्रधान से उनके सम्बन्ध को नियत करने के लिए विधान में एक वाक्य भी नहीं लिखा हुआ।" प्रो० डायसी (Prof. Dicey) के अनुसार, "यद्यपि राज्य का सारा कार्य क्राउन (ताज) के नाम से किया जाता है, फिर भी इंगलैंड की वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिमण्डल है। कोई भी यह कल्पना नहीं करता कि कोई क्षेत्र, चाहे वह कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो, ऐसा है, जिस पर संविधान के अनुसार रानी की व्यक्तिगत इच्छा का काफी गहरा प्रभाव पड़ता है।"

वेजहाट (Bagehot) के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका और विधायिका को जोड़ने में समासक (hyphen) और बकसुए का-सा काम करता है। लॉवेल (Lowell) के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल राजनैतिक महराव का शीर्षस्थ पत्थर (the keystone of the political arch) है।" सर जॉन मरियट (Marriott) इसका उल्लेख एक धुरी की भाँति करते हैं जिसके चारों ओर समस्त राजनीतिक यंत्र (political machinery) चक्कर काटता है। यह सत्य है कि ग्लैडस्टोन लोकसभा को 'सूर्य' के रूप में वर्णन करता है जिसके चारों ओर अन्य ग्रह चक्कर काटते हैं, और सिडनी तथा वैट्राइस वैब इसका विरोध करते हुए कहते है कि "वास्तव में ग्रेट ब्रिटेन की सरकार न तो मन्त्रिमण्डल द्वारा चलाई जाती है, और न मन्त्रियों द्वारा (व्यक्तिगत रूप से), बल्कि प्रशासनिक सेवाओं (civil services), द्वारा चलाई जाती है। लेकिन तथ्य यह है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल देश में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।" एल० एस० एमरी मन्त्रिमण्डल को "सरकार का केन्द्रीय संचालन-यंत्र" कहता है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य (Functions of Cabinet)—इंगलिश मन्त्रिमण्डल बेशुमार कार्य करता है। मन्त्रिमण्डल सरकार की नीति का फैसला करता है। एक बार नीति तय होने के बाद उसको कार्यान्वित करने के लिए विधेयकों का मसविदा बनाया जाता है। स्थायी रूप से, मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य संसद् में विधेयक का इंचार्ज होता है। क्योंकि मन्त्रिमण्डल को लोकसभा का विश्वास प्राप्त होता है, इसलिए उसके द्वारा पुरःस्थापित (Introduced) विधेयक का पारित (pass) होना अवश्यम्भावी है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल अपना निर्धारित कार्यक्रम पूर्ण करने में सफल होता है। एक बार विधेयक पारित हो जाने के पश्चात्, मन्त्रिमण्डल विभिन्न विभागों द्वारा विधेयक की भावना के अनुसार कार्य करा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रणाली भिन्न है। हो सकता है कि अमेरिका का राष्ट्रपति किसी

नीति को अच्छा समझे, लेकिन वह उसके पालन करने में असफल रह सकता है; क्योंकि कांग्रेस उन कानूनों को पारित करना अस्वीकार कर सकती है, जिसके द्वारा राष्ट्रपति अपनी नीति को कार्यरूप दे सकने की क्षमता रखता है। इंगलैंड में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली कार्यपालिका तथा विधायिका में सहयोग स्थापित करती है। इस प्रकार सरकार के मार्ग से बाधाओं को हटाकर यह उसे साफ कर देती है। मन्त्रिमण्डल को विश्वास रहता है कि इच्छित कानून संसद् में अवश्य पारित हो जायेगा।

मन्त्रिमण्डल देश की विदेश-नीति को निश्चित करता है। वह युद्ध और शान्ति के प्रश्नों का निर्णय करता है। वह विदेशों से संधि-वार्ता करता है। वह निश्चित करता है कि संसद् का अधिवेशन किस समय हो और कब लोकसभा को भंग किया जाए। मन्त्रिमण्डल संसद् का समय-विभाग निश्चित करता है और व्यावहारिक रूप में उसका उसके समय पर एकाधिकार रहता है।

सन् १९१८ की शासन-तन्त्रीय समिति (Machinery of Government Committee) की रिपोर्ट मे मन्त्रिमण्डल के निम्न प्रमुख कार्य गिनाए गए थे—

१. संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम निश्चय।

२. संसद् द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यपालिका का पूर्ण नियन्त्रण।

३. राज्य के विभिन्न विभागों के कार्यों को समन्वित करना तथा उनकी सीमा निर्धारित करना।

लॉर्ड ऑक्सफोर्ड तथा एसक्विथ के अनुसार साधारणतः मन्त्रिमण्डल में निम्न विषयों पर विचार नहीं होता—

१. दया के परमाधिकार (prerogative of mercy) का प्रयोग।

२. मन्त्रिमण्डल के सदस्य कौन हों (personnel of the cabinet)।

३. नियुक्तियाँ करना।

मन्त्रिमण्डल की तानाशाही (Cabinet Dictatorship)—उन्नीसवीं शताब्दी में राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थी संसदीय प्रभुता का निर्देशन करते थे, पर आज २०वीं शताब्दी में हम मन्त्रिमण्डल की तानाशाही की चर्चा करते है। मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बनाने में कई घटनाओं ने योग दिया है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की स्थिति इतनी दृढ हो गई है कि हम आज उसका उल्लेख मन्त्रिमण्डल की तानाशाही के रूप मे करते हैं। रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) के अनुसार, "जिस निकाय (body) के पास इतनी शक्तियाँ है, उसे सरलता से सर्वशक्तिमान कहा जा सकता है, चाहे वह उस सर्वशक्तिमत्ता को व्यवहार में लाने में असमर्थ ही क्यों न हो। जब बहुमत इसकी ओर है तब इसकी स्थिति एक तानाशाही की स्थिति है, पर यह तानाशाही प्रचार से मर्यादित हो सकती है। दो पीढ़ियाँ पहले यह डिक्टेटरशिप इतनी शक्तिशाली (absolute) नहीं थी जितनी कि यह अब है।"

(१) मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बनाने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दलगत अनुशासन (party discipline) की बढ़ती हुई कठोरता ने किया है। उन्नीसवीं

मन्त्रिमण्डल का महत्त्व (Importance of the Cabinet)—ग्लैडस्टोन के अनुसार, मन्त्रिमण्डल एक ऐसी कड़ी है, जो ब्रिटिश संविधान में राजा या रानी, लार्ड्स और कामन्स को कार्य करने के लिए जोड़ती है। एक मज़बूत बफरस्प्रिङ्ग (buffer spring) के समान यह सारे धक्कों को बरदाश्त करती है, और इसके अन्दर परस्पर-विरोधी तत्त्व एक-दूसरे को व्यर्थ कर देते हैं। यह अपनी गरिमा के कारण नहीं, बल्कि अपनी सूक्ष्मता, लचीलेपन और अपनी बहुमुखी शक्तियों के कारण आधुनिक काल के राजनैतिक विश्व की शायद सबसे अधिक आश्चर्यजनक रचना है। इसका जीवन और कार्य मानसिक समझौते (understanding) के आधार पर चलता है, इस के तथा राजा या संसद् या राष्ट्र के, सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध, या इसके प्रधान से उनके सम्बन्ध को नियत करने के लिए विधान में एक वाक्य भी नहीं लिखा हुआ।" प्रो० डायसी (Prof. Dicey) के अनुसार, "यद्यपि राज्य का सारा कार्य क्राउन (ताज) के नाम से किया जाता है, फिर भी इंगलैंड की वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिमण्डल है। कोई भी यह कल्पना नहीं करता कि कोई क्षेत्र, चाहे वह कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो, ऐसा है, जिस पर संविधान के अनुसार रानी की व्यक्तिगत इच्छा का काफी गहरा प्रभाव पड़ता है।"

बेजहाट (Bagehot) के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल व्यवस्थापिका और विधायिका को जोड़ने में समासक (hyphen) और बकसुए का-सा काम करता है। लॉवेल (Lowell) के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल राजनैतिक महराब का शीर्षस्थ पत्थर (the keystone of the political arch) है।" सर जॉन मरियट (Marriott) इसका उल्लेख एक धुरी की भाँति करते है जिसके चारों ओर समस्त राजनीतिक यंत्र (political machinery) चक्कर काटता है। यह सत्य है कि ग्लैडस्टोन लोकसभा को 'सूर्य' के रूप में वर्णन करता है जिसके चारों ओर अन्य ग्रह चक्कर काटते हैं, और सिडनी तथा वैट्राइस वैब इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि "वास्तव में ग्रेट ब्रिटेन की सरकार न तो मन्त्रिमण्डल द्वारा चलाई जाती है, और न मन्त्रियों द्वारा (व्यक्तिगत रूप में), बल्कि प्रशासनिक सेवाओं (civil services), द्वारा चलाई जाती है। लेकिन तथ्य यह है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल देश में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।" एल० एस० एमरी मन्त्रिमण्डल को "सरकार का केन्द्रीय संचालन-यंत्र" कहता है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य (Functions of Cabinet)—इंगलिश मन्त्रिमण्डल बेशुमार कार्य करता है। मन्त्रिमण्डल सरकार की नीति का फैसला करता है। एक बार नीति तय होने के बाद उसको कार्यान्वित करने के लिए विधेयकों का मसविदा बनाया जाता है। स्थायी रूप से, मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य संसद् में विधेयक का इंचार्ज होता है। क्योंकि मन्त्रिमण्डल को लोकसभा का विश्वास प्राप्त होता है, इसलिए उसके द्वारा पुरःस्थापित (Introduced) विधेयक का पारित (pass) होना अवश्यम्भावी है। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल अपना निर्धारित कार्यक्रम पूर्ण करने में सफल होता है। एक बार विधेयक पारित हो जाने के पश्चात्, मन्त्रिमण्डल विभिन्न विभागों द्वारा विधेयक की भावना के अनुसार कार्य करा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रणाली भिन्न है। हो सकता है कि अमेरिका का राष्ट्रपति किसी

नीति को अच्छा समझे, लेकिन वह उसके पालन करने में असफल रह सकता है, क्योंकि कांग्रेस उन कानूनों को पारित करना अस्वीकार कर सकती है, जिसके द्वारा राष्ट्रपति अपनी नीति को कार्यरूप दे सकने की क्षमता रखता है। इगलैंड में मन्त्रिमण्डलीय प्रणाली कार्यपालिका तथा विधायिका मे सहयोग स्थापित करती है। इस प्रकार सरकार के मार्ग से बाधाओं को हटाकर यह उसे साफ कर देती है। मन्त्रिमण्डल को विश्वास रहता है कि इच्छित कानून संसद् में अवश्य पारित हो जायेगा।

मन्त्रिमण्डल देश की विदेश-नीति को निश्चित करता है। वह युद्ध और शान्ति के प्रश्नों का निर्णय करता है। वह विदेशों से संधि-वार्ता करता है। वह निश्चित करता है कि संसद् का अधिवेशन किस समय हो और कब लोकसभा को भंग किया जाए। मन्त्रिमण्डल संसद् का समय-विभाग निश्चित करता है और व्यावहारिक रूप में उसका उसके समय पर एकाधिकार रहता है।

सन् १९१८ की शासन-तन्त्रीय समिति (Machinery of Government Committee) की रिपोर्ट मे मन्त्रिमण्डल के निम्न प्रमुख कार्य गिनाए गए थे—

१. संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की जाने वाली नीति का अन्तिम निश्चय।

२. संसद् द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार राष्ट्रीय कार्यपालिका का पूर्ण नियन्त्रण।

३. राज्य के विभिन्न विभागों के कार्यों को समन्वित करना तथा उनकी सीमा निर्धारित करना।

लॉर्ड ऑक्सफोर्ड तथा एसक्विथ के अनुसार साधारणतः मन्त्रिमण्डल मे निम्न विषयों पर विचार नहीं होता—

१. दया के परमाधिकार (prerogative of mercy) का प्रयोग।

२. मन्त्रिमण्डल के सदस्य कौन हों (personnel of the cabinet)।

३. नियुक्तियाँ करना।

मन्त्रिमण्डल की तानाशाही (Cabinet Dictatorship)—उन्नीसवीं शताब्दी में राजनीति-शास्त्र के विद्यार्थी संसदीय प्रभुता का निर्देशन करते थे, पर आज २०वीं शताब्दी में हम मन्त्रिमण्डल की तानाशाही की चर्चा करते है। मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बनाने में कई घटनाओं ने योग दिया है। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की स्थिति इतनी दृढ हो गई है कि हम आज उसका उल्लेख मन्त्रिमण्डल की तानाशाही के रूप में करते हैं। रैम्जे म्योर (Ramsay Muir) के अनुसार, "जिस निकाय (body) के पास इतनी शक्तियाँ हैं, उसे सरलता से सर्वशक्तिमान कहा जा सकता है, चाहे वह उस सर्वशक्तिमत्ता को व्यवहार में लाने में असमर्थ ही क्यों न हो। जब बहुमत इसकी ओर है तब इसकी स्थिति एक तानाशाही की स्थिति है, पर यह तानाशाही प्रचार से मर्यादित हो सकती है। दो पीढ़ियाँ पहले यह डिक्टेटरशिप इतनी शक्तिशाली (absolute) नहीं थी जितनी कि यह अब है।"

(१) मन्त्रिमण्डल को शक्तिशाली बनाने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान दलगत अनुशासन (party discipline) की बढ़ती हुई कठोरता ने किया है। उन्नीसवी

शताब्दी मे संसद के सदस्य आज की भांति इतने अधिक दलीय सचेतकों (party whips) के नियन्त्रण मे नही थे। आजकल सदस्य की अन्तरात्मा की पुकार को कोई स्थान प्राप्त नहीं। उसे वही करना पड़ता है जो पार्टी निश्चित करती है। यदि वह दलीय सचेतक (whip) को नही मानता, तो उसको दल मे बहिष्कृत किया जा सकता है। पार्टी-प्रथा इंगलैंड के राजनैतिक जीवन का अंग बन गई है और अब उसके बिना कार्य-सम्पादन करना कठिन है। मतदाता उस व्यक्ति को मत नही देते जिसका किसी दल मे सम्बन्ध न हो। परिणाम यह है कि यदि कोई सदस्य पार्टी के आदेश को मानने से इन्कार करता है तो वह अपनी राजनैतिक आत्म-हत्या (political suicide) करता है। उसके राजनैतिक जीवन का अन्त होना अवश्यम्भावी है। इन परिस्थितियों मे संसद् का प्रत्येक सदस्य अपना मार्ग स्वयं चुनने और उसके कुपरिणामो को भुगतने की अपेक्षा अपनी पार्टी के आदेश का पालन करना श्रेयस्कर समझता है। इन सबका परिणाम यह है कि मन्त्रिमण्डल को अपने दल के सदस्यो के समर्थन का विश्वास होता है और इसलिए उसे अपनी मर्जी के मुताबिक काम करने को प्रोत्साहन मिलता है।

इंगलैंड मे पार्टी-प्रणाली की कठोरता का वर्णन प्रो० लास्की ने इन शब्दों में किया है, "यह कठोरता स्वयं लोकसभा मे प्रतिबिम्बित होती है। इसका यह तात्पर्य है कि सामान्य परिस्थिति मे भाषण तथा मत-विभाजन बिना हेर-फेर के होते है। हम सामान्य सदस्यों मे स्वतन्त्र भाषण अथवा मतदान की आशा नही करते। जिस प्रकार की अलग-अलग विरोधी विचारधाराएं सन् १८४४ मे लार्ड गॉडसमग्री के फैक्टरी-विधेयक पर, अथवा पामर्स्टन की विदेश-नीति पर सन् १८५० मे डॉन पैसिफिको (Don Pacifico) पर विचार करते समय देखी गई थीं, उस प्रकार की विचारधाराएँ अब असम्भव हो गई है, जब सरकार अपने दल के सदस्यों को स्वतन्त्र मत देने की आज्ञा दे देती है तब ऐसे दृश्य बहुत ही कम संख्या मे देखने को मिलते है। वास्तव में, कठोरता का अर्थ है लोकसभा पर मन्त्रिमण्डल के नियन्त्रण मे बढोतरी और उस नियन्त्रण का रहस्य इस तथ्य में है कि सरकारी तथा विरोधी दल के नेताओ का अपने समर्थकों की गतिविधियों पर, पार्टी-तन्त्र (party machine) पर प्रभुत्व होने के कारण, पूर्ण नियन्त्रण रहता है। स्वतन्त्र सदस्य का युग समाप्त हो गया है और उसके पुनरुज्जीवन की भी कोई आशा नही है।

इस बढी हुई कठोरता के कारण भी साधारण नहीं है। इसका आंशिक कारण सचमुच, यह तथ्य है कि आधुनिक ब्रिटेन के बहुत-से निर्वाचकों को एक विस्तृत दलीय संगठन की आवश्यकता है; स्वभावतः इससे इसकी शक्ति भी बडी है। दूसरे राज्य के हस्तक्षेप (state intervention) का क्षेत्र विस्तृत होने का स्वाभाविक परिणाम संसद् मे, सरकारी कार्य का बढ जाना है, उस कार्य को निर्धारित अवधि मे समाप्त करने के लिए अधिक दृढ दलीय संगठन की आवश्यकता है। शायद आंशिक कारण यह भी है कि आधुनिक युग के निर्वाचकों ने भी व्यक्तियों के विषय मे कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है; वे सदस्यो को उन नेताओं के नाम पर मत देते है जिनके वे अनुयायी है। सम्पूर्ण पार्टी-व्यवस्था आवश्यक रूप मे व्यावसायिक (professionalized) हो गई है और उसके कार्यो का क्षेत्र विस्तृत होने के कारण वह ऐसे अनुशासन का

सहारा लेती है जो सैन्य-अनुशासन से भिन्न नही। उसकी तीव्रता का विरोध किया जा सकता है, विद्रोह भी किया जा सकता है। लेकिन पार्टी के अधिकाश सदस्यों की यह मान्यता है कि उससे पृथक् होने का तात्पर्य केवल अपनी ही हानि नही है, प्रत्युत् यदि विरोध अधिक हो तो इससे विरोधी दल की शक्ति बढ़ने और सफल होने की अधिक सम्भावना रहती है। अतएव पार्टी से विद्रोह की घटनाएँ बहुत बुरी परिस्थितियों में ही घटित होती है। सन् १९३१ में भी, श्रम-दल के केवल १६ सदस्यो ने रैम्ज़े मैक्डोनल्ड का साथ देते समय अपनी पार्टी को छोड़ा था।"

(२) मन्त्रिमण्डल की तानाशाही का एक अन्य कारण मन्त्रियो का सामूहिक दायित्व है। इंगलैंड में प्रत्येक मन्त्री यह जानता है कि एक मन्त्री की पराजय का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल का पतन है। परिणाम यह होता है कि सब मन्त्री 'दल की भावना' (team spirit) से कार्य करते है और सब अवसरो पर एक-दूसरे की सहायता करते है। संगठन मे शक्ति होती है और यदि सामूहिक दायित्व के कारण मन्त्रियों की स्थिति अधिक दृढ़ हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। फ्रांस में इस तत्त्व का अभाव ही उस देश में मन्त्रिमण्डलों की अस्थिरता का आशिक कारण है।

(३) कुछ कानून बनाने की शक्ति सौंप देना (delegated legislation) भी मन्त्रिमण्डल की तानाशाही को बढ़ाने में आशिक रूप से उत्तरदायी है। इस प्रथा के कितने ही गुण-दोष क्यो न हों, वर्तमान परिस्थितियो में यह आवश्यक बन गई है। *कानून की बारीकियाँ बढ गई है और उसकी गुत्थियो को समझना ससद् के सामान्य* सदस्यों की सामर्थ्य के परे है। इसके अतिरिक्त, ससद् कार्य-भार से दबी रहती है। संसद् को प्रत्येक अधिवेशन में अनेक कानून पारित करने पड़ते है। इसका आंशिक कारण यह है कि राज्य की अवधारणा(conception)में परिवर्तन हो गया है। पहले यह विचार था कि राज्य एक बुराई है और इसलिए राज्य का क्षेत्र न्यूनतम होना चाहिए। आज इस विचार का बोलबाला नहीं है। आज हम राज्य को लाभप्रद समझते हैं। *हमारा लक्ष्य आरक्षी-राज्य (Police State) के स्थान पर कल्याणकारी* राज्य है। परिणाम यह है कि राज्य की गतिविधियों का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत हो गया है। कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बड़ी सख्या में कानून पारित करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक विधेयक का आकार अत्यधिक बढ गया है। पहले, विधेयक छोटे-छोटे हुआ करते थे किन्तु अब प्रत्येक विधेयक अधिक बडा हो गया है। इन समस्त कारणों से ससद् का कार्य-भार अधिक बढ गया है। यह सारा कार्य पूर्णरूप से सम्पादित नहीं किया जा सकता, क्योंकि समय कम होता है। परिणाम यह है कि संसद् में संक्षिप्त रूप मे विधेयक (skeleton bills) पुर:स्थापित (introduce) किये जाते है और पारित होते है। मन्त्रियो को सपरिषद् आदेशों (Orders-in-Council) का आवश्यकतानुसार कानूनों को पूरा करने के लिए, निर्गमन करने की शक्ति दे दी जाती है, इसका तात्पर्य यह है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों को कानून बनाने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। वर्ष में स-परिषद् आदेशों की संख्या अत्यधिक होती है। इस तरह और विधायी क्षेत्र पर भी मन्त्रिमण्डल का

कुल नियन्त्रण हो गया है । इस प्रकार से मन्त्रिमण्डल का केवल प्रशासनिक क्षेत्र पर ही नहीं, प्रत्युत् विधायी क्षेत्र पर भी नियन्त्रण है ।

(४) प्रशासकीय न्याय (administrative justice) के विकास ने भी मन्त्रिमण्डल की शक्ति में वृद्धि की है । सरकार की यह प्रवृत्ति है कि वह विभिन्न मन्त्रालयों को उनके विभागों से सम्बन्धित अभियोगों का निर्णय करने की शक्ति दे देती है । पहले इस प्रकार के अभियोगों का निर्णय कानूनी न्यायालय किया करते थे । परिणाम यह है कि कार्यपालिका को अनेक न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हो गई हैं । निस्सन्देह इससे मन्त्रिमण्डल की शक्ति तथा सम्मान बढ़ा है । सन् १९१३ के मार्ग यातायात अधिनियम (Road Traffic Act) के अन्तर्गत यातायात-मन्त्री को किराए की मोटर-गाड़ियाँ (omnibuses) चलाने के लाइसेन्सों की अस्वीकृति (refusal) की अपीलें सुनने का अधिकार है । इसी प्रकार स्वास्थ्य-मन्त्री सन् १९३६ के बुढ़ापे की पेंशन अधिनियम (Old Age Pension Act) के अन्तर्गत अपीलीय न्यायालय है । Local Govt. Board V. Arlidge में लॉर्ड सभा ने निश्चित किया है कि प्रशासकीय न्यायाधिकरण को कानूनी न्यायालय की कार्यविधि का पालन करने की आवश्यकता नहीं है । प्रशासकीय अधिकारी उस विधि का पालन कर सकते हैं जिससे उनका कार्य सधे । किसी विशेष उपबन्ध (Provision) के अभाव में मन्त्री या ट्रिब्युनल अपने निर्णय का कारण देने के लिए बाध्य नहीं है किन्तु वह प्राकृतिक न्याय (natural justice) के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य है ।

(५) एक अन्य कारण, जिसने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की शक्ति को बढ़ाया है, वह भंग करने की शक्ति (Power of dissolution) है । इंगलैंड की एक निरूढ़ि यह है कि जब कोई मन्त्रिमण्डल लोकसभा में पराजित हो जाता है, तब उसे तुरन्त पद त्यागने की आवश्यकता नहीं । जब ऐसी स्थिति आती है तब प्रधानमन्त्री राजा से लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है । जब ऐसी प्रार्थना की जाती है, तब राजा लोकसभा को भंग कर देता है । यदि नवीन निर्वाचनों में मन्त्रिमण्डल को बहुमत प्राप्त हो जाता है, तो उसे पद त्यागने की आवश्यकता नहीं होती । इस निरूढ़ि का फल यह है कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल फ्रांसीसी मन्त्रिमण्डल की भाँति लाचार नहीं है । यदि लोकसभा के सदस्यों को मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करने का अधिकार है तो मन्त्रिमण्डल भी लोकसभा को भंग कराकर सदस्यों को उनके घर भेज सकता है । परिणाम यह है कि संसद् के सदस्य सत्ताधारी दल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव बिना सोचे-समझे पारित नहीं करते । वे ऐसी कार्रवाई के परिणाम को जानते हैं । हो सकता है कि नवीन निर्वाचनों में उनमें से अनेक पुनर्निर्वाचित न हों । उनमें से प्रत्येक को पर्याप्त धन व्यय करना पड़ता है और पुनर्निर्वाचित होने के लिए अत्यधिक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं । परिणाम यह है कि भंग करने की शक्ति से मन्त्रिमण्डल की स्थिति दृढ़ होती है और विरोधी दल पर लगाम लगी रहती है ।

डा० फाईनर (Finer) ने भंग करने की धमकी की शक्ति का वर्णन इन शब्दों में किया है, "लोकसभा का कुछ रचनात्मक उत्साह मन्त्रिमण्डल द्वारा भंग करने की धमकी से नष्ट हो जाता है, यदि वह उस विषय पर तुला है जिसे वह आवश्यक समझता है ।

इस बात को आजकल अत्यधिक बढ़ाकर कहा जाता है। लोग इस तरह बातें करते है जैसे मन्त्रिमण्डल यह कहा ही करता हो कि वह अमुक बात होने पर सदन को भग करा देगा जिससे सदस्य मानो केवल निर्वाचन-व्यय के विचार से विवश हो जाएँगे। ऐसी बात नहीं है। यह कार्य अत्यधिक गम्भीर है और कभी-कभी बिना चाहे किया जाता है। इसकी प्रक्रिया यह है—जब मन्त्रिमण्डल किसी विषय को महत्त्वपूर्ण घोषित करता है और प्रबल सचेतक जारी करता है तब केवल उसके अड़ियल ही सोचने के लिए विवश नही होते, प्रत्युत् सरकार-विरोधी दल को भी गम्भीरता से विचार करना पडता है कि क्या वास्तव में उस विषय पर चुनाव लडा जा सकता है, और क्या वह सरकार बनाने मे सफल होगा। स्पष्ट शब्दो मे, यदि राजनैतिक अवस्था उनके अनुकूल नहीं होती तो पूर्णतः अथवा अशत. उसके विचार को स्वीकार कर लेते हैं। संक्षेप मे, प्रत्येक विषय का निर्णय नीति की अच्छाई अथवा बुराई की दृष्टि से नही किया जाता, बल्कि इस बात पर किया जाता है कि क्या केवल उक्त विषय पर विरोधी दल देश का सहयोग प्राप्त कर सकता है, और यह (क) विषय की प्रकृति, (ख) देश मे राजनीतिक विचार की सामान्य दशा, और (ग) आने वाले चुनावों में पार्टी की आर्थिक दशा तथा संगठन पर निर्भर करता है। लेकिन ये समस्याएँ उस समय नही उपस्थित होतीं जब विरोधी दल का अल्पमत हो (जो गत दो शताब्दियों में अवश्य रहा है), या जब सरकारी पार्टी मे फूट न हो (फूट के अवसर भी बहुत कम होते हैं)। अतएव विरोधी दल सरकारी नीति को उतना ही प्रभावित कर पाता है, जितना कि उसकी तार्किक बुद्धि (debating talent), उसकी दलीलें और चुनाव-सम्बन्धी अवसरों की अनुकूल गणना का संयुक्त रूप से प्रभाव पड़ सकता है।"

(६) संसदीय जीवन की स्थिति ऐसी नहीं है जिससे लोकसभा मन्त्रिमण्डल पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण रख सके। लार्ड रोजबेरी (Lord Rosebery) का कथन है कि वर्ष में छः महीने तो मन्त्रिमण्डल से कोई हिसाब-किताब पूछा ही नहीं जा सकता। उनका कहना है कि संसद् के सारे अवकाश-काल मे, हमें जरा भी यह पता नहीं रहता कि हमारे शासक क्या कर रहे है, कैसी योजना बना रहे हैं या कैसे समझौते कर रहे हैं। समाचारपत्रों मे जो छान-बीन होती रहती है, उसी से थोड़ी-बहुत बातें प्रकाश में आती रहती है।" उन लोगों के लिए, जो सार्वजनिक कार्यों की ओर कभी-कभी ध्यान देते हों, सार्वजनिक कार्यों को करने वाले व्यक्तियों पर निरीक्षण रखना कठिन है। सिडनी लो के अनुसार, "लोकसभा के सदस्य विभिन्न प्रकार से व्यस्त रहते हैं। लन्दन के छोटे से अधिवेशन में उनकी रुचि की बहुत सी चीजें रहती हैं। [illegible] उनकी इच्छा उचित रूप से राजनीतिक कार्य करने की होती है, फिर भी [illegible] उनके विरुद्ध होती है। आधा सदन कार्यालय में व्यस्त रहता है और [illegible] प्रमोद में। जब अधिवेशन चलता जाता है और मौसम गरम होता जाता है [illegible] का समाज गर्मियों के मनोरञ्जन की बाढ़ में डूब जाता है, तब बहुत [illegible] लिए अपने संसदीय कर्तव्यों को पूरा करना कठिन हो जाता है। [illegible] संसदीय प्रणाली से मन्त्रिमण्डल निरंकुश होने लगता है। [illegible] "यह वह निरंकुशता है जिसे [illegible]

सदा आलोचना की कसौटी पर कसी रहती है और जनमत के अनुसार ढलती रहती है और जिसे अविश्वास के प्रस्ताव और अगले चुनाव का खतरा सदा बना रहता है।"

आलोचकों का कहना है कि यह कहना ठीक नहीं है कि जिस सरकार का बहुमत पर कब्जा हो वह अस्थायी तानाशाही में परिवर्तित हो जाती है। सरकार की सत्ता बहुमत के विश्वास पर, और बहुमत जनता का सहायता पर टिकता है। यदि कैबिनेट बहुत कुछ छिपा कर कार्य करे, घोर अभद्रता प्रदर्शित करे, भंग करने और गोपनीयता देने की निरंतर धमकियाँ दे, या जनमत के क्रोध को शान्त करने में असमर्थ रहे, तब इसके समर्थक इसके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे। प्रधान मन्त्री को कार्लाइल (Carlyle) के स्वर में स्वर मिलाकर कहना पड़ता है कि "मैं उनका नेता हूँ, इसलिए मुझे उनका अनुसरण करना पड़ता है।" प्रधान मन्त्री और उसके साथियों का यह कर्त्तव्य है कि वे यह पता चलाएँ कि उनके समर्थकों के मस्तिष्क किस दशा में काम कर रहे हैं और फिर वे उनकी इच्छा के अनुसार काम करें, चाहे ऐसा करने में सरकारी नीति में परिवर्तन ही क्यों न करना पड़े, अन्यथा इसके परिणाम बहुत गम्भीर होते हैं। १६३१ में लोकसभा में लेबर पार्टी के २८८ सदस्य थे, अनुदार दल (Conservative Party) के २६० और उदार दल (Liberal Party) के ५६ सदस्य थे। लेबर पार्टी के नेता श्री रैम्जे मैकडोनल्ड, इंगलैंड के प्रधान मन्त्री थे। मन्त्रिमण्डल के दो सदस्यों, श्री स्नोडन (Snowden) और श्री टामस (Thomas) ने, बेकारी सहायता (unemployment benefit) में कमी करने का प्रस्ताव रखा, लेकिन ट्रेड यूनियन अधिकारियों ने उसे अस्वीकृत कर दिया। फलस्वरूप श्री हैंडरसन (Henderson) के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल के एक पक्ष ने, श्री रैम्जे मैकडोनल्ड के नेतृत्व के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। लेबर पार्टी में फूट पड़ गयी और रैम्जे मैकडोनल्ड को त्यागपत्र देना पड़ा। १६३४ में रैम्जे मैकडोनल्ड के नेतृत्व में राष्ट्रीय सरकार को असाधारण बहुमत प्राप्त था और इसके बावजूद भी उसे 'बेकारी सहायता अधिनियम' (Unemployment Assistance Regulations) के प्रश्न पर झुकना पड़ा था। इसी प्रकार सरकार को 'असन्तोष फैलाने वाले बिल' (Incitement to Disaffection Bill) में काफी सुधार स्वीकार करने पड़े थे, क्योंकि संसद् के विरोधी पक्ष ने जनता के विरोध को साथ मिला लिया था। दिसम्बर १६३५ में, सर सैमुयल होर (Sir Samuel Hoare) इंगलैंड का विदेश-मन्त्री था। अबीसीनिया के सवाल पर उसने फ्रांस के प्रधान मन्त्री लावेल (Laval) से बातचीत की। यह सूचना इंगलैंड और पेरिस के समाचारपत्रों तक पहुँच गयी और प्रकाशित हो गयी। प्रस्तावों के विरोध में तुरन्त स्वतः ही गहरा विरोध प्रकट किया जाने लगा। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को उसके प्रस्तावों को अस्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा और उसे त्यागपत्र देना पड़ा। त्यागपत्र देते समय सर सैमुअल होर ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया—"मुझे देश के बहुमत का विश्वास प्राप्त नहीं है और मैं यह महसूस करता हूँ कि विदेश मन्त्री को अन्य किसी मन्त्री की अपेक्षा अपने देशवासियों के समर्थन की अधिक आवश्यकता है।" १६३७ में श्री चेम्बरलेन को 'राष्ट्रीय सुरक्षा अंशदान योजना' (National ce Contribution Scheme) के प्रश्न पर झुकना पड़ा था। डा० फाईनर

(Dr. Finer)के अनुसार, "संक्षेप में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल-प्रणाली से चुस्त, शक्तिशाली, विचारशील और उत्तरदायी नेतृत्व का जन्म होता है। यह नेतृत्व इस पर नियन्त्रण तो रखता है, पर इसको कुन्द नहीं होने देता। इस पर धमकियाँ पड़ती है पर सजा नहीं मिलती, इससे प्रश्न किए जाते हैं पर अविश्वास नहीं फटकने दिया जाता। यह राजनीतिक दृष्टिकोण से पक्षपाती होता है, लेकिन इसमें व्यक्तिगत द्वेष नहीं होता। उत्तरदायित्व की शक्ति की भावना से भी यह उतना ही नियन्त्रित रहता है जितना कि अपनी संस्थाओं और समर्थकों में।"

इंगलैंड का प्रधानमन्त्री (Prime Minister of England)—प्रधानमन्त्री का पद 'हैनोवर' घराने के शासन-काल में एक निरूढि द्वारा बना था और वालपोल इंगलैंड का प्रथम प्रधानमन्त्री था। पहले प्रधानमन्त्री को प्रधानमन्त्री के नाते कोई वेतन नहीं मिलता था। किसी अन्य पद पर होने के नाते वह वेतन लेता था। किन्तु १९३७ के 'क्राउन के मन्त्री अधिनियम' (Ministers of the Crown Act) ने प्रधान मन्त्री का वार्षिक वेतन १०,००० पौंड निश्चित किया। भूतपूर्व प्रधान मन्त्री के लिए पेंशन की व्यवस्था भी की गई। इसका उद्देश्य यह है कि प्रधान मन्त्री के पद पर रहने के पश्चात् वह व्यक्ति देश की राजनीतिक गतिविधियों में रुचि लेता रहता है और उसे आर्थिक कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता।

निरूढि के अनुसार, सामान्य निर्वाचनों के समाप्त होने पर इंगलैंड के राजा का कर्त्तव्य है कि वह बहुमत दल के नेता को आमन्त्रित करे जो मन्त्रिमण्डल बनाता है। साधारणतः यह कार्य कठिन नहीं है, क्योंकि इंगलैंड में दो महत्त्वपूर्ण पार्टियाँ हैं, और इस प्रकार दोनों दलों में से एक का बहुमत होता है। इंगलैंड की परिस्थिति ऐसी है कि राजा अपने विवेक से कुछ नहीं कर पाता। कठिनाई उस समय पड़ सकती है जब तीन या तीन से अधिक दल हों। राजा उस दल के नेता को सरकार बनाने का निमन्त्रण देता है जिसका लोकसभा में बहुमत हो। उसकी पसन्द और नापसन्द का प्रश्न नहीं होता। यद्यपि महारानी विक्टोरिया ग्लैडस्टोन को पसन्द नहीं करती थी, तथापि रानी ने उसे चार अवसरों पर सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया।

पहले, प्रधान मन्त्री लोकसभा से अथवा लॉर्ड सभा से चुना जा सकता था। उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक प्रधान मन्त्री—लॉर्ड पामर्स्टन, लार्ड सालिसबरी आदि—सामन्त-सभा (House of Lords) से चुने गए थे। किन्तु एक नयी निरूढि के अनुसार प्रधान मन्त्री को लोकसभा का सदस्य होना चाहिए। इसी तथ्य के आधार पर १९२३ में लार्ड कर्ज़न को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित नहीं किया गया। इस निरूढि के पक्ष में कहा जाता है कि नवीन व्यवस्था के अनुसार लोकसभा को सम्पूर्ण शक्ति प्राप्त हो गई है; अतः प्रधान मन्त्री को उस सदन का सदस्य होना चाहिए, जो जनता का सदन (House of People) हो, और वह निस्सन्देह लोकसभा है।

अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि वे व्यक्ति, जो अन्त में प्रधान मन्त्री के पद पर पहुँचते हैं, बहुत छोटी आयु में संसद् के सदस्य बनते हैं। प्रधान मन्त्री बनने से

पूर्व उन्हे अनेक वर्षो तक ससद् का सदस्य रहना पड़ता है। प्रधान मन्त्री बनने वालों की आयु का औसत लगभग ५० है, यद्यपि कुछ अपवाद भी है। साधारणतः प्रधान-मन्त्रियों की आय के अनेक स्रोत होते है और इसीलिए उन्हें अपनी आजीविका की चिन्ता नही होती। मनरो के अनुसार, "ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री प्रायः कुलीन (well born), सुशिक्षित तथा धनवान् थे। उन्होने छोटी आयु में ही राजनीति में प्रवेश किया और उसे अपना व्यवसाय बना लिया। जब छोटे पिट से प्रधान मन्त्री के गुणों के विषय मे पूछा गया तो उसने उत्तर दिया, "प्रथम वक्तृत्व-शक्ति (eloquence), दूसरे ज्ञान, तीसरे परिश्रम और अन्त मे धैर्य।"

डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "इस प्रकार से प्रधान मन्त्री केवल लोकमत (public opinion) का अध्ययन करने वाला विद्यार्थी ही नही होता, प्रत्युत् प्रचार-कला का भी पंडित होता है। उसे यह जानना चाहिए कि क्या कहना है, इसे कब कहना है और कब कुछ नही कहना है। उसे समाचार-पत्रों को ध्यान से पढना चाहिए, लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि पत्रकारों या उनके स्वामियो के विचारों का जनमत पर कुछ प्रभाव पड़ सकता है तथापि उनसे वस्तु का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नही होता। उसे उन प्रतिवेदनों को भी पढना चाहिए जिनको पार्टी के प्रबन्धक निर्वाचन-क्षेत्रों से प्राप्त करते है तथा उन दृष्टिकोणो का मनन करना चाहिए जो उसके समर्थक ससद् की लाबियों में प्रकट करते है। और उसे इस तथ्य का प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए कि समिति के सदस्यो तथा दूसरे उन व्यक्तियो के विचार, जो वोटों को एकत्रित करते है, आवश्यक रूप से स्वयं वोटरों के विचार नही होते। क्योंकि उसके व्यक्तित्व एव सम्मान (personality and prestige) का जनमत को प्रभावित करने मे विशेष प्रभाव पड़ता है, इसलिए उसमे सिने-अभिनेताओ के समान जनता के मन को आकर्षित करने के लिए कुछ विशेष कौतुक होना चाहिए, और उसे अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए—जैसे पाइपों वाले श्री बाल्डविन और सिगारों वाले श्री चर्चिल। किन्तु उसे भाषणो का अच्छा आविष्कारक तथा कुशल वक्ता भी होना चाहिए। सम्भवतः इससे भी अधिक आवश्यक ध्वनि-विस्तारक (microphone) पर बोलने की विधि है, क्योंकि सभाओं की उपस्थिति कम होती है लेकिन उसके रेडियो-भाषणों को सुनने वालों की संख्या लाखों तक पहुँचती है। और अन्त में यह आवश्यक है कि वह अपने राजनीतिक मित्रों की निष्ठा (loyalties) को बनाए रखे और ऐसा करने मे उसे इस बात से बहुत सहायता मिलती है कि वह उनके नाम याद रखे, उनके परिवारों के विषय में ठीक-ठीक प्रश्न करे, उनके साथ ठीक अवसरों पर सहानुभूति प्रकट करने और उन्हें बधाई देने में पीछे न रहे, और साधारणतः अच्छा मिलनसार हो, पर अपना बड़प्पन ठीक मात्रा में कायम रखे (Cabinet Government, pp. 160-61.)।

प्रधानमन्त्री को मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का चुनाव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित कर सकता है और राजा उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। किन्तु कई ऐसे घटक (factors) है , विचार उसे अपने सहयोगियों को चुनते समय करना पड़ता है। उसे

अपने मन्त्रिमण्डल को इतना विस्तृत प्रातिनिधिक (representative) बनाना पडता है जितना सम्भव हो। वह क्षेत्रीय (sectional), सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा व्यक्तिगत (Personal) महत्त्व की अवहेलना नहीं कर सकता। वह अपने मन्त्रिमण्डल में केवल अंग्रेजों या स्काटलैंड के निवासियों अथवा वेल्स-निवासियों को ही सम्मिलित नही कर सकता, उसे देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारो का ध्यान रखना पडता है। पार्टी के कुछ अत्यन्त आवश्यक व्यक्ति होते हैं और प्रधानमन्त्री साधारणतया उनकी भी अवहेलना नही कर सकता। उनको मन्त्रिमण्डल का अग बनाने से मन्त्रिमण्डल की शक्ति बढती है। यह सत्य है कि प्रधानमन्त्री को उन्हे नियन्त्रित करने मे असुविधा होती है लेकिन वे मन्त्रिमण्डल मे रहते हुए बाहर रहने की अपेक्षा कम कठिनाइयाँ उपस्थित करते है।

साधारणत. प्रधानमन्त्री विभिन्न मन्त्रियो को विभिन्न विभागो का कार्य सौंप सकता है और ऐसा करते समय वह प्रशासन की निपुणता का ध्यान रखता है। किन्तु कभी-कभी उसके हाथ बँधे होते हैं और उसे किसी विशेष व्यक्ति को किसी विशेष पद पर नियुक्त करना पडता है। यह कहा जाता है कि रैम्जे मैकडोनल्ड विदेश-विभाग अपने पास रखना चाहता था, लेकिन पार्टी के एक प्रमुख सदस्य हैंडरसन ने उस विभाग को लेने का हठ किया, तब रैम्जे मैकडोनल्ड को विवश होकर उसे उस पद पर ही नियुक्त करना पड़ा। किन्तु सदा ऐसी घटना की पुनरावृत्ति नही होती। दल का नेता होने के कारण प्रधानमन्त्री का यह कर्तव्य है कि कार्य विभाजित करते समय विभिन्न व्यक्तियों की रुचि का ध्यान रखे, किन्तु उसके सहयोगियों को भी उसकी इच्छाओ का आदर करना चाहिए।

पहले प्रधान मन्त्री अपने पद के कार्य के अतिरिक्त भी अन्य विभागों को अपने पास रख सकता था। किन्तु ऐसा प्रकट होता है कि वह स्थिति अब कभी भविष्य मे आने वाली नही है। कारण स्पष्ट है; क्योंकि प्रधानमन्त्री के कर्त्तव्य कई गुने बढ गए है। सरकार के विभिन्न विभागों के कार्य में समन्वय स्थापित करने का कार्य ही इतना अधिक होता है कि अन्य विभागो का कार्य सँभालने के लिए उसके पास न समय होता है और न शक्ति।

इगलैंड का प्रधान मन्त्री सदा कार्य मे लगा रहता है। उसके कन्धों पर समस्त कार्यों को सफलतापूर्वक पूरा करने का दायित्व है। उसको यह देखना पड़ता है कि प्रत्येक मन्त्रालय अपना कार्य ठीक रीति से करे। प्रत्येक मन्त्री उसे किसी भी समय मिलकर अपनी कठिनाइयाँ समझा सकता है। उसका कर्त्तव्य है कि वह विभिन्न मन्त्रालयो के मतभेदों को समाप्त कराये। वह ससद् में प्रत्येक मन्त्री की सहायता करता है। उसे किसी विभाग के कार्य के सम्बन्ध मे ससद् को सन्तुष्ट करना पड सकता है। वह अपने सहयोगियों (colleagues) के परामर्श से सरकार की नीति निर्धारित करता है और इस बात का निरीक्षण करता है कि नीति का सच्चे अर्थों मे पालन किया जाता है या नही।

प्रधान मन्त्री के पास विदेश-विभाग नही होता, लेकिन यह सब बात होते हुए भी, उसका उस पर अत्यधिक प्रभाव होता है। देश की विदेश नीति के सम्बन्ध में

समस्त महत्वपूर्ण घोषणाएँ प्रधान मन्त्री ही करता है, न कि विदेश-मन्त्री। प्रायः विदेश-मन्त्री कोई कार्रवाई करने से पूर्व प्रधान मन्त्री से परामर्श करता है। यह सम्भव है कि विदेश-मन्त्री प्रधान मन्त्री की बिना स्वीकृति के कोई कार्य नहीं कर सकता चाहे उस प्रश्न पर मन्त्रिमण्डल ने विचार न किया हो। ३० जुलाई, १९१४ को सर एडवर्ड ग्रे ने प्रधान मन्त्री श्री एसक्विथ की अनुमति से एक तार भेज कर इगलैंड को तटस्थ रखना अस्वीकार किया था लेकिन उस पर मन्त्रिमण्डल ने पूर्ण निर्णय नहीं किया था। १९१४ में जर्मनी को अन्तिम चेतावनी (ultimatum) मन्त्रिमण्डल की पूर्व अनुमति के बिना केवल प्रधान मन्त्री के परामर्श से दी गई थी। डा० जैनिग्ज के अनुसार, "विदेश-मन्त्री और प्रधान मन्त्री का निकटतम सम्पर्क रहता है। प्रत्येक विषय को मन्त्रिमण्डल के सम्मुख लाना अव्यावहारिक है।" ग्लैडस्टोन ने १८९४ में सर विलियम हरकोर्ट को इस प्रकार लिखा था—" क्लेरेण्डन तथा ग्रैनविल के शासन-काल मे मुझे विदेश-मन्त्री के विचारो और कार्यों को गुप्त रखने वाला बना दिया गया था और इस हेतु यदि विभागीय कार्य किसी समय मन्त्रिमण्डल के सम्मुख लाना होता था तो साधारणतः संयुक्त समर्थन के साथ उसमें लाया जाता था।" बताया जाता है कि "लॉर्ड रोजबरी प्रायः प्रतिदिन प्रधान मन्त्री से मशवरा करता था, कभी वह पत्रों द्वारा सलाह लेता और बहुधा परामर्श लेने के लिए डाउनिंग स्ट्रीट चला आया करता था।"

प्रधान मन्त्री का प्रमुख कार्य आवश्यकता पड़ने पर परामर्श देना है। मन्त्रि-मण्डल के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने से बहुत पहले योजनाओं पर उसके साथ परामर्श किया जाता है। सर एडवर्ड ग्रे के अनुसार दो व्यक्ति हैं जिनसे मन्त्री अपने विचार तथा नीति के विषय मे वार्ता करता है : एक प्रमुख निजी सचिव (Chief Private Secretary), और दूसरा प्रधान मन्त्री।

प्रधान मन्त्री मन्त्रियों को नियुक्त ही नहीं करता, प्रत्युत् उन्हें पदच्युत भी करता है। उसके हाथ में बहुत सी नियुक्तियाँ (patronage) होती है। जब मन्त्री कोई महत्त्वपूर्ण नियुक्ति करते हैं तब वे प्रधान मन्त्री से परामर्श करते है। मन्त्री अपने विभागों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने के लिए निरन्तर उससे परामर्श करते रहते है। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है, जिनमे विभागो की नीति निर्धारित की जाती है। वह 'साम्राज्य प्रतिरक्षा समिति' (Committee of Imperial Defence) तथा 'आर्थिक परामर्शदात्री परिषद्' (Economic Advisory Council) के सदृश संस्थाएँ स्थापित करता है जिनके द्वारा विभागो का कार्य एक निश्चित नीति के अनुसार चलता है। वह प्रतिरक्षा समिति की अध्यक्षता करता है जो युद्ध-काल मे विभिन्न विभागों के कार्यों में समन्वय (co-ordination) करने के लिए योजनाएँ बनाती है। वह 'मन्त्रिमण्डल सचिवालय' (cabinet secretariat) का नियन्त्रण करता है और मन्त्री उससे उन विषयों पर वार्ता करते है जिनको मन्त्रिमण्डल की बैठक मे लाना होता है। वह इस बात का निरीक्षण करता है कि विभिन्न विभाग मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को कार्यान्वित करते

हैं या नहीं। सकट-काल में वह विभागों को उन विषयों पर कार्रवाई करने की शक्ति दे देता है जिन पर पहले मन्त्रिमण्डल में निर्णय होना चाहिए था।

प्रधान मन्त्री राजा और मन्त्रियों के बीच वार्ता की कड़ी है। कभी-कभी मन्त्री राजा से अपने विभागों से सम्बधित विषयों पर वार्ता करते हैं। इगलैंड के प्रधान मन्त्री का उपनिवेशो (Dominions) के प्रधान मन्त्रियों से सीधा सम्पर्क होता है और वह उनकी बैठकों की अध्यक्षता करता है। कभी-कभी वह राजदूतों का स्वागत करता है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में ब्रिटिश सरकार का प्रतिनिधित्व करता है। वह सामान्य राजनीतिक विषयों से सम्बन्धित प्रतिनिधि-मण्डलों (deputations) से बातचीत करता है।

प्रधान मन्त्री लोक सभा का नेता होता है। वह सदन का समय-विभाग तैयार करता है। वह संसद् के अधिवेशन का समय तथा अवधि निश्चित करता है। वह उसकी कार्य-सूची तैयार करता है। वह सरकारी कार्य और निजी कार्य का समय निर्धारित करता है। वह निर्णय करता है कि संसद् का पुनः अधिवेशन किस समय हो। वह अपनी संसदीय पार्टी का नेता होता है और उसे संसद् के सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करना होता है। वह केन्द्रीय पार्टी-कार्यालय का प्रभारी होता है और इसलिए राजनीतिक प्रचार में उसका भाग प्रमुख रहता है।

डा० फाईनर के अनुसार, "प्रधानमन्त्री की स्थिति इस बात से प्रकट होती है कि वह मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष, संसद् का नेता, सामान्य नीति से सम्बन्धित विषयों पर राजा से विचार-विनिमय की प्रमुख कड़ी, देश में पार्टी का सर्वमान्य नेता और सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति का मूर्तिमान रूप है।"

डा० फाईनर के अनुसार ही, "प्रधान मन्त्री सीज़र (Caesar) नहीं है, वह ऐसी दैवी शक्ति (oracle) नहीं है जिसे कुछ भी कहने का हक हो, उसके विचार अटल (dooms) नहीं हैं; वह सदा सतर्क रहता है और यह सोचता है कि क्या वह कोई निश्चित रूप से लाभदायक बात कर सकता है। किसी भी समय कोई व्यक्ति उसको हटाकर उस पद पर अपना अधिकार कर सकता है।"

डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "प्रधान मन्त्री बराबर वालों में प्रथम (*primus inter pares*) मात्र नहीं है।" हारकोर्ट (Harcourt) का कथन है कि "वह नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा (*inter stellas luna minores*) भी नहीं है। वह सूर्य के सदृश है जिसके चारों ओर ग्रह घूमते हैं, यद्यपि वह राजा द्वारा छाँटे जाने, अथवा अपने संसदीय सहयोगियों द्वारा निर्वाचित किए जाने पर पदारूढ़ होता है; यद्यपि उसको यह पद निर्वाचकों के बहुमत की इच्छानुसार ही प्राप्त होता है। साधारणतः कोई पार्टी सामान्य निर्वाचनों के पश्चात् पदारूढ़ होती है। सामान्य निर्वाचन में प्रथमतः प्रधान मन्त्री का ही निर्वाचन होता है। अनिश्चित मतदाता (Wavering voters), जो निर्वाचन का निर्णय करते हैं, न किसी पार्टी का समर्थन करते हैं और न किसी नीति की पुष्टि, वे तो केवल एक नेता का समर्थन करते हैं।" अंग्रेजी संविधान में प्रधान मन्त्री की स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और सब नई घटनाओं ने उसकी शक्ति में वृद्धि की है। मताधिकार के विस्तार ने इस पद के गौरव को, जिसे ग्लैंडस्टोन और डिजराइली ने प्रदान किया था, बढ़ा दिया है और उसे ऐसी स्थिति प्रदान की है, जिसकी तुलना संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की स्थिति से की जा सकती है। सामान्य निर्वाचन वास्तव में प्रधान मन्त्री का निर्वाचन होता है। निर्वाचकों को ग्लैडस्टोन और डिजराइली, सालिसबरी और रोज़बरी, बैलफोर और कैम्पबैल बैनरमैन, एस्क्विथ और बैलफोर, लायड जार्ज और एस्क्विथ, बाल्डविन और मैकडोनल्ड और हैंडरसन, चर्चिल और ऐटली में से एक को चुनना होता है।

१ १८५७ के चुनाव का जिक्र करते हुए ग्लैंडस्टोन ने इस प्रकार कहा, "यह १७८४ जैसा चुनाव नहीं है, जबकि पिट (Pitt) ने इस प्रश्न पर अपील की थी कि क्या क्राउन को एक छोटे गुट का गुलाम होना चाहिए; न यह १८३१ का चुनाव है जिसमें ग्रे (Grey) ने सुधारों पर निर्णय चाहा था; न यह १८५२ का चुनाव है *जिसमें संरक्षण (protection) सम्बन्धी विवाद प्रमुख प्रश्न था।* देश को केन्टन नदी के सम्बन्ध में निर्णय नहीं करना था, बल्कि यह निर्णय करना था कि वह पामर्स्टन को अपना प्रधान मन्त्री चुनेगा या नहीं।" १८८० के प्रसिद्ध मिडलोथियन (Midlothian) संघर्ष में ग्लैंडस्टोन ने लार्ड बेकन्सफील्ड (Lord Beaconsfield) के शासन की आलोचना की। मतदाताओं के सामने यह प्रश्न था कि वे ग्लैंडस्टोन और लार्ड बेकन्सफील्ड में से किसे चुनेंगे। १८८० में प्रधान मन्त्री पद के लिए चुना जाना ग्लैडस्टन की व्यक्तिगत विजय थी। १९४५ के चुनाव में चर्चिल ने मतदाताओं से व्यक्तिगत रूप से अपील की थी और अनुदार दल को उसकी लोकप्रियता का लाभ होने की पूरी-पूरी आशा थी। चर्चिल के सम्बन्ध में अनुदार दल वालों का नारा था, "उसे उसका काम पूरा करने दो।" अनुदार दल ने कोई चुनाव घोषणा-पत्र प्रकाशित नहीं किया। लेकिन चर्चिल ने अपना निजी घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था, जिसमें पहला शब्द "मैं" था। अनुदार दल के उम्मीदवारों ने स्वयं को 'चर्चिल के उम्मीदवार' कहकर घोषित किया। समाचारपत्रों ने 'चर्चिल या अव्यवस्था' या 'चर्चिल या लास्की' का नारा लगाया।

प्रो० लास्की ने इंगलैंड के प्रधान मन्त्री की स्थिति के विषय में कहा है कि, "प्रधान मन्त्री शासन-प्रणाली का केन्द्र है। साधारणतः वह केवल बहुमत का नेता और कार्यपालिका के उस भाग का प्रमुख ही नहीं होता जिसे, बैजहॉट ने 'दक्ष' भाग कहा है। विभागों के बीच मतभेद होने पर वही उनको दूर करता है। वह राजा की स्वीकृति से अपने किसी साथी से त्याग-पत्र माँग सकता है। क्राउन द्वारा की जाने वाली नियुक्ति मे उसका मत निर्णायक होता है। वह समस्त विभागो तथा विशेषकर विदेश-विभाग के कार्य का निरीक्षण करता है और नीति का समन्वय करता है। वह लोक-सभा का नेता होता है और विशेष कठिन परिस्थिति में, यदि अन्य मन्त्री संसद् को सन्तुष्ट नही कर पाते तो संसद् के सदस्य प्रधान मन्त्री से रक्षित शक्ति (reserve power) के नाते अपील करते हैं। इसके अतिरिक्त वह राजा और मन्त्रिमण्डल के बीच बातचीत की प्रमुख कडी है; और रानी विक्टोरिया के पत्र इस बात के साक्षी हैं कि यह कार्य ऐसा नही है जिसके लिए वेतन तो मिले, किन्तु कार्य कुछ न हो (sinecure); क्योंकि राजा ऐसा व्यक्ति है जो अपने कर्त्तव्य का गम्भीरता से पालन करता है।

"स्पष्ट है कि प्रधान मन्त्री का पद पदारूढ व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनुसार बदलता रहता है। श्री ग्लैडस्टोन के अधिकार को उसके किसी सहयोगी ने चुनौती नही दी; सर माइकेल हिक्स बीच के कथनानुसार 'लॉर्ड सालिसबरी अपने सहयोगियो का अच्छी प्रकार से नियन्त्रण न कर सका'; और ऐसा प्रतीत होता है कि लॉर्ड रोजबरी भी उनका नियन्त्रण करने में पूर्णतः असफल रहा। उसकी अपनी योग्यता, दिलचस्पी का फैलाव, अध्यक्ष के नाते उसकी निपुणता, उसकी शीघ्र कार्य करने की सामर्थ्य और 'आवश्यक' तथा 'निरर्थक' (significant and insignificant) मे अन्तर कर सकने की शक्ति का बहुत प्रभाव पडता है। डिज़राइली के विषय में कहा जाता है कि वह अपने दृष्टिकोण को मनवाने में समर्थ हुआ था जबकि एक सहयोगी के अतिरिक्त सबने उसका विरोध किया था। पील समस्त विभागों के कार्य की देख-भाल करने में समर्थ था, क्योंकि उसके समय में प्रशासन-क्षेत्र बहुत ही सीमित था; लेकिन श्री एस्क्विथ ने उसका अनुकरण करने का भी प्रयत्न इस आधार पर नही किया कि यह पूर्णतः अव्यवहार्य है। वस्तुतः यह कहा जाता है कि युद्ध के दिनों मे वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों मे तनिक भी रुचि नहीं लेता था और विचार-विनिमय के समय पत्र लिखा करता था और जब विवाद शान्त हो जाता, तब वह समझ लेता कि समझौता हो गया है और दूसरे प्रश्न पर विचार किया जा सकता है।

"यह निश्चित है कि आधुनिक प्रधान मन्त्री से, नीति की प्रमुख-प्रमुख बातो का नियन्त्रण करने की अधिक-से-अधिक आशा की जा सकती है। इसका यह तात्पर्य नही है कि उसके अधिकार पहले से कम है। कारण कि आधुनिक जनतन्त्र मे, निर्वाचनो के विचारणीय प्रश्न व्यक्ति के साथ लगे रहते है; और यह वास्तविकता है कि आम निर्वाचन में वैकल्पिक (alternative) प्रधान मन्त्रियों के विषय में जनमत-संग्रह किया जाता है। परिणाम यह है कि उसको ऐसी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है जो किसी और साथी को उस समय तक प्राप्त नहीं होती जब तक

वह प्रधान मन्त्री के पद पर है। पार्टी का निर्माण उसके व्यक्तित्व पर किया जाता है; और जितने समय तक उसे पार्टी का समर्थन प्राप्त है, कोई व्यक्ति उसकी स्थिति से मुकाबला नहीं कर सकता। अन्त में, वह अपने सहयोगियों को नियुक्त करता है तथा पदच्युत भी करता है। कोई कठिनाई उपस्थित होने पर मन्त्री सबसे पहले उसके पास आते हैं। विदेश-नीति को निर्धारित करने में उसी का योग महत्त्वपूर्ण होता है। वह विभागों के झगड़ों का निर्णय करता है, और यदि वे प्रश्न मन्त्रिमण्डल की कार्य-सूची में सम्मिलित किए गये हों तो उनके निर्णय में उसके विचारों का विशेष स्थान रहता है। वह साम्राज्य प्रतिरक्षा समिति (Committee of Imperial Defence) का अध्यक्ष होता है। वह मन्त्रिमण्डल की कार्य-सूची पर नियन्त्रण रखता है। उपनिवेशों (Dominions) तथा लीग आफ नेशन्ज में उसकी स्थिति विशेष है। वह जो कुछ लोक-सभा में कहता है, वही कानून है। ऐसी परिस्थिति में उसके विरुद्ध विद्रोह करना स्पष्टत: कठिन है, जब तक उसने अपने पद का इतनी बुरी तरह प्रयोग न किया हो कि सामान्य जनता उसको अयोग्य ही समझने लगे।" (Parliamentary Government in England, pp. 239-41)

Suggested Readings

Carter, B. E. . The Office of Prime Minister.
Jennings, W. I. : Cabinet Government.
Laski, H. J. . Parliamentary Government in England.
Morrison, Lord : British Parliamentary Democracy.

अध्याय ४

प्रशासकीय सेवाएँ

(The Civil Services)

अविशेषज्ञों द्वारा शासन (Government by Amateurs)—इंगलैंड की प्रशासकीय सेवाओं पर विचार करने से पहले यह ठीक होगा कि 'अविशेषज्ञो द्वारा शासन' का उल्लेख कर दिया जाए।

ब्रिटिश प्रशासन का अध्ययन करने वाले हरेक विद्यार्थी को यह अजीब चीज दिखाई देती है कि महकमों के खास-खास मन्त्री अविशेषज्ञ होते है। पर उनके नीचे काम करने वाले विशेषज्ञ होते है। पहला नीति निर्धारित करता है और दूसरे का कर्त्तव्य है कि वह उस नीति को लागू करे। प्रो० मनरो (Prof. Munro) के अनुसार, "कई मौकों पर इंगलैंड का युद्ध-मन्त्री एक दार्शनिक (philosopher) अथवा पत्रकार (journalist), नौसेना मन्त्री एक व्यापारी अथवा बैरिस्टर तथा व्यापार मन्त्री एक प्रोफेसर रहा है।"

"किसी भी युवक को वित्त-मंत्रालय में द्वितीय श्रेणी का क्लर्क बनने के लिए हिसाब की परीक्षा पास करनी जरूरी है, लेकिन वित्त-मन्त्री (Chancellor of the Exchequer) कोई ऐसा प्रौढ़ व्यक्ति बन सकता है जो ईटन (Eton) तथा आक्सफोर्ड की शिक्षा को भूल चुका है और जब दशमलवों मे कोष का लेखा उसके सामने पहली बार रखा जाता है तब वह उन छोटे-छोटे बिन्दुओं का अर्थ सचमुच जानना चाहता है" (सर सिडनी लो)। "किसी युवक अफसर को कैप्टन का पद नही दिया जाता अगर उसे सैनिक के इतिहास मे आने वाली कुछ व्यूह-रचनाओं की जानकारी न हो; लेकिन युद्ध-मन्त्री शान्तिप्रिय व्यक्ति हो सकता है। हमारे यहाँ ऐसे युद्ध-मन्त्री हो चुके है जो सेना को ही बेकार समझते हों और उसके विषय मे कुछ भी ज्ञान प्राप्त करने से बचते रहे हों।"

(१) अदक्ष व्यक्ति को मन्त्री तथा उसके विशेषज्ञों को उसके अधीन रखने के कई लाभ है। यही कारण है कि अंग्रेजो के व्यवहार-ज्ञान (practical senso) ने इस प्रथा को ग्रहण किया है। कहा जाता है कि यदि मन्त्री और अधीनस्थ कर्मचारी दोनों ही विशेषज्ञ होते तो सरकार की मशीनरी ठीक तरह से न चल सकती। कारण स्पष्ट है। जब कोई विशेषज्ञ विशेषज्ञों (experts) के कार्य का निरीक्षण करता है तब संघर्ष तथा मतभेद होने की सम्भावना बनी रहती है; क्योंकि विशेषज्ञों मे स्वभावतः मतभेद होता है। यदि अधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी मिलकर साथ-साथ कार्य न करें तो कोई काम ठीक तरह नहीं हो सकता। अधिकारी और अधीनस्थ यदि मिल कर कार्य न करेंगे तो प्रस्तुत कार्य मे एक प्रकार की अकुशलता, अदक्षता और अयोग्यता को पनपने का मौका मिलेगा जब कि इस स्थिति से बचकर रहना बहुत जरूरी है। यह अनुभव से सिद्ध है कि सरकार का कार्य उस समय ठीक प्रकार से

होता है जबकि मन्त्री अपने महकमे का विशेषज्ञ नहीं होता और उसकी मदद महकमे में बहुत सालों से कार्य करने वाले वे व्यक्ति करते हैं जो महकमे के बारे में हरेक बात जानते हैं। फल यह होता है कि अधीनस्थ कर्मचारी मन्त्री के सामने सारे तथ्य तथा आँकड़े उपस्थित कर देते हैं। यही होना भी चाहिए। मन्त्री अपने विभाग के प्रशासन के लिए देश के प्रति उत्तरदायी है और इसलिए उसे अपने फैसलों को उपस्थित करने की पूरी आजादी होनी चाहिए। किन्तु, यदि उसे विभाग-सम्बन्धी सारे तथ्यों तथा आँकड़ों का ज्ञान करा दिया जाए तो हो सकता है कि वह किसी ठीक फैसले पर पहुँच सके। इस कथन में तनिक भी अनुचित नहीं कि मन्त्री उत्तरदायित्व की मूर्ति (incarnation of responsibility) होते हैं अतः उनके अधीन काम करने वाले विशेषज्ञों की स्थिति अति गौण हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

(२) इस प्रणाली के और भी कई लाभ हैं। विशेषज्ञ (expert) वह है जो साधारण से साधारण वस्तु के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी रखता है। यद्यपि वह ज्ञान की एक शाखा (branch) का विशेषज्ञ होता है, तो भी सम्भव है कि दूसरे विषयों में उसका ज्ञान शून्य हो। विशेषज्ञ का दृष्टिकोण संकुचित होता है। मन्त्री के लिए यह गुण वाञ्छनीय नहीं है। मन्त्री सिर्फ अपने महकमे से ही सम्बन्ध नहीं रखता, वरन् उसे दूसरे महकमों की जरूरतों का भी ध्यान रखना पड़ता है। वह दूसरे महकमों के विचारों तथा जरूरतों से अलग रहकर अपने महकमे की नीति निर्धारित नहीं कर सकता। मन्त्री इस तथ्य को कभी नहीं भूल सकता कि मन्त्रियों के सामूहिक उत्तरदायित्व (collective responsibility) के कारण किसी मन्त्री की हार का नतीजा उसका पतन हो सकता है। विशेषज्ञ इस सम्पूर्ण समस्या के बारे में इतना विशाल दृष्टिकोण नहीं अपना सकता जिसके बिना समस्त प्रशासन के सर्वोपरि हितों को हानि पहुँच सकती हो।

(३) यह भी बताया जाता है कि कोई मन्त्री विशेषज्ञ नहीं बन सकता। यदि राज्य-विज्ञान के किसी प्रोफेसर को शिक्षा-विभाग का इंचार्ज बना दिया जाए तो उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह अपने कार्यों को विशेषज्ञ की तरह पूरा कर सकेगा। शिक्षा-मन्त्री होने के नाते उसका सम्बन्ध विश्वविद्यालय में केवल इतिहास के अध्ययन से नहीं है, बल्कि अन्य विषयों से भी है। इसके अलावा, उसे केवल विश्वविद्यालय की शिक्षा का ही प्रबन्ध नहीं करना, बल्कि स्कूलों तथा कालिजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शिक्षा की व्यवस्था भी करनी है। वह उनकी पढ़ाई के लिए ही उत्तरदायी नहीं है, बल्कि उसे उनकी शारीरिक उन्नति की ओर भी ध्यान देना है। उसे स्त्री-शिक्षा का भी ध्यान रखना है। वह प्राविधिक (technical) तथा व्यावसायिक (commercial) शिक्षा की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। नतीजा यह है कि किसी विशेषज्ञ को किसी महकमे का प्रधान बना दिया जाए तो वह अपने महकमे की हरेक शाखा का विशेषज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि हरेक महकमे का क्षेत्र अधिक व्यापक हो गया है।

(४) मन्त्री किसी महकमे का ... t head) नहीं होता। वह तभी पदारूढ़ होता है ... प्राप्त होता

है। वह उसी समय तक अपने पद पर रहता है जब तक उसकी पार्टी लोकसभा मे इस स्थिति को स्थिर रखती है। उसे उस वक्त पद त्यागना पडता है जब लोकसभा में उसके दल का बहुमत नही रहता। परिणाम यह है कि मन्त्री का कार्य-काल (tenure) लोकसभा में उसके दल की शक्ति पर निर्भर करता है और उसे किसी भी वक्त घर जाने के लिए कहा जा सकता है। क्योकि मन्त्री को अपनी अवधि पर विश्वास नही होता, इसलिए उससे अपना सारा समय तथा शक्ति (energy) लगाकर अपने महकमे की बारीकियो को जानने की आशा नही की जा सकती। उसे महकमे के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से पहले ही पद त्यागने के लिए कहा जा सकता है।

(५) यदि मन्त्री की पार्टी को बहुमत प्राप्त हो तो भी मन्त्री को अपने पद पर बने रहने के काल का विश्वास नही होता। मन्त्रिमण्डल को कभी भी पुनर्गठित (reshuffle) किया जा सकता है और उसको बाहर छोड दिया जा सकता है। यदि ऐसा नही भी किया जाता तो,भी उसे एक महकमे से दूसरे महकमे मे बदला जा सकता है। ऐसी घटनाएँ भूतकाल मे घटित हुई है और भविष्य मे हो सकती है। सर सैमुअल होर भारत-मन्त्री (Secretary of State for India) थे। वे गृह-मन्त्री तथा विदेश-मन्त्री भी रहे। सर जॉन साइमन, विदेश, वित्त तथा विधि-मन्त्रालयों के अध्यक्ष रहे। इस बात को स्पष्ट करने के लिए अन्य बहुत-से उदाहरण दिए जा सकते है। इस प्रकार, कोई मन्त्री विशेषज्ञ नही बन सकता, क्योंकि उसे यह विश्वास नही होता कि वह किसी विशेष विभाग में कितने समय तक रहेगा।

(६) मन्त्री के विशेषज्ञ बनने के मार्ग में एक और कारण भी बाधक बनता है। मन्त्री को विविध प्रकार के काम करने पड़ते हैं। उसे केवल अपने महकमे की ही देखभाल नही करनी पड़ती, बल्कि इसके अलावा उससे और बहुत से कार्य करने की आशा की जाती है। जब ससद् का अधिवेशन (session) चल रहा हो तब उसका वहाँ उपस्थित होना अत्यावश्यक होता है। यहाँ उसे पूछे गए प्रश्नों तथा पूरक प्रश्नों (supplementary questions) का उत्तर देना पड़ता है। उसे वहाँ अपने महकमे की सफाई पेश करने के लिए उपस्थित रहना पड़ता है। वह यह सब तभी कर सकता है जब वह ससदीय प्रणाली से परिचित हो और वहाँ के वाद-विवाद मे भाग लेने में पूर्ण निपुण हो। उससे आशा की जाती है कि वह हाजिर-जवाब हो। विशेषज्ञ होकर वह ये सब कार्य नही कर सकता, क्योंकि विशेषज्ञ साधारणत: समाज से अलग रहने वाले और सार्वजनिक जीवन (public life) के अयोग्य होते हैं। मन्त्री अपने निर्वाचन-क्षेत्र की भी उपेक्षा नही कर सकता। वह यह जानता है कि उसका राजनीतिक जीवन उसके निर्वाचन-क्षेत्र (constituency) के समर्थन पर निर्भर करता है। यदि वह अपने निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाताओं का विश्वास प्राप्त करने तथा उसे कायम रखने के लिए विशेष कष्ट उठाता है तो कोई आश्चर्य नहीं। वह अपने निर्वाचको [illegible] निर्वाचन-क्षेत्र से आने वाले सज्जनो का ही स्वागत नहीं करता, बल्कि अपने [illegible] क्षेत्र मे सम्बन्ध बढाने तथा विश्वास कायम करने के लिए वह कभी-कभी अपने [illegible] जाया करता है। इसके लिए काफी समय चाहिए, और [illegible] महकमे का विशेषज्ञ नहीं बन सकता।

अंग्रेजी प्रणाली उत्तरदायित्व तथा विशेष ज्ञान को संयुक्त करती है और प्रो० मनरो के अनुसार, "दोनों अनिवार्य हैं। उनमें से एक सरकार को लोकप्रिय (popular) बनाता है, दूसरा उसे दक्ष बनाता है। और अच्छी सरकार की कसौटी जनतन्त्र तथा दक्षता का सफलतापूर्वक निर्वाह करना है।"

मन्त्री और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्बन्ध की व्याख्या लार्ड मिलनर ने निम्न शब्दों में की है "प्रायः नियुक्त होते समय मन्त्री विभागीय कार्य-व्यापार के बारे में कुछ नहीं जानते। उनके पास नीति होती है, अपने विचार होते हैं, लेकिन जब उनका संसर्ग उन व्यावहारिक कठिनाइयों, नये संकटों, विस्तृत संचित ज्ञान तथा अनुभव से होता है, जो स्थायी अधिकारी विषय के बारे में रखते हैं, तब उन विचारों में बहुत परिवर्तन हो जाता है। वस्तुतः उच्च श्रेणी के प्रशासनिक अधिकारियों का प्रमुख कर्तव्य राजनीतिज्ञ की अस्पष्ट आकांक्षाओं तथा धुंधले विचारों को देह और प्राण देना है। जब मन्त्री की नीति को असफल न बनाने की निष्कपट भावना से कर्तव्य का सचाई से पालन किया जाता है और कुछ उपयोगी वस्तु का निर्माण करने की सदिच्छा रहती है तब प्रशासकीय अधिकारी राज्य की नीति को पर्याप्त प्रभावित करते हैं।" फिशर के अनुसार, "मन्त्रियों का कार्य नीति-निर्धारण करना है, और जब एक बार नीति निश्चित हो जाए, तब प्रशासकीय अधिकारियों का यह असंदिग्ध कार्य हो जाता है कि वे उस नीति को कार्यान्वित करने के लिए सद्भावना से ठीक-ठीक प्रयत्न करें चाहे वे उससे सहमत हो या असहमत। यह तथ्य स्वतःसिद्ध और निर्विवाद है। इसके साथ ही प्रशासकीय अधिकारियों का परम्परागत (traditional) कर्तव्य है कि जब निर्णय किए जाएँ, तब अपने राजनीतिज्ञ अध्यक्ष को अपनी सारी जानकारी तथा अनुभव, बिना भय अथवा पक्षपात के बता देने चाहिएँ, चाहे वह सलाह मन्त्री के आरम्भिक दृष्टिकोण के उपयुक्त हो या न हो। सम्बन्धित तथ्य मन्त्री के सामने पेश करते हुए, जिनका पता लगाने में शायद सारे विभाग को बड़ा परिश्रम करना पड़े, प्रशासकीय अधिकारी को अत्यधिक सावधान रहने की जरूरत है, क्योंकि उसके लिए प्रायः विभाग को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। तथ्यों से प्रभाव डालने के लिए उसे अपनी समस्त योग्यता और निष्पक्षता को प्रयोग में लाना होता है।"

बैजहाट (Bagehot) के अनुसार, "विभागीय मन्त्री का काम अपने विभाग का कार्य करना नहीं है। उसका कार्य यह देखना है कि कार्य ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं।" रैम्जे मैक्डोनल्ड के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल जनता और विशेषज्ञों के बीच का पुल है जो सिद्धान्त और व्यवहार को मिलाता है। इसका कार्य अनुभव करने वाली स्नायुओं (sensory nerves) द्वारा प्राप्त खबरों को कार्य करने वाली स्नायुओं (motor nerves) द्वारा आदेशों में बदलना होता है। वह विभाग को चलाने में नहीं लगा रहता, वह विभाग को एक विशेष दिशा में चलाने में लगा रहता है।" लास्की (Laski) के अनुसार, "यह, प्रशासकीय सेवा परिणामों की द्योतक है, यह हुक्म नहीं चलाती। यह निर्णय मन्त्री का निर्णय होता है, इसका कार्य वह सब मसाला इकट्ठा करना होता है, जिसके आधार पर इसकी समझ से एक उचित निर्णय

दिया जा सकता है।" लास्की आगे कहता है, "हम किसी को वित्त-मन्त्री इसलिए नहीं बनाते कि वह कुशल अर्थशास्त्री है। यही बात कृषि के मन्त्रालय अथवा शिक्षा-मन्त्रालय के लिए भी कही जाती है। प्रशासन की दृष्टि से वे इसलिए मूल्यवान् नहीं है कि उन्हें किसी विशेष विषय में कुशलता प्राप्त है; लेकिन हमारा विश्वास है, और वह सही आधार पर है, कि उनके शिक्षण से उनमें कुछ ऐसे गुण आ गये हैं, जिनके बिना कोई सरकार सफलतापूर्वक नहीं चल सकती। लेकिन ये ठीक वही गुण हैं जो एक राजनीतिज्ञ में पद-संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए होने चाहिएँ।"

इंगलैंड की प्रशासकीय सेवाएँ (Civil Service in England)—गत सौ वर्षों में इंगलैंड की प्रशासकीय सेवा में महान् परिवर्तन आया है। उससे पहले सारी व्यवस्था असन्तोषजनक थी। जॉन ब्राइट का यह कहना कि "प्रशासकीय सेवा ब्रिटिश कुलीनतन्त्र (aristocracy) का बाह्य सहायता विभाग (outdoor relief department) है," आश्चर्यजनक नहीं। सन् १७८० में बर्क ने कहा कि "मेरे मन में सबसे बड़ी बात यह थी कि उस भ्रष्ट प्रभाव को कम किया जाए जो स्वयं सारी फिजूलखर्ची तथा अव्यवस्था का वर्ष भर रहने वाला स्रोत (spring) है, जो हमें लाखों का ऋणी बना देता है, हमारी भुजाओं से शक्ति, हमारे विचार-[illegible] से समझदारी, और हमारे संविधान के सर्वाधिक आदरणीय भाग से [illegible] सार को पूर्णतया नष्ट कर देता है।" सन् १७४९ में [illegible] ट्रेवेलियन (Trevelyan) ने प्रशासकीय सेवा के दोषों का निर्देश [illegible], "उसमें आलसी, अयोग्य और जरूरत से ज्यादा कर्मचारी थे। [illegible] प्रशासकीय सेवा को अन्य व्यवसायों की स्वतन्त्र प्रतियोगिता से [illegible] तथा वृद्धों के लिए आजीविका (livelihood) प्राप्त करने का [illegible] थी। शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा मनोनीत कर्मचारी [illegible] को धक्का पहुँचाकर, सेवा को ही अपनी वृत्ति (profession) [illegible]।

प्रशासकीय सेवा के कार्य-भार तथा [illegible] (mental energy) के दबाव के [illegible]। नियुक्तियों द्वारा अनुग्रह करने की प्रणाली (system of [illegible] अव्वल माँग की गई और उसको सन् १८५३ में [illegible] इण्डिया कम्पनी के चार्टर का पुनरावर्तन [illegible] परिवर्तन की दिशा का इन शब्दों में वर्णन [illegible] दूसरा तथ्य इतने ज्यादा प्रमाणों [illegible] इतनी अच्छी तरह सिद्ध नहीं हुआ। [illegible] व्यक्ति अपने सारे जीवन में श्रेष्ठ [illegible] प्रतियोगिता-परीक्षाओं के अर्थ [illegible] प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक [illegible] परिणाम यह होता है कि [illegible] ऊँचा बना रहता है"[illegible] प्रार्थनाओं को ठुकराना [illegible]

हृदय-विदारक पत्र लिखती है। इस तरह की प्रार्थनाएँ दृढ़-निश्चयी व्यक्तियों को भी अपने निश्चय से डिगा देती हैं। लेकिन प्रतियोगिता परीक्षा-प्रणाली में इन सब वस्तुओं को स्थान नहीं। पिता परीक्षक के पास जाकर यह नहीं कह सकता कि "मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उस लड़के का स्थान मेरे पुत्र से ऊँचा है, लेकिन कृपा करके यह कहें कि मेरे पुत्र ने उस लड़के को पछाड़ दिया है।"

सन् १८५८ में एक सपरिषद् आदेश (Order-in-Council) के द्वारा तीन सदस्यों का प्रशासकीय सेवा-आयोग (Civil Service Commission) स्थापित किया गया और उसे परीक्षा लेने का काम सौंपा गया। सन् १८७० तक प्रतियोगिता-परीक्षाओं (Competitive Examinations) की प्रणाली समस्त सेवाओं के लिए काम में लाई जाने लगी।

डा० फाइनर के अनुसार, "प्रशासकीय सेवा के वर्तमान संगठन की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं अर्थात् विभाग के कार्य और संघटन में एकीकरण और समन्वय करने के लिए ट्रेजरी कण्ट्रोल, दक्षता के स्तर बनाने तथा कायम रखने के लिए प्रशासकीय सेवा-आयोग; और देश की शिक्षा-प्रणाली तथा सेवाओं के विभिन्न ग्रेडों में भर्ती की आयुओं में सम्बन्ध कायम करने की कोशिश। प्रशासकीय सेवा-आयोग का कार्य राजा के किसी संस्थापन (establishment) में नौकरी अथवा अन्य कार्य करने पर स्थायी या अस्थायी रूप से नियुक्त किये जाने वाले समस्त व्यक्तियों के लिए योग्यता निर्धारित करना है, उस विधि को निश्चित करने के लिए कानून बनाना है, जिसके अनुसार नागरिक संस्थापन में व्यक्तियों को नियुक्त किया जाये तथा उन शर्तों की घोषणा करना है जिसके अनुसार आयुक्त (Commissioner) योग्यताओं के प्रमाणपत्र (Certificate of Qualifications) दे सकें और उन समस्त नियुक्तियों तथा पदोन्नतियों (appointments and promotions) को 'लन्दन गजट' में प्रकाशित कराना है जिनके लिए योग्यता के प्रमाण-पत्र दिए जाते हैं। लिखित एवं मौखिक (viva voce) परीक्षा के लिए *व्यवस्था की गई है। प्रथम श्रेणी की परीक्षा* (Class I Examination) की समिति की सिफारिशों के आधार पर सन् १९१७ में मौखिक परीक्षा आरम्भ की गई। इसमें नागरिक सेवा-आयुक्तों को प्रशासकीय सेवा के प्रत्याशियों के व्यक्तित्व (personality) तथा चरित्र का कुछ परिचय मिलता है।

१ अक्टूबर सन् १९४७ में ब्रिटिश सिविल सर्विस में ९,४६,००० सदस्य थे, जिनमें से २,५०,००० औद्योगिक कर्मचारी थे। प्रशासकीय वर्ग में ४,३९९; कार्य-पालक वर्ग में ५०,५२०; क्लर्क तथा उप-क्लर्क वर्ग में, २,५५,१००; टाइपिंग में २९,६०५; विद्या-वृत्ति (professional), प्राविधिक तथा वैज्ञानिक कार्य में ४२,३८२; निरीक्षक वर्ग में ५,२३०; और सन्देशवाहक वर्ग में ४४,३२४ व्यक्ति थे।

प्रो० लास्की के अनुसार, "प्रशासकीय सेवा, जीवन-वृत्ति (career) के नाते, अपने सदस्यों को कुछ ठोस लाभ, सद्व्यवहार (good behaviour) तथा कुशल कार्य होने पर कर्मचारी को सुरक्षा, वेतन तथा ऐसी वृद्धियाँ प्रदान करती है, जिनकी बाहर की नौकरियों से तुलना की जा सकती है। वेतन के सहित उचित अवकाश, रोग का अवकाश और रिटायर होने पर पेंशन, जो सामान्य परिस्थितियों में उनके

अन्तिम वेतन की दो-तिहाई होती है, प्राप्त होती है। सेवा की समस्त निम्न श्रेणियों में इसके अतिरिक्त उसे, ह्विटले परिषदों (Whitley Councils) की प्रणाली के अनुसार, विचार-विनिमय में और कुछ अंशों में अपनी नौकरी की शर्तें निश्चित करने में उसका भाग होता है। (Parliamentary Government in England, pp. 320-30)

आलोचकों का मत है कि सेवा के ग्रेड अधिक कठोर हैं। प्रशासकीय वर्ग के अलावा दूसरी श्रेणियों में पदोन्नति की विधि भी यान्त्रिक (mechanical) है। अधिकतर पदोन्नतियाँ कार्य-काल के आधार पर की जाती हैं। पदोन्नति करने वाला बोर्ड (Promotion Board) योग्यता की खोज करने के बजाय पक्षपात के भय को दूर करता है। इस प्रणाली में उन व्यक्तियों को अधिक अवसर नहीं दिया जाता, जो शीघ्रता से अपनी सामर्थ्य और विशिष्ट गुणों का प्रदर्शन करें। डा० फाइनर के अनुसार, "प्रशासकीय सेवा में भर्ती का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित होने से और सेवा में प्रवेश करने के बाद निश्चित एवं सुनियोजित शिक्षण की कमी से दुर्बलता पैदा होती है।" वॉकर के अनुसार, "प्रशासकीय सेवा की दुर्बलता का कारण यह है कि कार्यकर्ताओं को अपने काम के अलावा और बाहरी दुनिया की बातों का ज्ञान नहीं होता और वे अपने महकमे के अलावा दूसरे विभागों की नीतियों तथा गतिविधियों (activities) के बारे में कुछ नहीं जानते और लोक-प्रशासन को ऐसा विज्ञान नहीं समझते जिसके कुछ मूलभूत सिद्धान्त (fundamental principles) हैं।"

यह सुझाव रखा जा सकता है कि परीक्षण-काल को कठोरता से लागू किया जाए। यदि यह पूरी तरह से निश्चय न हो जाए कि वे कुशल प्रशासक बन सकेंगे, तो उन अफसरों को उस काल की समाप्ति पर अथवा पूर्व ही मुक्त (discharge) कर देना चाहिए।

नौकरशाही शासन की ओर झुकाव (Tendency towards Bureaucratic Government)—गत वर्षों में इंगलैंड की सरकार की नौकरशाही प्रवृत्ति के विरोध में असन्तोष प्रकट किया गया है। सन् १९२९ ई० में लार्ड चीफ जस्टिस आफ इंगलैंड लार्ड ह्यूवर्ट (Hewart) ने अपनी सनसनीखेज पुस्तक 'न्यू डेस्पोटिज्म' (The New Despotism) में जनता को नौकरशाही के बढ़ते हुए नियन्त्रण के खिलाफ चेतावनी दी। सन् १९३० में इसी प्रकार का आक्रमण केन्द्रीय श्रम-जीवी संघटन (Central Labour Organisation) के अध्यक्ष श्री रैम्जे म्योर ने किया। अगले वर्ष ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सी० के० ऐलन ने इसी विषय में एक पुस्तक 'नौकरशाही की विजय' (Bureaucracy Triumphant) प्रकाशित की। श्री रैम्जे म्योर के शब्दों में, "अधिकाश विषयों में उसे (मन्त्री) अपने अधीन विभाग के पेचीदा तथा अमित कार्यों को करने के लिए विशेष ज्ञान नहीं होता। उसका सम्बन्ध उन अधिकारियों से होता है, जो उससे अधिक योग्य होते हैं, अथवा हो सकते हैं, जो तब अपना सम्पूर्ण समय विभागीय समस्याओं के समाधान खोजने में व्यतीत करते रहे हैं, जबकि वह संसार में अपना स्थान बना रहा था अथवा सभाओं में लैक्चर झाड़ रहा था। वे उसके पास सैकड़ों पेचीदा समस्याओं को निर्णय के लिए लाते हैं

उनमें से अधिकांश के बारे में मन्त्री कुछ नहीं जानता है। वे उसके सामने अपने सुझाव रखते हैं, और उनके समर्थन में वे अत्यधिक निर्णयात्मक तर्क तथा तथ्य उपस्थित करते हैं। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यदि वह निपट मूर्ख अथवा अलौकिक (exceptional) समझ वाला, शक्तिशाली और साहसी व्यक्ति नहीं (और ये दोनों प्रकृतियां सफल राजनीतिज्ञों में असामान्य हैं) तो साधारणतः वह ९९% मामलों में उनके मत को स्वीकार कर लेता है और निर्दिष्ट स्थान पर हस्ताक्षर कर देता है। संक्षेप में, यदि मन्त्री विशेष प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति न हो तो कार्यालय की नीति ही चलती है।"

यह स्वीकार किया जाता है कि मन्त्री कार्य-भार से दबे रहते हैं और वे अपने विभाग के विशेषज्ञ नहीं होते; लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे पूरी तरह से नौकरशाही पर निर्भर हो जाते हैं। मन्त्रियों का कर्त्तव्य ऐसे कार्य करना है जिनसे पार्टी को यश मिले। मन्त्रिमण्डल का सुधार-कार्यक्रम पहले से ही निश्चित होता है और उसे मन्त्रिमण्डल के काल में लागू करना पड़ता है। यदि मन्त्री अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कण्ट्रोल में रहता है तो वह अपने पद के साथ न्याय नहीं करता और जनता उसकी बुराई करती है; किन्तु अगर मन्त्री अपने अधीन विशेषज्ञों से परामर्श लेता है तो इसमें कोई बुराई नहीं। वास्तव में उसे उनसे ज्यादा-से-ज्यादा सूचनाएँ पाने की कोशिश करने के बाद अपना फैसला देना चाहिए। किन्तु यह सोचना भूल है कि मन्त्री अपने अधीनस्थों को नीति निश्चित करने की आज्ञा देते हैं। लार्ड हैलडेन, लायड जार्ज, चर्चिल तथा हैण्डर्सन के समान मन्त्री अपने मन्त्रित्व-काल में कर्मचारियों के विचारों में परिवर्तन लाने में सफल हुए।

Suggested Readings

Burns, C. D. . Whitehall, 1921.
Campbell, C. A. : The Civil Service in Britain.
Critchley, T. A. : The Civil Service Today.
Finer, H. : The British Civil Service
Gladden : The Civil Service—Its Problems and Future, 1949
Gladden, E. N. · Civil Service or Bureaucracy, 1956
Greaves . The Civil Service in the Changing State.
Robson, W. A. (Ed.) : The British Civil Servant, 1937.
Wheare, K. C. : The Civil Service in the Constitution, 1954.

अध्याय ५

ब्रिटिश संसद्

(The British Parliament)

संसद् की प्रभुता (Sovereignty of Parliament)—प्रो० डायसी के अनुसार, "कानूनी दृष्टिकोण से ससद् की प्रभुता अग्रेजी राजनैतिक सस्थाओं की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है।" ससद् का अर्थ है, राजा (King), लार्ड सभा (House of Lords) तथा लोकसभा (House of Commons)। इस तरह परिभाषित ससद् कोई भी कानून बना सकती है अथवा रद्द कर सकती है। इगलैंड का कानून किसी ऐसे व्यक्ति अथवा निकाय (body) को मान्यता (recognize) नही देता, जिसे संसद् के कानूनों को रद्द करने का अधिकार प्राप्त हो।

सर एडवर्ड कोक के अनुसार, "ससद् की शक्ति तथा अधिकार-क्षेत्र इतना सर्वोपरि (transcendent) तथा पूर्ण है कि उसकी सीमाएँ नही बाँधी जा सकती।" ब्लैकस्टोन के अनुसार, "ससद् को धार्मिक या लौकिक, नागरिक, सैनिक, समुद्री अथवा फौजदारी आदि सब तरह के विषयो पर कानून बनाने, उनकी पुष्टि करने, उन्हे बढ़ाने तथा उनकी व्यवस्था करने की सर्वोच्च तथा अनियन्त्रित सत्ता प्राप्त है। वह राजगद्दी पर उत्तराधिकार की व्यवस्था कर सकती है। वह देश के स्थापित (established) धर्म को बदल सकती है। वह राज्य तथा ससद् के गठन को भी बदल सकती है। वह प्रत्येक सम्भव कार्य कर सकती है जो प्रकृति से असम्भव न हो।"

सर जे० ए० आर० मैरियट (J. A. R Marriott) के अनुसार, "चाहे किसी भी दृष्टिकोण से देखें, ब्रिटिश विधानमण्डल ससार मे सबसे अधिक मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण है। इससे प्राचीन कोई विधानमण्डल नही है, इसका अधिकार-क्षेत्र सबसे अधिक विस्तृत है और इसकी शक्ति असीम है। एक-चौथाई मानव-समाज के लिए नियम बनाने की क्षमता वाली पार्लियामेंट—या ठीक-ठीक कहें तो किग-इन-पार्लियामेंट (King-in-Parliament) के ऊपर कोई बडी सत्ता नहीं है। संक्षेप में यह राजा के राज्य-क्षेत्रों मे धार्मिक (ecclesiastical) तथा लौकिक (temporal) सभी मामलों में सर्वोच्च-सत्ता सम्पन्न है।"

बर्ले के अनुसार, "ससद् जो कि सर्वशक्तिमान है, के अतिरिक्त, और कोई शक्ति इगलैंड को कभी नष्ट नही कर सकती।" सर मैथ्यू हेल के अनुसार, "क्योंकि संसद् देश का सबसे ऊँचा तथा सबसे बड़ा न्यायालय है जिसके ऊपर सारे साम्राज्य मे किसी को भी क्षेत्राधिकार प्राप्त नही है, इसलिए देश मे बुरी सरकार होने पर जनता उसका कोई उपचार नही कर सकती।" डी लोल्मे (De Lolme) के अनुसार, "अंग्रेज वकीलो का यह आधारभूत सिद्धान्त है कि ससद् सब कुछ कर सकती है, केवल पुरुष को स्त्री तथा स्त्री को पुरुष नही बना सकती।"

डी टाकविले (De Tocqueville) के अनुसार, "इंगलैंड मे, पार्लियामेंट को,

संविधान मे परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। चूंकि संविधान में निरन्तर परिवर्तन हो सकते हैं, इसलिए वास्तव मे उसका पृथक् विस्तार नही है। पार्लियामेंट विधान-सभा (legislative assembly) और संविधान सभा (constituent assembly) दोनों ही है।"

प्रो० डायसी ने ससदीय सर्वोच्चता के ऐक्ट आफ सैटिलमेंट (Act of Settlement), ऐक्ट आफ यूनियन (Act of Union), सैप्टेनियल ऐक्ट, ऐक्ट्स आफ इंडेम्निटी (Acts of Indemnity) आदि जैसे ऐतिहासिक उदाहरणों का निर्देश किया है। १७०१ के ऐक्ट आफ सैटिलमेंट मे देश के उत्तराधिकार कानून मे मौलिक परिवर्तन किए गए। ससद् के एक कानून द्वारा अनेक ऐसे व्यक्तियों के सिंहासनारूढ (succession) होने के अधिकार को समाप्त कर दिया गया जो कुछ परिस्थितियों मे आरूढ़ हो सकते थे। १७१६ के सैप्टेनियल ऐक्ट (Septennial Act) ने ससद् की अवधि सात वर्ष निश्चित की जो कि तीन वर्ष के लिए निर्वाचित हुई थी। डायसी के अनुसार, अधिनियम की विलक्षणता (peculiarity) यह नही थी कि उसने संसद् की वैध अवधि को परिवर्तित किया अथवा त्रिवार्षिक अधिनियम (Triennial Act) को बदला, प्रत्युत् चौंकाने वाली वस्तु यह थी कि एक विद्यमान (existing) संसद् ने स्वयं अपने अधिकार से अपने वैध अस्तित्व को चार वर्ष बढ़ा दिया, और वह सदा के लिए अपना अस्तित्व कायम रख सकती थी।

सर्वसत्ता-सम्पन्न ससद् किसी शिशु या नाबालिग (infant or minor) को बालिग घोषित कर सकती है। वह किसी व्यक्ति पर, उसकी मृत्यु के पश्चात् राजद्रोह का कलंक लगा सकती है। वह किसी भी विदेशी का देशीकरण (naturalise) कर के उसे जन्मत: प्रजा (subject born) बना सकती है। अवैध (illegitimate) बच्चे को वैध (bastard) घोषित कर सकती है। वह उस बच्चे को भी पूर्णतः वैध घोषित कर सकती है जो विवाह के पूर्व उत्पन्न हुआ है। संसद् बहुधा सार्वजनिक हित के लिए व्यक्तिगत अधिकारों मे हस्तक्षेप कर सकती है।

डिसेंटरों को, जो इंगलैंड के राजकीय चर्च को न मानने वाले प्रोटेस्टेंट थे, दण्ड से मुक्त करने के हेतु अनेक ऐक्ट्स आफ इंडेम्निटी (Acts of Indemnity) १७२७ से १८२८ के मध्य पारित किए गए। इसी प्रकार, प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों के पश्चात् ऐक्ट्स आफ इंडेम्निटी (तारण-अधिनियम) पारित किए गए। इन कानूनों द्वारा वे कार्य वैध हो गए जो पहले अवैध थे।

देश में कोई और स्पर्द्धा करने वाली विधायिका शक्ति नही है। समय-समय पर राजा, ससद् के दोनों सदनों, निर्वाचन-क्षेत्रों तथा न्यायालयों ने अपनी स्वतन्त्र विधायी शक्ति होने का दावा किया, किन्तु वे समस्त दावे रद्द कर दिए गए। १५३६ के उद्घोषणा परिनियम (Statute of Proclamations) ने इंगलैंड के राजा को कानून का प्रभाव रखने वाली उद्घोषणाएँ करने का अधिकार दिया, किन्तु प्रसन्नता का विषय है कि उस कानून को निरसन (repeal) कर दिया गया और इंगलैंड उसके कुपरिणामों मे बच गया। यदि ऐसा न होता तो इंगलैंड का राजा फ्रांस के राजा की भाँति निरंकुश हो जाता। १६१० में, न्यायाधीशों की निश्चित राय अथवा विरोध

ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि राजा की कोई उद्घोषणा किसी व्यक्ति पर कोई ऐसा कानूनी दायित्व अथवा कर्तव्य नहीं डाल सकती, जो रूढि विधि (Common Law) अथवा संसद् के अधिनियम ने लागू न किया हो। लॉर्ड चैथम (Lord Chatham) ने १७६६ में उद्घोषणा का अन्तिम बार प्रयोग किया।

इसी प्रकार, ससद् के किसी भी सदन के सकल्प (resolution) को कानून की शक्ति प्राप्त नही होती और परिणामस्वरूप ये दोनों सदन संसद् के अधिकार (authority of Parliament) के प्रतिस्पर्द्धी नही हो सकते।

इसी प्रकार संसद् का अधिकार मतदाताओं की इच्छा से प्रभावित नही होता। उनको कानून का प्रभाव रखने वाला कानून पास करने का अधिकार नहीं है। वे अपने आप कुछ नही कर सकते। उन्हें अपने प्रतिनिधियों के द्वारा ही कार्य करना होता है।

ससद् के कानून न्यायाधीशो के निर्णय को कुचल सकते हैं और सदा कुचलते भी रहते है; अग्रेज न्यायाधीशो को न तो किसी कानून का निरसन करने की शक्ति प्राप्त है और न ही वे वैसा करते है। न्यायिक विधान (Judicial Legislation) गौण विधान (Subordinate Legislation) है और वह संसद् के पर्यवेक्षण (supervision) के अधीन है।

प्रो० डायसी ने ससद् के विधायक प्रभुत्व पर तीन कथित कानूनी सीमाओं (alleged legal limitations) का उल्लेख करके यह स्वीकार किया है कि वे प्रतिबन्ध वास्तविक नहीं थे। प्रथम कथित प्रतिबन्ध यह था कि ससद् नैतिकता के विपरीत कोई कानून पारित नही कर सकती; किन्तु यह कहा जाता है कि कानून कानून है, चाहे वह नैतिक हो अथवा अनैतिक। वह कानून है, क्योंकि उसे ससद् ने बनाया है। हमें कानून की अन्तर्वस्तु को न देखकर उसके रूप (form) को देखना पडता है।

दूसरा कथित प्रतिबन्ध यह है कि ससद् राजा के परमाधिकार (prerogatives) को नही छू सकती। दुर्भाग्य से, वास्तविक स्थिति यह है कि राजा के अनेक परमाधिकार संसदीय कानूनों द्वारा छीन लिये गये हैं।

तीसरा कथित प्रतिबन्ध यह है कि नवीन संसद् पूर्व ससद् द्वारा पारित कानून को नही छू सकती। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। यद्यपि १८०० का यूनियन अधिनियम (Act of Union of 1800) सदा के लिए पारित किया गया था, तथापि उसको समय-समय पर संशोधित किया गया और अन्त में १९२२ में, जब आयर का पृथक् अस्तित्व हुआ तो वह अमली तौर से रद्द कर दिया गया।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् डायसी इस परिणाम पर पहुँचा कि ससद् की सर्वोच्चता ही असंदिग्ध कानूनी तथ्य है। वह अपने विधेयात्मक (positive) तथा नकारात्मक (negative) दोनों पहलुओं में सम्पूर्ण है। संसद् कानूनी रूप से ऐसे किसी भी विषय पर कानून बना सकती है, जो कानून बनाने के लिए उचित विषय हो। संसद् के विधायक प्रभुत्व का सामना करने वाली कोई शक्ति नहीं है।

संसद् के प्र ुत्व पर नियन्त्रण (Limitations on Sovereignty of Parliament)—(१) किन्तु, डायसी ने संसद् के प्रभुत्व पर दो वास्तविक, अर्थात् बाह्य

(external) तथा आन्तरिक (internal) प्रतिबन्धों का वर्णन किया है। बाह्य प्रतिबन्ध का कारण जनता के विरोध की सम्भावना है। संसद् उन कानूनों को पास करने में सकुचाएगी जिनका सम्भवतः जनता विरोध करे। आन्तरिक अवरोध स्वयं प्रभुत्व-सत्ता का द्योतक होता है। अठारहवीं सदी का इतिहास सम्मुख होते हुए संसद् कभी भी उपनिवेशों पर कर नहीं लगाएगी।

(२) लैज़्ली स्टीफेन (Leslie Stephen) के अनुसार, "वास्तव में विधानमण्डल की शक्ति सर्वथा सीमित है। हम यह कह सकते हैं कि यह बाहर तथा अन्दर दोनों ओर से सीमित है। अन्दर से इसलिए कि विधानमण्डल समयानुकूल सामाजिक परिस्थितियों की उपज है और वह वही कुछ निश्चय करती है, जो कुछ समाज निश्चय करता है। और बाहर से इसलिए कि कानून लागू करने की शक्ति अधीन होकर रहने (subordination) की निसर्ग-वृत्ति (instinct) पर निर्भर करती है, जो स्वयं भी सीमित है। यदि कोई विधानमण्डल निश्चय करे कि समस्त नीली आंखों वाले बच्चों को मौत के घाट उतार दिया जाए, तो नीली आंखों वाले बच्चों का संरक्षण (preservation) करना अवैध होगा, किन्तु ऐसा कानून पारित करने से पूर्व विधायक (legislators) पागल हो चुके होंगे और उस कानून का पालन करने वाली जनता मूढ़ होगी।

प्रो॰ लास्की के अनुसार, कोई संसद् रोमन कैथोलिकों के मताधिकार को छीनने तथा ट्रेड यूनियनों के अस्तित्व का प्रतिषेध (prohibit) करने का साहस नहीं करेगी।"

(३) उन आन्तरिक तथा बाह्य प्रतिबन्धों के अतिरिक्त, जिनका उल्लेख प्रो॰ डायसी ने किया है, ब्रिटिश संसद् के विधायक प्रभुत्व के अनेक प्रतिबन्धों को नजरंदाज़ नहीं किया जा सकता। यह सत्य है कि संसद् ऐसा कानून पारित कर सकती है, जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law) के प्रतिकूल हो; किन्तु, साधारणतः कानूनों की व्यवस्था करते समय, न्यायालय इस धारणा पर चलते हैं कि संसद् का आशय अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धान्तों का उल्लंघन करना नहीं है। West Rand Gold Mining Co. v. the King में यह निश्चित किया गया था कि "जो कुछ सभ्य राष्ट्रों ने सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया है, उसे हमारे देश की भी स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए।"

(४) संसद् के प्रभुत्व पर, लोकमत तथा समाचारपत्र, महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्ध है। कोई संसद् उस कानून को पारित करने का साहस नहीं कर सकती जिसका समाचार-पत्र तथा लोकमत विरोध करें। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अन्तिम रूप में संसद् को जनता के निर्णय के सम्मुख झुकना पड़ा है।

(५) न्यायिक निर्वचन (judicial interpretations) भी संसदीय प्रभुत्व पर अवरोधक (check) है। न्यायालय व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप, बिना मुआवज़ा (compensation) दिये व्यक्तिगत सम्पत्ति को हस्तगत करने तथा प्रजा से न्यायालय में आवेदन करने के अधिकार को छीनने के विरुद्ध संरक्षित करता है।

(६) राजनैतिक तथा आर्थिक हितों के लिए संगठित संघ (League) एवं

संस्थाएँ ससद् के प्रभुत्व पर प्रतिबन्ध लगाती हैं। उनसे सम्बन्धित कानून बनाने से पूर्व संसद् को उनसे परामर्श करना पडता है। उन सस्थाओं की उपेक्षा करना असम्भव है।

(७) ससद् का प्रभुत्व वेस्टमिंस्टर परिनियम, १६३१ (Statute of Westminster) के द्वारा भी सीमित किया गया है। उस अधिनियम मे यह व्यवस्था की गई है कि १६३१ के पश्चात् ब्रिटिश ससद् का कोई अधिनियम उस समय तक उपनिवेशो (Dominions) पर लागू नही होगा जब तक उसमे यह स्पष्ट रूप से प्रकट नही किया जाएगा कि अमुक उपनिवेशों को अपनी इच्छानुसार कानून बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है चाहे वह इगलैंड के किसी कानून के विपरीत ही क्यों न हो। यूनियन अधिनियम, १६३४ दक्षिणी अफ्रीकी यूनियन में ब्रिटिश ससद् की प्रभुता का निषेध करता है।

निम्नलिखित उद्धरण से संसद् तथा उपनिवेशो के वास्तविक सम्बन्धो पर अच्छा प्रकाश पड़ता है: "उपनिवेशों के विधानमण्डलों द्वारा नियुक्त समस्त दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले प्रतिनिधियों के राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention) ने सर्वसम्मति से एक सविधान का मसविदा प्रस्तुत किया और ब्रिटिश ससद् को उसे ज्यो का त्यों स्वीकृत करना पडा है। लोकसभा के एक सदस्य ने सदन का ध्यान व्याकरण की एक त्रुटि की ओर आकर्षित किया और सुझाव दिया कि उसे पुष्ट करने मे पूर्व उस त्रुटि को ठीक कर दिया जाये। सर हेनरी कैम्पबेल-बैनरमैन ने सुझाव रद्द करते समय यह कहा कि सरकार को चलाने के लिए निर्दोष व्याकरण की आवश्यकता नही है; यह संविधान ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और दक्षिणी अफ्रीका के मन्त्रियों की परस्पर वार्ता द्वारा बनाया गया था, और उन्होने ब्रिटिश ससद् को भाषासम्बन्धी त्रुटि को ठीक करने तक का भी अधिकार नहीं दिया है। इसलिए संविधान, एक विधेयक के रूप मे ब्रिटिश संसद् के दोनों सदनों मे वैसा ही स्वीकृत कर लिया गया जैसा कि वह था। उसमें तनिक भी परिवर्तन नही किया गया।"

लार्ड सभा (House of Lords)—ब्रिटिश ससद् के दो सदन हैं: लार्ड सभा और लोक-सभा। एक सारत: आनुवंशिक (hereditary) है, और दूसरा जनता का प्रतिनिधि।

प्रो० लास्की के अनुसार, "लार्ड सभा का सुधार करने के लिए ४० वर्षो मे निरंतर प्रयत्न किये गये हैं। इससे पता चलता है कि हमारी वैधानिक प्रणाली मे उसका स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, और उसके अस्तित्व मात्र से उठने वाली समस्या कितनी नाजुक है। एक राजनैतिक प्रजातन्त्र (political democracy) के दूसरे सदन के रूप में इसे सब लोग दकियानूसी चीज मानते हैं। ७५० व्यक्तियों के निकाय (body) को, जिसमें बिशपों और विधिज्ञों (law-lords) के अतिरिक्त और सब के सब सदस्य आनुवंशिक हैं और अपने अतिरिक्त और किसी के प्रति उत्तरदायी नही, गैर-वित्तीय (non-financial) कानूनो को दो वर्ष तक रोकने का अधिकार प्राप्त है, यह चकित करने वाली वस्तु है। वह केवल इसलिए जीवित है क्योंकि लार्ड सभा ने गत युग में प्रत्येक झगड़े में, लड़ने की अपेक्षा झुकना अच्छा समझा है, और क्योंकि पार्टियाँ

उसके सुधार के लिए किन्हीं सिद्धान्तों पर एकमत नहीं हो सकती।" (*Parliamentary Government in England, p. 111*)

लार्ड सभा का गठन (Composition of House of Lords)—यद्यपि साधारणतः लॉर्ड सभा को आनुवंशिक सदन कहा जा सकता है, तथापि यह कथन अक्षरशः सत्य नहीं है। लॉर्ड सभा में अनेक प्रकार के सदस्य हैं और हम उनका निम्न प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं—

(१) लार्ड सभा में वंशागत पीअरों (Hereditary Peers) की संख्या सबसे अधिक है। इन पीअरों (Peers) की भी तीन विभिन्न श्रेणियाँ हैं। कुछ वे पीअर हैं जो १७०७ से पहले बनाये गये थे जब इंगलैंड और स्काटलैंड संयुक्त हुए थे। कुछ ग्रेट ब्रिटेन के पीअर हैं, जो इंगलैंड तथा आयरलैंड के संयुक्त होने से पूर्व (१८०० से पहले) बनाये गये थे। कुछ यूनाइटेड किंगडम (U.K.) के पीअर हैं, जो १८०१ ई० के पश्चात् बनाये गए थे। राजा, प्रधानमन्त्री के परामर्श से इच्छानुसार जितने चाहे उतने पीअर बना सकता है। लार्ड सभा को लोक-सभा के सामने झुकाने में राजा की अपरिमित संख्या (unlimited number) में पीअर बनाने की शक्ति बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। यह सत्य है कि जॉर्ज प्रथम के शासन-काल में राजा द्वारा किसी समय बनाये जा सकने वाले आनुवंशिक पीअरों की संख्या सीमित करने का प्रयास किया गया था, किन्तु प्रसन्नता का विषय है कि यह प्रयत्न असफल रहा।

(२) लार्ड सभा में स्काटलैंड के प्रतिनिधि पीअर हैं। सन् १७०७ का यूनियन एक्ट यह व्यवस्था करता है कि स्काटलैंड लॉर्ड सभा के लिए १६ सदस्य भेजेगा और उन पीअरों का निर्वाचन स्काटलैंड के पीअर करेंगे। आजकल, कुल ३१ स्काटिश पीअर हैं और जब नई संसद् को आमन्त्रित किया जाता है, तब वे लार्ड सभा में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए १६ प्रतिनिधि निर्वाचित करते हैं। स्काटलैंड के प्रतिनिधि पीअरों के लिए व्यवस्था (provision) इसलिए करनी पड़ी, क्योंकि इंगलैंड और आयरलैंड के संयुक्त होने पर स्काटलैंड के उन पीअरों को प्रतिनिधित्व देना था।

(३) लॉर्ड सभा में आयरलैंड के भी प्रतिनिधि पीअर हैं। सन् १८०० के यूनियन एक्ट में व्यवस्था की गई थी कि लॉर्ड सभा में आयरलैंड २८ पीअर भेजेगा। सन् १८०० में २३४ आयरिश पीअर थे। आयरलैण्ड के पीअर आजीवन निर्वाचित होते थे। सन् १९२२ में आयरलैंड का पृथक् राज्य स्थापित होने से परिस्थिति में परिवर्तन आ गया है। १९५८ में केवल एक आयरिश पीअर था।

(४) लॉर्ड सभा में २६ धार्मिक लार्ड (Spiritual Lords) हैं। वे अपने पद के कारण सदस्य होते हैं। उनमें से सबसे प्रमुख कैंटरबरी और यार्क के आर्कबिशप, और लन्दन, डर्हम और विनचेस्टर के बिशप हैं। अन्य २१ धार्मिक पीअर अपनी सेवा की ज्येष्ठता (seniority) के आधार पर निर्वाचित होते हैं।

(५) नौ विधिज्ञ लॉर्ड[1] (Law Lords) जीवन भर के लिए सदस्य होते हैं। उनका चयन उनके विशाल कानूनी ज्ञान के कारण किया जाता है। इन विधिज्ञ

१. उनका वार्षिक वेतन ६००० पौण्ड होता है।

लार्डों के द्वारा ही लॉर्ड सभा सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करती है। यह कहा जाता है कि रानी विक्टोरिया ने लॉर्ड सभा के न्यायिक अंश (judicial element) को दृढ करने के लिए आजीवन पीअर बनाने का प्रस्ताव किया था, किन्तु प्रस्ताव स्वीकार नही किया गया। किन्तु सन् १८७६ के, 'अपीलीय अधिकार क्षेत्र अधिनियम' (Appellate Jurisdictions Act) ने क्राउन को आजीवन पीअर बनाने की स्वीकृति दे दी।

(६) लाईफ पीअरेज अधिनियम (Life Peerages Act) १९५८ में पास हुआ। इस अधिनियम ने सरकार को जीवन भर के लिए पीअर अथवा लार्ड सभा के सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया। सरकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया कि कितनी संख्या तक ऐसे पीअर मनोनीत किये जावें। इस अधिनियम का यह प्रयोजन है कि इंगलैंड के प्रतिष्ठित नर तथा नारियों को लार्ड सभा का सदस्य बनाया जा सके।

१९६० मे श्री केसी (Casey) जो कि आस्ट्रेलिया के विदेश मन्त्री थे, को लार्ड सभा का सदस्य बनाया गया। इस बात की बहुत चर्चा हुई। ऐसा कहा गया कि भविष्य मे लार्ड सभा का कार्य इस कारण भिन्न हो जायेगा, क्योंकि उस में उपनिवेशों के प्रतिनिधि भी सदस्य होंगे।

यह ध्यान रखने वाली बात है कि यदि किसी व्यक्ति को पीअर (Peer) मनोनीत किया जाता है तो वह पद किसी और को नहीं दे सकता। पीअर का किसी जमीन अथवा स्थान से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो पीअर बच्चा हो अथवा जिसने अपना दीवाला निकाल दिया हो वह लार्ड सभा के काम में भाग नहीं ले सकता। जो पीअर सरकार का नौकर है, वह लार्ड सभा में बैठ सकता है परन्तु बोल नहीं सकता अथवा वोट नहीं दे सकता। १९५८ में लार्ड सभा ने एक प्रस्ताव पास किया जिस में इस बात पर बल दिया गया कि लार्ड सभा के सदस्यों को अवश्य ही लार्ड सभा के अधिवेशनों में आना चाहिए और भाग लेना चाहिए। ऐसा होते हुए भी कोई पीअर छुट्टी के लिए दरख्वास्त दे सकता है और उसकी छुट्टी मंजूर हो सकती है।

पीअरों के विशेषाधिकार (Privileges of Peers)—लार्ड सभा के सदस्यों को लोकसभा के सदस्यो की अपेक्षा अधिक विशेषाधिकार प्राप्त हैं। किन्तु उनमें से अनेक समाप्त हो चुके हैं। अभी उनके कुछ विशेषाधिकार हैं और उनका निर्देश कर[illegible] वांछनीय है। लोक-सभा के सदस्य केवल अध्यक्ष (Speaker) के द्वारा राजा [illegible] सामूहिक रूप से पहुँच सकते हैं, परन्तु लार्ड सभा का प्रत्येक सदस्य व्यक्ति[illegible] राजा से सार्वजनिक विषयों पर वार्ता कर सकता है। लार्ड सभा के [illegible] अधिकार है कि वे सदन के बहुमत के निर्णय के विरुद्ध जोड़कर [illegible] अपना विरोध रिकार्ड करा सकें। वे लोकसभा द्वारा [illegible] (impeachment) को सुनने का अधिकार रखते हैं। वे [illegible] अवमान (contempt) पर अभियोग चला सकते हैं और [illegible] के पश्चात् भी लागू रहता है। प्रत्येक लॉर्ड को [illegible]

अवधि को कम करके एक वर्ष कर दिया गया है। प्रतीक्षा-काल को कम करने पर भी संकट-काल में १९११ के अधिनियम द्वारा प्रदत्त शक्तियों से लाभ नहीं उठाया जा सकता।

लार्ड सभा की आलोचना (Criticism of House of Lords)

(१) लार्ड सभा की अनेक व्यक्तियों ने आलोचना की है। प्रोफेसर लास्की के अनुसार, "लॉर्ड सभा निष्पक्ष (impartial) नहीं है जो कि अपने समय के लोकमत में स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाती है। इसकी रचना दक्षिण-पन्थी कार्यनीति का आधार-भूत भाग है और इसी आशय से इसे रखा गया है।" इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए एक बार बालफोर ने कहा था कि सरकारी दल हो अथवा विरोधी, कंजरवेटिव पार्टी, स्थायी रूप से सत्ताधारी रहती है।

(२) रैम्जे म्योर के अनुसार, *"लार्ड सभा धनियों का सामान्य दुर्ग है।"* लॉर्ड सभा में लोकसभा की अपेक्षा सार्वजनिक कम्पनियों के सचालकों को अधिक स्थान मिले हुए हैं। कोई भी ऐसा महान् राष्ट्रीय उद्योग नहीं है, जिसके नेताओं को लार्ड सभा में उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो। सदन निहित स्वार्थों तथा महान् उद्योगों द्वारा शासित होता है।

(३) ए० एल० राउज़ (A. L. Rowse) के अनुसार, "इसके कार्यों के अध्ययन से पता चलता है कि लार्ड सभा ने, केवल अपनी रचना के कारण, उन सरकारों के विधायक कार्यक्रम में रोड़ा अटकाया है, जोकि उदार (Liberal) अथवा प्रगतिशील (Non-Conservative) थीं; अनेक अवसरों पर उसने कंजरवेटिव सरकारों के उन कानूनों को मान्यता दी है जिनको उदारों की ओर से आने पर रद्द कर दिया गया था और उसके एक सदस्य के अनुसार, वह एक स्वतन्त्र सदन होने की अपेक्षा कंजरवेटिव पार्टी के एक अंग के नाते कार्य करता है और उस समय पार्टी के हितों की रक्षा करता है, जबकि उसके पास सत्ता नहीं होती। अनेक वर्षों से कार्य करते रहने के कारण इसने विधायक रुकावटों की एक कारगर तरकीब की खोज की है, जिसके द्वारा वह सरकारों के उन कानूनों को, जिनको वह नहीं चाहता, उन्हें अनुलम्बित (suspend) करने और अक्सर उन्हें घिस-घिसा कर नष्ट करने में सफल हो जाता है जिसमें वे अपनी लोकप्रियता खो देते हैं और निर्वाचन में वह सरकार सफल हो जाती है, जिसको वह (लार्ड सभा) चाहती है, जबकि वह पुनः सम्मानित स्थान और शान्ति प्राप्त करती है।"

(४) सिडनी तथा बीट्राइस वैब (Sidney and Beatrice Webb) के अनुसार "उसके (लार्ड सभा के) निर्णय उसकी रचना से दूषित होते हैं। यह समस्त निर्मित प्रतिनिधि-संस्थाओं में सब से बुरी है; उसमें शारीरिक श्रम करने वाले वर्ग का कोई प्रतिनिधि नहीं है, न दूकानदार, क्लर्क, तथा अध्यापक वर्ग का; न उस आधी जनता का जो कि नारी-वर्ग कहलाता है, और न कला, विज्ञान अथवा साहित्य का।"

आगस्टाइन बिरेल के अनुसार, *"लार्ड सभा अपने अतिरिक्त और किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करती, और इसे अपने सदस्यों का भी पूर्ण विश्वास प्राप्त नहीं है।"*

(५) लॉर्ड सभा की बैठकों में सदस्यों की अनियमित उपस्थिति की आलोचना की जाती है। लास्की के अनुसार, "लार्ड सभा में लगभग ७४० सदस्य होते हैं; किन्तु कार्य-विधि के अन्तर्गत वह एक बहुत भिन्न संस्था है। उसकी साधारण उपस्थिति लगभग ३५ है। १९१९ से केवल तेरह अवसरों पर इसके विवाद में २०० से अधिक सदस्य उपस्थित रहे हैं। उसी काल में मत-विभाजन पर उपस्थिति का औसत १०० से कम रहा है और उन पीअरों का औसत, जिनका भाषण वर्ष में एक से अधिक बार हुआ है, ९८ है। सदन के लगभग आधे सदस्यों ने कभी भाषण नहीं दिया और लगभग एक सौ ऐसे पीअर हैं (नाबालिगों को छोड़कर) जिन्होंने अभी तक शपथ भी नहीं ली है। अनेक पीअर लॉर्ड सभा में इतने कम आते हैं कि सेवक भी उनको नहीं पहिचान पाते। यह कहा जाता है कि जब १८९३ में ग्लैडस्टोन के द्वितीय होमरूल विधेयक को रद्द करने के उद्देश्य से लॉर्ड सभा की बड़ी रैली हुई, तब, एक पीअर को रोककर द्वारपाल ने यह पूछा कि क्या आप वास्तव में पीअर है? उत्तर यह दिया गया कि "क्या तुम सोच सकते हो कि मैं यदि पीअर न होता, तो इस वाहियात जगह पर क्यों आता?"

(६) यह भी कहा जाता है कि प्रजातन्त्र के युग में आनुवंशिक (hereditary) सदन का होना असंगत है। जैसे कि वंशागत गणितज्ञों, राजनीतिज्ञों, इतिहासकारों आदि की कल्पना करना मूर्खता है, उसी प्रकार वंशागत द्वितीय सदन के विषय में सोचना कष्टकर है। जनरल ब्राइट के अनुसार, "किसी स्वतन्त्र देश में लॉर्ड सभा न तो स्थायी है और न ही हो सकती है।"

एबे साइयस (Abbe Sieyes) के अनुसार, "यदि द्वितीय सदन प्रथम सदन से असहमत है, तो इसका अर्थ यह है कि वह शरारती है, और यदि वह उससे सहमत है, तो उसका यह कृत्य व्यर्थ (superfluous) है।" यह कथन लॉर्ड सभा पर पूर्णरूपेण घटित होता है। जब श्रमिक अथवा उदार दल का मन्त्रिमण्डल बनता है तब लॉर्ड सभा उससे असहमत होती है बस इसीलिए वह शरारती है। वह कानूनों के लाभों की परीक्षा नहीं करती, किन्तु पक्षपात से कार्य करती है। दूसरी ओर जब कंजरवेटिव पार्टी सरकारी पार्टी बनती है तब लॉर्ड सभा सदैव उससे सहमत होती है, इसलिए उसके इस कृत्य को व्यर्थ कहा गया है। वह केवल लोकसभा का कार्य दोबारा करती है, और इस प्रकार उसकी कोई उपादेयता नहीं है।

लॉर्ड सभा उन हितों का प्रतिनिधित्व करती है जो सामान्य प्रगति के विरुद्ध है और ऐसा होने के कारण राष्ट्रीय प्रगति में रुकावट डालती है।

लॉर्ड सभा की उपादेयता (Utility of House of Lords)—यह स्वीकार करने पर भी कि लॉर्ड सभा में अनेक त्रुटियाँ है, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह अनेक लाभदायक कार्य करती है। यदि ऐसा न होता तो लॉर्ड सभा बहुत वर्ष पूर्व समाप्त कर दी गई होती। द्वितीय सदन की सुधार-समिति ने १९१८ में लॉर्ड ब्राइस की अध्यक्षता में लार्ड सभा के चार प्रमुख कार्यों का उल्लेख किया है। यह दीर्घसूत्री (delaying) सदन की तरह कार्य करता है। किसी विधेयक को कानून का रूप धारण करने, जनता की राय को जानने तक के समय के लिए उसे रोक लेता

है। जनता की राय की, विशेषकर उन विधेयकों के सम्बन्ध में, अत्यधिक आवश्यकता है, जो संविधान के मौलिक तत्वों (fundamentals of the Constitution) को प्रभावित करते हैं, या कानून के नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हे, अथवा उन विषयों को अधिक समय नहीं दे पाती है। इस प्रकार के विचार-विनिमय अधिक लाभदायक होते है, क्योंकि वे एक ऐसी सभा में किए जाते हैं, जिनमें वाद-विवाद तथा मत-विभाजन से मन्त्रिमण्डल के भाग्य का निर्णय नही होता।

लार्ड सभा निर्विवाद विधेयकों के सूत्रपात के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इससे लोकसभा का कार्य सुगम हो जाता है।

लार्ड सभा लोकसभा द्वारा प्रेषित विधेयकों पर विचार तथा संशोधन करती है। यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि कार्य-भार के कारण लोकसभा प्रत्येक विधेयक पर पर्याप्त विचार नही कर पाती। लोकसभा अपना समय बचाने के लिए कई उपाय अपनाती है जिससे विधेयक के भाग पर विचार नही हो पाता।

यद्यपि लार्ड सभा की वास्तविक उपस्थिति बहुत कम होती है, तथापि सदस्यों की योग्यता के कारण वहाँ के विचार का स्तर बहुत ऊँचा रहता है। लार्ड सभा में अनेक सदस्य है जो भारत, कनाडा अथवा अन्य उपनिवेशों के महाराज्यपाल (Governor-General) रह चुके हैं। लास्की के अनुसार, प्रायः लार्ड सभा की कार्रवाई में बुद्धिमान् एवं अनुभवी राजनीतिज्ञ भाग लेते हैं और कभी-कभी पादरियों के प्रतिनिधि अथवा प्रमुख विधिवेत्ता लॉर्ड भाग लेते है। "वह आराम से काम करने वाला सदन है और वह लोकसभा द्वारा प्रेषित विधेयकों की आराम से जाँच करता है। वह ऐसे सार्वजनिक प्रश्न भी उपस्थित कर सकता है जिनको तत्कालीन सरकार उस समय कानून बनाने के लिए उचित न समझे।"

लॉर्ड सभा निजी विधेयकों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। लार्ड सभा के सदस्यों के पास पर्याप्त समय रहता है और वे आर्थिक कठिनाइयों से चिन्तित नही रहते, इसलिए वे निजी विधेयकों की उन व्यवस्थाओं की सूक्ष्मताओं की परीक्षा सावधानी से कर सकते हैं जिन्हें समय-समय पर संसद् को स्वीकृति के लिए प्रेषित किया जाता है। यदि लॉर्ड सभा का उन्मूलन कर दिया जाए तो यह अतिरिक्त भार लोकसभा के सदस्यों को ही उठाना पड़ेगा जो उनके लिए उठाना असम्भव है। कारण यह है कि लोकसभा के सभासद कार्य में बहुत व्यस्त रहते है।

लार्ड सभा एक अन्य लाभदायक कार्य कर सकती है। यदि किसी व्यक्ति की सेवाएँ देश के लिए लाभदायक प्रतीत होती हैं और वह व्यक्ति लोकसभा के निर्वाचन में रुचि नहीं लेता, अथवा इस दृष्टि से वह अयोग्य है तो उसे सुगमता से पीअर बनाया जा सकता है और सरकारी कार्य भी सौंपा जा सकता है। इस प्रकार अनुभवी व्यक्तियों की सेवाओं को प्राप्त करके लाभ उठाया जा सकता है।

डा० ऑग (Ogg) के अनुसार, "लार्ड सभा की नामावली (roll) निस्सन्देह ऐसे सदस्यों के नामों से युक्त है, जिनमें न योग्यता है और न दिलचस्पी। लेकिन न तो लोकसभा ही और न कोई अन्य विधायक संस्था पूर्णरूपेण अथवा सम्भवतः रूप से भी ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनी है जो कि पूर्णतः वाञ्छनीय हैं; लार्ड

सभा के सम्बन्ध में कदाचित् ही कोई अयोग्य व्यक्ति सदन के द्वार पर आता है, यदि वह उपस्थित हो भी तो कार्रवाई मे कोई सक्रिय भाग नही लेता। सदन का अधिकाश कार्य सच्चे, योग्य, दिलचस्पी रखने वाले तथा अनुभवी व्यक्तियो के द्वारा सम्पन्न होता है; और सौभाग्य से वे वहाँ पर्याप्त संख्या में हैं। सबसे योग्य व्यक्ति नियमित रूप से न तो भाग लेते है और न ही ले सकते है। कुछ लोग पीअर निर्वाचित होने अथवा वंशानुक्रम मे पीअर बन जाने पर अपना व्यवसाय, विद्याध्ययन या व्यापार करते रहते है। बात यह है कि वे लार्ड बनने के इच्छुक नही होते, और इसलिए अपने दायित्वो को छोड़कर इसकी सदस्यता के कार्य नही करते। यह बात सदिग्ध है कि लोकसभा के कार्य मे लार्ड सभा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता, ईमानदारी तथा धर्म सब का प्रतिनिधित्व है। आध्यात्मिक, बौद्धिक एव भौतिक शक्तियाँ वहाँ पर प्रकट होती है। देश की सेवा वे प्रमुख सभासद करते है, जिन्होंने उसकी समृद्धि को बनाया है, उसके महान् साम्राज्य का प्रबन्ध किया है, देश-सेवा, कूटनीति, युद्ध, राज्य-शासन, कला तथा शिक्षा मे सर्वोच्च स्थिति प्राप्त की है। इस तथ्य को भी नही भुलाया जा सकता कि उद्योगी सदस्यो मे से बहुत-से दीर्घकाल तक अपने आरम्भिक दिनों में लोकसभा के सदस्य रहे है। वह (लोकप्रिय सदन) वास्तव में लॉर्ड सभा का सच्चे अर्थो में पोषणालय (nursery) है। अग्रेजी इतिहास के विद्यार्थियो को यह बताने की आवश्यकता नही है कि अनेक अवसरों पर द्वितीय सदन ने राष्ट्र की इच्छा अथवा राजनीतिक अवस्था के तथ्यों की व्याख्या प्रथम सदन की अपेक्षा अधिक अच्छी प्रकार से की है और एक से अधिक अवसरों पर देश की ऐसे कानून से रक्षा की है, जो जल्दी मे बनाया गया था और जिस पर पर्याप्त विचार नहीं हुआ था।" पुन: "लार्ड सभा ने भूतकाल मे ब्रिटिश राष्ट्र की अच्छी प्रकार से सेवा की है। आज हम, वास्तव मे उसको हटा सकते है। किन्तु, उसको पुनर्गठित करके आने वाले वर्षों में उससे और भी लाभदायक कार्य लिया जा सकता है।"

डब्ल्यू० बी० मनरो (W. B. Munro) के अनुसार, हाउस आफ लार्डस् अपना कार्य ठीक ही करता दिखाई देता है। "यह गैर-वित्तीय मामलो की जाँच और उनमें सुधार करता है। अवसर पडने पर यह प्रत्येक बिल (Bill) के कानून का रूप धारण करने से पहले, उस पर सार्वजनिक विचार-विनिमय के लिए समय देने पर जोर देता है। वह ठंडे विचार से सोचने के लिए बाध्य करता है और गर्मी शान्त होने देने के लिए अवसर प्रदान करता है।"

हाउस आफ लार्ड्स की उपयोगिता के सम्बन्ध मे बैगहोट (Bagehot) ने इस प्रकार लिखा है, "प्रथम सदन सर्वगुणसम्पन्न हो तो द्वितीय सदन का मूल्य विशेष नही रहेगा। यदि हमारे पास उत्तम हाउस आफ कामन्स है, जिसमें पूर्ण रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व होता है, सदा मध्यमार्गी है, कभी आवेश मे नही आता, जिसके सदस्यों के पास अवकाश की कमी नही है तथा जो विचार करने के उपयुक्त स्थिर तथा धीमे तरीको को कभी नही छोड़ता, जब इसकी यह स्थिति है तब तो निस्सन्देह हमें ... सदन की जरूरत नहीं...। यद्यपि उत्तम हाउस आफ कामन्स के होते हुए ... अनावश्यक और इसलिए हानिकर भी है, तो भी सदन के साथ ही

वाला और फुरसत में विचार करने वाला सदन, यदि बिलकुल जरूरी नहीं, तो भी इसकी आवश्यकता बनी ही रहती है।"

ऑग और जिंक (Ogg and Jink) के अनुसार, "यह बात भी नहीं भुलाई जा सकती कि हाउस आफ लार्ड्स के बहुत से क्रियाशील सदस्यों को अपने जीवन के प्रारम्भ में हाउस आफ कामन्स में लम्बी सेवा का अवसर मिला है और हाउस आफ कामन्स बहुत हद तक हाउस आफ लार्ड्स की पोषण-भूमि है। इंगलैंड के इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि बहुत से अवसरों पर द्वितीय सदन ने राष्ट्र की इच्छा की व्याख्या प्रथम सदन से अपेक्षाकृत अधिक उचित की है और राजनैतिक स्थितियों को उससे अधिक ठीक प्रकार से समझा है, और कई बार देश को जल्दबाजी तथा कम सोच-विचार के कानूनों से बचाया है। यह ठीक वैसा द्वितीय सदन नहीं है जैसा कि सदन के निर्माण का प्रश्न उठने पर अंग्रेज उसे बनाना चाहेंगे। लेकिन चूंकि यह मौजूद है और राष्ट्रीय जीवन से बंधा हुआ है, इसलिए समझदारी की बात यह है कि इसको बिना विचारे समाप्त नहीं कर देना चाहिए, बल्कि इसको उस रूप से नियमित कर देना चाहिए जो ब्राइस (Bryce) की रिपोर्ट में निर्धारित किया गया है। वास्तव में यह ब्रिटिश राजनैतिक विकास की परम्परा के अनुरूप होगा।"

लास्की के अनुसार, "यदि जनतन्त्रीय राज्य में दूसरा सदन रखना हो, तो लॉर्ड सभा, जब कि कंजरवेटिव सरकार हो, विश्व में सबसे अच्छा दूसरा सदन है। उसके विचार का स्तर ऊंचा होता है। वह अस्थायी भावनाओं की लहरों (temporary gusts of passion) की ओर ध्यान नहीं देता, जिससे निर्वाचकों को धोखा दिया जा सकता है। उसके पास उन समस्त विषयों पर विचार करने के लिए समय होता है जिनके लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है और कार्यभार से दबी लोकसभा उन पर कठिनाई से विचार कर सकती है। वह वास्तविक विवाद वाली समस्याएँ केवल उस समय उपस्थित करता है, जब प्रगतिशील दल की सरकार होती है। उस समय इसका रूप 'धनियों के सामान्य दुर्ग' का रूप होता है। वह कंजरवेटिव पार्टी की सुरक्षित शक्ति के रूप में कार्य करता है जो अपने सामर्थ्यानुसार निर्वाचन में प्रगतिशील पार्टी की विजय के परिणामों को ठीक करने के लिए दृढ़-संकल्प होती है।"

लॉर्ड सभा के सुधार के सुझाव (Proposals for Reform of House of Lords)—लॉर्ड सभा के सुधार के लिए समय-समय पर प्रस्तुत की गई योजनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। लॉर्ड रसल ने १८६९ में आजीवन पीयर बनाने का सुझाव दिया, किन्तु उसका सुझाव रद्द कर दिया गया। १८८८ में लॉर्ड सैलिसबरी ने धीरे-धीरे ५० आजीवन पीअर बनाने का प्रस्ताव किया, किन्तु यह प्रयास भी विफल रहा। लॉर्ड सभा के अवाञ्छनीय सदस्यों को बुलाने की प्रथा को समाप्त करने का प्रस्ताव किया गया था, पर उसका भी परिणाम पूर्ववत् रहा।

१९०९ की लैंसडाउन योजना में लार्ड सभा के सभासदों की संख्या ३३० रखने का सुझाव दिया गया था। उसमें १०० प्रतिनिधि समस्त पीअरों के, १०० व्यक्ति द्वारा नियुक्त, १२० सदस्य लोकसभा द्वारा प्रादेशिक आधार पर निर्वाचित, पाँच

सदस्य बिशपों द्वारा निर्वाचित आदि होते थे। राजवश के राजकुमार, तथा आर्क बिशप अपीलीय लार्ड सभा के सदस्य होते थे, क्राउन प्रतिवर्ष पाँच से अधिक पीअर नही बना सकता था। किन्तु यह योजना अन्त में रद्द कर दी गई थी।

लॉर्ड ब्राइस की अध्यक्षता मे दोनों सदनों के बराबर-बराबर सदस्यों से युक्त ३० सदस्यो की एक समिति नियुक्त की गई और उसने १९१८ मे अपने सुझाव दिए। लॉर्ड सभा की संख्या ३२७ रखने का प्रस्ताव था। उनमे से ३/४ का निर्वाचन लोकसभा के सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional Representation) के द्वारा करते थे। निर्वाचन के लिए लोकसभा के सदस्यों के २३ वर्ग बनाये जाते थे, कोई भी तत्कालीन लोकसभा का सदस्य लॉर्ड सभा का सदस्य नही बन सकता था। शेष सदस्यों का निर्वाचन दोनों सदनो की सयुक्त स्थायी समिति (Joint Standing Committee) पीअरों मे से करती थी। योजना को क्रमिक गति से कार्यान्वित करना था। अन्त मे, लॉर्ड सभा के सदस्य १२ वर्ष के लिए निर्वाचित होते और १/३ प्रति चौथे वर्ष हट जाते थे। दोनो सदनो की एक सयुक्त समिति (Joint Committee) इस बात का निर्णय करती थी कि कोई विधेयक वित्तीय विधेयक है या नही। दोनों सदनों में मत-भिन्नता होने पर विषय को ६० सदस्यों की संयुक्त समिति मे भेजा जाता था जिसमे प्रत्येक सदन के ३० सदस्य होते थे। ब्राइस-योजना का अन्त भी पूर्ववर्ती योजनाओ से भिन्न नही हुआ।

ब्राइस-योजना (Bryce Plan) के अनुसार, हाउस आफ लार्ड्स के पुनर्गठित सदन को निम्नलिखित कार्य करने होते थे—

१. हाउस आफ कामन्स के द्वारा पास किए गये बिलों के परीक्षण और सशोधन का कार्य बहुत आवश्यक हो गया था, क्योकि पिछले ३० वर्षों में बहुत बार हाउस आफ कामन्स को विवाद को सीमित करने वाले विशेष नियमों के अधीन कार्य करना पडा था।

२. व्यावहारिक तौर पर गैर-विवादास्पद बिलों को पास करना, ताकि हाउस आफ कामन्स मे वे आसानी से पास किये जा सकें; बशर्ते कि उन पर हाउस आफ कामन्स मे पेश करने से पहले अच्छी प्रकार से विचार हो गया है।

३ किसी बिल के कानून बनने से पहले उसमें आवश्यकतानुसार देर लगाना, ताकि देश उस पर भली प्रकार अपनी राय जाहिर कर सके। ऐसा विशेषकर संविधान को प्रभावित करने वाले तथा कानून बनाने के सिद्धान्तों को स्थापन करने वाले बिलों तथा देश मे विवाद खडा कर देने वाले बिलों के सम्बन्ध में करना जरूरी होना है।

४. महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर सम्पूर्ण और स्वतन्त्र वाद-विवाद करना, जैसे विदेशी नीति के प्रश्न, जिन पर कि हाउस आफ कामन्स व्यवस्थापक कार्य में व्यस्त रहने के कारण समयाभाव होने की वजह से विचार नहीं कर सकता। ऐसे [illegible] ऐसे सदन में करना अधिक लाभदायक होता है, जिसमें बहस और (division) पर कार्यपालिका (executive) का भाग्य निर्भर नहीं [illegible]

सन् १९२२ में मन्त्रिमण्डल ने [illegible]

उपस्थित किए। राजवश के राजकुमारों, धार्मिक पीअरों तथा विधिवेत्ता लार्डों के अतिरिक्त कुछ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विधि से निर्वाचित सदस्य लार्ड सभा के सदस्य बनाए जाते थे, कुछ क्रम से निर्वाचित पैतृक पीअर, और कुछ 'क्राउन' द्वारा मनोनीत सदस्य होते थे। कानून के द्वारा उनकी संख्या निश्चित की जाती थी। राजवंशीय राजकुमारों तथा विधिवेत्ता लॉर्डों के अतिरिक्त अन्य सदस्यों का कार्य-काल कानून द्वारा निश्चित किया जाता था। लॉर्ड सभा के सदस्यों की संख्या लगभग ३५० होती थी। प्रत्येक सदन के सात-सात सदस्यों से बनी संयुक्त समिति इस बात का निर्णय करती थी कि कोई विधेयक पूर्णतया अथवा अंशतया धन सम्बन्धी है या नहीं। ऐसी समिति प्रत्येक संसद् के आरम्भ होने के अवसर पर बनाई जाती थी। पुनर्गठित लार्ड सभा को किसी धन विधेयक को अस्वीकार अथवा संशोधित करने का अधिकार न होता था। लोक सभा का वक्ता (Speaker) संयुक्त समिति का पदेन अध्यक्ष (ex-officio chairman) होता था। सन् १९११ के संसद् अधिनियम में निर्धारित विधि का पालन उन विधेयकों के सम्बन्ध मे नहीं करना था जिनके द्वारा सदन की शक्ति अथवा संविधान मे संशोधन अथवा परिवर्तन किया जाता था। ये संकल्प भी दबे रह गये।

१९२५ मे लार्ड बिरकनहैड ने एक योजना लॉर्ड सभा में प्रस्तुत की, किन्तु उसका यह प्रयास विफल रहा।

१९२७ मे लार्ड सभा ने विचार करके एक प्रस्ताव द्वारा यह घोषणा की कि "यह संसद् अधिनियम की कमियों को ठीक करने, सदस्यता को सीमित करने तथा स्पष्ट करने के हेतु किसी भी न्यायोचित प्रस्ताव (reasonable measure) का स्वागत करेगी।" सरकार ने १९२२ की योजना के आधार पर एक पुनर्निर्माण की योजना प्रस्तुत की, किन्तु वह भी व्यर्थ रही।

१९२८ में, लार्ड क्लैरन्डन ने सुझाव दिया कि लार्ड सभा में पीअरों द्वारा निर्वाचित १५० सदस्य तथा क्राउन द्वारा मनोनीत १५० सदस्य हो। वे लोकसभा में विभिन्न पार्टियो के अनुपात से मनोनीत किये जायें। क्राउन कुछ सदस्यों को आजीवन पीअर बनाए।

१९३२ मे लार्ड सैलिसबरी ने ३०० सदस्यो की लार्ड सभा का प्रस्ताव किया। उनमें से १५० सदस्यों को पीअर १२ वर्ष के लिए निर्वाचित करते थे और १५० सदस्यो को 'क्राउन' उतने ही काल के लिए मनोनीत करता। क्राउन को प्रतिवर्ष १२ से अधिक नये पीअर बनाने का अधिकार नही था। सिवाय इसके कि धन विधेयक का निर्णय एक संयुक्त समिति करती, जिसका अध्यक्ष लोकसभा का अध्यक्ष होता, लॉर्ड सभा की शक्तियों में कमी नहीं की गई थी।

१९३४ में, श्रमिक दल ने घोषित किया कि "लेबर पार्टी, बहुमत प्राप्त करने पर इसका यह अर्थ लगाएगी कि उसके द्वारा लार्ड सभा के उन्मूलन का अधिकार प्राप्त है, विशेषकर यदि लार्ड सभा उसके महत्त्वपूर्ण कानूनों को समाप्त करने का प्रयत्न करे।"

१९४७ में, प्रधानमन्त्री एटली (Attlee) ने लार्ड सभा की शक्तियों पर कुछ प्रतिबन्धों (restrictions) का प्रस्ताव किया। समस्त पार्टियों के नेता कुछ सिद्धान्तों

पर एकमत हो गए। तय हुआ कि लार्ड सभा को लोक सभा का पूरक (supplementary) होना चाहिए, न कि विरोधी। वंशागत आधार पर लार्ड सभा मे उपस्थित होने तथा मत देने के अधिकार को समाप्त कर दिया जाये; लार्ड सभा मे लगभग ३०० सदस्य हो, लार्ड सभा का इस प्रकार से पुनर्निर्माण किया जाये कि उसमे किसी भी पार्टी को स्थायी बहुमत प्राप्त न हो; उसके सदस्य दोनो वर्गो (स्त्री तथा पुरुष) से लिए जाएँ और उन्हे उनकी सेवा के बदले भत्ता मिले। संसद् के सदस्यो के लिए कर्त्तव्य की अवहेलना तथा अयोग्यता (disqualification) प्रदर्शित करने के बारे में भी व्यवस्था थी। मामले को समाप्त करना पड़ा क्योंकि लार्ड सभा के सगठन के सम्बन्ध में सहमति न हो पाई।

१९४७ मे, लेबर सरकार ने अनुलम्बन निषेधाधिकार (suspensivo veto) की अवधि दो वर्ष से घटा कर एक वर्ष करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया। १९४९ के अधिनियम द्वारा अवधि को घटा कर एक वर्ष कर दिया गया।

डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के अनुसार, यदि लार्ड सभा के सुधार की समस्या पर उस समय विचार किया जाये जब दोनो सदनों मे परस्पर कोई विवाद न हो तो सम्भवतः निम्न सिद्धान्त स्वीकृत किये जा सकते है—

(१) "लॉर्ड सभा का रखना वांछनीय है, जहाँ पर सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्नो पर विचार किया जा सके लेकिन यह विचार राजनैतिक विवादास्पद विषयों पर न हो; जहाँ सरकारी कानूनों की त्रुटियो को दूर किया जा सके और जहाँ प्रशासन के संसदीय नियन्त्रण के टैकनिकल रूप की ओर ध्यान दिया जा सके, लेकिन वे विवादास्पद न हों।

(२) इस प्रयोजन के लिए लार्ड सभा के सदस्यों की दो श्रेणियाँ रखना (रायल ड्यूको, कुछ आर्कबिशपो तथा विशपो और अपीलीय लार्डो को छोड कर) सुगम होगा।

(क) वे व्यक्ति जिन्होने राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे विशेष योग्यता प्राप्त की हो; जिनके विचार सार्वजनिक नीति के कुछ अगों के सम्बन्ध मे मनन करने योग्य हो और जो संसद् के आजीवन सदस्य नियुक्त किये जायें, और

(ख) वे व्यक्ति जो जनमत के अधिक संपर्क मे हों किन्तु सक्रिय राजनीतिज्ञ न हों और लोकसभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व आधार पर प्रत्येक संसद् के लिए निर्वाचित किये जाएँ।

(३) सभवतः इस व्यवस्था मे कन्जरवेटिव का स्थायी बहुमत हो जायेगा, किन्तु दूसरी पार्टियों को इस पर गम्भीर आपत्ति नही होगी यदि अनुलम्बन अवधि अधिकाधिक एक वर्ष हो और धन विधेयक रोके न जा सके।

(४) कोई संवैधानिक प्रकार का कानून लार्ड सभा की स्वीकृति के बिना उस समय तक स्वीकार न किया जाये जब तक लोकसभा उसे दो निरन्तर सत्रों (Sessions) मे पारित न करे।"

हम इस विवाद का उपसंहार प्रो० लास्की के इन शब्दों के साथ कर सकते हैं: "ऐसा कोई कन्जरवेटिव सिद्धान्त लार्ड सभा के सुधार के लिए नही है, जिस पर

लेबर पार्टी की स्वीकृति की आशा की जा सके। यह भी कह देना उचित होगा कि किसी लेबर प्रस्ताव पर कन्जरवेटिवों का सहयोग मिलना असम्भव है। पार्टी की औपचारिक नीति अभी तक एक-सदनी सरकार के पक्ष में है और इस दिशा में सोचने का प्रबल और मुख्य कारण है कि इसके पक्ष में पर्याप्त राय है। एब साईज़ का पुराना विचार अनेक साधारण व्यक्तियों को अभी तक दिखाई देता है कि यदि दूसरा सदन पहले सदन से सहमत होता है तो वह व्यर्थ है, और यदि वह असहमत होता है तो वह शरारती है। इसके अतिरिक्त, संसदीय प्रणाली के युद्धोत्तर अनुभव ने भी उक्त विचार को दृढ किया है। उसने यह प्रगट किया है कि दूसरा सदन या तो प्रगतिशील सरकार के विरुद्ध प्रतिक्रियावादियों का एक साधन है अथवा प्रत्येक विषय में उसका प्रमुख कार्य परिवर्तन की गति को उस समय धीमा करना है जब तथ्य सामाजिक सिद्धान्तों के तेज़ी से सुधार की माँग करते हैं। लेबर पार्टी इस विचार से प्रभावित नही हुई है कि अधिकांश आधुनिक राज्यों में दूसरा सदन है, इसलिए उसके अस्तित्व को राजनैतिक अनुभव का एक स्वतःसिद्ध सिद्धान्त मान लिया जाए······समाजवादी लेखकों ने निर्देश किया है कि दूसरे सदन के सिद्धान्त के पक्ष में बेन्थम, फ्रैंकलिन, कोन डोरसेंट और जैफरसन की श्रेणी के विचारक हैं।

"लेकिन युद्ध के पश्चात् समस्या पर सामान्य सिद्धान्तों की दृष्टि से विचार नही किया गया है। यदि ऐसा हो तो यह सम्भव है कि पार्टी इस शर्त पर एक छोटे नजरसानी (revision) करने वाले सदन के विचार को स्वीकार कर ले कि उसे लोकसभा द्वारा पारित विधेयकों के मार्ग को अवरुद्ध करने के सम्बन्ध मे कोई प्रभावी शक्ति प्राप्त न हो। नई संस्था में सौ सदस्य रखने का विचार है और उसका निर्वाचन प्रत्येक नव-निर्वाचित लोक-सभा निर्वाचन में भाग लेने वाली पार्टियों की शक्ति के अनुपात में उन सूचियों (lists) से करे, जिनको निर्वाचक पार्टियों ने तैयार किया हो। इसलिये यह सदन लोकसभा का ही दूसरा रूप होगा और उसकी सदस्यता प्रत्येक लोकसभा के भंग होने के पश्चात् नयी की जायेगी। जिस सरकार का लोकसभा में बहुमत होगा, उसे पुनरीक्षण संस्था (revising body) में स्वतः ही बहुमत प्राप्त होगा। उसे अपने कार्यक्रम में देरी अथवा समाप्ति का डर नही रहेगा। वे समस्त लाभप्रद कार्य नयी संस्था भी पूर्ण करेगी जिनको लार्ड-सभा करती है। दोनों ही ओर योग्य व्यक्ति रहेंगे यदि वे पार्टी के नाम पर चुनाव लड़ने को तैयार हों। वह उन वृद्ध राजनीतिज्ञों के लिए विश्राम करने का स्थान होगी जो सामान्य निर्वाचन के कष्टों को झेलने मे असमर्थ हों और लोक-सभा के थका देने वाले कार्य से बचना चाहें। वह बड़े विषयों को सामान्य रूप में उसी प्रकार निपटा सकेगी जैसे लार्ड सभा निपटाती रही है। वह परामर्श, उत्साह तथा चेतावनी देने के लिये एक उच्चकोटि का सिद्धान्त स्वीकार करने मे समर्थ होगी। उसे सरकार के कानूनों के कार्यक्रम मे हस्तक्षेप करने की महत्त्वपूर्ण शक्ति प्राप्त नहीं होगी।" (Parliamentary Government in England, Pp 123-4)

लोकसभा : गठन (House of Commons : Composition)—यद्यपि इसे निम्न सदन कहा जाता है, तथापि यह लार्ड सभा की अपेक्षा अधिक

शक्तिशाली तथा महत्त्वपूर्ण है। १९४८ से पूर्व लोकसभा के सदस्यों की संख्या ६४० थी। किन्तु १९४८ में, विश्वविद्यालयों से लोकसभा में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार छीन लिया गया और सदस्य संख्या ६२५ हो गई।

१९४९ में एक अधिनियम पास किया गया और १९५८ में उसका संशोधन किया गया। संशोधित अधिनियम के अनुसार चार स्थायी Boundary Commissions स्थापित किये गये। लोक सभा का Speaker उन चारों कमीशनों का अध्यक्ष है। ऐसी व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक १० अथवा १५ वर्ष के बाद इस बात की जाँच-पड़ताल की जाए कि जनसंख्या के अनुसार लोक-सभा के चुनाव-क्षेत्रों में भी तबदीली की जाए। जब १९५४ में जाँच-पड़ताल की गई तब ६ पुराने चुनाव-क्षेत्र समाप्त किए गए और ११ नये चुनाव-क्षेत्र स्थापित किये गये।

१९२८ में एक अधिनियम पास किया गया जिससे पुरुषों तथा स्त्रियों को वोट के समान अधिकार दिये गये। ऐसी व्यवस्था की गई कि जो कोई व्यक्ति किसी स्थान पर ३ मास तक रहा है वह वहाँ अपना वोट दे सकता है। उस व्यक्ति को भी वोट का अधिकार दिया गया जिसके पास जमीन अथवा काम करने का ऐसा स्थान हो जिसकी वार्षिक आमदनी १० पौण्ड हो। इंगलैंड के विश्वविद्यालयों के सब स्नातकों (Graduates) को भी वोट का अधिकार दिया गया। १९४८ के अधिनियम ने वह सब वोटें समाप्त कर दी जिनका आधार किसी विश्वविद्यालय की उपाधि थी अथवा कारोबार का स्थान। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए केवल एक वोट रह गया और Plural voting की बिल्कुल समाप्ति कर दी गई। वर्तमान अवस्था यह है कि जो कोई व्यक्ति जहाँ कहीं १० अक्तूबर को रहता है वहाँ ही उसे वोट देने का अधिकार होता है। यह आवश्यक नहीं कि वह कुछ समय के लिये वहाँ रहा हो।

इंगलैण्ड में विदेशियों, बच्चों, लार्ड सभा के सदस्यों, ऐसे व्यक्ति जिनका दिमाग ठीक न हो अथवा वे किसी विशेष प्रकार के अपराधी हों, इत्यादि को वोट देने का अधिकार नहीं है। २१ वर्ष की आयु से कम का कोई नर अथवा नारी वोट नहीं दे सकता।

कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो लोक सभा के सदस्य नहीं बन सकते। इस श्रेणी में वे लोग आते हैं जो विदेशी हों, बच्चे हों, जिनका दिमाग ठीक न हो, लार्ड सभा के सदस्य हों, जिन्होंने अपना दिवाला निकाल रखा हो इत्यादि। १९५७ के अधिनियम में उन सब अधिकारियों का वर्णन किया गया है जो Parliament के सदस्य नहीं बन सकते। कई प्रकार के न्यायाधीश लोक-सभा के सदस्य नहीं बन सकते। जो व्यक्ति सरकार की नौकरी करता है वह भी लोक-सभा का सदस्य नहीं बन सकता है और न ही रह सकता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति जो कि फौज में किसी भी पद पर क्यों न हो, लोक-सभा का सदस्य नहीं बन सकता। इसी प्रकार पुलिस के अफसर भी लोक-सभा के सदस्य नहीं बन सकते। जो व्यक्ति किसी भी कमीशन, बोर्ड अथवा ट्रिब्युनेल (Tribunal) का सदस्य है, लोक-सभा का सदस्य नहीं बन सकता।

चुनाव-प्रणाली—आलोचक हाउस ऑफ कामन्ज की चुनाव-प्रणाली के कुछ

दोषों की ओर इशारा करते है। बहुमत वोट की प्रणाली मे जो कि इंगलैंड में प्रचलित है, हाऊस ऑफ कामन्ज़ में जनमत के सच्चे प्रतिनिधि नही पहुँच पाते। एक निर्वाचन-क्षेत्र मे, जहाँ एक सीट के लिए दो से अधिक उम्मीदवार खड़े हुए हैं, हो सकता है कि सफल उम्मीदवार को बहुमत न प्राप्त हुआ हो, लेकिन वह उस निर्वाचन-क्षेत्र के प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित करार दे दिया जाता है। अधिकतर निर्वाचन-क्षेत्रों में दो या तीन उम्मीदवार होते हैं। जहाँ तीन उम्मीदवार होते हैं वहाँ मतदाता को चुनने की स्वतन्त्रता काफी रहती है, लेकिन तब भी सम्भव है कि जिस उम्मीदवार के विचार मतदाता से बहुत मिलते है, वह मतदाता के विचार से संसद् मे भेजे जाने लायक व्यक्ति न हो। उसके कुछ विचार ऐसे हो सकते हैं, जिनसे उसका गहरा मतभेद हो। जहाँ सिर्फ दो उम्मीदवार हैं, वहाँ भी बहुत-से मतदाता ऐसे होते है, जो दोनो मे से किसी को भी पसन्द नही करते। उदाहरण के तौर पर, एक संरक्षण नीति का हामी हो (Protectionist) और दूसरा समाजवादी हो, और मतदाता का विश्वास हो कि दोनों ही नीतियाँ देश के लिए हानिकारक हैं। अगर फिर भी वह किसी भी उम्मीदवार को वोट देता है, तब उसकी राय का सही प्रतिनिधित्व नही होगा, और उसका समर्थन ऐसे मामले के लिए हो जाएगा जिसे वह बिलकुल नही चाहता। उसके सामने यही रास्ता रह जाता है कि या तो वह वोट ही न दे और यदि दे तो उसे दे, जिसके वह कम खिलाफ है। बहुत बार उसे ऐसा ही करना पडता है। फलस्वरूप यह बताना कठिन होता है कि जो बहुमत प्राप्त हुआ है वह सही बहुमत है अथवा नहीं। समस्त देश के चुनाव मे यही बात पायी जाती है। साथ ही, यदि सफल उम्मीदवार को डाले गए वास्तविक वोटों की अल्पसंख्या ही पड़ी हो, तो भी उसे बहुसंख्या का प्रतिनिधि मान लिया जाता है।

इंगलैंड में आम चुनाव से जनमत (popular will) का विचित्र विकृत स्वरूप दिखाई देता है। यदि तीन पार्टियाँ चुनाव लड रही हैं तो हो सकता है कि एक पार्टी को सबसे अधिक वोट प्राप्त हुए हों और फिर भी वह हाऊस ऑफ कामन्ज़ की एक भी सीट न जीत पायी हो। ऐसा उस हालत मे होता है जब कि पार्टी के उम्मीदवारो को बहुत से चुनाव-क्षेत्रो में बीच की स्थिति हो जब कि इसकी विरोधी पार्टी के उम्मीदवार कभी अल्प बहुमत से जीत जाते हों, और कभी भारी बहुमत से हार जाते हों। वह पार्टी, जिसका देश में अल्पमत हो, वह हाऊस ऑफ कामन्ज मे काफी बहुमत प्राप्त कर सकती है। और प्रथम महायुद्ध के बाद तीन बार ऐसा ही हुआ है। परिणाम यह होता है कि चुनाव एक प्रकार का जुआ बन जाता है और ऐसा तत्व राष्ट्रों के राजनैतिक जीवन और सरकार की नीतियो पर बुरा प्रभाव डालता है।

प्रथम महायुद्ध के तुरन्त बाद १९१८ के चुनावों मे मिली-जुली सरकार के पक्ष वाले लोगों (coalitionists) को हाऊस ऑफ कामन्ज में ४७२ और दूसरी पार्टियों को १३२ सीटे प्राप्त हुई। इस प्रकार संयुक्त मन्त्रिमण्डल (coalition) को ४—१ के अनुपात से बहुमत प्राप्त हुआ। लेकिन विभिन्न पार्टियों को प्राप्त वोटों के विश्लेषण से पता चलता है कि संयुक्त मन्त्रिमण्डल पार्टियों को सिर्फ ५२% वोट और विरोधी पार्टियों को ४८%। यदि सीटें प्राप्त वोटों के आधार पर दी

जाती, तो सयुक्त मन्त्रिमण्डल को सिर्फ ३० वोटो का बहुमत प्राप्त होता, ३४२ वोटों का नही। १९२२ मे अनुदार दल ने ३४२ सीटे जीतीं और हाउस ऑफ कामन्ज मे दूसरी पार्टियो पर स्पष्ट ७९ सीटों का बहुमत हासिल कर लिया। इसके बावजूद अनुदार दल को डाले गए कुल वोटों का ३८% प्राप्त हुआ। उदार दलवालों को २८·५% और लेबर पार्टी को २९·५% वोट प्राप्त हुए। यद्यपि अनुदार दल सबसे बड़ी पार्टी थी, फिर भी उसे इतना स्पष्ट बहुमत प्राप्त नही हुआ जितना होना चाहिए था। उदार दल वालों को सबसे अधिक हानि हुई और अनुदार दल वालो ने दूसरो से लाभ उठाया। इस प्रकार हाऊस ऑफ कामन्ज मे देश की राजनैतिक पार्टियों का सही प्रतिनिधित्व नही हो सका।

१९२३ के आम चुनाव सरक्षण (Protection) के प्रश्न पर लड़े गए थे। अनुदार दल वालों को ३८ प्रतिशत वोट मिले, जितने कि उन्हे १९२२ में मिले थे, लेकिन उनकी ९० सीटें छिन गयी और सिर्फ १०० सीटो का अल्पमत उन्हे प्राप्त हुआ। फिर भी उन्हें अपने असली हिसाब से २४ सीटें अधिक प्राप्त हुई और उदार दल वालो को अपने हिसाब से २४ सीटें कम प्राप्त हुई। १९४४ के आम चुनावों मे उदार दल वालो को सिर्फ २४ सीटे प्राप्त हुई यद्यपि प्राप्त वोटो के आधार पर उन्हें १०८ सीटें प्राप्त होनी चाहिए थी। अनुदार दल वालों को ४१५ सीटें प्राप्त हुई यद्यपि उन्हें सिर्फ ४७% वोट प्राप्त हुए। देश मे प्राप्त समर्थन के आधार पर उन्हे २८९ सीटो से अधिक प्राप्त नही होनी चाहिए थी। १९२९ के चुनाव मे लेबर पार्टी को कुल ३९% वोट प्राप्त हुए। उन्हें सिर्फ २४४ सीटें मिलनी चाहिए थी लेकिन उन्हें २८८ सीटे प्राप्त हुईं।

इससे पता चलता है कि ब्रिटिश चुनाव-प्रणाली बहुसंख्यक मतदाताओ को मताधिकार से वचित कर देती है। यह अन्दाज़ा लगाया गया है कि कुल मतदाताओं का लगभग ७०% या तो घटनाओ पर अपना प्रभाव नही डाल पाता या उसे उन नीतियों और सिद्धान्तो का समर्थन करना पडता है, जिनसे उसका मतभेद होता है। निर्विरोध चुनाव से कुछ मतदाताओं के वोट छिन जाते है। कुछ असफल उम्मीदवारों के लिए वोट देते है, अतः उनके वोट व्यर्थ चले जाते है। कुछ किसी भी उम्मीदवार के लिए वोट नहीं देते क्योंकि वे किसी भी उम्मीदवार को पसन्द नही करते। कुछ ऐसे भी होते है, जो अनिच्छा से उस व्यक्ति के पक्ष में वोट डालते है, जिसके मत से उनका मत नही मिलता; ऐसा करना अन्य प्राप्य विकल्पों से कम आपत्तिजनक है।

स्थिति को सुधारने के लिए बहुत-से सुझाव दिए गए है। इंगलैंड की आनुपातिक प्रतिनिधित्व सोसाइटी (Proportional Representation Society) के सदस्यों ने समस्या को सुलझाने के लिए एकाकी हस्तांतरणीय (single transferable) वोट की प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया है। आधुनिक मैम्बर चुनाव-क्षेत्रों को कम-से-कम तीन और अधिक-से-अधिक सात मैम्बर के चुनाव-क्षेत्रों में परिवर्तित कर देना चाहिए। प्रत्येक मतदाता को केवल एक ही वोट दिया जाए लेकिन १, २, ३, इत्यादि के द्वारा उसे विभिन्न उम्मीदवारों के प्रति अपनी प्राथमिकता प्रदर्शित करने का अधिकार दिया जाए। यदि उस उम्मीदवार को अधिक वोट नही मिलते जिसे

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोकसभा की अवधि पूरी तरह से निश्चित कर दी गई है। निरूढि यह है कि यदि प्रधान-मन्त्री राजा से लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना करे तो उसे उसके अनुसार कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार लोकसभा को भंग करके उसकी अवधि कम की जा सकती है। इसके अतिरिक्त संसद् के अधिनियम द्वारा लोकसभा की अवधि को बढ़ाया अथवा घटाया जा सकता है और ऐसा किया भी गया है। इसी प्रकार लोकसभा का राजा की मृत्यु से भी कोई सम्बन्ध नहीं। यदि राजा की मृत्यु के समय लोकसभा पहले से ही स्थगित हो या उसका सत्रावसान हुआ हो तो वह बिना किसी विधिवत्-आह्वान (summons) के अपनी बैठकें आरम्भ कर देती है।

निम्नलिखित तालिका से हाऊस ऑफ कामन्ज के १९०६ व १९५० के बीच के जीवन के सम्बन्ध में पता चलता है—

हाऊस ऑफ कामन्ज की पहली बैठक की तिथि	भंग होने की तिथि	कार्यावधि वर्ष	महीने	दिन
फरवरी १३, १९०६	जनवरी १०, १९१०	३	११	२४
फरवरी १५, १९१०	नवम्बर २८, १९१०	०	९	१३
जनवरी ३१, १९११	नवम्बर २५, १९१८	७	९	२५
फरवरी ४, १९१९	अक्तूबर २६, १९२२	३	८	२२
नवम्बर २०, १९२२	नवम्बर १६, १९२३	०	११	२७
जनवरी ८, १९२४	अक्तूबर ९, १९२४	०	९	१
दिसम्बर २५, १९२४	मई १०, १९२९	४	५	७
जून २५, १९२९	अगस्त २४, १९३१	२	१	२९
नवम्बर ३, १९३१	अक्तूबर २५, १९३५	३	११	२२
नवम्बर २६, १९३५	जून १५, १९४५	९	६	२०
जुलाई, २१, १९४५	फरवरी ३, १९५०	४	६	१२

लोकसभा की शक्तियाँ (Powers of House of Commons)—लोकसभा का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। १९११ का संसद्-अधिनियम निश्चित करता है कि समस्त धन-विधेयक लोकसभा में ही आरम्भ किए जाएँ। यह सत्य है कि धन-विधेयक लार्ड सभा को भेजे जाते है किन्तु उसकी स्वीकृति आवश्यक नहीं है। देश के कोष पर लोकसभा का पूर्ण नियन्त्रण है। सामान्य विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किये जा सकते है लेकिन प्रमुख विधेयकों मे से अधिकांश लोकसभा में ही आरम्भ किये जाते है। इसके अतिरिक्त, यदि लोकसभा किसी विधेयक को तीन निरन्तर अधिवेशनों में पारित करे और प्रथम अधिवेशन में दूसरे पठन तथा तीसरे अधिवेशन में तीसरे पठन में यदि एक वर्ष का अन्तर हो तो विधेयक कानून बन जाता है फिर चाहे लार्ड सभा उसे अस्वीकार ही क्यों न करे, अतः कानूनी दृष्टिकोण से विधि-निर्माण में अन्तिम शक्ति लोकसभा ही है।

वोटर ने प्रथम प्राथमिकता दी थी, तो उसका वोट दूसरे उम्मीदवार के पक्ष में गिन लिया जाएगा। ऐसा द्वितीय प्राथमिकता के सम्बन्ध में भी हो सकता है। इस प्रकार से किसी का वोट व्यर्थ नहीं जाता। इससे कोई-न-कोई अवश्य ही चुना जाता है। प्रस्तावित प्रणाली की बुराई यह है कि यह बहुत जटिल प्रणाली है। लेकिन इसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसमें अधिकारियों के लिए ही सिरदर्द है, मतदाताओं के लिए नहीं। इस प्रस्ताव का लाभ यह है कि इससे देश का ठीक प्रतिनिधित्व होता है। इससे संसद के चुनाव के लिए मतदाताओं के सम्मुख अपनी पसन्द का व्यक्ति चुन लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि बहुमत वोट प्रणाली की बुराइयां दूर करने के लिए एकत्र-वोट प्रणाली (cumulative vote system) को अपना लिया जाए। दूसरा सुझाव सीमित वोट प्रणाली (restrictive vote system) को अपनाने का है। लेकिन इन प्रस्तावों की सबसे बड़ी बुराई यह है कि इनसे देश में राजनैतिक पार्टियों की वृद्धि होगी। इससे देश की राजनैतिक स्थिरता में अन्तर पड़ेगा। तभी तो कहा जाता है कि दवाई बीमारी से भी बुरी है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व से इंगलैंड में बहुत-सी समस्याएं खड़ी हो जाएंगी। इसीलिए अंग्रेजों ने उसे अस्वीकार कर दिया है।

एक प्रश्न अक्सर यह पूछा जाता है कि क्या हाउस ऑफ़ कामन्ज वास्तव में देश का सही प्रतिनिधित्व करता है? अक्सर इसका उत्तर भी नकारात्मक होता है। ग्रीव्स (Greaves) के अनुसार, आधुनिक समय में "सदन का विभाजन देश के वर्ग-विभाजन के अनुरूप है। मुख्य पार्टियों के सदस्यों का जीवन एक स्तर का नहीं होता। उनके जन्म, शिक्षा, आर्थिक कार्यक्रम, धन और अवकाश बिताने के कार्यों में अन्तर होता है। यदि ऐसा है तो कोई आश्चर्य नहीं कि उनके मूल राजनैतिक दर्शन भिन्न हैं और उनके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों में विरोध है।। १६३१ में हाउस ऑफ कामन्ज में सदस्यों के पास कम्पनियों के ६६१ निदेशकत्व (Directorships) थे, जिनमें से १५२ चेयरमैनशिपें थीं। इन सदस्यों में से १६५ अनुदार (Conservatives) थे। लेबर पार्टी के ५२ सदस्यों में से ३२ सदस्य मजदूर संघ के अधिकारी थे। सदन के बहुत से उपाधि प्राप्त सदस्य अनुदार थे। अनुदार दल "समाज के व्यक्ति" थे और लेबर दल जनसाधारण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

लोकसभा की अवधि (Duration)—१६११ का संसद् अधिनियम पास होने से पहले लोकसभा की अवधि सात वर्ष थी। सर रिचर्ड स्टील (Sir Richard Steele) ने सप्तवर्षीय एक्ट (Septennial Act), १७१६ का समर्थन इस प्रकार किया, "जब से त्रिवर्षीय बिल पास हुआ है, तब से राष्ट्र बहुत से झगड़ों में फँस गया है। त्रिवर्षीय पार्लियामेंट का प्रथम वर्ष पिछले चुनावों के बदले निकालने में निकल गया। दूसरे अधिवेशन में कार्यवाही प्रारम्भ हुई'''तीसरा अधिवेशन भी, जो कुछ थोड़ा बहुत काम दूसरे अधिवेशन में करना था, उसे पूरा करने में निकल गया। और आने वाले चुनाव की घबराहट ने सदस्यों को गुलाम बना दिया, जैसा कि सदन में उनके द्वारा अपने सिद्धान्तों के आधार पर, प्रश्नों के हल करने से पता चलता है।" किन्तु अधिनियम द्वारा लोकसभा की अवधि घटा कर पाँच वर्ष कर दी गई।

इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोकसभा की अवधि पूरी तरह से निश्चित कर दी गई है। निरूढ़ि यह है कि यदि प्रधान-मन्त्री राजा से लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना करे तो उसे उसके अनुसार कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार लोकसभा को भंग करके उसकी अवधि कम की जा सकती है। इसके अतिरिक्त संसद् के अधिनियम द्वारा लोकसभा की अवधि को बढाया अथवा घटाया जा सकता है और ऐसा किया भी गया है। इसी प्रकार लोकसभा का राजा की मृत्यु से भी कोई सम्बन्ध नहीं। यदि राजा की मृत्यु के समय लोकसभा पहले से ही स्थगित हो या उसका सत्रावसान हुआ हो तो वह बिना किसी विधिवत्-आह्वान (summons) के अपनी बैठकें आरम्भ कर देती है।

निम्नलिखित तालिका से हाऊस ऑफ कामन्ज के १९०६ व १९५० के बीच के जीवन के सम्बन्ध में पता चलता है—

हाऊस ऑफ कामन्ज की पहली बैठक की तिथि	भंग होने की तिथि	कार्यावधि वर्ष	महीने	दिन
फरवरी १३, १९०६	जनवरी १०, १९१०	३	११	२४
फरवरी १५, १९१०	नवम्बर २८, १९१०	०	९	१३
जनवरी ३१, १९११	नवम्बर २५, १९१८	७	९	२५
फरवरी ४, १९१९	अक्तूबर २६, १९२२	३	८	२२
नवम्बर २०, १९२२	नवम्बर १६, १९२३	०	११	२७
जनवरी ८, १९२४	अक्तूबर ९, १९२४	०	९	१
दिसम्बर २५, १९२४	मई १०, १९२९	४	५	७
जून २५, १९२९	अगस्त २४, १९३१	२	१	२९
नवम्बर ३, १९३१	अक्तूबर २५, १९३५	३	११	२२
नवम्बर २६, १९३५	जून १५, १९४५	९	६	२०
जुलाई, २१, १९४५	फरवरी २, १९५०	४	६	१२

लोकसभा की शक्तियाँ (Powers of House of Commons)—लोकसभा का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। १९११ का संसद्-अधिनियम निश्चित करता है कि समस्त धन-विधेयक लोकसभा में ही आरम्भ किए जाएँ। यह सत्य है कि धन-विधेयक लार्ड सभा को भेजे जाते हैं किन्तु उसकी स्वीकृति आवश्यक नहीं है। देश के कोष पर लोकसभा का पूर्ण नियन्त्रण है। सामान्य विधेयक किसी भी सदन मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं लेकिन प्रमुख विधेयकों मे से अधिकांश लोकसभा में ही आरम्भ किये जाते है। इसके अतिरिक्त, यदि लोकसभा किसी विधेयक को तीन निरन्तर अधिवेशनों में पारित करे और प्रथम अधिवेशन में दूसरे पठन तथा तीसरे अधिवेशन मे तीसरे पठन में यदि एक वर्ष का अन्तर हो तो विधेयक कानून बन जाता है फिर चाहे लार्ड सभा उसे अस्वीकार ही क्यों न करे, अतः कानूनी दृष्टिकोण से विधि-निर्माण में अन्तिम शक्ति लोकसभा ही है।

लोकसभा देश के प्रशासन का निरीक्षण तथा नियन्त्रण करती है। एक निरूढ़ि के अनुसार, राजा का कर्त्तव्य बहुमत दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने का आमन्त्रण देना है। मन्त्रिमण्डल के अधिकाश तथा प्रमुख सदस्य लोकसभा से ही लिये जाते है। एक निरूढ़ि के अनुसार, प्रधान मन्त्री को लोकसभा का ही सदस्य होना चाहिए। मन्त्रिमण्डल उस समय तक अपने पद पर रहता है जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। उसे पराजित होने पर पद त्यागना पड़ता है। स्पष्टतः देश का शासन लोकसभा की इच्छाओं के अनुसार चलाया जाता है और यही लोकसभा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व भी करती है। कोई मन्त्रिमण्डल लोकसभा के सदस्यों की इच्छाओं का उल्लंघन करने का साहस नहीं कर सकता। इतना ही क्यों, लोकसभा के सदस्य सरकार से प्रश्न भी पूछ सकते है और इस प्रकार सरकार को उसके कार्यों की व्याख्या करने के लिए विवश कर सकते है। मन्त्रियो का कर्त्तव्य लोकसभा के उन सदस्यो को सन्तुष्ट करना है, जो अपने आपको जनता के हितों के संरक्षक तथा प्रतिनिधि कहते है। सार्वजनिक महत्त्व के आवश्यक प्रश्नों पर विचार करने के लिए लोकसभा में 'स्थगन प्रस्ताव' (adjournment motion) लाए जा सकते हैं। इन अवसरों पर मन्त्रियों के कार्यों और अकार्यों की आलोचना की जा सकती है और जनता की शिकायतें पेश की जा सकती है। विरोधी दल अविश्वास अथवा निन्दा का प्रस्ताव लाकर मन्त्रिमण्डल को गिरा सकता है। अनुदानों की माँग पर कटौती प्रस्ताव (cut motion) के द्वारा लोकसभा के सदस्य विभिन्न विभागों के कार्यों का समालोचनात्मक निरीक्षण करने मे समर्थ होते है। कोई मन्त्रिमण्डल लोकसभा की इच्छाओं की अवहेलना करने का साहस नही कर सकता क्योंकि वह कोष पर नियन्त्रण रखती हैं। इस प्रकार, लोकसभा यह देखती है कि देश का प्रशासन उसकी इच्छाओं के अनुसार चलाया जा रहा है या नही।

बैलफोर (Balfour) के अनुसार, "यह सदन (लोकसभा) प्रशासकीय संस्था नही है और यदि वह वास्तव मे प्रशासकीय संस्था होती तो वह अपना कार्य बिल्कुल घिनौनेपन से (abominably) करती। ६७० सज्जन उसे कभी न कर सकते और ४० या ५० नियुक्त व्यक्तियों के समिति-कक्ष (Committee rooms) भी उसको सम्पन्न करने मे असमर्थ रहते। यदि कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करना हो तो संसार में किसी भी स्थान पर कार्य करने की यह रीति नहीं है। कोई व्यापारी अपनी व्यवस्था उस विधि से नहीं करता। कोई स्थल सेना और जल सेना अपना प्रबन्ध उस विधि से नहीं करती। वे लोग, जो उस लोकप्रिय व्यवस्था के आदर्श को पसन्द करते हैं और उसको जनतन्त्रीय (democratic) कहते है, भ्रमवश आलोचना तथा विधिनिर्माण को प्रशासन समझते हैं। प्रशासन एक वस्तु है और आलोचना तथा विधि-निर्माण दूसरी वस्तु।

प्रधान-मन्त्री कैम्पबेल-बैनरमैन (Campbell Bannerman) के अनुसार, "लोकसभा को लार्ड सभा से अंशतः किन्तु उच्च-संवैधानिक शक्तियों की रचनाओं में बिना किसी अपवाद के राष्ट्र की इच्छा प्रकट करने वाला अन्तिम अंग माना जाता

सभा के प्रमुख का लार्ड सभा के लिए क्या अर्थ है ? प्रथम तो, सब जानते

है कि उनकी कार्य-विधि परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। जब उनकी पार्टी की सरकार होती है—अर्थात् उस पार्टी की जिससे लार्ड सभा के अधिकांश सदस्य सम्बन्धित होते हैं···तब वे बिना सकोच के उसे स्वीकार कर लेते है, यहाँ तक इस उच्चता को स्वीकार करने में ऐसी जल्दबाजी दिखाते हैं जो भद्दी लगती है। यह सन्देह भी नहीं होता कि यह सदन देश के स्थिर मन तथा इच्छाओं का स्वच्छ एवं सच्चा दर्पण है। दूसरा सदन, इन परिस्थितियों मे, इस सदन की अन्तर्वर्ती शक्ति के उद्देश्यों को स्वीकार कर लेता है और उसके अनुसार कार्य करता है जिसका उल्लेख एडमंड वर्क ने इन शब्दों मे किया है, "लोकसभा का सामर्थ्य, भावना और सार यह है कि वह राष्ट्र की सच्ची आवाज है।"

प्रधान-मन्त्री एसक्विथ (Asquith) ने १९११ मे लोकसभा के महत्त्व तथा लार्ड सभा की अधीन स्थिति को इन शब्दों मे रखा—"लार्ड सभा का दीर्घकाल से नीति तथा प्रशासन पर कोई वास्तविक नियन्त्रण नहीं रहा है। वे इन विषयों पर विचार करते हैं और हम उनके विचारों को आनन्द से पढते है और उनसे लाभान्वित होते है लेकिन उनके निष्कर्षों का तत्कालीन सरकार के भाग्य पर कोई प्रभाव नहीं पडता।"

लोकसभा और अमेरिकी प्रतिनिधि सभा की तुलना (Comparison of House of Commons and House of Representatives)—प्रो० मनरो (Munro) विश्व के दो महान् जनतन्त्रों (ब्रिटेन और अमेरिका) के निचले सदनों की तुलना इन शब्दों मे करता है: "लोक सभा तथा प्रतिनिधि सभा दोनों मे अनेक समताएँ एव विभिन्नताएँ हैं। यद्यपि ये दोनों एक-दूसरे की सन्तान है और इनमें पारस्परिक पैतृक चिन्ह (marks of parentage) स्पष्ट रूप से विद्यमान है, तथापि दोनों की रचना और स्वभाव पर वातावरण की भिन्नता का स्पष्ट प्रभाव है। लोकसभा अधिक बडी संस्था है लेकिन उसकी बैठकों मे कम शोर होता है। उसका सम्पूर्ण वातावरण गौरव और फुरसत का होता है। दीर्घा (gallery) से देखने वाले दर्शक को प्रतिनिधि सभा वेग से कार्य निपटाती हुई प्रतीत होती है, सदस्यों की उपस्थिति अधिक होती है लेकिन उनमें से कठिनाई से ही कोई कार्यवाही मे दिलचस्पी लेता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक संस्था के गुणों के अनुसार अंग्रेज है और दूसरी अमेरिकन। प्रत्येक का स्वभाव तथा चित्तवृत्ति पृथक् है।" (Governments of Europe, Pp. 171-2.)

लोकसभा का स्पीकर (Speaker of House of Commons)—स्पीकर लोकसभा का सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है। यद्यपि उसे वक्ता कहते है तथापि वह बहुत कम बोलता है। अध्यक्ष का पद उतना ही पुराना है जितनी लोकसभा। वह वक्ता कहलाता है क्योंकि केवल वही राजा के सामने सम्पूर्ण लोकसभा का प्रतिनिधित्व करता है। आरम्भ मे वक्ता का कर्त्तव्य लार्ड सभा मे राजा के पास लोकसभा के प्रस्ताव तथा आवेदन (petitions) पहुँचाना था। लोक सभा के कुछ प्रमुख अध्यक्ष पीटर डी मोण्टफोर्ड, सर टामस मूर, सर एडवर्ड कोक और सर विलियम लैंथल थे। सर विलियम चार्ल्स प्रथम के शासन-काल मे अध्यक्ष था और यह

कहा जाता है कि जब चार्ल्स प्रथम ने लोकसभा में प्रवेश किया और उससे पूछा गया कि लोकसभा के पांच सदस्य कहाँ थे, तब सर विलियम ने कहा, "महाराज क्षमा करें क्योंकि इस स्थान पर बोलने के लिए न मेरे पास जिह्वा है, न देखने को नेत्र, और फिर मैं तो सदन की इच्छानुसार कार्य करता हूँ।"

आरम्भ मे अध्यक्ष पार्टी के आधार पर चुना जाता है। वास्तविक रूप में प्रधान-मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के परामर्श मे किसी व्यक्ति का चयन करता है। वह इस बात का भी विश्वास कर लेता है कि उसके चुने हुए व्यक्ति को सदन का सामान्य समर्थन प्राप्त है। तब अध्यक्ष का नाम दो प्राइवेट सदस्य प्रस्तावित और अनुमोदित करते हैं। ऐसा करने का कारण यह बताना है कि अध्यक्ष का चुनाव सम्पूर्ण सदन ने किया है, न कि केवल मन्त्रियों ने। यद्यपि अध्यक्ष का निर्वाचन पार्टी के आधार पर होता है, तथापि निर्वाचन के पश्चात् वह पार्टी से अपना सम्बन्ध नहीं रखता। वह लोकसभा के नियमों, निर्णयों (rulings), कार्यवाहियों तथा विशेषाधिकारों का संरक्षक तथा निष्पक्ष बन जाता है। अतः नये निर्वाचन के समय वह निर्विरोध निर्वाचित कर लिया जाता है। वह जिस समय तक चाहे अपने निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर सकता है। १९३५ में लेबर पार्टी ने इस निरूढि का उल्लंघन करना चाहा, किन्तु उसके प्रयत्न असफल रहे क्योंकि कंजरवेटिव पार्टी तथा लिबरल पार्टी ने अध्यक्ष का समर्थन किया था। किन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अध्यक्ष के निर्वाचन-क्षेत्र का मताधिकार इस तरह छिन-सा जाता है। इसलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि अध्यक्ष को काल्पनिक निर्वाचन-क्षेत्र (fictitious constituency) दे दिया जाये, किन्तु यह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया गया है।

अध्यक्ष की योग्यताएँ (Qualifications of Speaker)—वह किसी पार्टी का प्रमुख व्यक्ति नहीं होता। सबसे अच्छा अध्यक्ष वह हो सकता है जो "कुछ नहीं जानता है और जिसको कोई नहीं जानता है।" ग्लैडस्टोन के अनुसार, "सदन के दोनों पक्षों ने यह इच्छा प्रकट की है कि श्री कैम्पबेल बैनरमैन, जो सर्वप्रिय हैं, मनोनीत किये जायें लेकिन मन्त्रिमण्डल अनुभव करता है कि अपनी पार्टी के प्रमुख व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने में सैद्धान्तिक आपत्तियाँ हैं और इस प्रकार से अध्यक्ष पद पूर्णतः दलगत विषय बन जायेगा, जिससे संयुक्तराज्य में बुरे परिणाम हुए हैं।" लार्ड रोजबरी के अनुसार, "अध्यक्ष की योग्यताओं को बहुत बढ़ाकर बताया गया है। सब अध्यक्ष पूर्णतः सफल हैं; सब अध्यक्षों के लिए महान् दुःख है और साधारणतः सबके बारे में ही यह कहा जाता है कि उनकी स्थानपूर्ति नहीं हो सकती। लेकिन शीघ्र ही वक्ता सदन के मध्यम योग्यता वाले सदस्यों में से स्थायीरूप से छाँट लिया जाता है।"

स्पीकर को पर्याप्त वेतन (पांच हजार पौंड प्रतिवर्ष) मिलता है। उसे रहने के लिए वेस्टमिन्स्टर पैलेस में मकान मिलता है। जब वह अवकाश ग्रहण करता है तब उसे पेंशन मिलती है और वह पीयर बना दिया जाता है। किन्तु वक्ता को पद ग्रहण करते ही राजनीति से सम्बन्ध न रखने का दण्ड स्वीकार करना चाहिये।

अध्यक्ष की शक्तियाँ—डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "अध्यक्ष के सम्मान अथवा आदर को, उसकी शक्तियों तथा छूटों (immunities) को गिना कर प्रकट करना

असम्भव है। मानसिक प्रभावों को पूर्ण रूप से लेखबद्ध नही किया जा सकता। नियम, परम्पराएँ, प्राचीन संस्कार तथा सुनियोजित नीतियाँ एक साथ सगठित होकर ऐसी वास्तविक शक्ति का निर्माण करती है, जो इनमे से कोई भी चीज पृथक् रूप से प्रदान नही कर सकती। परम्पराएँ तथा विचार सयुक्त रूप से वक्ता के पद पर आसीन व्यक्ति को ऐसा सम्मान तथा शक्ति प्रदान करते है जो अनुपम होता है।

वक्ता लोकसभा की बैठको की अध्यक्षता करता है। इस प्रकार सदन में अनुशासन रखना उसका कर्त्तव्य है। जब बहुत से सदस्य बोलना चाहे तब वक्ता यह निश्चय करता है कि पहले कौन बोले। जब कोई सदस्य व्यवस्था का प्रश्न (point in order) उपस्थित करता है, तब वक्ता को अपना निर्णय देना पडता है। किन्तु वक्ता के निर्णय पूर्व-दृष्टान्तो के अनुसार होते है। वक्ता को स्वविवेक से बहुत कम कार्य करना पडता है क्योंकि प्रत्येक विषय पर अनेक पूर्व-दृष्टान्त होते हे। जब वक्ता कोई निर्णय देना है तो वह अन्तिम होता है और कोई सदस्य उस पर आपत्ति नही कर सकता। यह ठीक ही कहा जाता है कि अध्यक्ष को मुख्य न्यायाधीश की निष्पक्षता से कार्य करना चाहिए।

साधारणत. अध्यक्ष मत नही देता। जब उसे समान मत होने पर (tie) निर्णायक मत देने के लिए कहा जाता है तब भी वह अपने विवेक से कार्य नहीं करता। वह कुछ निश्चित निर्धारित सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता है। किन्तु निर्णायक मत देने की प्रथा यह है कि यदि उसके विरोध में मत देने से कोई प्रस्ताव गिर जाएगा, और पक्ष में मत देने से विचार की अवधि बढ जाएगी तो वह सदा पक्ष में मत देगा। विचार-अवधि हटाने का निश्चय है तो वह ऐसा न करेगा और यदि विवाद को स्थगित करने के प्रस्ताव पर निर्णायक मत देना है तो वह सदा इसके विरोध मे मत देगा। अध्यक्ष को किसी विशेषाधिकार के प्रश्न पर शका हो तो वह लोकसभा के सचिव से पूछताछ करता है। किन्तु अध्यक्ष को कठिनाई मे ही निर्णायक मत देने का अवसर प्राप्त होता है।

सन् १९११ के ससद् अधिनियम के द्वारा इंगलैंड के अध्यक्ष को कुछ शक्तियाँ प्रदान की गई है। यह व्यवस्था की गई है कि धन-विधेयक वह विधेयक है जिसे अध्यक्ष धन-विधेयक के रूप में प्रमाणित (certify) करे। इसके अतिरिक्त यदि लोकसभा किसी विधेयक को तीन निरन्तर अधिवेशनो मे पारित करे और वह लार्ड सभा की स्वीकृति के बिना कानून बने, तब अध्यक्ष का कर्तव्य इस विषय में सिफारिश करना है कि आरम्भिक विधेयक मे समय की बाधा पडने के कारण क्या-क्या परिवर्तन किये जाएँ। अध्यक्ष आदरणीय व्यक्ति होता है और वह निष्पक्ष भाव से कार्य करने को बाध्य है। वह इस बात को नही सोचता कि उसके विचारों का किसी पार्टी पर क्या प्रभाव पड़ता है।

अध्यक्ष सदन के सदस्यों के अधिकारो और विशेषाधिकारों का निष्पक्ष सरक्षक होता है। उसकी दृष्टि में छोटे-से-छोटे पिछली सीट पर बैठने वाले सदस्य (back-bencher) और बड़े-से-बड़े मन्त्री की स्थिति बराबर होती है। ब्रायर्स (Briers) के अनुसार, "वक्ता का यह कार्य है कि सदस्यो के अधिकारों की रक्षा

न केवल क्राउन और लार्ड्स से करे, अपितु सदन के दूसरे सदस्यों से भी करे, ताकि संसद् का आधार एक ऐसे स्थान के रूप मे, जिसमें चुने हुए प्रतिनिधि अपनी समझ के अनुसार अच्छा या बुरा कह सकते है, बनाए रखा जा सके। वक्ता (अध्यक्ष) का व्यवहार एक ऐसी भावना (spirit) को प्रदर्शित करता है, जो अन्त में सरकार के ढांचे मे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कुछ हद तक वह हाऊस आफ कामन्ज (लोकसभा) को बनाये रखने का जिम्मेदार होता है क्योंकि वह उसी समय तक जारी रह सकता है जब तक कि इसकी सुविधाएँ और कार्य-विधि इसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के लिए पर्याप्त है। स्थापित कार्य-विधि को नित्य नई परिस्थिति के अनुसार बना लेना अध्यक्ष का कार्य होता है।

इंगलैंड और अमेरिका के अध्यक्षों की तुलना—यह स्मरणीय बात है कि अमेरिका का अध्यक्ष केवल पार्टी के आधार पर चुना ही नही जाता, अपितु निर्वाचन के पश्चात् भी वह पार्टी का सदस्य रहता है। वह सदन की कार्यवाही में भाग लेता है और काग्रेस (अमेरिकी संसद्) मे कार्यपालिका (executive) के न होने से, वह स्वाभाविक रूप मे प्रतिनिधि सभा में अपने दल का नेता तथा प्रवक्ता (spokesman) होता है। इसलिए अमेरिकन अध्यक्ष पार्टी से सम्बद्ध रहता है और उसका निर्वाचन भी पूर्ण शक्ति से लड़ा जाता है। अध्यक्ष का प्रतिनिधि सभा के लिए निर्विरोध पुनर्निर्वाचित होने का प्रश्न ही नही उठता। अमेरिका के अध्यक्ष को इंगलेंड के अध्यक्ष के समान सम्मान तथा आदर प्राप्त नही होता। यद्यपि अमेरिका के अध्यक्ष की कुछ शक्तियाँ छीन ली गई है तथापि अभी तक प्रतिनिधि सभा में उसे बड़ा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति समझा जाता है।

वित्त (Finance) पर लोकसभा का नियन्त्रण—हाऊस ऑफ कामन्ज वित्त पर चार प्रकार का नियन्त्रण रखता है। यह कर निर्धारित करता है। उसका विनियोग (appropriation) करता है। हिसाब-किताब देखता है और राष्ट्रीय फण्ड के व्यय करने के तरीकों की आलोचना करता है।

वित्त के सम्बन्ध में हाऊस ऑफ कामन्ज का कार्य फरवरी के अन्त और मार्च के प्रारम्भ मे सरकार द्वारा बजट पेश करने के बाद से, प्रारम्भ होता है। सरकार के विभिन्न विभागों की सलाह तथा उनके द्वारा पेश किए गए आंकड़ों के आधार पर बजट वित्त मन्त्रालय (treasury) द्वारा पेश किया जाता है। पेश होने के बाद हाऊस ऑफ कामन्ज अपने को, सारे सदन की सप्लाई कमेटी (Committee of Supply) और सारे सदन के उपायों और साधनों की कमेटी (Committee of Ways and Means) में परिवर्तित कर लेता है। पहली कमेटी खर्च के अनुमान पर विचार करती है, और दूसरी कर लगाने के प्रस्तावों पर विचार करती है। १९२१ से एक ऐस्टिमेट्स कमेटी (Estimates Committee), जिसमें अब २८ सदस्य है, भी प्रतिवर्ष नियुक्त की जाती है। यह सरकार के द्वारा पेश किए गए अनुमानों (estimates) की परीक्षा करती है, उन तरीकों का सुझाव देती है जिनके अनुसार अनुमान परीक्षा के लिए पेश किए जाएँ, और इन बातों का सुझाव देती है कि अनुमानों क नीति के अनुसार चलते हुए किस प्रकार बचत की जाए। सप्लाई कमेटी

(Committee of Supply) और उपायों और साधनों की कमेटी (Committee of Ways and Means) के प्रस्तावों को हाऊस ऑफ कामन्ज के सामने पेश किया जाता है। इनके आधार पर विनियोग अधिनियम यानी एप्रोप्रियेशन एक्ट (Appropriation Act) और अर्थ अधिनियम (Finance Act) पास किए जाते हैं और हाऊस ऑफ कामन्ज खर्च और कर की अनुमति देता है। प्रत्येक खर्चे के लिए कम्प्ट्रोलर और ऑडीटर-जनरल (Comptroller and Auditor-General) की स्वीकृति आवश्यक होती है। अन्त में, हाऊस ऑफ कामन्ज की एक कमेटी, जिसे जन-लेखा समिति (Committee of Public Accounts) कहते हैं, वार्षिक हिसाब-किताब की जाँच करती है और सदन के सामने रिपोर्ट पेश करती है। इसका कार्य प्रभावशाली हो सके, इसके लिए कमेटी का प्रधान, विरोधी पक्ष का कोई मुख्य सदस्य होता है। हाऊस ऑफ कामन्ज में प्रश्नों के समय तथा बजट पर वाद-विवाद के समय सरकार द्वारा धन व्यय करने के तरीकों की आलोचना करने का अवसर प्राप्त होता है।

साधारणतया एप्रोप्रियेशन एक्ट (Appropriation Act) जुलाई के अन्त तक पास होता है। आर्थिक वर्ष पहली अप्रैल से प्रारम्भ हो जाता है। चार महीने के लिए व्यय की विशेष आज्ञा "हिसाब पर वोट" (votes on accounts) से मिल जाती है। खर्चे की कुछ मदों, जैसे राष्ट्रीय ऋण पर सूद, राजा का निजी व्यय और जजों के वेतन, के लिए प्रतिवर्ष संसद् के वोट की जरूरत नहीं होती। वे संचित निधि (Consolidated Fund) पर भारित (charged) होते हैं। हाऊस ऑफ कामन्ज क्राउन की इच्छा से ही विनियोग यानी एप्रोप्रियेशन (appropriation) किया करता है। मे (*May*) के अनुसार, "*क्राउन रुपया माँगता है (demands)*, कॉमन्ज उसका अनुदान करता (grants) है, और लार्ड्स उस अनुदान पर अनुमति देता (assents) है लेकिन कामन्ज उस समय तक रुपये के लिए वोट नहीं देंगे जब तक कि क्राउन को रुपये की जरूरत न हो।" दूसरे शब्दों में सार्वजनिक रुपये के खर्चे के सभी प्रस्ताव क्राउन के किसी मन्त्री द्वारा पेश किए जाने चाहिएँ। प्राईवेट सदस्यों का इस मामले में कोई हाथ नहीं होता। वे कटौती का प्रस्ताव रख सकते हैं, वृद्धि का नहीं। मे ने कहा है, "सार्वजनिक राजस्व में से खर्चे के लिए किए गए अनुदान (grant) के लिए जिस तरह क्राउन की अनुमति की आवश्यकता है, उसी प्रकार सार्वजनिक राजस्व के लिए वार्षिक करों की अनुमति भी क्राउन से लेनी पड़ती है। इसलिए, क्राउन के *मन्त्री द्वारा किसी टैक्स के लगाने का प्रस्ताव तब तक नहीं किया जा सकता जब* तक वह टैक्स, संसद् के सम्मुख पेश किए गए टैक्सों के प्रस्तावों में से किसी के बराबर और उसकी जगह न लगाया गया हो। क्राउन की ओर से पेश किए गए करों की रकम को बढ़ाया नहीं जा सकता और न उसे लगाने के क्षेत्र में कोई परिवर्तन किया जा सकता है। अतः नये अथवा अस्थायी करों में वर्ष भर के लिए कोई वृद्धि, बिना मन्त्री की इच्छा के, जो क्राउन की ओर से कार्य करता है, नहीं की जा सकती।"

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि हाऊस ऑफ कामन्ज, उपायों और साधनों की समिति (Committee of Ways and Means) में वाद-विवादों तथा अर्थ अधि-

नियम (Finance Act) के द्वारा धन एकत्र करने पर नियन्त्रण रखती है, सप्लाई कमेटी (Committee of Supply) एप्रोप्रियेशन एक्ट और कम्पट्रोलर और ऑडीटर-जनरल (Comptroller and Auditor-General) के द्वारा (जो संसद् के प्रति उत्तरदायी होता है), धन के विनियोग पर नियन्त्रण रखती है। सार्वजनिक हिसाब-किताब की कमेटी (Committee of Public Accounts) के द्वारा वह हिसाब-किताब की जाँच करती है। प्रश्नों और वाद-विवादों से हाउस ऑफ कामन्ज धन व्यय करने के तरीकों की आलोचना करता है। ब्रिटिश वित्त प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे एक ऐसा वित्तीय कार्यक्रम बनता है, जो एक इकाई के रूप में बनाया जाता है और जिसकी सारी जिम्मेदारी मन्त्रिमण्डल ले लेता है। यह नियम कि कर और व्यय के सारे प्रस्ताव क्राउन की ओर से आने चाहिएँ, विनियोगों (appropriations) पर स्थानीय स्वार्थों (localism) का बुरा प्रभाव नहीं पड़ने देता। आय और व्यय को एक ही सदन की दो कमेटियों द्वारा देखने का परिणाम यह होता है कि आय और व्यय में सम्बन्ध बना रहता है। साथ ही मन्त्रियों को हाउस ऑफ कामन्ज में अपने प्रस्तावों की रक्षा करने का अवसर रहता है। मगर यह कहा जाता है कि हाउस ऑफ कामन्ज का वित्त पर प्रभावी नियन्त्रण नहीं है। पूरे सदन की कमेटियाँ बहुत बड़ी होती हैं अतः उन्हें अनुमानों (estimates) पर ठीक रीति से विचार करने का काफी समय भी नहीं प्राप्त होता। बजट का विस्तार इतना जटिल होता है कि वह साधारण सदस्य की समझ में नहीं आ पाता। पार्टी संगठन और मन्त्रिमण्डल की हाउस ऑफ कामन्ज को भंग करा देने की शक्ति के कारण हाउस ऑफ कामन्ज की शक्ति नाम मात्र रह जाती है। व्यक्तिगत सदस्यों की वित्तीय प्रश्नों के प्रति उदासीनता हाउस ऑफ कामन्ज के नियन्त्रण को अच्छा-खासा मजाक बना देती है। सिडनी लो (Sidney Low) कहता है, "कमेटी में, स्थल सेना या नौसेना पर होने वाले वाद-विवाद के मजाक से कौन परिचित नहीं है। सदन के काफी सदस्य व्यस्त, थके हुए, ऊबे हुए और सुस्त खाना खाने गए होते हैं, या छज्जे पर या सिगरेट पीने के कमरे में होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इसके सदस्य आएँगे और वोट दे देंगे; वे वैसे भी वाद-विवाद के सम्बन्ध में अखबार पढ़ने वाले से कुछ अधिक जान लेंगे, लेकिन अगले दिन सुबह को समझ में न आने वाले अंकों और अस्पष्ट बारीकियों पर सुस्ती से नजर भर डाल लेंगे।"

विरोधी दल (His Majesty's Opposition)—यहाँ लोकसभा के विरोधी दल का उल्लेख किया जा सकता है। विरोधी दल सरकार का आवश्यक अंग है। वह देश की वैकल्पिक सरकार (alternate government) होता है। अगले निर्वाचनों के मतों में केवल थोड़ा-सा परिवर्तन ही सरकारी दल तथा विरोधी दल को एक-दूसरे का स्थान ग्रहण करने को विवश कर सकता है। विरोधी दल के नेता को सरकारी कोष (public funds) से वेतन दिया जाता है, ताकि वह अपने कार्यों को सुचारु रूप से कर सके। कहा जाता है कि उसका इतना अधिकार रहता है कि इंगलैण्ड का प्रधान-मन्त्री अपनी पत्नी की अपेक्षा [illegible] में [illegible] से अधिक जानकारी रखता है।

सरकार का बहुमत है

शक्तियों का प्रयोग विरोधी दल की निरन्तर आलोचना के होते हुए करना पड़ता है। जो कुछ विरोधी दल कहता है वह इतना विश्वासोत्पादक हो सकता है कि अस्थिर मत (floating vote) पासा ही पलट दे। मन्त्रियों को युक्तियों (arguments) का उत्तर युक्तियों से देना पड़ता है ताकि जनता का विश्वास बना रहे। विरोधी दल की आलोचना सरकार के कार्यों की कसौटी होती है और इसीलिए उसे ऐसी नीति का पालन करने के लिए बाध्य करती है जिसमें देश की सर्वाधिक हित-सिद्धि हो।

विरोधी दल का कार्य सरकार के कार्यों में बाधा डालना नहीं है, उसका उद्देश्य आलोचना करना है, न कि रुकावट डालना। केवल विशेष परिस्थितियों में रुकावट डालने को उचित कहा जा सकता है जब कोई सरकार देश में ऐसी नीति लागू करे जिसके विषय में विरोधी दल को विश्वास हो कि देश उसको स्वीकार नहीं करता, तब यह माँग करना उचित हो सकता है कि इस पर जनता की स्वीकृति ली जाए।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कभी-कभी विरोधी दल सरकार के कार्यों में विलम्ब (delay) कर देता है। यह कहा जाता है कि १ सितम्बर, १६३६ से लेकर ३ सितम्बर, १६३६ तक ब्रिटिश संसद् ने इतने अधिक कानून पारित किए जिनके लिए कई वर्ष और अधिवेशनों की आवश्यकता होती क्योंकि विरोधी दल ने विरोध नहीं किया। युद्धकाल में, सरकार कानून बनाने के लिए 'सपरिषद्-आदेश' (Orders-in-Council) को जारी करती है और वह उसे सरल हो जाता है ताकि विरोधी दल उसके कार्य में बाधा न डाले। किन्तु सरकार इस विधि को सामान्य रूप से नहीं अपना सकती। शान्तिकालीन सरकार बड़ी दृढ़ता और से जनता की हित-सिद्धि के लिए कार्य कर सकती है यदि उसके कार्यों की विधानमण्डल में आलोचना तथा विरोध हो। यह विरोध सरकार को अनुकूल रख सकता है और विदेशी मन्त्रियों से संधि वार्ता दृढ़ता से नहीं की जा सकती, लेकिन जनता के हितों के संरक्षण करने का इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है। विरोधी दल सरकार पर कड़ी चोट करता है। विरोधी दल उन व्यक्तियों के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जिनके विचार सरकार से भिन्न होते हैं। उसकी आलोचना सामान्य व्यक्ति की आलोचना होती है। [illegible] के अनुसार, "यह बात जानने के लिए कि जनता स्वतन्त्र है, केवल यही [illegible]

ऐसा तन्त्र है जो मुस्कराते हुए तुम्हारी जेब काट लेता है, और इसकी अनिश्चितता का उपयोग अध्यापक के लिए अधिक है, न्याय के लिए नहीं।" बटलर ने विधान के सम्बन्ध में अपनी राय इस प्रकार प्रकट की है—

"Law does not put the least restraint
Upon our freedom, but maintain't
For wholesome laws preserve us free
By stinting of our liberty अर्थात्—

"विधियाँ हमारी स्वतन्त्रता मे बाधा नहीं डालतीं अपितु उसे बनाए रखती है क्योंकि वे हमारी आजादी में बाधा डालकर हमें स्वतन्त्र रखती है।"

बर्नेट (Burnet) के अनुसार, "इंगलैंड की विधि, राष्ट्र की सबसे बड़ी शिकायत है। यह बहुत मँहगी है और इसमे न्याय पाने मे बहुत देर लगती है।" किसी देश की विधि बनाने की प्रणाली मे त्रुटियाँ हो सकती हैं, लेकिन इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि विधि देश की उन्नति, समृद्धि और जनता के जीवन के नियन्त्रण के लिए परम आवश्यक है।

कानून बनाने का प्रक्रम (Process of Law-making)—इंगलैंड में कानून बनाने की विशेष प्रक्रिया है। विधेयकों की दो श्रेणियाँ हैं—सार्वजनिक विधेयक (public bill) तथा असार्वजनिक विधेयक (private bill)। सार्वजनिक विधेयक वे है जिनका प्रभाव जनता पर पड़ता है और प्रकट रूप में जिनका सारी जनता अथवा अधिकांश से सम्बन्ध होता है। दूसरी ओर असार्वजनिक विधेयक वे है जो किसी स्थान-विशेष, कम्पनी (Company), नगरपालिका अथवा संस्था या व्यक्ति-विशेष से सम्बन्ध रखते हैं। इलबर्ट (Ilbert) के अनुसार, "असार्वजनिक विधेयक का उद्देश्य देश के सामान्य कानून का परिवर्तन करना नहीं है, बल्कि किसी विशेष क्षेत्र के कानून को बदलना, विशेष व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को कुछ अधिकार देना अथवा उनके दायित्वों (liabilities) को कम करना है।" सरकार सार्वजनिक विधेयक को प्रस्तुत कर सकती है और उसे सरकारी विधेयक कहते हैं। सरकारी विधेयक दो प्रकार के होते हैं—सामान्य सार्वजनिक विधेयक तथा धन विधेयक। जब संसद् का कोई सामान्य सदस्य कोई सार्वजनिक विधेयक प्रस्तुत करता है तब उसे प्राइवेट सदस्य का सार्वजनिक विधेयक (Private Member Public Bill) कहते हैं। सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया में बहुत अन्तर है।

सरकारी विधेयक (Government Bill)—सरकारी विधेयक दोनों सदनों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। चाहे उसे किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जाए पर वह दोनों सदनों द्वारा स्वीकार किया जाता है। प्रत्येक सदन में विधेयक के पास होने की पाँच स्थितियाँ (stages) हैं। पहली स्थिति पुरःस्थापना (introduction) तथा प्रथम पठन (First Reading) है। प्रस्तावक दो मार्गों में से कोई एक अपना सकता है। वह पुरःस्थापना की सूचना दे सकता है जो उस दिन के कार्यक्रम (order of the day) में छप जाती है, और तब उसे सदन मे पेश कर सकता है; तब सदन जोर से उसका नाम (title) पढ़ता है। दूसरी विधि यह है कि प्रस्तावक

पुरःस्थापन की आज्ञा माँगता है, प्रस्तावक तथा विरोधियों में से एक संक्षिप्त भाषण देते है और अध्यक्ष प्रस्ताव पर मत लेता है। साधारणतः, प्रथम विधि का पालन किया जाता है। जब कोई विधेयक इस प्रकार से पुरःस्थापित हो जाता है, तब विधेयक का प्रथम पठन होता है। उस समय कोई वाद-विवाद नही किया जाता। द्वितीय पठन (Second Reading) की तिथि निश्चित कर दी जाती है और विधेयक को छापने की आज्ञा दी जाती है।

द्वितीय स्थिति—दूसरे पठन मे विधेयक के मौलिक सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय किया जाता है और उस पर मत लिए जाते हैं, विधेयक की पृथक्-पृथक् धाराओ पर विवाद नही होता है। यदि विरोधी दल मन्त्रिमण्डल की शक्ति जाँचना चाहे तो वह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक का द्वितीय पठन 'आज के दिन छः माह के पश्चात्' (this day six months) हो। यह प्रस्ताव पास हो जाने पर विधेयक अनिश्चित काल के लिए टल जायगा। विरोधी दल विचाराधीन विधेयक का विरोधी प्रस्ताव भी प्रस्तुत कर सकता है। द्वितीय पठन के पश्चात् विधेयक पर मत लिए जाते है। यदि कोई सरकारी विधेयक रद्द कर दिया जाये तो मन्त्रिमण्डल को पद त्यागना पड़ता है। साधारणतः इस घटना की आशंका नहीं होती क्योंकि मन्त्रिमण्डल का लोकसभा में बहुमत होता है।

तृतीय स्थिति—विधेयक के सिद्धान्तों की स्वीकृति के पश्चात् समिति-स्थिति (Committee Stage) आती है। विधेयक को स्थायी समितियों में से किसी एक मे भेज दिया जाता है (सदन में अनेक स्थायी समितियाँ होती हैं)। विशेष परिस्थिति मे सार्वजनिक विधेयक को प्रवर समिति (Select Committee) में भेजा जाता है। लावैल के अनुसार, "प्रवर समिति में भेजने से विधेयक की यात्रा में एक पग और बढ़ जाता है क्योंकि वहाँ से लौटने पर विधेयक को किसी स्थायी समिति अथवा सम्पूर्ण सदन की समिति में भेजना पड़ता है।" सदन किसी विधेयक को सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) को [illegible] सकता है, लेकिन साधारणतः यह विधि नही अपनायी जाती। समिति स्थिति में विधेयक पर धारावार पूर्णरूपेण विचार किया जाता है। [illegible] किया जाता है और कभी-कभी नई धाराएँ जोड़ी जाती हैं। [illegible] विधेयकों के सम्बन्ध में साधारण[illegible] मन्त्री उस विधेयक का [illegible] होता है। वह यह ध्यान [illegible] विधेयक में केवल वही [illegible] विधेयक के सिद्धान्तों से [illegible] और सरकार को [illegible]। [illegible] को विधेयक के [illegible] स्वीकार करने [illegible] क्योंकि समिति [illegible] है।

ments) किए जा सकते है, पर यदि विधेयक का शीघ्र पास होना आवश्यक हो या वह निर्विवाद ढंग हो तो बहस और संशोधन नहीं होते।

पांचवीं स्थिति : तृतीय पठन—प्रतिवेदन स्थिति के पश्चात् तृतीय पठन किया जाता है। यह केवल औपचारिक स्थिति (formal stage) होती है। इस स्थिति में केवल मौखिक संशोधन (verbal amendments) रखे जा सकते हैं। सदन विधेयक को उसके वर्त्तमान रूप में या तो स्वीकार करता है और या अस्वीकार करता है। किन्तु इस स्थिति में विधेयक का रद्द किया जाना सम्भव नहीं है।

जब कोई विधेयक एक सदन में पाँचो स्थितियों में पारित हो जाता है, तब उसे दूसरे सदन मे भेजा जाता है। वहाँ पर भी वही पाँचों स्थितियां दुहराई जाती हैं। इस सबके पश्चात् विधेयक राजा के पास औपचारिक अनुमोदन के लिए भेजा जाता है। निरूढ़ि के अनुसार राजा अपने निषेधाधिकार (veto power) का प्रयोग नहीं करता।

प्रश्न उठता है कि उस समय किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए जब दोनों सदनों में गतिरोध हो। १९४९ मे संशोधित संसद् अधिनियम (१९११) यह व्यवस्था करता है कि यदि लोकसभा किसी विधेयक को तीन निरन्तर अधिवेशनों में पारित करे और प्रथम अधिवेशन के द्वितीय पठन मे और तृतीय अधिवेशन के तृतीय पठन मे एक वर्ष का अन्तर हो, तो विधेयक को पारित मान लिया जाता है, चाहे लार्ड सभा उसे अस्वीकार ही क्यों न कर दे।

धन-विधेयक (Money Bills)—धन विधेयकों को पारित करने के लिए विशेष प्रक्रिया है। १९११ के संसद्-अधिनियम में धन-विधेयक की इस प्रकार परिभाषा की गई है "धन-विधेयक वह है जो लोकसभा के अध्यक्ष के विचार में इन विषयों में से किसी एक अथवा सबसे सम्बन्धित हो सकता है और ये विषय इस प्रकार हैं—करों का लगाना, हटाना, छूट देना, परिवर्तन करना अथवा विनियमन करना; संसद् द्वारा स्वीकृत धन अथवा संचित निधि (Consolidated Fund) पर आभारित (charged) ऋण की अदायगी के लिए अथवा अन्य वित्तीय प्रयोजन के लिए आरोपण (imposition), अथवा ऐसे आभारित व्ययों में परिवर्तन अथवा कमी करना; संभरण (supply); सार्वजनिक धन के हिसाब का विनियोग (appropriation), प्राप्ति, अभिरक्षा (custody), निर्गम (issue) तथा आडिट; ऋण प्राप्त करना या उसकी गारण्टी देना अथवा लौटाना; अथवा इन समस्त अथवा किसी एक मामले में सम्बन्धित गौण विषय (subordinate matters)।"

धन-विधेयकों के बारे में कुछ सिद्धान्त है : (१) "अंग्रेजी सरकार के सुव्यवस्थित लोक-वित्त (Public Finance) का मौलिक सिद्धान्त बन गया है कि पहले करारोपण तथा व्यय (Taxation and Expenditure) लोकसभा में प्रस्तुत किए जाते हैं और जब जनता के प्रतिनिधियों का सदन उनको स्वीकार कर लेता है तब उनको देशवासियों के लाभार्थ लागू किया जाता है।" (२) लोकसभा स्वयं किसी उद्देश्य के लिए धन स्वीकार नहीं कर सकती अथवा कोई कर नहीं लगा सकती। केवल मन्त्रियों के दायित्व अथवा मांग पर ही लोकसभा धन या कर स्वीकार

परीक्षक यह देखते हैं कि वास्तव में विज्ञापन प्रकाशित किए गए हैं और प्रतिलिपियाँ भेजी गई है। यदि समस्त औपचारिकताओं का पालन किया गया होता है तो वे विधेयक को प्रमाणित करते है और विधेयक संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि औपचारिकताओं का पालन न किया गया हो तो परीक्षक स्थायी आदेशों (Standing Orders) सम्बन्धी समितियों को प्रतिवेदन देते हैं जिन्हें संसद् के दोनों सदन नियुक्त करते हैं। समिति कार्य-लोप (omission) को क्षमा कर सकती है।

संसद् के किसी सदन में पुर:स्थापित किए जाने के पश्चात् उसका प्रथम तथा द्वितीय पठन होता है। यदि द्वितीय पठन के पश्चात् उसका विरोध नहीं होता तो उसे निर्विरोध विधेयकों की समिति (Committee on Unopposed Bills) को भेज दिया जाता है। यदि विधेयक का विरोध हो तो विधेयक को असार्वजनिक विधेयक समिति को भेजा जाता है। समिति के सदस्यों को घोषित करना पड़ता है कि उनका विधेयक में कोई वैयक्तिक स्वार्थ नहीं है। असार्वजनिक विधेयकों की समितियों की संख्या ऐसे विधेयकों की संख्या पर निर्भर करती है। बहुधा बहुत से असार्वजनिक विधेयक एक ही समिति को सौंप दिए जाते हैं।

समिति में विधेयकों की पूर्णरूपेण परीक्षा की जाती है और समस्त सम्बन्धित पक्षों (interested parties) को अपना-अपना दृष्टिकोण पेश करने का अवसर दिया जाता है। वकीलों तथा साक्षियों को सुना जाता है। सरकारी विभागों के प्रतिवेदनों पर विचार किया जाता है। इतना कुछ करने के पश्चात् प्राइवेट विधेयक समिति विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रतिवेदन प्रस्तुत करती है। प्रायः समिति का प्रतिवेदन स्वीकार कर लिया जाता है। कोई भी समिति की समझदारी पर संशय नहीं करता। इसके पश्चात् असार्वजनिक विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया सार्वजनिक विधेयक पारित करने के समान ही होती है।

मनरो के अनुसार, इंगलैंड में असार्वजनिक विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया के अनेक लाभ हैं। इसके द्वारा उन विधेयकों पर सावधानी एवं निष्पक्षता से विचार किया जाता है, जिन पर उनकी प्रकृति के कारण, पार्टी-भावना से विचार नहीं करना चाहिए। इससे सदन का समय बचता है और उसका कार्य औपचारिकताओं का पालन करना मात्र रह जाता है। यह प्रक्रिया इस मोटी बुद्धि के सिद्धान्त पर आधारित है कि सैकड़ो विधायकों के कई घण्टे इस पर विचार करने में व्यर्थ नहीं करने चाहिएँ कि क्या वैटरगी की नगरपालिका (borough) को कुछ अतिरिक्त शक्तियाँ दी जाएँ अथवा लीवरपूल ट्रामवे कम्पनी को नगर के बाहर ट्रामवे चलाने की आज्ञा दी जाए। कांग्रेस (अमेरिकी) में, जहाँ सार्वजनिक तथा असार्वजनिक विधेयकों के लिए एक ही प्रक्रिया है, काम की बड़ी भीड़ हो जाती है। हजारों असार्वजनिक विधेयक उसके सामने आते हैं। उनको साधारण सदस्य उपस्थित करते हैं। उनका महत्त्व कितना ही कम क्यों न हो पर वे सदा ही किसी ऐसी समिति को भेजे जाते हैं, जिसके पास अनेक राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नों से सम्बन्धित विधेयक विचार के लिए होते हैं। परिणामतः अधिकांश छोटे विधेयकों पर बहुत कम विचार हो पाता

है और यदि कांग्रेस का कोई प्रमुख सदस्य उसके पीछे न हो तो उसका समिति में ही दम घुट जाता है। निश्चय ही उनमें अधिकांश को यही गति प्राप्त होनी चाहिए, किन्तु जो बचते हैं वे सदा सर्वोत्तम ही नहीं होते। किसी महत्त्वहीन विधेयक के केवल लाभों के आधार पर कांग्रेस की समिति से अनुकूल प्रतिवेदन (favourable report) प्राप्त करना असम्भव नहीं है। मुख्य बात यह है कि उसके पीछे प्रभावी शक्ति होनी चाहिए।

क्या कांग्रेस के लिए इस कल्पना को छोड़ना श्रेयस्कर नहीं होगा कि समस्त विधेयक स्वतन्त्र तथा समान होते हैं, क्या उसके लिए स्पष्ट रूप से यह सिद्धान्त स्वीकार करना जैसे संसद् ने किया है, कि अनेक विधेयक पूर्णतः स्थानीय महत्त्व के होते हैं, और यह व्यवस्था करना ठीक नहीं होगा कि ऐसे समस्त विधेयकों पर निष्पक्ष रूप से, छोटी निःस्वार्थ (disinterested) समितियों में विचार हो। राष्ट्रपति लोवेल के शब्दों में, "अधिकतर प्रतिनिधि संस्थाओं का अधिकतर सदस्यों की स्थानीय तथा क्षेत्रीय हितों को उत्तेजित करने की प्रवृत्ति है। विधानमण्डलों को अपव्यय का भागी बनाने में इसका हाथ किसी भी अन्य वस्तु से अधिक है, और उनको यह समझा जाने लगा है कि वे सार्वजनिक कल्याण-कार्यों की अपेक्षा निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिए पेश किये जाते हैं......। अब अंग्रेजी प्रक्रिया का सार इस तथ्य मे है कि यह राजनैतिक विवाद के सामान्य क्षेत्र से असार्वजनिक तथा स्थानीय विधेयकों को हटा देती है और इस प्रकार संसद् को सार्वजनिक विषयों की ओर अधिक ध्यान देने का अवसर प्रदान करती है।"

दूसरी ओर, असार्वजनिक विधेयकों की अंग्रेजी प्रक्रिया अधिक व्ययी होने के कारण दोषमुक्त नहीं है। कभी-कभी लन्दन में बहुत से गवाह लाने पड़ते है। असार्वजनिक विधेयकों के पुरःस्थापन तथा संसद् में उनके विभिन्न स्थितियों मे पहुँचने पर शुल्क लिया जाता है। जब संसद् में विधेयक का विरोध हो तो संसदीय वकील (parliamentary counsel) अथवा अभिकर्त्ता (agent) नियुक्त करना आवश्यक हो जाता है जो पर्याप्त शुल्क लेते हैं। वे संसदीय वकील यही पेशा करते है। वे अपने कार्य के विशेषज्ञ होते हैं और प्रायः बिना अपवाद के ऊँचे स्तर के वकील होते है। लेकिन कोई भी व्यक्ति बॉंड भर कर तथा अपना नाम रजिस्टर कराकर संसदीय अभिकर्त्ता बन सकता है। लन्दन में उनकी प्रचुरता है और अच्छे अभिकर्त्ता (agent) अपनी सेवाओं के लिए अधिक धन लेते हैं। वे अमेरिका के 'लाबिस्ट' नही है। उनका कार्य सदस्यों को पटाते फिरना नही है। वे केवल विधेयक का मसविदा अपनी निगरानी मे बनवाते है, आवश्यक नोटिस दिलवाते हैं, और पक्षपोषण करते है। (Governments of Europe, Pp. 183-84)

अस्थायी आदेश (Provisional Orders) — सामयिक आदेश निकालने की आवश्यकता इस कारण होती है कि असार्वजनिक विधेयकों की प्रक्रिया अत्यधिक व्ययी है। केन्द्रीय सरकार का कोई विभाग आदेश निकालता है और वह
अथवा संसद् की पुष्टि के पश्चात् प्रभावी हो जाता है। सरकार
आदेश निकालती है। पहले, कोई केन्द्रीय विभाग आदेश निक

सभा में बहुमत होता है और उसके बल पर वह विधेयक को वाञ्छित रूप में पास करा लेता है। यदि लोकसभा मन्त्रिमण्डल के विधेयक को रद्द करे तो मन्त्रिमण्डल लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है। यूनाइटेड स्टेट्स में ऐसा कोई भय नहीं होता, वहाँ कांग्रेस के सदस्य कार्यपालिका की इच्छाओं को बिना हानि उठाए कुचल सकते हैं।

यू० एस० ए० में समितियों के अध्यक्षों का भाग महत्त्वपूर्ण होता है। साधारणतः महत्त्वपूर्ण विधेयक समितियों के अध्यक्षों द्वारा पुरःस्थापित होते हैं और वे अध्यक्ष के नाम से विख्यात होते हैं। यही कारण है कि अमेरिकन शर्मन कानून, एडम्सन कानून, मैन कानून, आदि का वर्णन करते हैं। यू० एस० ए० की समितियों के अध्यक्षों को बहुत कुछ इंगलैंड के मन्त्रियों के समान प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन करने का अधिकार होता है। इंगलैंड में सरकार कानूनों की प्रेरक होती है और हर सूरत में कोई मन्त्री विधेयक का इंचार्ज रहता है। समितियों के अध्यक्षों का कार्य महत्त्वपूर्ण नहीं होता। उनको यू० एस० ए० की समितियों के अध्यक्षों के समान श्रेष्ठता तथा लोक-प्रसिद्धि नहीं दी जाती। इंगलैंड में मन्त्री अध्यक्षों पर छाये रहते हैं। उनको पूर्णतः निःस्वार्थ समझा जाता है। यद्यपि वे समितियों की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं, तथापि वे पक्ष अथवा विपक्ष से सम्बन्ध नहीं रखते। यू० एस० ए० में कांग्रेस की समिति के अध्यक्ष को समिति के विषय में अधिकार होते हैं और वह उसे प्रभावित भी करता है। वह किसी पक्ष का समर्थन करने में तनिक भी नहीं सकुचाता। इसके अतिरिक्त अमेरिका में समिति की अध्यक्षता के लिए तीव्र प्रतियोगिता होती है, लेकिन इंगलैंड में ऐसा नहीं है। विशेषकर असार्वजनिक विधेयक समितियों की सदस्यता से बचने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय काम में लाया जाता है और कभी-कभी इस काम के लिए सदस्यों को मजबूर भी करना पड़ता है।

इंगलैंड में, समितियों में विधेयकों को भेजने से पूर्व संसद् के किसी सदन में उनके मौलिक सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाता है। समिति द्वितीय पठन के पश्चात् आती है। अतः समिति के सदस्य जानते हैं कि उनके सामने का विधेयक अन्त में पारित होगा और उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं जायेगा। यू० एस० ए० में ऐसी स्थिति नहीं है। वहाँ विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय किए बिना ही उसे समिति में भेज दिया जाता है। इस प्रकार समिति के सदस्यों के परिश्रम के व्यर्थ होने की प्रत्येक सम्भावना रहती है, क्योंकि कांग्रेस अन्त में, उसके सामान्य सिद्धान्तों को अस्वीकृत भी कर सकती है। अमेरिकन समिति विधेयक की सारी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न नहीं करती, क्योंकि उसे विधेयक के भविष्य का ज्ञान नहीं होता। निश्चित रूप से ब्रिटिश प्रथा अधिक अच्छी है।

इंगलैंड में प्रश्न पूछने तथा उत्तर देने का निश्चित समय होता है। विभिन्न विभागों से उस समय सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। किन्तु अमेरिका में, जब कोई कांग्रेस का सदस्य किसी विषय की सूचना चाहता है तब वह टेलीफोन करता है अथवा लिखित रूप से माँग करता है। यदि उसे इच्छित सूचना प्राप्त नहीं होती तो वह एक संकल्प (resolution) पेश करके प्रार्थना कर सकता है। उसे पूरक प्रश्न

निकालने के समय से ही प्रभावी (effective) बन जाते हैं और उन्हें संसद् की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं पड़ती। दूसरे, ऐसे आदेश हैं, जो प्रभावी तो जारी करते ही बन जाते हैं, किन्तु उनको संसद् के सामने लाना पड़ता है। तीसरे, आदेश वे हैं जिनको प्रभावी बनाने के लिए ४० दिन पूर्व संसद् के दोनों सदनों के सम्मुख लाना आवश्यक है। इस अवधि में दोनों सदनों में से किसी में भी उस पर आपत्ति की जा सकती है। चौथे, वे आदेश हैं जिनको प्रभावी बनाने के लिए दोनों सदनों में प्रस्ताव द्वारा पुष्टि होना अनिवार्य है। पाँचवें आदेश तभी प्रभावी होते हैं यदि कोई बाहरी निकाय (body) आपत्ति न उठाये। छठे, कुछ आदेश हर सूरत में अस्थायी होते हैं, चाहे कोई आपत्ति उपस्थित की जाये या नहीं। वे उस समय तक प्रभावी नहीं बनते जब तक वे अस्थायी आदेश पुष्टीकरण अधिनियम (Provisional Orders Confirmation Act) का अंग बनकर संसद् द्वारा पारित न हो जायें।

संसद् के अनेक व्यापक कानूनों के अनुसार सरकारी विभाग नगरपालिकाओं तथा निगमों को कुछ शक्ति दे सकते हैं। अतः जब किसी व्यक्ति, नगरपालिका अथवा निगम को किसी नई शक्ति की आवश्यकता होती है, तब वह सम्बन्धित विभाग से प्रार्थना करता है। तब विभाग प्रार्थना के औचित्य की जाँच करता है। यदि उसका निर्णय प्रार्थना के पक्ष में होता है तो वांछित शक्ति प्रदान करने के लिए आदेश निकाल दिया जाता है। वह आदेश अस्थायी हो सकता है, जिसके लिए संसद् की स्वीकृति आवश्यक हो। सामान्य प्रक्रिया यह है कि बहुत से अस्थायी आदेशों को एक विधेयक के रूप में संसद् में लाकर स्वीकृति ली जाती है। साधारणतः इन पुष्टीकरण विधेयकों (Confirmation Bills) का विरोध नहीं किया जाता। किन्तु विरोध होने पर विधेयक को प्रवर समिति को सौंपा जाता है। शेष प्रक्रिया असार्वजनिक विधेयकों की प्रक्रिया के समान होती है। इस प्रथा का सर्वोपरि गुण यह है कि इसमें व्यय कम होता है, तथा संसद् का बहुत-सा समय तथा मेहनत बच जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रणाली लोकप्रिय हो रही है।

अमेरिका तथा ब्रिटिश प्रक्रिया की तुलना (Comparison of American and British Procedure)—*ब्रिटिश तथा अमेरिकी विधि-निर्माण प्रक्रिया की तुलना* करना शिक्षाप्रद होगा। यद्यपि मौलिक रूप से वे दोनों समान दिखाई देती हैं, तथापि दोनों प्रणालियों में पर्याप्त अन्तर है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यूनाइटेड स्टेट्स में सार्वजनिक विधेयकों तथा असार्वजनिक विधेयकों में या सरकारी विधेयकों तथा साधारण सदस्य विधेयकों में कोई अन्तर नहीं है। अमेरिकी कांग्रेस में समस्त विधेयक साधारण सदस्यों द्वारा पुरःस्थापित किये जाते हैं। कुछ विधेयकों को राष्ट्रपति का, अथवा कुछ सरकारी विभागों का समर्थन प्राप्त हो सकता है, किन्तु उससे अधिक अन्तर नहीं पड़ता। जब कार्यपालिका को किसी कानून की अत्यन्त आवश्यकता होती है, तब उसके कांग्रेस द्वारा पास होने की कोई गारण्टी नहीं है। अनेक अवसरों पर कांग्रेस ने कार्यपालिका के वांछनीय विधेयकों को अस्वीकार किया है। किन्तु इंगलैंड में ऐसा नहीं है। अधिकांश प्रमुख विधेयक मन्त्रिमण्डल द्वारा पुरःस्थापित किए जाते और उसे पूर्ण विश्वास होता है कि वे कानून बन जायेंगे। मन्त्रिमण्डल का लोक-

सभा में बहुमत होता है और उसके बल पर वह विधेयक को वाञ्छित रूप में पास करा लेता है। यदि लोकसभा मन्त्रिमण्डल के विधेयक को रद्द करे तो मन्त्रिमण्डल लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है। यूनाइटेड स्टेट्स में ऐसा कोई भय नहीं होता, वहाँ कांग्रेस के सदस्य कार्यपालिका की इच्छाओं को बिना हानि उठाए कुचल सकते हैं।

यू० एस० ए० में समितियों के अध्यक्षों का भाग महत्त्वपूर्ण होता है। साधारणतः महत्त्वपूर्ण विधेयक समितियों के अध्यक्षों द्वारा पुरःस्थापित होते हैं और वे अध्यक्ष के नाम से विख्यात होते हैं। यही कारण है कि अमेरिकन शर्मन कानून, एडम्सन कानून, मैन कानून, आदि का वर्णन करते है। यू० एस० ए० की समितियों के अध्यक्षों को बहुत कुछ इंगलैंड के मन्त्रियों के समान प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन करने का अधिकार होता है। इंगलैंड में सरकार कानूनों की प्रेरक होती है और हर सूरत में कोई मन्त्री विधेयक का इंचार्ज रहता है। समितियों के अध्यक्षों का कार्य महत्त्वपूर्ण नहीं होता। उनको यू० एस० ए० की समितियों के अध्यक्षों के समान श्रेष्ठता तथा लोक-प्रसिद्धि नहीं दी जाती। इंगलैंड में मन्त्री अध्यक्षों पर छाये रहते हैं। उनको पूर्णतः निःस्वार्थ समझा जाता है। यद्यपि वे समितियों की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं, तथापि वे पक्ष अथवा विपक्ष से सम्बन्ध नहीं रखते। यू० एस० ए० में कांग्रेस की समिति के अध्यक्ष को समिति के विषय में अधिकार होते हैं और वह उसे प्रभावित भी करता है। वह किसी पक्ष का समर्थन करने में तनिक भी नहीं सकुचाता। इसके अतिरिक्त अमेरिका में समिति की अध्यक्षता के लिए तीव्र प्रतियोगिता होती है, लेकिन इंगलैंड में ऐसा नहीं है। विशेषकर असार्वजनिक विधेयक समितियों की सदस्यता से बचने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय काम में लाया जाता है और कभी-कभी इस काम के लिए सदस्यों को मजबूर भी करना पड़ता है।

इंगलैंड में, समितियों में विधेयकों को भेजने से पूर्व संसद् के किसी सदन में उनके मौलिक सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाता है। समिति द्वितीय पठन के पश्चात् आती है। अतः समिति के सदस्य जानते हैं कि उनके सामने का विधेयक अन्त में पारित होगा और उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं जायेगा। यू० एस० ए० में ऐसी स्थिति नहीं है। वहाँ विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार-विनिमय किए बिना ही उसे समिति में भेज दिया जाता है। इस प्रकार समिति के सदस्यों के परिश्रम के व्यर्थ होने की प्रत्येक सम्भावना रहती है, क्योंकि कांग्रेस अन्त में, उसके सामान्य सिद्धान्तों को अस्वीकृत भी कर सकती है। अमेरिकन समिति विधेयक की सारी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न नहीं करती, क्योंकि उसे विधेयक के भविष्य का ज्ञान नहीं होता। निश्चित रूप से ब्रिटिश प्रथा अधिक अच्छी है।

इंगलैंड में प्रश्न पूछने तथा उत्तर देने का निश्चित समय होता है। विभिन्न विभागों में उस समय सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती है। किन्तु अमेरिका में, जब कोई कांग्रेस का सदस्य किसी विषय की सूचना चाहता है तब वह टेलीफोन करता है अथवा लिखित रूप में माँग करता है। यदि उसे इच्छित सूचना प्राप्त नहीं होती तो वह एक संकल्प (resolution) पेश करके प्रार्थना कर सकता है। उसे पूरक प्रश्न

पूछ कर कांग्रेस का समय नष्ट करने की आज्ञा नहीं दी जाती। कार्यपालिका पर सदनों में आक्षेप नहीं लगाए जा सकते, क्योंकि कांग्रेस के दोनों सदनों में उसका कोई प्रतिनिधि नहीं होता।

यू० एस० ए० में एक पारिपाटी है जो इंगलैंड में नहीं है। उस परिपाटी के अनुसार किसी सदस्य को बीच में भाषण बन्द करने के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार सामान्य विषय का विवाद व्यक्तिगत विषय में बदल जाता है। अत विचार का सिलसिला जारी नहीं रखा जा सकता।

अमेरिका में एक अन्य परिपाटी है जो इंगलैंड में नहीं पाई जाती। इंगलैंड में संसद् के सदस्य व्यक्तिगत रूप से अपना पूरा भाषण देते हैं। किन्तु अमेरिका कांग्रेस में बहुत से ऐसे भाषण प्रकाशित होते हैं, जो कभी नहीं दिये जाते। वहां पर सदस्य कुछ मिनट भाषण देने के पश्चात् प्रस्ताव करते हैं कि उसे शेष भाषण—अपने विचारों का विस्तृत रूप—छपवाने की आज्ञा दी जाये। साधारणतः इस प्रक्रिया का विरोध नहीं किया जाता। भाषण को छपवाना सुनने की अपेक्षा सरल है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि पूरा भाषण कांग्रेस के रिकार्ड में छप जाता है और उसका एक शब्द भी कांग्रेस में नहीं बोला जाता। इस प्रकार अमेरिका की कांग्रेस के सदस्य पूर्ण भाषण देने का गर्व कर सकते हैं।

विवादान्तक प्रस्ताव, विभागीय विधि, कंगारू विधि, यान्त्रिक विधि तथा समय विभाग (Closure, Closure by Compartments, Kangaroo Closure, Guillotine and Time Table)—संसद् का समय बचाने के लिए अनेक उपायों का प्रयोग किया जाता है। उनमें से एक विवादान्तक प्रस्ताव है। जब कोई सदस्य किसी विषय पर बोल रहा हो तब कोई अन्य सदस्य अगले प्रश्न पर विचार करने का प्रस्ताव कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि जिस प्रश्न पर विचार हो रहा है, उसे शीघ्र ही समाप्त करके अगले प्रश्न पर विचार आरम्भ किया जाए। उद्देश्य अगले प्रश्न पर विचार करने का न होकर विवाद को समाप्त करना होता है। प्रस्ताव पर तुरन्त मत लिए जाते है और विवाद समाप्त हो जाता है। यदि अध्यक्ष का यह विचार न हो कि इससे अल्पसंख्यकों को हानि होगी तो विषय को तत्काल ही मत के लिए रखा जाता है और उसके द्वारा विवाद समाप्त हो जाता है।

विभागीय विधि (Closure by Compartments) साधारण विवादान्तक प्रस्ताव उपस्थित करने में एक सुधारात्मक पग है। विवादान्तक प्रस्ताव प्रत्येक धारा के पश्चात् करना पड़ता था और इसलिए बहुत-सा समय व्यर्थ हो जाया करता था। परिणामस्वरूप कई धाराओं के लिए एक ही विवादान्तक प्रस्ताव या अगले प्रश्न का प्रस्ताव लाया जाता है। कोई सदस्य प्रस्ताव कर सकता है कि १७ से २४ तक की धाराओं पर विवाद समाप्त किया जाये। यदि अध्यक्ष उसे मान्यता दे दे और बहुमत सहमत हो जाए तो उन धाराओं पर विवाद समाप्त हो जाता है। यही विवादान्तक की विभागीय विधि है।

कंगारू विधि विभागीय विधि के समान ही है। इस व्यवस्था के द्वारा अध्यक्ष तथा सम्पूर्ण सदन की उपाय और साधन समिति के सभापति को अधिकार दिया

जाता है कि वह समस्त प्रस्तावित संशोधनों में से केवल महत्त्वपूर्ण संशोधनों को विचारार्थ छाँट सके। स्थाई समिति के अध्यक्ष को यह अधिकार नहीं है। सदन के कार्यों को सुचारु रूप से व्यवस्थित करने के लिए निष्पक्ष अध्यक्ष को यह महत्त्वपूर्ण शक्ति दी गई है।

यदि किसी विधेयक की धाराओं पर विवाद निश्चित समय मे समाप्त करना हो तो उसके लिए अवधि निश्चित कर दी जाती है। अवधि के समाप्त होते ही गिल्लोटिन (guillotine) गिर जाता है और विवाद समाप्त कर दिया जाता है चाहे समस्त धाराओं पर विचार किया गया हो अथवा नही। गिल्लोटिन यन्त्र सिर काटने के काम आता था। उसके ऊपर के तख्ते मे तेज गडासा (blade) लगा होता था। गिल्लोटिन गिरने का तात्पर्य विचार-क्रम (thread of the debate) को समाप्त करना होता है।

विवादास्पद विषयों के लिए समय-विभाग बनाया जाता है, क्योंकि गिल्लोटिन विधि का प्रयोग बहुधा नहीं किया जाता। विधेयक को प्रस्तुत करने वाला मन्त्री विधेयक की विभिन्न स्थितियों के लिए—द्वितीय पठन, समिति स्थिति, प्रतिवेदन स्थिति, आदि—निश्चित समय को स्वीकृत कराने के लिए प्रार्थना करता है। समय-विभाग में धारानुसार भी विभाजन किया जाता है अर्थात् यह निश्चित कर दिया जाता है कि अमुक धारा पर इतने समय तक विचार होगा। इस प्रक्रिया मे विधेयक के समर्थकों तथा विरोधियों को समय के अन्तर्गत अपने विचार रखने का अवसर मिलता है। इस विधि से न केवल काम जल्दी होता है, बल्कि अविचारित विधेयक पास होने का खतरा भी नही रहता। किन्तु इस प्रक्रिया मे सदस्य को अपने वाक्कौशल (oratory) को प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता।

इंगलैंड में समिति पद्धति (Committee System in England)—विधि-निर्माण क्षेत्र मे समितियों का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। सरकार का कार्य इतना बढ गया है कि सम्पूर्ण लोक-सभा अथवा लार्ड सभा भी उसको नहीं निबटा सकती। यदि समस्त विधेयक संसद् के पूर्ण अधिवेशन के सामने लाये जाये तो यह सम्भव नही कि समस्त सरकारी कार्य समाप्त हो सकें। यह कार्य तो भी असम्भव होगा यदि संसद् का अधिवेशन सारे वर्ष चलता रहे और कार्य के घण्टे भी अधिक कर दिये जायें। इसके अतिरिक्त, यदि ६०० से अधिक सदस्य एक सदन मे बैठे तो वातावरण ऐसा होता है कि कोई निर्णय नही किया जा सकता। किन्तु यदि कुछ सदस्यों की एक समिति हो तो वे अच्छी प्रकार से विधेयक की लाभ-हानियों पर अधिक अच्छे वातावरण मे विचार कर सकते हैं। यदि लोक-सभा तथा लार्ड सभा के समस्त सदस्यों को विभिन्न समितियों में विभाजित कर दिया जाये जिनमें विधेयकों को विचारार्थ भेजा जाये तो अधिक काम किया जा सकता है। यदि पूर्व निश्चित समिति में विधेयक की आलोचनात्मक दृष्टि से परीक्षा की जाये तो संसद् का पर्याप्त समय बच सकता है। लोक-सभा की कार्य-विधि के नियम इस प्रकार के है कि वे सदस्यों को विवादास्पद विधेयक पर अपने व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप लगाने का अवसर प्रदान नही करते। अ-. करता है कि कौन-कौन भाषण दें। कभी-कभी कोई भाषण कई घण्टों ..

चलता रहता है और कोई उचित आलोचना नही की जाती, क्योंकि संसद् के सदस्य भूल जाते हैं कि पूर्ववक्ता वही युक्तियाँ पहले दे चुका है। सरकार विरोधियों के दृष्टिकोण को अपनाने को तैयार नहीं होती, चाहे उसमें भलाई ही क्यों न हो, क्योंकि संसद् मे दिये गये भाषण सार्वजनिक होते हैं। सरकार संसार को यह प्रकट करने के लिए तैयार नहीं होती, कि उनके द्वारा पुरःस्थापित विधेयकों में कुछ कमी है और विरोधियों मे उसको ठीक करने की बुद्धिमत्ता है। समितियों में यह अवस्था नही होती। वहाँ बैठकें वन्द कमरो में होती हैं। सरकार विरोधियों के विचारो को अपनाने मे अपनी हेठी नहीं समझती, यदि वे विधेयक के सिद्धान्तों के विपरीत न हों। परिणामस्वरूप देश को विरोधी विचारों में समझौता होने से लाभ पहुँच सकता है।

समितियों के प्रकार (Kinds)—जहाँ तक समितियों के संगठन का प्रश्न है, पांच प्रकार की समितियाँ होती हैं। सार्वजनिक विधेयकों से सम्बन्धित पांच स्थायी समितियाँ होती हैं। उनमें से एक स्काटलैंड से सम्बन्धित कार्यों की देख-रेख करती है। ये समितियाँ प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में वरण समिति (Committee of Selection) द्वारा नियुक्त की जाती है और अधिवेशन की समाप्ति तक चलती हैं। स्थायी समिति मे ३० और ५० के बीच सदस्य होते हैं। इन स्थायी समितियों को १५ से लेकर २५ तक अतिरिक्त सहकारी सदस्य नियुक्त करने का अधिकार है, जो विचाराधीन विषय के विशेषज्ञ होते हैं। प्रत्येक स्थायी समिति को केवल वही विधेयक भेजे जाते है, जो उसके अधिकार-क्षेत्र में आते हों। वरण समिति अध्यक्षों की एक सूची (Panel) तय करती है, जो स्थायी समितियों के अध्यक्षो को अपने आप में से नियुक्त करते हैं। साधारणतः सरकार के समर्थकों को स्थायी समितियों का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।

प्रवर समितियाँ (Select Committees) लोकसभा अथवा लार्ड सभा द्वारा निर्देशित विशेष विधेयकों पर विचार करने तथा रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त की जाती है। वे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् समाप्त हो जाती हैं। साधारणतः प्रवर समिति में ११ सदस्य होते हैं। वरण समिति इसके सदस्यो को चुनती है।

अधिवेशन समितियाँ (Sessional Committees) कुछ विशेष विषयो को निपटाने के लिए एक ही अधिवेशन के लिए नियुक्त की जाती हैं।

संसद् के असार्वजनिक विधेयकों को निपटाने के लिए असार्वजनिक विधेयक समितियाँ नियुक्त की जाती हैं। वरण समिति उनका चयन उसी सूची के आधार पर करती है, जो पार्टी-मैनेजरों द्वारा बनाई जाती है। असार्वजनिक विधेयक समितियों की संख्या इस तथ्य पर निर्भर करती है कि कुल कितने असार्वजनिक विधेयक हैं। लोकसभा की असार्वजनिक विधेयक समिति के सदस्यों की संख्या ४ और लार्ड सभा की ५ होती है। असार्वजनिक विधेयक समिति के सदस्यों को यह घोषणा करनी पड़ती है कि उसका उक्त विधेयक में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नही है। उसे पूर्णतः निष्पक्ष रहना पड़ता है। समितियों को प्रचुर मात्रा में कार्य करना पड़ता है। विवादास्पद विधेयकों के सम्बन्ध में प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं और प्रमुख वकील पक्ष

तथा विपक्ष मे युक्तियाँ प्रस्तुत करते है। असार्वजनिक विधेयक समिति का प्रतिवेदन सदा स्वीकृत ही किया जाता है, चाहे वह पक्ष में हो या विपक्ष में।

सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House)—किसी समय लोकसभा सारे सार्वजनिक विधेयकों पर सम्पूर्ण सदन की समिति मे विचार करती थी। उसके पश्चात् स्थायी समिति की प्रथा शुरू की गई क्योंकि वह लोकप्रिय हो गई; अतः सम्पूर्ण सदन की समिति का प्रयोग कम हो गया। आजकल केवल तीन प्रकार के विधेयक सम्पूर्ण सदन की समिति मे भेजे जाते हैं—धन-विधेयक, अस्थायी आदेशों की पुष्टि करने वाले विधेयक तथा अन्य वे विधेयक, जिन्हे लोकसभा सम्पूर्ण सदन की समिति में विचारार्थ भेजने का निश्चय करे।

सम्पूर्ण सदन की समिति में लोकसभा के समस्त सदस्य सम्मिलित होते है। अन्तर केवल इतना है कि उसकी बैठक की अध्यक्षता, अध्यक्ष (Speaker) के स्थान पर केवल सम्पूर्ण सदन की समिति का सभापति करता है। भारी गदा (mace) को मेज के नीचे रख दिया जाता है जिससे प्रकट होता है कि सदन की बैठक नही हो रही। प्रक्रिया के नियम ढीले कर दिए जाते हैं और कोई भी सदस्य उतनी बार बोल सकता है जितनी बार वह चाहे, यद्यपि सदन मे वह केवल एक बार ही बोल सकता है। विवादान्तक प्रस्ताव नही लाये जा सकते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब सम्पूर्ण सदन की समिति राजस्व विधेयकों (revenue measures) पर विचार करती है तब उसे *उपाय तथा साधन समिति (Committee of Ways and Means)* कहते हैं। जब वह विनियोग (appropriation) अथवा व्ययों (expenditures) पर विचार करती है तो उसे पूर्ति-समिति (Supply Committee) कहते हैं। जब सम्पूर्ण सदन की समिति अपना कार्य समाप्त कर लेती है तब एक इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है कि 'बैठक समाप्त कर प्रतिवेदन उपस्थित करो'। अध्यक्ष आकर अपना स्थान ग्रहण करता है। भारी गदा को उसके स्थान पर रख दिया जाता है और सदन का कार्य आरम्भ हो जाता है।

सार्वजनिक विधेयकों को सम्पूर्ण सदन की समिति मे भेजना लाभदायक नही होता। ६०० से अधिक सदस्यों के सदन में कोई विचार-विमर्श नहीं हो सकता। रैम्जे म्योर के अनुसार, "सम्पूर्ण सदन की समिति में किसी विधेयक पर विचार नही करना चाहिए, चाहे वह कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो। सदन को उस पर विचार करने के पर्याप्त अवसर मिलते है; पहले द्वितीय पठन के अवसर पर, फिर प्रतिवेदन स्थिति में और अन्त में तृतीय पठन के अवसर पर। यही पर्याप्त होने चाहिएँ और संशोधन तथा सूक्ष्म निरीक्षण का कार्य उन सदस्यों को सौंपना चाहिए जो विधेयक के विषय के विशेषज्ञ हों।"

इंगलैंड में प्रत्यायोजित कानून (Delegated Legislation in England)—डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "ज्यों-ज्यों समूहवाद (collectivism) के विकास के कारण सरकारी शक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्रत्यायोजित कानूनों की संख्या बढ़ती जाती है। यद्यपि १८वी सदी में भी यह प्रथा थी, १९वी सदी मे तो यह प्रथा काफी अधिक थी, पर सन् १८७० से, जब समूहवाद का विकास आरम्भ हुआ, इस प्रयोग का

चलता रहता है और कोई उचित आलोचना नही की जाती, क्योंकि संसद् के सदस्य भूल जाते हैं कि पूर्ववक्ता वही युक्तियाँ पहले दे चुका है। सरकार विरोधियों के दृष्टिकोण को अपनाने को तैयार नहीं होती, चाहे उसमें भलाई ही क्यों न हो, क्योंकि संसद् में दिये गये भाषण सार्वजनिक होते हैं। सरकार संसार को यह प्रकट करने के लिए तैयार नहीं होती, कि उनके द्वारा पुरःस्थापित विधेयकों मे कुछ कमी है और विरोधियों मे उसको ठीक करने की बुद्धिमत्ता है। समितियों में यह अवस्था नही होती। वहाँ बैठकें बन्द कमरों मे होती हैं। सरकार विरोधियों के विचारों को अपनाने मे अपनी हेठी नहीं समझती, यदि वे विधेयक के सिद्धान्तों के विपरीत न हों। परिणामस्वरूप देश को विरोधी विचारों में समझौता होने से लाभ पहुँच सकता है।

समितियों के प्रकार (Kinds)—जहाँ तक समितियों के संगठन का प्रश्न है, पाँच प्रकार की समितियाँ होती है। सार्वजनिक विधेयकों से सम्बन्धित पाँच स्थायी समितियाँ होती है। उनमे से एक स्काटलैंड से सम्बन्धित कार्यों की देख-रेख करती है। ये समितियाँ प्रत्येक अधिवेशन के प्रारम्भ में वरण समिति (Committee of Selection) द्वारा नियुक्त की जाती है और अधिवेशन की समाप्ति तक चलती हैं। स्थायी समिति मे ३० और ५० के बीच सदस्य होते हैं। इन स्थायी समितियों को १५ से लेकर २५ तक अतिरिक्त सहकारी सदस्य नियुक्त करने का अधिकार है, जो विचाराधीन विषय के विशेषज्ञ होते हैं। प्रत्येक स्थायी समिति को केवल वही विधेयक भेजे जाते हैं, जो उसके अधिकार-क्षेत्र में आते हों। वरण समिति अध्यक्षों की एक सूची (Panel) तय करती है, जो स्थायी समितियों के अध्यक्षों को अपने आप मे से नियुक्त करते है। साधारणतः सरकार के समर्थकों को स्थायी समितियों का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है।

प्रवर समितियाँ (Select Committees) लोकसभा अथवा लार्ड सभा द्वारा निर्देशित विशेष विधेयकों पर विचार करने तथा रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त की जाती है। वे प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् समाप्त हो जाती हैं। साधारणतः प्रवर समिति में ११ सदस्य होते हैं। वरण समिति इसके सदस्यों को चुनती है।

अधिवेशन समितियाँ (Sessional Committees) कुछ विशेष विषयों को निपटाने के लिए एक ही अधिवेशन के लिए नियुक्त की जाती है।

संसद् के असार्वजनिक विधेयकों को निपटाने के लिए असार्वजनिक विधेयक समितियाँ नियुक्त की जाती हैं। वरण समिति उनका चयन उसी सूची के आधार पर करती है, जो पार्टी-सचेतकों द्वारा बनाई जाती है। असार्वजनिक विधेयक समितियों की संख्या इस तथ्य पर निर्भर करती है कि कुल कितने असार्वजनिक विधेयक हैं। लोकसभा की असार्वजनिक विधेयक समिति के सदस्यों की संख्या ४ और लार्ड सभा की ५ होती है। असार्वजनिक विधेयक समिति के सदस्यों को यह घोषणा करनी पड़ती है कि उसका उक्त विधेयक मे कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। उसे पूर्णतः निष्पक्ष रहना पड़ता है। समितियों को प्रचुर मात्रा मे कार्य करना पड़ता है। विवादास्पद विधेयकों के सम्बन्ध मे प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं और प्रमुख वकील पक्ष

तथा विपक्ष में युक्तियाँ प्रस्तुत करते है। असार्वजनिक विधेयक समिति का प्रतिवेदन सदा स्वीकृत ही किया जाता है, चाहे वह पक्ष में हो या विपक्ष मे।

सम्पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House)—किसी समय लोकसभा सारे सार्वजनिक विधेयको पर सम्पूर्ण सदन की समिति मे विचार करती थी। उसके पश्चात् स्थायी समिति की प्रथा शुरू की गई क्योंकि वह लोकप्रिय हो गई; अतः सम्पूर्ण सदन की समिति का प्रयोग कम हो गया। आजकल केवल तीन प्रकार के विधेयक सम्पूर्ण सदन की समिति मे भेजे जाते हैं—धन-विधेयक, अस्थायी आदेशों की पुष्टि करने वाले विधेयक तथा अन्य वे विधेयक, जिन्हे लोकसभा सम्पूर्ण सदन की समिति में विचारार्थ भेजने का निश्चय करे।

सम्पूर्ण सदन की समिति में लोकसभा के समस्त सदस्य सम्मिलित होते है। अन्तर केवल इतना है कि उसकी बैठक की अध्यक्षता, अध्यक्ष (Speaker) के स्थान पर केवल सम्पूर्ण सदन की समिति का सभापति करता है। भारी गदा (mace) को मेज के नीचे रख दिया जाता है जिससे प्रकट होता है कि सदन की बैठक नही हो रही। प्रक्रिया के नियम ढीले कर दिए जाते हैं और कोई भी सदस्य उतनी बार बोल सकता है जितनी बार वह चाहे, यद्यपि सदन मे वह केवल एक बार ही बोल सकता है। विवादान्तक प्रस्ताव नही लाये जा सकते। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब सम्पूर्ण सदन की समिति राजस्व विधेयकों (revenue measures) पर विचार करती है तब उसे उपाय तथा साधन समिति (Committee of Ways and Means) कहते है। जब वह विनियोग (appropriation) अथवा व्ययों (expenditures) पर विचार करती है तो उसे पूर्ति-समिति (Supply Committee) कहते हैं। जब सम्पूर्ण सदन की समिति अपना कार्य समाप्त कर लेती है तब एक इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है कि 'बैठक समाप्त कर प्रतिवेदन उपस्थित करो'। अध्यक्ष आकर अपना स्थान ग्रहण करता है। भारी गदा को उसके स्थान पर रख दिया जाता है और सदन का कार्य आरम्भ हो जाता है।

सार्वजनिक विधेयकों को सम्पूर्ण सदन की समिति मे भेजना लाभदायक नही होता। ६०० से अधिक सदस्यों के सदन में कोई विचार-विमर्श नहीं हो सकता। रैम्जे म्योर के अनुसार, "सम्पूर्ण सदन की समिति में किसी विधेयक पर विचार नही करना चाहिए, चाहे वह कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो। सदन को उस पर विचार करने के पर्याप्त अवसर मिलते है; पहले द्वितीय पठन के अवसर पर, फिर प्रतिवेदन स्थिति मे और अन्त मे तृतीय पठन के अवसर पर। यही पर्याप्त होने चाहिएँ और संशोधन तथा सूक्ष्म निरीक्षण का कार्य उन सदस्यों को सौंपना चाहिए जो विधेयक के विषय के विशेषज्ञ हों।"

इंगलैंड में प्रत्यायोजित कानून (Delegated Legislation in England)—डा० जैनिंग्ज के अनुसार, "ज्यों-ज्यो समूहवाद (collectivism) के विकास के कारण सरकारी शक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों प्रत्यायोजित कानूनों की संख्या बढ़ती जाती है। यद्यपि १८वी सदी में भी यह प्रथा थी, १९वी सदी मे तो यह प्रथा काफी अधिक थी, पर सन् १८७० मे, जब समूहवाद का विकास आरम्भ हुआ, इस प्रयोग का

महत्व तथा संख्या बढ़ी है। पहले कानून केवल स्थानीय शासन तथा सार्वजनिक उपयोगिता के कार्यों (Local Government and Public Utility) के लिए बनाये जाते थे लेकिन १९०६ से केन्द्रीय सरकार को अनेक प्रत्यक्ष प्रशासकीय कार्य दे दिये गए हैं और परिणामस्वरूप विभागों द्वारा निर्गमित 'नियमों' तथा 'व्यवस्थाओं' की संख्या बहुत बढ गई है, जो केन्द्र-प्रशासित सेवाओं (Centrally administered Services) से सम्बन्धित कानूनों की अनुपूर्ति (supplement) करते हैं।" १९३२ की 'मन्त्रियो की शक्ति समिति' (Committee on Ministers' Powers of 1932) के अनुसार, "चाहे अच्छा हो या बुरा, पर इस परिपाटी का विकास अवश्यम्भावी है। यह संवैधानिक कानून के क्षेत्र मे हमारे सरकार-सम्बन्धी विचारो में परिवर्तन का स्वाभाविक प्रतिबिम्ब है, जो राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विचारों तथा वैज्ञानिक खोजो से हमारे जीवन की अवस्थाओं में आये हुए परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुआ है।"

आजकल असार्वजनिक विधेयकों के स्थान पर अस्थायी आदेशो को बनाने तथा विभिन्न सरकारी विभागों को संसद् द्वारा पारित कानूनों का विस्तार करने की शक्ति देने की प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ रही है। कुछ विषयों मे विभागों द्वारा दिए गये आदेशों की संसद् द्वारा पुष्टि होना आवश्यक है और शेष विषयों मे पुष्टि की आवश्यकता नही होती। नियमों तथा आदेशो को कानून की शक्ति उसी समय प्राप्त हो जाती है, जिस समय उनका निर्गमन (issue) किया जाता है। यह कहा जाता है कि १८९० मे १६०, १९१३ में ४४४ तथा १९२८ में ८०० नियम तथा आदेश निकाले गये थे।

१९२५ के रेटिंग तथा वैल्यूएशन ऐक्ट (The Rating and Valuation Act of 1925) में सम्बन्धित मन्त्री को न केवल आदेशों के निर्गमन तथा "ऐसे कार्य करने की शक्ति ही नही दी गई थी, जो उसे आवश्यक अथवा उचित प्रतीत हों" अपितु उस अधिनियम के उपबन्धों में वे परिवर्तन करने का अधिकार भी दिया गया था जो आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक तथा उचित प्रतीत हों। राष्ट्रीय सरकार ने १९३१ के संकट का सामना करने के लिये कुछ सामान्य कानून पास किये, लेकिन कार्य पूरा करने के लिए स-परिषद् आदेश (Order-in-Council) बनाने की छूट दे दी। १९३२ के नगर योजना अधिनियम में स्वास्थ्य मन्त्रालय को स्थानीय अधिकारियों के परामर्श से योजनाओं को कार्यान्वित करने की इजाजत दी गई है। १९३२ के टैरिफ ऐक्ट ने टैरिफ बोर्ड को परिस्थिति के अनुसार टैरिफ निश्चित करने की शक्ति प्रदान की। बेकारी बीमा अधिनियम, १९३२ (Unemployment Insurance Act) ने स्वास्थ्य मन्त्रालय को स-परिषद् आदेश द्वारा दरों मे परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान की। १९१४-१६ के राज्य सुरक्षा अधिनियमों (Defence of the Realm Acts) ने क्राउन को युद्ध चलाने के लिए प्रत्येक कार्य करने की शक्ति प्रदान की। १९२० के संकटकालीन शक्ति अधिनियम में सरकार को औद्योगिक झगड़ों में आवश्यक सेनाओं की सुरक्षा के लिए अनेक शक्तियाँ दी गई।

डेलिगेटेड यानी प्रत्यायोजित कानून का विकास अनेक कारणों से हुआ है। राज्य का अवधारण (concept) बदल गया है और आरक्षी राज्य (Police State) के स्थान पर अब हम कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की बात करते हैं। दृष्टिकोण में इस परिवर्तन के आने से सरकार के दायित्वों तथा कार्यों मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। कल्याणकारी राज्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए बहुत से कानून बनाने पड़ते हैं। पहले विधेयक बहुत सक्षिप्त हुआ करते थे, लेकिन अब ऐसा समय आ गया है कि कानून के प्रत्येक अंग का विस्तार करना पड़ता है। संसद् द्वारा पास किये जाने वाले विधेयकों की बढती हुई सख्या ने समय की समस्या उपस्थित कर दी है। आज सब लोग यह स्वीकार करते है कि यदि सदस्य अधिक समय देने के लिए प्रस्तुत हों तो भी संसद् उन समस्त कानूनो को पारित नही कर सकती है। इसका आवश्यक परिणाम यह है कि संसद् कानून की केवल मोटी रूप-रेखा पास करती है और उसका विस्तार करने का कार्य सम्बन्धित विभागो को सौंप देती है। इसको डेलिगेटेड यानी प्रत्यायोजित कानून-निर्माण कहते हैं। यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि यह बात दोषपूर्ण होते हुए भी आवश्यक है। निर्विवाद रूप से वह ससद् के हाथों से विधि-निर्माण की शक्ति छीन लेना है, किन्तु इसका कोई उपाय नही है। ससद् के सदस्यों के लिए वे सब कानून बना सकना सम्भव नही हैं, जिनको सरकार आवश्यक समझती है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक कानून अधिकाधिक प्राविधिक (technical) होता जा रहा है। यह आशा करना व्यर्थ है कि ससद् के साधारण सदस्य आधुनिक विधि निर्माण की समस्त बारीकियों को समझ सकेंगे। यदि कुछ विशेषज्ञो को छोड़कर ससद् के अन्य सामान्य सदस्य यह असम्भव कार्य करने का प्रयास करे तो वे असफल ही समझे जायेंगे। इन परिस्थितियों मे विधि-निर्माण के सामान्य सिद्धान्तो को स्वीकृत कर शेष विस्तार का कार्य सम्बन्धित मन्त्री को सौंप देना सुरक्षित समझा जाता है।

संसद् द्वारा पारित किए जाने वाले विधेयकों का मसविदा बनाने के लिए पर्याप्त समय नही मिलता। यदि अल्प काल मे विस्तृत विधेयकों का मसविदा बनाने का प्रयत्न किया जाए तो उस मसविदे मे त्रुटियों का होना स्वाभाविक है। कोई आश्चर्य नही कि सम्बन्धित विभागों को स-परिषद् आदेशों (Orders-in-Council) को निकालने की शक्ति दे दी जाती है। ये आदेश पर्याप्त तसल्ली से निकाले जा सकते है तथा इनके तर्कसंगत और सुबोध होने की आशा की जा सकती है।

किसी भी राजनीतिज्ञ अथवा सरकारी कर्मचारी (Public servant) के लिए उन समस्त सम्भावनाओं (contingencies) की कल्पना करना असम्भव है, जो कि भविष्य मे पैदा हो सकती हैं और संसद् में पारित होते समय उनका प्रबन्ध विधेयक मे कर सकना सम्भव नही है। यदि सम्बन्धित विभाग को भावी सम्भावनाओं की व्यवस्था करने के लिए कुछ शक्ति दे दी जाए तो उससे सुविधा हो जाएगी। इसके अतिरिक्त, यह भी सम्भव है कि विधेयक को पारित करते समय सरकार को समस्त स्थानीय समस्याओं का पूर्ण ज्ञान न हो। अतः विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए परिषद् आदेशों द्वारा कानून निकाल दिये जाते है। प्रत्यायोजित

विधि-निर्माण (delegated legislation) से कानून में लचक उत्पन्न हो जाती है और किसी विशेष कानून को कार्यान्वित करते समय जो कमियाँ अनुभव हों, उनको सुधारने का अवसर मिलता है।

ट्रेजरी के सर्वप्रथम संसदीय वकील, सर विलियम ग्राहम हैरीसन (Sir William Graham Harrison) ने प्रत्यायोजित विधान (delegated legislation) के पक्ष में एक और तर्क दिया है। उनका कहना है कि "मैं इस प्रश्न की एक और दिशा की ओर ध्यान खींचना चाहूँगा जो मुझे बहुत अपील करती है, क्योंकि मैंने न केवल बहुत से कानूनों का मसविदा बनाया है अपितु बहुत से परिनियत नियमों और आदेशों (Statutory rules and orders) का मसविदा भी बनाया है। प्रत्यायोजित विधान (delegated legislation) जिन विभिन्न परिस्थितियों और दशाओं में बनाया जाता है, उनके कारण उसका ढाँचा (form) परिनियम (statute) के ढाँचे से कहीं अच्छा होता है। बहुत बार बिलों के मसविदे तैयार करने के लिए बहुत कम समय प्राप्त होता है, और पास हो जाने के पश्चात् उनका अन्तिम स्वरूप बहुत असन्तोषजनक होता है। दूसरे परिनियत नियमों (statutory rules) को काफी आराम के साथ बनाया जा सकता है तथा उनके विषय को, तर्कयुक्त और उचित स्वरूप दिया जा सकता है। यह संसदीय कार्य-विधि और संक्षेप से जिसकी आवश्यकता प्रत्येक मन्त्री को रहती है, मुक्त रहता है।"

१९२९ में लार्ड चान्सलर ने प्रत्यायोजित विधान के प्रश्न की परीक्षा करने के लिए मन्त्रियों की शक्ति समिति (Committee on Ministers' Powers) की नियुक्ति की। समिति ने बताया कि इसका प्रयोग बहुत कम होता है और कहा कि १९३० के पथ यातायात अधिनियम (Road Traffic Act) के द्वारा परिवहन मन्त्री (Minister for Transport) को "अधिक प्रतिबन्ध लगाने, अथवा मोटर-चालित या अन्य गाडियाँ अथवा किसी विशेष मार्ग पर किसी विशेष प्रकार की गाड़ियाँ चलाने पर रोक लगाने की शक्तियाँ दी गई।" समिति की टिप्पणी थी कि "जो व्यक्ति कभी मोटर गाडी में बैठा है, वह कभी यह नहीं चाहेगा कि संसद् इस कठिन कार्य को अपने हाथ में ले। ब्रिटिश संविधान का प्रबलतम समर्थक भी यह नहीं कह सकता कि इस प्रकार के प्रत्यायोजन (delegation) में संविधान को कोई गम्भीर भय उत्पन्न हो गया है।" समिति का प्रस्ताव था कि संसद् की एक स्थायी समिति स्थापित की जाए और इससे पहले कि नियम तथा आदेश कानून का रूप लें, यह आवश्यक हो कि वे स्थायी समिति के सम्मुख लाए जाएँ। स्थायी समिति को किसी भी आदेश के अनौचित्य की ओर संसद् का ध्यान आकर्षित करने की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए।

१९४४ में परिनियम सम्बन्धी सलेखों (statutory instruments) के लिए एक प्रवर समिति की स्थापना की गयी थी और यह प्रत्येक अधिवेशन में बनाई जाती है। प्रवर समिति (Select Committee) का कार्य प्रत्येक परिनियम सम्बन्धी सलेख (statutory instrument) पर अथवा उसके मसविदे (draft of an instrument) पर, जो हाउस आफ कामन्स के सामने रखे जा चुके हैं, यह विचार करना होता है कि क्या किसी विशेष विधान की ओर सदन का ध्यान खींचना चाहिए अथवा नहीं।

यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि किसी सरकारी विभाग को नियम तथा आदेश देने की शक्ति सौंपते समय संसद् निश्चित क्षेत्र का भी उल्लेख करे । तथाकथित हेनरी अष्टम धारा (Henry VIII Clause) का प्रयोग छोड देना चाहिए जो मन्त्री को अधिनियम की व्यवस्था मे सुधार करने की शक्ति देती है और इसका प्रयोग करने की अपवाद रूप परिस्थितियों मे ही आज्ञा दी जानी चाहिए । केवल कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोडकर, न्यायालयो का आदेश तथा नियमों की वैधता की जाँच करने का क्षेत्राधिकार कम नही करना चाहिए । जनता को अधिकार होना चाहिए कि वह सीमित अवधि में उसकी वैधता को न्यायालयों मे चुनौती दे सके । यदि नियमो तथा आदेशों के निर्गमन की शक्ति किसी विशेष विभाग को सौंपनी ही हो तो विधेयक मे एक ज्ञापन (memorandum) जोड देना चाहिए जिसमे उन परिस्थितियों का उल्लेख हो जिनके लिए विभाग को शक्ति समर्पित की गई है और ऐसी व्यवस्था भी होनी चाहिए कि उक्त विभाग शक्ति का दुरुपयोग न कर सके ।

संसद् की शक्ति का ह्रास (Decline of Power of Parliament)—१८६३ मे डेवनशायर (Devonshire) के ड्यूक ने कहा था कि ससद् मन्त्रिमण्डलों के उत्थान तथा पतन को सम्भव बनाती तथा उनके कार्यों को दुहराती है । मन्त्री युद्ध तथा सन्धि करते है किन्तु उनको ससद् द्वारा किसी भी क्षण पदच्युत किए जाने का भय रहता है; और आन्तरिक प्रशासन के सम्बन्ध मे भी ससद् की शक्ति इसी तरह प्रत्यक्ष है । वह मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर सकती है यदि वह अति-व्ययी अथवा बहुत अल्पव्ययी हो । वह किसी मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर सकती है, क्योंकि उसकी सरकार अधिक शिथिल अथवा कठोर है । वह सचमुच इगलैंड, स्काटलैंड तथा आयरलैंड पर शासन करती है ।" किन्तु आज यह स्थिति नही है । ससद् की शक्ति का ह्रास हुआ है । आलोचक तो यहाँ तक कहते है कि आज ससद् का कार्य केवल सत्ताधारी मन्त्रिमण्डल के निर्णयो पर अपनी स्वीकृति की छाप लगाना मात्र है । वह अपनी इच्छा अथवा प्रेरणा मे कुछ नही कर सकती । रैम्जे म्योर के अनुसार, "मन्त्रिमण्डल की तानाशाही ने ससद् की शक्ति तथा सम्मान को बहुत कम कर दिया है; उसकी कार्यवाहियो के गौरव को समाप्त कर दिया गया है, और यह प्रतीत करा दिया है कि ससद् का अस्तित्व सर्वगुणसम्पन्न तो है किन्तु सर्वशक्तिमान (omnipotent) नही या यों कहे कि वह मन्त्रिमण्डल को कायम रखने या उसकी निरर्थक आलोचना करने के लिए ही है और प्रमुख राजनीतिक विषयों पर विचार-विनिमय का कार्य संसद् से हटकर सभा-सम्मेलनो तथा समाचारपत्रों को मिल गया है ।" पुन , उस लेखक के शब्दों में, "लोकसभा ने अपना कार्य पूर्ण करने में अधिकाधिक असमर्थता प्रकट की है जिसके कारण अंशत: कार्य-भार का आधिक्य, अंशतः मन्त्रिमण्डल की तानाशाही तथा अंशतः भ्रम मे डालने वाली उस कार्य-विधि की कमियाँ है; जिसके अनुसार राष्ट्र का लेखा (national accounts) प्रस्तुत किया जाता है; परिणाम यह है कि लोकसभा का नौकरशाही की असाधारण तथा बढती हुई शक्ति पर अथवा मन्त्रिमण्डल की विस्तृत किन्तु अयोग्यतापूर्वक प्रयुक्त की जाने वाली शक्तियों पर वास्तविक नियन्त्रण नहीं है ।"

डा० कीथ के अनुसार, "१८८५ मे मताधिकार के विस्तृत करने तथा निर्वाचन-क्षेत्रों को एक-सदस्यीय क्षेत्र बनाने से पार्टी संगठनों के निर्वाचकों की शक्ति प्रबल हुई है और लोकसभा के सदस्यों की स्वतन्त्रता का ह्रास हुआ है। १९१८ में मताधिकार के प्रसार से निर्वाचन-व्यय के बढ़ने और सदस्य-भत्ते मिलने के कारण सदस्य लोकसभा के भग होने से बहुत डरने लगे हैं और वे उस पार्टी के नेताओं का निष्ठापूर्वक अनुकरण करने के लिए विवश हो गए हैं, जिसके उद्देश्यों के वे समर्थक है। इस प्रकार लोकसभा के सदस्य एक ओर निर्वाचकों के नियन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करते है; और दूसरी ओर, उनका मन्त्रिमण्डल पर कोई नियन्त्रण नही रहा और अब लोकसभा सरकारी विधेयकों मे कोई वास्तविक संशोधन करने अथवा उन्हें रद्द करने का साहस नही कर सकती। कार्य-विधि के ऐसे नियमों को स्वीकार करना जिनसे साधरण सदस्य के किसी कानून पर विवाद करा सकने के अधिकार का हनन होता है तथा लोकसभा का सारा समय सरकार द्वारा ले लिए जाने से लोकसभा मन्त्रिमण्डल के अधीन-सी हो गई है।"

लास्की के अनुसार, "आजकल के आलोचक प्राइवेट सदस्य की स्थिति के पतन पर आँसू बहाना एक फैशन समझते हैं। लेकिन यह अफसोस बिलकुल व्यर्थ है। इससे ज्ञात होता है कि हाऊस ऑफ कामन्ज को जो कार्य आज के समय में करने हैं उनको समझने में गलती की जा रही है, तथा आधुनिक राज्य मे राजनीतिक पार्टियों का महत्व नही समझा जा रहा है। यह हमारे इतिहास के उस गुजरे हुए समय की चीज है, जब राजनीति भलेमानसो का मनोरंजन होती थी और सरकार का कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित था। प्राइवेट सदस्य की ८० या ५० वर्ष पहली स्थिति को फिर से प्राप्त कराने के लिए हमे उन्ही पुरानी ऐतिहासिक परिस्थितियो को पैदा करना होगा जिनमें वैसी स्थिति सम्भव थी। इतिहास हमे ऐसी सुविधा नही देता।" लार्ड कैनेट के अनुसार, "जिन वर्षों मे वह कार्य-नीति बनाई गई थी वे वर्ष विधानमण्डल और क्राउन के बीच संघर्ष के दिन थे। कामन्ज की पहली चिन्ता यह थी कि क्राउन सिवाय पार्लियामेण्ट के और किसी प्रकार से धन न हासिल कर सके और फिर उसे यह फिक्र थी कि वह उसी कार्य में लगे जिस कार्य के लिए वह संसद् से लिया गया है। उनकी कार्य-नीति इस प्रकार की थी, जिससे क्राउन पर नियन्त्रण लग सके। लेकिन अब जमाना बदल गया है। संसद् का शासन स्थापित हो चुका है और क्राउन की शक्ति समाप्त हो गई है। कार्यपालिका की खर्च करने की शक्ति पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है, लेकिन जिस कार्यपालिका पर अब नियन्त्रण रखना है, वह क्राउन की नहीं है बल्कि मन्त्रियों की है, जो संसद् के प्रति उत्तरदायी है। क्राउन पर नियन्त्रण लगाने की योजना प्रक्रिया अब पुरानी पड़ गई है।"

आलोचक कहते हैं कि संसद्-सदस्यों की स्थिति बहुत दुर्बल हो गई है। सरकारी पार्टी के सदस्यों को अपनी पार्टी को मत देना पड़ता है। उन्हें सचेतकों के आदेशों का पालन करना पड़ता है। पार्टी का अनुशासन इतना कठोर है कि किसी पार्टी का सदस्य अपनी पार्टी के आदेशों का उल्लंघन करने का साहस नही करता। वह साहस करे, तो उसे राजनैतिक आत्महत्या (political suicide) का भय

उठाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उनके कारण मन्त्रिमण्डल का पतन हो सकता है और इससे उनकी पार्टी की शक्ति तथा सम्मान को ठेस पहुँच सकती है। जहाँ तक विरोधी सदस्यों का सम्बन्ध है वे भी मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध मत देते हुए हिचकिचाते हैं। कारण स्पष्ट है। मन्त्रिमण्डल सदन को भंग कर सकता है और सदस्य भली प्रकार जानते हैं कि यदि मन्त्रिमण्डल परास्त हो जाए तो सदन के भंग किए जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है। इससे निर्विवाद रूप से, तत्कालीन संसद्-सदस्यों के स्वार्थों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिनको नये निर्वाचनों में पर्याप्त असुविधा उठानी पड़ती है और अत्यधिक धन तथा समय व्यय करना पड़ता है। अतः मन्त्रि-मण्डल अपनी इच्छानुसार कार्य करता है और कोई भी उसे चुनौती देने का साहस नहीं करता। संसद्-सदस्यों के विचार करने के अधिकार पर विवादान्तक प्रस्ताव, विभागीय विधि, कंगारू विधि, यान्त्रिक विधि तथा समय विभाग को स्वीकार करने से अनेक प्रतिबन्ध लग गए हैं। अतः संसद्-सदस्य अपने आपको निस्सहाय पाते हैं। मैकनिनन वुड का, जो पहले मन्त्रिमण्डल का सदस्य था, यह विचार था कि "मैं संसद् का सामान्य सदस्य होने के स्थान पर लन्दन काउण्टी कौंसिल का सदस्य होना अधिक अच्छा समझता हूँ।" रैम्जे म्योर ने किसी सामान्य दिन लोकसभा का वर्णन किया है : "आगन्तुक बेंचों पर चालीस या पचास पुरुषों तथा एक या दो महिलाओं को शरीर टेढ़ा-मेढ़ा करके लेटे हुए तथा उनमें से ही किसी एक सदस्य का व्याख्यान सुनते हुए तो क्या, सहन करते हुए—तथा स्वयं भाषण देने के लिए आतुर देखा जाएगा। कुछ सदस्य सदन में होंगे; कुछ लाबी में बैठे हुए पत्रादि लिख रहे होंगे, कुछ पुस्तकालय में कोई लेख लिखने अथवा भाषण देने के लिए उद्धरण की खोज कर रहे होंगे, कुछ सिगरेट कक्ष में बैठे हुए गप्प लड़ा रहे होंगे अथवा शतरंज खेल रहे होंगे, और कुछ भोजनालय में होंगे, अथवा ऊपर मिलने आए हुए लोगों से मिल रहे होंगे। उनमें से कोई भी विवाद की ओर ध्यान नहीं दे रहा होगा, लेकिन सब सदस्य भाषणों का एक शब्द बिना सुने ही अपना मत देने के लिए आतुर होंगे। कुछ अन्य सदस्य क्लबों में, थियेटरों में अथवा मित्रों के साथ दावतों में होंगे। वे सन्ध्या के समय मत-विभाजन में भाग लेने के लिए अन्दर आते हैं, क्योंकि पार्टी सचेतक उन्हें पहले ही विवाद खतम होने के समय की सूचना दे देता है। कई अवसरों पर इन वचनों को पूरा करने के लिए आवश्यक रूप से विवाद को लम्बा किया जाता है।"

डा० फाइनर का विचार है कि संसद् के साधारण सदस्य "विवाद में बहुत कम योग दे पाते हैं क्योंकि उन्हें न तो इसका विशेष प्रशिक्षण मिला है, और न ही उनका व्यवसाय ऐसा है कि वे इसके योग्य हों। उनके निर्वाचन-क्षेत्र की कोई ऐसी विशेषता भी नहीं होती कि उसकी आवाज़ सुनी ही जाए। वास्तव में जब ऐसी आवश्यकता होती है तब पार्टी की अन्तः-परिषद् (party-caucus) उसको जान जाती है और उसे नीति का अंग बना लेती है। यदि विशेष प्रतिभासम्पन्न और चरित्रवान् व्यक्तियों को मौका पड़ने पर सरकार और विरोधी दल की बुराइयों की आलोचना करने दी जाए तो इतना ही काफी है।" प्रत्यायोजित विधान के वि

Law, William : Our Hansard, 1950.
Mackenzie, K.R. The English Parliament, 1950
Marshall, G. : Parliamentary Sovereignty and the Commonwealth, 1959.
May, Sir Thomas Erskine : The Law, Privileges, Proceedings and Usage of Parliament.
Morrison, Lord British Parliamentary Democracy (1962).
Morrison, Herbert . Government and Parliament.
Pollard, A.F. . The Evolution of Parliament. 1926.
Report from the Select Committee on Delegated Legislation, 1953.
Taylor, E. : The House of Commons at Work.
Young, Rolland : The British Parliament (1962).

अध्याय ६

इंगलैंड की न्याय-व्यवस्था

(The Judicial System in England)

प्रमुख विशेषताएँ (Main Features)—इंगलैंड की न्याय-व्यवस्था की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करना उचित होगा। सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इंगलैंड के न्यायालय ईमानदारी तथा निष्पक्षता के लिए प्रसिद्ध हैं। न्यायाधीश न्याय की दृष्टि से सब के लिए बराबरी का व्यवहार करते हैं और किसी भी प्रकार के प्रभाव में नहीं आते। १७०१ के ऐक्ट ऑफ सैटलमेंट (Act of Settlement) में निश्चित किया गया है कि इंगलैंड के न्यायाधीश सदाचरण पर्यन्त (during good behaviour) अपने पद पर बने रहेंगे। इसके फलस्वरूप, वे अपने कर्त्तव्य का पालन बिना किसी भय अथवा पक्षपात के करते है। इंगलैंड के न्यायाधीशों को रिश्वत देना टेढ़ी खीर है। इसका आंशिक कारण इंगलैंड के न्यायाधीशों को प्राप्त होने वाला पर्याप्त वेतन है, किन्तु यह अनेक शताब्दियों में प्रस्थापित उच्च न्यायिक ईमानदारी के कारण भी है।

ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था का एक अन्य गुण न्यायिक पुनर्विलोकन (judicial review) का अभाव है। यू० एस० ए० के न्यायालयों को कानूनों को वैध अथवा अवैध (*ultra vires* and *intra vires*) घोषित करने का अधिकार है। भारत में भी यही स्थिति है। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को कानूनों की वैधता या अवैधता का फैसला करने का अधिकार है। किन्तु इंगलैंड में ऐसी स्थिति नहीं है। संसद् स्वेच्छा से कैसा भी कानून पारित कर सकती है और बात यहीं समाप्त हो जाती है। इंगलैंड के न्यायालयों को किसी कानून अथवा उसके अंश को अवैध या वैध उद्घोषित करने की शक्ति नहीं है।

ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था का एक अन्य गुण यह है कि इंगलैंड में पृथक् प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Courts) नहीं हैं। फ्रांस में प्रशासकीय तथा साधारण न्यायालय पृथक्-पृथक् हैं। किन्तु इंगलैंड में साधारण न्यायालय ही समस्त श्रेणियों के अभियोगों को सुनते हैं और फ्रांस की भाँति सरकारी कर्मचारियों के अभियोगों को सुनने के लिए पृथक् न्यायालय नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे समाज में उसकी कुछ भी स्थिति अथवा पद क्यों न हो, साधारण न्यायालय के सम्मुख ही प्रस्तुत किया जाता है।

इंगलैंड में न्यायाधीशों तथा न्यायालयों ने ब्रिटिश जनता की स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। भारत तथा यू० एस० ए० के संविधान में जनता के मौलिक अधिकारों की स्पष्ट गारण्टी की गई है। इंगलैंड में ऐसी कोई स्थिति नहीं है। इस कठिन कार्य को इंगलैंड के न्यायाधीशों ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है कि इंगलैंड के न्यायालयों ने जन-

साधारण की स्वतन्त्रताओं के संरक्षक की भाँति कार्य किया है। न्यायाधीश कार्यपालिका के स्वेच्छाचारी आदेशों के विरुद्ध निर्णय देने में हिचकिचाए नहीं हैं। यह सत्य है कि संकट काल में जनसाधारण की स्वतन्त्रताओं को संसदीय कानून के द्वारा अनुलम्बित (suspend) कर दिया जाता है और उस दशा में न्यायालय निस्सहाय हो जाते हैं किन्तु वह केवल एक अस्थायी व्यवस्था होती है। संक्षेप में अंग्रेज न्यायाधीश जनता की स्वतन्त्रताओं का संरक्षण करने में सफल हुए हैं।

ब्रिटिश न्यायिक व्यवस्था का एक प्रमुख गुण देश की जूरी प्रणाली है। जूरी प्रणाली उस देश में सफल रही है। इंगलैंड के जूरी अपनी निष्पक्षता, निडरता, *अनुभव, ज्ञान तथा सामान्य समझदारी के लिए प्रख्यात है। जूरियों ने सरकार के* विरुद्ध भी निर्णय दिये हैं। जूरियों का प्रयोग अधिकतर फौजदारी अभियोगों में किया जाता है।

इस विषय में एक अन्य उल्लेखनीय वस्तु यह है कि न्यायिक प्रक्रिया सरल है और न्यायाधीशों को प्राविधिक बारीकियों (technicalities) का पालन न करने की स्वतन्त्रता है। यदि कोई प्राविधिकता न्याय के मार्ग में रोड़ा अटकाती है तो अंग्रेज न्यायाधीश उसको ही समाप्त कर देता है। उसका लक्ष्य वादियों को शीघ्रता और दक्षता से न्याय देना है।

इंगलैंड में बार (Bar) यानी वकीलों की दुहरी प्रणाली है। वकीलों की दो श्रेणियाँ हैं—कानूनी सलाह देने वाले यानी सालिसिटर (Solicitors) तथा बैरिस्टर। सालिसिटर वादियों से बातचीत करके अभियोग तैयार करते हैं और बैरिस्टर न्यायालयों में वाद के समर्थन में युक्तियाँ उपस्थित करते हैं। यह प्रणाली खर्चीली हो सकती है, किन्तु निर्विवाद रूप से, इसमें दक्षता (efficiency) पैदा हुई है।

विधि का शासन (Rule of Law)—ब्रिटिश संविधान का एक अद्वितीय गुण विधि का शासन है। सीधे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि इंगलैंड का कानून ही देश का शासन करता है न कि किसी व्यक्ति-विशेष की स्वेच्छा। कानून सर्वोच्च (supreme) है। इसके पंजे से कोई नहीं बच सकता। कानून के सामने राजा और रंक सभी समान हैं। लार्ड हेवार्ट (Lord Hewart) के अनुसार, विधि के शासन (Rule of Law) का अर्थ यह है कि "व्यक्तियों के अधिकारों के निर्णय में मनमाने ढंग या ऐसे ही किसी अन्य प्रकार के ढंग के स्थान पर, जो कानून नहीं है, कानून की सर्वोच्चता की जाये।"

प्रो० डायसी के अनुसार, "विधि के शासन के अन्तर्गत तीन विभिन्न परन्तु सजातीय विचार (kindred conceptions) हैं। प्रथम तो इसका तात्पर्य यह है कि किसी व्यक्ति को शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड उस समय तक नहीं दिया जा सकता जब तक सामान्य न्यायालय के सम्मुख उसे विधि के अनुसार दोषी सिद्ध न कर दिया जाए।" इसका अर्थ यह है कि इंगलैंड में किसी व्यक्ति को तब तक दण्डित (punished) नहीं किया जा सकता, जब तक यह स्पष्ट रूप से सिद्ध न हो जाये कि उसने देश के किसी कानून को तोड़ा है। यदि किसी व्यक्ति को नियम भंग करने का दोषी सिद्ध नहीं किया जाता तो उसे स्वतन्त्र कर देना चाहिए। किसी व्यक्ति को

गारंटी देने के पूर्व उच्च अधिकारियों से परामर्श किया गया था, फिर भी जहाज को इंगलैंड में रोक लिया गया। कम्पनी ने क्षति-पूर्ति के लिए याचिका पेश की किन्तु उसे रद्द कर दिया गया। गेलेट ने उस समय यह कहा था : "यह कोई व्यापारिक समझौता नहीं है। वह किसी विशेष अवसर पर विशेष प्रकार से कार्य करने का विचार मात्र है। सरकार के लिए अपने भावी प्रशासकीय पग (future executive action) से बंध जाना उचित नहीं है, जिसका आवश्यक रूप से निर्धारण समाज की उस समय की स्थिति के अनुसार किया जाता है, जब प्रश्न उपस्थित होता है। वह किसी समझौते के द्वारा, उन विषयों में अपनी स्वतन्त्रता पर रोक नहीं लगा सकती जिनका सम्बन्ध राज्य के कल्याण से है।"

(३) यह निर्देश किया जाता है कि गृह-मन्त्री (Home Secretary) को किसी भी विदेशी नागरिक को ब्रिटिश प्रजा बनाने का पूर्ण अधिकार है। वह किसी भी समय उसके प्रमाण-पत्रों को रद्द कर सकता है। वह किसी भी अवांछित विदेशी को निष्कासित कर सकता है। इन समस्त कार्यों के लिए उसे न्यायालय में नहीं लाया जा सकता।

(४) राजा को विदेशों में जाने के लिए पासपोर्ट देने अथवा न देने की शक्ति प्राप्त है। इस शक्ति के प्रयोग को किसी भी न्यायिक न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

(५) विदेशी शासकों तथा राजदूतों पर कार्यवाही करने का न्यायालयों को अधिकार नहीं है। उन पर अभियोग नहीं चलाया जा सकता चाहे वे देश के कानून का उल्लंघन ही क्यों न कर दें। किसी विदेशी जहाज पर भी कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। यह विधि के शासन का स्पष्ट उल्लंघन है।

(६) किसी प्रमाणित (bonafide) व्यावसायिक झगड़े के सिलसिले में किसी ट्रेड यूनियन के अधिकारियों तथा अफसरों द्वारा किए गए किसी कार्य के कारण यूनियन के विरुद्ध अभियोग नहीं चलाया जा सकता।

(७) १९३६ का सार्वजनिक व्यवस्था अधिनियम (Public Order Act) पुलिस के हाथ में सभाओं तथा जलूसों को व्यवस्थित अथवा निषिद्ध करने की शक्ति देता है। यह अ-प्राधिकृत वर्दी पहनने और ड्रिल करने को भी अवैध घोषित कर सकती है।

(८) पहले पीअरों के अभियोग केवल पीअर ही सुन सकते थे। यह विधि के शासन (Rule of Law) का निश्चित रूप से उल्लंघन था। किन्तु १९४७ के कानून सुधार अधिनियम के द्वारा यह विशेषाधिकार समाप्त कर दिया गया है।

(९) लार्ड चैम्बरलेन को नाटकों का 'सेंसर' करने का अधिकार है और वह प्रतिबन्ध लगा दे तो उसे कोई न्यायालय नहीं हटा सकता।

(१०) गृह-मन्त्री का पत्रों को खोलने तथा रोकने का अधिकार विधि के शासन का स्पष्ट उल्लंघन है।

(११) अपने सरकारी कार्य को रोकते हुए न्यायाधीशों को किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। किन्तु यदि अवकाशकालीन न्यायाधीश

(vacation judge) बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख का निर्गमन करने से विधि-विरुद्धतया इन्कार करे तो उस पर ५०० पौंड हरजाने के लिए वाद लाया जा सकता है।

(१२) 'क्राउन' सेवा की किसी सविदा को समाप्त कर सकता है। वह उस समय भी बँधा हुआ नही है जबकि समझौते में किसी शर्त का स्पष्ट उल्लेख हो। अतः क्राउन के सेवक क्राउन के प्रमादपर्यन्त (during pleasure) ही अपने पद पर आसीन रहते हैं।

पर १९४७ के क्राउन कार्यवाही अधिनियम (Crown Proceedings Act) का उल्लेख किया जा सकता है जो जनवरी १९४८ से लागू हुआ। नए कानून के अनुसार कोई भी साधारण व्यक्ति सरकार के विरुद्ध उसी प्रकार से अभियोग चला सकता है जैसे किसी भी साधारण व्यक्ति के विरुद्ध। बस इसी कारण ही सरकारी नौकरों द्वारा किसी को शारीरिक अथवा आर्थिक हानि (torts committed) पहुँचाए जाने के सम्बन्ध मे क्राउन की छूट समाप्त हो गई है और अधिकारों की याचिका की आवश्यकता नही रही है। क्षति-पूर्ति के लिए नियमित अभियोग (regular suit) चलाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध मे यह बताया जा सकता है कि स्वय डायसी ने भी बाद मे यह अनुभव किया कि उसका १८८० का, विधि के शासन का वर्णन ठीक नही था। उसने १९१५ में लिखा, "इगलैंड मे प्राचीन विधि के शासन के प्रति सम्मान का गत ३० वर्षो में बहुत ह्रास हुआ है।" उसने देश मे प्रशासकीय न्याय को विकसित होते देखा है। विभिन्न विभागो को अभियोगो के निर्णय करने की शक्ति दी गई थी और सामान्य न्यायालय उनमे हस्तक्षेप नही कर सकते थे।

डा० फाइनर (Dr. Finer) के अनुसार, "इगलैंड की प्रणाली का यह दोष है कि इससे व्यक्ति, जनता और अधिकार के प्रति कभी भी गम्भीर अन्याय हो सकता है। इसमें सिद्धान्तो की एकरूपता नही है क्योकि विधि शासन (Rule of Law) मे स्थान-स्थान पर बहुत से अनियन्त्रित विकास हो गये है।"

यद्यपि डायसी (Dicey) द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन (Rule of Law) मे संशोधन की आवश्यकता है, तो भी, यह अब भी अंग्रेजी सविधान का एक सिद्धान्त है।

न्यायपालिका का संगठन (Organization of the Judiciary)—ब्रिटेन की आधुनिक न्याय-व्यवस्था १८७० के बाद की दशा के अधिनियमों पर आधारित है। इंगलैंड में दो प्रकार के न्यायालय है। फौजदारी के अभियोग फौजदारी न्यायालयों (Criminal Courts) मे जाते है और दीवानी अभियोग दीवानी मे। फौजदारी अभियोगों में सदैव एक पक्ष क्राउन का रहता है लेकिन दीवानी अभियोगों मे यह बात नही है। इसके अतिरिक्त फौजदारी अभियोगो का उद्देश्य अपराधी को दण्ड देना है, लेकिन दीवानी अभियोगों का ऐसा कोई उद्देश्य नही होता।

फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts)—सबसे छोटा न्यायालय 'समरी जूरिसडिक्शन' (Summary Jurisdiction) का न्यायालय है। वह छोटे-छोटे अभियोगों को सुनता है। उनमे कार्य या तो जस्टिसेज ऑफ पीस (Justices

of Peace) करते हैं अथवा वैतनिक (stipendiary) मजिस्ट्रेट। इन न्यायालयों की कार्यवाही बिल्कुल संक्षिप्त होती है।

इन न्यायालयों की अपीलें क्वार्टर सेशन (Quarter Session) के न्यायालयों में की जा सकती हैं। इन न्यायालयों को काउन्टी न्यायालय भी कहते हैं। ये न्यायालय कुछ गम्भीर अपराधों (serious cases) के लिए प्रारम्भिक (original) न्यायालय भी होते हैं।

यहाँ की अपील एसाइज़ेज (Assizes) में जा सकती है। इनको एसाइज़ेज न्यायालय कहते हैं, क्योंकि इन न्यायालयों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश होते हैं और ये वर्ष में अपने क्षेत्र की प्रत्येक काउन्टी में कई बार चक्कर लगाते हैं और स्थान-स्थान पर न्याय करते हैं। वे गम्भीर प्रकृति के अभियोगों को जूरी की सहायता से सुनते हैं। इस कार्य के लिए सारे देश को आठ सर्किटों में विभाजित किया गया है। सर्किट न्यायालय फौजदारी तथा दीवानी दोनों प्रकार के अभियोगों की अपीलें सुनता है और उनकी तुलना भारत के जिला तथा सत्र-न्यायाधीशों (District and Sessions Judges) से की जा सकती है। लन्दन के एसाइज़ेज न्यायालय को ओल्ड बैली (Old Bailey) कहते हैं। उसकी बैठकें वर्ष में बारह होती हैं।

फौजदारी अपील का न्यायालय (Court of Criminal Appeal)—सर्किट अथवा एसाइज़ेज न्यायालय के निर्णय की अपील फौजदारी अपील के न्यायालय में की जा सकती है। इस न्यायालय में इंगलैंड का लार्ड चीफ जस्टिस (Lord Chief Justice) और उच्च न्यायालयों की किंग्स बैंच डिवीजन के समस्त न्यायाधीश होते हैं। फौजदारी अपील का न्यायालय उच्च न्यायालय की केवल एक शाखा है। यह कानून का अन्तिम न्यायालय है। यह समस्त निम्न न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध विधि के प्रश्नों पर (on points of law) अपील सुनता है। साधारणतः इसके निर्णय अन्तिम होते हैं। परन्तु यदि किसी विषय में महा-न्यायवादी (Attorney-General) यह प्रमाणित कर दे कि उक्त मामले में कानून का कोई अहम नुक्ता (important question of law) अन्तर्ग्रस्त है, तो उसकी अपील लार्ड सभा में की जा सकती है।

लार्ड सभा (House of Lords)—ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैंड के समस्त दीवानी तथा फौजदारी अभियोगों के लिए अन्तिम अपीलीय न्यायालय लार्ड सभा है। जब लार्ड सभा सर्वोच्च न्यायालय के नाते कार्य करती है तब इसकी बैठक में लार्ड्स ऑफ अपील इन आर्डिनरी तथा लॉ-लार्ड्स भाग लेते हैं, जो पहले उच्च न्यायिक पदों पर कार्य कर चुके होते हैं। कोरम (quorum) तीन है। समस्त दीवानी अभियोगों की अपीलें लार्ड सभा में सुनी जाती हैं, किन्तु फौजदारी अभियोगों की अपीलें लार्ड सभा तभी सुनती है जब महा-न्यायवादी उसे प्रमाणित करे।

दीवानी न्यायालय (Civil Courts)—'समरी जुरिसडिक्शन' के न्यायालय छोटे अभियोगों को सुनते हैं। काउन्टी न्यायालयों की स्थिति कुछ ऊँची है। उनकी बैठकें विभिन्न अवसरों पर विभिन्न स्थानों में होती हैं। काउन्टी न्यायालयों की अध्यक्षता लार्ड चान्सलर द्वारा नियुक्त न्यायाधीश करते हैं। लार्ड चान्सलर उन

बैरिस्टरों को न्यायाधीश नियुक्त करता है जिनको सात वर्ष का अनुभव प्राप्त हो। अभियोग में समझौता कराने का प्रत्येक सम्भव उपाय किया जाता है।

उच्च न्यायालय (High Court of Justice)—काउन्टी न्यायालयों की अपीलों तथा अधिक राशि से सम्बन्धित अभियोगों को सुनने के लिए उच्च न्यायालय होता है। इस न्यायालय के तीन विभाग हैं—चान्सलरी विभाग; किंग्स बैंच डिवीजन (King's Bench Division) तथा मृतलेख को प्रमाणित करने का आज्ञा-पत्र, विच्छेद तथा जल सेना सम्बन्धी विभाग (Probate, Divorce and Admiralty Division)।

अपील का न्यायालय (Court of Appeal)—अपील का न्यायालय उपर्युक्त तीनों विभागों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनता है। इसमें पाँच न्यायाधीश होते हैं। लार्ड चान्सलर अध्यक्ष होता है।

फौजदारी अभियोगों के समान ही ग्रेट ब्रिटेन तथा उत्तरी आयरलैंड के दीवानी अभियोगों की अन्तिम अपील लार्ड सभा में की जा सकती है।

प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति (Judicial Committee of the Privy Council)—क्राउन की अवशिष्ट न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए १८३३ के एक अधिनियम के द्वारा प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति (Judicial Committee) स्थापित की गई थी। वह यूनाइटेड किंगडम के धार्मिक न्यायालयों (Ecclesiastical Court of the United Kingdom) तथा चैनल द्वीप के न्यायालयों (Courts of the Channel Islands) की अपीलें सुनती है। वह उपनिवेशों तथा डोमीनियनों के लिए अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। उसके सम्मुख अपीलें अधिकार से अथवा विशेष अनुमति (special leave) से आती हैं।

यद्यपि प्रिवी कौंसिल का गठन लार्ड सभा के समान अपील के सर्वोच्च न्यायालय का-सा है, तथापि दोनों में कुछ भिन्नता है। न्यायिक समिति निर्णय की घोषणा नहीं करती। वह केवल राजा को किसी विशेष अभियोग के सम्बन्ध में विशेष प्रकार का निर्णय देने के लिए परामर्श देती है, तथापि राजा का कार्य केवल औपचारिक है और प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति से सीधे अपील की जा सकती है। इसके अतिरिक्त लार्ड सभा के बहुमत का निर्णय मान्य किया जाता है तथापि अल्पमत के दृष्टिकोणों (minority views) का उल्लेख करने की भी आज्ञा होती है। प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति केवल एक निर्णय देती है और विरोधी मत का कोई उल्लेख नहीं करती। एक अन्य अन्तर यह है कि लार्ड सभा अपने पूर्ववर्ती निर्णयों से बँधी रहती है, लेकिन न्यायिक समिति इस तरह बँधी नहीं होती। यह निर्णय किया जा चुका है कि लार्ड सभा का निर्णय केवल नया कानून पास करके ही उल्टा जा सकता है, लार्ड सभा के नए निर्णय के द्वारा नहीं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहले भारत तथा डोमीनियनों से बहुत-सी अपीलें प्रिवी कौंसिल को जाती थीं। १९५० में भारत में सर्वोच्च न्यायालय स्थापित हुआ और यहाँ से अपीलें जाना पूर्णतः समाप्त हो गया। अन्य डोमीनियनों की प्रवृत्ति भी अपील के अधिकार को समाप्त करने की है। ब्रिटिश कोल ५०।५०।

विपरीत राजा (British Coal Corporation V. King) के अभियोग में प्रिवी कौंसिल ने यह उद्घोषित किया था कि कनाडा की संसद् प्रिवी कौंसिल में अपील करने के अधिकार का वैधता से उन्मूलन कर सकती है (1935 Appeal Cases 500)। ओन्टेरियो के महान्यायवादी के विपरीत कनाडा के महान्यायवादी के अभियोग में प्रिवी कौंसिल ने यह निरूपित किया था—"यह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के राजनैतिक आदर्शों के अनुरूप नहीं है कि राष्ट्रमण्डल के किसी सदस्य को अन्तिम तथा स्वतन्त्र क्षेत्राधिकार प्राप्त अपील का सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने से रोका जाए।"

यह ध्यान देने योग्य बात है कि १६३३ में कनाडा ने फौजदारी अभियोगों में अपील के अधिकार को समाप्त किया तथा ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका (संशोधन) अधिनियम, १६४६ ने पूरी तरह प्रिवी कौंसिल में अपील ले जाने के अधिकार को समाप्त कर दिया। १६५० में दक्षिणी अफ्रीका ने किसी भी अपील को प्रिवी कौंसिल में ले जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इंगलैंड में प्रशासकीय न्याय का विकास (Growth of Administrative Justice in England)—इगलैंड में पहले सब प्रकार के अभियोगों को देश के सामान्य न्यायालय ही सुनते थे, किन्तु आज वह स्थिति नहीं है। पिछले दिनों में प्रशासकीय न्याय का विशेष रूप से विकास (enormous growth) हुआ है।

ऐसा इसलिये भी है कि पिछले ५० या ६० वर्षों में राज्य का कार्य-क्षेत्र तीव्र गति से बढ़ गया है। परिस्थितियों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट को डेलीगेटेड विधान (delegated legislation) और प्रशासनिक अभिनिर्णयन (administrative adjudication) को फिर से जारी करने के लिए मजबूर कर दिया है। सरकारी कार्य करते समय बहुत-सी ऐसी न्याय-सम्बन्धी तथा अर्द्ध-न्याय-सम्बन्धी समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं जिनका शीघ्र निपटारा करना आवश्यक हो जाता है। नगर-योजना (Town Planning), सड़कें बनवाना, गृह-निर्माण इत्यादि में आवश्यक रूप से व्यक्तियों की जमीन को हासिल करना पड़ता है, और उन्हें मुआवजे की आवश्यकता उठ खड़ी होती है। यह कार्य सारतः न्यायिक प्रकृति (judicial nature) का है।

प्रशासनिक विभागों (administrative departments) को न्याय-सम्बन्धी कार्य देने की प्रथा, सामाजिक विधान के लागू करने की आवश्यकता के कारण प्रारम्भ हुई। १८७३ में रेलवे कमीशन (Railway Commission) की और १८८८ में नहर कमीशन (Canal Commission) की स्थापना हुई तथा दोनों को न्याय-सम्बन्धी शक्तियाँ दी गईं। १६२० में व्यापार बोर्ड (Board of Trade), गृह-मन्त्री (Home Secretary), शिक्षा-मन्त्री (Minister for Education), विद्युत् कमीशन, स्वास्थ्य मन्त्री, लण्डन बिल्डिंग ट्रिब्यूनल (London Building Tribunal), मित्र सोसाइटी के रजिस्ट्रार (Registrar of Friendly Societeis) इत्यादि को न्याय-सम्बन्धी शक्तियाँ दी गईं। चूँकि प्रशासनिक ट्रिब्यूनल को बहुत-सी न्याय-सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त हो गईं, अतः १६२६ में लार्ड हेवर्ट ने इस नयी स्थिति की निन्दा अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "नया निरंकुशवाद" (New Despotism) में की। चूँकि विरोध हो रहा था, इसलिए मंत्रियों की शक्तियों सम्बन्धी समिति (Committee

on Minister's Powers) की नियुक्ति की गई और उसे यह कार्य सौंपा गया कि "वह क्राउन के मन्त्रियों द्वारा डेलीगेटेड विधान, न्यायिक और अर्द्ध-न्यायिक निर्णय के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली शक्तियों पर विचार करे, और ऐसे तरीके बताए, जिनसे संसद् की प्रभुता के संवैधानिक सिद्धान्त और विधि की सर्वोच्चता की रक्षा हो सके।" कमेटी ने अपनी रिपोर्ट १९३२ में पेश की। वह इस नतीजे पर पहुँची कि लार्ड हेवर्ट की आलोचना ठीक नहीं है। उसकी सिफारिश थी कि संसद् बिना सोचे-समझे प्रशासनिक विभागों को न्यायिक शक्तियाँ न प्रदान करे। कुछ विशिष्ट मामलों में ही ऐसा करना चाहिए और जब ऐसा किया जाए तब शक्ति मिनिस्टीरियल ट्रिब्यूनलों (ministerial tribunals) को ही दी जानी चाहिए, न कि विभिन्न मन्त्रियों को। रॉबसन (Robson) के अनुसार, "वास्तव में कमेटी न्यायिक और अर्द्ध-न्यायिक निर्णयों के भेद के फन्दे में फँस गई है। ऐसा इसके निर्णय के लिए दिए गए प्रश्न (terms of reference) और बहुत-से गवाहों विशेष रूप से ट्रेजरी सालिसीटर (Treasury Solicitor) के बयानों के कारण हुआ है। इस भेद को स्वीकार करते हुए कमेटी ने सिफारिश की कि न्यायिक निर्णय को साधारणतया न्यायालयों में ही सीमित रहने देना चाहिए तथा अर्द्ध-न्यायिक निर्णयों को प्रशासनिक ट्रिब्यूनलों (administrative tribunals) पर छोड़ा जा सकता है।"

१९३२ में कमेटी की सिफारिशों के बाद भी प्रशासनिक ऐडजुडिकेशन (Administrative Adjudication) में और वृद्धि हुई है। नेशनल सर्विस ऐक्ट (National Service Act), टाउन एण्ड काउन्टी प्लानिंग ऐक्ट्स (Town and County Planning Acts), फैमिली एलाउन्सेज ऐक्ट, १९४५ (Family Allowances Act, 1945), एग्रीकल्चरल ऐक्ट, १९४७ (Agricultural Act, 1947), दी नेशनल इन्श्योरेन्स (इण्डस्ट्रियल इन्जरीज़) ऐक्ट, १९४६ [The National Insurance (Industrial Injuries) Act 1946], दी नेशनल इन्श्योरेन्स ऐक्ट, १९४६ (The National Insurance Act, 1946), दी ट्रांसपोर्ट ऐक्ट, १९४७ (The Transport Act, 1947) इत्यादि ने प्रशासन के ट्रिब्यूनलों की संख्या, अधिकार-क्षेत्र और स्तर को बहुत बढ़ा दिया है। बहुत-से मामलों में तीन व्यक्तियों वाले ट्रिब्यूनलों की स्थापना की गई है। उनका सभापति स्वतन्त्र होता है, लेकिन दूसरे दो सदस्य विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ मामलों में मन्त्रियों को न्यायिक शक्तियाँ दी गई हैं। प्रशासनिक अपीलीय कोर्ट (Administrative Court of Appeal) की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। लेकिन छोटे ट्रिब्यूनल (lower tribunals) के फैसलों के विरुद्ध अपील सुनने के लिए उच्च ट्रिब्यूनलों (superior tribunals) की स्थापना की गयी है।

नेशनल इन्श्योरेन्स कमिश्नर (National Insurance Commissioner), डिपुटी कमिश्नर्स (Deputy Commissioners), इंडस्ट्रियल इंजरीज कमिश्नर (Industrial Injuries Commissioner), डिपुटी कमिश्नर (Deputy Commissioner), अम्पायर्स (Umpires), डिपुटी अम्पायर्स (Deputy Umpires), इत्यादि का इस सिलसिले में नाम लिया जा सकता है।

फ्रैंक समिति रिपोर्ट (१९५७) (Frank Committee Report, 1957)—सन् १९५५ में सर ओलाइवर फ्रैंक (Sir Oliver Frank) की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। देश के प्रशासनिक न्यायाधिकरणों (administrative tribunals) की रिपोर्ट को प्रस्तुत करना इस समिति का उद्देश्य था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट १९५७ के अगस्त मास मे प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट ने ट्रेजरी (Treasury) की इस धारणा मे सहमति प्रकट नहीं की कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण सरकार रूपी यन्त्र के आवश्यक अंग है। उसने इस बात के मानने से भी इन्कार कर दिया कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण न्यायिक सस्थाएँ हैं। उसने तो उसे एक ऐसा संगठन माना है, जो वैयक्तिक स्वत्वों के निर्णयों को निर्धारित करता है।

रिपोर्ट ने इस बात की सिफारिश की है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण का अध्यक्ष लार्ड चांसलर (Lord Chancellor) द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए न कि मन्त्री द्वारा। न्यायाधिकरण का कार्य-विवरण भी प्रकट रूप से होना चाहिए। अभियोग के किसी भी पक्ष के नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अभियोग की आगामी कार्यवाही से सम्बन्धित बातों को जान सके। ये सभी तत्सम्बन्धित बातें उसे समय से पूर्व भी बताई जा सकती हैं। प्रासंगिक प्रमाणों सहित अभियोग का विवरण (वक्तव्य) प्रस्तुत किया जाना चाहिए। तत्सम्बन्धित दलों को 'निर्णय' के कारण ज्ञात होने चाहिए। कारणों सहित मन्त्री के आदेश भी निर्णयार्थ विस्तार-पूर्वक प्रस्तुत किए जाने चाहिएँ।

रिपोर्ट ने इस बात की अनुशंसा की है कि प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निर्णयों पर कानून की दृष्टि से साधारण न्यायालयों में पुनर्विवेचन होना चाहिए। विशेष विवेचन के अभाव मे निर्णय का भार न्यायाधिकरण पर न छोड़कर न्यायाधिकरण को और अधिक उपयुक्त रूप प्रदान करने वाले न्यायालय पर छोड़ा जाना चाहिए। किन्तु इतना होने पर मन्त्री के निर्णय की अपेक्षा न्यायाधिकरण के निर्णय को अधिक उपयुक्त समझा गया। रिपोर्ट का हवाला इस प्रकार है—"हम तो न्यायाधिकरण और प्रशासनिक कार्यविवरण दोनो को समाज की आवश्यक शक्तियाँ *मानते है, किन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि जहाँ तक बन पड़े प्रशासक को निर्णय* की इस पद्धति को नही अपनाना चाहिए। वैयक्तिक अधिकारों के मध्यस्थ को निर्णय की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। ससद् का स्वतन्त्रता प्रदान करने का उद्देश्य इतना अधिक स्पष्ट है कि इसमें तनिक भी भूल नहीं हो सकती।

यह बात उल्लेखनीय है कि प्राचीन प्रशासनिक अधिनियम और प्रशासनिक न्याय के विरुद्ध अन्धविश्वास अब धीरे-धीरे दूर होता चला जा रहा है। हमें इतना तो मानना पड़ेगा कि *आधुनिक वातावरण में प्रशासनिक न्याय एक अनिवार्य आवश्यकता* बन चुका है। यह एक अलग बात है कि यह आवश्यकता शुभ है या अशुभ; आशापूर्ण है या दुराशापूर्ण।

इंगलैंड में प्रशासनिक विधान और प्रशासनिक न्याय के विरुद्ध गलतफहमी अब घट रही है। यह महसूस किया जाने लगा है कि नई परिस्थितियों में प्रशासनिक

न्याय (Administrative justice) आवश्यक हो गया है, चाहे वह बुरी आवश्यकता ही क्यों न हो।

Suggested Readings

Carr, Sir Cecil Thomas : Concerning English Administrative Law.
Dicey, A. V. : Law of the Constitution.
Giles, F. T. : The Magistrates' Courts.
Hanbury, H. G. The English Courts of Law.
Hewart, Lord The New Despotism, 1945.
Jennings, W. I. The Law and the Constitution.
McWhinney Judicial Review in the English Speaking World.
Robson, W. A. Justice and Administrative Law.
Robson, W. A. Administrative Law in England.
Wade & Phillips : Constitutional Law.

अध्याय ७

इंगलैंड में पार्टी-व्यवस्था

(Party System in England)

लार्ड ब्राइस (Bryce) के अनुसार, "पार्टियाँ अनिवार्य हैं। कोई महान् एवं स्वतन्त्र देश उनके बिना नहीं रहा है। किसी ने यह प्रदर्शित नहीं किया है कि उनके बिना किस प्रकार प्रतिनिधि सरकार (Representative Government) कार्य कर सकती है। वे लाखों वोटरों को व्यवस्थित रूप दे देती हैं।" ए० एल० लॉवेल के अनुसार, "ब्रिटिश सरकार का एक नगर के समान निर्माण हुआ है, जो स्वयं संगठित है; और पार्टी उस निर्माण का एक अविभाज्य अंग (integral part) है। इसलिए पार्टी नियमित राजनैतिक संस्था के बाहर के बजाए अन्दर कार्य करती है। वास्तव में, जहाँ तक संसद् का सम्बन्ध है, सरकार तथा पार्टी की मशीनरी केवल एक-दूसरे से सहमत ही नहीं होती, बल्कि वे एक ही वस्तु होती हैं।" रैम्जे म्योर के अनुसार, "दल का नेता होने के कारण ही प्रधान-मन्त्री को इतनी शक्ति प्राप्त होती है, उसी दल की सदस्यता के कारण ही मन्त्रिमण्डल में उद्देश्य की एकता होती है। लोकसभा में समर्थन करने वाली पार्टी के कारण ही मन्त्रिमण्डल अपना शासन-कार्य कर पाता है। दल ही (जब दल का बहुमत होता है) उसे शासन-कार्य में पूर्ण तानाशाही प्रदान करता है और इस तानाशाही पर एकमात्र नियन्त्रण रखने वाला यह डर है कि कहीं ऐसा न हो कि किसी भयानक भूल के कारण उसका दल कमजोर हो जाए और दूसरे चुनाव में हार जाए।"

इंगलैंड में पार्टी-प्रणाली के विकास का अंकुर उस समय उत्पन्न हुआ जब स्टुअर्ट काल में राजा और संसद् में प्रभुत्व के लिये संघर्ष हुआ। राजा के समर्थक (supporters) कैवेलियर कहलाते थे और संसद् के पक्षपाती राउंडहेड।

चार्ल्स द्वितीय के शासनकाल में, राजा के भाई जेम्स द्वितीय को गद्दी से वंचित करने के लिए १६७६ में एक्सक्लूजन बिल (Exclusion Bill) पास करने का प्रयत्न किया गया था। चार्ल्स द्वितीय ने इसे पसन्द नहीं किया और फलस्वरूप संसद् को भंग कर दिया। बिल के समर्थकों ने राजा से नई संसद् बुलाने की प्रार्थना करते हुए याचनाएँ (petitions) भेजनी प्रारम्भ कीं और वे पैटिशनर्स (Petitioners) के नाम से प्रसिद्ध हो गए। बिल के विरोधियों ने संसद् बुलाने के लिए राजा पर जोर डालने की नीति की निन्दा की और एबहॉरर्ज (Abhorrers) के नाम से प्रसिद्ध हो गए। विलियम तृतीय के समय में वे विग और टोरीज (Tories) के नाम से प्रसिद्ध हुए। विग (Whigs) राजा की शक्ति पर नियन्त्रण लगाने के पक्ष में थे और टोरीज राजा का परमाधिकार रखने के पक्ष में थे।

सन् १८३२ के सुधार अधिनियम के पश्चात् दलों के नामों में परिवर्तन हुआ और वे अनुदार (Conservatives) तथा उदार (Liberal) नाम से विख्यात हुए।

ये दल १९वी सदी मे देश की राजनीति पर छाए रहे । १९०० मे श्रमिक दल (Labour Party) का जन्म हुआ । आरम्भ में यह दल बहुत दुर्बल था और इस कारण इसका कोई महत्त्व नहीं था । किन्तु समय बीतने पर इसकी शक्ति बढती गई और इसने १९२४ में अपनी प्रथम सरकार बनाई । इसकी दूसरी सरकार १९२९-३१ मे बनी । श्रमिक दल के उत्थान के समय तक इगलैंड मे द्वि-दलीय प्रणाली थी और इस प्रकार उसको अनेक सुविधाएँ प्राप्त थी । वह बहुदलीय प्रणाली के उन दोषों से मुक्त थी, जिनको फ्रेंच राजनीति के विद्यार्थी भली प्रकार जानते हैं । द्विदलीय प्रणाली शक्ति तथा दायित्व को उस समय के मान्य नेताओं के एक संगठित समूह में केन्द्रित करती है । फलस्वरूप वहाँ पर स्थिरता तथा निरन्तरता रहती है । कार्य में तत्परता तथा स्निग्धता रहती है । श्रमिक दल के उदय होने से ब्रिटिश दलीय राजनीति में एक प्रकार की दुविधा पैदा हो गयी थी, किन्तु अब वह दूर हो रही है । कारण यह है कि अब उदार दल छिन्न-भिन्न हो रहा है और आज इगलैण्ड के दो प्रमुख दल श्रमिक दल तथा अनुदार दल हैं ।

अनुदार दल या रूढ़िवादी दल (Conservative Party)—अनुदार दल के सदस्य धनी, जमीदार, साहूकार, पादरी, डाक्टर, प्रोफेसर, व्यापारी और व्यवसायी आदि हैं । इसमें व्यवसायी, साम्राज्यवादी, पराक्रमी (exploiters), युद्ध-विद्या का अध्ययन करने वाले भी सम्मिलित हैं । दल औद्योगिक निगमों (industrial corporations), बैंकों तथा शराब-व्यवसायियों के हितों का संरक्षण चाहता है । अनुदार दल के समर्थक कृपक-काउन्टियो में भी पाये जाते है । वह कभी-कभी श्रमिक वोटो का भी समर्थन प्राप्त करने की गर्वोक्ति करता है ।

अनुदार या रूढ़िवादी दल की नीति तथा सिद्धान्त (Policy and Creed of Conservative Party)—वह निजी सम्पत्ति, संस्थापित चर्च, क्राऊन, साम्राज्य तथा पूँजीपतियों व कुलीन जमीदारों के देश पर शासन करने के दैवी अधिकार (divine right of the landed aristocracy) का समर्थक है । वह साम्राज्य के विस्तार, राजा की पूजा, तथा सस्थापित चर्च को स्थिर रखना चाहता है । वह उपनिवेशों (colonies) को स्वतन्त्र करने के विरुद्ध है । इसी कारण वह भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का कट्टर शत्रु था । दल ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त नही करना चाहता । वह विदेशी संधियों तथा उलझनों में भाग नही लेना चाहता । वह संयुक्त राष्ट्र सघ के आदर्शों तथा सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त के साथ केवल शाब्दिक सहानुभूति रखता है ।

एडवर्ड मारजोरिबैंक्स (Edward Marjoribanks) के अनुसार, "आधुनिक अनुदार दल के सदस्य शायद दो सिद्धान्तो, अर्थात् सम्पत्ति का संरक्षण और क्राउन

१. १८८२ में गिल्वर्ट ने ये शब्द कहे थे—
"How nature always does contrive
That every boy and every gal
That's born into this world alive
Is either a little Liberal
Or else a little Conservative."

के अधीन ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखने का समर्थन करते है।" अनुदार दल के लिए, जीवन की सुरक्षा के बाद सम्पत्ति पर सुरक्षित रूप से कब्जा रखना सभ्य समाज का चिह्न है, और राज्य का पहला कर्तव्य है कि वह इसका प्रबन्ध करे।

हरबर्ट मौरीसन (Herbert Morrison) के अनुसार, "अनुदार दल परम्पराओं और पिछले उदाहरणों को बहुत महत्त्व देता है।" डा० फाइनर के अनुसार, "अनुदार दल का सार तत्त्व इसके द्वारा स्वीकार की गई सार्वजनिक संस्थाओं और प्रगति के प्रति इसके विचारों से जाना जा सकता है। अनुदार दल क्राउन, राष्ट्रीय एकता, चर्च, एक शक्तिशाली शासक वर्ग और राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त व्यक्तिगत सम्पत्ति की सस्थाओं का समर्थन करता है।" अनुदार दल का विश्वास है कि अंग्रेज जाति का कर्तव्य ससार की पिछड़ी जातियों को सभ्य बनाना है, चाहे यह कार्य उनकी इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हो और "उसके लिए चाहे पाशविक हिंसा का मार्ग ही क्यों न अपनाना पड़े।"

अनुदार दल का नवयुवक वर्ग लेबर पार्टी का कुशलता से सामना करने के विचार से एक शक्तिशाली पार्टी कार्यक्रम का समर्थन करता है। १६४७ में एक औद्योगिक चार्टर (Industrial Charter) प्रकाशित किया गया था, जिसे १६४७ में अनुदार दल की कान्फ्रेंस ने स्वीकार कर लिया था। इसमें राष्ट्रीय योजना के महत्त्व को स्वीकार किया गया था। १६४६ में अनुदार दल के "ब्रिटेन के लिए सही-सही मार्ग" शीर्षक वक्तव्य मे सबको काम दिलाने के महत्त्व पर जोर दिया गया था। १६५१ के पार्टी घोषणा-पत्र मे गृह-निर्माण पर जोर दिया गया था और १६५५ में पार्टी ने "स्वतन्त्र व्यवसाय के द्वारा समृद्धि" का प्रगुण किया था।

दल का संगठन (Organization of the Party)—जहाँ तक दल के सगठन का प्रश्न है, स्थानीय रूढ़िवादी सभा (Local Conservative Association) मे क्षेत्र के दल के सदस्य होते है और यह सभा स्वयं अपनी समिति तथा उसके अध्यक्ष, मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। इस समिति को कार्यक्षेत्र के दलीय प्रत्याशी का चयन (choice) करना है। स्थानीय समिति प्रत्याशियों का चयन करने में स्वतन्त्र होती है यदि वह निर्वाचन-व्यय उठा सके। यदि केन्द्रीय कार्यालय से आर्थिक सहायता ली जाये तो स्थायी परामर्शदात्री समिति (Standing Advisory Committee) की स्वीकृति लेनी आवश्यक है। सबसे प्रमुख दलीय उपकरण (party organ) वार्षिक पार्टी-सम्मेलन होता है, जिसमें स्थानीय समितियाँ तथा रूढ़िवादी सलंग्नों के प्रतिनिधि भाग लेते है। सम्मेलन दल का कार्यक्रम निर्धारित करता है तथा अन्तर्निरीक्षण (stock-taking) करने का अवसर प्रदान करता है। किन्तु ध्यान रहे कि वार्षिक सम्मेलन का कार्य लोकसभा में रूढ़िवादी दल के नेता का निर्वाचन करना नहीं है। वह शक्ति संसद् के रूढ़िवादी सदस्यों को ही प्राप्त है। रूढ़िवादी दल संसद् के रूढ़िवादी सदस्यों पर अधिक नियन्त्रण नही रखता।

अनुदार दल की सत्ता पार्टी के नेता के प्रभुत्व पर निर्भर होती है। वह अधिवेशन विशेष के लिए नहीं चुना जाता। एक बार चुना जाने के पश्चात् यह जीवन अपने पद पर बना रहता है। अगर वह चाहे तो अपनी इच्छानुसार अपने पद से

त्यागपत्र दे सकता है। पार्टी नेता स्वयं अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करता है। उदाहरण के तौर पर चर्चिल अपनी इच्छानुसार अनुदार दल का नेता बना रहा और अवकाश ग्रहण करते समय सर एथनी ईडन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गया। इस सदी के चौथे दशक मे बाल्डविन (Baldwin) के अवकाश ग्रहण करते समय भी ऐसा ही हुआ था। पार्टी-नेता की बहुत शक्ति होती है। वह पार्टी के चेयरमैन को नियुक्त करता है, अपनी पार्टी की नीति निर्धारित करता है। उसकी सत्ता मुक्त चुनाव और उसके समर्थकों के आधार पर निर्भर रहती है। नेशनल यूनियन (National Union) द्वारा पास किये गए प्रस्ताव सूचना और निर्देशन के लिए उसके पास भेजे जाते हैं लेकिन कोई भी प्रस्ताव, चाहे उसमें कैसा ही ज़ोर दिया गया हो, नीति के प्रश्न पर उसे बाध्य नहीं कर सकता है। यह ढंग हमारे लिए उपयुक्त है और उन महापुरुषों के लिए भी उपयुक्त था, जिनके नेतृत्व मे रहने का हमें गौरव प्राप्त है।

श्रमिक दल (Labour Party)—श्रमिक दल प्राचीन दलों को श्रमजीवियों की चुनौती है। श्रमिक दल सम्बन्धित सस्थाओं (affiliated bodies) तथा उन व्यक्तिगत सदस्यों का संयोग (fusion) है, जो दल की स्थानीय शाखाओं के सदस्य बन गए हैं। राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति (National Executive Committee) में २५ सदस्य होते हैं, जिनमें से १२ ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता, ७ निर्वाचन क्षेत्र संगठन के प्रतिनिधि, १ सहकारी समितियों का प्रतिनिधि तथा ५ महिलाएँ होती हैं। इनके अलावा दल का नेता पदेन (ex-officio) सदस्य होता है। दल के वार्षिक सम्मेलन में प्रत्येक विभाग अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करता है और वे चुने हुए प्रतिनिधि उस वर्ष के लिए मुख्य कार्यकारिणी (chief executive) का रूप धारण कर लेते हैं।

१९४७ में, ७३ ट्रेड यूनियनों द्वारा ४३,८६,०७४ श्रमिक दल के सदस्य बनाए गए थे। ६४९ निर्वाचक दलों ने ६,०८,४८७ सदस्य बनाए। ६ समाजवादी सहकारी समितियों ने ४५,७३८ सदस्य बनाए। कुल सदस्य संख्या ५०,४०,२९९ थी। दल के सम्मेलन मे प्रतिनिधित्व की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि प्रत्येक सम्बन्धित ट्रेड यूनियन प्रति पाँच हजार सदस्यों के पीछे अथवा उसके किसी भाग के पीछे जिसका शुल्क दिया गया हो एक प्रतिनिधि भेज सकती है। यही बात निर्वाचन-क्षेत्र श्रमिक दल पर लागू होती है। वे सम्मेलन में प्रति हजार सदस्यों अथवा उसके किसी भाग—जिसका शुल्क दिया गया हो—के पीछे एक 'कार्ड' डालकर मत देते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि दल की सदस्यता का $\frac{5}{6}$ हिस्सा ट्रेड यूनियनों से सम्बन्धित होता है। दल की अधिकांश आय भी ट्रेड यूनियनों से प्राप्त होती है।

१९४५ के निर्वाचनों में श्रमिक दल ने कोयले की खानों, लोहा तथा इस्पात उद्योग, ईंधन और शक्ति, यातायात, बैंक ऑफ इंगलैंड के राष्ट्रीयकरण, नियोजन (investment) के नियन्त्रण, बेकारी दूर करने, दवाइयों का समाजीकरण करने (socialise), शिक्षा तथा भवन-निर्माण की योजनाओं को तेजी से आगे बढाने और जहाँ तक सम्भव हो एकाधिकार (monopoly) को समाप्त करने की प्रतिज्ञा की थी।

श्रमिक दल का आधार दृढ है। यह सत्य है कि इसके अधिकांश सदस्य श्रम-

जीवियों की श्रेणी से सम्बद्ध हैं लेकिन इसने कृषि-सम्बन्धी श्रमिकों तथा मध्य श्रेणी के लोगों को अपनी ओर आकर्षित (attracted) किया है। कुछ सदस्य उच्च वर्ग (upper [strata) के भी हैं। दल में अध्यापक, व्यापारी, पत्रकार, प्रशासकीय कर्मचारी (civil servants), सैनिक, इंजीनियर, पादरी, दुकानदार तथा कृषक होते हैं।

श्रमिक दल समाजवाद की अपेक्षा जनतन्त्र को अधिक महत्त्व देता है। वह समाजवाद की स्थापना जनतन्त्रीय विधि के द्वारा करना चाहता है। वह बहुमत को स्वतन्त्र तथा सार्वजनिक मंच के द्वारा अपना मतानुयायी बनाने का यत्न करता है। इस विषय में उसका साम्यवादी दल से आधारभूत मतभेद है जो जनतन्त्रीय मार्ग में विश्वास नहीं रखता।

श्रमिक दल का घोषित उद्देश्य (professed aim) प्रत्येक उत्पादक (producer) को उद्योग के लाभ में उसका पूर्ण भाग दिलाना है। वह राष्ट्रीय धन का यथासम्भव अधिक-से-अधिक साम्यपूर्ण (equitable) वितरण चाहता है। इन आदर्शों को वह आर्थिक गतिविधि के जनतन्त्रीय नियन्त्रण तथा पूंजी तथा भूमि के साँझे स्वामित्व के द्वारा प्राप्त करना चाहता है।

लेबर पार्टी "उत्पादन के साधनों के साँझे स्वामित्व और प्रत्येक सेवा तथा उद्योग के लिए सुन्दरतम जन-शासन-व्यवस्था स्थापित करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ है। इस पार्टी को सही शब्दों में समान करने वालों की पार्टी (Levellers) कहा जाता है।" इसकी माँग है कि शिक्षा प्रणाली अधिक एक-सी बने और शिक्षा प्राप्त करने की अधिक समान सुविधाएँ प्राप्त हों, सम्पत्ति प्रणाली में समानता हो और समान रूप से ही इसका वितरण हो। बार्कर के अनुसार, "यह ब्रिटेन में समानता का नया युग ला देने की दिशा में पूर्णरूपेण प्रयत्नशील है। इसमें न तो सामाजिक परिवर्तन लाने की प्रक्रिया (technique) के प्रति इतना जोश है और न ही वह यह जानना चाहती है कि ऐसी प्रक्रिया समाजवाद की नीति से कोई सम्बन्ध रखती है या नहीं। यह जोश के साथ वास्तविक सामाजिक परिवर्तन और समानता लाने का प्रयत्न करती है।"

यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि श्रमिक दल ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से पूंजीवादियों तथा नफाखोरों की भर्त्सना नहीं की है। दूसरी ओर उसने एक कार्यक्रम उपस्थित किया है, जो व्यापक, रचनात्मक तथा व्यावहारिक है। दल इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य करता है कि समस्त मानवीय सम्बन्धों में बुनियादी ताल-मेल है और श्रमिकों के हित उन व्यक्तियों के हितों के विपरीत नहीं हैं, जो हाथ से काम करने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से जीविकोपार्जन करते हैं। इसके अतिरिक्त, श्रमिक दल ने अपनी अपील आध्यात्मिक स्तर पर की है। उसने अपने आपको विवादास्पद विषयों—सार्वजनिक दुकानों, जीवन-स्तरों, न्यूनतम वेतनों, आठ घण्टे का दिन आदि—में पूर्णतः लीन नहीं कर दिया है। वह औद्योगिक जनतन्त्र का समर्थक है, जिससे श्रमिकों का भाग्य सुधारने की आशा की जाती है।

जे० के० पोलक के अनुसार, "यदि कोई व्यक्ति श्रमिक दल सम्मेलन का ध्यान परीक्षण करे तो वह उसके जनतन्त्रीय गुणों, हार्दिक वाद-विवाद तथा प्रतिनिधित्व-

पूर्ण रूप की प्रशंसा किए विना नही रह सकता। वे वहुधा व्यग्र हो जाते है, और कभी बड़ी कटु आलोचना करते हैं। वे दीर्घ काल से पार्टी के प्रतिनिधि रहे हैं और उन्होंने दलीय कार्यक्रमों की एक शृंखला-सी (series) प्रस्तुत की है, जो विश्व के किसी भी दलीय संगठन के लिए गौरव की वस्तु हो सकती है।"

श्रमिक दल किसी अन्य दल की अपेक्षा अधिक दृढता से संगठित है। दल का सर्वाधिक शक्तिशाली उपकरण वार्षिक सम्मेलन है, जो अकेला ही दलीय सविधान का संशोधन कर सकता है। वार्षिक सम्मेलन में स्थानीय निर्वाचित क्षेत्रो, सम्बन्धित ट्रेड यूनियनों, महिला सदस्यों और समाजवादी समितियो के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। वार्षिक सम्मेलन दलीय नीति का निरूपण करता है और राष्ट्रीय कार्यकारिणी का निर्वाचन करता है। संसद् के श्रमिक दल तथा दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में निकटतम सम्बन्ध होता है। प्रमुख नगरों में दल के स्थानीय संगठन पाये जाते हैं। दल का स्थानीय उपकरण उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित एक समिति करती है, जिसमें अध्यक्ष, मन्त्री, कोपाध्यक्ष तथा कुछ अन्य सदस्य होते हैं। समिति स्थानीय दलीय मशीन का नियन्त्रण करती है। सभी सदस्यों को नियमित रूप से दल का चन्दा देना पडता है।

उदार दल (Liberal Party)—उदार दल का ह्रास हो रहा है। इसका समर्थक वर्ग निर्वाचकों का वह अवशिष्ट (residuary) समूह है, जिसकी रूढिवादी दल तथा श्रमिक दल से नहीं पटती। इसको अधिकांश समर्थन चर्च, विदेशी सम्वन्धों, टैरिफ (tariff), मताधिकारो तथा नागरिक स्वतन्त्रताओं के प्रति परम्परागत निष्ठा से प्राप्त होता है। १९४५ तक लायड जार्ज (Lloyd George) के कारण इस दल में शक्तिशाली आकर्षण था जो लडाका तथा भूमि-हितो का समर्थक था। उदार दल के पतनों की व्याख्या तथ्यों तथा आँकड़ों से की जा सकती है। १९०६ में लोकसभा में ३९७ उदार सदस्य थे। १९११ में २७१, १९२३ मे १५८, १९२९ में ५९, १९३१ में ३७, १९३५ मे २१, तथा १९४५ में केवल १२ सदस्य थे।

१९४५ में उदार दल को साढे बाइस लाख वोट मिले और उसने १२ सीटें जीती; १९५० मे उसे साढे वाइस लाख वोट मिले, परन्तु कुल ९ सीटें प्राप्त हो सकी। पार्टी के ३१९ उम्मीदवारों की जमानतें जब्त हो गईं। १९५१ में उन्हें केवल छः सीटें और १९५५ मे केवल दो सीटें प्राप्त हुई।

उदार दल का स्थान रूढिवादी दल तथा श्रमिक दल के मध्य में है। वह रूढिवादी दल की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील है लेकिन श्रमिक दल की सीमा तक वढ़ने के लिए तैयार नही है। वह मुक्त व्यापार नीति (free trade) का समर्थक है, किन्तु अब इसके हाथ मे समाज का मार्ग प्रदर्शन करने की शक्ति नहीं है। उसके कुछ सदस्य श्रमिक दल में सम्मिलित हो गए हैं और कुछ रूढिवादी दल मे। कोई
यदि कुछ समय पश्चात् उदार दल का अस्तित्व भी न रहे।

बुएल (Buell) के अनुसार, उदार दल "राष्ट्रीयकरण
के स्थान पर राज्य विनियमन (state regulation) का समर्थन
(लेबर पार्टी के समान) इसके अनुसार भी बेंक, नियोजन (inve

तथा विद्युत् पर सरकार का नियन्त्रण होना चाहिए और कोयला उद्योग का विनियमन होना चाहिए। इसकी कृषि नीति के अनुसार छोटी जोतों (small holdings) के द्वारा भूमि का कुशलतापूर्वक उपयोग करना है। 'उदार मार्ग' (liberal way) वास्तव में अनुदार दल के राज्य पूंजीवाद (state capitalism) और लेबर पार्टी के समाजवाद (socialism) के बीच का मार्ग है।"

उदार दल का दावा है कि हम किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करते। हम सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका विश्वास है कि वे न व्यक्तिगत व्यवसाय में यकीन करते है और न पूर्ण समाजवाद में। वे एक ऐसे शासन में विश्वास करते हैं, जिसमे राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार दोनों के सामान तत्त्व मौजूद हों और जो राष्ट्रीय आवश्यकताओं के विकास के साथ अपने अन्दर अनुकूल परिवर्तन कर सके।

साम्यवादी दल (Communist (Party)—इंगलैंड की साम्यवादी पार्टी के सम्बन्ध में कुछ कहना उचित प्रतीत होता है। इंगलैंड में साम्यवादी दल पूर्णरूपेण लोकप्रिय नही है। वह जनतन्त्र में विश्वास नहीं करता। वह वर्ग-युद्ध तथा श्रमजीवियों के अधिनायकत्व (Dictatorship of the Proletariat) का समर्थक है। उसको मास्को से आदेश प्राप्त होते है।

प्रो० अर्नेस्ट बार्कर (Prof Ernest Barker) एक कहानी का जिक्र करते हैं, जिसमे कहा गया है कि जब स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व (liberty, equality and fraternity) का वितरण इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका में हुआ, तब इंगलैंड पहले आया और उसे स्वतन्त्रता मिली, फिर फ्रांस आया और उसे समानता प्राप्त हुई और अन्त मे अमेरिका आया उसे भ्रातृत्व (fraternity) प्राप्त हुआ। यदि ये तीनों भेंटे पार्टियों में बाँटी जाती तब उदार दल को स्वतन्त्रता, अनुदार दल को भ्रातृत्व और लेबर पार्टी को समानता प्राप्त होती।

इंगलैंड तथा अमेरिका के दलों की तुलना—अंग्रेजी तथा अमेरिकन दलीय प्रणालियों की तुलना करने से पता चलता है कि दोनों देशों मे बहुत कुछ समानता है। स्थानीय तथा राष्ट्रीय समितियों का एक क्रम है। दोनों देशों में दल की सहायता करने के लिए अनेक अधीन लीगें तथा क्लब हैं। दोनों देशों के दल कानूनी सीमा में रहकर कार्य करते है। वे क्रांतिकारी (revolutionary) पगों में विश्वास नही करते किन्तु इंगलैंड में यू० एस० ए० की अपेक्षा पेशेवर राजनीतिज्ञ बहुत कम हैं। इंगलैंड में ऐसी महिलाओं तथा पुरुषों की संख्या बहुत कम है, जो अपना अधिकांश समय अपनी पार्टियों के कार्यों में लगाते हैं। यद्यपि इंगलैंड में राजनैतिक संगठन हैं तथापि वहाँ यू० एस० ए० की तरह राजनैतिक मशीनें नहीं है। इंगलैंड में कोई ऐसी संस्था नहीं है जिसकी टैमिनी हॉल (Tammany Hall) से तुलना की जा सके। इंगलैंड में अमेरिका की तरह राजनैतिक अधिष्ठाता (political bosses) नहीं हैं।

Suggested Readings

Bailey, Sydney D. (Ed.) : Political Parties and the Party System in Britain, 1953.
Birch, Nigel : The Conservative Party, 1949.
Bulmer, Thomas, Ivor : The Party System in Great Britain, 1953.
Cruikshank, Robert J. : The Liberal Party, 1949.
Grimond, Joseph The Liberal Future.
Hall, Glenvil : The Labour Party, 1949.
Mackenzie, R. T. : British Political Parties, 1955
Williams, Francis : Fifty Years' March : The Rise of the Labour Party, 1950.

अध्याय ८

इंगलैंड में स्थानीय शासन

(Local Government in England)

आरम्भिक—ब्लैकस्टोन (Blackstone) के अनुसार, "इंगलैंड के नागरिकों की स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा श्रेय उनकी स्थानीय संस्थाओं को है। अपने पूर्वज सैक्सनों (Saxons) के समय से अंग्रेज लोगों ने अपने ही द्वार पर नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त किया है।"

इंगलैंड की स्थानीय शासन-व्यवस्था दीर्घ ऐतिहासिक क्रान्ति का परिणाम है, जो पर्याप्त सीमा तक बिना किसी के पथ-प्रदर्शन और योजना के हुई थी। एंग्लो-सैक्सन काल से स्थानीय संस्थाओं के इतिहास की खोज करना सम्भव नहीं है, यद्यपि आजकल के कुछ स्थानीय क्षेत्रों का जन्म अल्फ्रेड महान् के समय हुआ था। यह कहना पर्याप्त है कि १९वीं सदी के आरम्भ में स्थानीय क्षेत्रों, प्राधिकरणों (authorities) तथा अधिकार-क्षेत्रों (jurisdictions) में बिलकुल गडबड़ी फैली हुई थी। एक समय इंगलैंड में २७,००० विभिन्न स्थानीय प्राधिकरण थे और उसी प्रकार देश में सैकड़ों अधिकार क्षेत्र थे। उन सब को इसी तरह नहीं छोड़ा जा सकता था और इसीलिए १८३५ में नगर निगम अधिनियम (Municipal Corporation Act) पारित किया गया। उस अधिनियम के द्वारा देश में बॉरो (Borough) प्रशासन को मान्यता दी गई। अगला पग सन् १८८८ में उठाया गया, जब कि स्थानीय शासन अधिनियम (Local Government Act) पारित किया गया। इस कानून के द्वारा देश में काउन्टी प्रशासन को मान्यता दी गई। १८९४ में जिला और पैरिश परिषद् अधिनियम (District and Parish Councils Act) पारित किया गया जिससे अधिकांश जिले समाप्त हो गये और शहरी तथा देहाती (Rural and Urban) जिले बनाये गए। १९२९ के स्थानीय-शासन अधिनियम ने कुछ जिलों को संयुक्त किया तथा स्थानीय निकायों (local bodies) को आर्थिक सहायता देने का मार्ग निकाला गया। १९३३ के स्थानीय शासन अधिनियम के द्वारा समस्त स्थानीय प्राधिकरणों की शक्तियों को एक ही व्यवस्थापन में इकट्ठी (consolidated) कर दिया गया। सन् १९३६ और १९४६ के जरनैली सडक अधिनियमों (Trunk Roads Act) के द्वारा राष्ट्रीय जरनैली सड़क का निर्माण-कार्य राष्ट्रीय कोष से करने के लिए परिवहन मन्त्रालय (Transport Ministry) को सौंप दिया गया। १९४६ के राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम ने औषधालयों को एडहॉक प्रादेशिक प्राधिकरणों (Ad hoc Regional Boards) को सौंप दिया। राष्ट्रीय सहायता अधिनियम ने स्थानीय संस्थाओं को वृद्धों, अपाहिजों, अन्धों, गूंगों तथा बहरों के लिए व्यवस्था करने को बाध्य किया। १९४७ के संतति अधिनियम ने स्थानीय को पितृहीन बच्चों की सुरक्षा का आदेश दिया। स्थानीय सरकार सीमा आयोग

अधिनियम, १९४५ ने काउन्टियों तथा बॉरोज की सीमाओं को स्थापित करने के लिए एक सीमा आयोग नियुक्त करने की व्यवस्था की। किन्तु १९४९ में यह अधिनियम वापस ले लिया गया।

मुख्य विशेषताएँ (Salient Features)—इंगलैंड में स्थानीय सरकार प्रणाली की कुछ विशेषताएँ हैं। प्रथम तो, ब्रिटिश स्थानीय शासन-व्यवस्था के सिद्धान्तों का प्रादुर्भाव बहुत पहले हुआ था। अंग्रेज अपने स्थानीय विषयों में स्वायत्त शासन का उपभोग एंग्लो-सैक्सन काल से करते रहे हैं और उन्होंने अपने अधिकार को अक्षुण्ण (preserved) रखा है तथापि इन सदियों में देश को अनेक उतार-चढावो का सामना करना पडा है। दूसरे, जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इंगलैंड में स्थानीय स्वशासन की प्रणाली परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बनती रही है। स्थानीय संस्थाओं के केवल कार्यों में ही परिवर्तन नही किया गया अपितु उनके संगठन को भी बदला गया है। स्थानीय संस्थाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया गया है कि वे प्रत्येक प्रगतिशील देश की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। तीसरे, यद्यपि देश की स्थानीय संस्थाओं में विभिन्नता है और वे अपनी इच्छा के अनुसार अपने कार्य की व्यवस्था करती हैं तथापि कुछ विषयों में एकरूपता स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है ताकि विभिन्न स्थानीय संस्थाओं के अधिकार-क्षेत्र के निवासियों का जीवन-स्तर केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित स्तर से नीचा न हो। यद्यपि स्थानीय संस्थाओं के स्वशासन में हस्तक्षेप नहीं किया जाता, तथापि केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में वृद्धि करने की प्रवृत्ति कार्य कर रही है।

स्थानीय संस्थाओं का संगठन : काउंटी (Organisation of Local Bodies : County)—इंगलैंड में स्थानीय शासन की सबसे बडी इकाई काउण्टी है। काउण्टियाँ दो प्रकार की हैं : ऐतिहासिक काउण्टियाँ तथा प्रशासकीय काउण्टियाँ। ऐतिहासिक काउण्टियाँ एंग्लो-सैक्सन काल के शायरों की अवशेष है। यद्यपि उनकी संख्या ५२ है तथापि वे १८८८ से स्थानीय प्रशासन की इकाइयों के रूप में प्रयोग में नहीं आतीं। किन्तु वे संसद् के निर्वाचन-क्षेत्रों के रूप में प्रयुक्त की जाती हैं। किसी ऐतिहासिक काउण्टी के लिए काउण्टी परिषद् (County Council) नहीं है।

१८८८ के स्थानीय शासन अधिनियम ने ६२ प्रशासकीय काउण्टियाँ स्थापित की थी। प्रशासकीय काउण्टी का शासक उपकरण (governing organ) काउण्टी परिषद् है, जिसमें अध्यक्ष, ऐल्डरमैन (Aldermen) तथा सभासद (Councillors) होते हैं। काउण्टी परिषद् तीन वर्ष के लिए निर्वाचित होती है और परिषद् का आकार काउण्टी की जनसंख्या पर निर्भर है। ऐल्डरमैनों की संख्या सभासदों की संख्या का छठा हिस्सा होती है। इन ऐल्डरमैनों को सभासद ६ वर्ष के लिए निर्वाचित करते हैं, किन्तु उनमें से ½ प्रति तीसरे वर्ष रिटायर हो जाते हैं। सभासद तथा ऐल्डरमैन एकत्रित होकर काउण्टी-परिषद् के सभापति का निर्वाचन करते हैं। काउण्टी परिषद् के अधिवेशन कार्य-संचालन के लिए वर्ष में चार बार होते हैं।

काउण्टी परिषदों को प्रचुर शक्तियाँ प्राप्त हैं। वे काउण्टी के लिए उपविधियाँ (bye-laws) बनाती हैं तथा नीति निर्धारित करती हैं। वे देहाती जिला परिषदों

(Rural District Councils) के कार्य का निरीक्षण करती है। वे धन का विनियोग (appropriation) करती हैं। वे केन्द्रीय अधिकारियों की अनुमति से धन उधार लेती है। वे काउण्टी कर लगाती है। वे काउण्टी-भवनों की व्यवस्था करती है। वे शरण स्थान तथा सुधारालय बनवाती हैं। वे शुद्ध पानी और सफाई की व्यवस्था करती हैं। वे शराब के लाइसेन्स, जो जस्टिस ऑफ दी पीस देता है, के अतिरिक्त अन्य लाइसेंस भी स्वीकृत करती हैं। वे प्रशासकीय कर्मचारियों को नियुक्त करती हैं, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की देख-भाल करती हैं। वे सार्वजनिक सहायता समितियों (Public Assistance Committees) की सहायता से 'पूअर लॉ' (Poor Law) का प्रबन्ध करती हैं। वे आरम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा का निरीक्षण करती है। वे संक्रामक रोगों, विस्फोटकों (explosives), बाटों (weights) तथा मापों (measures), जंगली पक्षियों आदि से सम्बन्धित नियमों को लागू करती हैं। वे सभासदों तथा जस्टिस ऑफ दी पीस की संयुक्त समिति के द्वारा काउण्टी आरक्षी (police) को नियन्त्रित करती है। वे सड़कों तथा पुलों की देख-भाल करती हैं। वे संसद् में असार्वजनिक विधेयकों (private bills) का समर्थन अथवा विरोध करती है।

काउण्टी के दैनिक प्रशासकीय कार्य को सचिव, कोषाध्यक्ष, पर्यालोचक (surveyor), शिक्षा संचालक, भूमि अभिकर्त्ता (land agent), बाटों तथा मापों के निरीक्षक तथा स्वास्थ्य अधिकारी जैसे वैतनिक कर्मचारी करते हैं। स्थानीय काउण्टी प्रशासन की दक्षता का प्रमुख कारण काउण्टी परिषद् के स्थायी कर्मचारी वर्ग का ऊँचा स्तर है। उनका कार्य-काल सुरक्षित है और उनको प्रति वर्ष अपनी नौकरी को स्थिर रखने के लिए तिकड़म नहीं लड़ानी पड़ती।

काउण्टी प्रशासन में समितियों का बड़ा भाग है। कानून के अनुसार, काउण्टी परिषद् में कम-से-कम नौ समितियाँ होती हैं : वित्त, शिक्षा, सार्वजनिक सहायता (Public assistance), लोक स्वास्थ्य, भवन-निर्माण, कृषि, जच्चा तथा बच्चा घर आदि। सड़कों और पुलों, बाटों तथा मापों की भी समितियाँ हैं। संयुक्त समितियों के लिए भी व्यवस्था है।

काउण्टी बॉरो (County Borough)—काउण्टी बॉरो घनी आबादी वाला कस्बा होता है, जिसका क्षेत्रफल इतना अधिक होता है कि स्थानीय प्रशासन के क्षेत्र में आने वाली सेवाओं का उचित प्रकार से प्रबन्ध हो सके तथा उन पर होने वाले खर्च के भार को वह स्वयं उठा सके। १८८८ के अधिनियम के अंतर्गत काउण्टी बॉरो की न्यूनतम जनसंख्या ५०,००० निश्चित की गई थी। किन्तु कुछ सुव्यवस्थित कस्बों के लिए उस संख्या में कुछ छूट की गई थी। १९२६ के अधिनियम ने न्यूनतम जनसंख्या ७५,००० निर्धारित की। यह भी व्यवस्था की गई कि काउण्टी बॉरो की स्थिति केवल असार्वजनिक स्थानीय अधिनियमों (Private Local Acts) द्वारा प्राप्त की जाए। १९४५ में परिसीमन आयोग (Boundary Commission) नियुक्त किया गया जिसको स्थानीय सरकारों की सीमाओं तथा स्थिति को समय-समय पर व्यवस्थित करने की शक्ति दी गई। आयोग को संसद् द्वारा मान्य आदेशों

के अनुसार कार्य करना था। काउण्टी बॉरो की न्यूनतम जनसंख्या १,००,००० निश्चित की गई। काउण्टी बॉरो की स्थिति किसी नगर या कस्बे की स्थानीय सरकार को प्राप्त होने वाली सर्वोच्च स्थिति है। 'नगर' (City) शब्द एक आदर सूचक शब्द मात्र है, जो आधुनिक युग मे राजा के लैटर्स पेटेन्ट (Letters Patent of the King) द्वारा प्रदान किया जाता है और साधारणत प्रथम श्रेणी के कस्बों को ही 'नगर' कहा जाता है।

काउण्टी बॉरो का आकार अधिक बड़ा होता है। बीस के लगभग काउण्टी बॉरो की जनसख्या ७५,००० से कम है। बड़े नगरों की जनसख्या १० लाख तक पहुँच जाती है किन्तु साधारण नगरों की जनसख्या २,५०,००० और ७५,००० के बीच में हैं।

काउण्टी बॉरो को साधारणतः वे समस्त अधिकार प्राप्त होते है जो किसी स्थानीय सस्था को होते है। उनमे से अधिकांश गैस, जल, विद्युत् तथा यातायात आदि सार्वजनिक कार्यों का दायित्व अपने ऊपर ले लेते है। काउण्टी बॉरो को पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त है और उनका प्रयोग काउण्टी बॉरो परिषद् करती है।

ज़िले (Districts)—१८९४ के जिला तथा पैरिश-परिषद् अधिनियम ने शहरी तथा देहाती (Rural and Urban) जिलो का निर्माण किया। शहरी जिलों की संख्या ५७२ तथा देहाती जिलों की सख्या ४७५ है। बॉरो तथा शहरी जिले दोनों ही नगर इकाई है। बॉरो प्रायः बड़े शहरी जिलो को बनाया जाता है। फिर भी इस दिशा में कोई कानूनी सीमा नही है। १८३५ से पूर्व स्थापित बॉरोज ने अपनी प्राचीन स्थितियों को स्थिर रखा है, उनमे से कुछ का आकार छोटा है। आजकल बॉरो की २० हजार और एक लाख के बीच मे जनसख्या होती है। बॉरो का आन्तरिक गठन शहरी जिले से भिन्न होता है, किन्तु उनकी शक्तियो में प्रायः कोई अन्तर नही है। पैरिश ग्राम के विकास का प्रथम चरण (first stage) शहरी जिला है। शहरी जिले के निवासी एक परिषद् को निर्वाचित करते है जिसमें जिले की प्रत्येक पैरिश का कम-से-कम एक सदस्य जरूर होता है। जिला-परिषदों मे ऐल्डरमैन नही होते, लेकिन परिषद् अपना सभापति स्वय निर्वाचित करती है और वह किसी बाहर के व्यक्ति को भी निर्वाचित कर सकती है। पहले यह कहा जाता था कि नगर जिलों में से अनेक जिले उन कार्यों को करने के लिये बहुत छोटे है, जो उनको सौंपे गए है।

प्रत्येक प्रशासकीय काउण्टी मे ग्रामीण पैरिशों को देहाती जिलों मे सगठित कर दिया गया है और प्रत्येक देहाती जिले मे वोटरों द्वारा निर्वाचित एक परिषद् होती है। परिषद् स्वच्छता, जल-वितरण, लोक-स्वास्थ्य आदि का प्रबन्ध करती है। वह छोटी सड़कों की व्यवस्था करती है। वह लाइसेन्स दे सकती है। इंग्लैंड मे देहाती जिलो का ह्रास हो रहा है क्योंकि वहाँ ग्रामीण प्रदेशो का अन्त हो

पैरिश (Parish)—पैरिश एक छोटा टाउनशिप - अथवा ... क्षेत्र हो सकता है, जिनमें कुछ बिखरी हुई झोपड़ियाँ हों। उसकी शा... नहीं है। वह सरकारी कार्यालयों, मनोरंजन स्थलों तथा बैठकों के ...

भवनों की व्यवस्था कर सकती है। सड़कों पर प्रकाश तथा पटरियों की सुरक्षा का प्रबन्ध कर सकती है। इसे एक महत्वपूर्ण अधिकार यह प्राप्त है कि यह प्रबन्ध ठीक न होने पर देहाती जिला-परिषद् या काउण्टी-परिषद् से आवेदन कर सकती है।

३०० से अधिक जनसंख्या वाली पैरिशों में पैरिश-परिषद् होती है तथा ३०० से कम जनसख्या वाली पैरिशो में परिषद् नही होती। पैरिश-परिषद् का आकार जनसंख्या पर निर्भर करता है। पैरिश-परिषद् पैरिश विषयों की देखभाल करने के लिए वर्ष मे तीन या चार अवसरो पर बैठक करती है। पैरिश-परिषद् सार्वजनिक पुस्तकालय, स्नानागार तथा सडको पर रोशनी (Street lamps) की व्यवस्था कर सकती है।

बॉरोज (Boroughs)—बॉरो नागरिक कार्यों के अभिप्राय से विशेष रूप से सगठित क्षेत्र (area) अथवा इकाई है। बॉरो और काउण्टी बॉरो में अन्तर केवल शक्तियो का है। साधारण बॉरो सरकारी तथा भौगोलिक रूप मे (governmentally and geographically) उस प्रशासकीय काउण्टी का अंग होती है, जिसमे वह बसी होती है। लेकिन काउण्टी बॉरो काउण्टी क्षेत्राधिकार से पूर्णत: मुक्त होती है। बॉरो को नगर जिले से अधिक शक्तियां प्राप्त होती हैं। बॉरो की शक्ति बॉरो-परिषद् के हाथो मे होती है। विधायी तथा कार्यपालिका शक्तियों का विभाजन नही होता। परिषद् में एक मेयर, कई ऐल्डरमैन तथा सभासद होते हैं। सभासदों का निर्वाचन जनता प्रत्यक्ष रूप से ३ वर्ष के लिए करती है। उनमे से तिहाई सदस्य प्रति वर्ष रिटायर होते हैं। इस प्रकार, प्रतिवर्ष नवम्बर में नगरपालिका का निर्वाचन होता है। १९०७ में महिलाओ को निर्वाचित होने का अधिकार दिया गया और कई महिलाएँ निर्वाचित हुई भी है। साधारणत: निर्वाचन निर्दलीय (non-partisan) आधार पर लडे जाते हैं, किन्तु उन बॉरोओं में कड़ा मुकाबला होता है, जिनमे श्रमिक दल की स्थिति दृढ होती है।

ऐल्डरमैनों की संख्या सभासदो की तिहाई होती है। उनका निर्वाचन परिषद् के सदस्य छः वर्ष के लिए करते हैं। किन्तु उनमे से एक-तिहाई प्रति दूसरे वर्ष रिटायर हो जाते हैं।

परिषद् मेयर का निर्वाचन एक वर्ष के लिए करता है। मेयर साधारणत: सदस्यो में से ही चुना जाता है लेकिन कभी-कभी बाहर के लोगों मे से भी उसका चुनाव किया जाता है। वह स्थानीय प्रशासन की किसी शाखा का अध्यक्ष नही होता। वह काउण्टी का पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) तथा औपचारिक अवसरों पर काउण्टी का आधिकारिक प्रतिनिधि होता है। वह अधिकारियों को नियुक्त अथवा कार्यमुक्त नही कर सकता, विभागों का नियन्त्रण और अध्यादेशों (Ordinances) का निषेध (veto) नही कर सकता। यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रबन्ध-कार्य में विशेष योग्य तथा अनुभवी हो। अधिक आवश्यक यह है कि यह धनी तथा फुरसत वाला व्यक्ति हो। उसे वेतन प्रायः नहीं मिलता अत: उसे सदा अपने पास से बहुत-सा धन व्यय करने के लिए तैयार रहना चाहिए। साधारणत: मेयर पुनर्निर्वाचित हो जाता है।

कार्य-भार के अनुसार बॉरो-परिषद् की बैठकें मासिक, पाक्षिक अथवा साप्ताहिक होती हैं। किन्तु बॉरो परिषद् का अधिकांश कार्य समितियों में होता है जिनका निर्वाचन परिषद् करती है और जिनकी अध्यक्षता समितियों द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष करते हैं। कुछ परिनियत समितियाँ (Statutory Committees) है जिनकी नियुक्ति प्रत्येक बॉरो-परिषद् को करनी पड़ती है। प्रमुख समितियाँ स्नान समिति (Wash Committee), वित्त समिति, शिक्षा समिति, वृद्धावस्था अनुवृत्ति (पेंशन) समिति, प्रसूतिका तथा शिशु-कल्याण समिति आदि है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य समितियाँ हैं, जिनकी नियुक्ति परिषद् अपनी इच्छा से करती है। समितियों की संख्या सात या आठ से लेकर बीस या पच्चीस तक है। व्यावहारिक रूप से समिति के सम्मुख आने वाले सभी विषय किसी-न-किसी समिति को भेज दिए जाते है। साधारणतः समितियों की सिफारिशों तथा निर्णयों को स्वीकार कर लिया जाता है क्योंकि समितियाँ विषय का गम्भीर अध्ययन करती हैं और विशेषज्ञ भी उनकी सहायता करते है।

बॉरो-परिषद् की तीन प्रकार की शक्तियाँ है अर्थात् विधायी, वित्तीय और प्रशासकीय। बॉरो-परिषद् समस्त विषयों से सम्बन्धित उपविधियाँ तथा अध्यादेश बनाती है, किन्तु स्वास्थ्य मन्त्रालय को यह शक्ति प्राप्त है कि वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी आदेशों अथवा अध्यादेशों को आपत्तिजनक होने पर रद्द कर दे। परिषद् बॉरो-कोष की संरक्षिका होती है। वह बॉरो मे स्थानीय कर लगाती है। वह समस्त विनियोग (appropriations) करती है। वह केन्द्रीय सरकार की अनुमति से नगरपालिका की साख पर ऋण लेती है। वह नगर प्रशासन की समस्त शाखाओं का नियन्त्रण करती है। वह सचिव, कोषाध्यक्ष, इंजीनियर, सरकारी विश्लेषक (analyst), प्रमुख कॉंस्टेबल, स्वास्थ्य अधिकारी आदि वैतनिक कर्मचारी रखती है जो बॉरो शासन का दैनिक कार्य सम्पादित करते है।

नगर सेवाओ के सम्बन्ध में कुछ परिषदों ने निम्नतम स्तर निर्धारित किया है। उनकी प्रवृत्ति प्रतियोगिता परीक्षाओं का अधिकाधिक प्रयोग करने की ओर है। विभागीय प्रमुखों तथा परिषद् के सदस्यों के पक्षपात करने के पर्याप्त अवसर है। साधारणतः यह स्वीकार किया जाता है कि सेवाओं मे पक्षपात तथा दलीय भावनाओं से कार्य नहीं किया जाता।

उच्च स्थायी अधिकारियों और परिषद्-समितियों मे निकट सम्बन्ध होता है। अधिकारियों को समितियाँ ही छाँटती है और उनके नियुक्त हो जाने के पश्चात् भी समितियाँ उनसे निरन्तर सम्बन्ध बनाए रखती हैं। स्थायी अधिकारी समितियों की बैठकों में भाग लेते हैं, उनकी गतिविधियों में सम्पूर्ण योग देते है, पर उनको मत देने का अधिकार नहीं होता।

यह कहा जाता है कि बॉरोओं का कार्य दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा कार्य-भार से अधिकाधिक दबी जा रही है। बॉरो प्रशासन के भग हो ज है। बॉरो प्रशासन मे क्षीणता आने का भी भय है। किन्तु यह नि सकता है कि कार्य करने के तेज तथा नए तरीकों (new and qui

का उपयोग करके वर्तमान मशीनरी बॉरो के क्षेत्राधिकार में रहने वाली जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगी।

टाऊन क्लार्क (Town Clerk)—इस सम्बन्ध में नगर सचिव के कार्यों तथा उसकी स्थिति का उल्लेख किया जा सकता है। वह स्थायी अधिकारी अपने विषय का ज्ञाता होता है और दलीय नीति (party politics) से अलग रहता है। स्थानीय निर्वाचनों में चाहे कोई दल जीते, टाऊन क्लार्क अपने पद पर बना रहता है। वह नगर-क्षेत्र के प्रबन्ध के विषय में नए तथा पुराने प्रतिनिधियों को परामर्श देता है।

उसका कर्त्तव्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। साधारणतः वह वकील होता है और उसे अनेक कानूनी कर्त्तव्य करने पड़ते हैं। वह परिषद् तथा समितियों को परामर्श देता है ताकि कोई अवैध कार्य न हो सके। परिषद् उसे अधिकार दे सकती है कि वह न्यायालय में उपस्थित होने के लिए किसी वकील को रख सके, किन्तु न्यायालय में जाने से पूर्व अभियोग सम्बन्धी समस्त प्रारम्भिक कागज उसे ही तैयार करने पड़ते हैं। जब बॉरो चाहती है कि संसद् को कोई असार्वजनिक विधेयक पारित करना चाहिए तब विधेयक का प्रथम मसविदा टाऊन क्लार्क ही तैयार करता है। वह तथ्य एकत्रित करता है, असार्वजनिक विधेयक समिति के सम्मुख विषय को समझाने के लिए बैरिस्टर की नियुक्ति करता है तथा समस्त कार्य का निरीक्षण करने के लिए स्वयं लन्दन जाता है।

टाऊन क्लार्क बॉरो का प्रमुख स्थायी अधिकारी (permanent official) होता है। केन्द्रीय सरकार तथा अन्य नगरपालिकाओं से होने वाला पत्र-व्यवहार उसके ही द्वारा होता है। उसके निरीक्षण में उसका कार्यालय विभिन्न प्रतिवेदन तैयार करता है जो स्वास्थ्य मन्त्रालय, गृह मन्त्रालय तथा केन्द्रीय सरकार के अन्य विभागों को भेजे जाते हैं। यदि बॉरो केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग से कुछ अस्थायी आदेश (provisional orders) प्राप्त करना चाहे तो टाऊन क्लार्क आवश्यक सूचनाओं सहित प्रार्थना-पत्र भेजता है।

टाऊन क्लार्क से आशा की जाती है कि वह परिषद् तथा समितियों की बैठकों में भाग ले, तथापि कई टाऊन क्लार्क उक्त कार्य अपने सहायकों अथवा समितियों पर छोड़ देते हैं। वह बैठक की कार्य-सूची निश्चित करता है और बैठक का वृत्त (minutes) ठीक-ठीक रखता है। सदस्य उससे किसी भी विषय पर परामर्श अथवा सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। उसके विशेषज्ञ होने के कारण, समितियों के अध्यक्ष सभी अवसरों पर उससे परामर्श करते हैं और विशेषकर बजट बनाते समय तो उससे परामर्श किया जाता है। निर्वाचनों के दिनों में वह कार्य-भार से दबा रहता है। यदि कोई नया दल सत्ता प्राप्त करता है और सदस्य बॉरो प्रशासन के दैनिक कार्यों से परिचित नहीं होते तो प्रत्येक विषय पर उन्हें टाऊन क्लार्क की सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

टाऊन क्लार्क नगरपालिका के समस्त राज-पत्रों (charters), विलेखों (deeds) पत्रों (leaves) तथा अन्य लेख्यों (documents) का रक्षक होता है। उसका कर्त्तव्य आवश्यकता पड़ पड़ने उनको परिषद् के सम्मुख उपस्थित करना है। वह इंगलैंड की

नगरपालिका विधि तथा व्यवहारों से सम्बन्धित संसद् के कानूनों, अस्थायी आदेशों तथा न्यायिक निर्णयों का ज्ञाता होता है। किसी विवादास्पद विषय को निपटाने में उनका परामर्श आवश्यक होता है। साधारणतः टाऊन क्लार्क नगर का जस्टिस ऑफ पीस (Ex-officio Justice of Peace) होता है और उस नाते वह न्यायालय में उपस्थित होता है, देशीयकरण (naturalisation) पत्रों का निर्गमन करता है, कानूनी लेख्यों तथा शपथ-पत्रों को प्रमाणित करता है। उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त टाऊन क्लार्क "उन समस्त कर्त्तव्यों को पूरा करता है, जो परिषद् उसे सौंपे अथवा जो इसके पश्चात् उसे सौंपे जायें।"

टाऊन क्लार्क का बॉरो मे प्रमुख स्थान होता है। वह स्थानीय प्रशासन की धुरी होता है। यदि परिषद् से उसके सम्बन्ध अच्छे हों और योग्य व्यक्ति के नाते उसकी मान्यता हो तो एक बड़ी बॉरो का टाऊन क्लार्क नगर प्रशासन में महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है।

लन्दन का शासन (Government of London)—प्रशासकीय कार्यों के लिए लन्दन को तीन भागों मे विभाजित किया गया है और वे है लन्दन नगर, लन्दन काउण्टी और लन्दन राजधानी। लन्दन नगर का क्षेत्रफल केवल एक वर्गमील है। यह नगर के स्वतन्त्र व्यक्तियों का निगम (corporation) है। वह नगर का शासन लार्ड मेयर तथा तीन परिषदों के द्वारा चलाता है। परिषदों के नाम कोर्ट ऑफ ऐल्डरमैन (Court of Aldermen), कोर्ट ऑफ कॉमन कौंसिल (Court of Common Council) तथा कोर्ट ऑफ कॉमन हॉल (Court of Common Hall) है। कोर्ट ऑफ कॉमन हाल एक प्रकार की नगर सभा (Town Meeting) होती है। लार्ड मेयर का निर्वाचन कोर्ट ऑफ कामन हॉल उन वरिष्ठ ऐल्डरमैनों में से करता है जो शेरिफ रह चुके हों। लार्ड मेयर कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित नहीं करता। उसका कर्त्तव्य केवल तीनों परिषदों की अध्यक्षता करना तथा महत्त्वपूर्ण अवसरों पर लन्दन का प्रतिनिधित्व करना है। उससे आशा की जाती है कि प्रतिवर्ष राज्यभोज (State banquet) दे और उसका व्यय भार सहन करे। उसका अधिकांश वेतन सरकारी कार्यों पर व्यय हो जाता है और अपने शेष खर्च को वह निजी व्यापार से पूरा करता है। इसी कारण लार्ड मेयर का पद केवल धनी व्यक्तियों को अनुकूल पड़ता है। लार्ड मेयर का सरकारी निवास-स्थान मैनशन हाउस (Mansion House) है। लन्दन नगर का प्रशासन योग्य है। लार्ड मेयर की उच्च स्थिति की बहुत आलोचना की जाती है और यह माँग की जाती है कि वह उससे छीन ली जाये ताकि लन्दन कांउण्टी का सभापति लन्दन की राजनीति मे उचित स्थान प्राप्त कर सके।

लन्दन की प्रशासकीय काउण्टी १२४ निर्वाचित सभासदों और २० ऐल्डरमैनों की काउण्टी परिषद् के अधीन है। जनता सभासदों का निर्वाचन तीन वर्ष के लिए करती है। दूसरी ओर, ऐल्डरमैनों का निर्वाचन सभासद ६ वर्ष के लिए करते उनमे से तिहाई प्रति तीसरे वर्ष रिटायर हो जाते है। १२४ सभासद तथा मैन एक साथ बैठ कर एक वर्ष के लिए अध्यक्ष का निर्वाचन करते है। निर्वाचनों में पर्याप्त दिलचस्पी ली जाती है। कुछ सर्वाधिक योग्य व्यक्ति

परिषद् के लिए निर्वाचित हो जाते हैं। लन्दन काउण्टी परिषद् का कार्य स्वच्छता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, भवन-निर्माण, शिक्षा, मनोरंजन स्थल, सार्वजनिक मेले, जल-पथ मार्गों, रेलों, पार्कों आदि का प्रबन्ध करना है। यह थियेटरों को लाइसेन्स देने, निवास स्थानों का निरीक्षण तथा व्यवस्थापन करने, निर्माण कानूनों को लागू करने तथा गरीबखानों की व्यवस्था करने की भी इंचार्ज है।

लन्दन काउण्टी परिषद् की आय के स्रोत सहायक अनुदान (Grants-in aid), मार्ग कर, किराया, शुल्क, लाइसेंस तथा स्थानीय कर हैं। लन्दन काउण्टी परिषद् का अपने बजट पर नियन्त्रण है। यह संसद् की अनुमति से ऋण ले सकती है। कभी-कभी किसी विशेष विभाग की अनुमति प्राप्त करना भी अपेक्षित होता है।

लन्दन काउण्टी परिषद् का मेयर नहीं होता। उसका एक सभापति होता है, जो बैठकों की अध्यक्षता करता है, लेकिन उसे कोई अन्य शक्ति नहीं प्राप्त होती। काउण्टी परिषद् का अधिकांश कार्य समितियों को सौंप दिया जाता है। काउण्टी परिषद् उच्च अधिकारियों को स्वयं नियुक्त करती है तथा अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति प्रतियोगिता-परीक्षाओं द्वारा होती है।

लन्दन की काउण्टी बॉरोओं का संधान (federation) है। बताया जाता है कि १८९९ में २८ राजधानी बॉरो (Metropolitan Boroughs) स्थापित किये गये थे। ऐसे प्रत्येक बॉरो का प्रशासन मेयर, ऐल्डरमैनों तथा सभासदों की बैठक के हाथों में है। बॉरो परिषद्, मार्गों, पथों, भवनों, प्रकाश, स्वच्छता, सार्वजनिक स्नानागारों, सार्वजनिक पुस्तकालयों, कब्रिस्तानों, विद्युत् प्रकाश-यन्त्रों आदि की इंचार्ज होती है। अब तक का अनुभव यह बतलाता है कि लन्दन की प्रशासकीय काउण्टी का कार्य बहुत दक्षता से सम्पादित होता है।

राजधानी आरक्षी जिला (Metropolitan Police District) सात सौ वर्ग मील का क्षेत्र है और उसका क्षेत्राधिकार लन्दन काउण्टी तथा अन्य अनेक काउण्टियों के कुछ भागों तक विस्तृत है। १८२९ में सर राबर्ट पील ने राजधानी आरक्षी जिले की स्थापना की थी। क्राउन द्वारा नियुक्त पुलिस कमिश्नर (Police Commissioner) जिले के संगठन का प्रमुख होता है। पुलिस कमिश्नर की नियुक्ति दलीय आधार पर नहीं होती। साधारणतः उसे प्रशासन का लम्बा अनुभव होता है। उसकी सहायता के लिए तीन सहायक कमिश्नर होते हैं। कमिश्नर पुलिस बल के संगठन तथा अनुशासन के लिए उत्तरदायी होता है। पुलिस की दक्षता को परस्पर लोग स्वीकार करते हैं।

ब्रिटिश प्रणाली तथा फ्रेंच प्रणाली की तुलना (Comparison of English and French Systems)—यद्यपि दोनों देश परस्पर पड़ोसी हैं, तो भी उनकी स्थानीय स्वशासन प्रणालियाँ मौलिक रूप से भिन्न हैं। यह निर्देश किया जा सकता है कि इंगलैंड की स्थानीय स्वशासन की प्रणाली विकासोन्मुखी (evolutionary) है और उसका आरम्भ एंग्लो-सैक्सन काल में हुआ था, लेकिन फ्रांस की स्थिति इसके विपरीत है। फ्रांस में वर्तमान स्थानीय स्वशासन प्रणाली क्रांति युग में स्थापित हुई।

वह नैपोलियन बोनापार्ट की देन है। गत १५० वर्षों मे इसमे कोई मौलिक परिवर्तन नही किया गया है।

फ्रांस की स्थानीय स्वशासन प्रणाली मे एकरूपता है लेकिन इगलैंड की प्रणाली मे पर्याप्त विभिन्नता है। वहाँ पर समस्त विभागों, उपविभागों (Arrondissements) तथा प्रतिविभागों (Communes) मे पूर्ण एकरूपता है। स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए स्थानीय अधिकारियों को तनिक भी परिवर्तन करने की छूट नही है।

फ्रास मे स्थानीय स्वशासन प्रणाली एकात्मक है क्योकि उसका उत्तरदायित्व गृह-मन्त्री (Minister of the Interior) पर है। फ्रास के स्थानीय स्वशासन की तुलना एक पिरामिड से की जाती है। दूसरी ओर, इगलैंड मे अनेक विभाग स्थानीय अधिकारियो के कार्य का मार्ग-दर्शन तथा नियन्त्रण करते है। यद्यपि फ्रास के स्थानीय क्षेत्र अप्राकृतिक सरकार द्वारा बनाए गए समझे जाते हैं, जबकि इगलैंड मे स्थानीय स्वशासन का उद्‌गम अनेक शताब्दी पूर्व हुआ था।

इगलैंड मे स्थानीय परिषदों के पीठासीन अधिकारियो का निर्वाचन स्वय जनता करती है किन्तु फ्रांस मे उनको कार्यपालिका नामजद करती है। विशेषकर यह स्थिति राज्याधिकारी प्रीफेक्ट (Prefect) तथा सब-प्रीफेक्ट (sub-prefect) के विषय में है।

फ्रास मे सरकारी नियन्त्रण प्रत्यक्ष है। गृह-मन्त्री प्रीफेक्ट तथा सब-प्रीफेक्ट को नियुक्त करता है तथा नियन्त्रित करता है, प्रीफेक्ट प्रतिविभागो तथा मेयरों का नियन्त्रण करते है। फ्रास में सरकारी नियन्त्रण इतना अधिक केन्द्रित हो गया है कि यह निर्देश किया जाता है कि यदि पैरिस को छींक आती हे तो सम्पूर्ण देश को जुकाम हो जाता है। इगलैंड मे नियन्त्रण परोक्ष रूप से है। उसका प्रयोग अनुदानों, स्थानीय निरीक्षण, आय-व्यय के परीक्षण द्वारा किया जाता है। फ्रास की प्रणाली मे समितियाँ महत्त्वपूर्ण भाग नहीं लेती, किन्तु इंगलैंड मे समितियाँ पर्याप्त कार्य सम्पन्न करती है। ब्रिटेन यह गर्व कर सकता है कि उसकी स्थानीय स्वशासन की प्रणाली भावी राजनीतिज्ञों का क्रीड़ाकेन्द्र है, किन्तु फ्रांस की स्थिति ऐसी नही है। फ्रांस मे अत्यधिक सरकारी नियन्त्रण होने के कारण जनता मे स्थानीय स्वशासन के लिए रुचि नहीं है और साधारणतः उक्त कार्य को अध्यापक, पादरी तथा अन्य लोग करते है।

इंगलैंड में स्थानीय स्वशासन के राजस्व स्रोत (Sources of Revenue of Local Authorities in England)—स्थानीय समितियों की आय के अनेक स्रोत हैं। किसी समय स्थानीय सस्थाओं की समस्त आय स्थानीय करों से प्राप्त हो जाती थी जिनको 'रेट' कहते थे और आज भी उन करों से स्थानीय सरकारो को पर्याप्त आय होती है, किन्तु रेट स्थानीय आय का एकमात्र स्रोत नही है।

स्थानीय रेट (Rates)—रेट या स्थानीय कर हितकर रूप से कब्जे में मौजूद (beneficially occupied) सम्पत्ति के वार्षिक मूल्य पर प्रतिशत दर से जाता है। कब्जा (occupation) लाभकारक (profitable) न होते हुए हो सकता है। हो सकता है कि कुछ व्यक्ति मकान (premises) का ताले हों और तब कब्जा हितकर हुआ हो यद्यपि प्रचलित अर्थ में ब

रहता है। सम्पत्ति की कुछ श्रेणियाँ कानून द्वारा मुक्त हैं। खेती की भूमि पूर्णतः मुक्त है। पाठशालाओं, गिरजाघरों तथा सांस्कृतिक समाजों (cultural societies) के प्रयोग में आने वाली सम्पत्ति भी कर मुक्त है।

साधारणतः रेट किरायेदार पर लगाया जाता है, न कि स्वामियों पर। किन्तु कुछ विषयों में, जैसे फ्लैटों के सम्बन्ध में, स्वामी का दायित्व रहता है। अधिकारी रेटों की अदायगी में साधारण बट्टों की छूट दे सकते हैं; गरीबी की अवस्था में स्थानीय प्राधिकरण (authorities) को रेटों की अदायगी से छूट देने की शक्ति है।

रेट मकानों के वार्षिक मूल्य पर लगाया जाता है। यह मूल्य वह है जिसको वे प्राप्त करने की आशा (वार्षिक मरम्मत आदि का व्यय छोड़कर) करते हैं। सिद्धान्त का प्रतिपादन करारोपण तथा मूल्यांकन अधिनियम १९२४ (Rating and Valuation) में किया गया है। मूल्यांकन तथा करारोपण एक टैकनिकल ढंग की कला बन गये हैं। स्थानीय प्रशासक वैतनिक मूल्यांकन अधिकारी (Valuation Officer) रखते है। जनता करारोपण मापकों (Rating Surveyors) तथा विशेषज्ञ वकीलों को नौकर रखती है। स्थानीय रेटों द्वारा एकत्रित करने में तीन प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं : भवन का मूल्यांकन तथा कर-निर्धारण (assessment), एकत्रित करना तथा समय-समय पर स्थानीय करों की राशि निश्चित करना। १९२४ के पूर्व, कर-निर्धारण का कार्य 'पूअर लॉ' के कर्मचारी वर्ग द्वारा किया जाता था और 'पूअर रेट' (गरीबों के पालन के लिए लगाया जाने वाला कर) कर-निर्धारण को स्थानीय रेटों का आधार मान लिया जाता था। स्थानीय रेटों को एकत्रित करने का कार्य भी 'पूअर लॉ' के ओवरसीअर करते थे। किन्तु १९२४ में कर-निर्धारण तथा मूल्यांकन अधिनियम (The Rating and Valuation Act) ने कर-निर्धारण करने का कार्य 'पूअर लॉ' से पृथक् कर दिया।

काउण्टियाँ तथा पैरिशें दोनों ही मूल्यांकन के कार्य के लिए बॉरोओं तथा जिलों पर निर्भर होती हैं तथा कुछ अनुमोदन की शर्तों पर उस मूल्यांकन से बँधी है। काउण्टियाँ तथा पैरिश दोनों के बॉरो और जिले उनके द्वारा लगाए गए रेटों में से आवश्यक धन देते हैं। स्थानीय रेटों के सम्बन्ध में बॉरो तथा नगर जिले, काउण्टी, ग्राम जिलों तथा पैरिशों की आवश्यकता को भी सम्मिलित कर लेते हैं। कर-निर्धारण करने वाले प्राधिकरण (authorities) को अन्य प्राधिकरणों की आवश्यकताओं का ज्ञान समय से पूर्व होना अत्यावश्यक है। आरम्भ में, कर-निर्धारण करने वाले अधिकारी अगले वर्ष के लिए आवश्यक धन के विषय में जानकारी माँगते हैं। सम्बन्धित स्थानीय अधिकारी जानकारी भेजते हैं। कर-निर्धारण करने वाले अधिकारी उन सूचनाओं में अपने लिए आवश्यक राशि को जोड़कर पूर्ण रेट लगाते हैं। रेटों में समय-समय पर परिवर्तन किया जा सकता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहले की शक्ति स्थानीय अधिकारियों को ही प्राप्त है। सबसे पहले वे ही मूल्यांकन करते हैं। संविधान के कारण स्वतन्त्र अनुमोदन अपील की आवश्यकता हो गई है। कर-निर्धारण करने वाले अधिकारी द्वारा किये हुए प्रत्येक मूल्यांकन पर एक निर्धारण समिति (Assessment Committee) की

स्वीकृति आवश्यक होती है। निर्धारण-समिति साधारण व्यक्तियों की समिति होती है यद्यपि कुछ स्वतन्त्र विशेषज्ञ उसको परामर्श देते है। प्रत्येक काउण्टी बॉरो मे निर्धारण समिति प्रस्थापित की गई है। निर्धारण समितियों का कार्य एकरूपता उत्पन्न करना है। १६२४ के कानून के अनुसार स्वास्थ्य मन्त्रालय द्वारा उपस्थित की गई केन्द्रीय मूल्याकन समिति परामर्श देती हैं।

निर्धारण का शोधन करने तथा अपील सुनने वाली कई एजेन्सियाँ है। आरम्भ में क्वार्टर-सेशन के न्यायालय मे अपील की जा सकती है। उसका क्षेत्राधिकार कानूनी प्रश्नो तक ही सीमित नही है। बॉरो के विषय मे 'रिकार्डर' के यहाँ अपील की जा सकती है। कानूनी प्रश्नों पर क्वार्टर-सेशन के निर्णय की अपील उच्च न्यायालयो के डिविजनल न्यायालयो मे की जा सकती है। इसके आगे 'अपील का न्यायालय' है तथा लॉर्ड सभा अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। रेलो, नहरों, बन्दरगाहों, डॉकों (docks) आदि के मूल्याकन के लिए विशेष व्यवस्थाओं को स्थान दिया गया है। 'रेलवे निर्धारण ट्रिब्यूनल' उनका मूल्यांकन करता है। उसके निर्णय की अपीलें रेल, नहर आयुक्तो (Railways and Canals Commissioners) तथा लॉर्ड सभा मे की जा सकती है।

१६२४ के अधिनियम के अनुसार कर-निर्धारण पाँच वर्ष के लिए किया जाता है। १६२४ से पहले जस्टिस ऑफ दी पीस स्थानीय कर की राशि निश्चित करते थे, किन्तु अब इस कर को स्थानीय सस्थाएँ एक संकल्प (resolution) के द्वारा निश्चित करती है। कोई रेट उस समय तक बंध नही होता जब तक निर्धारित नोटिस समय के अन्दर न दिये जाएँ। अधिकतर स्थानीय सस्थाएँ एक वर्ष के लिए कर लगाती है लेकिन कुछ सस्थाएँ ऐसी भी है जो अर्द्धवार्षिक कर भी लगाती हैं। पूरक रेट (Supplementary rates) लगाने के लिए भी व्यवस्था की गई है।

सहायक अनुदान (Grants-in-Aid)—स्थानीय सस्थाओं की आय का एक अन्य स्रोत केन्द्रीय सरकार से प्राप्त होने वाले सहायक अनुदान (Grants-in-aids) है। सबसे पहले अनुदान १८३५ में दिया गया था, किन्तु एक शताब्दी से अधिक की अवधि में अनुदान प्रणाली को अधिक दृढ़ किया गया है। अनुदान प्रणाली के औचित्य को सिद्ध करने के लिए अनेक युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है। यह निर्देश किया जाता है कि केन्द्रीय सरकार पर देशवासियों के कल्याण का दायित्व है, चाहे वे किसी क्षेत्र में रहें। इसी कारण केन्द्रीय सरकार विभिन्न क्षेत्रों को शिक्षा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों के लिए अनुदान देती है। अनेक स्थानीय समितियों की आर्थिक दशा इतनी शोचनीय है कि वे जन-स्वास्थ्य, सार्वजनिक सहायता, गृह-निर्माण, सड़कों आदि के लिए बड़ी-बड़ी राशियाँ खर्च नही कर सकती। यह भी कहा जाता है कि संसद् ने स्थानीय संस्थाओं की आय के कुछ स्रोतो को हस्तगत कर लिया है जिन पर पहले उनका अधिकार था। यद्यपि देश के हित को सर्वोपरि रखकर ही परिवर्तन [illegible] गया है तथापि केन्द्रीय सरकार का कर्तव्य स्थानीय सस्थाओ की क्षति-पूर्ति [illegible] कभी-कभी केन्द्रीय सरकार किसी स्थानीय समिति को किसी विषय [illegible] रखने का आदेश देती है किन्तु वह उसे उस समय तक पूरा नही कर [illegible]

उसे केन्द्रीय सरकार कुछ सहायता न दे। इसके अतिरिक्त, सशर्त अनुदान (conditional grants) प्रणाली स्थानीय संस्थाओं को अपना स्तर ऊँचा उठाने को उत्साहित करती है।

अनुदान दो प्रकार के होते हैं—प्रतिशत अनुदान तथा एकमुश्त अनुदान (Percentage Grants and Block Grants)। प्रतिशत अनुदान के विषय में केन्द्रीय सरकार स्थानीय सस्थाओं को इस शर्त पर अनुदान देने के लिए सहमत हो जाती है कि वे शर्तों को पूरा करे तथा एक निश्चित स्तर रखें। जब केन्द्रीय सरकार का कोई अधिकारी प्रमाणित करता है कि शर्त पूरी की गई है, तब रुपया दिया जाता है। पुलिस के विषय में केन्द्रीय सरकार स्वीकृत राशि का ५० प्रतिशत देती है। शिक्षा अनुदान सम्बन्धित स्थानीय सरकारों की आवश्यकतानुसार ३५ प्रतिशत से ६५ प्रतिशत तक दिया जाता है। सडकों, पुलों, भवनों आदि के लिए भी सहायता दी जाती है।

आलोचक प्रतिशत अनुदान प्रणाली में कई त्रुटियां बताते हैं। यह कहा जाता है कि प्रतिशत अनुदान प्रतिशत व्यय को प्रोत्साहित करता है। क्योंकि पर्याप्त धन बाहर से बिना प्रयत्नो के प्राप्त होता है, इसलिए स्थानीय सरकारें उसे व्यय करने से पूर्व भली प्रकार नही सोचती। यदि स्थानीय अधिकारी स्वयं धन एकत्रित करते तो यह बात न होती। कभी-कभी केन्द्रीय सरकार किसी क्षेत्र की आवश्यकताओं का महत्त्व नही समझती, बस इसी कारण ही स्वीकृत राशि क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपर्याप्त रहती है। प्रतिशत अनुदानों का गरीब स्थानीय संस्थाओं पर बुरा प्रभाव पडता है। धनी स्थानीय सस्थाओ को पर्याप्त सहायता मिलती है तथा गरीबों को कम, क्योंकि अनुदान उस राशि के अनुपात में दिए जाते है जो राशि स्थानीय सस्था स्वय व्यय करती है। अनुदानों का आधार सम्बन्धित स्थानीय प्रशासन की आवश्यकता तथा वित्तीय सामर्थ्य होना चाहिए। किन्तु इस दृष्टि से वर्तमान पद्धति त्रुटिपूर्ण है। इसके अतिरिक्त स्थानीय क्षेत्र की आवश्यकताओं और वित्तीय सामर्थ्य का अनुमान लगाना कठिन है। हाँ, उसका मूल्यांकन अधिक अथवा कम हो सकता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में मूल्यो तथा वेतनों के स्तर भी भिन्न हो सकते हैं। किन्तु "प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार मिलना चाहिए" और "प्रत्येक को उसकी योग्यतानुसार मिलना चाहिए" का सिद्धान्त लागू नही हो सकता।

१९२९ के स्थानीय शासन अधिनियम के द्वारा एकमुश्त अनुदान (Block Grants) प्रणाली अथवा केन्द्रीय अनुदान प्रणाली (Central Exchequer Grant) आरम्भ की गई थी। प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार निश्चित करती है कि कितनी राशि स्थानीय संस्थाओं को अनुदान के रूप मे देनी चाहिए। उस राशि को केन्द्रीय अंशदान (Exchequer Contribution) कहते है। जब केन्द्रीय अंशदान निश्चित हो जाता है, तब उसे विभिन्न काउण्टियों तथा बॉरोओं में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक काउण्टी अथवा बॉरोओं का भाग उसकी जनसंख्या, स्कूल जाने योग्य बच्चों की संख्या, बेकारों की संख्या तथा सडकों की लम्बाई के आधार पर निश्चित किया जाता है। स्पष्टतः उसका भाग उसके दायित्वों के आधार पर निश्चित किया जाता है। ...। परिषद् बॉरो, नगर तथा ग्राम जिलों में राशि का वितरण करती है।

अनुदान का ५० प्रतिशत अपने पास रखकर शेष को जनसंख्या के आधार पर विभाजित कर दिया जाता है। अतिरिक्त तथा पूरक (Supplementary) केन्द्रीय अनुदानों के लिए भी व्यवस्था की गई है।

लाइसेन्स (Licences)—लाइसेन्सों से प्राप्त होने वाली आय अधिक नही है। वह स्थानीय प्रशासन द्वारा किये जाने वाले व्यय का बहुत छोटा भाग है।

व्यापार राजस्व (Trading Revenue)—स्थानीय सरकार की आय का एक भाग उसके द्वारा किए जाने वाले व्यापार से प्राप्त होता है। डा० फाइनर ने इस गतिविधि का उल्लेख अपनी पुस्तक 'नगर-व्यापार' (Municipal Trading) मे किया है। अनेक स्थानीय संस्थाएँ गैस, जल, बिजली, यातायात आदि का प्रबन्ध करती है। स्थानीय सरकारें लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य आरम्भ नही करती। साधारणत. उनका लक्ष्य जनता की सेवा करके उपभोक्ताओं से लागत कीमत (cost price) प्राप्त करना है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि नगरपालिकाएँ लाभ नही प्राप्त कर सकती। वे अपने कार्य की परिस्थिति के अनुसार ऐसा कर सकती हैं। इसका आंशिक कारण एकाधिकार है, जो उनको अपने क्षेत्रों मे प्राप्त है। वे बड़े पैमाने के उत्पादन (large-scale production) के समस्त लाभ उठा सकती है। यदि स्थानीय सरकारें अपने व्यवसायों से कुछ लाभ प्राप्त कर लें तो स्थानीय करो मे कुछ कमी होने से कुछ कष्ट निवारण हो जाता है। यदि कुछ हानि हो जाए तो उसी अनुपात मे स्थानीय करों में वृद्धि हो जाती है। प्रत्येक व्यवसाय को इस प्रकार से चलाने का प्रयत्न किया जाता है कि कही उसका दिवाला न निकल जाए।

यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि यदि व्यावसायिक कार्यों को सफलतापूर्वक तथा लाभकर रूप से चलाना है तो व्यय का पूरा तथा ठीक व्यौरा रखना चाहिए। चालू व्यय के अतिरिक्त पूंजी व्यय का उचित भाग भी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ऋण लेना (Borrowing)—स्थानीय सरकार ऋण लेकर भी अपनी आय बढ़ा सकती है। सच्चे अर्थों में वह राजस्व का अग नही है, किन्तु उसे आय के खाने में रखा जा सकता है। अनेक कारणों से स्थानीय सरकारों को ऋण लेना पड़ता है। कभी-कभी स्थानीय सरकारो को बडे-बड़े निर्माण-कार्यों पर लाखों रुपये व्यय करने पडते हैं और वह राशि किसी भी प्रकार एक वर्ष में एकत्र नहीं की जा सकती। योजना को पूरा होने मे कई वर्ष लग सकते है और उसका लाभ शताब्दियो तक प्राप्त हो सकता है। ये कार्य ऐसे है जैसे भूमि के अन्दर नालियाँ बिछवाना। इसके अतिरिक्त जनता से एक वर्ष मे ही समस्त राशि एकत्र करना वांछनीय नहीं है। वास्तविक स्थिति यह है कि स्थानीय सरकार समस्त राशि ऋण के रूप में प्राप्त कर लेती है और उसकी अदायगी कई वर्षों में कर दी जाती है। यह प्रणाली न्यायसंगत है किन्तु इसमें ऋण लेने की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी एकाएक आने वाली आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ऋण लिया जाता है। किन्तु कभी आने वाले वर्षो मे आय बढ़ाने के उद्देश्य से ऋण लिया जाता है। ऋण को चुकाने के अनेक साधन हैं। इसे अस्वीकार नही किया जा सकता कि ऋण लेना आज के युग की एक अनिवार्य

आवश्यकता है। अतः विशेष कार्यों के लिए ऋण लेने की आज्ञा होनी चाहिए। किन्तु असावधानी से लिया हुआ ऋण अन्त मे जनता के हितों को चोट पहुँचाता है।

इंगलैंड में स्थानीय सरकारों पर केन्द्रीय नियन्त्रण (Central Control over Local authorities in England)—सौ वर्ष पूर्व, इंगलैंड में स्थानीय सरकारों पर लन्दन का बहुत कम नियन्त्रण था। यह सत्य है कि उस समय राष्ट्रीय कानूनों को लागू करना पड़ता था, किन्तु मोटे तौर पर स्थानीय सरकारें अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी प्रकार कर लगा सकती थी और लगाती थी, खर्च करती थीं, उधार लेती थीं, सडकें बनाती थी और इस प्रकार अपना कार्य चलाती थीं। वास्तव में इंगलैंड स्थानीय स्वशासन का घर था। किन्तु आज वह स्थिति नहीं है। केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण बढ़ा है और निरन्तर बढ रहा है। इसका आंशिक कारण केन्द्रीय सरकार की एक न्यूनतम स्तर स्थापित करने की इच्छा हो सकती है और इस इच्छा का कारण स्थानीय सरकारों के कार्यों मे कुशलता और योग्यता (efficiency) को लाना हो सकता है, किन्तु केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण एक वास्तविकता है और इस वास्तविकता को भुलाया नहीं जा सकता।

न्यायिक नियन्त्रण (Judicial Control)—केन्द्रीय नियन्त्रण कई रूप से प्रकट होता है। जहाँ तक न्यायिक नियन्त्रण का सम्बन्ध है, शक्ति बाह्य (ultra vires) का सिद्धान्त यहाँ लागू होता है। स्थानीय अभिकर्ता (agents) अथवा उपकरण (organ) कानून के अनुसार केवल उन शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं, जो कि उनको उन कानूनों द्वारा दी गई है या यों कहे कि जिनके अनुसार उनका निर्माण हुआ, अथवा यों कहें कि जो बाद के कानूनों द्वारा दी गई हैं। यदि कोई स्थानीय अभिकर्ता (agent) अथवा उपकरण उन शक्तियों की सीमा का उल्लंघन करता है तो न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है। वह व्यक्ति जिसे स्थानीय संस्था के सीमोल्लंघन (excessive jurisdiction) से हानि हुई हो न्यायालय में उसके आदेश की वैधता को चुनौती दे सकता है। ऐसा विषय उपस्थित होने पर उसका निर्णय न्यायालय करता है। न्यायालय उस आदेश को वैध अथवा अवैध घोषित कर सकता है। यह बहुत कुछ न्यायाधीश के व्यक्तिगत विचारों पर निर्भर है।

स्थानीय संस्था द्वारा पारित की गयी प्रत्येक उपविधि तर्कसंगत होनी अनिवार्य है और यदि कोई पक्ष उपविधि के कारण पीड़ित हो तो वह उसकी वैधता को चुनौती दे सकता है। अधिकांश अंग्रेज न्यायाधीश उपविधियों के विषय में उनके औचित्य का निर्णय करते समय उदार दृष्टिकोण अपनाते हैं। किसी व्यक्ति ने कहा है, "जब न्यायालयों में प्रचुर शक्तिवाली सार्वजनिक प्रतिनिधि संस्थाओं की उपविधियों को चुनौती दी जाती है और उल्लिखित अवरोधों (checks) तथा परित्राणों (safeguards) से युक्त उस शक्ति का प्रयोग किया गया हो तो उन्हें यथासम्भव समर्थन मिलना चाहिए। जैसा कहा जा चुका है, उसकी व्याख्या लोकहितैषी रूप से करनी चाहिए और इन शक्तियों का प्रयोग करने वालों पर यह भरोसा करना चाहिए कि वे इनका न्यायोचित रीति से प्रयोग करेंगे······। कोई उपविधि केवल इसलिए अवैध नहीं होती कि किसी विशेष न्यायाधीश के विचार में वह समझदारी की

(prudent) उपविधि नहीं है अथवा आवश्यक या अनुकूल नहीं है, क्योंकि वह उन विशेष गुणों अथवा अपवादों से युक्त नहीं है जिनका होना कोई भी न्यायाधीश आवश्यक समझता है। वास्तव में, यदि उपविधियों की वैधता का निर्णय न्यायाधीशों के विचारों के अनुसार किया जाता, तो इस विषय की पुस्तकों में दिए गए उदाहरण कोई मार्ग-दर्शन नहीं करते, क्योंकि, न्यायिक विचारों मे पर्याप्त अन्तर रहता है और वे किसी ऐसे सिद्धान्त अथवा स्तर की स्थापना नहीं करते जिससे तर्कसंगतता अथवा इसके प्रभाव की जाँच की जा सके।"

न्यायिक नियन्त्रण का एक अन्य रूप भी है। स्थानीय संस्थाओं को कुछ आवश्यक कर्त्तव्य पूरे करने पड़ते हैं और यदि ये उनका पालन नहीं करतीं तो न्यायपालिका से आवेदन किया जाता है। न्यायालय द्वारा स्थानीय संस्था पर जुर्माना किया जा सकता है, अथवा कर्तव्य को पूरा करने के लिए वह परमादेश (Writ of Mandamus) का निर्गमन कर सकता है। यदि अन्याय को रोकने के लिए कोई अन्य साधन न हों तो परमादेश देना ही चाहिए।

आलोचकों का मत है कि न्यायिक नियन्त्रण धीमा तथा अति-व्ययी (dilatory and expensive) है। पीड़ित पक्ष निचले न्यायालय मे जीत सकता है और उच्च न्यायालय मे हार सकता है और अन्त में उसे प्रचुर मात्रा मे व्यय भार सहन करना पड़ता है। न्यायिक नियन्त्रण कुछ विषयों मे निष्प्रभावी (ineffective) भी हो सकता है।

प्रशासकीय नियन्त्रण (Administrative Control)—इंगलैंड मे स्थानीय संस्थाओं पर प्रशासकीय नियन्त्रण एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक घटना है। प्रशासकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत सरकार का कोई-न-कोई कार्यकारी विभाग निरीक्षण तथा मार्ग-दर्शन करता है। प्रशासकीय नियन्त्रण करने वाले विभागों के नाम इस प्रकार हैं—स्वास्थ्य मन्त्रालय जो १९१९ में स्थानीय शासन बोर्ड (Local Government Board) के स्थान पर स्थापित हुआ है, वित्त मन्त्रालय, व्यापार मन्त्रालय, शिक्षा बोर्ड, गृह-विभाग, पेंशन मन्त्रालय (Ministry of Pensions), कृषि मन्त्रालय, यातायात मन्त्रालय, श्रम मन्त्रालय, डाक-विभाग, सार्वजनिक भवन तथा निर्माण विभाग, तथा बिजली कमिश्नर। विभागीय नियन्त्रण विस्तृत तथा सर्वव्यापक हो गया है। कुछ नियुक्तियाँ करने से पूर्व केन्द्रीय सरकार से अनुमति प्राप्त की जाती है। कुछ विषयों मे पदच्युत करने के लिए भी स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। अनेक विषयों में स्वास्थ्य मन्त्रालय को उन कार्यों को पूरा कराने के लिए कोई अन्य एजेन्सी नियुक्त करने का अधिकार है, जिनको पूरा करने में स्थानीय संस्था असफल रहती है। कुछ कानून कुछ मन्त्रालयों को 'सपरिषद् आदेशों' (Orders-in-Council) के द्वारा संक्षिप्त विधेयक (skeleton bills) की विस्तृत बातें निश्चित करने की शक्ति प्रदान करते हैं। स्थानीय संस्थाओं की उपविधियों का स्वास्थ्य मन्त्रालय, गृह मन्त्रालय अथवा किसी विभाग के प्रमुख मन्त्री द्वारा स्वीकृत होना अनिवार्य है। केन्द्रीय सरकार आदर्श उपविधि बना सकती है और स्थानीय सरकारों से उनको स्वीकृत करने की सिफारिश कर सकती हैं।

नियन्त्रण का एक अन्य रूप केन्द्रीय प्रशासन द्वारा स्थानीय सेवाओं का निरीक्षण करना है। यदि किसी मन्त्री को बुद्धिमत्ता से कार्य करना हो तो उसे प्रत्येक सूचना का ज्ञान होना चाहिए। इस दिशा में निरीक्षकों द्वारा प्रत्येक प्रकार की ठीक सूचना प्राप्त हो सकती है। पहले गरीब कानून (Poor Law) के प्रशासन का निरीक्षण किया जाता था लेकिन आजकल इसका प्रमुख प्रयोग शिक्षा तथा पुलिस विभाग के लिए किया जाता है। इसके साथ ही अनुदान प्रणाली भी सम्बद्ध है। सरकार के शिक्षा निरीक्षक तथा पुलिस निरीक्षक ही यह निर्णय करते हैं कि स्थानीय संस्थाएँ सेवाओं के निर्धारित मान का प्रतिपालन (maintain) करती हैं या नहीं। निरीक्षक पूर्ण समय के वैतनिक कर्मचारी होते हैं। कुछ निरीक्षक स्थानीय संस्थाओं का नियमित रूप से निरीक्षण करते हैं और कुछ विशेष अनुसंधानात्मक (special investigation) कार्य में सम्बद्ध होते हैं। १९३३ के स्थानीय शासन अधिनियम में कई धाराओं में जाँच करने का वर्णन किया गया है। जाँच-व्यय सम्बन्धित सरकार को वहन करना पड़ता है।

प्रशासकीय नियन्त्रण परामर्श के रूप में भी प्रयुक्त होता है। केन्द्रीय सरकार समय-समय पर स्थानीय विभागों अथवा बोर्डों को अनेक परिपत्र (circulars) प्रेषित करती है। केन्द्रीय सरकार ने अनेकों परामर्शदात्री संस्थाएँ स्थापित की हैं, और वे बहुत-सी सूचनाएँ एकत्रित करती है जो स्थानीय सरकारों के लिए लाभप्रद होती हैं। निरीक्षक भी परामर्श देते हैं। स्थानीय सरकार के अधिकारी तथा उपकरण आसानी से इस परामर्श की उपेक्षा नहीं करते।

प्रशासकीय नियन्त्रण के अनेक रूप वित्त (finance) से सम्बद्ध होते हैं। वास्तव में, सब प्रकार के नियन्त्रण के पीछे अन्तिम शक्ति पैसा है। सरकार को सहायता देने अथवा रोकने की शक्ति प्राप्त है। जब तक संसद् कोई विशेष शक्ति नहीं देती, तब तक समस्त स्थानीय ऋणों के पीछे केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति होनी आवश्यक है। प्रायः समस्त विषयों में, स्थानीय सरकार के लेखे का निरीक्षण निर्धारित समय पर केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। निरीक्षण का मुख्य उद्देश्य बेईमानी तथा धन को अवैध रूप में व्यय करने की जाँच करना है। जिला आडिटर (District Auditors) अवैध व्यय को अस्वीकृत कर सकते हैं तथा व्यय करने वाले उत्तरदायी व्यक्तियों से वह वसूल कर सकते हैं। वे उन व्यक्तियों से भी सरचार्ज के रूप में धन एकत्रित कर सकते हैं, जिनकी असावधानी (negligence) के कारण स्थानीय सरकार को हानि हुई हो। उच्च न्यायालयों को अपील में सरचार्ज को रद्द करने का अधिकार प्राप्त है और स्वास्थ्य मन्त्री को व्यक्तिगत दायित्व के दण्ड के विरुद्ध कुछ छूट देने की शक्तियाँ (disposing powers) होती हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बोर्डों के उन लेखे की पड़ताल नहीं की जाती जिनके लिए सरकार ने सहायता न दी हो।

१९४४ के शिक्षा अधिनियम तथा १९४५ के जल अधिनियम से सम्बन्धित मन्त्रियों के नियन्त्रण की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि [illegible]। पहले, मन्त्री उद्योगी होने पर निष्क्रिय रहते थे। [illegible] मान था जिस प्रकार

न्यायालय केवल प्रार्थना-पत्र उपस्थित होने पर ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता है। किन्तु उक्त दोनों अधिनियमों के अन्तर्गत मन्त्री इन कानूनों में निर्धारित किए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं प्रेरणा एवं स्फूर्ति से कार्य कर सकते है। वे कार्य करने के लिए कह सकते हैं। वे स्थानीय सरकारों को सुझाव देने में प्रेरक हो सकते हैं। अधिनियमों ने इतिहास में प्रथम बार मन्त्रियों को अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित करने की शक्ति तथा साधन प्रदान किए हैं।

नियन्त्रण का एक अन्य रूप यह है कि बड़ी-बड़ी राशियाँ व्यय करने से पूर्व तथा निर्माण कार्यों के लिए नए ऋण लेने के प्रस्ताव से सम्बन्धित मन्त्री की स्वीकृति लेनी आवश्यक है। ऋण लेने की अनुमति के लिए अनुरोध करते समय निर्माण कार्य के आनुमानिक व्यय के प्रस्ताव के साथ ही प्रस्ताव की आवश्यकता तथा वाछनीयता को प्रकट करने वाले तथ्य तथा युक्तियाँ (facts and arguments) इकट्ठी की जाती हैं। मन्त्री प्रार्थना-पत्र पर अपना निर्णय गुण-दोष की परीक्षा करने के पश्चात् देता है। प्रस्ताव तैयार करने का कार्य स्थानीय सरकारें करती हैं किन्तु उनकी जाँच का कार्य केन्द्रीय सरकार के विभाग करते है। प्रस्तावों की टैकनिकल बातों पर मन्त्री को परामर्श देने के लिए केन्द्रीय सरकार अनेक विशेषज्ञों को नियुक्त करती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि अन्त मे, स्थानीय सरकारों को स्वतन्त्र जाँच (independent scrutiny) से लाभ होता है।

विधायी नियन्त्रण (Legislative Control)—ससदीय नियन्त्रण मौलिक तथा दूरगामी होता है। ससद् स्थानीय सरकारों की शक्तियाँ तथा कार्य निर्धारित करती है। स्थानीय संस्थाएँ किसी अन्य स्रोत से शक्तियाँ प्राप्त नही कर सकती। इंगलैंड की स्थानीय संस्थाएँ ससद् द्वारा प्रदत्त प्राधिकारों का ही प्रयोग कर सकती हैं, उनसे अधिक का नही। कभी-कभी स्थानीय सस्थाओं को उस ससदीय कानून के द्वारा अधिकार प्रदान किए जाते हैं, जिसके द्वारा वे स्थापित की जाती है, लेकिन अधिकतर वे उन कानूनों द्वारा दिए जाते है, जिनमे समय-समय पर सरकारी नीति का समावेश किया जाता है और स्थानीय संस्थाओं को—उनको कार्यरूप देने वाली एजेन्सियों के नाते वे प्राधिकार समर्पित कर दिए जाते है। अधिकृत करने का कार्य वैकल्पिक शक्ति (optional power) या अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप मे हो सकता है। वह (शक्ति) सार्वजनिक सामान्य अधिनियम (Public General Act) अथवा स्थानीय असार्वजनिक अधिनियम (Local Private Act) के द्वारा प्रदान की जा सकती है। मन्त्रीय आदेश (Ministerial Order) अथवा किसी अन्य प्रकार के सहायक विधान द्वारा अलग-अलग संस्थाओं को शक्तियाँ अथवा कर्त्तव्य प्रदान किए जा सकते हैं।

बहुत कम लोगों का विचार होगा कि केन्द्रीय सरकार को स्थानीय सरकारों पर नियन्त्रण की कोई शक्ति नही होनी चाहिए। केन्द्रीय विभाग स्थानीय पक्षपात से मुक्त होते है। उनका अनुभव विस्तृत एव व्यापक होता है और प्राविधिक विषयों (technical matters) मे उनको सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञों की सेवाएँ उपलब्ध रहती हैं। इन कारणों से यह वांछनीय है कि केन्द्रीय विभाग प्रयोग करने के लिए पर्याप्त शक्ति

अध्याय ६

ब्रिटेन तथा डोमीनियन

(Great Britain and Dominions)

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में अंग्रेज एक बड़ा औपनिवेशिक साम्राज्य (Colonial Empire) स्थापित करने में समर्थ हुए थे। किन्तु उपनिवेश-स्थापन प्रणाली का प्रयोग उपनिवेशों के हितों की अपेक्षा इंगलैंड के स्वार्थ-साधन के लिए ही अधिक किया गया था। निस्सदेह उपनिवेशों ने अपने पर 'नैविगेशन' कानूनों तथा इंगलैंड द्वारा लगाये गए अन्य प्रतिबन्धों का विरोध किया। परिणामस्वरूप अमेरिका का स्वतन्त्रता-युद्ध (War of Independence) हुआ और अन्त में १३ उपनिवेश हाथ से जाते रहे। ऐसा होने पर भी, प्राचीन उपनिवेशी व्यवस्था १८३९ तक चलती रही जबकि लार्ड डरहम की सिफारिशों के अनुसार आधारभूत परिवर्तन (fundamental change) किया गया।

लार्ड डरहम को १८३८ में उत्तरी अमरीकन प्रान्तों का महाराज्यपाल (Governor-General) नियुक्त किया गया था। उसे कनाडा मे प्रचलित दशाओं का अनुसंधान करने के लिए विशेष अधिकार दिए गए थे। उसके कार्यों की ब्रिटिश ससद् में प्रवल आलोचना की गई थी। उस मन्त्रालय ने उसका निष्ठा से समर्थन नही किया जिसने उसे वहाँ भेजा था। वह अपमानित तथा तिरस्कृत होकर इंगलैंड लौटा और इंगलैंड की व्यक्तिगत (personal) तथा दलगत राजनीति का शिकार बन गया। उसने अपने "जीवन (career) को नष्ट किया, लेकिन राष्ट्र को बनाया।" इंगलैंड लौट कर उसने अपना प्रसिद्ध प्रतिवेदन ससद् मे प्रस्तुत किया। उस प्रतिवेदन के कारण वह ब्रिटिश इतिहास का सबसे योग्य औपनिवेशिक राजनीतिज्ञ माना जा सकता है। १८३९ में साम्राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान प्रतिवेदन की ओर आकर्षित हुआ। उसकी वे बातें आज भी वैसी ही प्रभावजनक और ताजा है। डरहम-प्रतिवेदन मे कनाडा की दशा का पूरा वर्णन था। इसमें औपनिवेशिक नीति में व्यापक परिवर्तनों की सिफारिश की गई थी। छ. प्रान्तों के इतिहास की समीक्षा करके लार्ड डरहम ने उद्घोषित किया कि, "इन समस्त उपनिवेशों में सरकार की स्वाभाविक दशा कार्यपालिका तथा प्रतिनिधि संस्था के मध्य संघर्ष की है।" उसने बताया कि सरकार अनुत्तरदायी है, और पूछा कि अंग्रेज अपने देश में उस मन्त्रिमण्डल को कितने दिन सहन करेंगे जिसे लोक सभा के बहुमत दल का समर्थन प्राप्त नही है। उसने घोषित किया कि "यह समझना कठिन है कि किस प्रकार कोई अंग्रेज राजनीतिज्ञ यह कल्पना कर सका कि प्रतिनिधि शासन तथा अनुत्तरदायी शासन सफलतापूर्वक संयुक्त किए जा सकते हैं।" उसने यह भी घोषित किया कि कनाडा की अवस्था उस प्रणाली का अनिवार्य परिणाम है, जिसने व्यवस्थापिका की अनिर्वाचित शाखा को चुनी हुई संस्था के आवश्यक विशेषाधिकार दे दिये। लोअर कनाडा की धारा सभा

सुरक्षित रखें और आवश्यकतानुसार उसका प्रयोग करें। साधारणतः उनको स्थानीय प्राधिकारियों को सहायता तथा परामर्श देने के लिए सदैव उद्यत रहना चाहिए। वे उनको अपनी शक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें ताकि जनता का भला हो।

हम एक महान् लेखक के शब्दों के साथ इस विषय का उपसंहार कर सकते हैं : "यदि हम यह ध्यान रखें कि इंगलैंड में ऐसा केन्द्रीय नियन्त्रण लगातार नहीं रहता, और यह तथ्य (fact) याद रखें कि स्थानीय सरकार उन साधनों को निश्चित करने के लिए स्वतन्त्र है जिनके द्वारा उनके सार्वजनिक कार्य तथा कर्त्तव्य पूरे हो सकें, और इच्छानुसार श्रेष्ठ प्रकार के संगठन का निर्माण कर सकती है, तो स्थानीय स्वशासन का क्षेत्र वास्तव में पर्याप्त विस्तृत और अन्य देशों की अपेक्षा सम्भवतः अधिक विस्तृत दिखाई देता है।"

Suggested Readings

Clarke, J. J. : Outlines of Local Government, 1949.
Cole, G. D. H. : Local Government and Regional Government.
Finer, H. : English Local Government.
Hadfield and MacColl : British Local Government, 1948.
Jackson, W. E. : Local Government in England and Wales, 1949.
Maud, J. P. R. : Local Government in Modern England.
Robson, W. A. : The Development of Local Government.
Warren, J. H. : The English Local Government System, 1953.
Warren, J. H. : Municipal Administration.

अध्याय ६

ब्रिटेन तथा डोमीनियन

(Great Britain and Dominions)

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दियों में अंग्रेज एक बड़ा औपनिवेशिक साम्राज्य (Colonial Empire) स्थापित करने में समर्थ हुए थे। किन्तु उपनिवेश-स्थापन प्रणाली का प्रयोग उपनिवेशों के हितों की अपेक्षा इंगलैंड के स्वार्थ-साधन के लिए ही अधिक किया गया था। निस्सदेह उपनिवेशों ने अपने पर 'नैविगेशन' कानूनों तथा इंगलैंड द्वारा लगाये गए अन्य प्रतिबन्धों का विरोध किया। परिणामस्वरूप अमेरिका का स्वतन्त्रता-युद्ध (War of Independence) हुआ और अन्त में १३ उपनिवेश हाथ से जाते रहे। ऐसा होने पर भी, प्राचीन औपनिवेशी व्यवस्था १८३६ तक चलती रही जबकि लार्ड डरहम की सिफारिशों के अनुसार आधारभूत परिवर्तन (fundamental change) किया गया।

लार्ड डरहम को १८३८ में उत्तरी अमरीकन प्रान्तों का महाराज्यपाल (Governor-General) नियुक्त किया गया था। उसे कनाडा में प्रचलित दशाओं का अनुसंधान करने के लिए विशेष अधिकार दिए गए थे। उसके कार्यों की ब्रिटिश संसद् में प्रबल आलोचना की गई थी। उस मन्त्रालय ने उसका निष्ठा से समर्थन नहीं किया जिसने उसे वहाँ भेजा था। वह अपमानित तथा तिरस्कृत होकर इंगलैंड लौटा और इंगलैंड की व्यक्तिगत (personal) तथा दलगत राजनीति का शिकार बन गया। उसने अपने "जीवन (career) को नष्ट किया, लेकिन राष्ट्र को बनाया।" इंगलैंड लौट कर उसने अपना प्रसिद्ध प्रतिवेदन संसद् में प्रस्तुत किया। उस प्रतिवेदन के कारण वह ब्रिटिश इतिहास का सबसे योग्य औपनिवेशिक राजनीतिज्ञ माना जा सकता है। १८३९ में साम्राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान प्रतिवेदन की ओर आकर्षित हुआ। उसकी वे बातें आज भी वैसी ही प्रभावजनक और ताज़ा है। डरहम-प्रतिवेदन में कनाडा की दशा का पूरा वर्णन था। इसमें औपनिवेशिक नीति में व्यापक परिवर्तनों की सिफारिश की गई थी। छः प्रान्तों के इतिहास की समीक्षा करके लार्ड डरहम ने उद्घोषित किया कि, "इन समस्त उपनिवेशों में सरकार की स्वाभाविक दशा कार्यपालिका तथा प्रतिनिधि संस्था के मध्य संघर्ष की है।" उसने बताया कि सरकार अनुत्तरदायी है, और पूछा कि अंग्रेज अपने देश में उस मन्त्रिमण्डल को कितने दिन सहन करेंगे जिसे लोक सभा के बहुमत दल का समर्थन प्राप्त नहीं है। उसने घोषित किया कि "यह समझना कठिन है कि किस प्रकार कोई अंग्रेज राजनीतिज्ञ यह कल्पना कर सका कि प्रतिनिधि शासन तथा अनुत्तरदायी शासन सफलतापूर्वक संयुक्त किए जा सकते है।" उसने यह भी घोषित किया कि कनाडा की अवस्था उस प्रणाली का अनिवार्य परिणाम है, जिसने व्यवस्थापिका की अनिर्वाचित शाखा को चुनी हुई संस्था के आवश्यक विशेषाधिकार दे दिये। लोअर कनाडा की धारा सभा

कार्यपालिका से उन शक्तियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से अन्याय रूप से संघर्ष कर रही थी, जो प्रतिनिधि सरकार की प्रकृति के कारण प्रतिनिधि संस्था को स्वभावतः प्राप्त हो जाती हैं।"

फॉक्स ने कहा था कि, "दूरस्थ उपनिवेशों को लाभ सहित अधिकार में रखने का एक मात्र उपाय उनको स्वशासन के योग्य बनाना है।" बिलकुल यही प्रस्ताव लार्ड डरहम ने भी किया था। उसने लोकप्रिय सदन के प्रति मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व जारी करने की सिफारिश की थी। "क्राउन को उन व्यक्तियों के द्वारा सरकार चलाने के लिए सहमत होना चाहिए, जिनमें प्रतिनिधि सदस्य विश्वास प्रकट करें।" "अब हमें उत्तरी अमेरिका के प्रान्तों में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना के विषय में नहीं सोचना है क्योंकि वह स्थिर रूप से स्थापित कर दी गई है। क्राउन को उन व्यक्तियों के द्वारा सरकार चलाने की आज्ञा देनी चाहिए जिनमें प्रतिनिधि संस्था विश्वास करती है। राज्यपाल तथा सचिव के अतिरिक्त अन्य समस्त सरकारी कर्मचारियों को संयुक्त प्रतिनिधि संस्था (United Legislature) के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए आंग्ल संविधान के प्रत्येक सम्भव उपाय का प्रयोग किया जाना चाहिए। राज्यपाल को आदेश दिया जाना चाहिए कि वह सरकार का कार्य उन विभागीय अध्यक्षों के द्वारा चलाए जो प्रतिनिधि संस्था के विश्वास-पात्र हो, और उसे धारा सभा के साथ होने वाले किसी भी संघर्ष में उसके समर्थन की आशा नहीं करनी चाहिए, सिवाय उस समय के जबकि उससे सचमुच साम्राज्य के हितों को चोट पहुँचती हो।" लार्ड डरहम की जीवनी के लेखक के अनुसार, "अब यह बात स्वत:सिद्ध लगती है, पर किसी उत्तरदायी राजनीतिज्ञ द्वारा उपनिवेशों में स्वशासन के सिद्धान्त को यह प्रथम बार मान्यता दी गई थी।"

डरहम-प्रतिवेदन को "उपनिवेशों का मैग्ना कार्टा" "अंग्रेजी भाषा में औपनिवेशिक नीति पर सबसे अधिक मूल्यवान लेख्य (document)" तथा विश्व के समस्त भागों में औपनिवेशिक स्वतन्त्रता के समर्थकों के लिए मूल पुस्तक कहा गया है। यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवेदन ने "इंगलैंड की औपनिवेशिक नीति के सम्बन्ध में रचनात्मक राजनीति की रूप-रेखा को, सदैव के लिए विस्तृत कर दिया है।" डरहम रिपोर्ट के सम्बन्ध में वेलिंगटन ने कहा था कि "इसने कनाडा से लेकर वैस्ट इंडीज तथा दक्षिणी अफ्रीका होकर आस्ट्रेलिया तक का चक्कर लगाया और प्रत्येक स्थान पर उसका जय-जयकार के साथ स्वागत किया गया है।"

लार्ड डरहम अमेरिका के समस्त उपनिवेशों के संघानीय संघ (Federal Union) में विश्वास करते थे। किन्तु उन्होंने उस आदर्श को असामयिक (premature) कहा और इस प्रकार से उन्होंने अपर कनाडा तथा लोअर कनाडा का एक संयुक्त उपनिवेश बनाकर सरकार द्वारा शासित करने की सिफारिश की। इससे संयुक्त उपनिवेश (United Colony) में अंग्रेजों को बहुमत प्राप्त हुआ।

यह सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने डरहम-प्रतिवेदन की सिफारिशों को पूरी तरह स्वीकृत किया, लेकिन उन पर उसी समय कोई पग नहीं उठाया। किन्तु १८४० अधिनियम ने अपर कनाडा तथा लोअर कनाडा को एक सरकार के अधीन संयुक्त

किया। धारा सभा को पहले से अधिक शक्तियाँ प्रदान की गईं। मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को अगले कुछ वर्षों तक लागू नहीं किया गया। १८४७ में लार्ड डरहम के दामाद तथा कनाडा के महाराज्यपाल लार्ड एलगिन के काल मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया। उसने फ्रेंच दल के उन सदस्यों को कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council) का सदस्य नियुक्त किया, जिनका धारा सभा में बहुमत था। यह कनाडा के अंग्रेजों को बहुत अप्रिय लगा। इससे एक विद्रोह हुआ जिसमें भीड ने महाराज्यपाल की गाड़ी पर आक्रमण किया और ससद्-भवन मे आग लगा दी। किन्तु लार्ड एलगिन अपने विचारों पर दृढ़ रहा और इस प्रकार से मन्त्रि-मण्डलीय उत्तरदायित्व को स्थापित किया गया और आज तक उसका पालन हो रहा है। कनाडा निवासियों को ब्रिटिश सरकार के द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप अथवा रुकावट के बिना, स्वतन्त्र रूप से स्वशासन की आज्ञा दी गई। सन् १८६५ मे उनको अपना सविधान बनाने की आज्ञा दी गई और उसको १८६७ के ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम के रूप मे स्वीकार कर लिया गया।

डरहम प्रतिवेदन के सिद्धान्तों को अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों मे भी लागू किया गया। १८४८ में नोवा स्कोशिया तथा न्यूब्रन्सविक, १८५१ में प्रिन्स एडवर्ड द्वीप, *१८५४ में न्यूजीलेंड, १८५५ व १८५८ के मध्य न्यू साउथवेल्स, विक्टोरिया, तसमानिया,* दक्षिणी आस्ट्रेलिया और न्यू फाउण्डलेंड, १८५९ में क्वीन्जलेंड, १८७१ में ब्रिटिश कोलम्बिया, १८७२ में केप कॉलोनी, १८९० में पश्चिमी आस्ट्रेलिया, १८९३ में नेटाल, १९०६ मे ट्रान्सवाल उपनिवेश, और १९०७ मे ऑरेन्ज रिवर कॉलोनी में उत्तरदायी सरकारें स्थापित की गई।

इस प्रकार डरहम प्रतिवेदन ब्रिटिश सरकार की नई उपनिवेश-नीति का आधार बना। पहले इंगलैंड उपनिवेशों पर अधिक नियन्त्रण रखता था और उपनिवेश उसका घोर विरोध करते थे। अमेरिकी उपनिवेशो के हाथ से निकल जाने का अशतः यही कारण था। नई औपनिवेशिक नीति उपनिवेशो की स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्व के सिद्धान्तो पर आधारित थी। इस नीति के अन्तर्गत ही उपनिवेशों को विदेश से सम्बन्ध निश्चित करने और अन्य देशों से सन्धि करने की आज्ञा दी गई। *उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे साम्राज्य सम्मेलनो (Imperial Conferences)* को आरम्भ किया गया जिनमे उपनिवेशों के प्रतिनिधि आमन्त्रित किए जाते थे। ये सम्मेलन विभिन्न अवसरों पर हुआ करते थे। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हुआ, उपनिवेशों के साथ समानता का व्यवहार किया जाने लगा। परिणाम यह हुआ कि प्रथम विश्व-युद्ध में जनरल स्मट्स को उपनिवेशों के प्रतिनिधि के रूप मे युद्ध-मन्त्री (War Minister) बनाया गया। युद्ध की समाप्ति पर इन उपनिवेशों को अलग-अलग वर्साई-संधि (Treaty of Versailles) पर हस्ताक्षर करने की स्वतन्त्रता थी। उनको लीग ऑफ नेशन्ज में स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व दिया गया। १९२६ में बैलफोर ने डोमीनियनों की प्रसिद्ध परिभाषा में उनको स्वशासित राष्ट्र की संज्ञा दी जो प्रत्येक विचार से स्वतन्त्र थे और किसी भी रूप में ब्रिटिश क्राउन के अधीन नहीं थे। १९३१ के वेस्टमिन्स्टर परिनियम (The Statute of Westminster) के द्वारा केवल उन

स्थिति को वैधानिक रूप दिया गया जिसे उपनिवेशों ने निरूढ़ियों के द्वारा प्राप्त कर लिया था। वैस्टमिन्स्टर परिनियम इंगलैंड तथा डोमीनियनों के सम्बन्धों को निश्चित करने वाली महत्त्वपूर्ण घटना है। उसमें प्रस्तावना के अतिरिक्त १२ खण्ड (clauses) हैं। प्रस्तावना (preamble) में इंगलैंड के सम्बन्ध में डोमीनियनों की सांवैधानिक स्थिति का निरूपण किया गया है। उसके अनुसार, क्राउन ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के स्वतन्त्र साहचर्य (free association) की एकता का प्रतीक है। इसमें यह भी निश्चय किया गया है कि यदि सिंहासन के उत्तराधिकार या राजकीय अभिधान (royal style) और उपाधियों में परिवर्तन करना वांछनीय हो तो उसके लिए ग्रेट ब्रिटेन की ससद् की स्वीकृति के साथ ही डोमीनियनों की धारा सभाओं की सहमति भी, किसी प्रकार के पग के उठाने से पूर्व, प्राप्त करनी होगी।

धारा १ घोषित करती है कि १८६५ का उपनिवेश कानून मान्यता अधिनियम (Colonial Laws Validity Act) परिनियम के आरम्भ के पश्चात् डोमीनियन संसद् के किसी कानून पर लागू नही होगा। इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि डोमीनियनो की स्वतन्त्रता पर जो कुछ प्रतिबन्ध शेष थे वे हटा लिए गए। धारा ३ डोमीनियन-ससद् को विदेशी विषयो पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान करती है। वह इस तथ्य का निरूपण करती है कि डोमीनियन केवल आन्तरिक विषयों से सम्बन्धित कानून ही नही बना सकते, प्रत्युत् राज्यक्षेत्रातीत (extra-territorial) प्रभाव रखने वाले कानून भी बना सकते हैं। ब्रिटिश ससद् को इस क्षेत्र में भी उनके लिए कानून बनाने का अधिकार नही है।

धारा ५ और ६ केवल व्याख्यात्मक (explanatory) है धारा ७, ८ और ६ का विशेष सावंधानिक महत्त्व (constitutional importance) है, क्योंकि उनमें कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के सम्बन्ध में इंगलैंड के नियन्त्रण की सीमा को निश्चित एव लिखित रूप दिया गया है। धारा ८ के अनुसार, ब्रिटिश संसद् कनाडा के सविधान मे परिवर्तन कर सकती है। धारा ६ में व्यवस्था की गई है कि आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड के सविधानो की संशोधन विधि मे कोई परिवर्तन नही किया जाएगा। यदि ब्रिटिश ससद् आस्ट्रेलिया के राज्यों (States of Australia) के सम्बन्ध मे कोई कानून पारित करे तो आस्ट्रेलिया की सरकार या वहा की ससद् की स्वीकृति आवश्यक नही होगी। अन्य धाराएँ विशेष महत्त्व की नही हैं।

१६३१ के पश्चात् (After 1931)—वैस्टमिन्स्टर परिनियम के पश्चात् डोमीनियनों ने और अधिक प्रगति की। १६३३ मे आयरलैंड ने शपथ अपहरण अधिनियम (Removal of Oath Act) पारित किया और अंग्रेजी राजा के प्रति राजभक्ति की शपथ (oath of allegiance) को त्याग दिया गया। इसी प्रकार समस्त सरकारी पत्रों में राजा का निर्देश समाप्त कर दिया गया। सिक्को तथा टिकटो (stamps) से राजा के चित्र हटा दिए गए। १६३४ के यूनियन अधिनियम ने निश्चित किया कि दक्षिणी अफ्रीका की यूनियन की संसद् को यूनियन के विषय मे सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न विधायी शक्ति (sovereign legislative power) प्राप्त

होगी। ब्रिटिश संसद् का कोई कानून यूनियन पर लागू नहीं होगा सिवाय उस समय के जबकि यूनियन का कानून उसे वैध घोषित करे।

मूर बनाम आयरलैंड के महान्यायवादी के अभियोग मे, प्रिवी कौंसिल ने आयरलैंड के सुप्रीम न्यायालय के निर्णय की प्रिवी कौंसिल मे अपील करने के अधिकार का उन्मूलन (abolition) करने की स्वीकृति दी। ब्रिटिश कोल कार्पोरेशन बनाम राजा मे अभियोग के निर्णय में कनाडा की ससद् द्वारा फौजदारी अभियोगों की प्रिवी कौंसिल मे अपील करने के अधिकार की समाप्ति को वैध बताया गया। १६३४ के यूनियन अधिनियम के अनुसार, विदेशी सम्बन्धों के सम्बन्ध में राजा के प्राधिकारों का प्रयोग महाराज्यपाल कर सकता है। कीथ (Keith) के अनुसार, "डोमीनियन ससद्, कानूनी रूप मे, अपने अधिकार-क्षेत्र मे आने वाले समस्त विषयों के सम्बन्ध मे राजा के समस्त परमाधिकारो का प्रयोग कर सकती है।" इसी प्रकार यूनियन ससद्, द्वारा अधिकृत किए जाने पर, महाराज्यपाल विदेशी विषयो मे राजा के परमाधिकारों का प्रयोग कर सकता है। क्योंकि महाराज्यपाल राजा के परमाधिकारों का प्रयोग कर सकता है, इसलिए वह ब्रिटिश युद्ध मे तटस्थ नीति की घोषणा कर सकता है। दिसम्बर १६३७ मे आयरलैंड के नए सविधान के लागू होने के पश्चात् उसकी तटस्थता पर कानून की दृष्टि से कोई शंका नहीं की जा सकती। वास्तविक युद्ध आरम्भ होते ही सब की आँखें खुल गईं। २ सितम्बर, १६३६ के दिन, अर्थात् जिस दिन ब्रिटेन ने युद्ध की घोषणा की, उससे पिछले दिन, आयरलैंड की लोकसभा तथा सीनेट दो संकटकालीन कानून बनाने के लिए आमन्त्रित की गई थी। एक कानून के द्वारा घोषित किया गया कि सकट-काल उपस्थित है, यद्यपि आयरलैंड, वास्तव में, युद्ध में नही कूदा था। दूसरे कानून के द्वारा सरकार को जनता तथा राज्य की सुरक्षा के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करने की शक्ति प्रदान की गई थी। दिसम्बर १६३६ मे डी वेलरा ने अपनी तटस्थ नीति (neutrality) की घोषणा की। आपने यह स्पष्ट किया कि हमारी तटस्थता की घोषणा से आश्चर्य नही होना चाहिए क्योंकि हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि हम योरुपीय युद्ध के छिड़ने पर आयरलैंड को युद्ध से बाहर रखेंगे। फीइन गेल (Fien Gael) दल के उपनेता ने भी इसी प्रकार का वक्तव्य दिया।

कनाडा ने १० दिसम्बर, १६३६ को युद्ध-घोषणा की। डोमीनियन सरकार ससद् के विशेष अधिवेशन में समस्त विषयों पर "अपनी पृथक् राष्ट्रीय स्थिति तथा डोमीनियन के स्वतन्त्र निर्णय के महत्त्व को स्थापित करने के उद्देश्य से" पूर्ण विचार करना चाहती थी। जब कनाडा ने युद्ध-घोषणा की तब क्यूबैक के प्रधान मन्त्री ने इस कार्य की बुद्धिमत्ता पर सन्देह किया। दक्षिणी अफ्रीका में जनरल हर्टज़ोग (General Hertzog) संयुक्त दल का नेता तथा प्रधान मन्त्री था। उसने ३ सितम्बर, १६३६ को मन्त्रिमण्डल को बताया कि उसने तटस्थता की नीति के पक्ष में निर्णय किया है। इसके परिणामस्वरूप मन्त्रिमण्डल में फूट पड़ गई। स्मट्स ने तटस्थता के प्रस्ताव में संशोधन रखा और संशोधन ६७ के विरुद्ध ८० मतों से स्वीकृत कर लिया गया। हर्टज़ोग के मन्त्रिमण्डल का पतन हुआ और स्मट्स को नया मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए आमन्त्रित किया गया। स्मट्स ने प्रधान मन्त्री बनते ही युद्ध-घोषणा

की। किन्तु मतदान की संख्याओं ने तटस्थता की प्रबल भावना को प्रकट किया। स्वयं स्मट्स ने भी अपना कथन यह कह कर समाप्त किया था कि "सरकार को अपनी सेनाएँ प्रथम विश्वयुद्ध के समान समुद्र-पार नहीं भेजनी चाहिएँ।" १६४० में डॉ० मलान (Dr. Malan) तथा हर्टजोग ने घोषित किया कि दक्षिणी अफ्रीका को गणराज्य बनाना चाहिए ताकि भविष्य में वह इंगलैंड के युद्धों में न घसीटा जा सके।"

आयरलैंड की तटस्थता ने उसे कुछ कठिनाई में डाल दिया। बर्लिन में आयरलैंड के दूत का स्थान युद्ध आरम्भ होने पर रिक्त हुआ। यद्यपि नई नियुक्ति की गई थी तो भी ब्रिटिश राजा से परिचय पत्र (Letter of Credence) प्राप्त होना असम्भव हो गया।

१६३६ में एडवर्ड अष्टम के गद्दी त्याग सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। वैस्टमिन्स्टर की प्रस्तावना के अनुसार, इंगलैंड के उत्तराधिकार कानून में डोमीनियनों की धारा सभाओं की स्वीकृति के बिना कोई संशोधन नहीं किया जा सकता। बाल्डविन (Baldwin) ने २८ नवम्बर, १६३६ को डोमीनियनों को एडवर्ड अष्टम और श्रीमती सिम्पसन के विवाह के प्रश्न के विषय में सूचित किया। उसने तीन विकल्पों (alternative courses) का उल्लेख किया किन्तु वे सब सिंहासन त्यागने के पक्ष में हो गए। एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का अनुसरण किया गया : "राजा के डोमीनियनों की कुछ सरकारों ने राजा से पत्र-व्यवहार करने के अधिकार का औपचारिक परामर्श के रूप में अथवा अन्य किसी प्रकार से प्रयोग किया।" उनकी स्थिति इस विषय में ब्रिटेन के सदृश ही थी, तथापि संकट की आवश्यकता तथा प्रकृति के कारण यह अनिवार्य हो गया कि श्री बाल्डविन एक अद्वितीय कार्य पूरा करे।

१० दिसम्बर, १६३६ को एडवर्ड अष्टम ने स्वेच्छा से सिंहासन त्यागने का सन्देश भेजा। ११ दिसम्बर को परित्याग घोषणा अधिनियम (Declaration of Abdication Act) पारित किया गया और १२ दिसम्बर, १६३६ को जार्ज षष्ठ (George VI) को राजा उद्घोषित किया गया। कनाडा ने परित्याग का समर्थन महाराज्यपाल के परिषदीय आदेश के द्वारा १० दिसम्बर को किया। आस्ट्रेलिया ने भी उसी दिन उस आशय का संकल्प पास किया। दक्षिणी अफ्रीका की यूनियन ने जार्ज षष्ठ को १२ दिसम्बर के दिन राजा घोषित किया।

परित्याग घोषणा अधिनियम की प्रस्तावना में आइरिश फ्री स्टेट का उल्लेख नहीं किया गया था। ११ दिसम्बर को डी वेलरा ने संसद् को आमन्त्रित किया और दो विधेयक पुरःस्थापित किए। प्रथम विधेयक के द्वारा राजा तथा महाराज्यपाल के नामों का निर्देश पूर्णतः समाप्त कर दिया गया और उस धारा को हटा दिया जिसके अनुसार महाराज्यपाल की नियुक्ति तथा वेतन की व्यवस्था की जाती थी। भविष्य में, लोकसभा (Dail) के अध्यक्ष (chairman) को विधेयकों पर हस्ताक्षर करने तथा कार्यकारिणी परिषद् (executive council) के परामर्श से लोकसभा को . करने का अधिकार दिया गया। दूसरे विधेयक ने भविष्य में कार्यकारिणी

परिषद् को सब राजदूतों तथा वाणिज्य दूतों (Consular Representatives) को नियुक्त करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते करने की शक्ति प्रदान की। प्रथम विधेयक के द्वारा आयरलैंड के संविधान में से राजा और महाराज्यपाल का निर्वासन कर दिया गया और दूसरे विधेयक ने विदेशी सम्बन्धो के लिए राजा को हटा दिया। एक दिन के लिए एडवर्ड अष्टम आयरलैंड का राजा रहा जबकि आइरिश चैनल के पार जार्ज षष्ठ गद्दी पर बैठ चुका था।

१ मई, १६३७ को आयरलैंड का नया संविधान प्रकाशित किया गया और जनता से उसकी स्वीकृति के लिए अनुरोध किया गया। उसे जनता ने स्वीकार किया और लोक सभा ने संशोधित किया और वह संविधान १६ दिसम्बर, १६३७ को लागू हुआ। राजा और राष्ट्र-मण्डल (Commonwealth) का संविधान मे उल्लेख नहीं किया गया था। यह कहा गया था कि "आयरलैंड के शासन-कार्यों को पूरा करने के अभिप्राय से विदेशी सम्बन्धों मे अथवा उनके विषय मे, सरकार किसी सीमा तक अथवा कुछ शर्तों के साथ यदि कोई हों, जैसा कि कानून द्वारा निर्धारित किया जाये, किसी उपकरण (organ), संलेख (instrument), रीति अथवा प्रक्रिया का उपयोग कर सकती है, जिस प्रक्रिया अथवा रीति का इसी उद्देश्य के लिए किसी ऐसे ग्रुप अथवा लीग आफ नेशन्स के सदस्य उपयोग करे, जिनसे आयरलैंड सामान्य विषयों के सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (international co-operation) के लिए सम्बद्ध है अथवा सम्बद्ध होता है।" इसका अभिप्राय यह है कि आयरलैंड ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल का सदस्य रहेगा और राजा को उस समय तक मान्यता (recognition) देगा, जब तक उसकी सरकार ऐसा करना चाहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वाधीन करने का निर्णय किया और १६४७ मे भारत तथा पाकिस्तान डोमीनियन बनाये गये। श्रीलंका को भी डोमीनियन की स्थिति दी गई। भारतीयों की भावना को ध्यान में रखकर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का नाम राष्ट्रमण्डल रखा गया। जब १६५० में भारत गणराज्य (Republic) बना, तब इंगलैंड के राजा का सब उल्लेख हटा दिया गया। पाकिस्तान ने भी गणराज्य के पक्ष मे निर्णय किया है। यद्यपि भारत गणराज्य है, [illegible] वह राष्ट्रमण्डल का सदस्य है।

राष्ट्रमण्डल में डोमिनियनों की स्थिति (Position of Dom[illegible] Commonwealth of Nations)—डोमीनियनों की राष्ट्रमण्डल में [illegible] में विचार करना वाञ्छनीय है। यह [illegible] कर दिया [illegible] स्वशासित (autonomous) राष्ट्र है, [illegible] में समान है, [illegible] वैदेशिक सम्बन्धों में किसी [illegible] के प्रति निष्ठा (allegiance) [illegible] सदस्य की भाँति सम्मिलित है। [illegible] डोमीनियन [illegible] डोमीनियन क्राउन [illegible]। किन्तु [illegible] किया जाता। [illegible] तक ब्रिटिश [illegible]

सम्बन्धित डोमीनियन की सहमति तथा परामर्श से नियुक्त करता है। यह प्रसिद्ध है कि जब पाकिस्तान बनाया गया और ब्रिटिश सरकार ने श्री जिन्ना से पूछा कि किस व्यक्ति को पाकिस्तान का महाराज्यपाल नियुक्त किया जाए तब उन्होंने अपने नाम का प्रस्ताव किया और उन्हीं को नियुक्त किया गया। महाराज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में डोमीनियनों और ब्रिटिश सरकार में कोई विवाद खड़ा नहीं हो सकता क्योंकि ब्रिटिश सरकार डोमीनियनों को पूरी आजादी देती है। लन्दन मे प्रत्येक डोमीनियन का प्रतिनिधित्व उच्चायुक्त (High Commissioner) करता है। समस्त डोमीनियनो मे ब्रिटिश सरकार के उच्चायुक्त रहते है।

कानून बनाने (legislation) के सम्बन्ध में डोमीनियनों को पूर्ण स्वतन्त्रता है। औपनिवेशिक कानून मान्यता अधिनियम (Colonial Laws Validity Act) को कोई स्थान प्राप्त नही है। प्रत्येक डोमीनियन कोई भी कानून बनाने के लिए स्वतन्त्र है और वह कानून ब्रिटेन के किसी भी नियम के विरुद्ध हो सकता है। ब्रिटिश संसद् का कोई कानून डोमीनियनों पर लागू नही होता। यदि किसी को ऐसे लागू करना वाछनीय हो तो डोमीनियन की ससद् द्वारा उसका स्वीकृत किया जाना अनिवार्य है। किन्तु एक या एक से अधिक डोमीनियन ब्रिटिश सरकार से किसी विशेष कानून को अपने लिए पास करने की प्रार्थना कर सकते है। उस समय भी ब्रिटिश संसद् द्वारा पारित कानून डोमीनियनों मे स्वतः कानून नही बन जाता। सम्बन्धित डोमीनियनों की धारा सभाओं को उसे वैध कानून बनाने के लिए पुनः पारित करना पड़ता है।

प्रत्येक डोमीनियन को न्यायिक क्षेत्र मे प्रायः पूर्ण स्वतन्त्रता है। पहले प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में डोमीनियनो से बहुत सी अपीलें आती थी और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का डोमीनियनो पर कुछ नियन्त्रण था। किन्तु अब इस नियन्त्रण का महत्त्व भी कम हो रहा है। कारण यह है कि प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में अपील करने को डोमीनियन अपनी हीनता का संकेत समझते हैं और इसीलिए डोमीनियनों की प्रवृत्ति अपीलों को प्रतिबन्धित अथवा पूर्णतया समाप्त करने की ओर है। आयरलंड ने अपीलें भेजना पूर्णतः रोक दिया। भारत ने स्वाधीन होते ही प्रिवी कौंसिल में अपीलें भेजना समाप्त कर दिया। दक्षिणी अफ्रीका से बहुत कम अपीलें आती है। आस्ट्रेलिया से अपीलें तब जाती है जब आस्ट्रेलिया का उच्च न्यायालय आज्ञा दे देता है। केवल कनाडा से सर्वाधिक अपीलें प्रिवी कौंसिल मे आती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय विषयों मे डोमीनियन प्रायः स्वतन्त्र है। वे विदेशों में अपने प्रतिनिधि भेज सकते हैं और अन्य देशों के प्रतिनिधियो को अपने यहाँ आने दे सकते है। वे अपनी स्वयं की पृथक् संधियाँ कर सकते हैं। १९२२ में कनाडा ने स्वतन्त्र संधि करने का अधिकार प्राप्त किया और यू० एस० ए० से स्वतन्त्र संधि की। संधि पर ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि के हस्ताक्षर नहीं हुए। डोमीनियन किसी भी देश से संधि कर सकते हैं किन्तु उन्हें राष्ट्रमण्डलीय देशों के विरुद्ध संधि करने से बचना चाहिए। इसी प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने पर यह आवश्यक नहीं है कि डोमीनियन उसमें रहें। वे उसमें सम्मिलित हो भी सकते हैं और पृथक् भी रह सकते हैं। यह

प्रसिद्ध है कि १९३९ में कनाडा के प्रधानमन्त्री मैकेंजी किंग और दक्षिणी अफ्रीका के प्रधान मन्त्री हर्टजोग ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि "यदि ब्रिटेन युद्ध में लिप्त होगा तो वे लड़ने के लिए बाध्य नहीं हैं।" वास्तव में आयरलैंड द्वितीय महासमर में तटस्थ रहा। डोमीनियनों को लीग ऑफ नेशन्स में पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त था और जब संयुक्त राष्ट्र संघ स्थापित किया गया, तब उनको पुनः स्वतन्त्र प्रतिनिधित्व दिया गया। अनेक अवसरों पर कनाडा तथा आयरलैंड के प्रतिनिधियों ने ब्रिटेन के प्रतिनिधियों के विपरीत मत दिया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि डोमीनियन पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है। कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन्हें राष्ट्रमण्डल के सदस्य रहने के लिए बाध्य करती हो। यदि कोई डोमीनियन राष्ट्रमण्डल को त्यागने का निश्चय करता है, तो ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उस डोमीनियन को राष्ट्रमण्डल में रहने के लिए बाध्य कर सके। किन्तु कुछ ऐसे कारण हैं जिनमें डोमीनियन संगठित रहने में समर्थ हैं। समस्त डोमीनियनों में संसदीय प्रणाली है और यह उनको एक दूसरे के समीप लाती है। अनेक डोमीनियनों में जनता उन अंग्रेजों की सन्तान है जो कभी इंगलैंड से आए थे। रक्त सम्बन्ध उनको संगठित रखने वाला सबसे बड़ा प्रभावपूर्ण कारण है। अंग्रेजी भाषा का सामान्य भाषा के रूप में प्रयोग करना एक अतिरिक्त कारण है। किन्तु भारत के समान देशों ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को केवल लाभ उठाने के लिए स्वीकृत किया है। यह अनुभव किया जाता है कि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता से भारत को लाभ ही लाभ है और हानि बिल्कुल नहीं है। व्यावहारिक रूप में भारत पर कोई दायित्व (obligation) नहीं है, किन्तु वह अन्य डोमीनियनों के साहचर्य से लाभान्वित होता है। भारत का सम्बन्ध भावनाओं के आधार पर न होकर विश्व की परिस्थितियों की कठोर यथार्थताओं (realities) पर आधारित है।

Suggested Readings

Hall : The British Commonwealth of Nations.

Jennings, Sir Ivor : Problems of the New Commonwealth, 1958.

Keith, A. B. : Constitutional Law of the British Dominions.

Marshall, C. : Parliamentary Sovereignty and the Commonwealth, 1959.

Zimmern, Sir Alfred E. : From the British Empire to the British Commonwealth.

संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान

(Constitution of the U. S. A.)

अध्याय १०

संविधान की विशेषताएँ

(Salient Features of the Constitution)

प्रस्तावना—आधुनिक अमेरिका के मार्ग-दर्शक (pioneers) 'पिलग्रिम फादर्स' (Pilgrim Fathers) थे जो अपने दृढ़ विश्वास (convictions) के कारण मातृ-भूमि को छोड़कर एक ऐसे प्रदेश में रहने के लिए गये जहाँ वे अपनी आत्मा की आज्ञा का पालन कर सकें। सत्रहवीं शताब्दी में, और बहुत से अंग्रेजों ने अपनी मातृभूमि को छोड़ा और वे वहाँ के निवासी हो गए। इंगलैंड के गृहयुद्ध (Civil War) ने भी इस प्रक्रिया को नहीं रोका। उस शताब्दी के अन्त तक, उत्तरी अमेरिका में अनेक उपनिवेश बस गए थे। फ्रांस तथा इंगलैंड में प्रभुत्व (supremacy) के लिए संघर्ष हुआ और सप्तवर्षीय युद्ध में, फ्रेंच-शक्ति खत्म हो गयी और इंगलैंड समस्त उत्तरी अमेरिका का स्वामी हो गया।

तेरह उपनिवेशों ने अनेक कारणों से इंगलैंड के विरुद्ध विद्रोह किया। दोनों दल अपनी-अपनी बात पर दृढ़ थे अतः समझौते की कोई गुंजायश नहीं थी। ४ जुलाई १७७६ के दिन तेरह उपनिवेशों ने स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) कर दी, जिसमें कहा गया था कि वे "गम्भीरता से प्रकाशित करते हैं और घोषित करते है कि ये उपनिवेश पृथक् एवं स्वतन्त्र (free and independent) राज्य हैं और स्वतन्त्र होने का अधिकार रखते है; वे ब्रिटिश क्राऊन (British Crown) के प्रति निष्ठा (allegiance) से मुक्त हो चुके है तथा उनका और ब्रिटिश राज्य का राजनैतिक सम्बन्ध-सूत्र विच्छिन्न हो गया है और हो जाना चाहिए, और पृथक् एवं स्वतन्त्र राज्यों की भाँति उन्हें युद्ध-घोषणा (levy war), शान्ति घोषणा (conclude peace), संधियाँ, व्यापार तथा अन्य उन सब कार्यों के करने का पूर्ण अधिकार है जिन्हें स्वतन्त्र राज्य अपने अधिकार से कर सकते है।"

१५ नवम्बर, १७७७ को १३ राज्यों का महासंघ (Confederation) बना। यही १३ राज्यों का महासंघ था जिसने इंगलैंड को हराया था। मगर इसके कार्य से यह स्पष्ट हो गया कि महासंघ यानी कान्फेडरेशन (Confederation) में कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं। हैमिल्टन (Hamilton) के अनुसार, "विभिन्न विधानमण्डलों (legislatures) के साथ इस (कांग्रेस) के सम्बन्ध कूटनीतिज्ञ के से सम्बन्ध थे। जब इसे सेना निर्माण करने की आवश्यकता होती थी, तब उसे इसके लिए आज्ञा माँगनी तथा विवेकहीन अपमानजनक शर्तों को स्वीकार करना पड़ता था। जब कोई राज्य (State)

एक रेजिमेन्ट (regiment) जुटाता था, तब वह इसके अधिकारियों को नियुक्त करने का दावा भी करता था। ऐसी स्थिति में सैनिक सगठन का बनना बिलकुल असम्भव था।" अमेरिकन कान्फेडरेशन के सम्बन्ध में प्रो० मुनरो (Prof. Munro) का कथन है, "यह विशेष रूप से कमजोर था, क्योंकि इसमें उन चार चीजों की कमी थी जो राष्ट्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाती है। कर द्वारा राजस्व उगाहना, ऋण लेना, व्यापार नियमित करना और सेनाओं का निर्माण करके सामूहिक सुरक्षा का प्रबन्ध करना आदि शक्तियों की उसमें कमी थी। यही चार शक्तियाँ थी जो कि सयुक्त राज्य अमेरिका की काँग्रेस को नये सविधान के अधीन दी गयी थी और जिन्हे १७८७ में कान्फेडरेशन के स्थान पर लागू किया गया था।" प्रेजीडेन्ट वाशिंगटन (President Washington) ने इन बुराइयों की चर्चा इस प्रकार की थी, "आज हम एक राष्ट्र है और कल तेरह।" वाशिंगटन के अनुसार, "इसमे बाध्य करने की (coercive) शक्तियो का अभाव था।"

स्वतन्त्रता के अभिज्ञात (recognition) हो जाने पर, १३ उपनिवेशों ने एक संविधान बनाने का निश्चय किया जिसका उद्देश्य उन्हें दृढ सगठन-सूत्र (stronger union) में बाँधना था। उपनिवेशों के प्रतिनिधि १७८७ में फिलाडेलफिया में एकत्रित हुए। सभा (convention) के प्रतिनिधियों की पर्याप्त सराहना की गई है। जेफरसन (Jefferson) ने उनको "देव-पुत्रों की सभा" (an assembly of demi-gods) कह कर सम्बोधित किया था। प्रो०. बीअर्ड (Prof. Beard) के अनुसार, "यह वास्तव में मनुष्यों की एक विलक्षण सभा थी जो फिलाडेलफिया मे १४ मई, १७८७ के दिन अमेरिका के शासन-विधान की व्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के लिए एकत्रित हुई थी। मजबूरन यह स्वीकार करना पड़ता है कि विधान-मण्डलों के इतिहास मे राजनीतिक अनुभव (political experience) और व्यावहारिक ज्ञान (practical knowledge) से अधिक परिपूर्ण (richer) अथवा मानवीय व्यवहार (human action) तथा सरकार के आवश्यक सारतत्त्व (intimate essence) के उद्गमों (springs) के अधिक गहन (profounder) परिज्ञान (insight) मे सम्पन्न मनुष्यों की ऐसी सभा (convention) कभी नही हुई। वास्तव में यह आश्चर्यजनक बात है कि ४० लाख श्वेतों (Whites) की जनसंख्या में से सभ्यता के ठीक सीमान्त पर (very frontiers of civilization) एक समय में राजकार्य-पद्धति (statecraft) मे कुशल इतने अधिक मनुष्य पाये जा सकें।" प्रो० फारंड (Farrand) के अनुसार, "यह सत्य है कि वे महापुरुष थे, किन्तु सम्पूर्ण सभा वैसे ही व्यवसायी, व्यापारी, विश्रामी भद्र पुरुष, स्वदेशाभिमानी तथा चतुर निर्वाचक राजनीतिज्ञ मनुष्यों से मिल कर बनी थी। कुछ लोगों ने अपने महान् कार्य के लिए अध्ययन द्वारा [illegible] कर लिया था तथा शेष पूर्णरूपेण अयोग्य थे। यह वास्तव में एक [illegible] थी; सम्भवत: नेताओं के चरित्र का स्तर उस समय की सामाजिक दशा [illegible]

फिलाडेलफिया-सभा ने १७८७ में यू० एस० ए० के लिए [illegible] मसविदा बनाया और यह स्वीकृति के लिए राज्यों (States) [illegible] नये संविधान के अनुसार प्रथम काँग्रेस का अधिवेशन ४ मार्च [illegible]

मुख्य विशेषताएँ (Salient Features)—

(१) अमेरिका के संविधान का प्रथम गुण यह है कि वह देश का सर्वोच्च कानून (Supreme law of the country) है। संविधान के अनुसार, "संविधान और संयुक्त राज्यों द्वारा बनाए गए इसके अनुकूल कानून, संयुक्त राज्यों के प्राधिकरण (authority) से की गई अथवा की जाने वाली संधियाँ (treaties) देश का सर्वोच्च कानून (Supreme Law) होंगी, किसी राज्य के संविधान अथवा कानून में इसके विरुद्ध कोई बात होते हुए भी प्रत्येक राज्य के न्यायाधीश इससे बँधे होंगे।"

(२) अमेरिका का संविधान आधुनिक राज्यों के संविधानों में सबसे संक्षिप्त (briefest) संविधान है। इसका कारण यह है कि अमेरिका के संविधान-निर्माताओं ने सिद्धान्तों (fundamentals) का प्रतिपादन किया है और विस्तार की बातों को छोड़ दिया है।

(३) इसके अतिरिक्त, जो राज्य अमेरिकन फेडरेशन में शामिल हुए उनके अपने संविधान थे जिन्हें पूर्ववत् रहने दिया गया। इससे संविधान बहुत लम्बा-चौड़ा नहीं बनाना पड़ा।

(४) संविधान ने प्रत्येक राज्य को गणराज्यात्मक सरकार (Republican form of government), विदेशी आक्रमण से सुरक्षा तथा राज्य के उचित प्राधिकारी (authority) द्वारा माँग किए जाने पर आन्तरिक विद्रोह के समय सहायता की गारंटी (guarantee) दी है। प्रो० बीअर्ड के अनुसार, "यह पुरानी कहावत अब भी सार्थक है कि अविनाशी (indestructible) राज्यों का अविनाशी यूनियन (union) का कुछ अर्थ है।"

(५) अमेरिका का संविधान जनता की प्रभुता (sovereignty) के सिद्धान्त को दृढ़ करता है। संविधान की प्रस्तावना (Preamble) में लिखा है "हम संयुक्त राज्यों के नागरिक अधिक परिपूर्ण संघ बनाने की दृष्टि से न्याय की स्थापना करते हैं, आन्तरिक शान्ति को सुनिश्चित करते हैं, सम्मिलित प्रतिरक्षा (common defence) की व्यवस्था करते हैं, सर्वसाधारण के हित का वर्धन करते हैं और अपने को तथा अपनी सन्तानों को स्वतन्त्रता प्राप्त कराते हैं और इस संविधान को संयुक्त राज्यों के लिए स्थापित करते हैं।" जेम्स मैडीसन (James Madison) का कहना था कि अमेरिका की शासन-प्रणाली उस "सम्माननीय दृढ़ संकल्प पर आधारित है, जो स्वतन्त्रता के प्रत्येक समर्थक को हमारे राजनीतिक प्रयोगों को मनुष्य मात्र की स्वशासन की क्षमता पर आधारित करने को प्रेरित करता है।" "विशाल ग्राम निर्वाचकों (electorate) में अन्तिम शक्तियाँ निहित होने के कारण यह स्पष्ट है कि सेना (military) पर असैनिक प्रभुता स्वीकार कर ली गई है और वास्तव में तो संघीय संविधान के सच्चे रूप तथा उपबन्धों ही से निश्चित कर दी गई है।" डी टॉकविले (De Tocqueville) के अनुसार, "अमेरिका की जनता राजनैतिक दुनिया (political world) में इस प्रकार राज करती है जैसे विधाता सृष्टि पर।"

(६) अमेरिका का संविधान प्रतिनिधि जनतन्त्र (representative democracy) की स्थापना करता है। यह सत्य है कि अभी तक न्यू इंगलैंड की कुछ जातियों

(communities) मे नगर-सभाएँ (town meetinge) होती है और कुछ राज्यों मे जनमत संग्रह (referendum), आरम्भण (initiative) और प्रत्याहरण (recall) का प्रयोग किया जाता है, किन्तु कुल मिलाकर संयुक्त राज्यों की राजनैतिक संस्थाएँ (political institutions) उन प्रतिनिधियों के द्वारा चलाई जाती है जो 'वोटरों' के द्वारा प्रत्यक्ष (direct) या अप्रत्यक्ष (indirect) रीति से चुने जाते है। 'वोटर' संघीय कानूनों का सूत्रपात (initiate) नही कर सकते। संघीय कानून जनमत संग्रह के द्वारा अधिनियमित (enacted) नहीं हो सकते तथापि कांग्रेस यह नियम बना सकती है कि जनमत सग्रह का प्रयोग यह निश्चित करने के लिए किया जाए कि कुछ विधायी व्यवस्थाएँ (legislative provisions) प्रभावी (effective) हो जानी चाहिएँ। संघीय अधिकारियों का प्रत्याहरण (recall) नही हो सकता। वोटर केवल तीन अवसरों पर संघीय विषयो मे भाग लेते है, अर्थात् जब वे प्रतिनिधियों (representatives), सैनेटरों, तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचक निकायों को चुनते है। जब उनका निर्वाचन हो जाता है, तब सरकार के समस्त विषय प्रतिनिधियों के हाथों में छोड़ दिए जाते है। इस प्रकार के सुझाव दिए गए हैं कि जनता सरकार के कार्यों में प्रत्यक्ष भाग ले। यह प्रस्ताव किया गया है कि राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन स्वयं जनता करे न कि निर्वाचक मण्डल (Electoral College)। यह भी सुझाव दिया जाता है कि संवैधानिक सशोधनों की पुष्टि जनमत संग्रह द्वारा करानी चाहिए, न कि राज्य विधान-मण्डलों अथवा कन्वैन्शनों द्वारा जैसा कि आजकल होता है।

(७) अमेरिका का सविधान शक्ति-विभाजन (Separation of Powers) के सिद्धान्त पर आधारित है।[1] अनुच्छेद १ मे यह व्यवस्था की गई है कि यहाँ पर स्वीकृत समस्त विधायी शक्तियाँ (legislative powers) कांग्रेस में निहित होंगी। अनुच्छेद २ में यह व्यवस्था है कि कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी। अनुच्छेद ३ में यह व्यवस्था है कि न्यायिक शक्तियाँ एक उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) तथा उन निचले (inferior) न्यायालयों में निहित होंगी जिनको कांग्रेस समय-समय पर आदिष्ट (ordain) और स्थापित करे। समावेशी और अपवर्जक (inclusive and exclusive) रूप से इन तीनों शक्तियों का विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा दिया जाना, उनके विभाजन का संवैधानिक आधार बनाते हैं।

शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त के [illegible] तथा समर्थक हैं। यह कहा जाता है कि उनके औपचारिक विभाजन के होते हुए भी [illegible] है जिनके द्वारा एक अथवा दूसरी शाखा अधिक [illegible] जाता है। [illegible] चलचित्र, पत्रकार सम्मेलनों, [illegible] ([illegible]) आदि के प्रयोग [illegible]

---

1. न्यायाधीश [illegible] (Brandeis) के [illegible] में वृद्धि करने के लिए [illegible] महासम्मेलन के द्वारा [illegible] जनता को [illegible] अवश्यम्भावी [illegible]

राष्ट्रपति कांग्रेस पर हावी होने पर तथा न्यायिक निर्णयों पर अनुचित प्रभाव डाल सकता है। दूसरे वे हैं, जो कार्यपालिका के कार्य में विधायिका के हस्तक्षेप की शिकायत करते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो शिकायत करते हैं कि न्यायालयों ने उस प्राधिकार (authority) को अन्याय से अपने अधिकार में कर लिया है, जो न्याय की दृष्टि से राष्ट्रपति और कांग्रेस का है। यह भी निर्देश किया जाता है कि यह प्रणाली गतिरोधों (stalemates) को जन्म देती है और नेतृत्व (leadership) को समाप्त करती है। इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि राष्ट्रपति और कांग्रेस पर दो अलग-अलग राजनैतिक दलों का शासन हो और इससे संघर्ष अथवा विलम्ब (friction or delay) हो।

शक्ति-विभाजन को परिश्रम से बनाई गई रोकों व सन्तुलनों (Checks and Balances) की पद्धति से पूर्ण किया गया है। कांग्रेस को कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है, किन्तु वे कानून तभी प्रभावी होते हैं जब राष्ट्रपति उनका अनुमोदन कर देता है। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रपति कांग्रेस के प्रत्येक विधेयक (bill) को अनुमति प्रदान करे। वह दो प्रकार के निषेधाधिकारों (vetoes) का प्रयोग कर सकता है। यदि विधेयक उसके पास अधिवेशन (session) की समाप्ति के समीप भेजा जाता है, तो वह उस पर बिना किसी कार्य को करने के ही उसे समाप्त कर सकता है। इसे 'पाकेट वीटो' (pocket veto) कहते हैं। दूसरे विषयों में, राष्ट्रपति कांग्रेस द्वारा प्रेषित विधेयक का 'निषेध' (veto) कर सकता है, किन्तु यदि कांग्रेस उस विधेयक को पुनः $\frac{2}{3}$ बहुमत से पास कर दे तो वह राष्ट्रपति के निषेध के होते हुए भी कानून बन जाता है। इसके अतिरिक्त, संयुक्त राज्यों के उच्चतम न्यायालय को कांग्रेस द्वारा पारित तथा राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त विधेयक को 'शक्ति बाह्य' (ultra vires) घोषित करने की शक्ति प्राप्त है। इस शक्ति का प्रयोग अनेक अवसरों पर किया गया है। राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को मनोनीत करता है और सीनेट उसका अनुमोदन करती है, किन्तु एक बार नियुक्त हो जाने पर वे कांग्रेस और राष्ट्रपति पर अनुरोध (check) लगा सकते है। सीनेट न्यायाधीशों पर महाभियोग (impeachment) चला सकती है। कांग्रेस उच्चतम न्यायालय की सदस्य संख्या निश्चित कर सकती है, और उच्चतम न्यायालय तथा निम्न न्यायालयों का अपीलीय क्षेत्राधिकार सीमित कर सकती है। राष्ट्रपति कांग्रेस के दोनों सदनों के अनुमोदन से ही युद्ध घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति संधियाँ कर सकता है, किन्तु सीनेट को उनकी पुष्टि करनी चाहिए। कुछ ऐसी नियुक्तियाँ हैं जो राष्ट्रपति करता है, किन्तु सीनेट द्वारा उनका अनुमोदन होना आवश्यक है। कांग्रेस राष्ट्रपति पर महाभियोग चला सकती है। हाउस आफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स और सीनेट का एक-दूसरे के विरुद्ध सन्तुलन किया गया है। संघीय सरकार (Federal Government) राज्य सरकारों को सन्तुलित करती है। लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, "शक्ति का मूल स्रोत जनता की प्रभुता है जो सदा भरा हुआ और अपने गहरे सोते से पानी लेता हुआ बहता है, किन्तु इसके पश्चात् यह अनेक नहरों (channels) में बँट जाता है। प्रत्येक नहर इसकी तुलना में बनाए गये तटबन्धों (embankments) से बँधी हुई है।"

पानी ऊपर से नहीं निकल सकता; न्यायपालिका का जाग्रत हाथ किनारे के उस स्थान पर मरम्मत करने के लिए तत्पर रहता है जहाँ से धारा के टूट कर बहने का भय होता है।" प्रो० ग्रॉग के अनुसार, "अमेरिकी सरकार का जाँच और संतुलनयुक्त शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त बड़े महत्त्व की वस्तु है। संसार के किसी भी देश में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं पाई जाती।" डॉ० फाइनर का कथन है कि "संविधान निर्माताओं के संविधान सम्बन्धी सभी प्रयोजन पूर्ण हुए हों ऐसी बात तो नहीं, किन्तु शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को क्रियान्वित करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। अमेरिकन संविधान निर्माताओं ने नेतृत्व की उस भावना को समाप्त कर दिया, जिसका आज की मन्त्रिमण्डलीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संविधान निर्माताओं ने कार्यकारिणी और व्यवस्थापिका को एक-दूसरे से अलग रखा है। इस संविधान ने तो माँग करने वालों और माँग की पूर्ति की क्षमता रखने वालों के पारस्परिक सम्बन्धों को ही तोड डाला है। संविधान के पूर्व पुरुषों ने कानून बनाने वाली संसद् की दो शाखाओं को सदा प्रतियोगिता में लगाये रखने वाली व्यवस्था प्रदान की है। संविधान निर्माताओं की इस व्यवस्था के अनुसार संसद् की दोनों शाखाओं में नेता के नेतृत्व की आवश्यकता बनी रहती है, किन्तु ये नेतागण अलग-अलग रूप से अपनी-अपनी शाखा से ही बँधे होते हैं। दोनों शाखाओं के नेता अपने-अपने कार्य-व्यापार में स्वतन्त्र होते हैं।"

प्रो० बीअर्ड के अनुसार, "राजनीति और सरकार के कार्य व्यवहार द्वारा यह ज्ञान हो चुका है कि शक्ति-पृथक्करण सिद्धान्त अमेरिकन सरकार का प्रमुख गुण है।" 'रे' और ग्रॉग के अनुसार, "संविधान के 'जाँच और सन्तुलन' ने शक्ति-पृथक्करण के दूषित प्रभावों को दूर हटाने की अपेक्षा बढा दिया है। 'राष्ट्रपति का निषेधाधिकार' और 'सन्धियों के लिए सीनेट की स्वीकृति की आवश्यकता' दोनों ही शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को और अधिक दूषित बनाती है।"

कारविन (Corwin) का कथन है कि राष्ट्रपति की शक्ति तथा राष्ट्रपति के नेतृत्व को बढावा मिलने से शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को कडी चोट पहुँची है। कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति और प्रशासनिक अभिकरणों (administrative agencies) का अधिक से अधिक आश्रय लेने के कारण भी उपरोक्त सिद्धान्त को आघात पहुँचा है। फील्ड बनाम क्लार्क (१८९२) (Field v. Clark, 1892) के समय अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था—"कांग्रेस अपनी न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ राष्ट्रपति को नहीं दे सकती।" इसी प्रकार १९३३ में भी सर्वोच्च न्यायालय ने काँग्रेस द्वारा राष्ट्रपति को किसी भी प्रकार की वैधानिक शक्तियों का दिया जाना अवैध घोषित किया था। १९३५ में भी अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने नेशनल इण्डस्ट्रियल रिकवरी अधिनियम को इस आधार पर अवैध घोषित किया था कि कांग्रेस ने राष्ट्रपति को वैधानिक शक्तियाँ दे डाली हैं और काँग्रेस का यह कृत्य शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त को कडी चोट पहुँचाता है। इतना होने पर भी सर्वोच्च न्यायालय की नीति यह है कि कार्यपालक को नियम-निर्माण की शक्तियाँ दे दी जाएँ यदि उस नियम के पण (terms) पूर्णतया स्पष्ट हों। किन्तु वे पण स्पष्ट है या नहीं इस बात का

निर्णय करने की शक्ति को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हाथ में रखा है।

(७ ए) अमेरिकन संविधान का निर्माण समझौते के सिद्धान्त (principle of compromise) के आधार पर हुआ है। संविधान के निर्माण के समय राज्यों में गहरी प्रतिस्पर्धा थी, और यह प्रतिस्पर्धा कांग्रेस में प्रतिनिधान के प्रश्न पर काफी बढ़ गई थी। अधिक आबादी वाले बड़े राज्यों को यह भय था कि नये शासन में छोटे-छोटे राज्य, जिनकी काफी सख्या थी, ऐसे विधान बनायेंगे, जो उनके हित के विरुद्ध होंगे। उदाहरण के तौर पर, वे ऐसे विधान बना लेंगे, जिनमें बहुत धन व्यय करना स्वीकार किया जाये और जिसका अधिकतर बोझ धनी आबादी वाले राज्यों पर पड़े। इस प्रकार के विधानो से बचने के लिए वर्जिनिया (Virginia) (जो एक बड़ा राज्य था) के प्रतिनिधि एडमण्ड रान्डोल्फ़ (Edmund Randolph) ने यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस में प्रतिनिधान केवल जनसख्या के आधार पर होना चाहिए। छोटे राज्यो को यह भय था कि यदि उनकी सुरक्षा न की गयी तो धीरे-धीरे बड़े राज्य उनको निगल जायेंगे। न्यू जर्सी (New Jersey) (जो कि एक छोटा राज्य था) के विलियम पैटरसन (William Patterson) ने यह प्रस्ताव किया कि प्रतिनिधान राज्यो के अनुसार होना चाहिए, जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक राज्य को समान स्तर और समान वोट का अधिकार होना चाहिए, चाहे उसका आकार कितना ही क्यो न हो। इस सघर्ष के कारण उस महान् समझौते (great compromise) का जन्म हुआ जिसमे यह व्यवस्था की गई कि कांग्रेस में दो सदन होंगे। एक सदन मे सीटें जनसख्या के आधार पर होगी और इस प्रकार बड़े राज्यों को लाभ हो गया। दूसरे सदन में राज्यों को (बिना आकार का विचार किये हुए) समान प्रतिनिधान मिला, जिससे छोटे राज्यों को लाभ हो गया। इन सिद्धान्तों से हाउस आफ रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज (House of Representatives) और सैनेट (Senate) का निर्माण हुआ। कानून बनाने के लिए, दोनों सदनों द्वारा बिल का पास किया जाना जरूरी है, और इस प्रकार दोनों प्रकार के राज्यों को प्रस्तावित विधान को पास न होने देने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

बहुत से डैलीगेट इस बात के लिए राजी थे कि अन्तर्राज्य व्यापार (Interstate Commerce) पर राष्ट्रीय सरकार का नियन्त्रण रहे, लेकिन दक्षिणी राज्यो (Southern States) के प्रतिनिधियों ने इसका विरोध किया। यदि नई सघीय सरकार (new Federal Government) को, सारे व्यापार को नियन्त्रित करने का अधिकार दे दिया गया तो सम्भव है कि वह दास व्यापार (Slave Trade) को भी नियन्त्रित करे। वे नई सरकार को यह शक्ति प्रदान करने के पक्ष में नही थे, जब तक कि सविधान मे इस प्रकार की गारन्टी न दे दी जाये कि दास व्यापार को सुरक्षित रखा जायगा। फलस्वरूप, एक समझौते द्वारा संविधान में एक धारा रखी गई जिसमे कांग्रेस पर २० वर्षों अथवा १८०८ तक दास व्यापार पर हस्तक्षेप न करने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

यद्यपि सभी ने यह स्वीकार किया कि राष्ट्रीय सरकार को टैक्स लगाने की शक्ति दी जानी चाहिए, फिर भी दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधियों ने इस बात का

विरोध किया। उनका कहना था कि दासों (Slaves) को केवल टैक्स लगाते समय मनुष्यों (people) की श्रेणी में न गिना जाना चाहिए प्रत्युत् हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्ज़ (House of Representatives) के लिए प्रतिनिधान (representation) निर्धारित करते समय भी उन्हें मनुष्यों की श्रेणी में गिना जाए। उत्तरी राज्यों (Northern States) के प्रतिनिधियो ने इस बात को अस्वीकार किया क्योंकि नीग्रो (Negroes) को वोट देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। एक समझौता किया गया, जिसके अनुसार यह तय हुआ कि टैक्स तथा प्रतिनिधान का हिसाब लगाते समय, प्रत्येक नीग्रो एक गोरे का ३/५ वाँ भाग समझा जायगा।

राष्ट्रपति की पदावधि पर भी प्रतिनिधियों मे मतभिन्नता थी। कुछ आजीवन काल के पक्ष मे थे। कुछ ऐसे भी थे जो एक या दो वर्ष तक के समय के पक्ष में थे। यह समझौता किया गया कि राष्ट्रपति की पदावधि काफी कम समय (यानी ४ वर्षो) की होनी चाहिए। लेकिन उसके पुनर्निर्वाचन पर कोई नियन्त्रण नही लगना चाहिए। यदि बहुमत चाहता है तो वह उसे जीवन भर राष्ट्रपति रहने दे सकता है, लेकिन उसे समय-समय पर पुनर्निर्वाचन के लिए आना पडेगा, ताकि यदि जनता उससे असन्तुष्ट है तो उसे पद-विमुक्त किया जा सके। लेकिन यह निरूढि (convention) स्थापित हो गई है कि कोई भी राष्ट्रपति तीसरी बार चुनाव के लिए नही खडा होगा।

(८) अमेरिका का संविधान लिखित लेख्य (document) है। ब्रिटिश सविधान की प्रतिलिपि माँगना तो सम्भव नही है, पर सयुक्त राज्यो के विषय में ऐसा नही है। अमेरिका का सविधान १७८७ में तैयार किया गया। लेख्य मे जिसकी पुष्टि १७८८ में हुई और जो १७८९ में लागू हुआ, और यह समय-समय पर किए गए २२ संशोधनों में पाया जाता है। सुप्रीम कोर्ट के महत्त्वपूर्ण सावैधानिक निर्णय भी अमेरिका के सविधान के अग हैं।

किन्तु इसका यह अभिप्राय नही है कि अमेरिका का संविधान पूर्णतः लिखित है। इस सम्बन्ध मे अमेरिका के सविधान की महत्त्वपूर्ण निरूढियों[१] (Conventions) का निर्देशन करना असगत नही है। (अ) अमेरिका के सविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचनो की व्यवस्था की गई है। जनता निर्वाचक मण्डल को चुनती है और उस निर्वाचित मण्डल को राष्ट्रपति का निर्वाचन करना होता है। किन्तु, एक निरूढि के अनुसार, राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है। कारण यह है कि जब निर्वाचक मण्डल (Electoral College) के लिये प्रत्याशी (candidates) खड़े होते है तब वे अपने राजनैतिक दलो को यह विश्वास दिलाते है कि वे निश्चित रूप से राष्ट्रपति पद के लिए पार्टी के उम्मीदवार को वोट देंगे। फल यह है कि जब कोई वोटर निर्वाचक-मण्डल के किसी उम्मीदवार को मत देता है, तब उसे विश्वास होता है कि उसका मत पार्टी के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार को दिया जा रहा है। (आ) एक अन्य निरूढि यह है कि अमेरिका का कोई राष्ट्रपति तीसरी बार इस पद

१. निरूढि (Convention) है कि राष्ट्रपति अपनी कैबिनेट के सदस्यो को केवल कुछ ही राज्यों मे न लेकर विभिन्न राज्यों से चुने। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रमुख क्षेत्रों को प्रतिनिधान मिलना चाहिए।

निर्णय करने की शक्ति को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हाथ में रखा है।

(७ ए) अमेरिकन संविधान का निर्माण समझौते के सिद्धान्त (principle of compromise) के आधार पर हुआ है। संविधान के निर्माण के समय राज्यों में गहरी प्रतिस्पर्धा थी, और यह प्रतिस्पर्धा कांग्रेस में प्रतिनिधान के प्रश्न पर काफी बढ़ गई थी। अधिक आबादी वाले बड़े राज्यों को यह भय था कि नये शासन में छोटे-छोटे राज्य, जिनकी काफी संख्या थी, ऐसे विधान बनायेंगे, जो उनके हित के विरुद्ध होंगे। उदाहरण के तौर पर, वे ऐसे विधान बना लेंगे, जिनमें बहुत धन व्यय करना स्वीकार किया जाये और जिसका अधिकतर बोझ घनी आबादी वाले राज्यों पर पड़े। इस प्रकार के विधानों से बचने के लिए वर्जिनिया (Virginia) (जो एक बड़ा राज्य था) के प्रतिनिधि एडमण्ड रान्डोल्फ (Edmund Randolph) ने यह प्रस्ताव रखा कि कांग्रेस में प्रतिनिधान केवल जनसंख्या के आधार पर होना चाहिए। छोटे राज्यों को यह भय था कि यदि उनकी सुरक्षा न की गयी तो धीरे-धीरे बड़े राज्य उनको निगल जायेंगे। न्यू जर्सी (New Jersey) (जो कि एक छोटा राज्य था) के विलियम पैटरसन (William Patterson) ने यह प्रस्ताव किया कि प्रतिनिधान राज्यों के अनुसार होना चाहिए, जनसंख्या के आधार पर प्रत्येक राज्य को समान स्तर और समान वोट का अधिकार होना चाहिए, चाहे उसका आकार कितना ही क्यों न हो। इस संघर्ष के कारण उस महान् समझौते (great compromise) का जन्म हुआ जिसमें यह व्यवस्था की गई कि कांग्रेस में दो सदन होंगे। एक सदन में सीटें जनसंख्या के आधार पर होंगी और इस प्रकार बड़े राज्यों को लाभ हो गया। दूसरे सदन में राज्यों को (बिना आकार का विचार किये हुए) समान प्रतिनिधान मिला, जिससे छोटे राज्यों को लाभ हो गया। इन सिद्धान्तों से हाउस आफ रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज (House of Representatives) और सैनेट (Senate) का निर्माण हुआ। कानून बनाने के लिए, दोनों सदनों द्वारा बिल का पास किया जाना जरूरी है, और इस प्रकार दोनों प्रकार के राज्यों को प्रस्तावित विधान को पास न होने देने का अधिकार प्राप्त हो गया है।

बहुत से डैलीगेट इस बात के लिए राजी थे कि अन्तर्राज्य व्यापार (Inter state Commerce) पर राष्ट्रीय सरकार का नियन्त्रण रहे, लेकिन दक्षिणी राज्यों (Southern States) के प्रतिनिधियों ने इसका विरोध किया। यदि नई संघीय सरकार (new Federal Government) को, सारे व्यापार को नियन्त्रित करने का अधिकार दे दिया गया तो सम्भव है कि वह दास व्यापार (Slave Trade) को भी नियन्त्रित करे। वे नई सरकार को यह शक्ति प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे, जब तक कि संविधान में इस प्रकार की गारन्टी न दे दी जाये कि दास व्यापार को सुरक्षित रक्खा जायगा। फलस्वरूप, एक समझौते द्वारा संविधान में एक धारा रखी गई जिसमें कांग्रेस पर २० वर्षों अथवा १८०८ तक दास व्यापार पर हस्तक्षेप न करने का प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

यद्यपि सभी ने यह स्वीकार किया कि राष्ट्रीय सरकार को टैक्स लगाने की शक्ति दी जानी चाहिए, फिर भी दक्षिणी राज्यों के प्रतिनिधियों ने इस बात का

के लिए खड़ा नही होगा । यह निरूढि स्वयं जार्ज वाशिंगटन ने स्थापित की थी, जिसने तीसरी बार खड़ा होने से इनकार कर दिया था । किन्तु, यह स्वीकार करना पड़ता है कि इस निरूढ़ि का उल्लंघन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने किया जो चार अवसरों पर निर्वाचित हुए । निरूढि के उल्लंघन का कारण गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय संकट था । संविधान का बाईसवाँ संशोधन (१९५१) राष्ट्रपति के तृतीय वार खड़ा होने के विरुद्ध व्यवस्था करता है । (इ) एक प्रख्यात निरूढि 'सैनेटोरियल कर्टसी' (Senatorial Courtesy) है । इस निरूढ़ि के अनुसार जब राष्ट्रपति को किसी विशेष राज्य में नियुक्ति करनी होती है, तब वह अपनी पार्टी के उस राज्य के सैनेटर से परामर्श करता है । यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राष्ट्रपति गारफील्ड (Garfield) को गोली मार दी गई थी क्योंकि उसने उक्त निरूढि का उल्लंघन किया था । परिणामस्वरूप इस निरूढि का स्थायी रूप मे पालन किया जाता है । इसके अतिरिक्त इस निरूढ़ि का पालन करना स्वय राष्ट्रपति के हित मे है । ऐसा करके वह सैनेटरों को सन्तुष्ट रख सकता है और इस प्रकार सधियों तथा नियुक्तियो आदि[1] के विषय मे उनके समर्थन की आशा कर सकता है । (ई) अमेरिका के राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल का विकास भी एक निरूढि का परिणाम है । अमेरिका के सविधान मे इसका उल्लेख नही है । (उ) यह भी एक निरूढि है कि प्रतिनिधि (representative) को उस निर्वाचन क्षेत्र का निवासी होना चाहिए जिसका वह प्रतिनिधान करता है । (ऊ) हाउस ऑफ रिप्रेज़ेन्टेटिव्ज़ के स्पीकर की शक्तियाँ तथा सम्मान निरूढियो तथा प्रथाओं (usages) पर आधारित है । (ए) निचले सदन की कार्य-विधि भी निरूढि पर आधारित है । (ऐ) राष्ट्रपति की पत्रकारो से साप्ताहिक भेंट का आधार भी एक निरूढ़ि है । इनके द्वारा राष्ट्रपति कांग्रेस की तुलना मे अपनी शक्ति को दृढ बनाता है । (ओ) अमेरिका का संविधान पार्टी-पद्धति की व्यवस्था नही करता । यह विकास एक निरूढ़ि पर निर्धारित है, लेकिन इसने विधायिका तथा कार्यपालिका को संयुक्त किया है और इस प्रकार दो भागो को एक प्रकार से जोड दिया है । (औ) स्टिअरिंग कमेटी (Steering Committee), बहुमत के फ़्लोर-लीडर और कॉकस (Caucus) का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है।

(६) भारतीय सविधान की भाँति, अमेरिका का संविधान भी जनता के अनेक अधिकारों[2] की गारण्टी देता है । यह कहा जाता है कि कांग्रेस कोई कानून ऐसा नही बनायेगी, जिसका उद्देश्य किसी धर्म का स्थापन अथवा उसके स्वतन्त्र प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना हो । जनता को भाषण और मुद्रण (speech and press) की स्वतन्त्रता है । संविधान मे शान्तिपूर्वक एकत्रित होने तथा कष्ट निवारणार्थ सरकार को याचिका (petition) देने का अधिकार स्वीकृत किया गया है । कोई सरकार

---

१. इंगलैंड व कनाडा के अध्यक्षों (Speakers) के विपरीत, अमेरिका का अध्यक्ष निरूढ़ि के द्वारा प्रतिनिधि सभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है । उसकी स्थिति प्रधान मन्त्री के समान होती है ।

२. न्यायाधीश स्टोन (Justice Stone) के मतानुसार, "जनता के दृढ़ विश्वास को अपेक्षा संविधान अधिकार रूप से व्यक्त करता है कि जनतन्त्रीय पद्धति को किसी भी मूल्य पर रक्षा करना चाहिए । यह विश्वास एवं अधिकार को भी एक अभिव्यक्ति है क्योंकि आध्यात्मिक एवं नैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा होनी चाहिए जिसे शासन को स्वीकार करना होगा……।"

बिल ऑफ एटेण्डर (Bill of Attainder) को पास नही कर सकती जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये फाँसी दी जा सके। किसी व्यक्ति को मनमाने ढंग से न पकडा जा सकता है और न कैद किया जा सकता है। युद्ध अथवा विद्रोह काल के अतिरिक्त अन्य किसी भी समय बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus) से इनकार नही किया जा सकता। प्रत्येक अभियुक्त माँग कर सकता है कि उस पर निष्पक्ष जूरी द्वारा सार्वजनिक न्यायालय मे मुकदमा चलाया जाये। वह अपनी सफाई के लिए कोई वकील खडा करने का हक रखता है तथा न्यायालय गवाहो को जाँच करते है। किसी व्यक्ति से अत्यधिक जमानत नही माँगी जा सकती। बिना कानूनी कार्यवाही के किसी व्यक्ति का जीवन, स्वतन्त्रता, अथवा सम्पत्ति नही छीनी जा सकती। मूल वश, रग, लिंग अथवा दासत्व (servitude) की पूर्व दशाओं के आधार पर किसी व्यक्ति को मताधिकार से वचित नही किया जा सकता। प्रत्येक नागरिक को आने-जाने तथा व्यवसाय अपनाने की स्वतन्त्रता है। प्रत्येक नागरिक को समान कानूनी सरक्षण (Equal Protection of Laws) प्राप्त है। सरकार किसी नागरिक की व्यक्तिगत सम्पत्ति बिना न्यायोचित मुआवजा (compensation) दिये हस्तगत नहीं कर सकती। जनता को शस्त्र (arms) रखने और लेकर चलने का अधिकार है।

(१०) अमेरिका का सविधान अनम्य या लचकहीन (rigid) है। सविधान में सशोधन की विधि का वर्णन इन शब्दो मे अनुच्छेद ५ मे किया गया है: "जब कभी दोनों सदनो के दो तिहाई सदस्य किसी सशोधन की आवश्यकता समझेंगे तब काँग्रेस इस संविधान का सशोधन प्रस्थापित करेगी (shall propose), या दो-तिहाई राज्यों के विधायको के आवेदन पर सशोधन प्रस्थापित करने के लिए काँग्रेस एक प्रसभा (Convention) आमन्त्रित करेगी, उपर्युक्त दो मे से किसी भी प्रकार से रखे गये संशोधन तब इस संविधान का भाग हो जाएँगे जब तीन-चौथाई राज्यों के विधायक उनका अनुसमर्थन (ratification) कर दे, अथवा तीन-चौथाई राज्यो की प्रसभाएँ उन्हे अपनी स्वीकृति दे दें। सरकार अनुसमर्थन के लिए एक अथवा दूसरी विधि का प्रस्ताव कर सकती है; परन्तु १८०८ से पूर्व किया गया कोई संशोधन प्रथम अनुच्छेद (Article) की नौवीं धारा (Section) के प्रथम और चतुर्थ खण्डों (Clauses) को प्रभावित नही करेगा और किसी राज्य को, उसकी इच्छा के विरुद्ध, सैनेट मे समान मताधिकार (suffrage) से वचित नही किया जा सकेगा।"

यह स्पष्ट है कि संशोधन को प्रस्थापित करने की दो विधियाँ हैं। इसी प्रकार अनुसमर्थन की भी दो विधियाँ है। किन्तु साधारण रूप से प्रयुक्त की जाने वाली विधि यह है कि सशोधन के प्रस्ताव काँग्रेस में आरम्भ किए जाते हैं और $\frac{3}{4}$ राज्यों के विधायकों की प्रसभाएँ उनकी पुष्टि करती हैं। पहले, शासन द्वारा पास किए गए विधेयक के अनुसमर्थन के लिए समय की कोई सीमा (time limit) निश्चित नही थी। यह कहा जाता है कि एक विषय का अनुसंधान ८० वर्ष ... गया था, किन्तु कानून मे परिवर्तन के द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि ... का कार्य सात वर्ष मे समाप्त हो जाना चाहिए और यदि ऐसा नही कि...

संशोधन समाप्त हो जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सैनेट में समान प्रतिनिधित्व का अधिकार किसी संशोधन के द्वारा तब तक नहीं छीना जा सकता जब तक स्वयं उस राज्य की सम्मति न हो।

संविधान के संशोधन की प्रणाली की पर्याप्त आलोचना की गई है। यह कहा जाता है कि यह प्रणाली कठिन तथा धीमी है। गत १५० वर्षों में केवल २२ संशोधन हो सके है। इनमे से १० संशोधन १७८९ के कुछ ही समय पश्चात् किये गए थे और उनको आरम्भ मे निर्मित संविधान का अंग माना जा सकता है।[1] तीन संशोधन गृहयुद्ध के कारण किए गए। यदि हम इन तेरह संशोधनों को कम कर दें, तो शेष नौ रहते है और यह उत्साहवर्धक चीज नहीं है। क्योंकि संशोधन प्रणाली बड़ी भारी-भरकम है, इसलिए संविधान को बदलते हुए समय के अनुरूप बनाना सम्भव नहीं है। अत्यावश्यक परिवर्तन भी संशोधन प्रणाली की कठिनाई के कारण नही किए जा सकते। इस प्रणाली से १३ राज्यों का क्रूर शासन (tyranny) स्थापित होता है। यदि ३५ राज्य भी किसी संशोधन के पक्ष मे और १३ राज्य उसके विरोध मे हो तो वह संशोधन भी नही किया जा सकता। यह निर्देश किया जाता है कि यदि हम यू० एस० ए० के सब से छोटे १३ राज्यों को लें, तो उनकी जनसंख्या अकेले न्यूयार्क की जनसंख्या से कम होगी, किन्तु ये तेरह राज्य ३५ राज्यों की इच्छा का अनादर कर सकते है। यह भी कहा जाता है कि संशोधन की प्रणाली से सम्बद्ध व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है जो ७४०० के आस-पास होने का अनुमान है। और भी बुरी बात यह है कि वे केवल प्रसंगतः (incidentally) अर्थात् देश के विभिन्न विधान मण्डलों के सदस्यों के नाते संशोधन प्रणाली में भाग लेते है और देश की जनता ने उन्हें उस विषय पर कोई अधिदेश (mandate) नही दिया होता। राज्य विधान मण्डलों को उक्त विषय मे अन्तिम अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए था। उनका प्रमुख कार्य राज्य के लिए कानून बनाना है। बहुधा उनसे उस विषय का निर्णय करने के लिए कहा जाता है जो कि उस समय जनता के सामने नही था जब वे निर्वाचित हुए थे। "ऐसी प्रणाली की आलोचना की जाती है, क्योंकि इसकी प्रकृति महँगी है और इसमें वह गहरी जाँच-पड़ताल नही हो पाती जो देश के सर्वोच्च कानून के परिवर्तन में होनी चाहिए।" किन्तु मैडीसन के अनुसार, अमेरिका की संविधान मे संशोधन करने की पद्धति "अत्यन्त लचीलेपन, जो संविधान को निरर्थक कर सकता है, और अत्यन्त कठिनाई, जिसमें ज्ञात त्रुटियाँ[2] भी चलती रहें, दोनों से एक समान रक्षा करती है।"

संशोधन प्रणाली को सरल करने के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं। कुछ के अनुसार, संशोधन की प्रस्तावना के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों का बहुमत ही आवश्यक होना चाहिए और उसका अनुसमर्थन ३/४ राज्यों के स्थान पर २/३ राज्य किया

१. इन संशोधनों को अनुसमर्थन की कीमत (the price of ratification) के नाम से पुकारा जाता है और ये १७९१ ई० में किए गए थे।

२. मनरो के अनुसार, "अमेरिका का संविधान एक न्यूटानियन (Newtonian) न होकर डार्विन की जीवित संस्था (living organism, a Darwinian) घटना है।

कर। दूसरा सुझाव यह कि राज्यों का सामान्य बहुमत अथवा बहुसंख्यक राज्यों की जनता के 'जनमत संग्रह' द्वारा प्राप्त बहुमत से अनुसमर्थन हुआ करे। प्रतिवर्ष राज्य विधानमण्डल स्मरण-पत्रों द्वारा कांग्रेस से, संशोधनों के सुझाव के लिए एक प्रसभा (convention) बुलाने की माँग करते हैं। ये सुझाव प्रवर समिति (Select Committee) को प्रेषित किए जाते हैं और शीघ्र ही भुला दिए जाते हैं।

(११) अमेरिका के सविधान की एक विशेषता न्यायिक प्रभुता (Judicial Supremacy) का सिद्धान्त है। जैसे इंगलैंड में नहीं है, पर भारत में है, वैसे ही यू० एस० ए० का सुप्रीम कोर्ट किसी भी कानून को शक्ति-अन्तः (*intravires*) अथवा शक्ति-बाह्य (*ultravires*) घोषित कर सकता है। १७८७ से १९३७ तक कांग्रेस के लगभग ५८००० कानूनों में से ६४ कानूनों को सुप्रीम कोर्ट ने शक्ति-बाह्य घोषित कर दिया। बरजिस (Burgess) के अनुसार, न्यायपालिका को एक महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना चाहिए। "निर्वाचित सरकार किसी बहुमत पार्टी की सरकार होगी। यदि किसी एक सदस्य के अधिकार स्वतन्त्र, राजनीतिक विभाग के द्वारा सुरक्षित नहीं होते, तो ऐसी सरकार भ्रष्ट होकर पार्टी की निरकुश सरकार बन जाती है और इसके पश्चात् सीज़रिज्म (Caesarism) में बदल जाती है।" आलोचकों के अनुसार, अमेरिका की कांग्रेस 'शाश्वत बाल्यावस्था' (perpetual non-age) में रहती है और अमेरिका की जनता अपने पूर्वजो के वसीयतनामे (testaments) से बँधी है। सर मारिस अमोस (Sir Maurice Amos) के अनुसार, राष्ट्रीय सरकार की शिशु, विदेशी, अथवा विवाहित स्त्री से तुलना नही करनी चाहिए बल्कि उस अभिकर्ता (agent) से करनी चाहिए जिसे प्रभुत्व-सम्पन्न जनता के द्वारा कुछ शक्तियाँ सौंपी गई हैं। वर्तमान सन्तति अपने पूर्वजो की बनाई हुई व्यवस्था को बदल सकती है और इसलिए यह कहना भ्रांतिपूर्ण है कि जनता अपने पूर्वजों के वसीयतनामे मे बँधी है। चीफ जस्टिस ह्यूज (Hughes) के अनुसार, "हम सविधान के अधीन है लेकिन संविधान वह है जो न्यायाधीश बताते है।" जेम्स बैक (James Beck) के अनुसार, अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट "संविधान का सन्तुलन-केन्द्र (balance wheel) है।" चार्ल्स बीअर्ड (Charles Beard) के शब्दों में, "सुप्रीम कोर्ट सघीय प्रणाली का सर्वोच्च गुण (crowning feature) है।" यह निर्देश किया जाता है कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने अधिकार इस सीमा तक बढ़ा लिये हैं कि वह एक अनिर्वाचित (non-elective) उच्च-विधायिका (super-legislature) हो गया है। न्यायालय ने सम्पत्ति के अधिकार के पक्ष में अनुचित पक्षपात तथा कानूनी फार्मूलों पर अधिक निर्भरता प्रकट की है, और परिणामस्वरूप सामाजिक प्रगति मे रुकावट पडी है। अनेक विषयो में सुप्रीम कोर्ट ने कल्याणकारी कानूनों को अवैध घोषित कर दिया किन्तु जनता के आग्रह पर उसे अपना निर्णय बदलना ही पड़ा। किन्तु यू० एस० ए० में बहुत कम व्यक्ति ऐसे है जो न्यायिक पुनर्विचार (Judicial Review) को पूर्णतः हटाने का समर्थन करते है। सुधार के लिए अनेक सुझाव दिए गए हैं लेकिन जनता ने किसी को भी पसन्द नही किया है। *अनुभव सिद्ध करता है कि न्यायालय अस्थायी रूप* में राजनैतिक विभागों पर अवरोध रख सकते हैं, किन्तु निरन्तर दबाव

उनके विचारों को मान ही लेते हैं। न्यायिक पुनर्विचार का भविष्य न्यायिक संयम (judicial restraint) और भावी संकटों की तीव्रता और अवधि (intensity and duration of future crises) पर निर्भर करता है।

(१२) अमेरिका के संविधान की एक अन्य विशेषता 'लूट प्रणाली' (Spoils System) है जो १६वीं सदी में अपने सबसे बुरे रूप में प्रचलित थी। इस प्रणाली के अनुसार नये राष्ट्रपति के बनते ही केन्द्रीय सरकार के समस्त कर्मचारी बदले जाते थे। परिणाम यह था कि जब तक एक विशेष व्यक्ति राष्ट्रपति रहता, तब तक सब पदों पर उसके समर्थक रहते थे और वे ऐसी पूरी कोशिशें करते थे जिनसे उनकी पार्टी का उम्मीदवार राष्ट्रपति निर्वाचित या पुनर्निर्वाचित हो सके। सरकार का कार्य दलीय भावना से किया जाता था। यदि आगामी चुनावों में उनकी पार्टी हार जाती तो उन सबको अपना पद छोड़ना पड़ता था और नया राष्ट्रपति अपने समर्थकों को पदारूढ़ करता था। निर्विवाद रूप से भ्रष्टाचार, असामर्थ्य और गैर-जिम्मेदारी का बोल-बाला था। अनुभवी और योग्य सार्वजनिक अधिकारी निकाल कर उनके स्थान पर राजनैतिक सेवक नियुक्त किए जाते थे। सरकारी अफसर भ्रष्ट हो गए थे; प्रत्येक मौके पर प्रशासन में परिवर्तन होता था। पदों के इच्छुक व्यक्ति तथा मित्र राष्ट्रपति की नाक में दम कर देते थे। कांग्रेस के सदस्य गद्दियाँ बाँटने वाले बनते जा रहे थे। प्रशासन का स्तर गिर गया था और राजनीति दूषित हो गयी थी। इस प्रथा को समाप्त करने की माँग की गई। पैन्डलटन (Pendleton) अधिनियम १८८३ के द्वारा सरकारी कार्यालयों में नई नियुक्तियों के लिए प्रतियोगिता परीक्षा प्रणाली अपनाई गई। कुछ समय पश्चात् लगभग ८०% सरकारी नियुक्तियाँ प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर की जाने लगीं। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के काल में यह मात्रा कम हो गई।

(१३) अमेरिका की सरकार संघीय[1] (Federal) है। कनाडा के विपरीत और आस्ट्रेलिया के समान अवशिष्ट शक्तियाँ (residuary powers) राज्यों[2] को प्राप्त हैं और कुछ विशेष शक्तियाँ संघीय सरकार को सौंपी गई हैं। आरम्भ में

---

१. ब्राईस के मतानुसार, "अमेरिका की जनता इस विषय पर बहुत पहले ही सहमत हो गई थी कि उनके देश के लिए सम्भावित सरकार का प्रारूप संघीय हो। यह स्पष्ट है कि एकीय (unitary) सरकार इतने विस्तृत क्षेत्र के लिए यदि अव्यवहार्य नहीं तो अनुपयुक्त अवश्य होगी।"

२. जैफरसन (Jefferson) का कथन है, "मैं समझता हूँ कि संविधान की नींव इस आधार पर पड़ी है कि वे सभी शक्तियाँ जो संघीय सरकार को नहीं दी गई और न जिन शक्तियों के राज्य के पास रहने पर कोई प्रतिबन्ध है, वे सब राज्यों अथवा जनता के पास सुरक्षित है......। कांग्रेस के चारों ओर विशेष रूप से खींची गई सीमाओं से बाहर एक कदम भी जाने का अर्थ शक्ति के असीमित क्षेत्र पर अधिकार करना है।"

प्रोफेसर ह्वीयर (Wheare) ने कहा: "राज्यों के संघ के रूप में संयुक्त राज्यों (U. S. A.) की क्या विशेषता है? उत्तर यह है कि संयुक्त राज्यों का संविधान एक ऐसे संघ की स्थापना करता है जिसमें शक्तियों का विभाजन इस प्रकार हुआ है कि केन्द्रीय सरकार कुछ विषयों में संघ की राज्य सरकारों से स्वतन्त्र है और दूसरी ओर राज्य सरकारें कुछ विषयों में केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र हैं।"

केन्द्र कमजोर और राज्य मजबूत थे। इसलिए कोई आश्चर्य नही, यदि दक्षिणी राज्यों ने संघीय सरकार के विरोध मे झण्डा खड़ा किया और देश में १८६१ से १८६५ तक गृह-युद्ध हुआ। सर मारिस एमोस के शब्दों में, "राष्ट्रीय संघीय सरकार को शक्तियाँ सौंपना कुछ राज्यों के द्वारा दी गई छूट नही समझना चाहिए, बल्कि संयुक्त राज्य की जनता की ओर से प्रदत्त समझना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि इकाइयों की प्रभुसत्ता (sovereignty) पृथक्-पृथक् एक स्रोत से प्राप्त की गयी है और यदि यह सच है कि संघीय सरकार और ४८ राज्यों की प्रभुसत्ता (sovereignty) के मध्य मे सीमा रेखा खींचने का यह अर्थ है कि संविधान ने जो शक्तियाँ संघीय सरकार को स्पष्टतः अथवा ध्वनित रूप से (implication) प्रदान नहीं की हैं वे राज्यों को प्राप्त हैं तो इसका तात्पर्य यह नही कि राज्यों को प्राथमिकता दी गई है, परन्तु इसका कारण यह है कि दोनों के संयुक्त विधाता (common creator) अर्थात् जनता की वैसी ही इच्छा थी।"

अनुच्छेद १ की धारा ८ के अनुसार, अमेरिका की कांग्रेस को निम्न विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है :—

(१) कर, शुल्क (duties), चुंगी और उत्पादन कर लगाना और इकट्ठा करना, ऋण अदा करना और संयुक्त राज्यों के सामान्य हित और सामान्य प्रतिरक्षा (Common Defence) की व्यवस्था करना ; किन्तु समस्त देश में करों, शुल्कों, चुंगी और उत्पादन करों का स्तर समान रहेगा।

(२) संयुक्त राज्य की साख पर ऋण लेना।

(३) विदेशी राष्ट्रों से राज्यों मे तथा रैड इण्डियन ट्राइब्स के व्यापार को विनियमित करना।

(४) देशीयकरण (Naturalization—परदेशी को देशी के अधिकार देना) के लिए समान नियम बनाना तथा दिवालियेपन से सम्बन्धित समान कानूनों को संयुक्त राज्य के लिए निर्धारित करना।

(५) मुद्रा बनाना, उसका मूल्य स्थिर करना और विदेशी मुद्रा (foreign coin) का मूल्य निर्धारित करना। बाटों और मापों (Weights and Measures) का स्तर स्थिर करना।

(६) अमेरिका के जाली सिक्के और सिक्यूरिटियाँ बनाने वालों के लिए दंड-व्यवस्था करना।

(७) डाक-घर स्थापित करना।

(८) विज्ञान तथा लाभप्रद ललित-कलाओं की उन्नति के लिए निश्चित समयानुसार लेखकों और आविष्कारकों (inventors) के लेखों और आविष्कारों का उनके लिए एकाधिकार करना।

(९) सुप्रीम कोर्ट के नीचे के ट्रिब्यूनलों का निर्माण करना।

(१०) समुद्री लूटमार तथा अन्तर्राष्ट्रीय कानून भंग करने वालों को दण्ड देने के कानून बनाना।

(११) युद्ध की घोषणा करना ; स्थल और जल पर कैद करने के नियम बनाना।

(१२) सेना भर्ती करना और उसे कायम रखना, किन्तु उनके लिए खर्च का विनियोग (appropriation of money) दो वर्ष से अधिक समय के लिए न होगा।

(१३) नौ-सेना बनाना और कायम रखना।

(१४) जल-थल सेनाओं के लिए कानून बनाना।

(१५) संघ के कानूनों को लागू कराने, विप्लव (insurrection) दबाने के लिए और आक्रमण का विरोध करने के लिए सेना की सहायता लेना।

(१६) सेना को संगठित, सशस्त्र तथा अनुशासित करना, और उनके उन भागों का निरीक्षण करना जो कि संयुक्त राज्य की सेवाओं में लगे हों, इसी प्रकार राज्यों में अफसरों की नियुक्ति, कांग्रेस द्वारा निर्धारित अनुशासन के अनुसार सेना के प्रशिक्षण का अधिकार आदि आदि।

(१७) संयुक्त राज्य की राजधानी के दस मील वर्ग क्षेत्र के लिए सब प्रकार के कानून बनाना तथा उन स्थानों के लिए नियम बनाना जो कि व्यवस्थापिका के परामर्श से किले, मैगजीन (magazines), शस्त्रगृह (arsenal), जहाज बनाने, मरम्मत करने या सामान रखने का स्थान अथवा अन्य आवश्यक भवनों के लिए क्रय (purchase) किये जाएँ, तथा—

(१८) उपर्युक्त शक्तियों और संघीय सरकार, अथवा किसी विभाग अथवा किसी अफसर में निहित इस विधान द्वारा प्रदत्त समस्त शक्तियों को अमल में लाने के लिए कानून बनाने का अधिकार।

कांग्रेस की शक्तियों पर ये रुकावटें हैं—

(१) कांग्रेस धर्म की स्थापना अथवा उसके स्वतन्त्र प्रयोग को रोकने के लिए कोई कानून नहीं बना सकती और न ही भाषण, मुद्रण, सभा करने तथा कष्ट निवारणार्थ (redress of grievances) सरकार को प्रार्थना-पत्र देने की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(२) "नियन्त्रित सशस्त्र सेना स्वतन्त्र राष्ट्र की रक्षा के लिए आवश्यक होते हुए भी, नागरिकों के शस्त्र रखने तथा ले जाने के अधिकार को नहीं छीना जा सकेगा।"

(३) कोई सैनिक शान्ति काल में स्वामी (owner) की इच्छा के विरुद्ध उसके मकान में नहीं ठहराया जा सकता, और युद्ध काल में कानून द्वारा निर्दिष्ट रीति के अलावा और किसी तरह किसी सैनिक को किसी स्वामी के मकान में नहीं ठहराया जा सकता।

(४) जनता अपने शरीर (persons), मकानों, कागज-पत्रों (Paper) और निजी सामान (effects) में अनुचित (unreasonable) तलाशियों और जब्तों से सुरक्षित रहेगी।

(५) हत्या अथवा किसी कुख्यात अपराध (infamous crime) के मुकद्दमे

की सुनवाई ग्रांड-जूरी (grand-jury) के द्वारा होगी। किसी अपराधी को अपने विरुद्ध साक्षी (witness) होने के लिए विवश (compel) नहीं किया जाएगा।

(६) फौजदारी अभियोगों में, प्रत्येक अपराधी को अधिकार होगा कि उसका मुकद्दमा शीघ्र और सार्वजनिक रूप से निष्पक्ष जूरी (impartial jury) के द्वारा सुना जाये।

(७) वे समस्त साधारण मुकद्दमे जूरी के द्वारा सुने जायेंगे जो बीस डालर से अधिक से सम्बन्धित हों।

(८) न अत्यधिक जमानत (excessive bail) मांगी जायेंगी और न अत्यधिक जुर्माना किया जायेगा, और न ही क्रूर और असाधारण (unusual) दण्ड दिया जायेगा।

(९) इस संविधान में गिनाये गये अधिकारों का अर्थ उन अधिकारों की समाप्ति नहीं है, जो कि जनता को प्राप्त हैं।

यह भी व्यवस्था की गयी है कि संयुक्त राज्य के किसी नागरिक को मूल-वंश, रंग, लिंग अथवा पहले दास होने के कारण मताधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

संविधान का दसवाँ संशोधन यह व्यवस्था करता है कि वे शक्तियाँ जो इस संविधान के द्वारा संघीय सरकार को प्राप्त नहीं हैं और राज्य सरकारों के अधिकार-क्षेत्र के बाहर नहीं हैं, राज्यों अथवा जनता के पास सुरक्षित हैं।

संघीय केन्द्रीकरण (Federal Centralisation)—यह सत्य है कि आरम्भ मे केन्द्रीय सरकार दृढ़ नहीं थी। किन्तु कुछ कारणों ने इसकी शक्तियाँ बढा दी हैं। संविधान के संशोधन ने संघीय सरकार की शक्तियाँ बढाई। आरम्भ में संविधान के अनुच्छेद १ धारा १ का भाग १ केन्द्रीय सरकार को कुछ निश्चित दशाओं के अतिरिक्त प्रत्यक्ष कर (direct taxes) लगाने से रोकता था, किन्तु यह प्रतिबन्ध सोलहवें संशोधन में हटा दिया गया जिसमे व्यवस्था की गई थी कि 'कांग्रेस अनेक राज्यों को उसमे से हिस्सा न देते हुए, जनसंख्या अथवा संख्या के ऊपर किसी भी आय के स्रोत पर कर लगा और इकट्ठा कर सकती है।"

यू० एस० ए० के सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्रीय सरकार के अधिकारों को बढाया है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति सीनेट की पुष्टि के पश्चात् राष्ट्रपति करता है और परिणामस्वरूप वे सब के पक्षपाती बन गये हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की व्याख्या संघीय सरकार के हित में की है। ऐसा विशेषकर ध्वनित शक्तियों (implied powers) के सिद्धान्त के सम्बन्ध मे किया गया है जिसका वर्णन चीफ जस्टिस मार्शल ने निम्न शब्दों में किया है, 'यह सरकार कुछ गिनी हुई शक्तियो वाली है। यह अब सार्वजनिक रूप से स्वीकृत किया जाता है कि वह केवल स्वीकृत शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। किन्तु स्वीकृत [illegible] किस सीमा तक प्रयोग की जायें, यह प्रश्न सदैव उपस्थित रहा है और उपस्थित रहेगा जब तक हमारी व्यवस्था जीवित रहेगी...... सीमित हैं और इसकी शक्तियाँ बढ़ाई नहीं जाती हैं। किन्तु हम

विधान मण्डल (national legislature) को उन साधनों के सम्बन्ध में विवेकाधिकार (discretion) होना चाहिए जिनके द्वारा वह संस्था जनता का अधिकतम हित करने के उच्च कर्तव्यों को सबसे अच्छी रीति से पूरा करने मे समर्थ हो। यदि साध्य न्यायोचित हो, और वह संविधान के क्षेत्र के अन्दर हो तो वे समस्त साधन जो संविधान की भावना के अनुकूल हैं, सांवैधानिक कहे जायेंगे।" उदाहरणार्थ, संघीय सरकार को विदेशी तथा विभिन्न राज्यों मे "व्यापार की व्यवस्था" करने की शक्ति सौंपी गई थी। गर्भित शक्तियों के सिद्धान्त को लागू करने से कांग्रेस को रेल, जल, मोटर तथा वायु के द्वारा भार-वहन (transportation of goods), पाइप लाइनों के द्वारा तेल ले जाना, तार, टेलिफोन और रेडियो के द्वारा विचारों का संचार, यात्रियों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना आदि के अधिकार प्राप्त हो गए हैं। गृहयुद्ध में राष्ट्रपति लिंकन की सैनिक विजय तथा विशाल आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के विकास से जिनके लिए राष्ट्रीय कार्यवाही की आवश्यकता है, यू० एस० ए० की केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ बढ़ी हैं।

जनता के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में हुए परिवर्तनों ने भी केन्द्रीय सरकार की शक्तियों मे वृद्धि की है। मोटर-वाहन, रेलवे लाइन, तारघरों के विस्तार ने समस्त राज्य-सीमाएँ समाप्त कर दी है। संयुक्त राज्य औद्योगिक एवं वाणिज्यिक रूप से अविभाज्य देश बन गया है। परिणाम यह है कि उद्योग, व्यापार तथा वाणिज्य का राष्ट्रीय आधार पर निर्देशन किया जाता है। इस कारक (factor) ने संघ सरकार के हाथो को दृढ़ किया और राज्यों को दुर्बल किया है, जो कि व्यापार तथा उद्योग की समस्याओं का हल करने मे असमर्थ है।

राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक संस्थाओं के निर्माण तथा विकास के कारण भी राज्यों के सीमा-बन्धन दुर्बल हो गये हैं। राष्ट्रीय विषयों पर अधिक ध्यान दिया जाता है और समस्याओं पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार किया जाता है।

शिक्षा, सड़कों, राज्य-मिलिशिया, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधानों (industrial researches), जन स्वास्थ्य आदि के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों को अनुदान दिये जाने से भी केन्द्रीय सरकार का राज्यों के कार्य पर अधिक नियन्त्रण हो गया है।

राष्ट्रीय प्रेस ने जनता में सामान्य विचार तथा राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न की है। इससे जनता केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्ति देने के पक्ष में तत्पर हुई है।

श्वार्ट्ज (Schwartz) के अनुसार, नवीन संघवाद की भावना संघ को अधिक शक्तियाँ देने की विशेषता रखती है। अमेरिका की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था को केन्द्र (Washington) के अधीन किया जा रहा है। वाणिज्य के ऐसे रूप जिनका राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति पर तनिक भी प्रभाव पड़ता है, को संघीय आदेशों के अधीन कर दिया गया है। इस प्रकार जहाँ संघ की शक्ति बढ़ गई है वहाँ राज्यों की शक्ति का ह्रास हुआ है। राज्य उस क्षेत्र में किसी भी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकते जहाँ य सरकार का नियम नियमित रूप से लागू कर दिया गया है। इस प्रकार संघीय

शक्ति को पूर्ण स्थिति से दो पग और आगे बढ़ने का अवसर मिला है। जनहित के लिए कर लागू करने और व्यय करने की शक्ति केन्द्र के हाथ में है। इस प्रकार राज्यों को आर्थिक सहायता के लिए केन्द्र की ओर ताकना पड़ता है। बस, इसी नाते संघ का राज्यों पर निरन्तर प्रभुत्व बना रहता है। इन्ही आर्थिक सहायताओ को दृष्टि में रखकर सन् १६४६ मे सरकार की ओर से राज्य-संघीय सम्बन्ध का अध्ययन किया गया था। १६०० से पूर्व तो यह प्रश्न एक वैधानिक प्रश्न था, किन्तु उपरोक्त अध्ययन के पश्चात् यह प्रश्न नितान्त आर्थिक प्रश्न बन गया।

यद्यपि अमेरिकन राज्य अपनी सार्वभौमिक शक्तियो की प्राप्ति मे पिछड़ गए हैं तथापि सावैधानिक दृष्टि से उनकी पृथक् शासन प्रणाली अब भी वैसी है जैसी अमेरिकन गणराज्य की उत्पत्ति के समय थी। इसमे तनिक भी अनुचित नही कि अमेरिकन राज्यो की स्थिति इंग्लैंड की काउण्टियो और फ्रास के विभागो से कही अच्छी है। यद्यपि इस सत्य को झुठलाया नही जा सकता कि अमेरिकन राज्यो की शक्तियाँ दिनोदिन घटती चली जा रही है और केन्द्र इस दृष्टि से दृढ़तर होता चला जा रहा है तथापि इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अमेरिकम राज्यों के पास ऐसी शक्तियाँ रहेगी, जिन्हे आज तक इग्लैंड का कोई भी स्थानीय शासन प्राप्त करने मे असमर्थ रहा है। अमेरिकन राज्यों के हाथो मे नियम-निर्माण की ऐसी शक्तियाँ रहेगी, जिनका प्रयोग केन्द्रीय सरकार के नियम की अनुपस्थिति में किया जा सकेगा। स्थानीय नियन्त्रण और न्यायालय के कार्य-सचालन के लिए ये राज्य उत्तरदायी है। शिक्षा, संचार, पुलिस, *जन-स्वास्थ्य, जन-कल्याण आदि कई ऐसे कार्य हैं*, जिन पर अब भी राज्य के कर्मचारियों का नियन्त्रण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके कार्यो पर केन्द्र का आधिपत्य बढता जा रहा है, किन्तु अंग्रेजी स्थानीय स्वशासन के कार्यकर्ताओ की तुलना में इनकी शक्तियाँ अधिक है। यदि राज्य की सरकार को किसी प्रकार का नवीन कार्य करना है तो उसे वाशिंगटन की ओर नही ताकना पड़ता। इस दिशा में उसकी स्थिति इग्लैंड की काउण्टियों की तरह नहीं है।

पाट्टर (Potter) के अनुसार, अमेरिका की पार्टी प्रणाली (Party System) और वर्गीयता (Sectionalism), विशेष रूप से दक्षिण की, राष्ट्रीय केन्द्रीकरण (National Centralization) की प्रमुख राजनैतिक रुकावटें हैं, और राज्य (जिन्हे सविधान के अनुसार न नष्ट किया जा सकता है और न पुनर्गठित किया जा सकता है) इसके केन्द्र हैं। इसी प्रकार राज्यों मे स्थानीय सरकारें यद्यपि उन्हें राज्यो जैसा सावैधानिक संरक्षण (constitutional protection) प्राप्त नही है, केन्द्रीकरण के मार्ग की रुकावटें हैं। अमेरिका में पूर्ण राजनैतिक और सावैधानिक केन्द्रीकरण असम्भव है।

"अमेरिकन राजनीति में विकेन्द्रीकरण (Decentralization) पक्षपाती शक्तियों की सबसे बड़ी कमजोरी शायद यह है कि पार्टी संगठन राज्यों के आधार पर बैंटा हुआ है। परन्तु देश के वर्गीय विभाजन (sectional division) से ... नही बैठता। इस प्रकार राष्ट्रीय केन्द्रीकरण (national ... विरोध (resistance) करने वाले दो तत्त्व मिलकर काम कर रहे हैं।

समकक्ष स्थानीय सरकारों में, चाहे वे एक ही पार्टी के हाथ में क्यों न हों ; सहयोग होना बहुत कठिन है। ऐसा विशेष रूप से अमेरिकन राज्यों के सम्बन्धों के बारे में बहुत सही है। फलस्वरूप जब कभी भी किसी प्रदेश (region) में कोई महत्व का कार्य करना होता है, तब आवश्यक रूप से राष्ट्रीय सरकार से सहायता की अपील की जाती है। यह एक महत्व की बात है कि टैनेसी वैली अथारिटी (Tenesee Valley Authority) जो कि इस शताब्दी का प्रादेशिक आधार पर उन्नत किया जाने वाला प्रमुखतम सरकारी विकास कार्य है, राष्ट्रीय प्रशासन कार्य (National Administrative Devolution) का परिणाम है, अन्तर्राज्य प्रादेशिक सहयोग का नहीं।

यदि राजनैतिक प्रणालियों को उनके सम्बन्ध की सफाई के आधार पर नापा जाए तो आधुनिक अमेरिका की संघीय प्रणाली खरी नहीं उतरेगी। राज्य और राज्यों की पार्टियाँ एकरूप केन्द्रीकरण (uniform centralization) को रोकती हैं लेकिन वे प्रभावी सरकारी विकेन्द्रीकरण (decentralization) स्थापित करने में भी असमर्थ हैं। फलस्वरूप, विभिन्न प्रकार के असाधारण रूप से अवस्थित तथा परस्पर विरोधी प्रशासनिक (administrative) और राजनैतिक समझौतों का जन्म हो जाया करता है। सरकारी संघीयता (co-operative federalism) के तरीके से कुछ व्यवस्था के निर्माण होने की आशा है। आधुनिक पार्टी प्रणाली में संगठनकारी प्रवृत्तियों का जन्म होने से भी कुछ व्यवस्था स्थापित होने की आशा है। लेकिन संयुक्त राज्य की सरकार तुलना में एकात्मक (unitary) राज्यों की सरकारों से, उदाहरणार्थ ग्रेट ब्रिटेन की सरकार से, सदा अधिक जटिल बनी रहेगी। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में राष्ट्र-राज्य संघ प्रणाली निर्माण के कारण ही यह फल हुआ है।

"जो चीज प्राप्त हुई, वह ऐसी एकता (unity) थी जिसे अन्य किसी रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता था। अभी तक जो प्राप्त हुआ है वह स्थानीय स्वायत्तता (local autonomy) है। यह एक महत्वपूर्ण लाभ है और इन्हीं कारणों से संघीय सरकार, छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर बनाए जाने वाले बड़े राज्यों के लिए उपयुक्त सरकार समझी जाती है, जैसा कि स्विट्ज़रलैंड, कनाडा और आस्ट्रेलिया के सम्बन्ध में हुआ। शायद किसी दिन पश्चिमी योरुप और संसार के लिए भी ऐसी ही सरकार उपयुक्त समझी जाए। इसमें कठिनाई यह है कि जिस समय अधिक गठित होने का समय आता है—(मगर यह स्पष्ट नहीं है, कि पिछले बीस वर्षों के बड़े-बड़े परिवर्तनों के पश्चात् भी अमेरिका में ऐसा समय आया है या नहीं)—तब संघीय संविधान की कठोरता एकात्मक सरकार के निर्माण में रुकावटें पैदा कर देती है। हिटलर (Hitler) शीघ्रता से एक संघीय गणतन्त्र (Federal Republic) को एकात्मक (unitary) सरकार में परिवर्तित कर सका, परन्तु ऐसा कार्य करना, प्रजातन्त्रीय राजनीतिज्ञों की सामर्थ्य के बाहर है। संघवाद (Federalism) एक भारी बन्धक (heavy mortgage) के समान है, इसके सहारे एक गृह का निर्माण हो सकता है, परन्तु उसको चुकाना (pay off) बहुत कठिन है।"

(१४) अमेरिका मे अध्यक्षात्मक (presidential) सरकार है न कि ससदीय। उस देश मे कार्यपालिका इगलैंड के समान विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नही है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अमेरिका का राष्ट्रपति तथा उसके मन्त्री कांग्रेस में नही बैठते। और इसलिए कांग्रेस मे की गई आलोचना का राष्ट्रपति तथा मन्त्रियों पर कुछ प्रभाव नही पडता। राष्ट्रपति एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है और समय समाप्त होने तक बना रहता है। इगलैंड के प्रधान मन्त्री का कार्य-काल, हाउस ऑफ कामन्ज़ के विपरीत मत द्वारा किसी भी समय समाप्त हो सकता है, किन्तु अमेरिका का राष्ट्रपति पूरे चार वर्ष तक अपने पद पर रहता है। कांग्रेस राष्ट्रपति को पदच्युत नहीं कर सकती और यही बात राष्ट्रपति पर भी लागू होती है। हाऊस ऑफ रिप्रेजेन्टेटिव्ज के सदस्य दो वर्ष के लिए निर्वाचित होते है और सैनेट के ६ वर्ष के लिए। राष्ट्रपति को इन्हें भंग करने का अधिकार नही है। कांग्रेस इस विषय में स्वतन्त्र है।

इसमे तनिक भी अनुचित नही कि आरम्भ मे संविधान केवल सरकार का ढांचा था, अब यह एक जीवित लेख्य हो गया है। लिखित तथा बहुत अवसरो पर संशोधित होते हुए भी यह अमेरिका की जनता के पग से पग मिला कर चला आ रहा है और इसने उन्हें उन्नति तथा विकास[1] के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता दी है।

(१५) अर्नेस्ट ग्रिफिथ (Ernest Griffith) के अनुसार, सविधान के आदर (reverence) के लिए '*अमेरिका की जनता की सराहना तथा निन्दा की जाती है।* सरकार के अस्तित्व पर विश्वास करना पडता है .... आज विश्व मे अपने सम्मान तथा सुसम्पन्नता का श्रेय अमेरिकन लोग संविधान बनाने वाले पूर्वजों (Founding Fathers) की बुद्धिमत्ता को देते है। वे ठीक भी हो सकते हैं। यह बुद्धिमत्ता उस लेख्य (Document) की सरलता मे निहित है जिसकी व्यवस्थाएँ आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तनीय सिद्ध हुई है।"

संविधान का विकास—फिलाडेलफिया कन्वेन्शन (Philadelphia Convention) मे निर्मित मौलिक (original) अमरीकी संविधान बहुत ही छोटा था। इसमें एक प्रस्तावना (Preamble) और सात अनुच्छेद (articles) थे। लेकिन पिछले १७० वर्षो मे सविधान का विकास हुआ है। लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) का यह कथन उचित ही है कि "*राष्ट्र के परिवर्तन के साथ अमरीकी सविधान भी बदला है।* मनुष्य इसे किसी और ही भावना से देखने लगे है और इसलिए इसकी स्वयं की आत्मा (spirit) बदल गयी है।" प्रो० बीअर्ड (Prof Beard) ने अमरीकी सविधान के विकास के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है—"यह एक मुद्रित लेख्य

१. फिनलैटर (Finletter) के अनुसार, "अमेरिका की सरकार के विषय में आज कार्यपालिका एवं कांग्रेस के मध्य का झगडा अत्यन्त द्रष्टव्य तथ्य है। यदि इसका उपाय नहीं किया जाता, तो यह एक भयंकर तथ्य सिद्ध हो सकता है। कठिनाई यह है कि यह विवाद हमारी प्रणाली में जमा हुआ पाया जाता है। निर्वाचित नेता की शक्तियों का उन संस्थाओं ने अपहरण (snatched) कर लिया है जिनको शक्ति न देने का निश्चय किया गया था। राष्ट्रपति अपनी नीतियों को केवल कांग्रेस के अधीन करके सफल बना सकता है।"

(printed document) है, जिसकी व्याख्या न्यायिक निर्णयों (judicial decisions), नज़ीरों (precedents), प्रथाओं (practices) ने की है और समझौतों (understandings) तथा महत्त्वाकांक्षा ने जिसे स्पष्ट किया है। संक्षेप में, वास्तविक संविधान जीवित व्यक्तियों द्वारा व्यवहार में लाए जाने वाले सामान्य नियमों का जीवित मूर्त स्वरूप (living body of general prescriptions) है।"

(१) अमेरिकन संविधान का विकास कई प्रकार से हुआ है। इसका विकास कांग्रेस (Congress) तथा राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा पास किए गए विधानों के कारण हुआ। संविधान का प्रारम्भिक (original) मसविदा एक ढांचा मात्र था और विस्तार की बातों को कांग्रेस तथा राज्य विधान मण्डलों पर छोड़ दिया गया था। संविधान में सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) का जिक्र मात्र ही किया गया है, लेकिन इसके सम्बन्ध में विस्तार से निर्णय करने का कार्य कांग्रेस पर छोड़ दिया गया था। इसी प्रकार अन्य फेडरल कोर्टों (Federal Courts) का निर्माण भी कांग्रेस पर छोड़ दिया गया था। फलस्वरूप, १७८९ में जुडिशियल एक्ट (Judicial Act) पास किया गया जिसने अमेरिका में न्याय प्रणाली की नींव डाली। सरकार के विभिन्न विभागों का संगठन भी कांग्रेस द्वारा पास किए गए विधान द्वारा निश्चित किया जाता है। १९४६ में प्रेजीडेंशल सक्सेशन एक्ट (Presidential Succession Act) पास किया गया, जिसमें राष्ट्रपति पद के उत्तराधिकारी की व्यवस्था की गई है। संविधान ने कांग्रेस को वे सब विधान बनाने का अधिकार दिया है, जो इसको दी गई शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं। इस व्यापक शक्ति (general power) का प्रयोग करके कांग्रेस ने विशाल सुरक्षा संगठन, बहुत से प्रशासनिक बोर्डों और ब्यूरो (Administrative Boards and Bureaus) की स्थापना की है, "विशाल साम्राज्य पर आधिपत्य कर लिया है, शिक्षा, बैंकिंग, बीमा, निर्माण, परिवहन (transport), विद्युत् का व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया है और एक जटिल (complicated) और औद्योगिक रूप से सम्पन्न राष्ट्र के आर्थिक और सामाजिक जीवन को अनुशासित करने की सत्ता प्राप्त कर ली है।" प्रायः कांग्रेस द्वारा की गई संविधान की व्याख्या में सुप्रीम कोर्ट हस्तक्षेप नहीं करता। बीयर्ड (Beard) के अनुसार, "सुप्रीम कोर्ट यह घोषणा कर चुका है कि यह एक स्थायी सिद्धान्त है कि वह कांग्रेस द्वारा की गयी व्याख्याओं का बहुत आदर करेगा और उनको तभी अमान्यता दी जायगी जब कि वे स्पष्ट रूप से बहुत ही गलत हों।"

(२) कार्यपालिका (Executive) के द्वारा भी अमेरिकन संविधान का विकास हुआ है। संविधान पर वाशिंगटन, जैक्सन (Jackson), लिंकन (Lincoln) और रूज़वेल्ट (Roosevelt) जैसे राष्ट्रपतियों का प्रभाव, विभिन्न प्रकार से पड़ा है। संविधान में राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था नहीं है, लेकिन वाशिंगटन ने इसकी व्यवस्था की और कालान्तर में यह विकसित हो गयी। राष्ट्रपति को दी गयी शक्तियों के प्रयोग के कारण वह विधायी क्षेत्र (legislative field) में भी नेता हो गया है, यद्यपि संविधान की धाराओं में उसे यह कार्य नहीं सौंपा गया। संविधान के ... केवल कांग्रेस ही युद्ध की घोषणा कर सकती है, लेकिन बहुत से अवसरों पर

अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने (बिना कांग्रेस की आज्ञा के) संसार के विभिन्न भागों में अमेरिकी सेनाओं को युद्ध लड़ने अथवा युद्ध लडने में तत्पर रहने के लिए भेजा है। डेलीगेटेड (delegated) विधान ने कार्यपालिका की शक्ति को बढ़ा दिया है। यद्यपि संविधान मे इसकी कोई व्यवस्था नही की गयी थी। मनरो (Munro) के अनुसार, "वे (नियम तथा रेगुलेशन्स) संविधान रूपी तने (trunk) पर उगने वाली शाखा की प्रशाखाओं (twigs) के समान हैं।"

(३) अमेरिकन संविधान के विकास मे सुप्रीम कोर्ट ने भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। ऐसा विभिन्न धाराओं की व्याख्या के द्वारा हुआ है। यह ठीक ही कहा गया है कि किसी वाक्य की नयी व्याख्या करने का मतलब है उसे नये अर्थ (meaning) प्रदान करना और नये अर्थ देने से वह बदल जाया करता है। इस तरह सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की वृद्धि की है। इसलिए कोई आश्चर्य नही कि इसे सदा जारी रहने वाला कन्वेन्शन (continuous convention) कहा जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने ही कांग्रेस की ध्वनित शक्तियों (implied powers) के सिद्धान्त (doctrine) की स्थापना की। इसी ने जन्मजात शक्तियों (inherent powers) के सिद्धान्त और संविदाओं (contracts) की पवित्रता (sanctity) का प्रतिपादन किया। सुप्रीम कोर्ट ने बर्खास्त (dismissed) करने की पूर्ण शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान की है। इसने वाणिज्य (commerce), सेना (armed forces), संचार (communications), परिवहन (transport) इत्यादि शब्दो की उदार व्याख्या (liberal interpretation) की है। मनरो (Munro) के अनुसार, "अपनी न्यायिक व्याख्या (judicial interpretation) की सहायता से, सुप्रीम कोर्ट ने वाणिज्य (Commerce) शब्द को तोड़-मरोड़ दिया है ताकि उसके अर्थ समयानुकूल हो सकें।"

(४) निरूढ़ियों (Conventions) के द्वारा भी संविधान में काफी परिवर्तन किये गये हैं और इस सम्बन्ध मे निर्देश भी किया जा चुका है। ये निरूढ़ियाँ राष्ट्रपति के चुनाव, मन्त्रिमण्डल के विकास, पार्टी प्रणाली के विकास, राष्ट्रपति के पुनर्निर्वाचन, सैनेट सम्बन्धी सौजन्य (Senatorial Courtesy) इत्यादि से सम्बन्ध रखती हैं। डा० बीयर्ड (Beard) के अनुसार, 'हमारी राजनैतिक पद्धति मे, कानूनो (Statutes) अथवा संशोधनो (amendments) द्वारा क्रान्ति का विकास नही हुआ, बल्कि सरकारी ढाँचे को चलाने मे संलग्न, राजनैतिक पार्टियों की प्रथाओं द्वारा सम्भव हो सका है।"

(५) संविधान का विकास, समय-समय पर होने वाले संशोधनों के द्वारा भी हुआ है। अब तक केवल २२ संशोधन किये गए है। पहले दस संशोधन १७६१ में किये गए। अन्य संशोधन समय-समय पर किये गए हैं। चूंकि संशोधन करने की पद्धति बहुत लम्बी है, इसलिए इस ढंग से संविधान का अधिक विकास नहीं हो सका है।

Suggested Readings

Beard, C. A. : American Government and Politics
Beck, James : Constitution of the United States.
Benson, G. C. S. : The New Centralisation, 1941.
Brogan, D. W. : The American Political System, 1948.
Brogan, D. W. : An Introduction to American Politics, 1954.
Bryce, James : The American Commonwealth, 1888.
Bryce, James : Modern Democracies
Burns and Peltason : Government by the People.
Clark, J P. : The Rise of a New Federalism, 1938
Comfort, Knappa and Shull : Your Government.
Darwell : The American Political Scene.
Dimock : The American Government in Action.
Ferguson and McHenry . The American System of Government.
Garner, J. W. : Government of United States.
Gosnell and others . Fundamentals of American System of Government.
Haskin The American Government Today.
Johnson : Government in the United States
Laski : The American Democracy.
Munro, W B : The Government of the United States, 1947.
Ogg and Ray . Introduction to American Government
Patterson : Presidential Government in the United States.
Potter, Allen, M. : American Government and Politics
Pritchett, C. H. · The American Constitution, 1959.
Sayle : An Outline of American Government
Schwartz, Bernard : American Constitutional Law.
Stannard, H. : The Two Constitutions, 1950.
Tourtellot, A. B. The Anatomy of American Politics, 1950
Tresolini, R. J. : American Constitutional Law, 1959
Wilson, Woodrow : Congressional Government.
Willis . Constitutional Law.
Willoughby : The Constitutional Law of the United States.
West, W. R. : American Government, 1939
Zink, H. : Government and Politics of the United States.
Zink, H. : A Survey of American Government, 19[illegible]

अधिकांश निर्वाचक चुने जाते हैं। यह ठीक ही कहा गया है कि अमेरिका का प्रत्येक लड़का राष्ट्रपति हो सकता है यदि वह बड़े राज्यों में से किसी एक का निवासी है।

लार्ड ब्राइस के अनुसार, "प्रत्याशी ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सार्वजनिक जीवन के किसी क्षेत्र में कोई अच्छा कार्य करने के लिए प्रसिद्ध हो—यह कांग्रेसमैन, राज्य गवर्नर, किसी बड़े नगर का मेयर, अथवा मन्त्रिमण्डल का मन्त्री अथवा राजदूत, न्यायाधीश अथवा असाधारण रूप से प्रसिद्ध पत्रकार (prominent journalist) हो सकता है।"

राष्ट्रपति विल्सन (President Wilson) का कथन है कि "महान् राष्ट्र का नेतृत्व वह व्यक्ति नहीं कर सकता, जो केवल सड़कों पर होने वाली अफवाहों अथवा समाचार पत्रों की रायों को दोहराता फिरे। राष्ट्र का नेतृत्व वह करता है, जो इन चीजों से कुछ अधिक सुनता है, अथवा वह, जो इन्हें सुनकर, ज्यादा सुलझे हुए ढंग से समझता है, उन्हें एकत्रित करता है, और उन्हें एक सामान्य अर्थ प्रदान करता है; यह सड़कों की अफवाहों को जबान से नहीं निकालता। लेकिन नए युग के नए सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। वह व्यक्ति जिसके लिए राष्ट्र की ध्वनियाँ मिलकर एक अर्थ और एक नया ज्ञान देती हैं ताकि वह वे बातें कह सके जिन्हें अन्य कोई व्यक्ति नहीं जानता, जो कि सामान्य बातचीत का सामान्य अर्थ बता सके, ऐसा व्यक्ति ही महान्, स्वतन्त्र प्रजातन्त्रीय राष्ट्र का नेतृत्व कर सकता है।"

लार्ड ब्राइस ने यह प्रश्न इन शब्दों में रखा है कि अमेरिका में महान् व्यक्ति राष्ट्रपति क्यों नहीं चुने जाते: "बहुधा यूरोप निवासी पूछते हैं और अमेरिका निवासी सदा इसकी व्याख्या नहीं करते कि क्या कारण है कि इस महान् पद पर जो विश्व में पोप पद को छोड़कर और सबसे ऊँचा पद है और जिस पर कोई भी अपनी योग्यता से पहुँच सकता है, महान् तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति आसीन नहीं होते। जब जैफ़रसन, एडम्स और मैडीसन के साथ क्रान्ति के नायकों का स्वर्गवास हुआ, तब से जनरल ग्रान्ट (General Grant) के अतिरिक्त और कोई ऐसा महान् व्यक्ति इस पद पर आसीन नहीं हुआ जिसका नाम राष्ट्रपति बनने पर भी अमर रहा हो और अब्राहम लिंकन के अतिरिक्त और किसी राष्ट्रपति के दुर्लभ और चित्त को आकर्षित करने वाले गुण, सुनहरे अक्षरों में नहीं लिखे गए।" लार्ड ब्राइस के इस कथन को चुनौती दी गई है। यह निर्देश किया गया है कि यू० एस० ए० ने इंगलैंड के प्रधान मन्त्रियों के समान अनेक अपूर्व और चित्त को आकर्षित करने वाले राष्ट्रपति उत्पन्न किए हैं। फ्रांस के विषय में भी यही सत्य है। रूज़वेल्ट, क्लीवलैंड, आइज़नहॉवर और विल्सन के चित्ताकर्षक गुणों का उल्लेख किया जाता है। हैमिल्टन के अनुसार, "राष्ट्रपति के पद पर विरला ही ऐसा व्यक्ति पदारूढ़ हो सकता है जिसमें पर्याप्त मात्रा में वाञ्छनीय योग्यताएँ न हों..........। यह कहना अधिक ठीक नहीं होगा कि उक्त पद पर सदा अबाध रूप से सर्वोत्तम योग्य एवं गुणज्ञ व्यक्तियों के आरूढ़ होने की सम्भावना है।"

अमेरिका के राष्ट्रपति के वेतन तथा अन्य खर्चे कांग्रेस निर्धारित करती है और

का। राष्ट्रपति विशेष की पदावधि काल में इसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता। १६०६ और १६४७ के बीच में राष्ट्रपति का वेतन ७५,००० डालर प्रतिवर्ष रहा है। १६४६ में इसे बढ़ाकर १,००,००० डालर प्रतिवर्ष कर दिया गया। साथ ही ५०,००० डालर खर्चे के लिए टैक्स से मुक्त एलाउन्स दिया जाता है। राष्ट्रपति के परिवहन व्यय, सरकारी दावतों इत्यादि, ह्वाइट हाउस (White House), जो कि राष्ट्रपति का अधिकृत निवास है, पर होने वाले खर्चों के लिए बजट (Budget) में अलग व्यवस्था की जाती है।

संविधान यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति चार वर्ष के लिए निर्वाचित किया जायगा। दूसरी बार एक ही व्यक्ति के राष्ट्रपति के पद पर पुर्ननिर्वाचित होने में कोई सांवैधानिक बाधा नहीं है। किन्तु यू० एस० ए० में यह निरूढि स्थापित हो गई है कि कोई व्यक्ति तीसरी बार राष्ट्रपति निर्वाचित नही होता। इस निरूढ़ि को स्थापित करने वाला स्वयं जार्ज वाशिंगटन था जो कि अमेरिका का प्रथम राष्ट्रपति था तथा जिसे ठीक ही राष्ट्रपिता (Father of Nation) कहा जाता है। यह कहा जाता है कि १८७५ में जनरल ग्रान्ट तीसरी बार नामजद होने के लिए उत्सुक-सा था। किन्तु एक प्रस्ताव पास किया गया कि "इस सदन के विचार मे, संयुक्त राज्य के वाशिंगटन तथा अन्य राष्ट्रपतियों द्वारा स्थापित यह दृष्टान्त कि दूसरी पदावधि के पश्चात् राष्ट्रपति को रिटायर हो जाना चाहिए, सार्वजनिक सहमति (universal concurrence) से हमारी गणराज्य प्रणाली की सरकार का अंग बन गया है और अब तक की इस सम्माननीय परिपाटी (custom) को किसी भी प्रकार छोड़ना मूर्खता, देश के विरुद्ध (unpatriotic) और हमारी स्वतन्त्र संस्थाओं के लिए खतरनाक होगा।" परिणाम यह हुआ कि जनरल ग्रान्ट तीसरी बार खड़ा नहीं हुआ। थियोडोर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) ने तीसरी बार चुनाव लड़ा, और उसको हराया गया। किन्तु इस निरूढ़ि का १६४० मे उल्लंघन किया गया जब कि फ्रांकलिन डी० रूजवेल्ट तीसरी बार राष्ट्रपति चुना गया। यही नहीं, वह १६४४ मे चौथी बार भी राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ। पर उसकी १६४५ में मृत्यु हो गई। इस उल्लंघन के सम्बन्ध में यह तथ्य है कि धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) से प्रजातन्त्रीय राष्ट्रों के अस्तित्व को बहुत बड़ा भय था। किन्तु, तीसरी पदावधि के विषय मे निरूढ़ि बहुत दृढ़ थी। इस निरूढ़ि को १६५१ में संविधान के २२-वें संशोधन द्वारा कानूनी रूप दिया गया।

संविधान के अनुसार, प्रत्येक अधि-वर्ष (leap year) के बाद आने वाली २० जनवरी को राष्ट्रपति का कार्य-काल समाप्त होता है और तब उसका उत्तराधिकारी पदारूढ़ होता है। यदि राष्ट्रपति की मृत्यु चार वर्ष के अन्दर-अन्दर हो जा[illegible] उप-राष्ट्रपति उसके पद को सम्भाल लेता है और शेष अवधि मे राष्ट्रपति [illegible] करता है। यह है जो कुछ वास्तव में घटित हुआ जब राष्ट्रपति [illegible] १६४५ में स्वर्गवासी हुए और उनके उत्तराधिकारी हैरी ट्रूमैन हुए [illegible] यू० एस० ए० के उप-राष्ट्रपति थे। १६४७ का एक अधिनियम यह

है कि उपराष्ट्रपति की मृत्यु होने पर उसका उत्तराधिकारी हाऊस ग्राफ़ रिप्रेजेन्टेटिव्स का स्पीकर बनेगा।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया (Procedure of Election of President)—अमेरिकन संविधान के निर्माताओं ने राष्ट्रपति के चुनाव के तरीके को निश्चित करने पर बहुत समय लगाया। निर्णय पर पहुँचने से पहले बहुत-सी योजनाओं पर विचार किया गया। जनता द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव (direct election) में जोरदार भाषण करने वालो के लिए क्षेत्र बनने का अवसर होने के कारण, उसे अस्वीकार कर दिया गया। हैमिल्टन (Hamilton) के शब्दों में, ऐसा ढंग पसन्द किया गया "जिसमें शोर-शराबे और अव्यवस्था को न्यूनतम स्थान प्राप्त हो", और जिससे समाज के असाधारणतया हिंसक आन्दोलनों की चपेटों से बचा रहे। कांग्रेस द्वारा राष्ट्रपति के चुनाव के तरीके को पसन्द नहीं किया गया क्योंकि इससे राष्ट्रपति कांग्रेस के हाथ की कठपुतली बन जाता। साथ ही ऐसा ढंग शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त (Principle of Separation of Powers) जिसको सविधान निर्माताओं ने अपनाया था, उसके विरुद्ध था। अन्त मे अप्रत्यक्ष (indirect election) की प्रणाली स्वीकार कर ली गयी।

संविधान साधारण विधि निश्चित करता है और राज्यों को पर्याप्त आजादी देता है। इसके अनुसार, "प्रत्येक राज्य को अपने विधान-मण्डल के आदेशानुसार इतने 'निर्वाचक' चुनने चाहिएँ जितने कि उस राज्य से सैनेट और प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) के सदस्य हों। जैसे एक राज्य के दो सैनेटर और तीन प्रतिनिधि है, तो उसे पाँच निर्वाचक चुनने हैं। समय आने पर, ये निर्वाचक एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, और लिखित रूप मे अपने वोट दो व्यक्तियों को देते हैं जिनमे से कम से-कम एक उस राज्य का निवासी न हो जिस राज्य की ओर से वे निर्वाचक नियुक्त हुए हैं। उसके पश्चात् उनके वोटों को बक्स में सील लगाकर सैनेट के सभापति के पास भेज दिया जाता है जो कांग्रेस के दोनों सदनो की उपस्थिति में उनको गिनता है और परिणाम की घोषणा करता है। सर्वाधिक वोट प्राप्त करने वाले को राष्ट्रपति घोषित करना पड़ता है और उससे कम वोट प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यू० एस० ए० का उप-राष्ट्रपति घोषित किया जाता है।

राष्ट्रपति के चुनाव विधि सम्बन्धी सांविधानिक उपबन्ध केवल कुछ काल तक ही चले। १७६६ में ही, सबने यह भली प्रकार समझ लिया था कि राष्ट्रपति के निर्वाचक गणो मे अधिकाश एडम्स (Adams) अथवा जैफरसन (Jefferson) को वोट देंगे। १८०० से सुसंगठित राजनैतिक दल राजनैतिक मंच पर प्रकट हो गए और राष्ट्रपति के निर्वाचक इस समझौते (understanding) पर चुने गए थे कि वे अपनी पार्टी के मनोनीत (nominated) व्यक्ति को वोट देंगे। परिणाम यह हुआ कि आरम्भिक योजना (original plan) का हृदय दस वर्ष मे काट कर हटा दिया गया और उसके पश्चात् इसे ज्यों-का-त्यों करने का कभी प्रयत्न नहीं किया गया।"

नयी निरूढ़ि के परिणामस्वरूप राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रणाली अप्रत्यक्ष होने के स्थान पर, जैसा कि संविधान में आरम्भ मे व्यवस्था की गयी थी, प्रत्यक्ष हो गई

है। राष्ट्रपति के निर्वाचक आम मतदान द्वारा चुने जा की अवधि में नहीं हटाया जा राष्ट्रीय सभा (National Party Convention) के म द्वारा हटाया जा सकता है। के लिए बँधे होते हैं। राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचकग रिश्वत, अथवा किसी बड़े का सब विवेकाधिकार समाप्त हो गया है। न्यायाधीश जैक्सन्तिनिधि सभा महाभियोग के अनुसार, "यह व्यवस्था न चली। यद्यपि मतदाता अवसर ह है जब सुप्रीम कोर्ट का स्वतन्त्र तथा इज्जतदार होते हैं, लेकिन अधिकृत रूप से (of के लिए ⅔ बहुमत की पार्टी के पिट्ठू और बौद्धिक दृष्टि से शून्य हो जाते हैं।" ने सामान्य न्यायालयों

"They always voted at their party's call

And never thought of thinking themselvesıctions of the

स्वीकृत प्रणाली के बहुत से लाभ बताये जाते है। (१) इसमें, उनमें से कुछ अपने अस्तित्व के लिए "जनता के अलावा और सभी से स्वतन्त्र" रहतं(usages) से निर्वाचक गण (Electoral College) के द्वारा जनता ही काम कर

(२) इससे अशान्ति (tumult) और अव्यवस्था (disorder) के अवसर ६-राष्ट्रपति क्योंकि निर्वाचक गण के बहुत से सदस्य होने तथा विभिन्न स्थानों पर कि वह अधिवेशन होने के कारण, वे अपनी भावनाओं का उफान जनता तक नहीं प्रशास- पायेंगे। (३) निर्वाचकों (electors) की इस निष्पक्ष और विभाजित स्थिति को कारण षड्यन्त्रों और रिश्वत के जरिये आगे बढ़ने मे रुकावट पड जायगी क्योंm) निर्वाचक गण का निर्माण केवल राष्ट्रपति को चुनने के लिए किया जायगा औरा कार्य समाप्त होने के पश्चात् यह तुरन्त भग हो जायगा। (४) इसके कारण राष्ट्रपति का चुनाव वही लोग कर सकेंगे, जो राष्ट्रपति पद के लिए आवश्यक गुणों को अच्छी प्रकार समझ सकेंगे, और जिनके पास इन गुणों की भली भाँति जाँच करने के लिए आवश्यक बातों की जानकारी और योग्यता होगी। हैमिल्टन के अनुसार, "चुनाव प्रणाली से यह नैतिक निश्चिन्तता (moral certainty) पैदा होती है कि राष्ट्रपति पद कभी ऐसे व्यक्ति को नहीं मिल सकेगा जिसमें उस पद की उपयुक्त योग्यता नही होगी। घटिया दर्जे के षड्यन्त्रो की योग्यता और प्रसिद्ध प्राप्त करने की घटिया कला होने से किसी व्यक्ति को एक राज्य मे तो ऊँचा पद प्राप्त हो सकता हैं लेकिन राष्ट्र का आदर और विश्वास प्राप्त करने के लिए उसे कुछ अन्य प्रकार के गुणो और योग्यताओ की आवश्यकता होगी और संयक्त राज्य के राष्ट्रपति के महान् पद की प्राप्ति के लिए वे काफी मात्रा में होनी चाहिएँ।"

राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्येक तीन वर्ष के नवम्बर मास में होता है। राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए राजनैतिक दल कई मास पूर्व सक्रिय आन्दोलन (campaign) प्रारम्भ करते हैं। निर्वाचन आन्दोलन (election campaign) को "विश्व मे सबसे बड़ा राजनैतिक युद्ध" (the greatest political battle) कहा गया है। चार्ल्स बेयर्ड (Charles Beard) के अनुसार, "यह एक विशाल कार्य होता है, इसमें व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षाएँ, वर्गों के हित, और समस्त देश का भाग्य दाँव पर लगा होता - अमेरिका का लगभग प्रत्येक व्यक्ति इसमें भाग लेता है—ह्वाइट हाउस (W House) मे राष्ट्रपति से लेकर जो अपने पुनर्निर्वाचन या अपने उत्तराधिकार

... पालिश करने वालों तथा गैरेज में काम करने वाले ... उम्मीदवार की अच्छाई और बुराई में उसी विश्वास के ... जैसा कि किसी हाल की इनामी कुश्ती (prize fight) के ... इसमें भाग लेते हैं। इस कार्यक्रम में अन्तहीन सार्वजनिक ... होता है, भाषण होते हैं, शोर-शराबा और बैलट डालने का ... राष्ट्रीय कन्वेन्शन (National Convention) के लिए हजारों ... व्यय होता है। कुछ महान् महत्त्वाकांक्षी नेताओं पर ध्यान केन्द्रित ... जनता को अपनी-अपनी रुचि के उम्मीदवारों के गुण दिखाने के लिए ... हो जाता है, और प्रकाशनों, जलसों, प्रतिनिधियों के इकट्ठा करने, ... लाखों डालर खर्च कर दिये जाते हैं।"

निर्वाचकगण (Electoral College) जनता के वोटों को केवल रिकार्ड करता है, इसलिए इसे खतम करने और इसके स्थान पर प्रत्यक्ष चुनाव की मांग हाल के वर्षों में बहुत बार उठाई गयी है। यह कहा जाता है कि प्रणाली में कुछ बड़े राज्यों के गणमतों (electoral votes) को प्राप्त करके उम्मीदवार राष्ट्रपति बनने में सफल हो जाता है, चाहे उसे अपने विपक्षी से कम वोट क्यों न मिले हों, और उसके विपक्षी को अधिक राज्यों में, जिनके गणों (college) में वोट कम हों, अधिक वोट मिले हों। १८८८ में हैरीसन (Harrison) को २३३ गणमत (electoral votes) मिले, जबकि क्लीवलैण्ड (Cleveland) को केवल १८६ वोट मिले। फिर भी समस्त देश में उसके पक्ष में ९६,००० से भी अधिक व्यक्तियों ने वोट दिया। क्लीवलैण्ड को दक्षिण राज्यों में बहुमत प्राप्त हुआ। हैरीसन को उत्तरी राज्यों में, जिनके गणमत कुछ अधिक हैं, थोड़ा बहुमत (small majority) प्राप्त हुआ। दूसरी आलोचना यह है कि निर्वाचकगण प्रणाली अनावश्यक रूप से राष्ट्रपति के चुनाव को विषम और जटिल बना देती है अतः बहुत से लोग इसे समझ नहीं पाते। सुधार के विरोधियों का कहना है कि यदि निर्वाचकगण को खतम कर दिया गया, तो कुछ राज्यों में चुनाव अधिकारियों को चुनावों में, मतों की गलत गणना करके, बैलेट बक्सों को व्यर्थ में भर कर और यह जानते हुए कि उनकी रुचि के उम्मीदवार के प्रत्येक वोट का मूल्य होता है, कुछ लोगों को मत देने से रोककर, धोखाधड़ी करने का अवसर प्राप्त हो जायगा। यदि प्रत्येक वोट गिना जाने लगा, तब जिन राज्यों को अधिक वोटों की आवश्यकता है, वे अपने स्तर को गिरा देंगे ताकि उनके अधिक नागरिक वोट डाल सकें। आधुनिक प्रणाली उन लोगों का समर्थन विशेष रूप से प्राप्त करती है, जिनके लिए राष्ट्रपति का चुनाव एक राष्ट्रीय चुनाव संघर्ष के स्थान पर ४८ विभिन्न चुनाव संघर्षों के समान है।

निर्वाचन के पश्चात् राष्ट्रपति अपने पद की शपथ लेता है जो कि इस प्रकार है : "मैं दृढ़तापूर्वक शपथ लेता हूँ (अथवा प्रतिज्ञान करता हूँ) कि मैं पूरी वफादारी से संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के पद का निर्वहन (execute) करूँगा और अपनी पूर्ण सामर्थ्य से संयुक्त राज्य के संविधान का संरक्षण, रक्षण और प्रतिरक्षा (preserve, protect and defend) करूँगा।"

यद्यपि राष्ट्रपति को उसके पद से उसके पद की अवधि में नहीं हटाया जा सकता, तो भी उसे महाभियोग (impeachment) के द्वारा हटाया जा सकता है। संविधान व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति पर देशद्रोह, रिश्वत, अथवा किसी बड़े अपराध और कुचालो (*misdemeanours*) के लिए *प्रतिनिधि सभा महाभियोग* चला सकती है। उसकी जांच सैनेट के द्वारा की जा सकती है जब सुप्रीम कोर्ट का चीफ जस्टिस उसकी अध्यक्षता करे। अपराधी घोषित करने के लिए ⅔ बहुमत की आवश्यकता होती है। अन्यथा, अपनी अवधि के काल में, राष्ट्रपति सामान्य न्यायालयो के क्षेत्राधिकार (jurisdiction) से बाहर है।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ तथा कार्य[1] (Powers and Functions of the President)—राष्ट्रपति की शक्तियो के अनेक स्रोत (sources) हैं, उनमें से कुछ संविधान से प्राप्त हैं, कुछ परिनियमों (statutes) से, कुछ प्रथाओं (usages) से तथा कुछ न्यायिक निर्णयों (judicial decisions) से प्राप्त हुई हैं।

कार्यपालिकागत राष्ट्रपति के अधिकार (Executive Powers)—राष्ट्रपति राज्य का कार्यपालक अध्यक्ष (Executive Head) है। उसका यह कर्तव्य है कि वह देखे कि समस्त कानूनो का विधिवत् पालन किया जाता है या नही। उसे समस्त प्रशासकीय अधिकारियों और फैडरल न्यायालयों (federal courts) के न्यायाधीशों को नियुक्त करने का अधिकार है। यू० एस० ए० मे जब 'लूट-प्रणाली' (Spoils System) अपने प्रबल रूप में लागू थी तब नये राष्ट्रपति को अत्यधिक स्थानों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार प्राप्त था। पूर्वगामी राष्ट्रपति के समर्थक अपने पदों से पृथक् हो जाते थे और नया राष्ट्रपति अपने समर्थकों को नियुक्त करता था। इससे राष्ट्रपति को अनुग्रह करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता था। क्योंकि लूट-प्रणाली की बुराइयों के विरोध में अत्यधिक आन्दोलन किये गये थे अत: प्रतियोगिता परीक्षाओं की पद्धति को आरम्भ किया गया और आजकल ८०% नियुक्तियाँ प्रतियोगिता परीक्षाओं के द्वारा पूरी की जाती हैं। आज भी, सैनेट की सम्मति और परामर्श (consent and advice) से उच्च पदों की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति करता है। उच्च पदाधिकारियों में मन्त्रिमण्डल के सदस्य, राजदूत, मन्त्री, वाणिज्य दूत (consuls), संघीय न्यायालयों के न्यायाधीश, विभिन्न संघीय आयोगों (commissions) के सदस्य आदि आते हैं। ऐसे विषयों में सैनेट की स्वीकृति आवश्यक है। ऐसे अनेक अवसर आ चुके हैं जबकि सैनेट ने राष्ट्रपति की नियुक्तियों की पुष्टि नहीं की। कुछ राष्ट्रपति उन व्यक्तियों को पदासीन रखने में अवश्य समर्थ हो सके जिनकी नियुक्ति की पुष्टि सैनेट ने नहीं की। विधि यह है कि एक व्यक्ति को सैनेट के अवकाश काल (recess of the Senate) में नियुक्त किया जाता है। जब सैनेट का अधिवेशन होता है तब वह नियुक्ति का

१. जिंक (Zink) के अनुसार, अमेरिका का राष्ट्रपति कानून बनाने के बारे में सुझाव देता है; महत्त्वपूर्ण विधेयकों को पास कराने के लिए अपने अनुयायियों को संगठित करता है; संकटकालीन विषयों के लिए विशेष अधिवेशन बुलाता है; अवांछनीय बिलों का निषेध करता है; प्रशासकीय आदेशों को जारी करता है; वैदेशिक मामलों का प्रबन्ध करता है; तथा मन्त्रिमण्डल एवं अन्य अफसरों की नियुक्ति करता है।

अनुमोदन करने से इन्कार कर सकती है, लेकिन नियुक्ति अधिवेशन के अन्त तक चल सकती है। अधिवेशन समाप्त होने पर सैनेट के अवकाश काल में उसी व्यक्ति को पुनर्नियुक्त किया जा सकता है। इस विधि की पुनरावृत्ति की जा सकती है। यह कहा जाता है कि राष्ट्रपति कूलिज (Coolidge) ने इस चाल का प्रयोग मि० चार्ल्स बी० वारेन (Warren) को महान्यायवादी (Attorney-General) के पद पर रखने में किया था। किन्तु कोई राष्ट्रपति इस चाल का प्रयोग अधिक नहीं करेगा क्योंकि इससे सैनेट के अप्रसन्न हो जाने का भय है और कोई नीतिज्ञ राष्ट्रपति ऐसा करना नहीं चाहेगा।

इस सम्बन्ध में सैनेटोरियल कर्टसी (Senatorial Courtesy) का उल्लेख किया जा सकता है। प्रो० मनरो ने सैनेटोरियल कर्टसी का वर्णन इन शब्दों में किया है, "संक्षेप में, किसी स्थानीय अधिकारी जैसे फैडरल अटार्नी, पोस्टमास्टर अथवा आन्तरिक राजस्व का कलैक्टर (collector of internal revenue) के मनोनयन (nomination) को अस्वीकृत कर दिया जाता है, यदि सम्बन्धित राज्य के सैनेटर अथवा सैनेटरों से पूर्व ही परामर्श न कर लिया गया हो और उन्होंने अपनी स्वीकृति न दे दी हो, परन्तु शर्त यह है कि सैनेटर राष्ट्रपति के दल का हो। इसको अधिक स्पष्ट रूप में यों रख सकते है कि रिपब्लिकन राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति को फिलाडेलफिया के बन्दरगाह का कलैक्टर उस राज्य के रिपब्लिकन सैनेटर (यदि कोई हो तो) से परामर्श किए बिना मनोनीत नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो अन्य सैनेटरो से अपने सहयोगी को सौजन्य के नाते पुष्टि के विरुद्ध मत देने की आशा की जाती है।"

यह बात उल्लेखनीय है कि सैनेट सदा राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्ति को रद्द कर देगी यदि सम्बन्धित राज्य का राष्ट्रपति की पार्टी का सैनेटर कोई गम्भीर आपत्ति (serious objection) उठाए। इस विषय मे फलायड एच० रॉबर्ट्‌स की घटना का उल्लेख किया जा सकता है जिसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने पश्चिमी वर्जिनिया के फैडरल जिला न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया था। नियुक्ति का पार्टी के दो वर्जिनिया के सैनेटरों ने विरोध किया यद्यपि वहाँ के गवर्नर ने उसका समर्थन किया। जब नाम सैनेट मे पुष्टि के लिए भेजे गए, तब दोनों सैनेटरों ने घोषित किया कि यह नियुक्ति हमें व्यक्तिगत रूप से नापसन्द है। फल यह हुआ कि नियुक्ति सैनेट द्वारा रद्द कर दी गई। ७२ वोट विरोध में आए और ६ समर्थन में। यह प्रसिद्ध है कि राष्ट्रपति गारफील्ड को, जिसने इस निरूढ़ि का उल्लंघन किया था, गोली मार दी गई थी।

पाटर (Potter) के अनुसार, "संविधान के निर्माताओं ने नियुक्तियों पर सैनेट की सम्मति और सलाह देने की शक्ति का समर्थन, राष्ट्रपति की शक्ति पर कुछ प्रतिबन्ध लगाने की दृष्टि से किया था। लेकिन यह प्रतिबन्ध (check) शीघ्र ही एक संगठित राजनैतिक ढंगों में परिवर्तित हो गया, जो सैनेटरीय सौजन्य (senatorial courtesy) के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रणाली में, उच्च राष्ट्रीय पदों की नियुक्ति को छोड़कर, अन्य सब पदों के लिए जब राष्ट्रपति नियुक्ति करता है तब वह उसके सम्बन्ध में आवश्यक रूप से जिस राज्य में वह व्यक्ति कार्य करेगा अथवा जिस राज्य का वह व्यक्ति है, उस राज्य की अपनी पार्टी के सैनेटरों से, उस व्यक्ति के नाम की

सैनेट मे भेजने से पहले, सलाह करेगा। यदि उस राज्य में कोई सैनेटर नहीं चुना गया है, तो वह राज्य के पार्टी चेयरमैन से सलाह करेगा। यदि राष्ट्रपति सैनेटरो से सलाह नही करता तो सैनेटर अपने साथियों से उस नियुक्ति विशेष के विरुद्ध वोट देने के लिए कहेंगे। सैनेटरीय सौजन्य (Senatorial Courtesy) में दोनों पार्टियों के सैनेटर गठ-बन्धन कर लेते है और इस प्रकार नियुक्ति को अस्वीकृत कर दिया जाता है।"

"वास्तव में इस प्रणाली में सैनेटर ही असली नियुक्ति करने वाले बन जाते है, और राष्ट्रपति केवल अनुमति देने वाला रह जाता है। यह भी अनिवार्य प्रथा है कि जिलो मे नियुक्ति करने से पहले सैनेटर उस जिले के अपनी पार्टी के हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स (House of Representatives) के सदस्यों से भी सलाह करेंगे और इस प्रकार, बिना किसी वैधानिक शक्ति के कुछ नियुक्तियाँ वास्तव मे हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स भी किया करता है।"

राष्ट्रपति को कार्यमुक्त करने का भी अधिकार है। आरम्भ में यह घोषित किया गया था कि राष्ट्रपति न्यायाधीशों के अतिरिक्त अपने द्वारा नियुक्त किए हुए समस्त कर्मचारियों को हटा सकता है। राष्ट्रपति जॉनसन और कांग्रेस मे झगड़ा था और कार्यपालिका को सैनेट की सम्मति के बिना किसी को हटाने से कानूनन मना किया गया। इस कानून को २० वर्ष पश्चात् हटाया गया। १८७६ के अधिनियम ने व्यवस्था की कि प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के पोस्ट मास्टर केवल सैनेट के समर्थन के पश्चात् हटाए जा सकते हैं। इसके होते हुए भी राष्ट्रपति विल्सन ने एक पोस्ट मास्टर को हटा दिया। अभियोग चलाया गया और सुप्रीम कोर्ट ने १८७६ के अधिनियम को अवैध घोषित किया। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपति की कार्यमुक्त करने की शक्ति से केवल न्यायाधीश[1] मुक्त रहे। वर्तमान स्थिति यह है कि राष्ट्रपति स्वेच्छा से कार्यपालिका के अधिकारियो को कार्यमुक्त कर सकता है, किन्तु न्यायिक और अवशिष्ट शक्तियां रखने वाले 'रेग्यूलेटरी कमिश्नरों[2] को कानून द्वारा संरक्षण दिया जा सकता है।

---

१. Myers v. United States में सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस श्री टैफ्ट (Taft) ने कहा था: "राष्ट्रपति के हाथों में प्रशासनिक शक्ति देने का अर्थ वास्तव मे कानून को लागू करने की शक्ति देना था। उनको उसे अपने सहायकों की सहायता से करना चाहिए......। चूंकि उसे यह कार्य सौंपा गया है कि वे (कानून) ठीक प्रकार से लागू किए जाएँ अतः इसका अर्थ यह होना है (यद्यपि ऐसा लिखा नहीं गया है) कि उसके निर्देशन में कानून लागू करने वाले को चुनने की शक्ति भी उसकी प्रशासनिक शक्तियों (Executive powers) का एक अंग है। इसका और अधिक अर्थ यह होगा (यद्यपि खुले शब्दों में पद से हटाने की शक्ति पर कोई सीमा नहीं लगाई है) कि जैसे कि उसके द्वारा प्रशासनिक अधिकारियो का चुनाव करना, उसके द्वारा कानूनों को लागू करने के लिए आवश्यक है, उसी प्रकार से जिनके लिए वह और अधिक जिम्मेदार नहीं होना चाहता, उन्हे पद से हटाने की शक्ति भी उसे प्राप्त है।"

२. हूवर (Hoover) कमीशन (१६४६) की रिपोर्ट के अनुसार, "'स्वतन्त्र विनियमन आयोग (Independent Regulatory Commission) संघीय सरकार का कुछ नया अंश है। इसमें एक बोर्ड अथवा कमीशन होना है, कोई प्रशासनिक विभाग नहीं होता और वह कुछ निजी कार्यक्रमों के विनियमन (regulation) में व्यस्त रहता है।' इस प्रकार की संस्थाओं में दो प्रकार की विनियमन शक्तियां निहित होती हैं। कुछ को जैसे कि 'अन्तर्राज्य वाणिज्य कमीशन' को किसी विशेष उद्योग पर

राष्ट्रपति सशस्त्र सेनाओं का प्रधान-सेना-अध्यक्ष (कमाण्डर-इन-चीफ) है। उस हैसियत मे वह देश की प्रतिरक्षा तथा शत्रु को पराजित करने के उद्देश्य से प्रत्येक कार्यवाही करने का अधिकारी है। अमेरिका का राष्ट्रपति अमेरिका की सेनाओं को विश्व में किसी भी स्थान पर भेज सकता है। इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति लिंकन ने गृह-युद्ध के समय उन स्टेटों में भी बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) को निलम्बित (suspend) करने के लिए किया, जिनमें गृह-युद्ध के दिनों में युद्ध नहीं हो रहा था। राष्ट्रपति विल्सन ने प्रथम विश्वयुद्ध में राष्ट्रीय जीवन के लगभग प्रत्येक अंश (particle) की शक्तियां प्राप्त की और प्रयुक्त की। यही बात राष्ट्रपति रूज़वेल्ट पर द्वितीय महासमर के समय में लागू थी। इसी शक्ति के प्रयोग से मैक्सिको (Mexico) में अनेक बार हस्तक्षेप किया गया, १९०० में पेकिंग की रक्षा की गई और १९१८ में रूस पर आक्रमण किया गया।

राष्ट्रपति जल और थल पर सशस्त्र सेनाओं का संचालन करता है।[1] वह विजित प्रदेशों का शासन उस समय तक चलाता है जब तक कांग्रेस नागरिक प्रशासन की व्यवस्था न कर दे।

राष्ट्रपति विदेशी सम्बन्धों[2] के क्षेत्र मे छाया रहता है। संविधान उसे संधि

नियन्त्रण रखने की विस्तृत शक्तियां प्रदान कर दी जाती हैं, और कुछ को मुक्त प्रतियोगिता (free competition) की प्रणाली को हानि पहुंचाने वाली बातों को रोकने के लिए विशेष शक्ति प्रदान की जाती है। संघीय व्यापार आयोग को अन्तर्राज्य व्यापार में लगे हुए व्यापारियों में अनुचित प्रतिस्पर्धा रोकने की शक्ति प्रदान की गई है। प्रशासनिक प्रबन्ध विषयक राष्ट्रपति की कमेटी (१९३७) की रिपोर्ट के अनुसार, इन स्वतन्त्र कमीशनों को विनियमन करने की नीतियों की खोज करने, उन्हें बनाने तथा लागू करने की विस्तृत शक्तियां प्रदान की गई है। व्यापार में अपराध करने वालों के मामलों की खोज तथा उन्हें सजा दिलाने का कार्य इन्हें सौंपा गया है। न्यायालयों के अनुसार इन्हें भी कानूनों के अनुसार ठोस मामलों में व्यक्तियों के अधिकारों और कर्तव्यों पर निर्णय देने का अधिकार दिया गया है। वास्तव में ये छोटी-छोटी स्वतन्त्र सरकारें हैं जो रेलवे, बैंक और रेडियो इत्यादि की समस्याओं को सुलझाती हैं।

१. युद्ध का व्यक्तिगत रूप से संचालन करने में आज किसी राष्ट्रपति को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वे वैधानिक के बजाय राजनैतिक और व्यावहारिक (Political and Practical) अधिक है। पिछले उदाहरणों की साक्षियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसके व्यक्तिगत रूप से ; मैदान में उतरने पर कोई रोक नहीं है। वास्तव में, एक मात्र राष्ट्रपति को इच्छानुसार एटम बम गिराने का अधिकार देकर, कानून ने अब उसे सीधे कमाण्ड करने की शक्ति भी दे दी है, जिसके सम्बन्ध में, राष्ट्रपति एण्ड्रयू जैक्सन (Andrew Jackson) और जचारी टेलर (Zachary Taylor) के दिनों में, जबकि उन्होंने स्वयं बाहर आकर कुछ विद्रोहियों को फांसी पर लटकाने की धमकी दी थी, कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था।

२. अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के अनुसार "विदेशी मामलों पर संघीय शक्ति मूलतः और सारतः आन्तरिक मामलों (internal affairs) की शक्ति से, न केवल भिन्न है, बल्कि शक्ति के प्रयोग में भाग लेना भी विशेष रूप से सीमित है। इस महत्त्वपूर्ण, जटिल, नाजुक, बहुमुखी समस्याओं वाले विस्तृत बाहरी मामलों के क्षेत्र में अकेले राष्ट्रपति को ही, राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में कुछ कहने-सुनने की शक्ति है। वह सैनेट की सम्मति और सलाह से संधियाँ करता है, लेकिन इस सम्बन्ध में बातचीत करने का अधिकार केवल उसे है। इस बातचीत के, समझौता करने के क्षेत्र में, सैनेट हस्तक्षेप कर सकता और न कांग्रेस दखल दे सकती है। जैसा कि हाउस आफ रिप्रेज़ेण्टेटिव्स (House of

करने, राजदूत तथा वाणिज्य दूत (Consul) नियुक्त करने तथा विदेशी राजदूतों और वाणिज्य दूतों का स्वागत करने का अधिकार देता है। जहाँ तक सधियों का सम्बन्ध है, उनकी सैनेट के $\frac{2}{3}$ बहुमत से पुष्टि होनी अनिवार्य है। किन्तु यह निश्चित नही है कि सैनेट सदा राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित सन्धि को स्वीकृत करेगी। यह प्रसिद्ध है कि यद्यपि राष्ट्रपति विल्सन ने वर्साई की सन्धि (१६१६) पर हस्ताक्षर कर दिये थे पर सैनेट ने उसे स्वीकृति करने से इकार कर दिया। 'सैनेटोरियल कन्फर्मेशन' प्राप्त करने की कठिनाइयों से बचने के लिये बहुधा राष्ट्रपति "अधिशासकीय समझौतों" (executive agreements) की विधि का पालन करते है। ऐसे समझौते के लिए सैनेट के समर्थन की आवश्यकता नही होती किन्तु व्यवहार में उनका वही प्रभाव होता है। इसी विधि से हैटी (Haiti), साँटो डोमिंगो (Santo Domingo), हवाई द्वीप समूह और टैक्सास को मिलाया गया था। राष्ट्रपति थियोडोर रूज़वेल्ट और जापान के सम्राट् जबानी समझौते द्वारा इसके लिए सहमत हुए थे कि राष्ट्रपति कांग्रेस को निषेध कानून (exclusion legislation) को समाप्त करने के लिए प्रेरित करेगा। इस प्रकार जापानी पक्ष कुलियों के निकास को रोकने के लिए सहमत हुआ था। इसी प्रकार, अमेरिका के राष्ट्रपति अनेक देशों से वाणिज्य समझौते सैनेट की सम्मति के बिना करते हैं। राजदूतों और वाणिज्य दूतों की नियुक्ति के लिए सैनेट का समर्थन आवश्यक है।

हाइमैन (Hyman) के अनुसार, "अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों में सार्वभौमिक सत्ता के रूप मे संयुक्त राज्य के अस्तित्व तथा शान्ति को बनाये रखने और युद्ध-काल मे विजय की तैयारी करने के लिए विदेशी क्षेत्र मे राष्ट्रपति का परमाधिकार (prerogative) धीरे-धीरे विस्तृत होता गया है; राष्ट्रपति विदेशी नीति की न केवल घोषणा करते हैं, अपितु वे इसकी रचना भी करते हैं। विदेशी नीति का रूप अवसर राष्ट्रपति के स्वरूप पर बहुत निर्भर करता है। फिर राष्ट्रपति के कूटनीतिक परमाधिकार का विस्तार, जब उसके मुख्य प्रशासनिक अधिकारों तथा कमाण्डर-इन-चीफ (C-in-C) के क्षेत्र के अधिकारों से मिल जाता है, तब जैसा कि हैमिल्टन (Hamilton) ने स्वीकार किया है, उसके हाथों में युद्ध की स्थिति पैदा करने की सामर्थ्य देता है, जिसे कांग्रेस को स्वीकार करना पडता है। यह खतरा जैसाकि राष्ट्रपति जेम्स के० पोल्क (James K. Polk) के मैक्सिको युद्ध के समय कार्य करने से स्पष्ट है, सदा रहता है। लेकिन आधुनिक काल में, शीत युद्ध (cold war), अर्द्ध-युद्ध (half war) और अघोषित युद्ध (undeclared war) के समय यह पता चलता है कि राष्ट्रपति की युद्ध करने की शक्ति ने वास्तविक रूप से कांग्रेस के "युद्ध की घोषणा" करने के अधिकार को निगल लिया है।

अमेरिका के राष्ट्रपति को देशों और सरकारों को मान्यता देने का अधिकार

Representatives) में ७ मार्च, १८०० को मार्शल (Marshall) ने अपने महान् तर्क में कहा : "राष्ट्रपति ही विदेशी मामलों में राष्ट्र का एकमात्र कर्मेन्द्रिय है और वह ही विदेशी राष्ट्रों के सामने इसका प्रतिनिधि है।" (The President is the sole organ of the nation in its external relations and its sole representative with foreign nations.)।

है। ऐसा वह सम्बन्धित राज्यों के राजदूतों का स्वागत करके करता है। राष्ट्रपति किसी राष्ट्र से असन्तोष प्रकट करने के लिए उस राष्ट्र के राजनैतिक प्रतिनिधि को हटा देता है अथवा सम्बन्धित राष्ट्र से राजदूत अथवा वाणिज्यदूत को वापिस बुलाने की मांग करता है।

राष्ट्रपति सीनेट की सम्मति से ही युद्ध की घोषणा कर सकता है। किन्तु राष्ट्रपति कूटनीतिक सम्बन्ध ऐसे बना सकता है और सेना को ऐसी व्यवस्था में खड़ा कर सकता है जिससे युद्ध अनिवार्य हो जाए। ऐसा राष्ट्रपति फ्रांकलिन रूजवेल्ट ने धुरी राष्ट्रों (Axis Powers) के विरुद्ध भाषण देकर किया। इसी प्रकार राष्ट्रपति विलसन ने 'लूसीटेनिया' (The Lusitania) को वाशिंगटन स्थित जर्मन राजदूत के चेतावनी देने के पश्चात् भी इंगलैंड भेजकर प्रथम विश्व-युद्ध में संयुक्त राज्य के कूदने के लिए मार्ग प्रशस्त किया। किन्तु, युद्ध को समाप्त करने अथवा निलम्बित करने का अधिकार अकेले राष्ट्रपति को ही है।

कांग्रेस ने राष्ट्रपति को अनेक ऐसे अधिकार दिए हैं जिनका संकट काल में प्रयोग किया जा सकता है। शत्रु से व्यापार करने के विषय में अधिनियम, १९१७ (Trading with the Enemy Act, 1917) के अन्तर्गत राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने एक दिन बैंक-अवकाश (Bank holiday) घोषित किया और सोने-चांदी के निर्यात और विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) व्यापार को रोका। संकट की परिभाषा राष्ट्रपति पर छोड़ दी गई है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने योरुप में १९३९ में युद्ध आरम्भ होने पर संकट की घोषणा की और १९४१ के मध्य में 'सीमित संकट' (limited emergency) की घोषणा की। दिसम्बर, १९४१ में यू० एस० ए० के युद्ध में प्रवेश के समय बहुत से कानून बनाए गए जिनके द्वारा राष्ट्रपति को देश के संसाधनों (resources), औद्योगिक प्लाण्टों और मानवीय शक्ति पर नियन्त्रण मिल गया।

इस्पात उद्योग मुकद्दमा (*Steel Industry Case*)—राष्ट्रपति ट्रूमैन (President Truman) के द्वारा इस्पात उद्योग पर कब्जा (seizure) करने का यहाँ जिक्र किया जा सकता है। उस समय अमेरिका कोरिया-युद्ध में व्यस्त था, यद्यपि युद्ध की औपचारिक रूप से कोई घोषणा नहीं की गयी थी। उसने राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति (National Emergency) की घोषणा कर दी थी, फिर भी प्रेसीडैण्ट ट्रूमैन को राष्ट्रपति रूजवेल्ट की तरह युद्ध शक्तियाँ नहीं प्रदान की गयी थीं। अमेरिका उत्तरी अटलांटिक प्रतिरक्षा सेनाएँ बनाने के लिए वचन-बद्ध था। वह इंगलैंड को कच्चा लोहा भेजने तथा उसकी अर्थ-व्यवस्था पर पड़ने वाले दबाव को कम करने के लिए भी वचन-बद्ध था। ऐसे समय में श्रमिकों ने इस्पात उद्योग के साथ नए समझौते के लिए बातचीत प्रारम्भ की। गत्यवरोध (deadlock) पैदा हो गया और उसको हल करने के सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गए। प्रतिरक्षा मन्त्री (Secretary of Defence) ने राष्ट्रपति को सूचित कर दिया कि यदि हड़ताल लम्बी हो गई तो सैनिक संस्थानों (military establishments) की प्रतिरक्षा की तैयारियों में रुकावट पड़ जाएगी। फलस्वरूप राष्ट्रपति ट्रूमैन ने इस्पात उद्योग पर कब्जा करने की आज्ञा दे दी। मजदूर काम पर लग गए और लोहा कम्पनियाँ मामले को अदालत में ले गयीं। सुप्रीम

कोर्ट के तीन जजों ने, राष्ट्रपति के कार्य को उचित ठहराया। उन्होंने यह स्वीकार किया कि राष्ट्रपति का यह कार्य असाधारण है लेकिन जिन स्थितियों में यह कार्य किया गया है, वे भी असाधारण हैं। लोहा उद्योग पर कब्जा करके राष्ट्रपति ने, हाल ही में कांग्रेस के द्वारा पास किए गए कूटनीति और सैनिक कानूनों को भली प्रकार लागू करने के अलावा और कुछ नहीं किया है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट के ६ जजों ने राष्ट्रपति के कार्य को अवैधानिक घोषित कर दिया।

१६३७ में प्रकाशित की गयी सरकारी रिपोर्ट में अमेरिकन राष्ट्रपति की प्रशासनिक प्रधान (administrative head) की स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया गया है : "राष्ट्रपति, संयुक्त राज्य का जनरल मैनेजर है। संविधान के अन्तर्गत कार्यपालिका विभाग (executive department) का मतलब ही यह है कि एक शक्तिशाली और संगठित केन्द्र पर, सम्बद्ध शासन की नीति निर्माण करने और उसे लागू करने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाए। अपनी प्रकृति के फलस्वरूप, कांग्रेस या तो प्रशासनिक कार्य करने में असमर्थ है, या किसी भी प्रभावी रूप में प्रशासन में व्यस्त अधिकारियों और संस्थाओं से जवाब-तलब करने में असमर्थ है। इस क्षेत्र में राष्ट्रपति के कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ, केवल रोजाना की ऊपरी देखभाल की नहीं हैं, अपितु उसे विस्तृत विवेकाधीन शक्तियाँ (discretionary powers) प्राप्त हैं।"

न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—राष्ट्रपति को क्षमा और प्रविलम्बन (reprieve) प्रदान करने की शक्ति प्राप्त है। इस शक्ति को प्रयुक्त करने के लिए उसे किसी की सम्मति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। क्षमा (pardon) का तात्पर्य दण्ड पाने से छुटकारा देना है। यह बिना शर्त अथवा सशर्त हो सकता है। यदि यह बिना शर्त होता है तो अपराधी को बिल्कुल मुक्त कर दिया जाता है। यदि यह सशर्त होता है तो यह अपराधी पर कुछ अभिवचन (*obligations*) और निर्योग्यताएँ (disabilities) लगा देता है। प्रविलम्बन से दण्ड केवल कुछ काल के लिए स्थगित हो जाता है। ऐसा पग मानवी दृष्टिकोण के आधार पर अथवा इस आशा से उठाया जाता है कि नए प्रमाण प्राप्त हो सकें। राष्ट्रपति महाभियुक्तों (impeached) को छोड़कर अन्य संघीय कानून को तोड़ने वाले अपराधियों को क्षमा कर सकता है। उसे राज्यों के कानूनों को भंग करने वाले अपराधी की क्षमा करने का अधिकार नहीं है। कभी-कभी राष्ट्रपति सर्व-क्षमा (amnesty) स्वीकार करता है। सर्व-क्षमा एक प्रकार की सामूहिक क्षमा है, जोकि अपराधियों के एक दस्ते को दी जाती है। राष्ट्रपति जैफरसन ने उन सब को स्वतन्त्र कर दिया जिनको राज्यद्रोह अधिनियम, १७८६ (The Sedition Act of 1789) के अन्तर्गत दण्ड मिला था। राष्ट्रपति वाशिंगटन ने केवल ६ आदमियों को क्षमा प्रदान की थी लेकिन राष्ट्रपति ट्रूमैन ने केवल १६५२ में ५०० नागरिकों और ६,००० सैनिकों को क्षमा प्रदान की।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—यद्यपि राष्ट्रपति अध्यक्षीय सरकार का प्रमुख (head) है और कांग्रेस में नहीं बैठता, तथापि उसे पर्याप्त

विधायिका शक्तियाँ प्राप्त हैं। उसकी शक्तियाँ इतनी अधिक हैं कि उसको विधायी क्षेत्र (legislative field) में नेता कहा जाता है।

रूज़वेल्ट (Roosevelt) के अनुसार, "सैद्धान्तिक रूप से, कार्यपालिका का विधान बनाने से कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यवहार में, आज की स्थिति में, कार्यपालिका जनता की एक विशिष्ट प्रतिनिधि है, और उसे ऐसा होना भी चाहिए। कार्यपालिका (executive) ही एक ऐसा, एक मात्र साधन है, जिसके द्वारा जनता इच्छानुसार विधान की मांग कर सकती है। इसलिए एक योग्य कार्यपालिका को अमेरिकन राजनीतिक जीवन की वर्तमान स्थिति में लोकहितसम्मत कानून पास कराने में पर्याप्त दृष्टि से नियामक भाग लेना चाहिए।"

संविधान व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति "समय-समय पर राष्ट्र की दशा के सम्बन्ध में सूचनाएं कांग्रेस को देता और विचारार्थ ऐसे साधनों की सिफारिश करेगा जिनको वह आवश्यक और लाभकर समझे···" यह व्यवस्था कांग्रेस को सन्देश भेजने की शक्ति का आधार है। कांग्रेस को भेजे गए राष्ट्रपति के सन्देश महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। कभी-कभी, किसी नये कानून के विषय में निर्देश (directives) दिए जाते हैं और उनको पास करने की आवश्यकता बताई जाती है। ऐसे अवसर पर, राष्ट्रपति की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक प्रारम्भ किया जाता है। कभी-कभी सन्देश का उद्देश जनमत को प्रभावित करना होता है। उसका उद्देश्य समस्त देश में जनमत को जाग्रत करना और जनता को कांग्रेसमैनों के पास पत्र, तार, आदि किसी विशेष विधेयक को पास करने के लिए भेजने को प्रोत्साहित करना होता है। ऐसा सन्देश अमेरिका की जनता के नाम एक 'उपदेश' (sermon) होता है और यह समाचारपत्रों में शीर्षक बनता है। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने जनता के नाम रेडियो पर 'फायरसाइड चैट' माला के अन्तर्गत भाषण दिए थे। ये भाषण विभिन्न विषयों पर और कभी "परीक्षण गुब्बारों" (trial balloons) की भांति उपयोगी होते थे। इनका उद्देश्य राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तुत किए गए कुछ प्रस्तावों पर जनता की प्रतिक्रिया ज्ञात करना होता है। कई अवसरों पर सन्देश का अभिप्राय विदेशों में कोई बात पहुँचाना होता है। "कभी राष्ट्रपति का सन्देश कोई सिद्धान्त प्रस्थापित करता है, जिसे सार्वजनिक रूप से मौलिक (fundamental) के समान स्वीकृत कर लिया जाता है और देश के कानून का इस प्रकार अंग बन जाता है जैसे उसकी उत्पत्ति संविधान के साथ ही हुई हो।" कांग्रेस को प्रेषित एक सन्देश के द्वारा ही राष्ट्रपति मनरो ने प्रसिद्ध मनरो सिद्धान्त घोषित किया जोकि यह कहता है कि "पश्चिमी संसार में योरोपियनों के और अधिक उपनिवेशों के विस्तार और प्रभाव को अमेरिका सहन नहीं करेगा।" प्रेज़ीडेन्ट रूज़वेल्ट के १९४१ और १९४५ के बीच कांग्रेस को दिये गए सन्देशों का उद्देश्य योरुप के राष्ट्रों को द्वितीय महासमर के विषय में अमेरिका का दृष्टिकोण समझाना था।

राष्ट्रपति के सन्देशों का स्पष्ट परिणाम यह है कि कांग्रेस द्वारा पारित कानून उन सन्देशों से अत्यधिक प्रभावित होता है। समाचारपत्रों में और प्लेटफार्म पर इन सन्देशों को लेकर इतना अधिक विवाद होता है कि कोई कांग्रेस उन सन्देशों रद्द करने का साहस नहीं कर सकती। उसे राष्ट्रपति द्वारा इच्छित कानून पास

करने ही पड़ते हैं। राष्ट्रपति राष्ट्रनायक (leader of the country) होता है, उसके पीछे जनता का हाथ रहता है और जनता आशा करती है कि कांग्रेस उन कानूनों को पास करेगी जिनकी राष्ट्रपति माँग करता है।

'राष्ट्रपति-लौबी' (Presidential Lobby) का यहाँ उल्लेख किया जा सकता है। देश की कार्यपालिका का अध्यक्ष होने के करण, वाशिंगटन मे राष्ट्रपति के अपने प्रभाव मे सबसे अधिक शक्तिशाली लौबी होती है। कार्यपालिका उन विशेष कानूनों (measures) के समर्थन में अत्यधिक तथ्य और आँकड़े (facts and figures) एकत्रित कर सकती है जिसे राष्ट्रपति पास कराना चाहता है। विधेयक के विरोधियों को तथ्य और आँकड़े एकत्रित करने की इतनी अधिक सुविधा प्राप्त नही होती, वे कार्यपालिका के तर्कों का उत्तर नहीं दे पाते और उस अवसर पर कार्यपालिका का दृष्टिकोण अपनाये जाने और इच्छित कानून के पास होने की हीं अधिक सम्भावना रहती है। इस कथन में कोई आश्चर्य नही है कि राष्ट्रपति कानून का आरम्भ (initiate) और अभिवर्धन (promote) कर सकता है और अनुकूल परिस्थितियों (favourable conditions) में, उसके पास होने का विश्वास कर सकता है।

राष्ट्रपति को 'निषेधाधिकार' (Veto) भी प्राप्त हैं। संविधान के अनुसार, "सैनेट और प्रतिनिधि सभा में पारित होने के पश्चात् प्रत्येक विधेयक, कानून बनने से पूर्व, संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति के पास भेजा जायेगा; यदि वह उसे स्वीकार करता है तो वह उस पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यदि ऐसा नही करता तो वह उसे अपनी आपत्तियों (objections) के साथ उस सदन को लौटायेगा, जिसमे विधेयक आरम्भ (originated) हुआ था। वह सदन आपत्तियों को अपने 'जरनल' (Journal) में प्रकाशित करेगा और उन पर पुर्नविचार करेगा। यदि, पुर्नविचार के पश्चात् उस सदन के ⅔ सदस्य उस विधेयक को पास करने का समर्थन करें तो उसे आपत्तियों के साथ दूसरे सदन मे भेज दिया जायगा जो कि इस पर इस प्रकार से सिफारिश करेगा और यदि उस सदन के ⅔ सदस्य उसका समर्थन करेंगे, तो वह कानून बन जायेगा। किंन्तु ऐसे समस्त अवसरों पर प्रत्येक सदन में वोटें हां और नां (yeas and nays) से निश्चित की जायेंगी और प्रत्येक सदन के विधेयक के समर्थकों और विरोधियों के नाम उन सदनों के 'जरनलों' (Journals) में अंकित किये जायेंगे। यदि राष्ट्रपति किसी विधेयक को दस दिन के अन्दर (रविवारों को छोड़कर) वापिस नहीं लौटाता तो वह विधेयक उसी प्रकार कानून बन जायेगा जैसे कि उसने उस पर हस्ताक्षर कर दिए हों, सिवाय इसके कि कांग्रेस अपने स्थगन (adjournment) के द्वारा उसकी वापसी को रोक दे, जिस अवस्था में वह कानून नही बनता।"

कांग्रेस ने अनेक विधेयकों को पारित कर राष्ट्रपति के पास स्वीकृति के लिए भेजा है। वह प्रत्येक विधेयक को स्वीकृत करने के लिए बाध्य नहीं है। उसे दो प्रकार के निषेधाधिकार प्राप्त हैं। यदि कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास अधिवेशन के अन्त के निकट भेजा जाता है और वह उसे स्वीकृत करना नही चाहता, त विधेयक को केवल उसकी ओर ध्यान न देकर समाप्त (kill) कर सक्त कोई कार्यवाही न करके ही (by mere inaction) वह विधेयक को

सकता है। इसे "पाकिट वीटो" (pocket veto) कहते हैं। राष्ट्रपति को एक अन्य प्रकार का निषेधाधिकार भी प्राप्त होता है और वह यह कि वह किसी भी विधेयक को अस्वीकृत कर कांग्रेस को लौटा सकता है। यदि कांग्रेस उस विधेयक को पास करना ही चाहे, तो वह उस विधेयक को ⅔ बहुमत से पुनः स्वीकृत करके राष्ट्रपति को अंगीकृत करने के लिए प्रेषित करती है। ऐसी स्थिति में यदि राष्ट्रपति विधेयक को अंगीकृत करना चाहे तो भी राष्ट्रपति के निषेधाधिकार के होते हुए भी विधेयक कानून बन जाता है। किन्तु, यह स्मरणीय है कि कांग्रेस विधेयक को कठिनता से पुनः पारित करती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कांग्रेस के पास समय का अभाव रहता है और उसे अपना सामान्य कार्य ही पूरा करना कठिन होता है। यद्यपि १७८६ से १६२५ तक निषेधाधिकार का प्रयोग ६०० बार किया गया, किन्तु केवल ३६ अवसरों पर ⅔ बहुमत से उसे लौटाया गया। समस्त राष्ट्रपतियों ने 'वीटो' का प्रयोग एक ही प्रकार से नहीं किया है। राष्ट्रपति जैकसन के विषय में कहा जाता है कि उसने बारह विधेयकों को वीटो करके रिकार्ड कायम किया।

यह स्मरणीय है कि 'वीटो शक्ति' का प्रयोग प्रस्तावित सांविधानिक संशोधनों पर लागू नहीं होता। इसके अतिरिक्त, सम्पूर्ण विधेयक को 'वीटो' किया जाता है, अंशों (parts) को नहीं। या तो राष्ट्रपति को सम्पूर्ण विधेयक स्वीकृत करना चाहिए या अस्वीकृत।

यह ठीक ही कहा गया है कि राष्ट्रपति केवल वीटो शक्ति का प्रयोग करके ही नहीं प्रत्युत् उसे प्रयुक्त करने की धमकी देकर भी अपना प्रभाव डालता है। जब कांग्रेस किसी विधेयक पर विचार कर रही हो तब राष्ट्रपति विधेयक के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप में प्रकट कर सकता है। विधेयक को समाप्त करने की प्रत्येक सम्भावना रहती है।

'वीटो' शक्ति के विषय में प्रो० मनरो का कथन है कि "अतएव जिसे कार्यपालिका की आत्मरक्षा (executive self-defence) का शस्त्र (weapon) विचारा गया था, वह राष्ट्र के कानून बनाने वाले प्राधिकरण (authority) के सचालन और मार्ग-दर्शन के साधन के रूप में विकसित (developed) हो गया है। यह प्रत्येक प्रकार के कानून पर लागू होने वाली सामान्य पुनरीक्षण (revising) की शक्ति के रूप में विकसित हो गया है। विधायिका के प्रति अपना निर्णय निर्धारित करने में प्रत्येक राष्ट्रपति का समर्थन करते हुए, इसने राष्ट्रपति को कांग्रेस के तीसरे सदन के रूप में विकसित किया है और कार्यपालिका (executive) को कानून बनाने में उसकी अपेक्षा अधिक प्रभावी कर दिया है, जितना आरम्भ में समझा गया था।" डॉ० फाइनर (Dr. Finer) के अनुसार, 'यह एक ऐसी शक्ति है जिसमें कोई व्यय नहीं होता, जिसका प्रयोग काफी सफलता से किया जा सकता है और जिस पर कोई दंड नहीं है। विधान मण्डल और देश मे हुए एक लम्बे और कठोर (arduous) विधान-सम्बन्धी युद्ध मे कांग्रेसमैनों का कोई वर्ग उतने समय में हार सकता है जितने समय मे 'नहीं' (No) और कुछ व्याख्यात्मक वाक्य (phrases of explanation) जाते हैं।"

पाटर (Potter) के अनुसार, १६३६ मे, सार्वजनिक बिलों पर किये गये ६ वीटो (Veto) में से एक, और निजी बिलों पर किये गये ८० वीटों मे से १ को अमान्य ठहराया गया। प्रेसीडेण्ट आइजनहॉवर के पूर्व प्रेसीडेण्टों द्वारा किये गये ११६ नियमित वीटो (Regular Veto) में से ७१ को अमान्य किया गया; इनमें से आधे तो तीन राष्ट्रपतियों के शासन-काल में अमान्य किये गये; प्रेसीडेण्ट जॉनसन (President Johnson) के २१ वीटों में से १५ अमान्य किये गये। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट के ३७१ नियमित वीटो मे से ६, और राष्ट्रपति ट्रूमैन के १६० नियमित वीटो (Regular Vetoes) मे से १२ अमान्य ठहराये गये। कांग्रेस, बिलों पर, राइडर (Riders) लगाकर राष्ट्रपति की वीटो की शक्ति को प्रभावहीन कर देती है, ताकि राष्ट्रपति वीटो लगाने मे असमर्थता अनुभव करे। १६४३ मे, कॉंग्रेस ने एप्रोप्रियेशन बिल (Appropriation Bill) पर एक "राइडर" लगाया और यह निर्देशित कर दिया कि जिन तीन सरकारी कर्मचारियो को कॉंग्रेस के कुछ सदस्य पसन्द नही करते, उन्हें कुछ भी धन न दिया जाये। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट ने "राइडरों" (Riders) की निन्दा की, परन्तु फिर भी उन्हें बिल पर हस्ताक्षर करने पड़े। १६४६ मे सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि राइडर, असावैधानिक बिल आफ़ एटेंडर है और इस प्रकार विवाद समाप्त हुआ।

कुछ राष्ट्रपतियों ने स्वयं कानून बनाने का दावा किया है। राष्ट्रपति लिंकन और जॉनसन ने दक्षिणी पुनर्निर्माण (Southern reconstruction) के सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार की नीति निर्धारित करने के अधिकार का दावा किया। दूसरे महायुद्ध के समय राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कॉंग्रेस में "खेतिहर गुट" द्वारा मूल्य नियन्त्रण कानून बनने के मार्ग में सफलतापूर्वक रुकावटें डाले जाने पर क्रोध प्रकट किया और कहा कि यदि कॉंग्रेस सुपर्याप्त (adequately) कार्यवाही नही करती तो मैं कार्य करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लूंगा और कार्य करूँगा। उनकी इस धमकी का मनचाहा प्रभाव हुआ। १६५२ में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने लेबर के झगड़े के अवसर पर लोहा उद्योग को सरकारी अधिकार मे लेने की आज्ञा दे दी थी। उन्होंने टैफ्ट-हार्टले लेबर-मैनेजमैन्ट रिलेशन्ज एक्ट (Taft-Hartley Labour Management Relations Act) मे निर्धारित कार्यविधि के अनुसार कार्य करने से इन्कार कर दिया और जब वे अपनी इच्छा के अनुसार झगडे को न सुलझा सके, तो उन्होने अपने ही अधिकार से कब्जा करने का हुक्म दे दिया। Youngstown Sheet and Tube Co. v. Sawyer के मामले मे सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रपति के हुक्म को अमान्य (invalid) ठहराया। जस्टिस ब्लैक (Justice Black) ने कहा, "राष्ट्रपति की शक्ति यह देखना है कि विधान ठीक प्रकार से लागू किये जा रहे हैं या नही। इससे यह बात गलत ठहरती है कि वह कानून बनाने वाला है। संविधान मे विधान बनाने के सम्बन्धो में उसकी शक्ति उचित विधानों के लिए सिफारिश और बुरे विधानो को वीटो करने तक ही सीमित है।"...इस प्रकार संविधान के निर्माताओ ने अच्छे और बुरे दोनों समयों में, कानून बनाने का अधिकार सिर्फ कॉंग्रेस को पाटर (Potter) के अनुसार, कानून बनाने की स्वतन्त्रता के अधिकार

वाकई खतरनाक है। लेकिन प्रेसीडेण्ट और कांग्रेस में बहुधा खड़े होने वाले झगड़ों से अक्सर भयानक स्थिति पैदा हो जाया करती है। यंगस्टाउन (Youngstown) के केस में जारी की गयी रायों से यह नतीजा निकलता है कि राष्ट्रपति संविधान के अक्षरों को मान्यता देते हुए भी, कोर्ट के हस्तक्षेप के बिना बहुत कुछ स्वयं कर सकता है। अमेरिकन राष्ट्रपतियों के इतिहास से इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि इस पद की शक्तियाँ निरन्तर बढ़ती रहती हैं। राष्ट्रपति की निरन्तर बढ़ने वाली शक्तियों के विकास को केवल प्रभावी राष्ट्रपति-कांग्रेस सहयोग से ही रोका जा सकता है।"

संविधान राष्ट्रपति को कांग्रेस के विशेष अधिवेशन निमन्त्रित करने की शक्ति देता है। यह विशेष अधिवेशन कुछ दिनों तक चल सकता है अथवा उस समय तक चल सकता है जब तक कि नियमित अधिवेशन न प्रारम्भ हो। राष्ट्रपति कांग्रेस से नियमित अधिवेशन मे अधिक काल तक बैठने के लिए मांग कर सकता है ताकि आवश्यक कानून बनाये जा सकें और यदि वह इन्कार करे तो वह विशेष अधिवेशन बुलाने के साधन का प्रयोग कर सकता है। विशेष अधिवेशन बुलाने की धमकी से कांग्रेस के सदस्यों के होश ठिकाने लाये जा सकते हैं। विशेष अधिवेशन बुलाते समय राष्ट्रपति को एक उद्घोषणा करनी पड़ती है और वह विशेष अधिवेशन बुलाने का अभिप्राय और विषय सूची बतानी पड़ती है।

"प्रशासकीय आदेशों" (Executive Orders) के द्वारा राष्ट्रपति को अनेक विधायी शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन आदेशों की तुलना "डेलीगेटेड विधान" से की जा सकती है। क्योंकि कांग्रेस के पास अत्यधिक कार्य होता है और उसे निश्चित समय में समाप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए कांग्रेस राष्ट्रपति को कानून के उप-बन्धों को पूरा करने के लिए प्रशासकीय आदेश निकालने का अधिकार प्रदान करती है। राष्ट्रपति के द्वारा निकाले गए आदेशों की संख्या अत्यधिक होने के कारण उसका विधायी क्षेत्र मे प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया है।

अमेरिका के राष्ट्रपति को अनेक विवेक शक्तियाँ (discretionary powers) प्राप्त हैं जिन पर न्यायालयों ने भी प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। बहुत ही कम अवसरों पर राष्ट्रपति और सुप्रीम कोर्ट में विरोध (clash) होता है। तो भी, एक बार चीफ जस्टिस मार्शल और राष्ट्रपति जैकसन में विवाद खड़ा हो गया। राष्ट्रपति ने चीफ जस्टिस मार्शल के किसी निर्णय को पसन्द नहीं किया और कहा जाता है कि उसने ये शब्द कहे : "जॉन मार्शल ने अपना निर्णय दिया है, अब वही उसे लागू करे।"

अपने दल का नेता होने के कारण राष्ट्रपति कांग्रेस से कुछ भी कराने की आशा कर सकता है। ऐसा विशेषतः तब होता है जब कि उसी दल का कांग्रेस में बहुमत हो और उसी का मनोनीत व्यक्ति राष्ट्रपति हो।

राष्ट्रपति द्वारा विधान बनाने में भाग लेने के सम्बन्ध में, मैकबैन (Makbain) ने इस प्रकार कहा है "हम राष्ट्रपति को विधान मण्डल के नेता के रूप में चुनते हैं। हम उसे, जो कुछ कार्य वह कांग्रेस से करवाता है और जो कुछ वह कांग्रेस को करने से रोकता है, उसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। एक बार पदारूढ़ होने पर राष्ट्रपति

१ उसके मन्त्रिमण्डल का समय और ध्यान प्रशासनिक कार्यों के स्थान पर विधान-

सम्बन्धी कार्यों की ओर ही अधिक लगा रहता है। यह उस समय के लिए भी सत्य है जब कि कांग्रेस का अधिवेशन नहीं हो रहा होता है।" प्रेसीडेण्ट टैफ्ट (Taft) के अनुसार, "अमेरिका का राष्ट्रपति स्वयं विधान मण्डल का एक अंग है, क्योंकि वह कांग्रेस के कार्यों के सम्बन्ध मे अपने समर्थन और असमर्थन को प्रकट करता है। जो राष्ट्रपति विधान-निर्माण के कार्यो मे रुचि नही लेता, तथा पार्टी नेता के रूप में चुनाव से पहले किये गये प्रणो को नये कानूनों के रूप मे पूरा करने के उत्तरदायित्व की उपेक्षा करता है, वह जनता की आशाओं के विरुद्ध कार्य करता है।"

राष्ट्रपति और संविधान (President and Constitution)—राष्ट्रपति द्वारा सविधान की रक्षा करने के कर्त्तव्य के सम्बन्ध मे १८६४ मे राष्ट्रपति लिंकन ने इस प्रकार कहा था : "संविधान की रक्षा करने की मेरी कसम ने मुझ पर किसी भी प्रकार से उस सरकार और राष्ट्र की रक्षा करने का उत्तरदायित्व डाल दिया है जिसका वह संविधान है। क्या राष्ट्र को खोकर सविधान को बनाये रखना सम्भव था ? सामान्य विधान मे जीवन और शरीर दोनों की रक्षा होनी चाहिए, फिर भी जीवन बचाने के लिए शरीर का अग काट दिया जाता है, लेकिन अग बचाने के लिए जीवन को खो देना बुद्धिमत्ता नही है। मैंने यह महसूस किया कि राष्ट्र की रक्षा के द्वारा संविधान की रक्षा करने के लिए अनिवार्य कार्य, असावैधानिक होते हुए भी कभी कभी वैधानिक हो जाते है। चाहे यह सही हो अथवा गलत, मैंने यही मार्ग अपनाया है और अब इसे ही घोषित करता हूँ। मैं शक्ति भर प्रयत्न करके भी यह नहीं समझ पाया कि यदि गुलामी (slavery) अथवा ऐसी ही किसी छोटी-मोटी चीज को बचाने के लिए मैं सरकार, देश और सविधान को टूट जाने दूँ तो मैं संविधान को कैसे बचा सकूँगा।"

राष्ट्रपति का मूल्यांकन (Estimate)—अमेरिका का राष्ट्रपति अपने देश मे अत्यधिक लोकप्रिय होता है। लोग अपने पास राष्ट्रपति के लाखो फोटो रखते है। वाशिंगटन की एक फर्म के पास अकेले राष्ट्रपति विलसन के पचास हजार "नैगेटिव" (negatives) थे। देश के प्रत्येक भाग से उसके पास प्रतिदिन हजारों पत्र आते है। किन्तु उनमें से केवल कुछ पत्रों का उत्तर स्वयं राष्ट्रपति देता है, तथा अन्य पत्रों का उत्तर उसका सचिव (secretary) देता है। राष्ट्रपति से भेंट करने लोग बड़ी संख्या मे आते हैं। यह कहा जाता है कि राष्ट्रपति हार्डिंग के काल मे, लगभग २½ लाख व्यक्ति उससे भेट करने आए।

अमेरिका के राष्ट्रपतियों ने सदैव ही वैधानिक मार्ग का अवलम्बन किया है। लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, "एक बार प्रकट की गई यह शंका कि राष्ट्रपति 'निरंकुश शासक' (despot) हो जाएगा, निर्मूल सिद्ध हो गई है…। राष्ट्रीय मस्तिष्क मे अमेरिका की सरकार के सिद्धान्तों की जड़ें इतनी गहराई तक पहुँच चुकी हैं कि उनके उल्लंघन करने का प्रयत्न करते ही देश में असन्तुष्टि का तूफान उठ खड़ा होगा।"

राष्ट्रपति विलसन के अनुसार, "समस्त राष्ट्र ने उसे राष्ट्रपति निर्वाचित है और उसे यह ध्यान रहता है कि उसका कोई अन्य राजनैतिक प्रवक्ता (P- spokesman) नही है। केवल उसका (राष्ट्रपति) उद्घोष ही राष्ट्रीय

उसे एक बार देश का विश्वास तथा प्रशंसा जीत लेने दो और कोई अकेली शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती, कोई शक्तियों का संगठन उसे सरलता से नहीं हरा सकता। उसकी स्थिति राष्ट्रीय हो जाती है। वह किसी एक निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधि न होकर समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधि होता है। जब वह राष्ट्रपति के नाते भाषण देता है, तब वह किसी विशेष स्वार्थ की ओर से नहीं बोलता। यदि वह उचित रूप से राष्ट्रीय विचारों को प्रतिपादित करता है और उन पर दृढ़ता से स्थिर रहता है तो वह अदम्य (irresistible) होता है और देश में कभी इतना उत्साह नहीं होता जितना तब होता है जब देश में समझदार तथा ऊँचे दर्जे का राष्ट्रपति होता है। उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति संगठित कार्य की ओर है और वह एक ही नेता चाहती है।"

फिर, "हमारी प्रणाली द्वारा राष्ट्रपति पर डाल दी जाने वाली असाधारण एकान्तता (isolation) के कारण उसके पद का स्वरूप तथा अवसर इतने असाधारण हो गए हैं। उसमें मत (opinion) और पार्टी (party) दोनों केन्द्रित होते हैं। वह इच्छानुसार पार्टी से बाहर खड़ा रह सकता है, और यह दावा कर सकता है कि वह जनमत के आधार पर खड़ा है। (ऐसे व्यक्ति) को देश चाहता है।" इन स्वाभाविक भावनाओं के कारण, नामजदगी करने वाले सम्मेलन (Nominating Conventions) अक्सर उन व्यक्तियों को नामजद करते हैं, जो उनके माने हुए नेता नहीं होते, बल्कि जो ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनके हाथों में देश, अपनी दोनों पार्टियों का नेतृत्व चाहता है। राष्ट्रपति भी इच्छानुसार, पार्टी दायरे में खड़ा रह सकता है और अपने व्यक्तिगत बल तथा अपनी सत्ता को इसके वास्तविक प्रोग्राम पर नियन्त्रण रखने के लिए इस्तेमाल कर सकता है। वह पार्टी का नेता और देश का नेता दोनों भी हो सकता है और वह इनमें से कोई एक भी हो सकता है। यदि वह देश का नेतृत्व करना चाहे, तो पार्टी कठिनाई से ही उसके कार्य में अड़चन डाल सकती है।

ब्रोगन के अनुसार, "राष्ट्रपति तृतीय सदन है; कानून के अनुसार तो उसे यह हक था ही पर अब रूढ़ि के अनुसार भी यह हो गया कि वह विधान मण्डल के मुकाबले में अपना मत उन क्षेत्रों में भी, जिनमें विधान मण्डल सैद्धान्तिक रूप से सक्षम (competent) है, प्रस्तुत कर सके।"

सिडनी हाइमन के अनुसार, "अमेरिका का राष्ट्रपति, अमेरिकन सैनिक, कूटनीतिक तथा आर्थिक नीतियों के लिए आधारभूत नियमों का प्रस्ताव करने के अलावा भी बहुत कुछ करता है। पश्चिमी मित्रराष्ट्रों से भी वह ऐसे ही नियमों की प्रस्तावना करता है। राष्ट्रपति न केवल अमेरिका का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी है, अपितु वह उस कार्य-समूह में समन्वय करता है, जिसमें विदेशी कार्यपालिकायें भी भाग लेती हैं। वह न केवल कांग्रेस के कार्यों को ही वीटो (Veto) कर सकता है, अपितु उसके वीटो का भारी-भरकम बोझ विदेशी असेम्बलियों के सिरों पर भी लटकता रहता है। वह पार्टी का नेता होता है, जनमत का मार्ग-दर्शक और व्याख्याकार होता है, इसके अन्तःकरण का रक्षक, उत्सवों का प्रधान, अनुशासन स्थापित करने वाला और क्षमा का स्रोत होता है। वह यह सब चीज़ होता है और ऐसा वह न केवल प्रत्येक ... के लिए जिससे वह शक्ति प्राप्त करता है, अपितु वोट देने वाले विस्तृत

संसार रूपी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए भी होता है।" और "अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य ही नहीं करता (reigns) वह शासन भी करता है (rules)। वह है (is) भी और कार्य भी करता (does) है।" यही खिचाव पैदा करने का मूल कारण है। उसमें राजा के प्रति होने वाली भावनाएँ, और मजदूरों की तरह मेहनत करने वाले, एकात्मक प्रशासन के प्रधानमन्त्री (Prime Minister) का मेल होता है। वह स्थायिता का प्रतीक है, लेकिन वह सदा गतिशील रहने वाला बल भी है। वह अनेक विकल्पों (alternatives) की सूक्ष्म परीक्षा करता है, उनकी परिभाषा करता है और उनमें से चुनाव करता है और राष्ट्र का उद्देश्य के सम्बन्धों में और उन्हे पूरा करने के लिए वह स्वेच्छा से निर्णय करता है। चूँकि अपने पद की दृष्टि से वह बहुत ऊँचे स्थान पर रहता है, इसलिए अपने कार्य मे असफल होने पर उसे बडी भारी चोट लगती है। यही आशा की जाती है कि यदि वह सही तर्क का उपयोग करेगा तो प्रत्येक समस्या को सुलझा लेगा; यदि वह किसी समस्या को नही सुलझा सकता तो कसूर समस्या का नही होता, बल्कि उसकी नैतिक पराजय का होता है। यह भी महसूस किया जाता है, कि स्वदेश अथवा विदेश में उससे जो कुछ कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, उसे करने के लिए वह स्वतन्त्र है। यदि वह अपनी उस स्वतन्त्रता को हमारी इच्छानुसार प्रयोग में नही लाता, तो इसका कारण भी उसकी नैतिक पराजय (moral failure) है। अक्सर यह भुला दिया जाता है कि वह नियन्त्रित तथा सुनिश्चित तरीके से काम करने के लिए कानून (law) और रूढ़ियों से बँधा रहता है; उसमें बुरे को अच्छा बना देने की ईश्वरीय शक्ति नहीं होती; प्राचीन काल से आते हुए ऐतिहासिक बलो के दबाव के कारण उसे कोई एक निश्चित मार्ग अपनाने को मजबूर होना पड़ता है।

प्रो० लास्की ने लिखा है कि अमेरिका का राष्ट्रपति राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख है। वह राष्ट्र का मनोनीत नेता है और इसलिए उसे अनेक नाजुक तथा थकान वाले कार्य करने पड़ते है। वह एक दिन वाशिंगटन में राष्ट्रीय गैलरी (National Gallery) के लिए जार्ज पंचम की मूर्ति स्वीकार कर सकता है। मंगलवार को वह अमरीका की क्रान्ति की पुत्रियों का तथा बुधवार को राष्ट्रीय शिक्षा संघ (National Education Association) का अभिनन्दन (greet) कर सकता है। वाशिंगटन के जन्मोत्सव पर एक प्रकार का भाषण देना पड़ता है, और एक डेमोक्रेट मे जैफरसन के जन्मोत्सव पर एक प्रकार के भाषण की आशा की जाती है। वह बालचरों को सन्देश दे सकता है, अन्य देशों के राजाओं से भेंट करता है, न्यायपालिका को भोज दे सकता है तथा राजदूतों का आवश्यक मनोरंजन कर सकता है। कोई आश्चर्य नही यदि यह कहा जाए कि "अपनी शक्ति के क्षेत्र में, अपने प्रभाव के महत्त्व से और स्वयं अपने प्रधान मन्त्री होने तथा एक महान् राज्य के सर्वोच्च अध्यक्ष होने के कारण उसकी स्थिति अद्वितीय है।"

उस सिद्धान्त की ओर निर्देश किया जा सकता है जिसे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने जैक्सन-लिंकन का राष्ट्रपति-सिद्धान्त (Theory of Presidency) बताया है। संक्षेप में, इसका यह तात्पर्य है कि कभी-कभी महान् संकट आते है जिनके लिए प्रबल तथा शीघ्र पग उठाने पड़ते है। राष्ट्रपति का कर्त्तव्य इस सिद्धान्त पर कार्य करना है कि

वह जनता का संरक्षक (steward) है और उसे यह उचित दृष्टि से अपनाना है और वह यह मानने के लिए बाध्य है कि वह कानून की शक्ति से उन सभी कार्यों को करने का अधिकारी है जो जनता की आवश्यकताओं के लिए अपेक्षित हैं, सिवाय उनके जिनको संविधान अथवा कानून अभिव्यक्ततः निषिद्ध (expressly forbid) करे।

विल्सन (Wilson) के अनुसार, "व्यक्ति तथा उसकी परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर राष्ट्रपति पद की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है।" इस प्रकार, जैक्सन, लिंकन और रूजवेल्ट तीन दृढ राष्ट्रपति थे और उन्होंने कांग्रेस का नेतृत्व किया और कांग्रेस ने उनका अनुकरण किया। लेकिन हूवर (Hoover) जैसे दुर्बल राष्ट्रपतियों के समय में कांग्रेस ने नेतृत्व किया और राष्ट्रपतियों ने उसका अनुकरण किया। ऐसा विशेषकर १८३६ से १८६१ तक और १८६५ से १८६८ तक हुआ।

राष्ट्रपति की शक्तियों में वृद्धि—राष्ट्रपति की शक्तियों में बहुत वृद्धि हुई है और ऐसा बहुत-से कारणों से हुआ है। राज्य के विधेयात्मक दृष्टिकोण (positive conception) के कारण इसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों में वृद्धि हो गई है और इसमे कोई आश्चर्य की बात नही कि राज्य का वास्तविक प्रमुख होने के कारण उसे उससे अधिक कार्य करने पड़ते है, जितने कि वह पहले किया करता था। पार्टी प्रणाली (party system) बन जाने के कारण, कार्यपालिका और विधानमण्डल में सम्बन्ध स्थापित हो गया है, इस कारण राष्ट्रपति के हाथ मजबूत हो गए है। वह कांग्रेस में, विशेष रूप से अपनी पार्टी के सदस्यों के, समर्थन पर निर्भर रह सकता है। इस कारण विधानमण्डल मे अपनी इच्छानुसार कार्य करा सकता है। वह निरूढ़ि बन जाने के कारण, जिसने राष्ट्रपति के चुनाव को प्रत्यक्ष (direct) बना दिया है, राष्ट्रपति की इज्जत में वृद्धि हो गई है। राष्ट्रपति सीधे देश की जनता को अपील कर सकता है। प्रेस, रेडियो और सिनेमा ने राष्ट्रपति की सत्ता और प्रसिद्धि को बढा दिया है। चार्ल्स बीयर्ड (Charles Beard) के शब्दों में, "यान्त्रिक आविष्कार, सांवैधानिक संशोधन से बढकर; राष्ट्रपति की शक्तियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं।" अमेरिकन राजनीति में राष्ट्रपति के द्वारा किए जाने वाले अपेक्षित कार्य में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आ गया है। प्रेसीडेण्ट जैक्सन से पहले अमेरिकन राष्ट्रपति अपने कार्यों को बहुत संकुचित दृष्टिकोण से देखते थे। जैक्सन के पश्चात् यह महसूस किया जाने लगा कि राष्ट्रपति को उसी प्रकार कार्य करना चाहिए जिस प्रकार कांग्रेस करती है। उसे एक मिशन को लेकर चलने वाले नेता के रूप में कार्य करना है, केवल असहाय प्राणी के रूप मे नहीं।

श्वार्ट्ज (Schwartz) के अनुसार, "पुनर्गठन अधिनियम (Reorganisation Acts) १६४६ और १६५६ के अधीन उसकी शक्ति के उपयोग ने, राष्ट्रपति को, अमेरिकन प्रशासन के प्रधान के रूप में, अपनी स्थिति को मजबूत और विस्तृत करने का अवसर प्रदान किया। साथ ही, प्रभावी प्रबन्ध के दृष्टिकोण से देखने पर, इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि केन्द्रीय कार्यपालिका के प्रभावी पुनर्गठन (effective reorganisation) की समस्या अभी तक बनी हुई है। इस दिशा में [illegible] रूप से 'रेगुलेटरी कमीशनों' (Regulatory Commissions) की स्वतन्त्र

का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, जिनमें से मेरीटाइम कमीशन (Maritime Commission) को छोड़कर, और किसी को अब तक राष्ट्रपति की पुनर्गठन योजनाओं में से किसी ने नहीं छुआ है। इन संस्थाओं के राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होने से राष्ट्रपति की प्रशासन के जनरल मैनेजर होने की स्थिति मे भारी फर्क पड़ जाता है। संविधान द्वारा संगठित और केन्द्रीय कार्यपालिका का अध्यक्ष बनाए जाने पर कानूनों को वफादारी से लागू करने का उत्तरदायित्व दिए जाने पर भी वह इन शक्तिशाली प्रशासनिक संस्थाओं के चारो ओर घूमना है, जो कि किसी भी प्रकार से उसकी सत्ता के मातहत नहीं है, और जो राष्ट्रीय प्रशासन को प्रभावी बनाने के उसके कार्य मे वास्तविक रुकावटे डालती है।"

तुलनाएँ (Comparisons)—अमेरिका के राष्ट्रपति की इंगलैंड के राजा और प्रधान मन्त्री से और फ्रास के राष्ट्रपति से तुलना करना वाछनीय है। फ्रास का राष्ट्रपति केवल नाम मात्र का (titular) अध्यक्ष होता है और फ्रांस मे वास्तविक शक्ति फ्रास के मन्त्रिमण्डल और प्रधान मन्त्री में निहित है। इसका कारण यह है कि फ्रांस में संसदीय प्रणाली की सरकार है। दूसरी ओर अमेरिका का राष्ट्रपति स्वयं वास्तविक शासक है। वह राष्ट्र का नेता है और इसीलिए समस्त शक्तियाँ उसमें केन्द्रित हैं। इस प्रकार से वह फ्रास के प्रधान मन्त्री से भी शक्तिशाली है जिसकी स्थिति बहु पार्टी-व्यवस्था के होने से और इसी कारण मन्त्रिमण्डलों मे समय-समय पर होने वाले परिवर्तनो से दुर्बल है। फ्रांस के प्रधान मन्त्री का किसी भी दिन अविश्वास के मत के कारण पतन हो सकता है, किन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति को अपनी स्थिति पर विश्वास होता है, क्योंकि साधारणतः उसको चार वर्ष से पूर्व कोई नहीं हटा सकता।

इंगलैंड का राजा और अमेरिका का राष्ट्रपति—जहाँ तक इगलैंड के राजा और अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना का प्रश्न है राजा नाममात्र का अध्यक्ष होता है और अमेरिका का राष्ट्रपति वास्तविक। इगलैंड का राजा राज्य का वैधानिक प्रमुख है और इसलिए उसका व्यावहारिक रूप मे देश के प्रशासन मे कोई हाथ नहीं है। प्रत्येक वस्तु प्रधान मन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल के हाथ में है, जो कि देश की वास्तविक कार्यपालिका (executive) है। परिस्थितियों के अनुसार, अमेरिका के राष्ट्रपति की इंगलैंड के राजा की अपेक्षा उसके प्रधान मन्त्री से तुलना करना अधिक न्यायसंगत है। एक प्रकार से उसकी स्थिति इगलैंड के प्रधान मन्त्री से अधिक दृढ़ होती है और दूसरी प्रकार से अधिक दुर्बल। वह अधिक दृढ़ है क्योकि वह सम्पूर्ण कार्य का मुखिया है। इंगलैंड के विषय मे प्रधानमन्त्री को अपने मन्त्रिमण्डल को अपने विचारों का बनाना पडता है और प्रत्येक स्थान पर वह अपने साथियों के मत का अनादर नहीं करता। उसे अनेक अवसरो पर उनका दृष्टिकोण अपनाना पडता है और उसके अनुरूप ही कार्य करना पड़ता है। इन परिस्थितियों मे, मन्त्रिमण्डल के मन्त्री उसकी स्थिति पर एक रुकावट है। किन्तु अमेरिका के राष्ट्रपति की ऐसी स्थिति नहीं है। यह सत्य है कि उस मन्त्रिमण्डल होता है, किन्तु उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके द्वारा मनोनीत हैं। जनता उनका निर्वाचन नही करती। इसी कारण उनके पीछे जनता का नहीं होना। राष्ट्रपति कभी भी उनको पदच्युत कर सकता है। परिणाम

उसकी स्थिति अधिक दृढ़ है। एक प्रकार से अमेरिका का राष्ट्रपति इंगलैंड के प्रधान मन्त्री से दुर्बल है। शक्ति-विभाजन के कारण, अमेरिका के राष्ट्रपति को सदैव उन शक्तियों को प्राप्त करने का विश्वास नहीं होता जिनको वह काँग्रेस से चाहता है। उत्तरदायित्व के विभाजन ने भूतकाल में कठिनाइयाँ उपस्थित की हैं और भविष्य में उनकी प्रत्येक सम्भावना है। राष्ट्रपति को सदा यह विश्वास नहीं होता कि काँग्रेस उसका कहना मान लेगी। किन्तु उस समय स्थिति भिन्न होती है जब काँग्रेस में उसी दल का बहुमत हो जिस दल का राष्ट्रपति है।

लास्की (Laski) के अनुसार, इंगलैंड के वर्तमान प्रधान मन्त्री की स्थिति बहुत कुछ अमेरिकन राष्ट्रपति के समान है। उसका यह दृष्टिकोण स्वीकार नहीं किया जाता। यह कहा जाता है कि प्रधान मन्त्री चर्चिल के पास भी इतनी शक्ति और सत्ता नहीं थी जितनी राष्ट्रपति रूजवेल्ट के पास थी। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट को एक रिपोर्ट में मि० हैरी हॉपकिन्स (Mr. Harry Hopkins) ने इस प्रकार लिखा "आपका पुराना नौसैनिक (अर्थात् श्री चर्चिल) न केवल प्रधान मन्त्री है बल्कि वह युद्ध का संचालन भी कर रहा है। उसे ब्रिटिश जनता के सभी वर्गों और समूहों पर आश्चर्यजनक आधिपत्य प्राप्त है। सैनिक संस्थाओं और मजदूरों दोनों पर उसे विशेष अधिकार प्राप्त है।" मि० चर्चिल ने स्वयं यह स्वीकार किया कि "किसी भी प्रधान मन्त्री को अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से इतना विश्वास और सहायता प्राप्त नहीं हुई जितनी कि मुझे पिछले पाँच वर्षों में राज्य की सभी पार्टियों के व्यक्तियों से प्राप्त हुई। पार्लियामेंट ने आलोचना का स्वतन्त्र तथा क्रियाशील दृष्टिकोण बनाये रखते हुए भी सरकार के सभी प्रस्तावों का पूरा समर्थन किया और राष्ट्र इससे पूर्व कभी इतना संगठित नहीं था।" यद्यपि चर्चिल संगठित पार्लियामेण्ट, संगठित मन्त्रिमण्डल और संगठित जनता के कारण शक्तिशाली था, तो भी वह अपने मन्त्रिमण्डल की मर्जी के बिना कार्य नहीं कर सकता था, जैसे कि प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट कर सकता था। अटलांटिक चार्टर का जिक्र करते हुए डॉ० जेनिंग्ज ने ठीक ही कहा था : "राष्ट्रपति ने संयुक्त राज्य (United States) की ओर से वचन दे दिया पर इंगलैंड के युद्ध मन्त्रिमण्डल (War Cabinet) ने वचन दिया, प्रधान मन्त्री ने नहीं।"

प्रेसीडेण्ट टैफ्ट (Taft) के अनुसार, "जैसा कि हरेक राष्ट्रपति को करना पड़ता है, मैंने भी बहुत से भाषण दिये और प्रत्येक सज्जन व्यक्ति ने परिचय कराते समय, मेहमान के बजाय उस अवसर को बड़ा बनाने के लिए, प्रायः यह कहा कि वह एक ऐसे व्यक्ति का परिचय करा रहा है जिसके हाथों में यूरोप के किसी भी बादशाह से अधिक शक्ति है। मुझे अमेरिका के राष्ट्रपति की शक्तियों और इन देशों में वास्तविक विधानमण्डलीय नियन्त्रण नहीं है, उन देशों के शासकों की शक्तियों की तुलना करके, इस कथन की अपूर्णता पर प्रकाश डालने की जरूरत नहीं। जर्मन सम्राट्, आस्ट्रिया के सम्राट् और रूस के सम्राट् की शक्तियाँ संयुक्त राज्य के प्रेसीडेण्ट की शक्तियों से कहीं अधिक हैं।...... दूसरी ओर संसदीय (parliamentary) सरकारों का प्रधान हमारे राष्ट्रपति से कम शक्तिशाली है। इंगलैंड में राजा राज्य करता है (reigns), परन्तु शासन नहीं करता (does not rule)। इसी प्र

कनाडा के गवर्नर-जनरल के बारे में भी सत्य है। फ्रांस में, राष्ट्रपति प्रधान होता है, पर शासन नहीं करता। मगर इन संसदीय सरकारों में एक वास्तविक शासक होता है जो कुछ महत्वपूर्ण मामलों में अमेरिका के राष्ट्रपति से अधिक शक्तिशाली हुआ करता है। वह प्र न मन्त्री होता है जोकि कार्यपालिका सम्बन्धी तथा विधान-मण्डल सम्बन्धी दोनों प्रकार के कार्य किया करता है।"

श्वार्ट्ज़ (Schwartz) के अनुसार, राष्ट्रपति टैफ्ट (Taft) के द्वारा पेश किया गया चित्र पूरा-पूरा ठीक नहीं है। उसके शब्दों में, "अमेरिका का राष्ट्रपति, राज्य और कार्यपालिका का प्रधान है। यह तथ्य कि उसकी पदावधि काँग्रेस के समर्थन पर निर्भर नहीं करती, उसे विधानमण्डल से स्वतन्त्र रहने का अवसर प्रदान करता है, जिसका दावा करके कोई भी ब्रिटिश प्रधान मन्त्री अधिक दिन तक अपने पद पर बना नहीं रह सकता। पार्टी के आधार पर राष्ट्रपति का चुनाव होने के कारण वह पार्टी का नेता भी होने लगा है। यद्यपि अमेरिकन पार्टी अनुशासन में ढिलाई होने के कारण, इस सम्बन्ध में, उस पर नियन्त्रण इतना अधिक नहीं होता जितना कि ब्रिटिश प्रधान मन्त्री पर होता है। फिर राष्ट्रीय नेता के रूप में राष्ट्रपति को जो स्तर प्राप्त है उसका दावा, ससदात्मक प्रणाली में कोई भी प्रधान मन्त्री नहीं कर सकता। सरकारी अधिकारियों में से केवल राष्ट्रपति ही ऐसा अधिकारी होता है जो राष्ट्रीय आधार पर चुना जाता है। इस कारण उसके कार्यों को ऐसा जन-समर्थन प्राप्त होता है, जितना किसी अन्य व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। आम जनता तक पहुँचने के इतने साधन होने के कारण आजकल यदि कभी प्रेसीडेण्ट के कार्य का विरोध विधानमण्डल का अध्यक्ष करे, तो मतदाताओं से काँग्रेस के अध्यक्ष के विरुद्ध प्रभावशाली अपील की जा सकती है। ब्रिटेन में भी इस प्रकार की अपीलें की जा सकती है। लेकिन वहाँ उन्हें प्रभावी होने के लिए चुनाव की आवश्यकता होती है और इसमें प्रधान मन्त्री को, जिसने वह अपील की है, अपनी कुर्सी छिन जाने का खतरा बना रहता है।

"साथ ही, राष्ट्रपति के प्रशासन का अध्यक्ष होने के कारण, उसकी स्थिति कई मामलों में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री से अधिक समर्थ दीखती है। राष्ट्रपति को केन्द्रीय सरकार की सभी कार्यपालिका सम्बन्धी शक्तियाँ दी जाती हैं। इंगलैंड का प्रधान मन्त्री अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के सम्बन्ध में, सरकारी कार्यविधि चलाने के लिए बोर्ड आफ डायरेक्टर्स (Board of Directors) के चेयरमैन जैसा हुआ करता है। वह अपने साथियों पर उतना ही निर्भर होता है, जितना कि वे उस पर। लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति का सम्बन्ध अपने मन्त्रिमण्डल से बिलकुल भिन्न होता है। वह उस पर पूर्ण रूप में नियन्त्रण रखता है क्योंकि वे अपने पद पर उसके प्रसाद-पर्यन्त ही रह सकते हैं। कानून को भली-भाँति लागू करने का पूर्ण दायित्व उसी के सिर पर रहता है। उसी के हाथ में प्रशासनिक अधिकारियों को नियुक्त करने तथा बरखास्त का अधिकार होता है। उसके इस अधिकार के कारण वह सरकारी ि प्रधान मन्त्री से अधिक प्रभावकारक ढग से नियन्त्रण जमाये रहता है।

"फिर, ब्रिटिश प्रणाली में जो अधिकार अभी तक क्राउन के पास राष्ट्रपति में निहित हैं। राष्ट्रपति सुरक्षा सेनाओं का कमांडर-इन-चीफ

है, और अमेरिकन इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसकी यह शक्ति वास्तविक है। संविधान के अधीन, क्षमा करने का परमाधिकार उसी के पास है। बहुत से औपचारिक कर्त्तव्य, जो इंगलैंड में क्राउन के पास हैं, अमेरिका में राष्ट्रपति द्वारा पूरे किये जाते है। साथ ही कांग्रेस द्वारा पास किए गए विधेयक, हस्ताक्षरों के लिए, राष्ट्रपति के पास भेजे जाते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि राष्ट्रपति के पास विधान को वीटो करने की प्रभावी शक्ति है, जो कि ब्रिटिश क्राउन के पास नहीं है।

"यद्यपि क्राउन को स-परिषद् आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, तथापि आजकल वह केवल औपचारिक है, किन्तु अमेरिका के प्रशासनिक अध्यक्ष, राष्ट्रपति को प्रशासनिक आज्ञाएँ (executive orders) जारी करने की वास्तविक शक्ति प्राप्त है।

"इस प्रकार राष्ट्रपति टैफ्ट ने जो राष्ट्रपति की स्थिति क्राउन और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के बीच मे बताई है, वह पूर्ण रूप से तथ्यों के अनुसार नहीं है। सही स्थिति तो यह है कि उसके हाथों मे ब्रिटिश क्राउन और प्रधान मन्त्री, दोनों के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली शक्तियो का समावेश रहता है। महारानी और प्रधान मन्त्री दोनों के कार्यों का सगठन इस पद में होने के कारण ही राष्ट्रपति का पद इतना महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली हो गया है।"

हाईमैन (Hyman) के अनुसार, "उसका स्थान कांग्रेस के बाहर होने के कारण उसके हाथों में सीधे कमाड करने की वैसी शक्ति नहीं रहती जैसी कि पार्लियामेंट में प्रधान मन्त्री की होती है। फिर भी सीधे जनता से अपील करके वह कांग्रेस को उसी मार्ग पर ला सकता है जिस पर वह उसे चलाना चाहता है। यद्यपि उसे एक ऐसे मन्त्रिमण्डल की, जो सामूहिक रूप से, प्रशासन के किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के प्रति उत्तरदायी हो, सुविधा प्राप्त नही है; तो भी वह अपने मन्त्रिमण्डल के किसी भी सदस्य के कार्यों के प्रति असन्तोष जाहिर कर सकता है और फिर भी कार्यपालिका के रूप मे जीवित रह सकता है। कोई प्रधान मन्त्री ऐसा नहीं कर सकता। यद्यपि वह सीधे कांग्रेस के विचार-विमर्श में भाग नही लेता, तो भी राष्ट्रपति अपने विधान-मण्डलीय मित्रों (legislative friends), अपने दुश्मनों (जो स्वार्थ अथवा अपने विश्वासों के कारण उसके कुछ कार्यों का समर्थन करेंगे), मन्त्रिमण्डल के अधिकारियों और मुख्य सहायकों के द्वारा जो कांग्रेस की कमेटियों मे पेश होते हैं, और अपने विचार से सहमत निजी सगठनों के प्रधानों और राष्ट्र में नाम पाये हुए नागरिकों द्वारा कांग्रेस में अपना प्रतिनिधित्व रखता है। इन व्यक्तियों द्वारा अपने विचार प्रकट करने का शायद इतना प्रभाव नहीं होता, जितना कि कांग्रेस में खड़े होकर स्वयं किसी वाद-विवाद में बोलने का होता। फिर भी वे सस्ता कांग्रेस और राष्ट्र द्वारा दिये जाने वाले सभी झटकों को बरदाश्त करते हैं, जो कि दूसरी अनुपस्थिति में प्रेसीडेन्ट के सिर पर बरस पड़ते।

"अमेरिकन राजनीतिक साहित्य अमेरिकन राष्ट्रपति के पद और अंग्रेजी प्रधान मन्त्री के अपने-अपने भागों के सम्बन्ध में लम्बे-लम्बे विवादों से भरा पड़ा है। ... मे तो यह सारा वाद-विवाद व्यर्थ है। दोनों की तुलना अपने-अपने ढंग से दोनों

में की जा सकती है, और उन्हें, किसी विशेष स्थिति मे प्रदर्शित शक्ति और दुर्बलता के आधार पर जाँचा जा सकता है। लेकिन मूल तथ्य यह है, कि वे अकेले मे (isolation) कार्य नहीं करते। वे सगठित (integrated) और उत्तरदायी शक्ति के पूर्णतया भिन्न सांविधानिक सिद्धान्तों (formulas) मे रहकर कार्य करते है। प्रधान मन्त्री पद के किसी विशेष लक्षण को राष्ट्रपति पद मे इसकी प्रणाली विशेष की ओर ध्यान दिए वगैर खीच कर लाने से उसी प्रकार से विकृति पैदा होगी, जैसे कि राष्ट्रपति पद (Presidency) के किसी विशेष लक्षण को प्रधान मन्त्री पद मे खीच लाने से पैदा होगी।"

राष्ट्रपति का मन्त्रिमण्डल (President's Cabinet)—यह पहले ही कहा जा चुका है कि राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल का देश के कानून में उल्लेख नही है। पिछले १६० वर्षों मे इसका विकास निरूढि के द्वारा हुआ है। यह निर्देश किया जाता है कि संविधान निर्माताओ ने मन्त्रिमण्डल सस्था को आवश्यक नही समझा था। किन्तु उन्होंने संविधान मे विभिन्न विभागों के अध्यक्षो के लिए व्यवस्था रखी थी। उनकी नियुक्ति के लिए सैनेट के अनुमोदन की आवश्यकता होती है, लेकिन सैनेट ने उसे बहुत कम अवसरो पर अस्वीकार किया है। फाइनर (Finer) के अनुसार, "ये व्यक्ति राष्ट्रपति के ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत सहायक होते है कि इस विषय मे सैनेट का, उसकी पसन्द के एक भी व्यक्ति को अस्वीकार करने का कार्य केवल शोचनीय एवं भद्दा ही नही होगा अपितु अस्वीकृत व्यक्तियो की संख्या अधिक होने पर सरकार को ठप्प करने मे भी सहायक होगा।"

मन्त्रिमण्डल-सदस्य छाँटने की विधि—साधारणतः राष्ट्रपति अपने राजनैतिक दल के सदस्यों मे से चुनाव करते हैं। किन्तु, १६४१ मे राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अपने मन्त्रिमण्डल में दो रिपब्लिकन दल के सदस्यों को सम्मिलित किया था। उनके नाम स्टिमसन (Stimson) और नाक्स (Knox) थे।

राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल के चुनाव के समय अन्य व्यक्तियों से परामर्श ले सकता है। श्री विल्सन के सचिव टुमुल्टी (Tumulty) ने इस विषय पर कहा है: "मैंने राष्ट्रपति को सूचित किया कि मैं कुछ ही घण्टों में किसी नाम का सुझाव दूंगा। मैं न्यू जर्सी में अपने घर के पुस्तकालय मे गया और लायर्स डायरी (Lawyers' Diary) को देखते हुए मुझे लिण्डले गैरीसन (Lindley Garrison) के नाम का ध्यान आया, जो कि मेरे नगर का निवासी था। यद्यपि मैं उससे बहुत कम मिला था और उसके सामने कुछ मुकदमो को सुना था तथापि उसने मुझे एक उच्च प्रकार के ईक्विटी जज या साम्य न्यायाधीश (Equity Judge) के नाते प्रभावित किया था। उस रात को मैंने निर्वाचित राष्ट्रपति (President-elect) को टेलीफोन किया और लिण्डले गैरीसन के नाम का प्रस्ताव किया जिसकी 'चान्सरी कोर्ट' के माननीय न्यायाधीश के नाते कीर्ति (reputation) से निर्वाचित राष्ट्रपति परिचित थे। उसे दूसरे दिन ट्रेंटन (Trenton) में निमन्त्रित किया गया और इस बुलावे के अभिप्राय का तनिक भी ध्यान न करके वह वहा पहुँचा और उससे विल्सन मन्त्रिमण्डल में युद्ध

वह अधिनियमों (Acts), अभिभाषणों (Addresses), संयुक्त संकल्पों (Joint Resolutions), लेखों (Writs), अधिपत्रों (Warrants) तथा उपस्थिति आदेशों, जिनकी अवज्ञा पर दण्ड दिया जा सकता है, आदि पर हस्ताक्षर करता है; *नियमों की व्याख्या तथा उन्हें लागू करता है; व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्नों* (Questions of Order) को तय करता है; प्रश्नों पर मत लेता है; और समय-समय पर प्राधिकृत (authorised) प्रवर समितियाँ (Select Committees) तथा कान्फ्रेंस समितियाँ (Conference Committees) नियुक्त करता है। सदन का पूर्ण सदस्य होने के कारण उसे भाषण तथा मत देने का वैसा ही अधिकार है जैसा अन्य सदस्यों को तथापि उसे केवल समान मत होने पर ही मत देने का अवसर आता है जबकि उसका मत निर्णायक होता है। वह अपने स्थान पर किसी सदस्य को अधिक-से-अधिक तीन दिन (बीमारी की दशा में १० दिन) के लिए पीठासीन अधिकारी (Presiding Officer) नियुक्त कर सकता है; और व्यवहार मे, वह बहुधा अन्य सदस्य को अस्थायी रूप से स्थान ग्रहण करने का आमन्त्रण देता है।"

डा० फाइनर (*Dr. Finer*) के अनुसार, "वह (अध्यक्ष) विचार तथा व्यवहार में अभी तक पार्टी का सदस्य है। वह अभी तक कांग्रेस के नेताओं के छोटे से समूह का सदस्य है, जो कि प्रशासकीय कानून पास कराने के लिए राष्ट्रपति से विचार-विनिमय करता है। उसकी पार्टी तथा स्टीयरिंग कमेटी (Steering Committee) उससे अब भी परामर्श करती है और उसका उन पर बड़ा प्रभाव होता है। वह अभी तक समितियों को काम सौपने तथा कार्य की प्राथमिकता (Priority of Business) के निश्चित करने मे प्रमुख स्थान रखता है क्योंकि वह सबसे अधिक प्रमुख व्यक्तियों में से एक और साधारणतः अपनी पार्टी का सबसे प्रमुख व्यक्ति होता है क्योंकि इसी कारण वह अध्यक्ष निर्वाचित होता है। ४३५ सदस्यों के सदन में व्यवस्था तथा प्रबन्ध होना ही चाहिए और नेतृत्व की शक्ति कहीं-न-कहीं रखनी ही चाहिए। १६१० तक, यह शक्ति अध्यक्ष और उसके कृपाकांक्षी मित्रों में निहित थी पर अब यह अध्यक्ष के मित्रों और अध्यक्ष मे निहित है। अब नेतृत्व एक मण्डली को सौंप दिया गया है, किन्तु अध्यक्ष अब तक इस 'मण्डली' (Syndicate) का प्रमुख सदस्य है।

यह निर्देश किया जाता है कि अमेरिका के अधिकतर अध्यक्ष विज्ञ, उद्योगी तथा निपुण हुए हैं। उनमें नेतृत्व के गुण थे। कुछ प्रमुख अध्यक्ष हैनरी क्ले, विनथ्रोप, कोल्फैक्स (Colfex), ब्लेन (Blaine), रैंडल (Randall), कैनन (Cannon), रेवर्न, रीड, लॉग वर्थ आदि है।

कांग्रेस की शक्तियां और कार्य (Powers and Functions of Congress)—कांग्रेस को पर्याप्त विधायी (legislative) और गैर-विधायी (non-legislative) दोनों प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त है। उसके विधायी कार्यों के विषय में कहा जा सकता है कि कोई भी विधेयक कांग्रेस की स्वीकृति के बिना देश का कानून नहीं बन सकता। संविधान मे वे विषय गिनाए गए हैं जिन पर कांग्रेस कानून बना सकती है। उनका क्षेत्र ध्वनित शक्तियों (implied powers) के सिद्धान्त के लागू होने के कारण विस्तृत हो गया है। पहले से ही प्राप्त शक्तियो को लागू करने के लिए

विधान" (appropriate legislation) को पास करने का अधिकार भी कांग्रेस को मिल गया है। संविधान के 'सामान्य कल्याण खण्ड' (general welfare clause) ने भी कांग्रेस की शक्तियों में वृद्धि की है। संविधान के शब्द ये हैं: "कांग्रेस को संयुक्त राज्य की सामान्य प्रतिरक्षा और साधारण कल्याण की व्यवस्था करने की शक्ति प्राप्त होगी।" यह सत्य है कि राष्ट्रपति को कांग्रेस के पास किए हुए विधेयक को निषेध (veto) करने का अधिकार है, किन्तु निषेधाधिकार सर्वोपरि नहीं। कांग्रेस विधेयक को दो-तिहाई बहुमत से पास करके उस निषेधाधिकार को प्रभावहीन कर सकती है।

कांग्रेस संविधान के संशोधन में भी महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। संविधान उस समय तक संशोधित नहीं किया जा सकता जब तक कि संशोधन कांग्रेस के दो-तिहाई बहुमत के द्वारा स्वीकृत न हो जाए। संविधान का एक शब्द भी कांग्रेस की स्वीकृति के बिना नहीं बदला जा सकता। कांग्रेस द्वारा की गई संविधान की व्याख्या के विषय में आम तौर से अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट हस्तक्षेप नहीं करता।

प्रति चतुर्थ वर्ष राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में डाले गए वोटों को गिनने के लिए कांग्रेस के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है। यदि प्रत्याशियों (candidates) में से कोई स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं करता तो प्रतिनिधि सभा प्रथम तीन अधिकतम मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशियों में से किसी एक को राष्ट्रपति चुनती है। जब उपराष्ट्रपति प्रत्याशियों में से कोई स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता तब सैनेट प्रथम दो अधिकतम मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशियों में से एक को उपराष्ट्रपति चुनती है। किन्तु इस प्रकार केवल एक उपराष्ट्रपति १८३७ में चुना गया था। कांग्रेस को सैनेटरों और प्रतिनिधियों के चुनाव के समय, स्थानों और विधि के सम्बन्ध में कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। वह अपने सदस्यों की योग्यता नियत करती है। वह यह भी निर्णय करती है कि क्या कोई चुनाव वैध है या अवैध। वह उन व्यक्तियों को अयोग्य घोषित कर सकती है जिनके व्यवहार को कांग्रेस का बहुमत मान्य नहीं करता। १९२६ में सैनेट ने विलियम एस० वरे (Vare) को सैनेट में बैठने से रोक दिया क्योंकि उसने चुनाव आन्दोलन पर बहुत अधिक धन व्यय किया।

सैनेट राष्ट्रपति द्वारा प्रस्तावित संधियों की पुष्टि करती है और चतुर राष्ट्रपति उनको वास्तविक रूप से स्वीकृत करने से पहले सैनेट का समर्थन प्राप्त कर लेते हैं। राष्ट्रपति द्वारा की जाने वाली नियुक्तियों में भी कांग्रेस का हाथ होता है। 'सैनेटोरियल कर्टेसी' निरूढ़ि (Convention) की माँग है कि राष्ट्रपति को किसी राज्य में केवल उन व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए, जिनको उस राज्य से सम्बन्धित उसकी पार्टी का सैनेटर पसन्द करे। वास्तव में, सैनेटर उनके नाम राष्ट्रपति को सुझाते हैं। यदि किसी राज्य का कोई भी सैनेटर राष्ट्रपति के दल का न हो तो उस राज्य में नियुक्तियाँ प्रतिनिधि सभा के राष्ट्रपति के दल से सम्बन्धित उस राज्य के प्रतिनिधि के परामर्श से की जाती हैं।

कांग्रेस न्यायिक कार्य भी करती है। प्रतिनिधि सभा राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और दूसरे संघीय अधिकारियों पर महाभियोग लगा सकती है और उनकी जाँच सैनेट करती है। दोनों सदन अपने सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही करते हैं। उन्हें अपने सदस्यों

को पृथक् करने का अधिकार है यद्यपि ऐसा आम तौर से नही किया जाता। जन-साधारण को भी दण्ड दिया जा सकता है यदि उनके कार्य से कांग्रेस के कार्य में बाधा पहुँचे। उन्हें अवमान (contempt) पर भी दण्ड दिया जा सकता है। उन्हें पकड़ा जा सकता है और हवालात मे रखा जा सकता है।

कांग्रेस सरकार के विभिन्न विभागो को निर्देशन देने और निरीक्षण करने का भी कार्य करती है। वह विभिन्न विभागों को निर्देश देने के लिए प्रस्ताव पास कर सकती है और उनको उनका पालन करना पडता है। कांग्रेस विभिन्न विभागो से उनके कार्यों की रिपोर्ट मांग सकती है। वह प्रशासकीय अभिकरण (agencies) स्थापित कर सकती है। नियन्त्रक जनरल (Comptroller General) राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी न होकर कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होता है।

कांग्रेस अनुसंधान समितियाँ (Committees of Investigation) नियुक्त करती है और इस प्रकार विभिन्न विभागों की भूलों और त्रुटियों की आलोचना करती है। सरकारी कर्मचारी इन जांचों मे बहुत अधिक डरते हैं।

कानून बनाने की प्रक्रिया (Process of Law-making)—संयुक्त राज्य मे कानून बनाने की प्रक्रिया में किसी विधेयक को प्रारम्भ करने मे आसान कोई कार्य नही है। चाहे विधेयक सार्वजनिक, विशेष या असार्वजनिक हो, इसको पुरःस्थापित (introduce) करने के लिए केवल यह आवश्यक है कि उसकी एक प्रतिलिपि (copy) जिस पर पुरःस्थापित करने वाले सदस्य का नाम लिखा हो, सचिव के डैस्क पर रखे हुए बक्स में डाली जाये। प्रत्येक विधेयक किसी भी सदन मे उपस्थित किया जा सकता है, लेकिन राजस्व (revenue) से सम्बन्ध रखने वाले विधेयक सविधान के अनुसार प्रतिनिधि सभा में उपस्थित करने होते हैं। लेकिन सीनेट राजस्व विधेयक को संशोधित करने का अधिकार, यहाँ तक कि उसके स्थान पर बिलकुल नया विधेयक लाने का अधिकार रखने के कारण वास्तव में, उसको आरम्भ (originate) भी कर सकती है। एक बार पुरःस्थापित विधेयक उस कांग्रेस की अवधि तक जीवित रहता है, या शीघ्र ही निबटा दिया जाता है। दूसरी कांग्रेस में उसे सूची पर लाने के लिए दुबारा पुरःस्थापित करना पडता है।

समस्त पुरःस्थापित विधेयकों को सिलसिला नम्बर दिया जाता है। वे मुद्रित किये जाते है और किसी एक स्थायी समिति (Standing Committee) को भेज दिये जाते है। ऐसे असार्वजनिक विधेयक, जो कि अब तक भी उपस्थित किए जा सकते हैं, स्वतः ही उन समितियों में भेज दिये जाते है जिनमें विधेयक के प्रस्तावक सुझाव देते है। सार्वजनिक विधेयकों को, कहने भर के लिए अध्यक्ष (Speaker) अन्यथा वास्तव में उसको संसदीय सहायक परामर्शदाता छाँटता है। वह विषयानुसार सूची बनाता है। कभी-कभी कोई ऐसा विधेयक होता है जो किन्ही दो या दो से अधिक समितियो में से किसी एक के पास भेजा जा सकता है। ऐसे प्रत्येक विषय और समस्त शंकायुक्त मामलो मे अध्यक्ष स्वयं यह निर्णय करता है कि अमुक वि- में क्या करना चाहिए। इसी प्रकार का प्राधिकार (authority) अध्यक्ष को विषयों में प्राप्त है जो सीनेट से आते हैं। किसी विधेयक के भाग्य का निर्णय

समय होता है जब उसे किसी समिति को भेजा जाता है। यदि समिति अनुकूल रुख वाली है तो विधेयक के पास होने की सम्भावना है; यदि समिति का रुख अमित्रतापूर्ण है तो विधेयक के भाग्य का निर्णय आरम्भ में ही हो जाता है। इस प्रकार अध्यक्ष किसी विवादास्पद विधेयक को किसी समिति को सौंपने में उसके जीवन और मरण के प्रश्न को तय करने की शक्ति रखता है। कभी-कभी प्रतिनिधि सभा के बहुमत से कोई विधेयक एक समिति से दूसरी समिति में बदल दिया जाता है।

प्रत्येक स्थायी समिति की बैठकें हुआ करती हैं। कुछ समितियों के पास कुछ गिने-चुने ही विधेयक होते हैं किन्तु कुछ ऐसी समितियाँ होती हैं जिनको हर अधिवेशन मे बीसियों या सैंकड़ों विधेयक भेजे जाते हैं। कभी-कभी समितियों को भेजे जाने वाले विधेयक बड़े जटिल होते हैं। इस प्रकार समितियों के पास समय कम और काम अधिक होता है। मामलों को जल्दी निपटाने के लिए साधारणतः पाँच सदस्यों की उप-समितियाँ बना दी जाती हैं और विशेष विधेयक या खण्ड (clause) उनको सौंप दिये जाते हैं। समितियों में या पर्दे के पीछे ही काँग्रेस का वास्तविक कार्य होता है। राष्ट्रपति विल्सन के अनुसार, "काँग्रेस अपने समिति कक्ष (Committee Room) में काँग्रेस का कार्य करती है।" जब समिति को कोई विधेयक प्राप्त होता है तब वह पहले उसके विषय और प्रकृति (nature) की जानकारी हासिल करती है और उसके बाद वह इस बात का निर्णय करती है कि उसे क्या करना है? अधिकतर मामलों में वह लापरवाही से देखने के अतिरिक्त कुछ नहीं करती और विधेयक को समिति की फाइलों में चिरकाल तक पड़े-पड़े मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। कोई इक्का-दुक्का विधेयक ध्यान देने योग्य समझा जा सकता है। यदि समय मिले तो सम्भवतः उस पर विचार किया जा सकता है। ऐसे विधेयक के विषय में निर्णय करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि क्या अमुक विषय पर कानून की आवश्यकता है? क्या प्रस्तावित विधेयक आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए पर्याप्त है? और यदि यह पास हो गया तो इसके क्या परिणाम और ध्वनितार्थ (implications) होंगे। सम्बन्धित अधिकारी स्वेच्छा से या प्रार्थना पर स्वयं उपस्थित होकर बयान दे सकते हैं और तर्क उपस्थित कर सकते हैं। पक्ष-समर्थक या लाबीइस्ट (Lobbyist) भी आवश्यक सूचना स्वेच्छा से प्रदान करते है। यदि विधेयक अत्यधिक विवादास्पद विषय से सम्बद्ध हो या पर्याप्त जनता को प्रभावित करने वाला हो तो समिति उसकी खुली जाँच करती है। सम्बद्ध व्यक्तियों तथा उन संस्थाओं के प्रतिनिधियों को, जिनके हितों को चोट पहुँचती हो, पूरी समिति के सामने उपस्थित होने और बयान देने का अवसर दिया जाता है। साधारणतया बयान देने के लिए कुछ व्यक्तियों को आमन्त्रित किया जाता है किन्तु उन समस्त व्यक्तियों को अपने विचार रखने का अवसर दिया जाता है, जो ऐसा करना चाहते है। वैतनिक वकील (attorneys) भी किसी विधेयक या उसकी कुछ व्यवस्थाओं का समर्थन या विरोध करने के लिए रखे जा सकते हैं।

इतना कुछ किये जाने के बाद समिति का विधेयक के विषय में कार्यकारी अधिवेशन (executive session) होता है और वह स्वयं उस पर अपना निर्णय करती है। वह बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के विधेयक की रिपोर्ट कर सकती है जो कि

उसे पास करने की सिफारिश के समान होती है। वह कुछ धाराओं को समाप्त कर सकती है, कुछ अन्य धाराएँ जोड़ सकती है या उसकी वाक्य-रचना को तोड़-मरोड़ सकती है और विधेयक को संशोधित रूप में रिपोर्ट कर सकती है। वह विधेयक को पूरी तरह से दोबारा लिख सकती है और शुरू वाले विधेयक के स्थान पर इसको उपस्थित कर सकती है। इन सब हालतों में, रिपोर्ट पर विशेष रूप से यदि समिति सर्वसम्मति से निर्णय पर पहुँची हो और नियम समिति (Rules Committee) तथा अध्यक्ष कोई आपत्ति न उठाएँ तो रिपोर्ट पर सहानुभूति से विचार किया जाता है। यह भी सम्भव है कि समिति बिलकुल कोई रिपोर्ट ही न दे। दूसरे शब्दों में, समिति विधेयक को अलमारी में बन्द कर दे। पुरःस्थापित विधेयकों में से तीन-चौथाई या अधिक के भाग्य मे यही लिखा होता है। समिति के द्वारा किसी विधेयक पर रिपोर्ट न करने के कारण उसे समाप्त कर देने से बड़ी कटुता उत्पन्न होती है। यह निर्देश किया जाता है कि समितियाँ केवल सदन की एजेण्ट है और इसलिए उसकी आज्ञाओं और निर्देशों के अधीन हैं। यदि सदन किसी समिति को किसी विधेयक पर आगे विचार करने से मुक्त करना चाहे तो उसे पूर्ण वैधानिक अधिकार प्राप्त है लेकिन ऐसा करना वास्तविक व्यवहार में सदा सम्भव नहीं है।

जब समिति विधेयक वापस लौटाती है तो उसे उसके गुणों के अनुसार तीन कैलेण्डरों (calendars) में से किसी एक मे रखा जाता है। कैलेण्डरों में आए हुए सब विधेयकों पर सदा क्रम से ही विचार नहीं किया जाता। समस्त क्रमबद्ध विधेयकों पर वास्तविक रूप में विचार नहीं किया जाता और मत नहीं लिए जाते। विधेयकों को लौटाने वाली बीसेक समितियाँ होने के कारण सूची बहुत भारी हो जाती है। सदन के लिए सबसे अच्छा यही हो सकता है कि वह कहीं-कहीं से कोई विधेयक सर्वसम्मति से स्वीकृत करने के लिए उठा ले। अधिक विवादास्पद विधेयकों को लेने से पहले सदन इस बात का पता लगा लेता है कि विनियोग-विधेयकों (Appropriation Bills) पर विचार हो जाए और उसके बाद शेष विधेयकों पर विचार किया जाता है। अधिकाश मामलों में विधेयक क्रमानुसार नहीं लिए जाते। बहुत महत्त्वपूर्ण विधेयकों को सूची में से निकाल कर पहले लिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो उनके पास होने का मौका ही नहीं आए। प्रत्येक कांग्रेस में सैकड़ों विधेयक 'कैलेण्डरों' पर समाप्त हो जाते हैं।

नियमों में दैनिक कार्य की सूची बनाने की व्यवस्था है। किन्तु अपवादों और अनुलम्बनों (suspensions) के कारण उनका मूल्य बहुत कम रह जाता है। कुछ प्रकार के विधेयकों को और विशेष प्रक्रिया के अधीन प्राप्त हुए विधेयकों को 'कैलेण्डर बुधवार' (Calendar Wednesday) के लिए रख दिया जाता है जबकि विभिन्न प्रकार के सामान्य विधेयकों की स्थायी समितियों को रिपोर्ट करने का अवसर मिल सकता है। नियम समिति (Rules Committee) आदि कुछ स्थायी समितियों को किसी भी समय रिपोर्ट देने और अपने प्रतिवेदन पर, चाहे वह किसी भी बारे में हो, विचार करने की प्रार्थना करने का विशेषाधिकार प्राप्त है। निश्चित दिनों पर सदन दो-तिहाई बहुमत से समस्त नियमों को अनुलम्बित (suspend) कर देता है

और निश्चित प्रक्रिया से चाहे जितना अलग जा सकता है। वह किसी विधेयक को उसकी समस्त स्थितियों में से एक ही बार के मतदान द्वारा या एक ही दिन में पास करने की सीमा तक कार्य कर सकता है।

संपूर्ण सदन की समिति प्रतिनिधि सभा के समय का अधिकांश भाग लेती है। प्राविधिक रूप में (technically) इस प्रकार की दो समितियाँ हैं: (१) असार्वजनिक विधेयकों पर विचार करने वाली संपूर्ण सदन की समिति और (२) स्टेट ऑफ दि यूनियन पर विचार करने वाली संपूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House on the State of the Union)। संपूर्ण सदन की समिति की कार्यविधि विशेष है। कोई सदस्य यह प्रस्ताव करता है कि सदन निर्दिष्ट विधेयक पर विचार करने के लिए अपने आपको संपूर्ण सदन की समिति में बदल ले। प्रस्ताव पर मत लिए जाते हैं और इस प्रकार वह पास हो जाता है। अध्यक्ष अपने द्वारा नामजद एक विशेष अध्यक्ष (chairman) के लिए कुर्सी खाली कर देता है। कोरम (quorum) १०० सदस्य नियुक्त करता है। विचार-विनिमय इस नियम के अन्तर्गत आरम्भ होता है कि प्रत्येक वक्ता ५ मिनट में अपने विचार रखे। किन्तु सर्वसम्मति से अधिक समय भी दिया जा सकता है। मतों को गिनने में सदन का समय बरबाद नहीं किया जाता। विचाराधीन विधेयक पर विचार स्थगित करने या (किसी समिति को) सौंपे जाने के विषय में प्रस्ताव लाने की आज्ञा नहीं होती। विचार समाप्त होने पर समिति अपनी बैठक समाप्त करने के पक्ष में मत देती है और अध्यक्ष अपना आसन ग्रहण करता है। राजदण्ड (mace) अपने स्थान पर रख दिया जाता है। समिति के प्रतिवेदन को प्रभावी करने के लिए सदन को उस पर कार्यवाही करनी होगी। संपूर्ण सदन की समिति की प्रक्रिया समस्त वित्तीय (financial) तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विधेयकों पर अच्छे वातावरण में विचार होने देती है। अनेक संशोधन प्रस्तुत किए जाते हैं, व्याख्या की जाती है और शीघ्रता से काम निपटाया जाता है। इस विधि के गुण-दोषों का बड़ी तेजी से विवेचन होता है, जिसमें सदन का सर्वोत्तम रूप सामने आता है। अभिलिखित 'हाँ' और 'नाँ' (recorded yeas and nays) न होने के कारण सदस्य बिना किसी अवरोध और रुकावट के अपनी भावनाओं को प्रगट करने में समर्थ होते है।

सर्वसम्मत प्रक्रिया के अनुसार पास किये गए विधेयकों के अतिरिक्त, किसी विधेयक को या संयुक्त संकल्प (joint resolution) को तीन वाचनों के बाद ही स्वीकृत किया जा सकता है। प्रथम वाचन केवल 'शीर्षक' पढ़ना मात्र है। ठीक-ठीक कहे तो कोई वाचन है ही नहीं। यह वाचन शीर्षक के, कांग्रेस के रिकार्ड और पत्रिका में प्रकाशित होने मात्र से पूरा हो जाता है। उसके पश्चात् विधेयक किसी समिति को भेजा जाता है। यदि वहाँ से वह वापस लौट आता है तो उसे दूसरे वाचन के लिए सूचीबद्ध किया जाता है (अर्थात् कैलेण्डर में रखा जाता है)। द्वितीय वाचन पूर्णरूप से वास्तविक होता है, उसमें विचार-विनिमय करने और संशोधन रखने का अवसर होता है। चाहे वे विधेयक के समर्थन में हों या विरोध में, और चाहे उसको ... करने के ही पक्ष में हों। द्वितीय वाचन संपूर्ण सदन की समिति में, यदि

विधेयक पर विचार (consideration) न किया गया हो तो सदन मे किया जाता है। सर्वसम्मति से या नियमों को अनुलम्बित करके द्वितीय वाचन की आवश्यकता खत्म की जा सकती है। उसके पश्चात् इस प्रश्न पर मत लिए जाते हैं. "क्या विधेयक संशोधित रूप में दोबारा छापा जाए, और उसका तीसरा वाचन हो?" यदि कोई विधेयक इस स्थिति से सफलता से निकल जाता है तो तीसरा वाचन होता है और अन्तिम रूप से पास करने के लिए मत लिए जाते हैं। यदि कोई सदस्य पूरी तरह पढ़ने की मांग न करे तो तृतीय वाचन में केवल शीर्षक पढा जाता है। यदि तृतीय वाचन में पक्ष मे मत आते है तो विधेयक या प्रस्ताव पर अध्यक्ष अपने हस्ताक्षर करता है और वह सैनेट को (यदि उसने उसे पास न किया हो) या अमेरिका के राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। साधारणत. तृतीय वाचन के लिए पेश किए जाने के प्रश्न पर विवाद होता है, किन्तु अन्तिम रूप से स्वीकार करने के प्रश्न पर भी उसकी मांग की जा सकती है। जब कोई विधेयक सदन में विचार किए जाने की स्थिति में पहुँचता है तब रिपोर्ट करने वाली समिति का अध्यक्ष उसके पक्ष मे अपना मत व्यक्त करता है। यदि प्रतिवेदन सर्व-सम्मत न हो तो उसके बाद अल्प मत से सम्बद्ध सदस्य का नम्बर आता है। समिति के अन्य सदस्य क्रमशः समर्थन तथा विरोध मे बोलते है। जब उनकी सूची समाप्त हो जाती है तब यदि समय हुआ तो समिति से असम्बद्ध सदस्यों को अपने विचार रखने का अवसर दिया जाता है। समय की समस्या बडा सिर-दर्द है और समय बचाने के विभिन्न उपाय किए जाते है।

प्रतिनिधि सभा मे स्वीकृत किए जाने पर विधेयक सैनेट को भेजे जाते है जहाँ प्रतिनिधि सभा के सदृश ही प्रक्रिया दोहराई जाती है। चाहे विधेयक प्रतिनिधि सभा से आया हो या वहीं पर पुरःस्थापित किया गया हो, विधेयक को किसी एक स्थायी समिति को भेजा जाता है। यदि वहाँ उसके पक्ष में निर्णय हो तो उसे प्रतिवेदित (reported) किया जाता है। यदि उसे सदन को लौटाया जाता है-तो उसे सैनेट की कैलेण्डर अर्थात् कार्य-सूची में लगा दिया जाता है। विधेयक पर क्रमानुसार या कभी भी विचार किया जा सकता है। विधेयक को तीन वाचनों में से गुजरना पडता है और द्वितीय वाचन सबसे आलोचनापूर्ण होता है। मतदान के समय गणना करने वालों (tellers) को नही रक्खा जाता। विधेयक को मूल रूप में या संशोधित रूप में स्वीकृत या अस्वीकृत किया जा सकता है।

कानून बनाने के सम्बन्ध मे सैनेट और प्रतिनिधि सभा में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर है। यद्यपि पहले सैनेट सम्पूर्ण सदन की समिति का प्रतिनिधि सभा से अधिक प्रयोग करती थी, तथापि १९३३ से उसने सधियों पर विचार करने के समय के अतिरिक्त, उसका प्रयोग छोड दिया है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि विनियोग विधेयकों को कुछ अपवादरूप प्रमुखता प्राप्त है तथापि सैनेट मे वास्तविक रूप मे किसी विधेयक को विशेष प्रमुखता नही दी जाती और विधेयक सूची पर क्रम से या क्रम अदल-बदल करके विचार किया जाता है। सैनेट मे विचार-विनिमय के ... सीमित करने का कोई प्रबन्ध नही है। वह तब ही सीमित होता है ... स्वेच्छा से उसको प्रतिबन्धित करने के लिए सहमत हो जाएँ। जब कोई

दोनों सदनों में एक ही रूप में पास हो जाए तब उसे बढ़िया चमड़े पर छापा जाता है। सदनों के अध्यक्ष उस पर हस्ताक्षर करके अमेरिका के राष्ट्रपति के पास भेजते हैं। यदि वह उसे स्वीकार करता है, अथवा यदि वह बिना उसके हस्ताक्षरों के कानून बन जाता है तो उसे जनरल सर्विसेज एडमिनिस्ट्रेटर के पास अभिलेखागार (archives) में रखने और प्रकाशित करने के लिए भेजा जाता है। यदि उसे स्वीकृत न करके राष्ट्रपति संदेश के साथ भेज देता है तो वह उस सदन को लौटाया जाता है जिसमें उसे पुर स्थापित किया गया था और वह तभी कानून बन जाता है जबकि दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से पुनः स्वीकृत किया जाए। विधेयक समाप्त हो जाता है यदि राष्ट्रपति पाकेट वीटो (pocket veto) का प्रयोग करे अर्थात् कुछ दिन उसे स्वीकृत न करे और इतने दिनों में प्रतिनिधि सभा विघटित हो जाए।

संयुक्त राज्य में समिति व्यवस्था (Committee System in the U. S. A.)—संयुक्त राज्य में समिति-व्यवस्था का अपना विशेष महत्त्व है और इसका कारण यह है कि संयुक्त राज्य में अध्यक्षीय सरकार है। इंगलैंड में, जहाँ कि संसदीय सरकार है, अधिकांश कानूनों का आरम्भ सत्ताधारी मन्त्रिमण्डल द्वारा होता है, जो कि संसद् के कार्य का नियन्त्रण और निर्देशन करता है। संयुक्त राज्य में राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस के किसी सदन में नहीं बैठते। परिणाम यह है कि कांग्रेस नेतृत्वहीन होती है। इसी कारण संयुक्त राज्य में समितियों का महत्त्व है। अधिकांश विधि-निर्माण (legislation) का आरम्भ विभिन्न समितियों में होता है। जब अमेरिका का राष्ट्रपति कांग्रेस को कोई संदेश भेजता है तब विभिन्न समितियाँ विभिन्न विषयों पर कानून बनाती हैं और इस प्रकार से विधेयकों का उनके द्वारा आरम्भ होता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस में अत्यधिक कार्य होने के कारण विधेयक उस रूप में ही पास कर दिए जाते हैं जिसमें वे समितियों से आते हैं। समिति की किसी विधेयक के समर्थन में की गई रिपोर्ट उसके कांग्रेस में पास होने की गारण्टी समझी जाती है जबकि विरोधी रिपोर्ट उसकी मृत्यु की द्योतक मानी जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि राष्ट्रपति विल्सन ने समितियों को 'छोटे विधान मण्डल' (little legislatures) कहा है। अध्यक्ष रीड (Reed) ने उनको "सदन की आँख, कान, हाथ और प्रायः मस्तिष्क" कहा है।

इंगलैंड की लोक सभा में विभिन्न समितियों के सदस्यों का चुनाव 'चुनाव समिति' (Committee of Selection) करती है; संयुक्त राज्य में दलों के नेता गुट समितियाँ (party caucuses) के लिए एक समिति चुनते हैं, जो विभिन्न समितियों के लिए विभिन्न दलों के सदस्यों को चुनती है। इंगलैंड में द्वितीय वाचन के पश्चात् विधेयक समितियों में भेजे जाते हैं। संयुक्त राज्य के विधानमण्डलों में विधेयकों पर विचार होने से पहले ही उन्हें समितियों में भेज दिया जाता है। इंगलैंड में विभिन्न समितियों के अध्यक्षों को कोई प्रमुखता या लोक-प्रसिद्धि नहीं मिलती, किन्तु संयुक्त राज्य में प्रमुख विधेयकों के नाम समितियों के अध्यक्षों के नामों पर रखे जाते हैं। इंगलैंड में समिति के अध्यक्ष निष्पक्ष होते हैं किन्तु अमेरिका में अध्यक्ष "अपनी ...ति में एक शक्ति होता है और कभी-कभी वह उस पर छा जाता है।"

प्रतिनिधि सभा की विभिन्न समितियों की ओर निर्देश किया जा सकता है। वहाँ पर एक सम्पूर्ण सदन की समिति होती है। इंगलैंड की भाँति प्रतिनिधि सभा अपने आप को राजस्व विनियोग या अन्य विधेयकों पर विचार करने के लिए सम्पूर्ण सदन की समिति के रूप में बदल लेती है और १०० सदस्यों का कोरम होता है। अध्यक्ष इसी समिति की अध्यक्षता नहीं करता। यह समिति विधेयकों की आलोचनात्मक रूप से जाँच करती है।

विधि-निर्माण का अधिकांश कार्य दोनों सदनों की स्थायी समितियों मे किया जाता है। प्रत्येक स्थायी समिति का नाम उसको सौंपे जाने वाले विधेयकों के आधार पर रखा जाता है। सैनेट में १५ समितियों में विनियोग, सशस्त्र सेवाएँ, वित्त, विदेशी सम्बन्ध और श्रम तथा जन-कल्याण समितियाँ भी हैं। प्रतिनिधि सभा मे १६ समितियाँ है, जिनमें विनियोग, सशस्त्र सेवाएँ, उपाय और साधन (Ways and Means), विदेशी सम्बन्ध, शिक्षा और श्रम-नियम तथा गैर-अमेरिकी गतिविधि (Un-American activities) समितियाँ हैं। क्षेत्राधिकार मे गड़बड़ी अवश्यम्भावी है। विधेयक के समर्थकों की संसदीय चतुराई का एक अंग सदन के अध्यक्ष को यह सुझाता है कि वह विधेयक मैत्रीपूर्ण समिति को भेजे जो उसे स्वीकार कर सके। स्थायी समितियों में दो दल होते हैं और उनमे आम तौर पर सम्पूर्ण सदन मे दलीय स्थिति के अनुपात से सदस्य होते हैं। कुछ अपवादों के रहते हुए, प्रत्येक सैनेटर दोनों समितियों का और प्रतिनिधि एक समिति का सदस्य होता है। कांग्रेस के सदस्य उन समितियों के सदस्य बनने का प्रयास करते है जो उनके निर्वाचकों के विशेष हित के सम्बन्ध मे कानून बनाने का कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, जल सम्पदा विकास विधि-निर्माण (Water resources development legislation) समिति में साधारण तौर से उन राज्यों या जिलों के प्रतिनिधि होते है, जहाँ जल-सम्पदा नीति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी प्रकार, कृषि-समिति मे कृषि-प्रधान क्षेत्रों के सदस्यों का बाहुल्य रहता है। अतः समितियाँ सम्पूर्ण सदन की आदर्श प्रतिनिधि नहीं होतीं।

स्थायी समिति का अध्यक्ष वस्तुतः बहुमत दल का वरिष्ठ सदस्य होता है। यदि वरिष्ठ सदस्य पहले ही किसी समिति का अध्यक्ष हो तो बहुमत का दूसरा वरिष्ठ सदस्य अध्यक्ष का कार्य करता है। वरिष्ठता निरन्तर सेवा से स्थिर की जाती है। परिणाम यह है कि प्रमुख समितियों की अध्यक्षता सुरक्षित सीटों से आने वाले सैनेटरों या प्रतिनिधियों, अथवा पुराने रिपब्लिकनों और डैमोक्रेटों को प्राप्त होती है। अध्यक्ष का समिति के कार्य-व्यापार पर पर्याप्त प्रभाव होता है।

समितियाँ अपनी बैठकें सार्वजनिक रूप मे या गुप्त रूप में कर सकती है। बाहर के लोगों के बयान लिए जा सकते है और उनसे प्रश्न पूछे जा सकते है। कार्यवाही का लेखा रखा जाता है। समिति के सदस्यो में निजी विचार-विनिमय के बाद विधेयकों के पक्ष या विपक्ष मे प्रतिवेदन लिखे जाते है और कांग्रेस को भेजे जाते हैं। बड़े विधेयकों पर साधारणतः बहुमत और अल्पमत के प्रतिवेदन होते है, जो प्रायः दलीय विचार के बिना लिखे जाते हैं। साधारणतः बड़े विधेयक पर्याप्त ... साथ प्रतिवेदित किए जाते हैं, अतः इस दिशा में अल्पमत समिति पुनः ...

सकती है। प्रशासकीय विधेयकों (administrative measures) को किसी प्रकार की सरकारी प्रमुखता नहीं दी जाती। इसका कारण यह है कि कांग्रेस के सदस्य निजी हैसियत में कार्यकारी विभाग (executive branch) की ओर से पुरःस्थापित करते हैं। किन्तु वास्तव में प्रायः प्रशासकीय राजनीतिज्ञ बड़े विधेयकों को पुरःस्थापित करते हैं, जिनको गैर-सरकारी प्रमुखता दी जाती है।

यदि हम दृष्टान्त के लिए १९४६ के रोजगार अधिनियम (Employment Act) के निर्माण के इतिहास की ओर निर्देश करें तो विधेयक के पास होने में स्थायी समितियों के महत्त्वपूर्ण भाग का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। १९४४ के अन्त में डैमोक्रेट सैनेटर जेम्स मरे की अध्यक्षता में "सब को पूरा रोज़गार" (Full Employment) नामक विधेयक का मसविदा बनाया गया और वर्ष के अन्त में पूर्ण समिति को दी जाने वाली उप-समिति की रिपोर्ट में उसे छापा गया। जनवरी, १९४५ में सैनेटर मरे ने परिवर्धित संस्करण (revised version) सैनेट में प्रस्तुत किया। विधेयक के समर्थक उसे महाजनी और चलार्थ (Banking and Currency) समिति में भेजने में समर्थ हो गए, जिसके अध्यक्ष एक अन्य डैमोक्रेट सैनेटर रोबर्ट वेजर थे जो कि स्वयं विधेयक के समर्थक थे। इसका अर्थ यह था कि सार्वजनिक सुनवाई मैत्रीपूर्ण वातावरण में होगी। महाजनी और चलार्थ उप-समिति ने कार्यकारी और निजी बैठकें की और समर्थन में विधेयक के एक नये संस्करण को पूर्ण समिति में प्रतिवेदित किया। पूर्ण समिति ने उप-समिति के संस्करण में थोड़ा-सा संशोधन किया और अपने समर्थन के साथ सैनेट को लौटा दिया। विधेयक कुछ अन्य संशोधनों के साथ सितम्बर, १९४५ में सैनेट में पास हो गया।

प्रतिनिधि सभा में विधेयक को एक डैमोक्रेट राइट पैटमैन ने प्रस्तुत किया। यहां पर विधेयक सदिच्छा रखने वाली महाजनी तथा चलार्थ समिति या श्रम समिति में न भेजा जाकर विरोधी व्यय समिति (Expenditure Committee) को भेजा गया। व्यय समिति का अध्यक्ष भी विधेयक का समर्थक नहीं था। उसका विश्वास था कि अमेरिका गणराज्य (Republic) है, लोकतन्त्र (democracy) नहीं। परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक सुनवाई इस ढंग से की गई जिससे कि "सब को पूरा रोजगार देने का कानून बनाने" के विरोधियों की सहायता हो। जिस समय समिति का कार्यकारी अधिवेशन हुआ, उस समय उसके सामने तीन विधेयक थे। फरवरी, १९४५ में पुरःस्थापित मूल विधेयक, सितम्बर, १९४५ में सैनेट द्वारा पास किया हुआ संस्करण और रिपब्लिकन चार्ल्स ला फौलेट (La Follette) द्वारा पुरःस्थापित विधेयक। इन सब के होते हुए भी समिति के कट्टरपंथी (conservative) बहुमत ने एक उप-समिति विधेयक का मसविदा बनाने के लिए नियुक्त की। इस विधेयक को "रोजगार और उत्पादन" (Employment and Production) विधेयक नाम दिया गया और सदन के सामने दिसम्बर, १९४५ में प्रस्तुत किया गया। दो अल्पसंख्यक समितियों के विरोध में समिति के बहुमत ने विधेयक के इस संस्करण का समर्थन किया। बहुमत द्वारा समर्थित विधेयक का संस्करण प्रतिनिधि सभा ने स्वीकृत किया। क्योंकि सैनेट और प्रतिनिधि सभा में मतभेद था, इसलिए एक समझौता-

विधेयक (Compromise bill) दोनों सदनों ने स्वीकृत किया और फरवरी, १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने उसे स्वीकार किया।

उपर्युक्त समझौता विधेयक का मसविदा एक संयुक्त सम्मेलन समिति (Joint Conference Committee) ने बनाया था। संयुक्त सम्मेलन समिति का अमेरिका की सांवैधानिक मशीनरी में विशेष महत्त्व है। इसकी नियुक्ति दोनो सदनों में पास होने वाले विधेयकों में से एक के लिए होती है तथा साधारण बड़े विधेयको के लिए यह आवश्यक होती है। इसके नाम से ही प्रकट है कि यह सैनेट और प्रतिनिधि सभा के किसी विधेयक के संस्करणो पर समझौता करने के लिए बैठाई जाती है, जबकि दोनों सदनों में से कोई भी दूसरे के संस्करण को स्वीकृत करने के लिए राजी नही होता। इसमें दोनों सदनो के सदस्य होते हैं। वस्तुत. इसके सदस्य दोनों दलो के वरिष्ठ सदस्य होते हैं, जो उन स्थायी समितियों मे से लिए जाते है, जिन्होंने विधेयक पर विचार किया हो। दोनों सदनों को सम्मेलन समितियो की दबाने मे बड़ी कठिनाई उठानी पड़ती है, जो कि विधेयको की केवल उन धाराओं मे परिवर्तन करती है, जिनके बारे में दोनों सदन असहमत हो। ऐसा विशेषकर तटकर या टैरिफ (tariff) कानून बनाने के विषय में हुआ है। सम्मेलन समितियों ने प्रत्येक सदन से अधिक ऊँची ड्यूटी लगा कर ड्यूटी की विवादास्पद दरों मे समझौता किया, और यद्यपि दोनों सदनों ने वस्तुओं को संरक्षण (Protection to Commodities) देने से इनकार किया था तथापि समिति ने इन्हे संरक्षण दिया। १९४८ मे सैनेटर विलियम फुलब्राइट ने व्यंग्यात्मक रूप से सम्मेलनों को "सैनेट और सभा के साधारण सदस्यों की इच्छाओं को सर्वथा तिरस्कृत (disregarding) करने पर" बधाई दी थी। सम्मेलन समितियों के सदस्य स्वतन्त्र निर्णय करने मे, विशेषकर अधिवेशन की समाप्ति के समय; समर्थ होते हैं क्योंकि प्रायः उनकी रिपोर्टों को ज्यो-का-त्यो स्वीकृत करना पडता है।

कांग्रेस की सबसे प्रमुख समितियो मे विशेष अनुसंधान समितियाँ (Special Investigating Committees) होती है। कांग्रेस का कोई सदन या दोनो सदन किसी विशेष अनुसंधान समिति को अपनी ओर से अनुसधान करने का अधिकार दे सकते है। सबसे पहला कांग्रेसी अनुसधान सन् १७९२ में एक दुर्घटना के सम्बन्ध मे किया गया था जिसमें कि एक सेनापति (General) की जाँच की गई, जिसे रेड इंडियन (Indians) को गोली मारने भेजा गया था, उसके बाद १९२५ तक लगभग ३०० औपचारिक कांग्रेसी अनुसधान हुए। गत तीस वर्षों मे यह संख्या बढ गई है। रूजवेल्ट के शासन के प्रथम चार वर्षों में लगभग १६५ अनुसंधान हुए। अब अनुसंधान कांग्रेस की गतिविधियों (activities) मे प्रमुख माने जाते है। कांग्रेसी समितियों के तरीकों में बहुत अन्तर है। इसका कारण यह है कि जाँच किए जाने वाले मामलों की अलग-अलग तरह से जाँच की जाती है। यह इस बात पर भी निर्भर है कि समितियाँ क्या करने का प्रयत्न करती है और उन व्यक्तियो के क्या विचार है जो समिति के सदस्य है। कभी-कभी कांग्रेस के सदस्य प्रत्यक्ष रूप मे सूचना (information) माँग लेते हैं जो उन्हें कानून बनाने मे सहायक होती है। कभी-कभी वे किसी कानून का विचार न रखते हुए भी केवल जानकारी प्राप्त करने के पीछे पड़

वे जनमत को जाग्रत करने के लिए सूचनाओं का प्रचार करते हैं। कभी वे कांग्रेस के किसी सदस्य को निजी लाभ पहुँचाते हैं। १९४२ में प्रतिनिधि कोक्स ने अपने आपको संघीय संचार आयोग (Federal Communications Commission) की जाँच करने वाली समिति का अध्यक्ष चुनवा लिया। उससे पहले आयोग ने न्याय विभाग (Department of Justice) के कार्य के सम्बन्ध में उसकी गैर-कानूनी दबाव डालने वाली चालाकियों (illegal pressure tactics) की रिपोर्ट की थी। जब संघीय संचार आयोग ने अध्यक्ष (speaker) से शिकायत की कि उसने २,५०० डालर का एक चैक स्वीकार किया है, तब उसे समिति की अध्यक्षता से त्यागपत्र देने के लिए विवश होना पड़ा। इतना सब होने पर भी वह आयोग के वार्षिक स्वीकृत विनियोग (annual recommended appropriation) में २५% कमी प्रतिनिधि सभा से कराने में सफल हो गया। जो कांग्रेस के सदस्य राजनीतिक रूप से अनुसंधानों में अधिक रुचि रखते हैं, वे ही अनुसंधान समितियों में रखे जाते हैं। यद्यपि वे दोनों दलों के सदस्य होते हैं, तथापि अनुसंधान समितियों के सदस्य सम्पूर्ण कांग्रेस के पूर्णतः प्रतिनिधि नही होते। गैर-अमेरिकी गतिविधि समिति कट्टर दक्षिण-पंथियों (Extreme Right Wing) को उसी मात्रा में आकर्षित करती है जैसे कि १९३५ में निजी स्वार्थों के लाबीइंग (Lobbying) के अनुसंधान ने सैनेटर ह्यूगो ब्लैक (Hugo Black) को आकर्षित किया। इस प्रकार कांग्रेस टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और प्रत्येक छोटा वर्ग अपने मार्ग पर चलता रहता है।

पीटर के अनुसार, "कांग्रेस के अनुसंधान की चालाकियों के सबसे अधिक आपत्तिजनक रूप से कांग्रेस में दलीय सरकार को मजबूत करके रोका जा सकता है ताकि बहुमत दल समितियों के अध्यक्षों के चुनाव और उनके तरीकों पर नियन्त्रण कर सके और जिम्मेदारी उठा सके। अधिक दृढ़ दलीय नियन्त्रण सब प्रकार के कांग्रेसी सौजन्य (Congressional Courtesy) को समाप्त कर देगा। एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह होगा कि प्रशासकीय गतिविधियों (executive activities) की वाञ्छनीय जाँच कम हो जाएगी। प्रतिनिधि सभा में संगठित दलीय नियन्त्रण के थोड़े अंश का भी यह परिणाम हुआ है कि प्रतिनिधि सभा उसी दल के प्रशासन की, जिसका बहुमत प्रतिनिधि सभा में है, जाँच करने के काम में सैनेट सदन की अपेक्षा कम प्रभावी जाँच-कर्ता (investigator) रह गई है। दूसरी ओर प्रभावी दलीय सरकार और जिम्मेदारी जाँचों की आवश्यकता को कम कर सकती है।"

कांग्रेस और राष्ट्रपति (Congress and President)—संयुक्त राज्य में अध्यक्षीय सरकार है और इसलिए कांग्रेस और राष्ट्रपति दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं। प्रतिनिधि सभा के सदस्य दो वर्ष और सैनेट के छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं। राष्ट्रपति सैनेट और प्रतिनिधि सभा को उनके निश्चित समय से पूर्व भंग नहीं कर सकता। इसी प्रकार राष्ट्रपति चार वर्ष के लिए चुना जाता है और वह अपनी अवधि के अन्दर अपने पद पर बना रहता है। राष्ट्रपति और उसके मन्त्रिमण्डल के सदस्य कांग्रेस के प्रति जिम्मेदार नही होते। कांग्रेस राष्ट्रपति की कितनी ही आलोचना करे पर उसे पदच्युत नही कर सकती। यदि राष्ट्रपति कांग्रेस की पूरी तरह

उपेक्षा करे तो भी कांग्रेस निःसहाय होती है। यदि कांग्रेस राष्ट्रपति के विरोध मे अविश्वास का प्रस्ताव भी पास करे तो भी उसका कोई कानूनी मूल्य नही होता। यह स्पष्ट है कि कांग्रेस और राष्ट्रपति दोनों ही एक-दूसरे से स्वतन्त्र है।

"हमारी सांवैधानिक प्रणाली मे नीति-निर्माता राष्ट्रपति और नीति-निर्माता कांग्रेस के बीच में एक बड़ी और गम्भीर खाई है। दोनों को ही सांवैधानिक अधिदेश (mandates) प्राप्त हैं जो उन्हें उस कार्य के लिए औचित्य प्रदान करते है। लेकिन जैसे राष्ट्रपति के अधिदेश को कांग्रेस के अधिदेश के अधीन करना बे-मानी है वैसे ही कांग्रेस को राष्ट्रपति के अधीन करना भी बे-मानी है। आज की परिस्थिति में राष्ट्रपति के लिए प्रतिनिधि सभा और सैनेट में एक सहानुभूति रखने वाला ग्रुप पाना पर्याप्त कठिन है, जो कांग्रेस में उसके प्रतिनिधियों के नाते कार्य कर सके। इन व्यक्तियों को अपने-अपने जिलों की अनेक समस्याएँ सताती रहती हैं, जब कि वे बहुमत दल के नेता के नाते कार्य कर रहे होते है। वे राष्ट्रहित के लिए अपने नगर के हितों का बलिदान खुले दिल से नही करेंगे। इसके अतिरिक्त, उनको सारा अमेरिका बहुमत दल के नेता के पद पर नहीं बैठाता। वे कांग्रेस के प्रभावी दलीय पक्षों के द्वारा चुने जाते हैं और यह पक्ष राष्ट्रपति का विरोधी हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे, राष्ट्रपति को बड़ी चतुराई के द्वारा ही बहुमत दल के नेता को अपनी ओर करने मे सफलता हो सकती है।"

किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि एक-दूसरे से स्वतन्त्र होने पर भी राष्ट्रपति और कांग्रेस को मिलाने वाली कई शृंखलाएँ है। राष्ट्रपति कांग्रेस को संदेश भेजकर कानून बनाने के काम को प्रभावित कर सकता है। वह कांग्रेस के पास किए हुए विधेयकों को वीटो या निषिद्ध (Veto) कर सकता है। इसी प्रकार कांग्रेस का भी राष्ट्रपति पर नियन्त्रण है। राष्ट्रपति कांग्रेस के दोनों सदनो की सम्मति से युद्ध-घोषणा कर सकता है। यद्यपि वह सधियाँ कर सकता है तथापि उनका सैनेट द्वारा पुष्ट होना आवश्यक है। कुछ मामलों मे राष्ट्रपति द्वारा की गई नियुक्तियों का भी सैनेट के द्वारा पुष्ट होना आवश्यक है।

कांग्रेस से राष्ट्रपति के सम्बन्ध सदा मधुर नही रहे। उनके मध्य सदा ही कठिनाइयाँ रही हैं। अनेक अवसरों पर उनके सम्बन्ध इतने कटु हो गये हैं कि उन्होंने एक-दूसरे की निन्दा की है। १८६८ मे राष्ट्रपति जानसन पर महाभियोग (impeachment) चलाया गया था। राष्ट्रपति ट्रूमैन के कांग्रेस मे सम्बन्ध प्रायः खराब रहे। राष्ट्रपति विल्सन की विदेश नीति को सैनेट ने सफल न होने दिया। परिणाम यह हुआ कि संयुक्त राज्य राष्ट्रसंघ (League of Nations) का सदस्य नही बन सका। राष्ट्रपति रूजवेल्ट आर्थिक मंदी (depression) के दबाव के दिनों में अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में, कांग्रेस का नेतृत्व करने मे समर्थ हो पाये थे, लेकिन अमेरिका के दूसरे विश्वयुद्ध में शामिल होने से ठीक पहले के वर्षों मे नहीं।

प्रशासकीय विषयों में राष्ट्रपति ने कांग्रेस के द्वारा अपने क्षेत्र पर अधिकार करने का विरोध किया है, क्योंकि वह प्रशासकीय प्राधिकार (executive authority) का पर्याप्त प्रयोग विधानमण्डल के हस्तक्षेप के बिना कर सकता है।

राष्ट्रपति जैक्सन और कांग्रेस राष्ट्रपति के द्वारा यह स्वीकार करने पर लड़े कि वह उस कानून के होते हुए भी कोष-विभाग (Treasury Department) की नीति का नियन्त्रण कर सकता है, जोकि विभाग को कांग्रेस की वित्तीय शक्तियों को पूरा करने की एक साधन बनाने के लिए प्रकट हुआ था, राष्ट्रपति क्लीवलैंड और सैनेट में इस विषय पर झगड़ा हुआ कि राष्ट्रपति ने सरकारी नौकरों के अनुलम्बन (suspension) से सम्बन्धित पत्रों को सैनेट को दिखाने से इनकार कर दिया। १९५४ में सैनेटर मैकार्थी ने माँग की कि राष्ट्रपति राष्ट्रीय सरकार के नौकरों को कांग्रेस को प्रशासकीय निर्णयों (executive decisions) और कार्यकर्त्ताओं के बारे में सूचना देने से न रोकें। उसके ही शब्दों में, "मैं उन बीस लाख संघीय कर्मचारियों को सूचित करना चाहता हूँ कि मैं अनुभव करता हूँ कि उनका कर्तव्य हमें प्रत्येक सूचना देना है जो कि वे अफसरों की बेईमानी (graft), भ्रष्टाचार, साम्यवाद और षड्यन्त्र के विषय में जानते हैं और वरिष्ठ अधिकारियों के प्रति कोई निष्ठा अपने देश के प्रति निष्ठावान् होने से बढ़ कर नहीं होती।" राष्ट्रपति आइज़नहॉवर ने उत्तर इन शब्दों में दिया "संविधान के अन्तर्गत सरकार का प्रशासकीय विभाग हमारे कानूनों और राष्ट्रपति के आदेशों को लागू करने के लिए अकेला जिम्मेदार है। इसमें हमारे राष्ट्र की रक्षा करना भी शामिल है और ये कानून इस कार्य के लिए बड़ी चतुराई से बनाये गये हैं। कोई भी व्यक्ति, जो अपने आपको हमारे देश के कानूनों से ऊपर समझे या सरकार के प्रशासकीय विभाग के संघीय कर्मचारियों को संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति की आज्ञाओं को न मानने की सलाह दे, उस दायित्व का अपहरण नहीं कर सकता।" सैनेट की प्रवर समिति (Select Committee) ने यह माना जिसने मैकार्थी के कुछ शब्दों और कार्यों की निन्दा करने का प्रस्ताव करता था कि कांग्रेस को गुप्त या वर्गीकृत (classified) जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध में न्यायोचित प्रशासकीय आज्ञाओं का आदर करना चाहिए। उसने यह निर्देश दिया कि जो संघीय कर्मचारी उनकी अवहेलना करते हैं, वे दण्ड के भागी हो सकते हैं किन्तु प्रवर समिति मैकार्थी से इस विषय में सहमत हुई कि कांग्रेस को किसी प्रकार की जानकारी, चाहे वह वर्गीकृत ही क्यों न हो, प्राप्त करने का अधिकार है यदि वह प्रशासकीय विभाग में भ्रष्टाचार या तोड़-फोड़ (subversion) का भण्डाफोड़ करे। समिति ने इस विषय पर निन्दा करने की सिफारिश नहीं की लेकिन सुझाव दिया कि सैनेट के नेता प्रशासकीय अधिकारियों से कांग्रेस को गुप्त बातें बताने की विधि के बारे में बात-चीत करें। मेयर्स (Mayors) वाले मामले में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय किया कि राष्ट्रपति को उस प्रशासकीय अधिकारी को सैनेट की सलाह के बिना पदच्युत (dismiss) करने का अधिकार है जो सैनेट की सहमति से नियुक्त किया गया हो। नीगिल (In Re Neagle) के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने १८९० में निश्चित किया था कि राष्ट्रपति किसी अधिकारी को केवल कांग्रेस के कानून लागू करने की आज्ञा ही नहीं दे सकता, प्रत्युत हमारे विदेशी सम्बन्धों तथा संविधान के अधीन शासन की प्रकृति से ध्वनित होने वाले संरक्षण के निमित्त संविधान के अनुसार प्राप्त अधिकारों, कर्तव्यों तथा दायित्वों की

निभाने की आज्ञा भी दे सकता है। युद्धकाल मे स्वतन्त्र प्रशासकीय प्राधिकारी (independent executive authority) का प्रयोग अधिक सीमा तक बढ़ जाता है। यंगस्टाउन स्टील सीज़र अभियोग, १९५२ (Youngstown Steel Seizure) का निर्णय काँग्रेस को राष्ट्रपति के द्वारा अपनी नीति बनाने के प्रयत्न के सम्बन्ध में भ्रममात्र संरक्षण (illusory protection) देता है।

राष्ट्रपति और काँग्रेस में विरोध का स्थायी स्रोत यह वास्तविकता है कि राष्ट्रपति सम्पूर्ण अमेरिका का प्रतिनिधि होता है और काँग्रेस केवल उसके भागो का। आजकल राष्ट्रपति विशेष रूप से शहरी (urban) मतों पर निर्भर करता है और काँग्रेस के अधिकांश सदस्य ग्रामीण या छोटे नगरो के मतदाताओं पर निर्भर करते है। राष्ट्रपति और काँग्रेस क्रमशः १९३३ के बाद की और १९३३ के पहले की अमेरिका की राजनीति के आदर्शों के प्रतिनिधि है। यह अन्तर और भी अधिक होता है जबकि राष्ट्रपति डैमोक्रेट हो क्योंकि एक डैमोक्रेट राष्ट्रपति रिपब्लिकन राष्ट्रपति की अपेक्षा शहरी सहायता पर अधिक निर्भर करता है, लेकिन अध्यक्षीय (Presidential) और काँग्रेसीय (Congressional) राजनीतिक-विभाग दोनों दलों में पाया जाता है।

राष्ट्रपति और काँग्रेस दोनो ने ही झगडो (conflicts) को बढावा दिया है। प्रशासन में समन्वय (co-ordination) लाने के लिए मन्त्रिमण्डल के स्थान पर राष्ट्रपति के कार्यकारी कार्यालय (executive office) के प्रयोग ने राष्ट्रपति के अनुत्तरदायित्व (irresponsibility) को रोका है। राष्ट्रपति ने अपनी स्वतन्त्र शक्ति और काँग्रेस में अपने प्रभाव को बढाने का प्रयाग किया है। दूसरी ओर काँग्रेस ने विधानमण्डल पुनर्गठन अधिनियम, १९४६ (Legislative Re-organisation) मे अपने सुधार का प्रयत्न किया है जिसके द्वारा स्थायी समितियो के विकास को स्थिर किया है। काँग्रेस के पुस्तकालय की विधायी 'रैफरैन्स सर्विस' (Reference Service) और दोनो सदनों के विधायी सलाहकारो के कार्यालयों के कर्मचारियो की संख्या को बढाया है। काँग्रेस सदस्य अपने संगठन को दक्ष और विशेषज्ञ बनाकर प्रशासकीय जानकारी (executive guidance) पर निर्भरता को छोडने की आशा करते है।

संक्षेप मे, अमेरिका की काँग्रेस राष्ट्रपति के कानूनो को तभी स्वीकार करती है जब वे बहुत अधिक अनुभव करें कि कुछ-न-कुछ किया जाना चाहिए। तब वे इस वास्तविकता को मानने की इच्छा करते है कि अन्त मे राष्ट्रपति राष्ट्रीय प्रशासन के अध्यक्ष के नाते राष्ट्र का नेतृत्व करने मे उनकी (काँग्रेस-सदस्य) अपेक्षा अधिक अच्छी स्थिति मे होता है। यद्यपि वे राष्ट्रपति के पथ-प्रदर्शन (guidance) को गम्भीर और भयानक संकट मे स्वीकार करते है, जैसे १९३० की आर्थिक मन्दी (depression) और १९४० के रूसी खतरे (Russian threat) मे उन्होंने इसे स्वीकार किया था तथापि वे माँग करते हैं कि राष्ट्रपति को अपने प्रस्तावों का औचित्य प्रमाणित करना चाहिए। किन्तु जब संकट का समय नही होता या संकट स्पष्ट रूप से सामने नही होता तब काँग्रेस-सदस्य राष्ट्रपति का समर्थन करने की कम

इच्छा करते हैं। निवारक उपायों (preventive measures) की अपेक्षा उपचारात्मक (remedial) उपायों के लिए कांग्रेस की स्वीकृति प्राप्त करना अधिक सरल होता है।

परिणाम यह है कि राष्ट्रपति प्रायः तात्कालिक आवश्यकता (immediate need) कह कर अपने प्रस्तावों को कांग्रेस से स्वीकृत करा लेते हैं। वह ऐसा प्रकट करते हैं कि अमेरिकन नीति भय की परम्परा (succession of panics) में निर्मित की जाती है। इस प्रसंग मे आइजनहॉवर प्रशासन द्वारा कांग्रेस और देश में १९५४ मे इण्डोचीन की स्थिति के बारे में संकट की भावना उत्पन्न करने का निर्देश दिया जा सकता है। सत्य तो यह है कि अमेरिका की कांग्रेस और राष्ट्रपति में सबसे अधिक और प्रशंसनीय सहयोग तो संकट काल में ही होता है; फिर वह चाहे वास्तविक हो या बनावटी। इसका परिणाम यह है कि चालू लम्बे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव (international tension) को छोटे-छोटे अलग-अलग संकटों की माला समझा जाता है, जिस पर अमेरिकन राजनीतिक प्रणाली (American Political System) प्रतिक्रिया करती है। उस समय आवश्यकता होती है कि राष्ट्रपति और कांग्रेस के सम्बन्ध लगातार संतोषजनक रहें ताकि राष्ट्रपति कांग्रेस के नेतृत्व (consensus) का दृढ़ता से पथ-प्रदर्शन कर सके। संविधान में औपचारिक संशोधन किये जाने सम्भव नही हैं। लेकिन कांग्रेस मे राष्ट्रपति के राजनीतिक प्रभाव के बढ़ने की सम्भावना है क्योंकि कांग्रेसीय राजनीति में १९३३ के बाद शहरी प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

जेरीमैण्डरिंग (Gerrymandering)—जेरीमैण्डरिंग की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। इसका नाम मसाचुसेट्स के गवर्नर एलब्रिज जेरी के नाम पर पड़ा जिसने अपने राज्यों में दलीय दृष्टिकोण से जिले बनाने (partisan district-making) की आज्ञा दी थी। जॉन फिस्के (Fiske) ने घटना का वर्णन इस प्रकार किया है, "१८१ में, जबकि एलब्रिज जेरी ममाचुसेट्स का राज्यपाल था, रिपब्लिकन विधानमण्डल ने जिलो को इतनी चतुराई से विभाजित किया कि एसैक्स काउण्टी में एक जिले के नगरों की आकृति विशेष प्रकार के सर्प के रेखाचित्र के समान (dragon-like contour) से मिलती-जुलती थी। इसको मसाचुसेट्स के एक मानचित्र पर प्रकट किया गया था जिसको उत्साही फैडरलिस्ट और सेंटिनल (Sentinel) के सम्पादक बेंजामिन रसल ने अपने कार्यालय में टाँगा हुआ था। एक दिन सम्मानित चित्रकार गिलबर्ट स्टुअर्ट उसके कमरे मे आया और उस विचित्र चित्र को देखकर उसने अपनी पेंसिल से चित्र में सिर, पख और पंजे बना दिये और बोला: "लीजिए, सेला मैण्डर बन गया।" "जेरी मैण्डर कहना अधिक उपयुक्त है" सम्पादक ने क्रोध मे कहा; और इस प्रकार रखा गया नाम सर्वसाधारण में प्रचलित हुआ।

जेरीमैण्डर का एक साधारण सिद्धान्त है—"किसी राज्य या नगर में मण्डल बनाते समय अपनी पार्टी के समस्त अथवा जितने सम्भव हो सकें उतने बहुमत जिलो को पृथक् करो। यदि आपके पास प्रत्येक जिले का नियन्त्रण करने के लिए पर्याप्त मत नही है तो अपने विरोधियों की शक्ति को कम-से-कम जिलों में स्थिर करो, जिससे उनको कम-से-कम लाभ हो सके।" इस प्रथा को समाप्त करने के लिए ... कानून बनाए गए हैं किन्तु इसका प्रलोभन इतना अधिक है कि इस पर प्रतिबन्ध

लगाना कठिन है। १९२९ के कानून की यह व्यवस्था कि राज्यों के कांग्रेस-सम्बन्धित जिले एक जगह मौजूद प्रदेशों (contiguous and compact) में विभाजित किए जाएँ, बहुमत दल को "जूते की डोरी" (Shoe-String) "छोटे मुगदर" (Dumb-bells) की शक्लों के जिलों में बाँटने से इस कारण नहीं रोक सकते। ऐसा इसलिए किया जाता है कि सत्ताधारी दल को अधिक स्थान प्राप्त हों। कांग्रेस ने भी इन विषयों में हस्तक्षेप नहीं किया है। जनमत की शक्ति तथा राज्य संविधान की कुछ व्यवस्थाएँ (provisions) ही प्रतिबन्ध हैं। यह स्मरणीय है कि धीरे-धीरे तथा क्रमिक गति से (gradually) जन-भावना जेरीमैण्डर के विरोध में हो गई है और बहुधा जेरीमैण्डरिंग का प्रयोग करने वाली पार्टी मुँह की खाती है।

सदन का नेता (Floor Leader)—सदन के नेता का स्थान अध्यक्ष के पश्चात् होता है। प्रो० बीयर्ड के अनुसार, "उसका कर्तव्य अपनी पार्टी के सदस्यों से निकटतम सम्पर्क स्थापित करना, उनके विचारों की जानकारी रखना, उनकी इच्छाओं और आकांक्षाओं को समझना तथा उस विधेयक के समर्थन में खड़ा करना है जिस पर पार्टी के नेताओं ने निर्णय कर लिया है। बहुमत दल का नेता भाषणकर्त्ताओं की सूची को प्रभावित करता है क्योंकि दलों के नेताओं के सम्मेलन में वह उन सदस्यों की सूची बनाने में सहायता देता है, जिनको अध्यक्ष अभिज्ञात करता है। प्रमुख विधेयकों के सम्बन्ध में बहुमत का नेता अल्पमती नेता से विचार-विनिमय करके समझौता करता है कि उन पर कब मत लिये जायें और अल्पदल की ओर से कौन बोलेगा। शक्तियों में वह अध्यक्ष से दूसरा है और यदि वह चतुर हो तो सदन का माननीय अध्यक्ष बनने की आशा कर सकता है। वह दलीय गुट (caucus) द्वारा चुनी गई स्टीयरिंग कमेटी के संचालन के अधीन होता है।

लॉबीइंग (Lobbying)—'लॉबीइंग' का जन्म कांग्रेस में मन्त्रिमण्डल के नेतृत्व के अभाव के फलस्वरूप हुआ है। इंगलैंड में 'लॉबीइंग' नहीं है क्योंकि लोक सभा (House of Commons) की बहुमत पार्टी मन्त्रिमण्डल बनाती है और वह अनेक विधेयकों को सदन में प्रस्तुत और पारित कराने के लिए उत्तरदायी है। यू० एस० ए० में अनेक ग्रुप विधेयकों का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए बनाए जाते हैं जिनमें उनका स्वार्थ निहित होता है और उनके कार्यकलापों को 'लॉबीइंग' कहते हैं। जब कभी कोई विधेयक कांग्रेस में प्रस्तुत किया जाता है, तब परस्पर-विरोधी स्वार्थ एक-दूसरे के विरोध में संगठित हो जाते हैं। वे जिनको इसके पारित होने में लाभ हो सकता है वे उसको पारित करने का समर्थन करते हैं, और जिन पर उसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है, वे उसका उग्रता से (vehemently) विरोध करते हैं। कांग्रेस के सदस्यों को विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में करने के लिए उन पर अनेक प्रकार से दबाव डाला जाता है। यह निर्देश किया जाता है कि यू० एस० ए० में कांग्रेस की लॉबियों (Lobbies) में अनेक संगठनों का प्रतिनिधित्व किया जाता है और उनमें से सबसे प्रमुख अमेरिका के रेलवे कर्मचारी संघ (American Association of Railway Executives), श्रम संघ (Federation of Labour), राष्ट्रीय पेट्रोलियम संघ (National Petroleum Association), अमेरिका का वाणिज्य

(Chamber of Commerce of the United States), अमेरिकी लीजन (American Legion) आदि हैं। वे अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बहुत चतुर अभिकर्ता (Agent) नियुक्त करते हैं। कभी-कभी भूतपूर्व सीनेटर और भूतपूर्व कांग्रेस के सदस्य इस उद्देश्य के लिए नियुक्त किये जाते हैं। वे पत्रों, तारों, टेलिफोनों, पत्रगत लेखों, व्यक्तिगत सम्बन्धों और कभी-कभी रिश्वत के द्वारा कांग्रेस के सदस्यों पर दबाव डालते हैं। अमेरिकन राजनीति का कोई विद्यार्थी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि कांग्रेस के सदस्यों की राय बनाने में लौबीइंग का बड़ा महत्त्व है। लौबीइंग (Lobbying) का उद्देश्य वैध है और उस पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। प्रत्येक को अपने अनुकूल (favourable) कानून पास कराने और हानिकर कानून को पास होने से रोकने का अधिकार है। किन्तु कांग्रेस के सदस्यों को प्रभावित करने के ढंग के विषय में आपत्ति की जा सकती है किन्तु एक शर्त के आधार पर और वह शर्त यह कि यदि वे बातचीत और तर्क उपस्थित करने की सीमा का उल्लघन करें। खुली या गुप्त किसी भी प्रकार की रिश्वत या डांट-डपट बर्दाश्त नहीं की जानी चाहिए। लौबीइंग संस्था की इस आधार पर भी आलोचना की जा सकती है कि वह कुछ संगठनों को कानून बनाने के बारे में बहुत अधिक प्रभाव डालती है जो कि देश में उनके संख्या या महत्त्व के मुकाबले में बहुत अधिक होता है। एक ग्रुप जनता और देश के आर्थिक जीवन के एक छोटे- भाग का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है किन्तु उसके पास एक विशिष्ट मत रखने वाले असाधारण योग्य लाबीइस्ट (Lobbyist) की अधीनता में एक ऐसी शक्तिशाली लाबी (Lobby) हो सकती है जिसके पास छान-बीन करने वाले कर्मचारियों को रखने के लिए काफी धन व्यय होता है। लौबीइग का एक आपत्तिजनक पहलू गोपनीयता (secrecy) है, जिससे साधारण जनता घिरी रहती है। प्रायः जनता यह नहीं जानती कि लौबीइंग चालू भी है या नहीं और यदि चालू है तो उसे कौन चला रहा है। किन्तु कानून के अनुसार विशिष्ट मत वाले सभासद को वाशिंगटन में अपने आपको अपनी संस्था का नाम, अपनी सेवा का वेतन या फीस बताकर रजिस्टर कराना चाहिए। इससे वाशिंगटन मे विशिष्ट मत रखने वाले सभासदों की गतिविधियों (activities) के बारे में साधारण जनता को पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

फिलिबस्टरिंग (Filibustering)—फिलिबस्टरिग वे चालें हैं जिनका प्रयोग उस विधेयक को पारित होने से रोकने अथवा विलम्बित करने के लिए विरोधी दल करता है जिसे वह पसन्द नहीं करता। संकुचित (narrow) दृष्टिकोण से, फिलिबस्टरिंग का अभिप्राय यह है कि अप्रतिबन्धित (unrestricted) भाषण-स्वतन्त्रता के विशेषाधिकार (privilege of unrestricted freedom of debate) का इस विचार से दुरुपयोग किया जाए कि या तो विधेयक की गति धीमी हो, या उसका मार्ग ही अवरुद्ध हो जाए। फ़िलिबस्टरिंग का प्रयोग व्यक्ति द्वारा अथवा व्यक्तियों के समुदाय द्वारा किया जा सकता है। यह कहा जाता है कि १९०३ में सीनेटर फिलमैन (Fillman) ने लॉर्ड बाइरन के चाइल्ड हैरोल्ड (Childe Harold) पढ़ना शुरू किया और घोषित किया कि वह उस समय तक पढ़ता जायेगा जब तक

विचार किए जाने वाले विधेयक में से वे व्यवस्थाएँ वापस नही ली जाती जिनका वह विरोध करता है, और वह इस व्रत में सफल हुआ। ६४वी कांग्रेस के अन्त में (मार्च १९४७ मे) सैनेटरो के एक छोटे वर्ग ने प्रतिरक्षात्मक कार्यो (defensive purposes) के लिए अमेरिका के व्यापारिक जहाजों को सशस्त्र करने का अधिकार राष्ट्रपति को देने वाले विधेयक को सैनेट के द्वारा पास होने से रोकने के लिए फिलिबस्टरिंग भेज दिया और इस बात को बिना सोचे भेजा कि लगभग सभी सैनेटर उस विधेयक को पास करना चाहते थे। लगातार सदन मे भाषण करने का रिकार्ड १९५३ में ओरेगन के सैनेटर वेन मोर्स (Wayne Morse of Oregon) ने स्थापित किया जो २२ घण्टे और २६ मिनट बोला।

सैनेट मे फिलिबस्टरो की सख्या बहुत होती है। कानून द्वारा फिलिबस्टरिंग पर अवरोध लगाया गया है। यह व्यवस्था की गई है कि सैनेट में विवाद को समाप्त किया जा सकता है यदि १६ सैनेटर विवाद को समाप्त करने का प्रस्ताव करें और सैनेट के २/३ सदस्य उसका समर्थन करें। यद्यपि उक्त व्यवस्था कानून में है पर इसका बहुत अधिक उपयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार कांग्रेस के सदस्यों के अधिकार मे कोई कमी नही आई है और वे जब तक चाहे भाषण कर सकते हैं।

यद्यपि फिलिबस्टरिंग प्रथा की बडी निन्दा की गई है, किन्तु फिलिबस्टरो के समय नष्ट करने पर भी सैनेट अनेक कानून पारित करती है। यह भी निर्देश किया जाता है कि फ़िलिबस्टरिंग द्वारा समाप्त किए गए अधिकाश विधेयकों को जनता नही चाहती और वे कभी फिर से जीवित नही होते। इसके अतिरिक्त फिलिबस्टरिंग के विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले आँकड़े साधारणतः वे व्यक्ति उपस्थित करते है जिनकी प्रिय योजनाएँ असफल हो जाती हैं और जो स्वयं फिलिबस्टरिंग का प्रयोग करने के लिए तत्पर रहते है।

Suggested Readings

Galloway : Congress at the Cross-roads.
Hayness, G. H. : The Senate of the United States : Its History and Practice, 1938.
Luce : Legislative Procedure.
Rogers : The American Senate.
Wilson . Congressional Government.
Young, R. : This is Congress, 1943.

अध्याय १३

संयुक्त राज्य अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट

(Supreme Court of the U. S. A.)

लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, "संयुक्त राज्य सरकार की किसी और विशेषता (feature) ने यूरोपीय जगत् में इतनी अधिक जिज्ञासा (curiosity), चर्चा, प्रशंसा और गलतफहमी नही पैदा की जितनी कि सुप्रीमकोर्ट के उन कर्त्तव्यों और कार्यों ने पैदा की है, जिन्हे वह सविधान की रक्षा करते हुए प्रयुक्त करता है।"

संविधान ने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की संख्या निश्चित नही की है। उनकी संख्या विभिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न रही है। १७८९ में कांग्रेस ने छः, १८०१ में पांच, १८०७ मे सात, १८३७ में नौ और १८६३ में दस न्यायाधीशों के कोर्ट की व्यवस्था की थी। १८६६ में उसने निश्चित किया कि यदि न्यायालय का कोई सदस्य मर जाए या रिटायर हो जाए तो सदस्यों की संख्या घटाकर सात कर दी जाएगी। किन्तु १८६९ मे उसने ९ न्यायाधीशों की व्यवस्था की। उस समय से यह संख्या स्थिर चली आ रही है, पर यदि राष्ट्रपति रूजवेल्ट की १९३७ की न्यायालय-योजना स्वीकार कर ली जाती तो यह संख्या ९ और १५[1] के बीच रहा करती। सब न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है, किन्तु नियुक्ति की सैनेट द्वारा पुष्टि आवश्यक है। राष्ट्रपति द्वारा की गई कुछ सिफारिशों को सैनेट ने रद्द कर दिया है। १९३० में राष्ट्रपति हूवर ने एक रिपब्लिकन जान पार्कर को मनोनीत किया। उसके नामांकन (nomination) को उसके 'एण्टी-ट्रेड यूनियन' (anti-trade union) विचारों के कारण रद्द कर दिया गया। उसके नीग्रो-विरोधी विचारों ने भी उसके मार्ग में रुकावट डाली। नियुक्तियाँ करते समय राष्ट्रपति न्यायालय के वर्गीय (sectional) और धार्मिक गठन का ध्यान रखता है। साधारणतः नियुक्तियाँ दलीय आधार पर की जाती है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश अपने पद पर आजीवन कार्य करते हैं। किन्तु इन्हे महाभियोजित (impeach) करके हटाया जा सकता है। अब तक सुप्रीम कोर्ट के केवल एक न्यायाधीश के विरुद्ध मुकदमा चलाया गया है और वह सेमुअल चे

---

१. उच्चतम न्यायालय में परिवर्तन इस प्रकार किए गए थे—

१७८९ कांग्रेस ने न्यायाधीशों की संख्या छः निश्चित की।

१८०१ कांग्रेस ने इस संख्या को पांच कर देना चाहा, किन्तु ऐसा न हो सका।

१८०७ छः न्यायाधीश देव की भांति उच्च थे, किन्तु एक और न्यायाधीश को इनमें स्थान मिला। इस प्रकार यह संख्या सात तक जा पहुँची।

१८३७ न्यायाधीशों की संख्या सात से नौ कर दी गई।

१८६३ अब्राहम लिंकन ने यह संख्या दस तक पहुँचा दी।

१८६६ कांग्रेस ने इस संख्या को घटाकर आठ कर दिया।

१८६९ यह संख्या वोट द्वारा बढ़ाकर नौ कर दी गई।

१९३७ यह कोई आश्चर्य की बात न होगी यदि संख्या को बढ़ाकर पन्द्रह कर दिया जा

(Samuel Chase, १८०४-५) के बारे में था और उस मामले में भी प्रयास असफल रहा था।

९० व्यक्तियों में से, जिन्होंने अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट में सेवा की है, कुछ बहुत योग्य न्यायाधीश हो चुके हैं, अनेकों ने पर्याप्त योग्यता प्रकट की है और कुछ की योग्यता बहुत कम रही है। क्योंकि न्यायाधीश असाधारण वातावरण मे काम करते हैं, अतः उनको विशेष गौरव और ईमानदारी का रूप मिल जाता है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश घटिया प्रकार के व्यक्तिगत आक्षेपों से मुक्त रहे हैं। कभी-कभी एक न्यायाधीश दूसरे न्यायाधीश की आलोचना कर सकता है। १९४६ में न्यायाधीश जैकसन ने न्यायाधीश ब्लैक की आलोचना की थी।

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ 'राजनैतिक आधार'[1] पर की जाती हैं। डैमोक्रैटिक राष्ट्रपति किसी डैमोक्रैट (Democrat) को ही सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त करता है। कभी-कभी इस प्रथा को छोड़ भी दिया जाता है। राष्ट्रपति हूवर (Hoover) ने, जो कि रिपब्लिकन था, एक डैमोक्रैट को सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश नियुक्त किया था। सैनेट सदा ही राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त न्यायाधीशों की पुष्टि नहीं करती। उसने मि० जॉन पार्कर की नियुक्ति का विरोध किया क्योंकि वह ट्रेड यूनियनों का कट्टर विरोधी था। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सुप्रीम कोर्ट के समस्त न्यायाधीश अपनी पार्टी से ही नियुक्त किए। जब सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय पुनर्लाभ प्रशासन अधिनियम (National Recovery Administration Act) तथा कृषि एकीकरण अधिनियम को जो कि नवीन सुधार (New Deal) के कानूनों के अंग थे, अवैध घोषित किया, राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सुप्रीम कोर्ट के गठन को ही सुधारने का निश्चय किया। उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों की संख्या १५ करने के लिए कांग्रेस से प्रस्ताव किया ताकि पाँच प्रतिक्रियावादी न्यायाधीशों के विरोध को असफल कर नूतन सुधार के कानून वैध घोषित किए जाएँ। किन्तु इस प्रस्ताव की पर्याप्त आलोचना की गई और प्रस्ताव समाप्त हो गया।

यह कहा जाता है कि सुप्रीम कोर्ट में किसी न्यायाधीश की नियुक्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। उस समय उतनी ही दौड़-धूप होती है जितनी इंगलैंड में नए मन्त्रिमण्डल के निर्माण पर होती है। उस व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है जिसका चरित्र दृढ़ एवं कानूनी ज्ञान (legal knowledge) परिपक्व हो। यह नहीं भुलाया जाता कि "जितना अपयश नियुक्ति करने वाले को बुरी न्यायिक नियुक्तियों से मिलता है उतना कोई अन्य प्रशासकीय गलती करने पर नहीं मिलता।"[2]

१. यह निर्देश किया गया है कि सुप्रीम कोर्ट के अधिकांश न्यायाधीश अच्छे वकील, कानून के प्राध्यापक, सार्वजनिक व्यक्ति तथा प्रशासकीय अभिकरणों (Administrative Agencies) के परामर्शदाता रह चुके होते हैं। उनमें से अधिकांश हार्वर्ड, येल, (Yale) तथा प्रिंसटन विश्वविद्यालयों की देन होते हैं।

२. डी टोकविले के मतानुसार, "संघीय न्यायाधीश न केवल अच्छे नागरिक, विद्वान् तथा ईमानदार होने चाहिएँ बल्कि राजनीतिज्ञ भी होने चाहिएँ। वे समय की गति से सुपरिचित हों और उन अवरोधों का सामना करने से शंकित न हों जिनको वश में किया जा सकता है, और ऐसे लोगों को

सुप्रीम कोर्ट के नौ न्यायाधीश अभियोगों को सुनने के लिए एक साथ बैठते हैं, अभियोगों की सुनवाई मंगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार को होती है। शनिवार के दिन न्यायाधीश परस्पर विचार-विनिमय करते हैं और सोमवार को न्यायालय में सार्वजनिक रूप से निर्णय दिए जाते हैं। निर्णय घोषित करने के लिए कम-से-कम छः न्यायाधीशों की उपस्थिति अनिवार्य है। यद्यपि इस प्रणाली से अभियोग पर अच्छी प्रकार से विचार हो जाता है तथापि इससे कार्य को समाप्त करने में देर लगती है।

सुप्रीम कोर्ट का अधिवेशन प्रतिवर्ष अक्तूबर से जून तक चलता है। इसकी बैठकें वाशिंगटन में होती हैं। इसका कार्य दृढ़ शान्ति में और ठीक समय पर किया जाता है। चीफ़ जस्टिस को २५,५०० डालर तथा अन्य न्यायाधीशों में से प्रत्येक को २५,००० डालर वेतन मिलता है। अपने न्यायिक कार्य के अतिरिक्त, सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश १० सर्किट कोर्टों का निरीक्षण करते हैं जिनकी स्थापना कांग्रेस ने की है और जो सम्पूर्ण यू० एस० ए० में फैले हुए हैं।

सुप्रीम कोर्ट की शक्तियां (*Powers of the Supreme Court*)—संविधान नियुक्त करता है कि "संयुक्त राज्य की न्यायिक शक्ति के अधिकार-क्षेत्र में विधि और साम्य (equity) के आधार पर सभी संवैधानिक मामले आयेंगे। उसमें निम्न-लिखित विषय शामिल हैं: संयुक्त राज्य द्वारा की हुई या की जाने वाली संधियां; राजदूतों, मन्त्रियों तथा वाणिज्य-दूतों से सम्बन्धित विषय; जल-सेना तथा जलपोतों से सम्बन्धित विषय; दो या अन्य राज्यों के पारस्परिक झगड़े; एक राज्य तथा दूसरे राज्य के नागरिकों के बीच के झगड़े; किसी राज्य के नागरिकों द्वारा दूसरे राज्यों में जमीन-जायदाद के ऊपर अधिकार करने से उत्पन्न झगड़े; एक राज्य और उसके नागरिकों तथा दूसरे राज्य और उसके नागरिकों के बीच उठ खड़े हुए झगड़े।" पुनः "सुप्रीम कोर्ट का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (original jurisdiction) राजदूतों, मन्त्रियों और वाणिज्य-दूतों के उन मामलों में होगा जिनमें कोई राज्य एक पक्ष हो। अन्य पूर्व-निर्देशित मामलों में सुप्रीम कोर्ट को अपीलीय क्षेत्राधिकार, कानून तथा तथ्य, दोनों के सम्बन्ध में, कुछ अपवादों (exceptions) के साथ जिनको कांग्रेस निश्चित करेगी, प्राप्त होंगे।"

सुप्रीम कोर्ट में अपीलें तब की जाती हैं जब कि कोई राष्ट्रीय न्यायालय किसी दीवानी कार्यवाही (civil action) में राष्ट्रीय कानून को अवैध घोषित करे जिसमें संयुक्त राज्य या उसके अधिकारी अन्तर्ग्रस्त (involved) हों; उदाहरण के लिए जब कोई राष्ट्रीय जिला न्यायालय किसी दीवानी कार्यवाही में किसी राष्ट्रीय या राज्य कानून को अवैध घोषित करे या संयुक्त राज्य के द्वारा या विरुद्ध किसी दीवानी अभियोग में अन्तर्राज्य वाणिज्य आयोग (Inter-State Commerce Commission) की आज्ञाओं को लागू होने से रोके; जब कोई राष्ट्रीय सर्किट कोर्ट ऑफ अपील्स

कुचलने में मुस्तैदी से काम न लें जो कानूनों के लिए आवश्यक संघीय सर्वोच्चता (Supremacy of Union) एवं कानून पालन का विरोध करें।" और "यदि सुप्रीम कोर्ट में कभी बुरे नागरिक ... व्यक्ति आ जायें तो संघ में गृह-युद्ध अथवा अराजकता फैलने की सम्भावना है।"

किसी राज्य-कानून को अवैध घोषित करे और जब राज्य का अन्तिम न्यायालय किसी विशेष दावे को रद्द कर दे, जैसे राज्य-कानून अवैध है, या किसी राष्ट्रीय कानून या संधि (treaty) को अवैध घोषित करे। सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रीय सर्किट कोर्ट ऑफ अपील्स या राष्ट्रीय सर्किट कोर्ट ऑफ क्लेम्ज के द्वारा प्रमाणित या उनके अभियोगों में आने वाले कानून की व्याख्या से सम्बद्ध प्रश्नों के उत्तर भी देता है। १९५२-५३ में अपील के अधिकार से आने वाली ८८ अपीलों में से ३ कोर्ट ऑफ अपील्स के द्वारा प्रमाणित थीं। सुप्रीम कोर्ट को अनेक परिस्थितियों में उत्प्रेषण (Writ of Certiorari) के आधार पर अपील स्वीकार करने का अधिकार है। बहुत कम अपवादों के अलावा, कांग्रेस ने उसे उन अभियोगों में पुनर्विचार का विवेकात्मक अधिकार (discretionary right of review of cases) दिया है जो किसी भी प्रकार से संविधान में पारिभाषित राष्ट्रीय न्यायिक शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

संघीय विवादास्पद प्रश्नों (questions) के लिए प्रत्येक राज्य-प्रणाली में सुप्रीम कोर्ट सबसे ऊँचा न्यायालय है। संघीय विवादास्पद प्रश्न राष्ट्रीय संविधान, कानूनों या संधियों के अधीन किसी अधिकार या दायित्व के सम्बन्ध में उठते हैं। संयुक्त राज्य के अधिकांश मुकद्दमों में संघीय प्रश्न नहीं उठते, लेकिन कुछ मामलों में राष्ट्रीय न्यायालयों को राज्य-न्याय के रूप को सँवारने का अवसर मिलता है। चौदहवें संशोधन से, जो राज्य को कानून की उचित विधि (due process of law) के अलावा और किसी रीति से किसी व्यक्ति को जीवन, सम्पत्ति या स्वतन्त्रता से वंचित करने से रोकता है, अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट को राज्यों की न्यायिक प्रक्रिया (judicial procedure) पर पर्याप्त नियन्त्रण मिल जाता है।

सुप्रीम कोर्ट के काम पर नजर डालने से पता चलता है कि १९५२-५३ में उसने १९८ मुकदमों के बारे में निर्णय दिया, ११० के बारे में विचार (opinion) प्रकट किए और ६१ ज्ञापन आदेश (memorandum orders) दिए। उसने इतने ही मुकदमों को सुनने से इन्कार कर दिया। उत्प्रेषण लेख (writ of certiorari) के प्रार्थना-पत्र सुप्रीम कोर्ट के सामने आने वाले अधिकतर दावों की जाँच करने और सुने जाने वाले मामलों में अच्छी प्रकार निरीक्षण करने का अवसर देते हैं। नौ न्यायाधीशों में से चार के सहमत होने पर उत्प्रेषण लेख स्वीकार किया जाता है तथापि युक्तियों (arguments) के बाद कोर्ट का बहुमत उसे खारिज कर सकता है। १९५२-५३ में सुने गये १९८ मुकदमों में से ८८ अपील के अधिकार (Right of Appeal) से और ११० उत्प्रेषण लेख के कारण न्यायालय के सम्मुख आए। ४९ मुकदमे सीधे राष्ट्रीय जिला न्यायालयों से, ८६ सर्किट कोर्टस् ऑफ अपील्स से, ४ राष्ट्रीय न्यायालयों से, और ५९ राज्य न्यायालयों से आए। कोई मुकदमा सुप्रीम कोर्ट में उसके आरम्भिक क्षेत्राधिकार (original jurisdiction) के अधीन नहीं आया।

यह ध्यान रखने की बात है कि सुप्रीम कोर्ट के आरम्भिक क्षेत्राधिकार की बहुत ही कम माँग होती है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत कूटनीतिज्ञ (diplomatic personnel) इसके क्षेत्राधिकार से लगभग पूरी तरह से मुक्त होते हैं। ऐसे

है। केवल ८ या १० कानूनों को पूरी तरह अवैध बताया गया है। १७८९ से कांग्रेस ने ७०,००० से अधिक कानून पास किए हैं, जिनमें से ३०,००० से अधिक सार्वजनिक कानून (Public laws) है। आंकड़ों के अनुसार कांग्रेस के कानूनों के न्यायिक पुनर्विचार की संख्या बहुत ही कम रही है। किन्तु न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति के कुछ अप्रत्यक्ष परिणाम हुए हैं। जब सुप्रीम कोर्ट ने १८७० और १८८० के बाद घोषित किया कि श्वेत दक्षिणवासियों (White Southerners) के निजी कामों से नीग्रो जाति (Negroes) के अधिकार को संरक्षित करने वाले कानून और राष्ट्रीय कार्यपालिका के कार्य राष्ट्र की सावंधानिक शक्तियों की सीमा को लांघते हैं, तब उसने नूतन स्वतन्त्रता पाए हुए गुलामों को बड़ी कठिनाई में डाल दिया। जब सुप्रीम कोर्ट ने १८९५ में राष्ट्रीय आयकर (Income tax) कानून को अवैध घोषित किया तब राष्ट्रीय सरकार इस आय का बीस वर्ष तक उपयोग नही कर सकी। जब सुप्रीम कोर्ट ने कई मामलों में निर्णय दिया कि कांग्रेस उन वस्तुओं के उत्पादन को विनियमित नही कर सकती जो अन्तर्राज्य (Inter-State) वाणिज्य में आती हैं, तब उसने बाल श्रम (Child Labour) तथा अन्य निन्दनीय श्रम-व्यवहारों (labour practices) को रोकने के राष्ट्रीय प्रयास को उस समय तक आगे नहीं बढ़ने दिया जब तक कि १९३७ में उस निर्णय को बदल न दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने कुछ विशेष कानूनों को अवैध ही घोषित नहीं किया, प्रत्युत् कांग्रेस को दूसरे कानून पास करने से निरुत्साहित भी किया।

१९३० में सुप्रीम कोर्ट की न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति चरम सीमा तक पहुँच गई। १७ महीनों में उसने आर्थिक मन्दी (depression) की समस्या से सम्बन्ध रखने वाले ११ बड़े राष्ट्रीय कानूनों को पूरे या आंशिक रूप से अवैध करार दिया। सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों से सारी नई व्यवस्था को धक्का पहुँचा। राष्ट्रपति रूजवेल्ट को बहुत क्रोध आया और उन्होने प्रति-प्रहार करने की धमकी दी, लेकिन धमकी पूरी नहीं की गई।

१९३७ की घटनाओं से यह पाठ लिया जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट की स्वतन्त्रता को सीधी चुनौती देना राजनीतिक दृष्टि से खतरनाक है। न्यायिक नीतिज्ञता का एक कार्य यह है कि सरकार के निर्वाचित विभागों के कार्यों मे बहुत अधिक रुकावट न डाली जाए। जब सुप्रीम कोर्ट ने १९वीं सदी के अन्त और २०वीं सदी के शुरू में उदार सामाजिक कानूनो में रुकावट डाली तो उसने यह कार्य तब किया जबकि देश मे उसके गुण-दोष के विषय में अत्यधिक मत-विभिन्नता थी और राजनीतिक विभागो के अनेक सदस्य उदार विधेयकों का सिद्धान्ततः समर्थन करने में समर्थ थे, लेकिन यह निर्देश करते थे कि संविधान उनकी आज्ञा नही देता। जब सुप्रीम कोर्ट ने १९३० के बाद के वर्षों मे उदार कानूनों को रद्द कर दिया तब उसने यह कार्य ऐसे समय किया जब निर्वाचकों ने बहुमत से नई व्यवस्था को स्वीकृत किया था और सरकार के अन्य विभागों के अधिकांश सदस्य उनकी आवश्यकता अनुभव करते थे।

प्रसंग मे न्यायालय को कानून का पुनर्विचार करने का बहुत ही कम क्षेत्र प्राप्त

सुप्रीम कोर्ट के द्वारा संविधान की व्याख्या करने में प्रमुख कार्य सरकारी शक्तियों

के प्रयोग को संविधान के अधीन जिसका संशोधन करना कठिन है, बुद्धिसंगत रूप देना है। सुप्रीम कोर्ट वास्तव में एक स्थायी सार्वधानिक सभा है । जब तक वह अपना कार्य परिमित रूप में (moderately) करता है, तब तक वह पर्याप्त सम्मान और शक्ति का उपभोग करता है, किन्तु जब वह अपना कार्य करने से इन्कार कर देता है, तब उसका मान गिर जाता है और निर्वाचित विभाग उस पर दबाव डालने लगते है। ऐसे अनेक साधन है, जिनके द्वारा न्यायिक निर्णयों को जनमत से प्रभावित होने वाला बनाया जा सकता है और सबसे अच्छी बात न्यायिक आत्म-संयम (self-restraint) की परम्परा का विकास करना है। सुप्रीम कोर्ट को संक्षेप में जैकसन और जैफरसन के तर्क की भावना को स्वीकार करना चाहिए। जस्टिस होम्स ने अपने मतभेद-पत्र में न्यायिक आत्म-संयम का उपदेश किया था। संयुक्त राज्य बनाम बटलर के अभियोग में जस्टिस स्टोन ने १९३६ मे ये विचार प्रकट किये थे—"अकेले न्यायालय ही शासनकर्ता नही है।"

एटकिन्स के अभियोग मे न्यायाधीश सदरलैण्ड ने यह कहा कि "शक्ति की सीमाएँ (limits) होती है और जब उनका उल्लंघन किया जाय तब अपने प्राधिकार (authority) का उचित उपयोग करते हुए न्यायालयों का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे ऐसी घोषणा करे।" ब्रोगन के अनुसार, "न्यायाधीश सदरलैण्ड ने न्यायालयों के कार्य की परिभाषा ऐसी विधि से की है कि कोई उग्र आलोचक (radical critic) कठिनाई से ही उससे अच्छी परिभाषा कर सकता।" बोदिन (Bodin) के अनुसार, "यह घोषणा कि न्यायालय ने अपने आपको उच्च विधानमण्डल (Super-legislature) बना लिया है सम्भवत. अन्य किसी भी बात से अधिक स्पष्ट है।"

ध्वनित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers)—ध्वनित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन चीफ जस्टिस मार्शल ने किया जो दीर्घ काल तक बैंच का सदस्य रहा और "जो उसी युग से सम्बद्ध था जिसमे संविधान का निर्माण हुआ और इसलिए वह सविधान के निर्माताओं के अभिप्राय को जानता था। जब जटिल प्रश्न उपस्थित होते तब वह जानता था कि देश के हित मे उनके प्रयोग के लिए किस प्रकार बाल की खाल निकाली जाए और अपने कुछ समकालीनों (contemporaries) के विचार में, उसने अपने कुछ निर्णयों में महान् राज-पत्र (Charter) के निश्चित शब्दो का खीचकर अर्थ निकाला (strained)।" उसके निर्णय संविधान की धाराओं के समान ही पवित्र हो गए।

मैककूलच (McCulloch) बनाम मैरीलैण्ड (Maryland) के अभियोग में, चीफ़ जस्टिस मार्शल ने मैरीलैण्ड के विधानमण्डल के उस अधिनियम को अवैध घोषित किया जिससे दि बैंक आफ़ यूनाइटेड स्टेट्स द्वारा प्रचलित किए गए नोटों पर एक 'कर' लगाया गया था। यह सत्य है कि संविधान ने कांग्रेस को राष्ट्रीय बैंक स्थापित करने की आज्ञा दी, लेकिन चीफ जस्टिस मार्शल का विचार था कि यद्यपि यह शक्ति विशेष रूप से कांग्रेस को नही दी गयी थी, तथापि यह उन अन्य शक्तियों से स्पष्ट अनुभूत होती थी जो कि कांग्रेस को दी गई हैं।

"सब लोग इस सरकार को परिगणित शक्तियों (enumerated powers)

से युक्त स्वीकार करते हैं। यह सिद्धान्त कि वह केवल उन शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जो उसे सौंपी गई हैं, सार्वजनिक तौर से स्वीकार किया जाता है। किन्तु वास्तविक स्वीकृत शक्तियों के विस्तार के सम्बन्ध में विवादास्पद प्रश्न सदैव ही उठता रहा है और सम्भवतः तब तक उठता रहेगा जब तक कि हमारी प्रणाली जीवित है। सरकार की शक्तियाँ सीमित हैं और उसकी शक्तियाँ बढ़ाई नहीं जायेंगी। किन्तु हमारा विचार है कि संविधान की स्वस्थ रचना (sound construction) राष्ट्रीय विधानमण्डल को उन साधनों (means) के सम्बन्ध में छूट देगी जिनसे उसके द्वारा सौंपी गई शक्तियों का प्रयोग किया जाय और जो उस संस्था को सौंपे गये महान् कर्त्तव्यों को ऐसे ढग से पूरा करने मे समर्थ बनाए जो जनता के लिए सबसे अधिक लाभदायक हो।"

"उद्देश्य न्यायसंगत (legitimate) हो, वह संविधान के क्षेत्र के अन्तर्गत हो तो वे सब साधन वैध है जो उपयुक्त (appropriate) हैं; जिनका स्पष्टतः उस उद्देश्य के लिए व्यवहार किया गया है, जिनका निषेध (prohibited) नहीं किया गया है बल्कि जो संविधान के शब्दों तथा भावना से सुगठित हैं।"

डार्टमाउथ कॉलिज (Dartmouth College) के अभियोग में, चीफ जस्टिस मार्शल ने एक सावैधानिक खण्ड (clause) का लाभ उठाया जिसमें "संविदाओं के बन्धनों को क्षीण" (Impairing the Obligations of Contracts) करने से सम्बन्धित कानून बनाने का राज्यों पर निषेध लगाया गया था और एक राज्य के विधानमण्डल के कानून को अवैध घोषित किया जिसमें औपनिवेशिक काल में क्राउन द्वारा प्रदत्त डार्टमाउथ कॉलिज के राज-पत्र (Charter) को संशोधित किया गया था। मार्शल ने समस्त निगमों (corporations) को संघीय सरकार के नियन्त्रण में लाने के लिए 'संविदा-खण्ड' के अर्थ तथा क्षेत्र का विस्तार किया। गिब्बन्स बनाम ओग-डन के अभियोग मे, मार्शल ने 'वाणिज्य खण्ड' (Commerce Clause) का उपयोग न्यूयार्क राज्य विधानमण्डल के कानून को अवैध घोषित करने मे किया जिसके द्वारा कुछ व्यक्तियों को न्यूयार्क सागर मे भाप से चलने वाली नौकाओं का एकाधिकार (exclusive right) दिया गया था। मार्शल के अनुसार, "*वाणिज्य निर्विवाद रूप से व्यापार* (traffic) *है लेकिन कुछ अधिक वस्तु है। वह समागम* (intercourse) *है।*" यह निर्देश किया जाता है कि यह घटना यू० एस० ए० के आर्थिक इतिहास की एक महान् घटना है और इसने न केवल अन्तर्राज्य संचार (inter-State communications) को सरल किया है अपितु देश के आर्थिक एकीकरण (economic integration) को तेजी दी है। चीफ जस्टिस टैने (Taney) ने ध्वनित शक्तियों के सिद्धान्त का महत्त्व इन शब्दों मे बताया है, "यदि न्यायालय में हमें संविधान मे पाए जाने वाले पुराने शब्दों को नया अर्थ देने की स्वतन्त्रता है, तो ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो इस प्रकार की रचना के द्वारा संघीय सरकार को न सौंपी जा सके और राज्यों से छीनी न जा सके।"

संयुक्त राज्य बनाम डरबी के अभियोग में (United States V. Darby) कोर्ट ने १९४१ मे इस प्रकार लिखा—"*अन्तर्राज्य वाणिज्य के सम्बन्ध में*

कांग्रेस की शक्ति राज्यों के बीच वाणिज्य को विनियमित करने तक सीमित नही है। यह उन अन्तर्राज्य कार्यवाहियों तक फैली हुई है, जो किसी प्रकार से अन्तर्राज्य व्यापार पर प्रभाव डालती हैं। विकार्ड बनाम फिलबर्न (Wickard Vs. Filburn) (१९४२) के अभियोग मे सुप्रीम कोर्ट ने निश्चित किया कि "यदि किसी प्रक्रिया का अन्तर्राज्य व्यापार पर पर्याप्त आर्थिक प्रभाव पड़ता हो तो चाहे वह स्थायी हो अथवा उसे वाणिज्य न कहा जा सके, तो भी वह कांग्रेस के प्रभाव-क्षेत्र मे आ सकती है; चाहे वह प्रभाव कभी 'प्रत्यक्ष' अथवा 'अप्रत्यक्ष' माना गया है।" के० सी० व्हेअर (K. C. Wheare) के अनुसार, यू० एस० ए० के सुप्रीम कोर्ट ने "गत डेढ सौ वर्षों की समस्त आर्थिक, व्यापारिक (commercial), औद्योगिक (industrial) तथा यातायात क्रान्तियों की माँगों के सम्बन्ध में कांग्रेस की वाणिज्य सम्बन्धी शक्तियों को मान लिया है।" (मॉडर्न कान्स्टीट्यूशन्स, पृष्ठ १५९)।

डीन एलफ्रैन्जे (Dean Alfrange) के अनुसार, 'जब उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे मार्शल ने पद सम्भाला, तब 'संघ' अभी नई दुनिया था जो जन्म लेने के लिए संघर्ष कर रहा था। राज्य तथा उनकी सरकारें मूर्त रूप मे थी, जबकि संघीय सरकार कुछ नई भिन्न प्रकार की और छायामात्र थी; यह चलती हुई चीज के बजाए अभी आकांक्षाओं का खाका मात्र थी।" यह चीफ जस्टिस मार्शल की देन है, जो राज्यो के अधिकारों के विरुद्ध राष्ट्रीयता का समर्थक तथा फैडरलिस्ट था, कि संघीय सरकार की शक्तियाँ ध्वनित अधिकार के सिद्धान्त तथा वाणिज्य खण्ड (Commerce Clause) के कारण बढ़ीं। किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि मार्शल का उत्तराधिकारी टैने (Taney) राज्य अधिकारों का समर्थक था। उसने संविधान की व्याख्या सख्ती से की, ध्वनित अधिकारों के सिद्धान्त को तिलाञ्जलि दे दी और राज्य (states) के अधिकार-क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए "राज्य की आरक्षण शक्ति" (police power) पर बल दिया।

सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों ने "कानून की उचित प्रक्रिया" (Due Process of Law) वाले खंड की व्याख्या यह की है कि जो तर्कसगत और न्यायसगत है। इसी प्रकार, यदि कोई राज्य कोई कानून पारित करता है जिसे सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश अन्यायोचित (unjust), अबुद्धिमत्तापूर्ण अथवा अतर्कसंगत (unreasonable) समझते हों तो वे उसे इस आधार पर अवैध घोषित कर सकते हैं कि वह कानून की उचित प्रक्रिया के विपरीत है।

सुप्रीम कोर्ट और नागरिक स्वतन्त्रता (Supreme Court and Civil Liberties)—सुप्रीम कोर्ट के कार्य (role) में परिवर्तन हुआ है। यद्यपि १९३७ से पूर्व उसका अधिकांश कार्य तथाकथित उचित प्रक्रिया (due process) के विधायी और प्रशासकीय (legislative and executive) उल्लंघनों के विरुद्ध सम्पत्ति अधिकारो (property rights) के संरक्षण से सम्बन्ध रखता था, तथापि पिछले दिनो उसका ध्यान वैयक्तिक अधिकारो (personal rights) की ओर अधिक हो गया है। यदि १९२१ में सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश यह कह सकता था कि तीन मूल सिद्धान्त (fundamental principles) जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का

संरक्षण है जो कि सरकार के नीचे रहते हैं और जिनके लिए सरकार जिन्दा है, और इनमें से मुख्य सम्पत्ति है, तो आजकल अन्य दो पर जोर दिया जाता है। सुप्रीम कोर्ट ने बिल ऑफ राइट्स (Bill of Rights) से सरक्षित व्यक्ति की स्वतन्त्रताओं पर अधिक जोर दिया है। यद्यपि बिल ऑफ राइट्स संघ सरकार पर कुछ प्रतिबन्ध लगाता है तथापि संविधान का १४वां और १५वां संशोधन नागरिक को अपनी राज्य सरकार के विरुद्ध संघीय न्यायिक राज्य संरक्षण (federal judicial state protection) देने की व्यवस्था करते हैं। राज्यों को संयुक्त राज्य के नागरिकों के विशेषाधिकारों और सुविधाओं को छीनने से रोका गया है और कोई राज्य अपने क्षेत्राधिकार में "बिना उचित कानूनी प्रक्रिया के किसी व्यक्ति का जीवन, धन तथा स्वतन्त्रता नहीं छीन सकता और न किसी व्यक्ति को कानूनों का समान संरक्षण देने से इन्कार कर सकता है।" सयुक्त राज्य के नागरिकों को वोट देने के अधिकार को मूलवंश, रग या दासता की पूर्व दशा (previous condition of servitude) के आधार पर छीना नहीं जा सकता। साधारण अमेरिका निवासी के दृष्टिकोण के अनुसार उसके नागरिक अधिकारों को छीनने का खतरा अधिकतर राज्य या स्थानीय सरकार के स्तर पर ही उठता है।

राज्य द्वारा नागरिक स्वतन्त्रताओं को छीनने से सम्बन्ध रखने वाले बहुत से मामलो मे सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप का कारण यह है कि उसने इस विचार को छोड़ दिया है कि साधारण तौर से सरकार के कार्य सांवैधानिक होते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने इस नियम का पालन किया है कि कानून को, जिसकी सांवैधानिकता को चुनौती दी गई हो, वैध मानना चाहिए जब तक कि उसकी सांवैधानिक प्रतिकूलता उचित सन्देह के परे सिद्ध न हो जाए। पिछली दशाब्दी (decade) मे न्यायालय ने एक नये सिद्धान्त की घोषणा की है—"जब कोई कानून किसी नागरिक स्वतन्त्रता—विशेषकर भाषण, मुद्रण, धर्म और इकट्ठा होने की स्वतन्त्रता का हनन करता हुआ मालूम हो तो पूर्व धारणा यह है कि कानून अवैध है बशर्ते कि उसके समर्थक यह सिद्ध कर सकें कि हस्तक्षेप सार्वजनिक सुरक्षा के लिए "स्पष्ट और वर्तमान भय" (clear and present danger) के अस्तित्व के आधार पर न्यायोचित है। "स्पष्ट और वर्तमान भय" की कसौटी न्यायाधीस होम्स (Holmes) ने शुरू की थी। उसके शब्दों मे, "हर एक मामले में प्रश्न यह है कि क्या प्रयोग किये गए शब्द ऐसी परिस्थितियों में प्रयोग किए जाते है और एक ऐसे स्पष्ट और वर्तमान भय को उत्पन्न करते है जिससे पर्याप्त बुराइयाँ उत्पन्न होंगी जिनको रोकने का उसे (विधान मण्डल को) अधिकार है।" १९४५ में सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा—"उन स्वतन्त्रताओं को सीमित करने के प्रत्येक प्रयास को सार्वजनिक हित के द्वारा सन्देह से या दूर से न डराकर स्पष्ट एवं वर्तमान भय" के आधार पर न्यायोचित ठहराना चाहिए।

पिछले दिनों मे नागरिक स्वतन्त्रताओं से सम्बन्ध रखने वाले मुकदमों की संख्या सुप्रीम कोर्ट में बढ़ी है। १९३८ से बीस से अधिक मामलो में सुप्रीम कोर्ट ने दोषारोपणों पर विचार किया है कि राज्यों या नगरों ने जेहोवा विटनेसेज ovah Witnesses) के नाम से प्रसिद्ध सम्प्रदाय (sect) की धार्मिक स्वतन्

ताओं का उल्लंघन किया है। इन मामलों मे से अधिकाश में सुप्रीम कोर्ट ने निश्चित किया कि शिकायत वाली कार्यवाही गैर-कानूनी थी। धर्म और अमेरिका के संविधान में उसके स्थान के प्रश्न पर सुप्रीम कोर्ट के अनेक हाल के निर्णयों में बहस की गई है। १९४८ में निर्णीत एक मुकदमे के अनुसार, कानून से धर्म की स्थापना (establishment of religion) के विरुद्ध सावैधानिक खण्ड (clause) का अभिप्राय चर्च और राज्य के बीच मे एक विभाजक दीवार बनाना था। "न तो राज्य और न ही सघीय सरकार किसी चर्च को स्थापित कर सकती है; न वे ऐसे कानून पास कर सकती है, जो एक धर्म की सहायता करते हों, सब धर्मों की सहायता करें या किसी धर्म के ऊपर किसी धर्म को प्रमुखता दें।" सुप्रीम कोर्ट ने उस कानून को गैर-कानूनी घोषित किया जिसके अधीन राज्य द्वारा चलाए गए स्कूलों के अन्दर पढ़ाई के घंटो मे विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों द्वारा धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। यह निर्णय दिया गया कि वह धर्म को फैलाने के लिए प्रस्थापित (established) और कर-समर्थित (supported) राज्य स्कूल प्रणाली के प्रयोग से अपने-अपने धर्म के प्रचार में धार्मिक वर्गों को सहायता देना था।

१९५२ मे सुप्रीम कोर्ट ने यह निश्चित किया कि चलचित्र (motion pictures) के द्वारा विचार प्रकट करना सघीय सविधान द्वारा स्वीकृत भाषण और मुद्रण-स्वतन्त्रता के अन्तर्गत आता है। देश मे नीग्रो लोगों की स्थिति को सुधारने मे सहायक अनेक निर्णय दिए गए है। यह विशेषकर श्वेतो और नीग्रो को पृथक् रखने वाले मामलों में किया गया है। यदि नीग्रो के लिए पृथक् एवं पर्याप्त उचित प्रबन्ध भी किया गया हो तो भी सुप्रीम कोर्ट ने उनको गैर-कानूनी घोषित किया। ब्राउन बनाम बोर्ड आफ एजूकेशन (Brown *Vs.* Board of Education) के मामले मे चीफ जस्टिस वारेन ने १९५४ मे यह कहा था—"क्या भौतिक सुविधाएँ और अन्य तथ्य समान होने पर भी पब्लिक स्कूलों में केवल मूलवंश के आधार पर अलगाव (Segregation) अल्प-संख्यकों के बच्चों के समान शैक्षणिक अवसरो का हरण करता है? हमारा विश्वास है कि ऐसा है।" अलगाव की बात ही भेद-भाव (discrimination) के तथ्य को सिद्ध करती है। "केवल मूलवश के आधार पर उनको समान आयु और योग्यताओं के अन्य बच्चों से पृथक् करने से समाज मे अपनी स्थिति के बारे मे उनमें हीनता की भावना उत्पन्न होती है जो कि उनकी आत्मा और दिमाग पर अवाछित प्रभाव उत्पन्न कर सकती है....। हम निर्णय देते है कि सार्वजनिक शिक्षा के क्षेत्र में *'पृथक् किन्तु समान'* के *सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं है। पृथक् शिक्षा-सुविधाएँ स्वतः असमान है।"* ब्राउन और शिक्षण-बोर्ड के मामले मे दिया गया निर्णय एक महान् घटना है। इसका परिणाम संयुक्त राज्य में कानूनी तौर से अलगाव (Segregation) का अन्त होगा।

सुप्रीम कोर्ट के नागरिक अधिकारो के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नागरिक अधिकार समिति की रिपोर्ट में १९४७ में यह कहा गया—"यह कहना बहुत अधिक नही है कि पिछले १० वर्षो मे इस प्रकार के मामलों को निपटाना कोर्ट द्वारा किए गए अन्य कार्यों के समान ही आवश्यक था। संघीय सरकार का एक विभाग होने के कारण वह अन्य नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा में लगा हुआ है।"

सुप्रीम कोर्ट और संविधान[1] (Supreme Court and the Constitution)—संयुक्त राज्य के सुप्रीम कोर्ट का अमेरिका के संविधान के विकास में बहुत हाथ रहा है। १७८० में बना संविधान बहुत छोटा था और उस समय[2] की यू० एस० ए० की जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया गया था। उस समय यू० एस० ए० कृषिप्रधान देश था और उसका विस्तार बहुत कम था। यू० एस० ए० के १३ राज्य बढ़कर ४८ राज्य हो गए। देश की जनसंख्या भी कई गुणा बढ़ी। कृषिप्रधान देश की अपेक्षा आज अमेरिका अत्यधिक औद्योगिक देश हो गया है। नई परिस्थितियों के अन्तर्गत प्राचीन संविधान के अनुसार चलना कठिन हो जाता। किन्तु, प्राचीन संविधान अमेरिका की जनता की आवश्यकताओं को पूरा करता है क्योंकि अमेरिका के न्यायाधीशों ने शब्दों को नये अर्थ दिए हैं। इस सफलता के लिए सुप्रीम कोर्ट की सराहना करनी चाहिए। आरम्भ में संघीय सरकार बहुत दुर्बल तथा राज्य सरकारें बहुत प्रबल थीं। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संघीय सरकार की शक्तियाँ सुप्रीम कोर्ट द्वारा समय-समय पर दिए गए निर्णयों के कारण अत्यधिक बढ़ गई हैं।

यह स्मरण रहे कि सुप्रीम कोर्ट ने मध्य श्रेणियों के सम्पत्ति के अधिकारों (property rights) की उत्साह से रक्षा की है। वह सम्पत्ति (wealth) का रक्षक सिद्ध हुआ है, जनता की स्वतन्त्रताओं (popular liberties) का प्रहरी नहीं। यह निर्देश किया जाता है कि प्रगतिशील कानून बनाने में सुप्रीम कोर्ट एक बाधा है। उसने आय-कर, न्यूनतम वेतन, औद्योगिक कर्मचारियों के काम के सीमित घण्टों से सम्बन्धित अधिनियमों को अवैध घोषित किया और दास-प्रथा को वैध। यू० एस० ए० की जनता नहीं कह सकती कि उसे कैसे कानून चाहिएँ। यह सुप्रीम कोर्ट है, जो घोषित कर सकता है कि क्या कानून सावैधानिक रूप में पारित किये जा सकते हैं? सुप्रीम कोर्ट के पाँच न्यायाधीश उस कानून को अवैध घोषित कर सकते हैं, जिसे सर्व-सम्मति से समाज के हित तथा लाभ के लिए आवश्यक समझा जाता है। चीफ़ जस्टिस ह्यूज (Hughes) के अनुसार, "हमारा एक संविधान है, किन्तु संविधान वह है जिसे न्यायाधीश कहते हैं।"

---

१. चीफ़ जस्टिस मार्शल ने मारबरी बनाम मैडीसन (Marbury *Vs.* Madison) के अभियोग में निम्न निर्णय दिया : "न्यायिक विभाग का यह पूरा कर्त्तव्य है कि वह यह बताये कि कानून क्या है। जो किसी नियम का किसी विशेष मामले में प्रयोग करेंगे, उनको उस नियम की व्याख्या करनी ही होगी। यदि दो कानून एक दूसरे के प्रतिकूल हों तो न्यायालय को प्रत्येक के कार्य-क्षेत्र (operation) को निश्चित करना चाहिए। यदि इस प्रकार कोई कानून संविधान के विपरीत हो और कानून तथा संविधान दोनों ही किसी मामले में लागू होते हों तो न्यायालय या तो संविधान की उपेक्षा करके अभियोग का निर्णय कानून के अनुसार दे, अथवा कानून की उपेक्षा करके उसे अवैधानिक घोषित करे तथा न्यायालय को यह निश्चित करना चाहिए कि उन विरोधी कानूनों में से कौन-सा कानून मामले पर लागू होता है। यही न्यायिक कर्तव्य का सार है। यदि सब न्यायालय संविधान का आदर करें और संविधान विधानमण्डल के किसी साधारण कानून से अच्छा है, तो उस मामले में कानून की उपेक्षा करके संविधान लागू किया जायेगा।"

२. न्यायाधीश मर्फी के मतानुसार संविधान-निर्माताओं ने, जो अभी एक क्रान्ति देख चुके थे, ... [illegible] के लिए दृढ़ राजनीतिक बन्धनों की रचना नहीं की थी।

एस० जे० हैसकिन के अनुसार, "यह महान् ट्रिब्यूनल (अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट) प्रशासकीय मशीन में घड़ी का सन्तुलन-चक्र (balance wheel) है। वह अपने न्यायिक संतुलन (judicial poise) को स्थिर रखता है जब कि सरकार के अन्य विभाग लोकमत (popular opinion) के चचल उत्साह की तीव्रता से प्रभावित हो जाते हैं। इसका कर्त्तव्य, हर समय तथा हर परिस्थिति मे सविधान को देश के सर्वोच्च कानून के नाते स्थिर रखना है और इस शक्ति का प्रयोग समस्त जनता के कल्याण (welfare) के लिए आवश्यक है।" एक अन्य लेखक के अनुसार, "अमेरिका की राजनैतिक प्रणाली मे सुप्रीम कोर्ट, अनेक प्रकार से, सर्वाधिक शक्तिशाली खण्ड बन गया है और संसार का सबसे बड़ा न्यायिक सगठन है।" डा० फाइनर (Dr. Finer) के अनुसार, "सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका के विधान मे, वास्तव में अपना एक विशेष स्थान रखता है और एक प्रकार से वह ऐसे सीमेंट का काम करता है जिसने संघीय रूपरेखा को पूर्ण रूप से दृढ बना दिया है।"

प्रोफेसर लास्की के अनुसार, "आज विश्व के किसी भी देश की राजनीति मे वकील को यह स्थान प्राप्त नहीं है जो अमेरिका की राजनीति मे उसको प्राप्त है। इस विषय को कठिनाई से ही भुलाया जा सकता है कि सघीय न्यायालयो का और सबसे बढ़कर, सुप्रीम कोर्ट का, संयुक्त राज्य के जीवन पर कितना प्रभाव पडता है। यदि यह कहना अतिशयोक्ति है कि अमेरिका का इतिहास उसके संघीय निर्णयों के रूप में लिखा जा सकता है तो यह कहना अनुचित नही है कि उनका उल्लेख किये बिना अमेरिका का इतिहास अपूर्ण ही रहेगा।"

डी टॉकविले (De Tocqueville) ने १८४८ मे सुप्रीम कोर्ट के विषय मे कहा था कि "यदि मुझसे पूछा जाय कि मैं अमेरिकन शासन-तन्त्र को कहाँ स्थान देता हूँ तो मैं बिना झिझक के उत्तर दूंगा कि इसका स्थान न्यायिक बैंच (Judicial Bench) और बार (Bar) है........। कठिनाई से ही सयुक्त राज्य मे कोई ऐस राजनीतिक विवादास्पद प्रश्न उठता होगा जो अन्त में न्यायिक प्रश्न न बन जात। हो।" जस्टिस फ्रैंक फरटर के अनुसार "सुप्रीम कोर्ट ही सविधान है।"

सुप्रीम कोर्ट का सुधार (Reform of Supreme Court)—अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट के सुधार के लिए अनेक सुझाव दिए गए है। एक सुझाव के अनुसार सुप्रीम कोर्ट को साधारण बहुमत से किसी कानून को अवैध घोषित करना चाहिए। नौ न्यायाधीशों मे से कम-से-कम सात न्यायाधीश किसी कानून को अवैध घोषित करने के विषय मे एकमत होने चाहिएँ। एक अन्य सुझाव यह है कि सविधान मे संशोधन करके न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति को ही समाप्त कर दिया जाए। एक अन्य सुझाव यह है कि कांग्रेस को सुप्रीम कोर्ट के निर्णयो को रद्द करने की वैसी ही शक्ति होनी चाहिए जैसी कि उसे कानून बनाने के क्षेत्र में राष्ट्रपति के निषेधाधिकार के विषय में प्राप्त है। कहा जाता है कि वे सुधार, जिनमें संविधान का संशोधन अपेक्षित है, सफल होने सम्भव नही है क्योकि सविधान का संशोधन करना सरल नही है। निश्चित रूप से सुप्रीम कोर्ट उस कानून के बारे में कठिनाई उत्पन्न

करेगा, जिसका लक्ष्य उसकी न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति को सीमित करना हो। उपर्युक्त रूपरेखा के अनुसार सुप्रीम कोर्ट के सुधार करने के बारे में जनचेतना नहीं है। वर्तमान स्थिति का वर्णन बर्न्स और पैल्टेसन ने इन शब्दों में किया है—"साधारण रूप से बातचीत में अमेरिका के निवासी बहुमत में पूर्ण विश्वास स्थापित करने के इच्छुक नहीं हैं। एक स्वतन्त्र न्यायपालिका न्यायिक पुनर्विचार के साथ निर्वाचित बहुमतों एवं अनियमित व्यवस्थापन के भय की विशेषरूप से संस्थात्मक चिह्न रही है।

अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट को सुधारने के विषय से सम्बन्धित राष्ट्रपति रूजवेल्ट के १९३७ के प्रस्तावों की ओर निर्देश किया जा सकता है। जब राष्ट्रपति रूजवेल्ट १९३३ में पदारूढ़ हुए, तब यू० एस० ए० के सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित थी। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कानून-निर्माण (legislation) का बड़ा भारी कार्यक्रम प्रारम्भ किया, जोकि नयी अवस्था का कानून (New Deal legislation) के नाम से जाना गया। परिस्थिति का सामना करने के लिए कांग्रेस द्वारा एक बहुत बड़ी संख्या में कानून पास किये गए। सम्बन्धित दलों ने उन कानूनों का सुप्रीम कोर्ट के सामने विरोध किया और सुप्रीम कोर्ट ने उनमें से १२ को अवैधानिक घोषित किया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने टक्कर लेने का निश्चय किया और सुप्रीम कोर्ट के विरोध को पराजित करने के ध्येय से १९३७ में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उसके प्रस्तावानुसार, राष्ट्रपति को सुप्रीम कोर्ट के ऐसे प्रत्येक सदस्य पर एक और जज नियुक्त करने का अधिकार दिया जाना था जिसने १० वर्ष तक सेवा की हो और जो ७० वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् भी बेंच पर हो। किन्तु, सुप्रीम कोर्ट की कुल सदस्य संख्या १५ से अधिक किसी भी हालत में नहीं होनी थी। नये प्रस्तावों का तीव्र विरोध किया गया और आखिरकार वे रद्द कर दिए गए। किन्तु, यह ठीक ही निर्देश किया गया है कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट इस "मोर्चे पर हार गया परन्तु उसने युद्ध (war) जीत लिया।" कांग्रेस ने १० वर्ष से कार्य कर रहे सुप्रीम कोर्ट के जजों को ७० वर्ष की आयु प्राप्त होने पर पूरी तनख्वाह के साथ अवकाश प्राप्त (रिटायर) होने की अनुमति दे दी।

Suggested Readings

Alfrange : The Supreme Court and the National Will.
Brogan, D. W. : The American Political System, 1948.
Carr, R. K. : The Supreme Court and Judicial Review.
Corwin, E. S. : Court over Constitution : A Study of the Judicial Review as an Instrument of Popular Government, 1948.
Haines, C. G. : The Role of the Supreme Court in American Government and Politics.
Haines, C. G. : The American Doctrineof Judicial Supremacy.
Harris, R. J : The Judicial Power of the United States.
Hughes : The Supreme Court of the United States.
Mayers, Lewis : The American Legal System, 1955.
son, A. T. : The Supreme Court from Taft to Warren, 1958.
loskey, R. G. : The American Supreme Court, 1960.
..., Bernard : The Supreme Court, 1947.

अध्याय १४

यू० एस० ए० में पार्टी-प्रणाली
(Party System in the U. S. A.)

अमेरिका की राजनीति में पार्टी-प्रणाली का महत्त्वपूर्ण भाग है। इसका आंशिक कारण यह है कि देश में पर्याप्त मात्रा मे निर्वाचन होते है। हर चतुर्थ वर्ष राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। हर दूसरे वर्ष प्रतिनिधि सभा (House of Representatives) का निर्वाचन होता है। सीनेट के तिहाई सदस्यों का निर्वाचन तो प्रति दूसरे वर्ष होता है। राज्यों के राज्यपाल भिन्न-भिन्न अवधियो (terms) के लिए निर्वाचित होते हैं। और कुछ स्थानो पर तो यह अवधि केवल दो वर्ष की है। राज्य विधानमण्डलो तथा स्थानीय सस्थाओ के लिए भी निर्वाचन किए जाते है। अनेक अधिकारियों—राज्य न्यायालयो के न्यायाधीशो, सरकारी वकीलो (Public Prosecutors), काउण्टी अधिकारियों (county officials), जिलों के अधिकारियों (Sheriffs)—का निर्वाचन किया जाता है। यह सब कुछ सुव्यवस्थित पार्टी-व्यवस्था के बिना सम्भव नहीं। ये पार्टियाँ ही है जो विभिन्न पदों तथा निर्वाचनो के लिए व्यक्तियों का चयन करती है, प्रचार करती है, और निर्वाचन के पश्चात् सदस्यों पर नियन्त्रण रखती है। पार्टी-प्रणाली के बिना अमेरिका की जनतन्त्रीय व्यवस्था सुचारु रूप से कार्य नही कर सकती। जनता से यह आशा करना बहुत अधिक है कि वह मार्ग-प्रदर्शन (guidance) तथा सहायता के बिना प्रत्येक कार्य को सफलता से पूर्ण कर सकती है।

यह निर्देश किया जाता है कि अमेरिका की संघीय-प्रणाली मे पार्टी-व्यवस्था आवश्यक है। अधिकारियों के दो समूहों (sets) मे सहयोग को केवल पार्टियों के द्वारा ही सम्भव बनाया जा सकता है जो कि संघीय सरकार तथा इकाइयों पर नियन्त्रण रखती हैं। पार्टी को एक रूप करने की शक्ति के बिना संघीय सरकार तथा राज्यो को सन्तुलन में रखते हुए एकता से कार्य नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, अमेरिका की राजनैतिक व्यवस्था का आधार शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त (Principle of Separation of Powers) है। इंगलैंड के विपरीत, जहाँ कि प्रशासनीय तथा विधायी कार्य में अनुरूपता (harmony) है, यू० एस० ए० मे प्रशासन तथा विधि-निर्माण एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। राष्ट्रपति तथा कांग्रेस मे असहयोग (non co-operation) की पूरी-पूरी सम्भावना है। किन्तु इसकी कमी को पार्टी-प्रणाली के द्वारा दूर किया जाता है, जो कि कार्यपालिका तथा विधायिका को मिलाने वाले पुल की तरह है। यह निर्देश किया जाता है कि अमेरिका की राजनैतिक पार्टियाँ प्रशासन को प्रेरक शक्ति (driving force), समान दृष्टिकोण तथा उद्देश्य तथा रचनात्मक शासन की सम्भावना (possibility of creative government) प्रदान करती हैं।

पार्टी-प्रणाली का स्वरूप (Character of Party System)—डा० फाइनर

के अनुसार, "अमेरिका मे केवल एक पार्टी, रिपब्लिकन-कम-डैमोक्रेटिक (Republican-cum-Democratic) है, जो कि आदतों और पद की होड़ (contest) के द्वारा दो समान भागों में विभाजित है, और जिनमें से एक का नाम रिपब्लिकन, दूसरे का डैमोक्रेटिक है।" डा० जार्डन के शब्दों मे, "जहाँ तक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, रिपब्लिकन तथा डैमोक्रेटिक पार्टियों में कोई मौलिक मतभेद (essential difference) नहीं है। वे दो बधिया किए हुए सुअरों (hogs) की भांति हैं जिनमें से एक मोटा है और उसके दोनों पैर नांद मे है, दूसरा पतला-दुबला, व्याकुल पशु है जो अपने लिए खुली जगह पाने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा रहा है। नांद अन्तिम उपभोक्ता का प्रतिनिधित्व करती है।" अमेरिका की दोनों राजनैतिक पार्टियों की तुलना दो विरोधी राज्यों की गाडियो से की गई है जो कि एक ही सड़क पर एक ही स्थान को साथ-साथ एक दूसरे पर कीचड़ उछालती हुई जा रही हो। ब्रोगन (Brogan) के कथनानुसार, "अमेरिका के राजनैतिक दल तो वहाँ की समस्त राजनैतिक विचारधाराओं को अपने मे छिपाए रखते है, यदि एक समाप्त हो जाए तो उसकी विचारधारा दूसरे दल में अवश्य स्थान पा जाती है—और दूसरे दल मे उसके मत का प्रभाव समाप्त हुए दल की अपेक्षा न कम होगा और न अधिक।" और फिर "रिपब्लिकन पार्टी के प्रगतिवादी (Radicals) वैसे ही शात है जैसे डैमोक्रेटों के प्रगतिवादी और इसी तरह रूढ़िवादियो मे भी कोई फर्क नहीं है।" लार्ड ब्राइस के अनुसार, "अमेरिका के दो महान् राजनैतिक दल दो खाली बोतलों के समान है जिनमे से प्रत्येक पर एक-एक शराब का लेबिल लगा हुआ है पर है दोनों खाली।" किन्तु डा० बीअर्ड इस दृष्टिकोण को स्वीकार नही करता। वह कहता है कि दोनों दल "भावनाओं, विचारों तथा इच्छाओ में बिल्कुल एक रूप (identical) हैं और मतदाता खोखले शब्दों को मत देते हैं।" ओग और रे के अनुसार, "आज दोनों प्रमुख दल बुरी तरह से एक पिंड बन गए हैं और असंगठित (disunited) हैं। तो भी उनको केवल लेबिल लगी किन्तु खाली बोतल कहकर समाप्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि जेम्स ब्राइस ने पार्टियों के विषय में ४० वर्ष पहले कहा था। वे परम्पराओं, दृष्टिकोणो, सिद्धान्तो और नीतियों में विभिन्न आदर्शों को लेकर चलते हैं। समाज की समस्त श्रेणियों (strata) को अपनाते हुए, समस्त भौगोलिक खण्ड मे प्रवेश कर, समस्त आर्थिक हितों को कुछ अंशों में स्वीकार करते हुए उन्हें सब मनुष्यों को साथ में रखने के लिए अथवा शक्ति प्राप्त करने के लिए सबके लिए सब वस्तुएँ बनना होगा।"

हाईमैन (Hyman) के अनुसार, "अमेरिका मे 'विशुद्ध' रूढ़िवादी दल (Conservative Party) और 'विशुद्ध' उदार दल (Liberal Party) का विचार उसी प्रकार है जैसे बिना घाटियों के पर्वतमालाओं अथवा बिना किनारो के नदियों की कल्पना करना। स्पष्ट तौर से, पहाड़ और घाटियां या नदियां और किनारे एक-दूसरे से अभिन्न हैं। और यही बात हमारे दलीय जीवन के विषय में सत्य है। जब तक हम अपनी अलग होने की वृत्ति के द्वारा किसी एक हित के या सैद्धान्तिक दलों के दल-दल में नहीं जाने, तब तक प्रत्येक दल मिश्रित स्वरुप रखेगा और वही रखना चाहिए। विशेष

रूप से, यह हमारी संघीय पद्धति के अधीन सत्य होना चाहिए जहाँ कि कानून बनाने की प्रेरणा इंगलैंड के समान ऊपर से न मिलकर नीचे से प्राप्त होती है।"

ग्रीफिथ (Griffith) के अनुसार, "संयुक्त राज्य मे हर कोई यह कह देता है कि लोकतन्त्रवादियों (डैमोक्रेटों) और गणतन्त्रवादियो (रिपब्लिकनो) मे कोई वास्तविक अन्तर नही है।" इसमें सचाई का अंश केवल इतना है कि किसी भी विषय पर लगभग समस्त विचारणीय दृष्टिकोणो की व्याख्या करने वाले वास्तव मे दोनो दलों में पाए जा सकते हैं, किन्तु यह निर्देश करता है कि आरम्भ से ही दोनो दलो मे मतभेद रहा है। हैमिल्टन की पार्टी कुलीन (Aristocratic) थी और उसका उद्देश्य केन्द्रीकरण (centralisation) था। जैफरसन की पार्टी अधिक जनतन्त्रीय और विकेन्द्रीकरण (decentralisation) की समर्थक थी। अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) के काल में, रिपब्लिकन पार्टी जनतन्त्रीय और डैमोक्रेटिक पार्टी प्रतिक्रियावादी थी और दास-स्वामियो (slave-owners) के अधिकारो का समर्थन करती थी। १९३० तक राष्ट्रीय सुसम्पन्नता तथा उदार दृष्टिकोण का श्रेय रिपब्लिकन पार्टी को प्राप्त हुआ। किन्तु, १९३२ से, डैमोक्रेटिक पार्टी का रूप रूजवेल्ट और ट्रूमैन के नेतृत्व में परिवर्तित हुआ। डैमोक्रेटिक पार्टी देश के समस्त प्रगतिशील तत्त्वों के मत प्राप्त करने में समर्थ हुई। आइजनहॉवर के नेतृत्व मे रिपब्लिकन पार्टी अपनी शक्ति पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुई।

राष्ट्रीय विषयों के सम्बन्ध मे पार्टियाँ दो भागो मे विभाजित है। ग्रिफिथ (Griffith) के अनुसार, "अनेक वर्षों तक सरक्षण तट-कर (Protective Tariff) पर दोनों दलों में मतभेद रहा ; किन्तु अब डैमोक्रेटो मे सरक्षण तत्त्व को बढावा देने वाले प्रबल समर्थक उत्पन्न हो गये है और रिपब्लिकनो का पूर्वी तट के राज्यों मे बड़ा जोर हो गया है जिनकी खुशहाली विदेशी व्यापार के विस्तृत होने पर निर्भर है। कृषि, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, एकाधिकार के विरोध, सगठित श्रम, सार्वजनिक सैनिक शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सरकारी गृह-निर्माण मे कोई दलीय राजनीति नही है। इस पर विवाद अवश्य होता रहता है और बहुधा दोनो पार्टियो के बहुमत परस्पर विपरीत होते हैं—प्रत्येक दल मे एक प्रभावी विरोधी अल्पमत होता है, जो दूसरी पार्टी का उतना विरोध नही किया करता जितना किसी विशेष विषय पर स्वयं अपने नेताओं का करता है।"

सिडनी हाईमैन के अनुसार, डैमोक्रेटो तथा रिपब्लिकनो मे उन कार्यों पर मतभेद है जिनसे (१) अधिक आदमियो को काम पर रखा जा सके ; (२) ऐसा वातावरण पैदा कर सकें जो प्राइवेट मालिको (private employers) को अधिक उत्पादन के लिए बढावा दे सके ; (३) जो उत्पत्ति मे से सबको उचित हिस्सा दे सके जब कि प्रणाली (system) वैसा करने मे सफल रही हो ; (४) जो उत्पादक उद्योग (productive plant) के उस भाग की रक्षा कर सकें जिसमें कि जनता, स्वामित्व अथवा प्रबन्ध के अधिकारों के अतिरिक्त, अपना हित रखती है ; (५) जो राष्ट्र के प्राकृतिक साधनों को भविष्य के लिए सुरक्षित रख सकें और वर्तमान औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें, (६) कुछ ऐसे राष्ट्रीय प्रयत्न जैसे प्रतिरक्षा

कार्यक्रम, जो अमीर और गरीब की समान रूप मे सेवा करते हैं, भौतिक एवं मानवीय स्रोतों को उचित रूप से वितरित कर सकें।

"वैदेशिक विषयों मे, दोनों दलों के बीच जो सामान्य मतभेद है, वह अधिक तट-कर तथा कम तट-कर, अन्तर्राष्ट्रीयवाद के विरुद्ध पृथक्वादिता (isolationism against internationalism), एक भावुक शान्तिवादिता तथा सैनिकवादिता के रूप में है तथा इस बात में है कि एशिया की समस्याओं में भी उलझा जाए या केवल यूरोप की समस्याओं मे, परन्तु किसी भी पार्टी के लिए इनमें से किसी भी विषय पर एक सुनिश्चित आदर्शवादी स्थिति को स्थिर करना बड़ा ही कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए दल का तटकर के प्रति रवैया, हमारी आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य विचारों का एक हिस्सा है। विवाद इस प्रश्न पर नही होता कि तटकर ऊँचा हो या नीचा ; वह तो तटकर अनुसूची की किसी एकाध चीज पर होता है।

अमेरिका मे दोनो दलों में आन्तरिक प्रतिस्पर्धाएँ उग्र रूप में रहती हैं। प्रत्येक में कुछ ऐसे लोग है जो प्राचीन काल को लाना चाहते हैं। प्रत्येक मे कुछ ऐसे लोग हैं जो यह धारणा रखते हैं कि पूर्व काल मे बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ी थीं और तभी वर्तमान काल की समृद्धि प्राप्त हुई। परन्तु इन्हें भय है कि कोई आगामी सामाजिक परिवर्तन उसको भी आपत्ति में डाल देगा जो कुछ अपने हाथ में है। अतः ये हर एक को दलों के प्रचलित सन्तुलन का समर्थन करने के लिए बाध्य करेंगे। फिर प्रत्येक दल मे कुछ ऐसे लोग हैं जो आशावादी हैं। ये भूतकाल को त्याग और संयम के समय के रूप में स्मरण करते हैं, परन्तु इनकी अधिकतम माँगें वर्तमान में पूरी नही हुई हैं। ये चाहते है कि सारा सिलसिला नये ढग से चलाया जाए जिससे जो कुछ ये चाहते है, वह प्राप्त हो सके।

१६४० में डैमोक्रेटिक पार्टी का मतविचार विदेश-नीति (foreign policy) के विषय मे निम्नलिखित प्रकार का था : "अमेरिका की जनता का यह दृढ निश्चय है कि यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका में फैला हुआ युद्ध अमेरिका में नहीं आयेगा। हम विदेशी युद्धों में भाग नही लेंगे और न अमेरिका से बाहर, हम पर हुए आक्रमण के अतिरिक्त और किसी अवस्था मे, सेना, नौ-सेना तथा वायुसेना को युद्ध करने के लिए भेजेंगे। हमको इतना शक्तिशाली होना चाहिए कि हमारे ऊपर शक्तियों का कोई भी गुट आक्रमण करने का साहस न कर सके। अमेरिका के राष्ट्रीय हितों एवं सागर-तटों की पर्याप्त रक्षा के लिए हम एक अजेय वायुशक्ति तथा शक्तिशाली नौसेना और आवश्यक औद्योगिक उत्पादन के साथ आधुनिक हथियारों से लैस सेना खड़ी करें। हमने बाहर से उकसाए गए आन्तरिक झगड़ो मे राष्ट्रों को गिरते देखा है। हम अप्रजातान्त्रिक (anti-democratic) तथा अमेरिका के विरुद्ध गुप्त एजेंसियों की राजद्रोह सम्बन्धी कार्यवाहियों को अपनी पूरी शक्ति से नष्ट करने के लिए सब कुछ करेंगे। आत्म-रक्षा तथा शुद्ध अन्त:करण की दृष्टि से, ससार का सबसे बड़ा प्रजातन्त्र शान्तिप्रिय तथा स्वातन्त्र्य-प्रिय राष्ट्रों पर कुछ आक्रांताओं के हमले होने पर चुपचाप [illegible] नहीं रह सकता और न आक्रांताओं को खुश करने की बात सोच सकता है। इन राष्ट्रों को अपनी शक्ति के अनुसार वह समस्त भौतिक सहायता (material

aid) देने की प्रतिज्ञा करते हैं, जो कानून के अनुसार होगी, और हमारी राष्ट्रीय आत्म-रक्षा के हितों के विरुद्ध न हो, इस सबका लक्ष्य यह होगा कि शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्-विश्वास विजयी हो ।" रिपब्लिकन कार्यक्रम भी डैमोक्रेटिक कार्यक्रम से अधिक भिन्न नहीं है। वे विदेशी युद्धों में अमेरिका के फँसने का विरोध करने में तथा कांग्रेस की स्वीकृति के बिना, ऐसी कार्यवाहियों को, जो युद्ध की ओर अग्रसर करें, बहिष्कृत करने में कुछ अधिक दृढ़ हैं। यह "स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले राष्ट्रों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुकूल सहायता देने के पक्ष में है।"

दोनों दल आन्तरिक नीति के विषयों में कुछ अधिक मत-भिन्नता रखते हैं, हालांकि अधिकतर विषयों पर वे सहमत हैं। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए डैमोक्रेट, अभी तक अरक्षित समूहों की रक्षा करने के लिए सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (Social Security Act) के क्रमिक विकास की प्रतिज्ञा करते हैं तथा समस्त श्रेणियों में बड़े तथा अधिकतर समान लाभों का तथा उन बेरोजगार व्यक्तियों के लिए निम्नतम पेन्शन का पक्ष लेते हैं, जो अवकाश प्राप्ति (retirement) की आयु तक पहुँच चुके हैं। रिपब्लिकन जहाँ व्यवहार्य हो वहाँ वृद्धावस्था की सुविधाओं तथा अभी तक अरक्षित ग्रुपों के लिए बेरोजगारी बीमे को चाहते हैं। डैमोक्रेट श्रमिकों के सामूहिक सौदा करने के अधिकार की रक्षा करते हैं। रिपब्लिकन दल ने भी सदा अमेरिका के मजदूरों की रक्षा की है और श्रमिकों के संगठित होने तथा सामूहिक सौदा करने का समर्थन किया है। डैमोक्रेट व्यापार में राज्य के अधिक हस्तक्षेप का तथा जरूरतमन्द बेरोजगारों को काम दिलाने में राज्य के अधिकतम उत्तरदायित्व का पक्ष लेते हैं। रिपब्लिकन व्यापार में अधिक स्वतन्त्रता का पक्ष लेते हैं; जब कि वे ट्रस्ट-विरोधी कानून (Anti-Trust law) को कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञा करते हैं। उनका विचार है कि स्वच्छन्द व्यापार (free enterprise) को बढ़ावा तथा व्यापार पर से प्रशासकीय निर्बन्धनों का हटाया जाना, स्वतः ही उन बेरोजगारों को व्यक्तिगत उद्योगों (private industry) के द्वारा काम दिलाने में सहायक होगा।

संयुक्त राष्ट्रों (United Nations) के द्वारा सामूहिक सुरक्षा की प्रणाली को शक्तिशाली बनाने पर, और यदि आवश्यकता पड़े तो स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्तियों को आर्थिक सहायता देने पर, जिससे कि वे कम्युनिस्टों के शान्ति-भंग करने को रोकने में समर्थ हो सकें, पश्चिमी गोलार्द्ध के देशों के साथ राजनैतिक तथा आर्थिक सहयोग आदि पर दोनों दल सहमत हो गए हैं। गृह-नीति में दोनों दल मूल्य के बढ़ते हुए स्तर को रोकने की आवश्यकता पर, राष्ट्रीय-स्वास्थ्य कार्यक्रम निर्धारण करने के लिए वृद्धावस्था तथा बेरोजगारी बीमे का समर्थन करने के लिए, सेवा करने तथा भूमि-सुधार एवं कृषकों को औचित्यपूर्ण सुरक्षा प्रदान करने के लिए और मनुष्यों के साथ स्त्रियों के लिए समान अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए सहमत हैं। एक बड़ी विभिन्नता यह है कि रिपब्लिकन दल करों की कमी पर जोर देता है और डैमोक्रेटिक दल निम्न आयों पर कमी का पक्ष लेता है। डैमोक्रेटिक दल ट्रस्ट-विरोधी कानून (Anti Trust Law) को शक्तिशाली बनाने पर तथा श्रमिकों के सामूहिक सौदे-बाजी (Collective bargaining) के अधिकार पर भी जोर देता है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में डैमोक्रेटिक पार्टी राष्ट्रीयवादी जल और थल सेना, अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप और युद्ध चाहने वाली पार्टी के अजीब से रूप में खड़ी है और रिपब्लिकनो को कम-से-कम इस समय के लिए, संयम, समझदारी और अलग रहने (isolation) का समर्थन करने पर बाध्य करती है।

भारत में धर्म को आधार मानने वाली पार्टियाँ हो सकती हैं। इंगलैंड में दलों में पारस्परिक मतभेद मनमौजी और राजनैतिक सिद्धान्त के आधार पर है। किन्तु अमेरिका की पार्टियों का आधार आर्थिक व्यवस्था है। बीअर्ड के अनुसार, "अमेरिका के दलों के संगठन का आधार राजनैतिक सिद्धान्त नहीं हैं बल्कि उनके आर्थिक हित और व्यक्ति विशेष हैं।" चार वर्गीय हित उत्पादक, वित्तीय वर्ग, श्रमिक तथा कृषक हैं।

यदि अमेरिका की पार्टियों की ओर ध्यान दिया जाए तो हमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्य मिलेगा और वह यह कि यहाँ की पार्टियाँ किसी सिद्धान्त विशेष में बँधने की आदी नहीं हैं। बीअर्ड के अनुसार, "अमेरिका की राजनीति का प्रधान भाग सिद्धान्त तथा सरकार के रूप की अपेक्षा व्यक्तियों तथा पार्टियों से मिलकर बनता है।" व्यक्ति किसी विशेष पार्टी को मत देते हैं क्योंकि वे ऐसा करने के अभ्यस्त हैं या यों कहें कि उनके पूर्वज वैसा करते थे अथवा वे किसी विशेष प्रदेश के निवासी हैं।

डा० फाईनर के अनुसार, अमेरिका की पार्टियाँ किसी आदर्श अथवा रीढ़ के बिना हैं। कोई भी पार्टी कुछ विशेष हितों के संगठन के समर्थन पर निर्भर नहीं करती। दोनों की भौगोलिक विविधता (geographic diversity), आर्थिक हितों तथा जातीय तथा सांस्कृतिक वर्गों के विशाल देश के समस्त वर्गों से अपील करती है। दोनों ही प्रत्येक स्थान पर (किसी विशेष स्थान पर नहीं) समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। अपवाद यह है कि डैमोक्रेटिक पार्टी का दक्षिण में एकाधिकार है और न्यू इंगलैंड में रिपब्लिकन पार्टी को पर्याप्त समर्थन प्राप्त है। पार्टी घोषणा-पत्र (declaration) प्रस्तुत करती है, किन्तु उस पर गम्भीरता से विचार नहीं किया जाता। कॉंग्रेस का बहुमत दल भी आवश्यक कानूनों को पारित करने का विश्वास नहीं कर सकता, सुप्रीम कोर्ट किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकता है और उससे पार्टी के प्राधिकार (authority) तथा उत्तरदायित्व की भावना को ठेस पहुँच सकती है। देश के विस्तृत फैलाव का परिणाम स्थानीयता (localism) है। दूरी, जनसंख्या के घनत्व (density of population) तथा विभिन्न प्रकार के नागरिक तथा ग्रामीण (urban and rural) भूमिखण्डों को वश में करने के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता है। जनता के हित, उनके दैनिक विचार तथा व्यवसाय अपने-अपने निवास-प्रदेश के जीवन पर निर्भर करते हैं। स्थानीयता (localism) को निर्वाचन, विधायी शक्ति (legislative authority) और स्थानीय पद तथा भ्रष्टाचार से और सहारा मिलता है। सांवैधानिक शक्ति-विभाजन और पद की विषम अवधियाँ संगठित उद्देश्य की कल्पना (vision) को विच्छिन्न कर देती हैं। किसी निर्वाचन में प्रयुक्त किया गया मत जनता के पूर्ण अधिदेश को प्रकट करने वाला मत नहीं होता।

एस० ए० में पार्टी उत्तेजना (party fever) कम है। इसकी जनता एक विशेष

ऊँचे प्रकार के भौतिक रूप (materially) को प्राप्त करने की लालसा वाली है। निर्वाचक मध्यम श्रेणी के पूंजीपति होते हैं। ये विचारधारा या दार्शनिक सिद्धान्त से प्रोत्साहित नहीं होते। वे मध्य श्रेणी के तथा सज्जन मनोवृत्ति वाले (good tempered) हैं। वे किसी का पक्ष नहीं लेते और यदि निर्वाचक किसी का पक्ष न लें तो पक्षपात हो ही नहीं सकते।

राजनैतिक दलों का इतिहास (History of Political Parties)—यह सत्य है कि अमेरिका के संविधान के निर्माताओं ने राजनैतिक दलों को अवांछनीय[1] समझा था, किन्तु अमेरिका की राजनीति में पार्टियाँ प्रारम्भ से ही प्रकट हुई। हैमिल्टन के नेतृत्व में फैडरलिस्टों (Federalists) ने दृढ़ केन्द्रीय सरकार का समर्थन किया। ये कुलीन वर्ग (Aristocratic Class) के थे। ये प्रबल हो गये क्योंकि उनका समर्थन राष्ट्रपति वाशिंगटन ने किया। दूसरी ओर डैमोक्रेटों का नेता जैफरसन था। उसका उद्देश्य राज्यों की प्रभुता (State-Sovereignty) तथा राज्य के अधिकारों को सुरक्षित करना था। उन्होंने समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व (fraternity) के सिद्धान्तों का प्रचार किया। रिपब्लिकन १८०० से १८२४ तक सत्ताधारी रहे। तब पार्टी राजनीति में उथल-पुथल हुई। डैमोक्रेट १८२८ से १८४० तक सत्ताधारी रहे। डैमोक्रेटिक पार्टी की सर्वोच्चता (supremacy) उस समय समाप्त हो गई जबकि दासता के प्रश्न पर सम्पूर्ण पार्टी-व्यवस्था ग्रस्त-व्यस्त हो गई। यदि दक्षिणी राज्यों ने मध्यमार्ग अप-

---

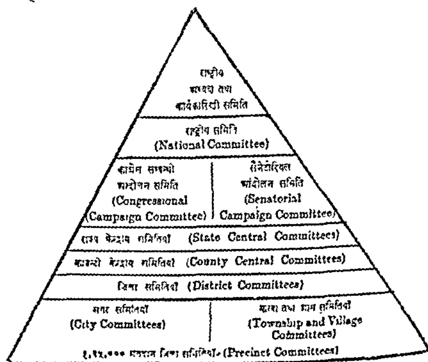
१. वाशिंगटन (George Washington) के अनुसार, "किन्तु कभी-कभी राजनैतिक पार्टियों की उपर्युक्त प्रकार की संस्थाएँ तथा संगठन सार्वजनिक उद्देश्यों को पूरा कर सकती हैं; समय तथा परिस्थितियों के मध्य उनके शक्तिशाली प्रेरक (engine) बन जाने की सम्भावना है जिसके द्वारा कपटी, महत्त्वाकांक्षी तथा सिद्धान्तहीन व्यक्ति जनता की शक्ति को नष्ट करने तथा शासन को अधिकृत करने में सफल होंगे।" पुनः "मैंने राज्य में दलों के भयसूचक संकेतों के सम्बन्ध में उनकी भौगोलिक विभिन्नताओं के आधार-विषयक निर्देशनों को पहले ही व्यक्त कर दिया है। अब मैं आपको अधिक व्यापक विचारों के साथ गम्भीर रूप से साधारण दलीय भावना के घातक प्रभावों के विरुद्ध चेतावनी देता हूँ। यह सदा सार्वजनिक परिषदों (Public Councils) को व्यग्र करती है तथा सार्वजनिक प्रशासन को दुर्बल बनाती है। यह जन-समुदाय को दूषित ईर्ष्याओं तथा झूठी चेतावनियों से भड़काती है। एक की शत्रुता को दूसरे के विरुद्ध प्रज्वलित तथा आकस्मिक उपद्रवों तथा राजविद्रोहों को उत्तेजित करती है। कहा जाता है कि स्वतन्त्र देशों में पार्टियाँ सरकार के कार्य पर स्वस्थ अवरोधक हैं और स्वतन्त्रता की भावना को जीवित रखने में सहायक होती हैं। सम्भवतः यह किसी सीमा तक सत्य है और राजतन्त्रात्मक सरकारों में देश भक्ति की भावना को यदि सहानुभूति से नहीं तो अनुग्रह से देख सकती हैं। परन्तु प्रजातन्त्रीय अर्थात् पूर्णतः निर्वाचित सरकारों में यह ऐसी भावना है जिसे न तो उत्साहित करना है और न जिसकी आग को बुझाना है। इसकी लपटों को प्रज्वलित होने से रोकने के लिए निरन्तर सावधानी की आवश्यकता है अन्यथा इससे लाभ के स्थान पर हानि हो जाएगी।" मैडिसन ने पार्टियों की प्रतिहिंसा की भावना को इन शब्दों में व्यक्त किया है: "सुनिर्मित यूनियन के द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं के अनेकानेक लाभों में कोई भी इसकी प्रवृत्ति को नष्ट करने तथा प्रतिहिंसा को नियन्त्रित करने की अपेक्षा अधिक क्लान्तिपूर्ण तथा विनाशोन्मुखी नहीं है। मैं समझता हूँ कि दल बहुमत अथवा अल्पमत नागरिकों का एक समूह है जो दूसरे नागरिकों के हितों के विपरीत प्रवृत्त तथा संगठित हुआ है अथवा जनसमूह के पूर्ण स्थायी हितों का विरोध करता है।"

नाया होता तो डैमोक्रेट सत्ताधारी बने रहते, किन्तु लिंकन के नेतृत्व में रिपब्लिकनों ने दासता के प्रश्न का लाभ उठाया।

लिंकन राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ और दास प्रथा के उन्मूलन से रिपब्लिकन पार्टी को बड़ा यश प्राप्त हुआ। एक बार सत्ताधारी बनते ही पूर्वी राज्यों के बड़े उद्योगपतियों और पश्चिम के कृषकों को बिना कर के भूमि (free grants of land) देकर अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए पूर्व तथा पश्चिम को ठोस प्रकार से संयुक्त किया। रिपब्लिकनों ने संघीय समर्थन तथा सड़क और रेल निर्माण के ठेकों के द्वारा अपनी स्थिति दृढ़ की। जिस काल मे रिपब्लिकन सत्ताधारी रहे उसमे डैमोक्रेटिक पार्टी बहुत दुर्बल हो गई।

१८८५ से १८८९, १८९३ से १८९९, १९१३ से १९२१ और १९३३ से १९५२ तक डैमोक्रेटो का शासन रहा। १९५२ में, आइजनहॉवर के नेतृत्व मे रिपब्लिकनों ने शक्ति प्राप्त की।

स्थायी पार्टी संगठन (Permanent Party Organisation)—दोनों प्रमुख पार्टियो का स्थायी संगठन प्राय: समान है और उसे निम्न चित्र द्वारा प्रकट किया जा सकता है—



किन्तु, पार्टी की प्राथमिक समितियाँ (Primaries) और सभाएँ (Conventions), सामयिक संगठन (periodic organization) है जिनकी बैठक प्रति वर्ष अथवा कभी-कभी होती है।

यू० एस० ए० में स्थायी पार्टी संगठन की इकाई (unit) मतदान क्षेत्र (Precinct) है और उसका आकार जनसंख्या के घनत्व और मतदाताओं की संख्या

पर निर्भर करता है ताकि निर्वाचन अधिकारी सुविधापूर्वक उनका प्रबन्ध कर सकें। औसत संख्या १०० और ५०० के मध्य में होती है। यू० एस० ए० मे लगभग १२५,००० मतदान जिला समितियाँ और इकाइयाँ है। पार्टी के मतदान के लिए जिला समिति के अध्यक्ष का कर्त्तव्य क्षेत्र के मतदाताओं से सम्बन्ध स्थापित कर उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए समस्त सम्भव प्रयत्न करना है।

नगरों में मतदान-जिला समितियो के ऊपर वार्ड समिति होती है। वार्ड मे से नगर प्रतिनिधि (City Councillors) निर्वाचित होते है। वे प्रमुख रूप से नगर-पालिकाओं के कार्यों से सम्बद्ध होते है। स्थानीय समस्याओ को देख-भाल करने के लिए ग्राम समितियाँ अथवा कस्बा समितियाँ स्थापित की गई है।

काउन्टी केन्द्रीय समिति समस्त छोटी समितियो के कार्यों को समन्वित करती है। उनका सम्बन्ध काउन्टी सरकारो तथा राज्य केन्द्रीय समितियो से सम्बन्धित समस्त विषयो से होता है। जिला समितियाँ भी होती है। विभिन्न राज्यों तथा नगर और ग्राम क्षेत्रों में जिला समितियो की स्थिति में भिन्नता है।

राज्य-केन्द्रीय-समिति राज्य में पार्टी मशीन के कार्य का निरीक्षण करती है। वह राज्य पदो (State Offices) और कांग्रेस के सैनेटरो के लिए पार्टी आन्दोलन सगठित करती है और राष्ट्रीय पार्टी टिकटों (National Party Tickets) के लिए राज्य के प्रयत्नों को सगठित करती है। राज्य केन्द्रीय समिति के सदस्यों का निर्वाचन विभिन्न प्रकार से होता है। उनमें से कुछ निर्वाचित होते हैं और कुछ मनोनीत। उनकी संख्या भी निश्चित नही होती। कभी राज्य केन्द्रीय समिति का अध्यक्ष कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है लेकिन साधारणतः वह अपना समर्थन करने वाले व्यक्ति अथवा ग्रुप के हाथ का खिलौना होता है।

देश मे स्थायी पार्टी संगठन के ऊपर राष्ट्रीय समिति होती है। प्रत्येक राज्य राष्ट्रीय समिति मे एक महिला तथा एक पुरुष को भेजता है। राष्ट्रीय पार्टी सम्मेलन (National Party Convention) के राज्य प्रतिनिधि उनका निर्वाचन करते हैं। कुछ स्थानों में प्रतिनिधियो का निर्वाचन राज्य सम्मेलन (State Convention) अथवा राज्य केन्द्रीय समितियाँ करती हैं। केवल थोड़े से स्थानो मे वे प्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक समितियों द्वारा निर्वाचित होते हैं। सामान्यतः राष्ट्रीय समिति की शक्ति बहुत अधिक होती है किन्तु उसने अपना कार्य केवल राष्ट्रपति-प्रत्याशी द्वारा मनोनीत राष्ट्रीय अध्यक्ष (National Chairman) की पुष्टि करना, अन्य अधिकारियों का निर्वाचन करना तथा राष्ट्रीय सम्मेलन (Convention) का आयोजन करना रखा है।

सामान्य विधि यह है कि राष्ट्रपति-प्रत्याशी राष्ट्रपति समिति के अध्यक्ष को चुनता है और समिति उसको औपचारिक रूप से निर्वाचित करती है। वह आन्दोलन (campaign) में अपनी पार्टी को विजेता बनाने की व्यवस्था करता है। उसके कर्त्तव्य ऐसे हैं जिनको केवल ऊँची स्थिति का राजनीतिज्ञ ही पूरा कर सकता है। उसमे उत्साह, चातुर्य तथा असीमित शक्ति (tact and boundless energy) होनी चाहिए। रे के अनुसार, "वह बारीकियो को समझने वाला हो, सामान्य स्थिति का ठीक अनुमान लगा सके और कठोर कार्य करने के लिए अपरिमित सामर्थ्य रखता हो।

दल के नेता उस पर विश्वास करें और जनता की भावना को समझने का उसे अन्तर्ज्ञान (intuitive grasp) हो। वह संगठन के प्रत्येक भाग से सम्बन्ध रखता हो तथा समय-समय पर सबसे प्रमुख तथा संदिग्ध राज्यों के राज्य-अध्यक्षों से मिलता रहे। उसे नाराज न करने वाला, रहस्य रखने वाला (secretive) होने के साथ ही उपगम्य (approachable), सहायकों के चुनने में चतुर, पार्टी के सर्वाधिक प्रभावशाली कार्यकर्त्ताओं पर पूरा अधिकार रखने वाला होना चाहिए। इसके अलावा उसमें एकता से कार्य कराने की क्षमता होनी चाहिए।" अध्यक्ष को विरोधी दल की दुर्बलताओं को जानना चाहिए और अपने दुर्ग की कमियों की मरम्मत करानी चाहिए। वही यह निश्चित करता है कि पार्टी का धन निर्वाचनों में किस प्रकार से व्यय किया जाये। पार्टी की विजय होने पर साधारणतः नियुक्तियाँ करने में अध्यक्ष का पर्याप्त भाग रहता है। उसे देखना चाहिए कि उनको पुरस्कार मिले जिन्होंने पार्टी की सहायता की थी। राष्ट्रीय पार्टी के मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष को भी महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। उनका कर्तव्य लिखा-पढ़ी (correspondence) की ओर ध्यान देना, तथा समस्त प्रचार-तन्त्र का संगठन करना है। प्रत्येक राष्ट्रीय समिति में कार्यकारिणी, अर्थ, प्रचार आदि अनेक उप-समितियाँ या सहायक समितियाँ हैं।

राष्ट्रीय समिति का कार्य राष्ट्रपति के निर्वाचन तक ही सीमित है। कांग्रेस सम्बन्धी आन्दोलन समिति अमेरिका की प्रतिनिधि सभा के प्रत्याशियों की सहायता के लिए होती है। आन्दोलन समिति (campaign committee) का विचार रिपब्लिकनों में १८६६ में पैदा हुआ। आन्दोलन समितियाँ केवल निर्वाचकों में कार्य करती हैं। पार्टी प्रत्याशियों को निर्वाचित कराने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय का प्रयोग किया जाता है।

पार्टी कोष (Party Finances)—जहाँ तक पार्टियों के आर्थिक जीवन का प्रश्न है निर्वाचनों के दिनों में प्रत्येक दल लाखों डालर व्यय करता है। रेडियो, समाचार-पत्रों तथा साहित्य के द्वारा प्रचार करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। १९३६ में डैमोक्रेटों ने ५० लाख डालर तथा रिपब्लिकनों ने ९० लाख डालर व्यय किए। १९३९ का हैच एक्ट (Hatch Act of 1939) जैसा कि १९४० में संशोधित हुआ, किसी एक आन्दोलन में तीस लाख डालर से अधिक व्यय करने पर प्रतिबन्ध लगाता है। किन्तु, व्यय को राज्य-पार्टी संगठन अथवा अन्य सहायक पार्टी के खाते में दिखाकर उक्त अधिनियम को महत्त्वहीन कर दिया गया है। अनुमान है कि १९४० में रिपब्लिकनों ने १५० लाख और डैमोक्रेटों ने ६० लाख डालर व्यय किए। १९४४ में रिपब्लिकनों ने १३० लाख और डैमोक्रेटों ने ७५ लाख डालर व्यय किए।

समस्त धन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होता है। कुछ रुपया वे व्यक्ति देते हैं जो पार्टी के कार्यक्रम से प्रभावित हैं अथवा उसमें विशेष रूप से उनके स्वार्थ निहित होते हैं। कुछ दान वे व्यक्ति देते हैं जो कुछ प्राप्ति की आशा करते हैं। कभी-कभी धन ऊँचे मूल्य के भोजों (high priced dinners), पुस्तकों के विक्रय और दृढ़ धनिकों के चन्दे से प्राप्त होता है। लोक-उपयोगिता कम्पनी निर्माण अधिनियम, १९३५ (Public Utility Holding Company Act of 1935) के कारण निगम

षड्यन्त्रों का बोलबाला था। उस प्रथा को छोड़कर सम्मेलन प्रणाली को अपनाया गया। पार्टी के प्रतिनिधियों (delegates) की बैठक को सम्मेलन या कन्वेंशन (Convention) कहते हैं। पार्टी के सदस्य सम्मेलन द्वारा चुने गए व्यक्तियों को मान्य ठहराने के लिए बाध्य है। इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी आशाएँ की गयी थीं लेकिन बुराइयों का परित्याग न किया जा सका; क्योंकि गुट-नेता (Bosses) सम्मेलनों पर भी छाए रहते थे। यह अनुभव किया गया कि निष्कपट नागरिकों के लिए निर्वाचन में मनोनीत होने का कोई अवसर नहीं। परिणाम यह हुआ कि सम्मेलन-व्यवस्था समाप्त कर दी गई और अधिकांश राज्यों में उसका स्थान प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान (Direct Primaries) की व्यवस्था ने ले लिया।

प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान की व्यवस्था के अन्तर्गत, विभिन्न निर्वाचित पदों के लिए प्रत्याशियों का मनोनयन प्रत्यक्ष मतदाताओं के द्वारा होता है। प्राथमिक मतदान तीन प्रकार का है—सार्वजनिक (Open), गुप्त (Closed) और निष्पक्ष (Non-partisan)। सार्वजनिक प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान (Open Direct Primaries) के अन्तर्गत प्रत्येक मताधिकारी को सब दलों के मत पत्र (Ballots) दिये जाते हैं और वह अपनी इच्छानुसार मत दे सकता है। गुप्त प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान (Closed Direct Primary) केवल पार्टी के सदस्यों के लिए खुला रहता है। गुप्त प्रत्यक्ष प्राथमिक प्रणाली के अन्तर्गत मताधिकारी को दिए गए मत-पत्र में विभिन्न प्रत्याशियों की पार्टियों का उल्लेख नहीं होता।

प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान प्रणाली के प्रयोग से पता चलता है कि इस प्रणाली ने भी सन्तोषजनक समाधान प्रस्तुत नहीं किया है। प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान भी नेताओं के नियन्त्रण में रहता है, जो कि अपने आपको और अपने मित्रों को मनोनीत करा लेते हैं। अपनी इच्छा के अनुसार कराने के लिए नेता और उनके सेवक अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए जालसाजी और शक्ति का प्रयोग करते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि अच्छे नागरिक प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान से दूर रहते हैं।

राजनीतिज्ञ साधारणतया प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान (Primary) नहीं चाहते। यह विवाद का विषय है कि प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान ने दल की निष्ठा को बहुत अधिक हानि पहुँचाई है और दल की एकता तथा संगठन को नष्ट किया है। पार्टी के किसी अन्य सदस्य के अनुरूप हुए बगैर भी; कोई मनुष्य अपनी याचिका (petition) घुमा सकता है, मत-पत्र (Ballot) पर अपना नाम रखवा सकता है और यह नामजद भी हो सकता है। सम्भवतः यह कॉकस अथवा सम्मेलन प्रणाली के अन्तर्गत घटित नहीं हो सकेगा। प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान व्ययसाध्य है और यह व्यय सम्बन्धित दलों के द्वारा वहन न किया जाकर जन-कोष (public treasury) के द्वारा वहन किया जाता है। मतदाता स्वतः ही निर्वाचनों से ऊबे होते हैं और प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान की स्वतन्त्रता सदस्यों के लिए नियमित चुनाव आन्दोलन के साथ दूसरा एक और चुनाव आन्दोलन चालू करने को आवश्यक बना देती है। यह प्रणाली नागरिक क्षेत्रों को सुविधाजनक है, जहाँ कि निर्वाचन-स्थलों (polls) की दूरी कम होती है मतदान अपेक्षाकृत आसान है। ग्रामीण क्षेत्रों के विषयों में अधिक दूरी के कारण

और निर्वाचन स्थलों तक जाने के लिए समय की आवश्यकता के कारण मतदान असुविधाजनक है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रचलित प्रणाली में कुछ विशेष दुर्गुण हैं, परन्तु यह माना जाता है कि नामजद करने की प्रक्रिया (nominating procedure) पर जनता को प्रत्यक्ष नियन्त्रण देना कुल मिलाकर लाभदायक है। जब तक इससे अधिक अच्छी प्रणाली नहीं खोजी जाती, तब तक प्रत्यक्ष प्राथमिक मतदान प्रणाली सर्वोत्तम प्रणाली है।

विभिन्न पार्टियाँ (Various Parties)—रिपब्लिकन तथा डैमोक्रेट पार्टियों के अतिरिक्त यू० एस० ए० में कुछ अन्य छोटी पार्टियाँ हैं। १८७२ में प्रोहिबिशन पार्टी ने अपना सम्मेलन किया था। वह मादक द्रव्यों के निर्माण, आयात तथा विक्रय के विरुद्ध है। १९२० तक उसका उद्देश्य नशाबन्दी के लिए आन्दोलन करना था और जब नशाबन्दी हो गई तब उसका काम यह देखना हो गया कि उस कानून का पालन किया जाए। किन्तु, जब १९३३ में नशाबन्दी समाप्त कर दी गई तब यह पार्टी बिछड़ गई किन्तु वह अपने उद्देश्य के वास्ते समर्थन प्राप्त करने के लिए पुन प्रयत्नशील है।

आरम्भ में, समाजवादी श्रमिक पार्टी (Socialist Labour Party) और समाजवादी जनतन्त्रीय पार्टी (Socialist Democratic Party) थी। किन्तु बाद में वे दोनों यू० एस० ए० की समाजवादी पार्टी में संयुक्त हो गईं। उसका कार्यक्रम रेल, सड़क, तार, टेलीफोन पर जनता का स्वामित्व, खानों, वनों तथा अन्य प्राकृतिक साधनों पर राज्य का स्वामित्व (ownership), उद्योग का समाजीकरण, बेकारों के लिए काम, सामाजिक सुरक्षा हितों का प्रसार, समस्त देश में आरम्भण (Initiative) तथा जन-निर्देश (Referendum) को अपनाना, अमेरिका की सैनेट के उन्मूलन आदि है।

अमेरिका में साम्यवादी (Communist) पार्टी भी है। वह सुसंगठित पार्टी है और विभिन्न पदों के लिए अपने प्रत्याशी खड़े करती है। यह निर्देश किया जाता है कि उसकी शक्ति अनुमान से अधिक है। अमेरिका में साम्यवाद के विरुद्ध प्रबल भावना है और इसलिए साम्यवादी पार्टी की सफलता के अवसर अति न्यून हैं।

अमेरिका में विभिन्न श्रम वर्गों का निर्देश भी किया जा सकता है। वे अमेरिका का श्रमिक संघ (American Federation of Labour), औद्योगिक संगठनों की कांग्रेस और रेल-सड़क भाईचारा (Rail Road Brotherhoods) हैं। इन गुटों के बहुत सदस्य हैं और उनके नेताओं का पर्याप्त प्रभाव है।

यू० एस० ए० में द्वि-पार्टी व्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य करती है अतः अन्य पार्टियों के लिए अधिक अवसर नहीं है। प्रो० मनरो के अनुसार, "जब कि द्वि-पार्टी व्यवस्था ठीक प्रकार से कार्य कर रही है, तब तीसरी अथवा चौथी पार्टी के लिए कोई स्थान नहीं। साधारणतः अनेक पार्टियों के प्रगट होने का कारण धार्मिक, सामाजिक अथवा वर्गीय भावनात्मक विषयों को राजनीति से सम्बद्ध करना है। नियमानुसार उनका जीवन अल्पकालीन होता है और वे एक विषय पर आधारित संगठन होते हैं। वे किसी वर्ग के लिए कुछ वस्तु चाहते हैं, जो कि अपने आपको बहुमत दल द्वारा अपकारित तथा उपेक्षित समझता है। एक सुव्यवस्थित संगठित पार्टी व्यवस्था

के अन्तर्गत वे विषय जिनको वास्तव में वोटरों की बड़ी संख्या चाहती है एक या दो नियमित संगठनों के द्वारा अपना लिये जाते हैं और उनको उस समय से पूर्व अपने कार्यक्रम का अंग बना लेते हैं जब कि नई पार्टी उन पर संगठित हो सके। और यद्यपि एक तीसरी पार्टी किसी विषय पर अधिकार कर सकती है तथापि उसे राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति प्राप्त करने के लिए नेता, मशीनरी और कोष चाहिए। तीसरी पार्टियाँ समय-समय पर राजनैतिक आकाश में नक्षत्र की तरह प्रकट होती हैं और कुछ समय के लिए प्रचण्डता से चमकती है, किन्तु उनका जीवन-काल छोटा होता है।"

Suggested Readings

Beard, C A. . American Government and Politics, 1947.
Bone, H H : American Politics and Party System, 1949.
Brogan, D. W. : The American Political System, 1948.
Holcombe : The New Party Politics.
Tourtellot, A. B. : The Anatomy of American Politics, 1950
Zink, H. : A Survey of American Government, 1950.

अध्याय १५

राज्य सरकार तथा प्रशासन

(State Government and Administration)

अमेरिका की राज्य शासन विधि (Polity) में राज्यों के महत्व पर जितना बल दिया जाए उतना ही थोड़ा है। प्रो० मनरो के अनुसार, 'राज्य अब भी वह धुरी है जिसके चारों ओर अमेरिका की समस्त राजनैतिक व्यवस्था चक्कर काटती है। यदि राज्य न हों तो राष्ट्रीय सरकार कार्य नहीं कर सकती, राष्ट्रपति निर्वाचित नहीं हो सकता, न कांग्रेस के सदस्य निर्वाचित हो सकते हैं; क्योंकि कांग्रेस सम्बन्धी जिलों को बनाने, मतदाता सूची तैयार करने और निर्वाचनों की मशीनरी को नियुक्त करने का कार्य राज्य करते हैं। राष्ट्र की संगठित पार्टी चेतना भी उनमें पाई जाती है जो निर्वाचित संस्थाओं के वास्तविक संचालन में महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय पार्टियाँ पृथक्-पृथक् राज्यों की अपनी-अपनी पार्टियों के कार्य को समस्त राष्ट्र के चुनाव आन्दोलन में समन्वित (co-ordinate) करती हैं। फिर, राज्य विधानमण्डल की कार्यवाही के बिना संघीय संविधान में कोई औपचारिक संशोधन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार यदि राज्य का अस्तित्व न रहा तो राष्ट्रीय नगरों तथा कस्बों की सरकारें नहीं हो सकतीं; क्योंकि इन सबकी शक्ति तथा उनका वैधिक (legal) अस्तित्व भी राज्य संविधान और राज्य के कानून के कारण ही है।"

जब १७८९ में अमेरिका का संविधान लागू हुआ, तब यू० एस० ए० में राज्यों की संख्या १३ थी, किन्तु अब उनकी संख्या ४९ है। संयुक्त राज्य अमेरिका के राज्य जनसंख्या, क्षेत्रफल तथा भौगोलिक और आर्थिक परिस्थितियों में एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्न हैं। समस्त राज्यों का अपना-अपना संविधान है और वे संविधान उस अमेरिकी संविधान के अंग नहीं है, जिसे १७८९ में लागू किया गया था। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "अमेरिका के राजनैतिक इतिहास में राज्यों के संविधान सबसे प्राचीन हैं क्योंकि वे राजकीय औपनिवेशिक अधिकार-पत्रों (Royal Colonial Charters) के पूर्व रूप तथा प्रतिनिधि (Representatives) हैं जिनके द्वारा अमेरिका में आरम्भ में अंग्रेजी उपनिवेश बनाए गए थे और जिनके द्वारा अनेक स्थानीय सरकारें स्थापित की गई थीं जो कि अंग्रेजी क्राउन और अन्तिम रूप से ब्रिटिश संसद् के अधीन थीं। अधिकांश संविधानों के सिद्धान्त प्रायः समान हैं। पुनः, ब्राइस के शब्दों में, "उनमें हम इंगलैंड की प्राचीन संस्थाओं तथा अधिकार-पत्रों द्वारा प्रदान की हुई निगमों (Corporations) की नकल पाते हैं और इंगलैंड की संसद् तथा अंग्रेज जाति की शासन बुद्धि ने उन पर इतना प्रभाव डाला कि ऐसा प्रतीत होता है कि वे १८वीं शताब्दी के इंगलैंड की शासन-व्यवस्था से पर्याप्त समानता रखते हैं।" प्रायः समस्त राज्य संविधानों में शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त (Principle of Separation Powers) पाया जाता है। प्रत्येक संविधान की शक्ति का स्रोत जनता है। राज्य-

न्यायाधीशों तथा विधानमण्डल के सदस्यों के निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। जननिर्देश (referendum), आरम्भण (initiative) तथा प्रत्याहरण (recall) के लिए भी व्यवस्था है। काउण्टी, नगर, टाउनशिप, ग्राम आदि की स्वायत्त संस्थाओं की भी व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय सरकार ने समस्त राज्यों को कुछ गारण्टियाँ दी हैं। संविधान व्यवस्था करता है कि 'राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक राज्य में गणतन्त्रीय शासन-व्यवस्था की गारंटी करेगी।" प्रत्येक राज्य की विदेशी आक्रमण से रक्षा की जाएगी। यदि किसी राज्य में हिंसा हो तो सम्बन्धित राज्य के विधानमण्डल अथवा कार्यपालिका की प्रार्थना पर संघ सरकार सहायता करेगी।

शक्ति-विभाजन (Division of Powers)—जहाँ तक संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच में शक्तियों के विभाजन का प्रश्न है, दोनों को सीमित अधिकार प्राप्त हैं। संघीय सरकार की शक्तियों का उल्लेख संविधान में किया गया है। यह सत्य है कि राज्यों की शक्तियाँ मौलिक (original) तथा सहज (inherent) हैं, किन्तु उन पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हैं। उनको वे शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं जो कि संविधान के द्वारा संघ सरकार को सौंपी गई हैं। "कोई राज्य कोई ऐसा कानून न तो बनाएगा और न लागू करेगा जो कि संयुक्त राज्य के नागरिकों को प्राप्त विशेषाधिकारों (privileges) तथा उन्मुक्तियों (immunities) को इस प्रकार कम करे कि जिससे कानून की उचित प्रक्रिया के बिना किसी व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता अथवा सम्पत्ति को छीना जा सके और किसी व्यक्ति को अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कानून का समान संरक्षण (equal protection) देने से इन्कार किया जा सके।" राज्य सरकारें संधियाँ या युद्ध-घोषणा नहीं कर सकतीं तथा संविदा के दायित्वों (obligations) को कम नहीं कर सकतीं। यह देखना संघीय सरकार का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक राज्य में गणतन्त्रीय शासन-व्यवस्था हो, कोई राज्य संशोधन के द्वारा गणतन्त्रीय ढाँचे को नहीं बदल सकता। राज्य आयात तथा निर्यात ड्यूटियाँ नहीं लगा सकते। वे संघीय साधनों (Instrumentalities) पर कर नहीं लगा सकते। वे न टकसाल खोल सकते हैं न कागजी मुद्रा (Paper Currency) चला सकते हैं। वे नागरिक अधिकार छीनने वाले विधेयक (Bill of Attainder) तथा एक्स पोस्ट फैक्टो (*Ex Post Facto*) कानून[1] पास नहीं कर सकते। यद्यपि राज्य किसी व्यक्ति की सम्पत्ति हस्तगत नहीं कर सकते तथापि वे "आरक्षण शक्ति' व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पत्ति को विनियमित कर सकते हैं तथा उसमें हस्तक्षेप कर सकते हैं। राज्य की आरक्षण शक्ति की व्याख्या न्यायाधीशों ने अपने विचारों के अनुसार की है। मार्शल के समान न्यायाधीशों ने संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि करने का प्रयास किया और टैने के समान न्यायाधीश राज्यों के अधिकारों के पक्षपाती थे।

राज्यों को कुछ दायित्व सौंपे गए हैं। प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य के सरकारी

---

1 वे कानून हैं जो पास किए जाने से पूर्व किए गए अपराधों पर भी लागू हों।

अधिनियमों (Public Acts), रिकार्डों, न्यायिक कार्यवाहियों का पूर्ण विश्वास [illegible] सम्मान करेगा। यदि एक राज्य का कोई न्यायालय कोई निर्णय दे तो उसे दूसरे राज्य में कार्यान्वित किया जा सकता है और दूसरे राज्य का कर्त्तव्य है कि उसका पालन कराए। यह भी उपबन्ध किया गया है कि अन्य राज्यों से आने वाले नागरिकों के मुकाबले अपने राज्य के नागरिकों से पक्षपात नहीं किया जा सकता। प्रत्येक राज्य का यह भी कर्त्तव्य है कि न्याय से बचकर भागने वाले अपराधी को पकड़कर उस राज्य को सौंपे जिसमें उस पर अभियोग चलाया जा सके।

राज्य कार्यपालिका (State Executive)—राज्य कार्यपालिका में राज्यपाल, उप-राज्यपाल, राज्य-सचिव (Secretary of State), महान्यायवादी (Attorney General), लेखा-परीक्षक (Auditor), कोषाध्यक्ष तथा निरीक्षक आदि होते हैं। कुछ राज्यों में राज्यपाल दो वर्ष के लिए निर्वाचित होता है और अन्य राज्यों में चार वर्ष के लिए। १९४७ तक न्यू जर्सी (New Jersey) का राज्यपाल तीन वर्ष के लिए निर्वाचित होता था लेकिन १९८७ में उस अवधि को बढ़ाकर चार वर्ष कर दिया गया। राज्य की सैनेट में राज्य की प्रतिनिधि सभा राज्यपाल पर महाभियोग चला सकती है। सफल महाभियोग के लिए २/३ बहुमत की आवश्यकता होती है। कुछ राज्यों में राज्यपाल के प्रत्याहरण के लिए भी व्यवस्था की गई है। किन्तु केवल उत्तरी डकोटा के राज्यपाल एल० जे० फेजर का १९२१ में प्रत्याहरण किया गया था।

अधिकांश राज्यों में राज्यपाल के मरने, अपराधी सिद्ध होने अथवा किसी कारण से पद त्यागने पर उप-राज्यपाल उसका स्थान ग्रहण करता है। उप-राज्यपाल साधारणतः उसी प्रकार तथा उसी अवधि के लिए निर्वाचित होता है जैसे कि राज्यपाल। साधारण परिस्थितियों में उसका कर्त्तव्य सैनेट की बैठकों की अध्यक्षता करना होता है। यदि किसी राज्य में उप-राज्यपाल नहीं होता तो राज्य सचिव (Secretary of State) राज्यपाल का स्थान ग्रहण करता है। यदि राज्यपाल का 'प्रत्याहरण' किया जाता है तो जनता प्रत्याहरण के समय अथवा विशेष निर्वाचन में नये राज्यपाल का निर्वाचन करती है।

अमेरिका के राज्य का राज्यपाल वैधानिक अध्यक्ष ही नहीं होता, अपितु उसको अनेक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। उसके कार्यों में नियुक्तियाँ करना तथा [illegible] करना, शासन का निरीक्षण [illegible] राज्यों के शासन में [illegible] उसकी नियुक्त करने की शक्ति [illegible] है। [illegible] करते हैं कि राज्यपाल कुछ विशेष अधिकारियों [illegible] नियुक्त करता [illegible] राज्यपाल को [illegible] (C[illegible]), [illegible] (Z[illegible]) [illegible] पाल को प्राप्त है। [illegible]

अधिकार होता है, इसलिए वह सरलता से विधानमण्डलों का समर्थन प्राप्त कर लेता है।

राज्यपाल विधानमण्डल के सदस्यों के हठ के विरुद्ध जनता से अपील कर सकता है। वह अपने विषय को जनता के सम्मुख राज्य के किसी दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह रख सकता है।

राज्यपाल को विधानमण्डल द्वारा पारित किसी अधिनियम को निषेध (Veto) कर पुनर्विचार के लिए भेजने का अधिकार प्राप्त है। उसे विधान-मण्डल द्वारा पारित विधेयक के किसी अंश का निषेध करने की शक्ति प्राप्त है। यह निर्देश किया जाता है कि आंशिक निषेध की शक्ति बहुत लाभदायक है और राज्यपाल उन विषयों को काट सकता है जिनको वह नहीं चाहता। किन्तु, इसकी हानि यह है कि इसके द्वारा राज्यपाल विधानमण्डल के उन सदस्यों पर अनुचित दबाव डालने में समर्थ हो जाता है जिनका स्वार्थ बजट को पास करने में होता है। राज्यों में केन्द्र की अपेक्षा अधिक अवसरों पर निषेधाधिकार का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त, राज्यपाल उस समय अधिकतर अपने निषेधाधिकार का उपयोग करता है जबकि विधानमण्डल उसका विरोधी हो। कभी-कभी राज्य विधानमण्डल के सदस्य बजट में कुछ ऐसे विषयों को सम्मिलित कर देते है, जिनके विषय मे वे जानते है कि राज्यपाल उनका निषेध करेगा और इस प्रकार राज्यपाल को बदनाम करने का प्रयत्न करते है। एक राज्य सैनेटर के शब्दों में, "मैं कभी भी किसी कर के पक्ष मे अथवा विनियोग (appropriation) के विपक्ष मे मत नही देता। मैं राज्यपाल को बजट को सन्तुलित करने और बुराई लेने देता हूँ। उसे इसी कार्य के लिए वेतन मिलता है।"

राज्यपालों को राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित कानूनों की ब्यौरे की बातों की व्यवस्था करने के लिए अध्यादेश (ordinance) जारी करने की भी शक्ति प्राप्त है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य के राज्यपाल का पद ऐसा नहीं है जिसमें वेतन मिले परन्तु काम कुछ न करना पडे। "उसके लिए सुव्यवस्थित निर्णय (sound judgement), दृढ मस्तिष्क और अथक परिश्रम का होना आवश्यक है। इस पद पर आसीन व्यक्ति सब की निगाहों में रहता है और उसके राजनैतिक विरोधी उसकी सदैव आलोचना करते रहते है। राज्यपाल से केवल यही आशा नहीं की जाती कि वह तीन या चार व्यक्तियों का कार्य करे प्रत्युत् उससे दृढ़तापूर्वक परिणामों को प्राप्त करने की आशा की जाती है जो कि उसके और विधानमण्डल के बीच में शक्ति-विभाजन के कारण, सदैव उसकी पहुँच के अन्तर्गत नहीं होते।"

राज्य विधानमण्डल (State Legislature)—नेब्रास्का (Nebraska) राज्य के अतिरिक्त, जिसने १९३४ में एकसदनी unicameral) विधानमण्डल के पक्ष में निर्णय किया, यू० एस० ए० के अन्य समस्त राज्यों में द्विसदनी (bicameral) विधानमण्डल है। दोनों सदन सैनेट तथा प्रतिनिधि सभा (Senate an House of Representatives) कहलाते है। जनता दोनों सदनों का निर्वाचन है। दुहराव के दोष (Charge of duplication) से बचने के लिए दोनों के निर्वाचन-क्षेत्र भिन्न-भिन्न होते है। सैनेट के सदस्य काउन्टियों द्वारा

होते हैं और प्रत्येक काउण्टी को समान प्रतिनिधित्व मिलता है, चाहे उनकी जनसंख्या कितनी भी क्यों न हो। दूसरी ओर, प्रतिनिधि सभा के सदस्य जनसंख्या के आधार पर निर्वाचित होते हैं। प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की संख्या सैनेट से अधिक होती है। अमेरिका की सैनेट के समान ही राज्य की सैनेट की अवधि प्रतिनिधि सभा से अधिक है। किन्तु, सैनेट के सदस्यों का एक भाग एक निश्चित अवधि के पश्चात् रिटायर हो जाता है। सैनेट के सदस्यों की आयु प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की आयु से अधिक होती है। अधिकांश राज्यों में राज्य विधानमण्डल के वर्ष में दो सत्र (session) होते हैं किन्तु कुछ राज्यों में विधानमण्डल का वर्ष में एक सत्र होता है। विधान मण्डल के सदस्यों को सामान्य विशेषाधिकार (usual privileges) प्राप्त होते हैं। विधेयक (Bill) किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु धन विधेयक प्रतिनिधि सभा में ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं। किन्तु सैनेट धन-विधेयक में परिवर्तन कर सकती है। दोनों सदनों में विधेयक स्वीकृत होने के पश्चात् राज्यपाल के पास हस्ताक्षरों के लिए भेजा जाता है। यदि एक सदन किसी विधेयक को स्वीकृत करे और दूसरा सदन अस्वीकृत, तो विधेयक समाप्त हो जाता है। दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक को या तो राज्यपाल स्वीकृत करता है अन्यथा अपनी आपत्तियों के साथ वापस भेज सकता है। किन्तु यदि दोनों सदन उस विधेयक को निर्धारित मतों से पुनः पारित करें तो उस समय राज्यपाल के विरोध के होते हुए भी विधेयक स्वयं कानून बन जाता है। निर्धारित बहुमत भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग हैं।

राज्य विधानमण्डल की शक्तियाँ निर्दिष्ट नहीं हैं। जो शक्तियाँ संघीय सरकार को नहीं दी गई और जिनके लिए राज्य विधानमण्डल पर रोक नहीं लगाई गई, वे समस्त शक्तियाँ राज्य-विधानमण्डलों को प्राप्त हैं। यह स्पष्ट है कि राज्य विधानमण्डल अवशिष्ट शक्तियों (residuary powers) का प्रयोग करते हैं। एक समय था जबकि राज्य स्वायत्त-शासन (autonomy) के लिए आग्रह करते थे किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों के कारण आजकल संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि करने की प्रवृत्ति अधिक कार्य कर रही है। परिणाम यह है कि राज्य अधिकाधिक संघीय सरकार के अनुदानों पर निर्भर करते हैं और अपनी स्वतन्त्रता खो रहे हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि राज्य विधानमण्डल अपनी पुरानी कार्य शक्ति खो रहे हैं।

यह निर्देश किया जाता है कि राज्यों में कानून निर्माण का स्तर ऊँचा नहीं है। इसके अनेक कारण हैं। विधायकों (legislators) से उन कार्यों को पूरा करने की आशा की जाती है जोकि अन्य देशों में प्रशासकीय अधिकारी प्रशासन-नियमों (Administrative Regulations) अथवा सपरिषद् आदेशों (Orders-in-Council) के द्वारा करते हैं। यू० एस० ए० में प्रत्येक क्षेत्र में पुंज उत्पादन (mass production) की व्यवस्था है और कानून भी इसका अपवाद नहीं। प्रत्येक राज्य को प्रचुर संख्या में कानून पारित करने पड़ते हैं और कभी-कभी प्रति दिन का औसत चार-पाँच कानून होता है। कार्य के वेग तथा विचार के लिए समय की कमी होने के कारण कानूनों का स्तर निम्न श्रेणी का होना स्वाभाविक है। विधायी आयोजन (legislative planning) की भी कमी है। विधानमण्डल की बैठक के पूर्व बहुत

कम समय तैयारी पर लगाया जाता है। इस प्रकार विधेयकों का मसविदा शीघ्रता से बनाया जाता है और शीघ्रता से पारित कर दिया जाता है। समितियों का पूर्ण लाभ नहीं उठाया जाता। अवस्था को सुधारने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं।

राज्य संविधान में संशोधन (Amendment of State Constitution)—प्रत्येक राज्य का पृथक् संविधान है और प्रत्येक राज्य में संशोधन विधि भी पृथक् है। पहले राज्य विधानमण्डल संशोधन को स्वीकार करता है और उसके पश्चात् जनता से स्वीकृति के लिए अनुरोध किया जाता है। सांवैधानिक संशोधन को पारित करने के लिए विभिन्न राज्यों में निर्धारित बहुमत अलग-अलग है। सांवैधानिक संशोधनों के लिए जन-मत-संग्रह करना आवश्यक है। किसी भी राज्य के संविधान में इस प्रकार का संशोधन नहीं किया जा सकता जो संघीय संविधान के प्रतिकूल हो।

राज्य न्यायपालिका (State Judiciary)—मुकदमों को निपटाने के लिए प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी न्याय-व्यवस्था होती है। राज्य प्रशासन द्वारा स्थापित न्यायालयों और संघीय सरकार द्वारा स्थापित न्यायालयों में कोई शृंखला नहीं है। प्रत्येक राज्य में न्यायालयों की चढ़ती हुई सीढ़ियाँ हैं जिनकी शक्तियों तथा कार्यों में पर्याप्त भिन्नता है। प्रायः राज्यों में तीन प्रकार के न्यायालय होते हैं लेकिन कुछ राज्यों में तीन से अधिक प्रकार के भी हैं। निम्नतम न्यायालय जस्टिसेज ऑफ दी पीस (Justices of the Peace) हैं जो कि छोटे प्रकार के दीवानी तथा फौजदारी अभियोगों को सुनते हैं। इनके ऊपर काउन्टी अथवा नगर (municipal) न्यायालयों को आरम्भिक (original) तथा अपीलीय अधिकार होते हैं। ये जस्टिसेज ऑफ दी पीस के निर्णयों की अपीलें सुनते हैं तथा बड़े अभियोगों अथवा ऊँची राशि से सम्बन्धित अभियोगों की आरम्भिक सुनवाई करते हैं। उनके ऊपर उच्च न्यायालय (Superior Courts) होते हैं जो कि काउन्टी न्यायालयों के निर्णयों की अपीलें सुनते हैं। उनको कुछ अधिक बड़ी राशि से सम्बद्ध अभियोगों को सुनने के विषयों में आरम्भिक क्षेत्राधिकार (original jurisdiction) प्राप्त होते हैं। प्रत्येक राज्य में सब प्रकार के अभियोगों की अपीलें सुनने के लिए सुप्रीम कोर्ट होता है। सुप्रीम कोर्ट सर्वोच्च न्यायालय है, और उसके निर्णय के विरुद्ध अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट में अपील नहीं की जा सकती। यह तथ्य स्मरणीय है कि अनेक राज्यों में न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है। केवल १० राज्यों में ही न्यायाधीशों का निर्वाचन नहीं होता। प्रत्येक राज्य की न्यायिक प्रक्रिया पृथक् है। न्यायाधीशों को महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है। कुछ राज्यों में न्यायाधीशों के प्रत्याहरण की विधि है। यह दशा सन्तोषजनक नहीं है। न्यायाधीशों को प्रभावित करने तथा भ्रष्ट करने की प्रत्येक सम्भावना है। उस न्यायाधीश से न्याय की आशा करना कठिन है जो सदा अपने पुनर्निर्वाचन की सोचता रहता है। उनके निर्वाचित होने के स्थान पर मनोनीत किये जाने के पक्ष में बहुत जोरदार दलीलें हैं।

स्थानीय सरकार (Local Government)—प्रत्येक राज्य में अनेक स्थानीय संस्थाएँ हैं जो अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। समस्त स्थानीय सरकारों की शक्ति का स्रोत राज्य सरकारें हैं। कर्त्तव्य पालन करने के लिए वे बहुत से कर्मचारी

रखनी है। राज्यों में टाउनशिप, काउन्टी, नगर, स्कूल तथा जिले की स्थानीय संस्थाएँ होती हैं। स्थानीय सरकार के क्षेत्र में अमेरिका ने अनेक प्रयोग किए हैं और सबसे महत्त्वपूर्ण आयोग-योजना (Commission Plan) तथा नगर-प्रबन्धक योजना (City Manager Plan) है।

प्रत्यक्ष जनतन्त्र (Direct Democracy)—यह स्मरणीय तथ्य है कि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण (Direct Legislation) तथा प्रत्याहरण (Recall) केवल राज्यों में पाए जाते हैं, केन्द्र में नहीं। आरम्भण तथा जन-निर्देश (Initiative and Referendum) की प्रथा अधिकांश राज्यों में प्रचलित है लेकिन प्रत्याहरण केवल कुछ राज्यों में है। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की आवश्यकता इस तथ्य के कारण हुई कि जनता को राज्य-विधायकों की प्रामाणिकता तथा ईमानदारी में विश्वास नहीं है। यह अनुभव किया जाता है कि या तो विधायकों को रिश्वत दी जाती है अथवा अवांछित रूप में प्रभावित किया जाता है। इसलिए वे विधेयक भी पारित कर दिए जाते हैं जो जनता की कुछ भी भलाई नहीं करते। इसके अतिरिक्त, राज्य विधानमण्डल उस कानून को पारित नहीं करता जिसको जनता आवश्यक समझती है।

आरम्भण (Initiative) के विषय में ५% से लेकर १०% योग्य (qualified) मतदाताओं के हस्ताक्षरों की कानूनी रूप से आवश्यकता होती है। सांवैधानिक संशोधनों के विषय में हस्ताक्षरों का प्रतिशत ८ से लेकर १५ तक होना चाहिए। हस्ताक्षर प्राप्त करने का कार्य साधारण नहीं है और उसके लिए स्वयंसेवक तथा पेशेवर प्रचारकों (Professional canvassers) की सेवा की आवश्यकता होती है। आवश्यक संख्या में हस्ताक्षर प्राप्त करने के पश्चात् विधेयक अथवा प्रार्थना-पत्र एक राज्य कर्मचारी को समर्पित किया जाता है जो कि इसी कार्य के लिए नियुक्त होता है। यह सब होने के पश्चात् विधेयक पर अगले नियमित निर्वाचन अथवा विशेष निर्वाचन में मत लिए जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक अवसर पर केवल एक विधेयक पर ही मत लिये जाएँ। कभी-कभी दो विरोधी प्रस्तावों पर मत लिया जाता है और वे दोनों ही मतदाताओं द्वारा मान्य होते हैं। उस दशा में, वह विधेयक कानून बन जाता है, जिसका अधिक व्यक्ति समर्थन करते हैं। मतदाताओं को सूचना देने के विचार से राज्य पुस्तिकाएँ प्रकाशित करते हैं और मतदान के पूर्व उन्हें नियमित मतदाताओं में बाँटते हैं। उन पुस्तिकाओं में विधेयक के पक्ष तथा विपक्ष में सूचनाएँ दी जाती हैं। उन पुस्तिकाओं पर पर्याप्त धन व्यय किया जाता है और आवश्यक नहीं कि मतदाता उन्हें सदा पढ़ें और समझें। जनता द्वारा स्वीकृत अथवा निश्चित विधेयक को राज्यपाल निषेध यानी वीटो नहीं कर सकता। यदि जनता एक बार किसी विधेयक को रद्द भी कर दे तो दूसरे वर्ष दूसरे प्रार्थना-पत्र के द्वारा उसे पुनः विचारार्थ लाया जा सकता है। कुछ राज्यों में यह व्यवस्था है कि यदि एक बार एक विधेयक को जनता रद्द कर दे तो कम-से-कम आगामी तीन वर्षों तक उसे पुनः प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

जन-निर्देश के लिए भी मतदाताओं को हस्ताक्षर-सहित यह प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है कि अमुक विधि पर जन-निर्देश किया जाये जिस पर विधानमण्डल जनमत

जानने से इनकार कर देता है। ऐसी घटना घटित होने पर यह मांग की जाती है कि विशेष विधि को लागू करने से पूर्व उस पर जन-निर्देश किया जाए।

साधारणतः राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित कानून कुछ समय तक लागू नहीं किए जाते ताकि जनता को उसके विरुद्ध आवेदन करने का अवसर मिल जाए। किन्तु संकटकालीन "कानूनों तथा सार्वजनिक शान्ति, स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए अविलम्ब आवश्यक कानूनों" के सम्बन्ध में उन्हें तुरन्त लागू करने के लिए व्यवस्था की गई है। बुराइयों को रोकने के वास्ते संकटकालीन कानूनों को पारित करने के लिए दो-तिहाई बहुमत होना चाहिए।

जन-निर्देश के तीन रूप होते हैं। राज्य विधानमण्डल अपनी इच्छा से किसी विधेयक पर जन-निर्देश करा सकता है। वोटर भी मांग कर सकते हैं कि किसी कानून को लागू करने से पूर्व उस पर मत-संग्रह किया जाए। निर्धारित संख्या के वोटर हस्ताक्षर करके आरम्भण याचिका (Initiative petition) देकर किसी विधि पर मत लेने की माँग कर सकते हैं।

कुछ राज्यों में आरम्भण तथा जन-निर्देश बहुत लोकप्रिय है जैसे कैलिफोर्निया, लेकिन दूसरे कुछ राज्यों में ऐसा नहीं है जैसे मसाचुसैट्स (Massachusetts)।

प्रत्यक्ष जनतन्त्र के समर्थकों का कथन है कि आरम्भण और जन-निर्देश की विधि जनतन्त्रीय सरकार को अधिक जनतन्त्रीय बनाती है। जनता का कानून-निर्माण पर नियन्त्रण हो जाता है। इस प्रणाली का शिक्षणात्मक मूल्य भी है। प्रस्तावित कानून की हानियों तथा लाभों का सामान्य सार्वजनिक विवेचन होता है। समाचार-पत्र लेख लिखते हैं। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "प्रत्यक्ष विधि-निर्माण राजनीति में व्यावहारिक शिक्षा का अद्वितीय साधन विद्यमान है।" इस प्रणाली के द्वारा निर्वाचकों के शान्त वर्ग को भी अपना प्रभाव प्रकट करने का अवसर मिलता है। इससे विधानमण्डल सजग रहते हैं और प्रतिनिधियों को यह स्वामी बनने से रोकता है।

किन्तु आलोचकों का कथन है कि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की बुराइयाँ भी हैं। यह नागरिकों के नागरिक अधिकारों को दुर्बल करता है। संविधान को किसी भी समय बदला जा सकता है और इस प्रकार जनता की स्वतन्त्रताओं को छीना जा सकता है। बहुमत किसी समय अल्पमत को कुचल सकता है। हैमिल्टन के शब्दों में, "बहुमत को शासित सौंप दो और वे अल्पमत को दबा देंगे।" यह भी कहा जाता है कि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण जनता द्वारा न होकर बहुमत द्वारा होता है। जनता का मत लेने की विधि भी दोषपूर्ण है। उसको 'हाँ' या 'ना' कहना पड़ता है। उनको दो विकल्पों में चयन करना पड़ता है और विवाद अथवा रूपान्तर (variation) के लिए कोई स्थान नहीं रहता। परिणाम यह होता है कि किसी विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में जनता यन्त्रवत् मत देती है। इस प्रणाली में मतदाताओं पर अनिश्चित भार पड़ता है और विधायकों का उत्तरदायित्व कम हो जाता है।

प्रो० मनरो के अनुसार, "प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के समर्थक उसके गुणों की गणना और विरोधी उसकी बुराइयों का उल्लेख करते हैं। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण से राजनैतिक नेताओं (Bosses) की शक्ति की समाप्ति एवं पार्टी व्यवस्था की नष्ट

नहीं किया है, प्रभावी वर्गों के प्रभाव को समाप्त नहीं किया; और समस्त कानूनों को पवित्र नहीं बना दिया है। कानून बनाने का कार्य कूट योजना के रूप में चलता है। संगठित अल्पमत जनता के नाम पर जनता को दबाने का प्रयास करते हुए चलता रहता है। दूसरी ओर उसने दुर्जनों के उच्छृंखल शासन को सम्भव नहीं बनने दिया और नागरिकों के मौलिक अधिकारों को नष्ट नहीं होने दिया है। सक्षेप में आरम्भण तथा जन-निर्देश द्वारा निर्मित कानून विधानमण्डल द्वारा पारित कानूनों से न अधिक अच्छे हैं और न बुरे।"

Suggested Readings

Beard, C. A. American Government and Politics.
Munro, W. B The Government of United States, 1947.
Potter, A. M American Government and Politics.

स्विट्ज़रलैंड का संविधान
(Constitution of Switzerland)

अध्याय १६
संविधान की विशेषताएँ
(Characteristics of the Constitution)

विषय प्रवेश (Introductory)—स्विस संविधान (Swiss Constitution) का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। ब्रुक्स (Brooks) के मतानुसार, स्विट्जरलैंड "राजनीति के साहसी कार्यों की प्रयोगशाला है तथा उसकी सफलता से समस्त जनतन्त्रीय देशों को शिक्षा मिलती है।" स्विस गणराज्य विश्व के सब से अच्छे और सब से पुराने प्रजातन्त्रों में से एक है। यहाँ पर सदा प्रजातन्त्र रहा है और राजतन्त्र कभी नहीं। इस पर्वतीय देश में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की संस्था पूर्णरूप से पनपी है। बुअल (Buell) के मतानुसार, स्विट्जरलैंड "उन लोगों के मध्य में निकटतम सहयोग की संभावनाओं को प्रदर्शित कर चुका है जो किसी समय राजनीतिक रूप में एक-दूसरे से स्वतन्त्र थे और आज भाषा एवं धर्म के अनुसार एक-दूसरे से बहुत पृथक् हैं।" स्विस राष्ट्रत्व (nationhood) की सब से अधिक अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह राष्ट्रीयता के लिए जातीय तथा सांस्कृतिक एकता को आवश्यक बताने वाले विचारों को गलत सिद्ध करता है। स्विट्जरलैंड ने दोहरी कार्यपालिका (Plural Executive) के सम्बन्ध में विश्व में नया प्रयोग किया है। दोहरी कार्यपालिका में मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व तथा पदावधि की स्थायिता का मेल किया गया है। स्विट्जरलैंड का निरन्तर तटस्थ बने रहना भी विश्व की एक अद्वितीय घटना है।

स्विट्जरलैंड का क्षेत्रफल १५,९७६ वर्गमील और जनसंख्या ४५ लाख है। यह हजारों घाटियों का देश है तथा नागरिकों की जाति, धर्म, भाषा और एक सीमा तक सभ्यता में पर्याप्त अन्तर है। स्विट्जरलैंड में जर्मन, फ्रांसीसी और इटालियन भाषाएँ प्रचलित हैं। १९३८ में रोमन्श (Romansch) को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया। इसका फल यह है कि समस्त संघीय कार्यों के लिए चार भाषाओं का प्रयोग होता है। लोग प्रोटैस्टेंट तथा रोमन कैथोलिक धर्म के अनुयायी हैं। लगभग दो-तिहाई जनता प्रोटैस्टेंट धर्म को मानती है और एक-तिहाई रोमन कैथोलिक है। देश में कुछ हजार यहूदी हैं। इन समस्त विभिन्नताओं के होते हुए भी, स्विट्जरलैंड यूरोप के राष्ट्रों में सबसे अधिक संगठित तथा सब से अधिक देशभक्त लोगों का राष्ट्र है।"

लॉर्ड ब्राइस (Bryce) के अनुसार, "राष्ट्रीय एकता की भावना को दृढ करने वाली प्रबल राष्ट्रभक्ति और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में प्रति-

विभिन्नता तथा स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government), जो शुरू के कैंटनों का प्राण था, दूसरे लोगों के दिल और दिमाग में भी बैठ गये हैं और उनसे प्राचीन परम्पराओं में भाग लेने की आशा करते हैं और उनके परिणामस्वरूप नगरों में से, अल्पतन्त्र (Oligarchy) को उखाड़ फेंकने में सहायता मिली है।"

स्विट्ज़रलैंड एक पर्वतीय देश है तथा प्रकृति देवी ने उसे कच्चे माल अथवा खनिज पदार्थ के रूप में धन अधिक नहीं दिया है। किन्तु स्विट्ज़रलैंड ने प्रकृति के विरोध को "अपने परिश्रम तथा कार्यों से अपने अनुकूल बना लिया है।" स्विस सफलता की कुंजी जनता का श्रम है जो विलक्षण प्रकार की व्यावहारिक बुद्धि से शक्ति प्राप्त करता है। स्विस जनता समानता और समृद्धि से रहती है और वहाँ पर सर्वहारा (proletariat) दुर्गति और झोंपड़ी का न होना आश्चर्य नहीं है।

ऐतिहासिक (Historical) वर्णन—स्विट्ज़रलैंड के वैधानिक इतिहास में १६४८ की वेस्ट फेलिया की सन्धि एक युगप्रवर्तक घटना है। उस सन्धि के द्वारा यूरोप में तीस वर्षीय युद्ध की समाप्ति हुई और स्विट्ज़रलैंड की स्वतन्त्रता तथा प्रभुता को मान्यता प्राप्त हुई। उस समय १३ कैण्टनें (Cantons) थीं और यही अवस्था फ्रेंच क्रान्ति तक चली जबकि "सारे यूरोप में एक तूफान आया जिसने प्रत्येक वस्तु को उसके प्रचलित मार्ग से हटा दिया।" १७६८ में फ्रांसीसी सेनाएँ स्विट्ज़रलैंड में प्रविष्ट हुईं और पुरातन व्यवस्था पूर्णतः अव्यवस्थित हो गई। कथित हैल्वेटिक गणराज्य (Helvetic Republic) १७६८ से १८०३ तक चला। १८०३ में मध्यस्थता अधिनियम (Act of Mediation) पास हुआ जिसके द्वारा पुराना महासंघ तथा कैण्टनों की स्वायत्तता (autonomy of Cantons) फिर स्थापित की गई। नैपोलियन की हार के पश्चात्, १८१५ में वियना काँग्रेस ने स्विट्ज़रलैंड का पिछली सरकार को पुनः स्थापित किया। कैण्टनों की संख्या २२ हो गई। कैण्टनों ने संघीय समझौते को मानने की शपथ ली जिसके अनुसार कैण्टनें अपना-अपना संविधान बनाने के लिए स्वतन्त्र थीं। किन्तु, प्रतिरक्षा, शान्ति तथा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए कैण्टनें संयुक्त थीं। १८१५ के संघीय समझौता से विभिन्नता में एकता स्थापित हुई।

१८४० में सात कैथोलिक कैण्टनों ने संयुक्त होकर विद्रोह किया और देश में गृह-युद्ध हुआ। सातों कैथोलिकों की लीग को सोण्डरबण्ड (Sonderbund) कहते थे। १० दिन के युद्ध के पश्चात् कैण्टनें हार गईं। १८४८ में कैथोलिक कैण्टनों की युद्ध मांगों को स्वीकार करने के उद्देश्य से संविधान में परिवर्तन किया गया। १८४८ के संविधान के अनुसार, केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली नहीं थी अतएव १८७४ में संविधान में संशोधन किया गया। नया संविधान २६ मई, १८७४ को लागू हुआ और वही संविधान आज तक चालू है।

(१) संविधान की विशेषताएँ (Characteristics of the Constitution)—
(१) स्विस संविधान अमेरिका (U.S.A.) के संविधान की भांति लिखित लेख (Document) है, यद्यपि यह अमेरिकी संविधान से दुगुना है। यद्यपि स्विस संविधान लिखित है तथापि अनेक [illegible] (conventions) भी प्रचलित हो गई हैं।

संविधान यह व्यवस्था करता है कि संघीय सरकार को उन शर्तों को निश्चित करने का अधिकार है जिनके द्वारा विदेशी लोग कैण्टनों की नागरिकता प्राप्त कर सकते हैं। इस व्यवस्था के होते हुए भी केन्द्रीय सरकार ने इस विषय में हस्तक्षेप नहीं किया है और प्रत्येक कैण्टन अपनी नागरिकता प्राप्त करने के नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र है।

(२) संविधान के संशोधन की विधि (Method of Amendment of Constitution)—स्विस संविधान अनम्य (rigid) है यद्यपि यह उतना अनम्य नहीं है जितना अमेरिका का संविधान है। संविधान में संशोधन दो प्रकार का होता है—सम्पूर्ण तथा आंशिक। सम्पूर्ण संशोधन १८७४ में किया गया, किन्तु संशोधन विधि समान है चाहे परिवर्तन आंशिक या सम्पूर्ण हो, अथवा पुनरीक्षण (revision) हो।

सम्पूर्ण अथवा आंशिक संविधानीय पुनरीक्षण तब हो सकता है जब संघीय संसद् के दोनों सदन उस संशोधन को मान्य ठहराये और आधे से अधिक कैण्टनों तथा स्विस नागरिकों का बहुमत संशोधन को स्वीकार करे। किन्तु यदि एक सदन संशोधन के पक्ष में हो और दूसरा विपक्ष में तो उसका निर्णय जनता करती है। यह स्मरणीय है कि इस प्रश्न पर कैण्टनों का मत नहीं लिया जाता। यदि बहुमत संविधान में संशोधन के पक्ष में होता है तो संघीय विधान-सभा का नया चुनाव होता है। प्रस्तावित संशोधन नव-निर्वाचित संघीय सदनों के सम्मुख विचारार्थ रखा जाता है। यदि वे उसे स्वीकार कर लेते हैं तो वह जनता तथा कैण्टनों की स्वीकृति के लिए रखा जाता है। यदि कैण्टनों तथा वोटरों का बहुमत संशोधन को स्वीकार कर लेता है तो संशोधन संविधान का अंग बन जाता है।

स्विट्जरलैंड के नागरिक संविधान में संशोधन का प्रस्ताव आरम्भ (initiate) कर सकते हैं। संशोधन चाहने वाले नागरिकों की संख्या कम-से-कम ५० हजार होनी आवश्यक है। संशोधन जनता की स्वीकृति से किया जाता है। यदि बहुमत प्रस्ताव के पक्ष में हो, तो नये चुनाव होते हैं। नव-निर्वाचित संघीय संसद् के सदनों के सम्मुख प्रस्तावित संशोधन रखा जाता है। यदि संघ संसद् प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है तो यह जनता तथा कैण्टनों के जन-निर्देश के लिए रखा जाता है। दोनों दशाओं में बहुमत का पक्ष में होना आवश्यक है।

आरम्भण द्वारा आंशिक संविधानीय संशोधन की विधि इस पर निर्भर करती है कि संशोधन का प्रस्ताव विधेयक (formulated) के रूप में आया है अथवा साधारण ढंग से ही निरूपित हुआ है। साधारण निरूपित प्रस्ताव के विषय में, यदि संघ संसद् उसे स्वीकार करे तो उसे विधेयक के रूप में लाकर जनता तथा कैण्टनों की स्वीकृति के लिए प्रचलित किया जाता है। यदि संघ संसद् प्रस्तावित संशोधन को अमान्य ठहराये, तो आंशिक संशोधन करने के प्रस्ताव पर जनता का निर्णय लिया जाता है। यदि वोटरों का बहुमत प्रस्ताव को मान्य करता है, तो संघ संसद् को साधारण निरूपित संशोधन को विधेयक के रूप में लाना पड़ता है और जनता तथा कैण्टनों से स्वीकृति के लिए अनुरोध किया जाता है। विधेयक रूप में प्राप्त संशोधन के प्रस्ताव को पहले संघ संसद् स्वीकार करती है और इसके पश्चात् जनता तथा

कैण्टनों से उसकी स्वीकृति के लिए अनुरोध किया जाता है। किन्तु यदि संघ संसद् उसे अमान्य ठहराए तो वह जनता से उसे अमान्य ठहराने का अनुरोध कर सकती है, अथवा विपरीत प्रस्ताव लाकर आरम्भण प्रस्ताव के साथ जन-निर्देश के लिए जनता से अनुरोध किया जाता है।

(३) स्विट्जरलैंड का संविधान गणराज्यात्मक है। यह केवल केन्द्र में ही नहीं अपितु १९ कैण्टनों और ६ अर्द्ध कैण्टनों में से प्रत्येक में भी ऐसा ही है।

(४) स्विट्जरलैंड का संविधान उदार है। उन्नीसवीं सदी के उदार दर्शन (liberal philosophy) ने इसको प्रभावित किया है। कोई आश्चर्य नहीं कि सांविधानिक वाक्यावली (constitutional phraseology) पर उस दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। संविधान व्यवस्था करता है कि कानून के सामने सब नागरिक समान हैं। यह प्रकाशन, भाषण तथा संघ बनाने की स्वतन्त्रता देता है। संविधान ने निश्चित किया है कि राज्य का कर्त्तव्य नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना है। सार्वजनिक स्कूलों में प्रत्येक जाति तथा धर्म के मानने वाले को प्रवेश मिलता है। स्वतन्त्र व्यापार तथा वाणिज्य के लिए भी व्यवस्था की जाती है। सार्वजनिक स्कूलों का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता है कि किसी की धार्मिक अथवा जातीय भावना को ठेस न पहुँचे। किन्तु जेसुइट (Jesuits) और सम्बन्धित सम्प्रदायों (Orders) पर रोक है। नए मठ तथा धार्मिक परिषदें (Convents or Congregations) स्थापित नहीं की जा सकतीं। कुछ विषयों में, संविधान की धर्म-निरपेक्षता (secularism) पादरी-विरोधी (anti clerical) भी हो गई है।

कुछ विषयों में, स्विस संविधान का उदारतावाद (liberalism) बीसवीं सदी के परिवर्तनों को दृष्टि में रखकर सुधारा गया है। "१९३० के आर्थिक संकट के विनाशक प्रभावों को जीतने के प्रयत्नों ने, दो विश्व-युद्धों में देश की तटस्थता को बनाए रखने के लिए राष्ट्रीय कोष पर पड़े भार ने, विभिन्न निर्वाचनों के कारण सार्वजनिक कोष पर बढ़ती हुई धन की माँग ने, कल्याणकारी राज्य की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने और राजनैतिक समूहवाद (Political Collectivism) ने स्विट्जरलैंड की राजनैतिक तथा आर्थिक प्रणाली के दार्शनिक तत्त्व दर्शन में इस परिवर्तन के होने में योग प्रदान किया है।" परिणाम यह हुआ कि राज्य ने संयुक्त राज्य अमेरिका से व्यापार करने पर कई प्रतिबन्ध लगा दिए हैं। कार्टेल-निर्माण (Cartelization) के कारण भी उद्योग क्षेत्र में राज्य को हस्तक्षेप करना पड़ा है।

(५) स्विट्जरलैंड की सरकार प्रजातन्त्रीय[1] है। यह कहा जाता है कि प्रजातन्त्र तथा स्विट्जरलैंड समानार्थक हैं। "स्विस प्रजातन्त्र का सिद्धान्त वास्तव में यह है कि उसमें कैण्टन में अधिक महत्त्व कम्यून (Commune) का है और संघ में अधिक महत्त्व कैण्टन का है।" राजनैतिक प्राधिकार (authority) का आधार

१. ब्राइस के अनुसार, "आधुनिक सच्चे जनतन्त्रों के अध्ययन के लिए स्विट्जरलैंड का स्थान सर्वोच्च है। उसमें किसी अन्य देश की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित भिन्न संस्थाएँ पाई जाती हैं।"

स्थानीय स्वायत्त शासन है। जनता की इच्छा का निर्माण नीचे से ऊपर की ओर होता है। सभी नागरिक कानून के समक्ष समान हैं और प्रत्येक नागरिक को 'वोट' का अधिकार प्राप्त है। सब विधानमण्डलों का निर्वाचन होता है। राजनैतिक संगठन में आरम्भण और जन-निर्देश की संस्थाओं का विशेष स्थान है। स्विस संविधान जनता ने प्रत्यक्ष मत से स्वीकृत किया था और वही उसके संशोधन की निर्णायक है। संसार में और किसी देश के नागरिकों को अपने देश के संविधान पर इतना अधिक नियन्त्रण प्राप्त नहीं है। कुछ कैन्टनों में विधायी कार्यों[1] के लिए समस्त वयस्कों की आरम्भिक सभा (Primary Assembly) के लिए व्यवस्थाएँ हैं।

(६) यह सत्य है कि स्विस संविधान में मूल अधिकारों का उल्लेख नहीं है किन्तु संविधान की अनेक धाराओं के द्वारा अनेक अधिकार स्वीकृत किए गए हैं। ये अधिकार धर्म तथा जाति की स्वतन्त्रता, मुद्रण की स्वतन्त्रता, संघ अथवा संस्था बनाने की स्वतन्त्रता, आवेदन की स्वतन्त्रता तथा कानून के सामने समानता, जन्म, जाति, कुटुम्ब अथवा पद के कारण विशेषाधिकारों (privileges) का अभाव है। अपराधियों के मुकदमे सुनने के लिए असाधारण ट्रिब्यूनलों की स्थापना नहीं की जा सकती। राजनैतिक अपराधों के लिए मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता।

(७) स्विस संविधान जनता की सार्वभौम इच्छा का स्वरूप है। स्विट्ज़रलैंड का सब से उच्च न्यायालय स्विस संघीय ट्रिब्यूनल (Swiss Federal Tribunal) न्यायिक पुनर्विचार का अधिकार रखता है। यह संविधान को सर्वोच्च रखने के लिए किसी भी कैण्टन के कानून अथवा प्रशासकीय कार्यों को अवैध घोषित कर सकता है। किन्तु, संघीय संसद् के कानून के विषय में उसे ऐसे अधिकार प्राप्त नहीं है। इसका आंशिक कारण यह तथ्य है कि स्विट्ज़रलैंड की जनता संघीय संसद् का अविभाज्य अंग है; क्योंकि संसद् द्वारा पास कानून जनता द्वारा निर्णीत किए जाते है। क्योंकि जनता संघीय कानून को स्वीकार करती है, अतः स्विस संघीय ट्रिब्यूनल को उसे रद्द करने का निषेधाधिकार (veto) नहीं दिया जा सकता। यदि कोई अन्य व्यवस्था की जाती तो वह जनता की इच्छा के विपरीत होती।

(८) **संघीय पद्धति** (Federal System)—स्विट्ज़रलैंड की सरकार संघीय है। यद्यपि संविधान में 'महासंघ' (Confederation) शब्द का प्रयोग किया गया है तथापि उसे 'संघीय सरकार' कहना अधिक उपयुक्त होगा। स्विस संविधान कैनेडियन संविधान की अपेक्षा अमेरिकी अथवा आस्ट्रेलियन संविधान के अधिक समीप है। संघ सरकार को केवल उन विषयों पर अधिकार प्राप्त है, जो उसे संविधान के द्वारा

१. प्रो० मनरो स्विस जनतन्त्रीय प्रणाली को इन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं : "यहां ऐसा जनतन्त्र है जिसने अधिकांश दुर्गुणों को दूर रखा है, जो जनतन्त्र के कारण पैदा हुए समझे जाते हैं। कुछ तथ्य उसे भाग्यशाली बनाते हैं। इसका आंशिक कारण देश का छोटा आकार एवं सुदृढ़ता, इसकी सुरक्षित स्थिति तथा विविध सम्पदाएँ हैं। इसका आंशिक कारण इसके व्यक्तियों की बुद्धिमत्ता, देशभक्ति एवं सद्भावना भी है। पुनः उनके बीच सम्पत्ति का प्रायः समान वितरण तथा धनिक एवं दरिद्र के भेद की अनुपस्थिति है। और अन्त में दृढ़ सुस्थापित स्वस्थ परिपाटियां हैं जो वह दृढ़ आधार बनाती हैं जिन पर शासन टिक सकता है।" (गवर्नमेंट्स आफ यूरोप, पृ० ७२०)

प्राप्त हैं तथा अवशिष्ट शक्तियाँ (residuary powers) कैण्टनों में निहित हैं। कैण्टन अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं और वे अपने संविधान का संशोधन कर सकती हैं। किन्तु कैण्टनों पर तीन प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। प्रत्येक कैन्टन का संविधान गणराज्यात्मक होता है। इसका पुनरीक्षण (revision) जन-साधारण के मत से हो सकता है। किसी सविधान में संघीय संविधान के प्रतिकूल व्यवस्था नहीं हो सकती। केन्द्रीय सरकार को विदेशी सम्बन्धों, राजदूतों की नियुक्ति अथवा स्वागत, युद्ध घोषणा, शान्ति घोषणा, सन्धि करना, स्विस सैन्य-व्यवस्था का प्रबन्ध, आन्तरिक शान्ति तथा व्यवस्था को बनाए रखना, रेलवे का स्वामित्व तथा नियन्त्रण, बैंकिंग, मुद्रा, तथा वाणिज्य की व्यवस्था, डाक-तार व्यवस्था, मापक तथा तोलने के बाट, नागरिकता के अधिकार देना अथवा छीनना, उच्च शिक्षा, तथा देश के प्राकृतिक साधनों का उपयोग आदि पर एकाधिकार प्राप्त हैं। केन्द्रीय सरकार को उद्योग तथा बीमा, राष्ट्रीय प्रधान सड़कों का निर्माण, मुद्रण (press) नियन्त्रण तथा शिक्षा के प्रसार के विषयों के सम्बन्ध में समवर्ती शक्ति (concurrent power) प्राप्त है।

किन्तु यह बात स्मरणीय है कि १८७४ से केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ अत्यधिक बढ़ गई हैं। जरकर (Zurcher) के अनुसार, "संघीय प्राधिकार एकस्व (patent), जल-शक्ति उन्नति, दीवानी तथा फौजदारी कानून, मद्य-व्यापार, जल-थल-नभ यातायात, बैंकिंग तथा समाज कल्याणकारी परियोजनाओं, औद्योगिक कानून, शस्त्र-व्यवसाय, जन-स्वास्थ्य तथा अन्न के उत्पादन तथा विक्रय तक विस्तृत कर दिया गया है। रेलवे, टेलीफोन तथा वायरलैस संचार साधनों पर भी केन्द्रीय सरकार का स्वामित्व है। संघीय करों के अनेक नए स्रोतों का आविष्कार किया गया है। कैण्टनों को अनेक प्रकार से आर्थिक सहायता दी जाने लगी है। अनेक कारणों—राष्ट्रीय स्तर पर उद्योग तथा वाणिज्य के संगठित होने से संघीय शक्ति की वृद्धि—से संघ सरकार के मान तथा आदर में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है।"

एण्डरे के अनुसार, "इस प्रवृत्ति से भय यह है कि जिस सीमा तक केन्द्रीय सरकार कैण्टनों के अधिकारों को हस्तगत करती है, उस सीमा तक कैण्टन में धीरे-धीरे प्रभुत्व-सम्पन्न राज्य नहीं रहेंगे तथा केन्द्रीय सरकार की आज्ञाओं को पूरा करने वाले प्रशासकीय जिलों के सदृश हो जाएँगे।"

किन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि स्विट्ज़रलैंड में स्थानीय स्वायत्त शासन की भावना को जीवित रखा जा रहा है। कैण्टनों को अभी तक अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं। अभी तक केन्द्रीय सरकार अपनी शक्तियाँ तथा वैधानिक प्रथाएँ (constitutional usages) कैण्टनों से प्राप्त करती है। अब तक किसी कैण्टन का नागरिक ही स्विस नागरिक होता है तथा स्विट्ज़रलैंड में नागरिकता सम्बन्धी कोई सामान्य कानून नहीं है। कैण्टन न्यायालय ही संघीय कानूनों को लागू कराते हैं। कैण्टन के अधिकारियों द्वारा ही संघ सरकार कैण्टनों में कार्य करती है। सेनाएँ कैण्टनों के प्रबन्ध में हैं तथापि उन पर केन्द्रीय सरकार का अनुशासन लागू होता है और वही उनका निरीक्षण करती है। स्विस संविधान स्पष्टतः कैण्टनों के अस्तित्व ...... देता है। स्विस राज्य परिषद् में प्रत्येक कैण्टन के दो प्रतिनिधि होते हैं

चाहे उनकी जनसंख्या अथवा क्षेत्रफल कुछ ही क्यों न हो। संघ संविधान में कैण्टनों की स्वीकृति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता। स्विस संविधान में विधायी केन्द्रीकरण (legislative centralisation) तथा प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण (administrative decentralisation) है। केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ बिना विरोध तथा अवरोध (opposition and check) के नहीं बढ़ी हैं। १९३२ की गड़बड़ी को दुबारा होने से रोकने, साम्यवादी आन्दोलन से सेना की रक्षा करने, जर्मन ढंग की राजनैतिक संस्थाओं के संगठित होने को रोकने तथा स्विट्जरलैंड में विदेशियों की गैर-कानूनी कार्यवाहियों को रोकने के लिए १९३४ में एक विधेयक संघ सरकार की शक्तियों को बढ़ाने के लिए निरूपित किया गया। जब इसे जनता के सामने रखा गया तब उसने इसे रद्द कर दिया। यह स्पष्ट है कि संघीय सरकार की शक्तियों में एक दम वृद्धि नहीं हुई, किन्तु परिस्थितियों के भार के कारण ही संघ सरकार की शक्तियाँ बढ़ी हैं। एक दुर्बल केन्द्रीय सरकार अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार पूरा नहीं कर सकती।

स्विट्जरलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) की संघीय प्रणालियों (Federal Systems) की तुलना करने में कुछ अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं।

(१) संघीय प्राधिकार (federal authority) और कैण्टनों के क्षेत्र को, विशेषकर प्रशासन में, संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह पूरी तरह, पृथक् नहीं किया गया है। प्रशासन के अनेक ऐसे विभाग हैं जिनको पूरी तरह से केन्द्रीभूत (centralised) किया गया है और केन्द्रीय कर्मचारियों पर केन्द्र का पूरा-पूरा नियन्त्रण है। इस प्रसंग में सीमाशुल्क इकट्ठा करने, तार-सेवा, टेलीफोन सर्विस, और पोस्ट ऑफिसों का उल्लेख किया जा सकता है। जनपद विधि (civil law) जैसे अन्य विभागों में संघीय सरकार कानून बनाती है लेकिन कैण्टने अदालतों का संगठन करती हैं, कानूनी प्रक्रिया निश्चित करती हैं और न्यायाधीशों को नियुक्त करती हैं। अनेक संघीय कानूनों को लागू करने के लिए केन्द्र कैण्टनों के प्रशासकीय यन्त्र का प्रयोग करता है जो कि इस सीमा तक उस अधिकार के सम्बन्ध में अधीन स्थिति (subordinate position) में है।

(२) स्विट्जरलैंड में संघीय सरकार को संयुक्त राज्य अमेरिका से अधिक शक्ति प्राप्त है। उसे संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस से अधिक विधायी अधिकार (legislative powers) प्राप्त हैं। उसे कैन्टनों के संविधान की गारण्टी और जनता के अधिकारों को सुरक्षित रखने आदि विषयों के सम्बन्ध में विस्तृत शक्तियाँ प्राप्त हैं। संविधान उपबन्ध करता है कि संघीय सरकार कैण्टनों को उनके राज्य क्षेत्रों (territories), विशेष सीमाओं के अन्दर उनकी प्रभुता (sovereignty within specified limits), उनके संविधानों, उनकी जनता के अधिकारों और स्वाधीनताओं, और जनता द्वारा अधिकारियों को प्रदत्त शक्तियों की गारण्टी देती है। गारण्टी की शर्त के कारण संघीय सरकार माँग कर सकती है कि कैण्टन का संविधान संघीय संविधान के विपरीत न हो। वे गणराज्यात्मक सरकार के अनुसार राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने का आश्वासन देते हैं और जनता के बहुमत से उनको

स्वीकार किया है और जनता के बहुमत की माँग पर संशोधन को ग्रहण करते हैं। कैण्टनों में मतभेद होने पर उनको संघीय सत्ता के निर्णयों को मानना पड़ता है। किसी कैण्टन में गड़बड़ होने पर सम्बन्धित कैण्टन की सरकार को संघीय कार्यपालिका को सूचित करना पड़ता है और उसे शान्ति तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए आवश्यक पग उठाने का अधिकार है।

(३) स्विस संविधान की एक अन्य विशेषता बहुल तथा सामूहिक कार्यकारिणी (Plural and Collegiate Executive) है। स्विट्जरलैंड में इंगलैंड के समान ससदीय अथवा यू० एस० ए० के समान अध्यक्षात्मक सरकार नहीं है। इसकी कार्यकारी शक्ति संघीय परिषद् (Federal Council) के पास है। इसका निर्वाचन संघ-विधानमण्डल चार वर्ष के लिए करता है। यह अनुत्तरदायी है तथा इसे हटाया नहीं जा सकता। यह एक कालेजियम (Collegium) है जो एक साथ ही सरकार के कर्तव्य भी पूरा करती है और राज्य के अध्यक्ष के भी।

स्विस तथा अमेरिका के संविधानों में प्रभेद (Swiss and American Constitutions : Distinction)—प्रो० ए० वी० कीथ स्विस तथा अमेरिकी संविधानों के अन्तर को निम्न शब्दों में प्रस्तुत करते हैं—

(१) कार्यपालिका शक्ति संयुक्त राज्यों में राष्ट्रपति में निहित है तथा स्विट्जरलैंड में संघीय परिषद् में।

(२) संयुक्त राज्यों के राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता का निर्वाचक मण्डल (electoral college) करता है तथा स्विस संघीय परिषद् संघ संसद् द्वारा निर्वाचित होती है।

(३) स्विट्जरलैंड की राज्य परिषद् को अमेरिका की सीनेट से कम अधिकार प्राप्त होते हैं जिसके समर्थन के पश्चात् ही राष्ट्रपति संधि अथवा सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति कर सकता है।

(४) स्विट्जरलैंड में दलीय सरकार बनाने तथा षड्यन्त्र (wire-pulling) करने को स्थान नहीं है जबकि संयुक्त राज्य में इसका बाहुल्य है। इसका कारण दोनों देशों की कार्यपालिका की नियुक्ति की विधि है तथा यह वास्तविकता है कि एक स्थान पर कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है जो कि अनेक सरकारी अधिकारियों को नियुक्त करता है तथा दूसरी ओर एक परिषद् में।

(५) संयुक्त राज्य की इकाइयाँ सधियाँ नहीं कर सकती है। कैण्टनों को इस विषय में सीमित शक्तियाँ प्राप्त हैं।

(६) स्विस संविधान में संशोधन करने के लिए आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाओं का स्वच्छन्द प्रयोग किया जाता है और स्विस संविधान में परिवर्तन करना अमेरिका के संविधान से सरल है।

(७) माँग होने पर स्विट्जरलैंड में संघीय कानूनों पर जन-निर्देश किया जा सकता है किन्तु संयुक्त राज्यों में ऐसा नहीं है।

(८) संघीय न्यायालय संघीय कानूनों को अवैध घोषित नहीं कर सकता,

जबकि संयुक्त राज्य का सुप्रीम कोर्ट अनेक संघीय कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है।" (Constitutional Law, pp 28-29)

Suggested Readings

Brooks	Government and Politics of Switzerland
Bryce	Modern Democracies
Buell	Democratic Governments in Europe.
Ghosh, R. C.	The Government of the Swiss Republic, 1953.
Huber, Hans	How Switzerland is Governed
Hughes, Christopher	The Federal Constitution of Switzerland
Lloyd and Hobson	The Swiss Democracy.
Lowell, A. L.	: Government and Parties of Continental Europe, 1918.
Rappard, W. E.	The Government of Switzerland.

संघीय कार्यपालिका

(The Federal Executive)

स्विट्‌जरलैंड की कार्यपालिका का अपना विशेष स्थान है और बहुल-कार्य-कारिणी—कार्यपालिका—(Plural Executive) के नाम से विख्यात है। केन्द्रीय कार्यपालिका-सत्ता (Federal Executive Authority) सात सदस्यों वाली संघीय परिषद् में निहित है जिसको संघ संसद् चार वर्ष के लिए चुनती है। उसका कार्यकाल शीघ्र भी समाप्त हो सकता है यदि राष्ट्रीय परिषद् (National Council) जो कि संघीय विधानमण्डल का निम्न सदन है, पहले भंग हो जाए, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। यद्यपि कौंसिलरों का चुनाव चार वर्ष के लिए होता है, तथापि वे उतनी बार पुनर्निर्वाचित हो सकते हैं जितनी बार वे चाहें। कितने ही व्यक्ति २० अथवा ३२ वर्ष तक सदस्य रहे हैं। उनके बार-बार पुनर्निर्वाचित होने का कारण यह है कि वे दलगत नीति से ऊपर उठकर कार्य करते हैं। उनकी नियुक्ति दल से सम्बन्धित होने के कारण नहीं होती, प्रत्युत् उनकी प्रशासकीय योग्यता तथा चरित्र की दृढ़ता के कारण होती है। "प्रशासकीय बुद्धिमत्ता, मानसिक समझ, कुशलता तथा शील के कारण प्रत्याशी खड़े किए जाते हैं।"

संघीय परिषद् के सदस्य साधारणतः संघ-संसद् के सदस्यों में से चुने जाते हैं, यद्यपि बाहर से चुनने के लिए कोई वैधानिक अड़चन नहीं है। प्रत्येक स्विस नागरिक जो संघ संसद् का सदस्य बन सकता है, परिषद् का सदस्य भी चुना जा सकता है। संविधानीय प्रतिबन्ध केवल इतना है "कि एक कैंटन से एक से अधिक सदस्य संघीय परिषद् के लिए नहीं चुना जा सकता।" किन्तु प्रथा के अनुसार बर्न, ज्यूरिच और वोड के प्रतिनिधि सदा ही परिषद् में सम्मिलित होते हैं। संक्षेप में जर्मन-भाषियों में ४, फ्रांसीसी-भाषियों में से २, तथा इटालियन-भाषियों का १ सदस्य होता है।

महासंघ का अध्यक्ष (President of the Confederation)—संघीय परिषद् के सात सदस्यों में से संघ संसद् एक सदस्य को अध्यक्ष मनोनीत करती है। उसकी स्थिति न तो अमेरिका के राष्ट्रपति के सदृश होती है और न इंगलैंड के प्रधान मन्त्री के समान। वह संघीय परिषद् का राष्ट्रपति होने के नाते कुछ विशेषाधिकार प्राप्त नहीं करता। अपने साथियों के समान वह भी एक विभाग का इन्चार्ज होता है। वह अपने समकक्षों (equals) में से प्रथम होता है और इसलिए 'विशेष महत्त्वरहित अध्यक्ष' कहा जाता है। वह अपने साथियों से ६० पौण्ड अधिक वार्षिक प्राप्ति करता है। कोई व्यक्ति लगातार दो वर्ष तक राष्ट्रपति नहीं रह सकता। किन्तु एक वर्ष के अवकाश के पश्चात् वह पुनर्निर्वाचित हो सकता है।

महासंघ का अध्यक्ष संघीय परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है और निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। वह उत्सवों (ceremonial

occasions) की अध्यक्षता करता है। वह विदेशों के शासकों तथा मन्त्रियों का स्वागत करता है। वह विभिन्न मन्त्रालयों को मिलाने वाली शृंखला है। वह अपने सहयोगियों में प्रथम तथा अधिक सम्मान का अधिकारी होता है। किन्तु "प्राथमिकता केवल औपचारिक होती है; वह किसी भी रूप में कार्यपालिका का अध्यक्ष नहीं होता।" लावल के अनुसार, "वह साधारण रूप से राष्ट्र की कार्यपालिका समिति (Executive Committee) का अध्यक्ष (Chairman) होता है, और इस कारण वह यह जानने का प्रयत्न करता है कि उसके साथी क्या कर रहे हैं। वह राज्य के नाममात्र के अध्यक्ष के औपचारिक कर्त्तव्यों को पूरा करता है।" इतना कुछ होने पर भी स्विस अध्यक्षपद प्रत्येक राजनीतिज्ञ के लिए सर्वोच्च पद है तथा उसे जनसेवा का सर्वोच्च पुरस्कार समझा जाता है।

संघीय मन्त्रियों की स्थिति (Position of Federal Councillors)—संघीय परिषद् के प्रत्येक सदस्य की स्थिति तथा शक्ति समान होती है। संघीय परिषद् के अध्यक्ष को अपने साथियों को चुनने की स्वतन्त्रता नहीं होती क्योंकि वह स्वयं भी उसी विधि के द्वारा चुना जाता है जिस विधि से उसके साथी। उन सब को चुनने वाली संस्था भी एक ही होती है। संघीय परिषद् मन्त्रिमण्डल की तरह कार्य नहीं करती। उसके सदस्य किसी एक दल के न होकर सब प्रमुख दलों में से लिए जाते हैं। सदस्यों में मत-विभिन्नता हो सकती है। यदि वे एक-दूसरे का विरोध विधानमण्डल में करें तो कोई आश्चर्य नहीं। संघीय परिषद् के सदस्यों की वह स्थिति नहीं है जो इंगलैंड के मन्त्रियों की होती है। उनकी आलोचना की जा सकती है तथा उनके बिल को रद्द किया जा सकता है। इतना कुछ होने पर भी यह आवश्यक नहीं कि वे त्याग-पत्र दें। "यदि वे किसी विषय पर हार जाते हैं, तो वे इंगलैंड और फ्रांस की तरह त्याग-पत्र नहीं देते। वे अपने अपमान को सहन करते हैं तथा विधानमण्डल की इच्छा का इतनी अच्छी तरह पालन करते हैं जितना कि वे कर सकते हैं।" पुनः, "स्विस संघीय परिषद् एक वकील अथवा शिल्पकार की भाँति है, उसका परामर्श माँगा जाता है तथा अधिकतर उसको मान लिया जाता है, किन्तु उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि यदि उसका स्वामी उसके परामर्श के विरुद्ध कोई कार्य करना चाहे तो वह अपने पद को छोड़ दे।" किन्तु जब १९३४ का सार्वजनिक व्यवस्था विधेयक (Bill for the maintenance of public order) जन-निर्देश में रद्द कर दिया गया तब कौंसिलर हैबरलिन ने पद त्याग दिया। इसी ने ही बिल बनाया था।

जहाँ तक विधानमण्डल से सम्बन्ध का प्रश्न है, यह न अमेरिका की पद्धति का अनुसरण करती है और न ब्रिटिश पद्धति का। यह दोनों के मध्य मार्ग का अनुसरण करती है। यह अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि इसके सदस्यों का निर्वाचन संघीय विधान सभा करती है तथा जब वे विधानमण्डल में उपस्थित हों, तब उनकी आलोचना[1] की जा सकती है। वे संसदीय प्रणाली के अनुसार

१. प्रश्नोत्तर (interpellations) के प्रयोग ने कौंसिलरों के उत्तरदायित्वों को प्रत्यक्ष तथा सुगम बना दिया है, किन्तु सम्बन्धित कौंसिलर से प्रश्न करने पर कोई मत नहीं लिया जाता।

उन अधिकारों को भी प्राप्त नहीं करते जो इंगलैंड के मन्त्रिमण्डल को प्राप्त होते हैं। संघीय परिषद् के सदस्यों को विधानमण्डल की सीटें निर्वाचित होते ही छोड़नी पड़ती हैं। किन्तु वे दोनों सदनों में बैठ सकते हैं, कार्यवाही में भाग ले सकते हैं, पर उन्हें वोट देने का अधिकार नहीं। यद्यपि उनकी आलोचना की जा सकती है, उनके विधेयक को रद्द किया जा सकता है, तो भी वे पद त्यागने के लिए बाध्य नहीं हैं। संघीय विधानमण्डल संघीय परिषद् को कुछ कार्य विशेष विधि से करने को कह सकता है। यह कहा जाता है कि संघीय परिषद् केवल "विधेयकों का मसविदा बनाने वाले उच्चकोटि के संगठन (ब्यूरो) की तरह है।" संघीय परिषद् सन्धि करने से पूर्व विधानमण्डल की स्वीकृति लेती है तथा सन्धि करने के पश्चात् भी स्वीकृति लेनी अनिवार्य है।

इतना कुछ होने पर भी संघीय परिषद् संघीय विधानमण्डल से व्यवहार करने में दृढ़ है।[1] ब्राइस के अनुसार, "यह पथ-प्रदर्शक (guide) भी है और साधन (instrument) भी, बहुधा यह सुझाव भी देती है तथा मसविदा भी तैयार करती है।" कुछ अत्यावश्यक विधेयक संघीय परिषद् के सदस्यों द्वारा ही आरम्भ किए जाते हैं और जब विधानमण्डल के सदस्य कोई विधेयक उपस्थित करते हैं तब समितियों में भेजने से पूर्व वे परिषद् को भेजे जाते हैं। संघीय परिषद् के सदस्यों के दीर्घकाल से पदों पर आरूढ़ रहने के कारण उनका अत्यधिक मान होता है तथा उनके विधेयकों को विधानमण्डल आसानी से रद्द नहीं कर सकता। संघीय विधानमण्डल की स्थिति आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाओं के कारण दृढ़ नहीं है। विश्वयुद्धों (१९१४ तथा १९३९) के अवसरों पर स्विट्ज़रलैंड की सुरक्षा, अखण्डता तथा तटस्थता को स्थिर रखने के लिए संघीय विधानमण्डल ने संघीय परिषद् को असमर्यादित सत्ता प्रदान की थी।

संघीय परिषद् के बहुत से कार्यों तथा शक्तियों का संविधान में उल्लेख किया गया है। यह संघीय विधानमण्डल के कानूनों तथा अध्यादेशों (Ordinances) को लागू कराती है। यह विदेशी सम्बन्धों के लिए उत्तरदायी है। देश की रक्षा का भार भी इसके ही सिर पर है और इसीलिए यह सेना का नियन्त्रण तथा निरीक्षण करती है। यह संघीय बजट तैयार करती है, विधानमण्डल से उसे पास कराती है तथा संघीय वित्त (federal finances) का प्रबन्ध करती है। यह प्रतिवर्ष आन्तरिक तथा विदेशी क्षेत्रों में किए गए अपने कार्य की रिपोर्ट विधानमण्डल को देती है। यह कैन्टनों की उन सन्धियों का निरीक्षण करती है जो वे आपस में अथवा पड़ोसी राज्यों से करते हैं। यह समस्त राष्ट्र की शान्ति तथा व्यवस्था की देख-भाल करती है। यह कैन्टनों में कैन्टन सरकार द्वारा सन्धियों को लागू कराती है। यदि कैन्टन सरकार संघ-सरकार का साथ दे तो संघीय परिषद् कोई भी पग उठा सकती है। "कौंसिलर, यह तथा अन्य सभी कर्तव्यों को प्रशंसनीय रीति से पूरा करते हैं। अतः कभी-कभी कोई कठिनाई भी होती है; किन्तु जब किसी कारण कैन्टन ...

१. मनरो के अनुसार, यद्यपि संघीय परिषद् को सदैव विधायिका की इच्छा के सामने झुकना ..., परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि परिषद् सदनों का अधिकतर पथ-प्रदर्शन करती है।

झंझट पैदा होता है, तब उसे बाधित करने की रीति कुछ विचित्र है।" संघीय परिषद् केवल उसकी आर्थिक सहायता रोक देती है और अपनी सेनाएँ कैन्टन में भेज देती है जो कि अपना कार्य बिना रक्तपात के पूरा कर देती है, क्योंकि लूट-मार नहीं करती और न किसी को जलाती है, किन्तु वे शान्ति से कैन्टन के व्यय पर वहाँ ठहरती हैं और इस तरह उसके खर्च पर ही उसे परास्त कर देती है। निश्चित रूप से यह आज्ञा-पालन कराने की नई रीति है किन्तु यह मितव्ययी स्विसों के लिए अत्यधिक प्रभावी है। युद्ध को छोड़कर शेष सब संघीय नियुक्तियाँ संघीय परिषद् करती है। संघीय परिषद् देश में शान्ति तथा व्यवस्था रखने के लिए उत्तरदायी है। यदि संकटकाल में, संघीय सभा की बैठकें न हो रही हो तो संघीय परिषद् को अधिकार है कि यह सेनाओं को आज्ञा दे सके और आवश्यकतानुसार उनको यथास्थान कार्य पर लगा सके। किन्तु तुरन्त ही विधानमण्डल का अधिवेशन बुलाकर उसके सम्मुख विषय को रखा जाता है। संघीय परिषद् विशेष प्रयोजनों के लिए विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ उठा सकती है। संघीय अफसरों के व्यवहार से सम्बन्धित अभियोगों का निर्णय भी संघीय परिषद् अपने न्यायिक सामर्थ्य से करती है। संघीय सरकार का यह भी कर्तव्य है कि वह संघीय ट्रिब्युनल के निर्णय लागू कराये तथा कैन्टनों के झगड़ों में पंच-निर्णयों तथा समझौतों का पालन करे।

लॉर्ड ब्राइस के अनुसार, 'किसी अन्य आधुनिक गणराज्य में कार्यपालिका शक्ति एक व्यक्ति के स्थान पर एक परिषद् को नहीं सौंपी गई है और न किसी स्वतन्त्र राज्य में कार्यकारिणी कार्यपालिका (working executive) का दलीय राजनीति से इतना कम सम्बन्ध रहा है। परिषद् इंग्लैंड के मन्त्रिमण्डल के समान नहीं है क्योंकि यह विधानमण्डल का नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा अपदस्थ भी नहीं हो सकती। यह संयुक्त राज्य की कार्यपालिका की भाँति विधानमण्डल से स्वतन्त्र नहीं है......और यद्यपि इसकी कुछ विशेषताएँ दोनों में पाई जाती है तथापि स्पष्ट रूप से दलीय सम्बन्ध न होने के कारण उनसे भिन्न है। यद्यपि यह दल के बाहर है, तो भी यह दलीय कार्य करने के लिए नहीं चुनी जाती, दलीय नीति को निश्चित नहीं करती तथापि यह पूरी तरह दलीय भावना से रहित नहीं है।"

लार्ड ब्राइस के अनुसार, "यह (स्विस कार्यकारिणी) ऐसी संस्था है जो कि नागरिकों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कम करते हुए विधान सभा को केवल सलाह देने और प्रभावित करने का ही कार्य नहीं करती प्रत्युत् निष्पक्ष होने के कारण समझौते की भावना से विरोधी दलों में मेल कराने और कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर मध्यस्थता कर सकती है। यह माने हुए प्रशासकों को राष्ट्र की सेवा में रखने में समर्थ है चाहे कुछ विशेष विषयों पर सभासदों (Councillors) के निजी विचार कुछ हों, जो कि कुछ समय के लिए पार्टियों को विभाजित कर देते हैं......। यह नीति में स्थिरता लाती है और परम्पराओं को बनने का अवसर देती है।"

राष्ट्रपति लावल के मतानुसार, "संघीय परिषद् को राष्ट्रीय सरकार रूपी घड़ी की बड़ी कमानी माना जा सकता है और निश्चित रूप से यह राष्ट्रीय

सतुलन चक्र (Balance Wheel) है।" संघीय परिषद् का कर्त्तव्य विरोधी दलों के बीच मध्यस्थता करना, उनकी कठिनाइयों को ठीक करना तथा दोनों में समझौता कराना है। "संघीय कार्यपालिका शक्ति का प्रभाव इसके जन्म लेने के पचास वर्ष के अन्दर इतना अधिक बढ़ गया है कि संघीय राज्य में वह सर्वाधिक प्रभावी अंग बन गई है। हमारी आन्तरिक तथा बाह्य राजनीति में सम्पूर्ण महासंघ (Confederation) तथा कैन्टनों में सार्वजनिक जीवन के शान्तिपूर्ण विकास के लिए संघीय परिषद् बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता के कार्यों पर निर्भर रही है।"

सामूहिक कार्यकारिणी की विशेषताएँ (Merits of Plural Executive)—स्विट्ज़रलैंड में प्रचलित सामूहिक कार्यकारिणी के अनेक लाभ हैं। स्विस संघीय परिषद् (Federal Council) देश के समस्त प्रकार के विचारों तथा क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अपने काम में निष्पक्ष कहलाने की मान्यता प्राप्त है। वह संघीय विधान सभा (Federal Assembly) को प्रभावित करने और सलाह देने के अलावा, "समझौते की भावना (conciliation) से विरोधी दलों में मेल कराने और कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर मध्यस्थ हो सकती है। स्विस प्रणाली में दृढ़ता और स्थायित्व भी है। स्विस कार्यपालिका अपने पद पर बने रहने के लिए विधान सभा के मत पर निर्भर नहीं है। अतएव वह एक सुसम्बद्ध (coherent) और दृढ़ नीति का अनुसरण करने की स्थिति में है। परिणाम यह है कि देश अनुभवी और योग्य प्रशासकों की सेवाओं का लाभ उठाने में समर्थ है। ऐसी बात प्रजातन्त्रीय सरकार में सम्भव नहीं है। स्विस प्रणाली नीति की निरन्तरता (continuity) तथा स्वस्थ परम्परा बनाने में सहायक है। स्विस प्रणाली "संस्था को उन क्षणिक आवेगों (transient impulses) से ऊपर उठा देती है जो कि जनता को उत्तेजित कर देते हैं।"

मनरो के मतानुसार, "वह बहुल कार्यपालिका नियुक्त करती है जिसमें एकीकृत (unified) कार्यपालिका के समस्त गुण हैं। इसके कारण सबसे योग्य व्यक्ति अपने पद पर रह सकते हैं चाहे वे किसी भी दल के सदस्य क्यों न हों।"

स्विस कार्यपालिका की विशेषताएँ (Special Features of Swiss Executive)—स्विस कार्यपालिका के विशेष गुणों का उल्लेख किया जा सकता है। जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है यह 'कालिजिएट' या सामूहिक है। इसमें कोई प्रधान मन्त्री नहीं होता और स्विस महासंघ के राष्ट्रपति को अपने साथी चुनने का अधिकार नहीं होता। उसका उन पर कोई अधिकार नहीं होता। इसके अतिरिक्त स्विस कार्यपालिका एक साथ संसदीय (parliamentary) तथा असंसदीय (non-parliamentary) है। यह इस अर्थ में संसदीय है कि इसके सदस्य विधानमण्डल के द्वारा चुने जाते हैं। उन्हें विधानमण्डल में उपस्थित होने का अधिकार है। वे विधेयकों को पुरःस्थापित कर सकते हैं और वाद-विवाद में भाग ले सकते हैं। वे विधानमण्डल की इच्छा को पूरा करते हैं। किन्तु इंगलैंड और स्विट्ज़रलैंड में कार्यपालिका को विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी बनाने का भिन्न साधन है। इंगलैंड में मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना होता है यदि संसद् उसके द्वारा पुरःस्थापित विधेयक को रद्द कर दे, या किसी गैर-

सरकारी सदस्य के विधेयक को सरकार का विरोध होते हुए पास कर दे। स्विट्जरलैंड मे संघीय परिषद् के सदस्यों से अपदस्थ होने की आशा नही की जाती, यदि उनके द्वारा पुरःस्थापित विधेयक को सघीय सविधान सभा रद्द कर दे। वे या तो विधेयक को छोड़ देते है या आलोचना के आधार पर उसे दोबारा बनाते है। स्विस कार्यपालिका इस अर्थ मे असंसदीय है कि इसके सदस्य विधानमण्डल के सदस्य नही है। यदि विधानमण्डल का कोई सदस्य सघीय परिषद् का सदस्य चुना जाता है तो उसे संघीय विधान सभा मे अपना पद छोड़ना पडता है। सघीय परिषद् के सदस्यों का कार्य-काल निश्चित है। सघीय विधानमण्डल उन्हे उस समय से पहले अपदस्थ नही कर सकता। यह निर्देश किया जाता है कि स्विस कार्यपालिका मे उत्तरदायित्व और स्थिरता के गुणों का सम्मिश्रण है। इसके अतिरिक्त, स्विस कार्यपालिका विधानमण्डल के दलीय बहुमत (party majority) पर आधारित नही है। इसके सदस्य "केवल विभिन्न दलीय समूहों से ही नही, प्रत्युत् उन दलीय समूहों मे से चुने जाते है जो एक-दूसरे के मौलिक रूप से विरोधी हों।" सघीय परिषद् का निर्दलीय होना उसे स्थायी संस्था बनाता है। पुराने सदस्य उस समय तक बार-बार चुने जाते है जब तक उनकी सेवा करने की इच्छा हो।

संघीय प्रशासन (Federal Administration)—निम्न सात विभाग सघीय परिषद् के सात सदस्यों के अधीन है—

१. राजनैतिक विभाग जिसमें विदेशी सम्बन्ध, नागरिक बनाना तथा परदेशगमन शामिल है।

२. वित्त तथा सीमाशुल्क (Finance and Customs)।

३. गृह (Interior)।

४. न्याय तथा पुलिस (Justice and Police)।

५. कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य सहित अर्थ-व्यवस्था (Public Economy)।

६. डाक तथा रेलवे (Posts and Railways)।

७. सैनिक विषय (Military)।

प्रत्येक विभाग कई सेवाओ अथवा सगठनो मे विभाजित होता है जिनमे से प्रत्येक मे कुछ सघीय अफसर होते हैं। इसका कारण यह है कि संघीय कार्यों मे से अधिकांश कैण्टनों के अफसरो से कराये जाते है तथा संघ-सरकार उनको अपने अफसरों द्वारा पूरा नही कराती। इसके होते हुए भी दोनों विश्वयुद्धों मे सघीय अफसरो की सख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। नौकरशाही (bureaucracy) की वृद्धि को एक गम्भीर भय माना गया। एडरे के अनुसार, "उसे अन्त मे उस शासन विधि मे समझौता करना पडता जो कैन्टनों के स्वायत्त शासन (Cantonal autonomy) तथा जन-साधारण के प्रत्यायोजन (Popular Delegation) पर आधारित है, कहने का तात्पर्य यह है कि यह वह शासन-विधि है जो मानवीय गुणों को अधिकाधिक पृथक् करने वाले प्रशासकीय तन्त्र (administrative mechanism) के स्थान पर मनुष्यों मे अधिक विश्वास करती है।"

सघीय नागरिक सेवा (Civil Service) के अधिकांश सदस्यों की नियुक्ति

संघीय परिषद् करती है और वही उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही (disciplinary action) भी करती है। स्विट्जरलैंड में पदों की लूट की प्रथा (spoils system) नहीं है तथा किसी नागरिक सेवा के सदस्य को राजनैतिक कारणों से नहीं हटाया जाता। नौकरियों के लिए कड़ी प्रतियोगिता भी नहीं होती क्योंकि नौकरियों के वेतन कम होते हैं। जनमत इतना प्रबल है कि अयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया ही नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त "अपराधी को चाहे उसकी स्थिति कितनी ही दृढ़ क्यों न हो, सार्वजनिक जीवन तुरन्त त्यागना ही पड़ता है।"

संघीय चांसलरी (The Federal Chancellory)—संघीय चांसलरी संघीय विधान सभा और संघीय परिषद् के सचिव-सम्बन्धी कार्य (secretarial business) के लिए उत्तरदायी है। यह संघ के अध्यक्ष के नियन्त्रण में रहती है, किन्तु अन्तिम नियन्त्रण संघीय विधान सभा का होता है। संघ के चांसलर को संघीय विधानमण्डल के दोनों सदन संयुक्त बैठक में चुनते हैं। यद्यपि उसकी कार्य-विधि एक बार में चार वर्ष की होती है, तथापि सामान्य परिपाटी के अनुसार उसे उतने समय तक पद पर कार्य करने की आज्ञा दे दी जाती है, जब तक वह चाहे। ह्यूगज (Hughes) के अनुसार, "चुनाव में अच्छा राजनीतिक उत्साह होता है। संघीय परिषद् वाइस-चान्सलरों की नियुक्ति करती है और साधारणतः चान्सलर का पद रिक्त होने से पहले ही उनमें से एक का उस पर नैतिक दावा हो जाता है।" चांसलर के पद को अत्यधिक आदर प्राप्त है। चान्सलर संघीय परिषद् का सचिव होता है। उसे बैठकों के बाद पत्रकारों से भेंट करनी पड़ती है। जब संघीय विधानमण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है, तब वह उनके सचिव का कार्य करता है। उसे Recueil des Lois और Feuille Federale के प्रकाशन की देख-भाल करनी पड़ती है। उसे संघीय विधानमण्डल के पास किए हुए विधेयकों पर प्रति-हस्ताक्षर (countersign) करने पड़ते हैं। उसे अनुवाद और संक्षिप्त लिपि (shorthand) के कार्य का निरीक्षण करना पड़ता है।

Suggested Readings

Brooks	*Government and Politics of Switzerland.*
Hughes, Christopher	The Federal Constitution of Switzerland.
Rappard, W. E.	The Government of Switzerland.

अध्याय १८

संघीय विधानमण्डल

(The Federal Legislature)

संघीय विधानमण्डल को संघीय सभा (Federal Assembly) कहते हैं। इसमें दो सदन राष्ट्रीय परिषद् (National Council) तथा राज्य परिषद् (Council of States) होते हैं।

राष्ट्रीय परिषद् (National Council)—राष्ट्रीय परिषद् निम्न सदन है। यह जन-निर्वाचित सदन है तथा "राष्ट्रीय" शब्द अभिप्रायपूर्ण (significant) है। राष्ट्रीय परिषद् की सम्पूर्ण संख्या संविधान ने निश्चित नहीं की है। यह तो जन-संख्या के अनुसार बदलती रहती है। पहले २० हजार जनसंख्या के लिए एक प्रतिनिधि चुना जाता था किन्तु अब २२ हजार के लिए एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता है। वास्तव में प्रति दसवें वर्ष जन-गणना (census) होती है और उस जनगणना के आधार पर प्रत्येक कैन्टन के प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की जाती है। किन्तु विशेष रूप से व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक कैन्टन अथवा अर्द्ध-कैन्टन का कम-से-कम एक प्रतिनिधि निम्न सदन में अवश्य हो। इसका यह उद्देश्य मालूम होता है कि किसी विशेष कैन्टन के निवासियों के हितों का प्रतिनिधित्व सुरक्षित रहे। इसकी सम्पूर्ण संख्या दो सौ के लगभग होती है। १९४३ में बर्न के ३३ प्रतिनिधि थे तथा चार कैन्टनें ऐसी थीं, जिनमें से प्रत्येक ने एक प्रतिनिधि भेजा। राष्ट्रीय परिषद् के सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व (proportional representation) प्रणाली के आधार पर चुने जाते हैं। प्रत्येक २० अथवा अधिक वर्ष का पुरुष वोट दे सकता है। निर्वाचन क्षेत्र संघीय विधानमण्डल निर्धारित करता है, न कि कार्यपालिका। राष्ट्रीय परिषद् की सदस्यता काफी स्थिर होती है और अधिकांश सदस्य पुनर्निर्वाचित हो जाते हैं। पहले राष्ट्रीय परिषद् की अवधि तीन वर्ष थी किन्तु १९७० मे चार वर्ष कर दी गई।

राज्य परिषद् (Council of States)—राज्य परिषद् अमेरिकन सैनेट अथवा भारतीय राज्य सभा के समान है। यह जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती। यह स्विस संघ की इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है। संयुक्त राज्यों की भाँति प्रत्येक इकाई दो प्रतिनिधि भेजती है, चाहे उसकी जनसंख्या अथवा क्षेत्रफल कुछ भी क्यों न हो, किन्तु अर्द्ध-कैन्टन का एक प्रतिनिधि राज्य परिषद् में बैठता है। इसके सदस्यों की संख्या ४४ है। स्विट्ज़रलैंड में राज्य परिषद् के सदस्यों का कार्यकाल तथा उनके निर्वाचन की रीति विभिन्न कैन्टनों में विभिन्न प्रकार की है। २१ कैन्टनों ने राज्य परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन या तो प्रत्यक्ष जनमत द्वारा होता है अथवा आरम्भिक सभाओं (Primary assemblies) के द्वारा। चार कैन्टनों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उनके विधानमण्डल करते हैं। सदस्यों का कार्यकाल एक से चार वर्ष तक का होता है। प्रत्येक कैन्टन अपने प्रतिनिधि का वेतन देती है।

यह द्रष्टव्य तथ्य है कि राज्य परिषद् का अध्यक्ष (President) तथा उपाध्यक्ष निर्वाचित होते हैं। निर्वाचन प्रतिवर्ष किया जाता है। कोई व्यक्ति लगातार दो वर्ष तक राज्य परिषद् का अध्यक्ष नहीं रह सकता। राष्ट्रीय परिषद् भी अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का निर्वाचन इसी प्रकार करती है।

संघीय सभा के कार्य तथा शक्तियाँ (Powers and Functions of Federal Assembly)—यह ठीक ही कहा गया है कि विश्व के बहुत कम विधानमण्डल इतने प्रकार के कार्य करते हैं जितने कि स्विस विधानमण्डल करता है। संविधान व्यवस्था करता है कि "संघीय सभा उन सब विषयों पर विचार करेगी जो उसे वर्तमान संविधान के द्वारा प्राप्त हुए है तथा जो किसी अन्य संघीय प्राधिकरण को नहीं दिये गये।" संविधान इस बात की व्यवस्था करता है कि संघीय परिषद् देश की सर्वोच्च कार्यपालिका है तथा संघीय ट्रिब्यूनल उच्चतम न्यायालय है। इससे स्पष्ट है कि जहाँ न्यायिक क्षेत्र में संघीय ट्रिब्यूनल सर्वोच्च है वहाँ संघीय परिषद् सर्वोच्च कार्यपालिका तथा संघीय सभा विधान बनाने के क्षेत्र में उच्चतम है।

संघ सभा वार्षिक बजट पास कर सकती है, वह संघ सरकार को ऋण लेने की स्वीकृति देती है, संघीय पद स्थापित करती है, उसके वेतन निश्चित करती है तथा संघीय संविधान का पुनरीक्षण करती है। इन शक्तियों के अतिरिक्त संघ सभा कमाण्डर-इन-चीफ की नियुक्ति करती है तथा संघीय परिषद् और संघीय ट्रिब्यूनल के सदस्यों का निर्वाचन करती है। संघीय सभा विदेशों से की गई सन्धियों तथा समझौतों की पुष्टि करती है। यह कैन्टनों की पारस्परिक तथा पड़ोसी राज्यों से की गई सन्धियों को मान्य ठहराती है। १९३१ का एक संशोधन इस बात की व्यवस्था करता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ जो कि अनिश्चित काल अथवा १५ वर्ष से अधिक के लिए की जाती हैं, उन्हें जन-निर्देश के लिए प्रसारित किया जाना चाहिए। यह तब भी किया जायेगा जबकि ३०,००० नागरिक अथवा आठ कैन्टनें इसकी माँग करेंगी।

संघीय सभा वे सब पग उठाती है जो कि स्विट्ज़रलैंड की विदेशी आक्रमण से प्रतिरक्षा अथवा तटस्थता को कायम रखने (preservation) के लिए आवश्यक हो। संघीय सभा युद्ध अथवा शान्ति की घोषणा करती है। संघीय सभा का कर्तव्य कैन्टनों की वैधानिक तथा क्षेत्रीय अखण्डता (territorial integrity) को स्थिर रखना है। जब किसी कैन्टन की शान्ति को भय हो तब इसे हस्तक्षेप करना पड़ता है। संघीय सभा राष्ट्रीय सेना का नियन्त्रण तथा नागरिक प्रशासन के कार्यों का निरीक्षण करती है। यह क्षमादान भी कर सकती है। प्रशासकीय अभियोगों में भी संघीय सभा को अन्तिम अधिकार प्राप्त है।

कतिपय उद्देश्यों के लिए संघीय सभा के दोनों सदनों की संयुक्त बैठकें होती हैं। वे उद्देश्य ये है—स्विस संघ के अध्यक्ष, संघीय ट्रिब्यूनल के सदस्यों, संघीय सेना के कमाण्डर-इन-चीफ, संघ के चान्सलर इत्यादि का निर्वाचन करना, संघीय अधिकारियों के क्षेत्राधिकार के झगड़े तय करना तथा क्षमा-दान। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को राष्ट्रीय सभा (National Assembly) कहते है और इसमें राज्य परिषद् अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करता है।

दोनों सदनों के सम्बन्ध (Relations between two Houses)—दोनो सदन समान हैं। कोई विधेयक किसी भी सदन में लाया जा सकता है। सघीय परिषद् के सदस्य दोनों सदनों में वैठते है और प्रश्नों के उत्तर देते है। जहाँ तक विधेयकों के आरम्भ होने का प्रश्न है, दोनों सदनों के अध्यक्ष अधिवेशन आरम्भ होने से पूर्व एकत्रित होते है और निश्चित करते है कि कौन-कौन से विधेयक किस-किस सदन में आरम्भ किये जायेंगे। डा० स्ट्रोग के अनुसार, "स्विस कार्यपालिका की तरह ही स्विस विधानमण्डल भी अद्वितीय है। विश्व मे यही विधानमण्डल है जिसके उच्च सदन तथा निम्न सदन मे कोई अन्तर नही है।"

यह सत्य है कि संविधान दोनों सदनों को समान स्थिति प्रदान करता है, किन्तु व्यवहार मे राष्ट्रीय परिषद् राज्य परिषद् से अधिक दृढ हो गई है। इसका आशिक कारण यह है कि राष्ट्रीय परिषद् को राष्ट्र का सदन समझा जाता है और राज्य परिषद् को कैन्टनों का। प्रजातन्त्रीय युग मे, निर्वाचित सदन का दूसरे की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होना तथा आदर पाना आवश्यक है।

संघीय सभा तथा परिषद् (Federal Assembly and Council)—जहाँ क संघीय सभा तथा संघीय परिषद् के सम्बन्धों का प्रश्न है, यह पहले ही कहा जा चुका है कि यद्यपि संघीय सभा ही संघीय परिषद् की रचना करती है तथापि वह उसकी आलोचना भी कर सकती है। सघीय सभा सघीय परिषद् की तुलना में अधिक शक्तिशाली नही है। स्विट्ज़रलैंड मे मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व नही है, अत: संघीय परिषद् के सदस्य वर्षों अपने पद पर सघीय सभा मे की गई आलोचना की परवाह न करते हुए वने रहते है। संघीय परिषद् के सदस्यों को उनकी निष्पक्षता तथा स्थायित्व के कारण पर्याप्त मान-सम्मान प्राप्त है, परिणामत. वे जो कुछ विधेयकों के रूप में सघीय सभा मे लाते है उसे स्वीकार कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त, आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाओं ने भी सघीय सभा की स्थिति को दुर्बल किया है।

यह ध्यान रहना चाहिए कि सघीय सभा का अधिकाश कार्य काम-काजी ढग का होता है। अतएव बहुत-सा कार्य थोड़े से समय मे हो जाता है। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "स्विस विधायक (legislators) प्रश्नो का मध्यवर्गीय कारबारी दृष्टिकोण रखने का अभ्यस्त होता है, वह जर्मनों की तरह अमूर्त सिद्धान्तों (abstract principles) पर कम बातचीत करने वाला होता है तथा फ्रांसीसियों की आडम्बरपूर्ण कहावतों की ओर बहुत कम ध्यान देता है।" मनरो के अनुसार, "यह स्विस सदन को एक शान्तिमय स्थान बना देता है जो कि पैलेस वोर्बोन अर्थात् फ्रेंच संसद् भवन (Palais Bourbon) अथवा डेल आयरियन अर्थात् आयर की ससद् (Dail Eireann) से पूर्णत: विभिन्न है—लेकिन यह इसकी व्याख्या भी करना है क्योंकि सम्पूर्ण वर्ष का कार्य सात अथवा आठ सप्ताह मे समाप्त किया जा सकता है।"

Suggested Readings

Brooks : Government and Politics of Switzerland.
Hughes, Christopher : The Federal Constitution of Switzerland.
Rappard, W. E. : The Government of Switzerland.

न्यायपालिका तथा राजनैतिक पार्टियाँ

(Judiciary and Political Parties)

संघीय न्यायालय (The Federal Tribunal)—स्विट्ज़रलैंड में केवल एक संघीय न्यायालय है और उसे संघीय ट्रिब्यूनल कहते हैं। १८४८ के संविधान के द्वारा यह ट्रिब्यूनल निर्मित हुआ था। किन्तु इसकी शक्तियाँ १८७४ में बढ़ीं। बाद के संशोधनों ने उसके अधिकार-क्षेत्र को बढ़ा दिया। कार्य में वृद्धि होने के कारण, संघीय ट्रिब्यूनल का स्थायी सत्र रहता है तथा इसका मुख्य कार्यालय वौड (Vaud) कैन्टन की राजधानी लासेन (Lausanne) में है।

यह निर्देश किया जाता है कि संघीय ट्रिब्यूनल का लासेन में होना फ्रेंच-भाषी जनता की भावनाओं के लिए एक रियायत है जो कि संघीय शासन के शेष उपकरणों के जर्मनभाषी कैन्टन बर्न में केन्द्रित होने से सन्तुष्ट नहीं थी। यद्यपि संघीय ट्रिब्यूनल का अधिकांश कार्य लासेन में किया जाता है, पर यह फौजदारी कार्य (criminal work) के लिए अपने आपको पाँच भागों में बाँटता है तथा प्रत्येक भाग (section) एक-एक न्यायिक जिले (Assize District) में बैठता है जिनमें स्विट्ज़रलैंड इस प्रयोजन के लिए विभक्त किया गया है।

जहाँ तक संघीय ट्रिब्यूनल की रचना का सम्बन्ध है, इसमें २६ न्यायाधीश तथा ११ स्थानापन्न न्यायाधीश होते हैं। संविधान के अनुसार, तीनों भाषाओं के प्रतिनिधि संघीय ट्रिब्यूनल में होने चाहिएँ। संघीय सभा न्यायाधीशों को छः वर्ष के लिए निर्वाचित करती है। यह दो वर्ष के लिए ट्रिब्यूनल के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव भी करती है। प्रथा के अनुसार संघीय ट्रिब्यूनल के सदस्यों को जब तक वे चाहें तब तक पुनर्निर्वाचित कर लिया जाता है। प्रत्येक स्विस नागरिक, जो संघीय परिषद् का सदस्य बन सकता है, संघीय ट्रिब्यूनल का सदस्य भी बन सकता है। किन्तु, व्यवहार में वे ही सदस्य चुने जाते हैं जिनको अधिक कानूनी योग्यताएँ प्राप्त होती हैं। "यद्यपि कभी-कभी राजनैतिक पक्षपात (political predilections) वहाँ पर विद्यमान हो सकता है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने न्यायाधीशों की श्रेष्ठता को उससे अधिक गिराया है जितना इसी प्रकार के प्रभावों के कारण इंगलैंड में और (संघीय न्यायालयों के सम्बन्ध में) संयुक्त राज्यों में गिरा दिया जाता है।"

शक्तियाँ (Powers)—संघीय ट्रिब्यूनल का दीवानी, फौजदारी, सांवैधानिक तथा प्रशासकीय अभियोगों में आरम्भिक (original) तथा अपीलीय अधिकार-क्षेत्र है। दीवानी अभियोग का अधिकार-क्षेत्र कैन्टन तथा संघ (Confederation) के बीच कैन्टनों के बीच अथवा कैन्टन या संघ और व्यक्ति के बीच के सम्पत्ति सम्बन्धी झगड़ा तक विस्तृत है। कुछ विशेष परिस्थितियों में आरम्भिक अधिकार-क्षेत्र व्यक्तियों के ...रिक अभियोगों तक आ जाता है।

संघीय ट्रिब्यूनल का प्रारम्भिक फौजदारी अधिकार-क्षेत्र (Original Criminal Jurisdiction) उन अभियोगों तक सीमित है जिनमें संघ के विरुद्ध राजद्रोह, जाली मुद्रा चलाना, सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध हिंसा-प्रयोग, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विरुद्ध अपराध, उच्च सरकारी कर्मचारियों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के ऊपर लगाए गए फौजदारी के आरोप सम्मिलित हैं। कानून बनाकर अधिकार-क्षेत्र को बढ़ाया भी जा सकता है। फौजदारी अभियोगों को निपटाने के लिए संघीय ट्रिब्यूनल अपनी बैठक देश के विभिन्न पाँच स्थानों पर करता है। इन केन्द्रों में से प्रत्येक स्थान पर संघीय न्यायालय के तीन न्यायाधीश तथा समीपस्थ स्थानों के १२ जूरी बैठते हैं। विशेष रूप से यह व्यवस्था की गई है कि किसी व्यक्ति को अपराधी ठहराने के लिए ⅚ जूरियों का सहमत होना आवश्यक है।

संघीय ट्रिब्यूनल का वैधानिक क्षेत्राधिकार उन झगड़ों तक सीमित है जो संघ तथा कैन्टनों में, अन्त कैन्टन सार्वजनिक कानून, तथा कैन्टनों द्वारा उन व्यक्तिगत अधिकारों का कथित उल्लंघन, जो कि संघीय संविधान, कैन्टनों के संविधानों अथवा न्धियों अथवा कैन्टनों के पारस्परिक समझौतों द्वारा स्वीकृत किए गए हों।

'१९२८ से संघीय ट्रिब्यूनल को सार्वजनिक अफसरों की कानूनी क्षमता (ompetence) विषयक झगड़ों को तय करने का अधिकार मिल गया है। इस र ट्रिब्यूनल प्रशासकीय न्यायालय का कार्य भी करता है। पहले इस प्रकार के कमों को संघीय सभा ही निर्णीत करती थी।

स्विस संघीय ट्रिब्यूनल की स्थिति संयुक्त राज्य अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट अथवा भारतीय उच्चतम न्यायालय के समान दृढ़ नहीं है। अमेरिका का सुप्रीम कोर्ट राज्य-विधानमण्डलों तथा कांग्रेस के कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है। किन्तु स्विस ट्रिब्यूनल केवल कैन्टनों के विधानमण्डलों के कानूनों को ही अवैध घोषित कर सकता है। संघीय सभा के कानूनों के विषय में उसे उक्त शक्ति प्राप्त नहीं। संविधान में व्यवस्था की गई है कि ट्रिब्यूनल संघीय सभा के कानूनों का प्रशासन करेगा तथा सामान्य प्रकार के आदेश लागू करने का कार्यभार लेगा। यह संघीय सभा द्वारा मान्य सन्धियों के अनुसार भी कार्य करेगा। इसका आंशिक कारण यह है कि संघीय सभा के कानूनों की जनता के मत से पुष्टि की जाती है। जरकर (Zurcher) के अनुसार, "ट्रिब्यूनल के सीमित तथा अव्यवस्थित क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए, यह संघीय विधानमण्डल के कानूनों का पुनर्विलोकन (review) करने के लिए प्रभावी यन्त्र नहीं हो सकता, चाहे इसे यह शक्ति प्रदान ही क्यों न कर दी जाये।"

राजनीतिक पार्टियाँ (Political Parties)—प्रजातन्त्रीय प्रणाली को ग्रहण करने वाले स्विट्जरलैंड जैसे देश में राजनैतिक दलों का होना आवश्यक है। संघीय सभा के लिए निर्वाचन करना होता है। कैन्टनों के विधानमण्डलों के चुनाव लड़े जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित किए जाते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि स्विट्जरलैंड में दीर्घकाल से राजनैतिक पार्टियाँ पाई जाती हैं।

जातीय, धार्मिक, भाषा, उद्योग तथा परस्पर-विरोधी आर्थिक विभिन्नताओं के होने हुए भी स्विट्जरलैंड में पार्टी-भावना कम तीव्र तथा पार्टी-विरोध बहुत न्यून

है। और यहाँ के पार्टी आन्दोलन अन्य देशों के पार्टी आन्दोलनों की तरह राज्य की नैया को असंतुलित नहीं करते। इस अवस्था के अनेक कारण हैं—स्विस कार्यपालिका निर्दलीय तथा स्थायी है। संघीय परिषद् के सदस्य दलीय आधार पर नहीं चुने जाते। विभिन्न दलों तथा हितों को सम्मिलित करने का प्रत्येक प्रयत्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त जब एक बार कोई व्यक्ति संघीय परिषद् का सदस्य बन जाता है, तब उसे उतने काल तक पद पर बने रहने दिया जाता है जितने काल तक वह चाहे। परिणाम यह होता है कि जब संघीय परिषद् के लिए नये निर्वाचन किये जाते हैं, तब जीतने पर भी कोई पुरस्कार नहीं मिलता, क्योंकि अधिकतर संघीय परिषद् के पिछले सदस्यों को ही पुनर्निर्वाचित किया जाता है। दूसरी बात यह है कि उसमें कोई लाभ नहीं। अतः पार्टी-आन्दोलनों के लिए कोई प्रेरणा नहीं है। कहा जाता है कि जन-निर्देश की संस्था के कारण भी पार्टियाँ दुर्बल हैं। समस्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के अन्तिम निर्णय के लिए जनता से अनुरोध किया जाता है तथा विधानमण्डल की समस्त पार्टियाँ अपना महत्त्व खो देती हैं। यदि विधानमण्डल में किसी दल का बहुमत हो, तो वह अपने कानून को पास नहीं करा सकता यदि जनता उसे रद्द करने का निश्चय करे। कोई आश्चर्य नहीं कि पार्टी-भावना ठंडी है। संघीय नियुक्तियाँ दलीय आधार पर नहीं की जाती। उन पदों के वेतन भी आकर्षक नहीं हैं। नियुक्तियाँ योग्यतानुसार की जाती हैं अतएव कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसके लिए संघर्ष किया जाए। इसके अतिरिक्त स्विस जनता पारस्परिक मतभेदों को भुलाकर राष्ट्रीय हित को ऊँचा स्थान देती है। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "दीर्घकाल से कोई महत्त्वपूर्ण विषय देश के सम्मुख न होने, वर्तमान आर्थिक दशाओं के प्रति असन्तोष का अभाव, वर्ग संघर्ष (Class hatreds) की अनुपस्थिति तथा उस तत्व की अनुपस्थिति जिसके कारण पार्टी भावना उत्पन्न की जाती है, स्विस राजनैतिक पार्टियों के वर्तमान निष्प्रभ रूप की उत्तरदायी है। यह भी कहा जाता है कि एक दल के सदस्य विधानमण्डल में एक साथ नहीं बैठते। नियमानुसार, वे कैन्टनों के अनुसार बैठते है, चाहे उनकी पार्टी कोई हो। निर्वाचन के लिए सदस्यों को मनोनीत करने के विषय में भी साधारणतः "एक व्यक्ति जिसका अधिक सम्मान है तथा जिसने मूल्यवान सेवा की है, सब दलों के टिकटों पर खड़ा किया जाता है, चाहे उसकी पार्टी कुछ ही क्यों न हो तथा कुछ जिलों में यह भी होता है कि विभिन्न पार्टियाँ व्यक्तियों की सामान्य सूची पर सहमत हो जाती हैं।" राष्ट्रपति लॉवेल के अनुसार, "उस जाति के लिए जिसमें अपने सार्वजनिक व्यक्तियों के व्यक्तिगत भ्रष्टाचार को रोकने के लिए पर्याप्त ईमानदारी तथा बुद्धिमत्ता है तथा जिसको उन्नति करने के लिए पार्टी-संघर्षों की आवश्यकता नहीं है, आन्दोलनों से तथा दलीय नीति से छुटकारा पाना एक बहुत बड़ा लाभ है।"

राजनैतिक पार्टियों का इतिहास (History of Political Parties)—राजनैतिक पार्टियों का इतिहास १८४८ के संविधान से शुरू होता है। उस समय दो प्रमुख राजनैतिक दल थे जिनका समर्थन प्रोटेस्टेण्ट जर्मन कैन्टनें तथा प्रोटेस्टेण्ट ...च कैन्टनें करती थी। उनको उदार (Liberal) तथा रैडिकल कहा जाता था।

उदार ग्र-हस्तक्षेप सिद्धान्त (laissez-faire), नैतिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता, तथा गणतन्त्रीय राजनैतिक संस्थाओं के पक्ष में थे। रैडिकलों में युवक थे जिनके विचार अधिक उदार तथा प्रगतिशील थे। उनका उद्देश्य प्रत्यक्ष निर्वाचन तथा आर्थिक स्वतन्त्रता थी। विभिन्नताओं के होते हुए भी दोनो दलो ने सहयोग से १८७४ का संविधान बनाया जिसमें दोनों दलो के सिद्धान्तों का समावेश किया गया। उदारों तथा रैडिकलो के विरोध में कैथोलिक कट्टर पथी (Catholic Conservative Party) थे जो सोन्डरबन्द (Sonderbund) बनाने तथा सिसेशन (Secession) के युद्ध के लिए उत्तरदायी थे। इस पार्टी ने "१८४८ के सावधानिक समझौते (constitutional settlement of 1848), को जो इसे मजबूरन मानना पडा था, पूरे दिल से स्वीकार नहीं किया।" यह देश मे सबल तथा सुदृढ (compact and well-organised) राजनैतिक पार्टी थी।

यह ध्यान रखना चाहिए कि १८४८ मे १८९० तक उदार तथा रैडिकल पदारूढ थे, तथा कट्टरपथियों की पार्टी विरोधी दल के रूप मे थी। १८९१ मे उदार दल विरोधी दल बना तथा कट्टरपंथियो और रैडिकलो ने सयुक्त सरकार बनाई। उदार पार्टी बहुत दुर्बल तथा एक बहुत ही छोटी पार्टी के रूप मे परिवर्तित हो गई। १८८० के पश्चात् समाजवादी प्रजातन्त्रीय पार्टी की स्थापना हुई तथा धीरे-धीरे इसकी शक्ति बढी। कृषक दल (Farmers' Party) का सगठन १९१८ मे किया गया तथा यह भी समय के अनुसार शक्तिशाली होता गया।

दलीय कार्यक्रम (Party Programmes)—कैथोलिक कट्टरपथी पार्टी अब तक भी संघीय शासन का एक सीमा तक विरोध करती है। यह कैन्टनो के अधिकारों का पक्ष लेती है तथा राष्ट्रीय समस्याओ की ओर देखने का इसका विशेष दृष्टिकोण है। यह परिवार तथा निजी सम्पत्ति का संरक्षण चाहती है। यह निजी लोकहितैषी तथा सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहित करती है। यह स्विट्जरलैंड में कैथोलिक चर्च के अधिकारो तथा विशेषाधिकारों की समर्थक है। यह विश्वास करती है कि सामाजिक शान्ति तथा अनुशासन की सब से अच्छी सुरक्षा नैतिकता तथा शिक्षा मे निहित है जिनको चर्च के नियन्त्रण में रखा जा सकता है। पार्टी के अन्दर एक समाजवादी वर्ग (Socialistic wing) उत्पन्न हो गया है और इस कारण श्रमिक समस्याओ तथा श्रमिक कानूनो के प्रति पार्टी का दृष्टिकोण उदार है। यह श्रम के सम्मान को स्वीकार करती है और यह मानती है कि श्रमिको को रोटी कमाने का अधिकार होना चाहिए। यह श्रमिक यूनियनो के विकास तथा सामूहिक सौदेबाजी के पक्ष में है। यह किसानों, कलाकारो तथा छोटे व्यापारियो के हितों की रक्षा करती है।

रैडिकल पार्टी (Radical Party)—यह कैन्टनो के विरोध में संघीय सरकार के अधिकारो के लिए खडी है। किन्तु यह केन्द्रीकरण के प्रश्न पर पहले से अधिक सावधान रहती है। इस पार्टी के समर्थक इस बात के लिए तत्पर रहते हैं कि जब संघीय सरकार को कुछ नई शक्तियां प्राप्त हों, तब कैन्टनें उसमे भाग ले सकें। इनका विश्वास धर्म-निरपेक्षता (secularism), राजनैतिक स्वातन्त्र्य तथा व्यक्तिगत

प्रयोजनों को छोड़कर और किसी विषय पर धन खर्च नहीं किया जाता। स्विट्ज़रलैंड में पार्टी के जीतने पर किसी को लाभ नहीं होता क्योंकि नौकरों के वेतन बहुत कम हैं। निर्वाचन के पश्चात् संघीय अफसरों में परिवर्तन नहीं किया जाता, कैन्टनों के पद इस योग्य नहीं है कि उनके लिए जी-जान से लड़ा जा सके तथा इन छोटे समुदायों में यह बात नहीं छिप सकती कि निर्वाचन पर कितना रुपया व्यय किया गया है।"

Suggested Readings

Brooks : Government and Politics of Switzerland.
Huber, Hars : How Switzerland is Governed ?
Rappard, W.E. The Government of Switzerland.

अध्याय २०

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण

(Direct Legislation)

स्विट्जरलैंड प्रत्यक्ष विधि-निर्माण तथा प्रत्यक्ष लोकतन्त्र का घर है और लार्ड ब्राइस के इस कथन में कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि "प्रजातन्त्र के विद्यार्थियों के लिए स्विस व्यवस्था में इससे अधिक शिक्षा देने वाली और कोई संस्था नहीं है क्योंकि यह महान् समुदाय (multitude) की आत्मा को देखने के लिए खिड़की खोलती है। उनकी भावनाओं तथा विचारों को प्रत्यक्षतः देखा जाता है; वे निर्वाचित संस्थाओं के द्वारा नहीं प्रकट किए जाते।" स्विट्जरलैंड आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाओं के लिए प्रसिद्ध है। इन्हीं संस्थाओं के कारण जनता को "तीसरा सदन" कहा जाता है। यह सत्य है कि आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाएँ एक-दूसरे की पूरक है किन्तु उनको राजनैतिक जुड़वाँ कहना गलत है। यद्यपि वे दोनों साथ-साथ पाई जाती है, तथापि वे एक-दूसरे से पृथक् तथा एक-दूसरे के बिना रह सकने की क्षमता रखती हैं। स्विट्जरलैंड में इन संस्थाओं का इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि समस्त कैन्टनों में वे एक साथ लागू नहीं हुई थी। गाल (Gall) कैन्टन ने जन-निर्देश को १८३१ में स्वीकार किया। बेल (Bale) कैन्टन ने १८३२ में, वैलिस (Valais) ने १८३६ तथा लूसेरन (Lucerne) ने १८४१ में इसे स्वीकार किया। अन्य कैन्टनों को इसे स्वीकार करने में ३० वर्ष लगे। १८४८ तथा १८७४ में सावैधानिक कानून के लिए जन-निर्देश को अनिवार्य ठहराया गया, किन्तु अनिवार्य जन-निदश (compulsory referendum) साधारण कानूनों के लिए १८७४ में शुरू किया गया।

जन-निर्देश तथा आरम्भण में अन्तर (Referendum and Initiative : Distinction)—दोनों में मौलिक अन्तर है। जन-निर्देश की संस्था के द्वारा जनता को विधानमण्डल के कानूनों के निषेध (Veto) का अधिकार प्राप्त है। यदि विधानमण्डल किसी कानून को पास भी कर दे, तो जनता उसे तब रद्द कर सकती है जब उस पर जन-निर्देश किया जाए। जन-निर्देश एक नकारात्मक (negative) संस्था है जो कि विधानमण्डल के स्वीकृत कानून को रद्द करने का अधिकार जनता के हाथ में सौंपती है। इसके द्वारा जनता अपने विधायकों (legislators) की चाल-बाजी में आने से बचती है, किन्तु इसके द्वारा जनता अपनी इच्छा के उस कानून को बनाने में समर्थ नहीं होती जिसे विधायक पास करना नहीं चाहते। दूसरी ओर, आरम्भण एक विधेयात्मक (positive) संस्था है। इसके द्वारा जनता अपनी इच्छा के उस कानून को पास करा सकती है जिसे विधायक पास करने के लिये तत्पर नहीं हैं। यह जनता को शक्ति देती है कि वह अपनी इच्छा के अनुकूल कानूनों का निर्माण कर सके। यह इस अर्थ में रचनात्मक (creative) संस्था है क्योंकि कोई भी कानून बनाया जा

सकता है, चाहे विधायक उसका विरोध ही क्यों न करें। केवल इतनी आवश्यकता है कि एक निश्चित संख्या के व्यक्ति आरम्भण करें और तब प्रक्रम (process) आरम्भ हो जाता है। कहा जाता है कि जन-निर्देश "एक ढाल है जिसके द्वारा जनता अवांछनीय कानूनो (undesirable legislation) को दूर कर देती है" तथा आरम्भण एक तलवार है जिसके द्वारा यह अपनी इच्छा अथवा विचारो का कानून बनाने के लिए रास्ता साफ करती है।

जन-निर्देश (Referendum)—जन-निर्देश दो प्रकार का होता है : अनिवार्य (compulsory) तथा ऐच्छिक (optional)। अनिवार्य जन-निर्देश के विषय में, विधानमण्डल का पास किया कानून तब तक कानून नही बनता जब तक जनता उसकी पुष्टि न कर दे। ऐच्छिक जन-निर्देश के विषय मे यह आवश्यक नही है कि विधान-मण्डल का पास किया प्रत्येक कानून जनता की पुष्टि के लिए प्रचारित किया जाए। कुछ विषयो में तो जनता से पूछा ही नही जाता। ऐच्छिक जन-निर्देश में विधेयक पर तभी मत-संग्रह किया जाता है जब वोटरों की निश्चित संख्या मांग करे। स्विस संघ मे ऐच्छिक जन-निर्देश तब होता है जब ३० हजार नागरिक अथवा कैन्टनें मांग करें। यद्यपि ऐच्छिक जन-निर्देश की मांग सब विषयो के कानूनो पर की जा सकती है, पर साधारण रीति यह है कि अस्थायी प्रकृति के कानूनों तथा संकट का सामना करने के लिए बनाए गए कानूनों पर जन-निर्देश नही किया जाता। वार्षिक बजट तथा प्रशास-कीय प्रकार के निर्णय तथा सधियां जन-निर्देश के लिए प्रचलित नहीं की जातीं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सघीय सविधान में संशोधन करने के लिए अनि-वार्य जन-निर्देश का विधान है। १९२१ का एक अन्य संशोधन यह व्यवस्था करता है कि अनिश्चित काल अथवा १५ वर्ष से अधिक के लिए की गई सन्धियां तथा समस्त अन्तर्राष्ट्रीय संधियां जन-निर्देश द्वारा पुष्ट को जायेंगी, शर्त यह है कि यदि ३० हजार नागरिक अथवा आठ कैन्टनें इसके लिए मांग करें। इसी प्रकार कैन्टनों के सविधानों मे सशोधन करने के लिए जन-निर्देश अनिवार्य है। जहां तक कैन्टन के विधानमण्डल के कानून का सम्बन्ध है, आठ कैन्टनों मे तो जनमत सग्रह अनिवार्य है किन्तु सात में ऐच्छिक। ऐच्छिक होने पर, वोटरों की एक निश्चित सख्या जन-निर्देश की मांग कर सकती है। यह सख्या कैन्टनों के अनुसार बदलती जाती है। कुछ कैन्टनो में, कानूनों की विभिन्न श्रेणियों में अन्तर किया जाता है तथा कुछ श्रेणी के कानूनों के लिए मतसग्रह आवश्यक है तथा दूसरों के लिए ऐच्छिक। एक कैन्टन में जन-निर्देश की व्यवस्था नही है।

सघ मे विधि के सम्बन्ध में, जब राष्ट्र सभा (National Assembly) कोई वैधानिक संशोधन स्वीकृत करती है तब उसको स्वीकार करने के लिए जनता से अनुरोध किया जाता है। संविधान का अंग बनने के लिए आवश्यक है कि कैन्टनों तथा वोटरों का बहुमत उसका समर्थन करे। यदि राष्ट्रीय सभा का एक सदन संशोधन के पक्ष में मत दे, तो मामला जनता के सामने लाया जाता है कि वह संशोधन चाहती है अथवा नहीं। यदि जनता संशोधन के पक्ष में मत देती है तो राष्ट्रीय सभा भंग कर दी जाती है तथा नए चुनाव किए जाते हैं। नव-निर्वाचित सदनों के द्वारा संशोधन स्वीकृत किया जाना चाहिए। यदि संघीय सभा उसे स्वीकृत कर देती है तब संशोधन जन-निर्देश के लिए पेश किया जाता है। संशोधन संविधान का अंग तभी बनता है जब

कि अधिकाश वोटर तथा कैन्टनें उसे स्वीकार कर लें ।

असांविधानिक (non-constitutional) संशोधनों, कानूनों अथवा प्रस्तावों के विषय मे, जब इनको राष्ट्रीय सभा पास कर लेती है तब उनको प्रकाशित तथा प्रसारित किया जाता है । उनके प्रसारित होने के ९० दिन के अन्दर ८ कैन्टनें अथवा ३० हजार वोटर ऐच्छिक मत संग्रह की माँग कर सकते हैं । जन-निर्देश की माँग सामान्य विधेयकों के विषय में ही की जा सकती है, 'आवश्यक' (urgent) के लिए नहीं ।

कैन्टनों में भी लगभग यही विधि जनमत-सग्रह के विषय में अपनाई जाती है। अधिकाश कैन्टनो मे उन विषयो पर जनमत-संग्रह नहीं किया जाता जो कि अस्थायी प्रकृति (temporary character) के होते हैं अथवा अत्यावश्यक हों। उन कैन्टनो मे जहाँ कि जनमत-सग्रह सब कानूनों के लिए अनिवार्य है ज्योंही कानून अथवा निर्णय पास किया जाता है, यह घोषणा की जाती है कि जनता का मत कब लिया जाएगा। प्रत्येक नागरिक को कानून की प्रतिलिपि तथा व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ (copies and explanatory notes) दी जाती है । वास्तविक मतदान के पूर्व कानून के समर्थन तथा विरोध मे सभाएँ की जाती हैं। प्रेस भी उस पर विचार करता है। कुछ कैन्टनों में मतदान अनिवार्य है तथा अनुपस्थित वोटर दण्ड का भागी होता है।

आरम्भण (Initiative)—आरम्भण भी दो प्रकार का होता है : निरूपित (विधेयक के रूप मे) तथा सामान्य रूप मे (formulative and in general terms)। जब आरम्भण सामान्य रूप मे ही होता है, तब विधानमण्डल का कर्तव्य कानून का मसविदा बनाना, विचार करना तथा पास करना होता है। विधेयक के रूप मे आरम्भण के विषय मे विधानमण्डल का कर्तव्य इस पर उसी रूप में विचार करना है जिस रूप में वह जनता से प्राप्त होता है।

विशेष रूप से यह निश्चित किया गया है कि ५० हजार नागरिक सघीय संविधान के सम्पूर्ण पुनरीक्षण (revision) की माँग कर सकते हैं। यदि जन-निर्देश मे संशोधन स्वीकार कर लिया जाए, तब राष्ट्रीय सभा के नए चुनाव होते हैं और जब संशोधन नई राष्ट्रीय सभा स्वीकृत कर लेती है तब जनता के बहुमत तथा कैन्टनों से उसे मान्य ठहराने के लिए अनुरोध किया जाता है।

संविधान के आंशिक सशोधन के विषय में, विधि इस पर निर्भर करती है कि आरम्भण निरूपित है अथवा सामान्य रूप मे। यदि आरम्भण निरुपित होता है और यदि राष्ट्रीय सभा अथवा एक सदन उसे स्वीकृत कर लेता है तो प्रस्ताव जनता के बहुमत तथा कैन्टनो की स्वीकृति के लिए पेश किया जाता है। यदि राष्ट्रीय सभा उसे अस्वीकार करे तो यह जनता से उसे रद्द करने की प्रार्थना कर सकती है अथवा स्वय दूसरा प्रस्ताव (alternative proposals) वास्तविक प्रस्ताव के साथ जनता के सम्मुख ला सकती है। यदि आरम्भण प्रस्ताव केवल साधारण रूप में हो, तो राष्ट्रीय सभा के सम्मुख दो विकल्प होते हैं। यदि यह प्रस्ताव को स्वीकार करती है तो उसे जनता से उसे स्वीकार करने के लिए अनुरोध करना चाहिए। यदि जनता उसे स्वीकार कर लेती है तो राष्ट्रीय सभा उन सिद्धान्तों के अनुरूप मसविदा तैयार है तथा जनता तथा कैन्टनों से मत देने का अनुरोध करती है।

सार्वजनिक कर्त्तव्य का ध्यान है ।" लार्ड ब्राइस के अनुसार, "स्विट्जरलैंड मे प्रत्यक्ष विधि-निर्माण का स्वाभाविक विकास हुआ है और इसका कारण देश की परम्परा है। ये ऐसी संस्थाएँ है जो पौधों की भांति, अपनी मिट्टी तथा धूप में बढ़ती हैं ।" यह निर्देश किया जाता है कि यदि प्रत्यक्ष विधि-निर्माण अन्य देशों में इतनी अच्छी तरह सफल नही हुआ, तो इसका आंशिक कारण यह है कि उन देशों की परिस्थितियां भिन्न थी तथा साधारण जलवायु तथा भूमि उसके विकास के अनुकूल नही थी ।

स्विट्जरलैंड मे प्रजातन्त्र क सफल होने का एक कारण जनता की स्वतन्त्र प्रवृत्ति है । यह ठीक ही कहा जाता है कि "स्विस वोटर, सदैव स्वतन्त्र. उस समय सब से अधिक स्वतन्त्र होता है जब वह अपने विधायक के कार्य की आलोचना करता है।" स्विस वोटर पार्टी के अनुसार मत नही देते तथा राजनैतिक दल जनता के समर्थन की आशा नही कर सकते, फल यह होता है कि जनता उन कानूनों पर निष्पक्षता से विचार करती है, जिन पर उससे मत देने का अनुरोध किया जाता है । स्विस वोटरों ने निर्णय तथा शान्त मस्तिष्क तथा बुद्धिमत्ता दिखाई है । स्विस जनता सुशिक्षित है । कोई आश्चर्य नही कि वे अपने निर्णयो मे अधिक सावधान रहते हैं तथा बहकावे में नही आते।

डब्ज (Dubs) के अनुसार, "विश्व के देशों पर नजर डालिए । आपको अन्य स्थानों पर अधिक बडी राजनैतिक सफलताएं मिल सकती हैं, किन्तु आपको स्वतन्त्र राष्ट्रीय और सुस्थित व्यावहारिक विचार वाले इतने अधिक अच्छे नागरिक किसी अन्य देश में नही मिलेंगे, जो छोटे क्षेत्रों में अपने कार्यों को सम्मान तथा बुद्धिमत्ता के साथ पूरा करने में सफल होते हैं, न कहीं ऐसे व्यक्ति इतनी अधिक संख्या मे मिलेंगे जो अपने दैनिक कार्यों को करते हुए, अपने पड़ोसी नागरिकों की कठिनाइयों और कल्याण कार्यों में इतनी अच्छी तरह भाग लेते हों ।"

प्रत्यक्ष विधि-निर्माण के लाभ (Merits of Direct Legislation)—(१) इसे अस्वीकार नही किया जा सकता कि आरम्भण तथा जन-निर्देश की संस्थाएँ जनता की प्रभुसत्ता को स्थिर करती है । साधारण रूप से जनता का मूल्य केवल उस समय ही आंका जाता है जब अनेक वर्षो के उपरान्त निर्वाचन होते है । प्रत्यक्ष विधि-निर्माण प्रथा के अनुसार उनमे समय-समय पर देश के कानूनो पर मत देने के लिए कहा जाता है । इस प्रकार, जनता की वास्तविक इच्छा का पता लगाया जा सकता है, तथा हम किसी भी विषय पर जनमत जान सकते है । देश के कानून की शक्ति बढ जाती है क्योंकि जनता इसकी पुष्टि करती है जोकि शक्ति का मूल स्रोत (fountain) है।

(२) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण से राजनैतिक दलों के महत्व में कमी आ जाती है तथा दलीय भावना को निरुत्साहित किया जाता है। विधायकों को अधिक शक्ति नहीं दी जाती तथा उन्हे विधेयक के अन्तिम रूप में स्वीकृत होने का विश्वास नही होता। जनता अपने विधायकों के कार्यों को स्वीकार करने से इन्कार भी कर सकती है।

(३) यह पहले ही कहा जा चुका है कि जन-निर्देश एक ढाल है जिसके द्वारा जनता अवांछनीय कानूनों को दूर रख सकती है तथा आरम्भण एक तलवार है जिसके ., लोग अपनी इच्छा का कानून बनाने के लिए मार्ग साफ कर सकते हैं ।

हानियाँ (Demerits)—(१) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण की अनेक हानियों का उल्लेख किया जा सकता है। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण से विधायकों का उत्तरदायित्व कम होता है। इसका कारण यह है कि विधायक यह नहीं भूलते कि वे कानून पास करने में अन्तिम प्राधिकरण नहीं है। वे अनुभव करते है कि यदि कानून पास करने में उनसे कोई त्रुटि रह जाय तो जनता उसे ठीक कर सकती है। वे उन कानूनो को भी पास कर सकते हैं जिनसे वे असन्तुष्ट हों। इस दिशा में वे जनता के भय की चिन्ता करते हुए भी चिन्ता नही करते। यदि जनता विधायकों को त्रुटिपूर्ण विधेयक पास करने पर दोषी ठहराये तो विधायक भी अपने बचाव में यह कह सकते हैं कि जनता उसे रद्द कर सकती है। निश्चित रूप से ऐसी दशा में अनुत्तरदायित्व की भावना पैदा होती है, जो उचित प्रकार से कार्य करने के लिए घातक होती है।

(२) आधुनिक कानून अधिकाधिक जटिल तथा टैक्नीकल होता जा रहा है और लोगों के लिए इसकी समस्त गहराइयों को समझ सकना सम्भव नही है। उनको समस्त सावधानियो तथा जनकार्यों के हेतु त्याग के होते हुए भी "लोगों को उसे समझने का ज्ञान प्राप्त नही हुआ है और न हो सकता है तथा बाँटी गई पुस्तकों एवं भाषणो से समर्थकों तथा विरोधियों के बारे में उसे आवश्यक ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जुरा (Jura) की सुन्दर घाटियों मे रहने वाला सोलोथर्न (Solouthurn) का कृषक वित्तीय विधेयक के विनियोग को कैसे समझ सकता है? वह क्या जाने कि इसका उद्देश्य सराहने योग्य है या नही? इस पर प्रस्तावित धन खर्च करना उचित है या नहीं? क्या सार्वजनिक कोष मे इस पर व्यय करने के लिए राशि है?"

(३) प्रत्यक्ष विधि-निर्माण द्वारा जनता की इच्छा को जानने की विधि उचित नहीं है। वोटरो से केवल 'हाँ' (yes) अथवा 'नही' (no) कहने के लिए कहा जाता है। यह विधि अत्यन्त असन्तोषजनक है। प्रत्येक कानून मे अनेक व्यवस्थाएँ होती हैं और यह सोचना असम्भव है कि जनता इसकी समस्त व्यवस्थाओं को स्वीकार करेगी। विधेयक पर विवाद करने अथवा संशोधन करने का कोई क्षेत्र ही नहीं है। या तो वोटर समस्त विधेयक को स्वीकार करें अथवा रद्द करें। प्रत्यक्ष विधि-निर्माण को पूर्णरूपेण स्वीकार करना अथवा रद्द करना सर्वाधिक असन्तोषप्रद गुण है।

(४) अनुभव यह बताता है कि जनता प्रत्यक्ष विधि-निर्माण में अधिक रुचि नही लेती। प्रस्तावित कानून से सम्बन्धित समस्त साहित्य को पढकर मतदान केन्द्र पर वोट देने के लिए जाना असुविधाजनक होता है। इस विषय में 'चुनाव-थकावट' (electoral fatigue) का उल्लेख किया जा सकता है।

(५) बहुत से विधेयक विलम्ब से आते हैं क्योंकि उनकी पुष्टि जनमत के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त, यह भी सम्भव है कि जनता उन्हे स्वीकार ही न करे, चाहे वे देश का कितना ही भला करने वाले क्यों न हो। देश को हानि हो सकती है क्योंकि जनता कट्टरपंथी तथा प्रतिक्रियावादी होती है।

(६) जनता द्वारा आरम्भ किये गये विधेयक अधिकतर "स्थूल, कौशलहीन, ...तथा त्रुटिपूर्ण" होते हैं। विधेयकों की भाषा भी त्रुटिपूर्ण होती है तथा

विरोधी व्याख्याओं के कारण मुकदमेबाजी होने की सम्भावना रहती है। लार्ड ब्राइस के अनुसार, "कभी-कभी कैन्टोनल परिषद् की दूरदर्शिता जनता की किसी विशेष प्रस्तावित योजना को रोककर उसके स्थान पर अधिक अच्छी योजना लाकर बुरे परिणामों से बचा लेती है, जब कि एक अच्छी प्रकार से न विचारे हुए बैंकिंग लॉ के सम्बन्ध में संघीय अधिकारियों ने उसे संघीय संविधान से असंगत कह कर शून्य कर दिया (annulled)। इस विधि से प्रस्तावित अनेक हानिकारक योजनाओं को रद्द करके जनता ने अपनी योग्यता का परिचय दिया है।"

(७) योग्य व्यक्ति विधानमण्डलों के चुनाव में खड़े होना पसन्द नहीं करते। वे धन तथा समय खर्च करके उस संस्था के सदस्य नहीं बनना चाहते जिस संस्था को उन कानूनों को बनाने की शक्ति ही प्राप्त नहीं है जो कि जनता के हित में हों। यदि जनता विधानमण्डल के कानूनों को रद्द कर सकती है तो योग्य व्यक्ति विधायक होने की अपेक्षा जनता का अंग होना अच्छा समझते है।

(८) ड्रॉज़ (Droz) के अनुसार, "प्रत्यक्ष विधि-निर्माण से पेशेवर नेताओं को प्रोत्साहन मिलता है तथा पेशेवर राजनीतिज्ञ उत्पन्न होते हैं, जो जनता में निरन्तर असन्तोष फैलाया करते है।"

(९) एसमिन (Esmein) के अनुसार, "प्रत्यक्ष विधि-निर्माण सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों में बुरा है। यह सिद्धान्त में दोषपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा ज्ञानी मूर्खों से अपील करता है तथा उत्तरदायी अनुत्तरदायी से। यह व्यवहार में दोषपूर्ण है क्योंकि यह अन्तिम शक्ति अशिक्षित जनता को सौंपता है और इस प्रकार देश के राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विकास को धीमा करता है। यह अर्थहीन है कि एक ग्वाले या साईस से बैंकिंग से सम्बन्धित कानून के विषय में मत देने को कहा जाए जिसके विषय में वह कुछ नहीं जानता। न तो सामान्य नागरिक आधुनिक क्लिष्ट कानूनों को समझता ही है और न ही वह प्रयत्न द्वारा इसे समझ सकता है। इसका कारण उसकी सीमित सामर्थ्य है।"

एक स्विस विधायक के अनुसार, "जन-निर्देश उस थोड़ी-सी अच्छाई को भी रोक देता है, जिस अच्छाई को हम करना चाहते हैं, किन्तु हमारे सामने चेतावनी के रूप में खड़ा रहकर वह बहुत-सी बुराइयों को रोक देता है। पीछे की ओर जाने की सम्भावना के होते हुए भी इसने प्रजातन्त्र को रोक नहीं दिया प्रत्युत् उसको प्रगति को स्थिरता प्रदान की है।

Suggested Readings

Bonjour : Real Democracy in Operation.
Bryce : Modern Democracies.
Lloyd and Hobson : The Swiss Democracy.
Munro : Governments of Europe.
Shotwell and others : Governments of Continental Europe.

अध्याय २१

कैन्टनों की सरकार

(Government of Cantons)

एन्डरे (Andre) के अनुसार, "सघ, जो एक निश्चल प्रशासकीय यन्त्र जैसा दिखाई देता है, की तुलना मे कैन्टन एक जीवित वास्तविकता है। वास्तव में प्रत्येक नागरिक अपने को स्विस समझता है, किन्तु स्विस होने से पूर्व वह ज्यूरिख अथवा ग्लेरस (Glarus) अथवा वैलस (Valais) का निवासी होता है।" यह सत्य है कि केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों के कारण केन्द्रीय सरकार अधिकाधिक शक्तिसम्पन्न होती जा रही है तथा कैन्टनो के पास अधिकार कम होते जा रहे हैं, तो भी स्विट्जर-लैंड के निवासियों के जीवन मे कैन्टनें महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। आज भी, संघीय सरकार का कैन्टनों में अधिकाश कार्य कैन्टनों के अफसर ही करते हैं। किसी कैन्टन का नागरिक स्विट्जरलैंड का भी नागरिक होता है। कैन्टनें उस सीमा तक प्रभुत्व-सम्पन्न (sovereign) है जहाँ तक सघीय विधान ने उन पर रोक नही लगाई। वे उन सब अधिकारों का उपयोग करती हैं जो सघ सरकार को नही दिए गए हैं। अवशिष्ट शक्तियाँ (residuary powers) कैन्टनों को प्राप्त हैं। प्रत्येक कैन्टन दूसरे देशो से सन्धियाँ करने के लिए स्वतन्त्र है।

उन्नीस कैन्टनें तथा छः अर्द्ध-कैन्टनें[1] (half-cantons) हैं। इन कैन्टनों की जनसंख्या तथा क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न हैं। १९४१ मे बर्न की जनसंख्या ७२८,९१६ तथा क्षेत्रफल २,६५८ वर्गमील था। उसी वर्ष जुग (Zug) की जनसंख्या ३६,६४३ तथा क्षेत्रफल ९३ वर्गमील था। बैसल स्टान्ट (Basel-Stant) की जनसंख्या १६६,६६१ तथा क्षेत्रफल १४ वर्गमील था। स्विस कैन्टनें संघ में १२९१ से १८१५ तथा विभिन्न अवसरों पर सम्मिलित हुईं। प्रत्येक कैन्टन का अपना संविधान है जिसे उस कैन्टन के नागरिक संशोधित कर सकते हैं। उन पर केवल एक ही प्रतिबन्ध है कि कैन्टन का संविधान संघीय संविधान के विरोध में न हो।

लैंडसजीमिन्डी (Landsgemeinde)—प्रशासकीय दृष्टिकोण से हम कैन्टनो को दो वर्गों में रख सकते हैं। छः कैन्टनो मे प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (direct democracy) है तथा कैन्टनो मे प्रतिनिधि सभाएँ है। स्विट्ज़रलैंड की राजनैतिक संस्थाओं में सबसे स्पष्ट तथा मनोहर लैंडसजीमिन्डी है। यहाँ कैन्टनों के समस्त नागरिकों की राजनैतिक सभाएँ खुली हवा में प्रतिवर्ष लैंडामैन (Landamman) की अध्यक्षता में होती हैं। लैंडामैन प्रतिवर्ष चुना जाता है। प्रत्येक वयस्क पुरुष नागरिक इसमे

---

१. ब्रुक्स के अनुसार, "प्रत्येक अर्द्ध कैन्टन अपनी वैसी ही पूर्ण सरकार रखती है जैसी कि कोई पूर्ण कैन्टन। सांवैधानिक जननिर्देश (referendum) के सम्बन्ध में यह आधी कैन्टन पूरी कैन्टन के समान है, किन्तु संघीय विधानमण्डल के उच्च सदन में यह एक सदस्य भेजती है जब कि कैन्टन दो सदस्य भेजती है।"

उपस्थित होकर विवाद में भाग ले सकता है। इस सभा मे सम्पूर्ण राजनैतिक शक्तियाँ निहित होती हैं। यह केवल नये कानून ही नही बनाती, प्रत्युत् उन कानूनों की पुष्टि भी करती है जिनको कार्यकारी परिषद् (Executive Council) बनाती है। यह कैन्टन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओ पर अपना निर्णय देती है तथा प्रस्ताव पास करती है। *यह केवल कार्यकारी परिषद् का ही निर्वाचन नहीं करती,* प्रत्युत जजों आदि समस्त अफसरो को भी चुनती है। लॉयड और हाब्सन (Lloyd and Hobson) के अनुसार, "लैंडसजीमिन्डी प्रजातन्त्र के सबसे पवित्र रूप का प्रतिनिधित्व भी करती है जिसमें नागरिकों की सम्पूर्ण सभा सरकार की आलोचना करने मे नागरिकों की प्रभुसत्ता का प्रत्यक्ष रूप मे प्रयोग करती है। रूसो (Rousseau) आदि अनेक राजनैतिक दार्शनिको ने केवल उसे ही प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा और सबसे प्रत्यक्ष उदाहरण माना है।"

एन्डरे ने ग्लेरस (Glarus) कैन्टन की लैंडसजीमिन्डी की ५ मई, १९४७ की बैठक का निम्न विवरण दिया : "ग्लेरस के छोटे नगर के चौक बाजार मे प्रभुत्व-सम्पन्न जनता रविवार को प्रात. ९-३० बजे एकत्रित हुई। पाँच हजार जनता फैले हुए घेरे में चौक के पुराने मकानों के साये मे एकत्रित हुई। पहली पंक्ति बैंचों पर बैठी थी तथा पीछे के लोग खड़े हुए थे। बड़े वृत्त (Circle) के मध्य एक ऊँचा मंच बनाया गया था जिस पर ध्वनिवर्धक (loudspeaker) लगे थे तथा इसके चारों ओर स्थानीय स्कूलों के बच्चे बैठे थे क्योंकि यह उनकी सामाजिक शिक्षा का एक अंग है। अधिकारी जलूस में आते हैं। उन्होंने सादे प्रात.कालीन कोट तथा टोप पहने हुए हैं। उनके आगे मध्यकालीन लाल गणवेशधारी प्रवेशक (ushers) हैं। लैंडामैन (Landamman) के हाथ में जनता की प्रभुता की प्रतीक (symbol) तलवार है...... *सभा का प्रथम कार्य संविधान के प्रति शपथ लेना है। सब हाथ खड़े किए* जाते है। तब जाने वाला (outgoing) लैंडामैन अपने साथियों सहित अपने को पुनर्निर्वाचित करने की माँग करता है। उसके पश्चात् न्यायाधीशों का क्रम आता है। कार्यकारिणी (executive body) के सदस्यों की सूची पर राजनैतिक दल पूर्व ही सहमत हो चुके है और इसमें तीन रैडिकल, दो डेमोक्रेट्स, एक समाजवादी तथा एक कैथोलिक है। दूसरे न्यायाधीशों आदि के नामों का प्रस्ताव सभा करती है तथा उन पर मत लिए जाते है। एकत्रित लोगों के द्वारा रखे गए प्रस्तावो पर हाथ उठा कर मत लिये जाते हैं। *पुनर्निर्वाचित लैंडामैन तब जर्मन भाषा मे भाषण देता है।* उसके पश्चात् स्थानीय भाषा मे विवाद होता है .....। निर्वाचकों के पास १५० पृष्ठ का 'स्मारक' (memorial) है और इसमे लैंडरैट (Landrat) अथवा कैंटोनल परिषद् द्वारा प्रस्तावित विधेयको का विवरण होता है। यह लेख (document) बहुत ही गम्भीर होता है और मुझे बताया गया है कि दूर-दूर के नागरिक भी इसका अच्छी प्रकार अध्ययन करके आते है। लोग इन विवादों को यों ही नही टाल देते क्योंकि वे जानते हैं कि उनके हितों को खतरा हो सकता है......। विषय सूची में ३२ विषय हैं; *दुर्घटनाओं (accidents) के विरुद्ध कैंटोनल बीमा प्रोजैक्ट* सवेतन अवकाश, रविवार-विश्राम, विद्युत् शक्ति इत्यादि। मंच पर लैंडामैन प्रत्येक

तथा अपीलीय न्यायालय । न्यायाधीशों को या तो जनता प्रत्यक्ष मत से चुनती है अथवा वे महासभा द्वारा निर्वाचित होते हैं । किसी भी कैंटन में, कार्यपालिका न्यायाधीशों को मनोनीत नहीं करती। जनता उनको उनकी योग्यता तथा सच्चरित्र के कारण चुनती है, पार्टी के आधार पर नही । यह सत्य है कि न्यायाधीशो का कार्यकाल कम (तीन या चार वर्ष) है किन्तु उनकी स्थिति दोबारा चुनने की प्रथा के कारण सुरक्षित होती है । कैन्टन मे निम्नतम न्यायालय जस्टिस ऑफ पीस होते हैं । उनके ऊपर जिला न्यायालय (District Courts) तथा सबसे ऊपर उच्च न्यायालय (High Courts) होते हैं । झगड़ो को निपटाने के लिए पच निर्णय की विधि भी लोकप्रिय है । बहुत से अभियोगों मे न्यायाधीशो के साथ असेसर भी होते हैं । कुछ कैन्टनो में जनता को निःशुल्क न्याय दिया जाता है और उनसे कुछ नही लिया जाता ।

कम्यून (The Communes)—स्विस जनता की राजनैतिक जीवन की इकाई कम्यूनें हैं । स्विट्ज़रलैंड में लगभग ३११८ कम्यून है । उनकी जनसख्या तथा क्षेत्रफल में अन्तर है । समस्त कम्यूनों मे जनतन्त्रीय सरकार पाई जाती है । छोटे कम्यूनों के सम्बन्ध में नागरिको की निर्वाचित सभाएँ उनके मामलो का नियन्त्रण करती हैं । बड़ी कम्यूनों में प्रतिनिधि सस्थाएँ होती हैं ।

कम्यून की परिषद् (Communal Council) समस्त सार्वजनिक कार्यों को कम्यून की जनता के नाम पर करती है । कम्यून के कार्य-क्षेत्र मे शिक्षा, पुलिस, जल प्रबन्ध, दरिद्रता निवारण आदि आते हैं । यह कहा जाता है कि १६३७ में समस्त कम्यूनों की आय संघीय आय से आधी तथा कैन्टनों की आय के बराबर थी ।

जिले (Districts)—जिला कैन्टन तथा कम्यून के मध्य में होता है । प्रमुख जिलाधिकारी को जनता चुनती है । यह केवल प्रशासकीय इकाई है। जिला अधिकारी कैन्टन तथा कम्यून को मिलाने वाली शृंखला है और वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की सहायता से अपने कर्त्तव्यों को पूरा करता है ।

लार्ड ब्राइस के अनुसार, स्विस स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था केवल प्रशासकीय दृष्टिकोण से ही महत्त्वपूर्ण नही प्रत्युत् "उस प्रशिक्षण के लिए भी आवश्यक है जिसे जनता ने प्राप्त किया है, तथा इसके अभ्यास के कारण गणतन्त्रीय संस्थाओं ने सफलतापूर्वक कार्य किया है । यूरोप में और कहीं इसे जनता के हाथों में पूर्णरूपेण नहीं छोड़ा गया है । स्वयं स्विस भी इस पर ज़ोर देते हैं, क्योंकि यह लोगों को जन-कार्य मे दीक्षित करने का साधन है, उनमे सार्वजनिक कर्त्तव्य की भावना जाग्रत करता है, जनता के लाभ के लिए सरकारी कार्यों को कराने का साधन है, इसमें न तो स्थानीय स्वयकर्तृत्व का त्याग किया जाता है और न संघीय सरकार के कार्य को अधिक दृढ़ अथवा व्यापक बनाया जाता है ।"

शिक्षा-प्रबन्ध—नागरिक शास्त्र की शिक्षा समस्त कैन्टनों में अनिवार्य है । इसके द्वारा देश मे अच्छे नागरिक उत्पन्न होते हैं । शिक्षा व्यावहारिक है । [illegible] कृषक शालाएँ, वाणिज्यिक तथा व्यावसायिक स्कूल हैं जो युवकों तथा [illegible] संघीय तार, टेलीफ़ोन तथा कर सेवाओं के लिए तैयार करते हैं । छात्र

सोवियत रूस का संविधान

(Constitution of Soviet Russia)

अध्याय २२

संविधान की मुख्य विशेषताएँ

(Chief Characteristics of the Constitution)

प्रस्तावना—रूसी जनता पर अनेक शताब्दियों तक उन जारो का निरकुश शासन रहा जो अपने को समस्त रूसियो के निरकुश शासक (autocrat) कहते थे। उन्नीसवी शताब्दी में यूरोप के अनेक राष्ट्रीय तथा ज्ञानोन्नति के आन्दोलन होते हुए भी रूस प्रतिक्रिया का अड्डा बना रहा। इसकी जनता पिछडी हुई थी और उसका शासन में कोई हाथ नही था। महान् पीटर तथा महान् कैथेरीन (Catherine) के गौरवपूर्ण कार्यों के होते हुए भी सामान्य जनता की हालत मे कोई सुधार नही हुआ। अलैक्जैंडर प्रथम (Alexander I) की उदारता भी जनता के लिए उपयोगी नही हुई। निकोलस प्रथम (Nicholas I) यूरोप मे प्रतिक्रिया का मानो अवतार ही बन कर आया था। यह सत्य है कि अलैक्जैंडर द्वितीय के शासन-काल मे खेत जोतने वाले 'कृषक दासो' (serfs) को १८६० में बन्धन से मुक्त कर दिया गया तथा अन्य क्षेत्रों मे भी कुछ सुधार किए गए थे, किन्तु रूसी शासन की भावना अछूती ही रही। १८८१ मे अलैक्जैंडर द्वितीय को बम से मार दिया गया। उस समय देश में औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) का श्रीगणेश हुआ किन्तु अलैक्जैंडर तृतीय के काल मे विशेष प्रगति नहीं हुई। निकोलस द्वितीय के शासन-काल मे घटनाओं ने एक गम्भीर मोड़ लिया। रूस-जापान युद्ध १९०४-५ मे, रूस की पराजय के कारण रूसी निरंकुश शासकों के मान को ठेस पहुँची। १९०५-६ मे रूस में एक ऐसी क्रान्ति हुई कि जार को कुछ सुविधाएँ देने और एक प्रकार की वैधानिक सरकार की स्थापना करने के लिए बाध्य किया गया। ड्यूमा (The Duma) का अधिवेशन बुलाया गया और बडी-बडी आशाएँ की गईं, किन्तु एक बार और प्रतिक्रियावादी (reactionary) शक्तियो का मत प्रबल हो गया। नई ड्यूमा का चुनाव हुआ किन्तु उसे शीघ्र ही भंग होना पडा क्योंकि जार शक्ति देने के लिए तैयार नहीं था। सब ओर रोष फैला। जारशाही को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से रूस के अन्दर और बाहर अनेक क्रान्तिकारी समितियाँ कार्य कर रही थी।

इन परिस्थितियों में प्रथम विश्वयुद्ध १९१४ में प्रारम्भ हुआ। रूस ने जर्मनी के साथी आस्ट्रिया के विरुद्ध सर्विया के पक्ष का समर्थन किया। फ्रांस ने रूस का साथ दिया और ब्रिटेन भी उनके साथ मिल गया। युद्ध रूस की जनता में लोकप्रिय नही हुआ। जनता के कष्ट तो बढ़ गये, किन्तु सेना और अफसरों के लिए यह स्वर्ण-काल सिद्ध हुआ। संकट १९१७ मे आया जबकि बोलशेविकों (Bolsheviks) ने लेनिन के

नेतृत्व में ज़ार शासन-तन्त्र को उतार फेंका और सत्ता हस्तगत की। उन सब को कत्ल (massacre) किया गया जिन्होंने प्राचीन व्यवस्था का समर्थन किया था। देश की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था को साम्यवादी (Communism) आधार पर पुनर्निर्मित करने के प्रयत्न किये गये।

१९१८ का संविधान (Constitution of 1918)—साम्यवादी दल की केन्द्रीय कार्यकारी समिति (Central Executive Committee) ने रूस की जनता का संविधान निर्माण करने के लिए एक समिति नियुक्ति की और पाँचवीं ऑल रशियन कांग्रेस ऑफ सोवियत्स (Fifth All Russian Congress of Soviets) ने प्रस्तावित संविधान को स्वीकृत किया। यह संविधान रूसी समाजवादी संघीय सोवियत गणराज्य (Russian Socialist Federated Soviet Republic) पर लागू होता है न कि सोवियत यूनियन पर जोकि बाद में १९२२ में बनी। १९१८ का संविधान जुलाई १९१८ में लागू हुआ। नये संविधान का घोषित उद्देश्य शोषकों (exploiters) को नष्ट कर श्रमजीवी वर्ग (proletariat) की अधिनायकता (डिक्टेटरशिप) स्थापित करना था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पूंजीपति, पादरी, राजवंशीय लोगों, कुलक (Kulaks), परिश्रम द्वारा न प्राप्त की हुई आय (unearned income) पर जीवन-यापन करने वाले तथा प्राचीन ज़ार शासन-तन्त्र के समर्थकों की कुछ श्रेणियों के अफसरों को 'वोट' का अधिकार नहीं दिया गया। चर्च (Church) को राज्य से पृथक् किया गया तथा स्कूलों में धार्मिक शिक्षा देने की आज्ञा नहीं दी गई। ऑल रशियन कांग्रेस ऑफ सोवियत्स की व्यवस्था की गई। संस्था में ग्राम तथा नगर दोनों के प्रतिनिधि थे, किन्तु नागरिक क्षेत्रों (urban) को ग्रामीण क्षेत्रों (rural areas) से अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया, क्योंकि साम्यवादियों का ग्रामों की अपेक्षा नगरों में अधिक प्रभाव था। अखिल रूस सोवियत कांग्रेस केन्द्रीय कार्यकारिणी का चुनाव करती थी, जो कि इसके अवकाश-काल में कार्य करती थी। जन-प्रबन्धकों (Peoples' commissars) के लिए भी व्यवस्था की गई थी, जो अखिल रूस सोवियत कांग्रेस के प्रति और उसके स्थगन काल में केन्द्रीय कार्यकारिणी के प्रति उत्तरदायी थी।

१९२४ का संविधान (Constitution of 1924)—१९२२ में सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ (U. S. S. R) की स्थापना हुई। संघ में चार राज्य थे। जुलाई, १९२३ में केन्द्रीय कार्यसमिति ने यू० एस० एस० आर० के लिए एक नया संविधान प्रस्तावित किया, जो जनवरी, १९२४ में लागू हुआ। संघ सरकार तथा इकाइयों के बीच शक्तियों का बँटवारा किया गया। कुछ शक्तियाँ संघ सरकार को दी गई और अवशिष्ट शक्तियाँ इकाइयों के पास रहीं। एक बार पुनः ऑल यूनियन कांग्रेस ऑफ सोवियत्स के लिए व्यवस्था की गई, जिसमें नगर निवासियों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया और पूंजीपतियों, पादरियों, अपराधियों तथा ज़ारशाही के कर्मचारियों की कुछ श्रेणियों को मताधिकार से वंचित रखा गया। केन्द्रीय विधान-मण्डल में दो सदन अर्थात् 'यूनियन ऑफ सोवियत्स' तथा 'सोवियत ऑफ नेशनैलि-[illegible]' थे। यूनियन ऑफ सोवियत्स जनता का प्रतिनिधित्व करती थी तथा सदस्यों

का चुनाव जनसंख्या के आधार पर होता था। सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज राज्यों का सदन था। यूनियन ऑफ सोवियत्स, सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज की अपेक्षा अधिक बड़ी थी। २७ सदस्यों के 'प्रेजिडियम' के लिए भी व्यवस्था की गई थी। उनमें से ६ सदस्य यूनियन ऑफ सोवियत्स, ६ सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज तथा ६ सदस्य दोनों की संयुक्त बैठक में चुने जाते थे। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति को जन-प्रबन्धकों की नियुक्ति भी करनी होती थी, जिसके सदस्य संघ सरकार के अनेक विभागों के अध्यक्ष होते थे। लेनिन जन-प्रबन्धक परिषद् का प्रथम चेयरमैन था। संविधान १९३६ में समाप्त हुआ।

१९३६ का संविधान—यू० एस० एस० आर० की सातवीं कांग्रेस ऑफ सोवियत्स में सोवियत रूस के संविधान[1] में संशोधन करने के अनेक कारण थे। प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं के पूरा होने के फलस्वरूप देश से पूँजीवाद पूरी तरह समाप्त हो चुका था। वर्ग-विभिन्नता भी समाप्त हो गई थी। स्टालिन के शब्दों में, "सब से महान् घटना यह है कि हमारे औद्योगिक क्षेत्र में से पूँजीवाद को पूरी तरह से निकाल दिया गया है और हमारे औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन की प्रवृत्ति पूरी तरह समाजवादी आदर्श के अनुसार है। कृषि-क्षेत्र में छोटे-छोटे खेतों के स्थान पर, जिनमें पुराने औजारों से काम होता था और जो कुलकों (Kulaks) के प्रभाव में थे, दुनिया के किसी भी देश के फार्मों से बड़े सामूहिक फार्म हैं। उनमें बड़े पैमाने पर यान्त्रिक उत्पादन किया जाता है तथा वे आधुनिक टैकनिकल यन्त्रों से सुसज्जित हैं। देश के व्यापार-क्षेत्र में से व्यापारियों तथा नफाखोरों को नष्ट कर दिया है गया। सभी व्यापार राज्य, सहकारी समितियों तथा सामूहिक फार्मों के आधीन है। जमींदारी प्रथा का पहले ही अन्त कर दिया गया है। औद्योगिक क्षेत्र में पूँजीपति वर्ग का स्थान नहीं रहा है। कृषि-क्षेत्र से 'कुलक' हट गए हैं। व्यापारी तथा नफाखोर व्यापार-क्षेत्र में हट गये हैं। इस प्रकार शोषकों की प्रत्येक श्रेणी हटा दी गई। श्रमिक कृषक-वर्ग तथा बुद्धिजीवी रह गए हैं।" इस परिवर्तित स्थिति में एक नए संविधान की आवश्यकता अनुभव हुई।

६ फरवरी, १९३५ को यू० एस० एस० आर० की सोवियतों की सातवीं

---

१. विशिन्सकी (Vyshinsky) के अनुसार, १९३६ का वर्ष सोवियत-संविधान के इतिहास में एक विशेष समय था। प्रस्तावित संविधान को उन परिवर्तित आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण घोषित किया गया था, जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत देश के उद्योगीकरण एवं कृषि के समूहीकरण से पैदा हो गई थीं। १९३६ का वर्ष ऐसा समय माना गया, जिसके लिए बहुत सारे व्यक्ति प्रतीक्षा कर रहे थे। इसने प्रस्तावों द्वारा स्थापित अनेक ऐसे नियन्त्रणों का अन्त करने का निश्चय किया, जो इस कारण लगाए गए थे कि कोई ऐसा शक्तियों का संगठन न बन सके, जो सोवियत शासन के अस्तित्व तथा राजनीतिक एवं आर्थिक प्रणाली के लिए भयानक संकट उत्पन्न कर सके। पहले जनता के समस्त वर्गों के साथ शिक्षा, सैनिक सेवा यहां तक कि नौकरी पाने से सम्बन्धित कानूनों में भी भेदभाव किया गया था। १९३६ के संविधान ने सामाजिक उत्पत्ति (social origin) एवं व्यवसाय के आधार पर दमन को मिटा कर इन सब को परिवर्तित कर दिया। बहुतों की दृष्टि में एक अधिक सहनशीलता का युग आता प्रतीत हुआ।

करना अथवा उनको खत्म करना, विदेशी राज्यों में संघ गणराज्य के सम्बन्ध स्थापित करने की विधि निर्धारित करना।

(२) युद्ध और शान्ति के प्रश्न।

(३) यू० एस० एस० आर० में नये गणराज्यों का प्रवेश करना।

(४) यू० एस० एस० आर० के संविधान का पालन करना, तथा यह देखना कि इकाइयों के संविधान संघ-संविधान के अनुकूल हैं।

(५) संघ गणराज्यों के सीमा परिवर्तनों की पुष्टि करना।

(६) नये राज्य-क्षेत्रों और प्रदेशों (Territories and Regions) तथा संघ गणराज्यों के अन्तर्गत स्वायत्त गणराज्यों तथा स्वायत्त प्रदेशों के निर्माण की पुष्टि करना।

(७) यू० एस० एस० आर० की सेनाओं का संगठन, यू० एस० एस० आर० की प्रतिरक्षा (defence), संघ गणराज्य में सैनिक संगठनों के निर्माण के सिद्धान्त तय करना।

(८) राज्य एकाधिकार (monopoly) के आधार पर विदेशी व्यापार।

(९) राज्य की सुरक्षा (security)।

(१०) यू० एस० एस० आर० की आर्थिक योजना निश्चित करना।

(११) यू० एस० एस० आर० के संचित राज्य बजट (consolidated state budget) तथा खर्च के बाद रिपोर्ट को मान्य करना, उन करों तथा राजस्वों को निश्चित करना जोकि संघ (Union), गणराज्यों (Republics) और स्थानीय बजटों को जाते हैं।

(१२) सारे संघ की दृष्टि से महत्त्व के बैंकों, औद्योगिक तथा कृषि संस्थाओं तथा व्यावसायिक उद्योगों का प्रशासन।

(१३) संचार (Communications) तथा यातायात का प्रशासन।

(१४) मुद्रा तथा साख पद्धति (monetary and credit systems) का संचालन।

(१५) राज्य बीमा संगठन।

(१६) ऋण लेना या देना।

(१७) भूमि अधिकार प्रणाली तथा खनिज सम्पत्ति (mineral wealth) जंगलों तथा जल-साधनों के प्रयोग के आधारभूत सिद्धान्त को निश्चित करना।

(१८) शिक्षा और जन-स्वास्थ्य के आधारभूत सिद्धान्त तय करना।

(१९) राष्ट्रीय आर्थिक आंकड़ों (statistics) की सामान्य व्यवस्था का संगठन।

(२०) श्रमिक कानूनों के सिद्धान्त तय करना।

(२१) न्यायिक पद्धति (Judicial System) तथा न्यायिक प्रक्रिया, फौजदारी तथा व्यवहार संहिता (Civil Code) से सम्बन्धित कानून।

(२२) संघीय नागरिकता (Union citizenship) के कानून, विदेशियों के अधिकारों से सम्बन्धित कानून।

(२३) विवाह तथा परिवार से सम्बन्धित कानूनों के सिद्धान्त तय करना।

(२४) समस्त संघ की दृष्टि से अपराधियों को क्षमा दान करना।

विशेष गुण (Special Features)—(१) यह ध्यान देने की बात है कि रूसी संघ पद्धति की कुछ खास विशेषताएँ हैं। संघ सरकार की विभिन्न इकाइयाँ विभिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। धारा १७ के अनुसार, प्रत्येक यूनियन गणराज्य (Union Republic) को यू० एस० एस० आर० से सम्बन्ध विच्छेद करने का अधिकार है। यह अधिकार अन्य संघीय संविधानों—भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं दिया गया। यह भी व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक यूनियन गणराज्य विदेशों से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है तथा समझौते कर सकता है। प्रत्येक यूनियन गणराज्य की अपनी गणराज्य सैनिक टुकड़ियाँ हैं। इन धाराओं के होने के कारण ही यूक्रेन तथा श्वेत रूस राष्ट्र संघ के स्वतन्त्र सदस्य माने गए हैं।

यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम सोवियत के छठे अधिवेशन में बहुत से ऐसे निर्णय दिए गए जिनके आधार पर छोटे गणराज्यों के प्रभुत्व को पूर्वाधिक सम्पन्नता प्राप्त हुई। एक विशेष नियम के अनुसार सोवियत भूमि के छोटे-छोटे राज्यों को विधान सम्बन्धी शक्तियाँ प्रदान कर दी गई। सिविल फौजदारी पद्धति को बनाने तथा प्रादेशिक नियन्त्रण सम्बन्धी कार्य-भार भी उन्हीं को सौंपा गया है। १९५७ में यूनियन रिपब्लिक्स के अधिकारों को और अधिक बढ़ा दिया गया और पृथक् आर्थिक राजखण्डों की स्थापना की गई।

आलोचकों का मत है कि यूनियन गणराज्यों की स्वतन्त्रता वास्तविक नहीं है। संघ सरकार उनको नियन्त्रित करने के अनेक सम्भव साधनों पर अधिकार रखती है। धारा १४ संघ सरकार को "यूनियन गणराज्यों तथा विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करने की सामान्य विधि निर्धारित करने की शक्ति देती है।" तथा "यूनियन गणराज्यों में सैन्य निर्माण के निरीक्षण के लिए निर्देशक तत्त्वों (directive principles) को तय करने की शक्ति भी देती है।" केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण इतना अधिक है कि कोई इकाई अपने आप को स्वतन्त्र घोषित करने का साहस नहीं कर सकती। इकाई की स्वतन्त्र प्रवृत्ति को कुचलने के लिए लौह आवरण (Iron Curtain) के पीछे कुछ भी किया जा सकता है। धारा २० में यह भी व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय तथा इकाई के कानून में विभिन्नता होने पर केन्द्रीय कानून लागू रहेगा। आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार का इकाइयों पर व्यापक नियन्त्रण है। व्यावहारिक रूप में, केन्द्र प्रत्येक वस्तु का नियन्त्रण करता है। केन्द्र विदेशी व्यापार, यातायात, संचार, बैंक, कृषि, उद्योग, अर्थ-व्यवस्था, राज्य बीमा आदि का नियन्त्रण करता है। सम्भवतः संसार में कोई अन्य देश ऐसा नहीं, जो आर्थिक क्षेत्र में केन्द्रीय सरकार को इतना नियन्त्रण दे सके। संविधान के संशोधन में सोवियत रूस की इकाइयाँ निःसहाय हैं। धारा १४६ विशेषतः व्यवस्था करती है कि संविधान में संशोधन यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के दोनों सदनों के $\frac{2}{3}$ बहुमत से किया जा सकता है। संघ की इकाइयों का कहीं उल्लेख नहीं है। संघ सरकार के द्वारा उनकी शक्तियाँ उनकी सहमति (consent) के बिना भी छीनी जा सकती है। एक दल का शासन होने के

कम्युनिस्ट पार्टी केन्द्र तथा इकाइयों दोनों का नियन्त्रण करती है। वास्तविक स्वायत्त शासन (autonomy) का प्रश्न उठता ही नहीं तथा विरोध को सख्ती से कुचला जा सकता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सोवियत रूस में संघीय व्यवस्था है जिसमें संघीय सरकार अधिक दृढ़ है और इकाइयों का कथित स्वायत्त शासन वास्तविक नहीं है। केन्द्रीय सरकार स्वेच्छा से कुछ भी कर सकती है। समस्त प्रशासकीय व्यवस्था एक है। यू० एस० एस० आर० का मन्त्रिमण्डल यूनियन गणराज्यों की कथित प्रभुसत्ता का उल्लघन कर सकता है। प्रो० ह्वीअर (Wheare) के अनुसार, "स्टालिन संविधान कल्प-संघीय (quasi-federal) पद्धति स्थापित करता है और वह संघीय सरकार के प्रचलित रूप की तरह नहीं है।"

(२) लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद (Democratic Centralism)—संविधान का दूसरा गुण लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद का सिद्धान्त है। यह राज्य तथा पार्टी का प्रेरक सिद्धान्त है। सोवियत राजनैतिक व्यवस्था देश की जनता को सबसे अधिक परिमाण में लोकतन्त्रीय स्वतन्त्रता देती है। संविधान में सार्वजनिक मताधिकार (universal franchise) तथा गुप्त मतदान (secret voting) की व्यवस्था की गई है। धारा १३५ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० के सभी नागरिक, जिनकी आयु १८ वर्ष से अधिक है, प्रतिनिधियों के चुनाव में भाग ले सकते हैं, चाहे उनकी जाति, राष्ट्रीयता लिंग, धर्म, शिक्षा, अधिवास (domicile), सामाजिक उद्गम (social origin), सम्पत्ति की स्थिति (property status) अथवा गत व्यवहार कुछ भी हो, किन्तु पागल और वे अपराधी जिनके वोट के अधिकार न्यायालयों ने छीन लिए हों, वोट नहीं दे सकते। इसी प्रकार प्रत्येक रूसी नागरिक जिसकी आयु २३ वर्ष से अधिक हो, यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत का सदस्य चुना जा सकता है चाहे वह किसी वर्ग, राष्ट्रीयता, लिंग, धर्म, शिक्षा, निवास, सामाजिक उद्गम, साम्पत्तिक स्थिति अथवा गत व्यवहार से सम्बन्धित हो। प्रत्येक नागरिक का एक वोट होता है तथा सब नागरिक समान आधार पर चुनाव में भाग लेते हैं। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान चुन सकती हैं और चुनी जा सकती हैं। सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों को भी निर्वाचन में भाग लेने तथा निर्वाचित होने का सामान्य नागरिक की तरह अधिकार प्राप्त है। देश की प्रत्येक बड़ी अथवा छोटी—नगर तथा ग्रामों (Soviets of working people's deputies) से लेकर सुप्रीम सोवियत तक सभी प्रतिनिधि संस्थाओं का निर्वाचन नागरिकों के प्रत्यक्ष मतदान द्वारा होता है। उम्मीदवारों को चुनाव मण्डल (election districts) मनोनीत करते हैं। उम्मीदवारों को मनोनीत करने का अधिकार जन-संगठनों (public organizations), ट्रेड यूनियनों, सहकारी समितियों, युवक संगठनों (youth organizations) तथा सांस्कृतिक समितियों को प्राप्त है। प्रत्येक प्रतिनिधि का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने तथा अपनी सोवियत ऑफ वर्किंग पीपल्स डिपुटीज (working people's deputies) के कार्य की रिपोर्ट अपने निर्वाचकों को दे। कानून द्वारा निश्चित रीति से, बहुमत निर्वाचकों के निर्णय से उसे किसी भी

समय वापस[1] बुलाया जा सकता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि सिद्धान्ततः रूसी जनता को पर्याप्त लोकतन्त्रीय अधिकार प्राप्त हैं। उसको प्रत्येक प्रकार के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार है और अनुभव यह बतलाता है कि ६०% से अधिक जनता चुनाव के समय वोट देती है। रूसी जनता को आर्थिक सुरक्षा की भी चिन्ता नहीं। उनके लिए बेकारी की समस्या नहीं है, प्रत्येक नागरिक को काम करने का अधिकार प्राप्त है तथा उसे अपने कार्य के परिमाण तथा गुण के अनुसार वेतन पाने का अधिकार है।

इन सब विशेषताओं के होते हुए भी यह कहा जाता है कि रूस मे वास्तविक अर्थ मे स्वतन्त्रता नही है। इसका आंशिक कारण यह है कि रूस में प्रत्येक वस्तु पर साम्यवादी दल का नियन्त्रण है। चुनावों[2] मे भी वह व्यक्ति खड़ा नही हो सकता जो साम्यवादी दल का सदस्य नही है। देश मे साम्यवादी दल के अतिरिक्त कोई दूसरा राजनैतिक दल स्थापित करने की आज्ञा नही दी जाती। साम्यवादी दल ही उम्मीदवारों का चुनाव करता है तथा चुनाव के समय केवल एक ही उम्मीदवार होता है। वहाँ के नागरिक अब केवल उसी उम्मीदवार को मत (वोट) दे सकते हैं जो साम्यवादी है। अन्य देशों में ऐसी परिस्थिति होने पर उम्मीदवार को निर्विरोध निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। औपचारिक चुनाव की आवश्यकता नही रहती। आलोचकों का कथन है कि रूस में चुनाव केवल मजाक है क्योंकि एक उम्मीदवार का विरोध करने वाला दूसरा उम्मीदवार नहीं होता। साम्यवादी दल चुनावों पर छाया रहता है और उनका नियन्त्रण करता है। तथ्य यह है कि वहाँ का प्रजातन्त्र केवल दिखावा है। रूस के नागरिकों को केवल चुनाव मे भाग लेने का अधिकार है, किन्तु उनका चुनावों पर नियन्त्रण नहीं है क्योंकि यह कार्य साम्यवादी दल करता है। साम्यवादी दल का विरोध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हटना पड़ता है। साम्यवादी दल सब ट्रेड यूनियनों, युवक संगठनों, उपभोक्ता सहकारी समितियों (Consumers' Co-operatives) तथा दूसरे संगठनों का पथ-प्रदर्शन तथा नियन्त्रण करता है। भाव प्रकट करने तथा भाषण करने की स्वतन्त्रता उनके अतिरिक्त दूसरों को नहीं है, जो साम्यवादी विचारधारा के अनुसार बोलते अथवा लिखते नहीं हैं। राज्य देश की समस्त शिक्षा-संस्थाओं का नियन्त्रण करता है, तथा इस प्रकार पुरुषों एवं स्त्रियों के दिमाग में

१. सोवियत संविधान की धारा १४२ के अनुसार, "प्रत्येक प्रतिनिधि (deputy) का कर्त्तव्य है कि अपने काम और अपनी मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत (Soviet of working people's deputies) के कार्य का रिपोर्ट अपने निर्वाचकों को दे और कानून द्वारा प्रस्थापित विधि के अनुसार निर्वाचकों के बहुमत के निर्णय पर उसे कभी भी वापस बुलाया जा सकता है।"

२. सोवियत रूस में निर्वाचन साम्यवादी दल के कार्यकर्त्ताओं के लिए अपने कार्य का प्रदर्शन करने के अवसर-मात्र हैं, इनमें उन्हें अपनी संगठन शक्ति और आन्दोलनात्मक बुद्धि को प्रकट करने का अवसर मिलता है। विशिन्स्की के अनुसार, "सोवियत निर्वाचन-प्रणाली जनता को राजनैतिक रूप में संगठित एवं शिक्षित करने, राज्य के तन्त्र (state mechanism) और जनता के सम्बन्धों को और दृढ़ करने, और राज्य के तन्त्र को सुधारने और नौकरशाही के अवशेषों को मिटाने के लिए एक भीमकाय साधन है।"

साम्यवादी विचार उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रेस, रेडियो और सिनेमा का प्रयोग भी उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। रूस के आर्थोडक्स चर्च (Orthodox Church of Russia) को भी राज्यनीति का साधन बना लिया गया है। साम्यवादियों की यह गर्वोक्ति है कि "दुनिया के किसी लोकतन्त्रीय पूंजीवादी गणराज्य की अपेक्षा रूस में लाखों गुना अधिक लोकतन्त्र है।" आलोचकों का इस सम्बन्ध में यह उत्तर है कि यदि रूसी प्रजातन्त्र को पूर्ण लोकतन्त्र कहा जा सकता है तो बर्क (Burke) के इस कथन में किसी को शंका नहीं करनी चाहिए कि पूर्ण "प्रजातन्त्र संसार में सबसे अधिक लज्जाहीन वस्तु है।"

फेनसोड (Fainsod) के अनुसार, "सोवियत समाज पर छाई हुई सोवियत राज्य-पद्धति ने तानाशाही सम्भ्रान्त वर्ग (dictatorial elite) की जो सोवियत समाज पर हावी है, मजबूत स्थिति को छिपाने के लिए जन-साधारण प्रजातन्त्र का प्रयोग करने में बहुत अधिक कुशलता दिखाई है। सावैधानिक कल्पित बातें (myths) और चिन्ह (symbols) यह दिखाने के लिए बड़ी चतुराई से इस्तेमाल किए गए हैं कि उनमें जनता हिस्सा लेती है और उन पर जनता का ही नियन्त्रण होता है। किन्तु सोवियत प्रणाली में शक्ति के वास्तविक ढाँचे को छिपाना कठिन है। सोवियत संघ में स्पष्टत एकदलीय अधिनायकवाद है जिसमें निर्णायक शक्ति एक छोटे वर्ग के पास होती है।"

फिर भी राष्ट्रपति वोरोशिलोव के अनुसार, सोवियत भूमि के प्रत्येक नागरिक को आर्थिक अधिकार सुलभ है। वे इस आरोप को स्वीकार करने को तैयार नहीं कि सोवियत प्रजातन्त्रवाद सीमित है। उनका कहना है कि "यहाँ केवल सोवियत प्रतिनिधियों का चुनाव ही नहीं होता बल्कि साम्यवादियों के अतिरिक्त अन्य प्रतिनिधि भी होते हैं। हाल ही में जो स्थानीय प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ उनमें ५५% असाम्यवादी थे और शत-प्रतिशत मतदाता मतदान करने गए थे।"

लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद के सिद्धान्त में न केवल लोकतन्त्र बल्कि केन्द्रीकरण (centralization) भी आता है। इसको इस प्रकार से प्राप्त किया जाता है कि केन्द्रीय सरकार का संघ गणराज्यों के कार्यों पर अधिक परिमाण में एक प्रकार का नियन्त्रण है। इसके अतिरिक्त, साम्यवादी दल केन्द्र तथा इकाई दोनों को ही नियन्त्रित करता है। कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो साम्यवादी नियन्त्रण के परे हो।

लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद का सिद्धान्त साम्यवादी दल के नियमों में भी समाविष्ट है। इसके अनुसार, दल की समस्त समितियों का निर्वाचन होता है, ये समितियाँ अपने-अपने संगठनों को समय-समय पर अपने कार्य की रिपोर्ट देती हैं, प्रत्येक निम्न संगठन उच्च समिति के आदेशों का कठोरता से पालन करता है तथा उच्च समिति के निर्णय को मानने के लिए निम्न संस्थाएँ पूरी तरह बाध्य हैं। दल के संगठन में केन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर कोई विरोध नहीं है, पर यह कहा जा सकता है कि दल के संगठन के कार्य कराने में कहीं प्रजातन्त्र नजर नहीं आता। नेताओं के विचारों का पालन करना ही पड़ता है तथा दल के सदस्यों का दल की नीति और कार्यक्रम तय में कोई हाथ नहीं होता। दलीय अनुशासन इतना कठोर है कि तनिक-सी भी

स्वतन्त्रता का चिन्ह दिखाई देने पर सदस्यों को पदच्युत किया जा सकता है और उन्हे गद्दारों की भाँति फाँसी दी जा सकती है। प्रत्यक्ष चुनाव तथा गुप्त मतदान की प्रथा के चलन से तनिक भी दशा मे परिवर्तन नही आया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद मे लोकतन्त्र को इतना स्थान नही है जितना केन्द्रवाद को। किन्तु वस्तुतः *स्थानीय प्रकार के सामान्य कार्यों* मे काफी स्वतन्त्रता है।

(३) रूस के सामाजिक सगठन (Social Structure) का ब्यौरा सविधान के *प्रथम अध्याय मे दिया गया है। उसके अनुसार, रूस मजदूरो तथा किसानो का* समाजवादी राज्य है। रूस का राजनैतिक आधार सोवियत ऑफ वर्किंग पीपल्स डिपुटीज है जो पूँजीपतियो और जमीदारो के उन्मूलन तथा सर्वहारा अर्थात् मजदूर (Proletariat) के अधिनायकत्व के कायम होने से विकसित एव दृढ हुई है। रूस की समस्त शक्ति ग्राम तथा नगर की मेहनत-कश जनता को प्राप्त है, जिसका प्रतिनिधित्व सोवियत ऑफ वर्किंग पीपल्स डिपुटीज करती है। रूस का आर्थिक आधार समाजवादी आर्थिक व्यवस्था तथा उत्पादन के साधनो एव यन्त्रो की समाजवादी मिल्कियत है जो पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था खत्म कर दिये जाने, उत्पादन के व्यक्तिगत साधानो का उन्मूलन होने और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण बन्द करने के फलस्वरूप दृढता से स्थापित हो गया है। रूस में समाजवादी सम्पत्ति या तो राज्य सम्पत्ति के रूप मे है (समस्त जनता से सम्बन्धित) अथवा सहकारी और सामूहिक फार्म पूँजी के रूप मे है (सामूहिक फार्मों की पूँजी, सहकारी समितियों की पूँजी)। भूमि, इसके खनिज पदार्थ, नदी, झील आदि, जगल, मिलें, कारखानें, खाने (mines), रेल, जल तथा वायु यातायात, बैंक, सचार, राज्य द्वारा सगठित बड़े कृषि व्यवसाय (स्टेट फार्म, मशीन, ट्रेक्टर स्टेशन आदि) इसी प्रकार नागरिक व्यवसाय (municipal enterprises) और नगरो तथा औद्योगिक क्षेत्रों मे अधिकतर रहने के घर (bulk of dwelling houses) राज्य की सम्पत्ति है, अर्थात् समस्त राष्ट्र की है। सामान्य सामूहिक फार्मों और सहकारी संगठनो के व्यवसाय (enterprise) जिनमे उनके पशुओ के समुदाय और यन्त्र, सामूहिक फार्मों तथा सहकारी संगठनों का उत्पादन और इसी प्रकार पचायत घर शामिल है, सामूहिक फार्मों और सहकारी सगठनो की सयुक्त समाजवादी पूँजी है। सामूहिक फार्म में प्रत्येक परिवार सयुक्त सामूहिक व्यवसाय मे प्राप्त होने वाली आय के अतिरिक्त निजी प्रयोग के लिए एक छोटा भूखण्ड (Plot) तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के नाते भूखण्ड पर खेती करता है और रहने का मकान, पशु, मुर्गी-खाना तथा छोटे यन्त्र रखता है। सामूहिक फार्म की भूमि के लिए उन्हे कुछ देना नही पड़ता और वे उसे असीमित काल अर्थात् सदा के लिए सुरक्षित समझ सकते है। रूस मे समाजवादी आर्थिक अर्थ-व्यवस्था के साथ-साथ कानून दूसरे का शोषण न करने वाले किसानों और दस्तकारों को अपने श्रम से किए जाने वाले छोटे कार्यों की भी इजाजत देता है। कानून नागरिकों की आय, बचत तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति अधिकारों का रक्षण करता है। इन व्यक्तिगत सम्पत्ति मे काम, निवास--

सहायक गृह-उद्योगों तथा गृहस्थी की वस्तुएँ, सुविधाजनक तथा निजी प्रयोग की वस्तुएँ हैं। कानून पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने की भी आज्ञा देता है। रूस का आर्थिक जीवन राज्य की राष्ट्रीय आर्थिक आयोजना (state national economic plan) तय करती है जिसका उद्देश्य जन-सम्पत्ति को बढाना, मजदूर जनता के भौतिक तथा सांस्कृतिक स्तर को धीरे-धीरे ऊँचा उठाना, रूस की स्वतन्त्रता को दृढ करना, तथा इसकी प्रतिरक्षात्मक सामर्थ्य को शक्तिशाली बनाना है। रूस में प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य के लिए काम करना कर्त्तव्य तथा आदर की वस्तु है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा भी नही।" रूस में समाजवाद का यह सिद्धान्त लागू है, "प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करे और अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करे।" (From each according to his ability, to each according to his needs)

(४) मूल अधिकार और कर्त्तव्य (Fundamental Rights and Duties)—रूस के संविधान की एक अन्य विशेषता यह है कि वह नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करता है। ११८ से १३३ तक धाराएँ इस महत्त्वपूर्ण विषय से सम्बन्धित हैं।

मूलाधिकार (Fundamental Rights)

(क) यह व्यवस्था की गई है कि रूस के नागरिकों को काम करने का अधिकार (right to work) प्राप्त रहे, अर्थात् उनको अपने सामर्थ्य एवं योग्यता के अनुसार काम करने का स्थान पाने का अधिकार है। उनको इस अधिकार की प्राप्ति राष्ट्रीय समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के संगठन, रूसी समाज में उत्पादन तत्त्वों के प्रबल विकास, आर्थिक संकट की सम्भावनाओं के हटने तथा बेकारी के उन्मूलन के कारण सम्भव है। यह ध्यान रखने की बात है कि सब श्रमिकों को समान वेतन नहीं मिलता। उनके वेतन का स्तर उनके कार्य के परिमाण एव कुशलता पर निर्भर है। श्रमिकों के एक विशेष वर्ग को जिसे 'स्टाखानोविस्ट्स' (Stakhanovists) कहते हैं, अधिक वेतन दिये जाते हैं और इसी कारण ट्राट्सकी (Trotsky) ने लिखा था कि "स्टाखानोविस्ट्स की वास्तविक आय बहुधा निम्न श्रेणी के कुछ मजदूरों की आय से बीस-तीस गुना हो जाती है और कई अवस्थाओं में भाग्यशाली विशेषज्ञों का वेतन अस्सी या सौ अकुशल मजदूरों के वेतन से बढ जाता है। मजदूरों के वेतन की असमानता के क्षेत्र में समाजवादी रूस ने न केवल पूंजीपति देशों की बराबरी की है प्रत्युत् उन्हें बहुत पीछे छोड़ दिया है" (*The Revolution Betrayed*)।

(ख) रूसी नागरिकों को विश्राम तथा अवकाश का अधिकार प्राप्त है। दफ्तरों और कारखानों में काम करने वालों के लिए आठ घण्टे का दिन, कठिन काम करने वालों के लिए छः या सात घण्टे का दिन तथा बहुत कठोर कार्य करने वालों के लिए चार घण्टे का दिन निश्चित कर दिया गया है। दफ्तरों और कारखानों में काम करने वालों को सवेतन वार्षिक अवकाश के नियम बनाकर और मजदूरों के लिए स्वास्थ्य घरों, विश्रामघरों और क्लबों का प्रबन्ध करके इस अधिकार को मूर्तरूप [illegible] है।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि संविधान में धर्म-प्रचार के अधिकार की गारण्टी नहीं दी गई, तथापि इसमें धर्म के विरुद्ध प्रचार की गारण्टी दी गई है। इस प्रकार राज्य धार्मिक विषयों में पूर्णतः तटस्थ नहीं है। किन्तु राज्य का चर्च से सम्बन्ध अब पहले से मधुर है। आरम्भ में चर्च के विरुद्ध इसलिए युद्ध लड़ा गया क्योंकि उसका सम्बन्ध जारशाही से था। १९२५ में योद्धा नास्तिकों की संस्था को जन्म दिया गया, किन्तु बाद में उक्त संस्था को तोड़ दिया गया। १९४३ में आर्थोडाक्स चर्च के प्रमुख पद 'पैट्रिआर्क' को दुबारा शुरू किया गया। चर्च के विरुद्ध लड़ने के स्थान पर ये प्रयत्न किए जा रहे हैं कि चर्च का प्रयोग साम्यवादी दल और उसके नेताओं की स्थिति दृढ़ करने के लिए किया जाए।

(ज) श्रमिकों के हितों को ध्यान में रखते हुए तथा समाजवादी व्यवस्था को दृढ़ करने के लिए रूसी जनता को कानून द्वारा भाषण की स्वतन्त्रता (freedom of speech), मुद्रण की स्वतन्त्रता (freedom of press), सभा करने की स्वतन्त्रता (freedom of assembly) जिसमें बड़ी सभाएँ करना भी शामिल है, जलूस निकालने तथा प्रदर्शन (demonstration) करने की स्वतन्त्रता दी गई है। इन नागरिक अधिकारों को वास्तविक रूप देने के लिए श्रमिकों तथा उनके संगठनों के अधिकार में छापेखाने, कागजों के भण्डार, सार्वजनिक भवन (public buildings), संचार सुविधाएँ तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ सौंपी गई है। आलोचकों के अनुसार, रूस में भाषण तथा विचार प्रचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता वास्तविक नहीं है क्योंकि प्रत्येक वस्तु पर साम्यवादी दल का नियन्त्रण है अतः वहाँ उन लोगों का कोई स्थान नहीं जो साम्यवाद के विपरीत विचारों के स्वामी हैं। वहाँ विचारों पर नियन्त्रण पाया जाता है तथा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समस्त प्रचार साधनों का प्रयोग किया जाता है। विशिन्सकी (Vyshinsky) रूस की उक्त स्थिति के समर्थन में कहता है कि "स्वाभाविक रूप से, हमारे राज्य में समाजवाद के शत्रुओं के लिए भाषण, मुद्रण तथा इसी प्रकार की अन्य स्वतन्त्रताओं के लिए कोई स्थान न तो हो सकता है और न है। श्रमजीवियों की इन प्रत्याभूत स्वतन्त्रताओं का राज्य की हानि, अर्थात् समस्त श्रमजीवियों की हानि के लिए उपयोग करने के प्रत्येक प्रयत्न को क्रान्ति-विरोधी (counter-revolutionary) कार्यों की श्रेणी में रखना चाहिए।"

रूस में नागरिकों के भाषण, मुद्रण तथा संगठित होने के अधिकारों के विषय में दो उद्धरण दिए जा सकते हैं। एक बार प्रवदा ने इस प्रकार लिखा : "हमारे रूस में से कायर बुर्जुआ, मेनशेविस्टों और क्रान्ति-विरोधियों के प्रेम को सदा के लिए नष्ट कर दिया गया है। जो कोई समाजवादी शासन को उलटने, और जनता की समाजवादी सम्पत्ति को हानि पहुँचाने का उद्देश्य रखेगा वह जनता का शत्रु समझा जाएगा। उसे सोवियत रूस में कागज का टुकड़ा कभी प्राप्त नहीं होगा, अथवा वह अपने तुच्छ-साधन के लिए किसी छापेखाने का प्रवेश-द्वार भी पार न कर सकेगा और अपने निर्बल विचारों को फैलाने के लिए उसे कभी कोई हॉल, कमरा, अथवा कोना तक भी प्राप्त नहीं होगा।" इसी प्रकार, इज्वेस्टिया (Izvestia) ने लिखा कि "हम सूर्य को ... नहीं कर सकते; और निश्चित रूप से हम अपराधियों, राजद्रोह के समर्थकों,

(ञ) रूसी नागरिकों को दैहिक अनतिक्रम्यता (personal inviolability) की गारण्टी दी गई है। न्यायालय के निर्णय अथवा प्रोस्यूरेटर (*Procurator*) की आज्ञा के अतिरिक्त, किसी व्यक्ति को कैद नहीं किया जा सकता। नागरिकों के घरों की अनतिक्रम्यता तथा पत्र-व्यवहार की गोपनीयता (privacy of correspondence) कानून द्वारा सुरक्षित है। आलोचकों के अनुसार, रूस मे ये अधिकार पूर्णत: अवास्तविक हैं। किसी भी व्यक्ति को केवल शक पर कैद किया जा सकता है और औपचारिक मुकदमा चलाये बिना ही मृत्युदण्ड दिया जा सकता है। अपराधियों में से बहुत से राजनैतिक अपराधी होते हैं। उनके भाग्य में, साधारणत: आजन्म कारावास, अदालत द्वारा दण्डादेश (condemnation), बेगार कैम्प, देश-निकाला (deportation) अथवा मृत्युदण्ड होता है। उनमे से बहुत बड़ी संख्या को बन्दी कैम्पों (Concentration Camps) में भेज दिया जाता है। यदि उनका कुछ अर्थ होता तो रूस की जेलो मे इतने अधिक लोग नहीं होते।

(ट) रूस उन विदेशी नागरिकों को शरण लेने का अधिकार देता है जिन पर श्रमिकों के हितों को बचाने के लिए मुकदमा चला हो अथवा जिन्हें वैज्ञानिक कार्यों (scientific activities) अथवा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संघर्ष के लिए दण्ड दिया गया हो। व्यंग्यात्मक रूप से यह कहा जाता है कि "वास्तव में मास्को प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के लिए शरणस्थल है।"

मूल कर्त्तव्य (Fundamental Duties)—यदि रूस के नागरिकों को कुछ अधिकार दिए गए हैं तो उनसे कुछ कर्त्तव्यों को पूरा करने की आशा भी की गई है। ये कर्त्तव्य 'मेहनतकश जनता के महत्त्व के हितों' (the vital interests of the working people) की रक्षा करने के लिए आवश्यक हैं।

(क) धारा १३० के अनुसार, प्रत्येक रूसी का कर्त्तव्य रूस के संविधान को मानना, कानूनों का पालन करना, श्रमिक अनुशासन को कायम रखना, सार्वजनिक कर्त्तव्यों को ईमानदारी से पूरा करना तथा समाजवादी मेल-जोल के नियमों का आदर करना है। कारपिन्स्की (Karpinsky) के अनुसार, "सोवियत समाजवादी राज्य (Soviet Socialist State) समस्त राष्ट्र के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, उनको प्रकट करता है तथा उनकी रक्षा करता है। सोवियत समाज के, सोवियत राज्य के और जनता के हितों का एकीकरण हो गया है। उनमें भेद नहीं किया जा सकता, उनको पृथक् नहीं किया जा सकता। काम करने वालों में अनुशासन पर जोर दिया जाता है। इसका कारण यह वास्तविकता है कि ऐसे स्वतन्त्र, सचेत अनुशासन (conscious disciplino) के बिना समाजवादी स्पर्धा (Soviet emulation), जिसका उद्देश्य कम-से-कम समय मे उत्पादन की निश्चित मात्रा को पूरा करना और उससे अधिक बढ़ना है, असम्भव होगी।" रूस मे काम केवल कर्त्तव्य नहीं, बल्कि समस्त योग्य व्यक्तियों के लिए आदर की वस्तु है। संविधान ने विशेष रूप से निश्चित किया है—"जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा भी नहीं।"

(ख) प्रत्येक रूसी नागरिक का कर्त्तव्य सार्वजनिक एवं समाजवादी सम्पत्ति का सम्मान करना तथा उसे सुरक्षित रखना है क्योंकि वह समाजवादी व्यवस्था का

पवित्र तथा बहुमूल्य आधार है, देश की शक्ति और आय का स्रोत है और समस्त काम करने वाली जनता की संस्कृति एवं सम्पन्नता का साधन है। सार्वजनिक एव समाजवादी सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाले जनता के शत्रु हैं। रूस में समाजवादी सम्पत्ति राज्य सम्पत्ति के रूप में अथवा सामूहिक और सहकारी सम्पत्ति के रूप मे है। भूमि, खनिज पदार्थ, नदी, झील, तालाब आदि; जंगल, मिलें, कारखाने, खाने, रेल, जल तथा वायु यातायात, बैंक, सचार, सास्कृतिक कार्य, नगरपालिका व्यवसाय तथा स्थानीय एव औद्योगिक क्षेत्रों मे रहने के मकान राज्य-सम्पत्ति है और समस्त राष्ट्र के हैं। सामूहिक फार्मों तथा सहकारी समितियो की सयुक्त समाजवादी सम्पत्ति मे सामूहिक फार्मों तथा सहकारी समितियों के व्यवसाय, उनके पशु, उपज और भवन है। धारा १३२ के अनुसार सैनिक सेवा अनिवार्य है। रूस के नागरिक का सामान्य कर्त्तव्य सशस्त्र सेनाओं मे सैनिक सेवा करना है।

(ग) धारा १३३ के अनुसार, देश की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्त्तव्य है। देश-द्रोह, निष्ठा की शपथ के उल्लघन, शत्रु को भेद बताने, राज्य की सैनिक शक्ति को हानि पहुँचाने के अपराध को सबसे घृणित और नीच कार्य समझा जाता है और अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाता है। सार्वजनिक सैनिक सेवा का महत्त्व तथा देश की सुरक्षा की आवश्यकता निम्न शब्दों मे व्यक्त की गई है— "वास्तव में हाथ में शस्त्र लेकर अपने महान् समाजवादी देश की रक्षा करने से बढ कर अन्य आदरणीय कर्त्तव्य नही हो सकता, जो ससार मे किसानों और मजदूरो का पहला राज्य है, संसार के किसी भी कोने मे स्थित परिश्रम करने वाली तथा मुक्ति-संग्राम में रत मानवता का दुर्ग तथा आशा है।"

(५) *रूस के सविधान मे इगलैण्ड के मन्त्रिमण्डल के प्रकार की सरकार स्थापित* की गई है। रूस का मन्त्रिमण्डल अपने देश की सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी है। सुप्रीम सोवियत के स्थगन काल में वह प्रेजीडियम (Presidium) के प्रति उत्तरदायी है। इसी प्रकार विभिन्न यूनियन गणराज्यो के मन्त्रिमण्डल अपनी-अपनी सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी हैं। रूस की सुप्रीम सोवियत को अनुसन्धानात्मक (investigating) तथा हिसाब की जाँच करने के लिए (auditing) आयोग (Commission) नियुक्त करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त है। किन्तु साम्यवादी दल की प्रधान स्थिति संसदीय प्रणाली को केवल मजाक बना देती है। विधानमण्डलो में विरोधी दल नही है और इसलिए सरकार की आलोचना नही होती। संक्षेप मे विधानमण्डलों का कार्य दल के निश्चयों (decisions) की पुष्टि करना है।

(६) रूस के संविधान की एक अन्य विशेषता रूस की सुप्रीम सोवियत की प्रेजीडियम मे *बहुल या अनेकात्मक कार्यपालिका (plural executive)* है। इसमे ३३ सदस्य हैं और यह इंगलैंड के राजा अथवा फ्रास के राष्ट्रपति के समान है, किन्तु वास्तविक कार्यपालिका रूस का मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers) है।

(७) रूस के सविधान मे शक्तियों का एक प्रकार का पृथक्करण (separation of powers) है। १९१८ और १९२४ के सविधानों मे विधायिनी, कार्यपालिका तथा न्यायिक शक्तियाँ (legislative, executive and judicial powers) आत्-

यूनियन कॉंग्रेस ऑफ सोवियत्स तथा उसकी एजेन्सियों के हाथो मे भी थी। नए संविधान के अन्तर्गत विधायिनी शक्ति पूरी तरह से रूस की सुप्रीम सोवियत को दे दी गई है, कार्यपालिका तथा प्रशासकीय शक्तियाँ मन्त्रिमण्डल को प्राप्त है, तथा न्यायिक प्राधिकार सुप्रीम कोर्ट को मिला है। किन्तु पृथक्करण का उल्लंघन किया गया है क्योंकि सुप्रीम सोवियत रूस की प्रेजीडियम, प्रोक्योरेटर-जनरल (Procurator-General) तथा रूस के सुप्रीम कोर्ट के सदस्यों को नियुक्त करती है। साम्यवादी दल की प्रभावशाली स्थिति समस्त अगों को संयुक्त करके पूर्ण करती है।

(८) रूस का संविधान एक-दलीय राज्य (one-party state) की स्थापना करता है। संविधान मे साम्यवादी दल की व्याख्या इस प्रकार की गई है—"समाजवादी व्यवस्था के विकास तथा दृढ करने के संघर्ष मे मजदूर जनता का नेता साम्यवादी दल मजदूर जनता के संगठनों का प्रेरक स्रोत है।" कारपिन्सकी के अनुसार, "साम्यवादी दल के नेतृत्व में रूसी जनता नए उद्देश्य प्राप्त करने के लिए आगे बढ रही है, सोवियत रूस की शक्ति को एकत्रित किया जा रहा है और समाजवाद के भवन को पूरा करते हुए क्रम से साम्यवाद (Communism) की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आओ! हम सब सोवियत राज्य, साम्यवादी दल और अपने नेता, मित्र और गुरु कामरेड स्टालिन के चारो ओर दृढ़ता से एकत्रित हों।"

(९) रूस के न्यायालयों की स्थिति एवं कार्य भी संविधान की एक विशेषता है। न्यायालय किसानो और मजदूरो के सोवियत समाजवादी राज्य (Soviet Socialist State) के अग है, और उनका कर्तव्य "सोवियत सरकार के शत्रुओं से लडना, नई सोवियत व्यवस्था को संगठित करने के लिए लडना और मजदूर जनता में नए समाजवादी अनुशासन को दृढता से जमाना है।"

स्टालिन के अनुसार, "यू० एस० एस० आर० पूर्ण रूप से इतिहास में अद्वितीय एवं अनोखा समाजवादी राज्य है।" इसका अनोखा गुण यह है कि यह एक समाजवादी राज्य है। इसके आर्थिक जीवन का समाजवादी संगठन इसका सबसे महत्त्वपूर्ण अनोखा गुण है। संघ के एककों (units) का पृथक् होने का अधिकार संविधान में स्वीकार किया गया है। केवल केन्द्रीय सरकार को विधान-मण्डल के ⅔ बहुमत से संविधान में संशोधन करने का अधिकार दिया गया है और संशोधनों मे एककों को कोई अधिकार नहीं है। सुप्रीम सोवियत मे शक्ति का केन्द्रीकरण किया गया है। यह कार्यपालिका और न्यायपालिका को चुनती है और उसके कानून न्यायपालिका या कार्यपालिका के निषेध (Veto) के विषय नहीं है। इसकी अपील केवल जन-निर्देश के द्वारा जनता से की जाती है। सुप्रीम सोवियत के दोनों सदनों की शक्तियाँ समान है। प्रेजीडियम की रचना और कार्य अद्वितीय हैं। यू० एस० एस० आर० एक-दलीय राज्य है।

तुलनाएँ (Comparisons)—कुछ दृष्टियों से सोवियत रूस का १९३६ का संविधान १९१८ और १९२४ के संविधानों से भिन्न है। (१) उसमें सघीय परिषद् की शक्तियाँ घटा दी गई है और बहुत विस्तृत कर दी गई है, जैसा कि इस बात से प्रकट है कि संघ के संगभूत और स्वायत्त गणराज्यों के संविधान संघीय संविधान के अनुरूप

होने चाहिएँ और संघीय सत्ता का, आन्तरिक प्रशासकीय सीमाओं के परिवर्तन, न्यायपालिका, सुरक्षा नीति और दीवानी तथा फौजदारी न्यायालयों के बनाने पर अधिकार होना चाहिए। (२) सोवियत रूस के संविधान ने विधानमण्डल, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों में अन्तर करके शक्ति व विभाजन के सिद्धान्त (principle of separation of powers) को कुछ स्वीकृति प्रदान की है। धारा ३२ के अनुसार, विधायिनी शक्ति (legislative power) का प्रयोग पूर्णरूपेण सुप्रीम सोवियत करती है। धारा ६४ व्यवस्था करती है कि मन्त्रि-परिषद् सर्वोच्च कार्यपालिका एवं प्रशासकीय अंग है। धारा ११२ के अनुसार न्यायाधीश स्वतन्त्र है और केवल कानून के अधीन है। किन्तु वास्तविक रीति संविधान के शब्दों से भिन्न है। न्यायपालिका की स्वतन्त्रता केवल कल्पना है क्योंकि न्यायालय सदा ही शासन की इच्छानुसार कार्य करते हैं। अधिकांश कानूनों का स्रोत सुप्रीम सोवियत न होकर मन्त्रि-परिषद् होती है जो कि बहुधा साम्यवादी दल की केन्द्रीय समिति से संयुक्त होकर निर्णय घोषित करती है। कार्यपालिका के निर्णय को सांवैधानिक संशोधनों की शक्ति प्राप्त होती है। (३) रूस के वर्तमान संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का एक अध्याय है, पहले के संविधानों में ऐसा कोई अध्याय नहीं था। (४) १९३६ के संविधान द्वारा आम, समान एवं प्रत्यक्ष मताधिकार और गुप्त मतदान की पद्धति को शुरू करके रूसी संविधान अन्य पूँजीपति देशों की प्रणाली के अधिक समीप आगया है। पहले के संविधानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी।

Suggested Readings

Carter and Others	Government of the Soviet Union, 1954.
Fainshold, M.	How Russia is Ruled ?
Florinsky, M. T.	Russia, A History and an Interpretation, 1953.
Harper, S. N.	The Government of the Soviet Union.
Hazard, J. H.	The Soviet System of Government, 1957.
Karpinsky, V.	The Social and State Structure of the U. S. S. R.
Kirichinko, A. D.	Soviet State Law, 1960.
Kulski, W. W.	The Soviet Regime, 1954.
Scott, D. J. R.	Russian Political Institutions.
Strong, A. L.	The New Soviet Constitution.
Towster, J.	Political Power in the U. S. S. R
Vyshinsky, A. Y.	The Law of the Soviet State.

अध्याय २३

रूस की सुप्रीम सोवियत

(The Supreme Soviet of U. S. S. R.)

रूस के संविधान की ३० से ४७ तक की धाराएँ रूस की सुप्रीम सोवियत के बारे में है। यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत संघीय कार्यपालिका (federal executive) है। धारा ३० के अनुसार यह यू० एस० एस० आर० में राज्य शक्ति का सबसे बड़ा अंग है और यू० एस० एस० आर० की विधायिनी शक्ति के प्रयोग मे इसका एकाधिकार है।

इसकी रचना (Composition)—यू० एस० ए० आर० की सुप्रीम सोवियत मे दो सदन—सोवियत ऑफ दि यूनियन (Soviet of the Union) तथा सोवियत ऑफ दि नेशनैलिटीज (Soviet of Nationalities) है। सोवियत ऑफ दि यूनियन का निर्वाचन यू० एस० एस० आर० के नागरिक करते हैं। प्रति ३ लाख जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि (deputy) एक निर्वाचन जिले (election district) से चुना जाता है। सोवियत ऑफ दि नेशनैलिटीज का निर्वाचन यू० एस० एस० आर० के नागरिक करते हैं। इसके लिए मतदान संघ गणराज्य (Union Republics), स्वायत्त गणराज्य (Autonomous Republics), स्वायत्त जनपद (Autonomous Regions) तथा राष्ट्रीय क्षेत्रो (National Areas) के अनुसार होता है। प्रत्येक संघीय गणराज्य क्षेत्र से २५, प्रत्येक स्वायत्त गणराज्य से ११, प्रत्येक स्वायत्त जनपद मे ५ और प्रत्येक राष्ट्रीय क्षेत्र से १ प्रतिनिधि चुना जाता है। यह यू० एस० एस० आर० की समस्त जातियो के हितों को प्रकट करती है। सोवियत राज्य अनेक जातियो का राज्य (multi-national state) है तथा इस सोवियत में प्रत्येक जाति को प्रतिनिधित्व दिया गया है।

सुप्रीम सोवियत के दोनो सदन ४ वर्ष के लिए चुने जाते हैं। विधेयक को आरम्भ करने के विषय मे दोनों सदनों को समान अधिकार प्राप्त है। कोई विधेयक उस समय कानून बनता है जब दोनो सदन साधारण बहुमत से अलग-अलग उसे पास कर दें। धन विधेयकों और अन्य विधेयकों में कोई अन्तर नहीं किया जाता। दोनों सदनों में मत-विभिन्नता होने पर प्रश्न को कांसिलिएशन कमीशन मे भेजा जाता है। आयोग दोनों सदनों की समानता के आधार पर बनाया जाता है। यदि आयोग किसी समझौते पर पहुँचने में असफल रहता है तो दोनों सदन प्रश्न पर पुनर्विचार करते है। यदि इस समय भी दोनो सदन किसी समझौते पर नही पहुँचते, तो यू० एस० एस० आर० की प्रेजीडियम यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत को भंग कर देती है और नए निर्वाचन की आज्ञा देती है। यह स्मरण रहे कि आज तक दोनों सदनों में कभी विचार-विभिन्नता नहीं हुई।

यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत द्वारा स्वीकृत कानून संघ

गणराज्यों की भाषाओं में प्रकाशित किए जाते हैं। उन पर यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेज़ीडियम के अध्यक्ष (President) तथा सचिव (Secretary) के हस्ताक्षर होते हैं।

सोवियत ऑफ यूनियन तथा सोवियत ऑफ नैशनैलिटीज, दोनों के अधिवेशन एक ही समय आरम्भ तथा स्थगित होते हैं। सोवियत ऑफ यूनियन एक सभापति तथा चार उप-सभापति चुनती है। सोवियत ऑफ नैशनैलिटीज भी एक चैयरमैन तथा चार वाइस-चेयरमैन चुनती है। दोनों सदनों के चैयरमैन सदनों की बैठकों की अध्यक्षता करते हैं तथा कार्य एवं कार्यविधि का नियन्त्रण करते हैं। दोनों सदनों की संयुक्त बैठकों की अध्यक्षता दोनों सदनों के अध्यक्ष बारी-बारी करते हैं। साधारणतः यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के अधिवेशन यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेज़ीडियम वर्ष में दो बार आमन्त्रित करती है। यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेज़ीडियम अपने विवेक अथवा किसी संघ गणराज्य की माँग पर विशेष अधिवेशन बुलाती है।

सुप्रीम सोवियत की शक्तियाँ (Powers of the Supreme Soviet)—रूस के संविधान की धारा ३१ के अनुसार यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत यू० एस० एस० आर० के उन समस्त अधिकारों का प्रयोग करती है जो संविधान की धारा १४ के अनुरूप हैं और यू० एस० एस० आर० की इकाइयों के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आते। इनके लिए यू० एस० एस० आर० के मन्त्री तथा मन्त्रिमण्डल यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत अथवा यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेज़ीडियम के प्रति उत्तरदायी हैं।

संविधान की धारा १४ यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत को निम्न शक्तियाँ देती हैं—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में यू० एस० एस० आर० का प्रतिनिधित्व, यू० एस० एस० आर० का दूसरे देशों से सन्धियाँ करना, उनका अनुसमर्थन करना, और उन्हें रद्द करना, संघीय गणराज्यों और विदेशों में सम्बन्ध स्थापित करने की सामान्य विधि निर्धारित करना।

(२) युद्ध और शान्ति के प्रश्न।

(३) यू० एस० एस० आर० में नये गणराज्यों का प्रवेश करना।

(४) यू० एस० एस० आर० के संविधान का पालन करना, तथा यह देखना कि इकाइयों के संविधान यू० एस० एस० आर० के संविधान के अनुकूल हैं या नहीं।

(५) संघ गणराज्यों के सीमा-परिवर्तन को मान्यता देना।

(६) नये राज्य-क्षेत्रों और प्रदेशों तथा संघ गणराज्यों के अधीन स्वायत्त गणराज्यों तथा स्वायत्त जनपदों के निर्माण को मान्यता देना।

(७) यू० एस० एस० आर० की सेनाओं का संगठन, यू० एस० एस० आर० की सुरक्षा, संघ गणराज्यों में सैनिक संगठन के निर्माण के सिद्धान्त तय करना।

(८) राज्य एकाधिकार के आधार पर विदेशी व्यापार।

(९) राज्य की सुरक्षा करना।

(१०) यू० एस० एस० आर० की आर्थिक आयोजनाएं निश्चित करना।

(११) यू० एस० एस० आर० के संचित राज्य बजट (Consolidated State Budget) तथा खर्च के बाद इसकी रिपोर्ट को मान्यता देना, उन करों तथा राजस्वों को निश्चित करना, जो कि संघ गणराज्यों तथा स्थानीय बजटों को जाते हैं।

(१२) समस्त संघ के महत्व के बैंकों, औद्योगिक तथा कृषि संस्थाओं तथा व्यावसायिक उद्योगों का प्रशासन।

(१३) संचार तथा यातायात का प्रशासन।

(१४) मुद्रा तथा साख पद्धति (Monetary and Credit System) का संचालन।

(१५) राज्य बीमा संगठन।

(१६) ऋण लेना व देना।

(१७) भू-धारण (Land-Tenure) प्रणाली तथा खनिज सम्पत्ति, जंगलों तथा जल साधनों के प्रयोग के आधारभूत सिद्धान्त निश्चित करना।

(१८) शिक्षा तथा जन-स्वास्थ्य के आधारभूत सिद्धान्तों को तय करना।

(१९) राष्ट्रीय आर्थिक आंकड़ों की सामान्य व्यवस्था का संगठन।

(२०) श्रमिक कानून के सिद्धान्त तय करना।

(२१) न्यायिक पद्धति, न्यायिक विधि, फौजदारी तथा व्यवहार संहिता से सम्बन्धित कानून।

(२२) संघीय नागरिकता के कानून, विदेशियों के अधिकारों से सम्बन्धित कानून।

(२३) विवाह तथा कुटुम्ब से सम्बन्धित कानूनों के सिद्धान्त तय करना।

(२४) समस्त संघ के राजनैतिक अपराधियों को क्षमा-दान करना।

संविधान की धारा १४६ स्टालिन संविधान में संशोधन करने का अधिकार यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत को देती है। यह व्यवस्था की गई है कि संविधान में यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के प्रत्येक सदन में कम-से-कम ⅔ बहुमत से प्रस्ताव पास होने पर संशोधन किया जा सकता है। सुप्रीम सोवियत का यह अधिकार है कि वह देखे कि संविधान का ठीक प्रकार से पालन किया जाता है या नहीं। इसको यह भी देखना होता है कि संघ गणराज्यों तथा दूसरी इकाइयों के संविधान रूस के संविधान के प्रतिकूल न हों।

यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करती है। यह यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेजीडियम का निर्वाचन करती है। यह यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट के सदस्यों को चुनती है। यह प्रोक्योरेटर-जनरल को निर्वाचित करती है जिसका न्याय प्रशासन पर पर्याप्त नियन्त्रण है।

स्मरण रहे कि यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की रचना "राज्य शक्ति के सर्वोच्च अंग में हमारे देश के सब नागरिकों के हितों की अधिक-से-अधिक यथार्थ तथा पूर्ण अभिव्यक्ति है।" यह भाईचारे और सहयोग को सुगम बनाती है तथा

समस्त सोवियत जनता मे पारस्परिक मित्रता के बन्धनों को दृढ करती है।" यह "जनमत का बैरोमीटर" है। १६४६ के निर्वाचनों का अध्ययन करने पर ज्ञान होता है कि ३८% प्रतिनिधि हाथ से काम करने वाले, २६% किसान और ३६% बुद्धि-जीवियों के प्रतिनिधि थे। प्रतिनिधियो मे से ⅘ रूस की साम्यवादी पार्टी के सदस्य थे और शेप निर्दलीय और सहानुभूति रखने वाले थे।

दूसरी ध्यान देने की बात यह है कि सरकारी नौकर तथा सशस्त्र सेनाओं के सदस्य भी विधायक (members of legislature) बन सकते है। यह कहा जाता है कि १६३७ मे ३०० से अधिक सरकारी नौकर निर्वाचित हुए थे। यह चीज़ भारतीय संविधान में नही है। अमेरिका के संविधान मे व्यवस्था की गई है कि "संयुक्त राज्य में लाभ के पद पर नियुक्त कोई व्यक्ति अपने कार्य-काल मे काँग्रेस के किसी सदन का सदस्य नहीं बन सकता।" सुप्रीम सोवियत के दोनो सदनो की शक्तियाँ समान हैं। वे एक ही काल के लिए चुने जाते है, एक समय पर उनके अधिवेशन होते हैं और एक समय पर ही दोनों भंग किये जाते है। दोनो का निर्वाचन जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है, यद्यपि एक जनता का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा जातियों का। अन्य महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि सुप्रीम सोवियत के अधिवेशन बहुत थोड़े समय तक चलते हैं। सदनों की बैठक साल मे दो बार होती है और प्रत्येक अधिवेशन केवल एक सप्ताह अथवा १० दिन तक चलता है। संक्षेप मे, वर्ष मे उनकी बैठकें २० दिन से अधिक नहीं होती। सम्भवतः इसका कारण यह है कि सुप्रीम सोवियत केवल उन विधेयकों पर अपनी स्वीकृति की छाप लगाती है जिनको साम्यवादी दल पहले ही मान्यता दे देता है। विधानमण्डल में विरोधियों का अभाव होने के कारण सरकार की आलो-चना नही होती।

संविधान सुप्रीम सोवियत के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार देता है। सुप्रीम सोवियत की सहमति अथवा उसके स्थगन काल मे यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के प्रेजीडियम की सहमति के बिना किसी सदस्य को कैद नही किया जा सकता अथवा उस पर मुकदमा नही चलाया जा सकता। यदि प्रतिनिधियों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त है तो उन्हे कुछ कर्त्तव्य भी पूर्ण करने होते है। प्रतिनिधि "जनता का सेवक और सुप्रीम सोवियत मे उसका सन्देशवाहक (messenger) है।" सुप्रीम सोवियत के अधिवेशन से लौटकर उसे अपने निर्वाचकों को अपने कार्य का विवरण तथा सुप्रीम सोवियत की रिपोर्ट देनी पडती है। जनता उसे किसी भी समय वापस बुला सकती है। प्रतिनिधि का यह कर्तव्य है कि वह सुप्रीम सोवियत और उसके आयोग की कार्यवाही मे भाग ले। वह सरकार अथवा किसी मन्त्री से प्रश्न पूछ सकता है। सोवियत के प्रतिनिधि की स्थिति के बारे मे यह माना जाता है कि सुप्रीम सोवियत का प्रतिनिधि पेशेवर राजनीतिज्ञ नही होता और न पेशेवर विधायक ही, किन्तु एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका सम्बन्ध समाजवादी उत्पादन, विज्ञान आदि से होता है। सोवियत प्रतिनिधि साम्यवादियों और निर्दलीय जनता के हित का ट्रस्टी होता है, अनुभवी, कार्य करने वाला तथा समाजवाद का योद्धा होता है। वह लच्छेदार भाषणों से अपनी रक्षा नही करता, बल्कि एक प्रतिनिधि के नाते वह

अपने समस्त रचनात्मक अनुभवों को उन कानूनों को बनाने मे लगा देता है, जिनने समाजवाद दृढ तथा विकसित हो।"

यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाने के लिए कुछ विद्वानो के विचारों की ओर निर्देश किया जा सकता है। ओग (Ogg) और जिक (Zink) के अनुसार, "स्वयं रूसियों का यह विचार है कि सुप्रीम सोवियत एक विचार-विमर्श करने वाली सस्था (deliberative body) है, किन्तु कुछ पश्चिमी विचारक (observers) इस तथ्य को स्वीकार करने से हिचकते हैं। यहाँ वर्ष भर मे १० दिन अथवा उससे भी कम दिनों के दो अधिवेशन होते हैं। यह स्पष्ट है कि वह सोवियत विधेयक को विचारने, उन्हे समितियों में भेजने, विवाद करने, संशोधन और मत लेने मे अपना समय नही लगाती, जैसे कि संयुक्त राज्य और अन्य देशों की विधायिनी संस्थाएँ करती हैं। साधारणतः सोवियत सघ में विधेयक मन्त्रि-मण्डल, साम्यवादी दल तथा अन्य एजेन्सी के द्वारा प्रेरित किया जाता है। "पश्चिमी अर्थ मे, यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत एक वास्तविक विमर्शी संस्था नही हो सकती। निश्चय ही यह पाश्चात्य विधायिनी सस्थाओं के अनुरूप नही है, किन्तु यह नही मान लेना चाहिए कि इसका उचित परिणाम में प्रभाव सोवियत सघ के सार्वजनिक जीवन पर नहीं पड़ता।" जूलियन टोस्टर (Julian Towster) के अनुसार, "सुप्रीम सोवियत पहले की काँग्रेस और केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति (Central Executive Committee) का मिश्रण है। वह उन अंगों के कार्यों को अपने में संयुक्त करती है, जो पहले उनके द्वारा किये जाते थे—संविधान मे संशोधन करना, बजट स्वीकार करना, विदेश नीति की रिपोर्ट स्वीकार करना, दूसरे अंगों की अन्तरिम डिक्रियो (interim decrees) को स्वीकार करना, कुछ विशेष कानूनों का पास करना आदि। इस प्रकार अधिकारियों की सीढी में से एक डण्डा हटा दिया गया है। यद्यपि सिद्धान्ततः सुप्रीम सोवियत पूरी तरह कानून बनाने वाला अंग है, पर अपने पूर्ववर्ती की तरह यह बड़ा होने तथा वर्ष मे केवल कुछ ही समय के अधिवेशनों के कारण वास्तविक रूप मे अनुसमर्थन और प्रचार करने वाली संस्था है। इसका प्रमुख कर्तव्य समयानुसार अथवा माँग होने पर सरकारी नीति पर प्रतिनिधि संस्था की स्वीकृति देना है।"

समिति प्रणाली (Committee System)—सोवियत रूस मे समिति प्रणाली का भी उल्लेख किया गया है। प्रमाण समिति (Credential Committee) को सदस्यों (deputies) के अधिकारों की पुष्टि का कार्य सौंपा हुआ है। इन प्रमाण समितियों की रिपोर्ट पर सदन इस बात का निर्णय करते हैं कि डेपुटियों के अधिकारों को मान्यता दी जाय अथवा किसी विशेष डेपुटी के चुनाव को रद्द कर दिया जाय।

लगभग १८० डेपुटी सर्वोच्च सोवियत (Supreme Soviet) की स्थायी समिति (Standing Committee) के सदस्य होते हैं। सोवियत सघ की चार और सोवियत जातियों की पाँच समितियाँ हैं। यद्यपि इन स्थायी समितियों को वैधानिक अधिकार नहीं दिए गए, तथापि ये अधिवेशनों के बीच की अवधि में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य

करती है। वे बहुत-सा अग्रिम अध्ययन करती हैं। सोवियत संघ और सोवियत जातियों की वैधानिक प्रस्ताव-समितियाँ सर्वोच्च सोवियत के समक्ष प्रस्तुत विधेयकों पर अपना निर्णय देती हैं और स्वयं अपनी ओर से तथा सदन के आदेशानुसार विधेयकों का मसविदा तैयार करती हैं। ये समितियाँ अपने कार्य के लिए विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और श्रमिकों की एक विशाल संख्या से नागरिकों के सुझावों को ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के लिए सहायता लेती हैं। अवकाश-वेतन (Pension) सम्बन्धी विधेयक पर विचार करते समय इन समितियों ने समूचे राष्ट्र में जो विवाद समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ, केवल उस पर ही नहीं, अपितु नागरिकों से प्राप्त १२,००० पत्रों पर भी विचार किया और इस विधेयक में बड़े महत्वपूर्ण संशोधन किए।

आय-व्यय लेखा समितियाँ (Budget Committees) सर्वोच्च संघ की प्रस्तुत आय-व्यय लेखे की जाँच करती है। पूरक माँगों की पूर्ति, आर्थिक और बैंक सम्बन्धी प्रश्नों तथा राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं पर भी अपनी रिपोर्ट देती हैं। ये समितियाँ, प्रादेशिक योजना-व्यवस्थाओं, वित्त मन्त्रालयों और संघ के सदस्य गणतन्त्रों के प्रतिनिधियों की सहकारिता से १० से १२ उप-समितियाँ बनाती हैं जिनका कार्य "आय-व्यय-लेखा" की भिन्न-भिन्न मदों की जाँच करना होता है।

१९५७ में सोवियत जातियों ने संघ के सदस्य गणतन्त्रों के अधिकारों में वृद्धि करने के लिए एक 'आर्थिक समिति' नियुक्त की थी। इस समिति का कार्य सर्वसंघ-आर्थिक योजनाओं में उन्नति करना, सदस्य गणतन्त्रों की आवश्यकताओं पर विचार करना और भिन्न-भिन्न सदस्य गणतन्त्रों की आर्थिक और राष्ट्रीय विशेषताओं के अनुसार उनकी आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का [illegible] देना है। इस समिति के सुझावों के अनुसार, [illegible] सोवियत संघ की सरकार ने कुछ गणतन्त्रों में [illegible] की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए, पूर्वी प्रदेशों में उच्च शिक्षा के प्रसार, [illegible] सुविधाओं को स्थानीय सोवियतों को [illegible] रेडियो और टेलीफोन प्रसार की [illegible] किया है।

में भाग लेते है और डेपुटियों को, नियम रूप, अत्यधिक बहुमत प्राप्त होता है। १९५४[1] के सर्वोच्च सोवियत के चुनावों में ९९·९८ प्रतिशत मतदाताओं ने भाग लिया .....

''हमारे चुनाव सम्बन्धी कानून प्रजातन्त्रीय चुनावों का दावा करते हैं। मत-दाताओं की सूची तैयार करना, चुनाव आयोगों की नियुक्ति और उम्मीदवारों का मनोनयन (nomination) जनता के कठोर नियन्त्रण में होता है।

''हमारे देश में प्रत्येक नागरिक को सुविधाएँ दी जाती हैं ताकि वह अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग कर सके। चुनाव क्षेत्र इस प्रकार बनाए जाते हैं कि मतदान के दिन दूर के ग्रामवासी अपना मत प्रदान करने के लिए सुविधापूर्वक आ सकें। चुनाव सम्बन्धी नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था की जाती है कि प्रत्येक मत-दाता चाहे वह रेल में यात्रा करता हो, व्यवसाय में अपने घर से दूर हो अथवा विश्राम-गृह में हो, अपना मतदान अवश्य ही कर सके।

''समूचे सोवियत संघ में चुनाव सम्बन्धी कानूनों का पालन होता है। श्रमिक-संघों (Trade Unions), सहकारिता-समितियों (Co-operatives), साम्यवादी संस्थाओं (Communist Party organisations), युवक संस्थाओं (Youth Organisations), अनेक सांस्कृतिक, उद्योग और वैज्ञानिक संस्थाओं, श्रमिकों की संस्थाओं, कार्यालयों और कारखाने के कर्मचारियों के प्रतिनिधियों, छावनियों, सैनिकों, सामूहिक खेतों और ग्रामों के किसानों तथा सरकारी खेतों पर काम करने वाले श्रमिकों, इत्यादि के प्रतिनिधियों का एक केन्द्रीय चुनाव आयोग बनाया जाता है, जो चुनाव सम्बन्धी सभी प्रश्नों का निर्णय करता है।

''प्रादेशिक और क्षेत्रीय चुनाव आयोगों की नियुक्ति भी इसी प्रकार के विशाल सामाजिक स्तर पर होती है।

''सोवियत चुनाव प्रणाली की विशेषता गणतन्त्रात्मक सर्वोच्च सोवियत के लिए उम्मीदवारों का मनोनयन करने के नियमों से स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है।

''सार्वजनिक संस्थाओं और श्रमिकों की संस्थाओं, यथा साम्यवादी दल की संस्थाओं, श्रमिक संघों, सहकारी संस्थाओं, युवक संघों और सांस्कृतिक संस्थाओं इत्यादि सब को उम्मीदवार मनोनयन करने का अधिकार है। सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के लिए डेपुटियों का मनोनयन का अधिकार कामगारों (Working people) की संस्थाओं और समाजों की केन्द्रीय कार्यकारिणी और उनके गणतन्त्र, प्रादेशिक और जिलों की कार्यकारिणियों को तो है ही लेकिन इनके साथ-साथ उद्योग-धन्धों और दफ्तरों में काम करने वालों को उनके कार्य स्थानों पर की गई सार्वजनिक बैठकों (general meetings), सैनिक यूनिटों में सैनिकों, सामूहिक खेती करने वाले किसानों, उनके गाँवों तथा सरकारी खेतों पर काम करने वाले श्रमिकों और अन्य कर्मचारियों को उनके अपने-अपने स्थानों पर भी सर्वोच्च सोवियत में डेपुटियों को भेजने का अधिकार प्राप्त है।

''साम्राज्यवाद के पक्के पिट्ठुओं के पास हमारी चुनाव-प्रणाली की निन्दा

१. मार्च १९५८ के चुनावों में ९९·९७ प्रतिशत मतदाताओं ने भाग लिया।

करने के लिए केवल एक ही तर्क है, और वह है, हमारे देश मे केवल एक ही राजनैतिक दल अर्थात् साम्यवादी दल (Communist Party) है। उनके अनुसार, हमारे यहाँ बुर्जुओं (Bourgeois) के अनेक दल चुनाव लडें। उनके मतानुसार, यह 'गणतन्त्र' का एक मौलिक चिह्न है। जब वे यह आपत्ति करते हैं कि हमारे देश में एक चुनाव क्षेत्र से एक ही उम्मीदवार खड़ा होता है तो वे तथ्य का गला घोंटते है और इस साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के कारण वे हमारे चुनावों को गणतन्त्रहीन बताते हैं।

"इस प्रकार का मत रखने वाले सज्जनों को उनके मत से हटाने का प्रयत्न करना केवल समय नष्ट करना होगा। लेकिन जो पथ-भ्रष्ट हो गये है, उनको सत्य समझाने के लिए सहायता करनी चाहिए।

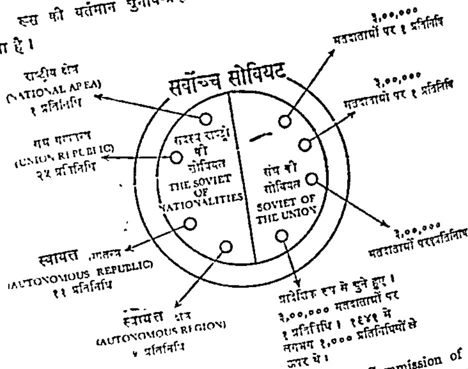
"हमारे देश में जहाँ शोषक वर्गों (exploiting classes) का उन्मूलन कर दिया गया है, जहाँ कामगार, सामूहिक खेती को करने वाले किसान और सोवियत बुद्धिजीवी लोग, सामूहिक हित और अखण्ड मित्रता के बन्धनों से बँधे हैं, जहाँ सारे देशवासियों की अभूतपूर्व आध्यात्मिक और राजनैतिक एकता स्थापित हो गई है, ऐसे देश में साम्यवादी दल के अतिरिक्त अन्य किसी दल की उत्पत्ति के लिए कोई स्थान नही है।

"चुनाव-पत्र (Ballot paper) पर एक उम्मीदवार का नाम लिखा होता है। किन्तु इससे गणतन्त्रवाद पर कोई अनुबन्ध नही लग गया। सोवियत चुनाव कानून चुनाव लडने वाले उम्मीदवारों की संख्या पर कोई रोक नही लगाता। सचाई तो यह है कि स्वयं मतदाता अपनी चुनाव सम्बन्धी बैठकों मे जो भी एक उम्मीदवार उन्हे पसन्द होता है, उस पर सर्वसम्मति से निर्णय कर लेते है। समूचे सोवियत समाज की आध्यात्मिक और राजनैतिक एकता की स्थिति मे, इस प्रकार की एकता जिससे पूँजीवादी संसार अनभिज्ञ है, मतदाताओं की इस प्रकार की सर्वसम्मति होना बिलकुल आश्चर्यजनक नही।

"बुर्जुआ प्रचारक (Bourgeois propagandists) अनेक दलो द्वारा उम्मीदवारों को चुनाव के लिए खड़े रहने को 'गणतन्त्र' की सर्वोच्च सफलता कहते हैं, वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रणाली मे वह ऐसे ही हैं। वहाँ दो बुर्जुआ दल—रिपब्लिकन दल (Republican Party) और डेमोक्रेटिक दल (Democratic Party) हैं जिन्हें उम्मीदवार खडे करने का सर्वाधिकार है। इन दो दलों में जो द्वन्द्व कभी-कभी छिड़ जाता है वह मौलिक सिद्धान्तों पर न होकर गौण प्रश्नों पर होता है और इसका अन्त बहुधा सरकारी पदो के बंटवारे पर आकर हो जाता है।

"हमारे देश मे इसके विपरीत संयुक्त गणतन्त्रीय-सोवियत रूस संघ की सर्वोच्च सोवियत के लिए स्वयं जनता अपने उम्मीदवार मनोनीत करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस मे एक भी कामगार (worker) नही है जबकि रूस की सर्वोच्च सोवियत में केवल कामगार, सामूहिक खेती करने वाले किसान, वैज्ञानिक, दलों के पदाधिकारी, सरकारी पदाधिकारी, शिक्षक, कलाकार, इत्यादि अर्थात् समूची जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले पुरुष ही हैं।"

रूस की वर्तमान चुनाव-प्रणाली को निम्न रेखाचित्र से चित्रित किया जा सकता है।



सोवियत राष्ट्रों का आर्थिक आयोग (Economic Commission of the Soviet Nationalities)—इस आयोग की १९४७ में स्थापना हुई थी। इसके अध्यक्ष के अतिरिक्त इसमें प्रत्येक गणतन्त्र से २ डेपुटियों के हिसाब से ३० गणतन्त्रों की प्रत्येक सोवियत के चुने हुए डेपुटियों की एक सभा भी है। आयोग के सारे सदस्य अनुभवी व्यक्ति हैं और अपने-अपने प्रदेशों में उनका बड़ा भारी सम्मान है। वे सर्वोच्च सोवियत के प्रधान मण्डल के अध्यक्ष, गणतन्त्रों की सरकारों के प्रमुख, अर्थशास्त्री तथा खेती के विशेषज्ञ हैं।

इस आयोग के उद्योग, यातायात, प्रसार, पथ-निर्माण, खेती, घर बनाने, नगरपालिका निर्माण, व्यापार तथा पूर्ति, सांस्कृतिक, जन-स्वास्थ्य तथा जनता की आय के लिए अनेक छोटे-छोटे उप-आयोग हैं। प्रत्येक उप-आयोग के ४ से ५ सदस्य होते हैं जो अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं। डेपुटियों के अतिरिक्त सम्बन्धित विभागों, वैज्ञानिक विभागों, सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि उप-आयोगों की बैठकों में भाग लेते हैं।

इस आयोग ने अब तक क्या कार्य किया है, इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि इसने अपना कार्य सदस्य गणतन्त्रों की आर्थिक व्यवस्था की सब शाखाओं के अध्ययन से किया, डेपुटियों द्वारा की गई आलोचना तथा दिये गये सुझावों को समझ और प्राप्त सामग्री का तुलनात्मक विवेचन किया। इन सब समस्याओं का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात्, आयोग ने सोवियत सरकार का कुछ प्रदेशों, विभागों और गणतन्त्रों में युवक विशेषज्ञों की शिक्षा की त्रुटियों को निकालने का सुझाव दिया। आयोग ने

ईंधन की पूर्ति (supply), सांस्कृतिक सेवाओं, सार्वजनिक सुविधाओं, नगरपालिकाओं और अस्पतालों की उन्नति करने की अनुशंसा (सिफारिश) की। इसने गन्दे पानी के नालों के निर्माण के लिए भी अधिक धन देने की अनुशंसा की। यह संघ के सदस्य गणतन्त्रों की आवश्यकताओं और माँगों का विवेचन कर रहा है और १९५९-१९६५ की लम्बी राष्ट्रीय आर्थिक उन्नति योजना का मसविदा तैयार कर रहा है।

Suggested Readings

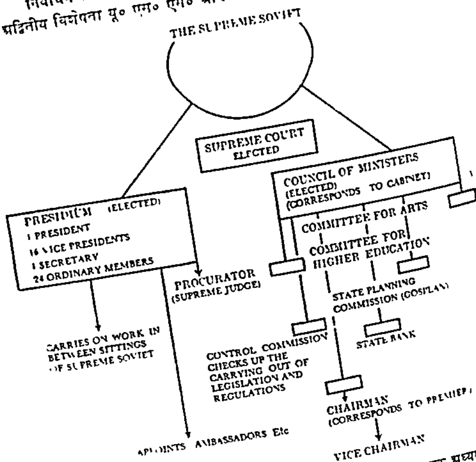
Harper, S. N. : The Government of the Soviet Union.
Scott, D. J. R. : Russian Political Institutions.
Strong, A. L. : The New Soviet Constitution.

अध्याय २४

सुप्रीम सोवियत का प्रेज़ीडियम

(Presidium of Supreme Soviet)

निर्वाचन और रचना (Election and Composition)—रूसी संविधान की अद्वितीय विशेषता यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत का प्रेज़ीडियम है।



इसमें यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के प्रेज़ीडियम का एक अध्यक्ष, १५ उपाध्यक्ष, सचिव और १५ सदस्य होते हैं। यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में इन सदस्यों का निर्वाचन होता है। ये अपने समस्त कार्यों के लिए यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी हैं। इसका कार्य-काल साधारण तौर पर चार वर्ष है। किन्तु, यदि सुप्रीम सोवियत इससे पहले भंग हो जाती है तो यह भी भंग हो जाता है। धारा ५३ के अनुसार, यू० एस० ० आर० की सुप्रीम सोवियत की अवधि समाप्त होने पर अथवा अवधि के पूर्व

उसके भंग होने पर, यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत का प्रेज़ीडियम उसके समस्त अधिकार उस समय तक के लिए प्राप्त कर लेता है जब तक यू० एस० एस० आर० की नव-निर्वाचित सुप्रीम सोवियत नये प्रेज़ीडियम का निर्माण नहीं करती। धारा ५४ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की अवधि समाप्त होने पर अथवा अपने कार्य-काल की अवधि समाप्त होने से पूर्व भंग होने पर, यू० एस० एस० आर० का प्रेज़ीडियम नये निर्वाचन की आज्ञा देता है। निर्वाचन यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की अवधि समाप्त होने अथवा भंग होने के दो मास के अन्दर होते हैं। धारा ५५ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० की नव-निर्वाचित सुप्रीम सोवियत का अधिवेशन, बाहर जाने वाला (outgoing) प्रेज़ीडियम चुनाव होने के तीन मास की अवधि में ही बुलाता है।

प्रेज़ीडियम का अध्यक्ष (Chairman of Presidium)—प्रेज़ीडियम का अध्यक्ष स्वयं प्रेज़ीडियम को सौंपे गए कुछ कार्यों को पूरा करता है। यद्यपि संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। जब यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत कानूनों को पास कर देती है, तब वे उसके हस्ताक्षरों के बाद प्रकाशित किए जाते हैं। वह प्रेज़ीडियम के बदले आज्ञप्तियों (decrees) पर हस्ताक्षर करता है। वह विदेशी राजदूतों तथा कूटनीतिज्ञों का स्वागत करता है। वह अन्य राज्यों के अध्यक्षों से सन्देशों का आदान-प्रदान करता है। एक तरह से वह राज्य का नाम-मात्र का (titular) अध्यक्ष है। कार्टर के अनुसार, "अन्य देशों के राज्याध्यक्षों की तरह उसका सर्वप्रमुख कार्य सामान्य नागरिकों से, उनकी भलाई के लिए सरकार के पितृतुल्य (paternal) सम्बन्ध के जीवित मानवी प्रतीक (symbol) के नाते मिलना है।"

शक्तियाँ (Powers)—रूस के संविधान की धारा ४६ में यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेज़ीडियम की शक्तियाँ बताई गई हैं। इसके अनुसार यह निम्न कार्य करती है :

(१) सोवियत रूस की सुप्रीम सोवियत के अधिवेशन बुलाना।

(२) आज्ञप्तियाँ जारी करना।

(३) सोवियत रूस के प्रचलित कानूनों की व्याख्या करना।

(४) रूस के संविधान की धारा ४७ के अनुसार यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत को भंग करना और नये निर्वाचन का आदेश देना।

(५) स्वेच्छापूर्वक अथवा किसी संघीय गणराज्य की माँग पर जनमत संग्रह (polls) का प्रबन्ध करना।

(६) यदि यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल और संघ गणराज्यों के मन्त्रिमण्डलों के निर्णय व आज्ञाएँ कानून के विपरीत हों, तो उन्हें रद्द करना।

(७) जब सुप्रीम सोवियत की बैठक न हो रही हो, तब यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष की सिफारिश पर यू० एस० एस० आर० के मन्त्रियों को नियुक्त अथवा पदच्युत करना, किन्तु बाद में इसकी सुप्रीम सोवियत से पुष्टि करानी होगी।

(८) यू० एस० एस० आर० की सम्मानसूचक उपाधियाँ (titles of honour) तथा अलंकार (मेडल्स तथा ऑर्डर्स) देना।

(९) क्षमा दान देना।

(१०) सैनिक उपाधियाँ, राजदूत (diplomat) के पद और दूसरी विशेष उपाधियाँ देना।

(११) सेना के उच्च अफसरों को नियुक्त अथवा पदच्युत करना।

(१२) यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की बैठक न होने के काल में युद्ध की घोषणा करना जबकि विदेशी आक्रमण हो अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संधियों के कारण वैसा करना आवश्यक हो।

(१३) ऐच्छिक अथवा अनिवार्य भरती की घोषणा करना।

(१४) यू० एस० एस० आर० की अन्तर्राष्ट्रीय संधियों को अनुसमर्थित अथवा रद्द करना।

(१५) विदेशों में पूर्ण शक्ति-युक्त राजदूत (plenipotentiary) को नियुक्त करना अथवा वापस बुलाना।

(१६) विदेशी राजदूतों का स्वागत करना अथवा आवश्यकता होने पर उन्हें वापस भेजना।

(१७) विशेष स्थानों अथवा सम्पूर्ण यू० एस० एस० आर० में देश की प्रतिरक्षा अथवा सार्वजनिक व्यवस्था और राज्य सुरक्षा (security of the State) के हितों में मार्शल-ला की घोषणा करना।

डा० फाइनर के अनुसार, "प्रेजीडियम वास्तविक एवं कानूनी रूप से सोवियत यूनियन की सतत (Continuous) सरकार है।" इसके कार्य अंशतः विधायी (legislative) और अंशतः कार्यपालिका-सम्बन्धी होते हैं। यह आज्ञप्तियाँ निकालता है और उस क्षेत्र पर आजादी से कार्य करता है जिसे संविधान ने यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के लिए सुरक्षित किया था। प्रेजीडियम मन्त्रियों को पदच्युत तथा पुनर्नियुक्त कर सकता है। गत्यवरोध (deadlock) होने पर वह निर्वाचनों की आज्ञा दे सकता है। प्रेजीडियम ने अब तक सुप्रीम सोवियत को भंग नहीं किया है इसने अब तक जनमत-संग्रह भी नहीं कराया है। किन्तु इसने अन्य समस्त शक्तियों का प्रभावी रूप से प्रयोग किया है। प्रेजीडियम ने सुप्रीम सोवियत की शक्तियों को गौण कर दिया है।

विशिन्सकी के अनुसार, "सुप्रीम सोवियत की प्रेजीडियम एक प्रकार का सामूहिक (Collegiate) राष्ट्रपति है। पूंजीपति राज्यों के व्यक्तिगत राष्ट्रपतियों की शक्तियों की तरह उसे कोई विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है। समाजवादी प्राधिकार की सामूहिक संस्था के अध्यक्ष की स्थिति उसके अधिकारों का स्रोत है।" (The Law of the Soviet State)।

ऑग और ज़िंक के मतानुसार, "रिकार्ड से पता चलता है कि प्रेजीडियम ने सरकार के कार्यों का प्रबन्ध करने में अपनी मातृ संस्था अर्थात् सुप्रीम सोवियत की अपेक्षा अधिक भाग लिया है। किन्तु यहाँ पर वही अवस्था है जो परिषद् की थी—

महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार तथा निर्णय 'पोलिटब्यूरो' करता है। परिणामस्वरूप विदेशी मामलों, राष्ट्रीय सुरक्षा अथवा घरेलू राजनीति में प्रेज़ीडियम को कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त होना सम्भव नहीं है। इसका प्रमुख कर्त्तव्य केवल नियत दैनिक विषयों तथा औपचारिकताओं से सम्बद्ध है और यह कार्य भी बहुत अधिक है।"

जूलियन टौस्टर के अनुसार, "यद्यपि सुप्रीम सोवियत की प्रेजीडियम, जिसका वैधानिक रूप में राज्य-शक्ति के सर्वोच्च अंग के नाते वर्गीकरण किया जाता है, जो अपनी पूर्ववर्ती सेण्ट्रल एग्ज़ीक्यूटिव पार्टी (C. E. C.) प्रेज़ीडियम की तरह सोवियत पिरामिड की औपचारिक चोटी के रूप में विभिन्न प्रकार के कर्तव्यों को पूरा करती है तथापि कानून बनाने के क्षेत्र में इसके अधिकार सी० ई० सी० (Central Executive Committee) से भिन्न हैं। सुप्रीम सोवियत का प्रेज़ीडियम केवल सामूहिक राष्ट्रपति के ही कार्य नहीं करता बल्कि वह वास्तव में कानून बनाने वाला अंग बन गया है।"

बराबशेव (Brabashev) के मतानुसार, "प्रधान मण्डल उन व्यक्तियों का बना है जो राष्ट्र के जीवन से भली प्रकार परिचित हैं और जो इसके हितों की सेवा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हैं। प्रमुख राजनीतिक नेताओं के साथ-साथ, प्रधान मण्डल के सदस्यों में उद्योग-धन्धों के कर्मचारी भी हैं। उदाहरणत. इसमें एक जुलाहिन वारवारा फिडोरोवा, एक लोह और इस्पात के कारखाने का पुराना प्रबन्धक मिस्त्री (Foreman) मिखाइल विरावलोव और सामूहिक खेतों के अध्यक्ष खमराकुल गुरमुन कुलोव और गालिना बरकत्स काया भी हैं।

"प्रधान मण्डल और जनता के निकट बन्धनों के कारण, विधानमण्डल समाज की आवश्यकताओं और साम्यवादी निर्माण की आवश्यकताओं का ठीक-ठीक अनुमान तथा जनता के उत्साह का ठीक ध्यान रख सकता है।

"उदाहरणत: पिछली जुलाई में सोवियत श्रमिक संघों के आन्दोलन का ध्यान रखते हुए विधानमण्डल ने कारखानों, उद्योगों तथा स्थानीय श्रमिक-संघों की समितियों के अधिकारों में वृद्धि करने के लिए एक घोषणा-पत्र स्वीकृत किया। जनवरी १६५७ में विधानमण्डल ने श्रमिकों के झगड़ों के निपटाने के लिए नियमों को स्थायी रूप में मान लिया। इसके अनुसार वे सब झगड़े जो प्रबन्धकों और श्रमिकों में हों एक विशेष आयोग द्वारा निपटाये जाएँगे और इसमें श्रमिक संघों और प्रबन्धकों के बराबर संख्या में प्रतिनिधि होंगे।

"मातृ और शिशु-कल्याण" की उन्नति के लिए मार्च १६५५ में एक और विज्ञप्ति निकाली गई, जिसके अनुसार प्रसूताओं को शिशु-जन्म से पहले और पश्चात् वेतन-सहित छुट्टी की अवधि ७७ दिन से ११२ दिन कर दी गई। दिसम्बर १६५५ में प्रधान मण्डल ने दो और विज्ञप्तियाँ युवकों और युवतियों की सुरक्षा के लिए प्रसारित की।

"इससे यह स्पष्ट है कि केवल इसके कार्यों, संगठन और व्यवहार से ही नहीं अपितु रूस की सर्वोच्च सोवियत से अपने सम्बन्धों से भी प्रधान मण्डल एक शुद्ध रूप से प्रजातन्त्रीय संगठन है और यह जनता के अधिकारों का प्रयोग करता है।"

एक अन्य लेखक के अनुसार, "पूंजीवादी देशों में राष्ट्र का कोई भी संगठन रूस की सर्वोच्च सोवियत के प्रधान मण्डल का-सा नहीं है। वहाँ एक व्यक्ति राष्ट्र का प्रमुख, सम्राट् अथवा राष्ट्रपति के रूप मे होता है। वह संसद् के प्रति उत्तरदायी नही होता, वह संसद् से ऊँचा होता है। उसे संसद् द्वारा स्वीकृत किसी भी विधेयक को अस्वीकार करने का अधिकार है। वह संसद् को भग भी कर सकता है। सोवियत संघ में एक व्यक्ति नही अपितु एक सामूहिक संगठन राष्ट्र का प्रमुख होता है और वह है रूस की सर्वोच्च सोवियत का विधानमण्डल, जिसे साथी (Comrade) स्टालिन ने 'रूस का सामूहिक प्रधान' कहा है।"

Suggested Readings

Harper, S. N. : The Government of the Soviet Union.
Scott, D. J. R. Russian Political Institutions.
Strong, A. L. : The New Soviet Constitution.

अध्याय २५

यू० एस० एस० आर० का मन्त्रिमण्डल

(Council of Ministers of the U. S. S. R.)

मार्च, १९४६ से पहले यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल को जनता के प्रबन्धकों की परिषद् (Council of Peoples' Commissars) कहा जाता था। उस वर्ष इस शब्द में पाश्चात्य देशों के प्रयोग के अनुसार परिवर्तन किया गया।

धारा ६४ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० का मन्त्रिमण्डल सर्वोच्च कार्यकारी (highest executive) और प्रशासकीय अंग है। धारा ५६ मन्त्रिमण्डल को यू० एस० एस० आर० की सरकार के समान बनाती है।

धारा ५६ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के दोनों सदनों की सयुक्त बैठक यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करती है। धारा ७० के अनुसार, मन्त्रिमण्डल में यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष, राज्य आयोजना आयोग और सोवियत नियन्त्रण आयोग के अध्यक्ष, प्राकृतिक पदार्थ तथा टैक्नीकल सप्लाई की राज्य समिति के अध्यक्ष, निर्माण समिति के अध्यक्ष, कला समिति के अध्यक्ष, यू० एस० एस० आर० के मन्त्री, बोर्ड आॅफ स्टेट बैंक के अध्यक्ष, उच्च शिक्षा समिति के अध्यक्ष होते है। इस प्रकार कुल मिलाकर मण्डल के पचास सदस्य होते हैं।

अखिल-संघीय मन्त्रालय (All-Union Ministries)—यू० एस० एस० आर० के मन्त्रालय या तो अखिल-संघ हैं या सघीय गणराज्यों से सम्बन्धित है। धारा ७७ और ७८ मे अखिल-संघ और संघीय गणराज्यो के मन्त्रालयो की सूची दी गई है। अखिल संघीय मन्त्रालय निम्न प्रकार के होते है :—

१. हवाई जहाज उद्योग (Aircraft Industry)।

२. मोटर गाडी और ट्रैक्टर उद्योग (Automobile and Tractor Industry)।

३. कागज और काष्ठ उद्योग (Paper and Wood Working Industry)।

४. विदेशी व्यापार (Foreign Trade)।

५ नौसेना (Navy)।

६ युद्ध-सामग्री (Munitions)।

७. भूतत्त्वीय सर्वे (Geological Survey)।

८ नगर निर्माण (City Building)।

९. खाद्य तथा पदार्थ रक्षण (Food and Material Reserves)।

१०. कृषि भण्डार (Agricultural Stocks)।

११. मशीन तथा यन्त्र बनाने का उद्योग।

१२. जहाजी (समुद्रीय) व्यापार।

१३. तेल-उद्योग।

१४. संचार यन्त्र उद्योग (Communications Equipment Industry)।

१५. रेलवे।

१६. देश के भीतर जल परिवहन (Inland Water Transport)।

१७. संचार (Communication)।

१८. कृषि मशीन उद्योग (Agricultural Machinery Industry)।

१९. मशीन टूल-उद्योग।

२०. भवन तथा सड़क निर्माण-मशीनरी उद्योग (Building and Road-Building Machinery)।

२१. महान् उद्योग-निर्माण कार्यों का निर्माण (Construction of Heavy Industry Works)।

२२. जहाज निर्माण (Ship-building)।

२३. परिवहन मशीनरी उद्योग (Transport Machinery Industry)।

२४. लेबर रिज़र्व (Labour Reserves)।

२५. भारी मशीन निर्माण उद्योग (Heavy Machine Building Industry)।

२६. कोयला उद्योग (Coal Industry)।

२७. रासायनिक उद्योग (Chemical Industry)।

२८. अलोह धातु उद्योग (Non-ferrous Metal Industry)।

२९. लोहा-इस्पात उद्योग (Iron and Steel Industry)।

३०. विद्युत् उद्योग (Electrical Industry)।

३१. पावर स्टेशन (Power Station)।

संघ गणराज्य मन्त्रालय (Union Republican Ministries)—धारा ७८ में निम्न संघ गणराज्य मन्त्रालयों का उल्लेख किया गया है :—

१. गृह (Internal Affairs)।

२. सेना (Army)।

३. उच्च शिक्षा (Higher Education)।

४. राज्य नियन्त्रण (State Control)।

५. राज्य सुरक्षा (State Security)।

६. जन स्वास्थ्य (Public Health)।

७. विदेशी सम्बन्ध (Foreign Affairs)

८. चलचित्र (Cinematography)।

९. प्रकाश उद्योग (Light Industry)।

१०. वन विभाग (Forestry)।

११. इमारती लकड़ी उद्योग।

१२. मांस तथा डेरी उद्योग।

१३. खाद्य उद्योग।

१४. भवन निर्माण के सामान का उद्योग।
१५. मछली विभाग।
१६. कृषि।
१७. राज्य फार्म (State Farms)।
१८. व्यापार।
१९. वित्त (Finance)।
२०. कपास उगाना।
२१. न्याय।

भेद (Distinction)—अखिल-संघ मन्त्रालय और यूनियन गणराज्य मन्त्रालयों में भेद के सम्बन्ध में यह दिखाई देता है कि पहले प्रकार के मन्त्री उन विषयों का प्रबन्ध करते हैं जिनका सम्बन्ध पूर्णतः संघ से होता है। दूसरे प्रकार के मन्त्री गणराज्यों की सरकारों के क्षेत्राधिकार में आने वाले समस्त मामलों का प्रबन्ध करते हैं। प्रो० मनरो के अनुसार, "अखिल-संघ मन्त्रालय-प्रशासन (All-Union Ministries Administration) मास्को के चारों ओर केन्द्रित है। दूसरी ओर यूनियन गणराज्य मन्त्रालयों में, प्रशासकीय कार्यों को केन्द्रित किया गया है किन्तु उनके पूरा करने में पर्याप्त विकेन्द्रीकरण (decentralization) की व्यवस्था है।"

समय की गति के साथ मन्त्रालयों की संख्या बढ़ी है। १९२४ में लोक-प्रबन्धक परिषद् में केवल १० मन्त्री थे। जैसे-जैसे प्रशासकीय मशीनरी पेचीदा होती गई, और सरकारी कार्यवाही का क्षेत्र बढ़ता गया वैसे-वैसे मन्त्रालयों की संख्या बढ़ती गई। १९४७ में मन्त्रालयों की संख्या लगभग ६० थी। मन्त्रिमण्डल के अधिक विस्तृत हो जाने के कारण एक अन्तरंग मन्त्रि-परिषद् (inner cabinet) का विकास हो गया है। अन्तरंग मन्त्रि-परिषद् में मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष और वे उपाध्यक्ष होते हैं, जिनका सम्बन्ध परस्पर सम्बन्धित मन्त्रालयों से है।

मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष को प्रीमियर—प्रधान मन्त्री—कहते हैं। इस पद पर दल का चोटी का नेता होता है। लेनिन १९१७ से १९२४ तक प्रधान मन्त्री रहा। रिकोव (Rykov) १९२४ से १९३० तक तथा मोलोटोव १९४१ तक उक्त पद पर रहे। उसके पश्चात् स्टालिन पदारूढ़ हुआ और आजकल ख्रुश्चेव रूसी प्रधान मन्त्री है।

राज्य नियन्त्रण मन्त्रालय (Ministry of State Control) की ओर निर्देश किया जा सकता है। यह राज्य के समस्त अंगों और उनके अनेक कार्यों की देखभाल करता है। यद्यपि यह एक मन्त्रालय है, किन्तु दल की केन्द्रीय समिति (Party Central Committee) इसको मनोनीत करती है। १९४७ से पूर्व इसके कार्य सोवियत नियन्त्रण आयोग करता था। उस वर्ष में सोवियत नियन्त्रण आयोग को राज्य नियन्त्रण मन्त्रालय में परिवर्तित कर दिया गया है।

यद्यपि संविधान में कहा गया है कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों का निर्वाचन सुप्रीम सोवियत करती है जबकि दोनों सदनों की संयुक्त बैठक होती है। तथापि यह केवल औपचारिकता है। वास्तविक चुनाव साम्यवादी दल करता है। १९४६ के मन्त्रिमण्डल के निर्माण-विषयक विवरण से पता चलता है कि वास्तव में मन्त्रियों के

निर्माण की व्यावहारिक विधि यह है कि बाहर जाने वाली सरकार के अध्यक्ष कामरेड स्टालिन ने दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन के अध्यक्ष को एक लिखित रिपोर्ट दी कि सरकार अपनी शक्तियाँ सुप्रीम सोवियत को समर्पित करती है। सुप्रीम सोवियत ने सरकार के परिपत्र को स्वीकार किया और स्टालिन को नई सरकार बनाने का आमन्त्रण सर्वसम्मति से दिया। दूसरी संयुक्त बैठक में अध्यक्ष ने स्टालिन के द्वारा प्रस्तावित सरकार की घोषणा की। प्रतिनिधियों के भाषणों के पश्चात् अध्यक्ष ने घोषणा की कि प्रस्तावित सदस्यों के नामों पर किसी प्रतिनिधि ने आपत्ति नहीं की और न किसी प्रतिनिधि ने मत-विभाजन की माँग की। कामरेड स्टालिन द्वारा प्रस्तावित मन्त्रिमण्डल सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया, स्टालिन की सराहना की गई जो कि रूसी मन्त्रिमण्डल का अध्यक्ष और सशस्त्र सेनाओं का मन्त्री था। स्टालिन के साथी वी० एम० मोलोटोव को विदेश मन्त्री नियुक्त किया गया।

मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ (Powers of the Council of Ministers)—रूस के संविधान की धारा ६८ में मन्त्रिमण्डल की शक्तियाँ बताई गई हैं। इस धारा के अनुसार, मन्त्रिमण्डल अखिल-संघ और संघीय गणराज्यों के मन्त्रियों तथा अपने क्षेत्राधिकार की अन्य आर्थिक व सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यों का संचालन तथा उनमें सामंजस्य स्थापित करता है। राष्ट्र की आर्थिक योजनाओं व बजट को कार्यान्वित करता है तथा राज्य की साख और एकाधिकार व्यवस्था को दृढ़ करता है। सार्वजनिक व्यवस्था, राज्य के हितों की रक्षा तथा नागरिकों के अधिकार का रक्षण भी मन्त्रिमण्डल के कार्यों में है। यह विदेशी विषयों में मार्ग-दर्शन करता है। यह निश्चित करता है कि वर्ष में कितने नागरिक सैनिक शिक्षा प्राप्त करें। यह देश की सशस्त्र सेनाओं के सामान्य संगठन का निर्देशन करता है। आवश्यकता होने पर यू० एस० एस० आर० के मन्त्रिमण्डल के आधीन आर्थिक तथा सांस्कृतिक कार्यों तथा प्रतिरक्षा (defence) के लिए विशेष समितियों और केन्द्रीय प्रशासकों (administrators) की नियुक्ति करता है। धारा ६९ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० के अधिकार-क्षेत्र में आने वाले आर्थिक तथा प्रशासकीय विषयों से सम्बद्ध होने पर संघीय गणराज्यों के मन्त्रियों के निर्णयों तथा आज्ञाओं को रद्द कर अपने निर्णय तथा आज्ञा को लागू कराने का अधिकार केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल को प्राप्त है। धारा ७२ के अनुसार यू० एस० एस० आर० के मन्त्री राज्य के केवल उन्हीं अंगों को संचालित करते हैं जो उनके अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। धारा ७३ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० के मन्त्री अपने-अपने मन्त्रालय के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डल के निर्णयों तथा आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए आदेश तथा आज्ञाएँ दे सकते हैं और उनका पालन करा सकते हैं। धारा ७५ के अनुसार प्रत्येक मन्त्रालय अपने ही सम्बन्धित प्रशासन को स्वयं अथवा नियुक्त संस्था द्वारा निर्देश देता है। धारा ७६ के अनुसार संघ गणराज्यों के मन्त्रालय नियम के अनुसार अपने से सम्बन्धित प्रशासन को निर्देश देते हैं। वे केवल यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत की प्रेसीडियम द्वारा निश्चित की गई सूचियों के अनुसार निश्चित तथा सीमित संख्या के निर्माण-कार्यों का सीधा प्रबन्ध करते हैं। धारा ६९ के अनुसार, मन्त्रिमण्डल कानूनों को लागू

कराने के लिए आदेश तथा निर्णय देता है और देखता है कि उनका उचित प्रकार मे पालन हो रहा है या नहीं।

मन्त्रियों का उत्तरदायित्व (Responsibility of Ministers)—संविधान की धारा ६५ के अनुसार, संघ मन्त्रिमण्डल यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत और उसके स्थगन-काल (intervals) मे उसकी प्रेजीडियम के प्रति उत्तरदायी होता है। धारा ७१ के अनुसार यू० एस० एस० आर० की सरकार अथवा यू० एस० एस० आर० के मन्त्री से यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत के किसी सदस्य द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर उसका लिखित अथवा मौखिक उत्तर सम्बन्धित सदन मे तीन दिन के अन्दर देना होता है। धारा ३१ यह व्यवस्था करती है कि यू० एस० एस० आर० का मन्त्रिमण्डल तथा मन्त्रालय दोनों सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी है। आलोचकों के अनुसार संविधान में उक्त व्यवस्था (provision) होने मात्र से ही मन्त्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं हो जाते। समस्त निर्णय साम्यवादी दल की बैठकों में किए जाते है और विधानमण्डल उन पर केवल अपनी स्वीकृति की छाप लगा देता है। विधानमण्डल मे विरोधी दल न होने के कारण सरकार की आलोचना नहीं होती। मन्त्रियो से केवल सूचनाएं माँगी जाती हैं, इनके अलावा और कुछ नहीं माँगा जाता। उनको हटाया नहीं जा सकता, क्योंकि उनके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं किया जा सकता। कोई वैकल्पिक सरकार नहीं हो सकती। किसी के शब्दों में "जब मन्त्रिमण्डल सुप्रीम सोवियत को रिपोर्ट देता है तब केवल सरकारी ग्रुप विधानमण्डल के साथी तथा समर्थक सदस्यों को उन कार्यों का विवरण देता है, जो साम्यवादी दल के निरीक्षण मे किए गए होते है।" प्रो० मनरो ने रूस के मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के विषय में कहा है कि "क्या नया संविधान देश में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करता है? इसका उत्तर प्राविधिक रूप से स्वीकारात्मक है। लोक प्रबन्धक परिषद् वास्तव मे एक प्रकार का मन्त्रिमण्डल है। उसके सदस्य मन्त्रिमण्डल के सदस्यो की भाँति कार्य करते हैं। उनको सघीय संसद् नियुक्त करती है और वे उसके प्रति उत्तरदायी है। कागज पर फ्रांसीसी और रूसी मन्त्रिमण्डल मे कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं, किन्तु व्यवहार मे पर्याप्त अन्तर है। वास्तव में विधानमण्डल मन्त्रियों को नहीं चुनता। वे साम्यवादी दल के पोलिटब्यूरो द्वारा मनोनीत होते है, जिसको दल का मन्त्री नियुक्त करता है। केवल प्राविधिक रूप को छोड़कर, वे न विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते है और न प्रेजीडियम का कोई मन्त्री पदारूढ़ अथवा अपदस्थ हो सकता है; इसका निर्णय दल के नेता करते है, संसद् के नेता नहीं।" (Governments of Europe, p 748-49)

Suggested Readings

Harper, S.N. : The Government of the Soviet Union.
Scott, D. J. R. : Russian Political Institutions
Strong, A.L. : The New Soviet Constitution.

अध्याय २६

सोवियत न्यायिक व्यवस्था

(Soviet Judicial System)

सोवियत रूस की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था का आधार रूस के संविधान का नवाँ अध्याय तथा यू० एस० एस० आर० तथा इकाइयों का न्यायिक कानून है जिसे अगस्त १९३८ में यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत ने मान्यता दी है। प्रोक्योरेटर-जनरल अथवा चीफ पब्लिक प्रोसीक्यूटर देश के न्यायिक प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है।

१९१७ की क्रान्ति के पश्चात् जारशाही के पुराने नियमों को रद्द कर दिया गया क्योंकि उनको गत शासन का ही अंग समझा गया था। जन-न्यायालयों (Peoples' Courts) को मुकदमे तय करने के लिए स्थापित किया गया। किन्तु निर्णय व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर अथवा परिस्थितियों के अनुसार किए जाते थे। न्यायालयों के सामने कानून प्रमाण के रूप में उपस्थित नहीं किए जाते थे। कुछ समय पश्चात्, नई परिस्थितियों के अन्तर्गत जनता की आवश्यकताओं के अनुसार देश के कानून बनाने की ओर प्रयास किए गए। फलतः श्रमिक कानून संहिता (Labour Code), घरेलू सम्बन्धों का कानून (Domestic Relations Code) व्यवहार संहिता (Civil Code), फौजदारी कानून (Criminal Code) और कानूनी प्रक्रियाओं के कोड (Procedural Codes) बनाए गए। देश की परिस्थिति में परिवर्तन आने के कारण ये कानून शीघ्र ही आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहे और आवश्यकता अनुभव कर नई परिस्थितियों के अन्तर्गत देश के कानून को बनाने का निश्चय किया गया और यह कार्य १९३८ में पूरा हुआ।

न्याय-व्यवस्था के विशेष गुण (Main Features of the Judicial System)—(१) सोवियत रूस की न्याय-व्यवस्था के विशेष गुणों की ओर निर्देश किया जा सकता है। पहली स्मरणीय वस्तु यह है कि सोवियत रूस में सब न्यायालय किसी-न-किसी प्रकार निर्वाचित होते हैं। यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट तथा स्पेशल कोर्ट्स (Special Courts) का निर्वाचन पाँच वर्ष के लिए करती है। संघ गणराज्यों (Union Republics) के सुप्रीम कोर्टों का निर्वाचन संघ गणराज्यों की सुप्रीम सोवियतें पाँच वर्ष के लिए करती हैं। स्वायत्त गणराज्यों (Autonomous Republics) के सुप्रीम कोर्टों का निर्वाचन पाँच वर्ष के लिए स्वायत्त गणराज्यों की सुप्रीम सोवियतें करती हैं। इसी प्रकार, प्रादेशिक, क्षेत्रीय, स्वायत्त प्रदेशों के न्यायालयों का निर्वाचन मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें पाँच वर्ष के लिए करती हैं। जिलों की जनता जन-न्यायालयों का निर्वाचन तीन वर्ष के लिए करती है। चुनाव का आधार सार्वजनिक

प्रत्यक्ष और समान मताधिकार होता है। चुनाव गुप्त मतदान (secret ballot) से होता है (धारा १०५-६)।

(२) विभिन्न न्ययालयों में कार्यवाही संघ गणराज्य, स्वायत्त गणराज्य, अथवा क्षेत्र की भाषा में होती है। यदि कोई व्यक्ति उस भाषा को नहीं जानता अथवा नहीं समझता तो उसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह दुभाषिये की सहायता से सम्बन्धित विषय को समझे तथा न्यायालय मे अपनी भाषा का प्रयोग करे (धारा ११०)।

(३) यू० एस० एस० आर० के समस्त न्यायालयों मे, जिन मामलो के लिए कानूनी व्यवस्था की गई है उन्हें छोड कर अन्य सभी मामलों मे सार्वजनिक तथा खुली कार्यवाही होती है और अपराधी को अपना पक्ष उपस्थित करने का अधिकार होता है (धारा १११)।

(४) समस्त न्यायालयों मे जनता के निर्धारक (assessors) जजों के साथ बैठते हैं, किन्तु उन मामलों में नही बैठते जिनका विशेष उल्लेख कानून में हो। १६३८ के कानून के अनुसार प्रथम बार अभियोग आने पर न्यायालय के अध्यक्ष या उस द्वारा नियुक्त व्यक्ति के साथ जनता के दो असेसर बैठते हैं। अपीलीय अभियोगों पर पुनर्विचार न्यायालय के तीन सदस्य करते हैं। जन-न्यायालयो के असेसरो को न्यायाधीशों के समान अधिकार प्राप्त हैं। समस्त प्रश्न बहुमत से तय किये जाते हैं। सभी वोटरों को जज अथवा असेसर बनने का अधिकार है। वोटर जजो और असेसरों को वापस बुला (recalled) सकते हैं। उनको हटाया भी जा सकता है यदि उनको फ़ौजदारी मुकदमे में अपराधी घोषित किया जाए। साधारणत. वही व्यक्ति न्यायाधीश निर्वाचित होते है जिन्हें कानून की शिक्षा मिली होती है।

(५) यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट तथा संघ गणराज्यों के सुप्रीम कोर्टों के सिवाय अन्य सब न्यायालयों के निर्णयों की अपील की जा सकती है। अपील स्वयं अपराधी, उसका प्रतिनिधि अथवा प्रोक्योरेटर कर सकता है। रूस में किसी न्यायालय को केवल अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त नही है। नियमानुसार अभियोग दो न्यायिक चरण (judicial stages) पार कर सकता है। केवल उन विषयों पर ही पुनर्विचार (review) किया जा सकता है जिनमें अनुचित निर्णय के कारण महान् अन्याय हुआ हो और यू० एस० एस० आर० के प्रोक्योरेटर-जनरल, संघ गणराज्य के प्रोक्योरेटर, यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट के अध्यक्ष अथवा यूनियन गणराज्य के सुप्रीम कोर्ट के अध्यक्ष ने विरोध किया हो।

(६) यू० एस० एस० आर० के न्यायालयों मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्तव्य पूर्ण करने की आशा की जाती है, जिसे निभाना अन्य देशों के न्यायालयों का कर्तव्य नहीं है। १६३८ के कानून के अनुसार, रूस मे न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि "वे यू० एस० एस० आर० के नागरिकों में देशभक्ति, ठीक प्रकार से सोवियत रूस के कानून पालन, समाजवादी सम्पत्ति की उचित व्यवस्था, श्रमिक अनुशासन, राज्य-सम्बन्धी तथा सार्वजनिक कर्तव्यों को सरलता से पूरा करने की भावना उत्पन्न करें तथा समाज के नियमों का पालन करने की शिक्षा देंगे।" लेनिन तथा स्टालिन के अनुसार, "सोवियत रूस के न्यायालयों का कर्तव्य देश के शत्रुओं, गद्दारों, डाकुओं आदि से

लड़ना है और नई साम्यवादी व्यवस्था को स्थायी बनाने तथा मजदूर जनता में नया समाजवादी अनुशासन लागू करने के लिए दृढ होना है।" एक अन्य लेखक के अनुसार सोवियत रूस में न्यायालय "समाजवादी सम्पत्ति की रक्षा करने का ज्ञान, राज्य-सम्बन्धी सार्वजनिक कर्त्तव्यों को ईमानदारी से पूरा करने की भावना तथा मातृभूमि और साम्यवाद के प्रति निष्ठा की भावना उत्पन्न करते हैं।" रिश्कोव के अनुसार, जो १९३८ में न्याय मन्त्री था, "समाजवादी निर्माण और अक्टूबर की समाजवादी क्रान्ति की विजय को सुरक्षित करने के लिए मजदूर वर्ग की डिक्टेटरशिप के पास न्यायपालिका एक महत्त्वपूर्ण और पैना शस्त्र है। इसी कारण समस्त न्यायिक अधिकारियों तथा स्थानीय दल और सोवियत के समस्त अंगों का कर्त्तव्य *न्यायपालिका के* अंगों को ठीक प्रकार से सगठित करना है। उनका कर्त्तव्य है कि वे उनके कार्य को सुधारने के लिए नये, ईमानदार और समाजवाद के प्रबल समर्थक, दल के भीतर और *बाहर के बोलशेविकों को न्यायिक अंगों के लिए चुने।*" कालिनिन (*Kalinin*) के अनुसार, "रूस के न्यायालयों का कर्त्तव्य जनता के हृदय में तथा आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद को नष्ट करना है।" पुनः उसी के अनुसार, "*यदि न्यायाधीश अच्छा* मार्क्सवादी, द्वन्द्ववादी (dialectician), अनुभवी एवं व्यावहारिक कार्यकर्ता, सभ्य तथा सुशिक्षित है तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसके निर्णयों तथा आदेशों में से ९९% निर्णय और आदेश राजनैतिक महत्त्व के होंगे, और वे सोवियत कानून के प्रचार के सबसे अच्छे रूप तथा दल के प्रचार का साधन होंगे। यदि न्यायाधीश साधारण मार्क्सवादी है जो कि दल के *निर्णयों को नहीं जानता,* दल के निर्णयों के लिए नहीं लड़ सकता और स्थानीय संगठनों से प्रभावित हो जाता है तो वह किसी काम का नहीं है।" विशिन्सकी के अनुसार, "प्रत्येक राज्य की न्यायपालिका प्रभावी वर्ग के अधिकारों के लिए संघर्ष करने में प्रबल भाग लेती है। न्यायपालिका इस देश अथवा उस देश में, प्रभावी राजनैतिक तथा सामाजिक सम्बन्धों को दृढ़ करने का *शक्तिशाली साधन है जो किसी समाज के प्रबल (dominant)* वर्ग के हितों को प्रकट करती है।" पोलियन्सकी के अनुसार, "यह स्वयं स्पष्ट है कि न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता उनको राजनीतिक निर्देशों (political directives) के पालन करने के कर्त्तव्य से मुक्ति नहीं देती जो कि वास्तव में सोवियत कानून के विपरीत *नहीं जा* सकते तथा कानून बनाने वाली जनता की इच्छा (will) को प्रकट करते हैं और जिनका निर्देशन मजदूरों की डिक्टेटरशिप ने किया है।" पुनः मन्त्री रिश्कोव (Rychkov) के अनुसार, "न्यायालयों के निर्वाचन से हमारे न्यायिक वर्गों को अपरिमित शक्ति प्राप्त होगी और मजदूर वर्ग के हाथों में सोवियत न्यायपालिका अधिक शक्तिशाली शस्त्र होगी। सरकार तथा स्टालिन से निकटतम साथियों द्वारा सोवियत न्यायपालिका की दैनिक सहायता करना और उसकी ओर ध्यान देना उसके लिए आवश्यक है।" "सरकार मांग करता है कि उसके समस्त न्यायालय समाज के शत्रुओं के विरोध में निर्दय संघर्ष आरम्भ करेंगे। गद्दार ट्राटस्की के समर्थकों और बुखारिन के समर्थकों को हटाकर उन्हें समाप्त करके, न्यायालय देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे।"

(७) सोवियत न्यायिक व्यवस्था की प्रशसा अराजनैतिक अभियोगो के सम्बन्ध मे ही की जा सकती है। किन्तु राजनैतिक अभियोगों मे वह पूरी तरह स्वेच्छाचारी और निर्दयतापूर्ण है। यह स्वीकार किया जाता है कि ऐसे अभियोगों में सोवियत न्यायालयों के *"निर्णय तथा दण्ड समाजवाद के शत्रुओं को क्रूरता से मारते हैं।"* सविधान की धारा १३३ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० के प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्तव्य देश की रक्षा करना है। मातृभूमि से द्रोह—भक्ति की शपथ को तोडना, शत्रु को भेद बताना, राज्य की सैनिक शक्ति को कमजोर करना, जासूसी करना—सबसे अधिक घृणित अपराध के नाते कानून की समस्त कठोरता के साथ दण्डनीय है। धारा १३१ के अनुसार, सार्वजनिक तथा राज्य समाजवादी सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध करने वाले व्यक्ति देश के शत्रु हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए। पहले रूस में मृत्यु-दण्ड को समाप्त कर दिया गया था किन्तु अब वह दण्ड गुप्तचरों, देशद्रोहियों और विध्वसको को दिया जा सकता है।

(८) रूस में प्राइवेट प्रैक्टिस करने वाले वकील नही हैं। अपराधी की कानूनी रक्षा करने के लिए न्यायालय अधिवक्ताओं (Advocates) का प्रवन्ध करता है।

न्यायालयों का संगठन (Organisation of Courts)—सविधान की धारा १०२ के अनुसार, यू० एस० एस० आर० में न्याय का प्रबन्ध यू० एस० एस० आर० का सुप्रीम कोर्ट, संघ गणराज्यों के सुप्रीम कोर्ट, स्वायत्त गणराज्यो, जनपदो, प्रदेशों, स्वायत्त प्रदेशो तथा क्षेत्रो के न्यायालय, विशेष न्यायालय तथा जन-न्यायालय करते हैं।

जन-न्यायालय (Peoples' Courts)—जन-न्यायालयों का निर्वाचन जिले के नागरिको द्वारा सार्वजनिक प्रत्यक्ष और समान मताधिकार के आधार पर गुप्त मतदान विधि मे तीन वर्ष के लिए होता है। ये पूरी तरह आरम्भिक क्षेत्राधिकार के न्यायालय हैं और दीवानी तथा फौजदारी के अधिकतर अभियोग उनके सामने लाये जाते हैं। दीवानी क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सम्पत्ति, श्रमिक कानून, तलाक पर स्त्री को रोटी कपड़ा देना तथा उत्तराधिकार इत्यादि आते हैं। फौजदारी क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत किसी के जीवन, स्वास्थ्य, स्वतन्त्रता और सम्मान के विरुद्ध अपराध, सम्पत्ति अपराध, सेवा अपराध (Service Crimes) तथा प्रशासन-व्यवस्था के विरुद्ध अपराध आते है। प्रत्येक जिले में जन-न्यायालयो की सख्या सम्बन्धित यूनियन गणराज्य अथवा स्वशासित गणराज्य का मन्त्रिमण्डल निश्चित करता है। यह सम्बन्धित क्षेत्र के न्याय-मन्त्री की प्रार्थना पर स्थापित किया जाता है। जन-न्यायालय की सहायता के लिए असेसर होते है। किन्तु, असेसरों को प्रति वर्ष १० दिन से अधिक उपस्थित होने के लिए नहीं कहा जाता। जन-न्यायालयों के न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे समय-समय पर अपने कार्यों तथा जन-न्यायालय के कार्यों से वोटरों को परिचित कराये।

प्रादेशिक, या जनपदीय और क्षेत्रीय न्यायालयों, स्वायत्त प्रदेशों के न्यायालयों, स्वायत्त गणराज्य के सुप्रीम कोर्टों को क्रान्ति-विरोधी अपराधों, यू० एस० एस० आर० के लिए विशेष भयजनक अभियोगों, राज्य प्रशासन के विरुद्ध अपराधों, समाजवादी

सम्पत्ति को चुराने के और महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय तथा आर्थिक अपराधों के अभियोग
को सुनने के आरम्भिक क्षेत्राधिकार हैं। दीवानी क्षेत्राधिकार में राज्य और सार्वजनिक
मस्थाओ, व्यवसायो और मगठनों के अभियोग आते हैं। इनमें से प्रत्येक न्यायालय मे
अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मदस्य और जनता के असेसर होते हैं।

संघ गणराज्य का सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court of Union Republic)—
सघ गणराज्य का सर्वोच्च न्यायिक अग सुप्रीम कोर्ट है। इसका कार्य समस्त यूनियन
गणराज्य तथा उसकी विभिन्न इकाइयो के न्याय-प्रशासन की देख-भाल (super-
vision) करना है। यह प्रोक्योरेटर-जनरल अथवा यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम
कोर्ट के अध्यक्ष, अथवा यूनियन गणराज्य के प्रोक्योरेटर अथवा उसके सुप्रीम कोर्ट के
अध्यक्ष के कहने पर किया जाता है। गणराज्य के किसी भी न्यायालय के निर्णय को
यूनियन गणराज्य का सुप्रीम कोर्ट रद्द कर सकता है, इसको महत्त्वपूर्ण दीवानी तथा
फौजदारी के अभियोगो मे आरम्भिक (original) क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

यू० एस० एस० आर० का सुप्रीम कोर्ट (Superme Court of U. S S. R.)
—यह देश का मर्वोच्च न्यायिक अग है और पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित होता है।
यह यू० एस० एस० आर० तथा यूनियन गणराज्यों के न्यायिक अंग का पर्यवेक्षण
(supervision) करता है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दीवानी तथा फौजदारी अभियोगों
का यह आरम्भिक न्यायालय है। सुप्रीम कोर्ट मे एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा कई
सदस्य होते है। १९३८ मे सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशो की सख्या ४५ थी किन्तु
१९४६ मे बढ़ाकर ६८ कर दी गई। सुप्रीम कोर्ट के पाँच विभिन्न विभाग हैं—
"फौजदारी (Criminial Collegium), व्यवहार (Civil Collegium), सैनिक
रेलवे और जल-यातायात। आरम्भिक क्षेत्राधिकार मे कार्य करते समय न्यायालय में
जनता के दो निर्धारक (असेसर) और न्यायालय का एक सदस्य बैठता है।
किन्तु जब यह राजस्व न्यायालय (Court of Revenue) के नाते कार्य करता है
तब इसमे न्यायालय के ३ मदस्य होते हैं। यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट का
अध्यक्ष अभियोग की सुनवाई के ममय प्रत्येक विभाग की अध्यक्षता कर सकता है।
वह यू० एस० एस० आर० अथवा यूनियन गणराज्य के किसी न्यायालय की सूची मे
से किसी अभियोग को हटा सकता है और सुप्रीम कोर्ट की फुल बेंच के सम्मुख अपना
कथन पेश करने का अधिकार रखता है। सुप्रीम कोर्ट को सदा प्रशासन का अग माना
गया है। यह सरकार के ऊपर अथवा स्वतन्त्र अग नही है। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश
केवल उन व्यक्तियो को बनाया जाता है जिन्होंने साम्यवादी सिद्धान्तो और कार्यक्रम
मे अपना पूर्ण विश्वास सिद्ध किया होता है। डिब्लो (Diablo) के अनुसार, "यू०
एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट के निर्णयों की कोई स्वतन्त्र शक्ति नही है, क्योंकि
उसके निर्णय यू० एस० एस० आर० की प्रेज़ीडियम और मी० ई० सी० (Central
Executive Committee), केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा पुष्टि के विषय है।"
तुल्बिनर के अनुसार, "संयुक्त राज्य अमेरिका मे सुप्रीम कोर्ट को सविधान की रक्षा
करने के लिए कानूनो की वैधता (constitutionality) को सुरक्षित करने (veri-
fication) का काम दिया है। रूस—शक्ति को केन्द्रित करने के विचार से—यह कार्य

———

केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति और इसके प्रेजीडियम को सौपते है। संघीय सुप्रीम कोर्ट केवल परामर्श देता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट को न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review) की शक्ति नही है। वह किसी कानून को अवैधानिक अथवा अवैध घोषित नहीं कर सकता।

विशेष न्यायालय (Special Courts)—रूस के विशेष न्यायालय का निर्देश किया जा सकता है। ऐसे न्यायालयों के उदाहरण तरुण न्यायालय (juvenile), भूमि न्यायालय (land courts), विवाचन न्यायालय (courts of arbitration) तथा सैनिक न्यायालय है। सैनिक न्यायालय मे केवल सैनिकों के अभियोग ही नही सुने जाते, बल्कि कभी-कभी सैनिक न्यायालय नागरिको के अभियोग भी सुनते हैं। इन न्यायालयों में अपराधी की सुनवाई ठीक प्रकार से नही होती। यद्यपि संविधान ने प्रत्येक नागरिक को सफाई उपस्थित करने का अधिकार दिया है तो भी राजनैतिक अपराधों के अभियोगो मे यह अधिकार नाटक मात्र हो जाता है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus) के लिए कोई व्यवस्था (provision) नही है। इसलिए व्यक्ति को जेल से छुडाने का कोई साधन नही, चाहे उसे बिल्कुल अन्याय से जेल मे भेजा गया हो अथवा उसको कारावास मे भेजना देश के कानून के विरुद्ध ही क्यों न हो। नियमित रूप से जूरी द्वारा सुनवाई नही होती। विशेष सैनिक ट्रिब्युनलों की आवश्यकता "यू० एस० एस० आर० की सैनिक शक्ति को दृढ करने और सैनिक अनुशासन को शक्तिशाली करने के लिए है।" विशेष लाइन न्यायालयो (Special Line Courts) का निर्माण रेलवे और जल-यातायात व्यवस्था की दशाओं के अनुसार किया जाता है।

विवाचन ट्रिब्यूनल (Arbitration Tribunals)—रूस मे बहुत से अभियोग पंच ट्रिब्यूनलों द्वारा निबटाए जाते है। सरकार इन ट्रिब्यूनलों को दो अथवा अधिक राज्य-व्यवसायों के झगडे निबटाने के लिए नियुक्त करती है।

वकील (Lawyers)—ध्यान रहे कि वकील रूस की न्याय-व्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण योग नही देते। इसका कारण यह है कि साम्यवादी वकीलो को पूँजीपतियो का चिह्न समझते है। फल यह है कि न्यायाधीश को ही गवाह और अपराधी दोनों से प्रश्न पूछने पडते है।

प्रोक्योरेटर-जनरल तथा प्रोक्योरेटर (Procurator-General and Procurators)—संविधान की धारा ११३ से ११७ के अनुसार रूस के प्रोक्योरेटर-जनरल को उच्चतम निरीक्षण की शक्ति प्राप्त है कि वह देखे कि यू० एस० एस० आर० के अधिकारी, नागरिक, मन्त्रालय तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारी कानून का ठीक-ठीक पालन करते है या नही। उनको सुप्रीम सोवियत के द्वारा सात वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। प्रोक्योरेटर-जनरल यूनियन गणराज्यों, जनपदों, प्रदेशों, स्वायत्त गणराज्यो तथा प्रदेशों के प्रोक्योरेटरों की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए करता है। क्षेत्र, नगर तथा जिले के प्रोक्योरेटरों की नियुक्ति यूनियन गणराज्यों के प्रोक्योरेटर पाँच वर्ष के लिए करते हैं और ये यू० एस० एस० आर० के प्रोक्योरेटर-

जनरल की स्वीकृति के विषय हैं। प्रोक्योरेटर के कार्यालय के अधिकारी अपना कार्य स्थानीय अंगों से पूरी तरह स्वतन्त्र रहकर करते हैं। वे केवल यू० एस० एस० आर० के प्रोक्योरेटर-जनरल के अधीन होते हैं।

यह ध्यान रहे कि रूस में प्रोक्योरेटर का पद साम्यवादी शासन आरम्भ होने के समय में ही आरम्भ हुआ था। उस समय इसका सम्बन्ध केवल यू० एस० एस० आर० के सुप्रीम कोर्ट से था। यह स्वतन्त्र अंग नहीं था जिसका कर्त्तव्य समस्त रूस के प्रोक्योरेटरों को निदेश देना तथा उनके कार्य में सामंजस्य स्थापित करना होता है। स्थानीय प्रोक्योरेटर यूनियन गणराज्यों के प्रोक्योरेटरों के अधीन होते थे जो गणराज्य की न्यायिक परिषद् के सदस्य थे। १६३३ में, यू० एस० एस० आर० के प्रोक्योरेटर के पद को यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत से पृथक् कर स्वतन्त्र किया गया था। रूसी संविधान के अनुसार पुन: परिवर्तन किए गये। प्रोक्योरेटर की सात वर्ष की पदावधि को निम्न शब्दों में न्यायोचित ठहराया गया है। "संविधान द्वारा स्थापित समस्त पदों में इनकी लम्बी पदावधि रखने की व्याख्या यह वास्तविकता करती है कि यह अंग जिसका कार्य वैधानिकता तथा नेतृत्व की स्थायिता का निरीक्षण (supervision) है, विशेष महत्त्व का होता है। कानूनों की स्थायिता (stability) के लिए कानूनों को प्रकाशित कराना ही आवश्यक नहीं, बल्कि उनको लागू करना भी आवश्यक है। और कानून के लागू होने का निरीक्षण करना प्रोक्योरेटर का बुनियादी कर्त्तव्य है।"

यू० एस० एस० आर० के प्रोक्योरेटर-जनरल का कार्यालय अत्यधिक केन्द्रीकृत (highly centralised) है। यह एक आदमी के प्रबन्ध के सिद्धान्त पर कार्य करता है। प्रोक्योरेटर-जनरल मन्त्रिमण्डल का सदस्य नहीं होता। वह न्याय मन्त्री अथवा किसी मन्त्री के भी अधीन नहीं होता। वह एक स्वतन्त्र व्यक्ति है जो रूस की सुप्रीम सोवियत के अधीन है। गुलन्स्की (Golunsky) के अनुसार, "कोई भी विभागीय प्रभाव प्रोक्योरेटर को उन कठिन कार्यों को पूरा करने में प्रभावित नहीं कर सकता जो उसे सौंपे गए हैं।" उसका कर्त्तव्य यह देखना है कि लोगों को देश के कानून के अनुसार न्याय मिले और जब अन्याय हो, तब उसका कर्त्तव्य न्यायालय को यह बात बताना और त्रुटि को ठीक कराना है। उसके कार्य में युवक संगठन—कोमसोमोल (Komsomol)—ट्रेड यूनियनें, कारखाने और ग्राम के प्रतिनिधि सहायता देते हैं।

प्रोक्योरेटर-जनरल की स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया गया है: "फौजदारी के अभियोगों की जाँच-पड़ताल अथवा आरम्भ करने में, न्यायालयों में मुकदमा चलाने में, शिकायतों की जाँच करने में, शक्ति के किसी अंग के नियमविरुद्ध निर्णयों का विरोध करने में, सोवियत प्रोक्योरेटर समाजवादी न्याय-व्यवस्था का संरक्षक, साम्यवादी दल और सोवियत अधिकार की नीति का वाहक और समाजवाद के निमित्त लड़ने वाला होता है।"

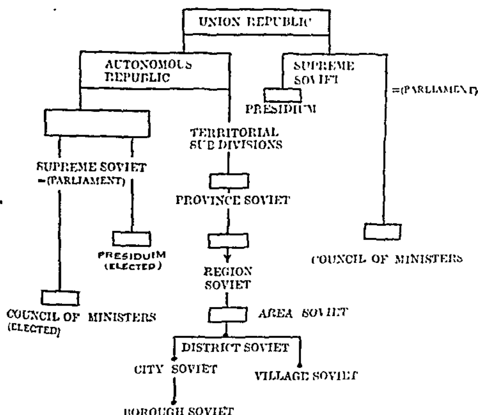
Suggested Readings

Berman, H.J. : Justice in Russia, 1950.
Gsovski, Vladimir : Soviet Civil Law, 1948.
Schlesinger, R. : Soviet Legal Theory, 1951.
'yshinsky, A. Y. : The Law of the Soviet State.

यूनियन गणराज्य का प्रशासन

(Administration of the Union Republics)

सोवियत रूस की इकाइयाँ (Units of Soviet Russia)—रूस के



संविधान की धारा १३ के अनुसार यू० एस० एस० आर० में निम्न १६ यूनियन गणराज्य हैं—

१. रूस का सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य (The Russian Soviet Federative Socialist Republic)।

२. यूक्रेनियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Ukrainian Soviet Socialist Republic)।

३. बाइलोरशियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Byelo-Russian Soviet Socialist Republic)।

४. अजरबैजान सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Azerbaijan Soviet Socialist Republic)।

५. उजबेक सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Uzbec Soviet Socialist Republic)।

६. कजाक सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Kazakh Soviet Socialist Republic)।

७. जार्जियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Georgian Soviet Socialist Republic)।

८. लिथुआनियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Lithuanian Soviet Socialist Republic)।

९. मोल्डेवियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Moldavian Soviet Socialist Republic)।

१० लैटवियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Latvian Soviet Socialist Republic)।

११ किरगीज सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Kirghiz Soviet Socialist Republic)।

१२. ताजिक सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Tajik Soviet Socialist Republic)।

१३ आर्मीनियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Armenian Soviet Socialist Republic)।

१४. तुर्कमेन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Turkmen Soviet Socialist Republic)।

१५ एसटोनियन सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Estonian Soviet Socialist Republic)।

१६. करेलो-फिनिश सोवियत समाजवादी गणराज्य (The Karelo-Finnish Soviet Socialist Republic)।

धारा २२ के अनुसार, रूस के सोवियत संघात्मक समाजवादी गणराज्य में अल्टाई (Altai), क्रासनोदर (*Krasnodar*), क्रासनोयार्स्क (Krasnoyarsk), प्रीमोर्ये (Primorye), स्टावरोपोल (*Stavropol*), और खाबारोवस्क जनपद (Khabarovsk Territories), अमुर (Amur), आरचेन्जेल्स्क (Archangelsk), अस्त्राखान (Astrakhan), ब्रिआन्सक (Bryansk), वेलीक्यू-लूकी (Velikiye Luki), ब्लाडिमार (Vladimir), वोलोग्डा (*Vologda*), वोरोनेज (*Voronezh*), गोर्की, गोजनी, इवानोव इर्कुटस्क, कालिनिनग्राड, कालिनिन कालुगा, केमेरोवो, किरोव, कोस्ट्रामा, क्रीमिया, क्योबीशेव, कुर्गान, कुर्स्क, लेनिनग्राड, मोलोटोव, मास्को, मुर्मन्स्क, नोवगोरोड, नोवोसीबीर्स्क, ओमस्क, ओरेल, पेन्जा, प्स्कोव, रोस्टोव, रयाजान, साराटोव, सखालिन, स्वेर्डलोव्स्क, स्मोलेन्स्क, स्टालिनग्राड, टाम्बोव टोम्स्क, टूला (Tula), ट्यूमेन, यूल्यानोव्स्क, चेल्याबीन्स्क, चीटा, इकालोव (Chkalov) और यारोस्लावल प्रदेश; तातार, बाशकीर, डागिस्तान, बुरयात मंगोलियन, कावार्डिनियन, कोमी, मारी, मोर्डोवियन, नार्थ ओसेटियन, उडमर्ट चुवाश और याकूट स्वायत्त गणराज्य (Autonomous

Soviet Socialist Republic), अडिसी, कोरोनो अल्टाई, ज्यूइश, टूवा, खाकास और चिकीज स्वायत्त प्रदेश (Autonomous Regions) है। यह ध्यान रहे कि आर० एस० एफ० एस० आर० (R. S. F. S. R.) में यू० एस० एस० आर० का ३/४ क्षेत्र शामिल है और यह दुनिया के क्षेत्रफल का १/८ से अधिक है। यू० एस० एस० आर० की आधे से अधिक जनसंख्या आर० एस० एफ० एस० आर० मे रहती है। १९५१ में आर० एस० एफ० एस० आर० में १२ स्वायत्त गणराज्य और ६ स्वशासित प्रदेश थे। वास्तव में १९१८ का सविधान आर० एस० एफ० एस० आर० का संविधान था। उसकी राजधानी मास्को है।

धारा २३ के अनुसार यूक्रेनियन समाजवादी गणराज्य मे विनिट्सा, वोल्ही-निया, वोरोशिलोवग्राड, डिनेप्रोपेट्रोव्स्क, ड्रोहोविच, जीटोमीर, ट्रान्सकार्पेथियन, जीपो-रोजी (Zaporozhy), इस्माइल, कैमेन्ट्स पोडोल्स्क, कीव, किरोवोग्राड, ल्वोव, निकोलायव, ओडेसा, पोल्टावा, रोवनो, स्टालिनो, स्टानिसला, सूमी, टर्नोपोल, खारकोव, खेरसन, चेरनिगोव और चेरनोव्टसी प्रदेश है।

धारा २४ के अनुसार, अजरबैजान सोवियत समाजवादी गणराज्य मे नैखी-शेवन स्वशासित सोवियत समाजवादी गणराज्य और नेगोर्नो-कारावख स्वशासित प्रदेश शामिल है।

धारा २५ के अनुसार, जार्जियन सोवियत समाजवादी गणराज्य मे अबखाजियन और अदजार के स्वशासित सोवियत समाजवादी गणराज्य और दक्षिणी ओस्टेनियन स्वशासित प्रदेश है।

उजबेक इकाई मे बुखारा, कश्क दरिया, नामनगन, समरकन्द, सुर्खा-दरिया, ताशकन्द, फ़र्गाना और खोरेज्म प्रदेश और काराकालपक स्वशासित सोवियत समाज-वादी गणराज्य हैं (धारा २६)।

ताजिक मे गार्म, कुल्याब, लेनिनावाद, स्टालिनग्राड प्रदेश और गोर्नो बद-खशान स्वशासित प्रदेश हैं (धारा २७)।

कजाक मे अक्मोलिन्सक, अक्ट्यूबिन्सक, अल्माअटा, पूर्वी काजखस्तान, गुरीव, जामबुल, पश्चिमी कजाकस्तान, कारागन्डा, क्लोज ओरडा, कोकचेटव, कुस्टानल, पाव-लोडर, उत्तरी कजाकस्तान, सेमीपालटिस्क, टालडी-कुरगान और दक्षिणी कजाकस्तान के प्रदेश है (धारा २८)।

वाइलो-रशियन इकाई मे बरानो वीची, वोब्रूइस्क, ब्रैस्ट, वाइटव्स्क, गोमेल, ग्रोडनो, मिन्स्क, मोघीलव, मोलोडैक्नो, पिन्सक, पोलोटस्क प्रदेश हैं। (धारा २९)

तुर्कमेन सोवियत समाजवादी गणराज्य मे अरखावाद, मैरी, ताशोज और कार्डजोयू प्रदेश है। (धारा २९ क)

किरगीज इकाई मे उज्हालालाबाद, इस्सीक्कुल, ओश, तालस, टेनशान और फ्रुन्जे प्रदेश है (धारा २९ ख)।

लियुआनियन इकाई में विल्निअस, कोनास, क्लेपिडा और [illegible] (Siauliai) प्रदेश है (धारा २९ ग)।

यूनियन गणराज्यों की स्थिति (Position of Union Republics)—धारा १५ के अनुसार, यूनियन गणराज्यों की प्रभु-सत्ता (Sovereignty) केवल चौदहवीं धारा के क्षेत्रों तक सीमित है और इन सब क्षेत्रों के बाहर प्रत्येक यूनियन गणराज्य का स्वतन्त्र प्राधिकार (authority) है। यू० एस० एस० आर० यूनियन गणराज्यों के सत्ताधिकारों की रक्षा करता है।

धारा १६ व्यवस्था करती है कि प्रत्येक यूनियन गणराज्य का अपना संविधान है जिसमे गणराज्य की मुख्य विशेषताओं पर ध्यान दिया गया है और वह यू० एस० एस० आर० के संविधान के पूर्णतया अनुरूप है। धारा १७ के अनुसार, प्रत्येक यूनियन गणराज्य यू० एस० एस० आर० से पृथक् हो सकता है। यूनियन गणराज्य की सीमा उसकी इच्छा के विपरीत नही बदली जा सकती (धारा १८)। धारा १८क के अनुसार प्रत्येक यूनियन गणराज्य को अधिकार है कि वह किसी विदेश से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है अथवा सन्धियाँ कर सकता है तथा दूत भेज सकता है। प्रत्येक यूनियन गणराज्य की अपनी सेना होती है (धारा १८ ख)। यू० एस० एस० आर० के कानून प्रत्येक यूनियन गणराज्य मे एक-सी शक्ति रखते हैं (धारा १९)। धारा २० के अनुसार सघ तथा यूनियन गणराज्य के कानूनो में प्रतिकूलता होने पर संघीय कानून ही लागू रहता है।

यू० एस० एस० आर० के नागरिकों के लिए एकसी संघीय नागरिकता (uniform union citizenship) स्थापित की गई है। प्रत्येक यूनियन गणराज्य का नागरिक यू० एस० एस० आर० का भी नागरिक होता है (धारा २१)। इसी प्रकार की व्यवस्था स्विस सविधान मे भी है जहाँ कि किसी कैन्टन का नागरिक स्विस सघ का नागरिक होता है।

यूनियन गणराज्यों में राज्य शक्ति के उच्च अग (Higher Organs of State Power in Union Republics)—धारा ५७ के अनुसार यूनियन गणराज्य में राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अग यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत है। इसको यूनियन गणराज्य के नागरिक चार वर्ष के लिए चुनते है। प्रतिनिधित्व का आधार सम्बन्धित गणराज्य के सविधान द्वारा स्थापित किया जाता है (धारा ५८)। यूनियन गणराज्य का विधायी अंग (legislative organ) सुप्रीम सोवियत ही है (धारा ५९)। गणराज्य की सुप्रीम सोवियत उसका सविधान अगीकार करती है (adopts) और रूस के सविधान की सोलहवी धारा के अनुसार उसका संशोधन करती है (amends)। धारा १६ व्यवस्था करती है कि यूनियन गणराज्य का संविधान यू० एस० एस० आर० के सविधान के पूर्ण अनुरूप बनाया जाना चाहिए। सुप्रीम सोवियत स्वशासित गणराज्यों के सविधानों की पुष्टि करती हैं और उनकी सीमाएँ निश्चित करती है। यह गणराज्य की आर्थिक आयोजना और बजट को मान्य करती है। यह यूनियन गणराज्य के न्यायिक अंग द्वारा दिए गए दण्ड को क्षमा करने और राजनैतिक अपराधियो को क्षमा करने के अधिकार का प्रयोग करती है। यह यूनियन गणराज्य के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व के प्रश्न को तय करती है और गणराज्य के सैन्य संगठन की व्यवस्था ...ी है (धारा ६०)। यह यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत के प्रेजीडियम को

निर्वाचित करती है, जिसमें यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव और सदस्य होते हैं। धारा ६१ के अनुसार, यूनियन गणराज्य के संविधान के द्वारा प्रेज़ीडियम की शक्तियाँ निश्चित की गई हैं। यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत अपनी कार्यवाही चलाने के लिए एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष का निर्वाचन करती है। (धारा ६२)। यह यूनियन गणराज्य की सरकार अर्थात् मन्त्रिमण्डल को नियुक्त करती है (धारा ६३)।

मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers)—धारा ७६ के अनुसार यूनियन गणराज्य की सर्वोच्च कार्यकारी तथा प्रशासकीय राज्य-शक्ति का अंग यूनियन गणराज्य का मन्त्रिमण्डल है। मन्त्रिमण्डल सुप्रीम सोवियत के प्रति उत्तरदायी है और सुप्रीम सोवियत के स्थगन काल में यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत के प्रेज़ीडियम के प्रति उत्तरदायी है (धारा ८०)। मन्त्रिमण्डल यू० एस० एस० आर० और यूनियन गणराज्य के कानूनों के आधार पर आज्ञाएँ और निर्णय देता है और उनको कार्यान्वित कराता है (धारा ८१)। यूनियन गणराज्य के मन्त्रिमण्डल को अधिकार है कि वह अपने स्वशासित गणराज्यों के मन्त्रिमण्डलों के निर्णयों और आज्ञाओं को अनुलम्बित (suspend) कर सके तथा जनपदों, प्रदेशों और स्वशासित प्रदेशों की प्रतिनिधि संस्थाओं की कार्यकारिणियों के निर्णयों और आदेशों को रद्द कर सके (धारा ८२)। यूनियन गणराज्य का मन्त्रिमण्डल यूनियन गणराज्य की सुप्रीम सोवियत द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसमें मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष, राज्य योजना आयोग का अध्यक्ष, मन्त्री, कला-प्रशासन का प्रमुख तथा शिक्षा और संस्कृति विभागों के अध्यक्ष होते हैं (धारा ८३)। यूनियन गणराज्य के मन्त्री उन कार्यों के प्रशासन का निर्देशन करते हैं जो यूनियन गणराज्य के क्षेत्राधिकार से आते हैं (धारा ८४)। प्रत्येक मन्त्री अपने मन्त्रालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत यू० एस० एस० आर० तथा यूनियन गणराज्यों के कानूनों के आधार तथा अनुसरण पर और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल तथा यूनियन गणराज्य के मन्त्रिमण्डल के निर्णयों तथा आदेशों और यूनियन यू० एस० एस० आर० के गणराज्य मन्त्रालयों की आज्ञाओं को कार्यान्वित करने के लिए आदेश और आज्ञाएँ देता है (धारा ८५)।

धारा ८६ के अनुसार यूनियन गणराज्यों के मन्त्रालय या तो यूनियन गणराज्यात्मक हैं अथवा गणराज्यात्मक। यूनियन गणराज्य का प्रत्येक मन्त्रालय अपने से सम्बन्धित प्रशासन का निर्देशन करता है और यूनियन गणराज्य के मन्त्रिमण्डल तथा यू० एस० एस० आर० के सम्बन्धित मन्त्रालय दोनों के प्रति उत्तरदायी है (धारा ८७)। गणराज्य का मन्त्रालय अपने से सम्बन्धित प्रशासन का प्रबन्ध करता है और प्रत्यक्ष रूप में यूनियन गणराज्य के मन्त्रिमण्डल के प्रति उत्तरदायी है (धारा ८८)।

स्मरण रहे कि यद्यपि ऐसा मालूम होता है कि यूनियन गणराज्यों को पर्याप्त स्वशासन प्राप्त है, किन्तु वास्तव में उन पर पर्याप्त प्रतिबन्ध है। केन्द्रीय सरकार इकाई सरकार पर काफी प्रभाव रखती है। वह केवल नीतियों का निर्धारण नहीं करती, प्रत्युत् उनको कार्यान्वित करने की विधि भी तय कर देती है।

स्वशासित गणराज्य (Autonomous Republics)—स्वशासित सोवियत समाजवादी गणराज्य में राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अंग स्वशासित गणराज्य की सुप्रीम सोवियत है (धारा ८९)। सुप्रीम सोवियत का निर्वाचन चार वर्ष के लिए होता है (धारा ९०)। केवल इसे ही कानून बनाने का अधिकार है (धारा ९१)। प्रत्येक स्वशासित गणराज्य का अपना संविधान है, जिसमें इसकी अपनी विशेषता का समावेश है और यह यूनियन गणराज्य के संविधान के अनुरूप भी है। सुप्रीम सोवियत प्रेज़ीडियम का निर्वाचन करती है और संविधान के अनुसार स्वशासित गणराज्य के मन्त्रि-मण्डल को नियुक्त करती है (धाराएँ ९२-९३)।

प्रत्येक स्वशासित गणराज्य ११ प्रतिनिधि सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज़ मे भेजता है। १९५१ मे १६ स्वशासित गणराज्य यू० एस० एस० आर० मे थे और उनमें से १३ आर० एस० एफ० एस० आर० मे थे।

स्वशासित प्रदेश (Autonomous Regions)—१९५१ में रूस में कुल ९ स्वशासित प्रदेश थे और उनमें से ६ आर० एस० एफ० एस० आर० मे थे। प्रत्येक स्वशासित प्रदेश अपने पाँच प्रतिनिधि सोवियत ऑफ नैशनैलिटीज़ मे भेज सकता है। इनको स्वशासित गणराज्यों की अपेक्षा कम स्वतन्त्रता प्राप्त है, प्रत्येक स्वशासित प्रदेश की अपनी कार्यकारी-समिति और सोवियत है।

राष्ट्रीय क्षेत्र (National Areas)—राष्ट्रीय क्षेत्रों मे विशेष जाति के लोग रहते है। प्रत्येक राष्ट्रीय क्षेत्र को सोवियत ऑफ नैशनैलिटीज़ में एक स्थान प्राप्त है। यह कहा जाता है कि इन क्षेत्रों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने का तात्पर्य यह है कि रूस मे अल्पसख्यकों की बलि नही हुई प्रत्युत् उनको सत्ता, समता (equality) तथा सुरक्षण (protection) की गारण्टी दे दी गई है।

राज्य-शक्ति के स्थानीय अंग (Local Organs of State Power)—जनपदों, प्रदेशों, स्वशासित प्रदेशों, क्षेत्रों, जिलों, नगरों और ग्रामीण स्थानों (स्टेनिटास ग्राम, हैमलेट, किश्लाक, ओल) मे राज्य-शक्ति के अंग मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत (Soviet of Working Peoples' Deputies) है। मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें जनपदों, क्षेत्रों, प्रदेशों, स्वशासित प्रदेशों, जिलों, नगरों और ग्रामीण स्थानों की जनता द्वारा दो वर्ष के लिए चुनी जाती हैं। निर्वाचन का आधार संविधान द्वारा निश्चित किया गया है। ये सोवियतें अपने से सम्बन्धित प्रशासन का प्रबन्ध करती है, सार्वजनिक व्यवस्था रखती है और कानूनों को लागू कराती हैं, नागरिकों के अधिकारों का सरक्षण करती हैं और स्थानीय आर्थिक तथा सास्कृतिक कार्यों का प्रबन्ध करती है और स्थानीय बजट बनाती है।

यूनियन गणराज्य और यू० एस० एस० आर० के कानूनों द्वारा प्राप्त अधिकारों की सीमा में रहकर मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें निर्णय करती हैं और आदेश देती हैं। जनपद, क्षेत्र, स्वशासित प्रदेश, क्षेत्र, जिला, नगर अथवा ग्रामीण स्थानों का कार्यकारिणी और प्रशासकीय अंग उनके द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका समिति होती है जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मन्त्री और सदस्य होते हैं। एक छोटे क्षेत्र की ...जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत का कार्यकारी तथा प्रशासकीय अंग यूनियन

स्वशासित गणराज्य (Autonomous Republics)—स्वशासित सोवियत समाजवादी गणराज्य में राज्य-शक्ति का सर्वोच्च अंग स्वशासित गणराज्य की सुप्रीम सोवियत है (धारा ८६)। सुप्रीम सोवियत का निर्वाचन चार वर्ष के लिए होता है (धारा ९०)। केवल इसे ही कानून बनाने का अधिकार है (धारा ९१)। प्रत्येक स्वशासित गणराज्य का अपना संविधान है, जिसमें इसकी अपनी विशेषता का समावेश है और यह यूनियन गणराज्य के संविधान के अनुरूप भी है। सुप्रीम सोवियत प्रेजीडियम का निर्वाचन करती है और संविधान के अनुसार स्वशासित गणराज्य के मन्त्रि-मण्डल को नियुक्त करती है (धाराएँ ९२-९३)।

प्रत्येक स्वशासित गणराज्य ११ प्रतिनिधि सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज में भेजता है। १९५१ में १६ स्वशासित गणराज्य यू० एस० एस० आर० में थे और उनमें से १२ आर० एस० एफ० एस० आर० में थे।

स्वशासित प्रदेश (Autonomous Regions)—१९५१ में रूस में कुल ९ स्वशासित प्रदेश थे और उनमें से ६ आर० एस० एफ० एस० आर० में थे। प्रत्येक स्वशासित प्रदेश अपने पाँच प्रतिनिधि सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज में भेज सकता है। इनको स्वशासित गणराज्यों की अपेक्षा कम स्वतन्त्रता प्राप्त है, प्रत्येक स्वशासित प्रदेश की अपनी कार्यकारी-समिति और सोवियत है।

राष्ट्रीय क्षेत्र (National Areas)—राष्ट्रीय क्षेत्रों में विशेष जाति के लोग रहते हैं। प्रत्येक राष्ट्रीय क्षेत्र को सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज में एक स्थान प्राप्त है। यह कहा जाता है कि इन क्षेत्रों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने का तात्पर्य यह है कि रूस में अल्पसंख्यकों की बलि नहीं हुई प्रत्युत् उनको सत्ता, समता (equality) तथा सुरक्षण (protection) की गारण्टी दे दी गई है।

राज्य-शक्ति के स्थानीय अंग (Local Organs of State Power)—जनपदों, प्रदेशों, स्वशासित प्रदेशों, क्षेत्रों, जिलों, नगरों और ग्रामीण स्थानों (स्टेनिटास ग्राम, हैमलेट, किश्लाक, औल) में राज्य-शक्ति के अंग मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत (Soviet of Working Peoples' Deputies) है। मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें जनपदों, क्षेत्रों, प्रदेशों, स्वशासित प्रदेशों, जिलों, नगरों और ग्रामीण स्थानों की जनता द्वारा दो वर्ष के लिए चुनी जाती है। निर्वाचन का आधार संविधान द्वारा निश्चित किया गया है। ये सोवियतें अपने से सम्बन्धित प्रशासन का प्रबन्ध करती हैं, सार्वजनिक व्यवस्था रखती हैं और कानूनों को लागू कराती हैं, नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करती हैं और स्थानीय आर्थिक तथा सांस्कृतिक कार्यों का प्रबन्ध करती है और स्थानीय बजट बनाती हैं।

यूनियन गणराज्य और यू० एस० एस० आर० के कानूनों द्वारा प्राप्त अधिकारों की सीमा में रहकर मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतें निर्णय करती हैं और आदेश देती हैं। जनपद, क्षेत्र, स्वशासित प्रदेश, क्षेत्र, जिला, नगर अथवा ग्रामीण स्थानों का कार्यकारिणी और प्रशासकीय अंग उनके द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका समिति होती है जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, मन्त्री और सदस्य होते हैं। एक छोटे क्षेत्र की जनता के प्रतिनिधियों की सोवियत का कार्यकारी तथा प्रशासकीय अंग यूनियन

गणराज्य के संविधान के अनुरूप निर्वाचित अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री होते हैं। मजदूर जनता के प्रतिनिधियों की सोवियतों के कार्यकारी अंग प्रत्यक्ष रूप से उनके और उच्च सोवियत के कार्यकारी अंग के प्रति उत्तरदायी होते हैं (धाराएँ ६४-१०१)।

Suggested Readings

Carter and Others : The Government of Soviet Union.
Hazard, J. D. : The Soviet System of Government, 1957.
Karpinsky, V. : The Social and State Structure of the U.S S.R.
Mikhailov, Nikolai . Sixteen Soviet Republics.
Strong, A L. : The New Soviet Constitution.

अध्याय २८

साम्यवादी दल

(The Communist Party)

साम्यवादी दल की स्थिति (Position of Communist Party)—रूस के संविधान की धारा १२६ व्यवस्था करती है कि यू० एस० एस० आर० के साम्यवादी दल में सबसे चुस्त तथा राजनैतिक दृष्टि से जागरूक मजदूर और परिश्रम करने वाले वर्गों के लोग इकट्ठे होते हैं। यह समाजवादी व्यवस्था को दृढ़ करने में मजदूरों के संघर्ष का सेनानी है और जनता तथा राज्य के समस्त संगठनों का नेतृत्व करने वाला दल है। स्टालिन के अनुसार, "यह वास्तविकता है कि सोवियत यूनियन में, श्रमजीवियों की तानाशाही में कोई भी राजनैतिक अथवा संगठनात्मक प्रश्न सोवियतें और संस्थाएँ पार्टी के निर्देश के बिना हल नहीं करतीं।" इससे पता चलता है कि यहाँ पार्टी का कितना ऊँचा स्थान है। लेनिन के अनुसार, "राज्य करने के लिए क्रान्तिकारियों की सेना आवश्यक है। वह सेना यह पार्टी है······यदि पार्टी को हटा दें तो वास्तव में रूस में श्रमजीवियों की तानाशाही नहीं हो सकेगी।" वैब (Webb) के अनुसार, "साम्यवादी दल रूस के वैधानिक ढाँचे में प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण अंग है।" यह "सरकार का मार्ग-दर्शन करता है और सामान्य आदेश देता है।" प्रोफेसर मनरो और अयैरस्ट (Ayearst) के अनुसार, "षड्यन्त्र और क्रान्ति में शामिल होने की ललकार न होने के कारण अब यू० एस० एस० आर० का साम्यवादी दल राज्य का अभिजात वर्ग (aristocracy) बन गया है। यद्यपि कम महत्त्वपूर्ण पदों पर असाम्यवादी (non Communists), विशेष रूप से प्रशिक्षित टैकनीशियन नियुक्त किए जाते हैं, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पद, केवल सरकार में ही नहीं प्रत्युत् उद्योग, शिक्षा, विज्ञान और प्रत्येक विभाग में भी दल के सदस्यों को ही प्राप्त होते हैं।"

अन्य दलों का लोप (Elimination of Other Parties)—राज्य में साम्यवादी दल ही वैध है। यू० एस० एस० आर० में किसी दूसरे दल की आज्ञा नहीं है। किन्तु देश के राजनैतिक दंगल में से दूसरे राजनैतिक दलों को हटाने में पर्याप्त समय लगा। सबसे प्रथम मेनशेविकों को हटाया गया जो १९१७ की क्रान्ति के लिए उत्तरदायी थे। कुछ समय पश्चात् दक्षिणी तथा मध्यमार्गी (Right and Central) समाजवादी क्रान्तिकारियों का नम्बर आया। सबसे अन्त में वामपन्थी समाजवादी क्रान्तिकारियों को साफ किया गया। फल यह है कि साम्यवादी पार्टी, संगठित, ठोस तथा पत्थर के खम्बे की तरह है। इसे "विभिन्न वर्गों से मिलकर बना पिण्ड" नहीं समझना चाहिए। यह ठोस और अखण्ड है। यह श्रमजीवियों के "लौह सदृश अनुशासन में बँधा संगठित सैन्य दल है।" इसकी शक्ति "इसके ठोसपन, इच्छा की और कार्य की एकता में है।"

दलीय दृढ़ता (Party Solidarity)—साम्यवादी गुटबन्दी (faction), दल-

बन्दी (groupings), स्वतन्त्र मंच (independent platforms) और मत-विभिन्नता (cluster of opinions) सहन नही करता। वह जान-बूझकर उदासीन रहने और पृथकतावादी मनोवृत्ति को भी सहन नही करता। दल के सदस्य विवाद (discussion) मे भाग ले सकते है, किन्तु जब दल एक निर्णय पर पहुँच जाता है, तब सब विरोध समाप्त हो जाना चाहिए और जो ऐसा नही करता उसका वही हाल होता है जो ट्राटस्की का हुआ था। अनेक लेखकों और नेताओं ने *पार्टी अधीनता* पर जोर दिया है। ट्राटस्की के अनुसार, "दल मे स्वतन्त्रता का अर्थ पृथक् वर्गों की स्वतन्त्रता नही है।" जिनोवीव (Zinoviev) के अनुसार, "हम आज की अपेक्षा हजारो गुना अधिक एकता (दृढ़ता) चाहते हैं। हम विरोधों तथा वर्गों को स्वतन्त्रता नही दे सकते।" और "राज्य पर शासन करने वाले दल में विरोध की स्वतन्त्रता का अर्थ समानान्तर सरकार के अकुर बनाने की स्वतन्त्रता होगी।" रैडक के अनुसार, "दल का थोडा विरोध भी समाजवाद के योद्धा के लिए राजनैतिक मृत्यु होती है, और वह क्रान्ति विरोधियो के वर्ग में चला जाता है।" स्टालिन के अनुसार, "हम उदार नही हैं। हमारे लिए औपचारिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा पार्टी-हित अधिक ऊँचे है।"

लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद (Democratic Centralism)—साम्यवादी दल जनपदीय उत्पादन के आधार पर निर्मित शक्ति पिरामिड (power pyramid) के रूप में है। दल के संगठन का आधार लोकतन्त्रीय केन्द्रवाद है, जो निम्न चार साध्यो पर आधारित है—

१. नीचे से ऊपर तक समस्त दलीय संस्थाएँ निर्वाचित होती हैं।

२. समय-समय पर पार्टी की संस्थाएँ अपने-अपने निर्वाचकों को कार्य का विवरण देती हैं।

३. दृढ़ दलीय अनुशासन तथा अल्पमत का बहुमत के अधीन रहना।

४. ऊँची संस्थाओं के निर्णयों का निम्न संस्थाओं पर पूरी तरह बन्धनकारी प्रभाव।

दल का संगठन (Party Organisation)—प्रारम्भिक दल उपकरण (Primary Party Organ)—दल की मूल इकाई 'सेल' (cell) है। इसको प्रारम्भिक दल उपकरण कहते हैं। यह कारखाने, ग्राम, स्टोर, ऑफिस या सामूहिक फार्म में बनाया जा सकता है। शर्त यह है कि कम-से-कम तीन व्यक्ति हों जो दल के कार्यक्रम में विश्वास करें, दल के निर्णयों को मानें और सदस्यता शुल्क (membership dues) दें। प्रारम्भिक दल उपकरण कॉलिज, अस्पताल अथवा अनौद्योगिक संस्थानों में बनाया जा सकता है। बड़े उद्योगों में, प्रत्येक विभाग का एक 'सेल' होता है। यह कहा जाता है कि रूस भर में १½ लाख से अधिक प्रारम्भिक दल उपकरण हैं। यह स्मरणीय है कि उपकरण की सदस्यता केवल मानसिक तथा शारीरिक श्रम करने वालों को ही प्राप्त होती है। सैनिक तथा सार्वजनिक कर्मचारी भी उपकरण के सदस्य बन सकते हैं। प्रत्येक प्रवेश-पत्र पर निश्चित संख्या में साम्यवादियों की अनुशंसाएँ (सिफारिशें) होनी चाहिए जिनका दल में विशेष स्थान (standing) हो।

१९५२ के दलीय नियमों के अनुसार दलीय इकाइयों के कार्य निम्नलिखित हैं :

(क) पार्टी की अपीलों और निर्णयों को पूरा करने के लिए जनता में आन्दोलनात्मक और संगठनात्मक कार्य, प्रारम्भिक प्रैस (मकान उपकरण तथा दीवार, अखबार आदि) के नेतृत्व की सहायता से करना।

(ख) दल के नए सदस्यों की भर्ती करना और उनके राजनीतिक प्रशिक्षण (training) की व्यवस्था करना,

(ग) दलीय सदस्यों और उम्मीदवारों की राजनीतिक शिक्षा का प्रबन्ध करना और इस बात का पता लगाना कि उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद का कुछ निश्चित ज्ञान प्राप्त कर लिया है,

(घ) रैकोम (raikom), गोर्को (gorko) या राजनीतिक विभाग की समस्त व्यावहारिक कार्यों में सहायता करना,

(च) उत्पादन योजना को पूरा करने, श्रम अनुशासन को दृढ़ करने, और समाजवादी प्रतियोगिता (competition) के विकास के लिए कारखानों, राज्य-फार्मों, सामूहिक फार्मों आदि में जनमत को जाग्रत करने का प्रयत्न करना;

(छ) कारखानों, राज्य-फार्मों तथा सामूहिक फार्मों में कुप्रबन्ध और शिथिलता (laxity) के विरुद्ध आन्दोलन करना;

(ज) आलोचना, आत्म-समालोचना (self-criticism) का विकास करना तथा कमियों में समझौता न करने की भावना से साम्यवादियों को उपदेश देना;

(झ) देश के आर्थिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लेना।

प्रारम्भिक दल संगठनों के नियन्त्रक कार्य का दलीय नियमों द्वारा निम्न रूप से वर्णन किया गया है। "प्रारम्भिक फार्मों, सामूहिक फार्मों, और मशीन ट्रैक्टर-स्टेशनों और इन विभागों में काम की अवस्था के लिए उनका उत्तरदायित्व बढ़ाने के वास्ते इन संगठनों को प्रबन्ध का निरीक्षण करने का अधिकार दिया गया है।"

अखिल-संघ कांग्रेस (All-Union Congress)—प्रारम्भिक दल उपकरणों के ऊपर जिला प्रान्तीय तथा प्रादेशिक सम्मेलन (Convention) होते हैं। प्रत्येक अपने निकटतम पद के लिए प्रतिनिधि चुनता है। सबसे ऊपर सारे रूस के लिए साम्यवादी दल की अखिल-संघ कांग्रेस होती है। नियमों के अनुसार अखिल-संघ कांग्रेस तीन वर्षों में कम-से-कम एक बार मिलती है। किन्तु द्वितीय महासमर के काल में एक साथ दस वर्ष तक कोई बैठक नहीं हुई। १९४८ तक १८ कांग्रेसें हुई। अखिल-संघ कांग्रेस में यूनियन गणराज्यों, स्वशासित गणराज्यों और अन्य प्रदेशों के प्रतिनिधि होते हैं। इसके सम्मेलन मास्को में होते हैं और साम्यवादी दल के सब चोटी के नेता इनमें सम्मिलित होते है। उस समय तक किए गए पार्टी के कार्यों का विवरण और भावी कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया जाता है। अखिल-संघ कांग्रेस दल द्वारा किए गए कार्यों तथा कार्यक्रम की पुष्टि करती है। साधारणतः कांग्रेस का अधिवेशन दो सप्ताह से अधिक नहीं चलता। कांग्रेस दल के कार्यक्रम तथा नियमों में परिवर्तन कर सकती है। केन्द्रीय समिति तथा अन्य केन्द्रीय पार्टी उपकरणों का निर्वाचन करती है। यह नीति की प्रमुख समस्याओं के विषय में कार्य-नीति निश्चित करती है।

टोस्टर के अनुसार, "इसे ऊँची एक-मत पैदा करने वाली संस्था कहो, या दृढ एड-हॉक पार्टी सम्मेलन। समय-समय पर राज्य-व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्त निश्चित करने के लिए इसकी बैठकें बुलाई जाती है। यह राज्य के विकास और उसके अनुसार सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का समर्थन करती है।"

अखिल-संघ पार्टी सम्मेलन (All-Union Party Conference)—अखिल-संघ कांग्रेस के अधिवेशनों के बीच के काल में केन्द्रीय समिति समय-समय पर अखिल-संघ पार्टी कॉन्फ्रेंस को बुलाती है। कभी इसका सम्मेलन एक वर्ष में होता है, कभी २½ वर्ष में। १६३४ में इसको समाप्त कर दिया गया था, किन्तु १६३६ में इसे फिर शुरू किया गया। कॉन्फ्रेंस मे समस्त देश की स्थानीय समितियों के प्रतिनिधि होते है। यह स्थानीय पार्टी संगठनों के अध्यक्षो, उच्च कोटि के कार्यकर्त्ताओं और केन्द्रीय समिति के नेताओं से मिलकर बना हुआ है। कॉन्फ्रेंस तीन-चार दिन तक चलती है। इसके सभी निर्णय केन्द्रीय समिति की पुष्टि के विषय होते है। इसका आरम्भिक कार्य विचारों को फैलाना तथा प्रयत्नों को संगठित करना है। इससे नेताओं को स्थानीय अवस्था, भावना तथा सम्भावनाओं का पता चलता है।

केन्द्रीय समिति (Central Committee)—अखिल-संघ कांग्रेस केन्द्रीय समिति का निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा करती है। नियमों के अनुसार "कांग्रेस के मध्य-काल में केन्द्रीय समिति दल के सारे काम चलाती है। अन्य संस्थाओं, संगठनों तथा दूसरे दलों से सम्बन्ध बनाने मे दल का प्रतिनिधित्व करती है। दल के अनेक संगठन स्थापित करके उनके कार्य का सचालन करती है। अपने नियन्त्रण में काम करने वाले केन्द्रीय अखबारों के सम्पादकमण्डल को नियुक्त करती है तथा बडी स्थानीय संस्थाओं के दलीय अखबारों के सम्पादकों की नियुक्ति को पुष्ट करती है। सार्वजनिक महत्त्व के व्यवसायों को संगठित करके उनका प्रबन्ध करती है। यह दल की शक्तियों और साधनों का बँटवारा और केन्द्रीय कोष की व्यवस्था करती है। केन्द्रीय समिति दल के ग्रुपों के द्वारा केन्द्रीय सोवियत और जन-संगठनों के कार्य का निर्देशन करती है।"

१६१८ में केन्द्रीय समिति में १५ सदस्य तथा ८ शिक्षार्थी थे। इसके पश्चात् संख्या में वृद्धि होने लगी। आजकल इसमें ७१ सदस्य और ६८ शिक्षार्थी या वैकल्पिक सदस्य (alternatives) हैं। केन्द्रीय समिति की वर्ष में तीन-चार से लेकर एक दर्जन तक बैठकें होती है, और वह अखिल-संघ कांग्रेस के निर्णयों को पूरा करती है। अखिल-संघ कांग्रेस प्रतिवर्ष नही मिलती, अतः केन्द्रीय समिति को अपने पर ही निर्भर करना पड़ता है क्योंकि मातृ-संस्था से कोई पथ-प्रदर्शन नहीं मिल सकता।

क्योंकि केन्द्रीय समिति की संख्या अधिक है इसलिए अधिकाश कार्य उप-समितियाँ और दफ्तर करते हैं। केन्द्रीय समिति मे एक अध्यक्ष, एक महा-सचिव (Secretary-General), अनेक सहायक सचिव तथा दो उप-समितियाँ होती हैं। इन में से एक उपसमिति पोलिटब्यूरो है जो कि केन्द्रीय समिति पर छाई रहती है। टोस्टर के अनुसार, "केन्द्रीय समिति (Central Committee) जो कि मौलिक रूप से, छोटा संगठित उपकरण (compact organ) और दल का निर्णायक अंग थी, पूर्णरूप से

निर्णायक होने के स्थान पर अनुसमर्थक अंग बन गई है। वह समय-समय पर महत्त्वपूर्ण निर्णयों की पुष्टि करने के लिए एकत्रित होती है, विशेषकर उस समय इसकी अनुमति का अनिवार्यतः विशेष महत्त्व होता है जब किसी 'प्रोजैक्ट' में सन्देह हो अथवा जोखिम हो या पोलिटब्यूरो आदि के दृष्टिकोणों में एकरूपता का पूर्ण अभाव हो।

पोलिटब्यूरो अथवा प्रेज़ीडियम (Politbureau or Presidium)—१६१६ में कांग्रेस ने पोलिटब्यूरो की स्थापना स्थायी रूप से की। थोड़े ही समय में वह देश और विदेश के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को तय करने लगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वह 'सामूहिक निर्देशक' (Directing Collective) के नाम से विख्यात हुआ है। स्टालिन के अनुसार, "पोलिटब्यूरो प्रभुत्वसम्पन्न है क्योंकि यह पूरी समिति (plenum) के अतिरिक्त उसके प्रत्येक अंग से अधिक ऊँचा है।" तथा "पोलिटब्यूरो केवल राज्य का ही सर्वोच्च उपकरण (organ) नहीं है प्रत्युत् पार्टी का भी महत्त्वपूर्ण उपकरण है। पार्टी राज्य की सर्वोच्च निर्देशक शक्ति है।" एक अन्य लेखक के अनुसार, "पोलिटब्यूरो समाजवादी निर्माण की समस्त शाखाओं की कार्यदिशा का निर्देशन करने वाला उपकरण है।"

पोलिटब्यूरो का एक सभापति होता है जिसकी स्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। स्टालिन दीर्घकाल तक पोलिटब्यूरो का अध्यक्ष रहा। इसकी बैठकें वर्ष में कई बार कई-कई सप्ताह के लिए होती हैं। कभी-कभी इसकी बैठकें इतनी लम्बी होती हैं कि दूसरा दिन निकल आता है। विभिन्न विषयों पर उचित ध्यान देने के लिए पोलिटब्यूरो की अनेक समितियाँ अथवा आयोग होते हैं। पोलिटब्यूरो के सदस्यों को परामर्श देने के लिए अनेक विशेषज्ञों को नियुक्त किया गया है।

यह सत्य है कि पोलिटब्यूरो केन्द्रीय समिति की उपसमिति है, जो कि अखिल यूनियन कांग्रेस के अधीन है। किन्तु इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पोलिटब्यूरो यू० एस० एस० आर० के दलीय ढाँचे में सब से महत्त्वपूर्ण अवयव है। यद्यपि यह विश्वास से नहीं कहा जा सकता कि पोलिटब्यूरो ने क्या-क्या निश्चय किया है, तो भी इसमें कोई शंका नहीं है कि साम्यवादी दल तथा यू० एस० एस० आर० की नीति पोलिटब्यूरो ही निश्चित करता है। समस्त आर्थिक, सामाजिक, आन्तरिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण समस्याएँ उसके सामने निश्चय करने के लिए आती हैं। संघीय सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों को अपने कार्य का विवरण पोलिटब्यूरो को भेजना पड़ता है। एक बार लेनिन ने शिकायत की थी कि समस्त विषय बिना उनके महत्त्व को सोचे हुए पोलिटब्यूरो को भेज दिये जाते हैं। उसका विचार था कि "पोलिटब्यूरो और केन्द्रीय समिति को छोटे-छोटे कार्यों से छुटकारा देना और उत्तरदायी अफसरों के कार्य को बढ़ाना आवश्यक है। लोक-प्रबन्धकों (People's Commissars) को अपने कार्यों के लिए उत्तर देना चाहिए किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए कि पहले वे सोवनारकॅम (Sovnarkom) जाएँ और फिर पोलिट-[illegible] में अपील करें। हम केन्द्रीय समिति (पोलिटब्यूरो) से शिकायत करने के [illegible] का उन्मूलन नहीं कर सकते, क्योंकि हमारी पार्टी एकमात्र सरकारी पार्टी

है। आवश्यकता यही है कि छोटे-छोटे विषयों मे प्रत्येक अपील को छोटा किया जाए; किन्तु इस विषय मे सोवनार्कम के मान को बढाना भी आवश्यक है।"

अक्टूबर १९५२ में उन्नीसवी अखिल-यूनियन काँग्रेस ने पोलिटब्यूरो के स्थान पर प्रेज़ीडियम को नियुक्त किया। प्रेज़ीडियम मे २५ सदस्य और कुछ शिक्षार्थी होते थे। यह पोलिटब्यूरो से तिगुनी बडी थी। इसमे केन्द्रीय समिति के सदस्यो के अतिरिक्त केन्द्रीय योजना आयोग के भी कुछ सदस्य थे। किन्तु वास्तविक शक्ति भीतरी गुट के तीन-चार व्यक्तियों के हाथ मे रही। स्टालिन प्रेज़ीडियम का अध्यक्ष बना।

संगठन-ब्यूरो (Orgbureau)—संगठन-ब्यूरो १९१९ मे सगठित किया गया था और १९५२ में समाप्त कर दिया गया। इसकी सदस्य संख्या में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। यह पाँच और तेरह के मध्य मे रही। इसमे साम्यवादी पार्टी के अत्यधिक प्रभावशाली नेता थे, किन्तु यह पोलिटब्यूरो से कम महत्त्वपूर्ण था। इसके अधिकार-क्षेत्र में दलीय सगठन तथा कार्य-सचालन (organisation and operations) के विषय थे। इसका अधिकाश कार्य नियमित प्रकार का था। पोलिटब्यूरो तथा सगठन-ब्यूरो के कार्यो में अन्तर नही था। समय व्यतीत होने-होते साम्यवादी पार्टी का सचिवालय (Secretariat) सगठन-ब्यूरो का अधिकाश कार्य करने लगा और कोई आश्चर्य नही कि उन्नीसवी अखिल-यूनियन काँग्रेस ने इसको समाप्त कर दिया।

केन्द्रीय कार्यालय (Central Headquarters)—साम्यवादी पार्टी के मास्को के केन्द्रीय कार्यालय का भी वर्णन किया जा सकता है। साम्यवादी दल के महामन्त्री (General Secretary) होने के नाते १९२२ से अपनी मृत्यु के समय तक स्टालिन ने सारा प्रबन्ध किया था। सचिवालय के अनेक भाग (sections) है, और उनमें से प्रत्येक विभाग एक अध्यक्ष के अधीन है। यह देश-विदेश मे सम्बन्धित विषयों की देख-भाल करता है। केन्द्रीय कार्यालय (Headquarters) में राज्य-विभागों के अनुरूप विभाग हैं। वे राज्य-विभागो के कार्य का निरीक्षण तथा मार्ग-दर्शन करते हैं। देश के प्रत्येक भाग में दल की विभिन्न शाखाओं के कार्य का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सचिवालय पर है। राज्य के अधिकाश निर्णय साम्यवादी पार्टी के सचिवालय मे किए जाते हैं।

दल नियन्त्रण आयोग (Commission of Party Control)—अखिल-यूनियन काँग्रेस केवल केन्द्रीय समिति का ही निर्वाचन नहीं करती, प्रत्युत् अंकेक्षण समिति (Auditing Committee) और दल नियन्त्रण आयोग का भी चुनाव करती है। अंकेक्षण समिति (Auditing Committee) में २२ सदस्य होते है और इसका कार्य केन्द्रीय दल-उपकरणों (Central Party Organs) की अर्थ-व्यवस्था का निरीक्षण करना है। दल नियन्त्रण आयोग में ६१ सदस्य होते हैं। इसे दल भावना का सामूहिक निरीक्षक कहते हैं। यह दल का अनुशासक अंग (disciplinary arm) है। यह पार्टी के सदस्यो की सूची रखता है। यह समितियों और उनके अंगों की बैठकों का निरीक्षण करता है और देखता है कि उनके कार्य दलीय नीति (party

lino) के अनुसार किए जाते हैं या नही। इसने दल का शुद्धीकरण (purge) किया है। यह निर्वासन के विषयों[1] में अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। १६३४ से दल नियन्त्रण आयोग को सोवियत-नियन्त्रण-आयोग (Commission of Soviet Control) से मिला दिया गया है, जिसे राज्य नियन्त्रण मन्त्रालय (Ministry of State Control) कहते हैं।

कॉमसोमॉल्स (Komsomols)—कॉमसोमॉल्स पायनियर्स (Pioneers) और ऑक्टोब्रिस्ट्स (Octobrists) सहयोगी अथवा मिले हुए संगठन हैं। कॉमसोमॉल्स पन्द्रह से छब्बीस वर्ष तक के किशोरों (लड़कों और लड़कियों) के लिए है। उनके लाखों सदस्य है। कॉमसोमॉलों का कार्य मार्क्स के सिद्धान्तों का अध्ययन करना तथा दल के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए सदैव रचनात्मक सहयोग देना है। कॉमसोमॉलों का प्राथमिक कर्त्तव्य "युवकों और बच्चों को साम्यवादी विचारों की भावना की शिक्षा देना तथा सोवियत शक्ति के चारों ओर युवकों को संगठित करना है।" कॉमसोमॉल "वह कडी है जो कि दल को जनता से मिलाती है और पार्टी के प्रभाव को युवको मे फैलाती है।" कॉमसोमॉल एक वृहत् प्रशिक्षणालय है जो साम्यवादी दल तथा देश की अन्य सस्थाओं तथा संगठनों को उपयुक्त व्यक्ति देता है। कॉमसोमॉलों के सदस्य फार्मों, कारखानों तथा अन्य संगठनों मे फैले हुए है।

साम्यवादी पार्टी कॉमसोमॉलों का नियन्त्रण करती है और उनसे बहुत-सा कार्य कराती है। कॉमसोमॉलों से आशा की जाती है कि वे देश के युवकों मे शिक्षा का प्रसार करे। वे क्लबों, थियेटरों, यात्राओं तथा उत्सवों का आयोजन और उनका प्रबन्ध करते हैं। वे देश से निरक्षरता को मिटाने में साम्यवादी दल को सहायता करते हैं। युद्ध-काल मे, उनको जनता को युद्ध-कार्य में प्रवृत्त करने के लिए कहा गया था। कॉमसोमॉलों ने रूसी अर्थ-व्यवस्था के लिए लाखो टैक्नीकल विशेषज्ञों को जन्म दिया है तथा उन्होने अनेक पचवर्षीय योजनाओं को कार्यान्वित करने में सहायता दी है। संक्षेप में, दलीय मशीन मे कॉमसोमॉल महत्त्वपूर्ण साधन हैं तथा उन्होंने यू० एस० एस० आर० के समस्त कार्य-व्यवहारो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लिया है।

पायनियर्स और ऑक्टोब्रिस्ट्स (Pioneers and Octobrists)—कॉमसोमॉलों के अतिरिक्त छोटे लड़कों और लड़कियों के दो अन्य संगठन पायनियर्स तथा आक्टोब्रिस्ट्स हैं। पायनियर्स में दस से सोलह वर्ष तक के बच्चे भर्ती किए जाते हैं। उनकी संख्या १,१,३,००,००० है। आठ से ग्यारह वर्ष के बच्चों के लिए आक्टोब्रिस्ट्स हैं।

कोमिन्टर्न और कोमिन्फार्म (Comintern and Cominform)—कोमिन्टर्न

---

१. १६५२ के दलीय नियमों के अनुसार, दलीय केन्द्रीय समिति (क) दल के सदस्य और उम्मीदवारों द्वारा अनुशासन के पालन की जाँच करती है; दलीय कार्यक्रम या नियमों को भंग करने वाले या दलीय नियम और राज्य अनुशासन को भंग करने वाले या दलीय नीति का उल्लंघन करने वाले साम्यवादियों से जवाब-तलब करती है। (ख) दल से निकालने और दलीय कलंक (censures) से सम्बन्ध रखने वाले यूनियन गणराज्यों तथा जनपदीय (territorial) और प्रदेशीय (regional) साम्यवादी दलों की केन्द्रीय समिति के निर्णयों के विरुद्ध अपीलों की जाँच करती है; (ग) गणराज्यों, ... तथा क्षेत्रों में स्थानीय सस्थाओं से स्वतन्त्र अपने प्रतिनिधि रखती है।

१९१९ में बनाई गई थी। इसको तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट संघ (Third International) भी कहा जाता था। कोमिन्टर्न का प्रमुख उद्देश्य विश्व में साम्यवाद का प्रसार करना था। इसका नारा 'विश्व-क्रान्ति' था। इसका लक्ष्य विश्व के देशों से पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना था। कोमिन्टर्न की कार्यवाहियों का विश्व के समस्त देशों ने विरोध किया। रूसी साम्यवादी दल के सदस्यों को कोमिन्टर्न मे महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त थे तथा इसमें कोई आश्चर्य नही कि निश्चित रूप से कोमिन्टर्न की कार्यवाहियाँ रूस के हितों के अनुकूल चलाई जाती थी। रूस ने दूसरे देशों के विरोध की तनिक भी परवाह नहीं की, किन्तु जब द्वितीय महासमर मे रूस जर्मनी से युद्ध में फँस गया तथा संयुक्त राष्ट्रों (United Nations) पर निर्भर हो गया, तब अपने मित्रराष्ट्रों के प्रति सद्भावना प्रकट करने के उद्देश्य से उसने कोमिन्टर्न को भंग कर दिया।

किन्तु, युद्ध मे मित्रराष्ट्रों के जीतने के पश्चात्, रूस ने कोमिन्फॉर्म बनाई। वाह्य रूप से यह केवल साम्यवादी संगठनों का केन्द्रीय ब्यूरो अथवा क्लीयरिंग हाउस (clearing house) है। कोमिन्टर्न के कार्यालय मास्को में थे, किन्तु कोमिन्फॉर्म के कार्यालय पहले यूगोस्लाविया में और फिर रोमानिया में स्थापित किए गए। ए० ए० झडनोव (A.A. Zhadnov) जो पोलिटब्यूरो का सदस्य तथा स्टालिन का निकटतम सहयोगी था, कोमिन्फॉर्म का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था। कोमिन्फॉर्म के लक्ष्य एव कार्यों के विषय में साम्यवादी पार्टी के कथन कुछ भी हों, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कोमिन्फॉर्म विश्व-क्रान्ति कराने का साधन है।

पार्टी की सदस्यता (Membership of Party)—साम्यवादी दल की सदस्यता के विषय में कुछ कहना आवश्यक है। लेनिन का विचार था कि दल की सदस्यता बहुत ही कम लोगों को प्राप्त होनी चाहिए। केवल वही व्यक्ति दल के सदस्य बनाये जाते थे जो अपने आपको पक्का साम्यवादी सिद्ध करते थे तथा पार्टी के लिए प्रत्येक प्रकार का त्याग कर सकने के लिए तैयार थे। प्रवेश की शर्तें इतनी कठोर हैं कि बहुत ही कम व्यक्ति पार्टी के सदस्य बन सकते हैं। कभी-कभी, परीक्षा काल भी निश्चित कर दिया जाता है यह जानने का प्रत्येक सम्भव उपाय किया जाता है कि प्रार्थी किसी स्वार्थ अथवा दूरस्थ उद्देश्य से तो दल का सदस्य नही बन रहा। प्रार्थी पूँजीवादी मनोवृत्ति का भी नहीं होना चाहिए। कुछ श्रेणी के लोग—व्यापारी, पादरी, सट्टेबाज तथा कुलक—पार्टी के सदस्य नही बन सकते। कारखानों और खानों में काम करने वाले प्रार्थी का परीक्षण-काल दुकानदारों, जन-सेवकों (public servants) तथा दूसरे बुद्धिजीवियों के कारण से कम होता है।

यद्यपि साम्यवादी दल का सदस्य बनना बहुत कठिन है तथापि इसमें निकलना बहुत सरल है। सदस्य अपने कर्तव्य-पालन में तनिक-सी ढील करे तो उसे पार्टी से निकाला जा सकता है। पार्टी के निर्णयों के विरोध का फल भी दल-निर्वासन होता है।

सदस्यों के कर्त्तव्य (Duties of Members)—पार्टी के सदस्यों को कुछ कर्त्तव्य पालन करने पड़ते हैं। उनको दीक्षा-शुल्क (initiation fee) तथा अपनी आय

के अनुपात से मासिक चन्दा देना पड़ता है। उनको बिना सकुचाहट के दल की नीति तथा कार्य को स्वीकार करना पड़ता है। उन्हें दलीय अनुशासन का पालन करना पड़ता है तथा दल की आज्ञाओं और आदेशों को मानना पड़ता है, चाहे उनका कुछ ही परिणाम क्यों न हो। उन्हें "देश तथा पार्टी के राजनैतिक जीवन मे भाग लेना" पड़ता है। उन्हें मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद के तत्त्व-दर्शनों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अथक प्रयत्न करना पड़ता है। वह पार्टी के महत्त्व के संगठनात्मक तथा राजनैतिक निर्णयों का भी अध्ययन करता है तथा उन्हे निर्दलीय जनता को समझाने का पर्याप्त प्रयत्न करना पड़ता है। वह श्रमिक तथा राज्य अनुशासन को मानने के लिए आदर्श उपस्थित करता है। वह अपने कार्य की विधियो में भी दक्षता प्राप्त करता है तथा निरन्तर अपने उत्पादन तथा कार्य-क्षमता को ऊँचा उठाता है। उसे व्यापार तथा अन्य लाभ के व्यवसायों को छोड़ना पड़ता है। उसे यह प्रकट करना पड़ता है कि वह लाभ की परवाह नही करता। सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह दूसरो के लिए आदर्श बने और दूसरे उसे आदर्श माने। गुप्तचर सदस्यों के कार्य-व्यापारों का निरीक्षण करते हैं तथा इसमे आश्चर्य नही करना चाहिए कि कई बार उन सदस्यों के विरुद्ध अचानक पग उठाए जाते है जिन पर यह शका हो कि वे दल के विरुद्ध किसी कार्य मे सलग्न थे।

उन्नीसवी दलीय कांग्रेस (अक्तूबर १९५२) मे स्वीकृत दलीय नियमों के अनुसार प्रत्येक दल के सदस्य का कर्त्तव्य (क) दल की एकता की रक्षा करना है; (ख) दल के निर्णयों को पूरा करने के लिए सक्रिय योद्धा होना है; (ग) अपने काम में आदर्श, अपने काम मे पूर्ण कौशल प्राप्त करना, लगातार अपनी काम करने की योग्यता को बढ़ाना और प्रत्येक प्रकार से समाजवादी व्यवस्था के पवित्र और अबाध्य आधार के नाते सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति की सुरक्षा करना और उसे बढ़ाना है; (घ) जनता से सम्पर्क बढ़ाना है, मजदूर जनता की इच्छाओं और आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना है और यह याद रखते हुए असाम्यवादी जनता को दलीय नीति के अर्थ और निर्णयों को समझाना है कि हमारे दल की शक्ति और अजेयता (invincibility) जनता के साथ निकटतम और अविभाज्य सम्बन्धों मे है; (च) अपनी राजनीतिक चेतना को बढ़ाने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है; (छ) सभी सदस्यों के लिए समान रूप से दलीय एव राज्य अनुशासन का पालन करना आवश्यक है; (ज) नीचे से आत्म-आलोचन (self-criticism) तथा समालोचना का विकास करना, काम मे अयोग्यताओं का पता लगाना और काम मे आडम्बरमय आत्म-सन्तोष के विरुद्ध सघर्ष करना है; (झ) सम्बद्ध व्यक्तियों की परवाह किए बिना काम के दोषों के बारे में प्रमुख दलीय संस्थाओं, दलीय केन्द्रीय समिति को रिपोर्ट देना है; (ञ) दल के प्रति सदा सत्यवादी और ईमानदार रहना है और कभी सत्य का न बिगाड़ना या न छिपाना है; (ट) यह याद रखते हुए कि साम्यवादी के लिए प्रत्येक स्थान और समस्त परिस्थितियों में सावधानी आवश्यक है, दलीय एव राज्य-भेदों को गुप्त रखना है और राजनीतिक सावधानी का प्रदर्शन करना है; (ठ) के द्वारा किसी भी पद पर नियुक्त किए जाने पर उसे आवश्यक रूप से दल की

आज्ञाओं का पालन करना है जो कि उनके राजनीतिक और काम करने की योग्यताओं के आधार पर कार्यकर्ताओं के उचित चुनाव के बारे में दी जाएँ। इन निर्देशों का उल्लंघन करना, काम करने वालों की मित्रता, व्यक्तिगत सम्बन्ध, स्थानीय बन्धन या रिश्तेदारी के आधार पर चुनाव करना दल की सदस्यता से मेल नहीं खाता।"

साम्यवादी दल के सदस्यों के अनेक विशेषाधिकार भी हैं। वे देश के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होते हैं। समाज में उनकी स्थिति (status) बहुत ऊँची होती है। उनको जनता का नेता समझा जाता है।

अक्तूबर १९५२ से पूर्व साम्यवादी दल के नाम के साथ 'बोल्शेविक' शब्द भी जुड़ा हुआ था। अक्तूबर १९५२ में उक्त शब्द को छोड़ने का निश्चय किया गया। केवल ऐतिहासिक कारणों से उक्त नाम को रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

साम्यवादी दल की सदस्यता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। अक्तूबर १९१७ में सदस्य संख्या २,४०,००० थी; अक्तूबर १९५२ में यह ६८,८२,१४५ हो गई।

साम्यवादी दल सरकार, सेना, उद्योग, पुलिस, ट्रेड-यूनियनों, सहकारी समितियों, युवक संगठन आदि के पीछे वास्तविक शक्ति है। रूसी सरकार और साम्यवादी दल में अन्तर करना कठिन है। सरकार के उच्च पदाधिकारी (high officials) दल के भी उच्च पदाधिकारी हैं। यह भी स्मरण रहे कि इजवेस्तिया सोवियत सरकार का सरकारी अखबार है और प्रावदा साम्यवादी दल का अखबार है।

Suggested Readings

Fainsholđ, M. : How Russia is Ruled ?
Leites, N. : The Operational Code of the Politbureau, 1951.
Scott, D.J.R. : Russian Political Institutions.
Strong, A. L. : The New Soviet Constitution.

अध्याय २६

सोवियतें

(The Soviets)

उनका महत्त्व (Their Importance)— स्टालिन के अनुसार, "अपने सोवियत देश में हम एक ऐसी सरकारी व्यवस्था का विकास करना चाहते हैं जो हमे समस्त परिवर्तनों का पहले से अनुमान करने तथा कृषकों, राष्ट्रिकों, गैर-रूसी जातियों (Non Russian Nations) तथा रूसियों के विषय में पूर्वज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य प्रदान करे। सर्वोच्च उपकरणों की प्रणाली (System of Supreme Organ) मे अनेक ऐसे पैमाने होने चाहिएँ जिनसे प्रत्येक परिवर्तन का पहले अनुमान हो जाये और जो समस्त सम्भावित तूफानों और विपत्तियों को बतायें तथा चेतावनी दें। यही सोवियत शासन-पद्धति है।" पुनः स्टालिन के शब्दों में, सोवियतें "श्रमजीवियों की तानाशाही राज्य की आकृति मे है।" वैधानिक रूप में, सोवियतों को यू० एस० एस० आर० की राजनैतिक नीव कहा गया है। और उन्होने अपना नाम सोवियत शासन-पद्धति को प्रारम्भ से ही दिया हुआ है। विभिन्न गणराज्य सोवियत गणराज्य कहलाते हैं और उनकी यूनियन सोवियत यूनियन के नाम से पुकारी जाती है। सरकार की सम्पूर्ण संरचना सोवियतो का सोपान तन्त्र (hierarchy) है।

रूस के संविधान की धारा ६४ के अनुसार प्रत्येक ग्राम, जिले, प्रदेश, स्वशासित गणराज्य, यूनियन गणराज्य तथा यू० एस० एस० आर० मे सोवियत का होना अनिवार्य है। सोवियतें राज्य प्राधिकार (state authority) के उपकरण है तथा सरकार का कार्य उनके द्वारा किया जाता है।

सोवियत क्या है ? (What is a Soviet ?)—सोवियत किसी कारखाने के मजदूरों, सेना की टुकड़ी (regiment) के सैनिकों अथवा ग्राम के कृषकों के निर्वाचित प्रतिनिधियों की परिषद् है। सोवियत केवल मजदूरों, किसानों तथा सैनिकों आदि का प्रतिनिधित्व करती है; पूँजीपतियों, जमीदारों और व्यापारियों आदि का नही। सोवियतों को दोहरा कार्य करना पड़ता है। वे केवल ऐसी एजेन्सी नही हैं जिनके द्वारा परिश्रम करने वाले जन-समूह को देश के प्रशासन मे भाग दिया जाता है, किन्तु वे ऐसे उपकरण भी है जिनके द्वारा साम्यवादी दल के आदर्श, कार्यक्रम तथा आज्ञाओं का पालन किया जाता है।

ऐतिहासिक—'सोवियत' परिषद् के लिए रूसी नाम है। सोवियतों के आदर्श का उद्गम (origin) उन्नीसवी सदी के इंगलैंड में पाया जा सकता है जबकि रॉबर्ट ओवन (Robert Owen) के एक अनुयायी ने एक योजना रखी जिसमें हाऊस ऑफ कॉमन्स को हटाकर सरकार को विभिन्न ट्रेड यूनियनों का प्रतिनिधित्व करने वाली परिषदों के आधार पर संगठित करने का प्रस्ताव किया गया था।

निरंकुश जारशाही का विरोध करने के लिए १६०५ मे रूस में सोवियतें प्रकट

हुई। वे मजदूरों और सैनिकों का प्रतिनिधित्व करती थी। वे सैनिक प्रवृत्ति की थी और उन्होंने जार को १६०५ की अक्टूबर घोषणा जारी (issue) करने के लिए बाध्य किया था। ज्यों ही जार को अवसर हाथ लगा उसने सोवियतों को कुचल दिया और उनके विषय में १६१७ तक कुछ नहीं सुना गया। उन्होंने जारशाही का सिंहासन उलटने के पश्चात् अस्थायी सरकार (Provisional Government) के प्राधिकर को चुनौती दी। जब अक्टूबर १६१७ में मजदूर जनता ने सत्ता हस्तगत की तब लेनिन का सोवियतों के हाथों में शक्ति देने का नारा मूर्त्त रूप में सामने आया। सोवियतें राज्य-शक्ति का उपकरण बन गईं। १६१८ के संविधान ने सोवियतों को प्रत्येक क्षेत्र में सरकार का मौलिक उपकरण (basic organ) बनाया। चार स्तरों पर चुनाव होता था। निर्वाचक अपने ग्राम तथा नगर की सोवियतें चुनते थे। ग्राम तथा नगर की सोवियतों के प्रतिनिधि अपने कार्यकारी अङ्ग (executive organ) तथा जिला कांग्रेस के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते थे। जिला कांग्रेसें अपनी कार्यकारी अङ्ग तथा प्रादेशिक या जनपदी कांग्रेस के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती थीं। जनपदीय तथा प्रादेशिक कांग्रेसें अपने कार्यकारी अङ्ग को चुनती थीं और अपने गण-राज्य तथा अखिल-यूनियन कांग्रेस के सदस्यों का निर्वाचन करती थी। यह व्यवस्था स्टालिन संविधान लागू होने तक प्रचलित रही।

सोवियत कड़ियां (Soviet Links)—नये संविधान के अन्तर्गत स्थानीय सोवियत उपकरण के ढांचे में छः मूलभूत कड़ियाँ हैं। वे जनपद प्रदेश, स्वशासित प्रदेश, जिला क्षेत्र, नगर तथा ग्रामीण की सोवियतें हैं। अब सोवियतों की कांग्रेस नहीं है। उनका स्थान श्रमजीवियों के प्रतिनिधियों की सोवियतों ने ले लिया है जिनका निर्वाचन प्रत्यक्ष मतदान द्वारा गुप्त मतदान विधि से किया जाता है। उनका काल दो वर्ष का होता है। सब चुनाव जनपदीय आधार पर किए जाते हैं तथा नगरों और ग्रामों की सोवियतों में कोई अन्तर नहीं किया जाता। प्रत्येक निर्वाचक-क्षेत्र केवल एक प्रति-निधि यू० एस० एस० आर० की सुप्रीम सोवियत में भेजता है।

यह कहा जाता है कि सारे रूस में ७०,००० सोवियतें हैं और वे अनेक कार्य करती हैं। वैब के अनुसार, "सोवियत सरकार को इससे सन्तोष नहीं है कि ग्राम सोवियतें केवल ग्राम अथवा स्थानीय प्रश्नों को हल करें, बल्कि नये निर्णय के अनुसार यह आवश्यक है कि प्रत्येक सोवियत प्रदेश गणराज्य और यू० एस० एस० आर० के महत्त्व के प्रश्नों पर विचार करे। साधारण रूप से यह कहा गया है कि अपनी क्षेत्रीय सीमा के अन्दर ग्राम सोवियत को सरकारी आदेशों तथा कानूनों का नागरिकों तथा अधिकारियों से पालन कराने का अधिकार है। ग्राम सोवियतें केन्द्रीय सरकार के कार्यों अथवा समय-समय पर निश्चित की गई नीति में हस्तक्षेप करने वालों को रोकती है। ग्राम सोवियत अपने अधिकार-क्षेत्र में रहते हुए ही बन्धनकारी अध्यादेश जारी कर सकती है, तथा प्रशासकीय दण्ड अथवा जुर्माने कर सकती है। यह सम्पत्ति, नौकरी की शर्तों तथा अन्य छोटे अपराधों पर क्षेत्राधिकार रखने वाले ग्राम न्यायालय स्थापित कर सकती है। ग्राम सोवियत समस्त कर्त्तव्यों, कानूनों तथा नियमों का पालन कराने के लिए आदेश दे सकती है, निरीक्षण, अंकेक्षण (audit) अथवा आग्रह

कर सकती है। इसके अतिरिक्त ग्राम सोवियतों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे क्षेत्र के समस्त उत्पादक तथा व्यवसायी विभागों के कार्य का निरीक्षण करें। ग्राम में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसके लिए ग्राम सोवियत संगठन, नियम की व्यवस्था न कर सके अथवा सार्वजनिक कोष से सड़कों, जल-वितरण, क्लबों, नृत्य-स्थानों, विद्यालयों, थियेटरों और औषधालयों की व्यवस्था न कर सके। (Soviet Communism, p. 21)

नगरों की सोवियतें ग्रामों की सोवियतों से बड़ी होती है। उनमें स्थायी समितियों की भी व्यवस्था रहती है जैसे जन-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अर्थ आदि की समितियाँ। रूस मे लगभग दस हजार नगर सोवियते हैं।

रूस का संविधान व्यवस्था करता है कि सोवियतें यू० एस० एस० आर० अथवा यूनियन गणराज्य के कानूनों द्वारा प्राप्त शक्ति के अन्तर्गत निर्णय करती हैं और आदेश देती है। वे अपने अधीन प्रशासकीय अङ्गों के कार्यो का निर्देशन करती हैं, राज्य-व्यवस्था को ठीक रखती हैं, कानूनों का पालन और नागरिकों के अधिकारों का रक्षण भी उनका ही कार्य हैं। वे स्थानीय आर्थिक तथा सांस्कृतिक निर्माण-कार्यों का निर्देशन करती है तथा स्थानीय बजट को स्थापित करती है। सोवियतें कार्यकारी समितियों को चुनती हैं जिनमे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव तथा कई सदस्य होते हैं। कार्यकारी समितियो के कर्त्तव्य-पालन करने वाले विभाग वित्त (finances), व्यापार, जन-शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, आयोजना आयोग आदि हैं।

टौस्टर सोवियतों की निम्नलिखित विशेषताओं का वर्णन करता है—

१ बड़े पैमाने पर जनता उनमे दिलचस्पी लेती है।
२. अन्तर्राष्ट्रीय गुण।
३. श्रमजीवी जन-समूह के नेतृत्व को सुविधा देने वाला ढाँचा।
४. एक ही राज्य उपकरण मे विधायी तथा कार्यकारी कर्त्तव्यों को संयुक्त करना।
५ सोवियत के प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार।
६ अत्याचार के साधन के स्थान पर मुक्ति का साधन होना।
७. जन-संगठनों को निरन्तर बिना शर्त के राज्य-प्रशासन मे भाग लेने के लिए खींचने वाली सामर्थ्य।

सोवियतों के जन-स्वरूप के विषय में स्टालिन ने कहा था—"हमारे राज-यन्त्र की शक्ति कहाँ है? वास्तव मे सोवियतों के द्वारा सरकार का लाखों किसान तथा मजदूर लोगो से सम्पर्क होता है। वास्तव में सोवियतें लाखों लोगों के लिए राज्य-शिक्षा के स्कूल हैं। उनके होने से राज्य-यन्त्र लाखों व्यक्तियों से पृथक् नहीं हो पाता बल्कि जन-संगठनों, सब प्रकार के आयोगों, विभागों, परामर्शों, प्रतिनिधि-सम्मेलनों आदि के द्वारा उनसे एकरूप हो जाता है, और इस प्रकार वह सरकार के उपकरणों (organs) को सहारा देता है।"

सोवियतें और पार्टी (Soviets and Party)—जहाँ तक सोवियतों और साम्यवादी दल के सम्बन्धों का प्रश्न है, समय-समय पर प्रकट किए गये विचारों का जिक्र करना अनुचित नहीं होगा। १९१९ की आठवीं दलीय काँग्रेस का एक प्रस्ताव

इस प्रकार है—"साम्यवादी दल अपना कार्य परिश्रमियों (toilers) के सारे सगठनों—ट्रेड यूनियनों, सहकारी समिति, ग्राम सभा—पर अपना निर्णयात्मक प्रभाव डालना तथा उन्हें अपने पूर्ण निर्देशन में लाना बताता है। साम्यवादी दल राज्य के सब समकालीन संगठनों—सोवियतो—पर पूरी तरह छाकर अपना कार्यक्रम विशेष रूप से पूरा करना चाहता है। सोवियतों मे व्यावहारिक, दैनिक, आत्मत्याग के कार्य करके, अपने अत्यधिक विश्वस्त कार्यकर्त्ताओं को इसमे लगा कर रूस की साम्यवादी पार्टी को अपना पूर्ण प्रभाव उत्पन्न करना चाहिए तथा उनके कार्यो का पूरी तरह नियन्त्रण करना चाहिए।

"किन्तु, पार्टी के कार्यो और राज्य उपकरणो—सोवियतो के कार्यो मे किसी भी प्रकार से भ्रम नही होना चाहिए। ऐसी भ्रान्तियो से घातक परिणाम हो सकते हैं, विशेषकर सैनिक विषयों मे। पार्टी अपने निर्णय सोवियतो से पूरा कराए, किन्तु, सविधान की सीमा मे रहकर। पार्टी सोवियतो के कार्यो का मार्ग-दर्शन करे, न कि उनको हटाकर अपना अधिकार जमा बैठे।" १६२२ की पार्टी कॉंग्रेस के एक प्रस्ताव में कहा गया था—"समस्त राज्य की राजनीति के निर्देशन तथा मार्ग-दर्शन का कार्य अपने लिये रखते हुए पार्टी अपने तथा सोवियतो के दैनिक कार्य अपने यन्त्र (apparatus) और सोवियतो के मध्य निश्चित रेखा खीचे। इस प्रकार के सुव्यवस्थित बँटवारे के द्वारा सोवियतें आर्थिक प्रश्नों का अध्ययन गहराई से कर सकेगी, प्रत्येक अफसर को दिए गए कार्य के प्रति उसके दायित्वों को बढा सकेगी तथा दूसरी ओर पार्टी अपना ध्यान अपने वास्तविक कार्य—राज्य उपकरणो का मार्ग-दर्शन करने की ओर लगा सकेगी।" स्टालिन के १६२६ के विचारो के अनुसार, "पार्टी सोवियतों और उनकी स्थानीय तथा राष्ट्रीय शाखाओ का नेतृत्व करती है, लेकिन यह उनका स्थान नही ले सकती, और लेना चाहिए भी नही।" १६२६ और १६३० के पश्चात् सरकार तथा पार्टी का एकीकरण बढ गया। १६४१ में स्टालिन लोक प्रबन्धक परिषद् (Council of Peoples' Commissars) का अध्यक्ष हो गया और इस प्रकार उसमे सरकार तथा दल की अध्यक्षता (headship) सम्मिलित हो गई।

Suggested Readings

Batsell, W. R. : Soviet Rule in Russia.
Gibberd : Soviet Russia.
Mikhailov, N. : Land of the Soviets.
Rostow and Levin : The Dynamics of Soviet Society, 1951.
Williams, A. R. : The Soviets.

अध्याय ३०

कनाडा का संविधान

(The Constitution of Canada)

लार्ड ब्राइस (Bryce) का कहना है कि कनाडा की लोकप्रिय सरकार के अध्ययन में विशेष रुचि इस कारण है कि यद्यपि देश की आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ साधारणतया अमेरिका के समान हैं तथापि उसकी राजनीतिक संस्थाएँ अंग्रेजी नमूने पर बनाई गई हैं, और राजनीतिक आदतें, परम्पराएँ और प्रथाएँ अंग्रेजी जैसी हैं। कनाडा का वर्तमान संविधान ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम, १८६७ में विद्यमान है। इस अधिनियम का संशोधन १९१५ में हुआ। यह ठीक है कि कनाडा के संविधान का आधार १८६७ का अधिनियम है, किन्तु समय के साथ-साथ शासन-प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन होते रहे हैं। १८६७ में कनाडा इंगलैण्ड का एक उपनिवेश था किन्तु इस समय वह सब प्रकार से स्वतन्त्र है। केवल एक ही कमी है और वह यह कि कनाडा के लोग इंगलैंड की सम्राज्ञी (Queen) को अपनी सम्राज्ञी मानते हैं। १९२६ में बैलफोर ने कनाडा आदि डोमीनियनों (Dominions) की स्थिति के सम्बन्ध में घोषणा की। १९३१ के अधिनियम ने उसी घोषणा को कानून का रूप दे डाला।

संविधान की विशेषताएँ

(Characteristics of the Constitution)

(१) कनाडा के संविधान की अनेक विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि कनाडा के संविधान के निर्माताओं ने इंगलैंड और अमेरिका की शासन-प्रणालियों से बहुत कुछ ग्रहण किया। जिन संस्थाओं को उन्होंने ठीक समझा उनको अपना लिया। इस प्रकार उत्तरदायी सरकार इंगलैंड से नकल की, और अमरीका की शासन-प्रणाली को न अपनाया। इंगलैंड की एकात्मक प्रणाली (Unitary System) के स्थान पर उन्होंने अमेरिका की संघीय प्रणाली को अपनाया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि देश की समस्याओं का वही एक मात्र समाधान था। कनाडा के संविधान के निर्माताओं ने राजनीतिक संस्थाओं के नाम तक नकल करने में कोई संकोच न किया। अमेरिका से 'सैनेट' का शब्द नकल किया गया और इंगलैंड से 'पार्लियामेंट' और 'हाउस ऑफ कामन्स' के शब्द लिए गए।

(२) इंगलैंड का संविधान लिखित संविधान नहीं है किन्तु इसके विपरीत कनाडा का संविधान लिखित संविधान है। कनाडा का लिखित संविधान उन अधिनियमों में है, जो कि १८६७ से १९१५ तक पास किए गए। कुछ अंशों में कनाडा का संविधान वहाँ के न्यायाधीशों के निर्णयों में भी है। प्रत्येक प्रान्त का अपना विधान है और प्रत्येक प्रान्त की शासन-प्रणाली उसके अनुसार चलती है। अंग्रेजी

का कॉमन लॉ (Common Law) ऑनटेरियो में लागू है और फ्रांस का कॉमन लॉ क्यूबिक में प्रचलित है। सम्राज्ञी के अधिकार अंग्रेजों के कॉमन लॉ से लिए गए है। अदालतों के फैसलों ने किसी सीमा तक कनाडा के संविधान को बदलने मे सहायता दी है।

यद्यपि कनाडा का संविधान लिखित संविधान है तथापि इसमें भी कुछ ऐसे अंश हैं जो लिखित रूप में नहीं है। प्रो० डॉसन (Dawson) के मतानुसार, निम्न-लिखित बातें अलिखित रूप में कनाडा के संविधान में हैं :—

(क) आजकल गवर्नर-जनरल अपने निर्णय अथवा उत्तरदायित्व के अनुसार कार्य नही करता। वह साधारणतया अपनी परिषद् के परामर्श के अनुसार चलता है। वह परिषद् ब्रिटिश नार्थ अमरीका अधिनियम, १८६७ में वर्णित परिषद् नहीं है, किन्तु उस परिषद् का उसके नाम पर काम करने वाला केवल एक भाग है। उस परिषद् का चुनाव प्रधान मन्त्री स्वयं करता है।

(ख) कनाडा के प्रधान मन्त्री का लिखित संविधान में कही भी उल्लेख नही। वास्तव में उसका नाम आकस्मिक रूप से एक या दो कानूनों में आ गया है। प्रधान मन्त्री और उसकी कैबिनेट को लोकसभा का विश्वासपात्र होना चाहिए। प्रधान मन्त्री सहित कैबिनेट के सभी सदस्यों को सैनेट अथवा लोकसभा का सदस्य होना चाहिए।

(ग) कैबिनेट देर तक इसलिए रहती है क्योंकि उसको सदा अपने राजनीतिक दल से सहायता मिलती है। अधिकतर कैबिनेट के सदस्य सरकार के विभिन्न विभागों के इंचार्ज होते हैं। ऐसी प्रणाली न केवल केन्द्र मे वल्कि प्रान्तों में भी है।

(३) कनाडा का संघीय संविधान है। कनाडा की संघीय प्रणाली की कई विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि कनाडा की पार्लियामेंट ने अपनी शक्तियाँ न तो ब्रिटिश पार्लियामेंट से ली हैं और न ही अपने प्रान्तों से। अपने क्षेत्र में कनाडा की पार्लियामेंट सर्व प्रकार से शक्तिशाली है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रान्तों की विधान सभाओं ने अपनी शक्तियाँ तथा अधिकार ब्रिटिश पार्लियामेंट से नहीं लिए। तीसरी विशेषता यह है कि प्रान्तों की विधान सभाओं ने अपनी शक्तियाँ अपनी केन्द्रीय पार्लियामेंट से भी नहीं ली है। एक अन्य विशेषता यह है कि प्रान्तीय सरकारें सर्व प्रकार से स्वाधीन हैं। इस सभी बातों का परिणाम यह है कि केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने नियत क्षेत्रों मे स्वाधीन हैं।

कनाडा के संविधान मे विधायी शक्तियों को चार भागो में विभक्त किया गया है। प्रथम विभाग में वे विषय हैं, जो कि पूर्णतया डोमीनियन पालिमामेंट को दिए गए हैं। दूसरे विभाग में वे विषय हैं जो पूर्णतया प्रान्तीय विधान मण्डल को प्राप्त है। तीसरी सूची उन विषयों की है, जिनके सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों की सरकारें समान रूप से कानून बना सकती हैं। चौथे विभाग में शिक्षा का विषय है। कैनेडी (Kennedy) के अनुसार, संघीय अवशिष्ट शक्ति (Residuary Power) से कम कर दी गई है और संघीय शक्ति का प्रयोग केवल कनाडा के हित के लिए ही हो सकता है। केन्द्रीय पालियामेंट

उन्हीं विषयों पर कानून पास कर सकती है जो कि धारा ९१ में हैं। इनके अतिरिक्त
जो विषय किसी प्रदेश से सम्बन्ध रखते हैं उनके सम्बन्ध मे केन्द्रीय पालियामेंट
कानून नहीं पास कर सकती। जो विषय सम्पूर्ण देश से सम्बन्ध न रखकर किसी
प्रदेश विशेष से सम्बन्ध रखता है उसके सम्बन्ध में कोई भी कानून केन्द्रीय पालिया-
मेट नही पास कर सकती। केन्द्रीय पार्लियामेंट उसी विषय के सम्बन्ध मे कानून
पास कर सकती है जो कि किसी प्रान्त से सम्बन्ध न रखता हो। यह सम्भव है
कि जो विषय आज किसी प्रदेश से सम्बन्धित है वही विषय कुछ समय के उपरान्त
इतना महत्त्वपूर्ण बन जाए कि उसका प्रभाव सम्पूर्ण देश पर पड़े। ऐसी अवस्था में
केन्द्रीय पार्लियामेट को उसके सम्बन्ध में कानून पास करने का अधिकार हो जाता है।

कनाडा की केन्द्रीय सरकार प्रान्तों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है।
इसका एक कारण यह है कि केन्द्रीय सरकार के अधीन अत्यधिक और महत्त्वपूर्ण
विषय रखे गये है। १८६७ से पूर्वी कनाडा में एकात्मक सरकार (Unitray
Government) थी। उसको बदलकर संघीय शासन प्रणाली स्थापित की गई।
इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार ने थोड़ी सी शक्तियां प्रान्तों को
दे दीं और शेष सभी शक्तियो को अपने ही पास रखा। इस प्रकार बहुत सी
शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के पास रह गई और परिणामतः प्रांतीय सरकारें कमजोर
हो गई। केन्द्रीय सरकार के सशक्त होने का एक अन्य कारण यह है कि केन्द्रीय
सरकार प्रांतों के उपराज्यपालों (Lieutenant Governors) को मनोनीत करती है।
चूंकि उपराज्यपाल केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं इसलिए
केन्द्रीय सरकार प्रान्तों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेती है। एक अन्य
कारण यह है कि अमेरिका में सैनेट के सदस्यों को प्रत्येक राज्य की जनता
निर्वाचित करती है और इसी कारण लोगों का उन पर प्रभाव रहता है। परन्तु
कनाडा के सैनेट के सदस्यों को केन्द्रीय सरकार आयु पर्यन्त के लिए मनोनीत
कराती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रान्तों के लोगों का सैनेट के सदस्यो
पर कोई अधिकार नही रह जाता। ऐसी व्यवस्था केन्द्रीय सरकार को सशक्त
और प्रान्तों को निर्बल बनाती है। एक और कारण यह है कि कनाडा के न्याय-
मन्त्री (Minister of Justice) को यह अधिकार दिया गया है कि वह प्रान्तों
द्वारा पास किए गए अधिनियमों को रद्द कर सकता है। यह शक्ति भी केन्द्रीय
सरकार को प्रान्तीय शासन कार्य में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान करती है।
कुछ लोग ऐसे हैं जो यह चाहते हैं कि केन्द्रीय सरकार की इस शक्ति पर कोई
प्रतिबन्ध लगाया जाय ताकि केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार के कार्य में हस्तक्षेप
न कर सके किन्तु अभी तक ऐसा नही हो सका।

(४) कनाडा में सविधान संशोधन की विधि अमेरिका की अपेक्षा सरल
है। संविधान में संशोधन ब्रिटिश पालियामेण्ट तब करती है जब उसे डोमीनियन
पार्लियामेंण्ट और बहुसंख्यक प्रान्तीय विधानमण्डल स्वीकार कर लेते है। ब्रिटिश
सरकार ने किसी भी सशोधन को अस्वीकार नहीं किया यदि उसका समर्थन डोमीनियन
पार्लियामेंण्ट और बहुसंख्यक प्रान्तीय विधानमण्डलो ने किया हो। यह ध्यान रखने

योग्य यह है कि अमेरिका और अन्य डोमिनियनों के विपरीत [illegible] को अपने संविधान का संशोधन नहीं कर सकती। इसका एक कारण यह है कि कनाडा के प्रान्तीय अल्पसंख्यक संविधान के संशोधन की इस विधि में ही अपना हित तथा रक्षण अनुभव करते हैं।

(५) कनाडा के संविधान की एक विशेषता यह भी है कि यह प्रजातन्त्रात्मक है। यहाँ की सरकार पर जनता का नियन्त्रण है। यह जनता की इच्छा पर टिकी है और सदा उसके हितों का ध्यान करती है। इसका उद्देश्य लोगों को [illegible] और अधिक अच्छे जीवन की व्यवस्था करने के लिये है। यह उनकी सरकार है और उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसे बनाया गया है। इसकी एक अन्य विशेषता यह है कि यह जनता के बहुत बड़े भाग के प्रतिनिधित्व पर आधारित है। केवल कनाडा में कुछ न्यायालयों ने ऐसी व्यवस्था है कि [illegible] पर अधिकारों की स्वीकृति बिना [illegible] जनता के द्वारा [illegible] की जा सकती है। कनाडा की हाउस ऑफ कामन्स (House of Commons), प्रान्तीय विधानमण्डल और म्युनिसिपल कौंसिलें जनता के नाम पर और उसके स्थान पर कार्य करने के लिए जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों से मिलकर बनती हैं।

(६) कनाडा के संविधान की एक और विशेषता यह है कि यहाँ रूल ऑफ ला (Rule of Law) के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त को इंगलैंड से कनाडा आने वाले वे लोग थे जिन्होंने आरम्भ से लाकर कनाडा में अपने उपनिवेश स्थापित किए। रूल ऑफ लॉ के सिद्धान्त का यह अर्थ है कि सारा शासन कानून के अनुसार है, उसके विरुद्ध नहीं। किसी व्यक्ति को तब तक कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता जब तक यह बात सिद्ध न कर दी जाये कि उसने देश के किसी कानून को भंग किया है। इस सिद्धान्त से लोगों को सरकारी कर्मचारियों के स्वेच्छाचारी कार्यों से बचाया जा सकता है।

(७) संविधान की एक और विशेषता न्यायपालिका की स्वतन्त्रता है। कनाडा के न्यायाधीशों को विशेष रक्षण प्रदान किए गए हैं जोकि साधारणतया देश में अन्य सरकारी कर्मचारियों को प्राप्त नहीं हैं। कनाडा के न्यायाधीश अपने कार्य को बिना किसी रोक-टोक के तब तक कर सकते हैं जब तक उनका आचरण ठीक रहता है। केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय न्यायालयों के किसी न्यायाधीश को हटाने का उचित कारण केवल कलंक-जनक आचरण ही हो सकता है। कनाडा में न्यायाधीशों की बहुत बड़ी संख्या को रिटायर होने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। किसी न्यायाधीश के वेतन को तभी रोका जा सकता और [illegible] पेंशन भी अस्वीकार की जा सकती है जब यह सिद्ध हो जाये कि [illegible] अथवा दुर्बलता के कारण अपने न्याय-सम्बन्धी कार्य को निभाने में [illegible] एक बार नियुक्त हुए न्यायाधीश को हटाना कठिन है। केन्द्रीय सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा

जा सकना है जब सैनेट और लोक सभा एकत्र रूप से उसे हटाने की प्रार्थना करें। यह विधि बहुत ही कठिन है। अतः न्यायाधीश स्वाधीन हैं।

(८) कनाडा के संविधान की एक और विशेषता यह है कि कनाडा स्वतन्त्र सार्वभौम राज्य है जो राष्ट्र मण्डल में समान स्थिति के देशों से सम्बद्ध है। कनाडा ने अपनी वर्तमान स्थिति धीरे-धीरे प्राप्त की है। उसका अपने आन्तरिक और विदेशी मामलों पर व्यवहारतः पूर्ण नियन्त्रण है। पहले कनाडा से इंगलैंड में स्थित प्रिवी कौंसिल को अपीलें जाती थीं, किन्तु अब वह प्रथा बन्द कर दी गई है। यह ठीक है कि कनाडा राष्ट्रमण्डल की सदस्यता को जब चाहे छोड़ सकता है, किन्तु ऐसा लगता है कि वह ऐसा नहीं करेगा क्योंकि राष्ट्रमण्डल की सदस्यता उसके अपने हित में है।

तुलनाएँ (Comparisons)—कनाडा के संविधान की तुलना अमेरिका और भारत के संविधानों से की जा सकती है। कनाडा के संविधान का संशोधन ब्रिटिश पालियामेंट कर सकती है। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी हो सकता है जब कि कांग्रेस का बहुमत तीन-चौथाई राज्य विधान मण्डल उसका समर्थन करें। भारत में कुछ भाग का संशोधन पालियामेंट राज्य विधानमण्डलों की स्वीकृति के बिना कर सकती है, किन्तु कुछ मामलों में उनकी स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य है।

भारत और कनाडा दोनों देशों में संघीय सरकार को सोच-समझ कर सशक्त बनाया गया है। अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) संघीय सरकार को दी गई हैं और प्रमुख विषय भी केन्द्रीय सरकार को दिये गए हैं। अमेरिका में आरम्भ में राज्य बहुत शक्तिशाली थे, परन्तु अमेरिका में यह यत्न किया जा रहा है कि संघीय सरकार को शक्तिशाली बनाया जाये ताकि अमेरिका अन्य देशों का मुकाबला कर सके। भारतीय संविधान में समवर्ती शक्तियों (Concurrent Powers) की व्यवस्था है। किन्तु अमेरिका और कनाडा के संविधानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं। समवर्ती शक्तियाँ वे हैं जिनके सम्बन्ध में कानून केन्द्रीय पालियामेण्ट और प्रान्तीय विधान सभाएँ पास कर सकती हैं।

भारत और अमेरिका में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई है। उसका निर्णय अन्तिम निर्णय होता है। उस से ऊपर अन्य कोई संस्था नहीं जो सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध अपील सुन सके। इसके विपरीत १९४९ तक कनाडा में इंगलैंड स्थित प्रिवी कौंसिल अपीलें सुन सकती थी, किन्तु अब वैसी व्यवस्था नहीं रही।

अमेरिका में सभी राज्यों को चाहे वे बड़े हों या छोटे, सैनेट में समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। प्रत्येक राज्य सैनेट के दो सदस्य चुनता है। कनाडा और भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं। भारत में कुछ राज्य राज्यसभा में अधिक प्रतिनिधि भेजते हैं और कुछ बहुत कम। इसी प्रकार कनाडा में भी कुछ प्रान्त सैनेट में चौबीस प्रतिनिधि भेजते हैं और कुछ ६ अथवा १०। अमेरिका में सैनेट के सदस्यों को [illegible] प्रत्यक्ष रूप से चुनती है। भारत में कुछ सदस्यों को राज्य विधान मण्डल [illegible] रूप से चुनते हैं और कुछ मनोनीत किये जाते हैं। कनाडा में सैनेट के

सदस्यों को जीवन भर के लिए मनोनीत किया जाता है। साधारण जनता का उसमें कोई हाथ नहीं होता। वे लोग ही मनोनीत किए जाते हैं, जिन्हें उस समय की सरकार चाहती है।

अमेरिका में अध्यक्षात्मक सरकार (Presidential Government) है। कार्यपालिका विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं है। अमेरिका में शक्ति-विभाजन का सिद्धान्त (Separation of Powers) लागू है। इसके विपरीत भारत तथा कनाडा में संसदीय सरकार (Parliamentary Government) है। भारत में राष्ट्रपति नाममात्र की कार्यपालिका है। इसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल नाममात्र की कार्यपालिका है। दोनों देशों में वास्तविक शक्ति मन्त्रिमण्डल के हाथों में है।

अमेरिका में सुप्रीम कोर्ट, फैडरल सर्कट कोर्ट ऑफ अपील और संघीय जिला न्यायालय है। ये सब न्यायालय संघीय सरकार ने स्थापित किये हैं और संघीय सरकार का ही उन पर नियन्त्रण है परन्तु ऐसी व्यवस्था भारत तथा कनाडा में नहीं है। केवल एक सुप्रीम कोर्ट है। शेष न्यायिक कार्य राज्यों या प्रान्तों पर छोड़ दिया जाता है और वे ही अपने-अपने न्यायालय स्थापित करते हैं और संघीय सरकार का उसमें बिलकुल कोई हाथ नहीं होता।

कनाडा की कार्यपालिका (The Canadian Executive)—कनाडा की कार्यपालिका के दो अंग हैं। एक नाममात्र (nominal) कार्यपालिका है और दूसरी वास्तविक (real)। नाममात्र की कार्यपालिका क्राउन (Crown) और गवर्नर-जनरल है और वास्तविक कार्यपालिका कैबिनेट (Cabinet) है।

क्राउन (Crown)—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम, १८६७ की धारा ६ के अनुसार, कनाडा की कार्यपालिका इंगलैंड की सम्राज्ञी (Queen) के हाथों में है। गवर्नर-जनरल विधेयकों को सम्राज्ञी के नाम से स्वीकृति देता है। यह याद रखने वाली बात है कि क्राउन की समस्त शक्तियाँ वास्तविक व्यवहार में कोई महत्त्व नहीं रखती। क्राउन साम्राज्य की एकता का एक प्रतीक है। यह सोने की शृंखला है जो कि डोमीनियनों को इंगलैंड से सम्बद्ध करती है।

गवर्नर-जनरल (Governor-General)—गवर्नर-जनरल कनाडा में सम्राज्ञी का प्रतिनिधि है। पहले ब्रिटिश-सरकार जिस को चाहती थी गवर्नर-जनरल मनोनीत करती थी परन्तु अब ऐसी व्यवस्था नहीं है। किसी व्यक्ति को गवर्नर-जनरल मनोनीत करने से पहले ब्रिटिश सरकार कनाडा की सरकार से पूछ लेती है कि किस व्यक्ति को गवर्नर-जनरल बनाया जाये और किस को नहीं। ऐसा करने से इस बात की आशंका नहीं रहती कि जिस व्यक्ति को ब्रिटिश सरकार मनोनीत करती है वह कनाडा की सरकार को स्वीकार ही न हो।

१९२५-२६ में एक बहुत बड़ी गम्भीर स्थिति पैदा हो गई थी। उस समय लार्ड बाइंग (Lord Bying) कनाडा के गवर्नर-जनरल थे और मैकेंजी किंग (Mackenzie King) उस समय कनाडा के प्रधान मन्त्री थे और उदार दल के नेता थे। प्रधान मन्त्री ने गवर्नर-जनरल को लोकसभा को भंग करने के लिए परामर्श दिया, किन्तु गवर्नर-जनरल ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इस पर प्रधान मन्त्री

ने त्यागपत्र दे दिया और श्री मेघंन (Meighens) ने नया मन्त्रिमण्डल बनाया। वह लोकसभा का विश्वास प्राप्त न कर सका और उसने लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना की। इस बार गवर्नर-जनरल सहमत हो गया। नये चुनावों में उदार दल को बहुमत प्राप्त हुआ और मैकेंजी किंग ने नया मन्त्रिमण्डल बनाया। गवर्नर-जनरल के कार्य की बहुत आलोचना की गई। १९२६ के साम्राज्य सम्मेलन में यह पास किया गया कि भविष्य में गवर्नर-जनरल को अपने मन्त्रिमण्डल की इच्छानुसार ही कार्य करना चाहिए। जब १९३१ में लॉर्ड बेसबोरो (Lord Bessborough) को कनाडा का गवर्नर-जनरल मनोनीत किया गया तो कनाडा सरकार की स्वीकृति पहले से ही ले ली गई।

गवर्नर-जनरल कार्यपालिका का अध्यक्ष है परन्तु इंगलैंड की सम्राज्ञी के समान वह हमेशा अपने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करता है क्योंकि वही देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। वह न तो मन्त्रियों के विवेचन में भाग लेता है और न ही उनकी नीति को लागू करने में सहायक होता है। लार्ड आर्गिल (Argyll) पहला गवर्नर-जनरल था, जिसने कैबिनेट की बैठकों में भाग लेना बन्द कर दिया और ऐसा ही उसके उत्तराधिकारियों ने भी किया। गवर्नर-जनरल का किसी दल की नीति से सम्बन्ध नहीं होता। वह अपने आप को इनसे ऊपर रखता है। समस्त समस्याओं के प्रति उसका व्यवहार निष्पक्ष होता है। ऐसा होते हुए भी उसका सम्मान, आदर और प्रभाव इंगलैंड की सम्राज्ञी के समान नहीं होता।

गवर्नर-जनरल संयुक्त राष्ट्रों (United Nations) के लिए प्रतिनिधि नियुक्त करता है और अन्य देशों से छोटी-छोटी सन्धियाँ करता है, जिन पर सीधे क्राउन हस्ताक्षर नहीं करता। वह उन साधारण एजेन्टों और मन्त्रियों की नियुक्ति और स्वागत करता है, जिनकी सरकार प्रत्यक्ष रूप से नियुक्ति और स्वागत नहीं करती। वह उप-राज्यपालों (Lieutenant-Governors) को नियुक्त करता है और उनको पद से भी मुक्त कर सकता है। वह सुप्रीम कोर्ट और प्रान्तीय न्यायालयों के न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। वह प्रान्तीय विधानमण्डलों के अधिनियमों को रद्द कर सकता है।

गवर्नर-जनरल देश की स्थल (Land), वायु (Air) और नौसेना (Naval Forces) का सेनापति होता है। वह दण्ड को विलम्बित तथा क्षमा करने के राजा के परम अधिकार का प्रयोग कर सकता है। वह किसी विधेयक (Bill) को क्राउन की स्वीकृति के लिए सुरक्षित कर सकता है। १९२६ तक गवर्नर-जनरल राजदूत का कार्य करता था। १९२८ में उसके एजेन्सी कार्य हाई कमिश्नर को सौंप दिए गए।

गवर्नर-जनरल प्रधान मन्त्री के कंधों से कई बोझ अपने ऊपर ले लेता है। अमेरिका के साथ बातचीत करने के कार्य में गवर्नर-जनरल बहुत लाभदायक है। वह मन्त्रिमण्डल को निष्पक्ष भाव से परामर्श देता है। जब एक प्रधान मन्त्री त्याग-पत्र दे देता है तो नये मन्त्री को चुनने का उत्तरदायित्व गवर्नर-जनरल के कंधों पर आ पड़ता है।

गवर्नर-जनरल के पास एक ऐसी शक्ति है, जिसका प्रयोग संकट काल में

किया जा सकता है। यदि कनाडा का प्रधान मन्त्री घूस ले ले और त्याग-पत्र देने से इनकार कर दे और पार्लियामेंट को न बुलाए, ऐसी अवस्था में गवर्नर-जनरल उसको डिसमिस कर सकता है। इसी प्रकार यदि प्रधान मन्त्री के कहने पर लोकसभा को भंग कर दिया जाता है और नए चुनावों में उसी प्रधान मन्त्री का लोकसभा में बहुमत नहीं आता और वह फिर गवर्नर-जनरल को लोकसभा को भंग करने के लिए कहता है तो गवर्नर-जनरल ऐसा करने से इनकार कर सकता है। यह ठीक है कि इन शक्तियों के प्रयोग का अवसर ही न आए, परन्तु इन शक्तियों का होना अत्यन्त आवश्यक और लाभकारी है।

प्रिवी कौंसिल (Privy Council)—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम, १८६७ की धारा ग्यारह में कनाडा की सरकार को परामर्श और सहायता देने के लिए कनाडा के लिए ब्रिटिश सम्राज्ञी की प्रिवी कौंसिल की स्थापना की व्यवस्था की गई है। गवर्नर-जनरल को उनको समय-समय पर आमन्त्रित करने का अधिकार दिया गया और उनको हटाने का भी अधिकार उसे दिया गया। जो व्यक्ति प्रिवी कौंसिल का एक बार सदस्य बन जाता है वह आजीवन उसका सभासद रहता है। एक संस्था के रूप में प्रिवी कौंसिल कभी नहीं मिलती और इसके कार्य को कैबिनेट पूरा करती है। कैबिनेट और प्रिवी कौंसिल में यह अन्तर है कि यद्यपि कैबिनेट का प्रत्येक सदस्य प्रिवी कौंसिल का सदस्य होता है तथापि प्रिवी कौंसिल का प्रत्येक सदस्य कैबिनेट का सदस्य नहीं होता। कैबिनेट को प्रिवी कौंसिल की उपसमिति कहा जाता है।

कैबिनेट (Cabinet)—यदि गवर्नर-जनरल कनाडा की सांवैधानिक कार्यपालिका है तो वास्तविक कार्यपालिका कैबिनेट अथवा मन्त्रिमण्डल है। मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री के अतिरिक्त विदेशमन्त्री, वित्तमन्त्री, वाणिज्यमन्त्री, गृहमन्त्री, कृषिमन्त्री, प्रतिरक्षामन्त्री, न्याय मन्त्री इत्यादि होते हैं। कनाडा का मन्त्रिमण्डल इंगलैंड के मन्त्रिमण्डल के समान कार्य करता है। आम चुनाव या लोकसभा में मन्त्रिमण्डल की पराजय के बाद गवर्नर-जनरल बहुमत-दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाता है। कनाडा के प्रधानमन्त्री का मन्त्रिमण्डल बनाने का कार्य इंगलैंड के प्रधानमन्त्री के कार्य से अधिक कठिन होता है। कारण यह है कि मन्त्रिमण्डल बनाते समय उसको कई ऐसी बातों को दृष्टि में रखना पड़ता है जो कि इंगलैंड के प्रधानमन्त्री को नहीं रखनी पड़तीं। कनाडा के प्रधानमन्त्री को फ्रेंच कनाडा, कनाडा की रोमन कैथोलिक जनता जो फ्रेंच नहीं है, क्यूबक की अंग्रेजी भाषी जनता और अन्य आठ प्रांतों को उचित प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। साधारणतया फ्रेंच कनाडा से तीन, ऑण्टेरियो से तीन और नोवास्कोशिया, न्यूब्रंस्विक, मैनीटोबा, सस्कैचवान, एलबर्टा और ब्रिटिश कोलम्बिया से कम-से-कम एक कैबिनेट मन्त्री लेना होता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि सैनेट से भी कोई मन्त्री अवश्य लिया जाए। लगभग सारे मन्त्री लोकसभा ही से लिए जाते हैं। प्रधानमन्त्री को वित्तमन्त्री चुनते समय मॉण्ट्रियाल और टोरेण्टो के विशेष आर्थिक हितों का ध्यान रखना पड़ता है।

प्रधानमन्त्री तथा अन्य मन्त्रियां का वार्षिक वेतन क्रमशः बारह हजार डालर और सात हजार डालर है।

इंगलैंड की भाँति कनाडा के मन्त्रियों का सामूहिक उत्तरदायित्व होता है। सब एक दूसरे का समर्थन करते है। वे अपने मतभेदों को जनता में व्यक्त नही कर सकते। कैबिनेट की बैठक मे निर्णय होने के बाद जो मन्त्री अपने साथियों का समर्थन नही करता उसे त्यागपत्र देना ही पडता है। उसे संसद् में अपने त्यागपत्र देने के कारणों पर प्रकाश डालने का विशेष अधिकार है। इस विशेष अधिकार का प्रयोग करने के लिए गवर्नर-जनरल की अनुमति आवश्यक है। उसकी अनुमति के बिना कैबिनेट की कार्यवाही को जनता के सम्मुख नही रखा जा सकता परन्तु इस प्रकार की अनुमति देने से कभी इनकार भी नही किया जा सकता। १९०२ में प्रधानमन्त्री ने अपने कैबिनेट के साथी श्री टार्टे से त्यागपत्र माँगा। कारण यह था कि टार्टे ने टैरिफ (Tariff) मे कुछ उन परिवर्तनो का समर्थन किया जिनसे कैबिनेट का विरोध था। श्री टार्टे ने पद त्याग दिया। इसी प्रकार १९१६ में अनुदार दल के प्रधान मन्त्री ने कैबिनेट के साथी ह्यूज से त्यागपत्र माँगा क्योंकि उसने अपने साथियो के परामर्श के बिना ही इगलैंड मे मौलिनिया उपपरिषद् स्थापित करने का निश्चय किया था।

इगलैंड की भाँति मन्त्रिमण्डल गवर्नर-जनरल से लोक सभा (House of Common[1]) को भग करने की प्रार्थना कर सकता है। निरूढि (Convention) यह है कि जब प्रधान मन्त्री ऐसी सलाह गर्वनर-जनरल को दे तो उसे इनकार नही करना चाहिए। ऐसा न करने मे १९२६ में बडी गम्भीर स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

इगलैंड में यह नियम है कि यदि किसी प्रमुख विषय पर मन्त्रिमण्डल लोक सभा मे हार जाता है तो या तो वह त्यागपत्र दे देता है या लोकसभा को भंग करने के लिए सम्राज्ञी से प्रार्थना करता है। कनाडा मे इस नियम का कठोरता से पालन नही किया जाता। सरकार हार की ओर ध्यान न देने या उसकी उपेक्षा करने का निश्चय कर सकती है।

इंगलैंड की भाँति मन्त्रिमण्डल की कार्यवाही को पूर्णत. गुप्त रखा जाता है। पहले कार्यवाही का रिकार्ड रखने के लिए कोई सचिवालय नही था किन्तु जब इंगलैंड ने ऐसी व्यवस्था की तो कनाडा ने भी उसका अनुसरण किया। इंगलैंड की भाँति कनाडा का मन्त्रिमण्डल ही वास्तविक रूप मे देश के प्रशासन को चलाता है। इसकी शक्तियाँ बहुत बढ़ गई है। लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने के कारण मन्त्रिमण्डल को उन समस्त कानूनो को पास करने का पूर्ण विश्वास होता है, जिनको वह देश के प्रशासन को भली प्रकार से चलाने और नागरिकों तथा समाज के कल्याण के लिए आवश्यक समझता है। डॉसन (Dawson) के अनुसार, मन्त्रिमण्डल गवर्नर-जनरल और पार्लियामेंट को मिलाने वाली कड़ी है। वह समस्त कार्यों के लिए वास्तविक कार्यपालिका है। वह कार्यपालिका की नीति का निर्णय करता है और उसको पूरा करता है। वह समस्त सरकारी विभागों के प्रशासन के लिए ... है। वह विधायी कार्यक्रम (Legislative Programme) भी काफी अंश

तक तैयार करता है और उन पर लगभग पूर्ण नियन्त्रण रखता है। मन्त्रिमण्डल और गवर्नर-जनरल के सम्बन्ध में दिखाई देने वाला विरोधाभास पार्लियामेंट के सम्बन्ध मे भी दिखाई देता है। यद्यपि मन्त्रिमण्डल गवर्नर-जनरल का सेवक है तथापि वह उसे बताता है कि उसे क्या करना है। इसी प्रकार मन्त्रिमण्डल यद्यपि लोकसभा का सेवक है तथापि वह उसका नेतृत्व और संचालन करता है और वास्तव में वह उसका स्वामी है।

प्रधान-मन्त्री (Prime Minister)—कनाडा का प्रधान मन्त्री इंगलैंड के प्रधान मन्त्री के समान है। वह बहुमत दल का नेता होता है और आम चुनाव के बाद गवर्नर-जनरल उसे मन्त्रिमण्डल बनाने का निमन्त्रण देता है। उसे अपना मन्त्रिमण्डल बनाने मे इसलिए कठिनाई होती है क्योकि उसे मन्त्रिमण्डल बनाते समय अनेक हितों का ध्यान रखना पड़ता है। उन हितों के एक-दूसरे से टकराने की सदा सम्भावना बनी रहती है। उसे कुशल राजनीतिज्ञ होना चाहिए ताकि वह अपने दल और साथियों को अपने साथ रख सके। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है और बहस में प्रमुख भाग लेता है। यद्यपि मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके निर्णयों को स्वीकार करते हैं तथापि वह उनकी उचित बातों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसे अपने साथी मन्त्रियों को अपने साथ रखना पड़ता है। उसका यह कर्तव्य है कि वह अपने साथियों के साथ टीम (team) की भावना से कार्य करे। एक का दूसरे को हुक्म देने का प्रश्न ही नहीं उठता। उन सब को अपना भार दूसरों के साथ उठाना पड़ता है। यदि कोई मन्त्री सहयोग नहीं देता तो प्रधान मन्त्री उसे हटा सकता है। प्रत्येक कार्य में प्रत्येक समय एकरूपता रखनी आवश्यक है।

प्रधान मन्त्री ही गवर्नर-जनरल से लोकसभा को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है। वही गवर्नर-जनरल से उन व्यक्तियों के नामों की सिफारिश करता है जो सैनेट में मृत्यु अथवा हटाए जाने से खाली स्थानों पर नियुक्त किए जाते है। प्रान्तों के उप-राज्यपाल उसकी सिफारिश से नियुक्त किए जाते है। इसी प्रकार वह लोकसभा का कार्यक्रम निर्धारित करता है।

प्रधान मन्त्री की स्थिति उसके अपने विशेष व्यक्तित्व पर निर्भर है। यदि उसका व्यक्तित्व ऊँचा है तो सम्पूर्ण कार्य उसकी इच्छा के अनुसार ही चलता है। यदि उसके साथी उसके समान ही चतुर हैं तो उसे निर्णय करने मे बहुत सावधान रहना चाहिए। उसे परिस्थिति को इस प्रकार सम्भालना पड़ता है कि कम-से-कम शोर मचे।

डॉसन (Dawson) के अनुसार, "यद्यपि प्रधान मन्त्री को कैबिनेट के सम्बन्ध में पर्याप्त शक्ति प्राप्त है तथापि उसका प्रयोग प्रधान मन्त्री की योग्यता पर निर्भर है। वह मन्त्रियों को केवल नियुक्त ही नहीं करता बल्कि उचित समझने पर किसी भी समय उनका त्यागपत्र माँग सकता है। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसकी इच्छाओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है और साधारणतया उसका पूरा-पूरा समर्थन किया जाता है। ऐसा होते हुए भी उसकी दृढता मे कौशल एवं चातुर्य का समावेश होना चाहिए। प्रधान मन्त्री को जानना चाहिए

कि कब उसे आदेश देना कब प्रेरणा करनी है और कब दूसरों की बातें माननी है। जिस प्रकार उसके साथी पूर्णतया लोकसभा से स्वतन्त्र नही रह सकते उसी प्रकार वह स्वयं अपनी कैंबिनेट से वास्तविक रूप में पूरी तरह स्वतन्त्र नही रह सकता। उससे दोनों संस्थाओं का नेतृत्व करने की आशा की जाती है और सीमाओं के अन्दर उसे सामान्य स्वीकृति मिल जाती है। एक योग्य प्रधान मन्त्री अपनी कैंबिनेट में अपना काम निकाल लेता है। प्रधान मन्त्री माँग करने में बहुत सन्तोष और बुद्धिमानी से काम लेता है। वह केवल वही प्रस्ताव रखता है जिसके विषय मे उसे अपने साथियों का पूर्ण समर्थन मिलने की आशा होती है। सदन में प्रसन्नता से समर्थन आवश्यक है। कोई प्रधानमन्त्री ऐसा शक्तिशाली नही, जो मतों की उपेक्षा कर सके या उन भावनाओं का सम्मान न करे जो मतों के पीछे होती हैं।

प्रधानमन्त्री के स्थान का सम्मान किया जाता है और उसके शब्दो का मूल्य होता है।

यदि हम कनाडा के प्रधानमन्त्री की तुलना फ्रांस के प्रधानमन्त्री से करें तो पता चलेगा कि फ्रांस के प्रधानमन्त्री की स्थिति इसलिए निर्बल है क्योंकि फ्रांस में बहुत से राजनीतिक दल है और किसी एक दल को बहुमत प्राप्त नही है। फ्रांस के प्रधान मन्त्री को राष्ट्र के हितो की अपेक्षा अपनी स्थिति को स्थिर रखने की अधिक चिन्ता रहती है। उसको विभिन्न हितों को सन्तुष्ट करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में एकता का रखना लगभग असम्भव हो जाता है। कनाडा का प्रधान मन्त्री इन सभी झंझटों से मुक्त है। वह उस दल का नेता होता है, जिसको लोकसभा में बहुमत प्राप्त होता है और इस कारण वह स्वतन्त्रता से कार्य कर सकता है।

कनाडा का विधानमण्डल (Canadian Legislature)—कनाडा के विधानमण्डल के दो सदन हैं:—लोकसभा (House of Commons) तथा सैनेट (Senate)। इंगलैंड की भाँति लोकसभा जनता का प्रतिनिधित्व करती है और इसलिए सरकार का नियन्त्रण करती है। यद्यपि आरम्भ में दोनों सदनों का स्तर समान था तथापि प्रजातन्त्रीय संस्थाओं के विकास ने लोकसभा को अधिक सबल कर दिया है और सैनेट को पृष्ठभूमि मे छोड़ दिया है।

लोकसभा (House of Commons)—लोकसभा के सदस्य ५ वर्ष के लिए चुने जाते है परन्तु मन्त्रियों की ओर से माँग होने पर अथवा गवर्नर-जनरल के यह सोचने पर कि सकट उपस्थित है और मतदाताओं से आम अपील करनी चाहिए, लोकसभा को कभी भी भंग किया जा सकता है। वास्तविक रूप में गवर्नर-जनरल अपनी इस शक्ति का प्रयोग बहुत कम करता है और साधारणतः अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करता है।

लोकसभा के सदस्यों की संख्या बदलती रहती है। यह तबदीली प्रत्येक १० वर्ष के बाद जनसंख्या के आधार पर होती है। जहाँ तक क्युबिक (*Quebec*) के प्रतिनिधियों का सम्बन्ध है उनकी संख्या ६५ पक्की है और उससे कम नहीं

हो सकती परन्तु दूसरे प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या जनसंख्या के अनुसार बदल दी जाती है।

पहले लोकसभा के १८१ सदस्य थे। परन्तु १९५२ में जो अधिनियम पास हुआ उसने लोकसभा के सदस्यों की संख्या २६५ निर्धारित की। इस समय Ontario से ८५ सदस्य, Quebec से ७५, Nova Scotia से १२, New Brunswick से १२, Manitoba से १४, British Columbia से २२, Prince Edward Island से ४, Saskatchewan से १७, Alberta से १७, New Foundland से ७ सदस्य और २ सदस्य दो और प्रदेशों से चुने जाते है। लोकसभा के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक अधिवेशन के लिए १४,००० डालर मिलते है। उसे २००० डालर व्यय विषयक वार्षिक भत्ता भी मिलता है। प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों को सदस्यों के अतिरिक्त १५,००० डालर और १०,००० डालर मिलते है।

चुनाव समाप्त होते ही लोकसभा के सदस्य पहली बैठक में अध्यक्ष (speaker) का चुनाव करते हैं। अध्यक्ष लोकसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है और समान मत होने पर निर्णायक मत (Casting vote) देता है। अध्यक्ष को ६,००० डालर वेतन, १,००० डालर मोटर भत्ता और ३,००० डालर निवास स्थान विषयक भत्ता मिलता है। कनाडा में यह निरूढ़ि (Convention) है कि यदि किसी संसद् का अध्यक्ष अंग्रेज जाति का हो तो अगली संसद् का अध्यक्ष फ्रेंच जाति का होना चाहिए। इसी प्रकार उपाध्यक्ष एक ही जाति के नहीं होने चाहिएँ।

लोकसभा में दूसरे नम्बर की पार्टी को सरकारी विरोधी दल कहा जाता है। प्रधान मन्त्री के पद के समान विरोधी दल या उसके नेता का विकास अनेक अलिखित समझौतों के कारण हुआ है। वह समय की कसौटी से कसे जाने के बाद स्वीकार कर लिए गए है और दृढता से स्थापित हो गए है। विरोधी दल के नेता को अधिवेशन भत्ते के अतिरिक्त १०,००० डालर वार्षिक वेतन दिया जाता है।

समस्त ब्रिटिश प्रजाजनों को जिनकी आयु २१ वर्ष हो चुकी हो और जो डोमीनियन में निर्वाचन के दिन से पहले कनाडा में साधारणतः १२ मास रह चुके हो, वोट देने का अधिकार है। १९४८ के एक अधिनियम के द्वारा जापानियों की अयोग्यता (Disqualification) को समाप्त कर दिया गया। कनाडा में एकसदस्यीय निर्वाचनक्षेत्र है। पुर्नविभाजन (Redistribution) दोनों दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले आयोग (Commission) द्वारा किया जाता है। अनेक बार निर्वाचन जिलों के पुनर्गठन से gerrymandering की आपत्तिजनक परिपाटी का आभास होने लगता है। १८८२ मे कनाडा के प्रधान मन्त्री पर gerrymandering का आरोप लगाया गया था। १८९३ में उदार दल ने इस परिपाटी की निन्दा की। जब १९०३ में वह स्वयं अधिकार में आए तब उन्होंने भी वैसा ही किया जैसा कि उनके विरोधियों ने पहले किया था।

सैनेट और लोकसभा दोनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं। विधेयक (Bill) किसी भी सदन में पेश किया जा सकता है परन्तु धन विधेयक (Money Bill) केवल लोकसभा में ही पेश किया जा सकता है। लोकसभा का धन पर पूर्ण अधिकार

है। धन-सम्बन्धी समस्त विधेयकों की आज्ञा लेना, सीमित करना और नियुक्त करना केवल लोकसभा का ही अधिकार है और ऐसे विधेयकों के उद्देश्यों, अभिप्रायों, विचारों, प्रतिबन्धों और गुणों को सैनेट नहीं बदल सकती। इंगलैंड की भाँति धन-विधेयक गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा पेश नहीं किए जाते। ऐसा अधिकार केवल सरकार के सदस्यों को ही है। संयुक्त राज्य में व्यवस्था भिन्न है।

कनाडा में विधेयक पास करने की विधि इंगलैंड के समान है। प्रत्येक विधेयक को ५ स्थितियों (stages) से गुजरना पड़ता है और वे हैं—प्रथम वाचन (First Reading), द्वितीय वाचन, समिति स्थिति (Committee stage), प्रतिवेदन स्थिति (Report stage) और तृतीय वाचन। किसी भी विधेयक को कानून बनने के लिए दोनों सदनों की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। इंगलैंड की भाँति लोकसभा में पूर्ण सदन की समिति (Committee of the Whole House) और ११ स्थायी समितियाँ (*Standing Committees*) हैं। प्रत्येक समिति में सरकारी और विरोधी दलों के सदस्य होते हैं।

कनाडा की लोकसभा इंगलैंड की लोकसभा की भाँति सबल है। कैबिनेट के अधिकांश सदस्य लोकसभा से ही लिए जाते हैं। प्रधान मन्त्री भी लोकसभा का सदस्य होता है। लोकसभा का अविश्वास का प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल के पतन का कारण होता है और प्रमुख विधेयकों पर वहाँ विचार-विनिमय होता है। यही कारण है कि कनाडा के लोग सैनेट की अपेक्षा लोकसभा का सदस्य बनना पसन्द करते हैं।

कैबिनेट और लोकसभा का सम्बन्ध (Relation between Cabinet and House of Commons)—कैबिनेट ही लोकसभा का आह्वान (Summon), सत्रावसान और विघटन (Dissolve) करती है। कैबिनेट का विधि-निर्माण (Legislation) पर पूरा अधिकार है। धन विधेयकों (Money Bills) पर उसका वस्तुतः पूर्ण नियन्त्रण है। वह संसदीय अधिवेशन के लगभग प्रत्येक घण्टे का कार्यक्रम निश्चित करती है। इस प्रकार लोकसभा कैबिनेट के प्रस्तावों की केवल पुष्टि करने वाली संस्था मालूम देती है। यह प्रतिनिधि सदन है जिसका प्रयोग कैबिनेट अपने अधिकार को बढ़ाने के लिए करती है। स्पष्ट रूप से कैबिनेट लोकसभा के प्रति उत्तरदायी नहीं रही है और लोकसभा ही कैबिनेट के प्रति उत्तरदायी हो गई है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि लोकसभा के समस्त अधिकार समाप्त हो गए हैं। लोकसभा अब भी कैबिनेट पर पर्याप्त प्रभाव डाल सकती है। लोकसभा के प्रभाव की सीमा का पता लगाना कठिन है। लोकसभा कैबिनेट का नियन्त्रण उसे हराकर, आलोचना करके और उसके अधिकार को चुनौती देकर करती है। प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में गवर्नर-जनरल अपना भाषण पढ़ता है। उसके पश्चात् वादविवाद होता है जिसमें प्रत्येक सदस्य भाग ले सकता है। सत्ताधारी दल के कार्यों और भूलों की कड़ी आलोचना की जाती है। सदस्यों को मन्त्रियों से प्रश्न करने की छूट होती है। मन्त्रियों का कर्तव्य उन प्रश्नों का उत्तर देना होता है। कोई मन्त्री किसी भी ... को तब तक छिपा नहीं सकता जब तक वह यह सिद्ध न करदे कि वैसा

करना सार्वजनिक हित के विपरीत है। मन्त्री अथवा सरकार की नीति की आलोचना करने के लिए विशेष वाद-विवाद भी हो सकते हैं। बजट पर विचार-विनिमय करते समय प्रशासन के प्रत्येक पहलू की आलोचना की जा सकती है। लोकसभा कैबिनेट के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव भी पास कर सकती है। वह कैबिनेट द्वारा समर्थित विधेयक को अस्वीकार करके उसके पतन का कारण बन सकती है।

सैनेट (Senate)—१८६७ के अधिनियम के अनुसार, सैनेट के ७२ सदस्य थे। १६१५ में सदस्य संख्या ७२ से ६६ कर दी गई। १६४६ में संख्या १०२ कर दी गई। सैनेट के सदस्य आयु भर के लिए मनोनीत किए जाते हैं। प्रधान मन्त्री के कहने पर गवर्नर-जनरल सैनेट के सदस्यों को मनोनीत करता है। डाक्टर कीथ ने ठीक ही कहा है कि साधारणतः उन लोगों को सैनेट का सदस्य मनोनीत किया जाता है जिन्होंने सारी आयु अपनी पार्टी की सेवा की हो। यह पुरस्कार वृद्धावस्था में दिया जाता है। सैनेट की सदस्यता उन लोगों को भी दी जाती है जिन्होंने पार्टी के कोष में बहुत सा धन दिया हो। सैनेट में नियुक्तियाँ पूर्णतः दलीय आधार पर की जाती हैं। जब उदार दल सत्तारूढ़ होता है तब सैनेट के रिक्तस्थानों की पूर्ति केवल उदार लोगों से की जाती है। ऐसा ही तब होता है जब कोई अन्य दल सत्तारूढ़ हो। फलस्वरूप यदि कोई दल दीर्घकाल तक सत्तारूढ़ रहे तो सैनेट के अधिकांश सदस्य उसी दल के ही हो जाते हैं। जब वह दल निर्वाचन में हार जाता है और लोकसभा में अल्पमत में रह जाता है तब भी कुछ समय के लिए वह सैनेट में बहुमत में रहता है। ऐसी परिस्थिति में मन्त्रि-मण्डल बड़ी कठिनाई में पड़ जाता है। ऐसी बातें आरम्भ में हुई परन्तु सैनेट की दुर्बलता ने इस कठिनाई को दूर कर दिया है। मन्त्रिमण्डल सैनेट के व्यवहार की उपेक्षा करके स्वतन्त्र रूप से कार्य कर सकता है।

यह सत्य है कि सैनेट के सदस्यों की नियुक्ति आयु भर के लिए होती है परन्तु निम्नलिखित कारणों में से किसी एक कारण से सदस्य अपने पद से हाथ धो सकता है:—

(१) यदि संसद् के दो लगातार अधिवेशनों में वह भाग न ले।

(२) किसी विदेशी शक्ति के प्रति निष्ठा की शपथ ले ले अथवा कोई ऐसा कार्य करे जिससे वह विदेशी प्रजा अथवा नागरिक बन जाए।

(३) यदि वह दिवालिया या सार्वजनिक अपराधी बन जाए।

(४) यदि उस पर देशद्रोह का अपराध लगाया जाए या किसी कुख्यात अपराध के लिए दण्डित किया जाए।

(५) यदि वह उस प्रान्त को छोड़ दे जिसका वह प्रतिनिधि है और दूसरे प्रान्त में जाकर निवास कर ले।

इन सब के अतिरिक्त, सैनेट का कोई भी सदस्य अपने स्थान से त्याग-पत्र दे सकता है और ऐसा करने से उसकी सदस्यता समाप्त हो जाती है।

सैनेट की शक्तियाँ कानून द्वारा निश्चित नहीं हैं। केवल इतना ही लिखा है कि धन-विधेयक (Money Bills) केवल लोकसभा में ही पेश किए जा सकते हैं,

सैनेट में नहीं। इसके अतिरिक्त कोई भी विधेयक सैनेट में भी पेश किया जा सकता है। सैनेट ने अनेक अवसरों पर धन-विधेयकों में संशोधन तथा परिवर्तन किए हैं। १९१२ में सैनेट ने धन-विधेयक को रद्द कर दिया। १९२२ और १९२४ में सैनेट ने सरकार के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। १९२५ में सैनेट ने किसी विधेयक में बहुत बड़े संशोधन किए।

साधारण विधेयक सैनेट में पेश हो सकते हैं और लोकसभा में पास किए हुए विधेयकों को सैनेट रद्द कर सकती है। १९३५-३६ में मैकन्जी किंग (Mackenzie King) द्वारा प्रस्तावित विधेयकों के प्रति सैनेट का व्यवहार बड़ा विरोधपूर्ण था।

सैनेट तथा लोकसभा मे गतिरोध (deadlock) होने पर क्राऊन, गवर्नर-जनरल के परामर्श पर सैनेट मे चार या आठ सदस्य बढ़ाने की आज्ञा दे सकता है। अन्तिम रूप से दायित्व कैबिनेट पर ही आता है क्योंकि गवर्नर-जनरल तभी सिफारिश करेगा जब कि कैबिनेट उसे वैसा करने का परामर्श दे। कनाडा की कैबिनेट ने इसके प्रयोग की सिफारिश केवल एक बार की है। साधारणतः गतिरोध को लोकसभा और सैनेट में परस्पर वार्ता द्वारा दूर किया जाता है।

सैनेट की एक बडी कमी यह है कि वह विधेयकों की जाँच-पड़ताल उनके गुणो के अनुसार नहीं करती परन्तु पूर्णतः दलीय आधार पर अपना निर्णय करती है। इसके निर्णयों को वह आदर प्राप्त नही होता जो एक निष्पक्ष सदन के विषय मे हो सकता है। कनाडा की सैनेट प्रौढ राजनीतिज्ञों का सदन (house of elder statesmen) नहीं है जिसके निर्णयों का जनता पर प्रभाव पड़ना चाहिए। किसी सैनेटर (Senator) को मनोनीत किए जाते समय उसकी योग्यता अथवा राजनीतिक क्षेत्र के अनुभव को महत्त्व न देकर केवल पार्टी के लिए किए गए उसके कार्य या पार्टी पर उसके प्रभाव का सब से अधिक विचार किया जाता है।

अमेरिका की सैनेट के सबल होने का कारण यह है कि उसके सदस्य प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की भाँति जनता के द्वारा चुने जाते हैं। परन्तु चूंकि कनाडा की सैनेट के सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किए जाते हैं इसलिए वे लोकसभा के सदस्यों का मुकाबला नहीं कर सकते।

अमेरिका की सैनेट राज्यों (states) के हितों की संरक्षिका है। संविधान ने उसे उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए विशेष शक्तियाँ दी हैं। अमेरिका के जो सैनेटर राज्यों के हितों की रक्षा नहीं करते वे अगले निर्वाचन में हार जाते हैं। परन्तु ऐसी व्यवस्था कनाडा मे नही है। वहाँ के सैनेटरों की नियुक्ति प्रान्तों के हितों की रक्षा करने के लिए नही की जाती और न ही उनको इस बात का डर होता है कि वे अगले चुनाव मे हार जाएँगे क्योंकि वे जीवन भर के लिए मनोनीत किए जाते हैं।

अमेरिका में प्रत्येक छोटे अथवा बडे राज्य (state) को सैनेट में दो सदस्य भेजने का अधिकार है परन्तु कनाडा मे ऐसी व्यवस्था नही है। यहां कई प्रान्तों के लिए अधिक सदस्य हैं और कई के लिए बहुत थोड़े।

डॉसन (Dawson) का कहना है कि यद्यपि सैनेट में अनेक त्रुटियाँ हैं तथापि

वह उचित रूप से कुछ लाभप्रद कार्य करने में समर्थ हुई है। वह लोकसभा द्वारा पास किये गए विधेयकों को दोहराती और उनकी जाँच करती है। वह बहुधा लाभप्रद जाँच करती है। वह कार्य-भार से दबी हुई लोकसभा के गैर-सरकारी विधेयकों के पर्याप्त भाग को कम कर देती है। लेकिन वह प्रान्तों तथा अल्पसंख्यकों (minorities) के अधिकारों का संरक्षण करने में उत्कृष्ट सफलता प्राप्त नहीं कर सकी है। सामाजिक विधेयकों पर उसके व्यवहार को प्रतिक्रियावादी (reactionary) कहा गया है।

सर जान मैरियट (Marriott) का कहना है कि कनाडा की सैनेट अनेक सिद्धान्तों को मिलाने का प्रयास करती है जो यदि पूर्णतः विरोधी नहीं तो स्पष्ट रूप से भिन्न अवश्य है। परिणामस्वरूप उसे न तो कभी कुलीन और आनुवंशिक सदन (hereditary chamber) की शान प्राप्त हो सकती है और न निर्वाचित सदन (elected house) की शक्ति अथवा राष्ट्रीय विचार के मुकाबले में सघ का प्रतिनिधित्व करने वाली सैनेट की उपयोगिता।

कनाडा की सैनेट विश्व मे सबसे दुर्बल द्वितीय सदन (weakest second chamber) है। वह पूर्णतः द्वितीय सदन के कर्त्तव्यों को पूरा करने मे असमर्थ रही है। वह केवल प्रतिध्वनियों का सदन (house of echoes) है। उसे शक्तिहीनता या रुकावट का गुण प्राप्त है। इसके कई कारण है। कनाडा की सैनेट संघीय सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। इस मे अमेरिका की तरह विभिन्न प्रान्तों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। सैनेट के सदस्य निर्वाचन के स्थान में कार्यपालिका द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इसलिए सैनेट को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं है। कनाडा के सैनेटर अपने प्रान्तो के हितों का समर्थन नहीं करते और इसलिए वे उनके समर्थन की आशा भी नहीं कर सकते। कनाडा की सैनेट की शक्तियाँ बहुत कम है। इसका धन पर कोई नियन्त्रण नहीं है। मन्त्रिमण्डल का उत्तरदायित्व लोकसभा के प्रति है न कि सैनेट के प्रति।

सैनेट के गठन को बदलने के लिए अनेक सुझाव दिये गए है। एक सुझाव यह है कि सैनेटरों का निर्वाचन प्रान्तीय विधायक (Provincial Legislators) करें। एक सुझाव यह है कि विरोधी दल के नेता को सैनेट के एक-तिहाई रिक्त स्थानों (vacant seats) के लिए मनोनीत करने का अधिकार दिया जाना चाहिये। एक और यह प्रस्ताव है कि सैनेट देश के विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करे। इन सब सुझावों के होते हुए भी परिवर्तन की सम्भावना अधिक दिखाई नहीं देती।

कनाडा की न्यायपालिका (The Judiciary)—कनाडा में दो संघीय न्यायालय हैं और वे हैं सुप्रीम कोर्ट और Court of Exchequer and Admiralty. ऐक्सचैकर कचहरी की स्थापना १८७५ में की गई। उस समय वह सुप्रीम कोर्ट का एक अंग थी परन्तु १९५२ के अधिनियम के अनुसार यह पृथक् न्यायालय बन गया है। इसके पाँच सदस्य हैं जिन में से एक अध्यक्ष (President) और शेष चार न्यायाधीश है। सदस्य उस समय तक सदस्य रहते हैं जब तक वे ठीक तरीके से अपने कार्य को निभाते हैं। ७५ वर्ष की आयु पर न्यायाधीश रिटायर होते हैं।

साधारणतः इस न्यायालय की बैठकें ग्रोटावा (Ottawa) में होती हैं परन्तु ग्राव-श्यकता के अनुसार ग्रौर स्थानों पर भी हो सकती हैं। यह न्यायालय सामुद्रिक तथा सरकार के प्रति मुकदमों का निर्णय करता है।

कनाडा की सुप्रीम कोर्ट की स्थापना १८७५ में हुई परन्तु ग्रब यह १९५२ के सुप्रीम कोर्ट ग्रधिनियम के ग्रनुसार कार्य करती है। इसके ग्राठ सदस्य हैं, एक मुख्य न्यायाधीश तथा सात न्यायाधीश। कार्यपालिका के निर्णय के ग्रनुसार उन की नियुक्ति होती है। यदि कनाडा की संसद् के दोनों सदन ऐसा प्रस्ताव पास करें तो किसी न्यायाधीश को निकाला भी जा सकता है। ७५ वर्ष की ग्रायु पर सब न्यायाधीशों को रिटायर होना पड़ता है। ग्रोटावा (Ottawa) सुप्रीम कोर्ट के बैठने का स्थान है।

सुप्रीम कोर्ट को फौजदारी तथा दीवानी मुकदमों में ग्रपीलें सुनने का ग्रधिकार है। फौजदारी मुकदमों में तब ग्रपील सुप्रीम कोर्ट को ले जाई जा सकती है जब प्रान्तीय न्यायालय के न्यायाधीश सहमत न हों। दीवानी मुकदमों में प्रत्येक बड़े मुकदमे में सुप्रीम कोर्ट को ग्रपील की जा सकती है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस बात में ग्रन्तर है। सुप्रीम कोर्ट चुनाव (elections) के मुकदमें भी सुनती है। यह सरकार को परामर्श भी देती है। गवर्नर-जनरल किसी कानून की बात पर सुप्रीम कोर्ट की सलाह ले सकता है। सुप्रीम कोर्ट में judicial review की शक्ति भी है। वह किसी कानून को ultra vires ग्रथवा invalid निर्धारित कर सकती है।

१९३३ तक फौजदारी मुकदमों में ग्रपीलें प्रिवी कौंसिल (Privy Council) को जाती थीं परन्तु उस के बाद वे बन्द कर दी गईं ग्रौर सुप्रीम कोर्ट का निर्णय ग्रन्तिम निर्णय (final decision) हो गया। १९४९ में दीवानी मुकदमों में भी ग्रपीलें प्रिवी कौंसिल को बन्द कर दी गईं। ग्रब सुप्रीम कोर्ट ही कनाडा का सबसे उच्च तथा ग्रन्तिम न्यायालय है।

प्रत्येक प्रान्त में एक सुप्रीम कोर्ट, District Courts ग्रौर County Courts हैं। इन सबके न्यायाधीश गवर्नर-जनरल द्वारा मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर मनोनीत किये जाते हैं। वे तब तक न्यायाधीश रहते हैं जब तक वे ईमानदारी से कार्य करते हैं। उनके वेतन ग्रादि कम नहीं किये जा सकते ताकि वे निडर होकर ग्रपने कर्त्तव्य का पालन कर सकें।

प्रान्तीय सरकार (The Provincial Government)—प्रान्त की सरकार उप-राज्यपाल (Lieutenant-Governor) द्वारा चलाई जाती है। उसको गवर्नर-जनरल पाँच वर्ष के लिए मनोनीत करता है। चूंकि उप-राज्यपाल की नियुक्ति संघीय सरकार करती है इसलिए वह संघीय सरकार का ग्रधिक ध्यान करता है ग्रौर उसके ग्रादेशों का पालन भी करता है। कई बार वह ग्रपने मन्त्रिमण्डल की परवाह नहीं करता ग्रौर संघीय सरकार के कहने के ग्रनुसार कार्य करता है। कभी तो वह मन्त्रिमण्डल को भंग कर देता है। यह ठीक है कि साधारणतः उप-राज्यपाल मन्त्रिमण्डल के परामर्श के ग्रनुसार काम करता है परन्तु वह बिलकुल शक्ति-हीन नहीं है।

९ प्रान्तों में से दो प्रान्तों में विधान मण्डल के दो सदन हैं और उनके नाम हैं विधान परिषद् (Legislative Council) तथा विधान सभा (Legislative Assembly)। प्रान्तीय विधान मण्डल को ही प्रान्तीय संविधान को संशोधन करने का अधिकार है। ऐसा होते हुए भी वे उप-राज्यपाल से सम्बन्धित धाराएँ नहीं बदल सकते। वे उसकी शक्तियों को बढ़ा सकते हैं परन्तु कम नहीं कर सकते।

कनाडा की पार्टी-प्रणाली (Political Parties)—कनाडा की पार्टी प्रणाली इंगलैंड का अनुसरण करती है। कनाडा ने केवल द्वि-पार्टी प्रणाली (two-party system) को ही नहीं अपनाया अपितु अनुदार (Conservative) और उदार (Liberal Party) दलों के नामों को भी अपनाया है। इंगलैंड की तरह यहाँ भी राजनीतिक दलों के नीति निर्धारण (making of policy) में उद्योगपति उतना महत्वपूर्ण भाग नहीं लेते जितना कि अमेरिका में। इस के अतिरिक्त यहाँ कानून दलीय संगठनों को अमेरिका की तरह मान्यता नहीं देता।

कनाडा में भिन्न-भिन्न धर्म तथा भाषाएँ हैं। फ्रेंच लोग फ्रेंच भाषा बोलते तथा लिखते हैं और कैथोलिक धर्म के अनुयायी हैं। अंग्रेज लोग अंग्रेजी बोलते तथा लिखते हैं और प्रोटेस्टैण्ट धर्म के अनुयायी हैं। परन्तु ऐसा होते हुए भी कनाडा में राजनीतिक पार्टियाँ धर्म तथा भाषा के आधार पर नहीं हैं। भिन्न-भिन्न धर्मों वाले एक ही पार्टी के सदस्य हैं और एक दूसरे के साथ कार्य करते हैं।

कनाडा की दलीय प्रणाली किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। वह केवल परिस्थितियों की उपज है। प्रान्तीय विधानमण्डलों और संघीय संसद् में अन्दर और बाहर निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इससे जनता दो कैम्पों में बटी रहती है। जन्म से ही बच्चे की पार्टी निश्चित हो जाती है और वह पार्टी के भाग्य को अपना भाग्य समझने लगता है।

कनाडा की मुख्य राजनीतिक पार्टियाँ है अनुदार दल (Conservative Party), उदार दल (Liberal Party), श्रम दल (Labour Party), कृषक दल (Farmers Party) तथा Cooperative Commonwealth Federation Party.

अनुदार दल laissez faire की नीति को नहीं मानता। अपने देश के हितों की रक्षा करने के लिए वह बाहर से आने वाली चीजों पर ज्यादा टैक्स लगाने की नीति अपनाता है। इसी दल ने Ottawa Pact बनवाया। इसकी नीति दूसरे देशों के साथ तिजारत के समझौते करने की है। लोगों की अवस्था को सुधारने के लिये वह सरकार के हाथों में बहुत कुछ देने के पक्ष में है।

उदार दल थोड़े टैक्सों के पक्ष में है। वह नहीं चाहता कि सरकार लोगों के जीवन में अधिक हस्तक्षेप करे। यह दल कनाडा का ब्रिटिश साम्राज्य में महत्वपूर्ण स्थान चाहता है। यह केवल British Commonwealth के सदस्यों के साथ ही तिजारत के समझौते नहीं करना चाहता अपितु दूसरे देशों के साथ भी। क्यूबेक प्रान्त में विशेष जोर है।

श्रम दल का प्रोग्राम यह है कि सरकार के हाथों में उत्पादन के . . दे दिये जायें ताकि साधारण लोगों की अवस्था सुधर सके। सरकार

बहुत कुछ करे। यह दल भी इस पक्ष में है कि सरकार लोगों के जीवन में अधिक से-अधिक हस्ताक्षेप करे। यह दल सीनेट को उड़ाने के पक्ष में है। यह सब प्रकार से निःशस्त्रीकरण चाहता है।

कृपक दल ससार में शान्ति की स्थापना चाहता है। कनाडा का राष्ट्रमण्डल में समान स्थान होना चाहिए। सब और टैक्सों की कमी होनी चाहिये। सीनेट का सुधार होना चाहिए। महिलाओं को मत का अधिकार होना चाहिये। यद्यपि इस दल के कई लक्ष्य प्राप्त हो चुके हैं तथापि अब भी बहुत कुछ शेष है।

Co-operative Commonwealth Federation Party (C.C.F.) ने द्वितीय महायुद्ध के बाद बहुत उन्नति की है। यह दल सस्काचेवान प्रान्त में सत्तारूढ है। कई प्रान्तों में यह दल विरोधी दल है। यह लोकसभा में शक्तिशाली है। यह प्रगतिशील है और ब्रिटिश श्रम दल की भाँति इस का प्रोग्राम है। यह इस बात के पक्ष में है कि उत्पादन के साधनों को सरकार के अधीन कर दिया जाये। यह सामाजिक सुधारों के पक्ष में है। इस दल ने विशेषकर मजदूरों को अपनी ओर आकर्षित किया है।

Suggested Readings

Borden, R. L.	: Canadian Constitution Studies, Oxford, 1932.
Bourinot, Sir John	. Parliamentary Government in Canada, 1916.
Brady	· Democracy in the Dominions.
Brown	: Canadian Democracy in Action (1953).
Bryce	Modern Democracies, Vol. I.
Clement, W.H.P.	: The Law of the Canadian Constitution.
Clokie, E.M.	Canadian Government and Politics.
Cole, Taylor	: The Canadian Bureaucracy.
Dawson, R.M.	: Constitutional Issues in Canada.
Dawson, R.M.	· Democratic Government in Canada.
Evatt, H.V.	· The King and His Dominion Government, 1938.
Egerton, H.E.	: Federations and Unions in the British Empire, 1911.
Forsey, E. A.	: The Royal Power of Dissolution of Parliament in the British Commonwealth, 1943.
Gettys, C.L.	: The Administration of Canadian Conditional Grants, 1938.
Kennedy, W.P.M.	: The Constitution of Canada.
Kennedy	: Essays in Constitutional Law, 1934.
Lefroy, A.H.F.	· Legislative Power in Canada.
Lefroy, A.H.F.	: Canada's Federal System.
Langstone, Rosa W.	: Responsible Government in Canada.
Munro, W.B	: American Influences on Canadian Government, 1929.

अध्याय ३१

कम्युनिस्ट चीन का संविधान

(The Constitution of Red China)

चीन के संविधान के अध्ययन के कई विशेष कारण हैं। चीन भारत का सब से बड़ा शत्रु है और इसलिए हमें उस देश के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी होनी चाहिए। एक और कारण यह है कि चीन की जनसंख्या संसार के अन्य सभी देशों से अधिक है। १९५३-५४ में वह ५८ करोड़ से भी अधिक थी। चीन के पास इतनी सामग्री है कि वह एक बड़ा धनवान् तथा शक्तिशाली देश बन सकता है। उसके वर्तमान नेताओं ने बहुत युद्ध लड़े हैं और उनको युद्ध का काफी अनुभव है। और यह चीज संसार के लिए एक बड़ा खतरा है। चीन के संविधान के अध्ययन से हम अपने आपको सावधान कर सकते हैं।

ऐतिहासिक (Historical)—कभी समय था कि चीन एक बहुत शक्तिशाली देश था, किन्तु १९वीं शताब्दी में उसका पतन हुआ। उसकी कमजोरी से लाभ उठाकर विदेशियों ने कई प्रकार से अपना अधिकार चीन में स्थापित कर लिया। ग्रेट ब्रिटेन ने चीन के विरुद्ध कई युद्ध लड़े, जिनको अफीम के युद्ध कहा जाता है। जापान ने चीन को १८९५ में परास्त किया और उसके कई प्रदेश छीन लिये। १९०० में चीनियों ने विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु वे कुचल दिये गए। जापान, रूस, फ्रांस, ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी ने चीन की सरकार से कई रियायतें माँगी और ले ली। १९११ में मांचू वंश जो कि अनेक शताब्दियों से चल रहा था, समाप्त कर दिया गया और जनतन्त्र राज्य की स्थापना की गई। डॉ० सन् यात सेन (Dr. Sun Yat Sen) बहुत बड़ा देशभक्त था। परन्तु वह बहुत कुछ न कर पाया। १९२३ में उसने कम्युनिस्टों से समझौता कर लिया और उनके सहयोग से देश को सशक्त बनाने का यत्न किया। रूस से युद्ध सम्बन्धी सहायता मिली। परन्तु वह समझौता देर तक न चल सका। कारण यह था कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने समझौते की आड लेकर अपने आपको ताकतवर बनाना चाहा परन्तु दूसरे पक्ष वाले ऐसा न चाहते थे। १९२५ में डॉ० सन् यात सेन की मृत्यु हो गई और उसके बाद कम्युनिस्ट पार्टी और क्योमिण्टाग (Kuomintang) के मध्य समझौता न चल सका। च्याग कई शेक (Chiang Kai-shek) ने, जो कि क्योमिण्टाग पार्टी का लीडर था, कम्युनिस्टों के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया और बहुत से कम्युनिस्ट मार दिये गए।

चन्द वर्ष लड़ने के बाद च्याग काई शेक ने अपनी सत्ता देश भर में स्थापित कर ली परन्तु सब कुछ करने के बाद भी च्यांग काई शेक कम्युनिस्टों को कुचल न सका। यह ठीक है कि कम्युनिस्टों की बहुत हानि हुई परन्तु ऐसा होते हुए भी उन्होंने अपनी शक्ति को बनाये रखा। कम्युनिस्टों के अलावा भी च्याग कई शेक को

और कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जापान ने १९३१ में चीन पर हमला कर दिया और मंचूरिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। १९३७ में जापान ने चीन के विरुद्ध फिर युद्ध प्रारम्भ किया और वह युद्ध अभी चल ही रहा था कि द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। महायुद्ध के दौरान जापान ने चीन के बहुत से प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया। चीन के कम्युनिस्टों ने जापानियों के विरुद्ध हाथ न उठाया। वे अपनी शक्ति को बढ़ाने में ही लगे रहे।

१९४५ में जब महायुद्ध समाप्त हुआ तो अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के अनुसार चीन के वे सारे प्रदेश जो कि जापान के अधीन थे, च्यांग कई शेक की हकूमत को मिलने थे, किन्तु रूस ने चीन के कम्युनिस्टों की सहायता की और उन्होंने उत्तरी चीन पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। चीन के कम्युनिस्टों के हाथों में जापान का बहुत-सा युद्ध सम्बन्धी सामान जो कि उत्तरी चीन में था, आया। कई अन्य कारणों से चीन के कम्युनिस्टों का पलड़ा भारी हो गया और अन्त में उन्होंने च्यांग कई शेक को चीन से बाहर निकाल दिया। यह ठीक है कि अमरीका की सरकार ने पहले च्यांग कई शेक की सरकार को सहायता दी परन्तु अन्त में वह सहायता बन्द कर दी गई। १९४९ में कम्युनिस्टों ने चीन पर अपना अधिकार परिपूर्ण रूप से स्थापित कर लिया और च्यांग कई शेक के पास केवल फारमूसा (Formosa) का द्वीप ही रह गया। भारत ने कम्युनिस्ट चीन को स्वाधीन देश मान लिया और उसके साथ मित्रता का व्यवहार रखा। ऐसा होते हुए भी चीन ने अक्तूबर १९६२ में भारत पर आक्रमण कर दिया और इस कारण दोनों देशों के वर्तमान सम्बन्ध बहुत बुरे हैं।

वर्तमान संविधान का निर्माण (Making of the Constitution)—चीन का वर्तमान संविधान १९५४ में लागू हुआ, परन्तु इस से पहले की जानकारी भी आवश्यक है। १९४९ में एक अस्थिर संविधान बनाया गया। उसका नाम था Common Programme। देश का शासन उसके अनुसार १९५४ तक चलता रहा। जनवरी १९५३ में संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए एक कमेटी की स्थापना की गई। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने एक मसौदा तैयार किया और मार्च १९५४ में लोगों के सम्मुख उपस्थित किया। दूसरा मसौदा १४ जून १९५४ को प्रस्तुत किया गया। उसके बाद तीसरा मसौदा तैयार किया गया। इस मसौदे की जाँच पड़ताल की गई और अन्त में सितम्बर १९५४ को वह मसौदा मान लिया गया। National People's Congress ने २० सितम्बर को उस मसौदे को अपना लिया और वही आज चीन का संविधान है। कहा जाता है कि यह संविधान स्थायी रूप से नहीं रहेगा और १९७२ के समीप एक नया संविधान तैयार व लागू किया जायेगा।

संविधान की प्रस्तावना (Preamble)—संविधान की प्रस्तावना में ऐसा लिखा है कि चीन के लोगों ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की अध्यक्षता में बहुत देर तक संग्राम किया और अन्त में विजय प्राप्त की। चीन में एक जनतन्त्र राज्य की स्थापना की जिसमें कोई किसी का खून नहीं चूस सकता। निर्धनता को नष्ट कर

दिया गया है और एक अच्छे समाज की स्थापना कर दी गई है। राज्य का लक्ष्य धीरे-धीरे समाज के सभी पहलुओं में एक क्रांति लाना है ताकि देश सब प्रकार से उन्नत हो सके।

प्रस्तावना में ऐसा लिखा है कि चीन की सभी जातियाँ स्वाधीन और समान हैं। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होगा, इन जातियों के बीच प्रेम की भावना बढ़ती जायेगी और वे पारस्परिक सहायता के लिए तैयार हो जायेंगी। देशद्रोहियों के विरुद्ध भी लड़ने के लिए वे सब उद्यत होंगी। ऐसा भी कहा गया है कि चीन की विदेश नीति का ध्येय संसार में शान्ति की स्थापना करना है। जिस प्रकार चीन ने तिब्बत और भारत पर आक्रमण किया है, उससे प्रस्तावना में लिखी गई डींगें गलत सिद्ध होती हैं।

संविधान के साधारण नियम (General Principles)—(१) चीन के संविधान के कुछ साधारण नियम हैं। पहला नियम तो यह है कि चीन में लोगों की हकूमत है, जिसके नेता मजदूर हैं और उनका किसानों के साथ समझौता है। चीन राज्य मे सारी सत्ता लोगों के हाथों मे है। लोग अपनी सत्ता का प्रयोग National People's Congress तथा स्थानीय People's Congress द्वारा करते हैं। केन्द्रीय तथा स्थानीय संस्थाएँ प्रजातन्त्र नियम के आधार पर चलती हैं और उनका केन्द्र के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(२) चीन के गणतन्त्र राज्य में बहुत सी जातियाँ हैं, परन्तु वे सारी की सारी एक सूत्र में बँधी हैं। सभी जातियाँ समान है। किसी भी जाति को तंग करना निषिद्ध है। प्रत्येक जाति का अधिकार है कि वह अपनी भाषा को उन्नत कर सकें। वह अपने आचार-व्यवहार को भी जैसा चाहे रख सके। ऐसा होते हुए भी कोई जाति चीन के राज्य को छोड़ नहीं सकती।

(३) चीन के राज्य का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना है, जिसमें कोई किसी के साथ ज्यादती न कर सके। ऐसा करने के लिए समाज में क्रांति का लाना आवश्यक है। उद्योग-धन्धों को इस प्रकार बढ़ाना आवश्यक है, जिससे राज्य का उन पर पूर्णतया अधिकार हो। वर्तमान अवस्था में उत्पादन के साधन कुछ तो राज्य के अधिकार में हैं और कुछ कोआपरेटिव सोसाइटियों और कुछ व्यक्तिगत लोगों के अधिकार में है। सरकार अकस्मात् वर्तमान अवस्था को बदलना नहीं चाहती बल्कि धीरे-धीरे उत्पादन के सभी साधन सरकार के नीचे आ जायेंगे। थोड़े समय के लिए यह प्रयत्न किया जायेगा कि सभी साधनों से देश के उत्पादन के कार्य को आगे ले जाया जाए। जो-जो किसी प्रणाली में गुण हैं, उनसे लाभ उठाया जाये। सरकार कोई भी ऐसी बात नहीं होने देगी, जिससे उत्पादन कार्य में रुकावट पैदा हो।

(४) सरकार नागरिकों के कानून के अनुसार कमाये हुए धन की रक्षा करती है। इसी प्रकार उनके घरों और सम्पत्ति की भी सरकार रक्षा करती है। लोगों के हित के लिए सरकार जमीन खरीद सकती है और अधिग्रहण (acquire) भी कर सकती है। इसी प्रकार उत्पादन के साधनों को भी सरकार अधिग्रहण (acquire) कर सकती है। निजी सम्पत्ति का लोक-हित के विरुद्ध प्रयोग मना है।

(५) योजना द्वारा सरकार को चाहिए कि वह दिन प्रतिदिन देश के उत्पादन की वृद्धि करे ताकि लोग समृद्धिशाली हो सकें।

(६) चीन मे जो व्यक्ति काम करने के योग्य है उसके लिए काम करना आवश्यक है और ऐसा करना उसके आदर और सम्मान का स्थान है। सरकार इस बात को प्रोत्साहन देती है कि लोग दिल लगा कर काम करे और उनके कार्य से उनका व्यक्तित्व विकसित हो।

(७) सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह जनतन्त्र शासन प्रणाली की रक्षा करे और जो कोई उसके विरुद्ध हो उसका दमन करे। सरकार जमीदारों और पूंजीपतियो के धन को छीन ले परन्तु उनके पालन-पोषण का विधिपूर्वक प्रवन्ध करे।

(८) चीन की सशस्त्र सेनाएँ लोगो की सम्पत्ति है। उनका कर्त्तव्य है कि वे चीन राज्य की रक्षा करें ताकि देश की किसी भी प्रकार से हानि न हो।

नैशनल पीपल्स कांग्रेस (National People's Congress)—नैशनल पीपल्स कांग्रेस चीन की सब से बडी राजनीतिक सस्था है। केवल इसी को ही देश के लिए कानून वनाने का अधिकार है। इसमे सेना के तथा चीन के विभिन्न प्रदेशो के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। इसके सदस्यो की सख्या १,२०० से ऊपर है। इसके सदस्य चार वर्षो के लिए चुने जाते है। अवधि व्यतीत होने से दो मास पूर्व स्टैंडिग कमेटी का कर्त्तव्य है कि वह इसके सदस्यों का चुनाव कराए। यदि अनिवार्य कारण से चुनाव न हो सके तो ऐसी अवस्था मे नैशनल पीपल्स कांग्रेस के पुराने सदस्य काम चलाते रहते हे। जब कांग्रेस का अधिवेशन होता है तो वह एक प्रधान चुनती है, जिसको प्रेज़ीडियम (Presidium) भी कहते है। कांग्रेस की कई प्रकार की शक्तियां और कर्त्तव्य है। यह सविधान को वदल भी सकती है। यह कानून वनाती है। इसका कर्त्तव्य है कि सविधान की रक्षा करे। चीन के राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति का चुनाव भी यही करती है। राष्ट्रपति की सिफारिश पर वह प्रधान मन्त्री का भी निर्णय करती है। यह उपराष्ट्रपति का भी निर्णय करती है। राष्ट्रपति की सिफारिश पर यह कौंसिल ऑफ नैशनल डिफेंस के सदस्यों का भी निर्णय करती है। यह सुप्रीम कोर्ट के प्रधान का भी निर्णय करती है। वह चीफ प्रोक्योरेटर को भी चुनती है। यह यह भी निर्णय करती है कि देश के लिए कौनसी आर्थिक-योजना बनाई जाए। यह सरकार के बजट को पास करती है। यह प्रांतों की सीमाओं को निर्धारित करती है। यह दण्डित अपराधियों को क्षमा कर सकती है। यह भी निर्णय करती है कि युद्ध हो अथवा शान्ति बनी रहे। इन सब के अतिरिक्त नैशनल पीपल्स कांग्रेस को उन सभी कार्यों के करने का अधिकार है, जो कि देश के हित के लिए आवश्यक हों।

कांग्रेस राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति को पदच्युत कर सकती है। ऐसा ही अधिकार इसको प्रधान मन्त्री, उप प्रधान मन्त्रियों, मन्त्रियों, सुप्रीम कोर्ट के प्रेज़ीडेंट, कौंसिल ऑफ नैशनल डिफेंस के सदस्यो इत्यादि को पद से हटाने का है।

चीन के संविधान को नैशनल पीपल्स कांग्रेस दो-तिहाई बहुमत से बदल

सकती है। साधारण कानून साधारण बहुमत से बदले जा सकते हैं। नैशनल पीपल्स कांग्रेस को कई प्रकार की कमेटियां स्थापित करने का अधिकार है। उनमें से कुछ के नाम हैं नैशनेलिटीज कमेटी, बिल कमेटी, बजट कमेटी, Credentials कमेटी, इत्यादि। जब कांग्रेस का अधिवेशन नहीं होता तब नैशनेलिटीज़ कमेटी तथा बिल कमेटी स्टैंडिंग कमेटी के अधीन कार्य करती हैं।

विशेष कार्यों के लिए विशेष कमेटियों की स्थापना की जाती है। सरकार के विभिन्न विभागों का कर्त्तव्य है कि वे कमेटियों को वे सभी सूचनाएँ दें जो कि उनके कार्य के लिए आवश्यक हैं। नैशनल पीपल्स कांग्रेस के सदस्य स्टेट कौंसिल, मन्त्रियों तथा कमीशनों से प्रश्न कर सकते हैं और उत्तर देना उनके लिए आवश्यक है। कांग्रेस के किसी सदस्य को कांग्रेस की आज्ञा के बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार उनके विरुद्ध मुकदमा भी नहीं चलाया जा सकता। कांग्रेस के सदस्य वोटरों के अधीन होते हैं और जब चाहे वोटर उनको वापस भी बुला सकते हैं। नैशनल पीपल्स कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में केवल एक बार होता है। तब भी अधिवेशन बुलाया जा सकता है जब कि स्टैंडिंग कमेटी ऐसा करना उचित समझती है या बीस प्रतिशत सदस्य ऐसा मांगते हैं।

कांग्रेस के छोटे से अधिवेशन के हक में कई गुण बताए जाते हैं। कांग्रेस के बहुत से सदस्य कई प्रकार के कामों में लगे होते हैं और उनका काफी समय अधिवेशन पर आने में नष्ट नहीं होता। चूंकि वे साधारण लोगों के साथ काम करते हैं, इसलिए बुरे प्रकार के राजनीतिज्ञों की उत्पत्ति नहीं होती। जब वे अपने कार्य को छोड़कर कांग्रेस की मीटिंगों के लिए आते हैं तो वे एक ताजा दिमाग लेकर आते हैं और इस प्रकार कांग्रेस का कार्य अच्छी तरह हो जाता है। यदि लोगों का जी चाहे तो वे अपनी कठिनाइयों को स्टेट कौंसिल अथवा मन्त्रियों के सामने रख सकते हैं। इस प्रकार उनकी सहायता हो सकती है।

स्टैंडिंग कमेटी (Standing Committee)—स्टैंडिंग कमेटी नैशनल पीपल्स कांग्रेस की स्थायी संस्था है। इसका एक प्रधान, कुछ उप-प्रधान, एक सेक्रेटरी जनरल और सदस्य होते हैं। स्टैंडिंग कमेटी के सदस्यों का चुनाव नैशनल पीपल्स कांग्रेस करती है।

स्टैंडिंग कमेटी कई प्रकार के कार्य करती है। वह नैशनल पीपल्स कांग्रेस के सदस्यों का चुनाव कराती है। उसके अधिवेशनों को भी बुलाती है। वह कानूनों की व्याख्या करती है या कानून बनाती है। वह स्टेट कौंसिल, सुप्रीम पीपल्स कोर्ट तथा सुप्रीम प्रोक्योरेटोरेट (Procuratorate) के कार्य की निगरानी करती है। यदि स्टेट कौंसिल का कोई आदेश अथवा निर्णय विधान के विरुद्ध हो तो स्टैंडिंग कमेटी उसको रद्द कर सकती है। यदि सरकार के किसी विभाग अथवा प्रान्त ने कोई निर्णय किया हो तो स्टैंडिंग कमेटी उसको भी रद्द कर सकती है। स्टैंडिंग कमेटी, उप-प्रधान मन्त्री, मन्त्रिगण, कमीशनों के इंचार्ज तथा स्टेट कौंसिल के सदस्यों को मनोनीत करती है अथवा पद से हटा सकती है। वह उपराष्ट्रपतियों, न्यायाधीशों और सुप्रीम ... कोर्ट के सदस्यों को नियत भी कर सकती है अथवा निकाल भी सकती है।

इसी प्रकार वह डिप्टी चीफ प्रोक्योरेटरों को मनोनीत भी कर सकती है और निकाल भी सकती है। वह राजदूतों को नियत भी कर सकती है अथवा उनको वापस भी बुला सकती है। जो सन्धियाँ सरकार ने दूसरे देशों के साथ की होती है उन्हे वह स्वीकार भी कर सकती है अथवा अस्वीकार भी। वह उपाधियाँ नियत भी कर सकती है और दे भी सकती है। वह अपराधियो को क्षमा भी कर सकती है। नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस की अनुपस्थिति मे वह युद्ध की घोषणा कर सकती है और देश भर में अथवा किसी विशेष प्रदेश में मार्शल लॉ (Martial Law) भी लागू कर सकती है। इनके अतिरिक्त स्टैंडिग कमेटी वे सभी कार्य कर सकती है जो कि नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस कर सकती है।

स्टैंडिग कमेटी उपरिलिखित कार्य तभी करती है जब कि नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस का अधिवेशन न हो। अपने सभी कार्यों के लिए स्टैंडिग कमेटी नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस के प्रति उत्तरदायी है। नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस को यह अधिकार है कि वह स्टैंडिग कमेटी के किसी सदस्य को वापस बुला ले।

चीन का राष्ट्रपति (Chairman of People's Republic of China)—चीन के राष्ट्रपति को नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस के सदस्य चुनते है। वे सभी लोग जिनको वोट देने का अधिकार है और जो चुनाव मे खडे हो सकते है और जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक है वे सभी राष्ट्रपति चुने जा सकते है। राष्ट्रपति की अवधि चार वर्ष है।

नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस अथवा स्टैंडिग कमेटी के निर्णय के अनुसार राष्ट्रपति कानून लागू करता है और आदेश भी जारी करता है। वह प्रधान मन्त्री, उप प्रधान मन्त्रियों, मन्त्रियों इत्यादि को नियत भी कर सकता है और हटा भी सकता है। कौंसिल ऑफ नैशनल डिफेंस (Council of National Defence) के उप-प्रधान और सदस्यों को वह नियत भी कर सकता है और हटा भी सकता है। वह लोगों को उपाधियाँ दे सकता है। वह अपराधियो को छोड़ सकता है। वह मार्शल लॉ (Martial Law) लागू कर सकता है। वह युद्ध की घोषणा कर सकता है और सेनाओं के मार्च का आदेश भी दे सकता है।

राष्ट्रपति के अनेक कर्त्तव्य और शक्तियाँ है। वह विदेशों के राजदूतों को मिलता है और उनका सम्मान करता है। वह दूसरे देशों में अपने देश के राजदूतों की नियुक्ति करता है और उनको वापस भी बुला सकता है। वह सेनाओ का महासेनापति भी है। वह कौंसिल ऑफ नैशनल डिफेंस का प्रधान है।

आवश्यकता के अनुसार राष्ट्रपति सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस (Supreme State Conference) की मीटिंग बुलाता है और उसका प्रधान भी होता है। सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस का प्रधान राष्ट्रपति होता है। सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस के सदस्य चीन के उपराष्ट्रपति, स्टैंडिग कमेटी के प्रधान इत्यादि हैं। राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस के निर्णयो को नैशनल पीपल्स कॉंग्रेस, स्टैंडिग कमेटी, स्टेट कौंसिल इत्यादि को भेजे।

उपराष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति की उसके कार्य में सहायता

करे। यदि राष्ट्रपति कोई कार्य उप-राष्ट्रपति को दे तो उप-राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह उसे ठीक तरह करे। यदि किसी कारण से राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता तो वे सभी कार्य उप-राष्ट्रपति को करने पड़ते हैं। यदि किसी कारण राष्ट्रपति का पद खाली हो जाए तो ऐसी अवस्था में उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के कार्य को करेगा।

यह ध्यान देने वाली बात है कि चीन के राष्ट्रपति की विचित्र सी अवस्था है। उसके समान और कोई पदाधिकारी किसी अन्य देश में नहीं है। उसकी तुलना अमरीका अथवा फ्रांस के राष्ट्रपति से नहीं की जा सकती है। एक प्रकार से उसकी तुलना रूस के Chairman of the Presidium of the Supreme Soviet से की जा सकती है। राष्ट्रपति देश की एकता का द्योतक है।

स्टेट कौंसिल (State Council)—जिस प्रकार नैशनल पीपल्स कांग्रेस चीन की व्यवस्थापिका सभा है, ठीक उसी प्रकार स्टेट कौंसिल उसकी कार्यपालिका (executive) है। शासन के लिए यह सब से उच्च संस्था है। इसके सदस्य प्रधान मन्त्री, उप-प्रधान मन्त्रिगण, मन्त्रिगण, कमीशनों के अध्यक्ष तथा सैक्रेटरी जनरल हैं। इसका संगठन कानून के द्वारा होता है।

स्टेट कौंसिल के कई प्रकार के कर्त्तव्य तथा शक्तियां हैं। स्टेट कौंसिल विधेयक (Bill) बनाकर नैशनल पीपल्स कांग्रेस अथवा स्टैंडिंग कमेटी को भेजती है। इसका कर्त्तव्य है कि वह विभिन्न मन्त्रियों के विभागों के कार्यों को ठीक प्रकार चलाए। इसी प्रकार उसका कर्त्तव्य है कि प्रदेशों के राज्यों के कार्य को ठीक प्रकार से चलाए। यदि कोई विभाग अथवा मन्त्री अनुचित आदेश दे अथवा निर्णय करे तो स्टेट कौंसिल का अधिकार है कि वह उसको बदल दे या रद्द कर दे। इसी प्रकार यदि किसी प्रादेशिक राज्य का कोई कर्मचारी कोई अनुचित निर्णय करे अथवा आदेश दे तो भी स्टेट कौंसिल उसको बदल सकती है। सरकार के बजट को पूरा करना स्टेट कौंसिल का कर्त्तव्य है। देश का विदेशी व्यापार तथा आन्तरिक व्यापार भी स्टेट कौंसिल के हाथ में है। स्टेट कौंसिल का कर्त्तव्य है कि वह शिक्षा सम्बन्धी तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यों को भली प्रकार से चलाए। विभिन्न जातियों के कार्यों को करना भी इसी कौंसिल का कर्त्तव्य है। जो चीनी लोग देश से बाहर हैं, उनकी रक्षा करना भी इसी कौंसिल का कर्त्तव्य है। देश की विदेश-नीति का कार्य भार भी इसी कौंसिल के हाथों मे है। अफसरों को नियत करना और हटाना भी स्टेट कौंसिल के हाथों मे है।

स्टेट कौंसिल की मीटिंगों का अध्यक्ष प्रधान मन्त्री होता है और वही स्टेट कौंसिल के कार्य को चलाता है। उप-प्रधान मन्त्रीगण प्रधान मन्त्री की उसके कार्य में सहायता करते हैं।

मन्त्रिगण तथा कमीशनों के अध्यक्ष अपने-अपने कार्य को चलाते हैं। उनका यह अधिकार है कि वे अपने-अपने अधिकार के अन्दर आदेश दे सकें।

स्टेट कौंसिल नैशनल पीपल्स कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है और अपने कार्य की रिपोर्ट उसके सामने प्रस्तुत करती है। यदि किसी समय नैशनल पीपल्स

कांग्रेस का अधिवेशन न हो तो उस समय स्टेट कौंसिल स्टैंडिंग कमेटी के प्रति उत्तरदायी होती है।

चीन के प्रशासनिक विभाग (Administrative Divisions of China)—शासन के कार्य के लिए चीन को इस प्रकार विभक्त किया गया है। देश को प्रदेशों (Provinces), autonomous regions और म्युनिसिपैलिटियों में बांटा गया है। सूबों और autonomous regions को autonomous Chou, Counties, autonomous Counties and municipalities में बांटा गया है। Counties और autonomous Counties को Hsiang, nationality Hsiang और towns में विभक्त किया गया है। प्रत्येक प्रदेश के लिए पृथक्-पृथक् People's Congress होती हैं और वे अपना अपना कार्य करती है। वे अपने-अपने प्रदेश की उन्नति के लिए योजनाएँ तैय्यार करती हैं और उनको पूरा भी करती है। वे लोगों के धन तथा अधिकारों की रक्षा करती है।

यह ध्यान में रखने वाली बात है कि चीन में कम्युनिस्ट पार्टी का सर्वव्यापी अधिकार है। इसका परिणाम यह है कि देश के किसी प्रदेश अथवा विभाग में कुछ भी नहीं हो सकता जब तक कम्युनिस्ट पार्टी की आज्ञा अथवा आदेश न हो।

चीन की न्यायपालिका (The Judiciary in China)—च्यांग कई शेक के समय में चीन में कोई ऐसी न्याय-पद्धति न थी जिसकी तुलना भारत, अमेरिका तथा इंगलैंड से की जा सकती। चीन का कानून चन्द लोगों के हित के लिए था और न्याय की कुछ परवाह न थी। फलस्वरूप लोग पिसते रहे।

जब कम्युनिस्टों ने चीन में अपनी सत्ता स्थापित की तो उन्होंने पुराने सारे कानून रद्द कर दिए। पुराने न्यायाधीशों और वकीलों का काम बन्द कर दिया गया। देश के लिए कानून Codify करने के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की गई। नए कानून देश की नई परिस्थिति तथा सरकार की नई नीति के अनुसार होंगे।

चीन में तीन प्रकार के न्यायालय हैं: सुप्रीम पीपल्स कोर्ट (Supreme People's Court) चीन का सबसे ऊँचा न्यायालय है। Special People's Courts उन मुकदमों का निर्णय करती है जिनका सम्बन्ध रेलों, waterways इत्यादि से हो। एक और प्रकार के न्यायालयों का नाम है Comrade Workers' Courts.

सुप्रीम कोर्ट चीन का सर्वोत्तम न्यायालय है। देश भर के सब न्यायालय इसके अधीन हैं और यह उन सब पर निरीक्षण करता है। इसके दो भाग हैं, एक दीवानी और दूसरा फ़ौजदारी। इसके कई सदस्य हैं। इसके अध्यक्ष को National People's Congress ही मनोनीत करती है और वह ही हटाती है; यह सब कुछ साधारण बहुमत से ही होता है। सुप्रीम कोर्ट में अपीलें की [illegible] और मुकदमे सीधे भी सुने जाते हैं। Supreme People's [illegible] इसके सामने मुकदमे ला सकता है और सुप्रीम कोर्ट उनको सुनती है।

Local People's Courts तीन प्रकार की हैं। Higher People's Courts की संख्या २८ है और उनका स्थान हमारे हाई कोर्टों के समान है। Intermediate People's Courts की संख्या २०० के समीप है और वे हमारे District Courts के समान हैं। Basic People's Courts की संख्या ३,००० के समीप है। ऊँचे न्यायालयों की स्थापना के सम्बन्ध मे निर्णय केन्द्रीय सरकार करती है और शेष के सम्बन्ध मे स्थानीय सरकारें। Basic People's Courts दीवानी तथा फौजदारी मुकदमें सुनती है। वे समझौतों पर ज्यादा जोर देती हैं।

Special People's Courts कई प्रकार की हैं, Military Courts, Railway Courts, Transport Courts तथा Water Transport Courts। इनके ढाँचो का निर्णय National People's Congress करती है।

Comrade Workers' Courts की स्थापना १९५३ में की गई। ये न्यायालय पीपल्स कोर्ट से इस बात में भिन्न हैं कि ये वर्कर्स (Workers) द्वारा ही बनाये जाते है। परन्तु पीपल्स कोर्ट सरकार के नाम पर अपने फैसले करते और सुनाते हैं। कामरेडो की कचहरियों का उद्देश्य काम करने वालों को अच्छा बनाना और उन्हें डिसिप्लिन (Discipline) सिखाना है।

संविधान की धारा ७८ में ऐसा लिखा है कि न्याय करते समय पीपल्स कोर्ट स्वाधीन होती है और वे केवल कानून के नीचे होती हैं। प्रत्येक नागरिक की कानून के सम्मुख समानता है। इस बात से कोई अन्तर नहीं पडता कि वह स्त्री है या पुरुष या वह किसी जाति विशेष से सम्बन्ध रखता है या नहीं। न्यायालय अपना निर्णय कानून के अनुसार देते हैं। चीन के न्यायालय सरकार का एक अङ्ग हैं और वे किसी कानून को रद्द भी कर सकते हैं। चीन के न्यायाधीशों को सरकार की नीति के अनुसार चलना पड़ता है। इसी कारण वे स्वाधीन नहीं। अपना निर्णय देते समय वे अपने देश की नीति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के हित को भूल नहीं सकते।

चीन में न्यायालयों के अध्यक्ष लोगों द्वारा चुने जाते हैं। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी लोगों द्वारा होती है। सुप्रीम कोर्ट के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार नहीं करती बल्कि स्टैंडिंग कमेटी करती है। न्यायाधीश दो प्रकार से चुने जाते हैं। कुछ न्यायाधीश वे लोग हैं, जिन्होंने देश के लिए बहुत कार्य किया है। कुछ ऐसे भी हैं जो केवल कानून के स्नातक (graduate) हैं। सुप्रीम कोर्ट के कई प्रेजिडैण्ट कम्युनिस्ट पार्टी के लीडर थे। नियुक्ति से पहले नए जजों को थोड़ी देर के लिए ट्रेनिंग दी जाती है। चीनी जजो का वेतन बहुत थोड़ा है। कई जगह वेतन दो सौ रुपया है और कई जगह तीन सौ पचास अथवा चार सौ पचास प्रति मास है। इसका परिणाम यह है कि कोई जज मोटर कार नहीं रख सकता और उसे साधारण लोगो की तरह बसो में जाना पड़ता है।

चीन के न्यायालयों की यह विशेषता है कि प्रत्येक कचहरी के साथ कुछ assessors भी कार्य करते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि लोगों में यह भाव उत्पन्न होता है कि वे देश के स्वामी हैं और इस प्रकार देश की उन्नति

होती है और उत्पादन का कार्य भी बढता है। उन लोगों को assessor नियुक्त किया जाता है, जो उसी स्थान के हों और जिन्हें कार्य की विशेष जानकारी हो। Assessor लोग जजों की उनके काम में बहुत सहायता करते है। सारे assessor चुने जाते हैं और लगभग उनमें से आधी संख्या स्त्रियों की होती है। Assessor की अवधि दो वर्ष होती है और वह एक वर्ष मे १० दिन काम करता है। जज और assessor लोग बहुमत में निर्णय करते हैं।

धारा ७६ में ऐसा लिखा है कि प्रत्येक अपराधी को अपने बचाव का पूरा अधिकार है। वह अपनी रक्षा स्वय कर सकता है अथवा उसी कार्य के लिए किसी वकील को नियुक्त कर सकता है। अपराधी का अधिकार है कि वह जज से कह सके कि मुकदमे की और पडताल की जाए। वह कचहरी से यह भी कह सकता है कि कुछ और गवाहों को बुलाया जाए, जिनके नाम उसने दिए है। वह जज के बदलने की माँग भी कर सकता है।

१९४९ से पूर्व बहुत वकील थे किन्तु अब वैसी व्यवस्था नही। कोई व्यक्ति अपने निजी कार्य के लिए अपना कोई वकील नियुक्त नही कर सकता। सरकार वकीलों के नामों की एक लिस्ट तैयार करती है और अपराधी को उनमें से चुनने का अधिकार देती है। एक विशेष बात यह है कि वकील केवल अपराधी ही की सहायता नही करता बल्कि सरकार की भी सहायता करता है। अपराधी का मुकदमा लेकर भी वह सरकार के प्रति अपने कर्त्तव्य को नही भुला सकता। उसका कर्त्तव्य न केवल अपराधी को सहायता करना है बल्कि इसके साथ जज की भी मदद करना है ताकि वह ठीक निर्णय कर सके। देश का हित अपराधी के हित से ऊँचा और बडा है।

धारा ७६ मे लिखा है कि चीन मे पीपल्स कोर्ट के अधिवेशन गुप्त रूप से न हो बल्कि लोगों के सामने हों। जिन मुकदमो से देश की रक्षा खतरे मे पड़ती है वे मुकदमे गुप्त रूप से सुने जाते हैं। वे मुकदमे जो खुले तौर पर होते है उनमे जनता के किसी व्यक्ति को भी कचहरी मे जज के सामने अपने विचार रखने की आज्ञा है। यदि कोई सूचना किसी के पास हो तो वह जज के सामने रख सकता है। साधारण जनता में से कोई भी व्यक्ति उठकर अपने विचार जज और assessor के सामने रख सकता है। उनको इस कार्य की पूरी छुट्टी होती है।

चीन की कचहरियाँ वहाँ के निवासियों को अच्छा बनाने के लिए है। दीवानी मुकदमे मे समझौतों पर जोर दिया जाता है और दोनों पार्टियों से कहा जाता है कि वे आपस के झगड़ों को खुद ही निपटा लें।

मुकदमे करने का तरीका बहुत आसान है। मुकदमे जल्दी ही निपटा दिए जाते है। चीन में कचहरियाँ सभी के लिए खुली है चाहे व्यक्ति धनवान् हो या निर्धन, उसने अच्छे वस्त्र डाले हों या चीथड़े ; या उसकी जेब मे पैसे ज्यादा हो अथवा कम।

फौजदारी मुकदमे दो प्रकार के होते हैं। कुछ का सम्बन्ध राजनीति से होता है और कुछ का नही। जिन मुकदमों का सम्बन्ध राजनीति से होता

बहुत बुरे तरीके से किए जाते हैं। किसी प्रकार की दया नही दिखाई जाती। जिनके विरुद्ध कोई भी संशय हो उनका बहुत बुरी तरह से दमन किया जाता है। साधारण लोगों को सुधारने की कोशिश की जाती है ताकि वे अपने जीवन को सुधार लें।

कारावास का दण्ड प्रायः सख्त नही होता। किसी व्यक्ति को फाँसी की सजा नही दी जा सकती जब तक उस आदेश से हाईकोर्ट सहमत न हो। फ़ौजदारी मुकदमों की संख्या चीन में कम हो रही है और दीवानी मुकदमो की संख्या बढ रही है। दो-तिहाई मुकदमों का सम्बन्ध शादी से होता है।

चीन के जज लोगों के प्रति उत्तरदायी हैं। चीन की सुप्रीम कोर्ट के जज National People's Congress अथवा Standing Committee के सम्मुख उत्तरदायी है। इसका परिणाम यह है कि चीन के जज व्यवस्थापिका के अंग मात्र हैं। सुप्रीम कोर्ट का अध्यक्ष National People's Congress का सदस्य होता है और वह उसके कार्य मे भाग लेता है। रूस में तो सभी जज चुने जाते है किन्तु चीन मे केवल अध्यक्षों ही का चुनाव होता है।

यह ठीक है कि चीन का सविधान लोगों को कुछ आधारभूत (fundamental) अधिकार देता है, परन्तु अधिकारों की रक्षा सदा नही होती। इस कारण सरकार की कडी आलोचना भी होती है। वे लोग, जो सरकार के विरुद्ध हैं, उन पर कड़ी निगाह रखी जाती है और कचहरियों में उनकी कोई नही सुनता। देखने मे आया है कि जो लोग जेलो में भेजे जाते हैं उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार किया जाता है। लोगों को कानून के विरुद्ध बन्दी बना लिया जाता है और उन्हे तंग किया जाता है ताकि वे सरकार के पक्ष में कुछ कहे। यह बहुत बुरी बात है कि जजों को कम्युनिस्ट पार्टी के आदेशों के अनुसार अपने निर्णय देने पड़ते हैं।

पीपल्स प्रोक्योरेटोरेट (People's Procuratorate)—चीन के संविधान की एक विचित्र सस्था है People's Procuratorate। ऐसी ही मिलती-जुलती सस्था रूस में भी है और हो सकता है कि चीन ने रूस से ही इसकी नकल की हो। भिन्न प्रदेशों के लिए पृथक् Peoples Procuratorates हैं। इन सब के ऊपर सारे देश के लिए Supreme People's Procuratorate है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य यह है कि यह इस बात का ध्यान रखे कि सरकार के विभिन्न विभाग तथा अन्य अधिकारी कानून के अनुसार अपने-अपने कार्य करते हैं अथवा नही। Supreme People's Procuratorate अपने कार्य के लिए National People's Congress के सामने उत्तरदायी है। जब काँग्रेस का अधिवेशन नहीं होता तब वह Standing Committee के सामने उत्तरदायी होती है। Chief Procurator की नियुक्ति चार वर्ष के लिए की जाती है। इस संस्था को अधिकार प्राप्त है कि वह सुप्रीम कोर्ट अथवा अन्य न्यायालयों के सामने मुकदमे रखे और उन न्यायालयों का कर्तव्य है कि उन मुकदमों का कानून के अनुसार निर्णय करें।

नागरिकों के आधारभूत अधिकार तथा कर्त्तव्य (Fundamental Rights and Duties of Citizens)—संविधान की धारा ८५ से १०३ तक की धाराएँ चीन के नागरिकों के आधारभूत अधिकारों तथा कर्त्तव्यों से सम्बन्ध रखती हैं। संविधान में लिखा है कि चीन के सब नागरिक कानून के सामने समान हैं। जिन नागरिकों की आयु १८ वर्ष या उससे ऊपर है उनको मत देने का अधिकार है और वे चुनाव में उम्मीदवार भी बन सकते हैं। इस बात पर धर्म, जाति, शिक्षा, सम्पत्ति इत्यादि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अन्तर केवल इतना ही है कि पागलों को वोट देने का अधिकार नहीं। स्त्रियों और पुरुषों को वोट देने का अधिकार है और दोनों उम्मीदवार बन सकते हैं।

नागरिकों को बोलने की और प्रेस की तथा सम्मेलन और जुलूस इत्यादि की आज़ादी है। सरकार नागरिकों को इन अधिकारों की पुष्टि के लिए सुविधाएँ देती है। वैयक्तिक आज़ादी का अधिकार भी लोगों को दिया गया है। किसी प्राणी को तब तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता जब तक People's Procuratorate की आज्ञा नहीं ली जाती अथवा किसी न्यायालय का निर्णय ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता। नागरिकों के घर सुरक्षित हैं और सरकार उनमें आक्षेप नहीं कर सकती। इसी प्रकार सरकार लोगों की चिट्ठियों मे दखल नही दे सकती। चीन के नागरिक जहाँ चाहें वहाँ आज़ादी से रह सकते हैं और जब चाहे निवास-स्थान बदल सकते हैं।

चीन के नागरिको को काम करने का पूर्ण अधिकार है। इस अधिकार की पुष्टि के लिए सरकार ने बहुत से नये धन्धे आरम्भ किये है ताकि लोगो को न केवल काम ही मिल सके बल्कि उनकी अवस्था भी सुधर सके।

चीन के मजदूरों को आराम करने का अधिकार भी दिया गया है। इस अधिकार की गारण्टी के लिए सरकार ने काम करने के घण्टे और छुट्टियाँ नियत कर दी हैं। मजदूरों को और भी सुविधाएँ दी गई है ताकि वे अपने स्वास्थ्य को अच्छा बना सकें। चीन के मजदूरों को कई और अधिकार भी दिये गए है। बुढ़ापा, बीमारी इत्यादि की अवस्था मे उन्हे विभिन्न सुविधाएँ दी गई हैं। इस कार्य के लिए सरकार ने बीमा करने का प्रबन्ध भी किया है। स्वास्थ्य के लिए संस्थाएँ भी स्थापित की हैं।

चीन के नागरिको को शिक्षा का अधिकार भी है। इस अधिकार की पूर्ति के लिए सरकार ने बहुत से स्कूल खुलवाये है। इन स्कूलों मे विद्यार्थियों की मानसिक तथा शारीरिक तरक्की पर ध्यान दिया जाता है।

सरकार शिक्षा, साहित्य, कला, संस्कृति इत्यादि सम्बन्धी कार्यों में नागरिको की सहायता करती है ताकि वे अपने आप हर तरह से उन्नत हो सकें।

चीन में स्त्रियों को प्रत्येक विभाग में पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं। ऐसी अवस्था राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक इत्यादि क्षेत्रों में है। सरकार विवाह, कुटुम्ब, माता तथा बच्चों की भी रक्षा करती है।

चीन के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह [illegible]

अधिकारी के विरुद्ध लिख कर या जबानी शिकायत कर सके। यदि किसी नागरिक के किसी भी अधिकार का उल्लंघन सरकार का कोई भी अधिकारी करता है तो वह सरकार से उसका हरजाना ले सकता है।

चीन की सरकार चीन से बाहर रहने वाले चीनियों के अधिकारों की भी रक्षा करती है।

चीन की सरकार उन सभी लोगों को रक्षा देने को तैयार है जो अपने देश को छोड़कर चीन मे इसलिए आना चाहते हैं क्योंकि वे अपने देश में अपने कार्यों के कारण नही रह सकते।

चीन के नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने देश के संविधान और कानून के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करें। वे अपने कार्य को ठीक प्रकार से करें। देश में शान्ति बनाये रखने में सरकार की सहायता करें। सरकार की सम्पत्ति को कोई चीनी हाथ न लगाये और न ही उस को हड़प करे। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह देश की सम्पत्ति की रक्षा करे। प्रत्येक चीनी टैक्स देना अपना कर्त्तव्य समझे। प्रत्येक चीनी कर्त्तव्य जान कर अपने देश की रक्षा करे और फौज में भरती होकर अपने देश की सेवा करे।

चीनी कम्यून (The Chinese Communes)—चीनी सरकार ने देश भर में अनेक कम्यून स्थापित किये हैं। इन कम्यूनों ने देश के वातावरण मे एक प्रकार से क्रांति ला दी है। जहाँ ये कम्यून हैं वहाँ लोगों की सारी सम्पत्तियां कम्यून को सौंप दी गई हैं। सारी जमीनें भी कम्यूनों को दी गई हैं। सभी लोग कम्यून के लिए कार्य करते हैं और या तो कम्यून मे बैठकर अपना भोजन कर लेते हैं या फिर कम्यून से अपना भोजन लेकर घर जाकर खा लेते है। प्रत्येक कम्यून के पास Community Kitchen है। कहा जाता है कि कम्यूनों के स्थापित होने से स्त्रियों की अवस्था सुधर गई है। उन्हें रोटी नही पकानी पड़ती और बच्चों का खयाल भी नही करना पड़ता। ऐसी अवस्था मे वे अपना सारा समय देश के उत्पादन कार्य में लगा देती हैं। परन्तु एक दोष भी है। चीन देश मे दीवानी मुकदमेबाजी बढ़ गई है और वह प्रायः स्त्रियों से सम्बन्ध रखती है।

चीन के संविधान की रूस के संविधान से तुलना
(Comparison of Soviet Constitution with Chinese Constitution)

यदि हम चीन के संविधान की रूस के संविधान से तुलना करें तो हमें दोनों में कुछ समान बातें मिलेंगी और कुछ अन्तर होगा। जहाँ तक समानता का प्रश्न है, दोनो देशों की पृष्ठभूमि एक है। दोनों देशों की फिलासफी एक सी है। दोनों देशों की सरकार का ढांचा भी एक है। थोड़ा बहुत अन्तर इसलिए है कि दोनों देशों के इतिहास भिन्न हैं तथा उनकी समस्याएँ भी अलग-अलग हैं। इस बात से इनकार नही किया जा सकता कि कुछ बातों में चीन का संविधान रूस से भी आगे बढ़ गया है। ऐसा विशेषकर मार्क्स (Marx) के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में है। चीन

ने एक सदन की प्रणाली या परिपाटी को अपनाया है। National People's Congress का केवल एक सदन है। चीन में संघीय राज्य न होकर एकीय सरकार है। चीन के संविधान में Democratic Centralism का सिद्धान्त लागू होता है। यह सिद्धान्त न केवल सरकार के विभागों में है बल्कि कम्युनिस्ट पार्टी और आर्थिक योजनाओं में भी देखने को मिलता है। दोनों देशों में कम्युनिस्ट पार्टियां है, जिनके हाथों में सरकार का सारा कार्य है और वे ही लोगों के जीवन का नियन्त्रण करती हैं। दोनों में प्रजातन्त्र राज्य है और दोनों देशों में मजदूरों की हकूमत है। चीन की Standing Committee की तुलना रूस के Presidium of the Supreme Soviet से की जा सकती है। चीन के सविधान की धारा ३१ की तुलना रूस के संविधान की धारा ४६ से की जा सकती है। धारा ३१ स्टैंडिंग कमेटी से सम्बन्ध रखती है और धारा ४६ प्रेज़ीडियम से। थोड़ा सा अन्तर यह है कि चीन में स्टैंडिंग कमेटी जो चाहे कर सकती है परन्तु यदि रूस में प्रेज़ीडियम किसी मन्त्री को मनोनीत करती है अथवा निकालती है तो उसे सुप्रीम सोवियत की आज्ञा लेनी पड़ती है। चीन में जब National People's Congress का अधिवेशन नहीं होता तब कांग्रेस की दो कमेटियाँ स्टैंडिंग कमेटी के आदेशानुसार चलती हैं परन्तु ऐसी अवस्था रूस के प्रेज़ीडियम के साथ नहीं है। रूस में स्टैंडिंग कमेटी की शक्तियाँ तथा अधिकार बढ़ाये जा सकते हैं परन्तु रूस के प्रेज़ीडियम के नहीं। चीन में जब National People's Congress का अधिवेशन नहीं होता तब स्टैंडिंग कमेटी को Commissions of Inquiry नियत करने का अधिकार है परन्तु ऐसी शक्ति रूस के प्रेज़ीडियम के पास नहीं है।

यह ठीक है कि चीन की स्टैंडिंग कमेटी National People's Congress के प्रति उत्तरदायी है, परन्तु यह कांग्रेस की स्वामिनी बन सकती है। जो चाहे उससे करवा सकती है। चूंकि National People's Congress के एक हजार से भी अधिक सदस्य है और इसके अधिवेशन भी कभी-कभी होते है इसलिए सारी सत्ता स्टैंडिंग कमेटी के हाथों में आ गई है। स्टैंडिंग कमेटी के ऊपर यह प्रतिबन्ध है कि उसको कम्युनिस्ट पार्टी के आदेश के अनुसार चलना पड़ता है। सच तो यह है कि नैशनल पीपल्स कांग्रेस तथा स्टैंडिंग कमेटी दोनों को कम्युनिस्ट पार्टी के अधीन और आदेश के अनुसार कार्य करना पड़ता है।

चीन का सविधान इस बात पर ज़ोर देता है कि देश में केवल जनता ही सर्वसत्ताधारी है। सारी शक्तियाँ तथा अधिकार केवल लोगों के हैं। इस तथ्य की सिद्धि के लिए यह बताया जाता है कि वर्तमान सविधान के बनाने में लोगों ने भाग लिया। सविधान के मसौदे पर लोगों ने बहुत विचार-विमर्श किया। परन्तु आलोचकों का कहना है कि यह केवल दिखावा ही था। संविधान उसी रूप में पास हुआ, जिसमें वह लोगों के सामने रखा गया और लोगों के विचार-विमर्श का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। ऐसा ही दिखावा रूस में किया गया जब कि वहाँ का सं
१९३६ में पास हुआ।

चीन के सविधान में देश के उत्पादन के सारे साधन सरकार की

नही बनाये गए। कुछ साधन व्यक्तिगत लोगों के हाथों में रहने दिये गये हैं और कुछ co-operative societies के हाथो में। ऐसा होते हुए भी चीन का संविधान रूस के संविधान से भिन्न नही। इसका कारण यह है कि चीन की सरकार उत्पादन के सभी साधनो को अपने हाथों में लेने के लिए कटिबद्ध है। अन्तर केवल समय का है।

चीन और रूस के सविधानों में एक और प्रकार से भी अधिक अन्तर नही है। रूस के सविधान मे सरकार को "Socialist State of Workers and Peasants" कहा गया है परन्तु चीन राज्य को "People's Democratic State led by the working class and based on the alliance of workers and peasants" बताया गया है। दोनों राज्यो मे मजदूरो तथा कृषकों की प्रधानता है।

चीन का सविधान रूस के सविधान से कई बातो में भिन्न भी है। रूस के संविधान मे कोई ऐसा अधिकारी नही, जिसकी तुलना चीन के राष्ट्रपति (Chairman) से की जा सके। रूस के प्रेजिडैण्ट के पास कोई ऐसे अधिकार नही जिनका वह स्वयं प्रयोग कर सके। सच तो यह है कि रूस के संविधान में प्रेजिडैण्ट का नाम तक नहीं। Presidium of the Supreme Soviet के प्रेजिडैण्ड को साधारण रूप से रूस का प्रेजीडैण्ट कहा जाता है। कानून की नजर में प्रेजीडियम ऑफ दी सोवियत यूनियन को सामूहिक रूप से रूस का प्रेजिडैण्ट कहते हैं। इसके विपरीत चीन के संविधान मे People's Republic of China के Chairman की विशेष व्यवस्था है। चीन का Chairman चार वर्षों के लिए चुना जाता है और वह चुनाव नैशनल पीपल्स कांग्रेस करती है। चेयरमैन के पास ऐसे अधिकार और शक्तियाँ है, जिनका प्रयोग वह स्वतन्त्र रूप से नैशनल पीपल्स कांग्रेस की सम्मति के बिना कर सकता है। चीन का चेयरमैन वहाँ की सेनाओं का सेनापति होता है। वह कौंसिल ऑफ नैशनल डिफैंस का भी अध्यक्ष होता है। आवश्यकतानुसार वह सुप्रीम स्टेट कांफ्रेंस का अधिवेशन भी अपनी अध्यक्षता में बुला सकता है। उसका यह कर्तव्य है कि वह सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस के निर्णयों को नैशनल पीपल्स कांग्रेस, स्टैंडिंग कमेटी, स्टेट कौंसिल इत्यादि के सम्मुख रखे। चीन के विधान मे "Collective President" के सिद्धान्त को कोई स्थान नहीं दिया गया।

चीन के वायस चेयरमैन (Vice Chairman) जैसा कोई अधिकारी रूस के संविधान मे नही है। इसी प्रकार चीन की सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस के बराबर रूस में कोई संस्था नही। यह ठीक है कि सुप्रीम स्टेट कान्फ्रेंस के अधिकारों और शक्तियो का विस्तारपूर्वक वर्णन चीन के सविधान में नही परन्तु क्योकि इसके सदस्य चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं अतः यह व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका पर अपना अधिकार रखती है।

रूस में संघीय सरकार है और वहाँ के प्रांतों के पास कुछ शक्तियाँ और अधिकार हैं। इसके विपरीत चीन में एकीय (Unitary) सरकार है। इसका अर्थ नही कि चीन के भिन्न-भिन्न प्रांतों या प्रदेशों के पास कोई शक्तियाँ नही।

रूस की व्यवस्थापिका के दो सदन है और उनके नाम हैं—सोवियत ऑफ दी

यूनियन (Soviet of the Union) और सोवियत ऑफ नेशनैलिटीज (Soviet of Nationalities)। इसके विपरीत चीन मे नैशनल पीपल्स काग्रेस का केवल एक सदन है, जिसके १२२६ सदस्य है। यह बात याद रखने वाली है कि चीन मे चुनाव गुप्त मतदान द्वारा नही होते। चुनाव हाथ खडा करके होते हैं। इसका परिणाम यह है कि कम्युनिस्ट पार्टी का चुनावो पर पूर्ण नियन्त्रण है। कई प्रकार से मतदाताओं पर प्रभाव डाला जा सकता है ताकि वे किसी विशेष व्यक्ति के लिए वोट दे।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (Communist Party of China)—जिस प्रकार रूस की कम्युनिस्ट पार्टी का रूस के सविधान मे एक विशेष स्थान है, उसी प्रकार चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव सर्वव्यापी है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का विधान पहले १६४५ मे पास हुआ था, परन्तु आजकल जो विधान लागू है, वह १६५६ में बनाया गया था।

१६४६ मे च्यांग कई शेक की सरकार को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने हटा कर देश से वाहर निकाल दिया। कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव इसलिए भी अधिक है क्योकि इसने कम्युनिस्टो को आजादी दिलाने मे मदद की। कम्युनिस्ट पार्टी का ध्येय चीन मे कम्युनिज्म स्थापित करना है। यह पार्टी कार्ल मार्क्स (Karl Marx) और लेनिन (Lenin) के सिद्धातों पर बडी सख्ती से चलती है।

जब तक चीन मे साम्यवादी राज्य पूर्ण रूप से स्थापित नही हो जाता तब तक देश की नीति यह रहेगी कि धीरे-धीरे देश भर मे उद्योग-धन्धे चलाए व बढाए जाएँ। कम्युनिस्ट पार्टी का एक और कार्य यह है कि यह उत्पादन के सारे साधनों को सरकार के अधीन कर दे। ऐसा करते हुए वह उन साधनो को साधारण व्यक्तियो अथवा कोआपरेटिव सोसाइटियों से छीन कर अपने हाथ में ले ले। कम्युनिस्ट पार्टी का यह भी कर्त्तव्य है कि वह शोषण को भी रोके। सरकार को इस नियम पर चलना चाहिए कि जितना कोई कार्य करे उतना ही उसको धन दिया जाए। पूँजीपतियों तथा शोषको का अन्त होना चाहिए और उत्पादन के सभी साधन मजदूरो और कृपको के हाथो में होने चाहिएँ। ऐसा करके देश मे साम्यवादी राज्य स्थापित होना चाहिए।

कम्युनिस्ट पार्टी का यह कर्त्तव्य है कि वह देश के उत्पादन को बढाने के लिए योजनाएँ तैयार करे और जितने भी उद्योग-धन्धे चलाए जा सकते है, चलाए ताकि चीन के उद्योग-धन्धे, कृपि तथा यातायात के साधनों की उन्नति हो और रक्षा सम्बन्धी साधनों की उन्नति भी सब प्रकार से हो। कम्युनिस्ट पार्टी का यह कर्त्तव्य है कि वह भरसक प्रयत्न करे जिससे देश में विज्ञान, सस्कृति तथा technology की उन्नति हो और चीन संसार के सभ्य देशो से सर्व प्रकार से आगे हो। पार्टी का यह कर्त्तव्य है कि लोगों की आवश्यकताओ को पूरा करने का पूरा-पूरा यत्न करे। कम्युनिस्ट पार्टी का यह कर्त्तव्य है कि वह अल्पसंख्यक जातियों के लिए विशेष प्रबन्ध करे। उनकी आर्थिक और सांस्कृतिक अवस्था को सुधारे ताकि वे अन्य जातियो के साथ ठीक प्रकार से मुकाबला कर सकें। कम्युनिस्ट पार्टी स्थानीय राष्ट्रीयता की विरोधी है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का कर्त्तव्य है कि वह लोगो की "Democratic

Dictatorship" को सुदृढ बनाने की कोशिश करे। ऐसा करने से ही साम्यवाद स्थिर रह सकता है। कम्युनिस्ट पार्टी को चीन की सभी संस्थाओं की पुष्टि करने के लिए यत्न करना चाहिए। पार्टी को मजदूरों और किसानों की सन्धि को सुदृढ़ बनाना चाहिए। इसे उन सभी संस्थाओं को इकट्ठा करना चाहिए, जिनसे देश में परस्पर सहानुभूति बढे और राष्ट्रीयता की भी उन्नति हो। देशद्रोहियों के विरुद्ध लड़ने के लिए पार्टी को सदा तैयार रहना चाहिए। जिन चीजो से देश की रक्षा शिथिल होती है, उन सभी को बन्द कर देना चाहिए। पार्टी का कर्त्तव्य है कि वह लोगों की सहायता से फारमूसा को आजाद कराये।

कम्युनिस्ट पार्टी को उन सभी लोगो, संस्थाओं इत्यादि की सहायता करनी चाहिए जोकि ससार के हित के लिए कार्य करते है। कम्युनिस्ट पार्टी को सभी कम्युनिस्टो को एक प्लेटफार्म पर लाकर काम करना चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को यह न भूलना चाहिए कि पार्टी और देश के हित पृथक्-पृथक् नहीं हैं बल्कि एक हैं। पार्टी का यह कर्तव्य है कि वह पूरे दिल से लोगों की सेवा करे। सब काम उनकी सलाह से और उनकी भलाई के लिए करे।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी लडाई करने वाली एक संस्था है। इसके सदस्यो के लिए इकट्ठा रहना अनिवार्य है। उनको पार्टी का भी कहना मानना चाहिए। पार्टी की ताकत को कभी भी कम न होने देना चाहिए। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी सदस्यों से यह मांग करती है कि वे पार्टी के हित को अपने हित से ऊपर समझे और लोगो को प्रेम से एक दूसरे के समीप लाये।

कम्युनिस्ट पार्टी Democratic Centralism के सिद्धान्त पर चलती है। इसका अर्थ यह है कि पार्टी की सब संस्थाओं का चुनाव होता है। पार्टी की सबसे बड़ी संस्था National Party Congress है और सबसे छोटी संस्था Local Party Congress है। National Party Congress, Central Committee को चुनती है। National Party Congress और Local Party Congress अपने-अपने कार्य के लिए उत्तरदायी हैं। छोटी संस्था का कर्त्तव्य है कि वह बड़ी संस्था के कहने के अनुसार चले और कार्य करे।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के वे सब लोग सदस्य बन सकते हैं, जो काम करते है परन्तु लोगों का शोषण नहीं करते। उनको पार्टी के कहने के अनुसार काम करना पड़ता है। जो निर्णय पार्टी करती है उनके लिए वह स्वीकार्य होता है। उन्हें पार्टी का चन्दा भी देना पड़ता है और पार्टी के लिए काम भी करना पड़ता है। पार्टी के सदस्यों के कई अधिकार हैं और कई कर्तव्य। पार्टी के सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे सदा पार्टी ही का ध्यान रखें। अपने स्वार्थ के लिए पार्टी को हानि न पहुँचायें। जो काम पार्टी किसी सदस्य को दे वह उसे दिल लगा कर और जोश से करे। उनका कर्त्तव्य है कि वह काम करने वाले लोगों की योग्यता को बढ़ाएं ताकि वे अच्छे से अच्छा कार्य कर सकें। सदस्यों को पार्टी के सामने सदा सच बोलना चाहिए। कभी धोखा नहीं देना चाहिए।

पार्टी के प्रत्येक सदस्य का यह अधिकार है कि वह बिना किसी रोक-टोक के

पार्टी के कार्य में भाग ले सके। उसका यह अधिकार है कि वह पार्टी की मीटिंगों में शामिल हो सके और पार्टी की नीति के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट कर सके। यदि वह समझता है कि पार्टी ठीक प्रकार से कार्य नही करती तो वह पार्टी की आलोचना भी कर सकता है।

जहाँ तक पार्टी के संगठन का प्रश्न है, नैशनल पार्टी कांग्रेस सबसे ऊपर है। जब इसका अधिवेशन नहीं होता तब सेण्ट्रल कमेटी सबसे ऊपर होती है। नैशनल पार्टी कांग्रेस से नीचे भी संस्थाएँ होती है। विभिन्न स्थानो मे पार्टी की विभिन्न संस्थाएँ हैं।

Communist Youth League of China कम्युनिस्ट पार्टी के अधीन कार्य करती है। इसके सदस्य कम्युनिस्ट पार्टी का बहुत सा कार्य करते है। यूथ लीग उत्पादन के कार्य को बढ़ाने और अच्छा करने मे सहायता देती है।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के दो भाग है। एक का नेता है Liu Shao-Chi और दूसरे का नेता है, Chou En-lai। Mao Tse tung इन दो भागो को इकट्ठे मिलाए रखता है। उसके मरने के बाद झगड़ा अनिवार्य है।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी धर्म के विरुद्ध है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि धर्म का लोगो पर बड़ा प्रभाव है और इसलिए सख्ती से अथवा फौजों से धर्म का नाश नही किया जा सकता। चीन की धर्मनीति यह है कि वह उन धर्मानुयायियों को कुछ नही कहती जिनका सम्बन्ध अन्य देशों मे भी है, परन्तु चीन के अपने धर्मों के साथ बड़ी सख्ती की जाती है। इस प्रकार इस्लाम और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के साथ सख्ती नहीं की जाती। कई बार मिशनरी लोगों के साथ बहुत बुरा सलूक किया जाता है, परन्तु ऐसा होने पर भी वे अपने धर्म का कार्य चीन में रह कर करते रहते हैं।

कम्युनिस्ट पार्टी का सरकार की मशीनरी पर बड़ा अधिकार है। कम्युनिस्ट पार्टी के बड़े-बड़े नेताओं को सरकार की बड़ी-से-बड़ी नौकरियाँ दी जाती हैं ताकि वे देश को अपने काबू में रख सकें। सरकार के प्रत्येक विभाग में कम्युनिस्ट पार्टी की अपनी संस्था है।

बड़े मामलों पर कम्युनिस्ट पार्टी सरकार से मिलकर आदेश जारी करती है और इस प्रकार सरकार और पार्टी दोनों इकट्ठे दिखाई देते हैं। स्टैंडिंग कमेटी को यह अधिकार दिया गया है कि वह सरकार के किसी विभाग मे भी हस्तक्षेप कर सके और किसी भी बात को रद्द कर सके।

कम्युनिस्ट पार्टी का फौजों पर भी नियन्त्रण है। कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत से नेता फौज में बड़े-बड़े स्थानों पर नियत हैं। सरकार के भी कई बड़े-बड़े अधिकारी पहले फ़ौज में थे। कम्युनिस्ट पार्टी और फौजों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उनका आपस मे कभी झगड़ा नही हो सकता। चीन की फौजों की ताकत को बढ़ाने मे कम्युनिस्ट पार्टी का बड़ा हाथ है। यह कम्युनिस्ट पार्टी ही है, जिसने सैनिकों मे आत्मविश्वास और जोश भरा हुआ है।

कम्युनिस्ट पार्टी का चीन में सर्वव्यापी प्रभाव है। पार्टी की .. [illegible] सिद्ध

देश भर में कुछ भी नहीं हो सकता। जो कोई चीन में उन्नति करना चाहता है उसके लिए एकमात्र यही मार्ग है कि वह पहले कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बने और उसके अधिकारियों का विश्वासपात्र बने। जो पार्टी के आदेश को नहीं मान सकते वे उन्नति भी नहीं कर सकते।

यदि हम चीन के संविधान का आलोचनापूर्ण अध्ययन करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि चीन में एक फौजी राज्य (Military dictatorship) है। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी लोगों के जीवन को सब प्रकार से नियन्त्रित करती है। संविधान में कुछ ही क्यों न लिखा हो, वास्तव में लोगों के लिए कोई आजादी नहीं। वे अपनी इच्छा से अपने जीवन को व्यतीत नहीं कर सकते। उन्हें सरकार अथवा कम्युनिस्ट पार्टी के आदेश के अनुसार ही चलना पड़ता है। यह ठीक है कि इस फौजी हुकूमत की सहायता से चीन ने थोड़े समय में ही बड़ी उन्नति की है, परन्तु जो बलिदान चीनियों ने दिया है वह बहुत ज्यादा है।

चीन के नेता मुंह से कुछ भी क्यों न कहें, पर उन पर कोई विश्वास नहीं किया जा सकता। चीन के नेता चीन को आगे ले जाने की धुन में हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे सभी कुछ करने को तैयार हैं। यदि झूठ से काम चलता है तो वे झूठ बोलने के लिए तैयार है। यदि लड़ाई से काम निकल सकता है तो वे लड़ने को तैयार है। उनके शब्द कोश में मित्रता, विश्वास, सत्यता इत्यादि किसी भी गुण का स्थान नहीं।

प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है कि वह वर्तमान अवस्था की गम्भीरता की ओर ध्यान दे। हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि हमारा ऐसे देश के साथ वास्ता है, जो एक छोटे से स्वार्थ के लिए युद्ध तक कर सकता है, जिसको पुरानी अथवा नई मित्रता का कोई विचार नहीं और जो अपने देश की खातिर दूसरे देशों को कुचलने के लिए तैयार है। ऐसे शत्रु से सामना करने का केवल ऐक ही मार्ग है और वह यह कि हम देश भर में हजारों की संख्या में फौजी नेता पैदा करें ताकि वे चीन के साथ लड़ने के लिए देश को तैयार कर सकें। हमें यह न भूलना चाहिए कि चीन के वर्तमान नेताओं ने जो कुछ प्राप्त किया है वह केवल सैनिक शक्ति के बल से प्राप्त किया है और उनका मुकाबला केवल सैनिक शक्ति ही से किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

Suggested Readings

Agarwala, A.N. : The Government and Politics of China.

Boorman, H.L. : Contemporary China and the Chinese, 1959.

Gluckstein, Yagel : Mao's China : Economic and Political Survey, London, 1957.

Hinton, Ike, Palmer, Callarad and Kahin : Major Governments of Asia. New York, 1958 (Governments of *China*, *Japan*, India, Pakistan and *Indonesia*).

Linebarger, Chu and Burks : Far Eastern Government and Politics : China and Japan, New York, 1954.
Liu Shao-Chi : Report on the Draft Constitution, Peking, 1954.
Mao Tse-Tung : The Chinese Revolution and the Chinese Communist Party.
Mao Tse-Tung : On People's Democratic Dictatorship, Peking, 1953.
Moraes, Frank : Report on Mao's China, New York, 1953.
Mukherjee, Sailakumar : A Visit to New China, Calcutta, 1956.
Perleberg, Marx : Who is who in Modern China.
Quigley, H. S. : China's Politics in Perspective, Bombay, 1962.
Sundarlal : China To-day.
Tang, Peter S. H. : Communist China Today, New York 1958.
Townsend, Peter : China Phoenix. The Revolution in China, London, 1955.
Tung Pi-Wu : New China Advances to Socialism.

जापान का संविधान

(CONSTITUTION OF JAPAN)

The Meiji Constitution

जिस समय जापान ने १९४५ में मित्र राष्ट्रों के हाथ आत्मसमर्पण किया, उस समय वह १८८९ के मेइजी संविधान (Meiji Constitution) के अधीन था यद्यपि उस संविधान ने जापान के सम्राट् को राज्याध्यक्ष की स्थिति प्रदान व थी, तथापि उसका पद इंगलैण्ड के राजा के समान न था। वह एक सार्वभौम शासक था। वह किसी भी विधि के आधीन नहीं था, इस लिए उसे अपदस्थ भी नहीं किया जा सकता था। वह सैनिक शक्तियों का प्रधान भी था। वह श्रेष्ठ-नीतिज्ञों (जेनरो) (older statesmen called 'Genro') की मंत्रणा पर जापान के प्रधान मंत्री को चुनता था। वह मन्त्रिमंडल की मंत्रणानुसार कार्य नहीं करता था, किन्तु उद्यमी अधिकारियों व विभागाध्यक्षों की परामर्शमात्र सेवाएँ स्वीकार करता था। प्रधान मन्त्री, जिसे सम्राट् चुनता था, अपने सहयोगियों का चुनाव करता था और वह उसकी कैबिनिट के सदस्य होते थे। मन्त्री के लिए संसद् (Diet) का सदस्य होना आवश्यक न था। एक संवैधानिक परम्परा के अनुसार किसी कर्मठ सैनिक या जलसैनिक का कैबिनिट में रखना आवश्यक था। फलतः जापान की राजनीति पर सेना के प्रभाव का आधिपत्य बना रहता था। संसद् में पराजित होने पर या विश्वासा-भाव के प्रदर्शनोपरान्त भी कैबिनिट अपना त्यागपत्र न देती थी। कैबिनिट के अतिरिक्त एक प्रिवी परिषद्' (Privy Council) भी थी जिसमें एक प्रैजीडेंट, एक वाइस-प्रैजीडेंट और प्रधान मन्त्री की मंत्रणा पर सम्राट् द्वारा मनोनीत २४ सदस्य होते थे। प्रिवी परिषद् केवल आवश्यकता के समय सम्राट् को परामर्श देती थी।

जापान की व्यवस्थापिका को डाइट (Diet) कहते थे। इसमें दो आगार (Houses) थे। बड़े आगार का नाम हाउस ऑफ पियर्स (House of Peers) था जिसकी सदस्य संख्या ४०९ थी। इसमें सम्राट् के वंश के २० वर्ष की आयु से बड़े सदस्य, राजकुमार, कुलीन पुरुष (Marquises, Counts, Viscounts, Barons), इम्पीरियल अकाडमी के सदस्य, करदाताओं के कुछ प्रतिनिधि व कुछ सुविख्यात पुरुष सम्मिलित होते थे। निर्वाचित सदस्य सात वर्षों के लिए नियुक्त किये जाते थे। यह सच है कि वित्त-बिल (Money bill) केवल लोक सभा (House of Representatives) में प्रस्तावित किये जा सकते थे, परन्तु पियर्स सभा उन्हें संशोधित ही नहीं अपितु अस्वीकार भी कर सकती थी। अन्य दशाओं में पियर्स सभा की शक्तियाँ समान थीं।

छोटे आगार का नाम लोक सभा (House of Representatives) था, जिसमें

४५० सदस्य थे। उनका चुनाव २५ वर्ष से अधिक आयु के लोग करते थे। इस सभा का कार्यकाल केवल चार वर्ष था, परन्तु सम्राट् इसे पहले भी भंग कर सकता था। इस सभा की शक्तियाँ बहुत सीमित थी।

१६४६ का संविधान (The Peace Constitution of 1946)—१५ अगस्त १६४५ को जापान ने आत्मसमर्पण किया। सितम्बर १६४५ में मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जनरल मैकार्थर के नेतृत्व में उस पर अधिकार कर लिया। जनरल मैकार्थर ने जापान की सरकार को सविधान में संशोधन करने तथा उसमें पाँच लोकतन्त्रात्मक सुधारो को स्थान देने का आदेश दिया। यह सुधार थे—स्त्रियो को स्वतन्त्रता देना, श्रम संघ आन्दोलन को शक्ति देना, सामाजिक शिक्षा को लोकतन्त्रात्मक रूप देना व ऐसे कानूनो व रिवाजों का भंग करना जिन्होने जनता को भयभीत कर रखा था और राज्य के आर्थिक व वित्तीय संगठन के लोकतन्त्रात्मक रूप को बिगाड़ दिया था। इसी नीति के अनुसरणमात्र से १६४६ में नये सविधान का निर्माण हुआ। ३ मई, १६४६ को इसका श्रीगणेश हुआ। इस संविधान को 'शान्ति संविधान' ('Peace Constitution') भी कहते है क्योकि इसमें युद्ध-त्याग व स्त्रियों के अधिकारों के प्रति सम्मान की विशेषताओ को ग्रहण किया गया है। इसमें एक प्रस्तावना, ११ अध्याय व १०३ धारायें है। इसकी मुख्य-मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार है :—

विशेषताएँ (Main Features)

(१) प्रथम वस्तु जो जापान के सविधान के पाठक को आकर्षित करती है वह प्रस्तावना (Preamble) का होना है। यह समस्त राष्ट्रों के साथ शान्ति व सहयोग रखने पर बल देती है। यह युद्ध की निन्दा करती है और शासन को एक पावन संरक्षक (Sacred trust) घोषित करती है। शासनसत्ता का स्रोत जनता है और उसका संचालन भी उसके प्रतिनिधियो को सौंपा गया है। यह घोषित किया गया है कि जापान की जनता अपनी सुरक्षा व बचाव के हेतु विश्व के शान्तिप्रिय राष्ट्रो के न्याय व सद्भाव पर विश्वास रखने में दृढ़ संकल्प रखती है। वह उस अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था में एक सम्मानित स्थान ग्रहण करना चाहती है जिसका निर्माण व ध्येय संसार मे सदा के लिए शान्ति की सुरक्षा रखना तथा दासता, अत्याचार, शोषण व असहिष्णुता के निष्कासन के हेतु किया गया है। यह भी घोषित किया गया है कि समस्त लोगों को शान्ति से रहने व भय तथा अभाव से मुक्त रहने का पूर्ण अधिकार है। घोषणा में इस विषय की भी चर्चा की गई है कि कोई भी राष्ट्र केवल अपने प्रति ही [illegible] है। राजनैतिक नैतिकता के नियम सर्वव्यापी है और उनका [illegible] लिए वाछनीय है जो अपनी सार्वभौम शक्ति बनाए रखना चाहते हैं [illegible] पर अन्य राष्ट्रों के साथ अपने सार्वभौम सम्बन्ध रखने में विश्वास [illegible] जापान के लोग अपने राष्ट्रीय सम्मान, दृढ संकल्प और समग्र साधनों [illegible] उद्देश्यों की सिद्धि में लगाने की प्रतिज्ञा करते हैं।

(२) जापान के संविधान की दूसरी विशेषता 'युद्ध का त्याग' (R[illegible] of War) करना है। दूसरे अध्याय में स्पष्ट कर दिया गया है कि न्याय [illegible]

आश्रित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के विचार से यथार्थतः प्रेरित होकर जापान के लोग सदा के लिये यह अस्वीकार करते हैं कि युद्ध राष्ट्र का सार्वभौम अधिकार है या अन्य राष्ट्रों के साथ मतभेद का निराकरण करने के लिए शक्ति या धमकी का प्रयोग करना न्यायसंगत है। ऐसे कार्यों के लिए जापान की जल, थल या वायु सेना व अन्य शक्ति के साधन कभी भी प्रयुक्त नहीं होंगे। जापान युद्ध करने के अधिकार को कदापि मान्यता नहीं देगा।

(३) संविधान की अन्य मुख्य विशेषता जनता के अधिकारों व कर्त्तव्यों (Rights and duties of citizens) को स्थान देना है। इन अधिकारों व कर्त्तव्यों की चर्चा संविधान के तीसरे अध्याय में की गई है। १० से लेकर ४० तक अनुच्छेदों का सम्बन्ध इसी महत्त्वपूर्ण विषय से है। इस अध्याय में यह कहा गया है कि जापान की विधि द्वारा वे शर्तें निर्धारित की जावेंगी जो किसी को जापान का नागरिक बना सकती है। मनुष्यों को मूल अधिकारों का आनन्द भोगने से प्रतिबन्धित नहीं किया जावेगा। संविधान द्वारा प्रतिभूत अधिकार वर्तमान मनुष्यों एवं उनकी भावी पीढ़ियों को निरन्तर व अक्षत अधिकारों की भाँति प्रदान किए जावेंगे। संविधान ने जनता के लिए जिन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं की प्रतिभूति की है उन्हें उनका निरन्तर चौकन्नापन ही सुव्यवस्थित रखेगा; लोग इन अधिकारों व स्वतन्त्रताओं के प्रति दुर्भाव रखने से बचेंगे और उन्हें लोक-कल्याण के लिए प्रयुक्त करने पर उत्तरदायी होंगे। सब मनुष्यों की मर्यादा सुरक्षित रहेगी और विधायन तथा राजकीय विषयों में उनका जीवनाधिकार, स्वतन्त्रता तथा प्रसन्नता की खोज ही, लोक-कल्याण की सीमाओं के भीतर सर्वोच्च चिन्तन होगा।

विधि की दृष्टि में सब मनुष्य समान हैं और राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक सम्बन्धों में जाति, मत, लिंग, सामाजिक पद या पारिवारिक उत्पत्ति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा। कुलीनता (Peerage) को मान्यता नहीं दी जावेगी। किसी विशेषाधिकार के आधार पर कोई प्रतिष्ठा, ख्याति या महानता नहीं मिलेगी और ऐसी कोई देन उस मनुष्य के जीवन से आगे नहीं चल सकेगी जो उसका धारक है। लोगों को अपने लोकाधिकारियों को चुनने व उन्हें पदच्युत करने का अदेय अधिकार प्राप्त होगा। यह स्पष्ट किया गया है कि सारे लोकाधिकारी किसी विशेष जन-समुदाय या वर्ग के नहीं वरन् वे सारी जनता के सेवक है। उनके निर्वाचन के विषय में सर्व प्रौढ मताधिकार (Universal Adult Suffrage) की प्रतिभूति की गई है। समस्त निर्वाचनों में शलाका की गोपनीयता (Secrecy of the ballot) अक्षत रूप से रखी जावेगी और किसी भी मतदाता को अपनी चुनाव में दी गई पसन्द पर खुले या छुपे रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जावेगा।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी हानि के प्रतिकार, लोकाधिकारी के निष्कासन, किसी विधि, अध्यादेश व निर्देश के संशोधन या उन्मूलन या वृद्धि, या अन्य विषयों में शान्तिपूर्ण याचना प्रस्तुत करने का पूर्ण अधिकार है। ऐसी याचना प्रस्तुत करने में उसके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जावेगा। यदि किसी मनुष्य को किसी अवैधानिक

कार्य या लोकाधिकारी के हस्तक्षेप से कोई क्षति पहुँची है, तो वह राजकीय नियमों के अनुसार उस की क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है। किसी मनुष्य को किसी प्रकार से बन्दीगृह में नहीं रक्खा जावेगा। अनैच्छिक दासता, सिवाय किसी अपराध हेतु दण्ड के वास्ते, वर्जित है। विचार व अन्तःकरण की स्वतन्त्रता अक्षत रूप से मान्य होगी। समस्त लोगों के लिए धर्म की स्वतन्त्रता घोषित की गई है। किसी भी धार्मिक संगठन को कोई विशेषाधिकार न होगा और न वह कोई राजनैतिक शक्ति का प्रयोग करेगा। किसी धार्मिक कृत्य, पर्व, रिवाज या अवसर पर भागी बनने मे किसी भी व्यक्ति को बाध्य नहीं किया जाएगा। राज्य व उसका प्रत्येक विभाग धार्मिक शिक्षा व प्रत्येक प्रकार के धार्मिक कृत्यो से वंचित रहेगा। सभा, संस्था, भाषा, प्रकाशन व अन्य प्रकार की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रताओं को स्वीकार किया गया है। प्रत्येक प्रकार का संवाद-नियन्त्रण (Censorship) अमान्य होगा और भाषा व संवादवाहन की गोपनीयता भी अभंग होगी। प्रत्येक मनुष्य को अपना निवास स्थान चुनने व बदलने की स्वतन्त्रता होगी। वह कोई भी ऐसा व्यवसाय करने मे स्वतन्त्र होगा जो जन-कल्याण में बाधक सिद्ध नहीं होता। किसी विदेशी स्थान पर जाने या अपनी नागरिकता से वंचित होने की भी प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता होगी। शिक्षा के क्षेत्र मे स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा गया है।

केवल दोनों पक्षो की पारस्परिक अनुमति के आधार पर ही विवाह हो सकेगा और इसकी व्यवस्था का आधार पति-पत्नी के समान अधिकार व उनका पारस्परिक सहयोग होगा। विधियो के निर्माण के समय वैवाहिक पक्ष की पसन्द, साम्पत्तिक अधिकार, उत्तराधिकार, स्थायी निवास की पसन्द, परित्याग व वैयक्तिक मर्यादा और दोनों पक्षो की अनिवार्य समानता के दृष्टिकोण से विवाह व परिवार से सम्बन्धित अन्य विषयो पर ध्यान रखा जावेगा।

सब लोगो को एक शिष्ट व सुव्यवस्थित जीविका के न्यूनतम स्तरों को बनाये रखने का अधिकार होगा। जीवन के सारे क्षेत्रों मे राज्य ऐसे प्रयत्न करेगा जिससे सामाजिक कल्याण, सुरक्षा व लोक स्वास्थ्य को प्रोत्साहन मिले। विधि द्वारा निर्धारित मान्यताओं के अन्तर्गत सब लोगो को अपनी योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। उन्हे यह भी वचन देना आवश्यक होगा कि उनके पुत्र व पुत्रियाँ उनके सरक्षणाधीन रहकर वह साधारण शिक्षा अवश्य ग्रहण कर रहे हैं जिसकी विधि द्वारा व्यवस्था की गई है। ऐसी शिक्षा मुफ्त होगी।

सब मनुष्यो को कार्य करने का अधिकार होगा। काम करने की दशाओं के स्तर, पारिश्रमिक, मजदूरी, काम का समय तथा विश्राम आदि की व्यवस्था विधि द्वारा होगी। बच्चों का शोषण वर्जित होगा। इस विषय की भी प्रतिभूति की गई है कि श्रमिक अपने को संगठित रखने व सामूहिक रूप से कार्य करने का अधिकार रखते हैं।

सम्पत्ति रखने के अधिकार की अक्षतता को भी मान्यता दी गई है, किन्तु राज्य जनकल्याण के हित में साम्पत्तिक अधिकारो पर नियन्त्रण लगा सकता है। उचित

क्षतिपूर्ति के दिये जाने पर राज्य निजी सम्पत्ति को सार्वजनिक कार्यों में ले सकता है। लोगों को विधि द्वारा लगे हुए कर देना भी आवश्यक रखा गया है।

किसी भी मनुष्य को जीवन व स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जावेगा और न उस पर कोई अपराधात्मक दंड ही लागू होगा जब तक कि विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का प्रयोग न कर लिया जावे। किसी भी मनुष्य को न्यायालय की शरण लेने से नहीं रोका जा सकेगा। किसी भी मनुष्य को उस समय तक आतंकित नहीं किया जावेगा जब तक कि उसके विरुद्ध किसी मान्यता प्राप्त न्यायाधिकारी ने उसका अपराध स्पष्ट करने वाला वारंट जारी न कर दिया हो, या उसने अपराध करते समय राजकीय प्रक्रिया में बाधा न डाली हो। इसके अतिरिक्त किसी मनुष्य को उस समय तक बन्दी नहीं बनाया जायेगा या रोका भी नहीं जावेगा जब तक कि उसे उसके विरुद्ध अपराध से सूचित न कर दिया जावे या उसने विधि परामर्शदाता की सेवाओं के सम्बन्ध में तत्कालीन विशेषाधिकार का प्रयोग करने का अवसर न पा लिया हो। बिना उचित कारण के किसी व्यक्ति का विरोध भी नहीं किया जा सकेगा। उसकी माँग पर ऐसा कारण उसको या उसके परमर्शदाता की उपस्थिति मे खुले न्यायालय में तुरन्त स्पष्ट किया जावेगा। सब व्यक्तियों को अपना सुरक्षित रूप से जीवन व्यतीत करने का अधिकार है, किन्तु उनके घरो, पत्रों या लिखी हुई वस्तुओं के विषय में परीक्षण आदि तभी हो सकेगा जबकि किसी उचित कारण के आधार पर वारंट निर्गमित हो चुका हो और जिसमें स्थान, परीक्षण सम्बन्धी वस्तुओं आदि को विशेष रूप से स्पष्ट कर दिया हो। प्रत्येक परीक्षण या उन्मूलन पृथक् वारंट के आधार पर किया जावेगा जिसको निर्गमित करने का अधिकार केवल उपयुक्त न्यायाधिकारी को होगा। लोकाधिकारियो को जनता को पीड़ित करने या क्रूर दण्ड देने का पूर्ण निषेध है। समस्त अपराधात्मक अभियोगों मे अपराधी को एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा शीघ्र एवं खुला न्याय पाने का अधिकार दिया गया है। उसे समस्त गवाहों का परीक्षण करने और अपनी ओर से सार्वजनिक व्यय पर गवाहों को प्राप्त करने के हेतु अनिवार्य प्रक्रिया का आनन्द लेने का पूर्ण अधिकार है। समग्र अवसरों पर अपराधियों को उपयुक्त परामर्शदाता की सहायता लेने का अधिकार है और इस की व्यवस्था राज्य की ओर से की जावेगी यदि अपराधी स्वयं अपने प्रयत्नानुसार ऐसी सहायता प्राप्त करने मे असमर्थ हो। किसी भी मनुष्य को अपने विरुद्ध गवाही देने पर बाध्य नही किया जावेगा। प्रमाण हेतु ऐसा कोई भी उत्तर स्वीकार नही किया जायेगा जिसे जोर, धमकी, पीड़ा, निरन्तर निरोध या प्रतिबन्ध के आधार पर प्राप्त किया गया है। किसी मनुष्य को ऐसे अभियोगों के बदले मे भी दण्ड नही दिया जावेगा जहाँ उसके विरुद्ध केवल उसका विवरण ही एकमात्र प्रमाण है। किसी मनुष्य को किसी ऐसे कार्य हेतु भी अपराधात्मक दृष्टि से उत्तरदायी नही ठहराया जावेगा जो उस समय विधि से बाहर था जिस समय अपराध किया गया था जिससे उसे उन्मुक्ति प्राप्त हो चुकी है। किसी भी मनुष्य को दोहरी सजा नहीं दी जावेगी। बन्धन या विरोध से मुक्त हो जाने के बाद वह व्यक्ति राजकीय विधि के ...त अपनी क्षतिपूर्ति की माँग कर सकता है।

(४) दसवें अध्याय मे कहा गया है कि यह संविधान राज्य की सर्वोच्च विधि होगा और कोई भी लोक विधि, अध्यादेश, सम्राट् के निर्देश, या शासन का कोई अन्य कृत्य, या उनका कोई अंग कानूनी सत्ता या औचित्य की मान्यता का धारक नही होगा यदि वह इसके अनुच्छेदो के विरुद्ध है।

जापान द्वारा की गई संधियों तथा राष्ट्रों के सुव्यवस्थित नियमों को निष्ठा के साथ मान्यता दी जावेगी। सम्राट् या उस का राज्य प्रतिनिधि, राज्य के मंत्रीगण, संसद् के सदस्यगण, न्यायाधीशगण व समस्त लोकाधिकारियों पर इस सविधान की व्यवस्था रखने व इसके प्रति सम्मान रखने का उत्तरदायित्व है।

संविधान की गारंटी-प्राप्त नागरिकों के मूल अधिकार उन संघर्षों का परिणाम है जो मनुष्यों ने अपनी स्वाधीनता के हेतु किये है। उन्होंने समय व अनुभव की कुठाली मे अपने स्थायित्व की कठोर परीक्षा दी है और उन्हें इस पीढ़ी व अन्य पीढ़ियों को इसलिए समर्पित किया गया है जिससे सभी कालो मे उनमे पावन विश्वास अक्षय रूप से जीवित रहे।

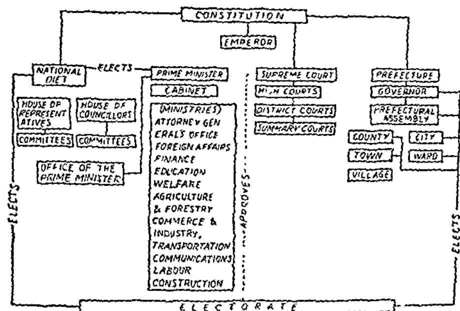
(५) नवें अध्याय मे संविधान की सशोधन विधि की चर्चा की गई है। ९६वीं धारा के अनुसार, इस सविधान मे सशोधन का प्रस्तावन संसद् मे होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सदन में समग्र सदस्यों का २/३ बहुमत प्राप्त हो। इसके बाद उस संशोधन के प्रस्ताव को जनता के सम्मुख स्वीकृति के लिए रक्खा जावेगा। तदुपरान्त ससद् या डाइट के निर्देशानुसार जनमतसंग्रह (referendum) होगा और उसका निर्णय वहाँ डाले गए मतों की स्वीकारात्मक वहुसंख्या के अनुसार होगा। ऐसी स्वीकृति पाने के बाद उस संशोधन पर सम्राट् जनता के नाम मे एक घोपणा जारी करेगा और उसे तुरन्त ही संविधान का एक अनन्य भाग मान लिया जावेगा।

(६) संविधान का दूसरा अध्याय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमे 'युद्ध के त्याग' पर प्रकाश डाला गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि न्याय व व्यवस्था पर आश्रित अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के भाव से यथार्थत: प्रभावित होकर जापानी लोग सदा के लिए यह अस्वीकार करते हैं कि युद्ध संचालन राष्ट्र का सार्वभौम अधिकार है या किसी अन्य राष्ट्र के साथ विभेद के निराकरण मे शक्ति या धमकी का प्रयोग साधनमात्र बन सकता है। उपर्युक्त लक्ष्यो के हेतु थल, जल व वायु सेना तथा अन्य सामरिक साधनों की व्यवस्था नही की जावेगी। राज्य का युद्ध करने का अधिकार अमान्य होगा। यह घोपणा जापान के वर्तमान इतिहास में एक नई चीज है, क्योंकि पिछली शताब्दी के इतिहास में सैनिक शक्ति के प्रयोग का सतत प्रभाव था।

(७) संविधान की एक अन्य विशेपता यह है कि यह जापान के सम्राट् को समस्त कार्यपालिका शक्ति से वंचित रखता है। संविधान मे यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजकीय विपयों में सम्राट् के समग्र कार्यों को कैबिनिट की मंत्रणा व स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होगा इसके लिए कैबिनिट ही उत्तरदायी होगी। इसने सम्राट् को केवल संवैधानिक अध्यक्ष की स्थिति में रखा है।

(८) जापान का नया संविधान अमेरिका की अध्यक्षात्मक प्रणाली (Presidential system) तथा ग्रेट ब्रिटेन की संसदात्मक व्यवस्था (Parliamentary system) का मिश्रण है यद्यपि इसमें ब्रिटिश प्रणाली को अधिक स्थान दिया गया है।

सम्राट् (The Emperor)—संविधान के प्रथम अध्याय में कहा गया है कि जापान का सम्राट् राज्य व जनता की एकता का प्रतीक होगा। जनता ही में



राज्य की सार्वभौम सत्ता निहित है और जनता ही सम्राट् की शक्ति का स्रोत है। सम्राट् का पद राज्यवंशागत होगा और इसमें उत्तराधिकार डाइट (Diet) द्वारा निर्मित साम्राज्ञीवंशविधि (Imperial House Law) के अनुसार होगा। राज्य के मामलों में कैबिनिट की राय व अनुमति सम्राट् के सारे कार्यों के लिए आवश्यक होगी। समस्त कार्यों का उत्तरदायित्व कैबिनिट पर होगा। राज्य के विषयों में सम्राट् केवल वही कार्य करेगा जिनका विधि में वर्णन किया गया है। यदि साम्राज्ञी-वंशविधि के अनुसार राज्य प्रतिशासक के पद (Regency) की स्थापना की जाती है, तो राज्य-प्रतिनिधि (Regent) सम्राट् के नाम में राजकीय विषयों का संचालन करेगा। सम्राट् डाइट द्वारा नामोद्दिष्ट व्यक्ति को प्रधान मन्त्री नियुक्त करेगा। साम्राज्ञी परिवार किसी भी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त या विच्छेद नहीं कर सकता और डाइट से अधिकार प्राप्त किए बिना उसको कोई भी उपहार नहीं दिया जा सकेगा।

७वीं धारा के अनुसार सम्राट् कैबिनिट के परामर्श व स्वीकृति पर जनता की ओर से राज्य के मामलों में निम्न कार्य करेगा—

(i) संविधान में संशोधनों, विधियों, कैबिनिट के आदेशों और संधियों को निर्गमित (promulgate) करना।

(ii) डाइट का अधिवेशन बुलाना।

(iii) लोक सभा का विघटन (dissolution) करना।

(iv) लोक निर्वाचनो की घोषणा करना।

(v) विधि द्वारा निर्धारित लोकाधिकारियों व राज्य के मंत्रियों की नियुक्तियों व निष्कासनो व राजदूतो के नियुक्तिपत्रो तथा मत्रियों की सारी शक्तियों को अभिप्रमाणित करना।

(vi) साधारण या विशेष क्षमा, दण्ड मे परिवर्तन, प्राणदण्ड रोकना, अधिकारो के प्रतिस्थापन को अभिप्रमाणित करना।

(vii) प्रतिष्ठाओं की देन करना (awarding of honours)।

(viii) विधि द्वारा स्वीकृत कूटनीतिक पत्रों या स्वीकृति के पत्रो को अभिप्रमाणित करना।

(ix) विदेशी राजदूतो तथा मत्रियों का स्वागत करना।

(x) समारोह संबन्धी कृत्यो का सम्पादन करना।

इससे यह स्पष्ट है कि जापान का सम्राट् एक संवैधानिक अध्यक्ष की भाँति है और उसकी तुलना भारत के राष्ट्रपति या इगलैंड के राजा से की जा सकती है।

आलोचक बताते है कि मेजी शासन पद्धति में सम्राट् अपने वजीरों की सलाह पर चलता था। वजीर क्योकि सम्राट् के प्रति जवाबदेह थे इसलिए वास्तव में वे किसी के प्रति उत्तरदायी न थे। वे शाही पारिवारिक मन्त्रि-मण्डल (Imperial Household Ministry), प्रिवी कौंसिल व सर्वोपरि युद्ध परिषद् (Supreme War Council) की नाईं एक महत्त्वपूर्ण अभिकरण (agency) बन गये थे जिनकी क्रियाओं पर उनका राजगद्दी के साथ गहरा नाता होने के कारण उंगली नही उठाई जा सकती थी।

जापान की नई शासन पद्धति में सम्राट् की स्थिति बदल गई है। यह अब किसी प्रकार की सत्ता—राजकीय व नैतिक—का स्रोत नही है। यह केवल एक प्रतीक (Symbol) है। सत्ता का स्रोत अब जनता को माना जाता है। अब यह शासन की प्रभुता के बल के प्रदर्शन के लिए बाहरी दिखावे का काम देता है और [illegible] अधिकारों से रीता है। दूसरे विश्वयुद्ध से पहले ही जापानी सम्राट् राजनैतिक निर्णयों में भाग नही लेता था और अब भी उसकी स्थिति वास्तविक रूप में वैसी ही है। सबसे बड़ा अन्तर देखने मे यह आता है कि उसके मंत्री व सलाहकारों के लिए यह सम्भव नहीं कि वे उसके नाम पर शासन कर सकें। उत्तरदायित्व [illegible] है।

कैबिनिट (The Cabinet)—कैबिनिट का विवरण संविधान के [illegible] अध्याय में दिया गया है। संविधान की ६५वीं से [illegible] सम्बन्धित हैं। संविधान ने कार्यपालिका शक्ति कैबिनिट को प्रदान की है [illegible] प्रधान मंत्री होगा जो इसका अध्यक्ष होगा और विधि द्वारा निर्धारित [illegible] गए होंगे। प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्री [illegible] शक्ति का संचालन करते समय कैबिनिट [illegible] होगी।

डाइट में पास किए गए प्रस्ताव के अनुसार प्रधान मंत्री का नामनिर्देशन होगा। इसके साथ ही शेष समस्त नामनिर्देशनों को स्थान दिया जावेगा। यदि लोक सभा (House of Representatives) व पार्षदों की सभा (House of Councillors) में मतभेद हो जावे और यदि विधि द्वारा निर्धारित दोनों सदनों की संयुक्त समिति किसी समझौते पर न पहुँच सके, या पार्षदों की सभा १० दिन के भीतर नाम निर्देश करने में असमर्थ रहे (इसमें अवकाश का समय सम्मिलित न होगा) तो लोकसभा का निर्णय ही डाइट का निर्णय माना जायेगा यदि उसने पार्षदों की सभा से पूर्व ही अपना निर्णय बना लिया है। प्रधान मत्री राज्य के मंत्रियों को नियुक्त करेगा, किन्तु उनकी संख्या का बहुमत डाइट के सदस्यों में से चुना जाना चाहिए। प्रधान मंत्री अपनी इच्छानुसार राज्य के मंत्रियो को अपदस्थ कर सकता है। यदि लोकसभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, या विश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे, तो कैंबिनिट को एक साथ त्यागपत्र देना पड़ेगा यदि १० दिन के भीतर लोक सभा ही भंग नही हो जाती। यदि प्रधान मंत्री का पद रिक्त हो जावे, या साधारण चुनाव के बाद डाइट का अधिवेशन बुला लिया जावे, तो कैंबिनिट को एक साथ त्यागपत्र देना पड़ेगा। उपर्युक्त स्थिति में कैंबिनिट उस समय तक कार्य करती रहेगी, जब तक नया प्रधान मंत्री नियुक्त न हो जावे। कैंबिनिट का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रधान मंत्री डाइट के सम्मुख बिल, साधारण राष्ट्रीय विषयों पर रिपोर्ट व विदेशी मामलों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और विभिन्न प्रशासकीय शाखाओं पर निरीक्षण व नियन्त्रण रखेगा। समस्त विधियों व कैंबिनिट के आदेशों पर राज्य के उपयुक्त मंत्रियो के हस्ताक्षर होगे और बाद मे प्रधान मंत्री उन पर अपने हस्ताक्षर करेगा। अपने पद काल में राज्य के मंत्रीगण प्रधान मंत्री की अनुमति के बिना कानूनी कार्यवाही के अधीन नही लिए जा सकते, परन्तु इससे कार्यवाही के अधिकार पर क्षति नही पहुँचती।

साधारण प्रशासकीय कार्यों के अतिरिक्त कैंबिनिट निम्न कार्य करेगी :—

(i) यह निष्ठा के साथ विधि को लागू करेगी।

(ii) यह राज्य के विषयों का संचालन करेगी।

(iii) यह विदेशी मामलो का प्रबन्ध करेगी।

(iv) यह संधियाँ करेगी। ऐसा करने में परिस्थियनुकूल पहले या बाद में डाइट की स्वीकृति प्राप्त करेगी।

(v) विधि द्वारा स्थापित स्तरों के अनुसार यह सविनय सेवा का प्रबन्ध करेगी।

(vi) यह बजट बनावेगी व उसे डाइट के सम्मुख पेश करेगी।

(vii) यह संविधान की धाराओ व विधि के उपबंधों को लागू करने के विचार से आदेश जारी करेगी, परन्तु ऐसा करने मे वह दण्डात्मक आदेश नहीं दे सकती जब तक उसे ऐसा करने के लिए डाइट की विधि अधिकार न दे दे।

(viii) यह साधारण क्षमा (general amnesty), विशेष क्षमा, दण्ड मे

परिवर्तन, फांसी को रोकने या अधिकारों के पुन:स्थापन के हेतु निर्णय कर सकती है।

यदि इस बनावट को कानून की दृष्टि से देखा जाए तो मंत्रि-परिषद् (Cabinet) राज्य सभा (Diet) से निम्न मालूम पड़ती है परन्तु व्यवहार में मन्त्रि-परिषद् ही विधान सम्बन्धी कार्य-क्रम बनाती है और फिर मार्गदर्शन करते हुए उसे कानून का रूप देती है। इसका दिग्दर्शन तब होता है जब लोकसभा में मंत्रि-परिषद् को बहुमत का आश्रय प्राप्त होता है।

प्रधान मंत्री का सचिवालय मंत्रि-परिषद् के कार्यों को करता है। सचिवालय के मुखिया एक निदेशक व दो उपनिदेशक होते हैं। वे मंत्रिपरिषद् की बैठकों का कार्य-क्रम बनाते हैं, दस्तावेज तैयार करते हैं व मंत्रिपरिषद् सम्बन्धी दूसरे कार्य करते हैं। मंत्रि-परिषद् की बैठकें प्रधान मंत्री के सरकारी मकान में होती हैं जिसका सभापतित्व प्रधान मंत्री करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपप्रधान मंत्री सभापतित्व को सम्भालता है। कोई कोरम नहीं होता। जो निर्णय अल्पमत से होते हैं उन पर न आने वाले सदस्यों को हस्ताक्षर करने के लिए कहा जाता है। मंत्रिमंडल की बातें गोपनीय होती हैं और उन्हें छापा नहीं जाता। यद्यपि मंत्रिमंडल के सदस्य गोपनीयता के लिए बाध्य होते हैं तो भी कभी-कभी छुपी हुई बातें सामने आ जाती हैं। मंत्रिमंडल सामूहिक रूप से राज्य सभा (Diet) के प्रति उत्तरदायी होता है। सब निर्णय एकमत से होते हैं। यदि कोई मंत्री दूसरों से सहमत न हो तो उसे त्याग-पत्र देना होता है।

असैनिक सेवा (Civil Service)—दूसरे विश्वयुद्ध से पहले जापान की सिविल सर्विस दो हिस्सों में बँटी हुई थी—उच्च व साधारण। प्रथम श्रेणी में मंत्री, राजदूत, उच्च न्यायिक और दूसरी में उपमंत्री, राजकीय प्रमुख व न्यायाधीश होते थे। इनसे नीचे स्तर के अधिकारी तीसरे दर्जे के समझे जाते थे। उच्च श्रेणी के अधिकारी कठिनाई से कहीं ५% सरकारी पद लेते थे। साधारण सिविल सर्विस में चौथे वर्ग के या बिना किसी वर्ग के अधिकारी होते थे।

ऊँची सिविल सर्विस में प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा भर्ती की जाती थी। परीक्षाएँ बहुधा उम्मीदवारों के कानूनी ज्ञान की जांच करने के लिए ली जाती थीं जिन पर नियंत्रण अधिकांश टोकियो की शाही यूनिवर्सिटी के कानूनी विभाग के सदस्यों की समिति द्वारा होता था। उच्चाधिकारियों के भाई-बन्धुओं व दूसरे प्रभावशाली उम्मीदवारों को पहले चुना जाता था। सिफारिशी चिट्ठियाँ मानी जाती थीं और प्रायः लोग भेंट भी चढ़ाया करते थे। साधारण श्रेणी की सिविल सर्विस की वह आभा न थी जो उच्च श्रेणी की थी। साधारण सिविल सर्विस के सदस्य कभी-कभार ही ऊँची सिविल सर्विस में प्रवेश कर पाते थे।

जापानी सिविल सर्विस में ऊँच-नीच की भावना बड़ी जबरदस्त थी। ऊँची सिविल-सर्विस के सदस्य भी अलग-अलग कमरों में खाना खाते थे। हर एक का दर्जा उसके दफ्तर में बढ़िया मेज, व महमानों के लिए कुर्सियों की संख्या से नियत होता था। सचिवालयों, राजकीय विभागों व दूसरे कार्यालयों में एक दूसरे से डाह रहती थी और

डाइट में पास किए गए प्रस्ताव के अनुसार प्रधान मंत्री का नामनिर्देशन होगा। इसके साथ ही शेष समस्त नामनिर्देशनों को स्थान दिया जावेगा। यदि लोक सभा (House of Representatives) व पार्षदों की सभा (House of Councillors) में मतभेद हो जावे और यदि विधि द्वारा निर्धारित दोनों सदनों की संयुक्त समिति किसी समझौते पर न पहुँच सके, या पार्षदों की सभा १० दिन के भीतर नाम निर्देश करने में असमर्थ रहे (इसमें अवकाश का समय सम्मिलित न होगा) तो लोकसभा का निर्णय ही डाइट का निर्णय माना जायेगा यदि उसने पार्षदों की सभा से पूर्व ही अपना निर्णय बना लिया है। प्रधान मंत्री राज्य के मंत्रियों को नियुक्त करेगा, किन्तु उनकी संख्या का बहुमत डाइट के सदस्यो मे से चुना जाना चाहिए। प्रधान मंत्री अपनी इच्छानुसार राज्य के मंत्रियों को अपदस्थ कर सकता है। यदि लोकसभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, या विश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे, तो कैबिनिट को एक साथ त्यागपत्र देना पड़ेगा यदि १० दिन के भीतर लोक सभा ही भंग नहीं हो जाती। यदि प्रधान मंत्री का पद रिक्त हो जावे, या साधारण चुनाव के बाद डाइट का अधिवेशन बुला लिया जावे, तो कैबिनिट को एक साथ त्यागपत्र देना पड़ेगा। उपर्युक्त स्थिति में कैबिनिट उस समय तक कार्य करती रहेगी, जब तक नया प्रधान मंत्री नियुक्त न हो जावे। कैबिनिट का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रधान मंत्री डाइट के सम्मुख बिल, साधारण राष्ट्रीय विषयों पर रिपोर्ट व विदेशी मामलों पर रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और विभिन्न प्रशासकीय शाखाओं पर निरीक्षण व नियन्त्रण रखेगा। समस्त विधियों व कैबिनिट के आदेशों पर राज्य के उपयुक्त मंत्रियों के हस्ताक्षर होंगे और बाद में प्रधान मंत्री उन पर अपने हस्ताक्षर करेगा। अपने पद काल मे राज्य के मंत्रीगण प्रधान मंत्री की अनुमति के बिना कानूनी कार्यवाही के अधीन नही लिए जा सकते, परन्तु इससे कार्यवाही के अधिकार पर क्षति नही पहुंचती।

साधारण प्रशासकीय कार्यों के अतिरिक्त कैबिनिट निम्न कार्य करेगी :—

(i) यह निष्ठा के साथ विधि को लागू करेगी।

(ii) यह राज्य के विषयों का संचालन करेगी।

(iii) यह विदेशी मामलों का प्रबन्ध करेगी।

(iv) यह संधियाँ करेगी। ऐसा करने मे परिस्थित्यनुकूल पहले या बाद मे डाइट की स्वीकृति प्राप्त करेगी।

(v) विधि द्वारा स्थापित स्तरों के अनुसार यह सविनय सेवा का प्रबन्ध करेगी।

(vi) यह बजट बनावेगी व उसे डाइट के सम्मुख पेश करेगी।

(vii) यह संविधान की धाराओ व विधि के उपबंधों को लागू करने के विचार से आदेश जारी करेगी, परन्तु ऐसा करने में वह दण्डात्मक आदेश नहीं दे सकती जब तक उसे ऐसा करने के लिए डाइट की विधि अधिकार न दे दे।

(viii) यह साधारण क्षमा (general amnesty), विशेष क्षमा, दण्ड में

परिवर्तन, फाँसी को रोकने या अधिकारों के पुनःस्थापन के हेतु निर्णय कर सकती है।

यदि इस बनावट को कानून की दृष्टि से देखा जाए तो मंत्रि-परिषद् (Cabinet) राज्य सभा (Diet) से निम्न मालूम पड़ती है परन्तु व्यवहार में मन्त्रि-परिषद् ही विधान सम्बन्धी कार्य-क्रम बनाती है और फिर मार्गदर्शन करते हुए उसे कानून का रूप देती है। इसका दिग्दर्शन तब होता है जब लोकसभा में मन्त्रि-परिषद् को बहुमत का आश्रय प्राप्त होता है।

प्रधान मंत्री का सचिवालय मंत्रि-परिषद् के कार्यों को करता है। सचिवालय के मुखिया एक निदेशक व दो उपनिदेशक होते हैं। ये मन्त्रिपरिषद् की बैठकों का कार्य-क्रम बनाते हैं, दस्तावेज तैयार करते हैं व मन्त्रिपरिषद् सम्बन्धी दूसरे कार्य करते है। मंत्रि-परिषद् की बैठकें प्रधान मंत्री के सरकारी मकान में होती हैं जिसका सभापतित्व प्रधान मंत्री करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपप्रधान मंत्री सभापतित्व को सम्भालता है। कोई कोरम नहीं होता। जो निर्णय अल्पमत से होते हैं उन पर न आने वाले सदस्यों को हस्ताक्षर करने के लिए कहा जाता है। मंत्रिमंडल की बातें गोपनीय होती है और उन्हें छापा नही जाता। यद्यपि मंत्रिमंडल के सदस्य गोपनीयता के लिए बाध्य होते हैं तो भी कभी-कभी छुपी हुई बातें सामने आ जाती है। मन्त्रिमंडल सामूहिक रूप से राज्य सभा (Diet) के प्रति उत्तरदायी होता है। सब निर्णय एकमत से होते हैं। यदि कोई मंत्री दूसरों से सहमत न हो तो उसे त्याग-पत्र देना होता है।

असैनिक सेवा (Civil Service)—दूसरे विश्वयुद्ध से पहले जापान की सिविल सर्विस दो हिस्सों में बँटी हुई थी—उच्च व साधारण। प्रथम श्रेणी में मंत्री, राजदूत, उच्च न्यायिक और दूसरी में उपमंत्री, राजकीय प्रमुख व न्यायाधीश होते थे। इनसे नीचे स्तर के अधिकारी तीसरे दर्जे के समझे जाते थे। उच्च श्रेणी के अधिकारी कठिनाई से कहीं ५% सरकारी पद लेते थे। साधारण सिविल सर्विस में चौथे वर्ग के या बिना किसी वर्ग के अधिकारी होते थे।

ऊँची सिविल सर्विस में प्रतियोगिता परीक्षाओं द्वारा भर्ती की जाती थी। परीक्षाएँ बहुधा उम्मीदवारों के कानूनी ज्ञान की जाँच करने के लिए ली जाती थीं जिन पर नियंत्रण अधिकाश टोकियो की शाही यूनिवर्सिटी के कानूनी विभाग के सदस्यों की समिति द्वारा होता था। उच्चाधिकारियों के भाई-बन्धुओं व दूसरे प्रभावशाली उम्मीदवारों को पहले चुना जाता था। सिफारिशी चिट्ठियाँ मानी जाती थी और प्रायः लोग भेंटें भी चढ़ाया करते थे। साधारण श्रेणी की सिविल सर्विस की वह आभा न थी जो उच्च श्रेणी की थी। साधारण सिविल सर्विस के सदस्य कभी-कभार ही ऊँची सिविल सर्विस में प्रवेश कर पाते थे।

जापानी सिविल सर्विस में ऊँच-नीच की भावना बड़ी जबरदस्त थी। ऊँची सिविल-सर्विस के सदस्य भी अलग-अलग कमरों में खाना खाते थे। हर एक का दर्जा उसके दफ्तर में बढ़िया मेज, व मेहमानों के लिए कुर्सियों की संख्या से नियत होता था। सचिवालयों, राजकीय विभागों व दूसरे कार्यालयों में एक दूसरे से डाह रहती थी और

सब अपने-अपने अधिकारों की सुरक्षा की चिंता में रहते थे। जब किसी योजना के लिए बहुत से सचिवालयों की अनुमति चाहिए थी तो उसमें प्रायः रुकावट रहती थी। एक प्रकार का काम दो जगह होता था। जनता के साथ नौकरशाही बुरा व्यवहार करने के लिए प्रसिद्ध थी। अधिकारी अपने को सम्राट् के प्रति उत्तरदायी समझते थे और इसलिए हर एक अफसर शाही शान लिए हुए था।

१९४५ की पराजय के बाद शासन में कुछ सुधार किए गए थे। १९४६ में अमरीकी कार्यकर्त्ता-वर्ग सलाहकार दल (United States Personnel Advisory Mission) शासन व्यवस्था की जाँच के लिए जापान भेजा गया था। उसकी सिफारिशों के आधार पर जापान की राज्य सभा (Diet) ने १९४७ में जनसेवा का कानून (National Public Service Law), १९४९ में राष्ट्रकार्यकर्त्तावर्ग प्राधिकरण (National Personnel Authority) का संगठन किया। इस गणतन्त्र पद्धति को दृढ करना था, प्रत्येक पद पर उसके योग्य व्यक्ति नियुक्त करने थे और शासकीय पदों का उचित वर्गीकरण करना था। नयी शासन पद्धति में ऐसे सुधार किए गए जिससे शासकीय अधिकारियों पर विशेष प्रभाव पडा। विधान की धारा १५ का आधार है कि सब सरकारी नौकर जनता के सामूहिक रूप से सेवक हैं न कि उसके किसी अंश के। धारा १७ का निर्देश है कि प्रत्येक व्यक्ति जिसे किसी प्रकार से सरकारी नौकर के गैरकानूनी काम से नुकसान पहुँचा हो उसे सरकार पर दावा करने का अधिकार है।

इन तबदीलियों के होते भी जापानी नौकरशाही में कोई तबदीली नहीं आई। यह ठीक है कि दूसरे विश्वविद्यालयों के स्नातक (graduates) सिविल सर्विस में पहले से ज्यादा शामिल हो रहे हैं फिर भी टोकियो यूनिवर्सिटी के स्नातक अधिकांश सचिवालयों में बहुत संख्या में हैं। राष्ट्र-कार्यकर्त्तावर्ग प्राधिकरण (National Personnel Authority) की सत्ता में बहुत न्यूनता आ गई है और हो सकता है कि वह स्वतंत्र संस्था भी न रहे। यह ठीक है कि जापानी नौकरशाही अब भी अनधिकार चेष्टाओं का शिकार है और अपने तईं गर्व से भरपूर।

डाइट (The Diet)—संविधान के चौथे अध्याय में (जिसमें ४१ से लेकर ६४ तक धाराएँ हैं) डाइट का वर्णन किया गया है जो जापान की व्यवस्थापिका है। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि डाइट ही राज्य की शक्ति का सर्वोच्च अङ्ग होगी और वही राज्य की विधायिनी शक्ति की धारक होगी। इसमें दो सदन होंगे—लोक सभा (House of Representatives) और पार्षदों की सभा (House of Councillors)। दोनों सदनों में निर्वाचित सदस्य होंगे जो सारी जनता का प्रतिनिधित्व करेंगे। दोनों सदनों की सदस्य संख्या विधि द्वारा निश्चित की जावेगी। निर्वाचकों तथा दोनों सदनों के सदस्यों की योग्यताएँ भी विधि द्वारा निर्धारित होंगी। इस सम्बन्ध में जाति, मत, लिंग, सामाजिक स्थिति, पारिवारिक उत्पत्ति, शिक्षा, सम्पत्ति या आय आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। दोनों सदनों के सदस्यों का कार्यकाल भी चार वर्ष होगा, किन्तु लोक सभा के भंग होते ही यह समय पहले भी समाप्त

हो जावेगा। पार्षदों की सभा के सदस्यों का कार्यकाल ६ वर्ष होगा परन्तु प्रत्येक तीसरे वर्ष बाद आधे सदस्यों का निर्वाचन होगा।

दोनों सदनों के सदस्यों के निर्वाचन की विधि, निर्वाचनीय जिलों, मतदान की रीति आदि के विषयों को विधि द्वारा निश्चित किया जावेगा। एक ही समय पर एक व्यक्ति केवल एक ही सभा का सदस्य हो सकेगा। दोनों सदनों के सदस्य विधि के अनुसार राष्ट्रीय कोष में से वार्षिक धन प्राप्त करेंगे। विधि द्वारा निर्धारित विशेष दशाओं को छोड़कर दोनों सदनों के सदस्य उन दिनों बन्दी नहीं बनाये जा सकेंगे जबकि डाइट का अधिवेशन चल रहा हो। अधिवेशन प्रारम्भ होने से पूर्व ही बन्दी बनाये जाने वाला सदस्य सभा की माँग पर अधिवेशन काल तक मुक्त रहेगा। सभा में दिये जाने वाले भाषणों, विवादों या मतदान करने के विषय में किसी भी सदस्य को सभा के बाहर उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। डाइट का वर्ष में एक बार अधिवेशन अवश्य बुलाया जावेगा। कैबिनिट डाइट की असाधारण सभा बुला सकती है। यदि सभा के १/४ या इससे अधिक सदस्य, माँग पेश करें तब भी डाइट की सभा बुलाई जा सकेगी।

यदि लोक सभा के विघटन (dissolution) का आदेश हो जावे, तो विघटन वाली तारीख से ४० दिन के भीतर लोक सभा का साधारण चुनाव होना जरूरी है और चुनाव के समाप्त हो जाने के ३० दिन के भीतर डाइट के अधिवेशन का बुलाना भी आवश्यक है। यदि लोक सभा के विघटन का आदेश हो जावे तो उसके साथ पार्षदों की सभा भी समाप्त हो जावेगी, राष्ट्रीय संकट की अवस्था में कैबिनिट उसकी विशेष सभा का आयोजन कर सकेगी। ऐसी विशेष सभा के किये गए निर्णय केवल अस्थायी होंगे और उन्हें रद्द समझा जावेगा जब तक कि डाइट के अगले अधिवेशन के प्रारम्भ होने से १० दिन के भीतर लोक सभा उन्हें स्वीकार नहीं कर लेती।

अपने सदस्यों की योग्यताओं से सम्बन्धित विवादों का निर्णय प्रत्येक सदन स्वयं करेगा। लेकिन किसी सदस्य को सदन में स्थान न देने के लिए यह आवश्यक है कि उपस्थित सदस्यों के २/३ या उससे अधिक बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास हो जावे। किसी भी सदन में तब तक कार्यवाही नहीं चल सकती जब तक कि उसकी कुल संख्या का कम-से-कम १/३ भाग उपस्थित न हो। प्रत्येक सदन में निर्णय उपस्थित सदस्यों के साधारण बहुमत से होगा जब तक कि किसी विषय को संविधान में विशेष रूप से लिख न दिया जावे। समान मतसंख्या की स्थिति में सभा का अध्यक्ष अपने निर्णायक मत का प्रयोग करेगा।

दोनों सदनों में विचार-विमर्श खुला होगा, किन्तु किसी गुप्त सभा का भी आयोजन हो सकेगा यदि उपस्थित सदस्यों की २/३ संख्या या उससे अधिक ऐसा एक प्रस्ताव पास कर दे। प्रत्येक सदन अपनी कार्यवाहियों को लिखित रूप में सुरक्षित रखेगा। इस विवरण को साधारण सूचना के लिए प्रकाशित किया जावेगा, परन्तु आवश्यकता को समझते हुए सदन की कार्यवाही के कुछ भागों को सुरक्षित भी रखा जा सकेगा। उपस्थित सदस्यों की कम-से-कम १/५ या अधिक सदस्य संख्या के बहुमत पर किसी भी विषय पर लिये जाने वाले मतों को कार्यवाही में अङ्कित कर दिया जावेगा।

प्रत्येक सदन अपने सभापति व अन्य अधिकारियो को स्वयं चुनेगा। सभाओं, कार्यवाहियो व आभ्यन्तरिक अनुशासन के विषय में प्रत्येक सदन स्वय ही अपने नियम निर्धारित करेगा और उसी को अपने ऐसे सदस्यों को दण्ड देने का अधिकार होगा जो अव्यवस्थाजनक व्यवहार का प्रदर्शन करें। किसी सदस्य को निष्कासित करने के लिए यह आवश्यक है कि उपस्थित सदस्यो के २/३ या इससे अधिक बहुमत से एक प्रस्ताव पास हो जावे।

दोनो सदनों से पास हो जाने पर बिल कानून मे परिणत हो जावेगा यदि इस सम्बन्ध मे संविधान ने कोई विशेष व्यवस्था न की हो। यदि किसी बिल को लोक सभा पास कर देती है, परन्तु पार्षदों की सभा उस पर लोक सभा के विपरीत निर्णय करती है, तो वह बिल उस समय विधि बन जावेगा, जबकि लोक सभा उसे दूसरी बार अपने उपस्थित सदस्यों के २/३ या उससे अधिक बहुमत से पास कर दे। परन्तु विधि की व्यवस्था के अनुसार लोक सभा विवाद के निर्णय के लिए दोनों सभाओ की संयुक्त समिति भी बुला सकेगी। यदि कोई बिल लोक सभा से पास हो जाता है किन्तु पार्षदो की सभा उसे प्राप्ति के समय से ६० दिन के भीतर अपना अन्तिम निर्णय नही देती (इसमें अवकाश का समय सम्मिलित न होगा) तो लोक सभा इसका आशय पार्षदों की सभा द्वारा विधि की अस्वीकृति समझेगी।

बजट पहले लोक सभा के सम्मुख पेश होगा। यदि बजट पर विचार कर लेने के बाद पार्षदो की सभा लोक सभा से विपरीत निर्णय करती है और यदि, विधि द्वारा निर्धारित, दोनो सदनो की संयुक्त समिति किसी समझौते पर नही पहुँच पाती, या यदि पार्षदों की सभा बजट को लोक सभा से प्राप्त करके ३ दिन के भीतर अन्तिम निर्णय देने में असमर्थ रहती है (अवकाश का समय छोड़कर), तो लोक सभा का निर्णय ही डाइट का निर्णय समझा जावेगा। यही उपलबन्ध डाइट की उन अनुमतियों पर भी लागू होता है जो संधियों पर अनुमति के लिए जरूरी हैं।

शासन के सम्बन्ध मे प्रत्येक सदन परीक्षण कर सकता है और अभिलेखों के पेश करने या गवाहो की उपस्थिति व प्रमाण अपने सम्मुख प्रस्तुत करने पर बाध्य कर सकता है। किसी समय पर प्रधान मन्त्री या राज्य के मन्त्री बिलों पर विवाद करने के उद्देश्य से किसी भी सदन मे जा सकते है, इससे कोई मतलब नहीं कि वे उस सदन के सदस्य है या नही। आवश्यकता के समय अपने उत्तर या सफाई देने के लिए उन्हे सभा के सम्मुख आना आवश्यक है।

यदि किसी जज या कुछ जजों के विरुद्ध निष्कासन सम्बन्धी कार्यवाही चल रही है तो उसके निर्णय के लिए डाइट दोनों सदनो के कुछ सदस्यों का एक न्यायालय (Impeachment Court) बनावेगी और महाभियोग सम्बन्धी विषयों का संचालन विधि के अनुसार होगा।

जापान की राज्य सभा (Diet) प्रशासकों पर कई प्रकार से नियंत्रण रख सकती है। सबसे पहले डाइट, न कि सम्राट्, प्रधान मंत्री को नामजद करती है। दूसरे डाइट, एक मंत्री व सारे मंत्रि-परिषद् को अविश्वास का प्रस्ताव पास करके त्याग-

पत्र देने के लिए विवश कर सकती है। तीसरे डाइट के पास धन राशि की कुजी है। कैबिनिट जो बजट पेश करती है उसके लिए डाइट की मंजूरी जरूरी है। डाइट के पास नए टैक्स लगाने की ताकत है क्यों कि राष्ट्र पर कोई टैक्स उसकी मंजूरी के बिना नहीं लगाया जा सकता और न ही किसी टैक्स में उसकी मंजूरी के बिना तबदीली की जा सकती है। चौथे डाइट विदेशी सम्बन्धो में भी हस्तक्षेप कर सकती है क्योंकि उसके पास विदेशों से की हुई प्रतिज्ञाओं (Treaties) की मंजूर या नामंजूर करने की ताकत है। डाइट के पास सरकार को सब कार्यों की जाँच करने की ताकत है। जैसे पराजय के बाद करोड़ों रुपयो की सरकारी जायदाद के गैरकानूनी निपटारे पर एक खास कमेटी ने बड़ी लम्बी चौड़ी जांच की। दूसरी कमेटियो ने भी सरकारी भ्रष्टाचार इत्यादि की जांच की है। फिर डाइट के पास यह अधिकार भी है कि दोनो विधान सभाओ से बराबर मैम्बर लेकर ऐसी अदालतें मुकर्रर करे जो जजो के खिलाफ जाँच करें। इससे साफ है कि डाइट के पास बड़ी ताकत है और वह केवल कानून बनाने तक नही रह जाती।

वित्त (Finance)—संविधान का चौथा अध्याय (जिसमें ८३ से लेकर ९१ तक धाराएँ है) वित्तीय व्यवस्था का वर्णन करता है। यहाँ यह उल्लेख किया गया है कि राष्ट्रीय वित्त के प्रबन्ध की शक्ति का इस प्रकार सचालन होगा जैसा कि डाइट निश्चित करे। केवल विधि द्वारा या ऐसी प्रक्रिया द्वारा जो विधि निर्धारित करे कोई, नया कर नही लगाया जा सकता और न किसी पुराने कर मे किसी प्रकार का संशोधन ही हो सकेगा। किसी भी धन का व्यय तब तक नहीं हो सकेगा जब तक उस पर डाइट की अनुमति न मिल जावे। कैबिनिट प्रत्येक वित्तीय वर्ष का बजट तैयार करेगी और उस पर विचार व निर्णय के लिए डाइट के सम्मुख पेश करेगी। बजट मे आकस्मिक अभावो को स्थान देने के लिए डाइट एक सुरक्षित कोष का अधिकार दे सकेगी जिसका व्यय करना कैबिनिट ही के उत्तरदायित्व पर होगा। इस सुरक्षित कोष मे से समस्त भुगतान करने के लिए कैबिनिट ही उत्तरदायी होगी।

साम्राज्ञी वंश की सारी सम्पत्ति राज्य की होगी। साम्राज्ञी वंश के सारे व्यय बजट मे रक्खे जायेंगे जिन्हें डाइट स्वीकार करेगी। सार्वजनिक धन या किसी भी सम्पत्ति को किसी धर्म व्यवस्था, धार्मिक संस्था या शिक्षा सम्बन्धी संस्था या दान आदि के सम्बन्ध मे किसी संस्था, जो लोक शक्ति के आधीन न हो, के लाभ, प्रयोग या सहायता के हेतु व्यय नहीं किया जा सकेगा। राज्य के सारे आय-व्यय का निरीक्षकों द्वारा वार्षिक निरीक्षण होगा जिसकी रिपोर्ट कैबिनिट द्वारा आगामी वित्तीय वर्ष में डाइट के सम्मुख पेश होगी। निरीक्षक बोर्ड का सामर्थ्य व कुशलता विधि द्वारा निश्चित होगी। निश्चित अवसरों पर और कम-से-कम वर्ष में एक बार कैबिनिट एक रिपोर्ट डाइट व जनता के सम्मुख पेश करेगी जिसमे वह राष्ट्रीय वित्तो का विवरण देगी।

न्यायपालिका (The Judiciary)—संविधान के छठे अध्याय में (जिसमे ७६ से ८२ तक धाराएँ सम्मिलित हैं) न्यायपालिका का वर्णन किया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि जापान की सारी न्यायिक शक्ति एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme

Court) व अन्य छोटी अदालतों के पास होगी जिन्हें विधि द्वारा स्थापित किया जावेगा। कोई भी असाधारण न्यायालय स्थापित नहीं किया जायेगा और किसी भी कार्यपालिका-अंग या साधन को अन्तिम न्यायिक शक्ति प्रदान न की जावेगी। सारे जज स्वतन्त्र होंगे; उन्हें अन्तःकरण की स्वतन्त्रता होगी, किन्तु उनकी शक्तियाँ केवल संविधान तथा उसके अनुकूल निर्मित धाराओं द्वारा सीमित होंगी।

इस सर्वोच्च न्यायालय को नियम-बनाने की शक्ति दी गई है, जिसके अन्तर्गत यह प्रक्रिया सम्बन्धी व कार्य-व्यवहार सम्बन्धी नियम व वकीलों, न्यायालयों के आन्तरिक अनुशासन और न्यायिक विषयों के प्रबन्ध के सम्बन्ध निश्चित करती है। लोकन्यायकर्त्तागण इसी सर्वोच्च न्यायालय की नियम-निर्माण शक्ति के आधीन होंगे। सर्वोच्च न्यायालय इस शक्ति को किसी निचली अदालत को सौंप सकता है।

सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान जज होगा और अन्य उतने जज होंगे जिनकी सख्या विधि द्वारा निश्चित की जावेगी। सिवाय प्रधान जज के समस्त अन्य जज कैबिनिट द्वारा नियुक्त किए जावेंगे। सर्वोच्च न्यायालय के जजों की नियुक्ति की जनता द्वारा उनकी नियुक्ति के बाद लोक सभा के प्रथम साधारण चुनाव के समय समीक्षा होगी और इसी रीत्यनुसार १० वर्ष बीत जाने पर लोक सभा के प्रथम साधारण चुनाव के समय उसकी पुनः समीक्षा होगी। उपर्युक्त दशाओं मे यदि मतदाताओं का बहुमत यह प्रदर्शित करे कि वह किसी विशेष जज के निष्कासन के पक्ष में है, तो उसका निष्कासन कर दिया जावेगा। समीक्षा से. सम्बन्धित विषयों को विधि द्वारा निश्चित किया जावेगा। सर्वोच्च न्यायालय के जज वह आयु पूरी करने पर रिटायर कर दिये जावेंगे जो विधि द्वारा निर्धारित हो। स्पष्टतया निर्धारित अवसरों पर इन जजों को उचित भत्ता भी दिया जावेगा जो उनके कार्यकाल मे कम नही किया जावेगा। जब तक न्यायिक घोषणा शारीरिक या मानसिक रूप से अयोग्य सिद्ध न कर दे तब तक उस जज को लोक महाभियोग (Public Impeachment) द्वारा पद से नही हटाया जा सकता। कार्यपालिका का कोई अंग या शाखा उसके विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही का संचालन नही कर सकती।

सर्वोच्च न्यायालय न्यायक्षेत्र में अन्तिम स्तर है और उसे किसी विधि, आदेश, निर्देशन या सरकारी कार्य का कानूनी औचित्य निश्चित करने का अधिकार है।

अन्य निचली अदालतो के जजों की नियुक्ति कैबिनिट द्वारा उन व्यक्तियों की सूची में से होगी जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय मनोनीत करे। ऐसे सारे जज केवल १० वर्षों के लिए नियुक्त किये जावेंगे, परन्तु, उन्हें पुनः नियुक्त होने का भी विशेष अधिकार प्राप्त होगा। विधि द्वारा निर्धारित आयु पूरी हो जाने पर उन्हें रिटायर भी कर दिया जावेगा। ये जज स्पष्टतया निर्धारित अवसरों पर समुचित भत्ता भी प्राप्त करेंगे जिसे उनके कार्यकाल के बीच कम नहीं किया जावेगा।

न्यायालयो मे निर्णय सम्बन्धी समस्त कार्यवाही खुले रूप से होगी। यदि कोई अदालत सर्वसम्मति से इस निष्कर्ष पर आती है कि अभियोग का विज्ञापन लोकव्यवस्था

या नैतिकता के लिए भयानक है तो कार्यवाही को गोपनीयता के साथ भी कर सकती है। राजनैतिक अपराधो के अभियोगो की कार्यवाही, जिसमें प्रकाशन सम्मिलित है या जिनका सम्वन्ध लोगो के अधिकारो व कर्त्तव्यों से है, किसी भी प्रकार से गुप्त रूप से नही हो सकेगी।

राजनैतिक दल (Political Parties)

जापान मे तीन मुख्य राजनैतिक दल हैं—लिवरल डेमोक्रेटिक पार्टी, सोशियल डेमोक्रेटिक पार्टी व जापान कम्युनिस्ट पार्टी।

(*i*) लिवरल डेमोक्रेटिक पार्टी (Liberal Democratic Party)—जापान लिवरल पार्टी और लिवरल पार्टी के विलयन के फलस्वरूप १५ नवम्बर, १९५५ को इस पार्टी का उद्घाटन हुआ। आज जापान में यही रूढ़िवादी दल है। इस दल का उद्देश्य शिक्षा प्रणाली मे सुधार करना तथा लोक आचारों को प्रोत्साहित करना है। सामाजिक शिक्षा के विषय मे यह राजनैतिक निष्पक्षता की कठोर व्यवस्था के पक्ष मे है। सामाजिक प्रशिक्षण को प्रोत्साहन देना और अवांछनीय प्रकाशनों, चल-चित्रों, प्रदर्शनों इत्यादि के विरुद्ध प्रभावकारी प्रतिबंधो का लगाना भी इसका ध्येय है। यह दल यह भी चाहता है कि स्कूलों मे प्रचलित वर्त्तमान पाठ्य-पुस्तको मे सशोधन किया जावे, उनसे सम्वन्धित निर्देशों में भी परिवर्तन किया जावे और छात्रवृत्तियों की ऐसी प्रभावशाली व्यवस्था स्थापित की जावे जिससे सभी लोग शिक्षा पा सकें।

यह दल इस वात का भी समर्थन करता है कि राजनैतिक जगत् व अधिकारी वर्ग में सुधार व नवीनता उत्पन्न की जाय। इस दल का कहना है कि अधिकारियो मे कठोर अनुशासन होना चाहिए और शासन तथा लोक-सेवा प्रणाली मे भी परिवर्तन होना चाहिए। यह दल प्रशासकीय यंत्र की जटिलता को सुलझा हुआ रूप देने के पक्ष मे है। इसके अतिरिक्त यह विभिन्न प्रशासकीय समितियों का विलयन व पुनर्संगठन तथा राष्ट्रीय सभाओ की कार्य-प्रणाली मे सुधार पर भी बल देती है।

यह आर्थिक स्वाधीनता की प्राप्ति के पक्ष मे है। यह इस बात का विरोध करती है कि राजनैतिक दृष्टिकोणो से मन्त्रियों के कार्यालय सरकारी बजट को वृहत् रूप प्रदान करने की परम्परा बनावें। यह दल यह भी चाहता है कि शासन में मूल उद्योगों को प्रोत्साहन देने, नए उद्योगो को बढ़ाने और आधुनिक उद्योगों को आधुनिक रूप देने के विषय मे आधारभूत नीतियाँ बनाई जावे। इसका यह भी कहना है कि छोटे व मध्यवर्गीय उद्योगो को सरक्षण व बढ़ावा दिया जावे, और उनके ऊपर से कर के भार को घटाया जावे। यह दल पद्धतियुक्त व मिश्रित भूमि विकास को उत्तेजित करने के पक्ष में है। यह ऐसी नीति पर अनुसरण चाहता है, जिसका आशय अणु-शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग तथा जापान के वैज्ञानिक व यान्त्रिक स्तरों को विकसित करना हो।

यह दल एक लोककल्याणकारी समाज की स्थापना के पक्ष मे है। आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र मे यह लोक स्वास्थ्य बीमा व्यवस्था व वर्त्तमान स्वास्थ्य बीमा

व्यवस्था में सुधार करना चाहता है। यह दल वृद्ध-आयु पेन्शन व्यवस्था के पक्ष में भी है। यह दल इस पर भी बल देता है कि श्रमिकों के रहने के लिए मकानों का निर्माण किया जावे, विधवाओं तथा वृद्धों की कल्याणकारी सुविधाओं का प्रसार किया जावे और मानवीय क्रय-विक्रय तथा दुराचार को रोका जावे।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यह विश्व के स्वतन्त्र व लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रों के साथ सहयोगी सम्बन्ध रखना चाहता है। यह अणु व हाइड्रोजन बमों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध चाहता है। अन्त में, इसका विचार है कि जापान के लोगों का विश्व के अन्य राज्यों मे प्रवेश हो और जापान की स्वाधीनता सुरक्षित रखने के हेतु आवश्यक कार्य किए जावें।

(*ii*) सोशियल डेमोक्रेटिक पार्टी (Social Democratic Party)—इसका निर्माण १३ अक्टूबर, १९५५ को हुआ जबकि जापान सोशियलिस्ट पार्टी के दक्षिण पक्ष व वाम पक्ष (Rightist Faction and Leftist Faction) ने पुन: मिल जाने का निश्चय किया। यह दल श्रमिक वर्ग के आधार पर संगठित हुआ है। यह दल शान्तिपूर्ण व लोकतन्त्रात्मक साधनों से राज्य की शक्ति प्राप्त करना चाहता है। यह दल जापान के ऊपर से अमेरिका का नियन्त्रण समाप्त करना चाहता है। यह दल एक सामाजिक क्रान्ति के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने का महान् उद्देश्य प्राप्त करना चाहता है।

यह दल सदा इस बात की माँग करता है कि जापान की अमेरिका के साथ शान्ति संधि तथा पारस्परिक सुरक्षा सम्बन्धो का अन्त कर दिया जावे। यह दल रूस व कम्युनिस्ट चीन के साथ आक्रमण से रहित रहने वाली संधि करना चाहता है। यह जापान के साम्यवादी चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध प्रारम्भ करने व एशिया के निष्पक्ष देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बढाने के पक्ष मे है। यह पुनःशस्त्रीकरण प्रोग्राम के विरोध मे है और अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में संघर्ष को घटाना चाहता है। यह दल इस बात पर भी बल देता है कि ऐसा आर्थिक संगठन हो जिसमे सामाजिक व्यवस्था के लक्ष्य की पूर्ति हो जावे। यह लोक स्वास्थ्य बीमा व्यवस्था की स्थापना के पक्ष में है। इसके अतिरिक्त यह पार्टी यह भी चाहती है कि वृद्धों को पेन्शन व विधवाओं, बालकों तथा आवश्यकताग्रस्त लोगों को आर्थिक सहायता दी जावे। श्रमिकों के रहने के लिए छोटे किराये के मकानों के बनाये जाने के पक्ष में यह दल अपना कार्यक्रम बनाता है। अन्त मे, यह दल वृहत् वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर शान्तिपूर्ण एवं लोकतन्त्रात्मक संस्कृति को प्रोत्साहित करने का समर्थन करता है।

(*iii*) कम्युनिस्ट पार्टी (Communist Party)—यह दल अनेकों परिवर्तनो में से होकर निकला है। १९२१ मे छोटा सा साम्यवादी संगठन जापान में स्थापित हुआ। कई अवसरो पर कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। आज भी इस दल को विशेष समर्थन प्राप्त नहीं। यह दल जापान के लोगों की उन पीड़ाओं पर बल देता है जो अमेरिका के कारण उत्पन्न हुई हैं। यह दल अमेरिका का नियन्त्रण व प्रभाव प्रत्येक प्रकार से समाप्त करना चाहता है। यह जापान की वर्तमान

शासन व्यवस्था को पूर्णतया समाप्त करने तथा एक नयी प्रशासकीय व्यवस्था स्थापित करने के पक्ष मे है। यह दल जापान से सारी विदेशी सेनाओं का बहिष्कार चाहता है। यह दल एक लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के स्थापित करने व राजपद का उन्मूलन करने के पक्ष में है। यह एकसदनीय विधानमडल का समर्थन करता है। यह १८ वर्ष की आयु से अधिक सभी लोगो को मताधिकार देना चाहता है। यह कृषि के क्षेत्र में बड़े सुधार तथा भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार का अन्त चाहता है। यह क्रान्तिकारी श्रम आन्दोलनों पर विशेष जोर देता है। इसका ध्येय यह है कि जापान की स्वतन्त्रता तथा लोकतन्त्रात्मक सुधार शान्तिपूर्ण साधनों से प्राप्त नही किये जा सकते। यह जापान को एक दास अवस्था से निकालना चाहता है जो कि इसके विचार मे इस समय उसे ग्रस्त किए हुए है।

१९५९ मे पार्षदो की सभा के लिए चुनाव हुए जिसमें लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी को २३५ स्थान मिले, सोशियल डेमोक्रेटिक पार्टी को ६४ स्थान मिले और कम्युनिस्ट पार्टी को केवल तीन स्थान मिले। १९५९ में लोकसभा के अर्द्ध चुनाव हुए जिसमें लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी को २९८, सोशियल डेमोक्रेटिक पार्टी को २६७ और कम्युनिस्ट पार्टी को २ स्थान प्राप्त हुए।

Suggested Readings

1. Ito, Prince Hirobumi . *Commentaries on the Constitution of the Empire.*
2. Kikuo Nakamura and Yutaka Matsumura : *Political Handbook of Japan (1958).*
3. The National Diet of Japan (1960).
4. Quigley and Harold S. : *Japanese Govt. and Politics, (1932).*
5. Quigley and Turner : *The New Japan ; Government and Politics, (1956).*
6. Yanaga, C. : *Japanes People and Politics (1956).*
7. Ika, Nobutaka : *Japanese Politics—An Introductory Survey, (1957).*
8. Hinton, Ike, Palmer, Callard and Kahin : *Major Governments of Asia, (1958).*
9. Linebarger, Chu and Burks : *Far Eastern Governments and Politics : China and Japan, (1954).*

अध्याय ३३

फ्रांस का संविधान

(THE FRENCH CONSTITUTION)

विषय-प्रवेश—फ्रांस की क्रान्ति के पहले फ्रांस में अत्यन्त निम्न श्रेणी की स्वेच्छाचारी सामन्तशाही शासन-प्रणाली थी, जिसमे प्रजा के हित की बिल्कुल उपेक्षा की जाती थी। इन परिस्थितियो मे यह आश्चर्य नही कि फ्रांस की जनता ने इस सामन्तशाही को समाप्त करके 'गणतन्त्र' स्थापित किया। गणतन्त्र को नेपोलियन ने १७९९ में उखाड़ फेंका और स्वयं 'प्रथम कौंसल' बन बैठा। सन् १८०४ में नेपोलियन फ्रांस का सम्राट् बन गया और सन् १८१४ तक वह सम्राट् रहा। उसके पश्चात् 'बोरबोन वंश (Bourbons) सन् १८३० तक राज्य करता रहा। लुई फिलिप (Louis Philippe) ने १८३० से १८४८ तक राज्य किया और 'फरवरी क्रान्ति' ने उसे भी समाप्त कर दिया। १८४८ मे फ्रांस में गणतन्त्र स्थापित हुआ किन्तु लुई नेपोलियन ने उसे समाप्त करके नेपोलियन तृतीय के नाम से अपने को सम्राट् घोषित किया। १८७० में वह भी युद्ध में सीडन (Sedan) के स्थान पर हार गया। नेपोलियन तृतीय के पतन के पश्चात् सन् १८७० मे तृतीय फ्रांस गणतन्त्र की स्थापना हुई।

तृतीय गणतन्त्र का संविधान, १८७५—फ्रास की जनता को अपना संविधान बनाने में ५ वर्ष लगे और वह सन् १८७५ में लागू हुआ। वह संविधान, २४ फरवरी, २५ फरवरी और १६ जुलाई सन् १८७५ की तीन विधियो पर आधारित था। वह कठोर (rigid) सविधान था। फ्रांस की संसद् इसमे साधारण कानूनों की तरह संशोधन नही कर सकती थी। अपितु दोनों सदनो के अलग-अलग प्रस्तावो द्वारा सम्पूर्ण बहुमत से संविधान में संशोधन कर सकती थी। इसके पश्चात् संसद् के दोनों सदन 'राष्ट्रीय विधान सभा' (National Assembly) के रूप में संविधान के संशोधन को निर्विरोध प्रस्ताव द्वारा स्वीकार करते थे।

यह संविधान इतना कठोर (rigid) था कि १८७५ से १९४० तक ६५ वर्ष की अवधि मे केवल ३ संशोधन ही किये जा सके। इस संविधान के अनुसार फ्रांस में प्रजातन्त्रीय शासन की स्थापना हुई और संविधान के अनुसार इस शासन-प्रणाली को संविधान में सशोधन करके बदला नही जा सकता था। देश का शासन-सूत्र एकात्मक (unitary) कर दिया गया। केन्द्रीय सरकार और प्रदेशो के बीच शासन-शक्ति का बँटवारा न किया गया। सभी प्रशासनिक आज्ञाएँ पैरिस से दी जाया करती थी। फ्रांस संसदीय प्रणाली का शासन चाहता था, जिसमे कार्यमण्डल विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी हो। *यद्यपि संविधान मे फ्रास के राष्ट्रपति की नियुक्ति की व्यवस्था थी*

किन्तु राष्ट्रपति की स्थिति अमेरिका के राष्ट्रपति जैसी न होकर इंगलैंड के सम्राट् के अधिक निकट थी। वह केवल एक वैधानिक प्रमुख था। शासन की वास्तविक शक्ति प्रधान मन्त्री और उसकी मन्त्रि-परिषद् के हाथ मे थी।

राष्ट्रपति के प्रत्येक आदेश या अधिनियम पर एक मन्त्री के प्रति-हस्ताक्षर आवश्यक होते थे। राष्ट्रपति का त्याग-पत्र ही एक ऐसा पत्र था जिस पर अन्य व्यक्ति के प्रति-हस्ताक्षर की आवश्यकता नही पडती थी। सर हेनरी मेन (Sir Henry Maine) ने ठीक ही कहा है कि "ससार मे सम्भवतः किसी भी पदाधिकारी की इतनी दयनीय दशा नही है जितनी कि फ्रांस के राष्ट्रपति की। फ्रांस के पुराने राजा राज्य और शासन दोनों करते थे किन्तु फ्रांस का सवैधानिक राजा न राज्य करता है और न शासन। अमेरिका का राष्ट्रपति राज्य करता है किन्तु शासन नहीं करता। फ्रास के गणतन्त्र के राष्ट्रपति की भी यह हास्यास्पद स्थिति है कि वह न राज्य करता है और न शासन।" डब्लू० एल० मिडिलटन के अनुसार, "यद्यपि राष्ट्रपति का मन्त्रि-मण्डल के कार्यों में हस्तक्षेप केवल सलाह देने तक ही सीमित रहता है, किन्तु यह सलाह एक ऐसे व्यक्ति की होती है जिसकी कार्यावधि मन्त्रिमण्डल से अधिक ही होगी। उसका पिछली सरकारों के कार्य का ज्ञान और सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में जानकारी इत्यादि, उसके प्रत्येक आदेश और सलाह को महत्त्वपूर्ण बना देता है।"

तृतीय गणतन्त्र के संविधान में द्विसदनीय संसद् की व्यवस्था थी, और उनके नाम सैनिट (Senate) और चैम्बर ऑफ डेपुटीज (Chamber of Deputies) थे। सैनिट के ३१४ सदस्य थे जो ६ वर्ष के लिए चुने जाते थे, जिनमें से एक-तिहाई प्रत्येक वर्ष अवकाश प्राप्त करते थे। सैनिट के सदस्य एक निर्वाचकमण्डल द्वारा चुने जाते थे। चैम्बर ऑफ डेपुटीज को भग करने से पहले गणतन्त्र के राष्ट्रपति को सैनिट की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। यह सैनिट का अधिकार था, यद्यपि १८७७ के पश्चात् इस का प्रयोग न किया गया। कानून बनाने में सैनिट को चैम्बर ऑफ डेपुटीज के समान अधिकार प्राप्त थे। इस विषय में केवल एक ही अपवाद था कि वित्त सम्बन्धी विधेयक केवल चैम्बर ऑफ डेपुटीज में पारित किए जा सकते थे। यद्यपि यह वित्त-विधेयकों को अस्वीकार कर सकती थी, किन्तु वास्तव में ऐसा बहुत कम होता था। जब भी चैम्बर ऑफ डेपुटीज़ किसी वित्त-विधेयक को स्वीकार करने पर जोर डालता तो सैनिट को झुकना पड़ता था। अवित्तीय विधेयकों मे सैनिट और चैम्बर के अधिकार समान थे। सैनिट का "कार्यमण्डल" (Executive) पर भी अधिकार था। संविधान में विशेष रूप से व्यवस्था थी कि मन्त्रि-मण्डल केवल चैम्बर ऑफ डेपुटीज के ही प्रति नही अपितु सैनिट के प्रति भी उत्तरदायी होगा। सैनिट को यह भी अधिकार था कि वह मन्त्रियों के विरुद्ध जांच करा सकती थी और उनके विरुद्ध निन्दा व अविश्वास का प्रस्ताव भी पास कर सकती थी। किन्तु ऐसा बहुधा नही होता था। सैनिट राष्ट्रपति और मन्त्रियों के अभियोग सुनने के लिए उच्च न्यायालय का काम भी करती थी। फ्रांस के राष्ट्रपति के विरुद्ध देशद्रोह के अभियोग में सैनिट और चैम्बर ऑफ डेपुटीज दोनों ही मुकदमा चला सकती थी। मन्त्रियों पर किसी कार्य में त्रुटि होने पर उन पर अभियोग लगाया जा सकता था।

फ्रांस की सैनिट निस्सन्देह एक योग्य और शक्तिशाली द्वितीय सदन था। यह एक आदर्श द्वितीय सदन समझा जाता था। इसके अधिकार संतुलित थे। बारथीलेमि (Barthelemy) के अनुसार, "सैनिट का कार्य अवरोध करना था और यह अपने तरीके से अपने कार्य को पूरा करती थी।" प्रो० मुनरो के अनुसार, "साधारण फ्रांसीसी न तो जन्मजात प्रतिक्रियावादी होता है और न यह घोर उग्रदलीय ही। वह एक साधारण मानव है और इसलिए बहुधा उसकी सहानुभूति सुधारवादियों,के साथ और उसका स्वयं रूढ़िवादियों के साथ होता है। इस प्रकार की परिस्थिति में सैनिट और चैम्बर देखने में एक दूसरे का विरोध भले ही करें, दोनों ही देशवासियों का विश्वसनीय रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं। एक देश की राजनीति और दूसरी देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था सँभाले हुए है। चैम्बर यदि उसका डान किकसट (*Don Quixote*) है तो सैनिट उसका सांचो पञ्जा (Sancho Panza) है। सैनिट एक आदर्श द्वितीय सदन है और एक आदर्श द्वितीय सदन को जनमत के झोंके के सामने बहुत धीरे-धीरे झुकना चाहिये, किन्तु जब जनमत एक दिशा विशेष में वह रहा हो तो इसे झुकना ही चाहिए।" ठीक इसी सिद्धान्त के अनुसार वास्तव में फ्रांस की सैनिट कार्य करती है।

विशेषताएँ—तृतीय गणतन्त्र की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख आवश्यक है। सर्वप्रथम राजनीति के विद्यार्थी को फ्रास के तृतीय गणराज्य में अनेक राजनीतिक दलों का होना दृष्टिगोचर होता है। ब्रिटेन और अमेरिका की परिपाटी के विपरीत फ्रांस में राजनीतिक दल बहुत बड़ी संख्या में थे। १९३६ में चैम्बर में १७ *मान्यताप्राप्त* राजनीतिक दल थे। टी० टामसन के अनुसार, "चैम्बर मे २० या इससे अधिक दलों के उद्देश्यों का स्पष्ट विश्लेषण व्यर्थ है, क्योंकि इनमें से अनेक का कोई उद्देश्य है ही नही। ये दल केवल चुनाव के समय ही बदलते है। ऐसा नही, ये एक चैम्बर की कार्यावधि मे भी बदलते रहते है। जिन नामों और सिद्धान्तोंपर चुनाव लड़ा जाता है वे बहुधा चैम्बर में आने पर बदल जाते हैं। देश में कुछ महत्त्वपूर्ण दल है जिनका चैम्बर मे कोई प्रतिनिधित्व नही है।"

अनेक राजनीतिक दल होने के कारण मिली-जुली सरकारें बनती थी जो बहुमत होने के कारण स्थायी नही होती थी। इस कारण सरकारें जल्दी-जल्दी बदलती रहती थी। १८७५ से १९२५ के २५ वर्ष के समय मे फ्रांस में ५० से अधिक मन्त्रिमण्डल बने जबकि इसी अवधि मे इंगलैण्ड में केवल १२ मन्त्रिमण्डल बने। किन्तु इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि फ्रांस में मन्त्रिमण्डल बदलने का वह परिणाम नही होता था जो इंगलैंड मे हुआ करता है। इंगलैंड मे मन्त्रिमण्डल बदलने पर पुराने मन्त्री अपदस्थ हो जाते है और नये मन्त्री पदासीन होते है किन्तु फ्रांस में इस प्रकार के परिवर्तन से मन्त्रिमण्डल मे कुछ नये मन्त्री नियुक्त और कुछ पुराने अपदस्थ किये जाते है। इस *अदल-बदल को साधारणतः* 'दुबारा-लिपाई' (re-plastering) के नाम से पुकारा जाता था। आज का प्रधान मन्त्री नई सरकार मे विदेश मन्त्री या पुराना विदेश मन्त्री नया प्रधान मन्त्री बन जाता था। नये प्रधान मन्त्री के मन्त्रिमडल में कई पुराने प्रधान मन्त्री सम्मिलित हो सकते थे।

तृतीय गणतन्त्र की एक उल्लेखनीय विशेषता कार्यमण्डल की निर्बलता थी। फ्रांस के प्रधान मन्त्री की प्रतिष्ठा इंगलैंड के प्रधान मन्त्री जैसी नहीं थी। इंगलैंड का प्रधान मन्त्री एक सुगठित अनुशासन में बँधे हुए राजनीतिक दल का नेता होता था और सदस्यों को दल के आदेशानुसार कार्य करना पड़ता था। सदस्य अपने दल के प्रस्तावों के विरुद्ध मतदान नहीं कर सकते थे और ऐसा करने पर उन्हें दल से निकाला जा सकता था और कभी-कभी इसका परिणाम सदस्य के राजनीतिक जीवन का अन्त कर देता था। विरोधी दल को प्रधान मन्त्री संसद् को भंग करा देने की धमकी देकर निपट सकता था। ये दोनों ही विशेषताएँ फ्रांस के तृतीय गणतन्त्र मे नहीं थी। फ्रांस के प्रधान मन्त्री को यह अधिकार नही था कि वह चैम्बर ऑफ डेपुटीज को भंग करने की मांग कर सके। फ्रांस मे दल अनुशासनशीलता का नाम नही था। अधिकतर सदस्य अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से चुने जाते थे। फ्रांस के राजनीतिक दलों के विषय में कहा गया है कि "चैम्बर के सदस्य, विशेष चिह्न धारण करने वाले चुने हुए प्रतिनिधि है, *जिन्हें मतदाताओं की किसी भी सुव्यवस्थित संस्था का समर्थन प्राप्त नही है,* जिनके पास न तो कोई कार्य का प्रोग्राम है और न वे किसी दलीय अनुशासन में ही हैं।" ऐसी परिस्थिति मे प्रधान मन्त्री के लिए इस प्रकार के साथियो का नेतृत्व करना बड़ा कठिन रहा होगा। पुनश्च, प्रत्येक मन्त्रिमण्डल मिला-जुला होता था। प्रधान मन्त्री को केवल अपने दल के साथियो के साथ ही नही अपितु अन्य दलों के प्रतिनिधियो को, जिन्होंने मन्त्रिमण्डल बनाने में सहायता दी, निभाना पड़ता था। इन परिस्थितियो के कारण उसकी स्थिति बहुत ही निर्बल रहती थी।

इस व्यवस्था का परिणाम यह था कि फ्रास मे केवल नाममात्र की उत्तरदायी सरकार बनती थी। यह सत्य है कि मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी था, किन्तु केवल सिद्धान्त रूप से ही, वास्तविक रूप से नहीं। इंगलैंड जैसे देश में यदि विरोधी दल सरकार की आलोचना करता है और मन्त्रिमण्डल भंग हो जाना है, तो विरोधी दल को सरकार की बागडोर संभालकर यह सिद्ध करना पड़ता है कि जिन सिद्धान्तों का वह विरोधी दल होते हुए प्रतिपादन करता था उन्हे क्रियान्वित भी कर सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि सरकार की आलोचना करते समय विरोधी दल अपना उत्तरदायित्व अनुभव करता है और विवेकपूर्ण आलोचना करता है क्योंकि सीमा से बाहर जाने के परिणामों का उसे भली प्रकार ज्ञान होता है। किन्तु फ्रास मे ऐसा नहीं था। मन्त्रिमण्डल बहुत से दलो को मिलाकर बना होता था, इस कारण जब विरोधी दल सरकार की आलोचना करता था उसे इस बात का भय नही होता था कि उसे अपने सिद्धान्तो को, सरकार बनाकर कार्य रूप मे परिणत करना पड़ेगा, जिनका वह विरोधी पक्ष मे होते हुए प्रतिपादन करता था। इसमे आश्चर्य नही कि इस कारण तृतीय गणतन्त्र काल मे विरोधी दल उत्तरदायित्वपूर्ण नहीं था और यही अवस्था चतुर्थ गणतन्त्र के समय मे भी रही।

तृतीय गणतन्त्र का संविधान १८७५ से १९४० तक चला। १० जुलाई को चैम्बर ऑफ डेपुटीज और सैनिट राष्ट्रीय विधान सभा (National A

के रूप में विशी (Vichy) स्थान पर एकत्रित हुए और यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि "राष्ट्रीय विधान सभा, मार्शल पेतां (Marshal Petain) के हस्ताक्षर और अधिकार के अन्तर्गत, गणतन्त्र की सरकार को फ्रास राष्ट्र के लिए, एक अथवा अनेक कानून बनाकर, नया संविधान बनाने और लागू करने का पूर्ण अधिकार सौंपती है। यह संविधान राष्ट्र के नागरिको के कार्य, परिवार और मातृभूमि सम्बन्धी अधिकारों, को सुरक्षित करेगा।" ११ जुलाई सन् १९४० को मार्शल पेतां ने फ्रांस के राष्ट्रपति के पूर्ण अधिकार संभालकर, राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी, वैधानिक व्यवस्था को अनुलम्बित कर दिया। उसने राष्ट्र के मन्त्रियो और सचिवों की नियुक्ति और पदच्युत करने सम्बन्धी अधिकार भी अपने हाथ में ले लिये। मन्त्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी न होकर मार्शल पेतां के प्रति उत्तरदायी हो गये। चैम्बर ऑफ डेपुटीज और सैनिट के अधिवेशन सम्बन्धी व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया गया। फ्रांस में एक प्रकार की तानाशाही चालू हो गई, किन्तु विशी के शासन काल में ही इसके विरुद्ध आन्दोलन चालू हो गया। जनरल डी गॉल ने स्वातन्त्र्य-आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सितम्बर सन् १९४१ में एक स्वतन्त्र फ्रांस समिति (Free French National Committee) की स्थापना कर इसे स्वतन्त्र फ्रांस के प्रति कार्य करने का भार सौंप दिया गया। सितम्बर, १९४३ मे अल्जीरिया मे फ्रेंच विमर्श सभा (French Consultative Assembly) का निर्माण हुआ। जून सन् १९४४ मे राष्ट्र-मुक्ति समिति (French Committee for National Liberation) ने इसका नाम फ्रांस के गणतन्त्र की अस्थायी सरकार (Provisional Government for French Republic) रख दिया। २५ अगस्त सन् १९४४ को फ्रांस में जर्मनी की सेनाओं ने आत्म-समर्पण किया और जनरल डी गॉल इस अस्थाई सरकार के प्रमुख बने। स्वातन्त्र्य-युद्ध के पहले १४ महीने 'स्वेच्छा तानाशाही' (Dictatorship by consent) कहे जाते है। निस्संदेह विमर्श समिति थी, किन्तु मन्त्रिमण्डल जनरल डी गॉल का चुना हुआ होता था और उसके ही प्रति उत्तरदायी था।

१७ अगस्त, १९४५ को फ्रास सरकार ने एक अधिनियम लागू किया जिसमे सविधान सभा (Constituent Assembly) के चुनाव सम्बन्धी कानूनो का उल्लेख था। संविधान सभा २१ अक्टूबर, १९४५ को चुनी गई। संविधान सभा की पहली बैठक ६ नवम्बर, १९४५ को हुई और ३०९ मत पक्ष मे और २४९ मत विरोध मे प्राप्त करके एक अधिनियम पारित किया जिसमें फ्रांस के नए संविधान की परिभाषा की गई थी। इसमें केवल एक सदन (unicameral) की 'राष्ट्रीय संसद्' (National Assembly) की व्यवस्था की गई और सारे अधिकार इसे सौप दिए गए। आर्थिक परिषद् (Economic Council) और फ्रांस राष्ट्र परिषद् (Council of the French Union) नाम की दो सलाहकार समितियो की भी व्यवस्था की गई। ये दोनो केवल परामर्शदात्री समितियाँ थी। फ्रास के राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री दोनो के राष्ट्रीय संसद् द्वारा चुने जाने का विधान था। राष्ट्रपति को राष्ट्रीय ससद् को भंग करने का कोई अधिकार नही था। सरकार के त्याग-पत्र देने पर वह कुछ पदाधियों के नाम राष्ट्रीय संसद्

के सम्मुख रखता था, जिनमें से संसद् को प्रधान मन्त्री चुनना होता था। राष्ट्रीय संसद् के भंग होने पर प्रधान मन्त्री को अपने सारे अधिकार राष्ट्रपति को सौंप देने पड़ते थे। यह संविधान फ्रांस के नागरिकों ने ५ मई, १९४६ को लगभग १० लाख मतों से अस्वीकार कर दिया।

एक नई विधान सभा बनानी पड़ी जिसने नये संविधान का मसविदा तैयार किया। नई संविधान सभा जून, १९४६ में चुनी गई और इसने एक नया संविधान तैयार किया। दूसरा मसविदा भी थोड़े से परिवर्तन के अतिरिक्त पहले की तरह ही था। नया संविधान १३ अक्टूबर, १९४६ को स्वीकार हुआ और २७ अक्टूबर, १९४६ को विघोषित कर दिया गया।

फ्रांस का चतुर्थ गणतन्त्र (१९४६) : प्रस्तावना (Preamble)—(१) फ्रांस के चतुर्थ गणतन्त्र का विधान (Constitution of the Fourth Republic) १९४६ से १९५८ तक लागू रहा। इसमें एक प्रस्तावना थी जिसमें यह कहा गया था कि फ्रांस की जनता यह घोषणा करती है कि प्रत्येक मनुष्य बिना किसी जाति, धर्म अथवा विश्वास के भेद-भाव के कुछ अभेद्य तथा पवित्र अधिकारों का स्वामी है। इसमें समस्त मानव जाति और नागरिकों के उन पवित्र अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की पुष्टि की गई जो १७८९ की अधिकार-घोषणा में सम्मिलित थे। इसमें पुरुषों और स्त्रियों को समानाधिकार दिए गए। कोई भी व्यक्ति जिसे स्वतन्त्रता की रक्षा में किसी प्रकार के कष्ट उठाने पड़ें, गणतन्त्र की सीमाओं के अन्दर आश्रय प्राप्त कर सकता था। प्रत्येक व्यक्ति को जीविकोपार्जनार्थ कार्य करने का अधिकार तथा कर्त्तव्य प्राप्त था। केवल मात्र मूल विचार या विश्वास के कारण किसी व्यक्ति को उसके व्यवसाय में कष्ट नहीं दिया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को श्रम-संस्थाओं में सम्मिलित होकर अपने अधिकारों की रक्षा करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी श्रम-संस्था में सम्मिलित हो सकता था। देश के नियमों तथा विनियमों के अधीन हड़ताल करने का अधिकार भी दिया गया। प्रस्तावना में सब व्यक्तियों को और विशेषकर बच्चों, माताओं और वृद्ध श्रमिकों को स्वास्थ्य-रक्षा, आर्थिक सुरक्षा, विश्राम तथा मनोरंजन देने का आश्वासन दिया गया। प्रत्येक मानव को जो अपनी शारीरिक या मानसिक अवस्था, या आर्थिक कठिनाई, या आयु के कारण किसी भी व्यवसाय को अपनाने के अयोग्य हो उसे सम्मानित जीवन व्यतीत करने के लिए राष्ट्र से साधन प्राप्त करने का अधिकार था। बच्चों तथा वयस्कों को सामान्य शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा सांस्कृतिक उत्थान के लिए समानाधिकार दिए गए थे। सब स्तरों पर निःशुल्क तथा धर्म-निरपेक्ष जन-शिक्षा की व्यवस्था करना राष्ट्र का कर्त्तव्य घोषित किया गया। यह घोषणा भी की गई कि फ्रांस कभी भी युद्ध आरम्भ नहीं करेगा और न ही विजय के लिए आगे बढ़ेगा। किसी अन्य राष्ट्र की स्वतन्त्रता के विरुद्ध भी शस्त्र प्रयोग न करने की घोषणा की गई।

(२) संविधान में फ्रांस को अभाज्य, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक तथा सामाजिक गणतन्त्र घोषित किया गया। तिरंगे झंडे को राष्ट्रध्वज बना दि...

मार्सिलेज़ (Marseillaise) को राष्ट्र-गान घोषित किया गया। 'स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व' (Liberty, Equality and Fraternity) राष्ट्र का आदर्श-वाक्य था। यह घोषणा की गई कि राष्ट्रीय प्रभुत्व सम्पन्नता एकमात्र जनता का अधिकार है और फ्रांस के लोगों का कोई भी वर्ग अथवा व्यक्ति प्रभुत्व को धारण नहीं कर सकता था। फ्रांस के सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकार दिया गया।

(२) फ्रांस का राष्ट्रपति (French President)—१९४४ में फ्रांस की मुक्ति के पश्चात् जैनरल डिगॉल राष्ट्रपति को एक शक्तिशाली कार्यमण्डल का प्रधान बनाने के इच्छुक थे। वह चाहते थे कि राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् से भी बड़े निर्वाचनाधिकरण (Electoral College) द्वारा किया जाए। वह राष्ट्रपति को संसद् से स्वतन्त्र रखना चाहते थे। उनके अनुसार राष्ट्रपति ही मन्त्रियों को चुनेगा और मन्त्री राष्ट्रपति के प्रति ही उत्तरदायी होंगे। वह राष्ट्रपति को संसद् को भंग करने का तथा जनता से सीधे निवेदन करने का अधिकार देना चाहते थे। जनरल डिगाल के विचार राष्ट्र ने अस्वीकार कर दिये क्योंकि उन्हें यह अभी नहीं भूला था कि नेपोलियन तृतीय ने किस प्रकार इसी तरह के केन्द्रित शासन के अधीन अपना व्यक्तिगत राज्य स्थापित किया था। संविधान के मसविदे में राष्ट्र-परिषद् में सार्वजनिक मतदान से राष्ट्रपति का निर्वाचन करने की व्यवस्था की गई थी। १८७५ में दिए गए सभी अधिकार राष्ट्रपति से ले लेने की व्यवस्था की गई। क्षमा-दान का अधिकार राष्ट्रपति से लेकर एक न्याय-समिति को सौंप दिया गया। उसे प्रधान मंत्री नियुक्त करने का भी अधिकार न था। उसका कर्तव्य केवल यही था कि वह विभिन्न उम्मीदवारों के नाम राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत कर दे, किन्तु जनता ने इन प्रस्तावों को भी अस्वीकार कर दिया।

चतुर्थ गणतन्त्र के विधानानुसार राष्ट्र-परिषद् तथा गणतन्त्र-परिषद् से बनाई गई संसद् की वर्साई में की गई संयुक्त बैठक में प्रयुक्त मतों के साधारण बहुमत से राष्ट्रपति का सात वर्षों के लिए निर्वाचन किया जाता था और वह केवल एक बार ही फिर निर्वाचित हो सकता था। राष्ट्र-द्रोह के आरोप पर उच्च न्यायालय (High Court of Justice) राष्ट्रपति पर अभियोग चला सकता था।

राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers) तथा राज्य-परिषद् के सदस्य (Councillors of State), 'लीजन आफ ऑनर' के महाधिपति (Grand Chancellor), राजदूत तथा विशेष प्रतिनिधि, महापरिषद् (Superior Council) तथा राष्ट्र-सुरक्षा-समिति (Committee for National Defence) के सदस्य विश्वविद्यालयों के कुलपति (Rectors of Universities), जिलाधिकारी (Prefects), केन्द्रीय प्रशासनिक सेवा विभाग के प्रमुख, साधारण पदाधिकारी तथा समुद्र पार उपनिवेशों (Overseas Territories) में राज्य-प्रतिनिधियों को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। राष्ट्रपति को अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की प्रगति पर दृष्टि रखने का कर्तव्य सौंपा गया। उसे सब सन्धियों को स्वीकार तथा उन पर हस्ताक्षर करना होता था। वह विदेशों के राजदूतों तथा अन्य प्रतिनिधियों को नियुक्त करता था और उन देशों के राजदूतों तथा अन्य प्रतिनिधियों को स्वीकार करता था। उच्च परिषद् तथा

राष्ट्र-सुरक्षा समिति के सभी अधिवेशन राष्ट्रपति की अध्यक्षता में होते थे। उसे 'सशस्त्र-सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति' की उपाधि भी दी गई। उच्च न्यायाधिकरण के अधिवेशन भी राष्ट्रपति की अध्यक्षता में होते थे। उसे क्षमा-दान का अधिकार दिया गया था। उसे विनियमों को लागू करने का तथा राष्ट्र-परिषद् के सन्देश भेजने का अधिकार भी दिया गया।

यह सत्य है कि फ्रांस के राष्ट्रपति को अनेकाधिकार प्राप्त थे, किन्तु उन अधिकारों में अधिक मूल न था क्योंकि यह शर्त लगा दी गई थी कि राष्ट्रपति की प्रत्येक आज्ञा पर मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष और एक अन्य मन्त्री के हस्ताक्षर अनिवार्य थे। परिणाम यह हुआ कि वह केवल राज-प्रमुख बनकर ही रह गया। कदाचित् इसका यह अर्थ नहीं है कि राष्ट्र के शासन पर उसे कुछ भी अधिकार न था। फ्रांस में बहुत बड़ी संख्या में मन्त्रिमडल बने और केवल इसीलिए कि कोई एक राजनैतिक दल मन्त्रिमण्डल नहीं बना सकता था। राष्ट्रपति को किसी भी नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए निमन्त्रण देने के विषय में पर्याप्त विचार-स्वच्छन्दता प्राप्त थी। कई बार मन्त्रिमण्डल बनने में बहुत से दिन लग जाते थे। इसलिए राष्ट्रपति राजनैतिक कार्यशीलता का केन्द्र बन जाता था।

संविधान पर विचार-विमर्श के समय राष्ट्रपति को विधान का संरक्षक कहा जाता था। १९४७-४८ की आपद्कालीन शीत-ऋतु में विभिन्न सम्प्रदायों में राजनैतिक तथा आर्थिक झगड़ों में हस्तक्षेप करने के लिए राष्ट्रपति से प्रार्थना करने के लिए बहुधा झुकाव था। किन्तु राष्ट्रपति औरियो ने हस्तक्षेप न करने की घोषणा कर दी। जब आर० पी० एफ० (Rally of the French People) ने १९४७ में इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्र-परिषद् को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं था और यह भी कहा कि उसे भंग करना आवश्यक था, तब भी राष्ट्रपति औरियो ने कार्य करने से इनकार कर दिया। परन्तु राष्ट्रपति औरियो ने नवम्बर १९५० तथा अप्रैल १९५१ में दो बार हस्तक्षेप किया जब उन्होंने मन्त्रिमण्डल को [illegible] के लिए पद-त्याग न करने के लिए इनसे प्रार्थना की। पहली बार, जब मन्त्रिमण्डल साम्यवादियों द्वारा पराजित हो जाने पर पद-त्याग करना चाहता था किन्तु राष्ट्रपति ने त्यागपत्र इसलिए अस्वीकार कर दिया कि अविश्वास प्रस्ताव पूर्ण बहुमत से नहीं था जैसे कि संविधान में कहा गया था। राष्ट्रपति ने मन्त्रिमण्डल तथा संविधान की स्थिरता के लिए सदा अपनी तत्परता प्रकट की।

मन्त्रिमण्डल (Council of [illegible])—संविधान में एक मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति के लिए व्यवस्था की गई थी। संसद के प्रत्येक अधिवेशन के [illegible] समय राष्ट्रपति को राष्ट्र[illegible] प्रधान मन्त्री को [illegible] होता था। प्रधान मन्त्री को [illegible] के सम्मुख अपने [illegible] तथा राज्य-नीतियों की [illegible] करनी होती थी। [illegible] अन्य सदस्यों के नाम [illegible] पड़ते थे। [illegible] मन्त्रियों की नियुक्ति [illegible] की [illegible]

मार्सिलेज (Marseillaise) को राष्ट्र-गान घोषित किया गया। 'स्वतन तथा बन्धुत्व' (*Liberty, Equality and Fraternity*) राष्ट्र का म यह घोषणा की गई कि राष्ट्रीय प्रभुत्व सम्पन्नता एकमात्र जनता का *फ्रांस के लोगों का कोई भी वर्ग अथवा व्यक्ति प्रभुत्व को धारण नहीं क* फ्रांस के सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकार दिया गया।

(३) फ्रांस का राष्ट्रपति (French President)—१९४४ ई के पश्चात् जैनरल डिगॉल राष्ट्रपति को एक शक्तिशाली कार्यमण्डल का इच्छुक थे। वह चाहते थे कि राष्ट्रपति का निर्वाचन संसद् से भी बड़े ि (Electoral College) द्वारा किया जाए। वह राष्ट्रपति को संसद् से चाहते थे। उनके अनुसार राष्ट्रपति ही मंत्रियों को चुनेगा और मन्त्री ही उत्तरदायी होंगे। वह राष्ट्रपति को संसद् को भंग करने का तथा *निवेदन करने का अधिकार देना चाहते थे। जनरल डिगाल के विचार रा* कर दिये क्योंकि उन्हें यह अभी नहीं भूला था कि नेपोलियन तृतीय ने ि तरह के केन्द्रित शासन के अधीन अपना व्यक्तिगत राज्य स्थापित किया के मसविदे में राष्ट्र-परिषद् में सार्वजनिक मतदान से राष्ट्रपति का नि व्यवस्था की गई थी। १८७५ में दिए गए सभी अधिकार राष्ट्रपति से ले की गई। क्षमा-दान का अधिकार राष्ट्रपति से लेकर एक न्याय-समिि गया। उसे प्रधान मन्त्री नियुक्त करने का भी अधिकार न था। उ यही था कि वह विभिन्न उम्मीदवारों के नाम राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख किन्तु जनता ने इन प्रस्तावों को भी अस्वीकार कर दिया।

चतुर्थ गणतन्त्र के विधानानुसार राष्ट्र-परिषद् तथा गणतन्त्र *गई संसद् की वर्साई में की गई संयुक्त बैठक में प्रयुक्त मतों के* राष्ट्रपति का सात वर्षों के लिए निर्वाचन किया जाता था और वह ही फिर निर्वाचित हो सकता था। राष्ट्र-द्रोह के आरोप पर उच्च Court of Justice) राष्ट्रपति पर अभियोग चला सकता था।

राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers) तथ सदस्य (Councillors of State), 'लीजन आफ ऑनर' के Chancellor), राजदूत तथा विशेष प्रतिनिधि, महापरिषद् (तथा राष्ट्र-सुरक्षा-समिति (Committee for National विश्वविद्यालयों के कुलपति (Rectors of Universities), जिल केन्द्रीय प्रशासनिक सेवा विभाग के प्रमुख, साधारण उपनिवेशों (Overseas Territories) में राज्य-प्रतिनिधियों कार दिया गया। राष्ट्रपति को अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की कर्तव्य सौंपा गया। उसे सब सन्धियों को स्वीकार तथा उन था। वह विदेशों के राजदूतों तथा अन्य प्रतिनिधियों को *देशों के राजदूतों तथा अन्य प्रतिनिधियों को स्वीकार करता*

बनाने के लिए उसमें सम्मिलित होने वाले सभी दलों के कार्यक्रमों में परिवर्तन करना पड़ता था। कार्य करते समय, उनमे किसी बड़े विषय पर मतभेद होने की पूर्ण सम्भावना होती थी और इस कारण से कोई एक दल भी मन्त्रिमण्डल से अपना सहयोग वापिस लेने का निर्णय कर सकता था। यदि ऐसा होता था तो मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता था। किसी भी मिश्रित मन्त्रिमण्डल मे पाँच-छः राजनैतिक दलो का होना आवश्यक था। और उनमें से एक के भी भिन्न होने पर मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता था। फ्रांस का मन्त्रिमण्डल ताश के पत्तों के घर की भाँति था जिसे एक फूंक से ही उड़ाया जा सकता था।

फ्रास के मन्त्रिमण्डल की बनावट भी उनके पतन का एक प्रमुख कारण थी। मन्त्रिमण्डल के पतन होने पर सभी मन्त्री पद्-च्युत नही कर दिये जाते थे और न ही यह आवश्यक था कि भूतपूर्व मन्त्रिमण्डल के मन्त्री नए मन्त्रिमण्डल में नियुक्त नहीं हो सकते थे। पुनर्लियाई की रीति के अनुसार पिछले मण्डल के कई या अधिकांश मन्त्री नए मन्त्रिमण्डल में स्थान ग्रहण कर लेते थे। यह कहा गया है कि १९४५ और १९५१ के बीच के सभी मन्त्रिमण्डलों मे बाद में आने वाले मन्त्रिमण्डल के अधिकाश सदस्य पिछले मण्डल में से लिए जाते थे। सितम्बर १९४४ से जुलाई १९४८ तक बनने वाले सभी मन्त्रिमण्डलों में विदेश-मन्त्री का पद बिदालट को दिया गया। शुमैन आठ मन्त्रिमण्डलों में विदेश-मन्त्री रहा। लैंकास्टे क्रमशः नौ मन्त्रिमण्डलों में उत्पादन मन्त्री था। मॉक पाँच मन्त्रिमण्डलो मे जन-हित कार्य मन्त्री और गृह-मन्त्री था। वह चौदह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य रहा। शुमैन तेरह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य था। बिदालट ग्यारह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य रहा। अन्य अठारह मन्त्री छः से नौ मन्त्रिमण्डलों के सदस्य थे। फ्रांस मे मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन को ताश के पत्तों का मिलाना कहा गया है। जो व्यक्ति एक मन्त्रिमण्डल मे विदेश मन्त्री था वह अगले मन्त्रिमण्डल मे प्रधान मन्त्री बन सकता था। अथवा पहले मन्त्रिमण्डल का प्रधान मन्त्री अगले मन्त्रिमण्डल में विदेश मन्त्री बन सकता था। मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन पर मन्त्रियों पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ सकने के कारण, उन पर किसी प्रकार की रोक-थाम नही थी कि वे मन्त्रिमण्डल का पतन न करें, यदि उन्हें पतन से ही किसी प्रकार का लाभ हो सकता है। इसी से पता लगता है कि फ्रांस में मन्त्रिमण्डल इतनी शीघ्रता से क्यों बदलते थे।

इंगलैंड में यदि मन्त्रिमण्डल का लोकसभा में पतन हो जाए तो प्रधान मन्त्री सम्राज्ञी से लोकसभा को भंग करने की मांग कर सकता है और ऐसी स्थिति में सम्राज्ञी को लोकसभा को भंग करना ही पड़ता है। भंग करने की शक्ति का लोकसभा के सदस्यों पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। यह सत्य है कि चतुर्थ लोकतन्त्र के विधान में राष्ट्र-परिषद् को भंग करने की व्यवस्था की गई थी, किन्तु उसका प्रयोग उतनी ही प्रभावशीलता से नही किया जा सकता था जैसा कि इंगलैंड में किया जाता है। संसद् के पहले डेढ़ साल में उसे भंग नही किया जा सकता था और इतने समय में तो उस शक्ति का कुछ भी प्रभाव न था। उसके पश्चात् भी संसद् को भंग तभी किया जा सकता था जब डेढ़ साल के अन्दर-अन्दर ही दो बार मन्त्रिमण्डल को राजनैतिक-संकट का सामना

विश्वास प्राप्त न कर लें। विश्वास-मतदान पूर्ण बहुमत से होना आवश्यक था सिवाए उस समय जब किसी अन्य शक्ति के कारण राष्ट्र-परिषद् का अधिवेशन न हो सके। मन्त्रियो को सगठित रूप से अपनी नीतियो के लिए राष्ट्र-परिषद् के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया। प्रत्येक मन्त्री को अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए अलग भी उत्तरदायी बनाया गया। यह स्पष्ट रूप से कहा जाता था कि मन्त्रिगण लोकतन्त्र-परिषद् के प्रति उत्तरदायी नही होंगे। सविधान की धारा ५१ के अनुसार यह व्यवस्था की गई कि यदि डेढ़ साल के अन्दर दो बार विपत्ति में हो तो राष्ट्र-परिषद् के अध्यक्ष से परामर्श करने के पश्चात् मन्त्रिमण्डल राष्ट्र-परिषद् को भंग करने का निर्णय कर सकता था। राष्ट्र-परिषद् के भंग होने की स्थिति मे राष्ट्रमण्डल के अध्यक्ष तथा गृह-मन्त्री के अतिरिक्त सभी मन्त्री अपने-अपने पदो पर नियुक्त रहते थे ताकि वे दैनिक कार्य चलाते रहे। राष्ट्र-परिषद् के अध्यक्ष को ही राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष नियुक्त किया जाता था। नया गृह-मन्त्री राष्ट्र-परिषद् के सचिवालय की अनुमति से नियुक्त किया जाता था। मन्त्रियो की ससद् के दोनो भागो तथा उनकी सभी समितियो तक पहुँच होती थी और उन्हे अपने विचार प्रकट करने का अधिकार भी था।

मन्त्रिमण्डलों की अस्थिरता (Ministerial Instability)—यह सत्य है कि तृतीय गणतन्त्र के अनुभवो से सीख प्राप्त करने की चेष्टाएँ की गईं और ऐसी व्यवस्थाएँ भी की गईं जिनसे मन्त्रिमण्डलो की स्थिति सुदृढ़ बने। संयुक्त उत्तरदायित्व की व्यवस्था भी सविधान मे कर दी गई थी। किसी एक स्वाभाविक या अकस्मात् मतदान पर ही मन्त्रिमण्डल का पतन नही हो जाता था। पूरा एक दिन दिया जाता था कि राष्ट्र-परिषद् के सदस्य पूर्ण रूप से विचार कर सकें। केवल उसके बाद ही मतदान किया जाता था। मन्त्रिमण्डल की स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए ही राजनैतिक दलों को दृढ़ किया जाता था। किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि चतुर्थ लोकतन्त्र के मन्त्रिमण्डल अल्प-आयुध थे। यह उल्लेखनीय है कि तियों ब्लूँ १२ दिसम्बर १९४६ को प्रधान मंत्री बना, पाल रेमाडिए १७ जनवरी १९४७ को, रॉबर्ट शुमैन २२ नवम्बर १९४७ को, आण्द्रे मेरिए २४ जुलाई १९४८ को, रॉबर्ट मैशुन फिर ३१ अगस्त १९४८ को, हेनरी क्युबिल १ जुलाई १९५० को, रेने प्लेवे ८ जुलाई १९५० को, हेनरी क्युबिल फिर ९ मार्च १९५१ को, रेने प्लेवे ८ अगस्त १९५१ को, एडगर फॉरे १८ जनवरी १९५२ को, जोजेफ लेनिए २८ जून १९५३ को, पियरे मेण्डेस १९ जून १९५४ को, एडगर फॉरे फिर २३ जनवरी १९५५ को, गाई मौल्ले १ फरवरी १९५६ को, बूर्जे-मानूरी १२ जून १९५७ को, गैतलाँ ५ नवम्बर १९५७ को, फिलमलि १४ मई १९५८ को और जनरल डिगॉल १ जून १९५८ को प्रधान मन्त्री बने। **फ्रांस में इतनी तेजी से मन्त्रिमण्डलों के परिवर्तन के कई कारण थे।**

सबसे बड़ा कारण था देश मे बहुत सारी राजनैतिक संस्थाओ की उपस्थिति। किसी भी दल को संसद् मे बहुमत प्राप्त नही था, इसलिए प्रत्येक मन्त्रिमण्डल कई दलो के मिलने से ही बनाया जाता था। ऐसे मन्त्रिमण्डल तो स्वाभाविकतः ही निर्बल होते हैं। उनमे किसी प्रकार की सामान्यता न थी। प्रत्येक मिश्रित मन्त्रिमण्डल के

बनाने के लिए उसमें सम्मिलित होने वाले सभी दलों के कार्यक्रमो में परिवर्तन करना पड़ता था। कार्य करते समय, उनमे किसी बड़े विषय पर मतभेद होने की पूर्ण सम्भावना होती थी और इस कारण से कोई एक दल भी मन्त्रिमण्डल से अपना सहयोग वापिस लेने का निर्णय कर सकता था। यदि ऐसा होता था तो मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता था। किसी भी मिश्रित मन्त्रिमण्डल मे पांच-छः राजनैतिक दलों का होना आवश्यक था। और उनमे से एक के भी भिन्न होने पर मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता था। फ्रांस का मन्त्रिमण्डल ताश के पत्तों के घर की भाँति था जिसे एक फूँक से ही उड़ाया जा सकता था।

फ्रांस के मन्त्रिमण्डल की बनावट भी उनके पतन का एक प्रमुख कारण थी। मन्त्रिमण्डल के पतन होने पर सभी मन्त्री पद्-च्युत नही कर दिये जाते थे और न ही यह आवश्यक था कि भूतपूर्व मन्त्रिमण्डल के मन्त्री नए मन्त्रिमण्डल मे नियुक्त नही हो सकते थे। पुर्नालियाई की रीति के अनुसार पिछले मण्डल के कई या अधिकांश मन्त्री नए मन्त्रिमण्डल में स्थान ग्रहण कर लेते थे। यह कहा गया है कि १९४५ और १९५१ के बीच के सभी मन्त्रिमण्डलों मे बाद में आने वाले मन्त्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य पिछले मण्डल में से लिए जाते थे। सितम्बर १९४४ से जुलाई १९४८ तक बनने वाले सभी मन्त्रिमण्डलों मे विदेश-मन्त्री का पद बिदालट को दिया गया। शुमैन आठ मन्त्रिमण्डलों मे विदेश-मन्त्री रहा। लैकास्टे क्रमशः नौ मन्त्रिमण्डलों में उत्पादन मन्त्री था। मॉक पाँच मन्त्रिमण्डलो मे जन-हित कार्य मन्त्री और गृह-मन्त्री था। वह चौदह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य रहा। शुमैन तेरह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य था। विदालट ग्यारह मन्त्रिमण्डलों का सदस्य रहा। अन्य अठारह मन्त्री छ: से नौ मन्त्रिमण्डलो के सदस्य थे। फ्रांस मे मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन को ताश के पत्तों का मिलाना कहा गया है। जो व्यक्ति एक मन्त्रिमण्डल में विदेश मन्त्री था वह अगले मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री बन सकता था। अथवा पहले मन्त्रिमण्डल का प्रधान मन्त्री अगले मन्त्रिमण्डल में विदेश मन्त्री बन सकता था। मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन पर मन्त्रियों पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ सकने के कारण, उन पर किसी प्रकार की रोक-थाम नही थी कि वे मन्त्रिमण्डल का पतन न करें, यदि उन्हें पतन से ही किसी प्रकार का लाभ हो सकता है। इसी से पता लगता है कि फ्रांस में मन्त्रिमण्डल इतनी शीघ्रता से क्यों बदलते थे।

इंगलैंड में यदि मन्त्रिमण्डल का लोकसभा में पतन हो जाए तो प्रधान मन्त्री सम्राज्ञी से लोकसभा को भंग करने की माँग कर सकता है और ऐसी स्थिति में सम्राज्ञी को लोकसभा को भंग करना ही पड़ता है। भंग करने की शक्ति का लोकसभा के सदस्यों पर बहुत अच्छा प्रभाव होता है। यह सत्य है कि चतुर्थ लोकतन्त्र के विधान में राष्ट्र-परिषद् को भंग करने की व्यवस्था की गई थी, किन्तु उसका प्रयोग उतनी ही प्रभावशीलता से नही किया जा सकता था जैसा कि इंगलैंड में किया जाता है। संसद् के पहले डेढ़ साल में उसे भंग नही किया जा सकता था और इतने समय में तो उस शक्ति का कुछ भी प्रभाव न था। उसके पश्चात् भी संसद् को भंग तभी किया जा सकता था जब डेढ साल के अन्दर-अन्दर ही दो बार मन्त्रिमण्डल को राजनैतिक-संकट का सामना

करना पड़े। स्पष्ट है कि फ्रांस में संसद् को भंग करने के मार्ग मे इतनी शर्तें थीं कि उन्हें पूरा करना अत्यन्त कठिन था। अतएव मन्त्रिमण्डल राष्ट्र-परिषद् के सामने अशक्त रहते थे।

फ्रांस में मन्त्रिमण्डलों की दुर्बलता का एक और कारण था आरोपात्मक प्रश्न *(Interpellations)*। *आरोपात्मक प्रश्न अन्य प्रश्नों से भिन्न थे। साधारण प्रश्नों का* उद्देश्य होता था सूचना प्राप्त करना, किसी घोषणा-पत्र का अर्थ ज्ञात करना, किसी नियम के गलत प्रयोग पर आपत्ति करना, इत्यादि। किन्तु एक आरोपात्मक प्रश्न के पीछे धमकी छिपी रहती थी जिसकी आड़ में मन्त्री और मन्त्रिमण्डल की निन्दा की जा सके। यदि राष्ट्रपरिषद् का कोई सदस्य सरकार से किसी विषय पर सूचना माँगना चाहे तो उसे अपने आरोपात्मक प्रश्न का विषय राष्ट्र-परिषद् के अध्यक्ष को लिखकर देना पड़ता था। विशिष्ट दिन पर सदस्य सरकार की आलोचना कर सकता था, सरकार की भविष्य में कार्यान्वित की जाने वाली नीति पर वक्तव्य देने के लिए माँग कर सकता था और अपने सशंक विचार भी प्रकट कर सकता था। एक पूर्ण वादविवाद होता था, जिसमे प्रत्येक सदस्य भाग ले सकता था। उसके पश्चात् मतदान किया जाता था। आलोचनात्मक प्रस्ताव के रूप में यह एक शक्तिशाली शस्त्र था।

फ्रांस की समितियाँ तथा आयोग भी मन्त्रिमण्डलों की दुर्बलता के कारण थे। इंगलैंड में समितियाँ नियम-विनियम बनाने मे सहायता करती हैं और उनका काम ही केवल वैधानिक है। फ्रांस में सरकार के प्रत्येक कार्य-विभाग के समानान्तर समितियाँ थीं। समिति विभाग के कार्य मे खोज-बीन करती थी और किसी समिति की विपरीत रिपोर्ट मे ही मन्त्रिमण्डल का पतन हो जाता था। एक समालोचक का कथन है कि फ्रांस के मन्त्रिमण्डलो का उत्तरदायित्व केवल संसद् के सदनो के प्रति ही नही था बल्कि उन सब सदनों के प्रति था जितनी कि समितियाँ थीं।

संवाददाता (Reporter) की संसद् में उपस्थिति से भी फ्रांस के मन्त्रिमण्डल अधिक दुर्बल हो जाते थे। इंगलैंड मे साधारणतः एक मन्त्री किसी प्रस्ताव का संसद् मे कार्याधिकृत होता है। वह इस बात का ध्यान रखता है कि प्रस्ताव संसद् में से सरकार की नीति-अनुसार ही स्वीकृत किया जाए। फ्रांस में किसी प्रस्ताव का कार्य-भार संवाददाता को सौंपा जाता था। यदि संवाददाता के विचार किसी प्रस्ताव के अनुकूल न हों तो वह उसे ऐसी आकृति मे पारित करवा सकता था जो सरकार को स्वीकार न हो। इससे मन्त्रिमण्डल की स्थिति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता था।

(४) राष्ट्र-परिषद् *(National Assembly)*—संविधान में द्विगृही संसद् की व्यवस्था की गई थी। दोनों सदनों के नाम थे राष्ट्र-परिषद् और लोकतन्त्र परिषद्। राष्ट्र-परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन देश-व्यापी *तथा प्रत्यक्ष मतदान से होता था।* निर्वाचन के अन्य नियमों का भी साधारण नियमों द्वारा प्रबन्ध कर दिया गया था। परिषद् के सदस्यों की संख्या प्रत्येक *निर्वाचन के साथ बढ़ती-घटती रहती थी।* परिषद् का निर्वाचन पाँच वर्षों के लिए किया जाता था।

राष्ट्र-परिषद् को विधान सम्बन्धी सभी कार्यों में पूर्णाधिकार प्राप्त था। धारा

१३ में स्पष्ट रूप से कहा गया था कि केवल राष्ट्र-परिषद् ही विनियम (Laws) बना सकेगी। मन्त्रिमण्डल के अध्यक्ष तथा संसत्सदस्यों को केवल प्राथमिक कार्य करने का ही अधिकार था। प्रस्ताव तथा मसविदे सचिवालय मे प्रविष्ट किए जाते थे। राष्ट्र-परिषद् उन पर विचार-विनिमय करती थी और उन्हे विभिन्न समितियों को सौप देती थी। मन्त्री-गण केवल राष्ट्र-परिषद् के प्रति ही उत्तरदायी थे। लोकतन्त्र परिषद् के विचारों के कुछ भी होने की स्थिति मे भी मन्त्री-गण अपने-अपने स्थानो पर नियुक्त रहते थे यदि उन्हें राष्ट्र-परिषद् का विश्वास प्राप्त हो। राष्ट्र-परिषद् को राष्ट्रपति के निर्वाचन मे भी अधिकार दिया गया। राष्ट्र-परिषद् के सदस्यो की सख्या लोकतन्त्र परिषद् के सदस्यों की सख्या से अधिक होने के कारण, राष्ट्र-परिषद् द्वारा प्रस्तावित व्यक्ति ही चुना जाता था। राष्ट्र-परिषद् को सविधान के सशोधन का अधिकार भी दिया गया। सविधान के सशोधन के लिये प्रस्ताव का प्रथम सस्कार राष्ट्र-परिषद् मे ही होना आवश्यक था और उसका पूर्ण बहुमत से पारित होना अनिवार्य था। लोकतन्त्र परिषद् को ऐसे प्रस्ताव का प्रथम संस्कार करने का अधिकार नही था। तत्पश्चात् प्रस्ताव को लोकतन्त्र परिषद् के पास भेजा जाता था कि वह अपने विचार प्रकट कर सके। लोकतन्त्र परिषद् के प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार करने पर भी उसी प्रस्ताव को राष्ट्र-परिषद् द्वारा दूसरी बार पारित करना आवश्यक था। राष्ट्र-परिषद् वैधानिक, आर्थिक तथा शासकीय क्षेत्रो मे सर्वोच्च थी। राष्ट्र-परिषद् की समालोचनात्मक, नियन्त्रक तथा वैधानिक शक्तियों के कारण मन्त्रिमण्डल बहुत दुर्बल हो गया था।

लोकतन्त्र-परिषद् (Council of the Republic)—फ्रांस के चतुर्थ लोकतन्त्र के विधान के पहले आलेख में द्वितीय सदन के लिए व्यवस्था नही की गई थी। जब ऐसी व्यवस्था भी की गई तब भी दूसरे सदन को बहुत निर्बल रखा गया। समालोचकों का कथन था कि फ्रास की द्विगृही संसद् केवल नाममात्र तथा अपूर्ण थी ("Shadowy bicameralism" and "incomplete bicameralism")। यहाँ तक कहा गया कि संसद् एक सदन को ही बिगाड देने से ही द्विगृही हो गई है (tempered mono-cameralism)। लोकतन्त्र परिषद् केवल विचारात्मक परिषद् थी, कार्यात्मक नही ("council for reflection" and "not a council for action")।

१९४८ के एक विनियमानुसार यह व्यवस्था की गई कि लोकतन्त्र परिषद् के ३२० सदस्य होगे। वे परोक्ष रूप से एक निर्वाचनाधिकरण (Electoral college) द्वारा चुने जाते थे। लोकतन्त्र-परिषद् छः वर्षो के लिए चुनी जाती थी। उसके आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष पश्चात् कार्य-मुक्त हो जाते थे। केवल वही व्यक्ति लोकतन्त्र-परिषद् के सदस्य चुने जा सकते थे जो मताधिकारी हो तथा जिन्होंने ३५ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर ली हो। स्त्रियाँ भी सदस्य चुनी जा सकती थी। किन्तु ऐसे व्यक्तियों के उत्तराधिकारी जिन्होंने फ्रांस मे कभी राज्य किया हो या जो दस वर्ष से कम के देशीकृत नागरिक हों, युद्ध में भाग लेने वाले सैनिक तथा नाविक, या वे व्यक्ति जिन्होने सैनिक कार्य न किया हो तथा

अन्य व्यक्ति जिन्होंने निर्वाचन के नियमों का उल्लंघन किया हो, निर्वाचन के लिए खड़े नहीं हो सकते थे और न ही लोकतन्त्र-परिषद् के सदस्य निर्वाचित हो सकते थे।

लोकतन्त्र-परिषद् का संवैधानिक शक्तियों पर बहुत कम नियन्त्रण था। यह केवल परामर्श व्यक्त समिति थी। यदि किसी प्रस्ताव का लोकतन्त्र परिषद् में ही प्रथम मस्कार किया जाए, तो भी इस पर विचार नहीं किया जा सकता था और राष्ट्र-परिषद् के पास विनिमयार्थक भेजा जाता था। केवल राष्ट्र-परिषद् द्वारा स्वीकृत होने पर ही उस पर लोकतन्त्र-परिषद् में विचार किया जा सकता था तथा पारित किया जा सकता था। राष्ट्र-परिषद् किसी प्रस्ताव पर विचार करने से ही इन्कार कर सकती थी और इन्हें वापिस लोकतन्त्र-परिषद् के पास भेज सकती थी। लोकतन्त्र-परिषद् केवल यही कर सकती थी कि वह राष्ट्र-परिषद् द्वारा पारित प्रस्तावों पर अपने विचार प्रकट करे। ऐसे विचार दो महीने के अन्दर-अन्दर दिए जा सकते थे और उस अवधि के पश्चात् उसके विचारों का कोई मूल्य न था। लोकतन्त्र-परिषद् की सिफारिशों को राष्ट्र-परिषद् स्वीकार करने पर बाध्य नहीं थी। यदि वे सुझाव राष्ट्र-परिषद् द्वारा पारित प्रस्तावों के विरुद्ध हों तो उन्हें पूर्ण बहुमत द्वारा पारित करना आवश्यक था। एकमात्र कार्य जो लोकतन्त्र परिषद् कर सकती थी वह यह था कि वह किसी प्रस्तावित नियम के पारित होने में दो महीने की देर कर दे। सकटकालीन स्थिति में वह अवधि भी घटाई जा सकती थी। आर्थिक प्रस्तावों के लिए भी यह अवधि घटाई जा सकती थी।

लोकतन्त्र-परिषद् संसार की सबसे अधिक दुर्बल द्वितीय सदन (second chamber) थी। इसका काम केवल यही था कि वह अपने विचार प्रस्तुत करे, आपत्तियाँ उठाए और परामर्श दे।

(५) **आर्थिक परिषद् (Economic Council)**—संविधान में एक आर्थिक परिषद् के लिए भी प्रबन्ध किया गया था। इस परिषद् का कार्य था समस्त प्रस्तावों को अपने अधिकारों की सीमाओं के अन्दर ही जाँचना और उन पर अपने विचार प्रस्तुत करना। राष्ट्र-परिषद् का यह कर्त्तव्य था कि वह सभी प्रस्तावित विधियों पर विचार-विनिमय करने से पूर्व उन्हें आर्थिक परिषद् के पास भेजे। मन्त्रि-परिषद् भी इससे परामर्श ले सकती थी। मन्त्रियों के लिए यह अनिवार्य था कि वे व्यावसायिक राष्ट्रीय आर्थिक योजनाओं की स्थापना और देश के भौतिक साधनों के उचित प्रयोग के लिए आर्थिक परिषद् के साथ परामर्श करें।

(६) **फ्रांस संघ (French Union)**—संविधान में फ्रांस गणराज्य संगठित प्रदेशों तथा राज्यों के लिए व्यवस्था की गई थी। संगठित राज्यों की फ्रांस-संघ के भीतर की अवस्था उस विनिमय पर निर्धारित थी जो उसके फ्रांस के साथ सम्बन्धों की परिभाषा करता था। फ्रांस-संघ के सदस्यों का यह कर्त्तव्य था कि वे अपने सभी साधन संघ की सुरक्षा के लिए एकत्रित कर दें। फ्रांस गणराज्य की सरकार का भी यह कर्त्तव्य था कि वह अपने साधनों तथा नीतियों को इस प्रकार नियमित करे कि संघ की सुरक्षा के लिए प्रबन्ध किया जा सके। फ्रांस-संघ के केन्द्रीय अंग थे, अध्यक्ष-अधिकरण, उच्च समिति तथा परिषद्। फ्रांस गणराज्य का राष्ट्रपति संघ का भी अध्यक्ष

होता था। संघ की उच्च समिति मे फ्रांस सरकार का एक प्रतिनिधिमण्डल तथा प्रत्येक संगठित राज्य के प्रतिनिधि होते थे। इसका कार्य फ्रांस संघ के कार्यों में हाथ बँटाना था। संघ-परिषद् के आधे सदस्य राजधानी के प्रतिनिधि होते थे और आधे सदस्य समुद्र-पार के उपनिवेशों तथा राज्यों के प्रतिनिधि होते थे। इस परिषद् के सदस्य समुद्र-पार के उपनिवेशों तथा राज्यों की प्रादेशिक सभाओं द्वारा चुने जाते थे। इसका कर्त्तव्य था कि वह राष्ट्र-परिषद् अथवा संगठित राज्यों की सरकारों द्वारा भेजे गए प्रस्तावित विधि-नियमों की जाँच करे ताकि वह अपने ही किसी सदस्य द्वारा उठाए गए उस विषयक प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट कर सके। वह फ्रांस सरकार तथा संघ की उच्च समिति को अपने सुझाव भेज सकती थी। सघ के भीतर संगठित उपनिवेशों के विशेषाधिकारों की ओर ध्यान देते हुए ही उन उपनिवेशो के विशेष स्थान निर्धारित किए जाते थे। समुद्र-पार के उपनिवेश राष्ट्र-परिषद् तथा लोकतन्त्र-परिषद् में भी अपने प्रतिनिधि भेजते थे। संघ के सदस्यों के सभी नागरिको को फ्रांस के नागरिकों का स्थान दिया गया।

(७) उच्च न्यायाधिकरण (Superior Council of the Judiciary)—सविधान में एक उच्च न्यायाधिकरण की व्यवस्था भी की गई। इसके चौदह सदस्य थे। उसके निर्णय बहुमत द्वारा किए जाते थे। कठिनाई की अवस्था में राष्ट्रपति को निर्णायक मत देने का अधिकार था। गणतन्त्र के राष्ट्रपति को जनाभियोगाधिकारी के अतिरिक्त उन सभी न्यायाधीशो को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया था, जिनके नाम उच्च न्यायाधिकरण द्वारा उसके पास भेजे जाते थे। न्यायाधिकरण का यह कर्त्तव्य था कि वह न्यायाधीशों के अनुशासन तथा स्वतन्त्रता की रक्षा करे तथा न्यायालयो के काम पर दृष्टि रखे। अध्यक्ष का कार्य करने वाले न्यायाधीशों को पदच्युत नही किया जा सकता था।

(८) सविधान मे इसके संशोधन के लिए एक नई कार्यविधि की व्यवस्था थी। किसी सशोधन पर निर्णय राष्ट्र-परिषद् में उठाए गए प्रस्ताव के पूर्ण बहुमत से स्वीकृत होने पर ही किया जाए। प्रस्ताव में सशोधन के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिएँ। उससे कम-से-कम तीन महीने बाद उस प्रस्ताव को दूसरी बार पढ़ा जाता था यदि लोकतन्त्र-परिषद् राष्ट्र-परिषद् द्वारा भेजे जाने पर पूर्ण बहुमत से स्वीकार न कर ले। दूसरी बार पढ़े जाने के बाद राष्ट्र-परिषद् सविधान के संशोधन के लिए प्रस्ताव का आलेख तैयार करती थी। प्रस्तावित संशोधन को फिर संसद् द्वारा साधारण बहुमत से स्वीकार करवाना पड़ता था। यदि वह दूसरी बार पढे जाने के बाद राष्ट्र-परिषद् द्वारा दो-तिहाई बहुमत से पारित न किया जाए या ससद् के दोनो सदनों द्वारा ३/५ बहुमत से पारित न किया जाए तो उसे जनमत-संग्रह के लिए भेजना पड़ता था। संशोधन के स्वीकृत होने के आठ दिन के अन्दर-अन्दर ही उसे घोषित करना पड़ता था। लोकतन्त्र-परिषद्विषयक कोई भी संशोधन उसकी या सार्वजनिक जनमत-संग्रह की स्वीकृति के बगैर प्रस्तावित नही किया जा सकता था। सरकार की लोकतन्त्रीय आकृति किसी भी संशोधन द्वारा परिवर्तित नही की जा सकती थी।

(९) वैधानिक समिति (Constitutional Committee)—राष्ट्रपति की अध्यक्षता में कार्य करने वाली एक वैधानिक समिति के लिए भी व्यवस्था की गई थी। राष्ट्र-परिषद् तथा लोकतन्त्र-परिषद् के अध्यक्ष, राष्ट्र-परिषद् द्वारा प्रति वार्षिक अधिवेशन के प्रारम्भ में निर्वाचित सात सदस्य जो उसके अपने सदस्य न हों और लोकतन्त्र के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि हों तथा उसी प्रकार लोकतन्त्र परिषद् द्वारा निर्वाचित तीन सदस्य वैधानिक समिति में सम्मिलित होते थे। वैधानिक समिति का यह कार्य था कि वह इस बात का उसके घोषित होने की अवधि के अन्दर निर्णय करे कि राष्ट्र-परिषद् द्वारा पारित किसी नियम या विनियम द्वारा संविधान का संशोधन होता है या नहीं। समिति राष्ट्र-परिषद् तथा लोकतन्त्र-परिषद् के अध्यक्षों की संयुक्त प्रार्थना पर भी विचार करती थी। उसका यह कर्त्तव्य था कि वह राष्ट्र-परिषद् तथा लोकतन्त्र-परिषद् में सन्धि करवाए। यह सब प्रार्थना के पहुँचने के पाँच दिन के अन्दर-अन्दर करना होता था। संकट-कालीन स्थिति में यह अवधि घटाकर दो दिन कर दी जाती थी। यदि समिति का यह विचार हो कि किसी नियम या विनियम द्वारा विधान का संशोधन हो तो वह उसे पुनर्विचारार्थ वापिस राष्ट्र-परिषद् के पास भेज देती थी।

(१०) राजनैतिक सन्धियाँ (Diplomatic Treaties)—राजनैतिक सन्धियों के विषय में भी विधान में विशेष कार्य-विधि निर्धारित की गई थी। धारा २६ में यह कहा गया था कि राजनैतिक सन्धियों को स्वीकृत तथा प्रकाशित होने के बाद वे उसी प्रकार कार्यान्वित होंगी जिस प्रकार कोई अन्य नियम, चाहे वे देश के घरेलू नियमों के विरुद्ध भी क्यों न हों। केवल उनकी स्वीकृति के अतिरिक्त उनको कार्यान्वित करने के लिए अन्य किसी विनियम की आवश्यकता नहीं थी। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ की गई सन्धियाँ, शांति-सन्धियाँ, व्यापारिक सन्धियाँ, फ्रांस की वित्त-सम्बन्धी सन्धियाँ तथा ऐसी सन्धियाँ जो फ्रांस के नागरिकों की व्यक्तिगत स्थिति तथा सम्पत्ति से सम्बन्धित हों या फ्रांस के नियमों में संशोधन करती हों तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकती थीं जब तक वे संसद् द्वारा एक नए विनियम द्वारा स्वीकृत न हो जाएँ। सम्बन्धित जन-समुदाय की अनुमति के बिना किसी भी भूमि का अन्य किसी देश को देना या किसी अन्य भूमि के बदले में देना या किसी भूमि का प्राप्त करना वैधानिक नहीं था।

तुलना (Comparison)—तृतीय तथा चतुर्थ लोकतन्त्रों के विधानों की तुलना से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि चतुर्थ लोकतन्त्र के विधानाधीन सर्वाधिकार राष्ट्र-परिषद् के हाथों में केन्द्रित थे। तृतीय लोकतन्त्र में सैनिट तथा लोकसभा के लगभग बराबर अधिकार थे। किन्तु चतुर्थ लोकतन्त्र में ऐसा नहीं था। सैनिट को पर्याप्त सम्मान तथा अधिकार थे जो लोकतन्त्र-परिषद् को प्राप्त नहीं थे। वित्त-सम्बन्धी सभी बातों पर राष्ट्र-परिषद् का पूर्ण नियंत्रण प्राप्त था। लोकतन्त्र-परिषद् केवल यही कर सकती थी कि किसी विधेयक को दो महीने तक नियम बनने से रोक ले। लोकतन्त्र-परिषद् में भी उठाए गये विधेयक पर तब तक विचार-विनिमय नहीं

हो सकता था जब तक वे पहली बार पढ़े जाने पर राष्ट्र-परिषद् में बहुमत से स्वीकृत न हो जाएँ। लोकतन्त्र-परिषद् के विषय में एकमात्र शक्तियुक्त बात यह थी कि यदि राष्ट्र-परिषद् लोकतन्त्र-परिषद् द्वारा किए गए किसी संशोधन को अस्वीकृत करना चाहती थी तो उसे यह पूर्ण बहुमत से करना पड़ता था। संविधान में यह कहा गया था कि किसी भावी प्रधान मन्त्री को स्वयं की तथा अपनी कार्य-शैली को राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत करना पड़ता था और उसे मन्त्रिमण्डल बनाने से पूर्व ही पूर्ण बहुमत द्वारा स्वीकृत करवाना पड़ता था। कोई भी राष्ट्र-परिषद् इसके निर्वाचन के डेढ़ साल के अन्दर-अन्दर भंग नहीं की जा सकती थी। उस अवधि के बाद भी उसे भंग करने की शक्ति का प्रयोग तभी किया जा सकता था यदि उस अवधि के अन्दर-अन्दर ही मन्त्रिमण्डलों का पतन हो गया हो।

दो विधानों में एक और अन्तर यह था कि यद्यपि चतुर्थ लोकतन्त्र में राष्ट्र-पति के पद को सुरक्षित रखा गया था फिर भी उसके अधिकारों तथा शक्तियों को पहले से बहुत घटा दिया गया था। पहले फ्रांस का राष्ट्रपति किसी व्यक्ति को भी मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए निमन्त्रित कर सकता था किन्तु चतुर्थ लोकतन्त्र में भावी प्रधान मन्त्री तब तक नियुक्त नहीं किया जा सकता था जब तक कि वह राष्ट्र-परिषद् से विश्वास का मत प्राप्त न कर ले। राष्ट्रपति को अब भी किसी विधेयक को पुन-विचारार्थ राष्ट्र-परिषद् के पास भेजने का अधिकार प्राप्त था किन्तु वही विधेयक साधारण बहुमत से फिर पारित किया जा सकता था और ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति अत्यन्त अशक्त रह जाता था। फिर भी चतुर्थ गणराज्य में राष्ट्रपति के शासकीय अधिकारों की वृद्धि हुई। वह न केवल मन्त्रिमण्डल के अधिवेशनों की अध्यक्षता कर सकता था बल्कि वह उन अधिवेशनों का पूरा ब्यौरा भी रख सकता था। इस प्रकार वह शीघ्रतापूर्वक बदलने वाले मन्त्रिमण्डलों की तुलना में अविच्छिन्नता का द्योतक बन गया।

फ्रांस के पंचम लोकतन्त्र का विधान (१९५८) (Constitution of the Fifth Republic in France)—चतुर्थ लोकतन्त्र का विधान ठीक रूप से काम नहीं कर रहा था। इसे बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था जिनको वह सफलतापूर्वक नहीं लाँघ सकता था। यह ठीक ही कहा गया है कि राजनैतिक दलों की आपसी स्पर्द्धा से ही चतुर्थ लोकतन्त्र का अन्त हो गया। ऐसे समय में जबकि आर्थिक सुधार, संसदीय कार्यविधि सुधार तथा सुरक्षा समस्या जैसी जटिल समस्याएँ सामने आ रही थी, विभिन्न राजनैतिक दलों के सदस्य अपने पुराने साम्प्रदायिक झगड़ों में ही व्यस्त रहे। १९४८ के पश्चात् राष्ट्र के कैथोलिक विद्यालयों को सहा-यता के विषय में समाजवादियों तथा एम० आर० पी० में मतभेद के कारण दोनों दल दुर्बल हो गए। १९४७ से १९५१ तक समाजवादी साम्यवादियों के आक्रमणों के शिकार बने रहे। १९५१ से १९५५ तक एम० आर० पी० की भी वैसी ही स्थिति थी। परिणाम यह हुआ कि एम० आर० पी० अपने सदस्यों की इच्छाओं से कहीं अधिक यथार्थता की ओर बह गई। सभी शासन-विरोधी दल और विशेषतः आर० पी० और भी यथार्थता की ओर झुक गए। १९५६ तक जब

और एम० आर० पी० ने मिलकर काम करने का निश्चय किया तो समय बीत चुका था। मौल्ले ने फरवरी १९५६ में ही त्याग-पत्र दे दिया था।

मई १९५८ में फ्रांस के चतुर्थ लोकतन्त्र को एक बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। अल्जीरिया में भेजी गई फ्रांसीसी सेनाओं ने फ्रांस सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सेना ने फ्रांस में बनाई गई नई सरकार पर फ्रांसीसी अल्जीरिया का परित्याग करने का आरोप लगाया। सेना ने नई सरकार को 'समर्पण सरकार' का नाम दिया और एक जन-सुरक्षा सरकार के बनाने की माँग की। १३-१४ मई १९५८ को जन-सुरक्षा समिति के संरक्षण में एक शासन-विरोधी विप्लव (coup) का प्रबन्ध किया गया। अल्जीरिया में स्थित फ्रांस सरकार के सभी कार्यालयों पर विद्रोही सेना ने अधिकार कर लिया और इस बात की माँग की कि फ्रांस सरकार की बागडोर जनरल डिगॉल के हाथों में सौंप दी जाए। जनरल डिगॉल ने भी घोषणा कर दी कि वे देश की भलाई तथा सहायता के लिए ऐसी राष्ट्र-सेवा करने को तैयार हैं। कॉर्सिका द्वीप में एक और विद्रोह हुआ जिससे घटना-चक्र और भी शीघ्रता से चलने लगा। साम्यवादियों का विरोध होते हुए भी जनरल डिगॉल को १ जून १९५८ को प्रधान मन्त्री बना दिया गया।

जनरल डिगॉल ने प्रधान मन्त्री का पद केवल इस शर्त पर स्वीकार किया था कि उन्हें कम-से-कम छः महीने की अवधि के लिए सम्पूर्ण शक्तियाँ दी जाएँ, और ३ जून १९५८ को राष्ट्र-परिषद् ने उन्हें वे शक्तियाँ प्रदान कर दीं। उन्होंने एक राष्ट्रीय मन्त्रिमण्डल का निर्माण किया जिसमें फ्रांस के अनेक भूतपूर्व मन्त्रियों तथा अन्य उच्चाधिकारियों को सम्मिलित किया। उन्होंने अल्जीरिया तथा कॉर्सिका में विद्रोहाग्नि को शान्त किया और एक नया संविधान बनाया गया जिसे जनमत संग्रह के लिए जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया गया। २८ सितम्बर १९५८ को जनता ने नए संविधान को स्वीकार कर लिया और उसे ७ अक्तूबर, १९५८ को कार्यान्वित कर दिया गया। ७ अक्तूबर, १९५८ से ५ फरवरी १९५९ तक परिवर्तन का समय घोषित किया गया। नवम्बर १९५८ में राष्ट्र-परिषद् के लिए निर्वाचन किए गए। २१ दिसम्बर १९५८ को ८,१२,०० में से ६२,००० मत प्राप्त करके जनरल डिगॉल राष्ट्रपति निर्वाचित हुए और उन्होंने ८ जनवरी १९५९ को राष्ट्रपति का पद ग्रहण कर लिया। इस अवसर पर उन्होंने घोषणा की कि वे इस बात को अपना कर्तव्य समझकर राष्ट्र-हित का प्रतिनिधित्व करेंगे और उसे कार्यान्वित करेंगे।

पञ्चम लोकतन्त्र के विधान में एक प्रस्तावना तथा ९२ धाराएँ हैं। विधान को 'जनरल डिगॉल के लिए बनाई गई 'पोषक', 'अर्द्ध-साम्राज्यक, अर्द्ध-राष्ट्रपति पद तथा लोकतन्त्रीय साम्राज्य' ("Quasi-monarchical, Quasi-presidential, a Parliamentary Empire), 'काम करने के अयोग्य', 'फ्रांस के वैधानिक' इतिहास में बनाया गया अत्यन्त 'अवाछनीय तथा क्षणिक' कहा गया है।

विशेषताएँ

(१) विधान में लोकतन्त्रीय तथा राष्ट्रपति-पद दोनों विशेषताएँ हैं। सभी

अधिकार राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री के बीच बँटे हुए हैं। राष्ट्रपति को 'मध्यस्थ' का कार्य करना पड़ता है। राष्ट्रीय संकट की स्थिति में राष्ट्रपति और भी अधिक महत्त्वशाली बन जाता है। उसे सम्पूर्ण शक्तियाँ ग्रहण करने का अधिकार है। वह स्वयं ही पञ्चायत तथा न्यायाधीश बन जाता है क्योंकि विधानाधीन केवल उसे ही ऐसा अधिकार प्राप्त है कि किसी विशेष समय पर राष्ट्रीय संकट विद्यमान है या नहीं और स्थिति को फिर साधारण बना देने के लिए किस प्रकार के साधनों की आवश्यकता है। भविष्य ही यह बता सकता है कि संसदीय शासन तथा राष्ट्रपति का नेतृत्व सहवास कर सकते हैं या नहीं।

(२) नए विधान में राजनैतिक दलों के भाग को भी मान्यता दी गई है। पहली बार एक लोकतन्त्रीय विधान मे न केवल राजनैतिक दलों का निर्देशन किया गया है बल्कि उन्हें राजनैतिक जीवन का एक साधारण अंग भी स्वीकार कर लिया गया है। राजनैतिक दलों से यह माँग की गई है कि वे "राष्ट्रीय प्रभुत्व तथा प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों का सम्मान करें।" इस प्रकार किसी एक ही राजनैतिक दल के शासन को अवैधानिक बना दिया गया है और प्रजातन्त्र के लिए सम्मान को एक वैधानिक आवश्यकता बना दिया गया है।

(३) यद्यपि विधान मे न्यायात्मिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) के लिए कोई व्यवस्था नही की गई है फिर भी एक ऐसे अधिकरण की स्थापना अवश्य की गई है जो शासकीय तथा संसदीय नियमों की वैधानिकता पर विचार करे और अपना निर्णय दे। तृतीय लोकतन्त्र के विधान द्वारा एक वैधानिक समिति की स्थापना की गई थी जिसके कुछ सीमित कार्य थे। नये विधान के अधीन वैधानिक समिति का स्थान विधान-परिषद् (Constitutional Council) को दिया गया है। यह सत्य है कि विधान-परिषद् का विधान के लिए मान्यता निश्चित करवाने का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यह अपना मत तभी दे सकती है जब इससे किसी विषय पर परामर्श किया जाए। कोई भी नागरिक या न्यायालय इससे सीधे प्रार्थना नहीं कर सकता। इसकी तुलना किसी प्रकार भी संयुक्त राज्य संघ के सर्वोच्च न्यायालय से नही की जा सकती। किन्तु पिक्कल्ज़ का विचार है कि जिस विषय पर भी इससे परामर्श किया जाए या किया जाना चाहिए तो उस सीमा तक विधान की किसी धारा का अर्थ बताने या उसके संशोधन के लिए विधान-परिषद् पर्याप्त प्रभाव डाल सकती है।

(४) संविधान में यह स्पष्ट कहा गया है कि भविष्य में नए समाज (Community) के किसी भी सदस्य राज्य की अवस्था में अन्तर करने के लिए और यहाँ तक कि उसे स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए भी विधान के संशोधन की आवश्यकता नहीं होगी। शायद समाज के जीवन में निर्णयात्मक आदेश देने की शक्तियों को अपने ही हाथों में रखने में राष्ट्रपति ने इस बात की झलक दिखाई है कि उन्हें अपनी इस क्षमता में पूर्ण विश्वास है कि वे कागज पर की गई सुधारों की स्वीकृति को शासकीय या राजनैतिक अपरिवर्तनवादियो द्वारा कुचले जाने से बचाने की अपनी धारणा को शीघ्रतापूर्वक बदलती हुई स्थिति के अनुकूल बनाने में सफल हो पाएँगे।

(५) १९४६ के विधान के अनुसार दो परामर्श सभाएँ स्थापित की गई थीं, एक थी संघ-परिषद् और दूसरी थी आर्थिक परिषद्। नए विधान में केवल आर्थिक सभा को ही आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council) के नाम से स्थान दिया गया है। इसकी बनावट तथा कार्यों में भी अन्तर कर दिया गया है। इसके परामर्श देने का वृत्त भी काफी सीमित कर दिया गया है और यह केवल उन्हीं विषयों पर अपना मत दे सकती है जिनके लिए सरकार इससे परामर्श माँगे। चतुर्थ गणराज्य के अधीन इसे अपने अधिकारों के अन्दर आने वाले किसी भी विषय का अध्ययन करने तथा उस पर रिपोर्ट करने का पूर्णाधिकार प्राप्त था और राष्ट्र-परिषद् तथा सरकार दोनों ही इससे परामर्श ले सकती थीं। लेकिन अब तो इसके अधिवेशन भी प्रत्यक्ष नहीं होते और ऐसा जान पड़ता है कि इसे केवल विशेषज्ञ की हैसियत में ही प्रयोग करने के लिए बनाया गया है। पूर्ववत् इसके कार्य राजनैतिक विचारों से प्रभावित हो जाया करते थे।

(६) यह सत्य है कि उच्च न्यायाधिकरण (High Council of Judiciary) जो चतुर्थ लोकतन्त्र के अधीन स्थापित किया गया था, इसे पञ्चम लोकतन्त्र के विधानाधीन भी जारी रखा गया है लेकिन इसके कार्यों को सीमित कर दिया गया है और इसकी नियुक्ति का तरीका भी बदल दिया गया है। इसका कर्त्तव्य केवल यही है कि वह नियुक्तियों के विषय पर सरकार को अपनी राय दे, न्यायाधीशों के प्रति अनुशासनाधिकरण का कार्य करे और प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति को क्षमा-दान के अधिकार को प्रयोग करने में भी परामर्श दे। भविष्य में अधिकार की दृष्टि से इससे केवल ऐसी स्थिति में ही सलाह ली जाएगी जिसमें किसी अभियुक्त को प्राणदण्ड देने का विचार किया जा रहा हो। चतुर्थ गणराज्य में उच्च न्यायाधिकरण का यह भी कर्त्तव्य था कि वह न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता की रक्षा करे और न्यायालयों में नियमों का विधिवत् पालन करवाए। अब यह कार्य न्याय-मन्त्रालय को सौंप दिया गया है।

(७) उच्च न्यायलय (High Court of Justice) को भी पञ्चम लोकतन्त्र में जारी रखा गया है। इसके कर्त्तव्य भी वही हैं जो पहले थे। लोकतन्त्र के राष्ट्रपति को राष्ट्र-द्रोह के आरोप पर तथा मन्त्रियों पर दण्ड-विधान (Penal Code) के अधीन उठाए गए आरोपों पर अभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त है। इसे मन्त्रियों और उनके सहचरों पर भी राष्ट्र के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के अभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त है। साधारण व्यक्तियों को भी उच्च न्यायालय के सामने लाने के लिए संसद् के दोनों सदनों को एक जैसे प्रस्ताव पूर्ण बहुमत द्वारा पारित करने पड़ते हैं। पहले ऐसा निर्णय राष्ट्र-परिषद् को ही लेना होता था। पहले मतदान भी गुप्त रूप से दिया जाता था लेकिन अब उसे प्रत्यक्ष रूप से देने की व्यवस्था की गई है।

(८) संविधान के संशोधन की शक्ति भी चतुर्थ गणराज्य की अपेक्षा पचम गणराज्य में अधिक सरल है। यह कहा गया है कि संविधान के संशोधन से सम्बन्ध रखने वाली धारा के शब्द अनिश्चित हैं। इसमें यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि राष्ट्रपति के किसी प्रस्तावित संशोधन को जनमत-संग्रह के लिए न भेजने के निर्णय से

पहले चर्चा की आवश्यकता रहेगी या नहीं। धारा में इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला गया है कि संशोधन प्रस्ताव पर मतदान की क्या विधि होगी।

प्रस्तावना (Preamble)—नए सविधान की प्रस्तावना में यह घोषणा की गई है कि फ्रांस की जनता १६४६ के विधान मे दिए गए मानवाधिकारों से सम्बन्धित है। समुद्र-पार राज्यों को स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सामूहिक आदर्श पर आधारित सस्थाओ के देने का प्रस्ताव भी किया गया है।

प्रभुत्व (Sovereignty)—धारा २ के अनुसार फ्रास अभाज्य, धर्म-निरपेक्ष, लोकतन्त्रात्मक तथा सामाजिक गणराज्य होगा। विधान की दृष्टि मे सभी नागरिकों को मूल, जाति अथवा धर्म से अप्रभावित समानता का आश्वासन दिया गया है। यह विभिन्न धर्मो की रक्षा करेगा। स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व ही राष्ट्र के आदर्श है। इसका सिद्धान्त यही होगा कि शासन जनता का है, जनता द्वारा है और जनता के लिए ही है। धारा ३ के अनुसार, राष्ट्र का प्रभुत्व जनता में निश्चित है और जनता इसका प्रयोग अपने प्रतिनिधियों तथा मत-संग्रह द्वारा करेगी। विधानाधीन मतदान चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष, परन्तु वह सदा सार्वजनिक, समान तथा गुप्त होगा। नियमो तथा विनियमो के अनुसार फ्रास के सभी वयस्क स्त्री-पुरुष जिनको नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार प्राप्त है मत के अधिकारी होगे। धारा ४ मे यह कहा गया है कि राजनैतिक दल मत प्राप्त करने के लिए आपस मे मुकाबला कर सकेंगे। लेकिन उन्हे राष्ट्रीय प्रभुत्व का और गणतन्त्र के सिद्धान्तो का मान करना पडेगा।

संशोधन की रीति (Method of Amendment)—धारा ८६ में सविधान के सशोधन की रीति को निर्धारित किया गया है। इसके अनुसार सशोधन प्रस्ताव का सूत्रपात करने का अधिकार प्रधान मन्त्री के परामर्श पर राष्ट्रपति को तथा संसत्सदस्यों को प्राप्त है। सरकार का या ससद् का संशोधन विधेयक दोनो परिषदो द्वारा एक ही रुप मे पारित किया जाना चाहिए। जनमत-सग्रह द्वारा स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात् संशोधन लागू हो जाएगा। प्रस्तावित सशोधन को ससद् की बुलाई गई एकत्रित सभा में नहीं रखना होगा। ऐसी स्थिति मे संशोधन तभी स्वीकृत किया जाएगा जब वह ३/५ बहुमत से पारित किया जाए। शासन की लोकतन्त्रीय आकृति मे सशोधन नहीं किया जा सकेगा।

समाज (The Community)—विधान की धारा १ तथा ७७-८७ में समाज के एक नए विचार का प्रतिपादन किया गया है। धारा १ मे कहा गया है गणतन्त्र तथा समुद्र-पार के उपनिवेशो की जनता जो नए विधान को स्वीकार कर लें, इस प्रकार एक नए समाज की स्थापना करेंगे। समाज अपने आंगिक राज्यो की समानता तथा संगठन पर आधारित होगा। धारा ७७ के अनुसार आंगिक राज्य स्वाधीन होगे। वे स्वयं अपने ऊपर प्रजातन्त्रीय शासन करेंगे और स्वयं ही अपने कार्यो का प्रवन्ध करेंगे। समाज मे केवल एकमात्र नागरिकता होगी। नियम की दृष्टि में सभी नागरिक समान होगे और उनके एक ही जैसे कर्तव्य होगे। धारा ७८ के अनुसार समाज को विदेश नीति, सुरक्षा, मुद्रा-प्रणाली, सामूहिक वित्तीय तथा आर्थिक नीति, और युद्ध-सम्बन्धी कच्चे

पूर्णाधिकार प्राप्त होगा। साधारणतया न्याय, उच्च शिक्षा, सामूहिक वाह्य आवागमन के साधन तथा रेडियो-सम्बधी सभी विषयों पर समाज का नियन्त्रण होगा। धारा ८० के अधीन लोकतन्त्र का राष्ट्रपति समाज की अध्यक्षता तथा प्रतिनिधित्व करेगा। समाज की एक कार्यकारिणी परिषद्, सैनिट तथा मध्यस्थता-न्यायालय होगी। धारा ८१ में कहा गया है कि समाज के सदस्य राज्य राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेंगे और राष्ट्रपति समाज के राष्ट्रपति की हैसियत में प्रत्येक सदस्य राज्य मे अपना प्रतिनिधि नियुक्त करेंगे।

धारा ८२ मे कहा गया है कि कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council) का सभापतित्व समाज (Community) का राष्ट्रपति करेगा। गणतन्त्र को प्रधान मन्त्री तथा संगठित राज्यों की सरकारों के प्रधान तथा समाज के सामूहिक विषयों के मन्त्री इस परिषद् के सदस्य होंगे। वह समाज के राज्यो में सरकारी तथा शासकीय दलों पर सहयोग की व्यवस्था करेगी।

धारा ८३ के अनुसार, सैनिट के सदस्य लोकतन्त्र की संसद् तथा सदस्य राज्यों की संसदीय परिषदों के प्रतिनिधि होंगे। सदस्य राज्यों की संसदीय परिषदों के प्रतिनिधि उन्हीं के सदस्यों में से ही चुने जाएँगे। प्रत्येक सदस्य राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या उसकी जनसंख्या तथा उसके समाज के प्रति कर्त्तव्यों को सामने रखकर निश्चित की जायगी। प्रजातन्त्र की संसद् तथा सदस्य राज्यो के संसदीय परिषदों द्वारा विचार होने से पहले ही सनिट सामूहिक वित्तीय तथा आर्थिक नीति पर विचार करेगी। समाज पर बाध्य होने वाली सभी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों पर सैनिट विचार करेगी।

मध्यस्थता न्यायालय (Court of Arbitration) सदस्य राज्यों की परस्पर अभियुक्तियो पर अपने निर्णय देगी।

धारा ८६ में किसी भी सदस्य राज्य के समाज (Community) से बाहर निकलने की रीति निर्धारित की गई है।

लोकतन्त्र का राष्ट्रपति (President of the Republic)—नए सविधान में राष्ट्रपति की स्थिति पर काफी बल दिया गया है। धारा ६ में कहा गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन सात वर्षों के लिए होगा। निर्वाचन के लिए एक निर्वाचनाधिकरण की रचना की जाएगी जिसके सदस्यों मे लोकतन्त्र की संसद्, साधारण परिषदों (General Councils) तथा समुद्र-पार उपनिवेशों की परिषदों के सदस्य और प्रदेशों के परिषदों (Councils of Communes) के निर्वाचित प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। राष्ट्रपति का निर्वाचन पहले मतदान मे ही पूर्ण बहुमत से होना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो दूसरे मतदान में तुलनात्मक बहुमत से ही निर्वाचन हो जाएगा। राष्ट्रपति का पद खाली होने पर सैनिट का सभापति राष्ट्रपति के कर्त्तव्यों को कुछ समय के लिए पूरा करेगा।

राष्ट्रपति के निर्वाचन के ढग के आलोचको ने कहा है कि यदि राष्ट्रपतित्व के लिए दो या तीन पदार्थों हों तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि राष्ट्रपति

अल्पमत में ही चुना जायेगा। इस प्रकार वह उद्देश्य पूरा नहीं होगा जिससे राष्ट्रपति को राष्ट्र का प्रतिनिधि बनाने की चेष्टा की गई है। केवल दो मतदानों (Ballots) के लिए ही व्यवस्था की गई है। सिर्फ दो मतदानों में ही निर्वाचकों को किसी समझौते पर लाना बहुत कठिन होगा जिससे कि दूसरे मतदान से कोई पदार्थी अल्पमत से निर्वाचित न हो पाए। पुराने विधान के आधीन भी जब अनेक मतदान लिए जा सकते थे जब तक कि कोई पदार्थी पूर्ण बहुमत से निर्वाचित न हो जाए। मतदाताओं में समझौता करवाना बहुत कठिन सिद्ध हुआ करता था।

धारा ५ के अनुसार, राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि संविधान का उचित आदर किया जाए। वह अपनी मध्यस्थता द्वारा निश्चित करेगा कि जन शक्तियाँ ठीक प्रकार अपना-अपना कार्य करें और राष्ट्र विधिवत् चलता रहे। वह राष्ट्र की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय क्षेत्र की एकता तथा समाज के समझौतों तथा सन्धियों के आदर के लिए उत्तरदायी होगा।

धारा ८ के अधीन राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करेगा। प्रधान मन्त्री द्वारा मन्त्रिमण्डल का त्यागपत्र प्रस्तुत किए जाने पर वह प्रधान मन्त्री के कर्त्तव्यों को समाप्त करेगा। प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति तथा उनके कर्त्तव्यों की सीमा निर्धारित करेगा। वह मन्त्रिमण्डल की सभाओं की अध्यक्षता करेगा (धारा ६)। किसी नियम के अन्तिम रूप में पारित होने की सूचना सरकार को देने के १५ दिन के अन्दर-अन्दर उस नियम को लागू करेगा। वह संसद् को किसी नियम पर पुनर्विचार करने के लिए कह सकता है (धारा १०)। संसद् के अधिवेशनों के समय सरकार के प्रस्ताव पर या दोनों परिषदों के संयुक्त पारित प्रस्ताव के 'सरकारी पत्रिका' (Journal Official) में प्रकाशित होने पर वह किसी जन-शक्ति व्यवस्था से सम्बन्धित या राष्ट्र की संस्थाओं को प्रभावित करने वाली किसी सन्धि की पुष्टि करने का अधिकार देने के विषय में किसी विधेयक को जनमत-संग्रह के लिए भेज सकता है। यदि वह विधेयक जनमत द्वारा स्वीकृत हो जाए तो राष्ट्रपति १५ दिन के अन्दर-अन्दर उसे कार्यान्वित कर देगा (धारा ११)।

प्रधान-मन्त्री तथा दोनों परिषदों के अध्यक्षों से परामर्श करने के पश्चात् वह राष्ट्र-परिषद् को भंग करने की घोषणा कर सकता है। सार्वजनिक निर्वाचन परिषद् के भंग होने से कम-से-कम २० दिन और अधिक-से-अधिक ४० दिन के अन्दर-अन्दर हो जाने चाहिएं। इस निर्वाचन को एक वर्ष के अन्दर-अन्दर राष्ट्र-परिषद् को भंग नहीं किया जा सकेगा (धारा १२)।

मन्त्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत अध्यादेशों तथा आज्ञप्तियों पर राष्ट्रपति हस्ताक्षर करेगा। वह राज्य के नागरिक तथा सैनिक पदों के लिए नियुक्तियाँ करेगा। राज्य-परिषद् के सदस्य (Councillors of State), लीजन ऑफ ऑनर के महाधिपति (Grand Chancellor), राजदूत तथा विशेष प्रतिनिधि, लेखा-परीक्षा कार्यालय के अधिकारी सदस्य, जिलाधिकारी (Prefects), समुद्र-पार के उपनिवेशों (Overseas Territories) में सरकार के प्रतिनिधि, साधारण अधिकारी, जनशिक्षा प्रणाली के

क्षेत्रीय भागो अर्थात् अकेडमियो के कुलपति तथा केन्द्रीय शासन के निर्देशकों की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल की सभाओं में की जायेगी (धारा १३)।

वह विदेशों में राजदूतो तथा असाधारण आयुक्तों की नियुक्ति करेगा। विदेशो के राजदूत तथा असाधारण आयुक्त भी राष्ट्रपति के प्रति नियुक्त किये जाएँगे (धारा १४)।

वह सशस्त्र सेनाओ का सेनापति होगा। वह राष्ट्रीय सुरक्षा की उच्च परिषदो तथा समितियो की अध्यक्षता करेगा (धारा १५)।

धारा १६ मे यह कहा गया है कि यदि किसी समय लोकतन्त्र की संस्थाओं, राष्ट्र की स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय क्षेत्र की एकता या राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यो की पालना को किसी प्रकार की विपत्ति की आशंका के और वैधानिक जन-शक्तियों का सही ढग से कार्य करने मे बाधाएँ उपस्थित हों तो राष्ट्रपति का कर्त्तव्य होगा कि वह प्रधान-मन्त्री, परिषदों के सभापतियो तथा विधान परिषद् से परामर्श करने के पश्चात् समयानुकूल उपाय करे। इन उपायो की सूचना वह राष्ट्र को एक सन्देश द्वारा देगा। असाधारण शक्तियो का प्रयोग करते हुए राष्ट्र-परिषद् को भंग नही किया जा सकता।

राष्ट्रपति के सकटकालीन अधिकारो के विरुद्ध दो अन्य आपत्तियाँ उठाई गई है। यह कहा गया है कि शायद धारा १६ को कार्यान्वित ही न किया जा सके। यह पूर्णतः सम्भव है कि विधान परिषद् तथा ससद् सम्मिलित न हो सकें। उनसे परामर्श करने की आवश्यकता से केवल विलम्ब ही होगा और राष्ट्रपति को संकटकालीन अधिकार देने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि वह शीघ्रतापूर्वक कार्य कर सके। दूसरी आपत्ति यह है कि धारा १६ अस्पष्ट तथा अनिश्चित है और कई आवश्यक प्रश्नों का उत्तर इसमे नही दिया गया है। प्रश्न यह है कि यदि विधान परिषद् या ससद् सम्मिलित न हो सके तो क्या फिर भी राष्ट्रपति अपनी शक्तियो का प्रयोग वैधानिक रूप से कर सकेगा ? एक और प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रपति द्वारा उसके संकटकालीन अधिकारो का प्रयोग किये जाने की कोई सीमा भी है ? क्या वह सविधान के किसी भाग को कुछ समय के लिए निलम्बित कर सकता है ? क्या केवल राष्ट्रपति को ही अधिकार है कि वह इस बात का निर्णय करे कि किसी समय राष्ट्रीय संकट उपस्थित है या नहीं। यदि ससद् सम्मिलित होने मे सफल हो जाए तो क्या इसे राष्ट्रपति के अधिकारो को सीमित करने का अधिकार है ? एक और प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रपति के लिये यह आवश्यक है कि वह संकटकालीन अवस्था में किये गए उपायों की सूचना संसद् को दे ?

धारा १७ के अनुसार राष्ट्रपति को क्षमा-दान का अधिकार दिया गया है। उसे प्रविलम्बन का भी अधिकार है। राष्ट्रपति न्यायाधिकरण की स्वच्छन्दता के लिए उत्तरदायी है। उसे उच्च न्याय-परिषद् की सभाओं का सभापतित्व करने का अधिकार प्राप्त है। उसे उच्च न्याय परिषद् के नौ सदस्यों को नियुक्त करने का भी अधिकार है।

धारा १८ के अधीन राष्ट्रपति संसद् के दोनों सदनों के सदस्यो से सन्देशों द्वारा सम्बन्ध स्थापित रखेगा और उन संदेशों को सदनों मे पढ़े जाने की व्यवस्था करेगा। किन्तु उनके पढ़े जाने के समय उन पर किसी प्रकार की बहस करने का अवसर न होगा।

धारा १९ मे यह कहा गया है कि राष्ट्रपति के सभी आदेशों पर जो धारा ८, ११, १२, १६, १८, ५४, ५५ और ६१ के अतिरिक्त अन्य किसी भी धारा के अधीन दिए गए हो, प्रधान मन्त्री के और आवश्यकतानुसार सम्बन्धित मन्त्रियो के हस्ताक्षर होना अनिवार्य है।

फ्रास के राष्ट्रपति के अधिकारो से सम्बन्धित धाराओ का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उसकी तुलना न तो भारत के राष्ट्रपति से की जा सकती है और न ही अमेरिका के राष्ट्रपति से। भारत के राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल की सभाओं का सभापतित्व करने का अधिकार नहीं है लेकिन फ्रास के राष्ट्रपति को ऐसा अधिकार प्राप्त है। भारत मे प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करने की शक्ति कोई विशेष तात्विक शक्ति नहीं है, फ्रास में यह शक्ति वस्तुतः अत्यन्त तात्विक है क्योकि इस देश मे बहुत से राजनैतिक दल उपस्थित है और किसी भी एक दल का नेता अकेले ही मन्त्रिमण्डल की रचना नही कर सकता। फ्रांस के राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ वास्तव में ही बहुत ही विस्तृत है और उन पर मन्त्रियो के उत्तरदायित्व की सीमा नही है। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो राष्ट्रपति मन्त्रियो से परामर्श किए बिना ही कर सकता है। देश के विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं से राष्ट्रपति व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यह सब भारतीय राजनीति में नही पाया जा सकता। इसलिए ये दो अधिकारी आपस मे बहुत ही भिन्न है। दूसरी ओर अमेरिका के राष्ट्रपति को 'जनता के अवतार का गौरव' कहा गया है, लेकिन यह फ्रास के राष्ट्रपति के विषय में सत्य नही है। यह सत्य है कि फ्रांस का राष्ट्रपति एक निर्वाचनाधिकरण द्वारा चुना जाता है लेकिन उसकी अमेरिका के राष्ट्रपति से कोई समानता नहीं जिसका निर्वाचन देश की जनता के बहुमत से किया जाता है।

यह कहा गया है कि फ्रास का राष्ट्रपति मन्त्रियों, संसद् तथा विधान परिषद् के विचारो का विरोध कर सकता है और उन्हें अस्वीकार भी कर सकता है। यदि मन्त्रिमण्डल राष्ट्र का परिचालन-चक्र है तो राष्ट्रपति ही लोकतन्त्र का परिचालक है। राष्ट्रपति के अधिकारों तथा शक्तियो पर एकमात्र सीमा अभियुक्ति (impeachment) का भय है।

डोरोथी पिक्कल्ज़ का विचार है कि "कुछ दशाओं में पञ्चम लोकतन्त्र के राष्ट्रपति को संविधानाधीन उसके पहले होने वाले राष्ट्रपतियों की अपेक्षा कही अधिक छूट दी गई है, लेकिन इतना शीघ्र राष्ट्रपति के उन अधिकारों का अनुमान नही लगाया जा सकता जो समय के परिवर्तन के साथ उसके हाथो में समा जाएँगे। उदाहरणतः राष्ट्रपति को अब सन्धियों के विषय मे विचारों का आदान-प्रदान करने के [illegible] है (धारा ५२), लेकिन पुराने विधान के अनुसार उसे ऐसी संधियों के विषय मे [illegible] सूचना मात्र ही दी जाती थी। उन पदों की सूची जिनकी नियुक्ति वह कर स[illegible]

अब १९४६ के विधान की सूची से कहीं अधिक लम्बी है। किसी प्रकार पूर्वतः प्रस्तावित किए बगैर ही उसे प्रधान मन्त्री तथा उस द्वारा कहे गए मन्त्रियो की नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त है। एक दिशा मे उसे काम करने की कुछ कम स्वतन्त्र दी गई मालूम होती है। क्षमा-दान के अधिकार को प्रयोग करने के लिए उसे अब अन्य मन्त्रियों के प्रति-हस्ताक्षर की आवश्यकता है जब कि पहले विधान के अनुसार यह अनिवार्य नहीं था।

"तृतीय तथा चतुर्थ लोकतन्त्रों के अधीन अपने पूर्वजों की भांति राष्ट्रद्रोह के अतिरिक्त वह अपनी शासकीय हैसियत में किए गए किन्ही कार्यों के लिए राजनैतिक तौर पर उत्तरदायी नही है। राष्ट्रद्रोह के लिए उच्च न्यायालय में उस पर अभियोग चलाया जा सकता है। यह धारा उस राष्ट्रपति के विषय में ही समझ में आ सकती है जो राष्ट्रपतित्व ही करता है परन्तु राज्य नही करता, लेकिन पंचम लोकतन्त्र के राष्ट्रपति के विषय में यह उतना सत्य नहीं है क्योंकि वह साधारण स्थिति में ही अपने वास्तविक अधिकारों का कुछ प्रयोग तो कर ही सकता है और संकटकालीन स्थिति में असीमित शक्तियाँ प्रयोग कर सकता है।"

मन्त्रिमण्डल (Council of Ministers)— यह ऊपर कहा जा चुका है कि लोकतन्त्र का राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को नियुक्त करेगा और प्रधान मन्त्री की सिफारिश पर अन्य मन्त्रियो की नियुक्ति करेगा और उनके कर्त्तव्यों को निश्चित करेगा। धारा २१ में यह कहा गया है कि प्रधान मन्त्री शासन के विधिवत् कार्य का निर्देशन करेगा। वह राष्ट्रीय-सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होगा। वह सब नियमों को कार्यान्वित करने की व्यवस्था करेगा। उसे नियन्त्रक शक्तियाँ प्राप्त हैं और वह नागरिक तथा सैनिक पदो के लिए नियुक्तियाँ भी करेगा। वह अपनी कुछ शक्तियाँ अन्य मन्त्रियों को भी प्रदान कर सकता है। समय और स्थिति की आवश्यकतानुसार वह उच्च परिषदों तथा राष्ट्र-सुरक्षा समितियो के सभापतियों का स्थान राष्ट्रपति को दे देगा। असाधारण स्थिति में तथा विशेष कार्य के लिए वह राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल की किसी सभा का अध्यक्ष बना सकता है। धारा २२ मे यह कहा गया है कि आवश्यकता पड़ने पर प्रधान मन्त्री की किसी आज्ञा पर सम्बन्धित मन्त्री के प्रतिहस्ताक्षर भी होगे जो उसे कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी होगा।

नागरिक सेवा (The Civil Service)—शासन पद्धति के केन्द्रीयकरण तथा सरकारों की अस्थिरता के कारण फ्रास मे नागरिक सेवा एक महत्त्वशाली कार्य करती है। केवल नागरिक सेवा ही शासन की अविच्छिन्नता को अक्षुण्ण बनाए रखती है। फ्रांस की नागरिक सेवा में समस्त राज्य कर्मचारी चाहे वे अध्यापक हों, स्थानीय राज्य कर्मचारी हों, कारखानों या डाकखानों के कर्मचारी हों, सम्मिलित होते हैं। सैनिको के अतिरिक्त फ्रांस की नागरिक सेवा में १०,००,००० कर्मचारी हैं। पेरिस में ही कर्मचारियो की संख्या ३०,००० या ४०,००० के लगभग है।

द्वितीय विश्व-युद्ध तक फ्रांस की नागरिक सेवा बहुत ही कठिन और कठोर उत्तराधिकारी पद्धति में बँटी हुई थी और इस पद्धति मे प्रत्येक मन्त्रालय में विभिन्न

रूप से विद्यमान थी। युद्ध के पश्चात् नागरिक कर्मचारियों की स्थिति तथा सेवानियमों को नियमानुसार निश्चित किया गया। विभिन्न स्तरों की पुनर्व्यवस्था केवल चार भागों में कर दी गई : शासकीय, कार्यकारिणी, विशिष्ट तथा लिपिक (Administrative, Executive, Technical and Clerical)। प्रधान मन्त्री के कार्यालय के साथ एक और विभाग मिला दिया गया जिसका कार्य था विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों में परस्पर सहयोग तथा एकीकरण करना। किसी एक संस्था पर फ्रास की नागरिक सेवा चलाने का उत्तरदायित्व नहीं है। प्रत्येक मन्त्रालय अपने कर्मचारियों के लिए उत्तरदायी है। परन्तु प्रधान मन्त्री के कार्यालय के साथ मिलाया गया विभाग इस बात को विश्वस्त कर लेता है कि सभी कर्मचारियो के वर्गो मे एक से ही वेतन तथा और सेवा-नियम हो। यही विभाग राष्ट्रीय शासन विद्यालय की नीति को निश्चित करता है। इसी विद्यालय से ही उच्च नागरिक सेवा कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं।

नागरिक सेवा के उच्च वर्गों के पदार्थी साधारणतः तीन वर्षों के लिए राष्ट्रीय शासन विद्यालय मे प्रवेश करते है। यह प्रवेश वे किसी विश्वविद्यालय में या अन्य सात संस्थाओं में से जिनमें सर्वाधिक पेरिस मे स्थित है, किसी एक में शिक्षा प्राप्त करने करने के पश्चात् करते है। राष्ट्रीय शासन विद्यालय मे आधे स्थान उन व्यक्तियों के लिए आरक्षित रखे जाते हैं जो पहले ही शासकीय सेवा मे चार वर्ष व्यतीत कर चुके हों। परीक्षाओ में सैद्धान्तिक विद्या की अपेक्षा शासन विधान के कार्य के विषय मे वास्तविक अनुभव पर अधिक बल दिया जाता है।

१९४६ के एक अधिनियमानुसार फ्रास में नागरिक सेवा कर्मचारियो को एक विशेष वैधानिक स्थान प्रदान किया गया है। इस अधिनियम में नियुक्ति के मुख्य मानदण्ड, सेवा-नियम, पदोन्नति, अनुशासकीय विधियाँ आदि निश्चित की गई हैं, कर्मचारियो के विभिन्न पदों का वर्गीकरण किया गया है, स्थायित्व की सुरक्षा से सम्बन्धित नियमों तथा उच्चाधिकारियो द्वारा किए गए कार्यों के विरुद्ध अभ्यर्थना करने के अधिकारों की परिभाषा दी गई है। इसमें कर्मचारियों के व्यवसाय संघों मे सम्मिलित होने के अधिकार को भी मान्यता दी गई है। कर्मचारियों पर राजनीति मे प्रत्यक्ष भाग लेने के विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नही है। वे राजनैतिक पदों की नियुक्ति के लिए चुनाव भी लड़ते हैं और किसी राजनैतिक पद पर कार्य करने के लिए अवकाश लेने का अधिकार भी उन्हे दिया गया है। फ्रांस के नागरिक सेवा कर्मचारियों के अधिकार इगलैंड अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका से कही अधिक विस्तृत है।

राष्ट्रीयकृत उद्योगों के कर्मचारियों की स्थिति नागरिक सेवा कर्मचारियो की स्थिति के समान नही है। उनका स्थान नागरिक सेवा कर्मचारियों और अराजकीय कारखानों में कार्यकर्त्ताओ की स्थिति के मध्य मे है। लेकिन अपने क्षेत्र के कार्य में अराजकीय कारखानो के कार्यकर्त्ताओं की अपेक्षा उनका अधिक भाग होता है। नागरिक सेवा के कर्मचारियो की तुलना मे उन्हे व्यावसायिक संगठनों में भाग लेने की अधिक स्वतन्त्रता होती है।

कई मन्त्रालयों के साथ परामर्श समितियाँ (Advisory Committees) भी

सम्बन्धित रहती हैं। उनमे से कुछ हैं रक्षा मन्त्रालय, शिक्षा मन्त्रालय, स्वास्थ्य मन्त्रालय, जन-सेवा मन्त्रालय, डाक-विभाग आदि। परामर्श समितियों के सदस्यों मे कुछ उच्चाधिकारी होते हैं, और कुछ व्यावसायिक प्रतिनिधि होते हैं। शिक्षा मन्त्रालय से सम्बन्धित परामर्श समिति के ७० सदस्य है। इसका कार्य है मन्त्री को शिक्षा-सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देना और अनुशासकीय बातों मे अभ्यर्थना-न्यायालय का कार्य करना। रक्षा मन्त्रालय से सम्बन्धित परामर्श समिति की अध्यक्षता लोकतन्त्र का राष्ट्रपति करता है।

विभिन्न मन्त्रालयो का अधीक्षण करने के लिए एक निरीक्षणाधिकरण (Inspectorate) की व्यवस्था की गई है। फ्रांस के वित्त-मन्त्रालय को इगलैंड के कोषागार जैसा सम्मान प्राप्त नही है। इसे अनुमानों का संशोधन करने का अधिकार नही है। यह नागरिक सेवा पर नियंत्रण नही कर सकता। सामान्य आर्थिक नियंत्रण गणनावर्णन न्यायालय द्वारा किया जाता है जो एक स्वतन्त्र सस्था है और इसके सदस्य न्यायाधीशो की भांति जीवन भर के लिए नियुक्त किये जाते हैं और उन्हे हटाया नही जा सकता। यह सस्था सरकार के विभिन्न विभागों तथा सामाजिक सुरक्षा सेवाओ के हिसाव-किताब का निरीक्षण करती है। यह एक वार्षिक विवरणिका प्रकाशित करती है जिसमे विभिन्न नागरिक सेवाओं की कार्य-दक्षता और उनके गणना-वर्णन के विषय मे अपने विचार प्रकट करती है। शासन का अधीक्षण करने वाली सर्वोच्च सस्था राज्य-परिषद् है। यह सरकार की विशिष्ट परामर्शदात्री है। यह विधेयको, अध्यादेशो तथा मन्त्रालयाज्ञाओ के आलेख तैयार करने मे सरकार को परामर्श देती है। शासकीय कठिनाइयों पर भी यह सरकार को परामर्श देती है। शासकीय सुधारों के प्रस्ताव करने के विषय मे भी यह प्रारम्भिक कार्य कर सकती है। स्थानीय अधिकारियों के कार्य का अधीक्षण करने मे भी यह मुख्य भाग लेती है। राज्य-परिषद् के चार भाग है: आन्तरिक, वित्तीय, जन-सेवा सम्बन्धी तथा सामाजिक।

ससद् (Parliament)—धारा २४ के अनुसार, ससद् के दो सदन होंगे: राष्ट्र-परिषद् (National Assembly) और सैनिट। राष्ट्र-परिषद् के सदस्य प्रत्यक्ष मतदान द्वारा निर्वाचित होंगे और सैनिट के सदस्य परोक्ष रूप से। यह लोकतन्त्र के क्षेत्रीय भागो के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध करेगी। देश से बाहर रहने वाले फ्रांस के नागरिक भी इसमे अपने प्रतिनिधि भेजेंगे।

धारा २५ के अनुसार, एक सुव्यवस्थित नियम द्वारा इस बात का निश्चय किया जायगा कि प्रत्येक परिषद् कितने समय के लिए निर्वाचित की जायगी, उसके कितने सदस्य होंगे, उनके क्या वेतन होंगे और उनके निर्वाचन के लिए क्या-क्या योग्यताएँ होंगी। यह इस बात का भी निर्णय करेगी कि किस स्थिति मे परिषद् या सैनिट की सदस्यता के लिए नया चुनाव होगा, यदि कोई स्थान नई परिषद् या सैनिट के लिए चुनाव होने के पहले ही खाली हो जाय।

धारा २६ के अनुसार, अपने कर्त्तव्यो को निभाते हुए किसी ससत्सदस्य द्वारा प्रकाशित विचारों के लिए उस पर न तो न्यायालय मे अभियोग चलाया जा सकता है,

न ढूंढ़ा जा सकता है, और न ही गिरफ्तार किया जा सकता है। परिषद् या सैनिट की अनुमति के बगैर उसके किसी सदस्य को किसी दण्ड्य या साधारण अपराध के लिए संसद् के अधिवेशन के समय मे अभियुक्त नही किया जा सकता। यदि परिषद् सैनिट माँग करे तो इसके किसी सदस्य की गिरफ्तारी या अभियुक्ति को निलम्बित किया जा सकता है।

धारा २७ के अनुसार, अनिवार्य मत अमान्य होंगे। संसत्सदस्यों का मताधिकार व्यक्तिगत है।

धारा २८ के अनुसार, संसद् वर्ष मे दो बार अवश्य अधिकृत रूप से सम्मिलित होगी।

धारा २९ के अनुसार, संसद् असाधारण अधिवेशन के लिए प्रधान मन्त्री या राष्ट्र-परिषद् के सदस्यों के बहुमत की प्रार्थना पर विशेष कार्य पर विचार-विमर्श करने के लिए सम्मिलित की जा सकती है। राष्ट्र-परिषद् के सदस्यो के बहुमत से सम्मिलित होने वाली संसद् के अपना विशेष कार्य पूर्ण कर लेने पर समाप्ति अध्यादेश स्वयं ही लागू हो जाएगा। समाप्ति अध्यादेश से अगले महीने के अन्त से पहले ही प्रधान मन्त्री नए अधिवेशन की माँग कर सकता है। धारा ३० के अनुसार, संसद् के असाधारण अधिवेशन राष्ट्रपति के अध्यादेशो द्वारा सम्मिलित किए जाएँगे।

धारा ३१ के अनुसार, सरकार के सदस्यों की राष्ट्र-परिषद् तथा सैनिट तक पहुँच होगी। यदि वे चाहें तो उनके विचार सुने जाएँगे। वे सरकार के आयुक्तो की सहायता की माँग भी कर सकते हैं।

दो सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध (Relations between two Houses)—तृतीय लोकतन्त्र के अधीन व्यवस्थापित दो सदनो के सहयोगी सम्बन्ध पञ्चम लोकतन्त्र में भी विद्यमान हैं। राष्ट्र-परिषद् द्वारा प्रस्तावित विधि को सैनिट वस्तुतः रोक सकती है और दो सदनो की लगातार असहमति को दूर करने के लिए विधान मे कोई व्यवस्था नही की गई है। कोई भी विधेयक जिस पर राष्ट्र-परिषद् और सैनिट सहमत न हो अनिश्चित समय तक एक से दूसरे सदन तक जाता रहेगा। लेकिन ऐसी स्थिति मे सरकार शक्तिपूर्वक हस्तक्षेप कर सकती है। किसी विधेयक के दोनों सदनों मे दो-दो बार पढे जाने के बाद सरकार इस बात की माँग कर सकती है कि एक संयुक्त आयोग (Commission) नियुक्त किया जाए जिसके सदस्य दोनो सदनो से आधे-आधे लिए जाएँ। यदि आयोग किसी निश्चय पर पहुँचे तो सरकार विधेयक को दोनों सदनों के पास मतदान के लिए भेज सकती है। यदि आयोग भी किसी निश्चय पर न पहुँच सके या एक सदन विधेयक को अस्वीकार कर दे तो ससद् किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए अपने प्रयत्नो को जारी रख सकती है या विधेयक को अपने विचारार्थ विषयो की सूची से काट दे और उस पर कोई और विचार-विमर्श त्याग दे। सरकार फिर भी हस्तक्षेप कर सकती है और दोनो सदनों के विधेयक को एक बार फिर पढने के लिए प्रार्थना कर सकती है। विधेयक पर आयोग द्वारा संशोधित या मौलिक रूप मे और सैनिट प्रस्तावित सशोधनों को विचार में लिये बगैर भी राष्ट्र परिषद् में मतदान

सकता है। आर्थिक विधेयक के अतिरिक्त अन्य किसी भी विधेयक के विषय में सैनिट की अस्वीकृति को अमान्य करने के लिए राष्ट्र-परिषद् का साधारण बहुमत पर्याप्त होगा।

यह सत्य है कि सैनिट एक अधीनस्थ द्वितीय सदन है। लेकिन विधान में कुछ धाराएँ हैं जो इसके सम्मान को बढ़ा देती हैं। सैनिट का सभापति राष्ट्रपति का स्थान ग्रहण कर सकता है यदि राष्ट्रपति अयोग्य हो और ऐसी स्थिति में वह तब तक कार्य कर सकता है जब तक नए राष्ट्रपति का निर्वाचन न हो जाए। धारा १६ को प्रयोग करने से पहिले या राष्ट्र-परिषद् को भंग करने से पहिले राष्ट्रपति को सैनिट के सभापति का परामर्श लेना अनिवार्य है। कुछ स्थितियों में सैनिट का सभापति विधेयकों को विधान-परिषद् के पास भेज सकता है। राष्ट्र-परिषद् के सभापति की भाँति वह भी विधान-परिषद् के तीन सदस्य नियुक्त करता है। समाज (Community) की सैनिट में और उच्च न्यायालय में सैनिट को राष्ट्र-परिषद् के बराबर प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। जनमत-संग्रह के लिए प्रार्थना करने से पहिले राष्ट्र-परिषद् के लिए सैनिट से परामर्श करना आवश्यक है। सैनिट को अधिकार है कि वह राष्ट्रपति के सन्देश ले। प्रधान मन्त्री को भी अधिकार है कि किसी भी समय पर वह सैनिट की स्वीकृति के लिये प्रार्थना करे।

संसदीय प्रभुत्व की सीमाएँ (Restrictions on Parliamentary Sovereignty)—पंचम लोकतन्त्र का विधान संसदीय प्रभुत्व को कुछ दिशाओं में सीमित भी करता है। कोई भी विषय जो स्पष्टतः संसद् के कार्य-क्षेत्र के लिए आरक्षित नहीं हैं, उन पर सरकार कार्यपालिका शक्तियों द्वारा नियन्त्रण कर सकती है। संसद् की अनुमति के साथ कुछ समय के लिए वह उन विषयों पर भी कार्य कर सकती है जो वस्तुतः संसद् के ही कार्य-क्षेत्र में सम्मिलित है। यह उपबन्ध किया गया है कि नए संविधान के कार्यान्वित होने से पहले बनने वाले नियमों का कार्यपालिका (Executive) के क्षेत्र में सम्मिलित होने या न होने के विषय पर निर्णय करने के लिए राज्य-परिषद् (Council of States) से परामर्श करना आवश्यक है। वे नियम जो कार्यपालिका क्षेत्र में सम्मिलित है अध्यादेशों द्वारा सशोधित किए जा सकते है। विधान के कार्यान्वित होने के पश्चात् बनाए गए नियमों में विधान-परिषद् को यह अधिकार है कि वह इस बात का निर्णय करे कि अमुक विषय, जिसे संसद् के कार्य-क्षेत्र में सम्मिलित समझा गया है वस्तुतः कार्यपालिका क्षेत्र में सम्मिलित किया जाना चाहिए। विधान-परिषद् की अनुमति के बगैर सरकार कोई कार्य इस कल्पना के आधार पर नहीं कर सकती कि वह विषय कार्यपालिका क्षेत्र में ही सम्मिलित होना चाहिए और न ही उसे अध्यादेश द्वारा संशोधित किया जा सकता है।

धारा ४१ द्वारा सरकार को यह अनुमति दी गई है कि वह किसी विशेष विधेयक या संशोधन के संसद् के सामने आने पर आपत्ति उठाए कि वह विषय संसद् के लिए विचार करने के लिए ठीक नहीं है। यदि सम्बन्धित सदन का सभापति सरकार से असहमत हो तो ऐसे विषय को विधान-परिषद् (Constitutional

Council) के पास भेजना पड़ता है। लोकतन्त्र का राष्ट्रपति या किसी भी सदन का सभापति कोई भी विधेयक विधान-परिषद् के पास इसलिए भेज सकता है कि क्या कोई विशेष विषय विधान की धाराओं के उपयुक्त है। लेकिन संविधान में ऐसी कोई धारा नहीं है जिसके अधीन संसद् सरकार द्वारा प्रकाशित किसी अध्यादेश पर यह आपत्ति उठाए कि विधानाधीन वह विषय सरकार के अध्यादेश से नहीं बल्कि संसद् द्वारा बनाए गए नियम द्वारा ही व्यवहारित किया जाना चाहिए।

विधान-परिषद् भी संसद् के प्रभुत्व को सीमित करती है। पहले एकमात्र संसद् ही अपने कार्यों की वैधानिकता की निर्णायिका थी। लेकिन नए विधानानुसार अब ऐसा नहीं है। पहले संसद् को अनिश्चित निर्वाचनों का निर्णय करने का अधिकार था, लेकिन इसने अपना यह कार्य पक्षपात से किया, इसलिए यह अधिकार अब विधान-परिषद् को दे दिया गया है।

संसद् तथा सरकार के सम्बन्ध (Relations between Parliament and Government)—धारा ३४ के अनुसार, किसी भी विधेयक पर मतदान संसद् ही करेगी। धारा ३५ के अधीन केवल संसद् को ही युद्ध की घोषणा करने की अनुमति देने का अधिकार है। धारा ३६ में यह कहा गया है कि सैनिक नियन्त्रण (Martial Law) की घोषणा मन्त्रिमण्डल की किसी सभा में ही की जा सकती है। १२ दिन से अधिक के लिए सैनिक नियन्त्रण को जारी रखने के लिए अधिकार संसद् द्वारा ही दिए जा सकते हैं।

धारा ३८ के अनुसार, किसी विशेष विषय पर और किसी विशेष समय के लिए अपने कार्य-क्रम को उन अध्यादेशों तथा आज्ञप्तियों द्वारा कार्यान्वित करने के लिए सरकार संसद् से माँग कर सकती है जो साधारणत. विधि-क्षेत्र के अन्तर्गत ही सम्मिलित है। ऐसी आज्ञप्तियों के आलेख मन्त्रियों की सभाओं में राज्य-परिषद् से परामर्श करने के पश्चात् तैयार किए जाएँगे। उनके प्रकाशित होते ही वे लागू हो जाएँगे। लेकिन उनकी अनुमति देने वाले विनियम द्वारा निर्धारित अवधि के अन्दर-अन्दर उसकी स्वीकृति के लिए विधेयक संसद् में प्रस्तुत न किए जाने पर वे अमान्य हो जाएँगे। उपरोक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् उन आज्ञप्तियों को विधि द्वारा केवल उन्हीं विषयों में संशोधन किया जा सकता है जो विधि-क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

धारा ३९ के अधीन प्रधान मन्त्री तथा संसत्सदस्यों को विधि का सूत्रपात करने का अधिकार है। राज्य-परिषद् से परामर्श करने के पश्चात् सरकारी विधेयकों पर मन्त्रिमण्डल की सभाओं में विचार किया जाएगा और फिर उन्हें राष्ट्र-परिषद् या सैनिट के सचिवालय के पास भेज दिया जाएगा।

संसत्सदस्यों द्वारा उठाए गए विधेयक या संशोधन ऐसी स्थिति में अमान्य होंगे जब वे राष्ट्र के आर्थिक साधनों को कम करें या सार्वजनिक व्यय को बढ़ाएँ (धारा ४०)।

संसत्सदस्यों तथा सरकार को संशोधनाधिकार प्राप्त है (धारा ४४)। प्रत्येक

सरकारी या संसदीय विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा एक ही जैसे आलेख को स्वीकार करने के उद्देश्य से विचारित किए जाएँगे। यदि दो सदन असहमत हों तो प्रधान मन्त्री को उनकी एक संयुक्त समिति की नियुक्ति करवाने का अधिकार होगा जिसके आधे-आधे सदस्य दोनों सदनों में से लिए जाएँ। इस समिति का यह कर्त्तव्य होगा कि वह विचाराधीन विषयों के लिए नया आलेख तैयार करे। संयुक्त समिति द्वारा प्रस्तावित आलेख को दोनों सदनों की अनुमति के लिए सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। उस आलेख का कोई भी संशोधन सरकार की अनुमति के बगैर नहीं किया जा सकता। यदि संयुक्त समिति किसी आलेख को प्रस्तावित न कर सके तो राष्ट्र-परिषद् तथा सैनिट में एक-एक बार फिर पढ़े जाने के पश्चात् सरकार राष्ट्र-परिषद् को निष्कर्षात्मक निर्णय देने के लिए कह सकती है (धारा ४५)।

सरकार द्वारा प्रस्तुत या स्वीकृति-प्राप्त विधेयकों को सदनों की कार्य-सूचियों में सरकार की इच्छानुसार प्राथमिकता दी जाएगी। सप्ताह में एक सभा केवल सरकार के सदस्यों से प्रश्न पूछने के लिए ही निर्धारित की जाएगी (धारा ४८)।

धारा ४९ के अनुसार, मन्त्रिमण्डल द्वारा विचार होने के पश्चात् प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल को राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख इसके कार्य-क्रम के लिए उत्तरदायी बना देगा और आवश्यकतानुसार सरकार की सामान्य नीति की घोषणा भी करेगा। यदि राष्ट्र-परिषद् अविश्वास प्रस्ताव को स्वीकार कर ले तो सरकार का उत्तरदायित्व एकदम प्रश्न में आ जाता है। ऐसा प्रस्ताव केवल तभी मान्य होगा यदि राष्ट्र-परिषद् के $\frac{1}{10}$ सदस्य इस पर हस्ताक्षर करें। प्रस्ताव के दायर करने के कम-से-कम ४८ घण्टे बाद ही उस पर मतदान किया जाएगा। केवल वही मत जो प्रस्ताव के पक्ष में हों गिने जाएँगे। प्रस्ताव राष्ट्र-परिषद् के वास्तविक सदस्यों के बहुमत से ही स्वीकृत किया जा सकता है। यदि अविश्वास प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाए तो उस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्य उसी अधिवेशन में एक और अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। मन्त्रिमण्डल द्वारा विचार-विमर्श होने के पश्चात् प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल को राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख किसी विशेष आलेख की स्वीकृति के लिए उत्तरदायी बना सकता है। प्रधान मन्त्री सैनिट को सरकार की सामान्य नीति को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना कर सकता है।

धारा ५० में यह कहा गया है कि राष्ट्र-परिषद् द्वारा किसी अविश्वास प्रस्ताव को स्वीकार करने पर या सरकार के कार्यक्रम या सामान्य नीति की घोषणा को अस्वीकार करने पर प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र राष्ट्रपति को दे देगा।

सन्धियाँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते (Treaties and International Agreements)—धारा ५२ के अनुसार, राष्ट्रपति सन्धियों पर बातचीत करेगा तथा उनका अनुसमर्थन करेगा। किसी भी सन्धि के विषय में बातचीत जो अन्त में उसके हस्ताक्षर होने तक पहुँच जाए, उसकी सूचना राष्ट्रपति को अवश्य दी जाएगी यदि ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि को राष्ट्रपति के अनुसमर्थन की आवश्यकता न हो। धारा ५३ के अनुसार शान्ति सन्धियाँ, व्यापारिक सन्धियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बन्धित

सन्धियाँ या समझौते, ऐसी सन्धियाँ जो राष्ट्र के वित्त को कार्य-विशेष के लिए निर्धारित करें, या विधि सम्बन्धी धाराओं का सशोधन करें, या व्यक्तियो की स्थिति से सम्बधित हों, या राष्ट्र-क्षेत्र के समर्पण, आदान-प्रदान या बढ़ने के विषय मे हों, केवल विधि अनुसार ही स्वीकृत या अनुमोदित की जा सकेंगी। उनके स्वीकृत या अनुमोदित होने के बाद ही वे लागू की जा सकेंगी। राष्ट्र-क्षेत्र का कोई भी समर्पण आदान-प्रदान या वृद्धि सम्बन्धित जनता के विचारो की पुष्टि के बगैर वैध न होगा।

धारा ५४ के अनुसार, यदि विधान-परिषद् यह कह दे कि अन्तर्राष्ट्रीय सधि का कोई भाग संविधान के विपरीत है तो ऐसी धारा को स्वीकार करने के लिए या अनुसमर्थन देने के लिए संविधान का सशोधन आवश्यक होगा।

विधान परिषद् (Constitutional Council)—धारा ५६-६३ विधान परिषद से सम्बन्धित है। धारा ५६ मे कहा गया है कि परिषद् के नौ सदस्य होगे जो नौ वर्षो के लिए नियुक्त किए जाएँगे और उनकी पुर्ननियुक्ति नही की जा सकेगी। परिषद् के एक तिहाई सदस्य हर तीन वर्ष बाद फिर नियुक्त किए जाएँगे। तीन सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जायेंगे, तीन राष्ट्र-परिषद् के सभापति द्वारा और तीन सैंनिट के सभापति द्वारा नियुक्त किए जायेंगे। नौ सदस्यो के अतिरिक्त लोकतन्त्र के भूतपूर्व राष्ट्रपति विधान-परिषद् के जीवन काल में इसके पदेण (ex-officio) सदस्य होगे। विधान-परिषद् के सभापति की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। कठिनाई की स्थिति मे उसे निर्णायक मत प्राप्त होगा।

विधान-परिषद् राष्ट्रपति के विधिवत् निर्वाचन को आश्वस्त करेगी। यह शिकायतों पर विचार करेगी और मतदान के परिणाम की घोषणा करेगी। यह राष्ट्र-परिषद् और सैंनिट के सदस्यो के निर्वाचन की वैधता पर भी अपना निर्णय देगी। यह जनमत-संग्रह की विधि को आश्वस्त करेगी और उसके परिणाम की घोषणा करेगी। मुख्य विनियमों के लागू होने से पहिले उनकी वैधानिकता पर निर्णय देने के लिए उन्हें विधान-परिषद् के पास भेजना आवश्यक है। उसी प्रकार अन्य विनियम भी लागू होने से पहले इसके पास अवश्य भेजे जाने चाहिएँ। परिषद् का कर्त्तव्य है कि एक महीने के अन्दर-अन्दर अपना निर्णय दे दे। यदि विधान-परिषद् किसी धारा को अवैधानिक घोषित कर दे तो उसे कार्यान्वित नही किया जा सकता। विधान परिषद् के निर्णय के विरुद्ध कही भी अभ्यर्थना नही की जा सकती। इसके निर्णय को समस्त जन शक्तियों द्वारा और शासकीय तथा न्यायिक अधिकारियों द्वारा मान्यता दी जानी आवश्यक है।

उच्च न्याय परिषद् (High Council of Judiciary)—धारा ५८ के अनुसार, लोकतन्त्र का राष्ट्रपति न्यायिक अधिकरण की स्वतन्त्रता को आश्वस्त करेगा। उच्च न्याय परिषद् उसकी सहायता करेगी। आंशिक नियम द्वारा न्यायाधीशों की प्रतिष्ठा निर्धारित करेगा और वे न्यायाधीश पद्च्युत नही किए जा सकते।

धारा ६५ मे यह कहा गया है कि उच्च न्याय परिषद् का सभापतित्व राष्ट्रपति करेगा। न्याय मन्त्री इस परिषद् का विशेष (ex-officio) उप-सभापति है।

वह राष्ट्रपति के स्थान पर परिषद् का सभापतित्व कर सकता है। इसके अतिरिक्त परिषद् के नौ अन्य सदस्य होंगे जिनकी नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। यह समाप्ति न्यायालय (Court of Cessation) के न्यायाधीशों तथा अभ्यर्थना न्यायालयों के प्रथमाध्यक्षों की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव करेगी। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए न्याय मन्त्री के प्रस्तावों पर भी यह अपने विचार प्रकट करेगी। आंगिक नियम द्वारा निर्धारित स्थिति में क्षमादान के अधिकार का प्रयोग करने के लिए इससे परामर्श किया जाएगा। न्यायाधीशों के प्रति यह एक अनुशासन परिषद् का कार्य भी करेगी। धारा ६६ में कहा गया है कि किसी व्यक्ति को अकारण गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। न्यायाधिकरण (Judicial Authority) जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिए उत्तरदायी है इस बात के विषय में आश्वस्त करेगी।

उच्च न्यायालय (High Court of Justice)—धारा ६७ और ६८ उच्च न्यायालय से सम्बन्धित है। इसके सदस्य बराबर-बराबर संख्या में राष्ट्र-परिषद् तथा सैनिट द्वारा प्रत्येक सार्वजनिक या आंशिक निर्वाचन के बाद अपने सदस्यों में से ही चुने जाएँगे। यह स्वयं अपने सदस्यों में से ही अपना अध्यक्ष चुनेगी। राष्ट्र-द्रोह के अतिरिक्त अन्य किसी भी कार्य के लिए जो राष्ट्रपति ने अपने पद के कर्त्तव्यों को पालना के लिए किए हों वह उत्तरदायी नहीं होगा। उस पर आरोप केवल संसद् के दो सदनों द्वारा ही लगाया जा सकता है। उस पर अभियोग उच्च न्यायालय ही चलाएगा। सरकार के सदस्य अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय किए गए कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे यदि उन कार्यों को उनके समय में अपराध या अनिष्टाचार समझा जाए।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् (Economic and Social Council)—धारा ६९-७१ आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के विषय से सम्बन्धित हैं। सरकारी विधेयक, आज्ञप्ति तथा अध्यादेशों पर तथा इसके पास भेजे गए संसदीय विधेयकों पर यह अपने विचार प्रकट करेगी। सरकारी या संसदीय विधेयकों पर यह अपने विचार संसद् के सदनों में अपने किसी सदस्य को भेजकर प्रकट कर सकती है। लोकतन्त्र या समाज (Community) से सम्बन्धित किसी आर्थिक या सामाजिक समस्या पर सरकार इससे परामर्श ले सकती है। किसी भी आर्थिक या सामाजिक विषयक विधेयक या योजना को विचारार्थ इसके पास भेजना आवश्यक है।

क्षेत्रीय अंग (Territorial Units)—धारा ७२-७६ क्षेत्रीय अंगों से सम्बन्धित हैं। यह कहा गया है कि लोकतन्त्र के अंग प्रदेश (Communes), विभाग (Departments) और समुद्र पार उपनिवेश (Overseas Territories) होंगे। इन क्षेत्रों को नियमानुसार निर्धारित स्थिति में तथा निर्वाचित परिषदों द्वारा स्व-शासन करने का अधिकार प्राप्त होगा। विभागों तथा समुद्र-पार उपनिवेशों में सरकार के प्रतिनिधि शासकीय पर्यवेक्षण सम्बन्धी राष्ट्रीय अधिकारों तथा नियम के सम्मान के लिए उत्तरदायी होंगे। लोकतन्त्र के अन्दर समुद्र-पार उपनिवेशों के विशेषाधिकारों को दृष्टि में रखते हुए उनकी विशेष व्यवस्था की जाएगी। सम्बन्धित औपनिवेशिक परिषद् से

परामर्श करने के पश्चात् ही इस व्यवस्था के या उसमे परिवर्तन का निर्णय किया जाएगा। समुद्र-पार उपनिवेश अपने अस्तित्व को लोकतन्त्र के अन्दर भी सुरक्षित रख सकते थे।

धारा ८८ मे यह कहा गया है कि लोकतन्त्र या समाज (Community) किसी अन्य राज्य के साथ जो समाज से सम्बन्धित होना चाहे उनको संस्कृति के उत्थान के लिए सन्धि कर सकता है।

अस्थायी धाराएँ (Temporary Provisions)—धारा ६०-६२ अस्थायी धाराएँ हैं। यह सत्य है कि नया सविधान ७ अक्तूबर १६५८ से लागू किया गया परन्तु सम्पूर्ण शासन-विधान एक साथ ही काम मे नही लाया जा सकता था। अस्थायी अवधि ५ फरवरी, १६५६ तक रही। धारा ६०-६२ इसी अवधि से सम्बन्धित थी। अब उन धाराओं का कोई लाभ नही है। यह व्यवस्था की गई कि ससद् की साधारण सभाएँ विलम्बित की जाएँ। नए विधान की विज्ञप्ति के चार महीने के अन्दर-अन्दर ही उसके अधीन बनाई गई नयी सस्थाओ की स्थापना करनी आवश्यक थी। अस्वस्थानीय समय मे लोकतन्त्र परिषद् के सदस्य ही सैनिट के सदस्य थे। सैनिट की रचना से सम्बन्धित आवश्यक नियम ३१ जुलाई १६५६ तक बनने थे। नई सस्थाओ की स्थापना तथा जन-शक्तियो के कार्य करने के लिए सभी विधि सम्बन्धी उपाय मन्त्रि-परिषद् की सभाओं मे लोकतन्त्र-परिषद् के साथ परामर्श के पश्चात् ही किए जाएँगे। ऐसे उपाय आज्ञप्तियो द्वारा लेने की व्यवस्था थी और उनमे नियम-सम शक्ति निहित थी। नियम-सम शक्ति सम्पन्न आज्ञप्तियो द्वारा ही सरकार को निर्वाचन-विधि का निश्चय करने का अधिकार दिया गया। सभी क्षेत्रो मे राष्ट्र के जीवन, नागरिको तथा उनकी स्वतन्त्रताओ की सुरक्षा के लिए उपाय प्रयोग करने का अधिकार भी सरकार को दिया गया।

पचम लोकतन्त्र के भविष्य के विषय मे डोरोथी पिक्कल्ज ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए है: "पंचम् लोकतन्त्र को विशेषज्ञो के शासन और ससदीय अक्षमता के सयोग से दो प्रकार की भय-शंका है। एक तो यह कि मन्त्रिमण्डल का शासन जो चतुर्थ लोकतन्त्र के अधीन दुर्बल और विभाजित था, पंचम लोकतन्त्र मे अराजकतापूर्ण न बन जाए, और दूसरे यह कि राजनैतिक नेतागण (जिन्हे दो श्रेणियों मे विभाजित किया जा सकता है, एक वे जो तृतीय तथा चतुर्थ लोकतन्त्रों की पद्धतियों को अस्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो गुप्त रूप से पुरानी स्थिति मे ही रहना चाहते हैं, न तो पीछे ही जा सकें और न ही आगे बढ़ सके। यह शंका सम्भवतः बहुत समीप नही है, और इसके साथ-साथ १६५८ के विस्फोट के कारण बनी समस्याएँ अब भी उपस्थित है जिससे जनरल डिगॉल का नेतृत्व एकदम आवश्यक हो गया है। लेकिन फ्रास की ससदीय विधान-पद्धति की दुर्बलताएँ भी अभी उपस्थित हैं। एकमात्र वास्तविक अन्तर है जनरल डिगॉल की विद्यमानता। पंचम लोकतन्त्र तब तक सुरक्षित नही है जब तक डिगॉल का लोकतन्त्र फ्रास का लोकतन्त्र न बन जाए।"

फ्रांस की न्याय-प्रणाली (French Judicial System)—फ्रांस की न्याय-प्रणाली की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं, (१) जैसे फ्रांस में विधिवद्ध (Codified) कानून है। इतिहास और राजनीति के विद्यार्थी नेपोलियन के विधान संग्रह से भली भाँति परिचित है। विभिन्न विधान संग्रहो की धाराएँ न्यायालय के निर्णयों के आधार पर रहती है। न्यायाधीशों के लिए किसी भी अभियोग का निर्णय करने के लिए यही विधान-संग्रह आधारभूत सिद्धान्त रहते है। विशेष अभियोग के कानून और विधान-संग्रहों के सिद्धान्त मे मौलिक भेद है।

(२) फ्रास की न्याय-प्रणाली न्यायाधीशों के चुनाव, न्यायमण्डल और कांग्रेस मण्डल के पारस्परिक सम्बन्धो के विषय मे इंगलैंड से भिन्न है। इंगलैंड और भारतवर्ष में न्यायाधीश कानूनी व्यवसाय (Legal profession) द्वारा चुने जाते हैं। जो व्यक्ति कानून के व्यवसाय में सफल रहा होता है उसे न्यायाधिकारी बना दिया जाता है। किन्तु फ्रास मे एक युवक को सर्वप्रथम इस बात का निर्णय करना चाहिए कि वह अपने जीवन मे वकील बनना चाहता है या न्यायाधीश। एक बार निर्णय करने के पश्चात् उसके लिए अपना व्यवसाय बदलने का कोई मार्ग नही रह जाता।

(३) वैधानिक दृष्टि से फ्रांस की एक और विशेषता भी उल्लेखनीय है। फांस मे अभियोगों का निर्णय कम-से-कम ३ न्यायाधीश करते हैं। इस व्यवस्था का कारण फ्रास मे प्रचलित वह धारणा है जिसके आधार पर एक न्यायाधीश पर प्रभाव डालकर उसे भ्रष्ट किया जा सकता है। फ्रांस में कहावत है कि "अकेला न्यायाधीश बुरा न्यायाधीश होता है" (A single judge is an unfair judge)।

(४) फ्रास में न्यायाधीशों को अच्छे वेतन नही मिलते अतः अच्छे मेधावी व्यक्ति इस ओर आकर्षित नही होते। इसका एक और भी प्रभाव होता है और वह यह कि इस व्यवसाय में वही लोग आते हैं जिन्हें धन की अपेक्षा एक न्यायाधीश की पदवी द्वारा सामाजिक सम्मान की अधिक लालसा होती है।

(५) इंगलैंड के प्रतिकूल फ्रांस में दो पृथक्-पृथक् न्यायालय होते हैं। यहाँ दीवानी और फौजदारी के सामान्य न्यायालय होते हैं। उन अभियोगों के लिए भी जिनमें सरकार वादी और प्रतिवादी होती है, पृथक् न्यायालय होते है।

(६) फ्रांस में अनेक विशेष न्यायालय भी है यथा शान्ति न्यायाध्यक्ष (Judges of Peace), औद्योगिक झगड़ा परिषदें (Industrial Disputes Councils) और व्यापारिक न्यायाधिकरण (Commercial Tribunals) इत्यादि। इन न्यायालयों का कार्य निर्णय करने की अपेक्षा समझौता कराना और मध्यस्थता करना अधिक होता है। इन न्यायालयो के कर्मचारी न्यायाधीशों की श्रेणी मे नही गिने जाते। फ्रांस की जनता का यह विश्वास है कि साधारण अभियोग इत्यादि के पचड़े मे पड़े बिना ही सरकार को झगड़ों के समझौते के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना चाहिये। इसका परिणाम यह है कि न्यायालयों पर अभियोगों का भार नही रहता।

सामान्य न्यायालय पद्धति (Regular Court System)—सामान्य न्यायालय पद्धति मे शान्ति-न्यायाधीश (Judges of Peace) सबसे निम्न श्रेणी के न्यायाधि-

करण (Tribunal) है। प्रत्येक मण्डल (Canton) में एक शान्ति न्यायाधीश होता है जो इसकी सीमा मे सारे दीवानी और फौजदारी मामलों की सुनवाई करता है। एक फौजदारी का न्यायाधीश होने के नाते यह पुलिस-न्यायालयो की, जो फौजदारी के सबसे निम्न न्यायालय होते है, अध्यक्षता करता है। क्रमशः महत्त्वपूर्ण फौजदारी के अभियोगों का निर्णय, शोधक न्यायालय (Correctional Courts), जिनमें ३ न्यायाधीश होते हैं, निर्णय करता है। इन अभियोगो में पंचसभा (Jury) की आवश्यकता नहीं होती। आरम्भ में इन मामलों का निर्णय एक निरीक्षक न्यायाधीश (Examining Magistrate) करता है और उसे अधिकार है कि वह इन्हें रद्द कर दे या आगे चलाये। छोटे दीवानी और फौजदारी मामलो में शान्ति-न्यायाधीशों के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील की व्यवस्था नही है। इन न्यायाधीशों के विशेष मामलों मे या स्थानीय परिस्थिति के ज्ञान सम्बन्धी मामलो मे बहुत महत्त्वपूर्ण अधिकार है। महत्त्वपूर्ण अभियोगो में शान्ति-न्यायाधीशों के निर्णय के विरुद्ध, जिला (Arrondissement) न्यायालयों में अपील की जा सकती है। शान्ति-न्यायाधीशों से यह आशा की जाती है कि वे वादी और प्रतिवादी मे जहाँ तक हो समझौता कराएँ।

क्रमशः उच्च श्रेणी के न्यायालय जिला न्यायालय (Arrondissement Courts) होते हैं। ये न्यायालय वस्तुतः प्रत्येक जिले में होते है। इन न्यायालयो को प्राथमिक और अपीलीय दोनों प्रकार के अभियोगों का निर्णय करने का अधिकार होता है। इनके पास शान्ति-न्यायाधीशो के निर्णयो की अपीलें आती है।

जिला-न्यायालयों के निर्णयों पर अपील प्रादेशिक-न्यायालयों (Appeal Courts and Assize Courts) मे भी की जाती है। अपील-न्यायालयों में दीवानी के अभियोग सुने जाते है और इसके ५ न्यायाधीश होते है। फौजदारी अपील प्रादेशिक न्यायालय (Assize Courts) मे फ़ौजदारी अभियोग सुने जाते है और प्रत्येक न्यायालय मे एक अध्यक्ष और तीन न्यायाधीश होते है। फ्रांस में २७ अपील-न्यायालय है जिनमें से २४ बड़े-बड़े प्रादेशिक शहरो में है। प्रत्येक प्रदेश में एक फौजदारी अपील प्रादेशिक न्यायालय (Assize Court) है, जो उस प्रदेश के प्रत्येक मुख्य केन्द्र में त्रैमासिक कार्य करता है। पेरिस में तो इनका अधिवेशन लगभग सदैव ही चलता है। फौजदारी और अपील न्यायालयो मे केवल कार्य का अन्तर है, कर्मचारियों का नही। प्रादेशिक फौजदारी न्यायालयों का अध्यक्ष सर्वदा अपील न्यायालयों से ही आता है। जब फौजदारी-न्यायालय का अधिवेशन एक ऐसे नगर मे होता है जो अपील न्यायालय का मुख्य स्थान है तो अपील-न्यायालय के ही न्यायाधीश फौजदारी-न्यायालय में न्यायाधीश होते है। अन्यथा, किसी विशेष स्थान के लिए अपील-न्यायालय के न्यायाधीशों में से ३ न्यायाधीश फौजदारी-न्यायालय में कार्य करने के लिए चुन लिए जाते हैं।

फ्रांस का सर्वोच्च न्यायालय "सेसेशन कोर्ट" (Cessation Court) कहा जाता है। यथार्थ रूप से यह अपील-न्यायालय न होकर पुनर्विचार न्यायालय (Court of revision) है। इसका कार्य अपील-न्यायालय और फौजदारी-न्यायालय के निर्णयों को, कानूनी गुत्थी के आधार पर रद्द करना अथवा स्थिर रखना ही है। सर्वोच्च न्यायालय

अत्यन्त व्यस्त रहता है और इस कारण इसके निर्णय कभी-कभी वर्षों बाद होते हैं। वादी या प्रतिवादी स्वय, अथवा अपने अधिवक्ता (Procureur-General) द्वारा कानूनी गुत्थियों के निर्णय के लिए अपील करते हैं। यह न्यायालय अभियोग की कार्यवाही नही करता अपितु केवल कानूनी गुत्थी के विषय में विचार करता है।

सर्वोच्च न्यायालय के तीन विभाग हैं, प्रार्थना विभाग (Petition Section), दीवानी विभाग (Civil Section) और फौजदारी विभाग (Criminal Section)। प्रत्येक विभाग के १६ सदस्य होते हैं जो अपने सम्मुख उपस्थित समस्या पर विचार-विमर्श करते है।

प्रशासनिक न्यायालय (Administrative Courts)—फास में प्रशासनिक न्यायालय पृथक् हैं। १९२६ से पहले प्रत्येक प्रदेश मे पृथक्-पृथक् प्रशासनिक न्यायालय थे। किन्तु बाद मे वह अनुभव किया गया कि इन न्यायालयों के पास अधिक कार्य नही है और इस कारण कई प्रदेशो के लिय एक प्राथमिक प्रशासनिक न्यायालय की नियुक्ति की गई। आजकल फास मे अन्तर-प्रादेशिक न्याय-परिषदें हैं। इन परिषदों का कार्य-क्षेत्र सीमित है। इनका कार्य-क्षेत्र केवल स्थानीय अधिकारियो के कार्यों और आज्ञाओ तक ही सीमित है। इनका लगभग ९० प्रतिशत कार्य, स्थानीय-कर का लेखा, राजपथ और जल-मार्गों पर किये गये छोटे अपराधो, स्थानीय नगरपालिकाओ के विरुद्ध सार्वजनिक निर्माण सम्बन्धी ठेको को भग करने सम्बन्धी अभियोगों, सरकारी सम्पत्ति की विक्री और स्थानीय चुनाव सम्बन्धी अभियोग को सुनना और निपटाना मात्र है।

अन्तर-प्रादेशिक परिषदो के निर्णय के विरुद्ध प्रदेश परिषद् को अपील की जाती है। प्रदेश-परिषद्, प्रशासनिक न्यायालय के ढाँचे मे एक महत्वपूर्ण संस्था है। प्रदेश-परिषद् सरकार को विधेयक और अधिनियमों का मसविदा बनाने मे कानूनी सलाहकार और प्रशासनिक न्यायालय दोनो का कार्य करती है। ये दो भिन्न-भिन्न कार्य प्रदेश-परिषद् के पृथक्-पृथक् विभाग करते है।

प्रदेश-परिषद् का अभियोग विभाग (Litigation Section) प्रशासनिक अभियोगो का कार्य करता है। यह कार्य परिषद् के ३० उच्च पदाधिकारी करते हैं। परिषद् के एक चौथाई सदस्य, जिलाधीशों अथवा वास्तविक प्रशासनिक अधिकारियो मे से नियुक्त किए जाते है। दो-तिहाई सदस्य, परिषद् के अल्पकालीन सदस्यो को उन्नति देकर नियुक्त किये जाते है। इस प्रकार सदस्यो के चुनाव का परिणाम यह होता है कि प्रदेश-परिषद् में सुलझे हुए प्रशासनिक अधिकारियों और प्रखर मेधावी व्यक्तियों का समन्वय होता है। इसमें सैद्धान्तिक ज्ञान और वास्तविक अनुभव का सुन्दर सामञ्जस्य होता है। पहले अभियोग विभाग एक सामूहिक इकाई (unit) के रूप मे कार्य करता था, किन्तु उस समय इसका कार्य-भार अधिक नही था। किन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जैसे-जैसे इसका कार्य-भार बढता गया, इसमे अनेक उपविभाग बना दिए गये। प्रत्येक उपविभाग में ३ सदस्य होते है। उपविभागों को छोटे-छोटे अभियोगो पर निर्णय देने का अधिकार है। क्रमशः महत्त्वपूर्ण मामलों पर प्राथमिक निरीक्षण और

विचार करने का उत्तरदायित्व ही इन्ही उपविभागों का निरीक्षण और विचार के पश्चात् मामले अभियोग विभाग के पास अन्तिम निर्णय के लिए भेजे जाते हैं।

प्रशासनिक कानून (Administrative Law)—फ्रांस की न्याय-प्रणाली का विवरण, बिना इस बात का उल्लेख किये कि प्रशासनिक कानून (Droit Administratif) क्या है, अधूरा रहेगा। प्रशासनिक कानून की भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या की है। बारथीलैमी के अनुसार, "फ्रास में प्रशासनिक कानून का आशय उन सब कानूनी नियमों से है जिनसे प्रशासन के विभागों का पारस्परिक और जन-सम्बन्ध का निर्णय होता है।" प्रो० रेने डेविड के अनुसार, "प्रशासनिक कानून की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह उन नियमों का विधान संग्रह है जिनसे सार्वजनिक प्रशासन की व्यवस्था और कर्त्तव्यों का निर्णय तथा प्रशासनिक कर्मचारियों के राष्ट्र के नागरिकों के प्रति सम्बन्धो का नियन्त्रण होता है।" प्रो० वाडे के अनुसार, "प्रशासनिक कानून का प्रमुख सम्बन्ध केवल प्रशासन से ही है, न्यायिक नियन्त्रण अथवा अधिरक्षित सवैधानिक कार्यो से नही।" डॉ० जेनिंग्ज के मतानुसार, "प्रशासनिक-कानून केवल शासन से सम्बन्धित नियम है। इन नियमो द्वारा शासन अधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यो का ज्ञान और निर्णय होता है।"

प्रो० डायसी के मतानुसार, "फ्रांस के प्रशासनिक कानून, शासन-अधिकारियों के अधिकारो और कर्त्तव्यों का लेखा न होकर, वे सिद्धान्त है, जिनके आधार पर राष्ट्र-सत्ता के प्रतिनिधि के रूप मे राजकर्मचारियों और जनता के पारस्परिक व्यवहार का निर्णय और नियन्त्रण होता है।" प्रशासनिक कानून फ्रांस के विधान संग्रह का वप अध्याय है, जिसके अनुसार राजकर्मचारियों की स्थिति और कर्त्तव्य, नागरिको और पदाधिकारियों के पारस्परिक व्यवहार सम्बन्धी नागरिक अधिकार और कर्त्तव्य का निर्णय और वह पद्धति जिसके अनुसार राजकर्मचारी और जनता अपने-अपने कर्त्तव्यो का पालन और अधिकारों का उपयोग करती है।

दो प्रमुख सिद्धान्त—प्रो० डायसी ने प्रशासनिक कानून के दो मुख्य आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया है। प्रथम सिद्धान्त है राजकर्मचारियो को नागरिको की अपेक्षा विशेष अधिकार, सुविधाएँ और प्राथमिकता देना। इन अधिकारों, सुविधाओं और प्राथमिकताओं का निर्णय नागरिकों के वैधानिक मूल अधिकारों और कर्त्तव्यों को नियत करने वाले सिद्धान्तो से भिन्न सिद्धान्तों द्वारा किया जाता है। एक नागरिक की स्थिति, शासन के प्रतिनिधि से व्यवहार करते समय वैसी नही रहती जैसी कि अपने पड़ोसी नागरिक से व्यवहार करने के अवसर पर होती है। दूसरा सिद्धान्त है अधिकारो का विभाजन। कार्यमण्डल, न्यायमण्डल और विधानमण्डल (Executive, Judiciary and Legislature) इनको एक दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने से रोकना था। जिस प्रकार न्यायाधीशों को पदच्युत नही किया जाता और वे कार्य-मण्डल के प्रभाव से स्वतन्त्र रहते है उसी प्रकार सरकार और कर्मचारी अपने अधिकार क्षेत्र में साधारण न्यायालयों के प्रभाव से स्वतन्त्र रहते हैं।

चार महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ—प्रो० डायसी ने फ्रास के प्रशासनिक

भी कही जा सकती है क्योंकि इसका विकास शताब्दियों मे दिये गये निर्णयों से हुआ है।

डायसी का मत है कि प्रशासनिक कानून का जहाँ तक सरकारी कर्मचारियों की स्थिति, अधिकार और कर्त्तव्यों से सम्बन्ध है, हमें इंगलैंड के कानून मे इस प्रकार का कोई कानून नही मिलता। फ्रास के प्रशासनिक कानून, स्वयं अपने प्रकार की एक व्यवस्था है और देश के साधारण कानूनो से इसका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि इगलैंड में समानाधिकार (Equity) का सम्बन्ध अन्य सामान्य कानूनो से है।

प्रशासनिक कानून के प्रति प्राचीन घृणा का भाव अब धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। पहले यह धारणा थी कि प्रशासनिक कानून की व्यवस्था सरकार कर लेती है और जनता के अधिकार सुरक्षित नही हैं किन्तु प्रशासनिक न्यायालयों की कार्य-शैली ने इस आशंका को शान्त कर दिया है। यह अनुभव में आया कि प्रशासनिक न्यायालय सरकार या सरकारी कर्मचारियो के विरुद्ध निर्णय देने मे संकोच नही करते। इस तथ्य से प्रशासनिक न्यायालयों मे जनता का विश्वास हो गया है।

साधारण न्यायालयों की अपेक्षा प्रशासनिक न्यायालय अपना कार्य शीघ्रता से करते है। न्यायालयो मे होने वाली देरी यहाँ नही होती। यहाँ अधिक देर प्रतीक्षा नही करनी पड़ती, न्याय शीघ्र ही हो जाता है।

पुनश्च, प्रशासनिक न्यायालयों मे न्याय-प्राप्ति मे अधिक व्यय नही होता। साधारण न्यायालयो मे जो भारी शुल्क वादी-प्रतिवादी को देना पड़ता है, उसकी यहाँ आवश्यकता नही होती। यहाँ नाममात्र का शुल्क देना पड़ता है और वह भी यदि वादी अभियोग मे विजयी हो जाय तो उसे लौटा दिया जाता है।

प्राशासनिक न्यायालयो के होने के कारण साधारण न्यायालयो का कार्य-भार कम हो जाता है। साधारण न्यायालयों में एकत्रित कार्य-भार पर होने वाली आलोचना को दूर करने का यह एक प्रभावशाली तरीका है।

फ्रांस में राजनीतिक दल-पद्धति (Party System in France)—फ्रांस में बहुदलीय राजनीतिक पद्धति है। तृतीय और पंचम गणतत्र मे भी ऐसा ही है। १९४६ मे प्रथम राष्ट्रीय विधान सभा का चुनाव होने के पश्चात् यह आशा की जाती थी कि राजनीतिक दलों की संख्या कम होगी। जो दल होंगे वे बड़े और अनुशासनशील होगे। राष्ट्रीय विधान सभा से बहुत से छोटे दल समाप्त हो गये थे और जिन दलो को प्रथम चुनाव मे सबसे अधिक मत प्राप्त हुए थे, उनमे यह आशा की जाती थी कि उनमें सुदृढ अनुशासनशीलता होगी। किन्तु फ्रांस की राजनीतिक दल-पद्धति मे कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नही पड़ा।

फ्रास मे बहुत से दल होने के अनेक कारण है। तुलना के रूप में फ्रांस के नागरिक राजनीति मे अंग्रेज और अमेरिकनो की अपेक्षा सिद्धान्तवादी अधिक और क्रियावादी कम है।

फ्रांस के नागरिक कट्टर व्यक्तिवादी हैं। वे दूसरों का अनुकरण करने की

अपेक्षा अपनी ही विचारधारा के अनुसार कार्य करते है। वे अपने दृष्टिकोण के सामने दल के कार्यक्रम को नही मानते। इसका परिणाम स्पष्ट है। इस प्रकार के देश मे किसी भी शक्तिशाली राजनीतिक दल-पद्धति का होना बड़ा कठिन है।

फ्रास की जनता मे मतभेद डालने वाली अनेक समस्याएँ हैं और ये समस्याएँ मौलिक है। मौलिक सिद्धान्तो पर एक-दूसरे से मतभेद हो जाने पर सभी लोग अलग-अलग दल बना लेते हैं। कुछ लोग गणतंत्रीय सरकार और दूसरे राजशाही सरकार चाहते हैं। कुछ साम्यवादी तानाशाही के प्रतिपादक हैं तो दूसरे प्रतिक्रियावादी। कुछ रोमन कैथोलिक चर्च के समर्थक है तो दूसरे धर्म-निरपेक्षता के समर्थक। अन्य देशो मे राजनीतिक दलो को वाम-पक्षीय और दक्षिण-पक्षीय दलों मे विभक्त कर सकते है किन्तु फ्रास मे राजनीतिक दल धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार पर बँटे हुए है। फ्रांस की जनता के लिए एक समझौते पर पहुँचकर छोटे-छोटे दलों से बचना सम्भव नही हो पाया है।

फ्रास मे अनेक राजनीतिक क्रान्तियाँ हुई हैं और देश में अनेक राजनीतिक दल होने का यह भी मुख्य कारण है। १७९३ की क्रान्ति मे राजशाही उखाड़ फेंकी गई और गणतन्त्रीय सरकार की स्थापना की गई। १७९९ मे नेपोलियन प्रथम काउंसल बना। १८०४ मे वह सम्राट् बन बैठा और १८१५ में इसके पतन तक सम्राट् बना रहा। यद्यपि १८१४ मे राजशाही पुनः स्थापित हुई पर १८३० मे इसे फिर उखाड़ फेंका गया और गणतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। १८३० मे पुनः राजशाही की स्थापना हुई। १८४८ मे फिर राजशाही को उखाडकर गणतन्त्र की स्थापना हुई, किन्तु १८५२ मे नेपोलियन तृतीय फिर सम्राट् बना। १८७० में फ्रांस-जर्मन युद्ध मे परास्त होने के पश्चात्, पुनः गणतन्त्र की स्थापना हुई। देश मे समय-समय पर स्थापित होने वाली सरकारो के समर्थक है और देश मे अनेक राजनीतिक दल होने का यह भी एक प्रमुख कारण है। फ्रांस का विद्रोहपूर्ण अव्यवस्थित इतिहास भी देश के अनेक दलो के साथ जुड़ा है। फ्रांस की जनता अपने मे 'वह राजनीतिक जागरूकता' नही पैदा कर सकती जो देश मे सुसंगठित शक्तिशाली राजनीतिक दलों के विकास के लिए आवश्यक है। लॉवेल के अनुसार, "प्रत्येक प्रणाली की सरकार जो फ्रांस में बनी उसके समर्थक हैं और जो अन्य किसी से समझौता नही करते। देश के मध्य वर्ग के नागरिकों और किसानो का कोई विशेष राजनीतिक विश्वास नही है और वे उस प्रत्येक सरकार का समर्थन करने के लिए उद्यत रहते हैं जो देश मे शान्ति और व्यवस्था बनाये रख सकती हो।"

फ्रांस के राजनीतिज्ञ बड़े भावुक और उत्साही है। उनकी रुचि और अरुचि दोनो ही गहरी होती हैं। राजनीति को फ्रास में 'खेल' की अपेक्षा 'युद्ध' अधिक समझा जाता है और इस प्रकार के वातावरण मे दो राजनीतिक दल-पद्धति की स्थापना बड़ी कठिन समस्या है।

फ्रास की जनसंख्या का एक बड़ा भाग गाँवो मे रहता है। ये लोग रूढ़िवादी है और राजनीति के प्रति बुरी तरह उपेक्षा रखते हैं। ये अपने और स्थानीय मामलो मे लगे रहते हैं और राजनीतिक दलो और उनके अनुशासन के प्रति उदासीन रहते हैं।

साथ कार्य करना बड़ा कठिन है। जो भी दल जिस समय चाहे मन्त्रिमण्डल छोड़ सकता है। इसमें आश्चर्य नहीं कि फ्रांस में मन्त्रिमण्डल रातों-रात बदल जाते हैं और देश की राजनीति मे उथल-पुथल मचा देते है। हम बहुधा फ्रांस में मन्त्रिमण्डलों का पतन और नये मन्त्रिमण्डलों के निर्माण की कठिनाइयों को सुनते रहते हैं।

बहुत से दलों के कारण देश का राजनीतिक वातावरण सर्वदा उग्र तथा अत्यन्त ज्वरावस्था में रहता है। देश मे निरन्तर दलबन्दी, निरन्तर व्यक्तिगत स्वार्थ, निरन्तर बदले हुए अभियोग-प्रश्न और देश में सर्वदा बना रहने वाला क्षुब्ध वातावरण छाया रहता है।

फ्रांस के मुख्य राजनीतिक दल---(१) इस समय देश में सबसे मुख्य दल साम्यवादी दल (Communist) है। इसका जन्म १९२० मे प्रजातन्त्र में फूट पड़ने पर हुआ था उस समय प्रजातन्त्र दल ने एक प्रस्ताव बहुमत से स्वीकार किया कि वे 'तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ' (Third International) में भाग लें। यह प्रस्ताव अल्पमत को नही रुचा। बहुमत ने एक अन्य दल स्थापित कर लिया जो धीरे-धीरे फ्रांस के साम्यवादी दल के रूप में आ गया। १९३६ में साम्यवादी दल के ७२ सदस्य चैम्बर ऑफ डिपुटीज मे और २ सदस्य सैनिट मे थे। संविधान सभा में प्रथम साम्यवादी दल के १५६ और द्वितीय संविधान सभा में १५० सदस्य थे। १९४६ मे जब चुनाव हुए तो साम्यवादी दल को १८२ स्थान प्राप्त हुए किन्तु १९५१ में यह संख्या केवल १०३ रह गई।

साम्यवादी दल का अन्तिम ध्येय सामाजिक क्रान्ति है। दल की चालें समय समय पर अत्यन्त अवसरापेक्षी रही है। दल ने ठोस नम्र नीतियों की सहायता की है। १९४६ में दल ने देश के उद्योग-धन्धों और देश के पुनर्गठन की माँग की। खेती को आधुनिक शैली पर लाने, जनता की खाद्य-सामग्री का प्रबन्ध और देश की ठोस आर्थिक प्रणाली की, परिवार, बालकों और वृद्धों की रक्षा, देश के स्वास्थ्य का पुनर्निर्माण, फ्रांस की नई पीढ़ी और फ्रांसीसी संस्कृति के उज्वल भविष्य, "प्रजातन्त्र की सुव्यवस्था" और शान्ति तथा सुरक्षा की माँग की। १९४७ में दल की नीति में परिवर्तन हुआ। जब कुछ उद्योगो के कर्मचारियों ने स्वतन्त्र होकर, अधिक वेतन की माँग की और हड़ताल की, उस समय साम्यवादियों ने उनका साथ दिया और उनका नेतृत्व किया। साम्यवादी दल का अधिक जोर सीधी कार्यवाही यथा हड़ताल, गुप्त षड्यन्त्र और शक्ति-प्रयोग द्वारा, सत्ता प्राप्त करने की ओर रहा है।

चतुर्थ गणतन्त्र की स्थापना के समय से साम्यवादी दल एक-चौथाई से एक-तिहाई मत प्राप्त करता रहा है। एक विशेष तथ्य यह है कि साम्यवादी दल की सदस्यता लगभग स्थिर रही है। चुनावों के आँकड़ों से पता लगता है कि साम्यवादियों ने किसी दल द्वारा प्राप्त मतो से अधिक मत प्राप्त किये हैं। दूसरी बात यह है कि साम्यवादियों के मत किसी भी अन्य दल की अपेक्षा अधिक समान रूप से वितरित होते हैं। साम्यवादी दल फ्रांस मे सबसे अधिक अनुशासनशील दल है। इसकी सर्वोच्च समिति "पोलिटिकल ब्यूरो" के नाम से पुकारी जाती है। यह ब्यूरो दस या बीस

सदस्यों के अनेक घटों से बने घेरे का केन्द्र-बिन्दु है। ये घट स्थानीय विभागों में बँटे हुए हैं और अपने-अपने विभागों की गतिविधि का निरीक्षण और संचालन करते हैं।

राष्ट्रीय विधान सभा के साम्यवादी सदस्यों को साम्यवादी आक्रमण का अग्रणी समझा जाता है। उन्हें राष्ट्रीय विधान सभा की कार्यवाही भंग करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। साम्यवादी सदस्य कभी-कभी उन विधेयकों पर, जिन्हें वे नहीं चाहते, अनिश्चित समय के लिए, विचार नहीं करने देते। फ्रांस का साम्यवादी दल रूस द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। फरवरी, १९४९ में थोर्जे ने कहा था कि फ्रांस के साम्यवादी फ्रास पर लाल सेना के आक्रमण का विरोध नहीं करेंगे। इस दल का प्रशंसनीय गुण यह है कि इस मे शक्ति, तीव्रता और आत्मविश्वास है। यह जनता को शक्ति और नेतृत्व दोनों प्रदान कर सकता है। इसकी सीधी नीति, अन्य दलों की ढिल-मिल नीति की अपेक्षा अधिक अच्छी है। साम्यवादी दल युवकों के कार्य, शक्ति और साहस का दल है। यह प्रगतिशील, अग्रणी और अनुशासनशील है। इसे अपने ध्येय का पता है और इस बात का भी ज्ञान है कि अपने लक्ष्य को किस प्रकार प्राप्त करना है।

साम्यवादी दल फ्रास मे १३ मई १९५८ की घटनाओं के विरुद्ध था। इसने लोगों को प्रदर्शन तथा हड़तालें करने के लिए कहा। वर्तमान फ्रांसीसी शासन के विरुद्ध भी इसने अपना आचार स्पष्टतः प्रकट कर दिया है। १९५८ के निर्वाचन मे इसे बहुत हानि हुई। संसद् में इसके सदस्यों की संख्या १४२ से कम होकर केवल १० रह गई। आयोगो में भी इसे प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता। राष्ट्र-परिषद् ने समाज की सेनिट मे साम्यवादियों को नियुक्त करने से इनकार कर दिया है। साम्यवादी समाचारपत्रों की संख्या तथा बिक्री में भी कुछ कमी हो गई है।

(२) फ्रांस का दूसरा प्रमुख दल समाजवादी दल (Socialist Party) है। १८७९ में इसकी स्थापना हुई थी। १९०५ से इस दल ने अपने को संयुक्त समाजवादी दल (Unified Socialist Party) के नाम से घोषित किया। इसकी नीति "क्रमशः समाजवाद" (Evolutionary Socialism) थी। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जब साम्यवादियों का इस दल मे बहुमत हो गया, तो समाजवादी इससे अलग हो गए। १९३६ में ब्लम के नेतृत्व मे दल ने सत्ता प्राप्त की।

१९५१ के निर्वाचन में समाजवादी दल ने राष्ट्र-परिषद् में १०३ स्थानो पर अधिकार कर लिया। १९५५ तक दल की शक्ति क्रमशः कम होती गई। लेकिन उस समय से चतुर्थ लोकतन्त्र के अन्त तक इसकी शक्ति फिर से बढती गई।

चतुर्थ लोकतन्त्र के काल मे इस दल को असंख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। साम्यवादी दल के विरुद्ध इसे कारखानों के कर्मचारियों के मतों के लिये मुकाबला करना पड़ा। वह शासकीय वर्ग की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थी क्योंकि इस समय इसकी रचना दल के अन्दर सभी उपवर्गों को स्थान देने के लिए की गई थी। जब १९४६ में श्री मोलेट मुख्य-सचिव बने तो उन्होंने दल को अनुशासित निर्णायक का रूप दिया। लेकिन इससे अल्पसंख्यक वर्ग अप्रसन्न थे क्योंकि वह दल के

यद्द मत वर्ग के जर्मनी के पुनर्शस्त्रीकरण, अल्जीरिया, जनरल डिगॉल का शासन पद के लिए निर्वाचन और संविधान विषयक विचारों से सर्वथा असहमत था। दल की अल्जीरिया नीति के तीन स्तर थे, सैनिक शान्ति, पूर्व-निर्वाचन और विचार-विमर्श। पञ्चम लोकतन्त्र के अधीन भी दल ने युद्ध-समाप्ति और सन्धि के लिए प्रयत्नों पर बल दिया है।

सितम्बर १९५८ मे अल्पसंख्यक वर्ग दल से अलग हो गया और एक स्वतन्त्र दल का निर्माण किया। लेकिन नए चुनाव मे इस नए दल के सभी उम्मीदवार पराजित हो गए। विचारो की दृष्टि से अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक वर्गों मे विशेष अन्तर नही है क्योकि दोनो ही पादरी-विरोधी और मार्क्स परम्परा के पक्ष मे हैं। लेकिन बहुसंख्यक वर्ग के विचार हैं कि जहाँ तक हो सके जनरल डिगॉल के साथ लोकतन्त्र की रक्षा और अल्जीरिया मे शान्त-स्थापना के लिए सहयोग किया जाय। विदेश नीति मे बहुसंख्यक वर्ग यूरोप के एकीकरण के पक्ष मे है। साम्यवादी दल से किसी भी रूप मे सम्बन्धित होने का यह सर्वथा विरोधी है।

(३) इन सबसे महत्त्वपूर्ण दल जो वामपक्षीय और दक्षिणपक्षीय दलो के बीच मे है उसे एम० आर० पी० (M. R. P. Movement Republicano Populaire) दल के नाम से पुकारते हैं। यह दल अपने को चुनाव मे जीतने की इच्छा नही रखता ऐसा कहता है और इसी कारण यह अपने को Movement अर्थात् एक "आन्दोलन" कहता है। इसका ध्येय फ्रांस के राजनीतिक जीवन का कायाकल्प करना है। सिद्धान्त रूप से यह दल उदार-पूँजीवाद और सामूहिक-साम्यवाद दोनो के विरुद्ध है। यह साम्यवाद की भौतिक दार्शनिकता के विरुद्ध है और मानव के अस्तित्व और सम्मान मे विश्वास रखता है। इसका विश्वास है कि मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास, संतुलित आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो पर निर्भर है। अतः यह सुधारक नीति का समर्थक है। यह सरकार द्वारा चर्च के स्कूलो की सहायता करने के पक्ष में भी है।

एम० आर० पी० के विरोधियों का विचार है कि इस दल के कार्यक्रम को क्रियान्वित करना असम्भव है और इस कारण यह स्वतः समाप्त हो जायेगा। किन्तु अभी यह दल जीवित है और एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति रह चुका है। यह फ्रांस मे प्रजातन्त्रवाद में एक पुनर्जीवन लाने वाला तत्त्व है। इसमें बहुत से युवक सदस्य हैं जिनमें से कुछ तो विख्यात मनस्वी है। बहुत सी स्त्रियाँ भी इसकी कार्य-कर्ता हैं इसके नेता प्रसिद्ध और सच्चे है। वास्तव मे चतुर्थ गणतन्त्र का मुख्य आधार यह दल ही रहा है। १९४४ से ब्लम के पूर्ण समाजवादी मन्त्रिमण्डल को छोड़कर, इस दल ने सारी मन्त्रि-परिषदो मे भाग लिया है। शुमैन और बिदालट जैसे प्रधान मन्त्री इसी दल के सदस्य हैं। विदेश मन्त्रालय पर तो लगभग इस दल का सर्वाधिकार ही रहा है। इस दल ने कभी भी किसी मन्त्रिमण्डल को निजी फूट द्वारा नही तोड़ा। बिदालट के शब्दो मे, "यह दल आशा करता है कि यह बहुत का धुरा बनकर सेवा करता रहेगा।" यह दल प्रोटेस्टैन्ट्स, यहूदियो, कैथोलिको और स्वतन्त्र विचार वाले सभी वर्गों से सहयोग की अपील करता है।

(४) रैडिकल पार्टी फ्रांस में सबसे पुराना राजनैतिक दल है। लेकिन १६३० के पश्चात् इस का प्रभाव कम होने लगा। युद्ध के पश्चात् यह लगभग समाप्त हो चुकी थी। उसके बाद इसने फिर बल पकड़ना आरम्भ किया और १९५५ में राष्ट्र-परिषद् में इसके ७५ सदस्य थे। चतुर्थ लोकतन्त्र के १६ प्रधान मन्त्रियों मे से आठ इस दल के थे। १६५५ के बाद तीन लगातार संकटों के कारण यह फिर दुर्बल हो गई। १६५५ में श्री फारे अपने साथियो सहित दल से अलग हो गये। १९५८ में श्री मेण्डेस-फ्रास और उनके कुछ साथी दल से अलग हो गये। १९५५ के चुनाव में रैडिकल पार्टी ने लगभग ५,००,००० मत खो दिये।

(५) यू० डी० एस० आर० (Union Democratique et Socialiste de la Resistance) एक और दल है जो राजनैतिक तौर पर सिद्धान्तवादी दल से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह युद्ध के बाद ही बनाया गया था और युद्धकालीन शत्रु-विरोध आन्दोलन से उत्पन्न हुआ। राजनैतिक दृष्टि से यह अधिकाश सिद्धान्तवादियो से कुछ अधिक शासन-विरोधी है। ससद् से बाहर कभी भी यह शक्तिवान दल नही रहा है। इसे अन्य छोटे-छोटे दलो के साथ समझौतों पर निर्भर होना पड़ा है। यह महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि इसमें ऐसे-ऐसे व्यक्ति थे जैसे प्लेवें, मित्तरां और क्लीडियस पैंटि। १३ मार्च, १६५८ की घटनाओ ने दल मे फूट उत्पन्न कर दी। प्लेवें डिगॉल के पक्ष में है और मितरां डिगॉल विरोधी है।

(६) वास्तव मे डिगॉल दल सामान्य अर्थ में राजनैतिक दल नही है। डिगॉल दल केवल दो बातो पर सयुक्त है। इसके सदस्य जनरल डिगॉल के नेतृत्व को स्वीकार करते हैं और राष्ट्र के पुनर्निर्माण मे विश्वास रखते है। आर० एफ० पी (Rally of the French People) की स्थापना भी जनरल डिगॉल ने की थी। इसके सदस्य अधिकतर मध्यवर्ग के व्यक्ति थे। १६५१ के चुनाव में इस दल ने राष्ट्र-परिषद् में ११७ स्थान ग्रहण किए। लेकिन १६५२ मे लगभग ३० संसत्सदस्य इस दल को छोड़ गए। "१६५३ के नगरपालिका निर्वाचनो मे मतदाताओ की सहायता की थोडी सी कमी के पश्चात् जनरल डिगॉल ने ससदीय मंच से हटाने की घोषणा कर दी यद्यपि राजनीति से नही।"

(७) डिगॉल-पक्षी चार विभिन्न राजनैतिक विचारों के दलो के मिलने से १६५८ के चुनाव से कुछ ही सप्ताह पहिले एक नए दल यू० एन० आर० (Union for the New Republic) की स्थापना की गई। सामाजिक लोकतन्त्रवादी युद्ध-पूर्व डिगॉल दल के अवशेष थे। जिनके १६५६ में राष्ट्र-परिषद् मे २० सदस्य थे। फ्रास पुनर्निर्माण संघ (Union for French Renewal) श्री सूस्टेल द्वारा स्थापित किया गया और वास्तव में अल्जीरिया में फ्रांसीसी निवासियों के आन्दोलन की फ्रांस मे एक शाखा थी। सूस्टेल ने १३ मार्च, १६५८ की घटनाओं में एक मुख्य भाग लिया। वह एक योग्य राजनीतिज्ञ और गुणवान सुवक्ता है। पंचम लोकतन्त्र की सरकार में वह एक ऊँचे पद पर नियुक्त हैं। यू० एन० आर० के अन्य दो वर्ग है। ये हैं, डेलवेके के नेतृत्व में प्रजातन्त्रीय सभा (Republican Convention) और जनरल डिगॉल की सहायता

के लिए बनाई गई कर्मचारी समिति (Workers' Committee)। इन दो वर्गों ने भी १३ मार्च १९५८ की घटनाओं में एक मुख्य भाग लिया।

पञ्चम लोकतन्त्र के अधीन १९५८ के चुनावों में यू० एन० आर० के २०० सदस्य संसद् के लिए निर्वाचित हो गये। दल के लिए एक निश्चित नीति अपनाने और दल की एक निश्चित् व्यवस्था करने की आवश्यकता अब सामने आयी। श्री चैलेण्डो दल के मुख्य सचिव हैं। दल रूढ़िवादी न होकर एक प्रगतिवादी संस्था है। चैलेण्डों का विश्वास है कि दल का केवल एक ही कर्त्तव्य है कि जनरल डिगॉल की नीतियो को विश्वासपूर्वक कार्यान्वित करे। "जनरल डिगॉल हमारे गुप्त नेता हैं। हम सब गुप्त सहचरों की भांति हैं जो अपने सैनिक नेता के प्रति आज्ञाकारी हैं और हमारा नेता हमें अंगीकार नहीं करेगा यदि हम ठीक रूप से कार्य न करें।" "हम एक पाशिक आन्दोलन हैं और इसलिए परम्परागत रूढ़िवाद के विरोधी हैं। ......हम एक उदार दल भी है ।...... हमने कार्यपालिका (Executive) की शक्ति में वृद्धि की है, लेकिन केवल तात्त्विक स्वतन्त्रताओं की रक्षा के लिए। ......अन्त में हम एक शासन-दल है। ...... हम सरकार की सहायता करने पर बाध्य हैं, चाहे वे किसी प्रकार की हों, ताकि हम बहुसख्यकों के केन्द्र बने रहें। शायद वे शासकीय या शासन-विरोधी होंगे, लेकिन हम तो किसी भी स्थिति में नहीं होंगे।" परन्तु सूस्टेल और डेलवेके का विश्वास है कि जनरल डिगॉल के व्यक्तित्व की सर्वप्रियता का लाभ उठाते हुए दल को अपने आपको वर्तमान व्यवस्था द्वारा रचित एक जनसाधारण के दल में बदल देना चाहिए।

फ्रांस का स्थानीय शासन (Local Government in France)—फ्रांस की स्थानीय शासन-पद्धति की अनेक विशेषताएँ हैं। (१) प्रमुख विशेषता है देश का कठोर केन्द्रस्थ शासन। फ्रांस में प्रत्येक बात का केन्द्र से ही नियन्त्रण होता है। यह गृह-मन्त्री ही है जो देश के स्थानीय शासन के मामले में अन्तिम पदाधिकारी है। केन्द्रीयता फ्रांस के शासन-यन्त्र का जीवन है और इसे सर्वोच्च सत्ता बना दिया गया है। सारे अधिकार शासन के केन्द्र से ऊपर की ओर चलते है। इस पद्धति को त्रिकोण की उपमा दी जा सकती है। फ्रांस अपने शासन और सरकार के सारे पहलुओं से घोर केन्द्रस्थ गणतन्त्र है। केन्द्रीय सरकार और स्थानीय सरकारो के अधिकारों का कोई वितरण नहीं है। फ्रांस अनेक प्रदेशों का संघ नहीं है। यह एक इकाई राष्ट्र है जिसे कार्य की सुविधा के लिए बहुत से प्रदेशो मे बांट दिया गया है। स्थानीय स्वायत्त शासन की अपनी वैधानिक कोई शक्ति या अधिकार नहीं है। पेरिस में बैठा हुआ गृह-मन्त्री जरा बटन दबाता है और स्थानीय कर्मचारियो की एक भीड़ प्रीफैक्ट, उप-प्रीफैक्ट और मेयर उसकी आज्ञानुसार दौड़े चले आते है। शासन के सारे सूत्र पेरिस की ओर चलते है। फ्रांस की घोर केन्द्रीयता का फ्रांस के भूतपूर्व राष्ट्रपति पॉल डेशनेल ने इस प्रकार वर्णन किया है कि "शिखर पर हमारे यहाँ गणतन्त्र है किन्तु आधार मे एक साम्राज्य।" कहावत है कि यदि पेरिस को एक छींक आये तो सारे फ्रांस को जुकाम हो जाता है।

(२) फ्रांस की स्थानीय शासन-प्रणाली मे बहुत ही समानता है। फ्रांस में कहीं भी जाइये, सब स्थानो पर वही चुनी हुई परिषदें, वही प्रीफैक्ट और मेयर, वही स्कूल और पुलिस पद्धति, वही कर और वही कानून मिलेंगे। कुछ प्रदेश खेतहिर है तो कुछ औद्योगिक। कुछ की जनसंख्या बड़ी घनी है तो कुछ की बहुत कम। किन्तु फिर भी सब की एक सी सरकारें है। हजारों तहसीलों (Communes) मे, परस्पर आबादी, आर्थिक स्तर, सामाजिक स्तर के दृष्टिकोण से विरुद्ध होते हुए भी एक ही नमूने की सरकारें हैं। इनमें केवल एक यही अन्तर है कि जनसंख्या के आधार पर इनकी परिषदें छोटी या बड़ी होती हैं। इसका परिणाम यह है कि फ्रांस मे स्थानीय स्वायत्त, शासन चरम समानता के स्तर पर पहुंच गया है और इसमें और परीक्षण करने की आवश्यकता नही रह गई है।

(३) फ्रांस मे एक अत्यन्त उच्च श्रेणी का संगठित समुचित शासन-यन्त्र है। स्थानीय स्वायत्त शासन इससे कहीं भी पृथक् नही है। राष्ट्रीय केन्द्रीय सरकार इस पर अधिकार रखती है और लगभग पूर्णतः छाई हुई है। फ्रांस मे स्वायत्त शासन की चर्चा करना भुलावे में पडना है। शासन-सत्ता का, वैधानिक दृष्टि से कोई विभाग या बँटवारा नही है। वस्तुतः फ्रांस मे एक ही सरकार है जो मन्त्रियों तथा संसद् द्वारा पेरिस में और जिलाधिकारियों और परिषदो के माध्यम से देश के इस छोर से उस छोर तक शासन करती है। स्थानीय संस्थाओं और इनके अधिकारियों के अधिकार केवल उतने ही है, जितने कि केन्द्रीय सरकार द्वारा इन्हें कानूनों द्वारा प्रदान किए गये हैं। पेरिस मे स्थित केन्द्रीय सरकार ही सारे शासन-सूत्र को पकड़े हुए है। अनेक प्रदेश, जिले और तहसीलें एक ही मन्त्री के नीचे कार्य करते हैं और वह मन्त्री गृह-मन्त्री कहा जाता है। इंगलैंड में बहुत से मन्त्रियो को देश के स्वायत्त शासन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर नियन्त्रण करने का अधिकार है।

(४) फ्रास में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक और भी विशेषता है। शासन जनता की बहुत सेवा करता है। यह सच ही कहा जाता है कि फ्रांस में एक व्यक्ति को केवल जन्म ही लेना होता है बाकी सारे कार्य राष्ट्र की ओर से होते है। जैसे ही किसी का जन्म होता है, सरकार द्वारा नियुक्त पदाधिकारी बालक की देख-भाल करने पहुँच जाता है। जब वह थोड़ा बड़ा होता है, सरकार उसकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करती है। यदि उसे काम नही मिलता तो सरकार उसका पोषण करती है और यदि वह बिना किसी अभिभावक के मर जाता है तो सरकार उसकी अन्त्येष्टि करती है। यह अभिभावकता इस सीमा के आगे नही जा सकती।

सारा फ्रांस देश बहुत से विभागों (प्रदेशो) में बँटा हुआ है। प्रत्येक विभाग में एक परिषद् और एक प्रीफैक्ट (Prefect) विभाग अधिकारी होता है। प्रत्येक विभाग जिलों (Cantons) में विभक्त होता है। प्रत्येक जिला बहुत सी तहसीलों (Arrondissements) में विभक्त होता है। प्रत्येक तहसील (Arrondissement) मे एक उप-जिलाधिकारी (Sub-prefect) होता है। बहुत सी कम्यून (Communes) तहसील में संगठित होती है और प्रत्येक कम्यून में एक परिषद् और एक मेयर होता

विभाग (Departments)—फ्रांस में लगभग ९० विभाग हैं। एक साधारण विभाग का क्षेत्रफल २,३६३ वर्गमील होता है। गिरोन्डे (Gironde) विभाग सबसे बड़ा है और इसका मुख्य केन्द्र बोरदोकस (Bordeaux) में है और इसका क्षेत्रफल ४,१४० वर्गमील है। सबसे छोटा विभाग सीन का है, जिसका क्षेत्रफल १८५ वर्गमील है। यह विभाग क्षेत्रफल, आकार और जनसंख्या के दृष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न हैं। फ्रांस के विभागों का मानचित्र एक भूल-भूलैया का खेल प्रतीत होता है। विभागों के नाम बहुधा किसी नदी, पर्वत और अन्य भौगोलिक विशेषता पर रखे जाते हैं।

प्रत्येक विभाग की एक महापरिषद् (General Council) होती है, जिसका स्थानीय स्वायत्त शासन में बड़ा प्रभाव होता है। इन परिषदों के बहुत बड़े अधिकार, इनका बड़ा सम्मान और इनकी निर्णय करने की शक्ति नगरपालिका परिषदों से कहीं अधिक दृढ़ और संतुलित होती है। फ्रांस को इन साधारण परिषदों का एक विशेष वैधानिक स्थान है। तृतीय गणतन्त्र के एक कानून के अनुसार यह व्यवस्था की गई थी कि यदि पेरिस में वर्तमान परिस्थिति ऐसी न हो कि राष्ट्रीय विधान सभा का अधिवेशन हो सके, तो इन परिषदों के प्रतिनिधियों द्वारा एक समकक्ष विधान सभा बनाई जाय और यह तब तक कार्य करे जब तक राष्ट्रीय विधान सभा सुरक्षा के वातावरण में अपना अधिवेशन आरम्भ कर सके या नई विधान सभा का चुनाव हो। इन महापरिषदों की परिस्थिति सार्वजनिक हित और राजनीतिक गतिविधि की दृष्टि से राष्ट्रीय विधान-मण्डल और स्थानीय पालिकाओं के मध्य की है। विधान सभा के चुनावों के लिये विभाग ही चुनाव-क्षेत्र हैं और इस कारण कोई भी राजनीतिक विभाग के मामलों की उपेक्षा नहीं कर सकता। विभाग ही राजनीतिक दलों की जड़ जमाने के लिए सहायक का काम करते है। कोई भी दल विभागों में अपने दल का समर्थन और विश्वास प्राप्त किये बिना जनता का समर्थन प्राप्त करके विजयी नहीं हो सकता। महापरिषद् ही गणतन्त्र परिषद् के चुनावों के लिए चुनाव मण्डल का कार्य करती है।

महापरिषद् भिन्न-भिन्न विभागों के अनुसार आकार-प्रकार में एक-दूसरे से अलग होती है। कारण यह है कि विभाग की प्रत्येक तहसील (Canton) से महापरिषद् के लिए एक सदस्य चुना जाता है। तहसीलों की संख्या प्रत्येक विभाग में समान न होने के कारण परिषद् का आकार भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक ही है। इल्ले-एत-विलेन विभाग के ४३ और होतिस प्रौल्पेस विभाग के २४ सदस्य हैं। तृतीय श्रेणी के विभागों की महापरिषद् के बहुधा २० से ३० तक सदस्य होते हैं। द्वितीय श्रेणी के विभागों की महापरिषद् के ३० से ४० तक सदस्य होते हैं। प्रथम श्रेणी और होर्स क्लसी विभागों के लगभग ६० सदस्य होते हैं।

प्रत्येक सदस्य ६ वर्ष के लिए चुना जाता है जिनमें आधे प्रत्येक तीसरे वर्ष अवकाश प्राप्त करते हैं। महापरिषदों के चुनाव देश भर में अक्टूबर के महीने में एक ही दिन होते हैं। सदस्य के लिए २५ वर्ष की आयु का होना आवश्यक है और उसे विभाग में सम्पत्ति का स्वामी अथवा निवासी होना चाहिये। महापरिषद् की सदस्यता के एक-चौथाई सदस्यों से अधिक उस विभाग में निवास न करने वाले सदस्य नहीं

हो सकते। एक विभाग विशेष में जिन पदाधिकारियों का कार्यक्षेत्र हो, वे उस विभाग के चुनावों में भाग नही ले सकते। सदस्यता के लिए सेना के अधिकारी, न्यायाधीश, पुलिस अधिकारी, राज्य-कर्मचारी, और विभाग के कर्मचारी इत्यादि, चुनाव में भाग नही ले सकते। कोई भी व्यक्ति एक से अधिक विभाग की महापरिषदो का सदस्य नही हो सकता।

महापरिषद् एक संस्था के रूप में और प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से, सरकार की स्वेच्छाचारिता से सुरक्षित है। सिद्धान्त रूप से सरकार यदि चाहे तो महापरिषद् को भंग कर सकती है। किन्तु ऐसा करते ही उसे राष्ट्रीय विधान सभा की स्वीकृति शीघ्रातिशीघ्र लेनी पड़ती है और तुरन्त ही नये चुनावों का प्रबन्ध करना पड़ता है। १८७४ के पश्चात् किसी भी महापरिषद् को भंग नही किया गया है। साधारण रूप से, किसी भी अवसर और किन्ही भी परिस्थितियो मे महापरिषद् को भंग नहीं किया जा सकता।

सामान्य रूप से किसी सदस्य को सदस्यता से महापरिषद् इसलिए वंचित कर सकती है कि यदि वह बिना सतोषजनक कारण के महापरिषद् के सारे अधिवेशन मे अनुपस्थित रहा हो। यदि कोई सदस्य गैर-कानूनी कार्य करने अथवा अपने नियत नियमबद्ध कार्य को न करने के लिए अपराधी साबित हो तो राज्य-परिषद् उसे अपदस्य कर सकती है और एक वर्ष तक उसे चुनाव लडने से भी निकाला जा सकता है। यदि कोई सदस्य महापरिषद् के अवैध अधिवेशन में उपस्थित हो और प्रीफैक्ट की आज्ञा का उल्लंघन करे तो उस पर न्यायालय में अभियोग चलाया जा सकता है और यदि वह दोषी पाया जाय तो उसे अपदस्थ किया जा सकता है तथा उसे तीन वर्ष तक चुनाव के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है।

महापरिषद् के दो सामान्य अधिवेशन प्रत्येक वर्ष होते है। महापरिषद् का विशेष अधिवेशन मुख्य समिति की प्रार्थना पर या दो-तिहाई सदस्यो की प्रार्थना पर प्रीफैक्ट के विशेष अध्यादेश द्वारा बुलाया जा सकता है। विशेष अधिवेशन अधिक-से-अधिक १५ दिन तक चल सकता है। महापरिषद् अपनी आन्तरिक व्यवस्था और अध्यादेशो इत्यादि में पूर्णतः स्वतन्त्र है।

महापरिषद् एक वर्ष के लिए अपना अध्यक्ष स्वय चुनती है। किन्तु उसके पुनः चुने जाने पर कोई प्रतिबन्ध नही है। अध्यक्षता बहुधा एक गण्यमान्य नागरिक ही करता है। बहुत-सी महापरिषदो की अध्यक्षता फ्रांस की संसद् के सदस्य करते है। बहुत से उदीयमान राजनीतिज्ञों की इस पद को पाने की महत्त्वाकांक्षा होती है। महापरिषद् के उपाध्यक्ष और सचिव भी एक वर्ष के लिये चुने जाते है। एक बैठक के लिये इयत्ता (Quorum) सदस्यता की संख्या के आधे से एक अधिक सदस्य होता है। यद्यपि महापरिषद् का अध्यक्ष अधिवेशनों का नियन्त्रण करता है और उसे शान्ति भंग करने वाले सदस्य को निकाल देने या बन्दी बना लेने का भी अधिकार है, किन्तु प्रीफैक्ट और मुख्य सचिव को किसी भी अधिवेशन मे प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त है।

महापरिषद् के अधिकार-क्षेत्र में केवल विभागीय मामले ही नहीं अपितु
कम्यूनों के भी बहुत से मामले इसके अधिकार-क्षेत्र में हैं। सरकारी प्रशासन में भी
विभाग के क्षेत्र मे यह देख-भाल रखती है। वैधानिक रूप से केन्द्रीय प्रशासन के
विभाग स्थित कार्यालयों की इमारतों की देख-भाल और मरम्मत इत्यादि का भार
भी इन्ही पर है। कुछ प्रशासनिक कार्यों में परिषद् के सदस्य क्रियात्मक रूप से भाग
लेते है। महापरिषद् लोक-कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं के प्रबन्ध मे सरकार की प्रति-
निधि बनकर कार्य करती है। प्रीफेक्ट, उप-प्रीफेक्ट, शिक्षा सम्बन्धी अधिकारियों,
शिक्षको के प्रशिक्षण के विश्वविद्यालय, प्रादेशिक सेना कार्यालय, फौजदारी न्यायालय,
दीवानी और व्यापारिक न्यायालय और बन्दी-गृहों के प्रबन्ध का भार महापरिषद् पर
ही है। सदस्यो को केन्द्रीय प्रशासन संस्थाओं द्वारा संचालित सार्वजनिक सेवाओ मे
नियुक्त किया जाता है। केन्द्रीय प्रशासन की ओर से विभाग द्वारा संचालित सेवाओं
में लगभग सारी लोक-हित व्यवस्था आ जाती है। इस क्षेत्र में विभाग महापरिषद्
को बड़े विशद अधिकार प्राप्त है और यदि कहा जाय कि इनमें कोई रुकावट है तो
वह यह है कि इन्हे राष्ट्रीय स्तर पर प्रयुक्त व्यवस्था की सीमा मे ही चलना पड़ता है।
दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं कि महापरिषद् का शासन मे महत्वपूर्ण स्थान है। केन्द्रीय
सरकार किसी भी विभाग की अनुमति के बिना, गिरजाघरों की देख-भाल, दान से
चलने वाली सस्थाओ, शिशु-गृहों, या कृषि संघों इत्यादि को आर्थिक सहायता नही दे
सकती। इसे सभी कार्यो मे प्राथमिक निर्णय करने का अधिकार है। महापरिषद्
केन्द्रीय मन्त्रियों से सीधे मिल सकती है और अपने अध्यक्ष के माध्यम से अपने विभाग
से सम्बन्धित किसी भी कार्य या लोक-हित के कार्य का सुझाव रख सकती है। यद्यपि
यह राजनीतिक प्रस्तावो पर अपना मत प्रकट नही कर सकती तो भी आर्थिक नीति
और साधारण प्रशासन के सम्बन्ध मे प्रस्ताव रख सकती है। अर्थशास्त्र और राज-
नीतिशास्त्र के कार्य-क्षेत्र को पृथक्-पृथक् करना बड़ा ही शंकाजनक है। फ्रांस मे यह
परिपाटी है कि विभागों के सम्बन्ध की बातो के विषय में सम्बन्धित विभाग की महा-
परिषद् से केन्द्रीय सरकार को परामर्श करना पड़ता है।

महापरिषद् को ग्रामों की कुछ सार्वजनिक सेवाओं पर अधिकार है। सेवा-
क्षेत्र में जनता को आर्थिक सहायता देने में इसके अधिकार बहुत ही विस्तृत है। यह
विभाग मे स्थित औषधालयो में औषधियों के दाम नियत करती है। सार्वजनिक सेवाओ
को आर्थिक सहायता देने के कार्य का महापरिषद् ही नियन्त्रण और प्रबन्ध करती है।

अन्तर्विभागीय महत्त्व के राज्यपथों की देख-भाल और मरम्मत इत्यादि के लिए
सड़को के टुकड़ों का बँटवारा भी यही करती है। इनका ग्राम पंचायतों पर बड़ा
प्रभाव है। एक से अधिक ग्राम से सम्बन्ध रखने वाली सभी समस्याओ पर इसका
पूर्ण नियन्त्रण है और इन मामलो में इसका निर्णय अन्तिम है। महापरिषद् की
सदस्यता के चुनाव राजनीतिक दलो और व्यक्तियो का ही संघर्ष नही अपितु विभाग
में स्थित स्थानीय संस्थाओं के प्रभाव की परस्पर टक्कर होती है।

महापरिषद् के अधिकार ग्राम पंचायतो को छोड़कर स्वयं विभाग के अन्दर

बड़े विशाल हैं। यह विभाग की नीति और इसकी आर्थिक व्यवस्था का नियन्त्रण करती करती है। प्रीफैक्ट इसका प्रतिनिधि होने के नाते आय-व्यय लेखा (Budget) बना सकता है किन्तु यह महापरिषद् का अधिकार है कि उसे स्वीकार करे अथवा नहीं। १८७१ के एक कानून मे २२ विषय ऐसे हैं जिनमें महापरिषद् को सम्पूर्ण और निर्बाध अधिकार है। इनमें महत्त्वपूर्ण विषय, विभाग की अचल सम्पत्ति, विभागीय राजपथ, विभाग के धन से सहायता पाने वाली सारी योजनायें, सार्वजनिक हित के कार्य, अनेक जन-सेवायें, जन-शिक्षा सम्बन्धी कई योजनायें तथा विभाग के अभियोग झगड़ों का निपटारा इत्यादि है।

महापरिषद् विभाग के आय और व्यय को दो प्रकार से नियन्त्रित करती है। जब प्रीफैक्ट आगामी वर्ष का आय-व्यय का लेखा प्रस्तुत करता है, महापरिषद् का अधिकार है कि इस विषय मे जो चाहे सूचना प्राप्त कर सकती है। आय-व्यय के लेखे एक-एक अध्याय पर विचार करके, यदि महापरिषद् चाहे तो इसमे सशोधन कर सकती है। यह किसी भी मद के प्रस्तावित व्यय को घटा-बढ़ा सकती है। एक मद से दूसरी मद को उधार दे सकती है। महापरिषद् की कार्यवाही पर भी बहुत-सा नियन्त्रण है। महापरिषद् द्वारा स्वीकृत आय-व्यय-लेखे को गृह-मन्त्री स्वीकार करता है। कुछ विशेष प्रकार के व्यय की मदो को आय-व्यय-लेखा मे अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है। कुछ करो को विभाग के उच्च अधिकारियो की स्पष्ट अनुमति द्वारा ही लागू किया जाता है। गृह-मन्त्री किसी भी व्यय की मद को लेखे से यह कहकर निकाल सकता है कि महापरिषद् ने अपने अधिकारों का अतिक्रमण किया है, आवश्यक व्यय के लिए पर्याप्त व्यवस्था नही की गई है या प्रस्तावित योजना को क्रियान्वित नही किया जा सकता। यदि मन्त्री के निर्णय में कोई कानूनी सिद्धान्त की बात होती है, तो इसके विरुद्ध राज्य-परिषद् को अपील की जा सकती है। प्रीफैक्ट का महापरिषद् पर केवल इतना ही अधिकार है कि वह महापरिषद् के निर्णयो पर कानूनी आधार पर आपत्ति कर सकता है। प्रीफैक्ट महापरिषद् के निर्णयों को, राज्य परिषद् के सम्मुख, अवैधानिक होने के कारण चुनौती दे सकता है। राज्य-परिषद् और मन्त्रालयों को भी, कर लगाने या पूँजी प्राप्त करने सम्बन्धी मामलों के तरीकों पर किये गये निर्णयों पर नियन्त्रण करने का अधिकार है। उन ऋणो के विषय में जिनकी उगाही ३० वर्ष की अवधि से अधिक हो या जिनकी राशि नियुक्त राशि से अधिक हो, मन्त्री की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। कुछ विशेष प्रकार के स्थानीय करो को लगाने के लिए भी राज्य-परिषद् की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

प्रीफैक्ट (Prefect)—प्रीफैक्ट विभाग का प्रमुख कार्यकर्त्ता है। इसे राष्ट्रपति गृह-मन्त्री के सुझाव पर नियुक्त करता है और इसे किसी भी समय पदच्युत तथा स्थानान्तरित किया जा सकता है। वास्तव मे इस पद की पूर्ति प्रशासन के किसी निम्न कर्मचारी को उन्नति देकर की जाती है। तहसीलों के उप-प्रीफैक्टो मे से, क्रमशः कम महत्त्वपूर्ण विभागो के प्रीफैक्ट नियुक्त किये जाते हैं। उसके पश्चात् उन्हे उन्नति देकर एक विभाग से दूसरे विभाग में भेजा जाता है। किन्तु यदि गृह-मन्त्री चाहे तो

किसी भी स्थान से अपना मनचाहा प्रीफैक्ट चुन सकता है। उसके चुनाव की सीमा पर कोई रोक-टोक नहीं है। इस पद के लिए कोई विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं किन्तु गृहमन्त्री को इसकी नियुक्ति करते समय यह देखना पड़ता है कि नियुक्त किया जाने वाला व्यक्ति योग्य, चतुर और सरकार की नीति को कार्य रूप में परिणत कर सकने वाला है। एक प्रीफैक्ट को राष्ट्रपति पदच्युत कर सकता है किन्तु इस प्रकार के अवसर अत्यन्त न्यून होते हैं। जब सरकार एक प्रीफैक्ट को उसके स्थान से हटाना चाहती है तो उसे किसी दूसरे पद पर बदल देती है।

प्रीफैक्ट के पास पुलिस के विशाल अधिकार हैं और वह अपने विभाग में, जनता में व्यवस्था, जनता के चरित्र और सामाजिक स्वच्छता के लिए उत्तरदायी है। वह राष्ट्र की सुरक्षा के लिए भी उत्तरदायी है। उसे देश के कानूनों को भी कार्य-रूप में परिणत करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में उसे अपने विभाग में अध्यादेश प्रसारित करने का अधिकार है। विभाग की सीमा में वह पुलिस का सर्वोच्च अधिकारी है। यद्यपि गणवेशित (uniformed) पुलिस प्रादेशिक रूप में नियुक्त की जाती है तब भी अपने विभाग में वह पुलिस की गतिविधि का संचालन करता है। सारी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रादेशिक राजधानी को भेजी जाने से पहले, प्रीफैक्ट के पास भेजी जाती है। गुप्तचर विभाग द्वारा नियुक्त गुप्तचरों की गतिविधि सम्बन्धी बातें इसके कार्यक्षेत्र से बाहर हैं, किन्तु सौजन्य के नाते उसे इनकी सूचना प्राप्त होती रहती है।

यदि उसे विश्वास हो जाय कि राष्ट्र में आन्तरिक अथवा बाहरी रूप से संकट उत्पन्न हो गया है तो बिना अधिकार पत्र (Warrant) के किसी भी व्यक्ति को बन्दी करने, तलाशी लेने और किसी भी प्रमाण-पत्र को पकड़ने का पूरा अधिकार है। आलोचना के कारण इन अधिकारों को बड़े ध्यान से प्रयुक्त किया जाता है जिससे नागरिकों की स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके। इन अधिकारों का प्रयोग करने के २४ घण्टों के भीतर ही उसे विभाग में स्थित अभियोग लेखक (Public Prosecutor) और मुख्य सहकारी वकील (Attorney) को सूचित करना पड़ता है। यदि प्रीफैक्ट किसी पुलिस अधिकारी को इन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए आज्ञा दे तो वह अधिकारी राज्य के न्यायाधीश को इसकी तुरन्त ही सूचना देने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है।

प्रीफैक्ट कम्यून और तहसीलों के मामले में भी नियन्त्रण रखता है। वह कम्यूनों का संरक्षक नियन्त्रण अधिकारी है। वह नगरपालिकाओं के मेयरों को घोर कर्त्तव्य-भ्रष्टता के आरोप में एक मास के लिए अनुलम्बित कर सकता है। वह कम्यूनों के आय-व्यय लेखे को स्वीकार करता है यदि कम्यूनों के आय-व्यय के लेखे में कोई आवश्यक रकम छूट जाय तो वह उसे लेखे में लगा सकता है। वह मेयर द्वारा प्रसारित पुलिस अधिनियम को रद्द कर सकता है। स्थानीय शासन के दृष्टिकोण से प्रीफैक्ट के अधिकार एक समुचित, एकत्रित अधिकार-कोष हैं।

प्रीफैक्ट विभाग की सभी प्रशासनिक और औद्योगिक सेवाओं का संचालन

करता है। इस सम्बन्ध में वह अनेक निम्न श्रेणी के कर्मचारियों की नियुक्ति करता है और उनके चरित्र और अनुशासन के लिए उत्तरदायी होता है। आर्थिक मामलों मे वह सरकारी लेखा निरीक्षक और संरक्षक है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्र कोष के धन का व्यय केवल उसकी आज्ञा से ही हो सकता है। विभाग और केन्द्र के बीच अभियोगों को छोड़कर, विभाग के अन्य अभियोगों मे वह इसका प्रतिनिधित्व करता है। विभाग और केन्द्र के बीच के अभियोगो में वह केन्द्र का प्रतिनिधित्व करता है और विभाग का मुख्य सचिव विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। विभाग में दिये गये सारे केन्द्रीय ठेके प्रीफैक्ट की स्वीकृति से ही दिए जाते हैं।

विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों का सूचना प्राप्ति और वितरण का स्रोत प्रीफैक्ट ही होता है। उदाहरणतः यदि वित्त मन्त्री किसी नये ऋण की उगाही के विषय में जनता की प्रतिक्रिया जानना चाहे तो वह प्रीफैक्ट से इस विषय में सूचना-पत्र प्राप्त करेगा। यदि किसी उद्योग मे हड़ताल हो जाय तो प्रीफैक्ट को जाँच करके अपनी टिप्पणी देनी पड़ती है। यह सत्य है कि सूचना निम्न कर्मचारी ही प्राप्त करते है किन्तु प्रीफैक्ट को अपने विचार सूचना पर देने होते है। जो भी महत्त्वपूर्ण पत्र इत्यादि प्रीफैक्ट की ओर से अथवा उसके हस्ताक्षर से भेजे जाते है उनका उत्तरदायित्व उस पर ही होता है। सरकार यह समझती है कि प्रीफैक्ट उसके अधिकृत विभाग के आन्तरिक मामलों मे देश का सबसे अधिक जानकार व्यक्ति है और यदि उसे जानकारी नही है तो वह प्रीफैक्ट होने योग्य नही है और उसे इस पद पर नही रहना चाहिये।

प्रीफैक्ट महापरिषद् के कार्यमण्डल का मुख्य अधिकारी है। वह महापरिषद् के निर्णयो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए उत्तरदायी है। प्रीफैक्ट और महापरिषद् के बीच झगड़ा होने की स्थिति में साधारणतः वह अपनी मनचाही कर सकता है किन्तु यदि परिषद् हठ पकड़ जाय तो प्रीफैक्ट को झुकना पड़ता है। कहा जाता है "वोर" के प्रीफैक्ट ने केन्द्रीय मन्त्रालय के आदेशानुसार महापरिषद् को कठोरता से कानून का पालन करने पर बाध्य किया था, परिणामतः प्रीफैक्ट और महापरिषद् के बीच झगड़ा हो गया। महापरिषद् ने प्रीफैक्ट पर आरोप लगाया कि वह अविश्वसनीय रीति से कार्य करता है और आज्ञा उल्लंघन करने वाला सहकारी है। इस झगड़े का परिणाम यह हुआ कि इस प्रीफैक्ट को वहाँ से बदल दिया गया और दूसरा व्यक्ति उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। स्पष्ट है कि एक मन्त्री का समर्थन प्राप्त करने पर भी एक प्रीफैक्ट को विरोधी और दृढ़प्रतिज्ञ महापरिषद् अत्यन्त अवांछनीय परिस्थिति में फँसा देती है। इस प्रकार की परिस्थिति को शक्तिशाली और शासन में चतुर प्रीफैक्ट ही संभाल सकता है।

एक प्रीफैक्ट को कभी-कभी विभिन्न मन्त्रालयो की सेवाओ के विषय में निर्णय देने के लिये कहा जाता है। उसे दो विरोधी नीतियों के झगड़ों को सुलझाने के लिए भी कहा जाता है और उसे अपना कार्य इस प्रकार करना पड़ता है कि मन्त्रालयो मे कोई गड़बड़ उत्पन्न न हो। उसे उन अधिकारियों को जिनकी प्रार्थना मन्त्रालयो द्वारा

ठुकरा दी गई हो, सान्त्वना भी देनी पड़ती है। यदि पड़ौसी कम्यूनों में झगड़ा हो तो उसे मनोमालिन्य उत्पन्न किये बिना झगड़ो को मध्यस्थता द्वारा सुलझाना पड़ता है।

प्रीफैक्ट की स्थिति दुहरी होती है। वह केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि तथा विभाग का मुख्य अधिकारी भी है। इन दोनों के कारण उसे भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों का पालन करना और अधिकार उपयोग मे लाने होते हैं। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के कारण उसे अपने विभाग मे केन्द्रीय सरकार के कानून और आज्ञाएँ क्रियान्वित करनी होती हैं। वह भिन्न सार्वजनिक सेवाओं का, जहाँ तक इनसे उसके विभाग का सम्बन्ध होता है, संरक्षक होता है। वह राजपथों, पुलों, बन्दीगृहों, निर्धन निकेतनों, औषधालयों इत्यादि का संचालक होता है। उसे सेना मे भर्ती की भी देखभाल करनी पड़ती है। वह जनगणना का भी संचालक है। उसे विभाग मे शान्ति और व्यवस्था बनाए रखनी पड़ती है। उसे गुप्त सूचनाओ की काट-छांट (Censorship) करनी पड़ती है। वह विद्यालयों के अध्यापकों, पोस्ट मास्टरों, डाकियों, कर वसूल करने वालों, स्वच्छता-निरीक्षकों इत्यादि-इत्यादि अनेक कर्मचारियो की नियुक्ति करता है। उसे एक कार्यशील राजनीतिज्ञ का कार्य भी करना पड़ता है। सच कहा है कि प्रीफैक्ट की सबसे पहली योग्यता यह है कि वह मन्त्रियो के समर्थको को जनता से मत प्राप्त कराने की क्षमता रखता हो। प्रत्येक चुनाव मे उसका हाथ अप्रत्यक्ष रूप से काम करता है और वह मत प्राप्त कराने मे कोई आध्यात्मिक बन्धन नही मानता। यदि उसके द्वारा समर्थित उम्मीदवार जीत जाता है तो उसकी पदोन्नति होती है अन्यथा उसकी अवनति हो जाती है। इसका आशय यह है कि उसे दूसरे छोटे विभाग में बदल दिया जायेगा। यद्यपि प्रीफैक्ट का राजनीति में दाँव-पेच खेलना एक निन्दनीय बात है तो भी यह प्रीफैक्ट का एक साधारण कर्त्तव्य समझा जाता है।

विभाग का एक मुख्य अधिकारी होने के नाते वह महापरिषद् की सारी कार्यवाही तैयार करता है। उसे विभाग के हित का ध्यान रखने के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार के आदेशों का भी पालन करना पड़ता है। वास्तव में यह एक बड़ा कठिन कार्य है।

फ्रांस मे प्रीफैक्ट का पद बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। स्थानीय प्रशासन की सारी प्रणाली इसे धुरी बनाकर घूमती है। पेरिस में मन्त्रिमण्डल बनते और बिगड़ते हैं, मन्त्री आते हैं और चले जाते हैं, किन्तु यह प्रीफैक्ट ही है जो अपने सहकारियों के साथ सारे शासन यन्त्र को गतिशील रखता है। फ्रांस भले ही गणतन्त्र से राजशाही प्रणाली अपना ले किन्तु इसका एक साधारण नागरिक पर कुछ भी प्रभाव नही पड़ता। किन्तु यदि देश के ९० प्रीफैक्ट अपदस्थ कर दिए जायें तो देश की नींव हिल जाय। प्रीफैक्ट जनता का छोटा पिता है। वह प्रशासनिक यंत्रिक प्रणाली के बिना जोड़ के जाल का केन्द्र-विन्दु है। वह विधाता की तरह सर्वत्र विराजमान है। उसके कार्य भी प्रभु के कार्यों की तरह गोपनीय हैं। हिनोटैक्स के अनुसार, "प्रीफैक्ट सरकार का प्रतिनिधि और राजनीतिक दल का खिलौना होते हुए भी यह अपने प्रशासित देश का भी प्रतिनिधि होता है। उसे निष्पक्ष रहना चाहिए, उसमें कठिनाइयों और झगड़ों को जाँचने की, उन्हें

समाप्त करने या शान्त करने की शक्ति, कार्य को शीघ्रता और सरलता से करने की क्षमता, उच्च स्तर की निर्णय-बुद्धि, कुशाग्रता और गम्भीरता होनी चाहिए। किन्तु उसे एक निःसंकोच और भला पुरुष, सबकी पहुँच के निकट, स्पष्ट वक्ता, अभिमानरहित और सबकी बात सुन सकने वाला होना चाहिए। उसमें अपने चारो ओर गरजती हुई विरोधी सम्मतियों, स्वार्थों और ईर्ष्याओं को ध्यान से समझकर समझौता कराने की क्षमता होनी चाहिये।" यदि वास्तव में ऐसी ही अवस्था हो तो प्रीफैक्ट का एक महामानव होना आवश्यक है।

कैन्टन (Cantons)—कैन्टन कम्यूनों का प्रशासन के दृष्टिकोण से बनाया गया एक समूह होता है। अनुपात से प्रत्येक विभाग में लगभग ३५ कैन्टन होते हैं। कोर्सिका और नोर्ड के विभागो मे ६० से अधिक कैन्टन हैं। बैलफोर्ट और पारेनीस ओरियन्तेलस विभागो मे २० से भी कम कैन्टन हैं। कैन्टनों के आधार पर निर्मित केवल सेना और न्यायालय प्रशासन ही है। किन्तु विभाग मे स्थानीय स्वायत्त शासन के चुनाव-क्षेत्र भी कैन्टन ही हैं।

अरण्डीज़मां (Arrondissements)—अरण्डीज़मां फ्रांस के स्थानीय प्रशासन में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु यह केवल प्रशासनिक उप-विभाग है जिनके प्रतिनिधि या पार्षद् नहीं चुने जाते। अनुपात से एक विभाग मे तीन या चार अरण्डीज़मा होते हैं। बेलफोर्ट के विभाग मे कोई अरण्डीज़मा नहीं है। रोन के विभाग के केवल दो अरण्डीज़मां हैं। बासरीन विभाग के आठ अरण्डीज़मा हैं। प्रत्येक अरण्डीज़मां की सीमा में लगभग १०० से १५० कम्यूनें एक लाख जनसख्या वाली होती हैं। विभाग की और निकटस्थ नगरो की राजधानी सदा अरण्डीज़मा ही होती है। अरण्डीज़मा की राजधानी विभाग की राजधानी से कम महत्त्वपूर्ण नगर में होती है। ये चार श्रेणियों मे बाँटे गये हैं और इनकी श्रेणियाँ विभाग में इन नगरों की क्रमशः महत्ता की द्योतक है। अरण्डीज़माओं के नाम नहीं होते; इन्हे तो संख्या से जाना जाता है। प्रत्येक अरण्डीज़मां विभाग का सूक्ष्म रूप होता है।

उप-प्रीफैक्ट इसका मुख्य अधिकारी होता है। यह केवल ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा प्रीफैक्ट सूचना प्राप्त करता है और अपनी आज्ञा प्रसारित करता है। इसमें आश्चर्य नहीं की उप-प्रीफैक्ट को प्रीफैक्ट की पत्र-मजूषा (Letter box) कहा जाता है। कोई भी प्री-फैक्ट अपने कार्यों पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण नहीं कर सकता। परिणामतः उसे सहायता के लिए उप-प्रीफैक्ट पर निर्भर होना पड़ता है। उप-प्रीफैक्ट को प्रशासनिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं अतः वे अत्यन्त व्यस्त रहते हैं। वे उनको सौंपे गए कार्यों के प्रति उत्तरदायी है। उप-प्रीफैक्ट मन्त्रिमण्डल के हाथ की अँगुलियाँ ही नहीं अपितु नेत्र और कान भी हैं। वे सभी राजनीतिक बैठको में यह देखने जाते हैं कि वे लोग क्या करते हैं। वे प्रीफैक्ट को अपने क्षेत्र मे हुए सभी मामलो में पूर्ण रूप से सूचित करते हैं। यदि उप-प्रीफैक्ट अपना कार्य दक्षता से करता है तो उसकी प्रीफैक्ट के पद पर उन्नति की पूर्ण आशा रहती है।

कम्यूनें (Communes)—फ्रांस में कम्यून ही केवल ऐसे स्वायत्त शासन के क्षेत्र

है जिनका इतिहास फ्रांस की क्रान्ति के समय से जुड़ा हुआ है। फ्रांस की नगरपालिका संहिता में कम्यून की परिभाषा इन शब्दों में की गयी है—"कम्यूनें, भौगोलिक क्षेत्र के वे टुकड़े हैं जिनकी सीमायें १७८६ की घोषणा में नियुक्त की गई हैं अथवा जिन्हें उसके पश्चात् किसी कानून या घोषणा द्वारा मान्यता दी गई है।" कम्यून शब्द का प्रयोग एक शहर, कस्बे, ग्राम या बस्ती के लिये किया जाता है। कम्यून कोई भी छोटा अथवा बड़ा नगर हो सकता है। मार्सलीज भी एक कम्यून है और उसी प्रकार छोटो-मोरे भी। फ्रांस में ग्राम्य और नागरिक शासन-व्यवस्थाओं में कोई अन्तर नहीं है। फ्रांस में लगभग ३८,००० कम्यूनें हैं।

फ्रांस के प्रत्येक कम्यून में एक नगरपालिका परिषद् (Counsel Municipal) है जिसे कम्यून के निवासी चुनते हैं। जिन कम्यूनों की जनसंख्या ६,००० से अधिक होती है उनमें चुनाव राजनीतिक दलों की सूची के अनुसार होता है। किन्तु मतदाताओं को एक उम्मीदवार से दूसरे उम्मीदवार को अपने मत की बदली करने का अधिकार है। कम्यूनों के सदस्यों की संख्या कानून द्वारा नियुक्त है और सबसे छोटी कम्यून के ११ सदस्यों से लेकर ६०,००० से अधिक जनसंख्या वाली बड़ी कम्यूनों के ३७ सदस्य तक होते हैं। लियोन जैसे बड़े नगरों की कम्यूनों को कई उप-विभागों में बाँट दिया जाता है और ये विभाग (Ward) लगभग ६० सदस्य चुनते हैं।

कोई भी नागरिक जिसकी आयु २१ वर्ष की हो और जो कम्यून में सम्पत्ति का स्वामी हो या जो इसमें निवास करता हो, इस चुनाव में उम्मीदवार खड़ा हो सकता है और मतदान कर सकता है। कम्यूनों के चुनाव प्रत्येक छः वर्ष बाद, मई के महीने में सारे फ्रांस में एक ही दिन होते हैं। विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, बीच में चुनाव नहीं होते।

नगरपालिका परिषद् की वर्ष में कम-से कम चार बार बैठकें होती हैं। प्रत्येक अधिवेशन लगभग १५ दिन चलता है। आवश्यकता पड़ने पर मेयर विशेष अधिवेशन बुला सकता है। प्रीफैक्ट और उप-प्रीफैक्ट भी विशेष अधिवेशन बुला सकते हैं और इस प्रकार की बैठकें बहुधा होती रहती है।

नगरपालिका परिषद् के बहुत अधिकार हैं। नगरपालिका संहिता के अनुसार "नगरपालिका परिषदें परामर्श द्वारा कम्यूनों के मामलों का संचालन करती है।" बहुत से स्थानीय मामले, जैसे गलियों की मरम्मत, बाग, पानी, अग्नि, रक्षा-दल, इत्यादि का प्रबन्ध करने की इसे पूर्ण स्वतन्त्रता है। किन्तु आर्थिक, पुलिस, शिक्षा इत्यादि विषयों में नगरपालिका परिषदों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। सम्पत्ति के क्रय-विक्रय के मामलों में नगरपालिका का निर्णय बिना प्रीफैक्ट या उप-प्रीफैक्ट की स्वीकृति पूर्ण नहीं होता। इसके बहुत से अध्यादेश प्रीफैक्ट और उप-प्रीफैक्ट द्वारा रद्द कर दिये जाते हैं। प्रत्येक कम्यून का आय-व्यय लेखा प्रीफैक्ट या उप-प्रीफैक्ट द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए। आपत्कालिक स्थिति में नगरपालिका परिषद् को राष्ट्रपति भंग कर सकता है। किन्तु साधारणतः नगरपालिकाएँ बिना उच्च अधिकारियों के हस्तक्षेप के अपना कार्य निश्चिन्तता से करती रहती हैं। कम्यूनों के

सम्बन्ध में किसी भी नीति को अपनाने से पहले केन्द्रीय सरकार नगरपालिकाओं की सम्मति मांगती है।

नगरपालिकाओं का प्रथम कार्य मेयर का चुनाव होता है। उसे नगरपालिका का एक सदस्य होना आवश्यक है और वह छ वर्ष के लिए चुना जाता है। मेयर बहुधा ऐसा व्यक्ति होता है जो कई अवधियों में नगरपालिका परिषद् का सदस्य रह चुका होता है और एक माननीय नेता होता है। मेयर पद के लिए दूसरी बार चुना जाना एक साधारण परिपाटी है। बड़े कम्यूनों में मेयर राजनीतिक दल का नेता और प्रमुख राजनीतिज्ञ होता है। नगरपालिका परिषदें एक या एक से अधिक उप-मेयर ६ वर्ष के लिए चुनती हैं। उप-मेयरों की संख्या कम्यून के आकार पर निर्भर है। बड़े कम्यूनों में अधिक और छोटे कम्यूनों मे कम उप-मेयर होते है।

प्रीफैक्ट की तरह मेयरी का पद भी दुहरी स्थिति वाला होता है। एक मेयर को वही करना पड़ता है जिसका प्रीफैक्ट या उप-प्रीफैक्ट आदेश देते हैं। वे कम्यूनों के उच्च अधिकारियों और कम्यून निवासियों, दोनों के प्रतिनिधि होते हैं। कम्यून का नेता होने के नाते उसे कम्यून का दृष्टिकोण केन्द्रीय अधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत करना पड़ता है। उसकी स्थिति दोनों के बीच एक मध्यस्थ जैसी है।

कम्यून का मुख्य अधिकारी होने के कारण उसका उत्तरदायित्व त्रिपक्षीय है। प्रथम उसे नगरपालिका परिषद् के निर्णयों को क्रियान्वित करना पडता है और इस विषय में अपनी कार्य-शैली के लिए वह नगरपालिका के प्रति उत्तरदायी है। दूसरे, कानून ने उसे कम्यून की सुरक्षा, नैतिकता और स्वच्छता के लिए उत्तरदायी बनाया है। तीसरे, उसे सरकार द्वारा सौंपे गए प्रशासनिक कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है, जो साधारणतः सूचना प्राप्त करना, इनकी टिप्पणी तैयार करना, भिन्न-भिन्न खाते तैयार करना और आंकड़े एकत्र करना इत्यादि हैं। पिछले दो कार्यों में नगरपालिका-परिषद् हस्तक्षेप नही कर सकती और वह प्रीफैक्ट के अधिकार में अपना कार्य करता है।

मेयर, नगरपालिका परिषद् के प्रति इसके निर्णयों को क्रियान्वित करने और इसका दृष्टिकोण न्यायालयों और सरकार के सम्मुख रखने के लिए उत्तरदायी है। वह कम्यून के कर्मचारियों के अनुशासन और कुशलता के लिए उत्तरदायी है। वह अपनी ओर से भी कम्यून की सुरक्षा और सम्पत्ति के हित के लिए कुछ भी कर सकता है। कम्यून से कर और धन की उगाही के लिए वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है।

मेयर कम्यून का आय-व्यय लेखा तैयार करता है। लेखे में किसी मद को रखने और छोड़ने मे उसका अपना व्यक्तिगत उत्तरदायित्व है। नगरपालिका परिषद् को आय-व्यय लेखे को स्वीकार, संशोधन और अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार है। इस विषय में मेयर का अपना सम्मान और व्यक्तित्व ही इस मसविदे को महत्त्व प्रदान करता है। आय-व्यय लेख स्वीकृत किये जाने के पश्चात्, कोष मे से व्यय के लिए अनु-

वितरण का उत्तरदायित्व भी उसका है। उसे कम्यून के लिए वित्त खाते की शुद्धता और नियम पूर्ति के लिए उचित प्रबन्ध करना पड़ता है। कब और कौन से कार्य के लिए धन का व्यय किया जाय, इसका निर्णय वह स्वयं ही करता है।

अपने कर्त्तव्य-पालन में मेयर को पर्याप्त स्वाधिकार प्राप्त है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि वह नगरपालिका परिषद् के आदेशों का उल्लंघन भी कर सकता है। यदि वह ऐसा करे तो परिषद् सीधी प्रीफैक्ट से मेयर द्वारा अपने आदेशानुसार कार्य कराने की अपील कर सकती है। बहुत से मामलो में मेयर द्वारा आदेश पालन कराने के लिए यह पर्याप्त होता है। किन्तु यदि मेयर अपने अधिकारों के सीमोल्लंघन की अनधिकार चेष्टा करे तो नगरपालिका परिषद् कानून की शरण लेती है और वह मेयर के कार्यों को अवैधानिक बता कर चुनौती दे सकती है। प्रशासनिक न्यायालय इस विषय मे निर्णय देने के लिए नियुक्त है। किन्तु साधारणतः न्यायालय में जाने की आवश्यकता ही नही पड़ती। नगरपालिका परिषद् मेयर की स्थिति को कठिनाई मे डाल देती है और इस प्रकार की परिस्थिति बना दी जाती है कि मेयर के लिए पद त्याग करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नही रह जाता।

१८८४ के कानून द्वारा मेयर को कम्यून में जन-सुरक्षा, नैतिकता और स्वच्छता का उत्तरदायी ठहराया गया था। इस सम्बन्ध मे उसे अध्यादेश, जिनका कानूनी महत्त्व सरकार के कानून जैसा ही होता था, लागू करने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार के अध्यादेशो को प्रीफैक्ट या उप-प्रीफैक्ट द्वारा स्वीकार करा लिया जाता है, किन्तु प्रीफैक्ट इसका निर्णय स्वेच्छा से करता है। राजपथ की सुरक्षा, शान्ति, हिंसापूर्ण दंगो के दमन, जनता की विपत्तियों की रोक, पागल मनुष्यों और पशुओ को पकड़ना, मृतकों का सम्मान सहित अन्तिम संस्कार, कब्रिस्तानो की मरम्मत और देख भाल, नाप-तौल का निरीक्षण और विक्रय के लिए आई हुई वस्तुओ की स्वच्छता के लिए मेयर उत्तरदायी है। प्रथम विश्व-युद्ध के दिनो में, मेयरो को अपनी कम्यून के निवासियों के भोजन और निवास और कम्यून में आये हुए शरणार्थियो की देख-भाल का उत्तरदायित्व स्वतः ही सँभालना पड़ता था। फोन्टेन-दा-वैकलुस का मेयर नगरपालिका परिषद् के साम्यवादी सदस्यो के व्यवहार से इतना विचलित हो गया था कि उसने कम्यून की सीमा मे अणु-बम का प्रयोग या ले जाना बन्द करने का अध्यादेश लागू किया और पुलिस के उच्चाधिकारी को आज्ञा दी कि वह इस अध्यादेश का पालन कराये। इस बात का निर्णय, कि कोई विशेष अध्यादेश मेयर की शक्ति में भी है अथवा नहीं, राज्य परिषद् करती है।

Suggested Readings

Chapman, Brian —The Prefects & Provincial France, 1954.
Chapman, Brian —French Local Government, 1952.
Cole, Taylor (Ed.) —European Political Systems, 1954.
Finer, H. —Governments of Greater European Powers, 1956.
uel, F. —France under the Fourth Republic, 1952.

Lidderdale, D. W. S. —The Parliament of France, 1951.
Maurois, A. —Why France Fell ?
Munro —The Governments of Europe.
Neumann, R. G. —European & Comparative Governments, 1955.
Ogg —European Governments & Politics.
Ogg & Zink —Modern Foreign Goverments.
Pickles, D. M. —The French Political Scene.
Pickles, D. M. —France : The Fourth Republic.
Pickles, D. M. —The Fifth French Republic.
Pickles, D. M. —France between the Republics.
Poincare —How France is Governed ?
Sait —Government & Politics of France.
Taylor, O. R. —The Fourth Republic of France, 1951.
Thomson —The Democratic Ideal in France.
Thomson —Democracy in France and England.
Wit, Daniel —Comparative Pelitical Institutions, 1953.
Wright —The Reshaping of French Republic.

आस्ट्रेलिया का संविधान

(CONSTITUTION OF AUSTRALIA)

आस्ट्रेलिया का वर्तमान संविधान १९०० के कामनवैल्थ ऑफ आस्ट्रेलिया में निहित है। १ एक जनवरी १९०१ को लागू किया गया। आस्ट्रेलिया का कामनवैल्थ ६ राज्यों से मिल कर बना है—न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, साउथ आस्ट्रेलिया, क्वीन्सलैण्ड, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और तस्मानिया। यह संविधान एक प्रस्तावना रखता है। इसमे लिखा है कि विक्टोरिया, न्यू साउथ वेल्स, साउथ आस्ट्रेलिया, क्वीन्सलैण्ड व तस्मानिया के लोग ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड के संयुक्त राज्य के मुकुट तथा इस संस्थापित संविधान के आधीन एक अटूट संघीय राष्ट्र मंडल बनाने का निश्चय करते हैं।

सशोधन विधि (Method of Amendment)—संविधान की धारा १२८ मे संशोधन विधि का वर्णन किया गया है। सशोधन का प्रस्ताव संसद् के दोनों सदनों से पास होकर जनमत सग्रह के लिए जनता के सामने रखा जाना चाहिए। यदि ऐसा कोई बिल एक सदन से पास हो जाय और फिर दूसरे सदन में वह गिर जाय लेकिन तीन महीने के मध्यान्तर के बाद या अगले अधिवेशन में वही सदन उसे पुनः पास करदे तो गवर्नर-जनरल संशोधन के सहित या रहित उसे जनमत संग्रह के लिए भेज सकता है। यदि जनमत संग्रह के लिए भेजा गया बिल वोट देने वाले व्यक्तियो तथा राज्यों के बहुमत से स्वीकृत हो जाय, तो वह कानून का रूप ग्रहण कर लेता है। लेकिन यदि संशोधन का उद्देश्य राज्य की सीमाओ में परिवर्तन करना है, या संसद् में उसके प्रतिनिधित्व के अनुपात को घटाना है, या संविधान के आधीन उसके पृथक् अधिकारों में कोई परिवर्तन करना है, तो उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त यह जरूरी है कि उस तत्सम्बन्धी राज्य मे निर्वाचकों के बहुमत को उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह स्मरणीय है कि पिछले ६५ वर्षों में आस्ट्रेलिया का सविधान केवल चार बार बदला है, जबकि स्वीकृति के लिए जनता के सामने २४ प्रस्ताव पेश किए गए। अक्टूबर १९५८ मे आस्ट्रेलिया की संसद् के सामने संवैधानिक पुनरध्ययन पर संयुक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट मे यह सिफारिश की कि जनमत संग्रह के हेतु कम से कम आधे राज्यों मे बहुमत मिल जाना चाहिए।

संसदीय शासन पद्धति (Parliamentary Form of Government)—आस्ट्रेलिया में संसदीय शासन पद्धति प्रचलित है। मन्त्री लोग संसद् के प्रति उत्तरदायी है और गवर्नर-जनरल संवैधानिक अध्यक्ष है। सारी शक्ति कैबनिट के पास है जिसका नेता प्रधान मन्त्री है। सामूहिक उत्तरदायित्व प्रणाली प्रचलित है।

संघीय व्यवस्था का स्वभाव (Nature of Federal System)—आस्ट्रेलिया

मे संघीय सरकार की शक्तियाँ वर्णित है। कुछ केवल एक की है तथा शेष समवर्ती है। केवल संघीय सरकार की शक्तियाँ है—सुरक्षा, शान्ति, मुद्रा, राष्ट्रमण्डल का सुप्रशासन इत्यादि। समवर्ती विषय हैं जैसे विदेश तथा अन्तर्राज्य व्यापार, डाक व तार, जनगणना, बैंकिंग, बीमा, नाप-तौल, प्रवासन, देशीकरण, विवाह, तलाक इत्यादि। राष्ट्रीय सरकार को यह मना किया गया है कि वह व्यापार, वाणिज्य, भूमि-आय तथा जल के प्रयोग आदि के विषय में राज्यों के बीच भेद-भाव नहीं कर सकती। स्विट्जरलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दी गई है। ऐसे विषय है शिक्षा, कृषि, दान, कारखाने, स्वास्थ्य, जंगल, मछली, पुलिस, बन्दीगृह, राज्य रेलवे, मद-नियन्त्रण इत्यादि। राज्यों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने संविधानों को बदल दें।

यदि कनाडा व ग्रास्ट्रेलिया की संघ व्यवस्थाओं की तुलना की जावे तो ज्ञात होगा कि कनाडा मे प्रान्तों की शक्तियों को स्पष्ट व पारिभाषित रूप दिया गया है और अवशिष्ट भाग केन्द्र के लिये छोड दिया गया है। ग्रास्ट्रेलिया मे इसका बिलकुल उल्टा है। राष्ट्रीय सरकार की सारी शक्तियाँ बता दी गई है, लेकिन अवशिष्ट विषय राज्यों को दिए गए है। कनाडा में केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के ऊपर अपने नियन्त्रण का प्रयोग करती है क्योंकि यह वहाँ के गवर्नरो को नियुक्त करती है तथा उन्हे हटा भी सकती है। वहाँ प्रान्तों के बने कानून को केन्द्रीय सरकार का न्याय-मन्त्री रोक सकता है। जबकि ग्रास्ट्रेलिया मे प्रान्तीय गवर्नरों की नियुक्ति राष्ट्रीय सरकार के हस्तक्षेप बिना सम्राट् द्वारा होती है और राष्ट्रीय सरकार प्रान्तीय कानूनो मे भी बाधक नहीं हो सकती। कनाडा के संविधान में संशोधन ब्रिटिश संसद् द्वारा होता है, जबकि ग्रास्ट्रेलिया मे संवैधानिक संशोधन के कार्य को संसद् के दोनों सदन तथा लोग जनमत संग्रह द्वारा पूरा करते हैं। कनाडा मे प्रान्तों के संविधान १८६७ के उत्तरी अमरीका अधिनियम मे निहित है और उनमें किसी संशोधन के हेतु ऐक्ट मे संशोधन करने की जरूरत है। लेकिन ग्रास्ट्रेलिया मे प्रत्येक प्रान्त का अपना अलग संविधान है जिसे वह स्वयं बदल सकता है।

जैसा अन्य संघात्मक राज्यों मे है, यह स्मरणीय है, वैसा ही ग्रास्ट्रेलिया में भी केन्द्रीय सरकार ने अपनी शक्ति को बढाया है। प्रो० बैंडी का मत है कि न्यायिक व्याख्याओं ने राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों को इतना अधिक बढा दिया है कि जितना संविधान निर्माताओं ने उसे नहीं दिया और न कल्पना ही की। लेकिन ऐसा परिवर्तन ही अवश्यम्भावी है। आधुनिक आर्थिक व सामाजिक विकासो ने यह आवश्यक कर दिया है कि १८६० के अधिनियम की नई व्याख्याएँ प्रस्तुत की जावें, जिससे उसे देश व जनता के हितो के अनुकूल कर दिया जावे। केन्द्रीय सरकार ने राज्यों की सरकारों को अधिक-से-अधिक आर्थिक सहायता दी है और इसी कारण अपने नियन्त्रण को बराबर विकसित किया है। परिभाषा के रूप में कहा जा सकता है कि आर्थिक अनुदान प्रत्यक्षत: संघीय अधिकार क्षेत्र और प्रत्येक राज्य के स्थानीय कृत्यों के बीच का मार्ग हैं तथा उनके निरन्तर बने रहने से राज्यों के स्थानीय वित्त के भीतर विभिन्न स्तरों के क्रमहीन अपहरण हुए हैं। इसने राष्ट्र के न्यूनतम मानो की सिद्धि को पूर्ण किया है तथा लोगों

तक अनेकों लाभ पहुँचाने का कार्य किया है। धारा ५१ में अंकित विदेश विषयों की शक्ति ने पहले की अपेक्षा अब अधिक महत्त्व ग्रहण कर लिया है। डाक, तार, टेलीफून तथा इनसे तत्सम्बन्धी शक्तियों ने अपने भीतर रेडियो व संचार को मिला लिया है। यह कहा जाता है कि आस्ट्रेलिया के हाईकोर्ट ने लोगों की इन परिवर्तनशील आवश्यकताओं को जान लिया है और इसीलिए उसने संवैधानिक धाराओं का राष्ट्र के हित में अध्ययन किया है। डा० व्हेयर के विचार में इस सब का फल यह हुआ है कि आस्ट्रेलिया में ऐसी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं जिन्हें देखकर शीघ्र ही आस्ट्रेलिया के संविधान को अर्थ-संघ कहा जा सकेगा। फिर भी यह कहा जाता है कि इस सब के होते हुए भी आस्ट्रेलिया के राज्यों की शक्तियाँ कनाडा के प्रान्तों की शक्तियों से कहीं अधिक हैं और इसलिए वे कनाडा के प्रान्तों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता का आनन्द लेते हैं।

मुकुट (Crown)—संविधान की धारा ६१ ने राष्ट्र की कार्यपालिका शक्ति सम्राज्ञी को प्रदान की है, जिसका वास्तविक प्रयोग उसका प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल करता है। जैसे सम्राज्ञी इंगलैण्ड व अन्य उपनिवेशों की सर्वोच्च अध्यक्षा है, उसी प्रकार वह आस्ट्रेलिया में भी संवैधानिक अध्यक्षा मात्र है। वह इंगलैण्ड की रानी होते हुए भी आस्ट्रेलिया की रानी है, लेकिन इस दृष्टि से उसकी वास्तविक स्थिति पृथक् रूप से आस्ट्रेलिया की सम्राज्ञी के तुल्य है।

गवर्नर-जनरल (Governor General)—आस्ट्रेलिया के मन्त्रिमण्डल की राय पर मुकुट द्वारा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति होती है। उसी राय के आधार पर उसे वापस भी किया जा सकता है। वह सम्राज्ञी का प्रतिनिधि है और इसलिए राष्ट्र की कार्यपालिका शक्ति उसी को प्राप्त है। वह राज्य की सैनिक शक्ति का प्रधान है। वह बहुमत वाले दल के नेता को सरकार बनाने का आदेश देता है। वही पद की शपथ स्वीकार कराता है। वह राष्ट्रीय संसद् को बुलाता, स्थगित करता तथा विघटित करता है। यदि सैनिट व प्रतिनिधि सभा के बीच संघर्ष हो जाय तो वह दुगुना विघटन स्वीकार कर सकता है। वह वित्त का व्यय करने के लिए संसद् से सिफारिश करता है। संसद् से पास हो जाने पर बिल उसकी स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। वह चाहे तो बिल को स्वीकार कर सकता है, या अपनी सिफारिशों के साथ उसी सदन को वापस भेज सकता है जहाँ कि उसे प्रस्तावित किया गया था, या वह सम्राज्ञी के परामर्श के लिए उसे सुरक्षित रख सकता है। वह हाईकोर्ट के जजों को नियुक्त करता है तथा उन्हें हटा सकता है यदि संसद् ऐसा प्रस्ताव पास कर दे।

यह जान लेने योग्य चीज है कि आस्ट्रेलिया में गवर्नर-जनरल की वही स्थिति है जो इंगलैण्ड में रानी की। वह केवल संवैधानिक अध्यक्ष है तथा उससे यह आशा की जाती है कि वह स्वतन्त्र न होकर मन्त्रियों की राय से कार्य करेगा। उसकी स्थिति इसलिए भी कमजोर है क्योंकि उसकी नियुक्ति व पदच्युति मन्त्रियों की राय पर आश्रित है। इससे मन्त्रियों की अपेक्षा उसकी शक्ति कमजोर है। वस्तुतः वह आस्ट्रेलिया में सम्राज्ञी का ऐसा प्रतिनिधि है जो ब्रिटिश हितों की रक्षा करे क्योंकि यह काम तो वहाँ

इंगलैंड का हाई कमिश्नर करता है[1]।

कैबनिट (Cabinet)—संविधान केवल संघीय कार्यपालिका परिषद् को कार्यपालिका सत्ता का यन्त्र मानता है और कैबनिट केवल एक औपचारिक संस्था है जिसे कोई वैधानिक पदवी प्राप्त नहीं। इसका अस्तित्व परम्पराओं पर निर्भर है। फिर भी आस्ट्रेलिया के प्रशासन में इसका प्रधान स्थान है। कैबनिट के सदस्य विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते हैं और वे देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं।

कैबनिट के विषय में कुछ परम्पराएँ हैं। एक परम्परा यह है कि कैबनिट में संघ के सारे मूल तत्त्वों को स्थान मिलना चाहिए। दूसरी परम्परा यह है कि यदि श्रम दल सत्ताधारी हो जाय, तो उस पार्टी के दोनों सदनों के सदस्यों का कॉकस एक पैनल मनोनीत करता है जिसमें से प्रधान मन्त्री अपने सहयोगियों को चुनता है और जब तक मन्त्रिमण्डल चलता रहता है तब तक यही कॉकस अपने प्रधान द्वारा प्रभावशाली शक्ति का प्रयोग करता है। कैबनिट का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह पार्टी कॉकस के निर्णय को क्रियान्वित करे। अन्य मन्त्रियों की तरह प्रधान मन्त्री स्वय इसी कॉकस द्वारा चुना जाता है और इसीलिए मन्त्रीगण अपने उत्तरदायित्व का अनुभव केवल प्रधान मन्त्री के प्रति नही, बल्कि कॉकस के प्रति भी करते हैं। आस्ट्रेलिया मे गोपनीयता के सिद्धान्त का अधिक प्रचलन नही। बजट की रूपरेखाएँ समय से पूर्व पता चल जाती है। और इसी तरह अन्य कैबनिट के निर्णय भी पता चल जाते हैं। और अपना त्यागपत्र देने या गवर्नर जनरल को संसद् भंग करने का परामर्श देने से पूर्व प्रधान मन्त्री अपने सहयोगियों की राय लेता है।

प्रधान मन्त्री (Prime Minister)—आस्ट्रेलिया का प्रधान मन्त्री कैबनिट का अध्यक्ष है। श्रमदल को छोड़कर शेष सभी दलो के सत्ताधारी होने पर प्रधान मन्त्री की वही स्थिति है जो इंगलैंड या भारतवर्ष में है, क्योंकि जब श्रम दल की सरकार होगी तो उस दल का कॉकस एक पैनल बनाता है जिसमें से प्रधान मन्त्री को अपने सहयोगी लेने पड़ते हैं। प्रधान मन्त्री व उसके अन्य मन्त्रीगण इसी कॉकस के प्रति उत्तरदायित्व पूरा करते हैं जो उनके सम्बन्धों को नियंत्रित रखता है। और उनके ऊपर कन्ट्रोल रखता है। लेकिन यदि अन्य दलों की सरकार हो तो स्थिति भिन्न है। तब प्रधान मन्त्री ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता है।

यह ठीक है कि आस्ट्रेलिया का प्रधान मन्त्री एक तानाशाह नहीं है। फिर भी वह एक बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। निस्संदेह वह अपने अन्य सहयोगियों की अपेक्षा एक वरिष्ठ संसदीय सदस्य है। उसका दीर्घ अनुभव उसकी बात को अधिक बड़ा बल व स्थान प्रदान करता है। उसकी दल के प्रति सेवाएँ भी उसे ऊँचा स्थान देती हैं। उसकी

1. According to John Cockburn, "It was pointed out that his highest function would be to be a dummy, and that although he was the only link between us and the Crown, in being that link he was less than the least in the whole of the colonies a useless image and a baubla."

वास्तविक स्थिति उसकी अपनी क्षमता, योग्यता व व्यक्तित्व पर निर्भर है। क्रिस्प के मत में, उसकी कैबिनेट द्वारा लिए गए निर्णय ठीक प्रकार से लागू हो रहे हैं या नहीं या शासन ठीक चल रहा है या नहीं, यह केवल उसके कैबिनेट के नेता होने के कारण चतुराई व कुशलता पर इतना निर्भर नहीं वरन वह उस तीक्ष्ण दृष्टि पर भी निर्भर है जिससे वह कैबिनेट की सभाओं में अपने सहयोगियों को ठीक रखता है।"

संसद् (Parliament)—आस्ट्रेलिया की संसद् को सार्वभौम स्थान प्राप्त नहीं है। इसकी शक्तियों को देश में संविधान ने परिसीमित कर दिया है। आस्ट्रेलिया का हाईकोर्ट संसद् द्वारा पारित बिलों को अवैध घोषित कर सकता है। संवैधानिक संशोधन भी पूर्णतया इसके अधिकार में नहीं है।

सैनिट (Senate)—राष्ट्रीय संसद् के दो सदन है—सैनिट तथा प्रतिनिधि सभा या हाउस आफ रिप्रेजेन्टेटिव्स। सैनिट इसका उच्च सदन है जबकि प्रतिनिधि सभा निचला सदन है। आरम्भ में सैनिट में ३६ सदस्य थे जिनमें प्रत्येक राज्य ६ सदस्यों को भेजता था, लेकिन १९४८ में इसकी सदस्य संख्या ६० कर दी और तब से प्रत्येक राज्य को १० प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया। उसी वर्ष सैनिट के चुनाव में भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली चालू की गई। इस प्रणाली को लागू करने का लक्ष्य अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देना था। अब सैनिट के सदस्यों को प्रत्येक राज्य के मतदातागण आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एक-सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र के आधार पर चुनते हैं। प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक को इस चुनाव में वोट देने का अधिकार है। सैनिट का जीवन ६ वर्ष है, लेकिन उसके ½ सदस्य प्रति तीसरे वर्ष रिटायर हो जाते हैं।

साधारण विधायन के सम्बन्ध में सैनिट व प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ बराबर हैं। कोई साधारण बिल संसद् से पास नहीं समझा जा सकता जब तक कि उसे दोनों सदनों ने पास न कर दिया हो। अवित्तीय बिल को संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकता है। लेकिन धन-विधेयक केवल प्रतिनिधि सभा में ही पेश किए जा सकते हैं। सैनिट को अधिकार है कि वह बिल को अस्वीकार कर दे, या नए टैक्सों की सिफारिश कर दे, या लोक व्यय की मात्रा बढ़ा दे।

संविधान ने एक प्रक्रिया निर्धारित की है, जिसके अनुसार दोनों सदनों के बीच संघर्ष को दूर किया जा सकता है। यदि किसी बिल को दो बार अस्वीकार कर दिया जाय और सैनिट ने ३ महीनों का मध्यान्तर कर दिया हो, तो गवर्नर जनरल सैनिट व प्रतिनिधि सभा दोनों ही को एक साथ भंग कर नये चुनावों के आदेश जारी कर सकता है। यदि नई संसद् में भी सहमति न हो, तो गवर्नर-जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है और यदि तब बहुमत से बिल पास हो जाये तो वह उसकी अनुमति पाकर कानून का रूप ग्रहण कर लेगा।

संविधान निर्माताओं का यह इरादा था कि सैनिट दो प्रधान कार्य करे। इसको एक दुहराने वाला सदन बनाना था। लेकिन इस काम को सन्तोषजनक रूप से करने में सैनिट असफल रही है। इसको बनाने का दूसरा उद्देश्य यह था कि राज्यों के हितों की

भी सुरक्षा बनी रहे, लेकिन इस काम को करने में भी सैनिट सफल नहीं हुई है। १६११ में हेनरी टर्नर ने बताया कि एक पुनरध्ययन की सभा, एक तीव्रगामी विधायन पर नियन्त्रण तथा राष्ट्रीय एकता के हेतु प्रशासकों के महत्व के प्रयत्न करने में सैनिट असफल रही है। ब्राइस के विचार में, "वे, सब आशाएँ तथा उद्देश्य जिनसे सैनिट की रचना हुई थी उन्हे घटनाओं ने मिथ्या सिद्ध कर दिया है। इसने राज्यो के हितों की रक्षा नहीं की है, क्योंकि इन हितों पर समस्याएँ बहुत कम उठती है। न यह सन्तो का गृह सिद्ध हुई है क्योंकि राष्ट्र की राजनीतिक बुद्धिमत्ता प्रतिनिधि सभा में केन्द्रित हो जाती है, जहाँ पद पाने के लिए निरन्तर संग्राम अनिवार्य है। इसके पास कोई विशेष कार्य नही है जैसे विदेश नीति व नियुक्तियो पर कन्ट्रोल जिससे अमरीकी सैनिट की शक्ति प्राप्त हुई है। आस्ट्रेलिया मे सैनिट प्रतिनिधि सभा की एक अनूठी नकल है।"[1]

प्रतिनिधि सभा (House of Representatives)—आरम्भ मे प्रतिनिधि सभा मे ७५ सदस्य थे लेकिन अब इसकी कुल सदस्य संख्या १२१ है। इस सदन के सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष है। जैसे सैनिट मे, वैसे ही यहाँ मताधिकार सभी प्रौढ़ नागरिकों को प्राप्त है। संविधान यह माँग करता है कि प्रतिनिधि सभा की कुल सदस्य संख्या सैनिट से दुगुनी होनी चाहिए। और किसी राज्य को पाँच स्थानों से कम प्राप्त नही होने चाहिएँ। १६२४ के कामनवैल्थ इलैक्टोरल ऐक्ट ने आस्ट्रेलिया में अनिवार्य मतदान प्रचलित किया। वोट न देने पर १० शिलिंग से लेकर २ पौण्ड तक जुर्माना पड़ता है। इसका फल यह हुआ है कि वहाँ मतदान ७० प्रतिशत से बढ़कर ६० प्रतिशत तक पहुँच गया है।

प्रतिनिधि सभा की शक्तियाँ सैनिट के बराबर हैं, केवल धन के क्षेत्र मे सैनिट शक्तिहीन है। धन बिल केवल प्रतिनिधि सभा ही मे पेश हो सकता है तथा यद्यपि सैनिट को ऐसे बिल मे परिवर्तन करने का कोई अधिकार नही है, लेकिन वह ऐसे बिलों को अस्वीकार कर सकती है। मन्त्री लोग सामूहिक रूप से सभा के प्रति उत्तरदायी हैं और वे तभी तक पदासीन रह सकते है जब तक कि सभा का उनमें विश्वास बना रहे। प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछकर संसद् के सदस्य मन्त्रियो से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। वे ऐसे प्रस्ताव भी पास कर सकते हैं जिनमे सरकार को किसी कार्य को करने का आदेश दिया जाय। वे काम रोको प्रस्ताव भी रख सकते हैं। वे अविश्वास का प्रस्ताव भी बढ़ा सकते हैं। यह ठीक कहा गया है कि प्रतिनिधि सभा आलोचना का मंच तथा बाहरी विचारधारा का केन्द्र बन गया है।

न्यायपालिका (Judiciary)—आस्ट्रेलिया का हाई कोर्ट न्यायपालिका का सर्वोच्च केन्द्र है। मन्त्रियो की राय पर गवर्नर-जनरल जजों को नियुक्त करता है

1. According to Crisp, the Senate "enjoys little public interest and evokes no enthusiasm. Rather than obstruct the process of government, it perhaps does well to remain relatively inactive, but rather than discredit by its ineffectiveness the standing of parliamentary institutions, some critics have suggested the Senate would do better to disappear from the scene."

और वे केवल सद्व्यवहार की स्थिति में पदासीन रहते है। यदि एक ही अधिवेशन मे संसद् प्रस्ताव पास कर दे कि अमुक जज अयोग्य या दुर्व्यवहारी है तो गवर्नर जनरल उसे हटा सकता है। इस समय हाई कोर्ट में ७ जज है।

हाई कोर्ट का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार उन सभी विषयों तक विस्तृत है जो किसी संधि से उत्पन्न हों, या राजदूतों से सम्बन्धित हों या राष्ट्रीय सरकार वादी या प्रतिवादी के रूप मे हो, या राज्यों के बीच हो, या विभिन्न राज्यों के नागरिकों के बीच विवाद हो या किसी विशेष लेख (रिट) की माँग की गई हो।

राष्ट्रीय संसद् को यह शक्ति प्राप्त है कि वह हाई कोर्ट के प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार को व्यापक करदे और उसे कोई भी ऐसा विषय प्रदान करदे जो संविधान के अन्तर्गत आता है, जलसेना या सामुद्रिक क्षेत्र से सम्बद्ध है, या विभिन्न राज्यों द्वारा दावा किए गये कानून के अन्तर्गत है, या केन्द्रीय संसद् के कानून से मिला हुआ है।

हाई कोर्ट को उन सारे विषयों पर अपील सम्बन्धी क्षेत्राधिकार प्राप्त है जिनमे कोई कानूनी पहलू स्पष्ट न हो सका और जिन पर किसी निम्न अदालत ने अपना निर्णय दे दिया है। ऐसे मामलों मे इसका निर्णय अन्तिम है। यह ठीक है कि आस्ट्रेलिया मे एक ऐसी व्यवस्था भी है कि हाईकोर्ट के निर्णय के ऊपर प्रिवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी मे अपील की जा सके, लेकिन ऐसा कार्य करने से पूर्व हाई कोर्ट की अनुमति लेनी पड़ेगी और साधारणतः ऐसी अनुमति नही मिलती। ऐसी भावना मौजूद है कि निर्णय पर अपीलें देश के बाहर नही ले जानी चाहियें।[1]

राज्य सरकारें (State Governments)—सभी राज्य सरकारो में द्विसदनात्मक प्रणाली मौजूद है। निचले सदन का संगठन सर्वव्यापी प्रौढ़ मताधिकार द्वारा होता है जबकि उच्च सदन की रचना विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार से होती हैं। मन्त्रियो की राय पर सम्राज्ञी द्वारा उनके गवर्नरो की नियुक्ति होती है तथा इसमें केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप प्राप्त नही है। गवर्नर ही विभिन्न अदालतों के जजों को जीवन भर के लिये नियुक्त करता है और वे केवल सद्-व्यवहार की दशा ही मे कार्य कर सकते है। राज्य का विधान मण्डल ही साधारण विधि की तरह अपने संविधान को बदल सकता है।

राजनीतिक दल (Political Parties)—आस्ट्रेलिया मे दलीय व्यवस्था की कुछ विशेष परम्पराएँ है। वहाँ केवल राजकीय स्तर पर दलों की रचना होती है। पार्टी

---

1. According to J.G. Lathan, "The opinion of the Commonwealth Government is that it is much wiser in the interests of Australia and of the Empire as a whole, that constitutional questions should be determined in Australia. We do not think that in regard [illegible] matters the Privy Council has anything like the
The
end
ther
eal

की राजकीय स्तर की शाखा ही महत्त्वपूर्ण है और राष्ट्रीय संगठन अपना कार्य तभी शुरू करता है जबकि राष्ट्रीय संकट काल हो या संसद् के आम चुनाव हों। इसके अतिरिक्त, अपने सहायकों के रूप में एक सुगमतापूर्वक समान रूपी सिंडीकेट प्रत्येक दल रखता है। सिंडीकेट लोगों का एक संगठन है जिनके समान हित होते हैं और जो दल की नीति बनाने में प्रभाव का प्रयोग करते हैं। आस्ट्रेलिया के तीनों दल सरकार के दल हैं। इसका मतलब यह है कि केन्द्रीय या प्रान्तीय स्तर पर प्रत्येक दल को कहीं न कहीं शक्ति प्राप्त होती है। कोई भी दल व केवल विरोधी दल मात्र नहीं है। कोई भी दल पूर्णतया लापरवाही या उत्तरदायित्व हीनता नहीं अपनाता क्योंकि वह या तो सत्ताधारी होता है या सत्ताधारी होने की तीव्र आशा रखता है। आस्ट्रेलिया में तीन दलों की सत्ता होने के कारण मिश्रित सरकारें भी बनती रहती हैं। जबकि इंगलैंड में श्रमदल को एक नया दल समझा जाता है, आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं है जहाँ श्रम दल सबसे पुराना दल है और सबसे पुरानी परम्पराएँ रखता है।

श्रम दल (Labour Party)—बीसवीं शताब्दी में आस्ट्रेलिया की राजनीति में श्रमदल ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। खानों, रेलवे, उद्योगधंधों, समुद्री व्यापार, कृषकों, समाज के मध्यम वर्गों तथा लोक सेवकों में इसके मतदाताओं की विशाल संख्या मौजूद है। इस दल के समर्थकों का कहना है कि यह दल वर्गों की अपेक्षा जनता का सहायक है जो ऐसा समाज लाना चाहता है जिसमें मजदूरों को प्रशासन क्षेत्र में पूरा मानवीय सम्मान प्राप्त हो। यह शान्ति साधनों के प्रयोग में विश्वास रखता है। यह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में अन्याय को समाप्त करना चाहता है। यह संसदीय शासन पद्धति के पक्ष में है। यह कहा जाता है कि श्रमदल समाजवादी दल है। इसका समाजवाद जनसाधारण में पक्के विश्वास पर आश्रित है और यह लोकतन्त्र व न्याय के आधार पर समाज में आवश्यक परिवर्त्तनों पर डटा हुआ है। यह वाम पक्ष या वाम पक्ष की तानाशाही के विरोध में है। यह लोगों की इच्छा को सत्ता का वास्तविक स्रोत मानता है। जब तक इस इच्छा को राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त है, इसे विश्वास है कि संसदीय लोकतन्त्र का प्राचीन रूप ही वह मार्ग है जिस पर चलकर राष्ट्र लूटमार से बचकर समाजवाद की ओर जा सकता है। इसने खुले या छुपे शत्रुओं को जता दिया है कि जनतन्त्र में लोगों की उद्घोषित इच्छा को ही मान्यता मिलेगी। राष्ट्र का बहुमत ही राज्य का अधिकारी बन सकता है।[1]

उदारवादी दल (Liberal Party)—लिबरल पार्टी का जन्म १९४४ में हुआ। इससे पूर्व श्रम दल के विरोधियों को आलोचकों का गुट कहा जाता था। इस दल का मुख्य निर्माता आर० जी० मेंजीस है। यह दल चाहता है कि एक सुयोग्य, स्वतन्त्र और

---

1. According to Louise Overacker, "The Australian Labour Party continues to be a federation of state branches, with a large measure of autonomy, and its fundamental law is to be found in the constitution and rules of the six states as well as in its brief general constitution."

दक्षिणी अफ्रीका का संघ

(THE UNION OF SOUTH AFRICA)

दक्षिणी अफ्रीका के सघ का वर्त्तमान सविधान १९०९ के दक्षिणी अफ्रीका संघ अधिनियम (The Union of South Africa Act, 1909) पर आश्रित है जिसे २० सितम्बर १९०९ को साम्राज्यी स्वीकृति प्राप्त हुई और जो ३१ मई १९१० को लागू हुआ। परन्तु समय के साथ-साथ उसमे कुछ परिवर्तन भी होते रहे है। इस दिशा में १९३४ का सघ अधिनियम (Union Act, 1934) अधिक महत्त्वपूर्ण है।

दक्षिणी अफ्रीका के सघ का सविधान सघात्मक है। इसके संघ के चार प्रान्त हैं—कैप, नैटाल, ट्रांसवाल व फ्री ओरेंज स्टेट। व्यवस्थापिका के उच्च सदन सैनिट मे चारों प्रान्तो को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। प्रत्येक प्रान्त के सैनिट में आठ प्रतिनिधि हैं। अपनी कैबनिट बनाते समय प्रधान मन्त्री को इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसके सघ के विभिन्न प्रान्तों को उचित प्रतिनिधित्व देना चाहिए। प्रत्येक प्रान्त को महत्त्वपूर्ण स्थान देने के हेतु, संघ सरकार के विभिन्न अगों को बनाया गया है। अत: दक्षिणी अफ्रीका के सघ की राजधानी ट्रासवाल मे प्रीटोरिया है। ससद् केप प्रान्त में केप टाउन मे स्थित है। सुप्रीम कोर्ट ओरेंज फ्री स्टेट में ब्लोमफान्टेन पर केन्द्रित है।

इन बातों के बावजूद भी, आलोचको का यह कहना है कि दक्षिणी अफ्रीका का राज्य संघात्मक न होकर एकात्मक है। इस सम्बन्ध मे दी हुई विभिन्न दलीलें ये है कि केन्द्रीय सरकार को उन विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार है जो प्रान्तो के दिए गये है। वे यदि सघर्ष की स्थिति मे हों तो प्रान्तीय कानून के विरोध में केन्द्रीय कानून का चलन वैधानिक होता है। यह भी है कि प्रान्तों द्वारा लागू किए गए अध्यादेशों को गवर्नर-जनरल की परिषद् की स्वीकृति लेना अनिवार्य है। प्रान्तों के अध्यादेश को अवैध घोपित किया जा सकता है यदि उसने केन्द्रीय कानून का उल्लंघन किया हो। यह भी कहा जाता है कि प्रान्तीय प्रशासक (Administrator) को गवर्नर-जनरल की परिषद् नियुक्त करती है और केन्द्रीय संसद् के कानून द्वारा प्रान्तीय लोक सेवकों की नियुक्ति की शर्तें, कार्यकाल तथा अवकाश प्राप्ति आदि निश्चित होती है। संविधान को भी प्रान्तीय सरकारों की राय के बिना बदला जा सकता है, केन्द्रीय संसद् को यह भी शक्ति प्राप्त है कि वह प्रान्तीय विधान मण्डलों की शक्तियों को घटा दे या उनका उन्मूलन कर दे। इन्ही कारणों से, यह कहा जाता है कि वास्तव मे अपने स्वभाव मे दक्षिणी अफ्रीका के राज्य का संविधान संघात्मक नही है।

संविधान का संशोधन (Amendment of Constitution)—राज्य के संवि-

धान को प्रान्तों की अनुमति के बिना बदला जा सकता है। संशोधन कार्य को संसद् के दोनों सदन अपने २/३ बहुमत से सम्पन्न कर सकते हैं। डच तथा अंग्रेजी भाषाओं की समानता तथा केप प्रान्त मे मौलिक मताधिकार के विषय मे संशोधन के विषय में कुछ सुरक्षाएँ रखी गई है।

कार्यपालिका (Executive)—राज्य की कार्यपालिका शक्ति इंगलैण्ड की सम्राज्ञी को प्राप्त है जो राज्य के मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करती है। राज्य में अपने प्रतिनिधि के रूप मे रानी गवर्नर जनरल को नियुक्त करती है। केवल उन दिनों को छोड़ कर जब कि सम्राज्ञी स्वयं अपनी राजकीय यात्रा पर राज्य का दौरा करती है, गवर्नर-जनरल ही रानी की ओर से राज्य का सारा काम चलाता है लेकिन गवर्नर जनरल एक संवैधानिक अध्यक्ष है जो अपने मन्त्रियों की सलाह से कार्य करता है।

साधारणतया गवर्नर-जनरल को पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है, लेकिन राज्य के मन्त्रियों की राय पर उसे पहले भी हटाया जा सकता है। विशेष रूप से Status of the Union Act of 1934 की चौथी धारा के अनुसार ब्रिटिश सम्राज्ञी को राज्य के मन्त्रियों की इच्छानुसार कार्य करना चाहिए। गवर्नर-जनरल को विशेष निजी अधिकार प्राप्त हैं जैसे प्रीटोरिया केप टाउन व डर्बन मे अपने व अपने परिवार के लिए राजकीय निवास। उसे १०,००० पौंड वार्षिक वेतन मिलता है जिस पर कोई टैक्स नही लगता।

गवर्नर-जनरल केन्द्रीय संसद् द्वारा पारित बिलो को अपनी स्वीकृति देता है। वह ऐसे बिलों को अपनी स्वीकृति देने से इन्कार कर सकता है जिनका सम्बन्ध संवैधानिक संशोधन से हो या उस परिशिष्ट से हो जिसके अन्तर्गत बेकुयनालैण्ड, स्वाज़ीलैंड तथा बासुटोलैण्ड को राज्य में मिलाना हो या जिसका लक्ष्य १९०९ के दक्षिण अफ्रीका अधिनियम को बदलना हो। वर्तमान स्थिति में बिलो पर स्वीकृति का निर्धारण १९०९ के दक्षिण अफ्रीका अधिनियम की सातवी व आठवी धारा, राजकीय कार्यपालिका सम्बन्धी अभिसमय तथा १९३४ के मुहर (Seals) अधिनियम द्वारा होता है। इस समय गवर्नर जनरल को यह अधिकार प्राप्त है कि वह बिल पर अपनी स्वीकृति दे या न दे या उसी सदन को अपनी विशेष प्रकार की सिफारिशों के साथ वापस भेज दे जहाँ वह प्रस्तावित हुआ था। वह संसद् को भंग करने का अधिकार रखता है और इस अधिकार का प्रयोग करने से इन्कार भी कर सकता है। १९३९ मे ऐसा ही प्रश्न उठा था कि क्या गवर्नर जनरल को संसद् भंग करने का विवेकपूर्ण अधिकार है या नही, जनरल स्मट्स ने उस समय के प्रधानमन्त्री जनरल हर्टजोग की तटस्थ नीति को चुनौती दी। तब कैबिनेट में फूट पड़ गई और यह मालूम होने लगा कि जनरल स्मट्स के पक्ष में बहुमत है। जब जनरल हर्टजोग की हार हुई तो इस सम्बन्ध में लोकमत जानने के वास्ते उसने गवर्नर-जनरल को संसद् को भंग करने की राय दी। लेकिन गवर्नर-जनरल ने उसकी राय मानने से इन्कार कर दिया। फल यह हुआ कि जनरल हर्टजोग ने त्यागपत्र दिया। और जनरल स्मट्स प्रधान मन्त्री बन गया। इससे पता चलता है कि गवर्नर जनरल

प्रधान मन्त्री या उसके साथियो के परामर्श पर अपने इस विवेक का प्रयोग करने से इन्कार कर सकता है।

दक्षिण अफ्रीका संघ का अधिनियम यह भी व्यवस्था करता है कि एक उप-गवर्नर जनरल होगा या ऐसा ही कोई अन्य अधिकारी होगा जो अस्थाई रूप से गवर्नर-जनरल की अनुपस्थिति मे उसके पद पर कार्य करेगा। जो सुरक्षाएँ सम्राज्ञी निर्धारित कर दे उनको देखते हुए गवर्नर-जनरल किसी भी अन्य व्यक्ति को उप-गवर्नर-जनरल नियुक्त कर सकता है।

चूंकि राज्य मे ससदीय शासन पद्धति मौजूद है, इसलिए इंगलैण्ड की तरह बहुमत दल का नेता अपनी सरकार का निर्माण करता है। मन्त्रिमण्डल तभी तक पदासीन रह सकता है जब तक कि इसमे ससद् का विश्वास बना रहे व यदि ऐसा न हो तो उसे त्यागपत्र देना पडता है। किसी भी सदन का सदस्य विना बने केवल तीन मास तक ही कोई व्यक्ति मन्त्रिमण्डल में रह सकता है।

संसद् (Parliamet)—ससद् का रूप द्विसदनात्मक है—सैनिट (Senate) व सभा (House of Assembly), सैनिट मे ९० सदस्य है जिनमे १९ सदस्यों को मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर गवर्नर-जनरल मनोनीत करता है। सैनिट के सदस्य विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करते है। सैनिट का जीवन पाँच वर्ष है, लेकिन गवर्नर-जनरल उसे सभा भंग होने के १२० दिनो के भीतर भी भंग कर सकता है। इसका सदस्य होने की कम से कम ३० वर्ष की आयु भी अनिवार्य हैं। जिस प्रान्त का वह प्रतिनिधि है उसमें उसे कम से कम पाँच वर्ष तक का निवासी होना भी जरूरी है। इसके अतिरिक्त उसके पास कम से कम ५०० पौंड की सम्पत्ति भी होनी चाहिए।

सैनिट को सभा के समान व्यवस्थपिका सम्बन्धी शक्तियाँ भी प्राप्त है। लेकिन धन सम्बन्धी बिलों को केवल सभा ही मे प्रस्तावित होना चाहिए। यदि दोनों सदनों के बीच संघर्ष हो जाय, तो गवर्नर जनरल उनकी सयुक्त बैठक बुला सकता है। लेकिन चूंकि सैनिट मे ९० सदस्य हैं और सभा मे १६३, इसलिए सैनिट की अपेक्षा सभा अधिक शक्तिशाली स्थिति में है।

सभा संसद् का निचला सदन है। इसमे १६३ सदस्य है जिनमे ५२ सदस्य केप प्रान्त से, ६८ सदस्य ट्रांसवाल से, १६ सदस्य नैटाल से, १४ सदस्य ऑरेंज फ्री स्टेट से तथा ६ सदस्य दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका से आते है। देशी निवासियो को अपने सदस्य भेजने का अधिकार है जबकि केप प्रान्त के काले नागरिक भी अपने चार प्रतिनिधि भेजते है।

न्यायपालिका (Judiciary)—राज्य के सर्वोच्च न्यायालय मे एक अपील सम्बन्धी शाखा है जिसमे एक प्रधान जज व १० सहायक जज है। प्रत्येक प्रान्त में इस न्यायालय की एक प्रान्तीय शाखा भी है। इन जजो की नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता है और वे ७० वर्ष की आयु तक कार्य करते है। संसद् के दोनों सदन उसमें से किसी के विरुद्ध प्रस्ताव पास कर उसे हटा सकते है। कुछ प्रकार के फौजदारी मुकद्दमों को

छोड़कर सुप्रीमकोर्ट की अपील सम्बन्धी शाखा के निर्णय अन्तिम हैं। लेकिन प्रिवी कौन्सिल की जुडीशल कमेटी का निर्णय अन्तिम है।

विभिन्न प्रान्त जिलों मे विभक्त है और प्रत्येक जिले में एक मैजिस्ट्रेट कोर्ट है जिसे दीवानी व फौजदारी के मुकद्दमों में सीमित शक्तियाँ प्राप्त हैं।

केवल स्वदेशी लोगों से सम्बन्धित राज्य में बहुत से दीवानी व फौजदारी न्यायालय स्थापित किए गए है,—जैसे Native Chiefs' and Headmens' Courts, Native Commissioners' Courts, Native Appeal Courts और Native Divorce Courts, नेटिव चीफ व हेडमैन्स कोर्ट को ऐसे दीवानी मुकद्दमे तय करने का हक है जो स्वदेशी व्यक्तियों के बीच प्रसंविदाओं से सम्बन्ध रखते हैं। नेटिव कमिश्नर्स कोर्ट्स के फैसलों की अपीलें नेटिव अपील्स कोर्ट्स में होती हैं। विवाहों के परित्याग सम्बन्धी मामले नेटिव डायवोर्स कोर्ट में तय होते है।

राजनैतिक दल (Political Parties)—दक्षिणी अफ्रीका के राज्य में दो मुख्य राजनीतिक दल है—नेशनलिस्ट पार्टी जातीय भेदभाव के पक्ष में है। यह श्वेत व गैर-श्वेत लोगों के बीच पृथक्करण चाहती है। इसके विचार में यही सर्वोत्तम है कि श्वेत लोग अलग जाति के रूप में रहें तथा उनमें व गैर-श्वेत लोगों में कोई सम्पर्क न रहे जिससे संघर्ष की स्थिति ही उत्पन्न न हो सके। इसकी यह भी इच्छा है कि विभिन्न यूरोपीय भाषी लोगों के बीच सहयोग बढ़ता रहे। इसका प्रधान लक्ष्य राज्य को गणतन्त्र बनाना है। यूनाइटेड पार्टी का लक्ष्य एकता, विवेक व न्याय है। यह राजनीति में कोमलता भी लाना चाहती है।

Suggested Readings

Keith : Constitutional Law of British Dominion.
Marriot : The Mechanism of the Modern State.

अध्याय ३६

आयरलैंड का संविधान

(CONSTITUTION OF THE IRISH FREE STATE)

भारत की तरह आयरलैंड ने घोर संघर्ष के बाद स्वतन्त्रता प्राप्त की। १९२१ में ग्रेट ब्रिटेन व आयरलैंड के बीच एक सन्धि हुई और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के भीतर उपनिवेश की स्थिति देने वाला एक संविधान १९२२ मे अंगीकृत किया गया। चूंकि यह संविधान असन्तोषजनक पाया गया, अतः कई अवसरो पर इसको संशोधित किया गया, लेकिन १९३२ मे एक नई घटना यह हुई कि डी वेलेरा (De Valera) सत्ताधारी हो गया। तब आयरलैंड में एक नया संविधान लागू हुआ जिसको १ जुलाई, १९३७ को लोकमत संग्रह द्वारा स्वीकृति प्राप्त हुई थी। दूसरे महायुद्ध मे आयरलैंड निष्पक्ष रहा व अप्रैल १९४९ में उसने ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल को त्यागकर गणतन्त्र स्वरूप ग्रहण किया।

प्रस्तावना (Preamble)—भारतीय संविधान की तरह, आयरलैंड के संविधान की भी प्रस्तावना है। इसमे बुद्धिमत्ता, न्याय व अनुदान के आदर्शों को स्थान दिया गया है। प्रस्तावना मे कहा गया है : "अत्यन्त पवित्र त्रिमूर्ति के नाम मे जिसमे सारी सत्ता निहित है जिसको अन्तिम लक्ष्य के स्वरूप मे सारे कार्य समर्पित है और जिसके प्रति राज्य व व्यक्ति के सारे कार्यों का लक्ष्य है, हम आयरलैंड के लोग विनम्रतापूर्वक यह स्वीकार करते है कि हम अपने सारे कृत्यों के लिए ईसा मसीह के प्रति कर्तव्यबद्ध है जिसने हमारे पूर्वजों को शताब्दियों तक सहायता दी और जिन्होंने राष्ट्रों की अधिकारपूर्ण स्वाधीनता लेने तथा सामान्य हित को प्रोत्साहन आदि देने के लिए अपने वीरतापूर्ण कार्य व सतत संग्राम के महान् परीक्षाकाल में धैर्य के साथ कार्य किया।"

मूल अधिकार (Fundamental Rights)—भारतीय संविधान की तरह आयरलैंड के संविधान मे भी मूल अधिकारो की चर्चा की गई है। जिन अधिकारों को मौलिक मान कर उनकी प्रतिभूति की गई है वे हैं भाषण की स्वतन्त्रता, संघ की स्वतन्त्रता, संस्थाओं की स्वतन्त्रता, पूजन की स्वतन्त्रता, शान्ति के साथ सम्मेलन की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रता का अधिकार। लोक शांति व नैतिकता को देखते हुए अन्तःकरण व धर्म की स्वतन्त्रता को भी मान्यता दी गई है। राज्य ने परिवार को आधारभूत सामाजिक इकाई माना है और विवाह को मूल संस्था घोषित किया है। राज्य ने विवाह को विशेष सावधानी के साथ सुरक्षित करने का वचन दिया है। परिवार के अधिकारों को सविनय विधि की अपेक्षा पवित्र, पुराना व उत्तम बताया गया है। उनकी अवहेलना को रोकने की सुरक्षा दी गई है। संविधान ने माता-पिताओं को यह भी निर्देश दिया है कि वे अपने बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करें। प्राथमिक शिक्षा देना राज्य का काम है। कैथोलिक चर्च को विशेष स्थिति प्रदान की गई है। लेकिन अन्य धार्मिक संस्थाओं को भी मान्यता दी गई है। संविधान में यह

भी कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को निवास का अधिकार प्राप्त है और केवल वैधानिक रीति से ही किसी व्यक्ति के इस अधिकार को प्रतिबंधित किया जा सकता है।

राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy)—भारत की तरह आयरलैंड के संविधान में भी राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। उनका लक्ष्य संसद् व न्यायालयों का मार्गदर्शन करना है। ऐसे सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

(i) सम्पत्ति का न्यायपूर्ण वितरण।
(ii) व्यक्तिगत लाभ की जगह सार्वजनिक हित के हेतु साख का नियन्त्रण।
(iii) सब नागरिकों को जीविका के उचित साधनों की प्रतिभूति।
(iv) भूमि पर आर्थिक सुरक्षा के हेतु परिवारों की व्यवस्था।
(v) विधवाओं, असहायों, वृद्धों व अयोग्यो के हितों की सुरक्षा।

यह देखने की चीज है कि यह सिद्धान्त अनिवार्य नहीं है और इसलिए न्यायालय उन्हें मान्य नहीं घोषित कर सकते।

कार्यपालिका (Executive)—आयरलैंड के स्वतन्त्र राज्य की प्रधान कार्यपालिका प्रेज़ीडेंट है। उसका सात वर्षों के कार्यकाल के लिए जनता द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव होता है। परन्तु उसका पुनः निर्वाचन भी हो सकता है। वह राज्य की सैनिक सत्ता का प्रधान भी है। वह डायल (Dial) द्वारा मनोनीत व्यक्ति को प्रधान मन्त्री नियुक्त करता है। प्रधान मन्त्री की राय पर वह अन्य व्यक्तियों को मन्त्री के रूप में नियुक्त व अपदस्थ करता है। वह डायल की बैठकें बुलाता व उनको भंग करता है। संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित बिलों को स्वीकृति देता है। क्षमा प्रदान करता है। कानून के नियन्त्रण के पालनानुसार सैनिक शक्ति के प्रधान सेनापति के रूप में कार्य करता है। वह अन्य कार्य भी करता है जो संविधान द्वारा उसे सौंपे जावे। वह कैबिनेट की राय पर किसी बिल को सुप्रीमकोर्ट के सम्मुख भेज सकता है और यदि सुप्रीमकोर्ट उसे अवैध बताये तो उसे अपनी अनुमति देने से इन्कार कर सकता है। यदि सैनिट का बहुमत तथा डायल के $\frac{1}{3}$ सदस्य उससे बिल पर स्वीकृति न देने का निवेदन करें तो वह बिल को जनमत संग्रह के लिए भेज सकता है या आम चुनाव के आदेश जारी कर सकता है। वह कौंसिल आफ स्टेट में सात सदस्यों को नियुक्त कर सकता है। साधारणतः वह अपनी कैबिनेट के परामर्श पर कार्य करता है। लेकिन कुछ अवसरों पर वह कौंसिल आफ स्टेट का परामर्श भी ले सकता है जिसमें प्रधान मन्त्री, उप-प्रधान मन्त्री, प्रधान जज, संसद् के सदनों के अध्यक्ष, महाधिवक्ता तथा कुछ अन्य सदस्यगण होते हैं। अपने सर्वोच्च विवेक के अनुसार वह उस प्रधान मन्त्री के परामर्शानुसार डायल को भंग करने से इन्कार कर सकता है जिसके प्रति अविश्वास का प्रदर्शन हो चुका है।

संसद् (Legislature)—आयरलैंड की संसद् में प्रेज़ीडेंट व दो सदन डायल व सैनिट हैं। डायल में १४७ सदस्य हैं जिनका चुनाव जनता द्वारा होता है और सर्व-

व्यापी प्रौढ़मताधिकार के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व व एकल सक्राम्य मत प्रणाली का प्रयोग होता है। डायल का कार्यकाल पाँच वर्ष है। लेकिन प्रधान मन्त्री के परामर्श पर प्रेजीडेंट इसे पहले भी भग कर सकता है। कुछ अवसरो पर प्रेजीडेंट इस परामर्श को अस्वीकार भी कर सकता है। डायल को ही अपना प्रधान मन्त्री मनोनीत करने का अधिकार है। ऐसी शक्ति किसी अन्य राज्य के विधान मण्डल को प्राप्त नही है। प्रधान मन्त्री द्वारा चुने मन्त्रियों की सूची भी डायल द्वारा स्वीकृत की जाती है। इसे धन बिल के ऊपर पूरा अधिकार है। डायल से पास होकर २१ दिनो के भीतर वह धन बिल कानून बन जाता है चाहे उसे सैनिट ने स्वीकार किया हो या नही। संविधान मे सशोधन शुरु करने का अधिकार भी केवल डायल ही को है।

संसद् के उच्च सदन का नाम सैनिट है। इसमे ६० सदस्य है जिनमे ४६ सदस्यो का चुनाव होता है और ११ को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। ६ निर्वाचित सदस्य आयरलैंड के विश्वविद्यालयो का प्रतिनिधित्व करते है। शेष ४३ सदस्यो का चुनाव व्यक्तियो के पाँच पैनलों द्वारा होता है जो राष्ट्र के विभिन्न कार्यों तथा हितो का प्रतिनिधित्व करने के लिए आते है। ऐसे राष्ट्रीय हित व कार्य इस प्रकार है :

(i) राष्ट्रीय भाषा, संस्कृति, साहित्य, कला, शिक्षा व ऐसे अन्य राष्ट्रीय हित जो पैनल के उद्देश्य के लिए बताए जावे।

(ii) कृषि, मत्सल, व तत्सम्बन्धी वस्तुएँ।

(iii) संगठित या असंगठित श्रम।

(iv) उद्योग व व्यापार—बैंकिंग, मुद्रा, इंजीनियरिंग, बही-खाता तथा भवन निर्माण कला।

(v) लोक प्रशासन तथा समाज सेवाएँ।

सैनिट के चुनाव के लिए सारे देश को एक निर्वाचन क्षेत्र माना जाता है। सैनिट व डायल के सदस्यों का कार्यकाल समान है। डायल के भग होने के बाद ६० दिनों के बाद सैनिट का आम चुनाव होना चाहिए।

जहाँ तक संसद् के दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध की बात है, डायल को वित्त पर पूरा अधिकार है। वित्तीय बिल केवल डायल में प्रस्तावित किए जा सकते है। यदि डायल द्वारा वित्तीय. बिल प्रस्तावित· कर दिया जावे, तो २१ दिनों के भीतर वह कानून बन जाता है चाहे उसे सैनिट ने स्वीकार किया हो या नही। स्पष्ट है कि इस दिशा में सैनिट किसी वित्तीय बिल को २१ दिनों तक ही रोक सकती है। डायल का अध्यक्ष ही यह बता सकता है कि अमुक बिल धन बिल है या नही। लेकिन उसके निर्णय या अपील विशेषाधिकार समिति मे हो सकती है जिसमे दोनों सदनो के समान सदस्य होते हैं तथा जिसका सभापतित्व सुप्रीमकोर्ट का एक जज करता है।

जहाँ तक अवित्तीय बिल का विषय है, दोनों सदनो की शक्तियाँ समान है। ऐसे बिल किसी भी सदन मे प्रस्तावित किए जा सकते हैं। जब तक दोनों सदनो से बिल पास न हो जावे, वह कानून का रूप ग्रहण नही कर सकता। यदि डायल के पास किए बिल को सैनिट को अस्वीकार कर दे, तो डायल उसे सैनिट में भेजने के ९० दिनों के बाद

और इस अवधि के बाद १६१ दिनों के भीतर उसे कानून का रूप दिला सकती है। यदि प्रधान मन्त्री यह प्रमाणित कर दे कि वह बिल बहुत जरूरी है और यदि कौन्सिल आफ स्टेट से परामर्श लेने के बाद प्रेज़ीडेंट इससे सहमत हो जावे तो डायल उसके पास होने के समय को घटाकर ९० दिन कर सकती है। इस तरह डायल किसी बिल को अत्यन्त जरूरी बताकर व उसे भेजकर ९० दिनों के भीतर सैनिट की स्वीकृति के बिना उसे पास कर सकती है।

संसद् से पास हो जाने के बाद सभी बिल प्रेज़ीडेंट के पास स्वीकृति के हेतु जाते है। साधारणतः वह अपनी रोको शक्ति का प्रयोग नही करता है लेकिन अवित्तीय बिलो तथा संवैधानिक सशोधन के प्रस्तावों पर वह कौंसिल आफ स्टेट व सुप्रीम कोर्ट से कानूनी राय ले सकता है और फिर ३० दिनों के भीतर उस पर अपना निर्णय दे सकता है। यदि सुप्रीम कोर्ट निर्णय दे कि वह बिल असंवैधानिक है तो वह अपनी स्वीकृति न देकर उसे कानून का रूप धारण करने से रोक सकता है।

लोकमतसग्रह की भी आयरलैण्ड मे व्यवस्था है। यदि कोई बिल ऐसा है कि जिसका उद्देश्य संविधान मे सशोधन करना न हो और जिसे ससद् ने दोनो सदनों मे विरोध के बाद भी पास कर दिया हो तो प्रेज़ीडेण्ट से एक याचना द्वारा यह माँग की जा सकती है कि उसे स्वीकृत न करे। यदि सैनिट के आधे से अधिक और डायल की १/३ सख्या ऐसी माँग करे तो प्रेज़ीडेण्ट पहले कौसिल आफ स्टेट की राय लेगा और उस पर अपनी स्वीकृति तब तक नही देगा जब तक कि जनता उसे अपने बहुमत से स्वीकार न कर ले या जब तक भंग होने पर आम चुनाव के बाद डायल उसे पुन: पास न कर दे।

न्यायपालिका (Judiciary)—सविधान के अनुसार, आयरलैण्ड मे न्याय कार्य करने के लिये न्यायालय व जज है जिन्हे सरकार की राय पर प्रेज़ीडेण्ट नियुक्त करता है। सर्वोच्च न्याय शाखा सुप्रीम कोर्ट है जिसमे एक प्रधान जज व चार सहायक जज होते हैं। इसे मौलिक व अपील सम्बन्धी क्षेत्राधिकार प्राप्त है। उच्च न्यायालय के फैसलो और क्षेत्रीय न्यायालयों के फैसलों से उत्पन्न वैधानिक समस्याओं पर अपील सुप्रीम कोर्ट मे होती है। इसे वैधानिक समस्याओ पर यदि कहा जाय तो प्रेज़ीडेण्ट को भी परामर्श देना पड़ता है।

उच्च न्यायालय मे एक प्रधान जज व छ सहायक जज होते है। प्रधान जज को सुप्रीम कोर्ट में भी पदेन सदस्यता प्राप्त होती है। इसे दीवानी व फौजदारी के मुकद्दमों पर निर्णय करने का पूरा अधिकार है। विधि की वैधानिकता निश्चित करने मे सभी प्रश्नो पर निर्णय देने मे उसे पूर्ण मौलिक अधिकार. प्राप्त है. [illegible] न्यायालयो से आने वाले फैसलों पर इस मे अपील [illegible] ।

फौजदारी अपील के न्या[illegible]
लय के जज होते हैं। यदि कोई वि[illegible]
अन्यथा इसके फैसलों पर अपीलें की[illegible]

क्षेत्रीय व जिले के न्यायालयों का क्षेत्राधिकार स्थानीय व सीमित है। अपने कर्तव्यों का सम्पादन करने में इनके जज स्वतन्त्र है। उनके कार्यकाल में उनकी वृत्तियों में कमी नही की जा सकती। केवल संसद् तथा किसी जज के विरुद्ध अयोग्यता या दुर्व्यवहार का प्रस्ताव पास हो जाने ही पर ही उसे हटाया जा सकता है।

संशोधन विधि (Method of Amendment)—केवल डायल ही संशोधन का प्रस्ताव शुरू कर सकती है। दोनों सदनों से प्रस्ताव पास हो जाने के बाद उसे जनता की स्वीकृति के हेतु प्रस्तुत किया जाता है। जब जनमत बहुमत से उसे स्वीकार कर लेता है, तभी वह बिल वैधानिक रूप धारण कर लेता है।

स्थानीय प्रशासन (Local Government)—स्थानीय प्रशासन के हेतु गणराज्य को २७ प्रशासकीय जिलो मे बांटा गया है। चार काउन्टी बारो भी है। उनकी परिषदें हर तीन साल बाद बनती है। ये परिषदें अपने क्षेत्रीय विषयो का प्रबन्ध करती है। प्रशासकीय काउन्टियों में नागरी काउन्टियाँ भी आ जाती हैं, जिनका कार्य सफाई करना है। वहाँ लगभग ६० सफाई के जिले है और २८ छोटे-छोटे नगर है। इस तरह नगरपालिका प्रबंध की दृष्टि से कुल ८८ संस्थाएँ है। इनका प्रबन्ध निर्वाचित परिषदें करती हैं जिनमे प्रबन्धक होते है। यह कार्य एक केन्द्रीय समिति का है कि वह इन संस्थाओं के कार्यकारिणी पदो पर उपयुक्त व्यक्तियो की नियुक्तियाँ करावे।

राजनीतिक दल (Political Parties)—आयरलैंड मे चार महत्त्वपूर्ण दल है—Fianna Fail Party, Fine Gael Party, Labour Party और Sinn Fein Party। जिन में फियाना दल ही सत्ताधारी है। १९२७ मे डी वेलेरा ने इसका निर्माण किया था। इसका मुख्य ध्येय देश की आर्थिक समस्याओ जैसे बेकारी का निवारण करना है। यह यूरोप के स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष मे भी है। यह देश की गणतन्त्रीय सेना का विरोधी है। यह निजी सेनाओ को जनता की स्वतन्त्रता पर आघात समझता है। यह शान्तिपूर्ण रीतियों से समस्याओं को हल करना चाहता है। विरोध मे फाइन गेल पार्टी सबसे आगे है। इसका लक्ष्य है कि आयरलैंड के दोनों भागो को मिला दिया जाय तथा राज्य के आर्थिक साधनों का विकास हो। श्रम दल अधिक शक्तिशाली नही है। इसके काफी सदस्य फियाना फेल पार्टी मे जा मिले है। एक समय था जब कि श्रम दल सधि द्वारा समझौते के पक्ष में था, लेकिन अब उसका लक्ष्य परिवर्तित हो गया है। सिन फेन पार्टी देश की सबसे पुरानी पार्टी है। यह ग्रेट ब्रिटेन से कोई सम्बन्ध रखना नही चाहती। यह आयरलैण्ड के दोनों भागो को मिला देना चाहती है।

अध्याय ३७

बर्मा का संविधान

(CONSTITUTION OF BURMA)

बर्मा का संविधान जो १९४८ में लागू हुआ, मार्च १९६२ तक चालू रहा जब कि जनरल ने विन ने उसे समाप्त कर दिया, अब देश का शासन सैनिक आदेशों के अनुसार चल रहा है।

बर्मा का कुल क्षेत्र २,६२,७३२ वर्गमील है और इसकी कुल जनसंख्या लगभग १७० लाख है। बर्मा संघ में केन्द्रीय बर्मा, शान राज्य, काचिन राज्य, करेनी राज्य तथा दो विशेष क्षेत्र हैं—काउ-थू-ले क्षेत्र व चिन क्षेत्र। बर्मा के पहाड़ी लोगों में करेंस सबसे आगे है और वे अराकान योमा, पेगू, योमा तथा करेनी प्रदेश में रहते हैं। धर्म की दृष्टि से बहुत से करेनी लोग ईसाई हैं, जबकि केन्द्रीय बर्मा में रहने वाले अधिकतर लोग बौद्ध है। यह दो विशेष क्षेत्र किसी खास राज्य के तुल्य नहीं, बल्कि वे काफी सीमा तक क्षेत्रीय स्वतन्त्रता का आनन्द लेते हैं। एक चिन विषय सम्बन्धी परिषद् है जिसमे चिन के सारे संसदीय प्रतिनिधिगण सदस्य होते है। इस परिषद् से परामर्श कर, प्रधान मन्त्री एक व्यक्ति को चिन विषय-सम्बन्धी मन्त्री नियुक्त करता है। शिक्षा व सांस्कृतिक मामलों से सम्बन्धित क्षेत्रों मे यह मन्त्री नियन्त्रण, निर्देशन व निरीक्षण की सामान्य शक्ति का प्रयोग करता है। वह केन्द्रीय सरकार के आधीन कार्य करता है।

संविधान दो व्यवस्थापिका की सूचियां रखता है—केन्द्रीय सूची व राज्य सूची। राज्य सूची में ऐसे विषय है जैसे शिक्षा, सफाई, स्थानीय प्रशासन, कृषि, पुलिस, भूमि-सुधार इत्यादि। राष्ट्रीय महत्व के सारे विषय केन्द्रीय सूची में हैं। केवल केन्द्रीय सरकार ही सैनिक व्यवस्था रख सकती है। यह शक्ति किसी भी अन्य राज्य या क्षेत्र को प्राप्त नहीं है। अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्रीय सरकार को प्राप्त हैं। केवल एक प्रस्ताव पास करके किसी राज्य का विधान मण्डल केन्द्रीय सरकार को अपनी शक्तियाँ हस्तान्तरित कर सकता है।

बर्मा का संविधान एकात्मक अधिक लेकिन संघात्मक कम है। संविधान प्रान्तों को क्षेत्रीय स्वतन्त्रता बहुत कम देता है जो व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्षेत्रों मे केन्द्र, से बहुत निकट रूप से बँधे हुए हैं। प्रत्येक प्रान्त अपने स्थानीय प्रशासन पर नियन्त्रण करता है। प्रान्तों की व्यवस्थापन सत्ता भी अत्यन्त सीमित है। उनके बजट भी केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रणाधीन हैं। किसी भी राज्य के पास स्वतन्त्र न्यायपालिका नहीं है और उसकी परिषद् द्वारा पारित कानून को प्रेज़ीडेंट ही लागू करता है। संविधान ने यह भी अधिकार दिया है कि कोई प्रान्त अपने को संघ से बाहर कर ले, लेकिन इस विषय मे नियन्त्रण इतने कठोर है कि कोई भी प्रान्त इस

शक्ति का प्रयोग ही नही कर सकता। सत्ताधारी लोगो ने सदैव यह आग्रह किया कि इस अधिकार का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व है और इसलिए इसका प्रयोग हो ही नही सकता। प्रान्तीय परिषदें वस्तुतः केन्द्रीय संसद् की समितियां हैं और उनके कार्यपालिका अध्यक्ष की केन्द्रीय सरकार के मन्त्री होने के नाते ऐसे प्रयत्न करते हैं, जिससे केन्द्र का प्रान्तों पर प्रभुत्व बना रहे। आर्थिक अनुदान देकर भी केन्द्रीय सरकार प्रान्तों पर अपने नियन्त्रण को बढ़ा सकती है।

निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles)—भारत की तरह बर्मा के सविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की व्यवस्था की गई है। यद्यपि इन सिद्धान्तों को न्यायालय लागू नही कर सकते, किन्तु उनका ध्येय सत्ताधारी सरकार को मार्गदर्शन कराना है। इन सिद्धान्तों ने सकेत किया है कि केन्द्र की आर्थिक व्यवस्था का ऐसा संचालन होगा जिससे लोगों की आर्थिक समृद्धि, भौतिक कल्याण तथा सास्कृतिक स्तर का उत्थान हो। संघ की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखना है और उसकी सुरक्षात्मक शक्ति को बढ़ाना है। राज्य ऐसी आर्थिक संस्थाओ को भी सहायता देगा जो व्यक्तिगत लाभ के लिए न हों। सहकारी व इसी प्रकार की संस्थाओं को सहयोग देना भी संघ का कार्य है। राज्य अपनी नीति का ऐसा सचालन करेगा जिससे लोक-उपयोगिता की संस्थाओ या लोक सहकारी संगठनो को लाभ पहुँचे। राज्य को ऐसे प्रयत्न भी करना है जिससे उसके, स्थानीय संस्थाओं या लोक सस्थाओं द्वारा प्राकृतिक साधनों के शोषण का विकास हो। राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा, जिससे अयोग्य होने पर सेवा से अवकाश-प्राप्त व्यक्तियो को नि:शुल्क व्यावसायिक प्रशिक्षण या रोजी प्राप्त हो सके। असहायों व युद्ध मे मारे गए व्यक्तियों के बच्चो को राज्य सहायता देगा।

मूल अधिकार (Fundamental Rights)—भारत की तरह बर्मा का सविधान भी मूल अधिकारों की व्यवस्था करता है जैसे—स्वतन्त्रता, समानता, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, आर्थिक कार्यो व अधिकारों की सुरक्षा की स्वतन्त्रता इत्यादि। बर्मा में अव्यवस्थित दशाएँ होने के कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अधिकार पर काफी सीमाएँ लगी रही हैं। धार्मिक स्वतन्त्रता दी गई है, लेकिन यह बताया जाता है कि धर्म का उपयोग राजनीतिक ध्येयों के हेतु नही किया जा सकता। कोई ऐसा धार्मिक कार्य भी नही किया जा सकता जिससे विभिन्न समुदायों के बीच फूट, ईर्ष्या, द्वेष आदि फैले। केवल वैधानिक रीतियो के प्रयोग से ही किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीनी जा सकती है। संसद् भी ऐसा कानून बना सकती है जिससे व्यक्तियो की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता परिसीमित हो जावे। कुछ शर्तो के साथ सम्पत्ति का अधिकार भी दिया गया है। लेकिन सम्पत्ति के अधिकार का कोई भी व्यक्ति ऐसा प्रयोग नही कर सकता जिससे जनसाधारण को हानि पहुँचे। इसीलिए व्यक्तिगत एकाधिकारी संगठनो, जैसे कार्टेल, सिंडीकेट व ट्रस्ट जिनका लक्ष्य बाजार पर कब्जा जमाना व मनमानी कीमतें निर्धारित करना होता है या जिनसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को क्षति पहुँचती है, को अवैध कर दिया गया है। केवल युद्ध या क्रान्ति के समय को छोड़कर अन्य सभी दशाओ मे व्यक्ति अपने मूल अधिकारों की रक्षा करने के लिए सुप्रीम कोर्ट से याचना कर सकते हैं। किसी भी आधार पर

बड़ी सम्पत्ति नही रखी जा सकती। देश में परिस्थितियों के अनुकूल कानून द्वारा व्यक्तिगत सम्पत्ति की सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं।

प्रेज़ीडेंट (President)—बर्मा का औपचारिक अध्यक्ष प्रेज़ीडेंट है। उसका चुनाव गुप्त मतदान द्वारा संसद् के दोनों सदन अपनी संयुक्त बैठक मे करते हैं। उसका चुनाव पाँच वर्षों के लिए किया जाता है, यद्यपि उसका पुनर्निर्वाचन भी किया जा सकता है। लेकिन वह तीसरी बार चुना नही जा सकता। प्रेज़ीडेंट के पद पर वही चुना जा सकता है जो बर्मा में पैदा हुआ हो या जिसके माता-पिता बर्मा में पैदा हुए हों। गद्दारी, संविधान का उल्लघन, महान् दुर्व्यवहार के दोष पर प्रेज़ीडेंट को महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है। दोषारोपण एक सदन द्वारा होगा और उसका परीक्षण दूसरा सदन करेगा। ऐसा प्रस्ताव ⅔ बहुमत से पास होना चाहिए। यदि ऐसा प्रस्ताव पास हो जावे तो प्रेज़ीडेंट को हटना पड़ेगा। उप-राष्ट्रपति के चुनाव के विषय में कोई व्यवस्था नहीं है लेकिन यदि प्रेज़ीडेंट का पद रिक्त हो जाय तो यह कार्य एक आयोग द्वारा होगा जिसमें संघ का प्रधान जज तथा संसद् के दोनों सदनों के अध्यक्ष होंगे।

साधारणतः मन्त्रिपरिषद् की राय पर प्रेज़ीडेंट संघ का प्रशासन करता है। वह प्रधान मन्त्री तथा उसके सहयोगियों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता, लेकिन कुछ दशाओं मे उसे कैबिनेट की स्वीकृति या राय लेने की आवश्यकता नही। चैम्बर आफ डिपुटीज के मनोनीत व्यक्ति को प्रेज़ीडेंट प्रधान मन्त्री नियुक्त करता है। यदि प्रधान मन्त्री की संसद् में हार हो जाय और वह प्रेज़ीडेंट को संसद् भंग करने की राय दे, तो प्रेज़ीडेंड उस राय के विरुद्ध भी कार्य कर सकता है। लेकिन ऐसी हालत में उसे तुरंत लोकप्रिय सदन से किसी अन्य व्यक्ति को मनोनीत करने का आग्रह करना पड़ेगा और यदि १५ दिनों के भीतर यह सदन ऐसा न कर सके तो फिर सदन को ही वह भग कर देगा। संसद् की सहमति के बिना प्रेज़ीडेंट युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता। लेकिन संघ की सुरक्षा के हेतु सरकार कुछ प्रारम्भिक प्रयत्न कर सकती है और संसद् की सहमति पाने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र बैठक बुलाना पड़ेगी। संसद् की सयुक्त बैठक की स्वीकृति से ही वह सुप्रीमकोर्ट व हाईकोर्ट के जजों को नियुक्त करता है। यह स्पष्ट है कि जब कैबिनेट को सदन का विश्वास प्राप्त हो और वह कार्य कर रही हो तो प्रेज़ीडेंट कैबिनेट के परामर्श के अनुसार कार्य करता है, अन्यथा उसे शासन को अपने हाथ मे लेने तथा अपने विवेक के अनुसार कार्य करने का अधिकार है।

मन्त्रिमण्डल (Ministry)—इंगलैंड, भारत या श्री लंका की तरह बर्मा मे मन्त्रिमण्डलात्मक व्यवस्था नही है। प्रेज़ीडेंट को यह अधिकार नही कि वह बहुमत वाले दल के नेता को प्रधान मन्त्री बनाये। यह तो चेम्बर आफ डिपुटीज का काम है कि वह प्रधान मन्त्री को मनोनीत करे। प्रधान मन्त्री प्रेज़ीडेंट को इस बात पर बाध्य नही कर सकता कि वह लोकप्रिय सदन को भंग कर दे। प्रधान मन्त्री की राय पर प्रेज़ीडेंट लोकप्रिय सदन को भंग कर सकता है और नही भी। यह ठीक है कि संविधान सामूहिक उत्तरदायित्व की चर्चा करता है, लेकिन यह कहना कठिन है कि मन्त्रियों का ऐसा उत्तरदायित्व व्यवहार मे क्या हो सकता है। इसका कारण यह है कि तीन मन्त्रीगण जो

करेन राज्य, शान राज्य व काचिन राज्य का प्रतिनिधित्व करते है, वे उन राज्यों की परिपदों ही के परामर्श से चुने जाते है। राज्य की परिपद् मे वे ही सदस्य होते है जो उस राज्य के संसदीय प्रतिनिधि होते हैं। यह भी आवश्यक नही कि प्रत्येक राज्य परिपद् मे उसी दल का बहुमत हो जिस का नेता प्रधान मन्त्री है। प्रधान मन्त्री अपनी सरकार के किसी व्यक्ति से त्यागपत्र देने को कह सकता है। लेकिन यदि वह मन्त्री ऐसा करने से इन्कार कर दे, तो प्रधान मन्त्री की राय पर उसे प्रेज़ीडेंट हटा सकता है।

चैम्बर आफ डिपुटीज (Chamber of Deputies)—बर्मा की ससद् द्विसदनात्मक है—चैम्बर आफ नेशनेल्टीज तथा चैम्बर आफ डिपुटीज। चैम्बर आफ डिपुटीज मे लगभग २५० सदस्य है जिन्हे सर्वव्यापी प्रौढ मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा चुना जाता है। प्रत्येक नागरिक, जिसने १८ वर्ष की आयु पूरी कर ली है और दीवालियापन, पागलपन या अपराधी न होने पर कानून द्वारा ऐसा नही ठहराया गया है तो उसे वोट देने का अधिकार प्राप्त है। वोट गुप्तदान द्वारा होता है। किसी समय पर किसी निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाने वाले सदस्यो तक जनसख्या के बीच अनुपात वही होगा जो पिछली जनगणना के समय हुआ, परन्तु चिन राज्य व करेनी राज्य के विषय में कुछ अन्तर जरूर कर दिया गया है, जहाँ अनुपात को अधिक बढा दिया गया है।

चैम्बर आफ नेशनेल्टीज (Chamber of Nationatlities)—इस सदन मे १२५ सदस्य हैं जिनमें २५ स्थान शान राज्य के, १२ काचिन राज्य के, ८ चिन के विशेष क्षेत्र के, ३ करेनी राज्य के, २८ करेन वालो के और शेष स्थान बर्मा के अवशेष संघ के हैं। शान व करेनी राज्य के सारे प्रतिनिधि उन राज्यों के प्रधानों द्वारा चुने जाते हैं, लेकिन वे स्वयं चैम्बर आफ डिपुटीज में नहीं बैठ सकते।

सिवाय धन विधेयको के, व्यवस्थापन के क्षेत्र मे दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। धन बिल पहले छोटे सदन ही मे पेश होगा और वहाँ से पास हो जाने पर सिफारिश के लिए बड़े सदन मे जायेगा। यदि बड़ा सदन धन बिल को २१ दिनों के भीतर पास नही करता या उसकी बताई हुई सिफारिशें छोटे सदन को पसन्द नही तो वह बिल ३ सप्ताह के बाद स्वत. कानून बन जावेगा। यह चीज दिखाती है कि चैम्बर आफ नेशनेल्टीज धन बिल को अधिक से अधिक तीन सप्ताह तक रोक सकता है। अन्य प्रकार के बिलो को किसी भी सदन मे प्रस्तावित किया जा सकता है। यदि एक सदन बिल पास कर दे, लेकिन दूसरा उसे पास न करे या किसी प्रकार दोनों के बीच संघर्ष हो जाय तो प्रेज़ीडेंट दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलावेगा और फिर संयुक्त बैठक में बहुमत निर्णय मान्य होगा। स्पष्ट है कि छोटा सदन बड़े सदन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है क्योंकि सविधान की ११५ वी धारा ने भी कहा है कि मन्त्रि-परिपद् सामूहिक रूप से इसी सदन के प्रति उत्तरदायी होगी।

जहाँ तक बर्मा संघ मे राज्यों के प्रबंध का विषय है, प्रत्येक राज्य का अपना विधान मण्डल है जिसे राज्य परिपद् कहते है। प्रत्येक राज्य परिपद् मे वही व्यक्ति सदस्य होते हैं जो वहाँ से ससद् में जाते हैं। सर बी० एन० राव के अनुसार, जिसे केन्द्रीय

ससद् के राज्य समिति कहा जावे वही केवल राज्य के विषयों के लिए राज्य का विधान-मण्डल है। यह स्मरणीय होगा कि जैसे ब्रिटिश पार्लियामेंट में केवल स्काटलैण्ड से सम्बन्धित बिलो को स्काट सदस्यों की ग्रांड कमेटी मे भेज दिया जाता है, वैसे ही बर्मा मे किया गया है। जैसे स्काटलैंड के मामलों को देखने के लिए ब्रिटिश कैबिनेट में एक सेक्रेट्री होता है, उसी तरह बर्मा की कैबिनेट मे प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि होता है।

बर्मा मे लोकतन्त्र की असफलता के कई कारण है। ज्यों ही १९४८ में बर्मा स्वतन्त्र हुआ, देश में गृह-युद्ध छिड़ गया और यद्यपि वह १९५१ मे समाप्त हो गया, फिर भी छुपे हुए साम्यवादियो तथा जातीय अल्पमतो के संघर्षो के कारण आन्तरिक शान्ति न हो सकी। जातीय अविश्वास होने के कारण बर्मा मे साम्प्रदायिक फूट बनी हुई है। वहाँ १६० लाख बर्मा वाले, ४० लाख शान, करेन्स, काचिस, मोस, चिन्स व अराकानीज हैं। केन्द्रीय सरकार व सेना के ऊपर बर्मा वालों का प्रभुत्व है और इसीलिए अल्प-संख्यक वर्गो ने इसका विरोध किया है। अल्पसख्या वाले क्षेत्रों मे भी बर्मा वालो का ज़ोर अधिक है। जातीय अल्पसंख्यको के विरुद्ध सरकारी नौकरियों व वृत्तियों के विषय में भेदभाव चल रहा है। प्रत्येक व्यक्ति को बर्मी भाषा सीखनी पड़ती है जबकि अल्पसंख्यकों की भाषा को रंगून विश्वविद्यालय तक में स्थान प्राप्त नही है। जब १९६१ में बर्मा में बौद्ध राज्य की स्थापना हुई तो अल्पसंख्यकों ने उसका घोर विरोध किया। काचिन्स वालों ने १९६० की बर्मा-चीन सीमा संधि का विरोध किया, जिसके अन्तर्गत बर्मा सरकार ने लगभग १०० वर्गमील का क्षेत्र चीन को दे दिया।

देश में व्यवस्था को बिगाड़ने में कम्युनिस्टों का भी बड़ा हाथ है। दूसरे महायुद्ध के तुरन्त बाद जबकि A. F. P. F. L. पार्टी की स्थापना हुई थी तो कम्युनिस्ट भी उसमें मिल गए। १९४६ में पार्टी में फूट पड़ गई और थाकिन सो के नेतृत्व मे रेड फ्लेग बलपूर्वक सत्ताधारी होने की आशा से पृथक् हो गया। १९४६ तक थान टून की अध्यक्षता मे व्हाइट फ्लेग कम्युनिस्ट लोग पार्टी का साथ देते रहे, पर वे भी अलग हो गए। उनका कहना था कि यह पार्टी साम्राज्यवादियों की कठपुतली बन गई है और इसलिए उसे हटा देना चाहिए। कम्युनिस्टों के दोनों दलों ने अन्य विद्रोहियों के साथ सरकार के विरुद्ध कार्य किये है।

दूसरी बात यह हुई कि जनरल ने विन ने ऊ नू की आन्तरिक सुरक्षा की नीति को संकट के साथ देखा। उसने कम्युनिस्टों तथा अन्य विद्रोहियों को पिछले सहयोगियों की तरह समझा। उसने यह नीति बनाई कि विद्रोहियो को सामने आ जाने का प्रलोभन दिया जाय और इसलिए उन्हें मुक्ति दे दी जावे। १९५८ में जनरल ने विन ने नगरों व ग्रामों में विद्रोहियो को दबाने के लिये जिन राष्ट्रीय सुरक्षा संगठनों का निर्माण किया था, ऊ नू ने उन्हे समाप्त कर दिया। यद्यपि उसने यह विरोध किया कि, अल्पसंख्यकों को संघात्मक शक्तियाँ दी जावें, लेकिन जिन नेताओं ने ऐसी मांग की, उनके साथ, वह दृढ़ता से न चल सका। १९६१ के जून में अल्पसंख्यकों के नेताओं की टोंगी मे एक सभा हुई जहां उन्होंने सरकार के संविधान को इस प्रकार बदलने पर जोर दिया कि केन्द्रीय

बर्मा व अन्य राज्यों के बीच समानता की स्थिति आ जाय। सरकार की परामर्शदात्री समिति के सामने ऊ नू ने यह प्रस्ताव रख दिए। इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर गौर करने के लिए फ़रवरी १९६२ मे उसने संघवाद पर एक राष्ट्रीय सभा की। जब मार्च १९६२ में जनरल ने विन ने शक्ति अपने हाथो में ली तो उसने बताया कि इस क्रान्ति का एक कारण यह भी था कि संघवाद की मॉग उठाकर अल्पसंख्यको ने राज्य की एकता को मिटाने का प्रयत्न किया था।

वर्तमान सरकार के सत्ताधारी होने का कारण उसका सेना पर कण्ट्रोल है। भाषण तथा प्रकाशन की स्वतन्त्रताओ को दबाकर जनरल ने विन की आधीनता में क्रान्तिकारी परिषद् ने अपनी शक्ति को दृढ बना लिया है। नए शासन की शक्ति इस तथ्य से विदित हो जाती है कि जब मार्च, १९६२ मे ऊ नू को गिरफ्तार किया गया तो लोक विरोध नही प्रदर्शित हुआ। इसी प्रकार जबकि बहुत से विरोधी दलों को सरकार ने दबाया, तो सरकार की कार्यवाही के विरुद्ध कोई तीव्र आवाज़ नही उठी। जब जुलाई १९६२ में रंगून विश्वविद्यालय के छात्रो ने विरोधी प्रदर्शन किए, तो विश्वविद्यालय ही को बन्द कर दिया गया।

अध्याय ३८

श्री लंका का संविधान

(CONSTITUTION OF CEYLON)

श्री लंका का सम्बन्ध ग्रेट ब्रिटेन से १७९६ से चला आ रहा है जबकि अंग्रेजों ने डचों से इस द्वीप को छीन लिया। कैंडी का राज्य डच लोगो का नही था और अंग्रेजों ने इसे १८१५ मे प्राप्त किया। १८०२ में उसे मुकुट द्वीप घोषित कर दिया गया। इसीलिए १९२० तक श्री लंका की यह स्थिति बनी रही और उसका प्रशासन परम्परागत व्यवस्थापिका व कार्यपालिका की परिषदें चलाती रहीं। कार्यकारिणी परिषद् के सारे सदस्य मनोनीत किए हुए व्यक्ति थे तथा उसमें अधिकारियो का बहुमत था। इसी प्रकार व्यवस्थापिका परिषद् मे भी अधिकारी वर्ग का बहुमत था, यद्यपि गैर अधिकारी वर्ग भी धीरे-धीरे बढता गया और १९१० के बाद इसमें कुछ निर्वाचित भाग भी मिल गया। १९२० में व्यवस्थापिका परिषद् का ऐसा निर्माण किया गया कि अधिकारी वर्ग पर गैर-अधिकारी वर्ग का बहुमत स्थापित हो गया क्यों कि ३७ सदस्यो में १९ सदस्य निर्वाचित होने लगे। फिर भी इस परिषद् को उन विषयों पर थोड़ा अधिकार प्राप्त था जिन्हें गवर्नर स्थाई महत्त्व की वस्तुएँ मानता था। १९२४ मे इस परिषद् की सदस्य संख्या बढाकर ४९ कर दी गई जिसमे १२ मनोनीत किए हुए अधिकारी थे, ३ मनोनीत किए हुए गैर-अधिकारी जन, २३ प्रादेशिक क्षेत्रों द्वारा निर्वाचित व्यक्ति और ११ साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा भेजे हुए सदस्य। लेकिन कार्यपालिका में कोई परिवर्तन नहीं हुआ जो गैर-उत्तरदायी बनी रही। गवर्नर के पास अपनी विशेष शक्तियाँ बनी रही।

देश में सुधारों की समस्या पर विचार करने तथा इस सम्बन्ध मे अपनी सिफारिशें देने के लिए १९२८ में ब्रिटिश सरकार ने डोनोफ़मूर कमीशन (Donoughmore Commission) की नियुक्ति की। इसने सिफारिश की कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व समाप्त कर दिया जाय और ज्ञान या सम्पत्ति की योग्यताओं को लगाए बिना मताधिकार सभी रहने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों को दे दिया जाय। सरकार ने इस सिफारिश को मान लिया तथा एक नए विधान की रचना हुई। स्टेट कौंसिल नामक व्यवस्थापिका मे ५० सदस्य नियत किए गए जिनका चुनाव प्रादेशिक क्षेत्रों द्वारा होना था, ८ व्यक्तियों को अल्पसंख्यको को प्रतिनिधित्व देने के लिए गवर्नर द्वारा मनोनीत होना था, तथा तीन अधिकारी भी थे जिन्हे बोलने का अधिकार दिया गया, लेकिन वोट देने का नहीं। राज्य परिषद् को लगभग पूर्ण अधिकार राष्ट्रीय वित्त के ऊपर मिल गया तथा सरकार के १० विभागों में से ७ के ऊपर उसे कानून बनाने की पूर्ण शक्ति भी मिल गई। सुरक्षा, विदेशी मामले, लोक सेवाएँ, कानून तथा वित्त को तीन अधिकारियो के आधीन रखा गया। सात मन्त्रियों तथा तीन अधिकारियों के संयोग से मन्त्रियों के बोर्ड का निर्माण हुआ। गवर्नर

को अपनी विशेष शक्तियाँ बनाए रखने की अनुमति मिल गई, यद्यपि उनका प्रयोग उसने बहुत कम किया।

मन्त्रियो के बोर्ड द्वारा तैयार किए हुए संविधान को जाँचने के लिए १६४४ मे ब्रिटिश सरकार मे सोलबरी आयोग (Soulbury Commission) की नियुक्ति की। आयोग ने कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनो के साथ सविधान को स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने भी कुछ परिवर्तन किए तथा जून १६४७ मे उसने औपनिवेशिक स्थिति (Dominion Status) देने की शर्त के साथ वचन भी दे दिया। इस प्रकार एक परिषद्-के-आदेश (Order-in-Council) द्वारा देश का एक नया सविधान लागू हुआ।

गवर्नर-जनरल (Governor General)—१६४६ के संविधान की धारा ४ मे कहा गया है कि गवर्नर-जनरल की नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट् द्वारा होगी तथा वह उसके प्रसाद से ऐसी शक्तियो व कार्यो का प्रयोग करेगा जो वह चाहे। वे सारी शक्तियाँ, अधिकार व कार्य जो सम्राट् या गवर्नर-जनरल को प्राप्त है, उनका प्रयोग इस प्रकार होगा जो उन परम्पराओ के अनुकूल हो जिनका उदाहरण इंगलैंड में मिलता है। फिर भी गवर्नर-जनरल के किसी कार्य या उदासीनता पर किसी न्यायालय में प्रश्न नही किया जा सकता और यह आपत्ति भी नही उठाई जा सकती कि उसने संविधान की अमुक धारा के अनुसार कार्य नही किया। धारा ५ के अनुसार उसे ८,००० पौड वार्षिक का वेतन मिलेगा। उसका वेतन राज्य की सचित निधि पर भारित होगा तथा उसके कार्यकाल मे इसे घटाया न जा सकेगा। इसी प्रकार धारा ६ के अनुसार उसके कार्यालय के किसी व्यक्ति का वेतन संसद् द्वारा निर्धारित किया जावेगा और वह राज्य की संचित निधि पर भारित होगा। वह सरकार का नाममात्र अध्यक्ष है और व्यावहारिक रूप मे वह अपनी किसी शक्ति का प्रयोग नही करता है। वह केवल परामर्शदाता के रूप मे ही अपनी सरकार के कार्यो मे हस्तक्षेप करता है। परन्तु १६५८ की गड़बड़ मे प्रधान मन्त्री ने उसे असाधारण शक्तियाँ प्रदान कर दी जिससे द्वीप की संकटमयी स्थिति पर काबू किया जा सके।

कैबिनेट (Cabinet)—संविधान के पांचवे भाग में कैबिनेट का वर्णन किया गया है। धारा ४५ के अनुसार कार्यपालिका शक्ति सम्राट् मे निहित रहेगी और उसका प्रयोग सविधान की धाराओं या प्रचलित विधि के अनुसार गवर्नर-जनरल द्वारा होगा। धारा ४६ के अनुसार एक कैबिनेट होगी जिसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा होगी जो राज्य के प्रशासन के निर्देशन, नियन्त्रण व संचालन का कार्य संभालेगी तथा सामूहिक रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी। कैबिनेट का अध्यक्ष प्रधान मन्त्री होगा तथा दो अन्य मन्त्री गण होंगे—एक न्याय का मन्त्री और दूसरा वित्त का मन्त्री। प्रधान मन्त्री सुरक्षा तथा विदेश सम्बन्ध का कार्य संभालेगा और वह इन के अतिरिक्त किसी अन्य विभाग को भी अपने आधीन ले सकेगा। उसके अलावा प्रत्येक मन्त्री उस विभाग का अध्यक्ष होगा जो उसे प्रधान मन्त्री द्वारा दिया जाये। १६५८ में अन्य मन्त्री थे—गृह, व्यापार तथा वाणिज्य, स्थानीय प्रशासन व सांस्कृतिक मामले, डाक, संचार व सूचना

यातायात व निर्माण शिक्षा, श्रम, भवन तथा समाज सेवाएँ, कृषि व खाद्य, भूमि व भूमि विकास, स्वास्थ्य, उद्योग तथा मछलियाँ।

धारा ४७ के अनुसार गवर्नर-जनरल अपने मन्त्रियों के संसदीय तथा विभागीय कार्यों में सहायता देने के लिए संसदीय सचिवों को नियुक्त कर सकता है। परन्तु संसदीय सचिवों की संख्या मन्त्रियों की संख्या से अधिक नहीं हो सकती। धारा ४८ के अनुसार सैनिट से दो से अधिक मन्त्री नहीं हो सकते जिनमें एक न्याय मन्त्री होना चाहिए। यदि संसदीय सचिवों की नियुक्ति होती है तो उनमें से सैनिट के दो से अधिक नहीं होने चाहिएँ। धारा ४६ के अनुसार प्रत्येक मन्त्री व प्रत्येक संसदीय सचिव केवल तभी तक पदारूढ़ रह सकेगा जब तक सम्राट् की कृपा बनी रहे। मन्त्री या संसदीय सचिव किसी भी समय अपना त्यागपत्र भी दे सकते हैं। यदि कोई मन्त्री या संसदीय सचिव संसद् के किसी सदन का सदस्य नहीं है तो उसे चार महीनों के भीतर ऐसी सदस्यता लेनी पड़ेगी अन्यथा उसे अपना स्थान छोड़ना पड़ेगा। यदि किसी समय कोई मन्त्री या संसदीय सचिव अपना काम करने योग्य न रहे तो गवर्नर-जनरल उसकी जगह किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है। चाहे वह पहले ऐसे पद पर रह चुका हो या नहीं। जब तक उसकी यह नियुक्ति चलती रहेगी तब तक वह इसी स्थिति में काम करता रहेगा। नियुक्ति होने पर ऐसे मन्त्री या संसदीय सचिव को गवर्नर जनरल के सामने पद की शपथ लेनी पड़ेगी या उसकी जगह उपयुक्त संकल्प लेना पड़ेगा।

धारा ५० के अनुसार एक कैबनिट सचिव होगा जिसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होगी। यह सचिव कैबिनेट कार्यालय को सँभालेगा तथा प्रधान मन्त्री द्वारा प्राप्त निर्देशों के अनुसार कैबिनेट की बैठकें बुलाएगा, उसकी कार्यवाही का प्रबंध करेगा, उसकी टिप्पणियाँ सुरक्षित रखेगा तथा कैबिनेट के आदेशों को सम्बन्धी अधिकारियों तक पहुँचावेगा।

धारा ५१ के अनुसार प्रत्येक मंत्रालय में एक स्थायी सचिव होगा जिसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होगी। अपने मन्त्री के सामान्य नियन्त्रण व निर्देशन के आधीन प्रत्येक स्थाई सचिव अपने आधीन विभागों पर नियन्त्रण का प्रयोग करेगा। लेकिन आडीटर जनरल, सैनिट के क्लर्क, प्रतिनिधि सभा के क्लर्क तथा कैबिनेट के क्लर्क के पदों को सरकार का विभाग नहीं कहा जावेगा। गवर्नर-जनरल किसी स्थाई सचिव को किसी अन्य विभाग में हस्तांतरित कर सकता है।

साधारणतया भारत व इंगलैण्ड की तरह श्री लंका का प्रधान मन्त्री प्रतिनिधि सभा के नेता के समान कार्य नहीं करता। प्रधान मन्त्री अपनी कैबिनेट में एक मन्त्री को प्रतिनिधि सभा का नेता और दूसरे को सैनिट का नेता नियुक्त करता है। परन्तु उन दोनों को प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में कार्य करना पड़ता है। प्रत्येक नेता को दल का नियन्त्रक (व्हिप) सहायता देता है जिसका काम यह निश्चित रखना है कि प्रत्येक विषय पर मतदान के समय सरकार का बहुमत बना रहे।

लोक सेवा (Public Service)—श्री लंका की लोक सेवाओं का वर्णन २७

से लेकर ६५ धाराओं तक संविधान के सातवें भाग मे किया गया है। धारा ५७ के अनुसार श्री लंका की सरकार के प्रत्येक कर्मचारी को अपने पदारूढ रहने के लिए सम्राट् को प्रसन्न रखना होगा। धारा ५८ के अनुसार एक लोक सेवा आयोग होगा जिस में गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत तीन सदस्य होगे। इन सदस्यो मे एक सदस्य सदस्य ऐसा होगा जिसने अपनी नियुक्ति से पाँच वर्ष पहले कोई लोक पद या न्यायपद ग्रहण नही किया है। आयोग के एक सदस्य को गवर्नर-जनरल अध्यक्ष के रूपमे मनोनीत करेगा। यदि कोई भी व्यक्ति ससद् के किसी सदन का सदस्य है तो उसे आयोग की सदस्यता नही मिल सकती। यदि नियुक्ति होते समय वह व्यक्ति कोई सरकारी कर्मचारी है तो उसे अपना यह पद ग्रहण करने से पहले अपनी नौकरी छोड़नी पड़ेगी और आयोग की सेवा समाप्त करने के बाद उसे वही पद वापस भी न मिलेगा। लेकिन ऐसा व्यक्ति जब तक कि वह आयोग का सदस्य बना रहे या वह उस आयु तक पहुँच जाय जबकि उसे अपने पिछले पद पर होते हुए रिटायर हो जाना चाहिए था, तो उसे प्रचलित विधि के अनुसार पेंशन, भत्ते व इसी प्रकार की अन्य सहायताएँ अवश्य मिलती रहेगी। आयोग का सदस्य रिटायर होने पर पुन नियुक्त किया जा सकेगा तथा अपने पद पर आने से पाँच वर्षो तक ही वह कार्य कर सकेगा, हाँ इस बीच मे वह त्यागपत्र देकर अपना पद छोड सकता है या दोषारोपण की स्थिति मे उसे हटाया जा सकेगा। दोषारोपण की दशा मे गवर्नर-जनरल उसे पद से हटा सकता है। यदि आवश्यक या संभव हो तो वह किसी सदस्य का अवकाश स्वीकृत कर सकता है व उसके रिक्त स्थान पर कुछ समय के लिए एक उपयुक्त अस्थाई नियुक्ति कर सकता है। सदस्य को वही वेतन व भत्ता आदि मिलेगा जो संसद् अपनी विधि द्वारा तय करे। ऐसा वेतन राज्य की संचित निधि पर भारित होगा और इसलिए उसके कार्य-काल के भीतर उसे घटाया न जा सकेगा। आयोग के सदस्य को लोक सेवक कहा जावेगा। धारा ५९ के अनुसार लोक सेवा आयोग का एक सचिव होगा, जिसकी नियुक्ति भी आयोग द्वारा होगी।

धारा ६० के अन्तर्गत लोक सेवकों की नियुक्ति, तबादले, हटाने का काम तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही सभी लोक सेवा आयोग करेगा। लेकिन अटारनी जनरल व उसके कर्मचारियों की नियुक्तियाँ व तबादले गवर्नर-जनरल करेगा। तबादले शब्द के अन्दर वेतन वृद्धि भी आती है। धारा ६१ के अनुसार निर्धारित शर्तों के अन्तर्गत लोक सेवा आयोग किसी लोक अधिकारी को वह शक्तियाँ दे सकता है, जिनकी व्याख्या धारा ६० में की गई है। यदि किसी लोक अधिकारी ने अपनी किसी शक्ति के अन्तर्गत कोई ऐसा कार्य किया जिससे किसी व्यक्ति को असन्तोष हुआ तो वह उसकी अपील कमीशन से कर सकता है और आयोग का निर्णय ही अन्तिम होगा।

धारा ६३ के अनुसार लोक सेवा में लगा हुआ कोई भी अधिकारी (परन्तु ४ फरवरी १९४८ से पहले का) अपनी इच्छा से अपना अवकाश प्राप्त कर सकता है तथा उसे वही पेन्शन व भत्ते आदि मिलेंगे जो १९३१ के परिषद्-आदेश व उसी के आधीन किसी अन्य नियम द्वारा अंकित है। धारा ६४ में कहा गया है कि सारी पेन्शनें, वृत्तियाँ

व इसी प्रकार के अन्य भत्ते इत्यादि जो उस व्यक्ति को मिल सकते हैं जो कि कभी लोक सेवा आयोग में रह चुका है या ऐसी सहायताएँ उसकी विधवाओं तथा आश्रित सन्तान को भी मिल सकती हैं, लेकिन यह निर्णय उन्हीं कानूनो के अनुसार होगा जो उस समय, प्रचलित थे। धारा ६५ के अनुसार ऐसी सारी सहायताएँ राज्य की सचित निधि पर भारित होंगी।

व्यवस्थापिका (Legislature)—संविधान के तीसरे भाग मे राज्य की व्यवस्थापिका का वर्णन किया गया है। धारा ७ के अनुसार राज्य की संसद् मे सम्राट् तथा दो सदन—सैनिट व प्रतिनिधि सभा-रखे गए है।

सैनिट (Senete)—धारा ८ के अनुसार सैनिट मे ३० सदस्य हैं जिनमे १५ सदस्यो को प्रतिनिधि सभा चुनती है तथा शेष १५ को गवर्नर-जनरल मनोनीत करता है। सैनिट एक स्थाई सभा है और प्रतिनिधि सभा के विघटन या पुनर्संगठन से उसके जीवन पर कोई प्रभाव नही पड़ता। उसके १/३ सदस्य हर दो वर्ष वाद रिटायर हो जाते हैं। इसलिए निर्वाचन व नियुक्ति होने के वाद सैनिट के सदस्य का कार्यकाल ६ वर्ष है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति किसी रिक्त स्थान की पूर्ति करे तो उसे केवल उतना ही समय मिलेगा जितना समय उसके पूर्ववर्ती सदस्य के लिए शेष था। रिक्त स्थान पर आने वाला सदस्य उसी तिथि से सदस्य माना जावेगा जिससे कि जाने वाले सदस्य का समय समाप्त होता है। निर्वाचित सदस्यों मे रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए पृथक् चुनाव होगा और यदि योग्यता पूरी करता है तो जाने वाला सदस्य बार-बार पुनर्निर्वाचित किया जा सकता है।

धारा ६ के अनुसार स्पीकर, डिप्टी स्पीकर, कमेटियों के अध्यक्ष व उपाध्यक्ष के चुनाव के वाद अन्य कोई कार्य करने से पूर्व प्रतिनिधि सभा १५ सैनिट के सदस्यो का चुनाव करेगी और यदि समय-समय पर ऐसे स्थान रिक्त हुए तो उनकी पूर्ति भी उसी के द्वारा होगी। इस चुनाव मे आनुपातिक प्रतिनिधित्व तथा एकल संक्राम्य मत प्रणाली का प्रयोग होगा। चुनाव का कार्य समाप्त होने के वाद प्रतिनिधि सदन का क्लर्क गवर्नर-जनरल तथा सैनिट के क्लर्क को विजित सदस्यों के नाम भेज देगा।

धारा १० मे कहा गया है कि धारा ९ के अनुसार ज्योंही सैनिट के सदस्यों का चुनाव पूरा होगा, गवर्नर-जनरल १५ व्यक्तियो को इसमे मनोनीत करेगा और यदि किसी समय ऐसा स्थान रिक्त हुआ तो उसकी पूर्ति भी वही कर देगा। यदि किसी समय निर्वाचित सदस्यों के क्षेत्र में भी कोई रिक्त स्थान है तो गवर्नर-जनरल अपने मनोनीत करने के अधिकार का प्रयोग तब तक स्थगित कर सकता है जब तक कि प्रतिनिधि सभा अपने कार्य को पूरा न करले। इसके बाद वह रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए अपने आदेश जारी करेगा तथा अपने हस्ताक्षरयुक्त प्रमाणपत्र सैनिट के क्लर्क के पास भेज देगा। उसका प्रमाणपत्र किसी न्यायालय में प्रश्न का विषय नहीं बन सकता। यह आशा की जाती है कि गवर्नर-जनरल सैनिट में ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करेगा

जो लोक सेवा, व्यापार, उद्योग, कृषि, शिक्षा, विधि, चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग बैंकिंग आदि के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध है।

प्रतिनिधि सभा (House of Representatives)—धारा ११ में कहा गया है कि प्रतिनिधि सभा में ९५ सदस्य है जिनको निर्वाचक जिलों के निर्वाचकगण चुनेंगे तथा चार सदस्यो का चुनाव भारतीय व पाकिस्तानी निर्वाचक जिलों से प्रचलित कानून के अनुसार होगा। उपर्युक्त सदस्यो के अतिरिक्त, ६ सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें गवर्नर-जनरल नियुक्त करेगा और जो उन हितों का प्रतिनिधित्व करेंगे जो गवर्नर के विचार मे या तो प्रतिनिधित्व पा न सकेगा या जिनका प्रतिनिधित्व अपर्याप्त रह गया। १९६६ के बाद सभा के सगठन मे परिवर्तन होगा। तब यह व्यवस्था होगी कि सभा मे वे निर्वाचित सदस्य होगे जिन्हे प्रचलित कानून के द्वारा सात निर्वाचक जिलों के व्यक्ति चुनेंगे तथा यदि आवश्यक हो तो कुछ को गवर्नर-जनरल ही मनोनीत करेगा। अभी गवर्नर-जनरल ६ से अधिक सदस्यों को इस सभा मे मनोनीत नही कर सकता और यह अधिकार भी तभी प्रयुक्त हो सकेगा जबकि वह यह समझले कि अमुक हित को पूर्ण या पर्याप्त प्रतिनिधित्व न मिल सका है। यदि पहले भग न किया जाय तो अपने निर्वाचित होने के बाद पहली बैठक के दिन से केवल पाँच वर्ष तक ही इसका जीवन चल सकेगा और इस समय के बाद वह स्वयं भंग समझा जावेगा।

धारा ११अ बताती है कि एक निर्वाचक क्षेत्र ऐसा भी बनाया जावेगा जिसका नाम भारत व पाकिस्तान निर्वाचन-क्षेत्र होगा और जिसका विस्तार सारे देश मे होगा। गवर्नर-जनरल द्वारा सकेत की हुई तिथि पर इस क्षेत्र से चार सदस्य चुने जावेंगे। लेकिन १९६६ में एक तिथि पर गवर्नर-जनरल इस व्यवस्था की समाप्ति की घोषणा करेगा।

धारा १२ में कहा गया है कि जो व्यक्ति निर्वाचक होने की योग्यता रखता है उसी को किसी भी सदन मे निर्वाचित या नियुक्त किया जा सकेगा। यह भी कहा गया है कि सैनिट का सदस्य प्रतिनिधि सभा में निर्वाचित या नियुक्त नही किया जा सकता और वहाँ उसे वोट देने व कार्यवाही में भाग लेने का भी अधिकार नहीं होगा। सैनिट में सदस्य होने के लिए कम से कम ३५ वर्ष की आयु चाहिए। कोई भी ऐसा व्यक्ति संसद् का सदस्य नही हो सकता और वह संसद् की कार्यवाही में कोई भाग नही ले सकता जो ब्रिटिश प्रजा के अन्तर्गत आता है, या विदेशी है, या कोई लोक अधिकारी या न्यायाधीश है, या आडीटर जनरल है, या देशी सरकार के आधीन लाभ के पद पर है, या दिवालिया है, या अपराधी रह चुका है, या पागल घोषित किया जा चुका है, या उपयुक्त न्यायालय ने किसी कारण उसे अयोग्य घोषित कर दिया है, या निर्वाचन मे वह कुरीतियो व अवैधानिक रीतियों के प्रयोग में दण्डी हो चुका है। धारा १४ के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो गलत प्रकार से संसद् का सदस्य हो गया है, उस को दण्ड दिया जा सकता है।

धारा १५ के अनुसार गवर्नर-जनरल समय समय पर संसद् की सभाओं

को बुलावेगा, स्थगित करेगा व सभा को भंग कर सकेगा। वर्ष में एक बार संसद् की बैठक अवश्य होगी। अधिवेशन समाप्त होने के चार महीने के भीतर नया अधिवेशन शुरु हो जाना चाहिए। गवर्नर-जनरल पहले भी संसद् की सभा बुला सकता है। यदि सभा को भंग कर दिया गया है तो नए चुनाव के बाद चार महीने के भीतर नई संसद् की बैठक शुरु हो जानी चाहिए। यदि सभा भंग हो गई है लेकिन गवर्नर-जनरल यह समझता है कि संकट काल उत्पन्न हो गया है जिसमें संसद् की बैठक होना जरूरी है तो वह विघटित संसद् को ही बुला सकता है और उसकी बैठक को तब तक चला सकता है जब तक कि नई संसद् की बैठक शुरु न हो जाय। धारा १६ के अनुसार अपनी पहली बैठक में सैनिट एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा समिति के अध्यक्षों का निर्वाचन करेगी, परन्तु ऐसे अधिकारियों को अपना पद छोड़ना पड़ेगा, यदि वह सदन का सदस्य न रहे। इसी तरह धारा १७ के अनुसार प्रतिनिधि सभा पहले अपने अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कमेटियों के सभापति तथा उपसभापति का चुनाव करती है। वह त्यागपत्र देकर अपना पद छोड सकते हैं, लेकिन सभा के विघटन के साथ वे सब पद से हट जाते है।

धारा २३ के अनुसार सैनिट के सदस्य का स्थान उसकी मृत्यु, त्यागपत्र या किसी प्रकार से अयोग्य हो जाने पर रिक्त हो जावेगा। यह दशा तब होगी यदि उसका कार्यकाल पूरा हो गया हो या उसने बिना आज्ञा के अधिवेशन काल में अपने को तीन महीनो तक अनुपस्थित रखा हो। पद ग्रहण करते समय सदस्यों को शपथ ग्रहण करनी पड़ेगी। इसी प्रकार सभा के सदस्य का भी त्यागपत्र, मृत्यु, सैनिट का सदस्य हो जाने या सदन की अनुमति के बिना अधिवेशन काल में तीन मास तक अनुपस्थित रहने की दशा में पद रिक्त समझा जावेगा। धारा २६ के अन्तर्गत यदि किसी प्रचलित विधि के अन्तर्गत संसद् के सदस्यों को कोई वृत्ति या भत्ता मिलना है तो उसके पाने से उनकी योग्यताओं को कोई हानि नही पहुँचेगी। धारा २७ के अनुसार संसद् के सदस्यों के विशेषाधिकार, उन्मुक्तियाँ तथा शक्तियाँ संसद् के नियम द्वारा निर्धारित की जावेंगी लेकिन वे उन से अधिक नही होंगी जिनका आनन्द ब्रिटिश कामन्स सभा के सदस्यों को प्राप्त है।

संसद् के दोनों सदनों के लिये एक एक क्लर्क होगा जिसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा होगी। वह सदन के अध्यक्ष की स्वीकृति से अपने कार्यालय के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति करेगा। ये लोग संसद् के सदस्य नही हो सकते और उसकी कार्यवाहियों मे भाग नहीं ले सकते जब तक कि वे अपने इन पदों पर आरूढ हैं। पालियामेंट के नियम द्वारा उनके रिटायर होने की आयु ६० वर्ष है। यदि सदन विशेष प्रस्ताव पास कर दें, तो गवर्नर जनरल ऐसे अधिकारियों को हटा सकता है।

विधायिनी शक्तियाँ व प्रक्रिया (Lagislative Powers and Process)—देश में शान्ति, व्यवस्था तथा स्वशासन के लिये संसद् को कानून बनाने का अधिकार है। लेकिन विधायन कोई ऐसा स्वरूप नही ले सकता जिससे किसी विशेष धर्म या सम्प्र-

दाय के लोगों को लाभ या हानि पहुँचे। यदि कोई ऐसा कानून बना तो वह उल्लंघन की सीमा तक रद्द हो जावेगा। लेकिन यह प्रावधान भारत व पाकिस्तान निर्वाचक मण्डलों के क्षेत्र पर लागू नही होगा। संसद् को यह भी अधिकार है कि वह इस उपबंध को लागू करने के लिये सविधान में अनिवार्य संशोधन करे। इस सम्बन्ध मे पास किया बिल सम्राट् की अनुमति के लिये तभी प्रस्तुत किया जावेगा जबकि स्पीकर यह प्रमाणित कर दे कि प्रतिनिधि सभा के कम से कम २।३ सदस्यों ने इसका समर्थन किया है। स्पीकर का ऐसा प्रमाणपत्र अन्तिम होगा।

धारा ३१ के अनुसार गैर-धन विधेयक किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। धन बिल को सैंनिट मे प्रस्तावित नही किया जा सकता। धारा ३२ ने यह अनिवार्य कर दिया है कि पास होने के लिये बिल को दोनों सदनो से पास होना चाहिये। यदि सैंनिट से पास हो जाने पर सभा ने उसे अस्वीकार कर दिया तो वह अस्वीकृत समझा जाएगा। धन-बिल को पहले सभा पास करेगी और सैंनिट को उसे एक महीने के भीतर पास करना पडेगा। पास हो जाने पर ऐसे बिल के साथ स्पीकर का प्रमाण पत्र चलेगा जिसे देने से पूर्व वह राजकीय वकील का परामर्श ले सकता है। यदि इस समय में सैंनिट ने उसे पास न किया या उसने ऐसी सिफारिशो के साथ वापस कर दिया जो सभा को पसन्द न हुई, तो वह बिल स्वत. ससद् से पास समझा जाएगा तथा गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिये चला जायेगा।

धारा ३४ के अनुसार यदि गैर-धन बिल है तो भी सभा का स्थान सैंनिट से ऊँचा है। यदि सभा ने लगातार दो अधिवेशनो मे उसे पास किया और सैंनिट ने उसे अपने पास आने से एक वर्ष पूर्व या अधिवेशन शुरू होने से ६ महीने के भीतर पास न किया तो वह गवर्नर जनरल की स्वीकृति के लिये चला जायेगा। यदि किसी सदन के किये गये परिवर्तन दूसरे सदन को मान्य हुए तो गवर्नर-जनरल के पास भेजी हुई प्रति के साथ वह संशोधन भी भेज जावेंगे। लेकिन गवर्नर-जनरल की अनुमति के बिना कोई बिल कानून का रूप धारण नही कर सकता। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सम्राट् अपने राज्य मन्त्री द्वारा किसी भी ऐसे कानून को अस्वीकृत कर सकता है जिससे सविधान के दूसरे परिशिष्ट मे दिये हुए स्टाक रखने वालों के हितों को हानि पहुँचे।

निर्वाचक जिलों का अंकीकरण (Delimitation form of Electoral Districts)—संविधान के अनुसार गवर्नर-जनरल एक अंकीकरण आयोग की नियुक्ति करेगा जो पिछली जनगणना के आधार पर निर्वाचक जिलों का निर्माण करेगा। इसमे तीन सदस्य होंगे जिनमें से एक की नियुक्ति आयोग का अध्यक्ष करेगा। आयोग, ७५,००० की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि के सिद्धान्त के आधार पर देश को निर्वाचक-क्षेत्रो मे विभक्त करेगा और ऐसा करने मे वह वहाँ की भौगोलिक स्थिति, यातायात सुविधाओं तथा विभिन्न सम्प्रदायों के हितों पर ध्यान रखेगा। निर्णय के लिए आयोग के सदस्यो का बहुमत देखा जावेगा। कमीशन का अध्यक्ष अपने निर्णयों को गवर्नर-जनरल के पास भेज देगा जो उसी आधार पर अंकीकरण कार्य को प्रकाशित कर देगा।

वित्त (Finance)—संविधान के अनुसार जो धन कानून द्वारा किसी विभाग में न रखा जाय वह राज्य की संचित निधि में आवेगा। लोक ऋण पर व्याज, कोष भुगतानों का डूब जाना, करों की उगाही पर व्यय तथा संसद् के नियम द्वारा निर्धारित विषय संचित कोष का निर्माण करेंगे। केवल वित्त मन्त्री के हस्ताक्षर किए वारन्ट पर ही इस धन को निकाला जा सकेगा, किन्तु वह भी अपनी इस शक्ति का प्रयोग तब करेगा जबकि ससद् ने ऐसी स्वीकृति प्रदान कर दी हो। यदि सभा भंग हो चुकी हो और वजट पास न हुआ हो तो गवर्नर-जनरल विशेष स्थिति का मुकाबला करने के लिए अपनी असाधारण शक्ति से इस धन का उपयोग कर सकता है। संसद् अपने विशेष कानून द्वारा आपातकालीन कोष का भी निर्माण कर सकती है जिससे आकस्मिक सकटो का सामना किया जा सके। वित्त मन्त्री प्रधान मन्त्री की राय से इस धन का प्रयोग कर सकता है और बाद मे संसद् की सभाओ मे उसकी पूरक स्वीकृति प्राप्त की जा सकती है। यह भी सविधान ने ठहरा दिया है कि ऐसी कार्यवाही पहले सभा ही में प्रस्तावित होगी और वहाँ इसे एक मन्त्री शुरू करेगा जिसके कार्य के पीछे कैबिनेट की स्वीकृति निहित होगी।

आडीटर जनरल (Auditor General)—आडीटर जनरल की नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता है और वह उसी के प्रति उत्तरदायी है। उसका वेतन संसद् द्वारा निर्धारित किया जाता है तथा वह सचित निधि पर भारित है इसलिए उसके सेवाकाल मे उसे घटाया नही जा सकता। वह त्यागपत्र दे सकता है या गवर्नर-जनरल उसे अयोग्य या दोषी पाकर भी हटा सकता है। ससद् उसके विरुद्ध प्रस्ताव पास करके भी उसे गवर्नर-जनरल द्वारा हटा सकती है। समस्त राजकीय व्ययों का लेखा-जोखा तैयार रखना तथा उनका निरीक्षण-परीक्षण करना उसी का काम है।

न्यायपालिका (Judiciary)—इंगलैंड में प्रिवी कौंसिल की जुडीशल कमेटी यहाँ की न्यायपालिका की सर्वोच्च इकाई है। परन्तु बहुत ही कम मामले यहाँ तक पहुँच पाते हैं। देश के भीतर सुप्रीम कोर्ट है जिसमें एक प्रधान जज व आठ सहायक जज हैं जिनकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होती है। ६२ वर्ष रिटायर होने की आयु है, लेकिन संसद् अपने विशेष प्रस्ताव से गवर्नर-जनरल द्वारा किसी जज को हटा सकती है। विशेष स्थिति मे गवर्नर-जनरल किसी जज को रिटायर होते समय एक वर्ष की वृद्धि भी दे सकता है। उनके वेतन संसद् के ऐक्ट द्वारा निर्धारित होते हैं तथा वे राज्य की सचित निधि पर भारित है। सुप्रीम कोर्ट अभिलेख का न्यायालय है और इसे मौलिक तथा अपील सम्बन्धी क्षेत्राधिकार भी प्राप्त है। दीवानी के मामलों मे इसे केवल अपील सम्बन्धी या पुनरवलोकन सम्बन्धी शक्तियाँ प्राप्त हैं जबकि फौजदारी के मामलों में इसे मौलिक व अपील सम्बन्धी दोनों ही प्रकार का अधिकारक्षेत्र प्राप्त है। यदि प्रधान जज सिफारिश कर दे तो कमिश्नर ऑफ ऐसाइज ही फौजदारी के मुकद्मे में सुप्रीम कोर्ट के जज की तरह कार्य कर सकता है। ऐसे मुकद्मे एक जज व सात जूरी सदस्यों के सामने होते हैं, लेकिन एसाइज कोर्ट्स से आने वाली अपीलें तीन या अधिक जजों के सामने आती हैं। इसके अतिरिक्त २५ जिला न्यायालय हैं जो फौजदारी के मुकद्मों में अधिक से अधिक

दो वर्ष की कैद या एक हजार रुपए जुर्माना या कोड़े से पिटाई या सबका मिश्रण का आदेश दे सकती है।

जुडीशल सर्विस कमीशन (Judicial Service Commission)—इसमें एक प्रधान जज, एक अन्य जज तथा इसी योग्यता का एक तीसरा व्यक्ति सदस्य होते है। इनकी नियुक्तियाँ गवर्नर जनरल करता है, लेकिन संसद् का सदस्य इसमें नही आ सकता। अध्यक्ष को छोड़कर शेष दो सदस्यो का कार्यकाल पाँच वर्ष है, लेकिन वह पहले भी त्यागपत्र देकर या उच्च पद स्वीकार कर इस पद को छोड़ सकता है। उसे पुनः नियुक्त किया जा सकता है, लेकिन विशेष स्थिति में दोषारोपण से उसे गवर्नर जनरल हटा भी सकता है। वह किसी सदस्य को अवकाश भी दे सकता है और उसकी जगह् किसी अन्य व्यक्ति को अस्थाई काल के लिए नियुक्त कर सकता है। सदस्यो के वेतन संसद् अपने ऐक्ट द्वारा निर्धारित करेगी तथा वे सचित निधि पर भारित होंगे। कमीशन की सहायता के लिए एक सेक्रेट्री भी नियुक्त किया जाता है। न्यायाधीशो की नियुक्तियाँ, पदोन्नति, हटाना इत्यादि इसी कमीशन का काम है। कोई भी न्यायाधिकारी त्यागपत्र देकर अपना पद छोड़ सकता है। कमीशन कुछ सीमाओं के अतर्गत अपनी कुछ शक्तियाँ न्यायाधिकारियो को हस्तातरित कर सकता है। सविधान मे कहा गया है कि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से यदि किसी व्यक्ति ने कमीशन के निर्णय को प्रभावित किया तो वह अपराधी समझा जावेगा और उसे एक वर्ष की सजा या १,००० रु० का जुर्माना या दोनों का भुगतान करना पड़ेगा। देश के दीवानी व फौजदारी के कानून अग्रेजी विधि पर आश्रित हैं, किन्तु अग्रेजो के आने से पूर्व के कुछ रोमन व डच परम्पराएँ भी मौजूद हैं। व्यक्तिगत विधि के मामले मुसलमानों के इस्लामी कानून, जफना तामिलो के तामिल कानून, कैन्डी के सिहालियो के कैन्डी सिहालीज कानून द्वारा तय किए जाते है। पूर्वी प्रान्तो के तामिलो तथा निचले प्रदेश के सिहालियों पर राज्य की साधारण विधि भी लागू होती है जिसमे रोमन व डच लोगों की ऐसी परम्पराएँ निहित है जिन्हें अंग्रेजी विधि ने परिवर्तित कर दिया है।

स्थनीय प्रशासन (Local Government)—पहले श्रीलंका में ग्राम परिषदें या गणसभाएँ सारा काम किया करती थी। उनके ऊपर राजा का इतना नियन्त्रण नही था, लेकिन पुर्तगाली व डच लोगो के आगमन के साथ उनका पतन हुआ। १८७१ के करीब ब्रिटिश शासन ने उन्हें पुनः कुछ शक्तियाँ प्रदान की। अब स्थानीय प्रशासन के चार स्तर है—ग्रामीण क्षेत्रो में ग्राम समितियाँ है, नगर क्षेत्रों में नागरी परिषदें है। कोलम्बो, कैण्डी, जाफना, कुरुनेगाला और नीगोम्बो, जैसे उन्नतिशील नगरों की नगरपालिकाएँ बहुत प्रसिद्ध है जो वहाँ के लोगो के सुख व कल्याण के विशेष कार्य करती है।

राजनीतिक दल (Political Parties)—दलों का विकास ब्रिटिश काल में हुआ। १९४६ मे संसदीय चुनावो की आशा मे तीन साम्प्रदायिक गुटों ने मिलकर डी० एस० सेनानायक की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्रीय दल (U. N. P.) बनाया। मिलने वाले गुट थे—सिहल महा सभा या सिहाली दल, श्रीलका राष्ट्रीय कांग्रेस व

श्रीलका मुस्लिम लीग। चुनाव में इस दल ने ९५ में ४२ स्थान प्राप्त किए। लेकिन तामिल कांग्रेस, लेबर पार्टी व कुछ अन्य स्वतन्त्र सदस्यों की सहायता से इसने सरकार बना ली। १९५६ में इसे M. E. P. ने पराजित कर दिया। पहले श्री भण्डारनायके स्थानीय स्वशासन का मन्त्री था, लेकिन १९५२ से वह विरोध प्रदर्शन करने लगा। कई छोटे मोटे संघों की सहायता से भण्डारनायके ने १९५६ में U. N. P. को पराजित कर दिया।

डी० एस० सेनानायक की मृत्यु के बाद U. N. P. का मुख्य नेता सर जान कोटलेवाला हो गया। उसने १९५५ के बान्डुग सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया। वह कम्युनिस्टों का भी तीव्र विरोधी था। अब इस दल का नेता डडले सेनानायक है। परन्तु अब यह दल अपने भ्रष्टाचारों, अमेरिका के प्रति झुकाव, पूंजीवादी दृष्टिकोण आदि के कारण बहुत अलोकप्रिय हो गया है।

संयुक्त राष्ट्रीय दल स्वतन्त्रता व लोकतन्त्र का समर्थक है तथा पाश्चात्य राज्यों के साथ सम्बन्ध चाहता है। इसे कल्याणकारी राज्य का विचार पसन्द है जिसमे राज्य कुछ सेवाओं को हाथ मे लेते हुए व्यक्तियों की स्वतन्त्रता का आदर करता है।

श्रीलंका स्वतन्त्रता दल (S. L. F. P.) की स्थापना, श्री भण्डारनायके ने की और उसकी मृत्यु के बाद इसे उनकी पत्नी श्रीमती भण्डारनायके ने चलाया। यह दल गणतन्त्रीय सविधान चाहता है तथा स्वदेशी व्यापार व उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिये विदेशी उद्योग, विनियोग, यातायात आदि के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। १९५६ से १९६४ तक इसी दल की सत्ता बनी रही।

संघीय दल (Federal Party) का नेता एस० जे० वी० शेलवानक्यम् है। यह देश की तामिल अल्पसख्या का प्रतिनिधि है। परन्तु इसके जातीय दृष्टिकोण तथा उग्रवादी व्यवहार ने श्रीलंका की दलीय स्थिति को हानि पहुँचाई है। इसके सत्याग्रह आन्दोलन ने सिंहाली तथा तामिल लोगों के बीच संघर्षों को जन्म दिया है।

श्रीलंका का साम्यवादी दल तीन टुकड़ों में विभक्त है। सबसे पुराना ग्रुप (L. S. S. P.) जो ट्राटस्कीवादियों का था, वह डा० पेरेरा के नेतृत्व में कार्य करता है। इसकी स्थापना १९३८ में हुई थी। यह कृषकों व श्रमिकों का राज्य स्थापित करना चाहता है जिस पर विदेशी राज्यों का कोई शोषणात्मक दबाव न हो।

महाजन एकस्य पेरामुना (M. E. P.) राज्य को गणतन्त्र बनाना चाहता है। बौद्ध व सिंहल-भाषी लोगों में इसका जोर सबसे ज्यादा है। यह विदेशी पूंजी का आयात नही चाहता तथा तटस्थता का पोषक है। यह सिंहाली भाषा को राज्यभाषा बनाना चाहता है तथा रूस व चीन के साथ अच्छे सम्बन्ध चाहता है। राज्य के राजनीतिक जीवन में साम्यवादी दल का क्रान्तिकारी हाथ है। वे साम्राज्यवाद के घोर शत्रु तथा कट्टर राष्ट्रवादी हैं। राज्य मे सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम उनका मुख्य ध्येय है। देश के श्रम वर्ग मे उसे सहायता मिल रही है।

अन्त में यह कहने योग्य तथ्य है कि श्रीलंका में दलीय स्थिति की दृढ़ अवस्था

न होने के कई कारण है जैसे उपयुक्त नेतृत्व का अभाव, कैबनिट प्रणाली का शक्तिहीन तथा बहुरूपी स्वरूप, दलों के साम्प्रदायिक तथा जातीय दृष्टिकोण, दल के स्तरों में भ्रष्टाचार तथा दलीय कार्यक्रमों की कमी। ऐसी स्थिति यह जरूरी कर देती है कि राज्य में दलीय स्थिति का पूर्ण परिवर्तन होना चाहिए जिससे भविष्य में ऐसी कठिनाइयाँ न आ सकें।[1]

Suggested Readings

Jennings, Sir Ivor	: The Constitution of Ceylon (1953).
Jennings and Tambiah	. The Dominion of Ceylon.
Tresidder, A. J.	: Ceylon, An Introduction to the 'Resplendent Land (1960).
Vittachi, Tarzie	: Emergency '58 (1958).

1. According to Tarzie Vittachi, the editor of the *Ceylon Observer*, "Ceylon is now afflicted by a general malaise which no one [illegible] has been shattered. The racial and [illegible] our relationships has been sacri- [illegible] asing poverty and unemployment have brought the people to the brink of communism. The next outbreak of violence may not [illegible] the latter days of the 1958 riots, [illegible] against Government officials and [illegible] clear. Unless the Government is able to open up new avenues for employment, increase the productivity of the island quickly and effectively, maintain law and order without succumbing to sectional and separatist demands, when violence breaks out again, it is likely that Ceylon's system of parliamentary democracy will be thrown away for something more efficient and ruthless."

भारतीय संविधान

(The Indian Constitution)

अध्याय ३९

संविधान का विकास

(EVOLUTION OF THE CONSTITUTION)

भारतीय संवैधानिक पद्धति का विकास पिछली डेढ़ सदी में हुआ है और इसके विकास में पहली मुख्य घटना रेगुलेटिंग ऐक्ट था। इस ऐक्ट (१७७३) के बाद पिट्स इंडिया ऐक्ट, १७८४, चार्टर ऐक्ट्स १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ पास हुए। १८५७-५८ की क्रान्ति ने अंग्रेजी सरकार को ईस्ट इंडिया कम्पनी से भारत का शासन छीनने का मौका दिया। ऐसा करते समय रानी विक्टोरिया ने १८५८ में एक महत्वपूर्ण घोषणा की जिसके द्वारा भारतीयों को विश्वास दिलाया गया कि उनके साथ न्यायसंगत बर्ताव किया जायेगा और उनके धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा। देशी राजाओं को उनकी रियासतें कायम रखने का वचन दिया गया। १८५८ की घोषणा ने १९१७ तक भारतीय प्रशासन की नींव का कार्य किया जबकि भारत मे अंग्रेजी शासन के लक्ष्य के विषय मे नई घोषणा की गई।

१८५८ के अधिनियम के अनुसार बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल तथा कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स समाप्त कर दिये गए तथा भारत मन्त्री (Secretary of State for India) और उसकी कौंसिल की व्यवस्था की गई। इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट, १८६१, से विधानीय विकेन्द्रीकरण (legislative decentralisation) शुरू हुआ। केन्द्र तथा प्रान्तों मे विधान परिषदें (Councils) कायम की गईं। कार्यकारिणी परिषदों (Executive Councils) के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। इन बढ़ी हुई परिषदों को कानून बनाने का काम सौंपा गया। १८६१ के अधिनियम से भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं (Representative Institutions) का आरम्भ हुआ। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय परिषदें प्रचार, बहस तथा खबरें देने का काम करती थी। देश के लोगों को कानून बनाने के काम मे शामिल किया गया। इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट, १८९२, ने कानून बनाने वाली परिषदों के आकार तथा काम को बढ़ाया।

मिंटो-मार्ले सुधार, १९०९ (Minto-Morley Reforms, 1909)—भारत की जनता देश की उस समय की शासन-पद्धति को पसन्द नहीं करती थी। इस कारण कई आन्दोलन हुए और बेचैनी फैली। माडरेटों अर्थात् नरम विचार के लोगों को अपनी तरफ करने के लिए इंडियन कौंसिल्स ऐक्ट, १९०९, पास किया गया। इसने विधान परिषदों का विस्तार किया। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या ६० कर

नहीं था। मुस्लिमों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने के कारण अनेक वर्गों ने अपने अधिकारों की माँग की। सरकार को सिक्खों को १६१६ मे तथा भारतीय ईसाइयों, ऐंग्लो-इंडियनो, यूरोपियनो तथा हरिजनों को १६३५ मे पृथक् निर्वाचन का अधिकार देना पड़ा। जमीदारों, भूमिपतियों, वाणिज्य संघों आदि को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया था। केन्द्रीय विधान परिषद् मे सरकारी बहुमत होने का विरोध किया गया। प्रान्तीय विधान सभाओं में भी चुने हुए सदस्यो का वास्तविक बहुमत नही था। भारत में अंग्रेजी सरकार का उद्देश्य भी नही बताया गया था।

भारत शासन अधिनियम, १६१६ (Government of India Act, 1919)—मिण्टो-मार्ले सुधार अपने उद्देश्य में असफल रहे। सरकार के प्रति रोष बढ़ता गया। इसके होते हुए भी, जब १६१४ में प्रथम-विश्व-युद्ध शुरू हुआ तब भारत ने जन तथा धन से अंग्रेजों को पूरी सहायता दी। अगस्त १६१७ में अंग्रेज सरकार ने घोषणा की कि भारत मे उसकी नीति प्रशासन के प्रत्येक भाग मे भारतीयों को अधिक-से-अधिक शामिल करना (associate) तथा मध्यम गति से आगे बढते हुए भारत मे उत्तरदायी (*responsible*) *सरकार की स्थापना करनी थी। किन्तु भारत ब्रिटिश साम्राज्य का* अभिन्न अंग रहेगा। सरकार को निश्चित करना था कि किस समय कितने वैधानिक सुधार भारतीय जनता को दिये जायें। इस नीति का पालन करने के लिए भारत शासन अधिनियम दिसम्बर १६१६ मे पास किया गया।

१६१६ के अधिनियम ने भारत के प्रशासन में अनेक परिवर्तन किये। अब तक भारत-मंत्री का वेतन भारत के राजस्व से दिया जाता था परन्तु भविष्य मे उसे ब्रिटिश कोष से वेतन देने की बात कही गई। पर उसके कार्यों मे कमी करके कुछ काम भारतीय हाई कमिश्नर को सौप दिये गये जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करती थी तथा वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता था। वह स्टोर डिपार्टमेंट्स, भारतीय विद्यार्थी विभाग आदि की देख-भाल करता था। भारत-मन्त्री के अधिकारों में इस कारण भी कमी हुई कि प्रान्तों मे कुछ विषय भारतीय मन्त्रियो को सौंप दिये गए थे।

पहले केन्द्र मे एक-सदनी व्यवस्था थी किन्तु १६१६ के अधिनियम द्वारा द्विसदनी (bicameral) विधान-मण्डल बना दिया गया। दोनों सदनो के नाम केन्द्रीय विधान सभा (Central Legislative Assembly) तथा राज्य परिषद् (Council of State) थे। विधान-सभा मे १४५ सदस्य तथा परिषद् में ६० सदस्य होते थे। सभा तथा परिषद् का कार्यकाल ३ और ५ वर्ष था। किन्तु महा-राज्यपाल (गवर्नर-जनरल) उसे अपने अधिकार से बढ़ा सकता था। केन्द्रीय विधान-मण्डल के लिए प्रत्यक्ष चुनाव होते थे, किन्तु मताधिकार बहुत सीमित था। १६२० मे राज्य परिषद् के वोटर १७,३६४ तथा विधान-सभा के ६,०६,८७४ थे। महा-राज्यपाल को सदनो का आह्वान, सत्रावसान और विघटन करने का अधिकार प्राप्त था। वह दोनों सदनो के सदस्यों मे अभिभाषण कर सकता था। केन्द्रीय विधान-मण्डल को व्यापक शक्तियाँ दी गई थी। यह सम्पूर्ण अंग्रेजी भारत के लिए कानून बना सकता था। देश में जो कानून लागू थे उन कानूनो मे सुधार तथा परिवर्तन कर सकता था। कुछ खास विधेयकों

(Bills) को विधान-मण्डल में लाने से पहले महा-राज्यपाल की पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक थी। महा-राज्यपाल किसी भी दशा मे विधेयक पर विचार रोक सकता था। वह शान्ति, सुरक्षा तथा अंग्रेजी भारत के हितों को ध्यान मे रखते हुए कोई भी कानून बना सकता था। संकट काल में वह अध्यादेश (ordinance) जारी कर सकता था। ऐसा अध्यादेश छः मास तक चलता था। महा-राज्यपाल केन्द्रीय विधान-मण्डल द्वारा पास किये गये किसी भी विधेयक को अपने निषेधाधिकार (veto) द्वारा रद्द कर सकता था। वह विधेयक को दोबारा विचार के लिए लौटा देता था। किन्तु यदि किसी विधेयक को महा-राज्यपाल पास भी कर ले, तब भी ब्रिटिश सरकार उसे अस्वीकृत कर सकती थी। *महा-राज्यपाल का निषेधाधिकार (veto power) वास्तविक था और* उसका प्रयोग उसने अनेक अवसरो पर किया था। केन्द्रीय विधान-मण्डल मे दोनो सदनो को प्रश्न पूछने, पूरक प्रश्न पूछने, स्थगन प्रस्ताव (motion of adjournment) रखने का अधिकार था। उनको विधान-मण्डल मे भाषण की स्वतन्त्रता (freedom of speech) भी दी गई थी। विधान-मण्डल बजट पर बहस कर सकता था और उसे अस्वीकार भी कर सकता था किन्तु महा-राज्यपाल इस आधार पर उसे पास कर सकता था कि वह उसके कर्त्तव्यों के दायित्व को निभाने के लिए आवश्यक है। १६१६ के *अधिनियम ने केन्द्र मे प्रतिक्रियाकारी* (responsive) *सरकार की ही स्थापना की थी,* उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार की नहीं। महा-राज्यपाल की कार्यकारिणी परिषद् उसके द्वारा मनोनीत होती थी तथा उस पर विधान-मण्डल का कोई अधिकार नहीं होता था। विधान-मण्डल का अविश्वास का प्रस्ताव उसको हटा नही सकता था। इतना होते हुए भी कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य केन्द्रीय विधान मण्डल की इच्छाओ का आदर करते थे तथा उनके द्वारा देश की जनता की इच्छाओं का प्रतिपादन करते थे। प्रान्तीय विधान-परिषदो की सदस्य सख्या काफी बढा दी गयी। प्रान्तीय विधान-मण्डलों के ७०% सदस्य निर्वाचित होते थे। लगभग ३०% राज्यपाल मनोनीत करता था। इन मनोनीत सदस्यो में कुछ सदस्य सरकारी होते थे तथा अन्य गैर-सरकारी। विधान-मण्डलो का कार्य-काल तीन वर्ष था किन्तु राज्यपाल उनके कार्यकाल को घटा या बढा सकता था। सदस्यों को प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछने तथा बजट पर विवाद करने और उसको अस्वीकृत करने के अधिकार प्राप्त थे।

प्रान्तों में द्वैध शासन (Dyarchy) व्यवस्था प्रचलित की गई। प्रान्तीय सरकार के कुछ विभाग भारतीय मन्त्रियो को सौंप दिये गये और वे प्रान्तीय विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी थे। रक्षित विषय (Reserved Departments) अब भी राज्यपाल तथा कार्यकारिणी के हाथ मे रहे। राज्यपाल मन्त्रियो तथा अपनी कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों के निर्णय को रद्द कर सकता था। उससे आशा की जाती थी कि वह *मन्त्रियो तथा कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों मे संयुक्त विचार-विमर्श (joint deliberations)* को प्रोत्साहित करेगा।

द्वैध शासन-व्यवस्था प्रान्तों मे १६२१ से १६३७ तक चली। किन्तु यह व्यवस्था असन्तोषजनक रही। द्वैध-शासन का सिद्धान्त ही दोषपूर्ण था। प्रशासन को दो भागों

में बाँटना राजनीतिशास्त्र के सिद्धान्त तथा व्यवहार के विरुद्ध है। राज्य तो एक शरीर की भाँति होता है। अतः उसके दो पृथक्-पृथक् भाग नहीं किये जा सकते। किन्तु विषयों का वास्तविक विभाजन और भी अधिक मूर्खतापूर्ण था। कृषि मन्त्री का सिचाई पर अधिकार नहीं था। उद्योग मन्त्री के पास कारखाने, बिजली, खानें, श्रम तथा बॉयलर्स (boilers) आदि नहीं थे।

भारतीय मन्त्रियों तथा राज्यपाल की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों में सहयोग नहीं था। मन्त्री जनता के प्रतिनिधि थे और परिषद् के सदस्य नौकरशाही से सम्बन्धित थे। दोनों भागों में इतनी विषमता थी कि वे सार्वजनिक रूप से एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने में भी नहीं हिचकिचाते थे। ऐसी दशा में शासन-कार्य ठीक प्रकार से चलना असम्भव था।

मन्त्री वर्ग की दशा शोचनीय थी। उनके दो स्वामी थे अर्थात् राज्यपाल तथा विधान सभा। निश्चित रूप से यह कार्य कठिन था। राज्यपाल की स्थिति तथा विधान-मण्डल में संगठित राजनैतिक दल के अभाव के कारण, मन्त्रियों का झुकाव राज्यपाल की इच्छानुसार कार्य करने की ओर था। जनता भी उनका आदर नहीं करती थी। उनकी दशा सचिवों की भाँति हो गई थी।

राज्यपालों ने मन्त्रियों में संयुक्त उत्तरदायित्व को प्रोत्साहित करने की ओर ध्यान न दिया। मन्त्रियों ने टीम की तरह कभी कार्य नहीं किया तथा सदा आपस में लड़ते रहे।

स्थायी सेवाओं (Services) की उपस्थिति से भी अनेक कठिनाइयाँ पैदा हो गईं। अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की नियुक्ति, वेतन, मोअत्तिली, बर्खास्तगी तथा तबादला करना भारत मन्त्री के नियन्त्रण में था। वे उस समय भी भारत मन्त्री के नियन्त्रण में रहते थे जबकि उनकी नियुक्ति मन्त्रियों के विभागों में हो जाती थी। वे उन मन्त्रियों की जरा भी परवाह नहीं करते थे। हम मन्त्रियों की स्थिति की केवल कल्पना कर सकते हैं। उनको उन कर्मचारियों के साथ कार्य करना पड़ता था जिन पर उनका अधिकार नहीं था।

द्वैध-शासन की असफलता का दूसरा कारण वित्त-विभाग (Finance Department) का परिषद् के हाथ में होना था। राष्ट्र-निर्माण के विभाग मन्त्रियों के पास थे किन्तु उनको जरा भी धन नहीं दिया गया था। वे पूरी तरह वित्त सचिव (Finance Secretary) की दया पर थे, जो कि भारतीय प्रशासकीय सेवा का सदस्य होने के कारण भारतीयों की भावनाओं से कोई सहानुभूति नहीं रखता था।। मन्त्री अच्छी योजना बनाने के लिए स्वतन्त्र थे किन्तु वित्त विभाग उन योजनाओं के लिए धन नहीं देता था। निश्चित रूप से इन बाधाओं के कारण अधिक प्रगति न हो सकी।

द्वैध-शासन पूर्ण रूप से असफल रहा। 'डुयर्की' शब्द का प्रयोग बुराई के अर्थ में किया जाने लगा। इस सम्बन्ध में 'डुयर्की बैंड' का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। उसको यह नाम इस कारण दिया गया था क्योंकि वह ठीक प्रकार से कार्य नहीं

करता था। किन्तु यह अवश्य कहा जाना है कि देश की वैधानिक प्रगति में द्वैध-शासन एक आवश्यकता थी। अंग्रेजी सरकार यह निश्चित कर लेना चाहती थी कि भारतीय अपना प्रबन्ध करने में समर्थ हो गए हैं, अथवा नही। उनकी योग्यता का माप केवल कुछ विषय उनके अधिकार में देकर ही किया जा सकता था।

भारत शासन अधिनियम, १९३५ (Government of India Act, 1935)—भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने १९१९ के सुधारों को "अपर्याप्त, असन्तोषजनक तथा निराशाजनक" घोषित किया। जब प्रथम बार सुधार लागू किये गये तब काँग्रेस ने चुनावों में भाग लेने से इन्कार कर दिया, किन्तु बाद मे स्वराज्य पार्टी केन्द्रीय विधान-मण्डल में आई। १९२७ में साइमन कमीशन सुधारो की नई किश्त के विषय में सिफारिश करने के लिए नियुक्त किया गया। इसने अपना प्रतिवेदन १९३० में दिया। लन्दन में तीन गोलमेज सम्मेलन १९३०, १९३१, १९३२, मे भारत का भविष्य निश्चित करने के लिए हुए। प्रधान मन्त्री रैमजे मैक्डोनाल्ड (Ramsay Macdonald) ने अगस्त, १९३२ में प्रसिद्ध साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) दिया। मार्च १९३३ मे श्वेत पत्र (White Paper) प्रकाशित हुआ। सयुक्त कमेटी की रिपोर्ट १९३४ में प्रकाशित की गई और १९३५ मे भारत शासन अधिनियम पास किया गया।

अधिनियम में अखिल भारतीय संघ (All-India Federation) की व्यवस्था की गई थी। संघ में अंग्रेजी भारत तथा देशी भारत दोनो ही शामिल होते थे। प्रान्त स्वतः ही शामिल होते किन्तु प्रत्येक देशी नरेश को प्रवेश-लिखत (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर करने आवश्यक थे। संघीय विधान-मण्डल (Federal Assembly) तथा राज्य-परिषद् के देशी रियासतो के प्रतिनिधियों की संख्या क्रमशः १२५ और १०४ थी। प्रान्तो के सदस्यों की सख्या क्रमशः २५० और १५६ थी। देशी रियासतों के सदस्यों को शासक मनोनीत करते थे तथा प्रान्तीय सदस्य साम्प्रदायिक निर्वाचन के अनुसार चुने जाते थे।

यद्यपि प्रान्तों में द्वैध-शासन-व्यवस्था समाप्त हो गई थी तथापि वह केन्द्र मे लागू की गई। कुछ संघीय विषय महा-राज्यपाल के हाथो मे सुरक्षित रहे और उनका प्रशासन उसे अधिक-से-अधिक तीन सदस्यों की सहायता से करना था। उनकी नियुक्ति भी उसी के द्वारा की जानी थी। सुरक्षित विषयों मे प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, ईसाई धर्म सम्बन्धी विषय तथा अनुसूचित जातियो के क्षेत्रों का प्रशासन था। अन्य संघीय विषयों के लिए महा-राज्यपाल की सहायता तथा परामर्श के लिए मन्त्रि-परिषद् की व्यवस्था की गई थी। प्रमुख अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को संघीय मन्त्रिमण्डल में रखना था। मन्त्री केन्द्रीय विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी थे। किन्तु यह ध्यान रहे कि मन्त्रियों को कानून बनाने पर तथा वित्त पर पूरा-पूरा नियन्त्रण न दिया गया था। लगभग ८०% बजट हर वोट देने का अधिकार नही था, महाराज्यपाल कानून बनाने मे अनेक प्रकार से विघ्न डाल सकता था। बहुत से मामलों मे सम्बन्धित विधेयक पास हो जाने पर भी महा-राज्यपाल उसे निषेध (veto) कर सकता था। वह उसे ... सरकार की अनुमति के लिए भी रोक सकता था।

संघीय विधान-मण्डल मे संघीय विधान-सभा तथा राज्य परिषद् थी। सभा का कार्य-काल ५ वर्ष था। राज्य-परिषद् स्थायी संस्था थी जिसके ⅓ सदस्य हर तीसरे वर्ष पृथक् हो जाया करते थे।

अधिनियम ने संघीय न्यायालय (Federal Court of India) की स्थापना की जिसमें मुख्य न्यायाधीश तथा दो दूसरे जज थे। उसको प्रारम्भिक तथा अपीलीय दोनों प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त थी। संघीय न्यायालय का कार्य संविधान की व्याख्या करना तथा यह देखना था कि केन्द्र तथा इकाइयाँ एक-दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप न करें। संघीय न्यायालय अपीलो का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। प्रिवी कौंसिल में अपील करने की व्यवस्था थी।

भारत मन्त्री की भारत परिषद् (India Council) समाप्त करके परामर्श-दाताओं की व्यवस्था की गई थी। यह भारत मन्त्री की इच्छा पर था कि वह सिविल सर्विस के अतिरिक्त अन्य विषयों पर उनसे परामर्श करे अथवा न करे।

महा-राज्यपालो तथा राज्यपाल को तिहरे सामर्थ्य से कार्य करने की शक्तियाँ प्राप्त थीं। साधारणतः उन्हे मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करना होता था। जब वे ऐसा करते थे तब वे वैधानिक प्रमुख (constitutional heads) होते थे। वे अपने विवेक से कार्य करने की सामर्थ्य भी रखते थे। ऐसा करते समय वे मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नही थे। वे अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार उस समय कार्य करते थे जबकि अपने विशेष उत्तरदायित्वों को शान्ति एवं व्यवस्था तथा देशी नरेशों, अल्पसख्यकों तथा इंडियन सिविल सर्विस के हितों की रक्षा करते हुए करते थे। वे अपने विवेक के अनुसार भी कार्य कर सकते थे। ऐसा करते समय वे पूर्णतः अनुत्तरदायी रीति से कार्य करते थे। उनसे यह भी आशा नही की जा सकती थी कि वे मन्त्रियो के विचारों को सुनें, उनके अनुसार चलने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

१६३५ के अधिनियम की प्रमुख विशेषता थी प्रान्तीय स्वायत्त-शासन (provincial Autonomy)। १६१६ के अधिनियम ने प्रान्तो में द्वैध-शासन की व्यवस्था स्थापित की थी। १६३५ के अधिनियम ने स्वायत्त-शासन की व्यवस्था करके एक पग आगे बढ़ाया। प्रान्तीय प्रशासन का बहुत-सा कार्य प्रान्तीय मन्त्रियो को सौपा गया किन्तु राज्यपालों को भी बहुत से अधिकार दिये गए। जब वे अपने व्यक्तिगत निर्णय से कार्य करते तब उनके लिए मन्त्रिमण्डल के परामर्श को मानना अनिवार्य नही था। अपने विवेकानुसार कार्य करते समय वे निरंकुश शासक बन जाते थे।

मन्त्रियों की शक्तियाँ सीमित थी। उनको प्रान्त में पूर्ण स्वायत्त-शासन प्राप्त न था। मन्त्रियों की दुर्बल स्थिति का कारण राज्यपाल की असाधारण शक्तियाँ थी। राज्यपाल को अनेक विधायिनी शक्तियाँ (legislative powers) प्राप्त थीं। यही शक्तियाँ मन्त्रियों के विधान नियन्त्रण पर रोक लगाती थी। राज्यपाल किसी भी विधेयक को विधान-मण्डल में लाने से रोक सकता था। यदि कोई विधेयक मन्त्रिमण्डल की प्रेरणा से विधान-मण्डल में पास हो जाए तो वह उसे अपने निषेधाधिकार से रद्द

कर सकता था। वह किसी भी स्थिति में विधेयक पर विचार रोक सकता था। अध्यादेशों का निकालना तथा राज्यपाल के अधिनियम भी मन्त्रियों के कानूनी क्षेत्रों को सीमित करते थे। यही बात वित्तीय विषयों के विषय में कही जा सकती थी। मन्त्री नये करों को प्रस्तावित करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थे। यह राज्यपाल की इच्छा पर था कि किसी धन सम्बन्धी विधेयक की मंजूरी दे अथवा न दे। मन्त्रियों का बजट पर पूरा अधिकार नही था। उसका ४०% भाग अ-मतदेय (non-votable) था।

राज्यपाल मन्त्रियों को पद-च्युत कर सकते थे। ऐसा उन्होने कई बार किया। बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री फजलुल हक को राज्यपाल ने १९४३ मे असभ्य रीति से पद से हटा दिया। सिन्ध का मुख्य मन्त्री अल्लाबख्श इस कारण हटाया गया क्योकि उसने "खान बहादुर" की पदवी का परित्याग किया था। पंजाब के राज्यपाल ने शौकत हयात खाँ को पद-च्युत किया।

आलोचना—(१) प० नेहरू के अनुसार १९३५ का संविधान 'एक ऐसी मशीन थी जिसके ब्रेक मजबूत थे और इंजन नदारद'। एक अन्य आलोचक के अनुसार "इस अधिनियम ने भारतीयो की सरकार तथा प्रशासन की योग्यताओं का परीक्षण उसी प्रकार किया जिस प्रकार किसी आदमी के हाथ पैर बाँधकर उसे नदी मे यह देखने के लिए फैंक दिया जाए कि उसमे तैरने की कितनी क्षमता है।" "नये भारतीय विधान को स्वायत्त-शासन की रूप-रेखा कहना एक क्रूर मजाक होगा। इसमें मजाक करने वाले को तो मजा आता है लेकिन दूसरो को नही जिनकी कीमत पर यह किया गया है।"

पं० मदनमोहन मालवीय के अनुसार, "यह अधिनियम हम पर लादा गया है। यह दूर से देखने पर प्रजातन्त्रात्मक मालूम होता है किन्तु निश्चित रूप से अन्दर से खोखला है।" श्री राजगोपालाचार्य के अनुसार, "नया अधिनियम द्वैध-शासन से भी बुरा है।" श्री जिन्ना के शब्दों में, "१९३५ की योजना पूर्णत निःसत्व, सिद्धान्तत बुरी तथा अस्वीकार्य थी।"

(२) भारतीयों को अपने देश की सरकार का नियन्त्रण प्राप्त नहीं था। वे अपने शासन-विधान में परिवर्तन तथा संशोधन नही कर सकते थे। ब्रिटिश सरकार नीति निर्धारित करती थी और भारत सरकार उसे पूरा करती थी। भारतीय लन्दन के नियन्त्रण को अच्छा नही समझते थे।

(३) भारतीयो को केन्द्र में द्वैध-शासन से घृणा थी। यह कहा गया कि १९१९ के प्रान्तीय द्वैध-शासन की बुराइयाँ अब केन्द्र मे आ जायेंगी।

(४) अखिल भारतीय संघ (All-India Federation) के शुरू होने की शर्त यह थी कि राज्यों की एक निश्चित संख्या उसमें शामिल हो किन्तु अधिनियम द्वारा देशी रियासतों को स्वतन्त्रता थी कि वे संघ में मिलें चाहे न मिलें। यह एक गम्भीर कमी थी।

(५) कानून द्वारा देशी रियासतों को विशेष सुविधाएं प्राप्त हुई थी। उनको जितना प्रतिधिनित्व राज्य-परिषद् तथा संघीय विधान सभा मे दिया गया था वह उस

सख्या से बहुत अधिक था जो उनकी जनसंख्या, क्षेत्र अथवा केन्द्रीय राजस्व के उनके अनुदान के अनुपात में मिलना चाहिए था। अंग्रेजी भारत के सदस्यों का चुनाव जनता करती थी और देशी राजा अपनी निर्दिष्ट संख्या को मनोनीत करते थे। आलोचकों ने यह कहा कि चूंकि देशी राजे पूरी तरह से भारत सरकार के राजनैतिक विभाग (Political Department) के नियन्त्रण में थे और वे वैसा ही करते थे जैसा कि उनको कहा जाता था अतः देशी रियासतों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में रहते थे। वे अपने स्वामियों के विपरीत मत देने का साहस नहीं कर सकते थे। अंग्रेज देशी रियासतों के प्रतिनिधियों का प्रयोग अपने हितों के अनुसार करते और देश की प्रगति को रोकते थे।

(६) भारतीयों ने संघीय विधान सभा के लिए अप्रत्यक्ष चुनाव का विरोध किया। यह कहा गया कि अप्रत्यक्ष चुनाव प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध है। यह समय की गति के प्रतिकूल है।

(७) भारतीयों ने अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Civil Service), पुलिस सेवा तथा अन्य अखिल भारतीय सेवाओं पर भारत मन्त्री के नियन्त्रण का विरोध किया।

(८) विधान-मण्डलों में सम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका फल यह हुआ कि शासन में साम्प्रदायिकता भर गयी। साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) ने राष्ट्रीय एकता की जड़ों में मट्ठा देने का काम किया और उसका फल बहुत भयानक हुआ। यह कहा गया कि जितने लम्बे समय तक साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार काम किया जाएगा उतनी ही अधिक कठिनाई देश की एकता को बनाने में होगी।

(९) भारतीय बजट का अधिकांश भाग सेनाओं पर व्यय होता था। लेकिन भारतीयों को निश्चित रूप से उस पर बिल्कुल नियन्त्रण प्राप्त नहीं था क्योंकि सुरक्षा (Defence) 'सुरक्षित' विषय था। भारतीयों ने सेनाओं के भारतीयकरण (Indianisation of Army) की मन्दगति का भी विरोध किया।

१९३७ से १९५० का विकास (Development from 1937 to 1950)—१९३५ का अधिनियम पूरी तरह लागू नहीं किया गया था। अप्रैल, १९३७ से केवल प्रान्तीय स्वायत्त शासन से सम्बन्धित भाग ही लागू किया गया। कांग्रेस ने चुनावों में भाग लिया और ६ प्रान्तों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त किया। बाद में यह संख्या सात हो गई। पहले-पहल गतिरोध (deadlock) पैदा गया हो किन्तु शीघ्र ही कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने। वे १९३९ तक पदों पर रहे जबकि दूसरा विश्व-युद्ध शुरु हुआ। अंग्रेजी सरकार से मत-विभिन्नता के कारण कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिए। युद्ध-काल में अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने के कई प्रयत्न किये। अगस्त १९४० में लार्ड लिनलिथगो ने प्रसिद्ध 'अगस्त प्रस्ताव' पास किया। किन्तु कांग्रेस ने साथ देने से इन्कार कर दिया। १९४२ में ब्रिटिश लोकसभा के नेता सर स्टेफोर्ड क्रिप्स अपने प्रस्तावों के साथ भारत आए। उनके प्रस्तावों में वह विधि रखी गई थी

जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को अपनी संविधान सभा बनाने तथा अपना भविष्य निश्चित करने की इजाजत दी थी। मिशन असफल रहा क्योंकि कांग्रेस ने अल्पकालीन व्यवस्था (short-term arrangement) को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। यह गतिरोध १९४५ तक चलती रही जबकि लार्ड वेवल ने गतिरोध को समाप्त करने के लिए अपनी योजना पेश की, किन्तु उसकी कोशिश भी नाकामयाब रही।

जब इंगलैंड मे लेबर दल (Labour Party) की सरकार बनी तब उसने १९४६ में प्रसिद्ध कैबिनट मिशन को भारत भेजा। लम्बी सलाह और बहस के बाद कैबिनट मन्त्रियों ने अपनी योजना १६ मई, १९४६ को प्रकाशित की। योजना में पाकिस्तान को स्थान नही दिया गया था। भारत सघ तथा प्रान्तों के तीन भागों के वर्गीकरण की व्यवस्था की गई। शुरू मे मुस्लिम लीग ने योजना को स्वीकार किया लेकिन जब कांग्रेस ने इसे स्वीकार किया तब मुस्लिम लीग मुकर गई। सितम्बर १९४६ में श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे अन्तरिम सरकार बनी। शुरू मे मुस्लिम लीग ने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया लेकिन कुछ समय बाद वह शामिल हो गई। ९ दिसम्बर, १९४६ को संविधान सभा की बैठक दिल्ली में हुई लेकिन मुस्लिम लीग ने 'बायकाट' कर दिया। लार्ड माउण्टबेटन मार्च, १९४७ में महा-राज्यपाल बने। उन्होंने जून में भारत-विभाजन की योजना पेश की। ब्रिटिश संसद् ने १८ जुलाई, १९४७ को प्रसिद्ध भारत स्वतन्त्रता अधिनियम पास किया।

भारत स्वतन्त्रता अधिनियम (Indian Indepndence Act, 1947)—इस अधिनियम का उद्देश्य लार्ड माउन्टबेटन की ३ जून की योजना को लागू करना था। इससे केवल उन वचनों को कानूनी रूप दे दिया गया जो कि भारतीयो को पहले ही दे दिए गये थे।

(१) इस अधिनियम मे १५ अगस्त, १९४७ को भारत विभाजन तथा भारत और पाकिस्तान नामक दो डोमीनियनों (Dominions) की स्थापना की व्यवस्था की गई। अधिनियमों द्वारा दोनो को विधान बनाने सम्बन्धी सर्वोच्च शक्ति (Legislative supremacy) दी गई थी।

(२) दोनो डोमीनियनों के विधान-मण्डलों को कानून बनाने के बारे में पूरी-पूरी शक्तियाँ दी गई थी। वे देश तथा विदेश के सम्बन्ध मे कानून बना सकते थे।

(३) १५ अगस्त, १९४७ के बाद अंग्रेजी सरकार का डोमीनियनों, प्रान्तों अथवा डोमीनियन के किसी भाग के किसी मामले मे कोई नियन्त्रण नही रहा।

(४) जब तक प्रत्येक डोमीनियन अपना विधान बनाती है तब तक के लिए अधिनियम ने तत्कालीन सविधान सभाओं को ही डोमीनियनो का विधान-मण्डल बना दिया। सभाओं को वे सब शक्तियाँ प्राप्त थी, जो कि पहले केन्द्रीय विधान-मण्डल को प्राप्त थी। वे शक्तियाँ संविधान सभा को सविधान बनाने के अलावा प्राप्त हुई थी।

(५) नया संविधान बनाने तक डोमीनियन तथा प्रान्तों का शासन १९३५ के

अधिनियम के अनुसार चलाए जाने का प्रबन्ध किया गया। प्रत्येक डोमीनियन को भारत स्वतन्त्रता अधिनियम १९४७ के अधीन १९३५ के अधिनियम में अदल-बदल करने का अधिकार दे दिया गया।

(६) ३१ मार्च १९४८ तक के लिए महा-राज्यपालों को अधिनियम में संशोधन करने या आवश्यक व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया। उस दिन के बाद संविधान सभा को अधिकार प्राप्त हो गया था कि १९३५ के अधिनियम में किसी भी प्रकार का उलट-फेर कर ले।

(७) कानूनों को निषेध करने या अपनी इच्छा के लिए रिजर्व करने का अधिकार राजा ने छोड़ दिया। यह अधिकार महा-राज्यपाल को दे दिया गया। उसको डोमीनियन विधानमण्डल के पास किए उस प्रत्येक कानून को राजा के नाम पर स्वीकार करने का अधिकार दिया गया, जो उसने अपनी साधारण विधायी सामर्थ्य से बनाया हो।

(८) अधिनियम में देशी रियासतों के ऊपर 'क्राउन' के अधिराजत्व (suzerainty) को समाप्त कर दिया गया। १५ अगस्त, १९४७ के दिन राजा द्वारा की गई सब सन्धियां, समझौते तथा राजा द्वारा किये जाने योग्य कार्य—देशी रियासतों और उनके शासकों के सम्बन्ध में—समाप्त हो जाने थे। यह भी व्यवस्था की गई थी कि वर्तमान प्रबन्ध ही भारत सरकार तथा राज्यों के बीच में उस समय तक रहेंगे जब तक नए डोमीनियनों तथा देसी रियासतों में विस्तृत समझौते हों।

(९) उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त (N. W. F. P.) के कबीलों से समझौता वार्त्ता उत्तराधिकारी डोमीनियन करेगा।

(१०) भारत मन्त्री का पद समाप्त करके उसके कार्य राष्ट्रमण्डल विषयक मन्त्री (Secretary of State for Commonwealth Affairs) को सौंप दिए गए।

(११) इंगलैंड के राजा के अभिधान में से "भारत के सम्राट्" की पदवी हटा दी गई।

(१२) अधिनियम ने भारत से ब्रिटिश शासन को समाप्त करके दो स्वतन्त्र डोमीनियन स्थापित किए और उसने प्रत्येक डोमीनियन को अपनी इच्छा का संविधान बनाने की स्वतन्त्रता दी। इस अधिनियम ने दोनों डोमीनियनों को इस बात की भी स्वतन्त्रता दी कि वे जब चाहें राष्ट्रमण्डल को त्याग सकते हैं।

अंग्रेजों तथा भारतीयों के सम्बन्धों में १९४७ का भारती
एक महान् घटना थी। इससे भारत में अंग्रेजी शासन का
की स्वतन्त्रता का अधिकार माना गया। किन्तु दुर्भाग्य से
में बाँट दिया। केवल भविष्य ही यह निर्ण
देश के हित में था।

संविधान सभा की मांग (De

दावा कि भारत के संविधान बनाने का कार्य भारतीय लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किया जाये, सबसे पहले प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मे प्रगतिशील भारतीय राष्ट्रवादी विचारकों द्वारा किया गया था। यह वह काल था जिस समय अंग्रेज राजनीतिज्ञ सभी छोटे-बड़े राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के अधिकार सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर रहे थे। लेकिन युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीय मांग को पूरा नही किया गया। भारत सरकार के १६१६ के अधिनियम में दी गई प्रस्तावना मे इस बात का विशेष रूप से उल्लेख निम्नलिखित शब्दों मे किया गया—"और प्रत्येक प्रगति का समय तथा स्वरूप संसद् द्वारा निर्धारित किया जा सकता है जिस पर भारत के लोगो के कल्याण तथा प्रगति का दायित्व है।"

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की आत्म-निर्णय करने की माँग के दबाने के उपरान्त भी, वह मांग समय की गति के साथ-साथ तीव्रतर होती गई। महात्मा गाँधी ने १६२२ में अपने विचारो को इस प्रकार व्यक्त किया—"यह तथ्य हमे भली भाँति समझ लेना चाहिए कि ब्रिटिश सम्बन्धों को बनाये रखने के साथ स्वराज्य का क्या अर्थ है। इसका यह अर्थ तो निश्चित रूप से है कि भारत यदि चाहे तो अपनी स्वतन्त्रता का ऐलान कर सकता है। इस लिए स्वराज्य ब्रिटिश ससद् की ओर से उपहारस्वरूप नही होगा, यह भारत की विचार अभिव्यक्ति की पूरी घोषणा होगी। यह ठीक है कि इसकी अभिव्यक्ति संसद् के अधिनियम के अन्तर्गत होगी, लेकिन यह तो भारतीय जनता की इच्छा का सौजन्यपूर्ण अनुसमर्थन होगा, जैसा कि दक्षिण अफ्रीका सघ के मामले में हुआ था। हाउस ऑफ कॉमन्स उस मसविदे के जरूरी क्रिया विशेषण को बदल नही सकता। हमारे सम्बन्ध में इस प्रकार का अनुसमर्थन एक सुलह के रूप में होगा और इंग्लिस्तान उसमें एक हामीदार होगा। हो सकता है कि ऐसा स्वराज्य इस वर्ष प्राप्त न हो, और हमारी पीढ़ी तक हमें न मिले। लेकिन मैंने इस ओर कम कल्पना नही की है। निर्णय होने की दशा मे, ब्रिटिश ससद् भारत की जनता की इच्छा का अनुसमर्थन करेगी। ऐसी अभिव्यक्ति यहाँ की नौकरशाही द्वारा न होकर देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा होगी।"

श्रीमती एनी बेसेन्ट से स्फूर्ति लेकर केन्द्रीय विधान-सभा के उदार सदस्यो ने १६२२ तथा १६२३ मे एक राष्ट्रीय सभा का आयोजन किया। इसका मुख्य कार्य था "भारत की राष्ट्रमण्डल के वैदेशिक सम्बन्धों में डोमीनियन की सस्थिति को प्रतिपादित करना तथा आन्तरिक कार्यों में स्वराज्य देना।" फरवरी, १६२३ मे नई दिल्ली में राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई। इसका उद्देश्य १६२३ के निर्वाचन के बाद इस प्रकार की सभा बुलाने का आयोजन करना था, किन्तु यह योजना सफल न हो सकी।

१६२४ में स्वराज्य पार्टी ने, केन्द्रीय विधान सभा मे प्रतिनिधि गोलमेज सम्मेलन आयोजित करने अथवा ऐसी सभा की माँग की जो भारत सविधान के बारे में योजना सम्बन्धी सिफारिश कर सके। नव-निर्वाचित भारतीय विधान-मण्डल के अनुमोदन के पश्चात् इस योजना को संविधि (statute) के रूप में ब्रिटिश संसद् के समक्ष अधिनियम के लिए पेश करना था। १६२५ मे मुड्डीमैन समिति रिपोर्ट पर

विचार करने के अवसर ९२, इस किस्म की मांग केन्द्रीय विधान-सभा में की गई। राष्ट्रीय मांग को स्वीकार करने की बजाय, लॉर्ड बर्कनहेड ने, जो उस समय सेक्रेटरी ऑफ स्टेट थे, स्वराज्य पार्टी के सदस्यों को चुनौती दी कि वे ऐसा "संविधान बनाएं जिसके बारे में भारत की जनता का व्यापक मतैक्य हो।" उसने इस चुनौती को दो बार दोहराया तथा अन्तिम बार १९२७ में साइमन आयोग की नियुक्ति के समय दोहराई गई। भारतीय नेताओं ने इस चुनौती को स्वीकार किया और इसके परिणाम-स्वरूप नेहरू रिपोर्ट तैयार हुई जिस पर "भारतीय जनता का व्यापक रूप से मतैक्य था।"

भारतीय संविधान सभा का विचार सर्वप्रथम श्री एम० एन० राय ने पेश किय। लेकिन यह विचार एक पृथक् सुझाव मात्र था। इससे लोक आकर्षण में वृद्धि नहीं हुई तथा किसी भी राजनैतिक गुट ने इसे नहीं अपनाया। यद्यपि १९३४ में संविधान सभा की प्रणाली को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया लेकिन बहुत से कांग्रेसी नेता सम्मेलन प्रणाली को ही मानते रहे। जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"कुछ कांग्रेसी नेताओं ने, संविधान सभा के विचार को मानते हुए, इसे दबाने का विचार किया है और इसे पुराने ढंग के सर्वदल सम्मेलन के समान बना दिया है।" भारतीय राजनीति में संविधान सभा का विचार ब्रिटिश सरकार द्वारा चालू किये गये १९३३ के श्वेत पत्र के प्रतिसन्तुलन के रूप में हुआ। १९३४ में महात्मा गांधी ने "स्वराज्य के लिए असैनिक प्रतिरोध" को बन्द करने की सिफारिश की तथा स्वराज्य पार्टी को पुनर्जीवित करने के सुझाव का अनुमोदन किया। ऐसे कांग्रेसी नेताओं का सम्मेलन मई, १९३४ में हुआ जो परिषद् के भीतर रह कर संविधान की मांग करना चाहते थे। स्वराज्य पार्टी का नया विधान अंगीकृत हुआ। निम्न संकल्प पारित हुआ—"जबकि इस सम्मेलन का यह मत है कि भारत सरकार के नये संविधान के बारे में सम्राट् की सरकार का प्रस्ताव जो कि श्वेत पत्र में अंकित है सर्वांग रूप से न सिर्फ राष्ट्रीय मांग का नकार मात्र है तथा दूसरे गोलमेज सम्मेलन के समय महात्मा गांधी ने जिसकी मांग की थी, बल्कि जिसका अर्थ भारतीय लोगों की राजनैतिक दासता तथा आर्थिक शोषण होता है। यह सम्मेलन संकल्प करता है कि स्वराज्य पार्टी इन प्रस्तावों को देश से रद्द कराने के बारे में आवश्यक कदम उठायेगी। इस सम्मेलन का मत है कि अन्य राष्ट्रों की भांति भारत को भी आत्म-निर्णय का अधिकार मिलना चाहिए तथा इसका यह मत है कि इस सिद्धान्त को लागू करने की यही प्रणाली है कि भारतीय जनता में प्रत्येक वर्ग के लोगों की प्रतिनिधि संविधान सभा बुलाई जाय जो भारतीय जनता को ग्राह्य संविधान तैयार करे। इस सम्मेलन का यह मत भी है कि कॉम्युनल अवार्ड में अंकित प्रतिनिधित्व के अनुपात की प्रणाली को स्वीकार करने अथवा रद्द करने आदि पर विचार करने की समस्या इस समय अपरिपक्व है। इस पर विचार करने का समय उस समय होगा जब संविधान सभा को बुलाया जायेगा।" अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने मई, १९३४ की बैठक में महात्मा गांधी की सिफारिश को स्वीकार कर लिया कि जनता के असैनिक अवरोध को रोक दिया जाय तथा कांग्रेस संसदीय बोर्ड की स्थापना

की जाय। इसका कार्य भविष्य के चुनाव में श्वेत-पत्र के प्रस्तावों को लेकर उन्हें रद्द करने की समस्या पर नियन्त्रण करना तथा भारत का नया संविधान बनाने के लिए संविधान सभा को आमन्त्रित करना होगा।

यद्यपि भारतीय विधान-सभा के विचार को १९३४ के चुनाव मे स्वराज्य पार्टी ने ही लोकप्रिय बनाया लेकिन बहुत से कांग्रेसी नेताओ ने संविधान सभा के विचार को सर्वदलीय सम्मेलन अथवा एक प्रकार के भारतीय गोलमेज सम्मेलन का बड़ा रूप ही माना। उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि "संविधान सभा की तह में मूल विचार यह है कि इसका निर्वाचन विस्तृत आधार पर होना चाहिए तथा इसकी शक्ति और स्फूर्ति का स्रोत जनता में हो।" जवाहरलाल नेहरू ने संविधान के विचार को लोगों के सामने रखा तथा जनता मे उसे लोकप्रिय बनाया। इसलिए २८ दिसम्बर, १९३६ मे फैजपुर अधिवेशन मे कांग्रेस ने निम्न संकल्प पारित किया—"कांग्रेस भारत सरकार अधिनियम, १९३५ को पूर्ण रूप से रद्द करने सम्बन्धी अपने विचार को दोहराती है तथा यह संविधान देश की जनता की प्रकट घोषणा के उपरान्त भी उन पर ठोंसा गया है। कांग्रेस के विचार में इस संविधान का साथ देना भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को झुठलाना, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अधिकार को मजबूत करना है तथा भारतीय जनता का अधिकाधिक शोषण करना है, जो कि साम्राज्यवादी प्रभुत्व के कारण गरीबी की इस दशा को प्राप्त हो चुके हैं। इसलिए कांग्रेस इस संविधान को न मानने के अथवा इससे सहयोग न करने के संकल्प को दोहराती है। इसकी अपेक्षा वह विधान-सभा के भीतर तथा बाहर दोनों प्रकार से लड़ कर इसे खत्म करना चाहती है। भारत के आर्थिक अथवा राजनैतिक ढांचे के निर्माण के लिए कांग्रेस किसी भी ऐसी बाह्य शक्ति अथवा प्राधिकारी के अधिकार को नही मानेगी जो किसी भी रूप मे अपना मत प्रकट कर सकने की क्षमता रखती है। इस प्रकार के किसी भी प्रयास के विरोध में भारतीय संगठित रूप मे लड़ेंगे। भारतीय सिर्फ ऐसे सवैधानिक ढाँचे को मान्यता दे सकते हैं, जिसका निर्माण स्वयं वे करें अथवा जो भारत को राष्ट्र के रूप मे मानकर देश की स्वतन्त्रता पर आधारित हो तथा जिससे उनकी जरूरतो और आशाओं के अनुसार विकास की पूरी गुजाइश हो सके। कांग्रेस का उद्देश्य भारत में एक ऐसा वास्तविक लोकतन्त्रात्मक राज्य स्थापित करना है, जिसमें राजनैतिक शक्ति का हस्तान्तरण जनता को मिल सके तथा सरकार उनके प्रभावी नियन्त्रण में हो। ऐसे राज्य की स्थापना केवल ऐसी संविधान सभा द्वारा ही हो सकती है जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता हो तथा जिसे देश का संविधान बनाने का अन्तिम अधिकार प्राप्त हो।"

१९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध के आरम्भ होने के समय ऐसी ही स्थिति थी। भारत की जनता अथवा उसके प्रतिनिधियों की पूर्व सम्मति के बिना ही गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के प्रति सारा सहयोग खत्म कर दिया। ब्रिटिश सरकार से युद्ध के उद्देश्यो की व्याख्या करने को कहा गया तथा मांग की कि "भारत की स्वतन्त्रता

तथा लोगों के संविधान सभा द्वारा संविधान निर्माण के अधिकार को मान्यता प्रदान की जाए।'' विभिन्न प्रान्तों के कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने पद त्याग दिया। १४ दिसम्बर, १९३९ को कांग्रेस ने निम्न संकल्प पास किया—''समिति यह घोषणा पुनः करना चाहती है कि भारत की स्वतन्त्रता का स्वीकरण तथा संविधान सभा द्वारा उसकी जनता का संविधान बनाने का अधिकार इस कारण अत्यावश्यक है कि ब्रिटिश नीति पर से साम्राज्यवाद का धब्बा धुल सके और कांग्रेस भविष्य में सहयोग के लिए विचार कर सके। उनका विचार है कि संविधान सभा ही एकमात्र लोकतन्त्रात्मक उपाय है जिसके द्वारा एक स्वतन्त्र देश के संविधान का निश्चय हो सकता है। और ऐसा कोई भी व्यक्ति जो लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता में विश्वास करता है इस से असहमत न होगा। कार्यकारिणी समिति का यह विश्वास है कि संविधान सभा ही एक ऐसा शस्त्र है जो साम्प्रदायिक तथा अन्य कठिनाइयों को दूर कर सकती है। लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है कि कार्यकारिणी समिति साम्प्रदायिक समस्या हल करने में ढील डालेगी। यह सभा ऐसा विधान बना सकती है जिसमें स्वीकृत अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों को उनके संतोष के अनुसार संरक्षण प्रदान किया जा सके, तथा, उन अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों से सम्बन्धित मामलों में जिन पर परस्पर मतैक्य न होगा, उन्हें विवाचन (arbitration) के लिए सौंपा जा सके। संविधान सभा का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। मौजूदा पृथक् निर्वाचन-मण्डलों (Separate Electorates) को ऐसे अल्पसंख्यक वर्गों के लिए छोड़ देना चाहिए जो इसकी मांग करें। इन सदस्यों की संख्या से सभा में उनकी शक्ति का आभास होना चाहिए।''

१९ नवम्बर, १९३९ को महात्मा गांधी ने 'हरिजन' नामक पत्रिका मे ''एक मात्र मार्ग'' (The Only Way) शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया। इस लेख में महात्मा गांधी ने घोषणा की कि वास्तविक तथ्यों के कारण वे जवाहरलाल नेहरू की अपेक्षा संविधान सभा के मामले में अधिक प्रोत्साहित हुए हैं। ''यह लोक शिक्षा तथा राजनैतिक सबक सिखाने के अलावा साम्प्रदायिक तथा अन्य वैमनस्यों के उपचार का साधन भी है।'' वयस्क मताधिकार पर आधारित स्त्री-पुरुषों की अमिश्रित संस्था ही प्रतियोगी भावों का न्यायपूर्वक समाधान कर सकती है। इसके बिना साम्प्रदायिक तथा अन्य दावो को किसी भी प्रकार अन्तिम रूप नही दिया जा सकता। संविधान सभा ही देश के लिए देशी संविधान की व्यवस्था तथा लोगों का वास्तविक प्रतिनिधित्व कर सकती है। ''ऐसा सविधान आदर्शात्मक भले ही न हो किन्तु वास्तविक अवश्य होगा।'' ''संविधान सभा, यदि इसका जन्म होता है—मेरा विश्वास है कि हमारे तथा ब्रिटिश लोगों मे परस्पर समझौते के फलस्वरूप ऐसा होगा—तो इस प्रकार दोनों राष्ट्रों के श्रेष्ठ पुरुषो की संयुक्त बुद्धि के कारण विधान सभा का निर्माण होगा जिसमे भारत के बौद्धिक स्तर का उचित तथा सच्चा आभास मिलेगा। आप चाहे जिस ओर से इस समस्या को देखें, यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्रात्मक स्वराज्य का मार्ग सिर्फ उचित रूप से निर्मित संविधान सभा के द्वारा ही सम्भव है, चाहे इसे किसी

भी नाम से पुकारा जाए, किन्तु इसके महत्त्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा। इसलिए किसी प्रकार की सीधी कार्यवाही करने से पूर्व संविधान सभा के निर्माण के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिए।"

सविधान सभा के सम्बन्ध में जवाहरलाल नेहरू की धारणा कुछ भिन्न थी। उन्होने 'भारत की एकता' में १९४० में लिखा था—"मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि वास्तविक लोकतन्त्रात्मक स्वतन्त्रता के लिए हमारे पास संविधान सभा के अतिरिक्त और मार्ग नही है। इसका अर्थ है नए राज्य का निर्माण। इसका तात्पर्य है साम्राज्यवाद की आर्थिक नींव तथा ढाँचे से दूर चले जाना। इस कार्य को महान् बुद्धिमान् वकीलों के गुट से पूरा नहीं किया जा सकता। इस कार्य को छोटी समितियो की सहायता से, जो अधिकारों के संतुलन के नाम पर संविधान की रचना करने जा रही है, पूरा नही किया जा सकता। इसे वाह्य प्राधिकार की छाया मे पूर्ण नही किया जा सकता। इसे प्रभावी रूप में उसी समय में पूरा किया जा सकता है जबकि राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ मौजूद हों तथा इसके लिए उत्कंठा और मंजूरी लोगों से मिले। इसलिए वयस्क मताधिकार की बहुत जरूरत है······हम कोई इनाम नहीं माँग रहे है। हम तो केवल यह बता रहे हैं कि हम क्या लेना चाहते हैं और किसी-न-किसी समय क्या पाने वाले हैं। जब हम काफी मजबूत हो जायेंगे उस समय इसे प्राप्त कर लेंगे, जल्दी ही तथा सम्भवतः संघर्ष के बाद।"

ब्रिटिश सरकार ने अपने अगस्त, १९४० के प्रस्ताव में संविधान सभा के बारे में माँग की मूल बातें मान ली थीं। ब्रिटिश सरकार ने यह घोषणा की कि "संवैधानिक योजना बनाने का प्रारम्भिक दायित्व भारतीयों का अपना तथा इसका उदय भारतीय जनता में प्रचलित सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक धारणाओं के आधार पर होना चाहिए।" ब्रिटिश सरकार ने आगे कहा—"महामहिम सम्राट् ने मुझे (गवर्नर-जनरल को) यह घोषणा करने का अधिकार दिया है कि युद्ध समाप्त होने के पश्चात् कम-से-कम समय में वे इस बात के लिए अनुमति देंगे कि भारत के राष्ट्रीय जीवन मे से प्रमुख तत्त्वों के प्रतिनिधि निकाय (body) को स्थापित किया जाए।" १९४२ की क्रिप्स योजना इससे एक अगला कदम था और उसमे उन सिद्धान्तों का जिक्र किया गया जिनके अनुसार सविधान सभा की स्थापना होनी थी। उदाहरण के लिये "प्रान्तीय निर्वाचनों के परिणाम पता चलने के तुरन्त बाद जो कि युद्ध के खत्म होने के बाद जरूरी है, प्रान्तीय विधान-सभाओं के समस्त सदस्य एकल निर्वाचक मण्डल के रूप मे संविधान बनाने वाले निकाय के निर्वाचन का कार्य करेंगे। यह व्यवस्था अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली पर आधारित होगी। यह नया निकाय (body) निर्वाचक मण्डल की संख्या के दसवें भाग के लगभग होगा। भारतीय राज्यों को कुल जनसंख्या में अपने प्रतिनिधि उसी अनुपात में नियुक्त करने को कहा जायगा जैसा कि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के साथ होगा और उनकी शक्तियाँ भी वही होंगी जो ब्रिटिश भारत की शक्तियाँ हैं।" जुलाई, १९४२ को सर स्टेफर्ड क्रिप्स के प्रेस सम्मेलन में एक प्रेस संवाददाता ने तत्सम्बन्धी बड़े प्रश्न पूछे—"ब्रिटिश सरकार का किस

सही स्टेज पर इस देश को छोड़ने का इरादा है ?" सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने उत्तर दिया— "जैसे ही संविधान बनाने वाला निकाय पुराने के स्थान पर नया संविधान तैयार कर लेता है, ब्रिटिश सरकार इस बात को स्वीकार करने तथा लागू करने का उपक्रम करेगी कि जिस क्षण नया संविधान लागू होगा, यह परिवर्तन भी हो जायगा।"

१६४५ में द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होने तक यह स्थिति चलती रही। जब १६४५ में इंगलैंड में मजदूर दल (Labour Party) ने शासन सत्ता सँभाली तो इसने केबिनेट मिशन भेजने का निश्चय किया, जो मार्च १६४६ में भारत आया। केबिनेट मिशन तथा लॉर्ड वेवल के १६ मई, १६४६ में दिए गए संयुक्त वक्तव्य में संविधान बनाने वाले तन्त्र का सुस्पष्ट चित्र पेश किया गया, जो भारत का संविधान बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित किया जाना था। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि प्रान्त की विधान सभाओं को संविधान सभा के लिए १० लाख आबादी में एक प्रतिनिधि को चुनना था। विधान सभा के सिक्ख तथा मुसलमान सदस्यों को अपने कोटा में से जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि चुनने थे। प्रान्तों के प्रतिनिधियों को अपने आपको क, ख तथा ग विभागों में बाँटना था। "ये विभाग प्रान्तों के लिए प्रान्तीय संविधान बनाने के कार्य करेंगे जो प्रत्येक विभाग में शामिल होगा। और यह भी निश्चय करेंगे कि इन प्रान्तों के लिए किस वर्ग के संविधान की स्थापना होगी। यदि ऐसा होना है तो यह वर्ग किन प्रान्तीय विषयों को लेगा। मुख्य साम्प्रदायिक विषयों के बारे में संघ संविधान सभा के संकल्पों के लिए प्रतिनिधियों का बहुमत से मौजूद होना तथा मुख्य सम्प्रदायों का मत देना आवश्यक था। संविधान सभा के अध्यक्ष के लिए साम्प्रदायिक विषयों पर निर्णय देने से पूर्व संघीय न्यायालय (Federal Court) परामर्श करता था।

केबिनेट मिशन (Cabinet Mission) के अनुसार संविधान सभा का चुनाव जुलाई, १६४६ में प्रान्तीय विधान-सभाओं द्वारा हुआ। ब्रिटिश भारत के लिए २६६ सीटों में से कांग्रेस ने २११ सीटें तथा मुस्लिम लीग ने ७३ सीटें लीं। ६३ सीटें इण्डियन स्टेट्स को दी गईं जो भरी न जा सकीं। अन्तरिम सरकार के बनाने के पश्चात् संविधान सभा ६ दिसम्बर, १६४६ को समवेत हुई। यह माना गया कि संविधान सभा सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न निकाय नहीं था। इसका विधान बनाने का कार्य कैबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत माना है। इसमें एक भारी दोष यह था कि इसके सदस्यों का निर्वाचन परोक्ष रूप में उनके द्वारा हुआ था जो स्वयं संकीर्ण जनमत के आधार पर चुने गये थे। इसके उपरान्त भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि महात्मा गाँधी तथा श्री जिन्ना को छोड़कर इसमें भारत के प्रमुख व्यक्ति शामिल थे। संविधान सभा के प्रमुख सदस्यों के नाम इस प्रकार है—जवाहरलाल, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, गोपालस्वामी आयंगर, पन्त, अब्दुल गफ्फार खाँ, खेर, श्री कृष्णसिंह, के० एम० मुन्शी, पुरुषोत्तमदास टंडन, टी० टी० कृष्णमाचारी, अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर, एच० एन० कुंजरू, सर एच० एस० गौड़, के० टी० शाह, मसानी, आचार्य कृपलानी, डा० अम्बेडकर, डा० राधाकृष्णन, डा० जयकर, लियाकतअली खाँ, ख्वाजा नाजिमुद्दीन, सर फिरोज खाँ नून, सुहरावर्दी, सर जफरुल्ला खाँ, डा० सच्चिदानन्द सिन्हा आदि।

संविधान सभा का पहला सत्र होने से पूर्व ही यह डर था कि मुस्लिम लीग के सदस्य सभा में उपस्थित नहीं होंगे। यद्यपि मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में आ गई थी तो भी इसने संविधान सभा की कार्यवाही में भाग लेने से इन्कार कर दिया।

संविधान सभा का पहला सत्र ९ दिसम्बर, १९४६ को हुआ। सत्र में २०९ सदस्य उपस्थित थे। कांग्रेस की ओर से निर्वाचित सिर्फ ४ मुस्लिम सदस्य ही वहाँ मौजूद थे। डा० सच्चिदानन्द सिन्हा को अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। ११ दिसम्बर, १९४६ को डा० राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया। १३ दिसम्बर, १९४६ को पं० जवाहरलाल नेहरू ने उद्देश्यों सम्बन्धी संकल्प प्रस्तुत किया। यह संकल्प २२ जनवरी, १९४७ को पारित हुआ। यह इस प्रकार है—

"(१) संविधान सभा भारत को स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य घोषित करने के लिए अपने निश्चित तथा निष्ठावान सकल्प की उद्घोषणा करती है तथा भविष्य मे शासन के लिए सविधान बनाने का निश्चय करती है,

(२) जो क्षेत्र ब्रिटिश भारत में शामिल है, जो क्षेत्र भारतीय रियासतो के अन्तर्गत हैं तथा ऐसे अन्य भाग जो स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न भारत में संगठित होने के लिए तत्पर है, वे सब मिलकर संघ का रूप धारण करेंगे, तथा

(३) उपर्युक्त क्षेत्रो की, अपनी मौजूदा सीमाओ के सहित, जिनका निर्धारण संविधान सभा के द्वारा होगा तथा उसके पश्चात् सविधान की विधि द्वारा, प्रतिष्ठा स्वायत्तशासी इकाइयों के रूप मे होगी तथा बनी रहेगी। इनके साथ अवशिष्ट शक्तियाँ होगी तथा सरकार और प्रशासन के सभी कृत्यो तथा शक्तियों का वे प्रयोग करेंगे। ऐसी शक्तियों तथा कृत्यों के अलावा और उन्हें छोड़कर जो कि संघ में निहित है अथवा विनि ोजित है अथवा जो अन्तर्विष्ट हैं अथवा सघ में उपलक्षित हैं अथवा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है, तथा

(४) जबकि सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र भारत की सर्वशक्ति तथा प्राधिकार, इसके संगठित भाग तथा सरकारी अंग जनता के लिए हैं, अथवा

(५) जब भारतवासियो को न्याय—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय—के सम्मुख प्रतिष्ठा और अवसर की समानता, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा, उपासना, व्यवसाय, सम्बद्ध होने तथा कर्म के लिए, विधि तथा लोक सदाचार के अधीन स्वतन्त्रता होगी; तथा

(६) जबकि अल्पसंख्यक वर्ग, पिछड़ी हुई तथा आदिम जातियों के लिए, तथा त्रस्त और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के लिए उचित सरक्षण की व्यवस्था होगी; तथा

(७) साथ ही गणराज्य के क्षेत्र की सुदृढ़ता का पोषण किया जायेगा तथा जल, थल और वायु में इसके सम्पूर्ण अधिकारों को न्याय तथा राष्ट्रो की विधि के अनुसार पालन किया जायेगा; तथा

(८) यह प्राचीन भूमि संसार में उचित तथा सम्मानपूर्ण स्थान ग्रहण करती है और विश्व-शांति की वृद्धि तथा मानव-कल्याण के लिए पूर्ण और स्वैच्छिक अंशदान करती है।"

इस उद्देश्य संकल्प के कारण भारत के लोगों के आदेशों तथा महत्त्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिली। इसने उन मूल उद्देश्यों की घोषणा की जिनके आधार पर संविधान सभा को अपनी कार्यवाही में पथ-प्रदर्शन मिलना था। भारत का गठन स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य के रूप में होना था, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों दोनों को शामिल होना था। इन इकाइयों को पर्याप्त स्वायतता मिलनी थी तथा उन्हें अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त होनी थीं। राज्य की सारी शक्ति तथा प्राधिकार लोगों से व्युत्पन्न होने थे। सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय सुनिश्चित कराना तथा दिलाना था। प्रतिष्ठा, अवसर तथा विधि के सम्मुख समानता की व्यवस्था करनी थी। उन्हें विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा, उपासना, व्यवसाय, सम्बद्ध होने तथा कर्म के लिए विधि या सदाचार के अधीन स्वतन्त्रता देनी थी। अल्पसंख्यक वर्ग और पिछड़ी हुई तथा आदिम जातियों के लोगों के लिए उचित संरक्षण सुनिश्चित किए गये।

संविधान सभा का पहला सत्र (Session) ६ दिसम्बर, १९४६ से २३ दिसम्बर, १९४६ तक और दूसरा सत्र २० जनवरी से २५ जनवरी तक चला। दूसरे सत्र के दौरान में संविधान सभा द्वारा स्टीयरिंग समिति, कार्यक्रम समिति, अल्पसंख्यक वर्ग के लिए मन्त्रणा समिति का निर्माण, कैबिनेट मिशन योजना तथा संघ शक्ति समिति के अधीन हुआ।

संविधान सभा का तीसरा सत्र २२ अप्रैल से २ मई, १९४७ तक चला। अब तक संविधान सभा ने मन्द गति से कार्य किया था। अब तक इसने कोई ऐसा मुख्य निर्णय भी नहीं किया था जिस पर कि मुस्लिम लीग को कोई आपत्ति हो सकती। इसने अपनी कार्यवाही को कैबिनेट मिशन योजना द्वारा निर्धारित सीमा तक ही रखा। इस समय तक यह निश्चित हो गया कि मुस्लिम लीग किसी भी शर्त पर संविधान सभा में शामिल नहीं होगी। इस कारण संविधान सभा ने सही तौर पर संविधान बनाने का काम शुरू कर दिया। २८ अप्रैल १९४७ को जवाहरलाल नेहरू ने संघ शक्ति समिति की रिपोर्ट पेश की। २९ अप्रैल, १९४७ को सरदार पटेल ने मूलाधिकार तथा अल्पसंख्यक वर्ग की मन्त्रणा समिति की अन्तिम रिपोर्ट पेश की। सभा ने मूलाधिकार के बारे में विचार आरम्भ कर दिया। २ मई, १९४७ को स्थगन से पूर्व संविधान सभा ने पं० नेहरू की अध्यक्षता में संघ संविधान समिति की स्थापना की तथा सरदार पटेल की अध्यक्षता में प्रान्तीय संविधान समिति बनाई।

संविधान सभा का चौथा सत्र १४ जुलाई, १९४७ को हुआ। संघ संविधान तथा प्रान्तीय संविधान समितियों की रिपोर्टें पेश की गई। इसी प्रकार अल्पसंख्यक वर्ग उप-समिति, मूल अधिकार, आदिम जाति तथा अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी रिपोर्टें पेश की गई। उच्चतम न्यायालय की तदर्थ (*ad hoc*) समिति की रिपोर्ट पेश की गई। संविधान सभा ने प्रान्तीय संविधानों से सम्बन्धित सिद्धान्तों के बारे में साधारण रूप से विचार करना आरम्भ किया। २२ जुलाई, १९४७ को राष्ट्रीय ध्वज अंगीकृत हुआ। इसने संघ संविधान के सिद्धान्तों पर भी चर्चा शुरू की। मुख्यायुक्त

प्रान्तीय समिति (Chief Commissioners' Provinces Committee) तथा वित्तीय सम्बन्धों की विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति के पश्चात् संविधान सभा स्थापित हुई।

संविधान सभा का अगला सत्र (Session) १४ अगस्त, १९४७ को हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, १९४७ की शर्तों के अनुसार संविधान सभा ने सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न निकाय (sovereign body) का रूप धारण कर लिया। अब इसे कैबिनेट मिशन योजना के ढांचे के भीतर काम नहीं करना था। अब इसे किसी भी प्रकार का सविधान बनाने की स्वतन्त्रता थी। इसने लार्ड माउण्टबेटन को गवर्नर-जनरल नियुक्त किया। श्री जवाहरलाल नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान तन्त्री बने। भविष्य में संविधान सभा को दो भिन्न कृत्य करते थे। इसे देश का साधारण कानून बनाना तथा स्वतन्त्र भारत का सविधान तैयार करना था। ये दोनों कार्य २६ नवम्बर, १९४९ तक चलते रहे। इस समय संविधान बनाने का कार्य समाप्त हो गया था तथा विधान बनाने का काम शेष रहा था। संविधान सभा १४ अगस्त, १९४७ को बनी। इसने संघ शक्ति समिति की दूसरी रिपोर्ट पर विचार किया। यह पहली रिपोर्ट की तुलना में मूल रूप से जुदा थी, क्योंकि भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित होने के फलस्वरूप सविधान सभा की शक्तियाँ बढ़ गई थीं। वह अपनी इच्छा के अनुसार संविधान बना सकती थी। पहली रिपोर्ट में कमज़ोर केन्द्र की व्यवस्था थी। दूसरी रिपोर्ट में मजबूत केन्द्र की व्यवस्था की गई थी। अल्प-संख्यक वर्ग की मन्त्रणा समिति की रिपोर्ट पर भी विचार किया गया था। मूल अधिकार की पहली रिपोर्ट पर भी विचार किया गया। २९ अगस्त, १९४७ को ७ सदस्यों की मसविदा समिति बनाई गई। डा० अम्बेडकर इसके अध्यक्ष नियुक्त हुए। समिति के अन्य प्रमुख सदस्य इस प्रकार थे—के० एम० मुन्शी, टी० टी० कृष्णमाचारी, गोपालस्वामी आयंगर तथा अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर। मसविदा समिति का कार्य जिस मसविदे पर आधारित था उसे श्री बी० एन० राव ने तैयार किया था। मसविदे को श्री एस० एन० मुखर्जी ने अन्तिम रूप दिया था।

सविधान का मसविदा जनवरी, १९४८ में प्रकाशित हुआ। संविधान के मसविदे पर विचार करने के लिए ८ मास का समय दिया गया। ४ नवम्बर, १९४८ को संविधान सभा में संविधान के मसविदे पर आम बहस शुरू हुई और ६ नवम्बर, १९४८ तक चलती रही। १५ नवम्बर, १९४८ से १७ अक्तूबर, १९४९ के बीच मसविदे पर पूर्ण विचार सम्पन्न हुआ। इस दौरान मे ७,६३५ संशोधन पेश किए गए तथा इनमें से २,४७३ पर संविधान सभा में विचार हुआ। १४ नवम्बर से २६ नवम्बर तक मसविदे का तृतीय पठन हुआ। भारत का नया संविधान २६ नवम्बर, १९४९ को अंगीकार हुआ और संविधान सभा के अध्यक्ष (President) के रूप में डा० राजेन्द्र प्रसाद के इस पर हस्ताक्षर हुए।

कुल मिलाकर संविधान सभा के ११ सत्र हुए। यह २ वर्ष, ११ मास तथा १८ दिन तक चली। संविधान के मसविदे पर ११४ दिन तक चर्चा होती रही। २६ जनवरी, १९५० को संविधान लागू हुआ।

भारत के भूतपूर्व सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया श्री पैथिक लॉरेंस ने ऐसा विचार प्रकट किया—"आज 'उस अपरिवर्तित पूर्व' कहलाने वाले प्रदेश में तेजी से हलचल हो रही है। इनकी गति भारत से अधिक तेज कहीं नहीं है। पाँच वर्ष से कम समय पूर्व वहाँ के प्रमुख नेता ब्रिटिश राज की जेलों में थे। एक वर्ष बाद, उन्होंने अन्य नेताओं के साथ मिलकर जो अब पाकिस्तान में है तथा रजवाड़ों के सैकड़ों प्रतिनिधियों के साथ मिलकर ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के साथ वार्ता की। एक वर्ष से कुछ समय पूर्व, ब्रिटिश शासन का अन्त हुआ। विभाजन निश्चित तथ्य बना और भारत तथा पाकिस्तान दो नए अधिराज्य (Dominions) बने। आज २६ जनवरी, १९५० को भारत ने राज्यों को अपने क्षेत्र में संविलय करने तथा संविधान बनाने के कारण गणराज्य का रूप धारण कर लिया है। इंगलिस्तान तथा उसके अन्य राष्ट्रों की सहमति से भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth) का एक सदस्य बना हुआ है।

"मानव इतिहास का कैसा अद्भुत अध्याय है यह! तनिक सोचिये कि प्रमुख नेताओं के शौर्य तथा बुद्धि के अभाव में यह चित्र कितना भिन्न होता! जहाँ अनेक ने जीवनदान दिया हो वहाँ कुछ एक नामों को गिनाना भूल होगी। फिर भी मैं उन भारतीयों को श्रद्धांजलि दिए बिना नहीं रह सकता जिन्होंने उचित रूप से प्रमुख कार्यक्रम में भाग लिया है और वे महान् व्यक्ति ये हैं—महात्मा गाँधी, जो भारतीय स्वतंत्रता के लिए अडिग रहे और जिन्होंने विभाजन के निश्चय के उपरान्त, अपने जीवन को नागरिक जीवन में फैले वैमनस्य को रोकने के लिए अर्पित कर दिया—श्री राजगोपालाचार्य, मद्रास के भद्र नागरिक, गवर्नर-जनरल, जो अथक परिश्रम करके ब्रिटिश तथा भारत और हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का निबटारा करते रहे; सरदार वल्लभभाई पटेल, उप-प्रधान मन्त्री, जिन्होंने सारे प्रान्तों तथा भारत की रियासतों को एक सूत्र में बाँधने की अपनी इच्छा को मूर्त रूप दिया; तथा प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू जिन्होंने अपनी दूरदर्शिता के कारण अपने देशवासियों तथा संसार के लोगों का सम्मान प्राप्त किया है। जब तक भारत में ऐसे प्रतिभाशाली, स्त्री-पुरुष जन्म लेते रहेंगे तब तक मुझे भारत के भविष्य के बारे में कोई भय न होगा।"

Suggested Readings

Banerjee, A.C. : The Constituent Assembly of India.
Banerjee, A.C. : The Making of the Indian Constitution (1939-47)
Gangulee. N. : Constituent Assembly for India, 1942.
Narang, Jaigopal : Constitutional Assembly and our Demand.
Singh, Gurmukh Nihal : The Indian Constituent Assembly.

संविधान की विशेषताएँ

(SALIENT FEATURES OF THE CONSTITUTION)

(१) भारत के नये संविधान की कई विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि यह लिखित संविधान (Written Constitution) है। इसमें ३९५ अनुच्छेद (Articles) तथा ९ अनुसूचियाँ (Schedules) हैं। सम्भवतः यह संसार में सबसे अधिक लम्बा तथा बड़ा संविधान है। संविधान के लम्बा होने के कई कारण हैं। संविधान में केवल मोटे सिद्धान्तों का ही वर्णन नहीं है, बल्कि प्रशासन का भी पूरा वर्णन है। यह केन्द्र तथा राज्यों में सरकारी ढाँचे की व्याख्या करता है। भारत संघ में अनेक इकाइयाँ हैं तथा उनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग व्यवस्था की गई है। राजनीति के निदेशक तत्त्वों तथा मूलाधिकारों को शामिल करने से यह और भी विशाल हो गया है। इसमें अनुसूचित जातियों तथा कबीलों (Scheduled Castes and Scheduled Tribes) की सुविधाओं की सुरक्षा की व्यवस्था भी करनी पड़ी है।

(२) भारतवर्ष का संविधान देश की पुरानी वैधानिक पद्धति से अलग नहीं है। इसमें एक प्रकार की निरन्तरता दीख पड़ती है। भारतवर्ष दुनिया में संसदीय प्रणाली की सरकार स्थापित करने के मार्ग पर अग्रसर था और उसी प्रणाली की संविधान में व्यवस्था की गई है। १९३५ के भारत सरकार के कानून के अनुसार भारतवर्ष के 'संघ' के ढाँचे को बनाये रखा गया है। इसी प्रकार पुरानी परिपाटी में कोई विशेष-भिन्नता नहीं रखी गई।

(३) भारतीय संविधान भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) घोषित करता है। यह देश में लोकतन्त्री शासन स्थापित करता है। राज्यों के विधान-मण्डलों तथा भारत की संसद (Parliament) दोनों का चुनाव होता है। निश्चित समय के बाद चुनाव कराने की व्यवस्था (Provision) की जाती है। निश्चित अवधि के बाद जनता को अपने शासक को चुनने का अवसर दिया जाता है। कार्यपालिका (Ex[illegible]) उन मन्त्रियों के हाथों में है, जो विधान-मण्डलों और उनके द्वारा जनता के उत्तरदायी हैं।

आलोचकों का मत है कि भारत का राष्ट्रमण्डल (Co[illegible] Nations) का सदस्य रहना और इंग्लैंड के राजा को राष्ट्रमण्डल [illegible] स्वतन्त्र राष्ट्रों के स्वतन्त्र सहयोग (free association [illegible] nations) का प्रतीक (symbol) स्वीकार करना [illegible] सम्पूर्ण प्रभु[illegible] नहीं खाता। यह कहा जाता है कि १९४९ का राष्ट्रमण्डल [illegible]

के पश्चात् कांग्रेस पार्टी की सबसे बडी भूल थी। यह सत्य है कि १६४६ का करार समझौते का फल था। कलकत्ता के प्रोफेसर डी० एन० बनर्जी के अनुसार, "आवश्यकता पूर्ति के लिए किया गया यह एक राजनैतिक उपाय था, जिसका उद्देश्य साफ तौर से दो परस्पर-विरोधी बातों, अर्थात प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य के नाते जनतन्त्री संविधान को लागू करने के भारत के निर्णय तथा राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहने की इच्छा का समन्वय करना था।" किन्तु यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि यह करार एक संवैधानिक असगति है। राष्ट्रमण्डल के अध्यक्ष के नाते भारत इसका सदस्य है। इंगलैंड की रानी की जो स्थिति है उसमें और जनतन्त्री सरकार में, जिसकी स्थापना भारत मे हुई, समन्वय करना कठिन है। कोई आश्चर्य नही कि आस्ट्रेलिया के राबर्ट मैंजीज ने अप्रैल, १९४९ मे यह कहा—"यह बात समझ में नही आती कि कोई क्राउन के प्रति वफादारी को समाप्त करके गणराज्य बन जाए और उसी समय वह उस संयुक्त राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य बना रहे जो बुनियादी तौर से क्राउन राष्ट्रमंडल है, और होना भी चाहिए।" एम० रामस्वामी का उत्तर है कि "इंगलैंड की रानी के द्वारा राष्ट्रमंडल की अध्यक्षता किसी संवैधानिक शक्ति से रहित केवल सौजन्य व्यवस्था (courtesy arrangement) है।"

यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि भारत का स्थान अन्य डोमीनियनों के समान नही है। यह यूनाइटेड किंगडम की सरकार तथा संसद् के प्रति वफादारी और उनकी अधीनता की दृष्टि से भिन्न है। इस बारे में प्रोफेसर ग्लैंडहिल का कथन है कि "यद्यपि साधारण रूप से वेस्टमिस्टर परिनियम (Statute of Westminster) डोमीनियन विधान-मण्डलों की यूनाइटेड किंगडम की संसद् की अधीनता से मुक्त करता है और यद्यपि यूनाइटेड किंगडम की संसद् के द्वारा स्वेच्छा से कोई ऐसा कानून पास किये जाने की संभावना पर गम्भीर विचार करना दूर की बात है जिसका असर किसी डोमीनियन पर पड़े तो भी यूनाइटेड किंगडम की संसद् द्वारा पास किये गए किसी ऐसे कानून की मान्यता (Validity) का प्रश्न उठ सकता है, जो अनजाने मे वेस्टमिस्टर परिनियम से टकराता हो।" ऐसा प्रतीत होता है कि यूनाइटेड किंगडम का न्यायालय यही निर्णय करेगा कि बाद का कानून ही लागू होना चाहिए क्योंकि संसद् सर्वसमर्थ (omnicompetent) है। ऐसी स्थिति भारत के सम्बन्ध में उत्पन्न नहीं हो सकती; उसके विधान-मण्डल केवल संविधान के अधीन हैं।

यह ठीक ही कहा गया है कि कानून की दृष्टि में १९४९ के करार (agreement) का कोई मूल्य नहीं है और वह संविधान के बाहर (Extra-Constitutional) है। भारत की राष्ट्रमंडल की सदस्यता किसी भी रूप में उसकी प्रभुता का हनन नहीं करती। भारत राष्ट्रमंडल सम्मेलनों के निर्णयों को मानने को बाध्य नहीं है। उसे उस युद्ध में सम्मिलित होने के लिए बाध्य नही किया जा सकता जिसको वह भला नही समझता। उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई संधि करने या किसी मैत्री संधि (alliance) में शामिल होने को विवश नहीं किया जा सकता। इस बात पर प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने १० मई, १९४९ को ये शब्द कहे थे—"बहुत समय पहले

हमने पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की प्रतिज्ञा की थी। हमने इसे प्राप्त किया है। क्या कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र से सम्बन्ध रखने से अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है? साधारण रूप से मैत्री संधि का अर्थ आपस में वचन-बद्ध होना है। इसकी सम्पूर्ण शक्ति इसके लचीलेपन और इसकी स्वतन्त्रता में निहित है। यह सबको मालूम है कि कोई भी राष्ट्र यदि वह ऐसा चाहे तो राष्ट्रमण्डल को छोड़ने में स्वतन्त्र है, और मैं कहना चाहता हूँ कि कोई भी बात गुप्त रूप से नहीं की गई है और किसी भी प्रकार के वचन हमारी प्रभुता अथवा आन्तरिक या बाह्य नीतियों को सीमित करने के विषय में नहीं दिये गए है—न राजनैतिक, न आर्थिक, और न सैनिक। बहुधा मैंने अपनी विदेश नीति—शांति तथा सब देशो से मित्रता के लिए कार्य करना तथा शक्ति गुटों में शामिल न होने की घोषणा की है। वह अभी तक हमारी नीति की बुनियाद है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य स्वेच्छा से राष्ट्रमण्डल के दूसरे देशों से अपना सम्बन्ध रखते हुए पूर्ण-रूपेण शायद और भी अधिक मात्रा मे और पहले से अधिक प्रभाव के साथ इस नीति को पालने में स्वतन्त्र होगा।" उन्होने आगे कहा—"यह याद रखना चाहिए कि परिभाषा के अनुसार राष्ट्रमंडल कोई 'सुपर-स्टेट' नहीं है। हम राजा को इस स्वतन्त्र साहचर्य (free association) का प्रतीकात्मक अध्यक्ष मानने को सहमत हुए हैं। लेकिन राष्ट्रमण्डल में राजा को कोई कार्य नहीं सौंपा गया है। जहाँ तक भारत के संविधान का प्रश्न है, राजा को कोई स्थान प्राप्त नहीं और न ही हम उसके प्रति वफादार हैं।" इसी तथ्य को भारत के उप-प्रधान मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल न २० अप्रैल, १९४९ को इन शब्दो में रखा—"भारत की प्रभुत्व-सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य की स्थिति पर किसी भी प्रकार का असर नही पड़ता क्योंकि राजा के प्रति वफादारी का प्रश्न ही नही उठता। वह तो हमारे स्वतन्त्र साहचर्य का प्रतीक मात्र और अन्य सदस्यो की भाँति होगा...। जहाँ तक उसके कार्यों का सम्बन्ध है, उसे कोई कार्य नही करना होगा। लेकिन उसे एक स्थिति (status) अवश्य प्राप्त है।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रमंडल का सदस्य होने पर भी भारत प्रत्येक रूप में प्रभुत्व-सम्पन्न गणराज्य है। इंग्लैंड की रानी या सरकार को भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यह संविधान में निश्चित विधि से भारतीय जनता के द्वारा चुना जाता है। भारत बाह्य एवं आन्तरिक दोनों रूप से प्रभुत्व-सम्पन्न है और यह बात उसके प्रभुत्व-सम्पन्न रूप को प्रकट करती है।

(४) नया संविधान भारतीय जनता की प्रभुत्व-सम्पन्नता पर जोर देता है। प्रस्तावना में कहा गया है कि यह भारत की जनता ही है जिसने भारत को लोकतन्त्री गणराज्य बनाने का निश्चय किया है। संविधान में निम्नलिखित शब्दो का प्रयोग किया गया है—"इस अपनी संविधान सभा मे आज तारीख २६ नवम्बर, १९४९ को इसके द्वारा हम भारत के लोग इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

संविधान की प्रस्तावना (Preamble) इस प्रकार है :—

(क) यह सभा पूर्ण विश्वास और दृढ़ता से भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित करती है और उसकी भावी शासन-व्यवस्था के लिए एक संविधान निर्मित करना चाहती है।

(ख) वे सब प्रदेश जो अब ब्रिटिश भारत में है, जो प्रदेश भारतीय रियासतों में हैं और जो ब्रिटिश भारत और रियासतों के बाहर हैं, तथा वे सब प्रदेश जो स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न भारत में सम्मिलित होना चाहें, उन सबका भारतवर्ष एक संघ होगा।

(ग) उपर्युक्त प्रदेश अपनी वर्तमान सीमाओं अथवा संविधान सभा द्वारा या संविधान द्वारा निर्धारित स्तर स्वायत्त शासन इकाइयों का होगा। इनके पास बचे हुए अधिकार (Residuary Powers), संघ के अधिकारों, कार्यों तथा संघ के स्वयंभू तथा प्राप्त हुए अधिकारों को छोड़कर, सारे शासन और प्रशासन के अधिकार प्राप्त होंगे।

(घ) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न एवं स्वतन्त्र भारत, उसकी अवयवी इकाइयों और शासन के सभी अंगों के समस्त अधिकार और समस्त राजनीतिक शक्ति जनता से प्राप्त हुई हैं।

(ङ) भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान किया जायेगा, सभी को प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान की जायेगी, न्याय के समक्ष सभी को समानता प्रदान की जायेगी। सभी को विचार-व्यक्त करने, विश्वास रखने, धर्म और उपासना, उद्यम और व्यापार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। सभी लोग स्वतन्त्रतापूर्वक साहचर्य से कार्य कर सकेंगे। केवल देश के कानून और सदाचार का उपर्युक्त स्वतन्त्रताओं पर अंकुश रहेगा।

(च) भारत में अल्पसंख्यक वर्गों, अवनत और पिछड़े प्रदेशों अथवा अनुसूचित क्षेत्रों, दलित तथा अन्य पिछड़े हुए वर्गों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया जायेगा।

(छ) इस प्रकार राष्ट्र की एकता अक्षुण्ण रखने के लिए गणराज्य की प्रादेशिक स्वतन्त्रता को भी अक्षुण्ण रखने हेतु समस्त देश के जल, थल और आकाश पर सभ्य राष्ट्रों के न्याय और कानून के अनुसार सम्पूर्ण प्रभुत्व और अधिकार होगा।

(ज) इस अति प्राचीन देश ने संसार में अपना अधिकारपूर्ण एवं सामान्य स्थान प्राप्त किया है और यह देश संसार में शान्ति तथा मानव मात्र के कल्याण के हेतु अपना पूर्ण तथा स्वेच्छा से सहयोग प्रदान करता है।

भारत के संविधान की प्रस्तावना से प्रकट है कि संविधान सभा ने भारतवर्ष को स्वतन्त्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य घोषित किया। भारत में 'संघीय' प्रकार की सरकार होगी और ब्रिटिश शासन तथा देशी रियासतों के प्रदेश एक 'संघ' के में संगठित हो जायेंगे। जो प्रदेश भारत-संघ में सम्मिलित होंगे वे स्वायत्त शासन

की अधिकारपूर्ण इकाइयाँ होंगी। उनके पास सघ के शेषाधिकार होगे। संघ की केन्द्रीय सरकार के केवल वही अधिकार होगे, जो इसे स्पष्ट रूप से दिये गए होगे तथा जो इसके स्वयंभू अथवा पूर्व-प्राप्त होगे। प्रस्तावना मे यह भी स्पष्ट है कि भारत की तमाम शक्ति और सत्ता, चाहे वह किसी भी प्रकार की हो, उसका मूल स्रोत जनता होगी। भारतवर्ष के समस्त नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता, कानून के समक्ष समानता, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, उद्यम, साहचर्य तथा कार्य की समानता होगी। अल्पसंख्यक, पिछड़े हुए और दलित क्षेत्रों तथा दलित और पिछड़े हुए वर्गों को पर्याप्त संरक्षण प्राप्त होगा।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना से तीन अर्थ सिद्ध होते है। प्रथम इन शब्दो का प्रयोग कि 'हम भारतवर्ष के नागरिक' से सिद्ध होता है कि भारत सरकार की शक्ति का स्रोत जनता है। भारत सरकार और राज्यों को शक्ति प्रदान करने वाला अन्य कोई स्रोत नहीं केवल जनता ही है। भारतवर्ष मे सत्ता का स्रोत जनता है। सम्मिलित राज्य अथवा समाज का कोई विशेष अंग अथवा देशी रियासतो के पहले शासक नही क्योंकि भारत की सरकार के सारे अधिकारो का स्रोत जनता है। जनता का कोई भी भाग इसके अधिकारों को चुनौती नहीं दे सकता। कोई भी व्यक्ति यह नही कह सकता कि क्योंकि उसने व्यक्तिगत रूप से राज्य को सत्ता की स्वीकृति नही दी है इसलिए वह इस सत्ता को मानने के लिए बाध्य नही है। वास्तव में उसकी स्वीकृति राष्ट्र की इच्छा में अन्तर्निहित है। देश का कोई भी राजनैतिक दल राष्ट्र की सत्ता को मानने से इनकार नही कर सकता क्योंकि राष्ट्र की सत्ता का स्रोत जनता है। केवल जनता ही संविधान मे परिवर्तन कर सकती है न कि कोई विशेष राजनैतिक दल। भारतवर्ष का सविधान एक पवित्र प्रलेख है जिसे हर कोई नही छेड़ सकता।

पहले भारत का संविधान ब्रिटेन की ससद् ने बनाया था। और इसमें परिवर्तन करने का अधिकार भी केवल उसे ही था। अब भारत का संविधान भारत की जनता ने अपने प्रतिनिधियो द्वारा बनाया है और इसमे संशोधन भी केवल संविधान में लिखित परिपाटी के द्वारा ही किए जा सकते है।

प्रस्तावना में प्रयुक्त "गणतन्त्र राज्य" शब्दों का प्रयोग भी संविधान के स्रोत का द्योतक है। संविधान का "गणतन्त्र" इस बात का द्योतक है कि देश में वंशानुगत शासन नही हो सकता। भारत का राष्ट्रपति जनता द्वारा परोक्ष मतदान की रीति से चुना जाएगा। अन्ततः राष्ट्रपति के चुनाव में भी जनता की इच्छा छुपी हुई है। भारतवर्ष के २१ वर्ष की आयु के समस्त स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार प्राप्त है और चुनाव की यह रीति जनता की वह अमूल्य शक्ति है, जिसके द्वारा वह उपयुक्त शासकों को चुन सकती है। उन्हें उस दल को हटा देने की शक्ति है जो उनके सच्चे और विश्वासपूर्ण कार्य की कसौटी पर खरे न उतरे हों। यदि राष्ट्रपति ने भी उचित व्यवहार न किया हो तो उसे भी पदच्युत किया जा सकता है। धर्म, जाति, वंश और लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव नही है।

दूसरे संविधान की प्रस्तावना से इस बात का भी पता चलता है कि जनता भारत सरकार से किन बातों की आशा करती है। सरकार को जनता के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, समान प्रतिष्ठा, समान अवसर और न्याय के समक्ष समानता, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, उद्यम, साहचर्य और कार्य की समानता का संरक्षण देना होगा। अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण दिया जाएगा। पिछड़े हुए और आदिम क्षेत्रों का संरक्षण भी करना होगा। दलित और अन्य पिछड़े हुए वर्गों को विशेष संरक्षण देना होगा। भारत के संगठन की किसी भी मूल्य पर रक्षा की जाएगी। भारत के संविधान में निदेशक सिद्धान्तों को निर्धारित किया गया है। इन से पता चलता है सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय किस प्रकार सुरक्षित रखा जाएगा। छूतछात समाप्त हो जाएगी। बेगार समाप्त हो जाएगी। पिछड़े हुए वर्गों को अधिकाधिक शिक्षा की सुविधाएँ दी जाएँगी। समस्त वयस्क स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार होगा। सभी को समान अवसर दिया जाएगा। सभी लोगों के लिए सारे पद प्राप्त करने की समानता होगी। धर्म, लिंग और जाति के आधार पर कोई भेद-भाव नही होगा। कानून दो व्यक्तियों में किसी एक का पक्ष नही लेगा। न्याय का संरक्षण सब के लिए बराबर होगा। प्रस्तावना में साहचर्य पर बल दिया गया है। जनता में भ्रातृत्व की भावना और सहिष्णुता को बढ़ावा देना है। जनता में किसी भी प्रकार की जातीय, वर्गीय, स्थानीय अथवा प्रदेशिक भावनाएँ नहीं रहेंगी। सांस्कृतिक, धार्मिक और जातीय अल्पसंख्यकों के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाएगा। प्रादेशिक भाषाओं के साथ सौतेली माँ का-सा व्यवहार नही होगा। राष्ट्रीय एकता को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रयत्न लिए जाएँगे और भारत की समस्त जनता के लिए समान नागरिकता को स्थान देकर वह कार्य पूरा कर दिया गया है। संविधान में सब के लिए एक भाषा की व्यवस्था की गई है। इसने भारत के समस्त न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के अधिकार मे देकर देश की समूची न्याय-व्यवस्था को एकस्थ कर दिया है। अखिल भारतीय, सार्वजनिक सेवाओं (All India Services) की स्थिति भारत की एकता को दृढ करती है।

तीसरी बात यह भी है कि संविधान की प्रस्तावना भारत के उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को विधान की विभिन्न व्यवस्थाओं की ठीक प्रकार विवेचना करने मे सहायता देती है। जहाँ कही भी उन्हें संशय होता है वे प्रस्तावना की भाषा को देखकर भारत के संविधान के निर्माताओ का वास्तविक आशय जान लेते है। इस प्रकार प्रस्तावना संविधान के तात्पर्य निकालने में संलग्न न्यायाधीशों के लिए एक परम लाभदायक और सुलभ अस्त्र है। संविधान का वास्तविक तत्व प्रस्तावना मे सन्निहित है और यह विधान की व्याख्या करने में प्रयत्नशील शक्तियो के लिए पथ-प्रदर्शक है।

भारत के सविधान की प्रस्तावना की अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना से तुलना की जा सकती है। अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना इन शब्दो में की गई है—"हम संयुक्त राज्य के नागरिक, एक पूर्ण संघ के निर्माण के हेतु, न्याय, आन्तरिक

शान्ति, सामूहिक सुरक्षा, सर्वसाधारण के कल्याण, स्वतन्त्रता के आशीर्वाद का स्वयं और अपनी भावी सन्तति द्वारा उपभोग के लिए, यह संविधान बनाते हैं। और इसे संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए लागू करते हैं।"

भारत और अमेरिका दोनो के संविधानों की प्रस्तावना से यह प्रकट है कि देश की सरकार के अधिकारों का स्रोत जनता है। अस्तु, जो भी भिन्नताएँ इन दो संविधानों में हैं वे ऐतिहासिक परिस्थितियो के कारण हैं।

अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना मे आन्तरिक शान्ति और सामूहिक सुरक्षा पर अधिक बल दिया गया है। यह इस कारण हुआ कि जिस समय अमेरिका का संविधान बनाया गया था उस समय देश मे बड़ी अराजकता थी। वर्षों के युद्ध के पश्चात् अमेरिका की जनता ब्रिटिश सरकार की दासता के बन्धन तोड़ सकी थी। निरन्तर बहुत से वर्षो तक युद्ध होने के कारण देश मे अराजकता फैल गई थी। इस कारण आश्चर्य की बात नही है कि प्रस्तावना में देश मे कानून और व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया गया है। सुरक्षा की समस्या भी बड़ी गहन थी क्योंकि बड़े बलिदानों और प्रयत्नों के पश्चात् कठिनाई से मिली स्वतन्त्रता को अमेरिका वाले बनाए रखना चाहते थे, किन्तु ये दोनों बातें भारत के संविधान में उल्लेखनीय नहीं थी। भारतवर्ष में हमें अंग्रेज़ों से युद्ध नही करना पडा और न ही सत्ता का देश में अशान्तिपूर्ण हस्तान्तरण हुआ। संविधान के समय देश में कोई अराजकता नहीं थी। १९४७ में अवश्य कुछ गड़बड़ हुई, किन्तु नवम्बर, १९४९ में संविधान को स्वीकार करते समय यह बवण्डर शान्त हो चुका था।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना मे "सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य" यह वाक्य प्रयुक्त किया गया है कि यह अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना में नहीं मिलता। कारण यह है कि संविधान स्वीकार करने के समय भारतवर्ष एक उपनिवेश था। इंग्लैण्ड का राजा तब भी भारतवर्ष का सम्राट् था। भारत के संविधान से इंगलैंड के राजा को हटाना आवश्यक था और इसीलिए भारतीय सविधान में भारत के 'लोकतन्त्रात्मक गणराज्य" होने की व्यवस्था है। अमेरिका में देश पहले ही स्वतन्त्र हो चुका था, और वहाँ वास्तव मे उस समय प्रभुत्व सम्पन्न राज्य स्थापित हो चुका था।

भारत में "भ्रातृत्व की भावना" पर विशेष बल दिया गया है और यह इस कारण हुआ कि हमारे देश मे छुआछूत और जातीय अत्याचार का अभिशाप है। प्रस्तावना जाति के बन्धन तोडकर समस्त भारतीय नागरिकों को एक ही स्तर पर लाने पर बल देती है। अमेरिका में इस प्रकार की कोई आवश्यकता नही थी। वहाँ संविधान को स्वीकृत करने के समय जाति अथवा जातीयता का भेद नही था।

(५) संविधान मे अनेक मूल अधिकारों (Fundamental Rights) की व्यवस्था की गई है। इन्हें कोई भी भारतीय प्राप्त कर सकता है। ये अधिकार संविधान की १२ से ३५ तक की धाराओं में पाए जा सकते हैं। ये अधिकार समानता, स्वतन्त्रता, शोषण के विरुद्ध, सम्पत्ति रखने तथा न्याय के समक्ष समता के अधिकारों

की ओर निर्देश करते हैं। जन्म-स्थान, धर्म, लिंग, मूलवंश और जाति के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायेगा। सरकारी नौकरी के विषयों में समान अवसर प्रदान किया जाएगा। अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई है और कानून द्वारा दण्डनीय है। राज्य कोई उपाधि प्रदान नही कर सकता। समस्त नागरिकों को भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, बिना शस्त्र के शान्तिपूर्वक इकट्ठे होने की, संस्थाएँ एवं संगठन बनाने की, भारतीय क्षेत्र के अन्तर्गत स्वतन्त्रता से घूमने की, भारत अथवा उसके किसी भाग में बसने, सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने अथवा विक्रय करने अथवा किसी व्यापार, व्यवसाय अथवा वाणिज्य को अपनाने की स्वतन्त्रता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन तथा स्वाधीनता की गारण्टी दी गई है। मनुष्यों के क्रय तथा विक्रय का निषेध कर दिया गया है और बेगार को समाप्त कर दिया गया है। बच्चों से कारखानों तथा खानों में काम नहीं कराया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता (Freedom of Conscience) प्राप्त है। उसे धर्म का प्रचार करने, उसे मानने तथा स्वतन्त्र व्यवसाय की गारण्टी दी गई है। प्रत्येक धर्म को अपने आन्तरिक मामलों का प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता है। किसी व्यक्ति को किसी विशेष धर्म का प्रचार करने के लिए कर देने को विवश नहीं किया जा सकता। किसी राजकीय अनुदान प्राप्त शिक्षण-संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। विद्यार्थियों को धर्म, शिक्षा अथवा पूजा में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक अधिकार सुरक्षित हैं। अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने तथा उनका प्रबन्ध करने की स्वतन्त्रता है। कानून के प्राधिकार (authority of law) के अतिरिक्त, कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति को हस्तगत नहीं कर सकता। उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को मूल अधिकारों को लागू कराने का अधिकार प्राप्त है।

(६) नए संविधान में राज्य नीति के निदेशक तत्त्वों (Directive Principles of State Policy) का समावेश किया गया है। इन सिद्धान्तों का सम्बन्ध उन विषयों से है जिनका भारत सरकार को देश की जनता का कल्याण करने के लिए ध्यान रखना चाहिए। राज्य नीति के निदेशक तत्त्वों का समावेश संविधान के चतुर्थ भाग में है। यह व्यवस्था की गई है कि राज्य जनता के कल्याण की उन्नति करने के लिए ऐसी सामाजिक अवस्था का निर्माण करने का प्रयत्न करेगा जिसमें राष्ट्रीय जीवन की प्रत्येक संस्था न्याय से अनुप्राणित हो। राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि नागरिकों को आजीविका अर्जित करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हो सकें। समाज की भौतिक सम्पदा (material resources) के स्वामित्व तथा नियन्त्रण का वितरण सार्वजनिक हित-साधन की दृष्टि से करना है। राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए प्रयास करेगा। समस्त नागरिकों को काम, शिक्षा तथा कुछ विषयों में सार्वजनिक सहायता प्राप्त करने के अधिकार की गारण्टी दी जाएगी। सरकार मानवोचित कार्य करने की दशाओं तथा प्रसूतिका सहायता की व्यवस्था करेगी। श्रमिकों को अच्छा वेतन दिया जाएगा। समस्त नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता (Civil Code) बनाने का

लब्ध रखा जाएगा। चौदह वर्ष की आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाएगा। परिगणित जातियों, अनुसूचित जातियों तथा समाज के अन्य दुर्बल वर्गों की आर्थिक तथा शैक्षणिक उन्नति करने का प्रयास किया जाएगा। सरकार का कर्त्तव्य जनता के जीवन-स्तर तथा खाद्य स्तर को उठाना तथा जनस्वास्थ्य की उन्नति करना है। सरकार का कर्त्तव्य राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों (national monuments) तथा वस्तुओं की रक्षा करना है। राज्य प्रशासकीय सेवाओं के अन्तर्गत न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पृथक् करने के लिए पग उठाएगा। राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए प्रयास करेगा, अन्य राष्ट्रों से न्यायोचित सम्बन्ध स्थापित करेगा, परस्पर व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय कानून तथा सन्धि की व्यवस्थाओं को मान्यता देगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में पंच-निर्णय की प्रथा को प्रोत्साहित करेगा।

(७) संविधान में संशोधन करने के लिए तीन विधियाँ रखी गई हैं। धारा ३६८ के अनुसार संविधान का अधिकांश भाग संसद् की पूर्ण सदस्य संख्या के सामान्य बहुमत (simple majority) तथा उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के ⅔ बहुमत से संशोधित हो सकता है। किन्तु यदि संशोधन का सम्बन्ध राष्ट्रपति की निर्वाचन विधि अथवा निर्वाचन, संघीय कार्यपालिका की शक्ति के विस्तार, किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति या विधायी शक्ति के विस्तार, उच्चतम न्यायालय, तथा संघीय न्यायपालिका अथवा राज्य उच्च न्यायालय, संसद् में राज्यों के प्रतिनिधित्व, तथा स्वयं संशोधन विधि से हो तो संशोधन को लागू करने के लिए विशेष बहुमत की विशेष प्रक्रिया द्वारा स्वीकृति दी जाती है। ऐसे विषयों में संशोधन को केवल संसद् के सामान्य बहुमत तथा उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से स्वीकृत कराना ही पर्याप्त नहीं होता, प्रत्युत 'क' तथा 'ख' भाग के राज्यों के आधे विधानमण्डलों से भी पारित कराना अनिवार्य होता है। संविधान के अन्य उपबन्ध, उदाहरणार्थ नए राज्यों का निर्माण, राज्यों का पुनर्गठन, भाग 'ग' के राज्यों में विधानमण्डल अथवा परामर्शदात्री परिषदें स्थापित करना, अनुसूचित जातियों तथा कबीलों विषयक व्यवस्थाओं, भारतीय नागरिकता की अर्हता आदि का संशोधन दोनों सदनों में सामान्य बहुमत से किया जा सकता है। राज्यों को अपने से सम्बन्धित संविधान का संशोधन करने का कोई वास्तविक अधिकार नहीं है। वे केवल द्वितीय सदन को स्थापित करने अथवा उसका उन्मूलन करने के विषय को आरम्भ कर सकते हैं। राज्य विधानमण्डल के निम्न सदन में दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत होने पर उसका अनुसमर्थन संसद् के कानून के द्वारा होना अनिवार्य है। *भारत संघ में इकाइयों को संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है* जबकि संयुक्त राज्य में इकाइयाँ अपने संविधान का संशोधन कर सकती हैं।

अस्थायी संसद् के अध्यक्ष द्वारा यह व्यवस्था घोषित की गई थी कि संविधान में संशोधन करने वाले विधेयक की प्रत्येक धारा सदन में अपेक्षित बहुमत से होनी चाहिए और इसी प्रकार का विचार भारत की सुप्रीम कोर्ट ने [illegible] Prasad V. Union of India में प्रकट किया है। अमेरिका के संविधान भारत के संविधान में भी *राज्य विधान-मण्डलों के लिए उस समय की सीमा*

गई है जिसमे उन्हे स्वीकृति के लिए प्रेपित संशोधनों को स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिए। संविधान इस विषय पर भी मौन है कि क्या भारत का राष्ट्रपति अपेक्षित बहुमत से पास किये हुए संविधानीय संशोधन पर अनुमति रोकने का अधिकार रखता है। धारा ३६८ में केवल यह कहा गया है कि "वह राष्ट्रपति के सामने उसकी अनुमति के लिए रखा जायेगा तथा विधेयक को ऐसी अनुमति दिए जाने के पश्चात् विधेयक के निबन्धनों के अनुसार ही संविधान संशोधित हो जायेगा।" यह ध्यान रखना चाहिए कि यू० एस० ए० के विषय में, संवैधानिक संशोधनो को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उसके सामने रखने की आवश्यकता नहीं है।

संविधान की सशोधन प्रक्रिया के सम्बन्ध में श्री जवाहरलाल नेहरू का कथन है कि "यद्यपि हम संविधान को इतना दृढ तथा स्थायी बनाना चाहते हैं जितना सम्भव हो तथापि संधिान मे स्थायिता (permanence) नहीं हो सकती। इसमें कुछ लचकीलापन होना ही चाहिए। यदि आप किसी भी वस्तु को दृढ़ तथा स्थायी (rigid and permanent) बनाते हैं तो यों समझिये कि आप राष्ट्र की जीवित एवं चेतन जनता के विकास को रोकते है।"

डा० जेनिंग्ज के अनुसार "भारतीय संविधान के अनम्य (rigid) होने का कारण है उसकी सशोधन विधि का पेचीदा होना। यह इतना विस्तृत है और कानून के इतने बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है कि संवैधानिक मान्यता (constitutional validity) का प्रश्न ही नही उठता।" पुनः "संविधान सभा ने एक ऐसा विस्तृत तथा पेचीदा दस्तावेज (document) बनाया है जिसका सरलता से संशोधन नही हो सकता। यह साफ तौर से प्रकट है कि कुछ ऐसी धाराएँ हैं जिनको सविधान द्वारा रक्षित करने की आवश्यकता नही थी, जैसे उदाहरण के लिए, धारा २२४ है जो किसी रिटायर्ड जज को उच्च न्यायालय में बैठने की शक्ति देती है। क्या यह व्यवस्था (provision) ऐसे संवैधानिक महत्त्व की है कि इसकी सवैधानिक रूप से रक्षा करने की आवश्यकता है और इसका संशोधन करने के लिए संघीय संसद् के दोनों सदनो के उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता हो।"

१९५१ का संवैधानिक संशोधन (First Amendment of 1951)—सविधान की धारा १९ के अनुसार बोलने का अधिकार इतना व्यापक था कि कोई भी व्यक्ति किसी अन्य नागरिक की हिंसा सम्बन्धी षड्यन्त्र की बात को खुले आम कह सकता था और किसी भी हिंसक कार्य के लिए भाषण द्वारा उत्तेजना पैदा कर सकता था। नागरिकों के व्यापार, व्यवसाय और धन्धे इत्यादि के अधिकारों को भी स्पष्ट करना आवश्यक समझा गया। इसके अतिरिक्त कई एक प्रान्तीय विधान सभाओं ने जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए नियम बनाये थे, किन्तु अनेक दशाओं में न्यायालयों ने इन नियमों को अवैध घोषित कर दिया। यह आवश्यक समझा गया कि संविधान को इस प्रकार संशोधित किया जाए कि कृषि के क्षेत्र में प्रगतिवादी संविधान रुक न सके। दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था को जन्म देने की बात सोची गई। भारत के संविधान

का प्रथम संशोधन जून, १९५१ में किया गया। उसमे अनेक परिवर्तन किए गए। (क) आरम्भ में धारा १५ यह व्यवस्था करती थी कि सरकार एकमात्र धर्म, जाति, मूलवंश, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक मे भेद-भाव नहीं करेगी। महिलाओं तथा बच्चों के साथ विशेष व्यवहार की व्यवस्था भी रखी गई थी। सशोधन के द्वारा यह नया खण्ड उसमें सम्मिलित कर दिया गया—"(४) इस अनुच्छेद अथवा अनुच्छेद ३९ के खण्ड २ की कोई व्यवस्था राज्य की सामाजिक तथा शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों की उन्नति के लिए विशेष व्यवस्था करने से नही रोकेगी।" (ख) अनुच्छेद १९ को भी संशोधित किया गया। संशोधन के पूर्व भाषण तथा विचार-प्रकाशन के अधिकार पर यह प्रतिबन्ध था कि वे कानून बनाए जा सकते थे जो अपमान लेख (libel), अपमान वचन (slander) और मान-हानि, न्यायालय अवमान (contempt of court), शिष्टता या नैतिकता के विरुद्ध कार्यों से या ऐसे कार्यों से सम्बन्धित हो जिनसे राज्य की सुरक्षा दुर्बल होती हो या जो राज्य को उखाड़ फेंकने की प्रवृत्ति रखते हों। संशोधित अनुच्छेद के अनुसार भाषण तथा विचार प्रकाशन के अधिकार पर उचित प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून बनाए जा सकते है जो राज्य की सुरक्षा के हित, विदेशों से मैत्री सम्बन्ध, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टता और नैतिकता, के हित में हो या न्यायालय अवमान, मान-हानि अथवा अपराध करने के लिए उत्तेजित करने से सम्बन्धित हों। (ग) अनुच्छेद ३१-क यह व्यवस्था करता है कि कोई ऐसा कानून इस आधार पर कि वह मौलिक अधिकारो से सम्बन्धित सविधान के भाग ३ के अधिकारों को छीनता या कम करता है, शून्य नही होगा जिससे राज्य किसी की सम्पत्ति अथवा उसके अधिकारों को प्राप्त करे अथवा ऐसे अधिकारो को समाप्त करे अथवा संशोधित करे। यदि किसी राज्य का विधान-मण्डल कोई ऐसा कानून बनाता है तो उस पर इस अनुच्छेद की व्यवस्थाएँ उस अवस्था में लागू नहीं होंगी यदि उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए न रोका गया हो और राष्ट्रपति ने उसे अनुमति प्रदान न कर दी हो। (घ) अनुच्छेद ८५ मे पहले यह व्यवस्था थी कि संसद् के दोनों सदनों के अधिवेशन वर्ष मे कम-से-कम दो अवसरों पर आमन्त्रित किए जाएँगे। सशोधित अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति संसद् के प्रत्येक सदन की बैठक ऐसे समय तथा स्थान पर आमन्त्रित करेगा जैसा वह उचित समझे किन्तु प्रथम अधिवेशन की अन्तिम बैठक और द्वितीय अधिवेशन की प्रथम बैठक के दिन के बीच ६ मास से अधिक का अन्तर नहीं पड़ना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद १७४ में भी इसी प्रकार परिवर्तन किए गए है—इनका सम्बन्ध राज्यों के विधान-मण्डलों से है। संशोधित अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि राज्यपाल समय-समय पर सदन अथवा विधान-मण्डल के प्रत्येक सदन की बैठक किसी समय तथा स्थान पर आमन्त्रित करेगा। किन्तु प्रथम अधिवेशन की अन्तिम बैठक एवं द्वितीय अधिवेशन की प्रथम बैठक की तिथि के बीच ६ मास से अधिक का अन्तर नही पड़ना चाहिए। (ङ) आरम्भ मे अनुच्छेद ८७ में यह व्यवस्था थी

कि प्रत्येक सभा के आरम्भ होने पर राष्ट्रपति संसद् के एक स्थान पर एकत्रित दोनों सदनों के सम्मुख भाषण देंगे और संसद् को आमन्त्रित करने के कारणों से अवगत करायेंगे। संशोधित अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि सामान्य निर्वाचन के पश्चात् लोकसभा के प्रथम अधिवेशन तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन पर राष्ट्रपति संसद् के एक स्थान पर एकत्रित दोनों सदनों के सम्मुख अभिभाषण देंगे और संसद् को आमन्त्रित करने के कारणों से अवगत करायेंगे। इस प्रकार के परिवर्तन राज्यपालों तथा राजप्रमुखों के अभिभाषण से सम्बन्धित अनुच्छेद १७६ में भी किए गए हैं। संशोधित अनुच्छेद यह व्यवस्था करता है कि सामान्य निर्वाचन के पश्चात् विधान-सभा के प्रथम अधिवेशन तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम अधिवेशन पर राज्यपाल अथवा राजप्रमुख विधान-मण्डल के एक स्थान पर एकत्रित दोनों सदनों के सम्मुख अभिभाषण देंगे और आमन्त्रित करने के उद्देश्यों से अवगत करायेंगे।

संविधान में दूसरा संशोधन मई, १९५३ में किया गया। इसके द्वारा केवल संविधान की धारा ८१ में संशोधन किया गया। ये शब्द तथा अंक "जनसंख्या के हर ७,५०,००० पर कम-से-कम एक सदस्य" हटा दिये गए।

तीसरा संशोधन फरवरी १९५४ में किया गया। इसके द्वारा संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची ३ (समवर्ती सूची) की प्रविष्टि (entry) ३३ में परिवर्तन किया गया। नई प्रविष्टि का सम्बन्ध खाद्य-पदार्थों, पशु-चारा, रुई, पटसन तथा लोक-सभा द्वारा जन-हिताय आवश्यक समझकर अधिनियम द्वारा राज्यनियन्त्रित घोषित उद्योगों के उत्पादकों जैसे आयात किए हुए पदार्थों के उत्पादन, सम्भरण और वितरण के व्यापार और वाणिज्य से था।

संविधान का चौथा संशोधन अप्रैल, १९५५ में किया गया। इस संशोधन द्वारा धारा ३१ में परिवर्तन किया गया। यह व्यवस्था की गई कि कोई भी सम्पत्ति निश्चित ही अधिगमन या अभियाचन न की जाएगी जब तक कि ऐसा करना जन-हिताय न हो और प्रतिकर की व्यवस्था करने वाले अधिनियम के अन्तर्गत न हो। साथ ही इस प्रकार के किसी भी अधिनियम को किसी भी न्यायालय में इस बात पर चुनौती नहीं दी जा सकेगी कि प्रतिकर (compensation) अपर्याप्त है। संविधान की धारा ३१-अ में भी संशोधन किया गया। संविधान की धारा ३०५ के स्थान पर नई धारा बना दी गई। संविधान की नौवीं अनुसूची में भी वृद्धि कर दी गई।

संविधान का पाँचवाँ संशोधन दिसम्बर, १९५५ में हुआ। इस बार संविधान की धारा ३ में परिवर्तन किया गया। यह व्यवस्था की गई कि किसी राज्य के क्षेत्र, सीमा व नाम पर प्रभाव डालने वाला कोई भी विधेयक संसद् के किसी सदन में केवल तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि राष्ट्रपति उसका समर्थन करें और वह विधेयक राष्ट्रपति द्वारा सम्बन्धित राज्य के विधान-मण्डल को निर्धारित समय में (अथवा राष्ट्रपति द्वारा विस्तारित काल में) मत प्रकट करने के लिए भेज दिया गया हो।

संविधान का छठा संशोधन सितम्बर, १९५६ में हुआ। इस द्वारा सातवीं

अनुसूची की संघ सूची में ६२-अ नम्बर प्रविष्टि और बढ़ा दी गई। राज्य सूची में प्रविष्टि ५४ के स्थान पर अन्य प्रविष्टि बदली गई। इस संशोधन द्वारा संविधान की धारा २६६ और २८६ में भी परिवर्तन किया गया।

संविधान में सातवां संशोधन १६ अक्टूबर, १६५६ मे हुआ। यह एक विस्तृत संशोधन था और इस बार संविधान के कई भागो मे परिवर्तन किए गए। यह संशोधन १ नवम्बर, १६५६ को कार्यान्वित हुआ।

सातवें संशोधन के अनुसार, १४ राज्य और ६ संघ क्षेत्र स्थापित किए गए। हाईकोर्ट के किसी जज को रिटायर होने के बाद सुप्रीम कोर्ट के सिवाय किसी अन्य न्यायालय में वकालत करने की आज्ञा न होगी। अल्पसंख्यक जातियों की भाषाओं की रक्षा करने के लिए कुछ प्रबन्ध किए गये। कई विशेष अफसर नियुक्त करने की व्यवस्था भी की गई। उनका यह कर्त्तव्य था कि वे राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्टें भेजें और राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य था कि उन रिपोर्टों को भारतीय संसद् तथा राज्यों की सरकारों को भेजे। आंध्र प्रदेश तथा पजाब के लिए प्रादेशिक कमेटियों की स्थापना की व्यवस्था भी की गई। राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार के अधिकारों में तबदीली की गई।

संविधान का आठवां संशोधन जनवरी १६६० में हुआ। पहले अनुसूचित जातियों तथा वर्गों और एंग्लो-इण्डियन लोगों को १० वर्ष के लिए कुछ सुविधाएँ दी गई थी। उन सुविधाओं को १० वर्ष के स्थान पर २० वर्ष की अवधि तक बढा दिया गया।

सविधान का नौवां सशोधन दिसम्बर १६६० मे हुआ। इस सशोधन का उद्देश्य पाकिस्तान को कुछ स्थान देने के लिए कानून पास करना था। सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया था कि संविधान को बदले बिना वह प्रदेश पाकिस्तान को नही दिया जा सकता।

संविधान का दसवां संशोधन अगस्त १६६१ में हुआ। इस संशोधन से दादर और नगर हवेली के प्रदेशों को भारतवर्ष मे मिला लिया गया।

संविधान में ग्यारवां सशोधन १९ दिसम्बर १६६१ में किया गया। धाराएँ ६६ (१) और ७१ में तबदीली की गई। इस के अनुसार उपराष्ट्रपति का चुनाव दोनो विधान सभाओ के सदस्यों द्वारा होगा जिसके लिए दोनो सदनों का मिल कर बैठना जरूरी न होगा। राष्ट्रपति व उपराष्ट्रपति के चुनाव पर इस लिए आपत्ति नही हो सकेगी कि कोई सदस्य मौजूद न था।

संविधान मे १२वां सशोधन २७ मार्च १६६२ में हुआ। गोआ, दमन और दीव संघीय क्षेत्र के मान कर मिलाए गये।

सविधान में १३ वां संशोधन २८ दिसम्बर १९६२ को हुआ। २१वा भाग तबदील हुआ। नागलैंड के लिए खास व्यवस्थाएँ हुईं।

संविधान का १४ वां संशोधन भी २८ दिसम्बर १६६२ को लागू हुआ। ५।

८१ और २३६ (क) मे तवदीली हुई। कुछ संघीय क्षेत्रों के लिए स्थानीय विधान सभाएँ या मंत्रिमंडल या दोनों की व्यवस्था की गई। धारा २४० में भी तवदीली की गई।

संविधान मे १५ वाँ संशोधन ५ अक्तूबर १९६३ को हुआ। उससे हाईकोर्ट जजों की पद पूरा करने की आयु ६० से ६२ वर्ष कर दी गई। इससे हाईकोर्ट के जजों को एक हाई कोर्ट से दूसरी हाईकोर्ट मे भेजते समय हानिपूरक भत्ता देना किया गया। इससे रिटायर्ड जजों को हाईकोर्ट की बैठकों में नियुक्त होने का अधिकार मिला। इससे राज्य सरकारों की हाई कोर्टों को संविधान की धारा २२६ के अन्तर्गत आज्ञा देने का अधिकार मिला जबकि क्रिया का आधार उनके अधिकार क्षेत्र मे हो। इससे धारा ३११ (२) का भी संशोधन हुआ।

संविधान में १६वाँ संशोधन भी ५ अक्तूबर १९६३ को लागू हुआ। इसके द्वारा धारा१९ (२),(३) व (४) का संशोधन हुआ जिससे राज्य सरकारों को देश के हित मे उसी धारा के उपखंड (क), (ख) व (ग) द्वारा प्राप्त अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून पास करने का अधिकार मिला। इसके द्वारा धारा ८४ और १७३ का भी संशोधन हुआ जिससे संसद् व राज्य विधान सभाओं के सदस्य, सुप्रीमकोर्ट व हाई कोर्टों के जज और भारतीय लेखा परीक्षक व नियंत्रक (Comptroller and Auditor-General of India) पद ग्रहण करने से पहले देश की स्वतन्त्रता व अखंडता के हित मे शपथ उठाएँगे।

यह उल्लेखनीय बात है कि भारत का नया संविधान इस प्रकार से बनाया गया है कि वह समय के अनुसार बदला जा सकता है। यह सत्य है कि भारत का संविधान संघीय प्रकार का है, किन्तु यह संकटकाल में एकात्मक संविधान भी बन सकता है।

(८) संविधान केन्द्र तथा राज्यों मे संसदीय पद्धति की सरकार स्थापित करता है। संसदीय पद्धति के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते है। राज्य का एक नाममात्र का अध्यक्ष होता है जो पूर्णतः लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार कार्य करता है। नाममात्र का अध्यक्ष इगलैंड के राजा की तरह वंशागत, या फ्रांस के राष्ट्रपति के समान निर्वाचित, या किसी डोमीनियन के महा-राज्यपाल के सदृश मनोनीत होता है। मन्त्री उस पार्टी अथवा पार्टियों से सम्बन्धित होते है जिनका विधान-मण्डल में बहुमत होता है। प्रधान मन्त्री की स्थिति अन्य मन्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है। वह अपने सहयोगियों को चुनता है और उन्हें पदच्युत कर सकता है। "मन्त्रिमण्डल राज्य रूपी नौका का संचालनचक्र (steering wheel) और प्रधान मन्त्री उसका संचालक (steersman) होता है।" मन्त्री उस समय तक ही पदारूढ़ रहते हैं जब तक उनमें लोकप्रिय सदन का विश्वास होता है। अविश्वास होने पर उन्हें पद त्यागना पड़ता है। मन्त्री सामूहिक रूप से विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं। उनका उत्थान और पतन सामूहिक होता है। यदि विभिन्न मन्त्रियों में मतभेद हों, तो सारे मन्त्रिमंडल को अथवा असन्तुष्ट मन्त्री को त्याग-पत्र देना चाहिए। कोई मन्त्री उस समय तक अपने साथी की नीति को अस्वीकार नहीं कर सकता जब तक वह अपने पद पर रहता है। संसद् की संयुक्त समिति ने भारतीय संवैधानिक सुधारों के

विषय में संसदीय पद्धति के गुणो को इन शब्दों में व्यक्त किया है—"संसदीय सरकार जैसा कि इसे यूनाइटेड किंगडम मे समझा जाता है, चार आवश्यक तत्वो की परस्पर क्रिया द्वारा काम करती है—बहुमत का शासन, बहुमत के निर्णयो को उस समय स्वीकार करने के लिए अल्पमत की तत्परता, मौलिक सैद्धान्तिक मतभेदों के आधार पर संगठित बड़ी राजनैतिक पार्टियाँ, और परिवर्तनशील लोकमत का अस्तित्व जिसका किसी दल से स्थायी सम्बन्ध न हो और इसलिए जो रचनात्मक प्रतिक्रिया के द्वारा शासन-नौका को ठीक रूप से चलाने क लिए कभी एक ओर झुके और कभी दूसरी ओर।"

भारत के राष्ट्रपति का अस्तित्वमात्र भारतीय संविधान को अध्यक्षात्मक नही बनाता। भारतीय राष्ट्रपति तथा राज्यो के राज्यपालों के लिए आवश्यक है कि वे अपने मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करे। मन्त्री ससद् या विधान-मडल के सदस्य होते है। यदि वे नियुक्ति के समय किसी सदन के सदस्य नही होते तब उनके लिए आवश्यक होता है कि वे छः मास मे मनोनीत अथवा निर्वाचित होकर सदस्य बन जाएँ। वे सामूहिक रूप से संसद् अथवा विधान-मडल के प्रति उत्तरदायी होते है।

संसदीय प्रथा को अपनाने के कई कारण है। दीर्घकाल तक ब्रिटेन से सम्बन्ध रहने के कारण भारतीय इस शासन-प्रणाली से परिचित थे। वास्तव मे २०वी सदी के प्रारम्भ से भारत की सविधानीय पद्धति का विकास भी इसी दिशा मे हुआ था, संकट काल मे ऐसी पद्धति अत्यन्त श्रेयस्कर हो सकती है। इससे यह भी आशा है कि विधान-मण्डल तथा कार्यपालिका के कार्य मे अनुरूपता उत्पन्न होगी। कार्यपालिका जनता तथा विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है। ससद् के सदस्य प्रश्नो, प्रस्तावो, अविश्वास प्रस्तावो, स्थगन प्रस्तावो तथा अभिभाषणो (addresses) पर वाद-विवाद के द्वारा कार्यपालिका को अपने नियन्त्रण मे रखते है। निश्चित समय बाद होने वाले निर्वाचनों के अवसर पर नियतकालिक उत्तरदायित्व दिया जाता है।

(६) भारतीय सविधान सघीय (federal) शासन की व्यवस्था करता है। वह दोहरा तन्त्र (dual polity) स्थापित करता है। दोहरे तन्त्र के अन्तर्गत, केन्द्र में सघ और परिधि पर राज्य हैं और प्रत्येक राज्य संविधान द्वारा प्रदत्त क्षेत्रों में प्रभुसत्ता का प्रयोग कर सकता है। केन्द्र तथा राज्यो की शक्तियों की स्पष्ट विवेचना की गई है। संविधान लिखित तथा सर्वोच्च है। संघ अथवा राज्य विधान-मण्डल द्वारा क्षेत्राधिकार से बढकर बनाए गए कानून अमान्य होते है। इसके अतिरिक्त, जब तक सघ तथा राज्यों का बहुमत किसी विषय पर एकमत नही हो जाते तब तक केन्द्र अथवा राज्यो की स्थिति में कोई परिवर्तन करने का संशोधन स्वीकार करना सम्भव नहीं। सघ तथा राज्यो अथवा विभिन्न राज्यों की पारस्परिक समस्याओ को सुलझाने के लिए सविधान ने उच्चतम न्यायालय स्थापित किया है। उसे संविधान की अन्तिम रूप से व्याख्या का प्राधिकार दिया गया है।

किन्तु आलोचकों का मत है कि केन्द्र को हस्तक्षेप करने का अ[illegible] राज्यों को निम्न स्थिति में रख दिया गया है और वह संघीय पद्धति के

(क) संघीय पद्धति के सिद्धान्तों को अनेक स्थानों पर संशोधित कर उपयोग किया गया है। संविधान संघ संसद् को राज्य सूची में वर्णित विषयों के सम्बन्ध में कानून बनाने की भी शक्ति देता है यदि राज्य-सभा (Council of States) उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के ⅔ बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दे कि अमुक विषय राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक है। इस प्रकार पारित अधिनियमों की अवधि अधिक-से-अधिक एक वर्ष की होती है, तथापि राज्य-सभा प्रस्ताव द्वारा अवधि को एक अवसर पर एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है। (ख) संकट काल में संसद् राज्य सूची में दिए गये विषयों पर भी कानून बना सकती है, राज्य के प्रशासकीय अधिकारियों को निर्देश दे सकती है; भारत सरकार के अधिकारियों को राज्य सूची के विषयों की व्यवस्था करने के अधिकार दे सकती है तथा संविधान के वित्तीय उपबन्धों (financial provisions) को कुछ काल के लिए स्थगित कर सकती है। (ग) यदि राष्ट्रपति को यह सन्तोष हो जाये कि किसी राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाई जा सकती तो वह उस आशय की उद्घोषणा कर सकता है। वह राज्य सरकार, राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की सब शक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता है किन्तु वह उच्च न्यायालय की शक्तियाँ अपने हाथ में नहीं ले सकता। भारतीय संसद् किसी राज्य में संविधान के अनुलम्बित हो जाने के दिनों में विधान-सभा का स्थान ले लेती है तथा उसकी सम्पूर्ण शक्तियों का प्रयोग करती है। (घ) राष्ट्रपति देश में वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। ऐसा करते समय वह ऐसे आवश्यक निर्देश दे सकता है जिनसे केन्द्रीय तथा राज्यों के प्रशासकों के वेतन तथा भत्तों में कमी का आदेश भी सम्मिलित हो सकता है। वित्तीय संकटकाल में राज्य विधान-मण्डलों द्वारा पारित सभी धन सम्बन्धी विधेयक भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन होते हैं। (च) भारत सरकार राज्यों को कुछ प्रशासकीय आज्ञाएँ दे सकती है जिनको पूरा करना उनका अनिवार्य कर्त्तव्य होता है। (छ) १९५०-६० तक 'ख' राज्य भारत सरकार के साधारण नियन्त्रण में रह कर कार्य करेंगे तथा समय-समय पर प्राप्त आदेशों का पालन करते रहेंगे। (ज) कुछ विषयों के सम्बन्ध में राज्य विधान-मण्डलों द्वारा पारित अधिनियम तब तक मान्य नहीं होते जब तक उन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त न हो जाय। (झ) राष्ट्रपति राज्यपालों की नियुक्ति करता है। जब राज्यपाल अपने विवेक से कार्य करते हैं तब वे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यही धारा राजप्रमुखों के लिए भी है। (ञ) निर्वाचन आयोग (Election Commission) के सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा की जाती है और उनका काम राज्य विधान-मण्डलों के अतिरिक्त भारतीय संसद् के निर्वाचनों की देख-भाल, संचालन तथा नियन्त्रण करना है। (ट) भारत के नियन्त्रक तथा महा-लेखा-परीक्षक (Comptroller and Auditor-General of India) की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और उसका काम भारत तथा राज्यों की धन-सम्बन्धी बातों की देख-भाल करना है। इससे केन्द्रीय सरकार की इकाइयों पर नियन्त्रण होता है। (ठ) संविधान की धारा ३ संसद् को ऐसी कानून बनाने का अधिकार देती है जिससे किसी राज्य से इलाका छाँट कर या दो या अधिक राज्यों व उनके भागों

को मिला कर या किसी इलाके को किसी राज्य के किसी अंग से मिला कर एक नया राज्य बना दे। संसद् को यह भी अधिकार है कि वह किसी राज्य का इलाका बढा दे या घटा दे, किसी राज्य की सीमाओ को बदल दे या किसी राज्य का नाम बदल दे इन अधिकारों के कारण संसद् देश का सारा नक्शा ही बदल सकती है जैसे कि १९५६ के राज्य पुनः संगठन ऐक्ट द्वारा किया गया। यहाँ यह कह देना जरूरी है कि संसद् उपरोक्त पग राज्यो की इच्छा के विरुद्ध भी उठाने में समर्थ है और वे विधान के अन्तर्गत कुछ भी नही कर सकते। राज्यों के ऊपर केन्द्र के पास यह बड़ा भारी अधिकार है और यदि सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो यह अधिकार भी केन्द्र का राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करता है। (ड) धारा १७१ (२) के द्वारा संसद् को अधिकार है कि वह किसी राज्य की विधान सभा की बनावट कानून बना कर बदल दे। (ढ) केन्द्र राज्यो को सहायक अनुदान देकर उन पर नियन्त्रण रखता है। जो राज्य केन्द्र से सहायक अनुदान लेते हैं वे स्वत: केन्द्र के अधीन हो जाते है। संविधान की धारा २७५ इस पर विस्तृत व्यवस्था करती है। (ण) सविधान की ३५२, ३५३, ३५५ और ३५६ धाराएँ जिनके द्वारा संसद् में सकट-कालीन अधिकार निहित है उनमे राष्ट्रपति को राज्य सरकारो पर बहुत से अधिकार मिल जाते है। (त) धारा ३६५ मे यह व्यवस्थित है कि जब कोई राज्य संविधान के अन्तर्गत दिये हुए अधिकारो के अनुकूल संसद् की किसी आज्ञा का पालन नहीं करता तो राष्ट्रपति के लिए वैध होगा कि वह इस बात की घोषणा करे कि उस राज्य मे सरकार सविधान के अनुकूल नही चल सकती। इस प्रकार राष्ट्रपति यह निश्चय करने के लिए कि किसी राज्य में सविधान के अनुकूल शासन चल रहा है या नहीं, अन्तिम निर्णायक है। आलोचकों का मत है कि भारतीय सविधान उपर्युक्त उपबन्धों के कारण सघीय नही है। डा० वीयर (Wheare) के अनुसार भारतीय सविधान अधिक-से-अधिक अर्ध-संघीय (quasi-federal) सरकार की स्थापना करता है।

भारतीय संविधान को ध्यान से परख करने वालों का कहना है कि इसका एकात्मक राज्य बनने की ओर झुकाव है। राजनैतिक मच पर एक पार्टी—कांग्रेस—ही छाई हुई है। कांग्रेस के नेता केवल अपनी पर्टी के लिए ही नही बल्कि सारे राष्ट्र के लिए मार्गदर्शन करते हैं और उनके निर्णय बिना पूछ-ताछ के नाम-मात्र नेताओं द्वारा स्वीकार भी किए जाते हैं। दूसरे एकता के आधार पर देश की आर्थिक व्यवस्था के कारण भी केन्द्रीय नेतृत्व व प्रभाव में वृद्धि हुई है। योजना आयोग (Planning Commission) का देश में भारी महत्त्व हो गया है। वह केवल केन्द्र व राज्यों के लिए ही नीति का निर्णय नही करता वरन् वह उसे लागू भी कराता है। न केन्द्र का कोई विभाग और न कोई राज्य ही किसी महत्त्वपूर्ण योजना को बिना योजना आयोग की स्वीकृति के हाथ में ले सकता है। वास्तविक रूप में योजना आयोग ही सब जरूरी मामलों का अन्तिम निर्णय करता है। तीसरे केन्द्र में कुछ ऐसे मन्त्रणालयो के कारण, जिनका विस्तार दिन प्रति दिन हो रहा है, राज्यों का इन मामलों में प्रभाव मन्द पड़ जाता है। चौथे, राज्य पुनसंगठन के कारण राज्यो की आबादी और इलाके में इतना भारी अन्तर हो गया है कि

यह देश के संघीय आधार को पनपने नहीं देता। पाँचवें, क्षेत्रीय परिषदें (Regional Councils) भी एकात्मक राज्य की भावना को दृढ़ करती हैं विशेषतया जब कि इन परिषदों को अपने बल का आधार नहीं। छठे राज्य सरकारें केन्द्र के अधीन हैं। यह प्रथा बन गई है जिससे एकात्मक राज्य की भावना में दृढ़ता होती है।

उचित विचार यह है कि भारतीय संविधान संघीय है। वह संघीय शासन के आवश्यक तत्वों का उल्लंघन नहीं करता। किन्तु देश की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से कुछ परिवर्तन किये गए हैं। उन देशों के अनुभवों से लाभ उठाने का प्रयास किया गया है जिनमें संघीय सरकार है। भारतीय संविधान को एकीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि संघ तथा राज्यों की शक्तियों को विभाजित किया गया है। एकीय संविधान में ऐसी कोई वस्तु नहीं होती क्योंकि वह शक्ति का केन्द्रीयकरण (concentration) करता है। संघ सरकार सूचियों को मानने के लिए बाध्य है और राज्यों की सहमति के बिना उनका परिवर्तन नहीं कर सकती। राज्य भारत सरकार के अभिकर्ता (agents) नहीं हैं। अतः शासन का रूप एकात्मक नहीं कहा जा सकता। संकट-काल के लिए भारत के राष्ट्रपति तथा भारतीय संसद् को जो अधिकार दिये गए हैं उनसे उनको ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। सम्पूर्ण देश के हित के लिए प्रत्येक वस्तु का त्याग किया जा सकता है। भारत का संघीय शासन संकट-काल में ही एकात्मक हो सकता है अन्य किसी समय नहीं। इससे केवल यह तथ्य स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान इतना लचीला है कि उसे देश पर आने वाले प्रत्येक संकट का सामना करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। स्विट्ज़रलैंड के संविधान में भी यह व्यवस्था की गई है कि केन्द्रीय सरकार किसी कैन्टन में हस्तक्षेप कर सकती है यदि उस कैन्टन की गड़बड़ से राज्य की सुरक्षा को भय उत्पन्न हो जाए। प्रथम तथा द्वितीय महायुद्धों में, संयुक्त राज्य, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा में संघीय सरकारों की शक्तियाँ इतनी बढ़ा दी गई थीं और न्यायालयों ने उनकी इस प्रकार व्याख्या की कि उन राज्यों ने संघात्मक राज्यों की अपेक्षा एकात्मक राज्यों के समान कार्य किया।

इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है कि भारत सरकार राज्य सूची के किसी विषय का प्रबन्ध इस आधार पर करे कि उसका महत्त्व राष्ट्रीय हो गया है। साधारणतः यदि ऐसा परिवर्तन वांछनीय हो तो उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए संविधान का संशोधन करना पड़ता है किन्तु भारतीय संविधान में एक ऐसी विधि का समावेश किया गया है जिसके द्वारा इच्छित पद की प्राप्ति [illegible] से ही हो जाती है। केवल [illegible]

शत्रुता करे अथवा विपरीत दृष्टिकोण अपनाए। भाग 'ख' के राज्यों पर भारत सरकार के नियन्त्रण का उचित कारण यह है कि ये राज्य भाग 'क' के राज्यों से पिछड़े हुए हैं। इसके अतिरिक्त, भारत सरकार का नियन्त्रण स्थायी न होकर केवल सक्रमणकालिक (transitional) है। यह आशा की जाती है कि राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार का प्रयोग बहुत कम करेंगे किन्तु यह एक सुरक्षित अधिकार है जिसका प्रयोग परिस्थिति आने पर किया जा सकता है। जहाँ तक राज्यपालो की नियुक्ति का प्रश्न है, इस समस्या पर सविधान-निर्माताओ ने अत्यधिक विचार-विनिमय किया और अनेक विकल्पों पर विचार किया किन्तु यही विधि सबसे कम आपत्तिजनक मानी गई। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि साधारणत: राज्यपाल नाम मात्र के अध्यक्ष के नाते कार्य करते है और इसकी बहुत अधिक सम्भावना नही है कि वे अपनी इच्छानुसार कार्य करेंगे। उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह माना जा सकता है कि भारतीय सविधान वास्तव मे सघीय है।

भारत के संघीय शासन के समालोचको को यह न भूलना चाहिए कि देश में सघीय शासन को केवल जान-बूझकर ही मजबूत नही बनाया गया बल्कि दुनिया के दूसरे सघीय साम्राज्यों का भी केन्द्रीयकरण की ओर झुकाव है जैसा कि स्विट्जरलैंड, आस्ट्रेलिया, कैनेडा और सयुक्त राज्य।

भारतीय सघ शासन की प्रमुख विशेषताएँ (Distinctive Features of the Indian Federal System)—(क) नए सविधान द्वारा स्थापित सघीय शासन की अनेक प्रमुख विशेषताएँ है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे दोहरी नागरिकता (dual-citizenship) है। प्रत्येक अमेरिकन सयुक्त राज्य का नागरिक है और उस राज्य का भी नागरिक है जिसमें वह रहता है। परिणाम यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रत्येक राज्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने नागरिको अथवा निवासियों को कुछ ऐसे विशेषाधिकार दे दे जिनको वह कानूनी रूप से अन्य राज्य के नागरिकों अथवा निवासियो को देने से इनकार करे अथवा कठिन शर्तों पर दे। किन्तु भारत में शासन-तंत्र दोहरा है लेकिन नागरिकता इकहरी है। "सम्पूर्ण भारत के लिए केवल एक नागरिकता है। वह भारतीय नागरिकता है। राज्य नागरिकता (state citizenship) नही है। प्रत्येक भारतीय को नागरिकता के वही अधिकार प्राप्त हैं चाहे वह किसी राज्य में रहता हो।"

(ख) अमेरिका में प्रत्येक राज्य को अपना सविधान बनाने तथा संशोधन करने का अधिकार प्राप्त है। सघीय सरकार को किसी राज्य के संविधान को बदलने का अधिकार नही है। भारत मे किसी राज्य को अपना सविधान बनाने का अधिकार नही है, फिर सविधान में संशोधन करने का तो प्रश्न ही नही उठता। संघ सरकार कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत संविधान मे संशोधन कर सकती है। "संघ तथा केन्द्र का एक ही संविधान बनाया गया है जिससे कोई भी पृथक् नहीं हो सकता और जिसके अन्तर्गत रहकर उन्हे कार्य करना चाहिए।"

(ग) अनम्यता तथा कानून-परस्ती (rigidity and legalism) संघीय शासन

की दो बड़ी बुराइयाँ समझी जाती हैं। संघीय संविधान लिखित होता है और लिखित संविधान साधारणतः अनम्य होता है। इसके अतिरिक्त संघीय शासन के अन्तर्गत व्यक्ति किसी कानून के गुणावगुण का विचार न करके उसकी वैधता तथा अवैधता के विषय में सोचते है। किन्तु भारतीय संविधान में कुछ विधियों के द्वारा इन दो बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया गया है। इसी अभिप्राय के लिए समवर्ती विषयो की एक लम्बी सूची रखी गई है। बहुत-सी ऐसी व्यवस्थाएँ की गई हैं जो उस समय तक लागू रहेंगी जब तक ससद् को राज्य सूची के विषय पर भी कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। यह तब होता है जब किसी विषय का महत्त्व राष्ट्रीय हो जाए। ऐसा उस समय भी होता है जब राष्ट्रपति के द्वारा आपत्ति-काल की घोषणा की जाती है। केन्द्र सम्बन्धित राज्य या राज्यों की सहमति से राज्य के अन्दर शक्तियाँ का प्रयोग कर सकता है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत के संविधान के संशोधन करने की विधि कहीं अधिक सरल है।

(घ) संकट-काल मे सविधान एकात्मक (Unitary) हो जाता है। "समस्त सघीय पद्धतियों के संघवाद का रूप बहुत कठोर होता है। किसी भी परिस्थिति मे वह अपने रूप तथा आकृति मे परिवर्तन नही कर सकता। वह एकात्मक नहीं हो सकता। इसके विपरीत, भारतीय सविधान समय तथा परिस्थितियों के अनुसार संघीय तथा एकात्मक दोनों रूप धारण कर सकता है।

(ङ) भारतीय संविधान के अन्तर्गत समस्त बुनियादी विषयों में एकता स्थापित की गई है। डा० अम्बेदकर के अनुसार, "सघ में पृथक् विधायी, कार्यकारी तथा न्यायिक शक्तियां रखने के कारण दोनो सरकारों के कानूनों, प्रशासन तथा न्यायिक संरक्षण में विभिन्नता उत्पन्न होना अनिवार्य है। किसी सीमा तक इस विभिन्नता का कोई महत्त्व नही होता। शासन की शक्तियो को स्थानीय आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल बनाने के लिए ऐसे प्रयास की सराहना की जा सकती है। किन्तु जब पृथक्ता एक निश्चित सीमा के परे चली जाती है तब इससे गड़बड़ उत्पन्न होती है और इसने अनेक संघीय राज्यो में गड़बड़ उत्पन्न की भी है।" भारतीय संविधान ने प्रशासकीय तथा विधायी एकता स्थापित करने के लिए तीन उपाय किए हैं। प्रथम इकहरी न्यायपालिका, द्वितीय दीवानी तथा फौजदारी कानूनों में एकरूपता, तृतीय सामान्य अखिल भारतीय सेवाएँ। उच्चतम न्यायालय तथा राज्यो के उच्च न्यायालयों को मिलाकर एक इकाई बना दिया गया है। अखिल भारतीय सेवायें केन्द्र तथा राज्यों दोनों मे कार्य करती है। कानून की विभिन्नता को समाप्त करने के लिए दीवानी तथा फौजदारी न्यायालयो को समवर्ती सूची में रखा गया है।

अलैक्जैण्डरोविच (Alexandrowicz) के शब्दों मे, "भारत के सविधान की सबसे बडी समस्या इसका 'संघत्व' है। संघ के ढांचे पर संविधान सभा में केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की समस्या पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण वाद-विवाद हुआ। भारत की एकता और इसकी अनेक जातियों के दावे इस प्रकार के लक्ष्य हैं जो सरलता से नहीं सुलझ पाते। संघ पर हुए विचार-विनिमय के परिणामस्वरूप अनेक कठोर

(Static) व्यवस्थाओं को स्वीकार करना पड़ा। लेकिन इनके पीछे जो प्रगतिशील वास्तविकता है, इन व्यवस्थाओं की सम्पूर्णता को समाप्त कर देती है और अत्यन्त विरोधी भाव समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकतम लचक की माँग करते है। संविधान का बनाना तो १९४९ मे समाप्त हो गया किन्तु संघ का निर्माण तो अब प्रारम्भ हुआ है और भविष्य मे कई वर्षों तक चलता रहेगा।"

(१०) भारतीय सविधान की एक और विशेषता देशी राज्यो का शेष भारत मे विलयन है। इससे पूर्व हम अंग्रेजी भारत (British India) और देशी भारत (Indian India) का प्रयोग किया करते थे। परन्तु नए सविधान मे ऐसी कोई बात नहीं है। "हमारा संविधान लोकतन्त्र तथा राजवशो की सन्धि नही है, प्रत्युत भारतीय जनों का वास्तविक संगठन है जो जनता के हाथो मे प्रभु-शक्ति प्रदान करता है।" नए संविधान के अन्तर्गत भारत के एक भाग और दूसरे मे कोई भेद नही है।

(११) भारतीय सविधान की एक अन्य विशेषता धर्म-निरपेक्ष राज्य (Secular State) है। वैंकटरमन के अनुसार, राज्य "न तो धार्मिक है, न अधार्मिक और न धर्मविरोधी। यह धार्मिक मतवादो एव कार्यों से पूरी तरह पृथक् है और इस प्रकार धार्मिक विषयों मे तटस्थ है।" समस्त भारतीयो को धर्म, जाति अथवा मत का विचार न करते हुए समान अधिकारो की गारण्टी दी गई है। भारत सघ अथवा राज्य अपने को किसी विशेष धर्म से सम्बद्ध नही कर सकता। किसी धर्म के साथ भेद-भाव नही किया जा सकता।

"किन्तु इसका तात्पर्य ऐसे राज्य से नही है जो अपने काम को चलाने मे सभी सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों (values) को छोड देगा। यह उनमे से उनको स्वीकार करेगा जिनका समर्थन जन-भावना (Public sentiment) करती है और जो उसकी सामान्य नीति (general policy) के उद्देश्य एव कार्यों को पूरा करने की दृष्टि से अनुकूल हो।

राष्ट्र की धर्म-निरपेक्षता की कट्टर हिन्दुओ ने आलोचना की है। यह बात विचारणीय है कि धर्म-निरपेक्षता हिन्दू धर्म को इस प्रकार का कोई आश्वासन नही देती कि समाज कल्याण और सुधार के नाम पर उस पर हस्तक्षेप नही होगा। हिन्दू सभ्यता अविभाज्य रूप से हिन्दू धर्म के साथ जुडी हुई है और इनको एक-दूसरे से पृथक् नही किया जा सकता। कट्टर हिन्दू, भारतीय ससद् द्वारा हिन्दू समाज से सम्बन्धित कानूनों को बनाने के तरीके की कडी आलोचना करते है, विशेषतः इस कारण कि संसद् को मुसलमानो से सम्बन्धित कानूनों को छूने का भी साहस नही हुआ। किन्तु फिर भी ससार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अन्ततः धर्म-निरपेक्षता की नीति लाभदायक सिद्ध होती है। भारतवर्ष मे अन्य धर्मानुयायी भी है इसलिए यह ठीक नही होगा कि अल्पसंख्यक ये समझें कि देश का शासन केवल हिन्दुओं के हित के लिए ही हो रहा है। इस प्रकार की भावना से उपद्रव होने की आशका रहती है। धर्म-निरपेक्षता का आशय अधिकांश मे अल्पसंख्यकों को एक प्रकार का आश्वासन है और इससे हिन्दू बहुसख्यकों को किसी प्रकार का भय नही है।

भारतीय संघ अविभाज्य इकाई है, यद्यपि यह प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न प्रदेशों में विभाजित है। केवल एक नागरिकता, केवल एक राज्यनिष्ठा और केवल एक प्रभु-सत्ता है।

(१४) सर अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर के अनुसार, "संविधान मे उसके अपने विकास, लचीलेपन तथा प्रसार के आवश्यक तत्त्व विद्यमान है। यद्यपि वह समाज को किसी भी विशेष प्रकार से पुनर्गठित करने की व्यवस्था नही करता तथापि जनता को किसी भी ढाँचे के अनुसार पुनर्गठित होने की स्वतन्त्रता है।" श्री एन० आर० राघवाचार्य के अनुसार, "भारतीय सविधान गणराज्यो का गणराज्य तथा राष्ट्रमडलो का राष्ट्रमंडल है। एक बड़े राज्य के अन्तर्गत राज्यो का समूह है जिन्हे जनता के लाभ के लिये विशेष शक्तियाँ तथा सामर्थ्य प्राप्त हैं।" भारत सघ राज्य-कला का ऐसा आदर्श उदाहरण है, जिसकी तुलना और समता मानव के राजनैतिक इतिहास में नही मिलती। कोई भी अन्य संविधान निरकुशता के विरुद्ध और श्रमजीवियों के हितों के पक्ष में रखी गई व्यवस्थाओ मे भारतीय सविधान की तुलना नही कर सकता। इसकी बहुत ही कम सम्भावना है कि देश केवल एक व्यक्ति की इच्छा अथवा भेड़ की भावना के अनुसार चल सकेगा। यह सविधान लचीला तथा कोमल दोनों ही है। वह तूफान का सामना करते समय दब जाएगा लेकिन उसके बाद फिर पहली हालत मे आ जाएगा—मगर यह कभी टूटेगा नही।

(१५) भारतीय संविधान मे न्यायिक पुनर्विचार के सिद्धान्त (Doctrine of Judicial Review) का समावेश किया गया है। यह ससद् तथा राज्य विधान-मडलों की विधायी शक्तियो को सीमित करता है। "मूल अधिकारो से टकराने वाले कानून तभी मान्य हो सकते है यदि वे उन अधिकारों के प्रयोग पर तर्कसगत प्रतिबन्ध लगाते हो और तर्कसंगत प्रतिबन्धों का निर्णय करने का एकाधिकार इस न्यायालय को है। विधान-मण्डल द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध की तर्कसगतता के विषय मे विधान-मंडल का अन्तिम विचार नहीं होता, वह न्यायालयों के पर्यवेक्षण (supervision) के अधीन होता है।" यह उच्चतम न्यायालय ने सविधान के अन्तर्गत न्यायिक पुनर्विचार की शक्ति के क्षेत्र के विषय में कहा है जो मूल अधिकारो पर प्रतिबन्ध लगाने की तभी आज्ञा देता है जबकि इन अधिकारो पर लगाए गये प्रतिबन्ध तर्कसंगत हों। "किसी विधान की वैधानिकता का निर्णय करने के विषय मे उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीशों के व्यक्तिगत विचारो के आजाने के खतरे को स्वीकार किया है। ऐसे अनिश्चित कारणो को समाप्त करने और तर्कसंगतता के विषय मे आदर्श बनाते समय किसी विशेष अभियोग की समस्त परिस्थितियों मे अपना निर्णय करने वाले न्यायाधीशो के सामाजिक दर्शन (social philosophy) तथा मूल्यांकन के पैमाने (scales of values) का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है और ऐसे अभियोगों में विधायी निर्णय (legislative judgement) के सम्बन्ध में उनके हस्तक्षेप की सीमा केवल उनके उत्तरदायित्व और आत्म-संयम की भावना से ही तय हो सकती है और साथ ही यह विचार भी रखना है कि संविधान केवल उनके दृष्टिकोण के लोगों के लिए न होकर सबके लिए है और

जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के बहुमत ने, प्रतिबन्धों को लगाने का अधिकार देते समय उनको तर्कसंगत समझा है।"

नए संविधान तथा भारत शासन अधिनियम, १९३५, की तुलना (Comparison of the new Constitution with Government of India Act, 1935)—यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संविधान निर्माताओं ने भारत शासन अधिनियम १९३५ से बहुत कुछ लिया है। इस परिस्थिति में दोनों की तुलना करना वांछनीय है।

(१) दोनों में संघीय सरकार की व्यवस्था की गई है किन्तु अब संघीय सरकार को १९३५ के अधिनियम की संघीय सरकार से अधिक दृढ़ बनाया गया है। यह स्मरणीय है कि १९३५ के संविधान का संघीय भाग कभी लागू नहीं किया गया और उस क्षेत्र में १९१९ का अधिनियम ही लागू रहा था।

(२) दोनों में शक्ति-विभाजन एक सा है। १९३५ के अधिनियम में तीन सूचियाँ—संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची (Concurrent List) दी गई थीं। अवशिष्ट शक्तियाँ (residuary powers) महा-राज्यपाल को प्राप्त थीं जो अन्ततोगत्वा ब्रिटिश संसद् के अधीन था। नए संविधान में भी तीन सूचियाँ—संघ, राज्य तथा समवर्ती—हैं। यद्यपि सूचियों की विशालता के कारण अवशिष्ट शक्तियों के लिए कोई क्षेत्र नहीं रहा है तो भी वे शक्तियाँ संघ सरकार को दी गई हैं, जिनका अभिप्राय केन्द्र के उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल से है। शक्तियों का नया विभाजन संघीय सरकार को बहुत दृढ़ बनाता है।

(३) १९३५ के अधिनियम के अन्तर्गत विधान मंडल सत्ताहीन थे। अन्तिम शक्ति ब्रिटिश संसद् तथा मन्त्रिमंडल को प्राप्त थी। १९३५ के अधिनियम को ब्रिटिश संसद् ने बनाया था और वही उसमें संशोधन कर सकती थी अथवा उसे हटा सकती थी। नए संविधान में सारी शक्तियाँ जनता को प्राप्त हैं। गणराज्य भारत पूरी तरह प्रभुत्व-सम्पन्न है। भारत पर किसी विदेश का नियन्त्रण नहीं है। भारतीय विधानमंडल अपने-अपने क्षेत्र में पूरी तरह प्रभुत्व-सम्पन्न हैं। भारतीय संसद् संविधान का संशोधन कर सकती है। कुछ विषयों में, उसका संशोधन करने के लिए राज्य विधान मंडल की सहमति आवश्यक होती है। किन्तु नए संविधान के अन्तर्गत भारतीय विधान मंडल प्रभुत्व-सम्पन्न विधि-निर्माता है।

(४) यह सत्य है कि १९३५ के अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्त शासन (autonomy) तथा केन्द्रीय आंशिक उत्तरदायित्व (partial responsibility) की व्यवस्था थी। राज्यपालों तथा महा-राज्यपाल को बहुत से विशेष उत्तरदायित्व पूरे करने थे। उनको विवेक से कार्य करने की भी आज्ञा थी। नए संविधान के अनुसार केन्द्र तथा राज्यों में पूर्ण उत्तरदायी सरकारें स्थापित की गई हैं। वास्तविक अधिकार मन्त्रियों के पास होते हैं। राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुख इंगलैंड के राजा की भाँति नाममात्र के प्रमुख हैं। नए संविधान में स्वैरतन्त्र (autocracy) के लिए कोई

स्थान नहीं है जैसा कि १६३५ के अधिनियम में था। भारतीय गणराज्य लोकतन्त्रीय है।

(५) १६३५ के अधिनियम के अनुसार देशी रियासतों की संख्या बहुत अधिक थी। सरदार पटेल और लार्ड माउटबेटन के प्रयत्नो से हुए एकीकरण के फलस्वरूप संविधान में उसमें बहुत कमी कर दी गई है। भाग 'ख' राज्यों का न केवल एकीकरण हो गया है बल्कि उनमे लोकतन्त्र भी स्थापित हो गया है। उनमे भी उत्तरदायी सरकारें स्थापित की गई है। १६३५ के अधिनियम में देशी रियासतों की जनता की सर्वथा उपेक्षा की गई थी। उन्हें यह निश्चित करने का अधिकार नही था कि उनका राज्य भारत मे मिले या पृथक् रहे। संघीय धारा सभा में भी प्रतिनिधि भेजने का उनको अधिकार नहीं था। देशी नरेश ही अपने-अपने राज्यों के प्रतिनिधियों को मनोनीत करते थे।

(६) १६३५ के अधिनियम तथा नए संविधान की प्रस्तावनाओं में मौलिक भेद है। १६३५ के अधिनियम की प्रस्तावना में १६१६ के अधिनियम की प्रस्तावना को ही उद्धृत किया गया था जिसमें अंग्रेजी सरकार का उद्देश्य भारत में 'उत्तरदायी सरकार की स्थापना' घोषित किया गया था। नए संविधान की प्रस्तावना भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्री गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) की स्थापना करती है तथा समस्त शक्तियों का स्रोत जनता को बताती है।

(७) नए संविधान में भारतीय नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का वर्णन किया गया है तथा उनको लागू कराने के लिए उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के तन्त्र की व्यवस्था की गई है। १६३५ के अधिनियम में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी।

(८) नए संविधान में राज्यनीति के निदेशक तत्त्वों को सम्मिलित किया गया है। इनकी तुलना महा-राज्यपाल तथा राज्यपालों को दिये गये अनुदेश-पत्रों (Instrument of Instructions) से की जा सकती है।

(९) नए संविधान में न्यायपालिका को स्वाधीन करने का यत्न किया गया है यद्यपि १६३५ के अधिनियम में इसका समावेश नहीं था। भारत के उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को उनसे अधिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जितनी कि भारत के संघीय न्यायालय (Federal Court of India) तथा उच्च न्यायालयों को १६३५ के अधिनियम के अनुसार प्राप्त थीं। इस का आंशिक कारण प्रिवी कौंसिल के अधिकारों को प्राप्त करना तथा नए संविधान के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए आवश्यक साधन जुटाना है।

(१०) १६३५ के अधिनियम के अधीन मताधिकार बहुत सीमित था। अनुमान है कि वह लगभग १४% था। नया संविधान सार्वजनिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करता है। यह प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्री गणराज्य की भावना के अनुसार ही है। पृथक् चुनाव-पद्धति तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को समाप्त कर

दिया गया है। कुछ अल्पसंख्यकों तथा पिछड़े वर्गों के हितों की दृष्टि से केवल दस वर्ष (१९५०-६०) के लिए विशेष व्यवस्था की गई है।

(११) भारत सरकार कानून १९३५ के अनुसार इंगलैंड का सम्राट् या सम्राज्ञी भारतवर्ष के भी सम्राट् अथवा सम्राज्ञी होते थे। किन्तु भारत के नए संविधान से सम्राट् अथवा सम्राज्ञी का नाम बिलकुल हटा दिया गया है। यह सत्य है कि भारतवर्ष राष्ट्रों की कामनवैल्थ का सदस्य है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि इंगलैंड का सम्राट् भारत-संघ का प्रमुख है। भारतवर्ष का राष्ट्रपति ही देश का सर्वोच्च प्रमुख है, यद्यपि भारत की जनता उसे अप्रत्यक्ष रूप से चुनती है।

(१२) भारत सरकार कानून १९३५ के अनुसार भारत के लिए राज्य-सचिव (Secretary of State for India) को भारतवर्ष के प्रशासन में प्रबन्ध संचालन तथा नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त था। इस कानून को भी इंगलैंड की संसद् संशोधित कर सकती थी। नए संविधान में राज्य-सचिव का पद ही नहीं है। सारा विदेशी नियन्त्रण समाप्त हो गया। अब संघ सरकार और संसद् ही देश के निर्देशक हैं।

(१३) भारत सरकार कानून १९३५ के द्वारा संघ सरकार को इसलिये शक्तिशाली बनाया गया था कि ब्रिटिश संसद् का बलशाली पंजा समूचे भारतवर्ष पर कसा रहे; नये संविधान ने संघ सरकार को राष्ट्रीय एकता और प्रगति को बढाने के उद्देश्य से शक्तिशाली बनाया है।

(१४) भारत सरकार कानून १९३५ के अनुसार संघ-न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था। अन्तिम निर्णय काउन्सल की न्याय-समिति के हाथ में था, जिसका स्थान लन्दन में था। नये संविधान में न्याय-समिति और संघ-न्यायालय को हटाकर सर्वोच्च न्यायालय को देश का सर्वोपरि न्यायालय स्थापित किया है। देश के न्याय में अब विदेशी हस्तक्षेप बिलकुल नहीं है।

(१५) भारत सरकार कानून १९३५ के अनुसार संघ-न्यायालय के दोनों सदनों को समान अधिकार दिये गये थे। किन्तु नये संविधान के अनुसार लोक-सभा राज्य-सभा से निश्चित रूप से कहीं अधिक शक्तिशाली है। यदि लोक-सभा किसी विशेष कार्य-प्रणाली को अपनाना चाहे तो राज्य-सभा इसके मार्ग में रोडा नहीं बन सकती है।

Suggested Readings

Alexandrowicz, C. H : Constitutional Developments in India (1957).
Anand, C. L. : The Constitution of India (1957).
Banerjee, A. C. : The Constitution of the Indian Republic (1950).
Basu, Durga Dass : Shorter Constitution of India.
Basu, Durga Dass : Commentary on the Constitution of India.
Chanda, A. K. : Indian Administration.
Char, K. T. Narasimha : The Constitution of India (1956).

Chitaley and Rao : The Constitution of India, Vols. I to V.
Dash, S. C. : The Constitution of India (1960).
Ebb, L. F. : Public Law Problems in India, pp. 108-16
Girdhari Lal : *A Critical Study of the Constitution of India* (1954).
Gledhill, Alan : The Republic of India
Gupta, P. D. : The Welfare State.
Indian Institute of Public Administration : The Organisation of the Government of India (1958).
Jennings, Sir Ivor : Some Characteristics of the Indian Constitution.
Iyer, Venkatsaubramania K. V. : Amendments to the Constitution (A..I. R. 1955, Journal, pp. 31-35).
Jha, Chetakar : Indian Government and Politics (1960).
Joshi, G. N. : The Constitution of India.
Mahajan, Vidya Dhar : The Constitution of India, Eastern Book Co., Delhi.
Pylee, M. V. : India's Constitution at Work.
Raghavachariar, N. R. The Constitution of India.
Rau, K. V. : Parliamentary Democracy of India (1961).
Rau, B. N. : India's Constitution in the Making (1960)
Setalvad, M. C. : The Common Law in India (1960).
Sen, D. K. : A Comparative Study of the Indian Constitution (1960).
Shukla. V. N. : The Constitution of India, Eastern Book Company, Delhi and Lucknow.
Sharma, M. P. : The Government of the Indian Republic (1955).
Srinivasan, N. : Democratic Government in India.
Varma, V. P. : Towards Monistic Federalism in India (Indian Journal of Political Science, 1961. pp. 35-42).

मूल अधिकार और निदेशक तत्त्व

(FUNDAMENTAL RIGHTS AND DIRECTIVE PRINCIPLES)

मूल अधिकार (Fundamental Rights)—भारतवर्ष के नये सविधान की एक विशेषता यह है कि इसमें 'मौलिक अधिकारो' (Fundamental Rights) की व्याख्या है। नेहरू समिति ने इनको संविधान में रखने की सिफारिश की थी और जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सत्ता सँभाली तो इस कार्य को करना उसके सम्मान का प्रश्न हो गया। अमेरिका और आयरलैंड के संविधानों में मौलिक अधिकारों का उल्लेख है। जर्मनी के वाईमर (Weimar) संविधान में भी ये थे। परिणामतः मौलिक अधिकारों का भारतीय सविधान मे होना कोई नवीन बात नही है।

मूल अधिकारों की विशेषताएँ (Characteristics of Fundamental Rights)—भारतीयों को प्राप्त मूल अधिकारो की कुछ विशेषताएँ हैं। ये अधिकार पूर्ण नहीं है परन्तु उनके उपयोग पर कई प्रतिबन्ध रखे गए है। "तर्कसंगत प्रतिबन्ध" ("reasonable restriction) पदावलि का अनेक स्थानो पर प्रयोग किया गया है। यह न्यायालयों का कर्त्तव्य है कि वे निर्णय करें कि कोई प्रतिबन्ध तर्कसंगत है या नही। देश की परिस्थितियों के अनुसार उन पर प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है अथवा उन्हे कुछ समय के लिए अनुलम्बित किया जा सकता है। ये मूल अधिकार विधानमण्डल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका की शक्तियों पर प्रतिबन्ध हैं। सब कानून जो मूल अधिकारों के विरुद्ध हैं, अवैध (*ultra vires*) है। भारतीय न्यायालय संविधान द्वारा दिए गए मूल अधिकारों का रक्षण करने में सचेत है और कई कानूनों को अवैध घोषित कर चुके हैं।

मूल अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिए सुरक्षित है, न कि अनागरिको के लिए।

कुछ मौलिक अधिकार केवल भारत के नागरिकों को ही दिए गए हैं। यथा धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान के आधार पर किसी भेद-भाव का न होना, सार्वजनिक सेवाओ में समान अवसर की प्राप्ति, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, साहचर्य की स्वतन्त्रता, भ्रमण की स्वतन्त्रता, संगठन की स्वतन्त्रता, किसी स्थान पर बसने की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति को प्राप्त करने और बेचने की स्वतन्त्रता, अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकारो की स्वतन्त्रता तथा सम्पत्ति की रक्षा इत्यादि। मौलिक अधिकारों की शेष व्यवस्थाएँ नागरिकों तथा विदेशियों के लिए एक समान हैं। ये हैं—न्याय की रक्षा, जीवन की रक्षा तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता इत्यादि।

इसके अतिरिक्त इन अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं अथवा इन्हें

अनुलम्बित किया जा सकता है। अनुच्छेद ३३ यह व्यवस्था करता है कि संसद् कानून बना कर निश्चित कर सकती है कि सशस्त्र सेनाओं अथवा शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने के कर्त्तव्य को निभाने वाली शक्ति के सम्बन्ध मे इन मूल अधिकारों पर किस सीमा तक प्रतिबन्ध लगाए जाएँ अथवा समाप्त कर दिए जाएँ ताकि वे अपने कर्त्तव्य का उचित रूप से पालन कर सकें और उनमे अनुशासन स्थिर रखा जा सके। अनुच्छेद ३४ के अनुसार संसद् कानून द्वारा उस व्यक्ति को किसी कार्य के दायित्व से मुक्त कर सकती है जो संघ अथवा किसी प्रदेश की सेवा में हो या सेवा मे न हो और जिसने उस क्षेत्र में शान्ति-व्यवस्था को स्थिर रखने मे वह कार्य किया हो जहाँ कि सैनिक कानून (मार्शल ला) लागू हो अथवा सैनिक कानून के अन्तर्गत किसी को दिए गए किसी दण्डादेश अथवा दण्ड, या जब्ती के आदेश या अन्य कार्य को मान्य कर सकती है (can validate)। अनुच्छेद ३५८ के अनुसार, जब आपत्ति (emergency) की घोषणा लागू हो तब राष्ट्रपति मूल अधिकारों के अनुलम्बन की घोषणा कर सकता है। यह स्मरणीय है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख (Writ of Habeas Corpus) के अतिरिक्त और कोई मूल अधिकार अनुलम्बित नही किया जा सकता; और वह भी केवल विद्रोह और बाह्य आक्रमण के अवसर पर किया जा सकता है।

मौलिक अधिकार विधानमण्डल, कार्यमण्डल तथा कभी-कभी न्यायमण्डल के अधिकारो पर भी प्रतिबन्ध का कार्य करते है। डा० जेनिंग्ज (Dr. Jennings) के मतानुसार भारत का संविधान मौलिक अधिकारों को नही बनाता अपितु मौलिक स्वतन्त्रताओ का संरक्षण करता है।

महान्यायाध्यक्ष मुकर्जी (Chief Justice B. K. Mukherjee) के मतानुसार, "सम्पूर्ण तथा अबाध्य स्वतन्त्रता के नाम की कोई वस्तु हो ही नही सकती क्योंकि इनसे अव्यवस्था और अराजकता फैल जाएगी। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जैकबसन और मैसाचुसैट्स के अभियोग (Jacobson *Vs.* Massachusetts) में पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति तथा उपभोग के विषय मे यह निर्णय किया था कि पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति तथा उपभोग, राष्ट्र की सुरक्षा, शान्ति, स्वास्थ्य, सार्वजनिक व्यवस्था तथा सदाचार की आवश्यकताओं को देखते हुए देश का शासन सँभालने वाली शक्ति के निर्णय के अनुसार होगे। प्रश्न उठता है व्यक्ति और समाज के हितों का जब परस्पर टकराव होता है और इनके हितों मे सुलझाव करना पडता है, किन्ही मामलों में सामज के हितों की रक्षा के लिए व्यक्तियो के अधिकारो के स्वच्छन्द उपभोग पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ता है। दूसरी ओर समाज के हित के लिए जो सामाजिक नियन्त्रण लगाया गया है उस पर रोक लगानी पड़ेगी जिससे इसका व्यक्तिगत अधिकार और स्वतन्त्रता के विरुद्ध दुरुपयोग न हो सके।

साधारणत: प्रत्येक व्यक्ति को अपना निजी जीवन अपनी इच्छानुसार चलाने की, इच्छानुसार अभिव्यक्त करने, भ्रमण करने, कोई भी व्यवसाय करने की और सारे कार्य जो भी वह कानूनी रूप से कर सकता है, बिना किसी अन्य व्यक्ति के हस्त-

क्षेप, के पूर्ण स्वतन्त्रता से कर सकता है। यदि कोई उपद्रवी व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता में बाधा डाले, और यदि उसकी सम्पत्ति अथवा वस्तुओं को चोर-डाकू छीन ले जाएँ तो स्वतन्त्रता का क्या मूल्य रह जाएगा। इसलिए समाज को अपनी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार अपने पास रखना होता है जिससे वह स्वतन्त्रता की रक्षा कर सके, और कानून तोड़ने वालों को पकड़ सके, उनकी तलाशी ले सके, कैद कर सके और दण्ड दे सके। यदि इन अधिकारों का उचित रूप से प्रयोग हो तो ये स्वयं ही स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं। किन्तु इनका वास्तव में दुरुपयोग भी किया जा सकता है। पुलिस बिना कारण बताए किसी भी व्यक्ति को जेल में डाल दे, उसकी सम्पत्ति की साधारण-सी बात पर तलाशी ले डाले, झूठे अभियोग में फँसा दे, कानून से बाहर झूठे अभियोगों में डालकर दण्ड दे सकती है। संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों की घोषणा का आशय है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक नियन्त्रण में संतुलन स्थापित रहे। (Gopalan *Vs.* State of Madras AIR 1950 Supreme Court 27)

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बोस (Justice Bose) ने रामसिंह और दिल्ली राज्य के मुकदमे में यह विचार प्रकट किया कि "मुझे संसद् और कार्यमण्डल के इस अधिकार पर कि वे व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगायें, सन्देह नहीं है। मैं पूर्ण सहमत हूँ कि संविधान द्वारा स्थापित मौलिक अधिकार सम्पूर्ण नहीं हैं। वे सीमित हैं। कहीं-कहीं तो स्वयं संविधान में सीमा नियुक्त की है। अन्य स्थानों पर संसद् को प्रतिबन्ध लगाने के अधिकार दिये गए हैं और इस प्रकार कार्यमण्डल को इन्हें क्रियात्मक रूप देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। किन्तु प्रत्येक अवस्था में अधिकार ही 'मौलिक' रहते हैं 'प्रतिबन्ध' नहीं और इस न्यायालय का तथा देश के अन्य न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे इन अधिकारों की जागरूकता से रक्षा करें। यह हमारा कर्तव्य और विशेषाधिकार है कि 'अधिकार' जिन्हें मौलिक होना चाहिए मौलिक ही रहें और हम इसका ध्यान रखें कि संसद् और कार्यमण्डल दोनों ही किन्हीं विशेष स्वतन्त्रताओं पर प्रतिबन्ध लगाते समय, संविधान द्वारा निर्धारित सीमा का उल्लंघन न करें। कार्यमण्डल के विषय में इस बात का ध्यान रखें कि यह संसद् द्वारा दिए गए अधिकारों से आगे न बढ़े। हम यहाँ इसलिए पदस्थ हैं कि हम भारतवर्ष की जनता की स्वतन्त्रता की अक्षुण्णता की रक्षा करें, जो अब उन्हें प्राप्त हुई है और जिसे प्राप्त करने की उनके हृदय में युगों से लालसा थी, इसका हम उन्हें अखण्ड विश्वास दिलाते हैं। यह हमारा कर्तव्य है कि वे स्वतन्त्रताएँ संसद् अथवा कार्यमंडल के किसी भी कार्य द्वारा छिन्न-भिन्न अथवा नष्ट न हो जाएँ।"

पातंजलि शास्त्री के मतानुसार, "संविधान में सबसे पहले मौलिक अधिकारों की घोषणा होना और इन अधिकारों में संसद् के हस्तक्षेप पर प्रतिबन्ध लगाना, तथा न्यायमण्डल द्वारा पुनर्विचार की संवैधानिक व्यवस्था करके हस्तक्षेप न होने देने की व्यवस्था करना, मेरे विचार से एक स्पष्ट बलपूर्ण निदेशक है कि ये अधिकार सरकार के साधारण कानूनों से सर्वोपरि हैं।"

अवैध करार दिए गए कानून (Laws made *ultra vires*)—संविधान के १२ से ३५ तक अनुच्छेद मूल अधिकारो के विषय मे हैं। अनुच्छेद १३ यह व्यवस्था करता है कि भारतीय प्रदेश मे २६ जनवरी, १९५० को लागू वे सब कानून अवैध हो जाएँगे जो भाग ३ की व्यवस्थाओ से मेल नही खाते। भारत सरकार भारत की संसद् तथा राज्य विधान-मंडल कोई ऐसा कानून नही बनाएँगे जो मूल अधिकारों को कम करें अथवा समाप्त करें। अनुच्छेद १३ के प्रतिकूल बनाया कानून अपनी प्रतिकूलता की सीमा तक अवैध होगा। भारतीय न्यायालय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों की रक्षा अत्यधिक सजगता से कर रहे है। उन्होंने अनेक कानूनों को अवैध घोषित किया है। सबसे प्रमुख Gopalan V. State of Madras अभियोग था। इस अभियोग में उच्चतम न्यायालय ने निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act), १९५० की धारा १४ को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया क्योंकि वह अनुच्छेद २२ द्वारा दिए गए मूल अधिकार को समाप्त करती थी।

State of Madras V. Row के अभियोग मे मुख्य न्यायाधीश पातञ्जलि शास्त्री ने यह कहा कि "हम यह निर्देश करना उचित समझते है, जिसकी प्रायः उपेक्षा कर दी जाती है कि हमारे संविधान में कानूनों को संविधान के अनुरूप रखने के लिए न्यायिक पुर्नविचार (Judicial review) का स्पष्ट उपबन्ध है। यह बात अमेरिका के विपरीत है जहाँ सुप्रीम कोर्ट ने विधायी अधिनियमों (legislative acts) के पुर्नविचार की विस्तृत शक्तियाँ पाँचवें और चौदहवें संशोधनों के 'उचित प्रक्रिया' (due process) वाले खण्ड के अधीन प्राप्त कर ली है। यदि तब इस देश के न्यायालयों को ऐसे महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य को पूर्ण करना पड़ता है, तो वह धर्म-युद्ध करने वाले की भावना से विधायी प्राधिकार (legislative authority) पर हमला करने की इच्छा से नहीं है, बल्कि वह संविधान द्वारा सौंपे गए कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है। यह मूल अधिकारों के बारे में विशेष रूप से सत्य है जिनके लिए यह न्यायालय को चेतन रहने के लिए एक सन्तरी का काम दिया गया है। यद्यपि न्यायालय आमतौर से न्यायिक निर्णयों को अधिक महत्त्व देता है तथापि वह किसी संदिग्ध कानून (impugned statute) की वैधता को अन्तिम रूप से निश्चित करने के अपने कर्तव्य को नही त्याग सकता। हमने यह स्पष्ट संकेत इसलिए करने का साहस किया है क्योंकि कुछ क्षेत्रों में यह सुझाव दिया गया है कि नई प्रणाली में देश में न्यायालय विधानमंडलों से झगड़ने पर तुले हुए हैं।"

(१) समानता (Equality before Law)—अनुच्छेद १४ यह व्यवस्था करता है कि भारत राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को कानून के सामने समानता या कानून के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित नही किया जायेगा। यह धारा समस्त व्यक्तियों को, चाहे वे नागरिक है या नही, कानून के सामने समानता की गारन्टी देती हैं। नागरिकों के एक वर्ग तथा दूसरे वर्ग या नागरिकों तथा विदेशियों मे गलत पक्षपात के लिए स्थान नही है। किन्तु इसका यह भी अर्थ नही है कि उचित विभेद नहीं किया जा

सकता। सरकार निश्चित रूप से अमीर और गरीब में विभेद करके अमीर पर कर लगा सकती है और गरीब को कर-मुक्त कर सकती है।

न्यायाधीश दीक्षित के अनुसार कानून के सामने समानता का अर्थ मनुष्यों की पूर्ण समानता नहीं है, लेकिन स्वयं-सिद्ध मान लिया गया है कि किसी व्यक्ति को जन्म या जातिगत, विश्वास (धर्म) के आधार पर कोई विशेष अधिकार प्राप्त नही होंगे। समान संरक्षण का तात्पर्य यह है कि स्वयं कानूनों के प्रशासन मे मनमाना भेद-भाव (arbitrary discrimination) नही होना चाहिए।

राज्य मे विशेष वर्गों—सैनिकों, डाक्टरों या वकीलों—के लिए विशेष कानूनो की व्यवस्था करने मात्र से कानून के सामने समानता के सिद्धान्त का हनन नहीं होता। ऐसे कानून सामान्य जनता पर लागू नहीं होते किन्तु केवल विशेष वर्ग के लोगों पर ही लागू होते है। लेकिन इन कानूनों को लागू करने मे तथा सामान्य कानून को लागू करने में मनुष्य और मनुष्य के बीच मे भेद-भाव नही किया जाता। कानून के सामने समानता का सिद्धान्त राज्य द्वारा अधिनियमित (enacted) किसी कानून की वैधता के बारे में झगड़े का विषय नहीं बनता। वास्तव में यह प्रश्न तो उसके लागू करने के समय उपस्थित होता है।

कानूनों के समान संरक्षण की व्यवस्था करने वाले अनुच्छेद १४ में भेद-भाव किसी व्यक्ति या वर्ग के विरुद्ध या किसी व्यक्ति या वर्ग के प्रति पक्षपात करने के प्रतिषेध (prohibition) का समावेश है। कानूनों का समान संरक्षण कानूनों के समान संरक्षण की प्रतिज्ञा है। इसका तात्पर्य है कि प्रदत्त विशेष अधिकारों (privileges conferred) तथा आरोपित दायित्वों (liabilities imposed) की समान परिस्थितियों और दशाओं में कानून को तोड़ने वाले व्यक्तियों के साथ समान रूप से व्यवहार किया जायेगा। यह किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग से भेद-भाव करने वाले तथा विरोधी कानून (hostile legislation) बनाने से रोकता है।

कानूनों के समान संरक्षण की गारन्टी वर्ग-कानून (class legislation) को रोकती है लेकिन वर्गीकरण को नहीं रोकती जो विभेद (distinction) के तर्कसंगत कारणों (reasonable basis) पर आधारित हो। इसकी यही माँग है कि ऐसे कानून के अन्तर्गत आने वाले सब व्यक्तियों के साथ समान प्रदत्त विशेषाधिकारो तथा आरोपित दायित्वों की समान परिस्थितियो तथा अवस्थाओं में एकसा व्यवहार किया जायेगा। गणितीय बारीकी तथा पूर्ण समानता की आवश्यकता नही है और जो व्यक्ति वर्गीकरण को चुनौती देता है, उसे यह सिद्ध करना चाहिए कि यह न्यायोचित कारणों पर आधारित नही है। वर्गीकरण किसी सिद्धान्त पर होना चाहिए जिसका वांछित उद्देश्य मे कुछ न कुछ सम्बन्ध हो।

यद्यपि 'कानून के सामने समानता' (equality before law) और 'कानूनों का समान संरक्षण' (equal protection of the laws) पदावलियों का उद्देश्य सब के लिए कानूनी समानता की स्थिति (status) प्राप्त करना है, तथापि दोनों के अर्थ

में पर्याप्त अन्तर है। पहली पदावलि एक नकारात्मक विचार है जिसमें किसी व्यक्ति के पक्ष में विशेष अधिकारों का अभाव ध्वनित है, जबकि पिछला पद अधिक विधेयात्मक (positive) विचार है जिसमें समान परिस्थितियों में व्यवहार की समानता ध्वनित है। दोनों में मुख्य बात समान न्याय है। कानून के सामने समानता का अर्थ पूर्ण समानता (absolute equality) नही है, जो कि भौतिक रूप से असम्भव है। इसका अर्थ जन्म, जाति तथा किसी अन्य कारण से प्राप्त विशेषाधिकार को अस्वीकार करना है तथा समस्त व्यक्तियो तथा वर्गों के द्वारा देश के कानून का समान रूप से पालन करना है।

(२) भेद-भाव न हो (No Discrimination)—अनुच्छेद १५ में यह व्यवस्था है कि राज्य धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेद-भाव नही करेगा। केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी के आधार पर किसी नागरिक पर दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, आमोद-प्रमोद के स्थानों, कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों, तथा अन्य सार्वजनिक समागम के स्थानों के प्रयोग पर, जिनको पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से राज्य के धन से निर्मित किया गया हो अथवा सार्वजनिक प्रयोग के लिए सौंपा गया हो, कोई निर्योग्यता (disability), दायित्व (liability), प्रतिबन्ध तथा शर्त लागू नहीं की जा सकती। किन्तु राज्य महिलाओं तथा बच्चों के हित के लिए कोई भी विशेष प्रबन्ध कर सकता है अथवा पिछड़े नागरिकों को ऊँचा उठाने के लिए और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के सामाजिक तथा शैक्षणिक विकास के लिए कोई भी पग उठा सकता है। किसी होटल का प्रबन्ध अनुच्छेद १५ के अनुसार दण्ड का भागी होगा यदि वह रंग भेद के आधार पर किसी नागरिक का होटल में प्रवेश निषिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त, यदि कोई तालाब, सड़क अथवा स्नान घाट किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो तो जनता को उनके प्रयोग की आज्ञा देने से इनकार किया जा सकता है। इसी प्रकार वह कानून अवैध नही होगा जिसके द्वारा राज्यकोष से निर्मित किसी सरोवर का प्रयोग कोढ़ियों के लिए निषिद्ध किया जाय।

(३) अवसर की समानता (Equality of Opportunity)—अनुच्छेद १६ के अनुसार प्रत्येक नागरिक को राज्य में नौकरी करने, आजीविका कमाने तथा पद ग्रहण करने का समान अधिकार प्राप्त है। किसी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, वंश, जन्म-स्थान अथवा निवास स्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर राज्य पद के लिए अपात्र (ineligible) नही ठहराया जा सकता। परन्तु सरकार ऐसी पिछड़ी जातियों के लिए स्थान सुरक्षित कर सकती है जिनका, राज्य की सम्मति में, नौकरी मे पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही है। धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग अथवा जन्म-स्थान के कारण किसी भी नागरिक के साथ भेद-भाव के वर्ताव का निषेध किया गया है। राज्याधीन नौकरियों में सब के लिए समान अवसर का विश्वास दिलाया गया है। किन्तु किसी 'क' भाग के राज्य अथवा उसके अन्तर्गत किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन पदों के सम्बन्ध में संसद् उस राज्य में नियुक्ति के लिए आवास सम्बन्धी

आवश्यकताएँ पूरा करने का कानून पारित कर सकती हैं। राज्य की नौकरियों में कुछ स्थान ऐसे अनुन्नत वर्गों के लिए रक्षित करने का अधिकार दिया गया गया है जिनका राज्य की सम्मति में नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। किन्तु किसी कानून के द्वारा यह व्यवस्था की जा सकती है कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के पद अथवा उसकी प्रबन्ध परिषद् की सदस्यता उस धर्म या सम्प्रदाय के सदस्यों के लिए सुरक्षित रहेगी। अनुच्छेद ३३५ यह व्यवस्था करता है कि अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित कबीलों के सदस्यों के अधिकारों पर विचार किया जायेगा, किन्तु संघ अथवा राज्य से सम्बन्धित पदों पर नियुक्त करते समय प्रशासकीय दक्षता को स्थिर रखने का ध्यान रखा जाएगा। अनुच्छेद ३३६ यह व्यवस्था करता है कि संविधान आरम्भ होने के दो वर्ष की अवधि में केन्द्रीय रेलवे, कस्टम, डाक तथा तार-विभागों में ऐंग्लो-इण्डियन जाति के सदस्यों की नियुक्तियाँ उसी आधार पर की जाएँगी जैसी कि १५ अगस्त, १९४७ के ठीक पहले की जाती थी। संविधान आरम्भ होने के दस वर्ष पश्चात् सब प्रकार का रक्षित करने का अधिकार समाप्त हो जायेगा। Venkataraman V. State of Madras के अभियोग में, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि मद्रास सरकार का साम्प्रदायिक राजकीय आदेश (Communal G. O.) शून्य तथा अवैध है क्योंकि उस में हरिजनों तथा पिछड़े हुए हिन्दुओं के लिए स्थान सुरक्षित करने के अतिरिक्त, जिसक स्वीकृति अनुच्छेद १६ के खण्ड (४) में दी गई है, मुस्लिमों, ईसाइयों, अब्राह्मण हिन्दू तथा ब्राह्मण आदि जातियों के लिए भी स्थान निश्चित किए गए थे जो कि संविधान के अनुच्छेद १६ के प्रतिकूल है। (AIR 1951 Supreme Court 229)

(४) अस्पृश्यता का अन्त (Abolition of Untouchability)—अनुच्छेद १७ यह व्यवस्था करता है कि अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और किसी भी रूप में इस का आचरण निषिद्ध है। अस्पृश्यता के कारण किसी को किसी भी कार्य के लिए अयोग्य या असमर्थ ठहराकर आचरण करना विधि द्वारा दण्डनीय अपराध होगा। महात्मा गाँधी जो महान् सामाजिक क्रान्ति करना चाहते थे उसपर संविधान के इस अनुच्छेद ने कानूनी छाप लगा दी है।

अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम [Untouchability (Offences) Act] की धारा ३ यह व्यवस्था करती है कि यदि अस्पृश्यता के आधार पर कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को सार्वजनिक पूजा के ऐसे स्थान में प्रवेश करने से रोकता है जो उस व्यक्ति के धर्म को मानने वाले या उसी धार्मिक सम्प्रदाय या उसके किसी भाग से सम्बन्ध रखने वाले किसी व्यक्ति के लिए खुला हो या पूजा करने या प्रार्थना करने या सार्वजनिक पूजा के स्थान पर किसी धार्मिक कृत्य को पूरा करने के लिए या किसी घाट, पवित्र कुएँ या तालाब, जलधारा या झरने में नहाने या जल को उसी विधि से प्रयोग करने से रोकता हो, जिस प्रकार से या जिस विधि से उसी धर्म को मानने वाले या उसी धार्मिक नाम या उसके किसी भाग से सम्बन्ध रखने वाले के किसी अन्य व्यक्ति को आज्ञा हो, तो उसे छः मास की कैद या ५०० रुपये तक जुर्माना या दोनों का दण्ड दिया जा सकेगा।

धारा ८ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को किसी दुकान, सार्वजनिक जलपान-गृह, होटल या सार्वजनिक आमोद-प्रमोद के स्थान पर जाने से, या सार्वजनिक जलपान-गृह, होटल, धर्मशाला, सराय या मुसाफिरखाने में रखे हुए बर्तनों और वस्तुओं का प्रयोग करने से रोकता है जो कि साधारण जनता या किसी धर्म को मानने वाले, उसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले लोगों या उनके किसी भाग के प्रयोग करने के लिए रखी गई हो या किसी धन्धे या काम, व्यापार, वाणिज्य को करने से या किसी नदी धारा (stream), झरने, कुएँ, तालाब, स्नान-घाट श्मशान भूमि, सड़क, रास्ते आदि के प्रयोग करने या पहुँचने में बाधा डाले जबकि जनता के दूसरे लोग या उसी धर्म को मानने वाले अन्य लोगों को उसके प्रयोग या उस तक पहुँचने का अधिकार हो, या पूर्णतः या अंशतः राज्य कोष से स्थापित या सामान्य जनता के उपयोग के लिए समर्पित किसी खैराती स्थान का प्रयोग करने या वहाँ पहुँचने या किसी खैराती ट्रस्ट के अधीन प्राप्त होने वाले लाभों का उपयोग करने से रोके, जिसको सामान्य जनता या उसी धर्म को मानने वाले लोगों के लिए स्थापित किया जाय, या सार्वजनिक यातायात के साधनों का प्रयोग करने से रोके या किसी क्षेत्र में रहने के मकान को बनाने, प्राप्त करने या कब्ज़ा करने से रोके, या किसी धर्मशाला, सराय का या मुसाफिरखाने का प्रयोग करने से रोके, जो सामान्य जनता के लिए खुला हो या किसी धार्मिक या सामाजिक कृत्य को पूर्ण करने या गहने और बढ़िया कपड़े पहनने से रोके तो उसे ६ मास की कैद या ५०० रु० तक जुर्माने या दोनों का दण्ड दिया जा सकता है।

यही दण्ड धारा ५ में उस व्यक्ति के लिए रखा गया है जो किसी व्यक्ति को अस्पृश्यता के आधार पर किसी अस्पताल, डिसपैन्सरी, शिक्षा-संस्था या सम्बद्ध होस्टल में प्रवेश करने से रोके या उपर्युक्त संस्थाओं में से किसी में से किसी में प्रविष्ट व्यक्ति के साथ व्यवहार करने में भेद-भाव से काम ले।

धारा ६ के अनुसार यदि कोई व्यक्ति छूतछात के आधार पर किसी व्यक्ति को उसी स्थान और समय पर तथा उन्हीं शर्तों पर सामान बेचने या काम करने से इनकार करे, जिन पर सामान साधारण लोगों को बेचा जाता है या उनका काम किया जाता है, तो उसे छः मास की कैद या ५०० रु० तक जुर्माने का या दोनों का दण्ड दिया जा सकता है।

यही दण्ड धारा ७ के द्वारा उस व्यक्ति के लिए नियुक्त किया गया है जो किसी व्यक्ति को उन अधिकारों का उपयोग करने से रोकता है जो उसे छूतछात के मिट जाने के कारण मिले हैं, या किसी ऐसे अधिकार के उपयोग करने में बाधा डालता है, पीड़ा पहुँचाता है, तंग करता है (annoys) या रुकावट डालता, या डलवाता है या ऐसे अधिकार का प्रयोग करने पर पीड़ा पहुँचाता है, तंग करता है या बॉयकाट करता या मौखिक या लिखित शब्दों या संकेतों या प्रकट प्रदर्शन या अन्य किसी प्रकार से छूतछात को बढ़ावा देने के लिए किसी व्यक्ति या श्रेणी या समान्य जनता को उत्तेजित करता है।

धारा ८ के अनुसार यदि धारा ६ के अनुसार दण्डित अपराधी के पास कानून के आधीन उस व्यापार, वाणिज्य, काम या नौकरी का लाइसेन्स हो जिसके सम्बन्ध में अपराध किया गया है तो न्यायालय यह निर्देश दे सकता है कि एक निश्चित समय के लिए उसका लाइसेन्स कैन्सिल या निलम्बित (suspended) रहेगा।

धारा ९ के अनुसार यदि किसी सार्वजनिक पूजा स्थान का 'ट्रस्टी' या मैनेजर जिसे सरकार की ओर से भूमि या आर्थिक सहायता मिलती हो, इस अधिनियम के अधीन दण्डित हो जाय और अपील या पुनर्विचार में उसे अपराध-मुक्त नहीं किया जाता तो सरकार अनुदान की सम्पूर्ण राशि या उसके किसी भाग को निलम्बित करने का आदेश दे सकती है।

धारा १० विहित करती है कि किसी अपराध को करने के लिए उकसाने (abetment) का दण्ड भी वही है जो स्वयं अपराध करने का। धारा ११ के अन्तर्गत एक ही अपराध को बार-बार करने पर अधिक दण्ड की व्यवस्था की गई है।

धारा १४ के अनुसार यदि अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कम्पनी हो तो उन व्यक्तियों में से प्रत्येक अपराधी समझा जाएगा और उस पर मुकद्दमा चलाया जाएगा और उसे दण्ड दिया जाएगा जो कि अपराध किये जाने के समय उसका इंचार्ज था तथा कम्पनी के प्रति कम्पनी के संचालक के लिए जिम्मेदार था। किन्तु उस व्यक्ति को दण्ड नहीं दिया जा सकेगा जो यह सिद्ध कर दे कि अपराध उसके ज्ञान (knowledge) के बिना किया गया या उसने अपराध को रोकने के लिए अपने पूर्ण प्रभाव का प्रयोग किया। जहाँ कहीं इस अधिनियम के अधीन अपराध किसी संचालक (Director) या मैनेजर, सचिव (Secretary) या किसी अन्य अधिकारी की अनुमति से किया गया हो, वहाँ उसे भी अपराधी समझा जायेगा और उसके विरुद्ध भी मुकद्दमा चलाया जा सकेगा और दण्डित भी किया जा सकेगा।

धारा १५ के अनुसार इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध संज्ञेय (cognizable) है और ऐसे प्रत्येक अपराध में, न्यायालय की स्वीकृति से, पक्षों में समझौता हो सकता है। धारा १६ के अनुसार इस अधिनियम के उपबन्ध, किसी अन्य लागू कानून या रीति-रिवाज या किसी न्यायालय का प्राधिकरण (authority) के आदेश या डिक्री या ऐसे ही किसी कानून के अधीन प्रभावी होने वाले संलेख (instrument) में कोई बात इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत होने के बावजूद लागू होंगे।

(५) उपाधियों की समाप्ति (No Titles)—अनुच्छेद १८ के अनुसार राज्य सेना और विद्या की उपाधियों के अतिरिक्त अन्य उपाधियाँ नहीं देगा। कोई ऐसा व्यक्ति भी जो भारत का नागरिक नहीं है, परन्तु भारत में राज्याधीन नौकरी करता है राष्ट्रपति की अनुमति के बिना विदेशी सरकार की नौकरी या पद स्वीकार नहीं कर सकता। कोई भारतीय नागरिक विदेशी राज्यों की उपाधियाँ स्वीकार नहीं करेगा। इस व्यवस्था का उद्देश्य नागरिकों की समानता को दृढ़ करना है। समाज के सामूहिक

हित में जनता में बनावटी ऊँचे-नीचे पदो को हटाना चाहिए। अमेरिका के संविधान मे इसी प्रकार की व्यवस्था इस प्रकार है—"संयुक्त राज्य कुलीनता (nobility) की उपाधि नही देगा; और उसके अधीन लाभ के पद पर कार्य करने वाला कोई व्यक्ति कांग्रेस की स्वीकृति के बिना किसी राजा, राजकुमार अथवा विदेशी राज्य से कोई भेंट, राशि, पद अथवा उपाधि प्राप्त नही करेगा।" राज्य ऐसी कार्यवाहियाँ नही करेगा जो जनता में कृत्रिम भेद उत्पन्न करें।

(६) **भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता** (Freedom of Speech and Expression)—संविधान में उन्नीसवाँ अनुच्छेद सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसके अनुसार सभी नागरिको को भाषण देने और विचार प्रकट करने, बिना हथियारों के शान्ति से एकत्रित होने, सस्था या संघ बनाने, भारत की सीमा में सर्वत्र बे-रोक-टोक घूमने, भारत राज्य क्षेत्र के किसी भाग मे निवास करने और बस जाने, सम्पत्ति के क्रय-विक्रय करने तथा रखने तथा, कोई व्यवसाय अथवा धन्धा अपनाने का अधिकार होगा। ये अधिकार बिना प्रतिबन्ध नहीं है, इन पर कुछ प्रतिबन्ध हैं, विचार प्रकट करने तथा बोलने की स्वतन्त्रा का अधिकार उस कानून के अधिकार-क्षेत्र को कम नही करता जो (i) राज्य की सुरक्षा, (ii) विदेशी राष्ट्रों से मित्रता के सम्बन्ध, (iii) सार्वजनिक शान्ति, (iv) शिष्टता या नैतिकता, (v) न्यायालयों में अवमान (Contempt of Court), (vi) मानहानि, तथा (vii) अपराध करने के लिए भड़काने आदि पर उचित प्रतिबन्ध लगाता है। सार्वजनिक व्यवस्था के हित के लिए शान्ति-पूर्वक इकट्ठा होने पर रोक लगाई जा सकती है। सरकार नौकरी, व्यवसाय, धन्धा अथवा व्यापार करने वालों पर आवश्यक व्यावसायिक (professional) या शिल्पिक योग्यता की रोक लगा सकती है। स्वतन्त्रतापूर्वक भारत मे घूमने पर साधारण जनता तथा जनजातियों (Scheduled Tribes) के हित में रोक लगाई जा सकती है। इसी प्रकार भारत के किसी स्थान पर बसने, सम्पत्ति की खरीद और बेच अथवा रखने पर रोक लगाई जा सकती है। जहाँ तक सभा या यूनियनो को बनाने का अधिकार है, यह उस लागू कानून के क्षेत्र पर कोई असर नही डालता जो सार्वजनिक व्यवस्था तथा नैतिकता के हित मे उचित प्रतिबन्ध लगाए। यही बात इसी उद्देश्य के नए कानून पर भी लागू होती है।

चिन्तामणि विपरीत मध्य प्रदेश राज्य के अभियोग में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "विधानमण्डल द्वारा यह निश्चित करना कि उचित प्रतिबन्ध क्या है, अन्तिम या उपसंहार (conclusive) नही है। यह इस न्यायालय के निरीक्षण का विषय है। मौलिक अधिकारो के विषय में सर्वोच्च न्यायालय संविधान द्वारा प्रत्याभूत मौलिक अधिकारो की देखभाल तथा रक्षा करता है और अपने कर्त्तव्यों को पूरा करते समय उसे विधान-मण्डल द्वारा पास किये गये अधिनियम को अवैध घोषित करने की शक्ति है, यदि वह संविधान द्वारा प्रत्याभूत स्वतन्त्रताओ का हनन करता है।" एक प्रभावी जाँच (effective test) को निरूपित करना सम्भव नही है जिसके आधार पर कोई व्यक्ति किसी प्रतिबन्ध को न्यायोचित अथवा न्याय के औचित्य से शून्य बताने में

समर्थ हो सके। समस्त परिचारक (attendant) परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए। कोई भी प्रतिबन्ध के वास्तविक विषय, उसके लागू करने का ढंग अथवा उसको प्रयोग में लाने की विधि से पृथक् नहीं कर सकता। सर्वोच्च न्यायालय को पुनः दोहराते हुए "कथित तोड़े हुए (infringed) अधिकार के गुण, लगाए गए प्रतिबन्ध का अन्तर्हित उद्देश्य, उसके द्वारा रोके जाने वाली बुराइयों की सीमा तथा आवश्यकता, प्रतिबन्ध की विषमता (disproportion), उस समय की उपस्थित परिस्थितियों का समावेश न्यायिक निर्णय मे होना चाहिए।" हरेक दोष लगाए गए व्यवस्थापन (statute) को औचित्य की कसौटी पर जांचना पड़ेगा और सब पर लागू होने वाले स्वीकृत आदर्श अथवा औचित्य का सामान्य आदर्श निश्चित नहीं किया जा सकता।

उचित प्रतिबन्ध पद सूचित करता है कि किसी व्यक्ति पर किसी अधिकार का प्रयोग करने के विषय में लगाए गए प्रतिबन्ध मनमाने नही होने चाहिएँ या उससे अधिक नही होने चाहिएँ जितने जनता के हित में आवश्यक हैं। जो कानून मनमाने रूप से या अत्यधिक रूप से अधिकार का अतिक्रमण करता है (invades) वह औचित्य की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता और यदि वह प्रत्याभूत स्वतन्त्रता और धारा १६ द्वारा मान्य सामाजिक नियन्त्रण (social control) के बीच में उचित संतुलन स्थापित नहीं करता, तो उसमे औचित्य की कमी रहती है। वह कानून या आदेश न्यायोचित नही ठहराया जा सकता जो सामान्य रूप से प्राप्त वस्तुओं के व्यापार की व्यवस्था करने (regulating) के विषय में कार्यकारिणी को स्वेच्छाचारी तथा अनियन्त्रित शक्ति प्रदान करे। प्रतिबन्धों के औचित्य को निश्चित करने में व्यापार की प्रकृति (nature) तथा व्यापार में उपस्थित दशाओं का ध्यान रखना चाहिए। ये बातें प्रत्येक व्यापार मे बदलती रहती हैं और कोई स्थिर नियम नहीं बनाया जा सकता। प्रत्येक नागरिक का किसी कानूनी व्यापार या काम को करने का अधिकार उन उचित शर्तों (conditions) का विषय है जो देश का शासन चलाने वाला प्राधिकारी देश की सुरक्षा, स्वास्थ्य, शान्ति, व्यवस्था तथा समाज की नैतिकता के लिए आवश्यक समझे।

(७) कानूनी रक्षण (Protection of Law)—धारा २० के अनुसार, किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए तब तक दण्डित नही किया जा सकता जब तक कि उसने अपराध करने के समय किसी चालू कानून को न तोड़ा हो, और उसे उससे अधिक सज़ा नही दी जा सकती है जो उस अपराध के समय चालू कानून के अधीन दी जा सकती हो। किसी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिए एक बार ही मुकदमा चलाया जा सकता है और एक से अधिक बार दण्ड नहीं दिया जा सकता और न किसी अपराध में किसी अपराधी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए लाचार किया जाएगा। यह धारा बीती हुई बातों की जांच के लिए कानून बनाने (*Ex post facto* legislation) तथा उनको कार्यान्वित करने का निषेध करती है।

प्राण और दैहिक स्वाधीनता का संरक्षण (Right to Life and Liberty)—धारा २१ व्यवस्था करती है कि किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा शारीरिक

स्वाधीनता से कानून द्वारा स्थापित विधि को छोड़कर अन्य प्रकार से वंचित न किया जाएगा। इस धारा की विस्तृत व्यवस्था सर्वोच्च न्यायालय ने ए० के० गोपालन विपरीत मद्रास राज्य, के अभियोग मे की है। इस अभियोग में गोपालन ने सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख बन्दी प्रत्यक्षीकरण आवेदन (Habeas Corpus) इस आधार पर दिया कि सुरक्षा नजरबन्दी (Preventive Detention) अधिनियम १९५० अवैध और हानिकर (inoperative) है और इस कारण उस कानून के अधीन उसकी बन्दी कानून के विरुद्ध है। सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से निर्णय किया कि सुरक्षा नजरबन्दी अधिनियम कानून का वैध अंग है और इस कारण प्रार्थी के आवेदन को स्वीकृत नही किया जा सकता। किन्तु यह सर्वसम्मति से निश्चित किया गया कि इस अधिनियम का सैक्शन १४ अवैध और गैर-कानूनी था क्योंकि वह बन्दी के न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा न्यायालय से आवेदन करने के अधिकार को छीनता अथवा समाप्त करता था। जस्टिस 'दास' ने कहा—"अतः मुझे यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम का सैक्शन १४ उस सीमा तक धारा १३ (२) के अनुसार अवैध है जहाँ तक वह बन्दी को न्यायालय के सम्मुख अपनी बन्दी के कारणों को प्रकट करने से रोकता है और संविधान के भाग ३ के अनुरूप नहीं है।" यह भी स्थिर किया गया कि "कानून द्वारा निश्चित कार्य करने की रीति" (procedure established by law) का तात्पर्य "कानून की उचित विधि" (due process of law) नही है जैसा कि अमेरिका में है। पृथक् फौजदारी कानून के क्षेत्र में धारा २१ किसी उचित कार्य के विरुद्ध किसी संरक्षण की व्याख्या नही करती। वहाँ पर विधि प्रभुत्व (Legislative Supremacy) होता है और न्यायिक पुनर्विचार (Judicial review) के लिए स्थान नही होता। सर्वोच्च न्यायाधीश कानिया का कथन है कि "कानून द्वारा निश्चित कार्य करने की रीति" को स्वीकार करने से संविधान ने कानून को निश्चित करने के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका को पूर्ण अधिकार दिए थे।" परिणाम यह था कि गिरफ्तार, दण्ड तथा नजरबन्द करने के सम्बन्ध में कोई कानून कितना ही कठोर तथा निर्दय होता लेकिन भारत के न्यायालय जनता के लिए कुछ नही कर सकते थे। न्यायालय यह भी घोषित नही कर सकते थे कि किसी विषय से सम्बन्धित कोई विशेष कानून अच्छा था या बुरा। वे कानून के औचित्य तथा अनौचित्य के विषय में भी निर्णय नही कर सकते थे।

धारा २१ अमेरिका के संविधान की इसी प्रकार की "उचित विधि (due precess) उपवाक्य (clause) से अत्यधिक भिन्न है। जब कि अमेरिका का संविधान कानूनी व्यवहार तथा पृथक् सत्ता (procedural and substantive) की उचित विधि दोनों की ही प्राप्ति करता है, वहाँ धारा २१ केवल कानूनी व्यवहार की उचित विधि का ही प्रतिपादन करती है। एस० एन० मुखर्जी के अनुसार "संविधान निर्माता इस पक्ष के नहीं थे कि न्यायपालिका को कानून पर केवल इस आधार पर सन्देह करने का अधिकार नही होना चाहिए कि वह व्यवस्थापिका के क्षेत्र के बाहर है। प्रत्युत इस आधार पर भी कि कानून व्यक्ति के प्राण तथा दैहिक स्वाधीनता से सम्बन्धित मौलिक

अधिकारों का उल्लघंन करता है और उन्होंने व्यवस्थापिका की इच्छा के ऊपर न्यायपालिका सत्ता के निर्णय को रखने के स्थान पर इस मौलिक अधिकार को संसद् को सौंपा है।"

अमेरिका में, निर्विवादरूप से सुप्रीम कोर्ट को राज्य व्यवस्थापनों (State Statutes) की वैधता को निश्चित करने और कांग्रेस के अधिनियमों की संवैधानिकता को स्थापित करने का अधिकार प्राप्त है। इस स्थिति को अनेक संघर्षों के पश्चात् प्राप्त किया गया है। एक विद्वान् लेखक का मत है कि "सुप्रीमकोर्ट की कांग्रेस के अधिनियमों की संवैधानिकता को निश्चित करने की शक्ति गुम्बद (arch) का महत्त्वपूर्ण प्रस्तर (key-stone) है, जो कि हमारी व्यक्तिगत तथा राजनैतिक स्वाधीनता की संवैधानिक गारण्टियों का संरक्षण ही नहीं करता प्रत्युत हमारे सम्पूर्ण शासन तन्त्र का समर्थन करता है। इसको निकालते ही सम्पूर्ण ढांचा ताश के मकान की तरह गिर जाएगा। सम्भवतः यही कारण है कि सवा सौ वर्ष तक सैद्धान्तिक आलोचना (radical criticism) का भयकर तूफान सर्वोच्च न्यायालय (great tribunal) पर ऐसी गड़बड़ डालता रहा कि जिसकी तेजी के कारण अनेक अवसरो पर गणराज्य का अस्तित्व भी खतरे मे पड़ गया।"

(८) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (Personal Freedom)—धारा २२ के अनुसार कोई व्यक्ति जो बन्दी बनाया गया है, ऐसे बन्दी बनाए जाने के कारणों से जितना जल्दी हो सके उतनी जल्दी, अवगत कराए गए बिना हवालात में नही रखा जायेगा और न अपनी पसन्द के वकील से सलाह करने तथा बचाव कराने के अधिकार से वंचित रखा जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति जो बन्दी बनाया गया है और हवालात मे बन्द किया गया है हवालात के स्थान में मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़ कर ऐसे बन्दीकरण से २४ घंटे के समय में नजदीक-से-नजदीक मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाएगा, तथा ऐसा कोई व्यक्ति उक्त समय की अवधि से आगे दण्डाधिकारी (Magistrate) की आज्ञा के बिना हवालात मे बन्दी नहीं रखा जाएगा। इस धारा की उक्त व्यवस्थाएँ उस व्यक्ति पर लागू नही होंगी जो उस समय शत्रु विदेशी (alien) है अथवा जो नजरबन्दी के कानूनों के अधीन बन्दी बनाया गया हो। इसके अतिरिक्त नजरबन्द करने वाला कोई कानून किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक समय के लिए बन्दी बनाए रखने को प्राधिकृत (authorised) तब तक नही करेगा जब तक कि ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रह चुके हैं अथवा नियुक्त होने की योग्यता रखते हैं, मिलकर बने परामर्शदाता अधिकरण (Advisory Board) ने तीन महीने की उक्त समय की अवधि की समाप्ति के पहले रिपोर्ट नही की है कि ऐसे बन्दी बनाने के लिए उसकी राय में पर्याप्त कारण हैं। जब कोई व्यक्ति नजरबन्दी कानून के अधीन दिए गए किसी आदेश के अधीन बन्दी बनाया जाता है तब आदेश देने वाला प्राधिकारी शीघ्र ही उस व्यक्ति को जिन कारणों से यह आदेश दिया गया है, उनको बताएगा तथा उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन (representation) करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा। लेकिन

किसी कारण से आज्ञा देने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्य (facts) को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिनका प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी लोकहित के विरुद्ध समझता है। संसद् कानून द्वारा निश्चित कर सकेगी कि किन परिस्थितियों के अधीन और किस प्रकार अथवा प्रकारों के मामलों में किसी व्यक्ति की नजरबन्दी को कानूनी बनाने वाले कानून के अधीन तीन महीने से अधिक समय के लिए परामर्शदाता अधिकरण की राय प्राप्त किये बिना बन्दी रखा जा सकेगा। वह यह भी नियुक्त कर सकती है कि ऐसा व्यक्ति अधिक-से-अधिक कितने समय के लिए नजरबन्द किया जा सकेगा। संसद् उस विधि को भी निश्चित कर सकेगी जिसका पालन परामर्शदाता अधिकरण जाँच करते समय अनुसरण करेगा।

धारा २२ द्वारा नियुक्त नजरबन्दी (Preventive Detention) के विषय में कुछ सामान्य विचार रखे जा सकते है। सब से पहली वस्तु यह है कि नजरबन्दी केवल युद्ध अथवा सकटकाल मे ही प्रयोग मे नही लायी जा सकती, प्रत्युत शान्ति काल में भी इसका व्यवहार होता है। दूसरी बात यह है कि साधारण तौर से परामर्शदाता मण्डल (Advisory Board) के विचारो से अवगत हुए बिना किसी को नजरबन्द नहीं किया जाता। इस मण्डल का क्षेत्राधिकारी आवश्यक है। यदि कोई मामला परामर्शदाता मडल के पास भेजा गया हो और उसका विचार यह हो कि उसे तीन मास से अधिक समय के लिए बन्दी बनाने का कोई कारण नही है तो उस व्यक्ति को छोड़ना पड़ता है। भारतीय कानून इस विषय मे अंग्रेजी कानून से भिन्न है, वहाँ पर गृहमन्त्री के लिए बन्दी को मुक्त करना अनिवार्य नही चाहे परामर्शदाता मण्डल जैसी सिफारिश भी करे। राज्य के विरुद्ध अपराध अधिनियम सन् १६३६ (Offences against the State Act) के आधीन आयरिश कानून ने बिना मुकदमा चलाए बन्दी (detention) का विधान किया लेकिन कानून के आधीन जाँच आयोग (Commission of Enquiry) का अधिकार अनिवार्य था। प्रत्येक बन्दी अपने मामले की जाँच के लिए जाँच आयोग से प्रार्थना कर सकता था। ध्यान रखने योग्य एक अन्य बात यह है कि ससद् की शक्ति पर किसी ऐसे कानून को पास करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था जो नजरबन्दी के बहुत से मामलो मे परामर्शदाता मंडल को अनावश्यक समझता था। ऐसी घटना वास्तव मे नजरबन्दी अधिनियम सन् १६५० के अधीन घटित हुई। संसद् को किसी भी श्रेणी के अधिकतम काल को निश्चित करने का अधिकार दिया गया था, न्यायपालिका को सच्चाई की जाँच या नजरबन्द बनाने वाले अधिकारी द्वारा बताए गए बन्दी के कारणो की जाँच करने की शक्ति नहीं थी।

दण्ड देने वाली सज़ा (Punitive Detention) तथा नजरबन्दी (Preventive Detention) में अन्तर किया जा सकता है। दण्ड देने वाली सजा का उद्देश्य व्यक्ति को उस कार्य के लिए दण्ड देना है, जो कुछ उसने किया है। दूसरी ओर नजरबन्दी का उद्देश्य किसी व्यक्ति को केवल किसी विशेष प्रकार से किसी काम को करने से रोकना ही नही, प्रत्युत किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने से रोकना है। सर्वोच्च

न्यायालय के न्यायाधीशों के शब्दों मे, "किसी व्यक्ति को दण्ड देने वाली सजा के लिए उस समय बन्दी बनाया जाता है जबकि उस पर अपराध करने पर मुकदमा चलाया जा चुका हो और उसका अपराध किसी उचित न्यायालय में सिद्ध हो चुका हो ...लेकिन नजरबन्दी दंड देने वाली सजा न होकर अपराध का पूर्व विचार सम्बन्धी (precautionary) उपाय है। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को दण्ड देना नहीं है किन्तु अपराध करने से रोकना है। कोई अपराध सिद्ध नहीं किया जाता और न कोई चार्ज लगाया जाता है और सन्देह या उचित सम्भावना को ही औचित्य (justification) माना जाता है, आपराधिक दण्ड (criminal conviction) नही जो केवल कानूनी प्रमाण पर दिया जा सकता है।

(९) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Freedom against Exploitation)—धारा २३ के अनुसार, मनुष्यों की खरीद और बेच और बेट बेगार तथा इसी प्रकार का और कोई जबर्दस्ती लिया हुआ श्रम गैर-कानूनी करार दिया जाता है और इस व्यवस्था (provision) का कोई भी उल्लंघन कानूनन दण्डनीय अपराध होगा। इस धारा की किसी बात से, राज्य को लोकहित के लिए मजबूरन सेवा लागू करने में रुकावट न होगी। ऐसी सेवा लागू करने मे केवल धर्म, मूलवंश (race) जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर राज्य कोई अन्तर नहीं करेगा। इस विषय पर अमेरिका की संविधानीय व्यवस्था इस प्रकार है—"संयुक्त राज्यो मे दासता और मजबूरन नौकरी (involuntary servitude) सिवाय उसके कि जहां पर किसी व्यक्ति को कानूनन अपराधी ठहरा कर सजा दी गई हो, और किसी स्थान पर अन्य क्षेत्राधिकारों के अधीन रहते हुये; अस्तित्व नही होगा।"

धारा २४ के अनुसार चौदह वर्ष से कम आयु वाले किसी बालक को किसी कारखाने अथवा खान मे नौकर न रखा जाएगा और न किसी संकटमय नौकरी मे लगाया जाएगा।

(१०) धर्म-स्वतन्त्र्य का अधिकार (Freedom of Religion)—धारा २५ नियुक्त करती है कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता (Freedom of Conscience) तथा धर्म को आजादी से मानने, पालन करने, तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा। लेकिन इस धारा की कोई बात किसी ऐसे मौजूदा कानून को लागू करने के असर अथवा राज्य के लिए किसी ऐसे कानून के बनाने मे रुकावट न डालेगी जो धार्मिक आचरण से मिले हुए किसी आर्थिक (economical) वित्तीय (financial), राजनैतिक अथवा अन्य किसा प्रकार के धर्म-निरपेक्ष (secular) कार्यों से सम्बद्ध हो, सामाजिक कल्याण और सुधार के विषय में हो, अथवा हिन्दुओं [illegible] सार्वजनिक प्रकार की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के [illegible] और विभ[illegible] खोलती हो। तलवार (कृपाण) पहनना तथा ले[illegible] धर्म[illegible] समझा जाएगा।

धारा २६ नियुक्त करती है कि

के अधीन रहते हुए हर एक धार्मिक फिर्के अथवा उसके किसी विभाग को धार्मिक संस्था तथा अनाथालय स्थापित करने तथा उनका प्रबन्ध करने का अधिकार होगा, अपने धार्मिक कार्यों सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध करने का, चल या अचल सम्पत्ति को बनाने और रखने का, और उस सम्पत्ति को कानून के अनुसार प्रशासित करने का अधिकार होगा। धारा २७ के अनुसार, कोई भी व्यक्ति ऐसे करो को देने के लिए मजबूर नही किया जाएगा जिनकी आय किसी विशेष धर्म अथवा धार्मिक फिर्के की उन्नति या पोषण में खर्च करने के लिए विशेष रूप से निश्चित कर दी गई हो। धारा २८ के अनुसार, किसी भी सरकारी विद्यालय में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाएगी। लेकिन यह धारा उस शिक्षा-सस्था पर लागू न होगी जिसका प्रबन्ध सरकार करती है, किन्तु जो किसी ऐसे दान अथवा न्यास (Trust) के अधीन बनी हो और जिसके अनुसार उस सस्था मे धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक हो। राज्य द्वारा मान्य अथवा अनुदान प्राप्त करने वाली शिक्षा सस्था मे पढ़ने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था मे या उसके साथ लगे हुए किसी स्थान मे की जाने वाली धार्मिक उपासना में भाग लेने के लिए मजबूर नही किया जायेगा जब तक कि उस व्यक्ति ने या यदि अवयस्क (Minor) हो तो उसके सरक्षक ने, इसके लिए अपनी सम्मति न दे दी हो। यह ध्यान देने योग्य है कि धारा २८ निजी संस्थाओं के विषय मे कुछ भी नहीं कहती।

धर्म केवल ईश्वरवादात्मक नही है। भारतवर्ष में बौद्ध धर्म और जैन मत जैसे प्रसिद्ध मत हैं जो भगवान के अस्तित्व में अथवा किसी सर्वज्ञ-शक्ति मे विश्वास नहीं करते। कोई भी धर्म किन्ही विशेष विश्वासो और सिद्धान्तों पर आधारित होता है, और उसके मानने वाले उन विश्वासों और सिद्धान्तों पर अपने आत्मिक कल्याण के लिए आस्था रखते है। लेकिन यह कहना कि धर्म का मामला केवल धार्मिक विश्वास और धार्मिक आस्था ही है, ठीक नही। एक धर्म केवल विश्वास, सिद्धान्त अथवा धारणा ही नही है, इसकी बाहरी अभिव्यक्ति कार्यों द्वारा भी होती है। सविधान की धारा २५ धार्मिक विश्वास के आधार पर किये गये कार्यों को धर्म का एक अंग मानकर संरक्षण प्रदान करती है। धार्मिक मामलो और धार्मिक सम्पत्ति के प्रबन्ध के मामलों के बीच का भेद बडा ही सूक्ष्म प्रतीत होगा; किन्तु सन्देह के अवसर पर न्यायालय को चाहिए कि साधारण ज्ञान के दृष्टिकोण से लेकर वास्तविक आवश्यकताओ का विचार करते हुए निर्णय करे।

(११) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and Educational Rights)—धारा २९ के अनुसार, भारत के राज्य-क्षेत्र (territory) अथवा उसके किसी भाग के रहने वाले नागरिकों के किसी विभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा। किसी सरकारी या सहायता-प्राप्त शिक्षा संस्था मे प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा, अथवा इनमे से किसी के आधार पर इनकार न किया जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय ने मद्रास राज्य विपरीत चम्पाकम के अभियोग में यह निर्णय दिया

कि साम्प्रदायिक सरकारी आज्ञा (Communal G. O.) का वर्गीकरण संविधान के विपरीत है और धारा २६ के अंतर्गत स्वीकृत किए हुए नागरिक अधिकारों का स्पष्ट उल्लंघन है (१९५१ सर्वोच्च न्यायालय २२६)।

धारा ३० के अनुसार, धर्म या भाषा पर बने अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और उनका प्रबन्ध करने का अधिकार होगा। सरकार शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में इस आधार पर कोई अन्तर नहीं करेगी कि वह धर्म या भाषा पर बने किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।

(१२) **सम्पत्ति का अधिकार** (Right to Property)—धारा ३१, ३१-क और ३१-ख का सम्बन्ध सम्पत्ति से है। उसके अनुसार, कोई व्यक्ति कानून के प्राधिकार (authority of law) के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। कोई सम्पत्ति सार्वजनिक प्रयोजन के लिए कानून द्वारा तब तक अर्जित नहीं की जाएगी जब तक वह कानून अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर (compensation) की व्यवस्था न करता हो या प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों का उल्लेख न कर दे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है। ऐसे कानून को न्यायालय में इस आधार पर विवाद का विषय नहीं बनाया जा सकता कि कानून द्वारा निश्चित प्रतिकर उचित नहीं है। यदि कानून सम्पत्ति के स्वामित्व के परिवर्तन (transfer of ownership) या दखल अधिकार को राज्य या राज्य के अपने या नियन्त्रित निगम को देने की व्यवस्था नहीं करता तो इसे अनिवार्य रूप से सम्पत्ति को प्राप्त करना या कब्जा करना नहीं समझा जा सकता चाहे इससे किसी व्यक्ति की सम्पत्ति छिन ही क्यों न जाए। राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाया गया ऐसा कोई कानून उस समय तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि उसी कानून को राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने पर उसकी अनुमति न मिल गई हो। यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने किसी विचारार्थ विधेयक को, ऐसे विधान-मंडल द्वारा स्वीकार किए जाने के पश्चात् राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किया जाता है तथा उसकी अनुमति मिल जाती है, तो उस कानून पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकती। उस कानून के उपबन्धों को कोई बात प्रभावित नहीं करेगी जिसको राज्य कोई कर लगाने या जुर्माना वसूल करने या जन-स्वास्थ्य की उन्नति के लिए या जीवन या सम्पत्ति को भय से रोकने के लिए या शरणार्थी सम्पत्ति (evacuee property) के बारे में भारत सरकार तथा किसी अन्य सरकार के साथ हुए समझौते को पूरा करने के लिये पास करे।

राज्य द्वारा किसी जायदाद या उसके अधिकारों को प्राप्त करने या उसके अधिकारों को समाप्त या रूपान्तरित करने (modification) या सार्वजनिक हित या सम्पत्ति का सुप्रबन्ध करने के लिए राज्य द्वारा किसी सम्पत्ति का कुछ सीमित समय के लिए प्रबन्ध अपने हाथ में लेने या दो या दो से अधिक निगमों (corporations) को सार्वजनिक हित या किसी निगम के सुप्रबन्ध के लिए मिलाने या मैनेजिंग एजेन्ट्स, सचिवों (secretaries), खजांचियों, मैनेजिंग डाइरेक्टरों, डाइरेक्टरों या निगमों के

मैनेजरों या उनके हिस्सेदारों के वोट देने के अधिकारों को समाप्त करने का रूपान्तर करने या खनिज पदार्थ या पैट्रोल आदि से सम्बन्ध रखने वाले किसी समझौते, लीज या लाइसेन्स के कारण प्राप्त अधिकारो को समाप्त करने या बदलने या समर्पण करने की व्यवस्था करने वाला कानून इस आधार पर निरर्थक (void) होगा क्योंकि वह धारा १४, १६ या ३१ द्वारा प्रदत्त अधिकारों को समाप्त करता है या छीनता है। किन्तु यदि किसी राज्य का विधानमंडल कोई कानून बनाता है तो इस धारा की व्यवस्थाएं उस समय तक लागू नही होंगी जब तक कि उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखा गया हो और राष्ट्रपति ने उसे स्वीकार कर लिया हो।

अनुसूची नौ में उल्लिखित कोई अधिनियम या व्यवस्था (regulation) अवैध नहीं समझा जाएगा या इस आधार पर निरर्थक नही हो जाएगा कि अमुक अधिनियम या व्यवस्था सविधान भाग ३ की व्यवस्थाओं के कारण प्राप्त अधिकारों को समाप्त करता है या कम करता है या सविधान के विपरीत है। इसके विपरीत किसी न्यायालय या ट्रिब्यूनल के निर्णय डिक्री, या आदेश के न होने पर बताए हुए कानूनों तथा व्यवस्थाओं में प्रत्येक, समर्थ विधान मण्डलों के द्वारा उसको वापिस लेने या सशोधित करने की शक्ति के विषय होते हुए लागू रहेगा।

सम्पत्ति के अधिकार की व्यवस्था को १६५१ और १९५५ के क्रमश प्रथम और चतुर्थ संशोधनो द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। प्रथम सशोधन मे धारा ३१-अ और ३१-ब देश में जमीदारी की प्रथा को समाप्त करने के लिए राज्यो द्वारा पारित कानूनों को वैधता प्रदान करने के लिए बढ़ा दी गई थी। १६५१ के संशोधन करने पर भी भारत सरकार को यह अनुभव हुआ कि गणतन्त्र के लक्ष्य को प्राप्त करने में अभी कठिनाइयाँ है। परिणामत चतुर्थ सशोधन किया गया जो अप्रैल, १६५५ में लागू हुआ। इस पर बहुत आलोचना हुई कि सरकार को सम्पत्ति के विषय में इस प्रकार विचारहीनता से कार्य नही करना चाहिए। यह तर्क रखा गया कि *quid pro quo* के सिद्धान्त के अनुसार उचित मुआवजे की व्यवस्था को इन संशोधनो द्वारा पूर्णतः समाप्त कर दिया गया है। ये सशोधन सविधान की धारा १६ में व्यवस्थापित अधिकारो को नष्ट कर देते है। ये सशोधन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की अक्षुण्णता के सिद्धान्त को झूठा करते है। उन सत्ताधारियो मे जिनका विश्वास केवल जनता का मत दान (vote) प्राप्त करना है और नियमित प्रगति मे नही है, देश की सत्ता को केन्द्रित कर देना देश के आर्थिक ढांचे को बुरी तरह हिला देगा और इससे देश मे निर्धनता समान रूप से फैल जाएगी। इस प्रकार की परिस्थिति को पण्डित जी (जवाहरलाल नेहरू) नही चाहते थे। न्यायालय द्वारा मुआवजे के औचित्य के निर्णय को न होने देना इस केन्द्रित सत्ता पर सब रोक हटा लेता है।

ग्लैडहिल (Gledhill) के मतानुसार, "हमारा यह विचार है कि मूलरूप से संविधान सर्वोपरि है, विधानमंडल नहीं। मौलिक अधिकारो के उल्लेख का आशय यह है कि विधान मंडल में अस्थाई बहुमत अपनी सत्ता का दुरुपयोग न कर सके। मौलिक अधिकारों को, सामाजिक सुधार के लिए बनाए कानूनो का मार्ग सरल

करने के लिए, इस प्रकार उपेक्षित कर देना, विशेषतः जबकि नवीन संविधान की स्याही पूरी तरह सूखी भी नहीं थी, एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रमाण स्थापित कर देना है। बड़ी-बड़ी खेती की जमींदारी को समाप्त करके उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देना कोई मुख्य सिद्धान्त की बात न होकर काँग्रेस के प्रचार-मंच का एक तख्ता है। इस विषय में मुख्य आदेश के सिद्धान्त जिनका इस मामले से सम्बन्ध है, धारा ३६ ब (39 B) और ३६ स (39 C) में हैं जिनके अनुसार राज्य की नीति इस प्रकार क्रियान्वित होनी चाहिए कि देश के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार विभाजित हो; जिससे सर्वसाधारण का कल्याण हो तथा आर्थिक व्यवस्था का परिणाम राष्ट्र-धन और उत्पादन के साधन इस प्रकार एक स्थान पर न केन्द्रित हो जाएँ जिससे सर्वसाधारण का अहित हो। धारा ४८ के अनुसार 'राज्य' को खेती-बाड़ी की व्यवस्था आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार करनी है। ईमानदारी के साथ यह कहा जा सकता है कि धारा ३१ ब (31-B) इन मुख्य आदेश सिद्धान्तों की प्राप्ति की दिशा में कोई प्रगतिशील कार्य नहीं है।

"विधान में धारा ३१-ब (31-B) को बढ़ाने के विरुद्ध तर्क केवल भावुकता नहीं है। अपितु इसके द्वारा इस सिद्धान्त की जड़ पर कुठाराघात किया गया है कि संविधान को देश का सर्वोपरि कानून होना चाहिए और इसमें तत्कालीन तथा भूतकाल की क्रिया को मान्यता देने के लिए संशोधन नहीं होना चाहिए। संसद् में बहुसंख्यक दल द्वारा मौलिक अधिकारों से खिलवाड़ करने का एक प्रमाण स्थापित कर दिया गया है जिसके द्वारा बहुमत अपनी नीति को शक्ति से ठोंस सकेगा (Fundamental Rights in India, pp. 117-18)। माननीय कृष्णमाचारी (T. T. Krishnamachari) के मतानुसार, "सरकार द्वारा जो अधिकार प्राप्त किए गए हैं वे जमीदारों और मुजारों तथा कम्पनियों के प्रबन्धकों तथा हिस्सेदारों के झगड़ों को निपटाने के लिए आवश्यक है।" स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू के मतानुसार "बिना मुआवजे के सम्पत्ति को ले लेने का लक्ष्य उनका नहीं था और वे इस दृष्टिकोण से सोच भी नहीं रहे थे। इस विधेयक के द्वारा केन्द्र और राज्य-विधान-मण्डलों को मुआवजे के प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार देना था जिसे न्यायमण्डल एक प्रकार से छीन लेना चाहते थे।"

यह बात भी उल्लेखनीय है कि संविधान की नई धाराओं का आशय देश में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों को शान्तिपूर्ण तरीकों से लाना है। संविधान में इस बात की व्यवस्था की गई है कि सरकार को इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे सर्वसाधारण का कल्याण हो। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता राष्ट्रीय जीवन के सब पहलुओं में हो, राष्ट्र के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण का बँटवारा इस प्रकार हो कि सर्व-साधारण के हित के साथ-साथ आर्थिक व्यवस्था के कारण राष्ट्रधन और उत्पादन के साधन केन्द्रित न हों तथा इनसे जनता की हानि न हो। नवीन धाराओं का आशय उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति है।

(१३) संवैधानिक उपचारों के अधिकार (Constitutional Remedies)—धारा ३२ संविधान के भाग ३ मे रखे गए मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को उचित कार्यवाहियो के द्वारा प्रार्थना करने के अधिकार की गारण्टी देती है। मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे निर्देश (directions), या आदेश (order) अथवा लेख जिनके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पृच्छा (Quo Warranto) और उत्प्रेषण (Certiorari) की तरह के लेख भी शामिल है, जो भी ठीक हो, निकालने की शक्ति होगी। संसद् कानून द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को अपने क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के भीतर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली सभी अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी। इस धारा के अन्तर्गत दिये गए अधिकार उन अवस्थाओं के अतिरिक्त अनुलम्बित (suspend) नही किए जाएँगे जिनका उल्लेख संविधान मे किसी अन्य स्थान पर किया गया है। धारा ३५९ व्यवस्था करती है कि जहाँ कहीं भी आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) लागू हो, राष्ट्रपति आज्ञा द्वारा घोषित कर सकते हैं कि मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायालय से प्रार्थना करने का अधिकार और न्यायालयों में उनको लागू कराने से सम्बन्धित समस्त कार्यवाही उस समय तक अनुलम्बित रहेगी जब तक आपात की उद्घोषणा लागू रहेगी अथवा कम समय के लिए जैसा कि आज्ञा में निश्चित किया जाए। ऐसा आदेश भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र मे अथवा उसके किसी भाग पर लागू हो सकेगा।

डॉ० अम्बेदकर के अनुसार, धारा ३२ "संविधान का हृदय एवं आत्मा है।" मौलिक अधिकारों की उद्घोषणा (Declaration of Fundamental Rights) का महत्त्व कम हो जाता है यदि उनको लागू करने के लिए प्रभावी न्यायिक उपायों की व्यवस्था न हो। इंग्लैंड में, देश के लोगों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण विशेषाधिकार लेखों (prerogative writs) के द्वारा किया जाता है जिनको प्रो० डायसी ने "अंग्रेजी संविधान के किले" (the bulwark of the English Constitution) कहा है।

लेख (Writs) —बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)—धारा ३२ मे *संविधान द्वारा गिनाए गए विभिन्न लेखों का वर्णन दिया गया है तथा उनका प्रयोग* केवल सर्वोच्च न्यायालय ही नही करता बल्कि उच्च न्यायालय भी करता है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख अंग्रेजो और अमरीकियों की स्वतन्त्रता का आधार-स्तम्भ (corner-stone) है। किसी भी आदमी को गैर-कानूनी ढंग से कैद होने पर छुटकारा दिलाने के लिए यह लेख उपयोगी होता है, चाहे बन्दी (detention) का सम्बन्ध फौजदारी से हो या माल से। यदि सरकार किसी आदमी को अवैधानिक रीति से कैद करे, अन्यायपूर्वक सजा दे, किसी बच्चे, पत्नी, पागल तथा दास को अन्यायपूर्वक तथा अवैधानिक रीति से रोके तब यह लेख सरकार द्वारा पीड़ित व्यक्ति का सहायक होता

है। यह उसके लिए भी उपयोगी हो सकता है जिसे अन्यायपूर्वक प्रत्यर्पण वारण्ट (Extradition warrant) के अधीन रोका गया हो या किसी व्यक्ति को अवैधानिक रीति से अथवा बिना किसी उचित न्याय के कारण रोका गया हो। यह ध्यान रखें कि कानून व्यक्ति स्वतन्त्रता के उल्लंघन का द्वेषी है तथा न्यायालयों ने अवैध कैदियों को छोड़ने में अपने अधिकारों का उपयोग किया है।

बन्दी-प्रत्यक्षीकरण लेख की विधि यह है कि कोई व्यक्ति जिसका कैदी से सम्बन्ध हो, बन्दी प्रत्यक्षीकरण आवेदन दे सकता है किन्तु एक अजनबी तथा वालन्टीयर ऐसा नहीं कर सकता। आवेदन-पत्र के साथ बन्दी का शपथ-पत्र हो जिसमें सम्बन्धित तथ्यों तथा परिस्थितियों का वर्णन हो जिनमें पहली दृष्टि में (prima facie) यह दिखाई दे कि कैद गैर-कानूनी है। यह न्यायाधीश की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह व्यक्ति को बलात्कार रोकने वाले को सूचना दे अथवा बन्दी को उपस्थित करने की सीधी आज्ञा दे। साधारणतः प्रथम विधि प्रयोग में लाई जाती है। ऐसे मामलों में जिनमे न्यायालय को यह स्पष्ट हो जाए कि यदि नोटिस दिया गया तो गैर-कानूनी रूप मे बन्दी बनाए गये व्यक्ति को न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हटा दिया जायेगा तब न्यायालय को उचित आज्ञा देने में घबराना नहीं चाहिए। चाहे वह आज्ञा एक तरफी (ex-parte) ही क्यों न हो। लेख एक विशेष दिन के लिए उपयोगी होता है तथा उस दिन वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध लेख जारी किया गया है या तो बन्दी को उपस्थित करता है अथवा लेख के आदेश के अनुसार कारण बताती है। यदि बन्दी न्यायालय में उपस्थित किया जाता है तब आवेदन की सुनवाई के समय बन्दी की रक्षा न्यायालय के विवेक (discretion) तथा आदेश के अनुसार की जाती है। यदि न्यायालय इस परिणाम पर पहुँचता है कि बन्दी बनाए रखने का कोई कारण नहीं है तब यह उस व्यक्ति को एक अधिकारी की देख-रेख में उस स्थान पर जाने की आज्ञा दे सकता है, जहाँ वह व्यक्ति चाहे।

परमादेश (Writ of Mandamus)—परमादेश बुराई को दूर करने का एक असाधारण अधिकार है। परमादेश एक बड़े अफसर की आज्ञा होती है जिसके द्वारा वह किसी व्यक्ति निगम (corporation) अथवा निम्न अदालत को किसी खास कार्य करने की आज्ञा देता है जिसका वर्णन आज्ञा-पत्र में किया जाता है तथा जो उसके दफ्तर से सम्बन्ध रखते है तथा सार्वजनिक कर्त्तव्य (public duty) के समान होते हैं। यह लेख सार्वजनिक कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए दिया जाता है। परमादेश का देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर है, किसी का अधिकार नहीं। किन्तु न्यायालय उदार-दृष्टि से कार्य करते है तथा वांछनीय होने पर परमादेश देते हैं।

उत्प्रेषण लेख (Writ of Certiorari)—उत्प्रेषण का शाब्दिक अर्थ है—प्रमुख और पूर्ण रूप से सूचित। उच्च अदालत किसी छोटी अदालत को उत्प्रेषण लेख भेज कर उससे किसी मामले के रिकार्ड को मांगती है जो कि उसके पास रोका हुआ होता है। ऐसा आदेश न्याय को वेगवान करने के लिए दिया जाता है क्योंकि हो सकता है कि निम्न न्यायालय उस मामले को निपटाने में समर्थ न हो। ऐसी आज्ञा

सार्वजनिक संस्थाओं के विरुद्ध भी दी जा सकती है जिनको कुछ मामलों में लगभग न्यायिक निर्णय (judicial decisions) करने होते हैं। उत्प्रेषण लेख और प्रतिषेध में अन्तर है। प्रतिषेध लेख को कार्य व्यवहार के उपालम्भ की प्रथम स्थिति में लाया जा सकता है। इनमें मुक्तीकरण की अपेक्षा निरोधन की भावना अधिक है।

प्रतिषेध लेख (Writ of Prohibition)—प्रतिषेध लेख उच्च न्यायालय किसी निम्न न्यायालय को किसी मामले की सुनवाई रोकने के उद्देश्य से देता है जिस कारण क्षेत्र से बाहर जाना अथवा कानून का उल्लंघन होता है। यदि कोई न्यायाधीश अथवा पार्टी प्रतिषेध लेख की उपेक्षा करके किसी अभियोग को सुनती है तब उसके विरुद्ध न्यायालय की मानहानि का अभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिषेध लेख जारी करते समय न्यायालय को यह नहीं सोचना चाहिए कि इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय—क्षेत्र की अनुपस्थिति या आधिक्य (excess) को दूर करने का हो सकता है। ऐसी आज्ञा अन्यायिक सार्वजनिक संस्थाओं (non-judicial public bodies) को भी उन मामलो के विषय मे दी जा सकती है जिनमे ये संस्थाएँ लगभग न्यायिक निर्णय करें।

अधिकार पृच्छा लेख (Writ of Quo-Warranto)—किसी व्यक्ति से किसी पद पर रहने के अधिकार की जाँच करने के उद्देश्य से अधिकार-पृच्छा लेख जारी किया जाता है तथा उससे माँग की जाती है कि वह उस प्राधिकार (authority) को उपस्थित करे जिसके कारण वह पदाधिकारी बना है। ऐसा आदेश देना विवेक पर निर्भर है, अधिकार नही। निम्न शर्तें ऐसी आज्ञा देने से पूर्व पूरी होनी चाहिएँ—

(i) वह पद जिसके विषय में लेख जारी करना है किसी राज्याज्ञा अथवा चार्टर द्वारा स्थापित किया गया है।

(ii) पदाधिकारी के कर्त्तव्य पूर्णरूपेण सार्वजनिक अथवा लगभग सार्वजनिक हो।

(iii) पद स्थायी हो अर्थात् इसका वृत्तिभोगी (incumbent) किसी की इच्छानुसार न हटाया जा सके।

(iv) वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध अभियोग लगाया जाए वास्तविक अर्थ में उस पद पर नियुक्त हो।

(v) प्रार्थी यह सिद्ध करे कि उस पद में हित है जिसके विरुद्ध अधिकार-पृच्छा लेख जारी करना है।

धारा ३५ के अनुसार संसद् को यह अधिकार होगा कि वह संविधान के भाग तीन के अनुसार दण्डनीय ठहराए गए कार्यों के सम्बन्ध में दण्ड विधानों की सृष्टि कर सके। सविधान के आरम्भ मे जितना शीघ्र हो सकेगा उतना शीघ्र संसद् उपर्युक्त कार्यों के लिए दण्ड निश्चित करने के लिए नियम बनाएगी।

जब संविधान सभा (Constituent Assembly) आधारभूत अधिकारों अन्तरिम विवरणिका (Report) पर वाद-विवाद कर रही थी तब श्री सी.

(८) धारा-४६ के अनुसार, राज्य जनता के कमजोर विभागों और विशेषकर अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ-सम्बन्धी हितों की बहुत सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका बचाव करेगा।

(९) धारा ४७ व्यवस्था करती है कि राज्य का यह आवश्यक कर्तव्य होगा कि वह जनता के खाद्य-पदार्थ, जीवन-स्तर तथा जन-स्वास्थ्य को ऊँचा उठाए। यह सब तरह की नशीली वस्तुओं के प्रयोग को भी रोकने का प्रयत्न करेगा जिनसे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

(१०) धारा ४८ के अनुसार, राज्य कृषि तथा पशु-पालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करेगा तथा विशेष रूप से गायों और बछड़ों तथा अन्य दूध देने वाले और दूध न देने वाले जानवरों की नस्ल के परीक्षण और सुधारने के लिए तथा उनके वध को रोकने का प्रयत्न करेगा।

(११) धारा ४९ के अनुसार, राज्य उस प्रत्येक ऐतिहासिक भवन, स्मारक या स्थान या चीज को यथास्थिति को बिगाड़ने, नष्ट करने, हटाये जाने, बेचने अथवा निर्यात से रक्षा करेगा जिसे संसद् राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित करे।

(१२) धारा ५० के अनुसार, राज्य सार्वजनिक हित मे कार्यपालिका से न्यायपालिका को पृथक् करने का प्रयास करेगा। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि प्रत्येक राज्य मे इस दिशा में कुछ ठोस पग उठाए जा रहे हैं।

(१३) धारा ५१ उद्घोषित करती है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति, राष्ट्रों के बीच न्याय और आदरणीय सम्बन्धों को बनाए रखने, संगठित लोगों से व्यवहार करते समय अन्तर्राष्ट्रीय संधि-बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने और अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को मध्यस्थ द्वारा तय करने को प्रोत्साहित करेगा।

भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों ने राष्ट्रीय नीति के आदेश-सिद्धान्तों की पूर्ति के लिए प्रयत्न किया है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अनेक राज्यों मे 'जमींदारी उन्मूलन' सम्बन्धी कानून लागू किए गये। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए १९५० में 'गाँव सभा कानून' बनाया गया। अनेक राज्यों द्वारा किरायादार कानूनों का लागू करना भी इन आदेश-सिद्धान्तों का परिपालन था। १९५२ का प्राविडेण्ट फण्ड कानून, १९५१ का बालक-मजदूरी कानून, १९५१ का

राज्य नीति के निदेशक तत्त्वों में मौलिक अन्तर है। मौलिक अधिकार न्याय पर निर्भर करते है जबकि निदेशक तत्त्वों की ऐसी स्थिति नही। यदि किसी के मौलिक अधिकार को छीना जाए तो वह व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय मे जाकर अपना अधिकार प्राप्त कर सकता है, परन्तु यदि सरकार किसी निदेशक तत्त्व का उल्लंघन करती है तो कोई भी न्यायालय पीड़ित की सहायता नही कर सकता, जैसे यदि राज्य निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रारम्भ नहीं करता, तो कोई न्यायालय जनता की सहायता नहीं कर सकता। परन्तु यदि किसी को गैर-कानूनी तौर से कैद किया गया है तब वह उचित न्यायालय से अपने छुटकारे की प्रार्थना कर सकता है।

मद्रास राज्य विपरीत चम्पकाम दोराइ राजन के अभियोग मे भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने ये विचार प्रकट किए—"राज्य-नीति के निदेशक तत्त्व जिनको स्पष्ट रूप से न्यायालयों के द्वारा लागू न किया जाने वाले बनाया गया है, तीसरे भाग की व्यवस्थाओ को कुचल नही सकते जो कि अन्य व्यवस्थाओ के होते हुए भी स्पष्ट रूप से धारा ३२ के अधीन उचित लेखों (writs), आदेशो या निदेशनों के द्वारा लागू कराने के योग्य बनाए गए हैं। मौलिक अधिकारों का अध्याय पवित्र है और भाग ३ में उचित धारा में नियुक्त सीमा के अलावा किसी विधायी या प्रशासनिक अधिनियम, या आदेश के द्वारा कम किए जाने योग्य नही है। राज्य-नीति के निदेशक तत्त्वों को मौलिक अधिकारों के अध्याय के अनुरूप तथा सहायक बनाना होगा······। यही ठीक मार्ग है जिनसे भाग ३ और ४ की व्यवस्थाओं को समझना होगा। किन्तु जहाँ तक मूल अधिकारो का उल्लंघन भाग ३ की व्यवस्थाओं द्वारा नियुक्त सीमा तक नही होता वहाँ तक भाग ४ में रखे गए राज्य-नीति के निदेशक तत्त्वों के अनुसार राज्य के कार्य करने मे आपत्ति नही हो सकती लेकिन संविधान की अन्य व्यवस्थाओं के आधीन राज्य पर लगाए गए प्रतिबन्ध (limitations) और विधायी तथा कार्यकारी (legislative and executive) शक्तियाँ पुन· आश्रित (subject) हैं।" डा० अम्बेदकर के अनुसार—"निदेशक तत्त्व आज्ञापत्रों (Instrument of Instructions) के समान है जो कि महा-राज्यपाल तथा भारत और उपनिवेशों के राज्यपालों को सन् १९३५ के अधिनियम के अधीन ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी किये जाते थे। निदेशक तत्त्व आज्ञापत्रों का दूसरा नाम है। अन्तर केवल यह है कि वे विधान-मण्डलों और कार्यकारिणी को दिये गए निर्देश हैं। मेरे विचार मे ऐसी वस्तु स्वागत करने योग्य है। जहाँ कही भी शान्ति, व्यवस्था और अच्छी सरकार के लिए सामान्य शब्दो मे शक्ति स्वीकार की जाए, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसके प्रयोग को व्यवस्थित करने के लिए आज्ञाएँ (instructions) साथ हों।" बी० एन० राय के अनुसार, "राज्य-नीति के निदेशक तत्त्व राज्य अधिकारियों के लिए नैतिक आदर्शों के रूप मे हैं और सामान्य आलोचना यह है कि संविधान नैतिक आदर्शों का घर नही है। लेकिन उनका शैक्षणिक मूल्य है और अधिकांश आधुनिक संविधान इस प्रकार के सामान्य सिद्धान्तो को प्रस्थापित अवश्य करते हैं। वे आज्ञापत्रों के तुल्य हैं, ... हम भारतीय संविधान से परिचित हैं; केवल, महा-राज्यपाल या राज्यपाल को

के स्थान पर, वे राज्य प्राधिकारियों, विधान-मण्डलों या प्रशासन (Executive) को निवेदित किए गए हैं।"

आलोचना (Criticism)—आलोचकों का मत है कि राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व व्यर्थ हैं; क्योंकि वे लागू नहीं कराए जा सकते। अच्छा होता यदि उन्हें छोड़ दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त इन निदेशक तत्त्वों में बहुत-सी बातें हैं। कुछ तत्त्वों की बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ स्वस्थ मतभेद है। निदेशक तत्त्व ऐसे निश्चित एवं हमेशा चलने वाले सिद्धान्त नहीं हैं, जो काल और देश के अनुसार नहीं बदलते। इन निदेशक सिद्धान्तों को संविधान में इसलिए रखा गया है कि जिससे श्रद्धालु जनता को आसानी से सन्तुष्ट किया जा सके। इसके अतिरिक्त यह भी नहीं कहा जा सकता कि सूची में सब युगों के निदेशक सिद्धान्तों को रखा गया है। उनकी व्यावहारिकता तथा दृढ़ता (soundness) पर भी सन्देह किया जा सकता है। आलोचकों का मत है कि 'नशाबन्दी' के प्रयोग से आय में होने वाली कमी का प्रयोग शिक्षा आदि सार्वजनिक महत्त्व के कार्यों के लिए किया जा सकता था। नशाबन्दी एक महँगी असफलता है। गैर-कानूनी तौर से शराब बनाना और नशीली चीजों को बेचने की प्रथा अधिक बढ़ गई है और बढ़ रही है। अफसरों को भ्रष्ट करने का साहस किया जाता है ताकि गैर-कानूनी धंधा चलता रहे। नशेबाजों को बहुत ही गन्दे स्थानों पर बनी हानि पहुँचाने वाली नशीली चीजों का प्रयोग करना पड़ता है। किसी स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करना अच्छा दिखाई नहीं देता। यह तब तो किसी की समझ में आ सकता है कि कोई ऊँची सरकार अधीन सरकार को ऐसे तत्त्वों पर चलने को कहे किन्तु किसी सार्वभौम राष्ट्र के लिए इनकी कोई जरूरत महसूस नहीं होती। इसकी भी कोई गारण्टी नहीं है कि इन सिद्धान्तों का तब भी पालन किया जाएगा जब देश की दशा बदल जाएगी। इन तत्त्वों का अधिक भाग राजनीतिक दर्शन (political philosophy) है, व्यावहारिक राजनीति नहीं कोई आदमी केवल शब्दों से ही सब्र नहीं कर सकता। यह केवल अच्छे शब्दों में ऊँचे विचारों का कथन मात्र है। संवैधानिक आलोचक के लिए उनका महत्त्व बहुत कम है।

केवल ऐसी पवित्र उद्घोषणाएँ मात्र हैं, जिनके पीछे कोई कानूनी मान्यता नहीं है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि कानूनी शक्ति न होने पर भी वे किसी लाभ के नहीं हैं। इस भाग को रखने का असली कारण तथा विचार यह है कि संविधान के अनुसार अनेक दलीय सरकारों के बदलने में यह सम्भव है कि शासक दल आर्थिक लोकतन्त्र (economic democracy) के आदर्श को सामने न रखते हुए जो कि संविधान की भावना है, अपनी इच्छा के अनुसार अपनी इच्छा को किसी-न-किसी कारण लादने का प्रयास करे। सरकार चाहे किसी दल की हो उसे 'आज्ञा-पत्र' (Instrument of Instructions) निदेशक तत्त्वों का आदर करना ही होगा। वह उनकी ओर से आँखें नहीं मूंद सकती। यह ठीक होते हुए भी कि उसे न्यायालय दण्ड नहीं दे सकते, यह निश्चित है कि उसे आने वाले चुनावों में जनता के न्यायालय में उत्तर देना पड़ेगा।"

एम० सी० सीतलवाद के अनुसार, यद्यपि राज्य-नीति के निदेशक तत्त्व "कोई कानूनी अधिकार की रचना और सवैधानिक उपायों की व्यवस्था नहीं करते, तथापि वे 'आज्ञा-पत्र' अथवा सामान्य सिफारिश से लगते है, जो संघ के समस्त प्राधिकारियों (authorities) को संविधान द्वारा निर्माण की जाने वाली नयी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तों की याद दिलाती है। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त कानूनी रूप से लागू न होते हुए भी न्यायालयों के लिए प्रकाश स्तम्भ (beacon light) है। कानूनों का अर्थ लगाने के समय सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय की दृष्टि इन्हीं तत्त्वों की ओर जाती है जिनसे संविधान के बनाने वाले की सच्ची भावनाओं का पता चलता है। ये निदेशक तत्त्व संविधान की प्रस्तावना (Preamble) का विस्तृत रूप हैं, जिनका लक्ष्य जनता को न्याय, बराबरी तथा भाईचारा देना है।"

प्रोफेसर के० सी० व्हीअर (K. C. Wheare) के अनुसार, "भारतीय संविधान उदार संविधान है। खुले रूप में इस घोषणा को करने वाले राष्ट्र में आजकल कुछ बातें पराक्रम युक्त हैं कि उन्होंने अपनी सरकार को अपने समस्त नागरिकों को न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारा प्राप्त करने के लिए प्रस्थापित किया है। यद्यपि इन शब्दों में उन्नीसवीं सदी की गंध पाई जाती है तथापि आजकल उनको पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। सम्भवतः ब्रिटिश विद्यार्थी यह अनुभव करेंगे कि संविधान में अत्यधिक अमूर्त अधिकारों (abstract rights) को स्वीकार किया गया है, क्योंकि, आयरिश संविधान के समान, भारतीय संविधान जनता को विभिन्न प्रकार के अधिकारों और विशेष सुविधाओं (privileges) की प्रत्याभूति करता है।

"व्यावहारिक बुद्धि वाले ब्रिटिश निरीक्षक को निर्दोष बतलाने में सम्भवतः कठिनाई राज्य-नीति के निदेशक तत्त्वों वाला बड़ा अध्याय है। क्योंकि इन तत्त्वों को न्यायालय लागू नहीं करा सकते, इसलिए इनका मूल्य उद्देश्यों तथा भावनाओं के घोषणा-पत्र से कुछ अधिक नहीं है। अधिकारों की घोषणा और राज्य-नीति के निदेशक तत्त्वों के विषय में भारतीय संविधान परिषद् ने राष्ट्र-मण्डल के अन्य सदस्यों

के स्थान पर, वे राज्य प्राधिकारियों, विधान-मण्डलों या प्रशासन (Executive) को निवेदित किए गए हैं।"

आलोचना (Criticism)—आलोचकों का मत है कि राज्य की नीति के निदेशक तत्त्व व्यर्थ है; क्योंकि वे लागू नहीं कराए जा सकते। अच्छा होता यदि उन्हें छोड़ दिया जा सकता। इसके अतिरिक्त इन निदेशक तत्त्वों में बहुत-सी बातें हैं। कुछ तत्त्वों की बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ स्वस्थ मतभेद है। निदेशक तत्त्व ऐसे निश्चित एवं हमेशा चलने वाले सिद्धान्त नहीं हैं, जो काल और देश के अनुसार नही बदलते। इन निदेशक सिद्धान्तों को सविधान मे इसलिए रखा गया है कि जिससे श्रद्धालु जनता की आसानी से सन्तुष्ट किया जा सके। इसके अतिरिक्त यह भी नही कहा जा सकता कि सूची में सब युगों के निदेशक सिद्धान्तों को रखा गया है। उनकी व्यावहारिकता तथा दृढता (soundness) पर भी सन्देह किया जा सकता है। आलोचकों का मत है कि 'नशाबन्दी' के प्रयोग से आय मे होने वाली कमी का प्रयोग शिक्षा आदि सार्वजनिक महत्त्व के कार्यों के लिए किया जा सकता था। नशाबन्दी एक महँगी असफलता है। गैर-कानूनी तौर से शराब बनाना और नशीली चीजों को बेचने की प्रथा अधिक वढ गई है और बढ़ रही है। अफ़सरों को भ्रष्ट करने का साहस किया जाता है ताकि गैर-कानूनी धधा चलता रहे। नशेबाजों को वहुत ही गन्दे स्थानों पर बनी हानि पहुँचाने वाली नशीली चीजों का प्रयोग करना पड़ता है। किसी स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करना अच्छा दिखाई नही देता। यह तब तो किसी की समझ में आ सकता है कि कोई ऊँची सरकार अधीन सरकार को ऐसे तत्त्वों पर चलने को कहे किन्तु किसी सार्वभौम राष्ट्र के लिए इसकी कोई जरूरत महसूस नहीं होती। इसकी भी कोई गारन्टी नही है कि इन सिद्धान्तों का तब भी पालन किया जाएगा जब देश की दशा बदल जाएगी। इन तत्त्वो का अधिक भाग राजनीतिक दर्शन (political philosophy) है, व्यावहारिक राजनीति नही कोई आदमी केवल शब्दों से ही सब्र नही कर सकता। यह केवल अच्छे शब्दों में ऊँचे विचारो का कथन मात्र है। संवैधानिक आलोचक के लिए उनका महत्त्व बहुत कम है।

इस कटु आलोचना के होते हुए भी यह कहा जाता है कि राज्य-नीति के ये निदेशक तत्त्व संविधान की धारा ३७ के अनुसार "सरकार चलाने के मौलिक आदर्श है"? और यह सरकार का कर्त्तव्य होगा कि कानून बनाते समय इनको आधार माने। निश्चित योजना के अनुसार निदेशक तत्त्वो के उल्लंघन से जनता मे बेचैनी पैदा होगी। यदि धारा सभाओं मे जनता के प्रतिनिधि इन तत्त्वो को पूरा करने की कोशिश नही करते तब वे दोबारा चुने जाने की आशा नही कर सकते। जो सरकार इनको आधार मानकर न चलेगी उसे अपना रास्ता देखना पड़ेगा। राघवाचार्य के अनुसार "यह आपत्ति की जा सकती है कि ये ओछे और बेमायने हैं और पवित्र संविधान मे उनको स्थान देने की कोई आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि ये निदेशक तत्त्व न किसी के अधिकार को मानते हैं और न किसी का कर्त्तव्य निश्चित करते हैं, ये तो

केवल ऐसी पवित्र उद्घोषणाएँ मात्र है, जिनके पीछे कोई कानूनी मान्यता नही है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि कानूनी शक्ति न होने पर भी वे किसी लाभ के नही हैं। इस भाग को रखने का असली कारण तथा विचार यह है कि संविधान के अनुसार अनेक दलीय सरकारो के बदलने मे यह सम्भव है कि शासक दल आर्थिक लोकतन्त्र (economic democracy) के आदर्श को सामने न रखते हुए जो कि संविधान की भावना है, अपनी इच्छा के अनुसार अपनी इच्छा को किसी-न-किसी कारण लादने का प्रयास करे। सरकार चाहे किसी दल की हो उसे 'आज्ञा-पत्र' (Instrument of Instructions) निदेशक तत्त्वो का आदर करना ही होगा। वह उनकी ओर से आँखें नही मूंद सकती। यह ठीक होते हुए भी कि उसे न्यायालय दण्ड नही दे सकते, यह निश्चित है कि उसे आने वाले चुनावों मे जनता के न्यायालय में उत्तर देना पड़ेगा।"

एम० सी० सीतलवाद के अनुसार, यद्यपि राज्य-नीति के निदेशक तत्त्व "कोई कानूनी अधिकार की रचना और संवैधानिक उपायो की व्यवस्था नही करते, तथापि वे 'आज्ञा-पत्र' अथवा सामान्य सिफारिश से लगते हैं, जो संघ के समस्त प्राधिकारियों (authorities) को संविधान द्वारा निर्माण की जाने वाली नयी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तो की याद दिलाती है। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्त कानूनी रूप से लागू न होते हुए भी न्यायालयों के लिए प्रकाश स्तम्भ (beacon light) हैं। कानूनो का अर्थ लगाने के समय सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय की दृष्टि इन्ही तत्त्वों की ओर जाती है जिनसे संविधान के बनाने वाले की सच्ची भावनाओं का पता चलता है। ये निदेशक तत्त्व संविधान की प्रस्तावना (Preamble) का विस्तृत रूप हैं, जिनका लक्ष्य जनता को न्याय, बराबरी तथा भाईचारा देना है।"

प्रोफेसर के० सी० व्हीअर (K. C. Wheare) के अनुसार, "भारतीय संविधान उदार संविधान है। खुले रूप मे इस घोषणा को करने वाले राष्ट्र में आजकल कुछ बातें पराक्रम युक्त है कि उन्होने अपनी सरकार को अपने समस्त नागरिको को न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारा प्राप्त करने के लिए प्रस्थापित किया है। यद्यपि इन शब्दों में उन्नीसवी सदी की गंध पाई जाती है तथापि आजकल उनको पुन: स्थापित करने की आवश्यकता है। सम्भवतः ब्रिटिश विद्यार्थी यह अनुभव करेंगे कि संविधान मे अत्यधिक अमूर्त्त अधिकारो (abstract rights) को स्वीकार किया गया है, क्योंकि, आयरिश संविधान के समान, भारतीय संविधान जनता को विभिन्न प्रकार के अधिकारो और विशेष सुविधाओं (privileges) की प्रत्याभूति करता है।

"व्यावहारिक बुद्धि वाले ब्रिटिश निरीक्षक को निर्दोष बतलाने में सम्भवतः कठिनाई राज्य-नीति के निदेशक तत्त्वों वाला बड़ा अध्याय है। क्योंकि इन तत्त्वो को न्यायालय लागू नही करा सकते, इसलिए इनका मूल्य उद्देश्यों तथा भावनाओं के घोषणा-पत्र से कुछ अधिक नहीं है। अधिकारों की घोषणा और राज्य-नीति निदेशक तत्त्वो के विषय मे भारतीय संविधान परिषद् ने राष्ट्र-मण्डल के अन्य

भारत का राष्ट्रपति

(PRESIDENT OF INDIA)

राष्ट्रपति का चुनाव (Election of President)—भारत का राष्ट्रपति राज्य का प्रधान है। उसका चुनाव एक ऐसे निर्वाचकगण (Electoral College) के सदस्य करते है जिसमे संसद् के दोनों सदनो के चुने हुए मेम्बर तथा राज्यों की विधान सभाओ के निर्वाचित सदस्य होते है। जहाँ तक सम्भव हो, राष्ट्रपति के चुनाव में भिन्न-भिन्न राज्यो का प्रतिनिधित्व (representation) एक से पैमाने (scale) से होगा। राज्यो मे आपस में एकरूपता (uniformity) तथा समस्त राज्यो और सघ मे बराबरी प्राप्त की जाएगी।

राज्यों मे आपस मे एकरूपता तथा समस्त राज्यो और केन्द्र में बराबरी प्राप्त करने के लिए संसद् तथा प्रत्येक राज्य की विधान सभा का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य इस चुनाव में जितने मत देने का हक़दार है, उनकी संख्या नीचे लिखे प्रकार द्वारा निश्चित की जाएगी—

(क) किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक चुने हुए व्यक्ति के उतने मत होंगे, जितने कि एक हजार के गुणित (multiples) उस भागफल (quotient) में हों जो राज्य की आबादी को उस सभा के चुने हुए सदस्यो की कुल संख्या से भाग देने से आए;

(ख) यदि एक हजार के उक्त गुणितो को लेने के बाद शेष पाँच सौ से कम न हो तो उपखण्ड (क) में बताए गए प्रत्येक सदस्य के मतो की संख्या मे एक और जोड़ दिया जाएगा;

(ग) ससद् के प्रत्येक चुने हुए सदस्य के मतो की संख्या वही होगी जो उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन राज्यो की विधान सभाओ के सदस्यों के लिए नियत सम्पूर्ण मत संख्या को, ससद् के दोनों सदनों के सदस्यों की कुल संख्या से भाग देने से आए, जिसमे आधे से अधिक भिन्न का एक गिना जाएगा तथा अन्य भिन्नों की ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा।

प्रस्तावित सविधान मे गणना की विधि के सम्बन्ध मे निम्न व्याख्या दी गई थी—"(१) बम्बई की जनसंख्या २०,८४६,८४० है। मान लिया बम्बई विधानमंडल के निर्वाचित सदस्यों की संख्या २०८ है (अर्थात् एक सदस्य एक लाख जनता का प्रतिनिधित्व करता है)। ऐसे निर्वाचित सदस्य के राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतों की संख्या जानने के लिए हमें पहले २०,८४६,८४० (जनसंख्या) को २०८ (जो कि

निर्वाचित सदस्यों की पूर्ण संख्या है) से भाग देना होगा और फिर लब्धि को १,००० से भाग देना होगा। इस उदाहरण में लब्धि १,००,२३६ है। इसलिए प्रत्येक सदस्य को १००,२३६/१००० अर्थात् १०० मत डालने का अधिकार होगा। (२३६ का कोई ध्यान नहीं किया क्योंकि वह ५०० से कम है)"।

"(२) पुनः बीकानेर की जनसंख्या १,२९२,९३८ है। मान लिया बीकानेर विधानमण्डल के निर्वाचित सदस्यों की संख्या १३० है (अर्थात् एक सदस्य लगभग दस हजार जनसंख्या का प्रतिनिधि है)। अब उपर्युक्त विधि के अनुसार यदि हम १,२९२,९३८ (अर्थात् जनसंख्या) को १३० (अर्थात् निर्वाचित सदस्यों की संख्या) से भाग देते हैं तो लब्धि ९९,४५ आती है। अतएव बीकानेर विधान-मण्डल का प्रत्येक सदस्य ९,९४५/१००० अर्थात् १० वोट डालने का अधिकारी होगा (शेष ९४५ को जो कि ५०० से अधिक है १,००० के समान गिना गया)।" पुनः "यदि राज्यों के विधान-मण्डलो के सदस्यों के मतों की पूर्ण संख्या उपर्युक्त गणना के अनुसार ७४,९४० हो और ससद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की सख्या ७५० हो, तो राष्ट्रपति के चुनाव में संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य के मतो की सख्या निकालने के लिए हमे ७४,९४० को ७५० से भाग देना होगा। इस प्रकार से ऐसे प्रत्येक सदस्य की मत संख्या $\frac{७४,९४०}{७५०} = ९९\frac{२३}{२५}$ अर्थात् १०० होगी ($\frac{२३}{२५}$ भिन्न को आधे से अधिक होने के कारण १ मान लिया जायगा)।"

१९५२ का राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति-चुनाव कानून भारतवर्ष के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी कुछ मामलो का नियन्त्रण करता है। चुनाव आयोग केन्द्रीय सरकार से सलाह लेकर एक चुनाव अधिकारी (Returning Officer), जिसका कार्यालय नई दिल्ली मे होता है, नियुक्त करता है। प्रत्येक उप-चुनाव अधिकारी चुनाव सम्बन्धी सारे कार्य करने के योग्य होता है। चुनाव आयोग प्रत्येक चुनाव के लिए मनोनयन (nomination) की, मनोनयन के लिए विश्वास-धन (Security), मनोनयन वापिस लेने की और मत-दान की अन्तिम तिथियों की घोषणा करता है।

संविधान द्वारा घोषित शर्तों को पूरा करने वाला कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों के लिए खड़ा हो सकता है। प्रत्येक प्रत्याशी का मनोनयन एक पूर्व निर्धारित पत्र पर, उसके द्वारा स्वीकृत व्यक्ति द्वारा प्रस्तावित तथा अन्य एक व्यक्ति द्वारा समर्थन प्राप्त करने पर होता है। प्रत्याशी को नाम वापिस लेने की भी व्यवस्था है। यदि किसी प्रत्याशी की मत-दान से पहले ही मृत्यु हो जाए तो चुनाव अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात को तुरन्त ही चुनाव आयोग को सूचित करे, चुनावो को स्थगित कर दे तथा सारी कार्यवाही नये सिरे से पुनः आरम्भ हो, मानो नया चुनाव हो रहा हो। यदि केवल एक ही व्यक्ति का मनोनयन हो तो उसे निर्वाचित घोषित किया जाए। यदि चुनाव लड़ा जाए तो निर्धारित नियमानुसार मत-दान करा कर चुनाव अधिकारी की देख-रेख मे मत-गणना करके परिणाम घोषित किया जाए। चुनाव अधिकारी का यह कर्त्तव्य है कि वह चुनाव आयोग, केन्द्रीय सर

कार को सूचित करे और केन्द्रीय सरकार परिणाम को सरकारी घोषणा-पत्र में प्रकाशित करे।

सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनाव-याचिका (election petition) ले जाने की व्यवस्था है। प्रार्थी इस बात पर याचिका प्रस्तुत कर सकता है कि निर्वाचित व्यक्ति का चुनाव अवैध है, अथवा वह स्वयं अथवा अन्य कोई व्यक्ति चुना गया है। मुकद्दमे की सुनवाई के पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय चुनाव-याचिका को रद्द, या निर्वाचित व्यक्ति के चुनाव को अवैध और प्रार्थी तथा अन्य किसी व्यक्ति को निर्वाचित घोषित कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय किसी भी पक्ष पर खर्चा डाल सकता है। किसी व्यक्ति के चुनाव को अवैध ठहराने के लिए आधारों का भी उल्लेख किया गया है। अपना निर्णय घोषित करने के पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि वह केन्द्रीय सरकार को अपना निर्णय सूचित करे।

राष्ट्रपति के चुनाव की रीति के मामले में बहुत से सुझाव रखे गए थे। कुछ सदस्य राष्ट्रपति का प्रत्यक्ष चुनाव चाहते थे। यह कहा गया था कि वह रीति जनतन्त्र के अनुसार थी तथा राष्ट्रपति जनता की प्रत्यक्ष (direct) इच्छा से चुना जाना चाहिए।[१] एक अन्य सुझाव यह था कि राष्ट्रपति को संसद्-सदस्य चुनें। किन्तु यह सुझाव नहीं माना गया क्योंकि ऐसा करने से राष्ट्रपति संसद् के बहुमत दल के हाथ का खिलौना बन जाता और उसकी स्वतन्त्रता तथा सम्मान के नष्ट होने का डर बना रहता। इन कारणों से राज्य-विधान सभाओं के सदस्यों को भी निर्वाचकगण में शामिल किया गया। राष्ट्रपति का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति (Proportional Representation) के अनुसार इकहरे-संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा होता है तथा ऐसे चुनाव में मतदान गुप्त रीति (Secret Ballot) से होता है।

राष्ट्रपति का हटाया जाना (Removal of President)—राष्ट्रपति अपने पद पर पाँच वर्ष तक रहता है, परन्तु वह उपराष्ट्रपति (Vice President) के नाम अपने दस्तखतों के साथ लेख द्वारा अपना पद छोड़ सकेगा अथवा संविधान का उल्लंघन करने पर उसे महाभियोग (impeachment) द्वारा हटाया जा सकेगा। उपराष्ट्रपति के नाम से भेजे गए त्याग-पत्र की सूचना उसके द्वारा लोकसभा के अध्यक्ष (Speaker of Lok Sabha) को तुरन्त दी जाएगी। कोई व्यक्ति जो राष्ट्रपति के पद पर है अथवा रह चुका है, उस पद के लिए दोबारा चुना जा सकेगा। संविधान का उल्लंघन करने के लिए जब राष्ट्रपति पर महाभियोग चलाना हो तब संसद् का कोई-सा सदन दोषारोपण (charge) कर सकता है। ऐसा दोषारोपण तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे दोषारोपण करने का आरम्भ किसी ऐसे प्रस्ताव में न हो जो कम-से-कम चौदह दिन की ऐसी लिखित सूचना के दिए जाने के बाद लाया गया है, जिस पर

---

१. इस सुझाव का बड़ा दोष यह था कि इससे राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री और कैबिनेट का विरोधी बन जाता। उसका परिणाम गत्यवरोध (deadlock) होता।

उस सदन के कम-से-कम १/४ सदस्यों ने हस्ताक्षर करके उस प्रस्ताव पर विचार करने का सुझाव दिया है। ऐसा प्रस्ताव उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए। जब संसद् का एक सदन इस प्रकार दोषारोपण कर चुके तब दूसरा सदन उस दोषारोपण की जाँच-पड़ताल करता या कराता है तथा राष्ट्रपति को इस जाँच के समय उपस्थित होने का अथवा अपना प्रतिनिधित्व कराने का अधिकार होता है। यदि जाँच करने के बाद राष्ट्रपति के विरुद्ध किए गए दोषारोपण की सिद्धि का ऐलान करने वाला प्रस्ताव दोषारोपण की जाँच करने या कराने वाले सदन के कुल सदस्यों के कम-से-कम दो तिहाई बहुमत से पास हो जाता है तो ऐसे प्रस्ताव का असर उसके पास होने की तारीख से राष्ट्रपति को अपने पद से हटाया जाना होगा। राष्ट्रपति की पदावधि के समाप्त होने से खाली जगह को भरने के लिए अवधि समाप्त होने से पहले से चुनाव कर लिया जाएगा। यदि राष्ट्रपति का पद भरने, इस्तीफा देने या हटाए जाने अथवा अन्य कारण से खाली हो तब खाली जगह को भरने के लिए चुनाव पद के खाली होने की तारीख के बाद जल्दी-से-जल्दी और हर हालत मे ६ महीने बीतने से पहले किया जाएगा तथा नया राष्ट्रपति अपने पद की शपथ लेने की तारीख से पाँच वर्ष की पूरी अवधि के लिए पद पर रहने का हकदार होगा।

राष्ट्रपति की योग्यताएँ (His Qualifications)—कोई आदमी राष्ट्रपति पद का पात्र न होगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो, पैंतीस वर्ष की उम्र पूरी न कर चुका हो तथा लोकसभा का सदस्य बनने की योग्यता न रखता हो। कोई आदमी जो भारत सरकार के अधीन अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उन दोनों सरकारों में से किसी की देख-रेख मे किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी (authority) के अधीन किसी लाभ के पद पर कार्य करता हो, राष्ट्रपति चुना जाने के योग्य न होगा। राष्ट्रपति न तो संसद् के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधानमण्डल के सदन का सदस्य होगा तथा यदि संसद् के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधानमण्डल के सदन का सदस्य राष्ट्रपति चुना जाए तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन की अपनी जगह राष्ट्रपति के नाते स्थान प्राप्त करने की तारीख से खाली कर दी है। राष्ट्रपति अन्य कोई लाभ का पद प्राप्त नहीं करेगा। उसे बिना किराया दिए सरकारी मकान के प्रयोग का हक होगा। उसे दूसरे भत्तों के अलावा १०,००० रु० मासिक वेतन मिलेगा। राष्ट्रपति के वेतन तथा भत्ते उसके कार्यकाल में कम नहीं किए जा सकते। उसे भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश के सामने अपने पद की शपथ लेनी पड़ती है।

राष्ट्रपति की पदावधि (Tenure)—राष्ट्रपति पाँच वर्ष के लिए चुना जाता है और दूसरी बार के लिए भी दोबारा चुना जा सकता है। लेकिन यह संदेहास्पद (doubtful) है कि क्या वह तीसरी बार भी चुना जा सकता है या नहीं।

संविधान में लिखा है कि राष्ट्रपति को दस हजार रुपया मासिक वेतन मिलेगा परन्तु डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद केवल २½ हजार रुपया ही लेते थे, अधिक नहीं।

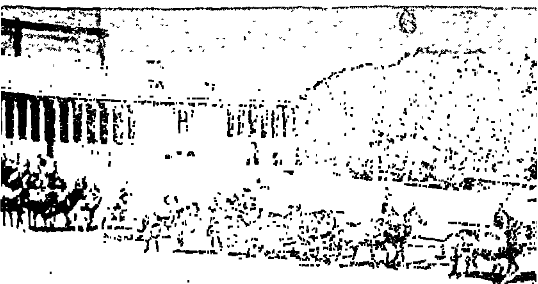
न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्तियाँ दी गई हैं। उसे न्याय करने, कानून बनाने, प्रशासन करने (executive) तथा धन सम्बन्धी (financial) क्षेत्रों मे शक्तियाँ प्राप्त है। वह सजा को माफ, कुछ दिनों के लिए रोक (reprieve), कुछ दिनों के लिए टाल (respite) अथवा कम कर सकता है। राष्ट्रपति फौजी अदालत द्वारा दी गई सजा या मौत की सजा को कुछ समय के लिए स्थगित (suspend), क्षमा (remit), अथवा अदल-बदल (commute) कर सकता है। उसकी ये शक्तियाँ उन मामलों में भी लागू हैं जिनमें कि सजा किसी ऐसे कानून को तोड़ने के विरुद्ध अपराध के लिए दी गई हो जिसका सम्बन्ध केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित किसी मामले से हो। राष्ट्रपति की इस शक्ति की कोई बात संघ की हथियारबन्द फौजों के किसी अफसर की फौजी अदालत द्वारा दी गई सजा की आज्ञा को कुछ दिनों के लिए रोक, क्षमा अथवा अदल-बदल या कम करने की कानून द्वारा दी गई शक्ति पर असर नहीं डालेगी। इस शक्ति का राज्यों के गवर्नरों, राजप्रमुखों की मृत्यु-दण्ड मे कमी करने, अदल-बदल करने, कुछ दिनो के लिए रोकने तथा माफ करने के अधिकारों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

१९५५ से १९५७ तक राष्ट्रपति ने इस अधिकार का प्रयोग करके कोई २०० दण्डित कैदियों की क्षमा-याचना स्वीकार की। १९५७ मे २०० क्षमा-याचना-पत्र भेजे गए और इनमें से केवल ८० की स्वीकृति प्रदान की गई। इससे एक वर्ष पूर्व १९२ क्षमा-याचना-पत्रों में से ६८ को दया भागी ठहराया गया। १९५५ मे १९९ में से ४५ को क्षमा-याचना प्राप्त हुई।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—राष्ट्रपति की विधायिनी शक्तियाँ बहुत अधिक हैं। वह समय-समय पर संसद् के सदनों को उस स्थान तथा उस समय पर बुलाता है जबकि वह ठीक समझे किन्तु उनके एक सत्र (session) की आखिरी बैठक और दूसरे सत्र की पहली बैठक के बीच मे ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं हो सकता। राष्ट्रपति समय-समय पर सदनों या प्रत्येक सदन को बिना तोड़े कुछ दिनों के लिए स्थगित कर सकता है और लोक सभा को भंग कर सकता है। राष्ट्रपति संसद् के किसी सदन को अथवा एक स्थान पर इकट्ठे हुए दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए सदस्यों से उपस्थित होने की माँग कर सकता है। वह संसद् के प्रत्येक सदन को सन्देश भेज सकता है और जिस सदन को इस प्रकार सन्देश भेजा गया हो वह सदन उस सन्देश द्वारा सुझाए गए मामले पर सहूलियत के अनुसार शीघ्रता से विचार करेगा। लोकसभा के साधारण चुनावों के बाद सत्र (session) के आरम्भ में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र में राष्ट्रपति संसद् के दोनों एकत्रित सदनों को सम्बोधित करेगा और उनके बुलाने का कारण बताएगा। संसद् के दोनों सदनों में पास किये जाने के बाद विधेयक (bill) को राष्ट्रपति के पास मंजूरी के लिए भेजा जाता है। कोई विधेयक उस समय तक कानून नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति उसे मंजूर न कर ले। जब किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेजा जाता है तो वह उस विधेयक को मंजूर कर सकता है अथवा

उसकी मंजूरी रोक सकता है और यदि वह धन विधेयक (money bill) न हो तो वह उस विधेयक को अपने सन्देश के साथ दुबारा विचारने के लिए सदनों को लौटा भी सकता है। यदि कोई विधेयक ससद् को दुबारा विचार करने के लिए लौटाया जाए तो उस सदन का कर्त्तव्य उस सन्देश पर विचार करना होगा। यदि संसद् के दोनों सदन उस विधेयक को कुछ घटा-बढ़ी के साथ अथवा ज्यों-का-त्यों ही दुबारा पास करें तो राष्ट्रपति को उस विधेयक को मजूर करना ही पड़ता है।

संविधान की धारा ३ व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना ससद् मे कोई ऐसा विधेयक नही लाया जा सकता जिसका उद्देश्य नए राज्यो का बनाना, हिस्सों की अदला-बदली, मौजूदा राज्यो की सीमा या नामो को बदलना हो।



राष्ट्रपति संसद् में उद्घाटन भाषण देने जा रहे हैं।

यदि कोई विधेयक एक सदन में पास हो चुका हो और दूसरे सदन मे भेज दिया गया हो और दूसरा सदन उसे नामंजूर करता है अथवा विधेयक मे किए जाने वाली अदल-बदल पर दोनों सदनों की पूरी तरह राय न मिलती हो तो राष्ट्रपति दोनो सदनो की संयुक्त बैठक (joint sitting) में बैठकर विचार करने और मत देने के लिए बुलाने की सूचना, सन्देश या लोक-अधिसूचना (public notification) द्वारा देगा। राष्ट्रपति सदनो को बुलाने की विज्ञप्ति (notification) की तारीख के बाद किसी भी समय दोनो सदनो की इकट्ठी बैठक बुला सकता है। और यदि वह ऐसा करता है, तो दोनों उसके मुताबिक बैठक में भाग लेंगे।

धारा १२३ के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह समाधान (satisfaction) हो जाए कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिए उसे मजबूर करने वाले हालात पैदा हो गए हैं तो वह ऐसे अध्यादेशों (Ordinances) को जारी कर सकेगा जो उसे हालात के अनुसार ठीक मालूम हों। ऐसे अध्यादेश का वही बल और असर होगा जो संसद् के कानून का होता है। किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश संसद् के दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा तथा संसद् के दोबारा इकट्ठा होने से छः सप्ताह खत्म होने पर अध्यादेश समाप्त हो जाएगा। अध्यादेश उस हालत में भी बेकार हो जायेगा यदि संसद् के दोनों सदन उसकी समाप्ति का प्रस्ताव पास करें। राष्ट्रपति अध्यादेश को किसी समय लौटा सकता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि एक संसदीय समिति बनाई जाए और किसी भी अध्यादेश को लागू करने से पहले राष्ट्रपति इस समिति से अनिवार्य रूप से सलाह करे। किन्तु वैधानिक पण्डितों का यह मत है कि इस प्रकार की व्यवस्था बिना संविधान में संशोधन किए नहीं की जा सकती। पुनश्च, आपत्ति के समय राष्ट्र के हित के लिये गोपनीयता (Secrecy) रखनी पड़ती है। इस सब के होने पर भी एक परिपाटी चलाई जा सकती है कि किसी भी अध्यादेश को प्रसारित करने से पहले राष्ट्रपति अनिवार्य रूप से संसद् सदस्यों की एक छोटी समिति से सलाह ले। इससे गणतन्त्रीय रंग आ जाएगी और कार्यमण्डल की स्वायत्त शक्ति के विरुद्ध जनता की दुर्भावना भी दूर हो जाएगा।

अंडेमान और निकोबार द्वीपसमूह के लिए राष्ट्रपति को नियम प्रसारित करने का अधिकार है। वे नियम संसद् द्वारा पारित कानूनों जैसी ही शक्ति रखते हैं।

वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियों के बारे में संविधान व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद् के दोनों सदनों के सामने भारत सरकार के उस वर्ष के लिए आय-व्यय के अन्दाजे का ब्यौरा रखवाएगा। 'वार्षिक वित्त-विवरण' (Annual Financial Statement) में रखे गए खर्चे के अनुमान (estimates) अलग-अलग आय और व्यय की विभिन्न मदों को प्रकट करेंगे। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना किसी अनुदान या सहायता की माँग न की जाएगी। राष्ट्रपति को पूरक (supplementary), अपर (additional) या अधिकाई (exceptional) अनुदानों की माँग करने का अधिकार है। उस अदल-बदल के प्रस्ताव के लिए सिफारिश की जरूरत नहीं है जो किसी कर को कम करे या समाप्त करे।

राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह 'वार्षिक वित्त-विवरण' भारत सरकार के हिसाब से सम्बन्ध रखने वाली 'भारत के महालेखा परीक्षक (Auditor-General of India) की रिपोर्ट', 'वित्त आयोग (Finance Commission) की सिफारिशें' तथा उन पर की गई 'कार्यवाही की रिपोर्ट', 'संघीय सेवा आयोग (Union Public Service Commission) की वार्षिक रिपोर्ट' और वे 'कारण' जिनकी वजह से किसी समय आयोग की सिफारिशों पर अमल न किया गया हो, संसद् के सामने रखवाये।

भारत का फुटकल धन कोष इसी के हाथ मे है। इस कोष से वह, संसद् द्वारा स्वीकृत होने के समय तक, धन दे सकता है। आयकर में राज्यों के भाग का निर्णय भी वही करता है। जूट-निर्यात-कर की एवज़ में वह किन्हीं राज्यों की वार्षिक सहायता की धन-राशि का निर्णय करता है। वह समय-समय पर वित्त आयोग नियुक्त करके केन्द्र और राज्यों के वित्त-सम्बन्धी मामलों मे इसकी सिफारिशों को कार्य-परिणत भी करता है।

कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Powers)—नये सविधान की धारा ५३ यह व्यवस्था करती है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ (subordinate) *अफ़सरो के द्वारा कर सकता है। संघ के रक्षा-बलो (Defence Forces) की सर्वोच्च* कमांड राष्ट्रपति को प्राप्त होगी लेकिन उसका प्रयोग कानून के अनुसार किया जाएगा।

धारा ७४ यह व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों को ठीक प्रकार से करने मे *सहायता तथा सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् (Council of* Ministers) होगी जिसका प्रधान प्रधान मन्त्री (Prime Minister) भी होगा। मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच न की जाएगी। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को नियुक्त करेगा और दूसरे मन्त्रियो की नियुक्ति प्रधान मन्त्री के परामर्श पर करेगा। मन्त्री अपने पद पर राष्ट्रपति के कृपा-काल तक रहेंगे। राष्ट्रपति मन्त्रियों को पद पर नियुक्त होने के समय पद तथा गोपनीयता की शपथ दिलायेगा। राष्ट्रपति भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति करेगा। महान्यायवादी राष्ट्रपति के कृपा-काल तक अपने पद पर बना रहेगा और उन भत्तों तथा वेतन को प्राप्त करेगा जिनको राष्ट्रपति नियत करेगा।

धारा ७७ के अनुसार भारत सरकार की सब कार्यपालिका कार्यवाही (executive action) राष्ट्रपति के नाम से की जाएगी। राष्ट्रपति के नाम पर नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिये गये आदेश तथा अन्य पत्रों (instruments) का प्रमाणीकरण उस प्रकार से किया जाएगा जैसा राष्ट्रपति द्वारा बनाये *जाने वाले नियमों मे बताया गया होगा तथा इस प्रकार की आज्ञा जिसे प्रमाण के* रूप मे स्वीकार किया गया हो या लेख की मान्यता पर आपत्ति (called in question) इस कारण न की जाएगी कि वह राष्ट्रपति द्वारा नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिया गया आदेश नही है। भारत सरकार का कार्य अधिक आसानी से किए जाने के लिए तथा मन्त्रियो मे काम के बँटवारे के लिए राष्ट्रपति नियम बना सकता है।

धारा ७८ के अनुसार, प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य राष्ट्रपति को संघ के प्रशासन के मामले से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रिमण्डल के उन निर्णयों और कानून के प्रस्तावों से जानकारी कराना है जिनके विषय में राष्ट्रपति की इच्छा हो। यदि राष्ट्रपति की इच्छा हो तो प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सामने उस मामले को रखेगा जिस पर किसी *मन्त्री ने तो निर्णय किया हो लेकिन मन्त्रिमण्डल ने विचार न किया हो।*

धारा १२३ के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह समाधान (satisfaction) हो जाए कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिए उसे मजबूर करने वाले हालात पैदा हो गए हैं तो वह ऐसे अध्यादेशों (Ordinances) को जारी कर सकेगा जो उसे हालात के अनुसार ठीक मालूम हों। ऐसे अध्यादेश का वही बल और असर होगा जो संसद् के कानून का होता है। किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश संसद् के दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा तथा संसद् के दोबारा इकट्ठा होने से छः सप्ताह खत्म होने पर अध्यादेश समाप्त हो जाएगा। अध्यादेश उस हालत में भी बेकार हो जायेगा यदि संसद् के दोनों सदन उसकी समाप्ति का प्रस्ताव पास करें। राष्ट्रपति अध्यादेश को किसी समय लौटा सकता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि एक संसदीय समिति बनाई जाए और किसी भी अध्यादेश को लागू करने से पहले राष्ट्रपति इस समिति से अनिवार्य रूप से सलाह करे। किन्तु वैधानिक पण्डितों का यह मत है कि इस प्रकार की व्यवस्था बिना संविधान में संशोधन किए नहीं की जा सकती। पुनश्च, आपत्ति के समय राष्ट्र के हित के लिये गोपनीयता (Secrecy) रखनी पड़ती है। इस सब के होने पर भी एक परिपाटी चलाई जा सकती है कि किसी भी अध्यादेश को प्रसारित करने से पहले राष्ट्रपति अनिवार्य रूप से संसद् सदस्यों की एक छोटी समिति से सलाह ले। इससे गणतन्त्रीय रंग आ जाएगा और कार्यमण्डल की स्वायत्त शक्ति के विरुद्ध जनता की दुर्भावना भी दूर हो जाएगा।

अंडेमान और निकोबार द्वीपसमूह के लिए राष्ट्रपति को नियम प्रसारित करने का अधिकार है। वे नियम संसद् द्वारा पारित कानूनों जैसी ही शक्ति रखते है।

वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)—राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियों के बारे में संविधान व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद् के दोनों सदनों के सामने भारत सरकार के उस वर्ष के लिए आय-व्यय के अन्दाजे का ब्यौरा रखवाएगा। 'वार्षिक वित्त-विवरण' (Annual Financial Statement) में रखे गए खर्चे के अनुमान (estimates) अलग-अलग आय और व्यय की विभिन्न मदों को प्रकट करेंगे। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना किसी अनुदान या सहायता की मांग न की जाएगी। राष्ट्रपति को पूरक (supplementary), अपर (additional) या अधिकाई (exceptional) अनुदानों की मांग करने का अधिकार है। उस अदल-बदल के प्रस्ताव के लिए सिफारिश की जरूरत नहीं है जो किसी कर को कम करे या समाप्त करे।

राष्ट्रपति का कर्तव्य है कि वह 'वार्षिक वित्त-विवरण' भारत सरकार के हिसाब से सम्बन्ध रखने वाली 'भारत के महालेखा परीक्षक (Auditor-General of India) की रिपोर्ट', 'वित्त आयोग (Finance Commission) की सिफारिशें' तथा उन पर की गई 'कार्यवाही की रिपोर्ट', 'संघीय सेवा आयोग (Union Public Service Commission) की वार्षिक रिपोर्ट' और वे 'कारण' जिनकी वजह से किसी समय आयोग की सिफारिशों पर अमल न किया गया हो, संसद् के सामने रखवाये।

भारत का फुटकल धन कोष इसी के हाथ में है। इस कोष से वह, ससद् द्वारा स्वीकृत होने के समय तक, धन दे सकता है। आयकर मे राज्यो के भाग का निर्णय भी वही करता है। जूट-निर्यात-कर की एवज में वह किन्ही राज्यों की वार्षिक सहायता की धन-राशि का निर्णय करता है। वह समय-समय पर वित्त आयोग नियुक्त करके केन्द्र और राज्यों के वित्त-सम्बन्धी मामलों मे इसकी सिफारिशों को कार्य-परिणत भी करता है।

कार्यपालिका शक्तियां (Executive Powers)—नये सविधान की धारा ५३ यह व्यवस्था करती है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ (subordinate) अफसरो के द्वारा कर सकता है। सघ के रक्षा-बलों (Defence Forces) की सर्वोच्च कमांड राष्ट्रपति को प्राप्त होगी लेकिन उसका प्रयोग कानून के अनुसार किया जाएगा।

धारा ७४ यह व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यो को ठीक प्रकार से करने में सहायता तथा सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers) होगी जिसका प्रधान प्रधान मन्त्री (Prime Minister) भी होगा। मन्त्रियो ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच न की जाएगी। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को नियुक्त करेगा और दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मन्त्री के परामर्श पर करेगा। मन्त्री अपने पद पर राष्ट्रपति के कृपा-काल तक रहेंगे। राष्ट्रपति मन्त्रियों को पद पर नियुक्त होने के समय पद तथा गोपनीयता की शपथ दिलायेगा। राष्ट्रपति भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति करेगा। महान्यायवादी राष्ट्रपति के कृपा-काल तक अपने पद पर बना रहेगा और उन भत्तों तथा वेतन को प्राप्त करेगा जिनको राष्ट्रपति नियत करेगा।

धारा ७७ के अनुसार भारत सरकार की सब कार्यपालिका कार्यवाही (executive action) राष्ट्रपति के नाम से की जाएगी। राष्ट्रपति के नाम पर नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिये गये आदेश तथा अन्य पत्रों (instruments) का प्रमाणीकरण उस प्रकार से किया जाएगा जैसा राष्ट्रपति द्वारा बनाये जाने वाले नियमों मे बताया गया होगा तथा इस प्रकार की आज्ञा जिसे प्रमाण के रूप मे स्वीकार किया गया हो या लेख की मान्यता पर आपत्ति (called in question) इस कारण न की जाएगी कि वह राष्ट्रपति द्वारा नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिया गया आदेश नही है। भारत सरकार का कार्य अधिक आसानी से किए जाने के लिए तथा मन्त्रियों मे काम के बँटवारे के लिए राष्ट्रपति नियम बना सकता है।

धारा ७८ के अनुसार, प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य राष्ट्रपति को संघ के प्रशासन के मामले से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रिमण्डल के उन निर्णयो और कानून के प्रस्तावों से जानकारी कराना है जिनके विषय में राष्ट्रपति की इच्छा हो। यदि राष्ट्रपति की इच्छा हो तो प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सामने उस मामले को रखेगा जिस पर किसी मन्त्री ने तो निर्णय किया हो लेकिन मन्त्रिमण्डल ने विचार न किया हो।

धारा १२३ के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह समाधान (satisfaction) हो जाए कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिए उसे मजबूर करने वाले हालात पैदा हो गए है तो वह ऐसे अध्यादेशों (Ordinances) को जारी कर सकेगा जो उसे हालात के अनुसार ठीक मालूम हों। ऐसे अध्यादेश का वही बल और असर होगा जो संसद् के कानून का होता है। किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश संसद् के दोनो सदनों के सामने रखा जाएगा तथा संसद् के दोबारा इकट्ठा होने से छः सप्ताह खत्म होने पर अध्यादेश समाप्त हो जाएगा। अध्यादेश उस हालत में भी बेकार हो जायेगा यदि संसद् के दोनों सदन उसकी समाप्ति का प्रस्ताव पास करें। राष्ट्रपति अध्यादेश को किसी समय लौटा सकता है।

यह सुझाव दिया जाता है कि एक संसदीय समिति बनाई जाए और किसी भी अध्यादेश को लागू करने से पहले राष्ट्रपति इस समिति से अनिवार्य रूप से सलाह करे। किन्तु वैधानिक पण्डितों का यह मत है कि इस प्रकार की व्यवस्था बिना संविधान मे संशोधन किए नही की जा सकती। पुनश्च, आपत्ति के समय राष्ट्र के हित के लिये गोपनीयता (Secrecy) रखनी पड़ती है। इस सब के होने पर भी एक परिपाटी चलाई जा सकती है कि किसी भी अध्यादेश को प्रसारित करने से पहले राष्ट्रपति अनिवार्य रूप से संसद् सदस्यों की एक छोटी समिति से सलाह ले। इससे गणतन्त्रीय रंग आ जाएगी और कार्यमण्डल की स्वायत्त शक्ति के विरुद्ध जनता की दुर्भावना भी दूर हो जाएगा।

अंडेमान और निकोबार द्वीपसमूह के लिए राष्ट्रपति को नियम प्रसारित करने का अधिकार है। वे नियम संसद् द्वारा पारित कानूनों जैसी ही शक्ति रखते है।

वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—राष्ट्रपति की वित्तीय शक्तियो के बारे में संविधान व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के बारे में संसद् के दोनों सदनों के सामने भारत सरकार के उस वर्ष के लिए आय-व्यय के अन्दाजे का ब्यौरा रखवाएगा। 'वार्षिक वित्त-विवरण' (Annual Financial Statement) मे रखे गए खर्चे के अनुमान (estimates) अलग-अलग आय और व्यय की विभिन्न मदों को प्रकट करेंगे। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना किसी अनुदान या सहायता की माँग न की जाएगी। राष्ट्रपति को पूरक (supplementary), अपर (additional) या अधिकाई (exceptional) अनुदानों की माँग करने का अधिकार है। उस अदल-बदल के प्रस्ताव के लिए सिफारिश की जरूरत नही है जो किसी कर को कम करे या समाप्त करे।

राष्ट्रपति का कर्त्तव्य है कि वह 'वार्षिक वित्त-विवरण' भारत सरकार के हिसाब से सम्बन्ध रखने वाली 'भारत के महालेखा परीक्षक (Auditor-General of India) की रिपोर्ट', 'वित्त आयोग (Finance Commission) की सिफारिशें' तथा उन पर की गई 'कार्यवाही की रिपोर्ट', 'संघीय सेवा आयोग (Union Public Service Commission) की वार्षिक रिपोर्ट' और वे 'कारण' जिनकी वजह से किसी समय आयोग की सिफारिशों पर अमल न किया गया हो, संसद् के सामने रखवाये।

भारत का फुटकल धन कोष इसी के हाथ में है। इस कोष से वह, संसद् द्वारा स्वीकृत होने के समय तक, धन दे सकता है। आयकर में राज्यों के भाग का निर्णय भी वही करता है। जूट-निर्यात-कर की एवज में वह किन्हीं राज्यों की वार्षिक सहायता की धन-राशि का निर्णय करता है। वह समय-समय पर वित्त आयोग नियुक्त करके केन्द्र और राज्यों के वित्त-सम्बन्धी मामलो मे इसकी सिफारिशो को कार्य-परिणत भी करता है।

कार्यशालिका शक्तियाँ (Executive Powers)—नये संविधान की धारा ५३ यह व्यवस्था करती है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त है और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ (subordinate) अफसरो के द्वारा कर सकता है। सघ के रक्षा-बलों (Defence Forces) की सर्वोच्च कमांड राष्ट्रपति को प्राप्त होगी लेकिन उसका प्रयोग कानून के अनुसार किया जाएगा।

धारा ७४ यह व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति को अपने कार्यों को ठीक प्रकार से करने में सहायता तथा सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) होगी जिसका प्रधान प्रधान मन्त्री (Prime Minister) भी होगा। मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय मे जाँच न की जाएगी। राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को नियुक्त करेगा और दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मन्त्री के परामर्श पर करेगा। मन्त्री अपने पद पर राष्ट्रपति के कृपा-काल तक रहेंगे। राष्ट्रपति मन्त्रियों को पद पर नियुक्त होने के समय पद तथा गोपनीयता की शपथ दिलायेगा। राष्ट्रपति भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति करेगा। महान्यायवादी राष्ट्रपति के कृपा-काल तक अपने पद पर बना रहेगा और उन भत्तों तथा वेतन को प्राप्त करेगा जिनको राष्ट्रपति नियत करेगा।

धारा ७७ के अनुसार भारत सरकार की सब कार्यपालिका कार्यवाही (executive action) राष्ट्रपति के नाम से की जाएगी। राष्ट्रपति के नाम पर नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिये गये आदेश तथा अन्य पत्रों (instruments) का प्रमाणीकरण उस प्रकार से किया जाएगा जैसा राष्ट्रपति द्वारा बनाये जाने वाले नियमों में बताया गया होगा तथा इस प्रकार की आज्ञा जिसे प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया हो या लेख की मान्यता पर आपत्ति (called in question) इस कारण न की जाएगी कि वह राष्ट्रपति द्वारा नियम आदि के अनुसार भली प्रकार से दिया गया आदेश नही है। भारत सरकार का कार्य अधिक आसानी से किए जाने के लिए तथा मन्त्रियों मे काम के बँटवारे के लिए राष्ट्रपति नियम बना सकता है।

धारा ७८ के अनुसार, प्रधान मन्त्री का कर्त्तव्य राष्ट्रपति को संघ के प्रशासन के मामले से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रिमण्डल के उन निर्णयों और कानून के प्रस्तावों से जानकारी कराना है जिनके विषय में राष्ट्रपति की इच्छा हो। यदि राष्ट्रपति की इच्छा हो तो प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल के सामने उस मामले को रखेगा जिस पर किसी मन्त्री ने तो निर्णय किया हो लेकिन मन्त्रिमण्डल ने विचार न किया हो।

राष्ट्रपति राज्यों के राज्यपालों (Governors) की नियुक्ति करता है। वह राज्यों के राजप्रमुखों का अनुमोदन करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्चन्यायालयों के न्यायाधीशों, वित्त आयोग के सदस्यों, लोक सेवा आयोग के सभापति तथा सदस्यो, जल के बँटवारे में रुकावटों (interference) की जाँच करने वाले आयोग (Commission), पिछड़ी जातियों तथा कबीलों के लिए स्पेशल ऑफ़ीसर, अनुसूचित क्षेत्रों (Scheduled Areas) के प्रशासन के बारे में रिपोर्ट करने के लिए आयोग और पिछड़ी जातियों की दशा की जाँच करने वाले आयोग की नियुक्ति करता है।

विशेष परिस्थितियो मे राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्चन्यायालयो के न्यायाधीशो, केन्द्रीय तथा राज्यों के सेवा आयोगों के अध्यक्षों और सदस्यों को पदच्युत कर सकता है।

उसे संसद् के दोनों सदनों के एकत्रित अधिवेशन, सर्वोच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति और अखिल भारतवर्षीय सेवाओं की भर्ती सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार है।

महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) इत्यादि द्वारा खाते के पत्र तथा कार्य-विधि इत्यादि सम्बन्धी नियम जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय बनाता है, के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति की आवश्यकता है।

राष्ट्रपति, देश का प्रमुख होने के नाते, देश से राजदूत तथा अन्य पदाधिकारियों को भेजता है तथा दूसरे देशों के राजदूतों के परिचय-पत्र स्वीकार करता है।

भारत के राष्ट्रपति को युद्ध, शान्ति और सन्धि करने का अधिकार है अथवा नही; इस विषय मे एक मत नही है। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह अधिकार ससद् का है, राष्ट्रपति का नही। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि संविधान मे यह अधिकार स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति को नहीं दिया गया, किन्तु इन बातो का उल्लेख उस सूची में आता है जिसमें केन्द्रीय संसद् के कार्यों और विभागों का वर्णन है। धारा २४६ के अनुसार, केन्द्र के कार्यों के विषय मे कानून बनाने का पूर्ण अधिकार संसद् को है। इसका यह अर्थ हुआ कि युद्ध, शान्ति, सन्धि या विदेशी मामलों का कोई भी कानून केवल संसद् ही बना सकती है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि युद्ध, शान्ति अथवा सन्धि सम्बन्धी अधिकार संसद् को प्राप्त हैं। विदेशी मामलों की नित्य-प्रति की प्रगति, विचार-विमर्श, तथा सन्धियों का करना राष्ट्रपति का अधिकार है, क्योंकि संसद् इनका पूर्ण प्रबन्ध नहीं कर पाती। पुनश्च, कार्यमण्डल अपनी दैनिक क्रियाओं द्वारा इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न कर दे कि युद्ध अवश्यम्भावी हो जाए और ससद् के पास और कोई चारा ही न रह जाए। सन्धियों और शान्ति करने के विषय में भी यही बात लागू होती है।

राष्ट्रपति को राज्यों के कार्य का एकीकरण (co-ordination), निर्देश और नियंत्रण का अधिकार है। केन्द्रीय सरकार को राज्यो को उचित आदेश देने का अधिकार है। सैनिक तथा राष्ट्रीय महत्व के यातायात और प्रसार सम्बन्धी निर्माण

और देख-भाल के आदेश केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को दे सकती है। राज्य की सीमा में रेलों की रक्षा के लिए भी आदेश दिये जा सकते हैं। नीति की तालमेल और राज्यों के झगड़ों को निपटाने के सम्बन्ध मे राष्ट्रपति एक अन्तर्-राज्य सलाह परिषद् की नियुक्ति कर सकता है।

धारा २३९ के अनुसार, प्रत्येक केन्द्रीय प्रदेश का शासन, राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त प्रशासक के माध्यम से करता है। राष्ट्रपति किसी भी राज्य को छूते हुए केन्द्रीय प्रदेश के शासन के लिए उस राज्य के राज्यपाल को प्रशासक नियुक्त कर सकता है। वह अण्डेमान, निकोबार, लकादिव, मिनिकाय और अमीनदिव द्वीप-समूहों की शान्ति, प्रगति और सुशासन के लिए अधिनियम बना सकता है। इस प्रकार का अधिनियम भले ही संसद् द्वारा बनाये गये अथवा केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए बनाये गये किसी भी कानून को रद्द करे, अथवा सशोधन कर दे।

सैनिक शक्तियां (Military Powers)—यह सत्य है कि राष्ट्रपति देश के रक्षा-बलों (Defence Forces) का सर्वोच्च सेनापति है लेकिन राष्ट्रपति सैनिक शक्तियो का प्रयोग संसद् द्वारा निश्चित रीति के अनुसार करता है। ससद् सेनाओ में भर्ती, ट्रेनिंग, देख-भाल, नियन्त्रण तथा नौकरी के लिए कानून बना सकती है। संसद् कानून बना कर युद्ध-घोषणा करने और शान्ति की बातचीत करने की रीति निश्चित कर सकती है। राष्ट्रपति ससद् की मंजूरी के बिना या मजूरी के पहले के ज्ञान (in anticipation of the sanction) के बिना न युद्ध का ऐलान कर सकता है और न सेनाओ को आज्ञा दे सकता है। यह स्पष्ट है कि इस विषय मे अमेरिका के राष्ट्रपति की स्थिति भारत के राष्ट्रपति की स्थिति से सर्वथा भिन्न है।

राजनयिक शक्तियां (Diplomatic Powers)—राष्ट्रपति की राजनयिक शक्तियां भी बहुत अधिक हैं। उनमे वे सब मामले आते है जिनके द्वारा संघ (Union) दूसरे देशो से सम्बन्ध स्थिर करता है। किन्तु इन मामलों की वित्तीय शक्तियां (financial powers) संसद् को प्राप्त है। भारत के राष्ट्रपति तथा मन्त्री दूसरे देशों से समझौतो और इकरारनामों की बातचीत कर सकते हैं लेकिन उनको मजूर करना या नामंजूर करना संसद् का कार्य है। राष्ट्रपति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह विदेशों मे राजदूत नियुक्त करता है और उन देशों के प्रतिनिधियों का स्वागत करता है जिनको संघ की संसद् ने मान्यता दी है।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां (Emergency Powers of President)—संविधान का भाग १८ राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों से सम्बन्ध रखता है। सविधान तीन प्रकार के संकटों का जिक्र करता है—

(१) आंतरिक गड़बड़ से उत्पन्न संकट।

(२) युद्ध से उत्पन्न संकट।

(३) संविधान का उल्लंघन और वित्तीय संकट।

(१) युद्ध या अन्दरूनी अशान्ति के बारे मे धारा ३५२ व्यवस्था करती है कि

राष्ट्रपति राज्यो के राज्यपालों (Governors) की नियुक्ति करता है। वह राज्यों के राजप्रमुखों का अनुमोदन करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, उच्चन्यायालयो के न्यायाधीशों, वित्त आयोग के सदस्यों, लोक सेवा आयोग के सभापति तथा सदस्यों, जल के बँटवारे मे रुकावटों (interference) की जाँच करने वाले आयोग (Commission), पिछड़ी जातियों तथा कबीलों के लिए स्पेशल ऑफीसर, अनुसूचित क्षेत्रों (Scheduled Areas) के प्रशासन के बारे में रिपोर्ट करने के लिए आयोग और पिछड़ी जातियो की दशा की जाँच करने वाले आयोग की नियुक्ति करता है।

विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्चन्यायालयों के न्यायाधीशों, केन्द्रीय तथा राज्यों के सेवा आयोगो के अध्यक्षों और सदस्यों को पदच्युत कर सकता है।

उसे संसद् के दोनों सदनो के एकत्रित अधिवेशन, सर्वोच्च न्यायालय के पदाधिकारियो और कर्मचारियो की नियुक्ति और अखिल भारतवर्षीय सेवाओं की भर्ती सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार है।

महालेखा-परीक्षक (Auditor-General) इत्यादि द्वारा खाते के पत्र तथा कार्य-विधि इत्यादि सम्बन्धी नियम जिन्हें सर्वोच्च न्यायालय बनाता है, के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति की आवश्यकता है।

राष्ट्रपति, देश का प्रमुख होने के नाते, देश से राजदूत तथा अन्य पदाधिकारियो को भेजता है तथा दूसरे देशों के राजदूतों के परिचय-पत्र स्वीकार करता है।

भारत के राष्ट्रपति को युद्ध, शान्ति और सन्धि करने का अधिकार है अथवा नहीं; इस विषय में एक मत नहीं है। इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह अधिकार संसद् का है, राष्ट्रपति का नही। इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि सविधान मे यह अधिकार स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति को नहीं दिया गया, किन्तु इन बातों का उल्लेख उस सूची में आता है जिसमें केन्द्रीय संसद् के कार्यों और विभागों का वर्णन है। धारा २४६ के अनुसार, केन्द्र के कार्यों के विषय में कानून बनाने का पूर्ण अधिकार संसद् को है। इसका यह अर्थ हुआ कि युद्ध, शान्ति, सन्धि या विदेशी मामलों का कोई भी कानून केवल ससद् ही बना सकती है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि युद्ध, शान्ति अथवा सन्धि सम्बन्धी अधिकार ससद् को प्राप्त हैं। विदेशी मामलों की नित्य-प्रति की प्रगति, विचार-विमर्श, तथा सन्धियों का करना राष्ट्रपति का अधिकार है, क्योंकि संसद् इनका पूर्ण प्रबन्ध नही कर पाती। पुनश्च, कार्यमण्डल अपनी दैनिक क्रियाओं द्वारा इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न कर दे कि युद्ध अवश्यम्भावी हो जाए और संसद् के पास और कोई चारा ही न रह जाए। सन्धियाँ और शान्ति करने के विषय में भी यही बात लागू होती है।

राष्ट्रपति को राज्यों के कार्य का एकीकरण (co-ordination), निर्देश और नियंत्रण का अधिकार है। केन्द्रीय सरकार को राज्यो को उचित आदेश देने का अधिकार है। सैनिक तथा राष्ट्रीय महत्त्व के यातायात और प्रसार सम्बन्धी निर्माण

और देख-भाल के आदेश केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को दे सकती है। राज्य की सीमा मे रेलो की रक्षा के लिए भी आदेश दिये जा सकते हैं। नीति की तालमेल और राज्यों के झगड़ों को निपटाने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति एक अन्तर्-राज्य सलाह परिषद् की नियुक्ति कर सकता है।

धारा २३९ के अनुसार, प्रत्येक केन्द्रीय प्रदेश का शासन, राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त प्रशासक के माध्यम से करता है। राष्ट्रपति किसी भी राज्य को छूते हुए केन्द्रीय प्रदेश के शासन के लिए उस राज्य के राज्यपाल को प्रशासक नियुक्त कर सकता है। वह अण्डेमान, निकोबार, लकादिव, मिनिकाय और अमीनदिव द्वीप-समूहो की शान्ति, प्रगति और सुशासन के लिए अधिनियम बना सकता है। इस प्रकार का अधिनियम भले ही संसद् द्वारा बनाये गये अथवा केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए बनाये गये किसी भी कानून को रद्द करे, अथवा संशोधन कर दे।

सैनिक शक्तियां (Military Powers)—यह सत्य है कि राष्ट्रपति देश के रक्षा-बलों (Defence Forces) का सर्वोच्च सेनापति है लेकिन राष्ट्रपति सैनिक शक्तियों का प्रयोग संसद् द्वारा निश्चित रीति के अनुसार करता है। ससद् सेनाओ में भर्ती, ट्रेनिंग, देख-भाल, नियन्त्रण तथा नौकरी के लिए कानून बना सकती है। संसद् कानून बना कर युद्ध-घोषणा करने और शान्ति की बातचीत करने की रीति निश्चित कर सकती है। राष्ट्रपति संसद् की मजूरी के बिना या मंजूरी के पहले के ज्ञान (in anticipation of the sanction) के बिना न युद्ध का ऐलान कर सकता है और न सेनाओ को आज्ञा दे सकता है। यह स्पष्ट है कि इस विषय मे अमेरिका के राष्ट्रपति की स्थिति भारत के राष्ट्रपति की स्थिति से सर्वथा भिन्न है।

राजनयिक शक्तियां (Diplomatic Powers)—राष्ट्रपति की राजनयिक शक्तियां भी बहुत अधिक हैं। उनमें वे सब मामले आते हैं जिनके द्वारा संघ (Union) दूसरे देशों से सम्बन्ध स्थिर करता है। किन्तु इन मामलों की वित्तीय शक्तियां (financial powers) संसद् को प्राप्त हैं। भारत के राष्ट्रपति तथा मन्त्री दूसरे देशों से समझौतो और इकरारनामो की बातचीत कर सकते हैं लेकिन उनको मंजूर करना या नामजूर करना संसद् का कार्य है। राष्ट्रपति अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे अपने देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह विदेशों मे राजदूत नियुक्त करता है और उन देशों के प्रतिनिधियों का स्वागत करता है जिनको संघ की संसद् ने मान्यता दी है।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियां (Emergency Powers of President)—सविधान का भाग १८ राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियो से सम्बन्ध रखता है। सविधान तीन प्रकार के संकटों का जिक्र करता है—

(१) आंतरिक गड़बड़ से उत्पन्न संकट।

(२) युद्ध से उत्पन्न संकट।

(३) संविधान का उल्लंघन और वित्तीय संकट।

(१) युद्ध या अन्दरूनी अशान्ति के बारे मे धारा ३५२ व्यवस्था करती है कि

यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि गम्भीर संकट मौजूद है जिससे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा (security) को युद्ध, बाहरी हमले या अन्दरूनी गड़बड़ के कारण भय है तो वह ऐलान द्वारा उसकी घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा को बाद में की गई दूसरी घोषणा से समाप्त किया जा सकता है। उसे संसद् के प्रत्येक सदन के सामने रखा जाएगा। ऐसी घोषणा दो मास के समाप्त होने पर लागू नहीं रहेगी जब तक कि संसद् के दोनों सदन इस समय के समाप्त होने से पहले ही उसके पक्ष में प्रस्ताव पास न करें। यदि ऐसी कोई घोषणा उस समय निकाली गई है जब कि लोकसभा भंग हो चुकी है या लोकसभा निश्चित किए गए दो मास के अन्दर भंग हो जाती है और राज्यसभा घोषणा के पक्ष में प्रस्ताव पास कर देती है, लेकिन लोक-सभा उस समय के समाप्त होने से पूर्व कोई प्रस्ताव पास नहीं करती है तो घोषणा उस तारीख से, जिसमें लोकसभा दुबारा चुनी जाकर प्रथम बार बैठती है, तीस दिन के समाप्त होने के बाद चालू न रहेगी जब तक कि उक्त तीस दिन के समाप्त होने से पहले घोषणा के पक्ष में लोकसभा प्रस्ताव पास नहीं कर देती। यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि संकट उत्पन्न होने का बहुत अधिक भय है तो वह वास्तव में युद्ध या बाहरी हमला या अन्दरूनी गड़बड़ न होने पर भी संकटकाल की घोषणा कर सकता है।

धारा ३५३ संकटकाल की घोषणा के प्रभावों के विषय में है। पहला प्रभाव यह होता है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति का फैलाव किसी राज्य को इस बारे में निर्देश देने तक होगा कि वह राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस प्रकार प्रयोग करे। दूसरा प्रभाव यह है कि किसी विषय के बारे में कानून बनाने की संसद् की शक्ति के अधीन ऐसे कानून बनाने की शक्ति भी होगी, जो उस विषय के बारे में संघ या संघ के अफसरों तथा अधिकारियों को शक्तियां या कर्त्तव्य सौंपती हो या शक्तियों के दिये जाने और कर्त्तव्यों के सौंपे जाने का अधिकार देती हो चाहे फिर वह विषय संघ सूची (Union List) में न हो। धारा ३५४ के अनुसार, संकटकाल की घोषणा के काल में राष्ट्रपति आज्ञा द्वारा निर्देश दे सकेगा कि इस संविधान की धारा २६८ से २७९ तक की सभी या कुछ व्यवस्थाएँ (provisions) काम में नहीं आयेंगी अथवा ऐसे अपवादों (exceptions) या रूप-भेदों (modifications) के अधीन प्रयोग की जाएँगी जिनको वह उचित समझे। इस प्रकार की प्रत्येक आज्ञा संसद् के सामने लाई जाएगी। धारा ३५५ के अनुसार बाहरी हमले और अन्दरूनी गड़बड़ी से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना तथा प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार चलाई जाये, यह देखभाल करना संघ का कर्त्तव्य होगा।

संकटकाल की घोषणा का एक अन्य प्रभाव यह होगा कि संविधान की धारा १९ में दी गई अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताएँ कुछ समय के लिए रुक जाएँगी। सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को भी बीच में आने की शक्ति नहीं होगी चाहे धारा १९ में दिए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन विधान सभा करे या कार्यपालिका।

(२) दूसरे प्रकार का संकट उस समय पैदा होता है जबकि किसी राज्य का

संवैधानिक तन्त्र (constitutional machinery) टूट जाता है। धारा ३५५ यह स्पष्ट कर देती है कि बाहरी हमले और अन्दरूनी गड़बड़ से प्रत्येक राज्य की रक्षा करना तथा प्रत्येक राज्य की सरकार संवैधानिक व्यवस्थाओं के अनुसार चलाई जाय यह अच्छी तरह देखना संघ का कर्त्तव्य होगा। कोई आश्चर्य नहीं कि धारा ३५६ व्यवस्था करती है कि यदि राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख से रिपोर्ट मिलने पर या किसी अन्य प्रकार के राष्ट्रपति को विश्वास हो जाने पर ऐसी हालत पैदा हो गई है कि जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के अनुसार नही चलाया जा सकता तो राष्ट्रपति घोषणा द्वारा उस राज्य की सरकार के सभी या कुछ काम, जैसी हालत हो, राज्यपाल या राजप्रमुख को प्राप्त शक्तियां अपने हाथ में ले सकेगा। वह घोषणा कर सकेगा कि राज्य के विधानमण्डल की शक्तियां संसद् के प्राधिकार (authority) के द्वारा या अधीन काम मे लाई जाएँगी। वह ऐसी प्रासंगिक (incidental) तथा अनुवर्ती (consequential) व्यवस्थाएँ कर सकेगा जोकि राष्ट्रपति की घोषणा को लागू करने के लिए आवश्यक या वांछनीय दिखाई देंगी। लेकिन राष्ट्रपति को यह अधिकार न होगा कि वह उच्च न्यायालय की किसी शक्ति को अपने हाथ मे ले या उच्च न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाली किसी व्यवस्था को स्थगित कर दे। किसी ऐसी घोषणा को दूसरी घोषणा के द्वारा रद्द किया जा सकता है। इस धारा के अधीन प्रत्येक ऐसी घोषणा संसद् के दोनो सदनो के सामने रखी जाएगी और दो मास बीतने पर समाप्त हो जाएगी यदि उस समय से पूर्व संसद् के दोनों सदन उसे पास करके उसका अनुमोदन न करें। यदि कोई ऐसी घोषणा उस समय निकाली गई है, जबकि लोकसभा भंग हो या दो महीने के अन्दर भंग हो जाए और राज्य सभा घोषणा के समर्थन में प्रस्ताव पास कर दे लेकिन लोकसभा उस समय के समाप्त होने से पूर्व कोई प्रस्ताव पास नही करती है तो घोषणा उस तारीख से, जिसमें लोकसभा दोबारा चुनी जाकर प्रथम बार बैठती है, तीस दिन के समाप्त होने के बाद चालू न रहेगी जब तक कि तीस दिन के समाप्त होने से पहले लोकसभा घोषणा के समर्थन में प्रस्ताव पास न कर दे। ऐसी घोषणा ६ मास के बाद समाप्त हो जाती है। संकट काल का समय एक बार मे ६ मास बढ़ाया जा सकता है और अधिक से अधिक ३ वर्ष तक।

धारा ३५७ के अनुसार, संकटकाल की घोषणा के बाद राज्य के विधान-मण्डल की शक्तियाँ संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन काम मे लाई जाएँगी। लेकिन संसद् यह शक्ति राष्ट्रपति को दे सकती है और उसको अधिकार दे सकती है कि वह उन शक्तियों को किसी को भी सौंप सकता है जिसको वह उचित समझे। जब लोकसभा की बैठक न हो रही हो तब व्यय के लिए संसद् की मंजूरी न मिलने तक राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि (Consolidated Fund) से व्यय करने की आज्ञा दे सकता है।

धारा ३५८ के अनुसार, जब संकटकाल की घोषणा लागू हो तब धारा १९ के द्वारा नागरिकों को दिए गये अधिकारों पर रोक लगाने का अधिकार सरकार को

प्राप्त है। धारा ३५९ के अनुसार, संकटकाल की घोषणा के दौरान में राष्ट्रपति आदेश के द्वारा ऐलान कर सकता है कि संविधान के भाग ३ मे. दिए गए मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए किसी न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार संकटकाल या कम समय के लिए स्थगित रहेगा। ऐसा आदेश सारे भारत या उसके किसी भाग पर लागू हो सकता है। ऐसे प्रत्येक आदेश को संसद् के दोनों सदनो. के सामने रखा जाना चाहिए।

इस प्रकार की आपत्ति १९५१ में पंजाब मे आई थी। मुख्यमन्त्री ने १६ जून १९५१ को अपना त्याग-पत्र दिया और २० जून, १९५१ को राज्य में राष्ट्रपति का शासन स्थापित हो गया। राष्ट्रपति के घोषणा-पत्र में आदेश था कि पंजाब सरकार के सारे कार्य राष्ट्रपति ने अपने हाथ मे ले लिए हैं। एक और आज्ञा द्वारा सारे अधिकार राज्यपाल को दे दिये गये जो राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने लगा। पंजाब की मन्त्रि-परिषद् को अनुलम्बित कर दिया गया। यह घोषणा केवल दो मास के लिए थी किन्तु संसद् ने अपने प्रस्तावों द्वारा इसे दो बार बढ़ाया। मई १९५२ में यह आज्ञा वापिस ले ली गई।

५ मार्च, १९५३ मे एक इसी प्रकार की आज्ञा पटियाला, पूर्वी पंजाब राज्य संघ के लिए प्रसारित की गई थी। राजप्रमुख को केन्द्रीय सरकार की देख-रेख और नियन्त्रण मे शासन करने के लिए अधिकृत कर दिया गया। जब राज्य में कानून और व्यवस्था स्थापित हुई और प्रदेश में राजनैतिक स्थिरता स्थापित हो गई तो यह आज्ञा वापिस ले ली गई।

त्रावनकोर-कोचीन में भी राजनैतिक अस्थिरता के कारण राष्ट्रपति का शासन हो गया था। उसी वर्ष दिसम्बर मास में केरल में भी राष्ट्रपति का शासन स्थापित हुआ था। इसकी आधारशिला थी राज्य-पुनर्गठन की समस्या।

नवम्बर १९५४ में आंध्र-प्रदेश में संवैधानिक आपत्ति उपस्थित हुई। टी० प्रकाशम-मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। विरोधी-पक्ष ने राज्यपाल से सरकार बनाने के लिए प्रस्ताव किया। आंध्र प्रदेश में यह धारणा थी कि इस समस्या को सुलझाने का एक उपाय नये चुनाव कराना है। राज्यपाल ने विरोधी-पक्ष को मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिये बुलाने से इन्कार कर दिया। प्रकाशम और उसके साथी नये चुनावों के अन्त तक कामचलाऊ सरकार बनाने के लिए राजी नहीं हुए। परिणामतः राष्ट्रपति ने राज्य का शासन अपने हाथ में ले लिया। लोकसभा ने राष्ट्रपति की आज्ञा का समर्थन किया। यह प्रस्ताव किया गया कि प्रकाशम मन्त्रिमण्डल के त्याग-पत्र के कारण हुई आपत्ति का एकमात्र उपयुक्त संवैधानिक हल यही है।

३१ जुलाई, १९५९ को राष्ट्रपति ने केरल राज्य की बागडोर को अपने हाथों मे ले लिया था। उस समय साम्यवादियों के शासन के विरुद्ध विद्रोह हो रहा था। परिस्थितियाँ बिगड़ चुकी थी। अतः राष्ट्रपति को कदम उठाना ही पड़ा। साम्यवादियों ने तो राष्ट्रपति के इस हस्तक्षेप का खण्डन किया किन्तु राष्ट्र के अन्य राजनैतिक दलों

द्वारा राष्ट्रपति के इस हस्तक्षेप की प्रशंसा की गई, क्योंकि सरकार ने उचित समय पर पग उठा कर प्रदेश को अराजकता से बचा लिया था।

वी० पी० मेनन (V. P. Menon) के अनुसार, "यदि केन्द्रीय सरकार इस दिशा में पग न उठाती तो केरल के लोग स्वयं ही साम्यवादी सरकार को केरल से खदेड़ देते। उनके अत्याचार और भयभीत करने की नीति ने समस्या को और अधिक जटिल बना दिया है। राष्ट्रपति के हस्तक्षेप के समय केरल प्रदेश में कोई भी ऐसी सरकार न थी जिसे क्रियात्मक सरकार कहा जा सकता। किसी असाम्यवादी के लुट जाने, मिट जाने, आक्रमण किए जाने, गुण्डों द्वारा आहत होने पर भी पुलिस कोई पग न उठाती थी। यहाँ तक कि न्यायालयों को भी नपुंसक बना दिया गया था। लोगों के समक्ष दो ही बातें रखी गई—या तो वे साम्यवादियों की इस अराजकता को स्वीकार कर लें या फिर मौलिक अधिकारों की रक्षा चाहें। लोगों ने दूसरा मार्ग ही ग्रहण किया।"

(३) वित्तीय संकट (Financial Emergency) के विषय मे धारा ३६० व्यवस्था करती है कि यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि ऐसे हालात पैदा हो गए है कि जिससे भारत अथवा उसके किसी भाग की आर्थिक स्थिरता (stability) संकट मे है तो वह इसकी घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा को दूसरी घोषणा द्वारा रद्द भी किया जा सकता है। यदि संसद् के दोनों सदन उसका अनुमोदन (approve) न करें तो यह घोषणा दो मास के बाद समाप्त भी हो जाती है। वित्तीय संकट के दौरान में संघ की कार्यपालिका शक्ति किसी राज्य को कुछ ऐसे निश्चित वित्तीय नियमों (financial rules) का पालन करने के बारे में निर्देश देने तक बढ़ जाती है जिनको उस कार्य के लिए आवश्यक और उचित समझा जाए। ऐसे निर्देश में राज्य की नौकरी करने वाले नौकरों के सभी या कुछ वर्गों के वेतनों और भत्तों में कमी चाहने वाली व्यवस्थाएं भी शामिल हो सकती हैं। वह राज्यों के विधानमण्डलों द्वारा धन विधेयक (money bills) या साधारण विधेयक पास किये जाने के बाद उन्हें अपने विचार के लिए रक्षित (reserve) करने की आज्ञा दे सकता है। राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के साथ संघ के कार्यों में लगे हुए व्यक्तियों के सभी या किसी वर्ग के वेतनों और भत्तों में कमी के लिए आज्ञा देने का अधिकार होता है।

राष्ट्रपति की स्थिति (Position of President)—संविधान में राष्ट्रपति की क्या स्थिति है, इस पर बहुत अधिक विचार किया गया है। कानूनी विचार रखने वालों का कहना है कि राष्ट्रपति, यदि वह चाहे तो निरंकुश (autocrat) शासक बन सकता है। वे धारा ५३ की ओर संकेत करते हैं जो कि इस प्रकार है "संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त होगी और वह इसका प्रयोग या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ अफसरों के द्वारा करेगा।" लखनऊ विश्वविद्यालय के डा० बी० एम० शर्मा के अनुसार, "यह राष्ट्रपति को खुली छूट देती है कि यदि राष्ट्रपति चाहे, तो वह नाममात्र का शासक न होकर असली शासक बन सकता है।" इसी प्रकार धारा

७४ व्यवस्था करती है कि "राष्ट्रपति को अपने कामों को पूरा करने में सहायता और सलाह देने के लिए मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) होगी।" इस विषय पर डा० डी० एन० बनर्जी का कहना है कि "जरूरी बात यह है कि क्या धारा ७४ के अनुसार राष्ट्रपति सभी हालतों में कानूनी रूप में मन्त्रिमण्डल की सलाह मानने के लिए बाध्य है...मेरा विचार है कि वह बाध्य नहीं है।"

लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो इस कानूनी विचार को नहीं मानते। यह कहा जाता है कि केन्द्र में संसदीय प्रणाली (parliamentary set-up) होने के कारण किसी निरंकुश राष्ट्रपति के लिए कोई स्थान नहीं है। राष्ट्रपति को भी वही भूमिका अदा करनी है जो कि इंगलैंड के राजा को करनी पड़ती है। इस क्षेत्र में अनेक अभिसमय (conventions) स्थिर किए जाने की गुंजाइश है। डा० अम्बेदकर के अनुसार, जो संविधान संविदा समिति के सभापति और भारत सरकार के कानून मन्त्री थे, "*राष्ट्रपति की स्थिति इंगलैंड के राजा की तरह है।* वह राज्य का प्रमुख है, कार्यपालिका का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है, शासन का नहीं। साधारण रूप से वह मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए बँधा है। वह उनकी इच्छाओं के विपरीत कुछ नहीं कर सकता और न ही उनकी इच्छाओं के बिना कुछ कर सकता है।" इसी प्रकार का विचार डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इन शब्दों में प्रकट किया है "विधान में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसके कारण राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल की सलाह को मानने के लिए बँधा हो। यह आशा की जाती है कि जैसे इंग्लैंड का राजा हमेशा अपने मन्त्रियों की सलाह को मानता है वैसा ही रिवाज इस देश में शुरू किया जायगा और राष्ट्रपति सब बातों में केवल नाममात्र का शासक रहेगा।"

एम० सी० सीतलवाद, ने भारत के राष्ट्रपति के विषय में कहा है कि "कोई भी व्यक्ति डा० जेनिंग्ज के युनाईटेड किंगडम में राजा और अधिराज्यों (Dominions) में *गवर्नर-जनरल की स्थिति के सम्बन्ध में विचारों का ध्यान कर सकता है* जो कि काफी हद तक भारतीय संविधान में राष्ट्रपति पर लागू होते हैं। सलाह से *किया गया* कार्य रस्मी या अपने आप किया हुआ (formal or automatic) नहीं होता। राजा या *गवर्नर-जनरल* उकसाया जा सकता है और कभी-कभी राजा *या गवर्नर-जनरल भी* उकसाने का कार्य (persuading) कर सकते हैं। वास्तव में, इंगलैंड में गैररस्मी तौर पर राजा से सलाह लेने का रिवाज है ताकि वह अपने विचारों को रस्मी तौर से सलाह लिए जाने पर कार्रवाही (action) रद्द करने या टाले बिना ही बता दे। अन्त में वह सलाह को या तो स्वीकार कर लेता है *या कोई रास्ता निकाल लेता है* लेकिन उसके विचारों की कदर की जानी चाहिए। वह उस सलाह की सूरत बदल सकता है जो कि उसे मिलती है। संविधान की माँग है कि प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के निर्णयों से जानकारी कराए और वे सभी सूचनाएँ दे जिनको वह चाहे और यदि राष्ट्रपति की इच्छा हो तो उसको मन्त्रिमण्डल के सामने रख सकता है जिस पर किसी मन्त्री ने निर्णय किया हो, लेकिन मन्त्रिमण्डल ने विचार न किया हो। प्रधान मन्त्री जो कि मन्त्रि-परषद् का रूप होता है, को एक ओर मन्त्रि-परिषद् को और दूसरी ओर राष्ट्रपति

को मिलाने वाली कड़ी समझा जाता है। ये वे साधन दिखाई देते है जिनके द्वारा राष्ट्रपति प्रेरणा देने का कार्य कर सकता है। समय के साथ स्वस्थ अभिसमय बनेंगे जिनके द्वारा वह उतने प्रभाव का प्रयोग कर सकेगा जो कि भारत संघ के अध्यक्ष को जायज़ तौर पर मिलना चाहिए।"

एन० अरुणाचलम् के अनुसार, "यह कहना समय से पूर्व होगा कि राष्ट्रपति के निजी विचारों का मन्त्रिमण्डल पर क्या असर पड़ेगा किन्तु शक्तिशाली व्यक्ति राष्ट्रपति के पद पर होता हुआ आने वाले समय के लिए निश्चित रूप से अभिसमय (convention) बना सकता है। आस्ट्रेलिया तथा कनाडा के संविधान उन मामलों को अलग-अलग बताते हैं, जिनमे गवर्नर-जनरल को अपने निजी विचारों के अनुसार कार्य करना था तथा जिनको मन्त्रिमण्डल की सलाह से करना था। लेकिन ऐसे अभिसमय (conventions) बन गये हैं कि गवर्नर-जनरल चाहे कनाडा का हो या आस्ट्रेलिया का, सदा अपने मन्त्रिमण्डल की सलाह से ही काम करते हैं।"

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "हमने अपने राष्ट्रपति को कोई वास्तविक शक्ति नही दी है लेकिन हमने उसके पद को महान् प्राधिकारी और आदरणीय बना दिया है।"[1]

यह धारणा करना कि भारत का राष्ट्रपति केवल औपचारिक प्रमुख है, गलत है। कुछ अधिकार ऐसे है जिनका प्रयोग वह सविधान में बिना हस्तक्षेप किये सरलता से कर सकता है। वह किसी को भी प्रधान मन्त्री चुन सकता है। यह भी सत्य है कि संसद् में किसी दल का पूर्ण बहुमत होने पर उसके पास कोई और चारा नहीं रह जाता। किन्तु यदि ऐसा न हो और किसी विशेष दल का बहुमत न हो तो राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार प्रधान मन्त्री नियुक्त कर सकता है।

संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि प्रधान मन्त्री कर्त्तव्य रूप से, मन्त्रि-परिषद् के सारे निर्णय ही नहीं अपितु देश के शासन-सम्बन्ध मामले तथा विधान-मण्डल के विचाराधीन प्रस्तावों की भी सूचना राष्ट्रपति को देगा। इस प्रकार राष्ट्रपति राष्ट्र के सारे मामलों से परिचित रहता है और राष्ट्र का निष्पक्ष प्रमुख होने के नाते अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है। राष्ट्रपति की ओर से आने वाले सुझावों पर मन्त्रि-परिषद् उसके विशाल अनुभव का महत्त्व समझ कर विचार करती है।

राष्ट्रपति को लोकसभा को समाप्त करने का भी अधिकार है। किन्तु यह उसे प्रधान मन्त्री की सलाह पर करना पड़ता है। विशेष अवस्था में यदि वह यह समझे कि इस प्रकार की कार्यवाही उचित नही तो वह इस प्रकार के सुझाव को अस्वीकार भी कर सकता है।

---

1. According to Late Prime Minister Jawaharlal Nehru, "We have not given our President any real power but we have made his position one of great authority and dignity."

अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना (Comparison with American President)—भारत के राष्ट्रपति की अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना करना वाछनीय है। यह ध्यान रखना चाहिए कि अमेरिका का राष्ट्रपति अध्यक्षात्मक सरकार का प्रमुख होने के कारण सच्चा शासक है। इसलिए उसे सरकार की सारी शक्ति प्राप्त है। उसके मन्त्री उसके सैक्रेट्री या सहायक हैं। वह उनकी सलाह के बिना भी कार्य कर सकता है। वह उन्हें बरखास्त भी कर सकता है। फल यह है कि सभी सरकारी शक्तियाँ उसे नाम मात्र न होकर सच्चे रूप में प्राप्त हैं। अमेरिकन राष्ट्रपति राष्ट्र का नेता है। उसका चुनाव जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है और वह उसके सामने ही सीधे तौर पर जिम्मेदार है। प्रो० लास्की के अनुसार, "अमेरिकन राष्ट्रपति सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता और शक्ति का प्रतीक है। जब तक वह पदासीन है तब तक उसके समान शक्तिशाली राष्ट्र भर में कोई नही। *उसकी तुलना मे मन्त्रिमण्डल की आवाज अपना अस्तित्व तक* नही रखती या यों कहे कि उसकी विद्यमानता में उसके मन्त्रिमण्डल की आवाज एक ऐसी फुसफुसाहट मात्र है, जिसे कभी तो सुना जाता है और कभी उसकी उपेक्षा कर दी जाती है।" "सर्वोच्च-न्यायालय का कोई भी निर्णय उसकी नीति के प्रतिकूल माना जाता है। कांग्रेस की पराजय उसकी प्रतिष्ठा के लिए घातक है। अवधि मे पूर्व कांग्रेस के निर्वाचन उसकी नीति के अनुत्कृष्ट होने का प्रमाण है। कोई भी इन बातों को उसके मन्त्रिमण्डल पर पडने वाले प्रभाव की दृष्टि से नही सोचता। लेकिन भारत के राष्ट्रपति की ऐसी स्थिति नही है। जनता उसका चुनाव सीधी तौर से नही करती। उसका अप्रत्यक्ष चुनाव उसकी स्थिति को कमजोर करता है। इसके अतिरिक्त भारत के प्रधान मन्त्री का भारत की राजनीति में अत्यधिक प्रभाव है। वही राष्ट्र का नेता होता है और मार्ग-दर्शन के लिए जनता की आँखें केवल उसी की ओर लगी होती है। इससे भारत का राष्ट्रपति पीछे रह जाता है। भारत के राष्ट्रपति से आशा की जाती है कि वह सदा अपने मन्त्रियों की सलाह पर काम करेगा।

भारत का राष्ट्रपति इंगलैड के राजा से अधिक मिलता है। कारण देखने के लिए परेशान होने की जरूरत नही। दोनों देशों में संसदीय सरकारें है और दोनों व्यक्ति दोनों देशों मे केवल नाम मात्र के शासक हैं। इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि यदि उनको कोई असली शक्ति प्राप्त नही है।

यह कहा जाता है कि भारत का राष्ट्रपति तानाशाह बनने का साहस नही कर सकता। उसे अपने मन्त्रियों की सलाह के अनुसार कार्य करना ही पड़ता है। यदि वह अपने मन्त्रियो के परामर्श के विपरीत कार्य करता है और उनका संसद् में बहुमत है, तो वे इस्तीफा देने को मजबूर होगे। क्योंकि इस्तीफा देने वाले मन्त्रियों का ससद् मे बहुमत होता है, इसलिए कोई दूसरा मन्त्रिमण्डल बहुमत प्राप्त नही कर सकता। फल यह होता है कि राष्ट्रपति को ऐसे हालात का सामना करना पडता है जिसमें राज्य के कार्य को अच्छी प्रकार चलाना कठिन होता है। कोई राष्ट्रपति ऐसा संवैधानिक गतिरोध (deadlock) पैदा नही करेगा जिसमें दोनों पक्ष अपनी बातों पर अड़े रहें और समझौते या निपटारे का कोई रास्ता दीख न पड़े। उसे अच्छी तरह पता होता

है कि संसद् उस पर महाभियोग चला सकती है। महाभियोग के रूप मे उसके सिर पर लटकती हुई डैमोक्लीज की तलवार किसी भी राष्ट्रपति की इच्छाओ को दबा देगी। लेकिन आलोचकों का मत है कि कपटी राष्ट्रपति अपनी तानाशाही कायम करने में सफल हो सकता है। वह संकटकाल में संसद् को नही बुलाएगा। वह मन्त्रियों को बरखास्त कर उनको नियुक्त कर सकता है जो पूरी तरह उसके अधीन हों। संकटकाल मे उस पर महाभियोग नही चलाया जा सकता और सकटकाल के समाप्त होने के पहले वह सारी संवैधानिक मशीनरी को पूरी तरह तोड़ सकता है और इस प्रकार महाभियोग चलाए जाने के अवसरों को समाप्त कर देता है। यह कहा जाता है कि ऐसी हालत जर्मनी मे हुई जबकि हिटलर ने वाइमर सविधान के अधीन अपनी हिटलरशाही कायम की। ऐसा ही सन् १८५२ मे नैपोलियन तृतीय ने किया। इससे इन्कार नही किया जाता कि ऐसी सम्भावनाएँ हैं लेकिन आशा की जाती है कि हमारी ससदीय विचारों की शिक्षा हमें इन सब कठिनाइयो पर विजय पाने मे सहायता देगी।

भारत का उप-राष्ट्रपति (Vice-President of India)—भारत के राष्ट्रपति के अतिरिक्त सविधान मे उपराष्ट्रपति की भी व्यवस्था की गई है। वह राज्य सभा का पदेन (Ex-officio) सभापति होता है और किसी लाभ के पद पर कार्य नही करेगा। किन्तु जब उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के नाते काम करता है तब वह राज्य सभा के सभापति पद के कर्त्तव्यों को न करेगा और उसे राज्य सभा के सभापति को दिए जाने वाले किसी वेतन या भत्ते का कोई हक न होगा।

राष्ट्रपति की मृत्यु, इस्तीफे या पद से हटाए जाने या किसी अन्य कारण से खाली हुए स्थान मे उप-राष्ट्रपति उस तारीख तक राष्ट्रपति के रूप मे कार्य करेगा जिस तारीख को नया राष्ट्रपति अपने पद को सम्भाले। जब राष्ट्रपति गैर-हाजिरी, बीमारी या किसी अन्य कारण से अपना काम करने योग्य न हो, तब उप-राष्ट्रपति उसके कामों को उस तारीख तक पूरा करेगा जिस तारीख को राष्ट्रपति अपने कर्त्तव्यों को फिर से सम्भाले। उप-राष्ट्रपति को, जबकि वह राष्ट्रपति के नाते कार्य करता है, राष्ट्रपति की सब शक्तियाँ तथा सुविधाएँ प्राप्त होगी और ऐसे वेतन, भत्ते तथा विशेषाधिकारों (privileges) का हक होगा जिन्हे संसद् कानून द्वारा निश्चित करे।

उप-राष्ट्रपति का चुनाव समवेत (joint) संसद् के दोनों सदनों के सदस्य अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल सक्रमणीय मत द्वारा करेंगे और ऐसे चुनाव मे मतदान गुप्त पत्र (secret ballot) द्वारा होगा।

उप-राष्ट्रपति न तो ससद् के किसी सदन का और न किसी राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य होगा तथा यदि संसद् के किसी सदन का अथवा राज्य के विधान-मण्डल के सदन का सदस्य उप-राष्ट्रपति चुना जाए तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन् का अपना स्थान उप-राष्ट्रपति के नाम से पद पाने की तारीख से खाली कर दिया है।

कोई व्यक्ति उप-राष्ट्रपति नही चुना जा सकता जब तक कि वह भारत का

नागरिक न हो, पैंतीस वर्ष की आयु पूरी न कर चुका हो; तथा राज्य सभा के लिए सदस्य चुने जाने का की योग्यता न रखता हो। कोई व्यक्ति उप-राष्ट्रपति नहीं बन सकता यदि वह भारत सरकार के अथवा किसी राज्य सरकार के आधीन अथवा इन दोनों सरकारों में से किसी से नियन्त्रित किसी स्थानीय या अन्य अधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण किए हुए है।

उप-राष्ट्रपति अपने पद को पाने की तारीख से पाँच वर्ष तक अपने पद पर रहेगा। परन्तु उप-राष्ट्रपति, राष्ट्रपति के नाम अपने हस्ताक्षर के साथ लेख द्वारा अपना पद त्याग सकेगा। उप-राष्ट्रपति राज्य-सभा के ऐसे प्रस्ताव द्वारा अपने पद से हटाया जा सकेगा जिसे राज्य सभा के समस्त सदस्यों के बहुमत ने पास किया हो तथा जिससे लोक सभा सहमत हुई हो। किन्तु ऐसा कोई भी प्रस्ताव उस समय तक पास नहीं किया जा सकता जब तक उसकी सूचना कम-से-कम चौदह दिन पहले न दे दी गई हो। उप-राष्ट्रपति अपने पद पर अपनी अवधि समाप्त होने के बाद भी उस समय तक रहेगा जब तक कि नया उप-राष्ट्रपति अपने पद को प्राप्त करे। प्रत्येक उप-राष्ट्रपति अपना पद पाने से पूर्व अपने पद की शपथ या प्रतिज्ञान करेगा।

Suggested Readings

Anand, C. L. : The Constitution of India.
Chitaley and Rao : The Constitution of India. Vol. I, pp. 864-924.
Gledhill, A. : The Republic of India.
Gupta, Madan Gopal : Aspects of Indian Constitution.
Srinivasan, N. : Democratic Government in India.

प्रधान मन्त्री तथा मन्त्रिमण्डल

(PRIME MINISTER AND CABINET)

नवीन संविधान की धारा ५३ व्यवस्था करती है कि संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति को प्राप्त होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार या तो स्वयं या अपने अधीनस्थ अफसरों द्वारा करेगा । धारा ७४ के अनुसार, राष्ट्रपति को अपने कामों को ठीक से पूरा करने में 'सहायता तथा सलाह' देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान, प्रधान मन्त्री होगा। मन्त्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जाँच न की जायेगी। अगली धारा व्यवस्था करती है कि प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा तथा अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की सलाह से करेगा। मन्त्री राष्ट्रपति के कृपाकाल मे अपने पद पर रहेंगे। मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति जिम्मेदार होगी । किसी मन्त्री के अपने पद पर काम शुरू करने से पूर्व राष्ट्रपति उसे उसके पद तथा गोपनीयता की शपथ दिलायेगा। कोई मन्त्री जो लगातार छः मास तक संसद् के किसी सदन का सदस्य न रहे, छः मास बीतने पर मन्त्री न रहेगा। मन्त्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे समय-समय पर संसद् कानून बनाकर तय करे और जब तक संसद् इस प्रकार तय न करे तब तक उन्हें संविधान की दूसरी अनुसूची (Schedule) मे बताये गये वेतन तथा भत्ते मिलेंगे।

धारा ७८ के अनुसार, प्रधान मन्त्री का कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को मन्त्रिपरिषद् के निर्णयो तथा नये कानूनो के मसविदो से जानकारी करवाये, उसे इनके बारे में वह जानकारी करवाये जो राष्ट्रपति माँगे तथा राष्ट्रपति की इच्छा होने पर उस मामले को मन्त्रिपरिषद् के सामने विचार के लिए लाये, जिस पर किसी मन्त्री ने निर्णय किया हो और मन्त्रिपरिषद् ने उस पर विचार न किया हो।

धारा ७७ के अनुसार, भारत सरकार की सब कार्यपालिका कार्यवाही राष्ट्रपति के नाम से की हुई कही जाएगी। राष्ट्रपति भारत सरकार का कार्य अधिक सुविधा से किए जाने के लिए तथा मन्त्रियो मे उस काम के बँटवारे के लिए नियम बनायेगा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मन्त्रिपरिषद् के सदस्य तीन प्रकार के हैं। पहली सूची में मन्त्रिमण्डल के सदस्य आते हैं। दूसरी सूची में राज-मन्त्री (Ministers of State) और तीसरी में उपमन्त्री (Deputy Ministers)। कानून मन्त्रियों की पदवी और दर्जे के अन्तर को मानता है। मन्त्री-वेतन (संशोधन) अधिनियम १९५० व्यवस्था करता है कि "मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक मन्त्री को ३०००) रु० प्रतिमास वेतन

तथा ५००) रु० प्रति मास व्यय के लिए भत्ता, प्रत्येक राज्य मन्त्री को ३०००) रु० तथा उपमन्त्री को २०००) रु० मासिक वेतन मिलेगा।"

यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि उपमन्त्री और साधारण मन्त्री मन्त्रिमण्डलीय अधिवेशन में तब तक भाग नही लेते जब तक कि उन्हें विशेष रूप से आमन्त्रित न किया जाये। साधारण मन्त्री की स्थिति उपमन्त्री से अधिक महत्वपूर्ण और दृढ होती है। वह तो दल की एक सहायक शक्ति के रूप में कार्य करता है और जब उसका प्रशिक्षण समाप्त हो जाता है तब उसे मन्त्रिमंडल के मन्त्री के उच्च पद पर आसीन किया जा सकता है। वह किसी भी विभाग के दैनिक कार्यक्रम का संचालन कर सकता है। यहाँ तक कि उसे किसी भी विभाग का अध्यक्ष बनाया जा सकता है। उपमन्त्री अपने मन्त्री के लिए कार्य करता है और उसकी अनुपस्थिति में उसका कार्य-सम्पादन करता रहता है। यद्यपि सम्पूर्ण कार्य मन्त्री और उपमन्त्री में ठीक प्रकार से विभक्त रहता है तथापि मन्त्री अपने विभाग के कार्य के लिए प्रधान मन्त्री के प्रति उत्तरदायी रहता है।

मन्त्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व की विशेषताएँ (Characteristics of Ministerial Responsibility)—केन्द्र का ससदीय ढाँचा अंग्रेजी पद्धति से मिलता है और सघीय मन्त्रिमण्डल की दशा ब्रिटिश मन्त्रिमंडल के समान है। मन्त्री संसद् के सदस्य होते हैं और इसलिए संसद् के जरिये जनता के प्रति जिम्मेदार है।

(१) धारा सभा के प्रति जिम्मेदारी (Responsibility to Legislature)—मन्त्री अपने-अपने विभागों के हर एक काम के लिए संसद् के प्रति जिम्मेदार होते है। ससद् के सदस्य उनसे प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। वे अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव पास कर सकते है। वे सदन मे मन्त्रियों द्वारा रखे गए बजट या किसी कानून को रद्द कर सकते हैं। वे मन्त्रियों के वेतनों और भत्तों के बारे में प्रतीक कटौती प्रस्ताव पास करके यह बता सकते है कि मन्त्रियों को सदन का विश्वास प्राप्त नही है। इन सब उपायों के द्वारा मन्त्रियों को धारा सभा के प्रति जिम्मेदार बनाया जाता है। धारा ७५ साफ तौर से व्यवस्था करती है कि मन्त्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति जिम्मेदार होगी न कि राज्य सभा के प्रति। यदि एक मन्त्री हार जाये तो सब मन्त्री पद त्यागने को मजबूर होते हैं क्योंकि इसका अर्थ सारी मन्त्रिपरिषद् मे अविश्वास होना होता है। लेकिन इसका यह अर्थ नही है कि किसी एक मन्त्री की अन्दाजे की गलती (error of judgment) या कुप्रबन्ध के लिए सारे मन्त्रिमंडल को उत्तरदायी बनाया जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई मन्त्री कोई गलत काम करता हुआ पाया जाता है तो सारे मन्त्रिमण्डल के बजाए उस मन्त्री को ही त्याग-पत्र देने को मजबूर किया जाता है।

कोई मन्त्री ऐसा सार्वजनिक भाषण नहीं देता जो सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध हो। इसी प्रकार कोई मन्त्री ऐसा बयान नही देता जिससे कि अपने साथियों की सलाह के बिना सरकार किसी बात के लिए बाध्य हो जाए।

जब लोक सभा में कोई मन्त्री हार जाये तो वह पद त्यागने से इन्कार कर सकता है और राष्ट्रपति से लोक सभा को भंग करने की प्रार्थना कर सकता है। साधारण तौर से प्रधान मन्त्री द्वारा ऐसी प्रार्थना किये जाने पर राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की बात को मानेगा । यदि राष्ट्रपति ऐसा नहीं करेगा तो उससे एक राजनीतिक गतिरोध (deadlock) उत्पन्न होने की सम्भावना है, जो कि बहुत कम वांछनीय है। *यदि प्रधान मन्त्री की सलाह पर लोक सभा को भंग कर दिया जाए और* नए चुनाव हों तो वही मन्त्रिमण्डल बना रहता है यदि उसे बहुमत मिल जाए। उसे पद त्यागना चाहिए यदि वह बहुमत प्राप्त करने में असफल हो जाता है। उसे उस पार्टी के लिए स्थान खाली करना चाहिए जिसे नए चुनावों में बहुमत प्राप्त हुआ है।

(२) जहाँ तक मन्त्रियों का राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility to President) का प्रश्न है, केवल यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री को नियुक्त करेगा और प्रधान मन्त्री की सलाह से अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी । इसके अतिरिक्त मन्त्री राष्ट्रपति के कृपा-काल तक अपने पद पर रहेंगे। दूसरे शब्दों में राष्ट्रपति, जब उसकी इच्छा हो, मन्त्रियों को कार्य से हटा सकता है। लेकिन यह आशा की जा सकती है कि ऐसी घटना कभी नहीं होगी । यदि भारत को केन्द्र में संसदीय सरकार रखनी है तो कोई राष्ट्रपति किसी एक मन्त्री या सब मन्त्रियों को बरखास्त करने का सिवाय प्रधान मन्त्री की सलाह के साहस नहीं करेगा। यदि राष्ट्रपति इसके विपरीत कार्य करता है, तो वह अपने लिए मुसीबत पैदा करता है। संसद् उस पर संविधान के उल्लंघन के लिए महाभियोग चला सकती है और उसे अपने काम के लिए अपने आपको कोसना पड़ेगा । राष्ट्रपति द्वारा निरंकुश शक्तियों के प्रयोग के लिए बहुत कम क्षेत्र है।

(३) जहाँ तक मन्त्रियों के कानूनी उत्तरदायित्व (Legal Responsibility) का सम्बन्ध है, संविधान विशेष रूप से यह व्यवस्था नहीं करता कि राष्ट्रपति सदा ही मन्त्रियों की सलाह पर चलेगा। इंगलैंड मे राजा की कोई आज्ञा उस समय तक कानूनी नहीं मानी जाती जब तक कि उस पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर न हों, लेकिन भारत के संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। धारा ७७ (२) व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति के नाम से दिए हुए और जारी किए हुए *आदेश तथा अन्य कागजों* का प्रमाणीकरण (authentication) उस ढंग से किया जाएगा जो राष्ट्रपति द्वारा बनाए जाने वाले नियमो मे बताया गया हो तथा इस प्रकार प्रमाणित आदेश या कागज की मान्यता (validity) पर एतराज इस कारण न किया जाएगा कि वह राष्ट्रपति द्वारा दिया या जारी किया आदेश या पत्र नहीं है । धारा ३६१ व्यवस्था करती है कि भारत सरकार राष्ट्रपति द्वारा किए गए कार्यों के लिए जिम्मेदार होगी। यह कहा जाता है कि कानूनी उत्तरदायित्व का सिद्धान्त भारत में इंगलैंड के मुकाबले मे अधिक छोटा है ।

संघीय मन्त्रिमण्डल की स्थिति (Position of Union Cabinet)—प्रशासन

में संघीय मन्त्रिमण्डल की स्थिति के बारे में कुछ विचार करना वांछनीय है। संघीय मन्त्रिमण्डल देश की सामान्य नीति (general policy) का सोच समझ कर निर्णय करता है। वह देश की विदेश-नीति को तय करता है। वह तय करता है कि विदेशों के साथ क्या-क्या सम्बन्ध हों। वह तय करता है कि भारत किन देशों से निकट के सम्बन्ध बनाए और किनसे शक्ति को मापे। यह फैसला करता है कि कौन-कौन से टैक्स लगाए जाएँ और कौन-कौन से हटाए जाएँ। वह यह भी तय करता है कि राष्ट्रीय आय को किस तरह खर्च किया जाये। वह बजट पर पूरा-पूरा अधिकार रखता है क्योंकि संसद् में धन विधेयक को सिवाय मन्त्री के और कोई सदस्य उपस्थित नहीं कर सकता।

मन्त्रिमण्डल कानून बनाने के कार्य को भी नियन्त्रित करता है। प्रमुख विधेयकों में से अधिकतर मन्त्रियों के द्वारा संसद् में लाए जाते हैं। गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों का मन्त्रिमण्डल के विरोध के होते हुए पास होना नामुमकिन है। वे रद्द हो जाएँगे यदि मन्त्रिमण्डल उनका विरोध करता है।

मन्त्रिमंडल का देश की सारी प्रशासकीय मशीनरी पर नियन्त्रण होता है। क्योंकि मन्त्री सरकार के विभिन्न भागों के इंचार्ज (incharge) होते हैं। मन्त्री केवल अपनी इच्छा के विधेयकों को पास ही नहीं करा लेते बल्कि उनको उसी प्रकार से लागू भी करा सकते हैं जिस प्रकार से वे लागू करना चाहें।

संक्षेप में मन्त्रिमंडल वह धुरी (*pivot*) है, जिसके चारों ओर प्रशासकीय मशीनरी चक्कर काटती है। उसका विधायी (legislative) और कार्यपालिका (executive) क्षेत्रों में बहुत अधिक असर है। वह देश और विदेश में महत्त्वपूर्ण नियुक्तियाँ करता है। हम यह कहकर अन्त कर सकते हैं कि भारत में संघीय मन्त्रि-मंडल की वही स्थिति है जो इंगलैंड में ब्रिटिश मन्त्रिमंडल की है।

मन्त्रिमंडल (Cabinet) के सदस्यों की संख्या कई बातों पर निर्भर करती है। प्रधान मंत्री मन्त्रिमंडल के बनाने में बिलकुल स्वाधीन नहीं। अपने दल के हितार्थ उसे कई ऐसे लोग मन्त्रिमंडल में मिलाने पड़ते हैं, जिन्हें वह नहीं चाहता। उसे अपने दल का हित अपनी इच्छाओं और अनिच्छाओं से ऊपर रखना पड़ता है। प्रधान मन्त्री को यह मालूम होता है कि यदि वह अपने दल के मुख्य व्यक्तियों को खुश न रखेगा तो उसका दल कमजोर पड जाएगा और अन्त में उसकी हार हो जाएगी। इसलिए मन्त्रिमंडल को बनाते समय प्रधान मन्त्री को अनेक बातों का ध्यान रखना पडता है।

भारत के केन्द्रीय मंडल की संख्या २५ के लगभग रही है। यह संख्या न तो अधिक है और न ही न्यून। यद्यपि समय-समय पर मन्त्रियों के विभागों में तब्दीलियाँ की गई है तथापि वे बिना सोच-विचार के की गई। ऐसा प्रतीत होता है कि वे तब्दीलियाँ कभी एक स्वार्थ और कभी दूसरे स्वार्थ की पूर्ति के लिए की गई। अब भी ऐसा अनुभव किया जाता है कि वर्तमान अवस्था को सुधारने के लिए कुछ किया

तीन मन्त्री इसके सदस्य हैं। कैबिनेट का सैक्रेटरी ही योजना आयोग का सैक्रेटरी है। एच० एम० पटेल ने ठीक ही कहा है कि योजना आयोग केन्द्रीय सरकार के मन्त्रियों के कार्यों में हस्ताक्षेप कर रहा है। ए० के० चन्दा का यह मत है कि योजना आयोग का शक्तिशाली होना उत्तरदायी सरकार के नियम के अनुकूल नहीं है।

आलोचकों का कहना है कि National Development Council अवैधानिक रूप में कई मन्त्रियों के विभागों में हस्तक्षेप कर रही है। इसका कारण यह है कि प्रधान मन्त्री और राज्यों के मुख्य मन्त्री इसके सदस्य हैं। परिणामस्वरूप केन्द्रीय कैबिनेट और राज्य सरकारों की शक्ति कम हो रही है। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग के लिए विधान सभा के सम्मुख उत्तरदायी है किन्तु उसको वह नीति लागू करनी पड़ती है, जिसका निर्णय योजना आयोग और National Development Council ने किया हो। यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस समस्या की जाँच-पड़ताल ठीक तरीके से की जाए और कोई सन्तोषजनक रास्ता निकाला जाए, जिससे देश की वैधानिक संस्थाओं को हानि न पहुँचे।

भारत का प्रधान मन्त्री (Prime Minister of India)—यह पहले ही कहा जा चुका है कि भारत के प्रधान मन्त्री की स्थिति देश में बहुत दृढ़ है। वह मन्त्रिमण्डल का प्रमुख सदस्य होता है। यह सत्य है कि राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है, किन्तु आमतौर से राष्ट्रपति बहुमत दल के नेता को मन्त्रिमंडल बनाने के लिए बुलाता है। वह अपनी हँसी उड़वाएगा यदि वह इसके विपरीत पग उठाता है। कारण यह है कि राष्ट्रपति को केवल उस व्यक्ति को प्रधान मन्त्री बनाना चाहिए जो लोक सभा के बहुमत दल का नेता हो। उसकी निजी पसन्द तथा नापसन्दगी का प्रश्न नहीं है। किन्तु यदि लोक सभा में बहुत से दल हों तथा उनमें से किसी का स्पष्ट बहुमत न हो, तब राष्ट्रपति किसी भी दल के नेता को बुला सकता है जो उसके विचार में मन्त्रिमण्डल बना सके। उसका चुनाव ठीक भी हो सकता है और गलत भी। उसका चुना हुआ व्यक्ति मन्त्रिमंडल बनाने में असफल भी हो सकता है। लेकिन असली बात यह है कि ऐसी दशा में वह अपनी इच्छा से ही बुलावा भेजता है।

संविधान में यह विशेष रूप से व्यवस्था की गयी है कि "राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की सलाह से मन्त्रियों को नियुक्त करेगा। दूसरे शब्दों में राष्ट्रपति अपनी इच्छा के लोगों को प्रधान मन्त्री पर नहीं ठूँस सकता। प्रधान मन्त्री अपने साथियों को स्वयं चुनता है। वह प्रधान मन्त्री का मन्त्रिमंडल है न कि राष्ट्रपति का। वह किसी भी मन्त्री से पद छोड़ने को कह सकता है। यह ठीक है कि प्रधान मन्त्री अपनी मंडली को इच्छा के अनुसार पलट सकता है।" (shuffle his pack as he pleases)। जब प्रधान मन्त्री त्याग-पत्र देता है तो वह सारे मन्त्रिमंडल का ही त्यागपत्र होता है। यदि किसी प्रधान मन्त्री और मन्त्री के विचार न मिलते हों तब मन्त्री को प्रधान मन्त्री के विचारों को मानना पड़ता है। प्रधान मन्त्री उसका त्याग-पत्र माँग सकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह उसे बरखास्त करा सकता है। वह

पुराने मन्त्रिमंडल का इस्तीफा देकर नया मन्त्रिमडल बना सकता है जिसमें वह किसी भी साथी को छोड़ सकता है।

पन्मुखम् चेट्टी, जान मथाई, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, के० सी० नियोगी, एच० सी० भाभा, मोहनलाल सक्सेना, वी० वी० गिरी तथा सी० डी० देशमुख को त्याग-पत्र देना पडा क्योंकि उन्होंने प्रधान मन्त्री का विश्वास खो दिया था।

यह सत्य है कि प्रधान मन्त्री जिसे चाहे अपने मन्त्रिमण्डल मे ले सकता है और जिसे चाहे छोड़ भी सकता है। इस विषय मे उसे पूर्ण स्वतन्त्रता है। किन्तु मन्त्रि-मडल बनाते समय प्रधान मन्त्री को अनेक बातो का ध्यान रखना पड़ता है। इसे देश के भौगोलिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखना पडता है। वह सारे मन्त्री उत्तर या दक्षिण भारत से नही ले सकता। उसे अनेक राज्यों से अपने मन्त्री लेने पड़ते हैं जिससे देश का कोई भाग शिकायत न करे कि उसे प्रतिनिधित्व नही मिला। उसे अनेक धर्मों, श्रमिको, व्यवसायों, औद्योगिक, खेती-बाड़ी, आर्थिक और व्यापारिक मामलों का ध्यान रखना पड़ता है। उसे महिलाओं को भी प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। कुछ मन्त्री युवा और कुछ वयोवृद्ध होने चाहिएँ, जिससे उसके युवक अनुयायियों को शिकायत न रह जाए। उसे अनुसूचित जातियों को भी प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। वह ग्रामीण और नागरिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखता है। यह सब करते हुए उसे इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि विरोधी-तत्त्व एकत्रित न हो जाएँ जो एक साथ चल ही न सकें। देश के विभिन्न तत्त्वो को प्रतिनिधित्व प्रदान करते हुए उसे सबसे महत्त्व-पूर्ण बात, अर्थात् उसके मन्त्रिगण अपने कार्य मे दक्ष और चतुर हों, नही भूलती।

प्रधान मन्त्री सर्वोच्च है। यह कहना भूला पैदा करने वाली बात है कि वह बराबर वालों मे से एक है। यह कथन अधिक ठीक है कि वह सितारों के बीच में चन्द्रमा है। मन्त्रिमण्डल की बैठको का सभापति है। बैठक मे विचार किये जाने वाले मामलों की सूची उसकी सलाह से तय की जाती है। डा० अम्बेदकर ने प्रधान मन्त्री के बारे में कहा है कि "निश्चित रूप से मिली-जुली जिम्मेदारी के कानूनी बन्धन नही हैं। मेरे विचार मे मिली-जुली जिम्मेदारी को लागू करने के दो सिद्धान्त हैं। उनमे से एक सिद्धान्त यह है कि यदि प्रधान मन्त्री की इच्छा न हो तो किसी मन्त्री को नामजद (nominate) नही करना चाहिए।"

प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल का सचालक है। यह वह व्यक्ति है जो सब जगह छाया रहता है। बिलाशक वह नेता है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि वह बॉस (Boss) है। अन्य मन्त्रियों से व्यवहार करते समय वह स्वेच्छाचारी या 'बॉस' की भाँति व्यवहार नही करता। मन्त्री सन्देशा ले जाने वाले छोकरो की तरह नहीं होते। प्रधान मन्त्री उनसे अपने साथियो जैसा व्यवहार करता है। प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों मे कोई वर्ग का अन्तर नही, अन्तर है तो केवल इतना कि एक छोटा है तो दूसरा बड़ा। इस स्थान पर भारत के प्रधान मन्त्री तथा अमेरिका के राष्ट्रपति ... अन्तर है। अमेरिका के राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल के सदस्य उसके सेवक होते हैं वह आसानी से उनकी बातों को अनसुनी कर सकता है। वह उन्हें ...

सकता है। किन्तु भारत का मन्त्री ऐसा नहीं कर सकता। वह यह नहीं भूलता कि उसकी अपनी शक्ति दूसरे मन्त्रियों की इच्छा द्वारा दिये गये सहयोग पर निर्भर है, जो उसके साथी होते है। वह सदा अपनी नीति बनाते समय उनके विचारों की कदर करता है।

प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति और मन्त्रिमण्डल को मिलाने वाली कड़ी है। प्रधान मन्त्री ही राष्ट्रपति को मन्त्रिमण्डल के निर्णयों से जानकारी कराता है तथा संघीय मामलों मे वह जानकारी देता है जिसे राष्ट्रपति चाहे। वह राष्ट्रपति के विचारो को मन्त्रिमण्डल तक पहुँचाता है।

संसद् मे प्रधान मन्त्री सरकार की साधारण नीति का प्रमुख वक्ता होता है। वह देश और विदेश की नीति को तय करता है। वह संसद् में प्रत्येक मन्त्री की सहायता करता है।

यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रधान मन्त्री राष्ट्र का नेता होता है। वह राष्ट्र को रास्ता दिखाता है। चुनावों के समय वह चुनाव घोषणा-पत्र (Election Manifesto) तैयार करता है, जिसके आधार पर चुनाव लड़ा जाता है। पिछले चुनावों में जनता ने यह साफ तौर से कहा था कि वह पं० नेहरू को वोट दे रही है, कांग्रेस को नही। इससे यह साफ है कि चुनावों में जनता या तो प्रधान मन्त्री की नीति का समर्थन करती है या विरोध। यह भी कहा जा सकता है कि चुनाव में प्रधान मन्त्री का ही चुनाव होता है।

पिछले चुनावों के अवसर पर नारा "कांग्रेस को वोट देना नेहरू के हाथो को मजबूत बनाना" था। पंडित जवाहरलाल नेहरू का कांग्रेस पर पूर्ण नियन्त्रण था और कांग्रेस के अन्य नेताओं से उनकी इच्छा के सम्मुख झुक जाने की आशा की जाती थी। श्री के० आर० श्रीनिवास आयंगर के शब्दों में, "जब वह किसी सभा में पहुंचते हैं, चाहे वह प्रवर समिति (Select Committee) की हो या जनसभा, तब एक-सा ही प्रभाव पड़ता है। सब आँखें उनकी ओर मुड़ जाती है और सब हाथ जुड़ जाते है और सब बड़े प्रबल प्रेम से स्वागत करते हैं जैसे कि पहले से ही निश्चित किया हुआ सुर (preordained tune) हो, और तीव्र उत्कंठा से उनकी हरकतों को देखते थे और उनके शब्दो और बातचीत को समझने के लिए जोर देते थे। पुरुष कठिनाई से सांस लेते थे और नारियां लगभग खो जाती थी।"

इतना सब कहने पर भी यह कहना जरूरी है कि प्रधान मन्त्री की स्थिति उसके अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। पं० जवाहरलाल नेहरू के समान व्यक्ति सब पर छाये रहते हैं लेकिन साधारण व्यक्ति पर उसके साथियों तथा राष्ट्रपति का असर होता है।

अध्याय ४४

भारतीय संसद्

(PARLIAMENT OF INDIA)

भारत के नए संविधान के अधीन संघीय विधानमण्डल को भारतीय संसद् के नाम से पुकारा गया है। यह राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनी है जिनके नाम राज्य सभा (Council of States) तथा लोक सभा (House of the People) है।

राज्य सभा (Council of States)—धारा ८० के अनुसार राज्य सभा २५० सदस्यों की है। इनमें से २३८ सदस्य निर्वाचित है और १२ मनोनीत (nominated)। इनका मनोनयन राष्ट्रपति द्वारा उन लोगों में से होता है जो कि साहित्य, विज्ञान कला अथवा समाज-सेवा मे विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव प्राप्त किये हों। इन स्थानों का बँटवारा विभिन्न राज्यों के बीच संविधान के चौथे शेड्यूल के अनुसार होता है।

राज्य सभा के चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवार में कुछ योग्यताएँ होनी आवश्यक है। वह भारत का नागरिक हो और उसकी आयु तीस वर्ष से कम न हो। उसमे वे सब योग्यताएँ भी हों जो संसद् कानून बनाकर तय करे। वह व्यक्ति राज्य सभा का सदस्य नही बन सकता जो भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर है, पागल है या उसे दिवालिया घोषित कर दिया गया है या फिर भारत का नागरिक न रहे, या अपनी इच्छा से किसी दूसरे देश की नागरिकता को स्वीकार कर ले, या उसे संसद् द्वारा या उसके किसी कानून के अधीन अयोग्य घोषित कर दिया जाए।

राज्य सभा स्थायी सदन (permanent house) है। यह सदन भंग नहीं किया जा सकता। इसके सदस्य ६ वर्ष के लिए चुने जाते है लेकिन [illegible] सदस्य प्रति दूसरे वर्ष रिटायर हो जाते हैं। धारा १०१ में ऐसी कई [illegible] वर्णन है जिनके कारण कोई सदस्य अपना स्थान खाली करता है। यदि [illegible] संसद् के दोनों सदनों का सदस्य चुन लिया जाए तो उसे दोनों सदनों में [illegible] खाली करना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति संसद् और राज्य विधान[illegible] लिया जाए तो उसे या तो संसद् की सदस्यता छोड़नी होगी [illegible] की। यदि किसी सदस्य में धारा १०२ के अनुसार कोई अयोग्यता [illegible] पैदा हो जाए तो उसे अपना स्थान खाली करना पड़ेगा। [illegible] दिवालिया हो जाने, पागल हो जाने या सरकारी [illegible] हैं। कोई सदस्य अपनी मर्जी से भी सदस्यता छोड़ [illegible]

संसद् के किसी सदन का कोई सदस्य बिना आज्ञा ६० दिन से अधिक गैरहाजिर रहे तो सदन उसके स्थान को खाली घोषित कर सकता है।

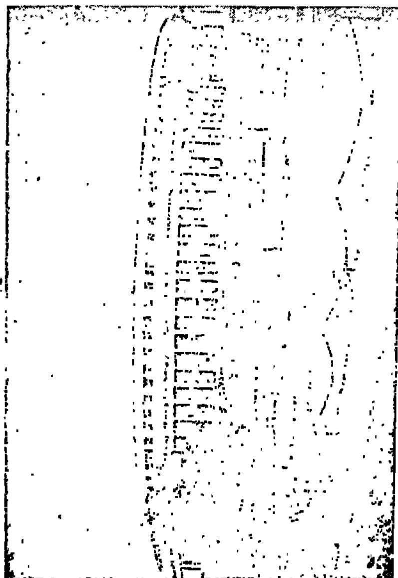
राज्य सभा के अधिकारियों (Officers of Rajya Sabha) का वर्णन किया जा सकता है। ये अधिकारी राज्य सभा के सभापति (Chairman) तथा उप-सभापति है। धारा ८९ व्यवस्था करती है कि भारत का उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति (*ex-officio* Chairman) होगा। उप-सभापति को राज्य सभा के सदस्य ही चुनते है। उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है यदि वह सदन का सदस्य न रहे। वह अपने आप कभी भी अपना इस्तीफा दे सकता है। राज्य सभा अपने साधारण बहुमत से प्रस्ताव पास करके उसे हटा सकती है। किन्तु ऐसे प्रस्ताव को लाने के लिए १४ दिन का नोटिस देना जरूरी होता है। सभापति की गैरहाजिरी मे उप-सभापति ही सारे काम पूरे करता है। लेकिन सभापति या उप-सभापति उस बैठक का सभापति नही होता जबकि सदन उसको हटाने के प्रस्ताव पर बहस करे। उप-राष्ट्रपति को उस समय बहस मे भाग लेने का अधिकार है जबकि सदन उप-सभापति को उसके स्थान से हटाने के बारे मे विचार कर रहा हो लेकिन उसे मत देने का अधिकार नही है।

राज्य सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions) विधायिनी, वित्तीय (financial), प्रशासनिक, संवैधानिक इत्यादि हैं। धन विधेयकों (Money Bills) के अतिरिक्त अन्य सब विधेयक राज्य सभा में आरम्भ किये जा सकते हैं और कोई विधेयक उस समय तक कानून नही बनते जब तक कि राज्य सभा उन्हें पास न कर दे। लोक सभा की स्वीकृति ही पर्याप्त नहीं है। राज्य सभा लोक सभा द्वारा पास किए गए विधेयक को रद्द कर सकती है। लोक सभा द्वारा पास किये गए विधेयक को राज्य सभा सशोधित कर सकती है और यदि लोक सभा संशोधन को स्वीकार नही करती तो गत्यवरोध (deadlock) पैदा हो जाता है जिसे दूर करने के लिए भारत के राष्ट्रपति दोनो सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाते है। राज्य सभा को लोक सभा के साथ काफी हद तक समान विधायी शक्तियां प्राप्त है किन्तु अन्त में कम सदस्य-संख्या होने के कारण राज्य सभा को लोक सभा के सामने झुकना पड़ता है। वह किसी विधेयक को कानून बनाने मे ६ मास की देरी कर सकती है लेकिन उसे स्थायी रूप से समाप्त नही कर सकती।

वित्तीय क्षेत्र मे राज्य सभा की स्थिति दुर्बल है। कोई धन विधेयक राज्य सभा मे पुर:स्थापित नही हो सकता। जब लोक सभा किसी धन विधेयक को पास कर देती है तो उसे राज्य सभा को अपनी सिफारिश करने के लिए भेजा जाता है और वह उसे अधिक-से-अधिक १४ दिन तक रोक सकती है। लोक सभा को यह अधिकार है कि वह राज्य सभा की सिफारिशो को स्वीकार करे या अस्वीकार। यदि लोक सभा राज्य सभा की सिफारिशों को रद्द कर देती है तो धन विधेयक उसी रूप मे पास हो जाता है जिस रूप मे आरम्भ में लोक सभा ने पास किया था।

संविधान व्यवस्था करता है कि मन्त्री केवल लोक सभा के प्रति उत्तरदायी हैं

और इसलिए राज्य सभा मे किसी मन्त्रमण्डल के हार जाने का कोई परिणाम नही होता। किन्तु राज्य सभा के सदस्य अनेक प्रकार से अपना प्रभाव काम मे ला सकते हैं। वे सरकार की भूलो और आज्ञा-पत्रो की आलोचना कर सकते है और उसके



संसद्-भवन

द्वारा उसको अपमानित कर सकते है। राज्य के महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार करने के लिए स्थगन प्रस्ताव (adjournment motions) लाये जा सकते है। विभिन्न विभागों के इचार्ज मन्त्रियो से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं। मन्त्रियों को राज्य सभा मे अपने पक्ष का समर्थन करने की आज्ञा है चाहे वे उसके सदस्य न हों।

जहाँ तक राज्य सभा के संवैधानिक कार्यों का सम्बन्ध है, संविधान में संशोधन करने का प्रस्ताव राज्य सभा मे पुर:स्थापित हो सकता है और यदि लोकसभा ने उसे

पास कर दिया हो तो भी उसका राज्य सभा मे स्वीकृत किया जाना अनिवार्य है। यदि संवैधानिक संशोधन के प्रश्न पर राज्य सभा और लोक सभा में गतिरोध (deadlock) हो जाय तो दोनो सदनों के संयुक्त अधिवेशन में उसे दूर किया जा सकता है।

राज्य सभा के कुछ विविध कार्यो का उल्लेख किया जा सकता है। राज्य सभा के सदस्यों को भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार है। राष्ट्रपति को अभियोजित करने का प्रस्ताव राज्य सभा में प्रस्तुत किया जा सकता है और उसे उस सदन की सम्पूर्ण सदस्य संख्या के दो-तिहाई बहुमत द्वारा स्वीकृत किया जाना आवश्यक है। यदि अभियोग (impeachment) करने की कार्यवाही लोक सभा में आरम्भ होती है, तो दोषी की जाँच राज्य सभा या उसके द्वारा नियुक्त ट्रिब्यूनल करता है। अभियोग के विषयों में राज्य सभा को लोक सभा के तुल्य शक्ति प्राप्त है। भारत के उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन लोक सभा और राज्य सभा दोनों के सदस्य करते है। उसे अपने पद से हटाया जा सकता है यदि राज्य सभा वैसा करने का प्रस्ताव पास करे और लोक सभा उससे सहमत हो। सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए संसद् के दोनों सदनो में प्रस्ताव पास होना आवश्यक है। राज्य सभा प्रस्ताव कर सकती है कि राज्य सूची से सम्बन्धित अमुक विषय राष्ट्रीय महत्व का है। इसके बाद संसद् उस विषय पर कानून बना सकती है। किन्तु ऐसे प्रस्ताव का प्रभाव केवल एक वर्ष तक रहता है। संकट के समय को दो मास से अधिक के लिए बढाने के लिए राज्य सभा की स्वीकृति आवश्यक है।

प्रो० जतीन्द्र रंजन ने राज्य सभा के विषय में कहा है कि "यह अमेरिका की सैनिट की तरह शक्तिशाली सभा नहीं है और न ही यह इंगलैंड के हाऊस ऑफ लार्ड्स की भाँति ढीली सभा है। जापान की प्रणाली की भाँति एकाधिकार (veto) हमारे संविधान में नही है। इसे केवल ठोस पुनर्विचार के अधिकार दिये गये है, विधान पर समान अधिकार नही। वास्तव मे इसे इससे अधिक चाहिए भी नही, क्योंकि गणतन्त्र मे बहुमत ही अन्ततः शक्तिशाली होता है। राज्य सभा संसार का सर्वश्रेष्ठ द्वितीय सदन ही नहीं अपितु आधुनिक गणतन्त्र के ढांचे में सबसे अधिक शक्ति में सन्तुलित और सही फबने वाला सदन है तथा गणतन्त्र के द्वितीय सदन के कार्य श्रेष्ठ तरीके से पूरा करने वाला सदन है।"

लोक सभा (House of the People)—संविधान के १९५६ मे हुए सातवें संशोधन द्वारा संशोधित धाराओं ८१ और ८२ के अनुसार, लोकसभा के अधिक-से-अधिक ५०० सदस्य होंगे। वे राज्यो के निर्वाचन-क्षेत्रों से प्रत्यक्ष मत विधि द्वारा निर्वाचित होंगे। अधिक-से-अधिक २० सदस्य सघ क्षेत्रो के प्रतिनिधित्व को 'उस विधि से ग्रहण करेंगे जो कि संसद् अधिनियम बनाकर व्यवस्थित करे। हर राज्य को सदस्य स्थान इस प्रकार से निर्धारित होंगे कि राज्य की जनसंख्या तथा उसकी निर्धारित सदस्य-संख्या का अनुपात जहाँ तक सम्भव हो सके हर राज्य के लिए एक-सा हो। हर राज्य को इस विधि से निर्वाचन-क्षेत्रो मे बांटा जाएगा कि हर निर्वाचन-क्षेत्र की जनसख्या तथा उसे दिष्ट निर्वाचन-संख्या का अनुपात जहाँ तक सम्भव हो सारे राज्य

भर में एक-सा हो। हर बार जन-गणना की समाप्ति पर राज्यों से लोक सभा के लिए प्रतिनिधि संख्या का निर्धारण तथा राज्यों का निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजन संसद् द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत नियत अधिकारी द्वारा तथा उसी प्रकार नियत विधि से पुनर्व्यवस्थित होंगे। यह पुनर्व्यवस्था लोक सभा पर उस समय तक कार्यान्वित नहीं होगी, जब तक कि तत्कालीन सदन विसर्जित नही हो जाता।

निम्न तालिका में राज्य पुनर्गठन अधिनियम, १९५६ के अनुसार राज्यों के नाम, लोक सभा में हर एक राज्य से प्रतिनिधियों की संख्या और हर राज्य की विधान सभा में सदस्य-संख्या बताई गई है—

क्रम संख्या	राज्य	लोक सभा में प्रतिनिधि संख्या	विधान सभा में सदस्य संख्या
१.	आंध्र प्रदेश ...	४३	३०१
२.	असम ...	१२	१०८
३.	बिहार ...	५५	३३०
४.	गुजरात ...	२२	१३२
५.	केरल ...	१८	१२६
६.	मध्य प्रदेश ...	३६	२८८
७.	मद्रास ...	४१	२०५
८.	महाराष्ट्र ...	४४	२६४
९.	मैसूर ...	२६	२०८
१०.	उड़ीसा ...	२०	१४०
११.	पंजाब ...	२२	१५४
१२.	राजस्थान ...	२२	१७६
१३.	उत्तर प्रदेश ...	८६	४३०
१४.	पश्चिमी बंगाल ...	३४	२३८
१५.	जम्मू और काश्मीर ...	६	...
१६.	नागालैंड ...	१	९०
१७.	दिल्ली ...	५	...
१८.	हिमाचल प्रदेश ...	४	...
१९.	मणिपुर ...	२	...
२०.	त्रिपुरा ...	२	...

नए संविधान मे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व (communal electorate) को छोड़ दिया गया है किन्तु इसमें बीस वर्ष (१९५०-७०) तक के लिए पिछड़ी जातियों तथा आदिम जातियों के लिए कुछ सीटों को रिजर्व रखा है। यदि एंग्लो-इंडियनों को साधारण चुनाव में उचित स्थान न मिलें तो राष्ट्रपति अधिक-से-अधिक दो सदस्यों को लोकसभा के लिए नामजद (nominate) कर सकता है। संविधान में सब वयस्कों को वोट देने का हक दिया गया है। १९५२ के शुरू में हुए चुनावों में लगभग १८ करोड़ व्यक्तियों ने लोकसभा के चुनावों में भाग लिया। चुनावों के उद्देश्य से राज्यों को निर्वाचन क्षेत्रों (territorial constituencies) में बाँटा जाता है।

धारा ३२६ के अनुसार संसद् और राज्यों की विधान सभाओं के चुनाव वयस्क मतदान के आधार पर होने चाहियें। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो भारत का नागरिक है और जो निर्धारित तिथि को २१ वर्ष से कम आयु का नहीं है अथवा जो संविधान की व्यवस्था के अनुसार अथवा किसी अन्य कानून के अनुसार निवास, पागलपन, अपराध, गैर-कानूनी कार्य करने इत्यादि के आधार पर अयोग्य घोषित नहीं कर दिया गया है, उसे इस प्रकार के चुनाव के लिए मतदाता माना जाए।

१९५१-५२ के प्रथम सार्वजनिक चुनावों के लिए १ मार्च, १९५० को प्रथम मतदाता सूची तैयार करने की अन्तिम तिथि घोषित की गई थी। योग्यता की अवधि १ मार्च, १९४७ से ३१ दिसम्बर, १९४९ तक थी। भविष्य में योग्यता की तिथि जिस वर्ष मतदाता-सूची बनाई जायगी उसकी पहली मार्च होगी और योग्यता की अवधि उस वर्ष से ठीक पहले का गुजरा हुआ वर्ष होगा।

लोक सभा के लिए केवल वही व्यक्ति चुना जायेगा जो भारत का नागरिक होगा। उसकी आयु २५ वर्ष की होनी चाहिए। उसमें संसद् द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताएँ भी होनी चाहिएँ।

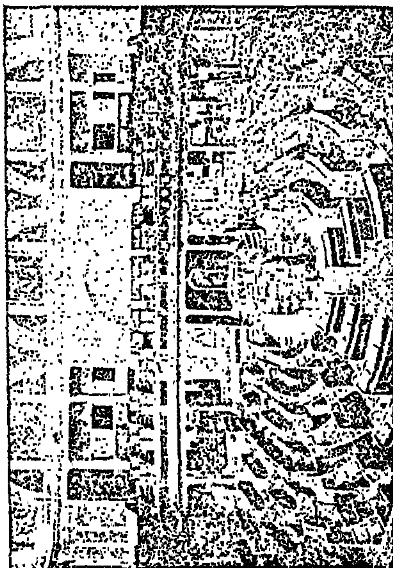
कोई भी व्यक्ति संसद् के दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता और उसे दो में से एक स्थान छोड़ना पड़ेगा। कोई भी व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा और संसद् का सदस्य नहीं हो सकता। यदि संसद् के किसी सदन का कोई सदस्य, सदन की आज्ञा बिना इसके अधिवेशन से ६० दिन अनुपस्थित रहेगा तो वह सदन उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। इस ६० दिन की अवधि की गणना में यदि वह सदन निरन्तर चार दिन तक किसी कारण से नहीं बैठा अथवा काम रुक गया तो यह अवधि नहीं गिनी जाएगी।

यदि कोई व्यक्ति किसी राज्य की सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार के अधिकृत किसी पद पर वेतनभोगी है, यदि वह पागल है अथवा किसी उपयुक्त न्यायालय ने उसे ऐसा माना हो, या वह अभियोगग्रस्त दिवालिया है, या भारत का नागरिक नहीं है या उसने स्वयमेव किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर ली है या किसी विदेशी राष्ट्र के प्रति वफादार है अथवा वह संसद् द्वारा बनाये गये किसी कानून के अनुसार अयोग्य ठहराया गया हो तो वह व्यक्ति संसद् की सदस्यता के लिए चुने जाने के लिए अयोग्य होगा।

लोक सभा की अवधि पाँच वर्ष है यदि वह इससे पहले भंग न की जाय। पाँच साल बीतने पर लोक सभा अपने आप भंग हो जाएगी। किन्तु यदि संकटकाल की घोषणा लागू हो तो संसद् एक बार में लोकसभा की अवधि एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है और किसी भी दशा में संकटकाल की घोषणा के समाप्त होने के ६ मास बाद से अधिक के लिए नहीं बढाई जायेगी।

लोक सभा की शक्तियाँ और कार्य (Powers and Functions of Lok Sabha)—धन विधेयक केवल लोक सभा में ही लाए जा सकते हैं, राज्य सभा में

नहीं। वास्तव में लोक सभा का धन विधेयकों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। वे राज्य सभा को केवल अपनी सिफारिश करने के लिए भेजे जाते है जिनको स्वीकार करने के लिए लोक सभा बाध्य नहीं है। राज्य सभा को अपनी सिफारिश करने के लिए १४ दिन दिए जाते हैं।



लोकसभा

सामान्य विधेयक लोक सभा में पुरःस्थापित किए जा सकते हैं। किसी भी विधेयक के कानून बनने से पहले उसका लोक सभा में पास किया जाना अनिवार्य है। यदि कोई विधेयक राज्य सभा में पुरःस्थापित किया गया हो तो भी उसका लोक सभा में पास होना आवश्यक है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हो और उसे पारस्परिक विचार-विनिमय के द्वारा दूर न किया जा सके तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकते हैं। चूंकि लोक सभा के सदस्यों की संख्या राज्य सभा के

की संख्या से दुगुनी होती है इस लिए संयुक्त बैठक में लोक सभा की विजय होनी अनिवार्य है। यह स्पष्ट है कि कानून बनाने के सम्बन्ध में लोक सभा की स्थिति अधिक ऊँची है।

लोक सभा कार्यपालिका का नियन्त्रण करती है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप में लोक सभा के प्रति उत्तरदायी है। उसे उसका विश्वास खोने पर त्यागपत्र देना पड़ता है। लोक सभा के सदस्य प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं तथा स्थगन प्रस्ताव उपस्थित कर सकते हैं। लोक सभा में सरकार की विभिन्न भूलों और कार्यों (omission and commission) की आलोचना की जा सकती है। यह कार्य विशेषकर बजट पर बहस करते समय किया जाता है। सदस्यों को सरकार के विभिन्न विभागों की आलोचना करने का पूर्ण अवसर मिलता है। मन्त्रियों को अपनी नीति सदस्यों को समझाने और संतुष्ट करने के लिए विवश किया जाता है। लोक सभा में अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकता है और उसके पास होने पर मन्त्रिमण्डल को त्यागपत्र देना पड़ता है।

लोक सभा के सदस्यों का राष्ट्रपति के निर्वाचन में भी हाथ है। लोक सभा और राज्य सभा के संयुक्त अधिवेशन में गणराज्य का उप-राष्ट्रपति चुना जाता है।

लोक सभा संविधान के संशोधन में भाग लेती है। संविधान का संशोधन करने वाला विधेयक लोक सभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है और वहाँ पर सदन की सम्पूर्ण सदस्य संख्या के बहुमत तथा उपस्थित तथा मत देते वाले सदस्यो के दो-तिहाई बहुमत से पास होना चाहिए। यदि लोक सभा और राज्य सभा में मतभेद हो तो दोनों की संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है और लोक सभा के मत की विजय उसकी सदस्य संख्या अधिक होने के कारण होनी स्वाभाविक है।

राष्ट्रपति को अभियोजित (impeach) करने का प्रस्ताव लोक सभा और राज्य सभा दोनों कर सकती है। यदि राज्य सभा दोषारोपण करती है तो उसकी जाँच लोक सभा करती है और इसी प्रकार इसके विपरीत। यदि राज्य सभा उप-राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव करे तो उस पर लोक सभा की स्वीकृति भी आवश्यक है। किन्तु लोक सभा उप-राष्ट्रपति को हटाने का प्रस्ताव पास नहीं कर सकती। यदि संकट काल की विभिन्न घोषणाओं को जारी रखने का विचार हो तो उन पर लोक सभा की स्वीकृति आवश्यक है। यदि सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को दुर्व्यवहार या असामर्थ्य के आधार पर हटाने का विचार हो तो उसके लिए राज्य सभा और लोक सभा में २/३ बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत होना आवश्यक है।

अध्यक्ष (Speaker)—लोक सभा के अधिकारियो का वर्णन किया जा सकता है। वे अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) हैं। दोनों अधिकारियों का चुनाव लोक सभा के सदस्य अपने मे से करते है। लोक सभा का अध्यक्ष या उपाध्यक्ष यदि लोक सभा का सदस्य नहीं रहता तो वह अपना पद छोड देता है। वह अपना इस्तीफा भी दे सकता है। लोक सभा अपने साधारण बहुमत से प्रस्ताव पास करके भी

उनको हटा सकती है, किन्तु ऐसे प्रस्ताव के लिए १४ दिन का नोटिस देना आवश्यक होता है। जब लोकसभा भंग हो जाये तो अध्यक्ष अपना पद उसी समय खाली नहीं करता। वह नई संसद् की प्रथम बैठक तक अध्यक्ष बना रहता है। उपाध्यक्ष अध्यक्ष की अनुपस्थिति में अध्यक्ष के कार्यों को पूरा करता है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों उस बैठक की अध्यक्षता नहीं कर सकते जिसमे उनको उनके पद से हटाने के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा हो। लोक सभा के परामर्श से राष्ट्रपति संसद् के सचिवालय (Secretariat) के नौकरों की भर्ती और सेवा की शर्तें तय करने के कानून बना सकता है।

अध्यक्ष की शक्तियां (Powers of Speaker)—जहाँ तक अध्यक्ष की शक्तियों का प्रश्न है, उसकी स्थिति इगलैंड के स्पीकर की-सी है। यदि उसके विरुद्ध कोई प्रस्ताव विचाराधीन नही है तो वह लोक सभा के प्रत्येक अधिवेशन की अध्यक्षता कर सकता है। सदन के नेता से सलाह करके वह राष्ट्रपति के संदेश से सम्बन्धित मामलों पर बहस की आज्ञा देता है और 'धन्यवाद' के प्रस्ताव मे सशोधन किस प्रकार किए जाएँ इस विषय मे तरीका भी बताता है। वह सदेश पर भाषणो की अवधि भी नियुक्त करता है। वह सदन की कार्यवाही के क्रम का निर्णय भी करता है। वह प्रस्तावों और प्रश्नों की स्वीकृति के विषय में भी निर्णय करता है। वह इस प्रकार के प्रस्तावों और प्रश्नों की स्वीकृति नही देता, जिनसे लोकसभा के कार्यक्रम मे बाधा पड़ती हो। बिना उसकी इच्छा के कोई भी 'कामरोको' प्रस्ताव अथवा विधेयक प्रस्तुत नही किया जा सकता। यदि वह आज्ञा दे भी दे तो वह प्रस्ताव पर बहस का समय नियुक्त कर सकता है। वह सरकारी विज्ञप्ति में किसी भी विधेयक को प्रकाशित करने की आज्ञा दे सकता है। वह निर्वाचित-समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति करता है। उसे इस बात का ध्यान रखना पडता है कि समय पर कार्यवाही समाप्त हो जाए और इस आशय से वह आय-व्यय लेखा पर भाषणों का समय नियुक्त कर देता है। कोई भी सदस्य उसकी स्वीकृति के बिना सदन में भाषण नही दे सकता। यदि कोई सदस्य अयुक्तियुक्त भाषण दे तो वह उसे रोक सकता है। यदि कोई सदस्य आज्ञा-आक्षेप (point of order) उठाये तो उस पर व्यवस्था देना अध्यक्ष का ही कार्य है और उसकी दी गई व्यवस्था पूर्ण और अन्तिम तथा सम्पूर्ण सदन पर बाध्य होती है। कोई सदस्य उसकी व्यवस्था को चुनौती नही दे सकता। यह उसका कर्त्तव्य है कि वह सदन मे अनुशासन रखे। वह किसी ऐसे सदस्य को जो कार्यवाही में गडबड़ पैदा करता हो, चेतावनी दे सकता है। यदि कोई सदस्य चेतावनी के बाद भी उसकी अवहेलना करता है तो वह उसे अनुलम्बित कर सकता है। वह सदन के कार्यक्रम को स्थगित कर सकता है। अध्यक्ष ही सदन में बाहर के लोगों के प्रवेश का नियन्त्रण करता है। वह उन्हें सदन से बाहर जाने के लिए भी कह सकता है। अध्यक्ष ही इस बात का निर्णय करता है कि कौनसा विधेयक वित्त विधेयक है और कौनसा नही। इस विषय मे उसका निर्णय अन्तिम होता है। किसी भी विधेयक को राष्ट्रपति के अथवा राज्य सभा के पास भेजते समय अध्यक्ष अपने हस्ताक्षर करके इस बात की साक्षी देता है कि प्रस्तुत विधेयक को सदन ने स्वीकार किया है।

अध्यक्ष लोक सभा के सदस्यों के विशेषाधिकारों का संरक्षक है। यदि कार्य-मण्डल अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी सदस्य के विशेषाधिकार पर आक्षेप हुआ हो तो वह इस विषय में उचित कार्यवाही के लिए बलपूर्वक कह सकता है। अध्यक्ष लोक सभा का मुख्य नेता होता है और औपचारिक अवसरों पर वह इसका प्रतिनिधित्व भी करता है। वह राष्ट्रपति और लोक सभा के सदस्यों में संचार (communication) का माध्यम है।

अध्यक्ष का यह कर्त्तव्य है कि वह सदन की कार्यवाही पर्याप्त गणपूर्ति (quorum) होने पर ही चलाये। यदि उसे पता लगे कि गणपूर्ति कम है तो वह सदन की कार्यवाही तब तक रोक दे जब तक पर्याप्त गणपूर्ति न हो जाए।

यदि किसी समस्या पर निर्णय लेना हो और सरकारी पक्ष और विरोधी पक्ष मे मतभेद हो, तो अध्यक्ष इसे सदन मे मतदान के लिए रख सकता है। विरोधी और पक्षी सूरतो में प्राप्त हुए मतों की गणना के पश्चात् वह निर्णयों की घोषणा करता है। सम मतदान की अवस्था में अध्यक्ष अपना निर्णायक मत (casting vote) देता है।

इस बात का निर्णय भी अध्यक्ष करता है कि संसद् का अधिवेशन कब आरम्भ हो, कितने दिन चले और इसकी बैठकें किस-किस दिन हों। वह स्वतन्त्र सदस्यों के प्रस्तावो पर बहस के लिए दिन नियुक्त करता है और अध्यक्षों की समिति की नियुक्ति भी करता है।

यदि वह समझे कि कोई वाक्य अथवा भाषण का अंश पेचीदा, अश्लील, अपमानजनक और असंसदीय है तो उन्हें सदन की कार्यवाही में लिखे जाने से मना कर सकता है।

जब अध्यक्ष भाषण के लिए खड़ा हो तो अन्य सब को बैठ जाना पड़ता है। और उसके भाषण के दौरान वे सदन भवन को छोड़ नही सकते।

अध्यक्ष की स्थिति के विषय मे इंगलैंड की परिपाटी का अनुसरण किया गया है। भारतीय संसद्-अध्यक्ष ने अधिकाधिक निष्पक्ष रहने का प्रयत्न किया है। यही स्वर्गीय मावलंकर, श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने किया और अब श्री हुकमसिंह कर रहे है। उन्होने अपने दल की बैठकों मे भाग लेना बन्द कर दिया है।

इस प्रकार निष्पक्ष रहने पर भी १८ दिसम्बर, १९५४ को श्री मावलंकर के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रख दिया गया था। प्रधान मन्त्री नेहरू ने इसकी निन्दा की थी और विरोधी पक्ष को इसका जिम्मेदार ठहराया था। लोक सभा के ५० सदस्यों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था किन्तु उद्घोषमत (voice vote) के कारण वह गिर गया। अध्यक्ष के विरुद्ध मुख्य शिकायत यह थी कि वह सरकार द्वारा प्रस्तुत तथ्यो को अधिक मान्यता देता है। किन्तु इसकी भूमिका में अध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत काम-रोको प्रस्तावो की अस्वीकृति थी। उसने ८९ काम-रोको प्रस्तावों में से केवल एक को ही स्वीकार किया था।

भारतीय संसद् के प्रथम अध्यक्ष श्री जी० वी० मावलंकर (G. V. Mavalan-

kar) ने अध्यक्ष की स्थिति का इन शब्दों मे वर्णन किया है—"भारतीय अध्यक्ष आज राजनैतिक अखाड़े से पूर्णतः बाहर नही है जैसा कि इंगलैंड का अध्यक्ष होता है। वर्तमान अवस्था में अध्यक्ष को राजनीति-कुशल होना ही चाहिए यद्यपि उसका राजनैतिक क्रिया-कलाप अत्यन्त सूक्ष्म होगा, वह अपने दल का सदस्य बना रह सकता है किन्तु दल के कार्यक्रम में भाग नही ले सकता, विशेषतः जिन प्रस्तावो के संसद् के सम्मुख विचार के लिये आने की सम्भावना हो। सूक्ष्म रूप से उसे प्रचार अथवा व्याख्यानों में भाग नही लेना चाहिए जिससे उसकी अध्यक्ष की पदवी सन्देह-जनक हो जाय और यह दुर्भावना उत्पन्न हो कि अध्यक्ष दल-विशेष का पक्ष करता है।"

लोकसभा के सैक्रेट्री एम० एन० कौल के अनुसार, "अध्यक्ष मे लोक सभा के सामूहिक विचारों को जानने की अद्भुत शक्ति होनी चाहिए। लोक सभा का वातावरण सदा बदलता रहता है और अध्यक्ष को एक स्थिति से लगाव हो जाये तब वह अपने आप को समय की गति से बाहर पायेगा। अध्यक्ष को अपनी स्थिति को दृढ़ रखने के लिए निरन्तर सावधानी की जरूरत होती है, वह सरकार या सदस्य को सदन के सम्मान तथा प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने की आज्ञा नहीं दे सकता। अध्यक्ष लोक सभा का प्रतीक होता है। वह छान-बीन करने वाले सवालों मे रुकावट डालता है। वह लोक सभा के सदस्यों के अधिकारों तथा सुविधाओं की देख-भाल करता है तथा लोक सभा की इज्जत को मिट्टी में नही मिलने देता। साधारण रूप से वह लोक सभा की अध्यक्षता तथा देख-भाल करता है और विवाद का कन्ट्रोल करता है। संकटकाल में वह बहुत आवश्यक शक्ति बन जाता है। अध्यक्ष के दो काम बडे दुःख देने वाले होते हैं—पहला प्रश्नो, संशोधनों तथा प्रस्तावो को स्वीकार करना तथा दूसरा कार्यविधि का दृढतापूर्वक पालन करना। अध्यक्ष इस बात का ध्यान रखता है कि सम्पूर्ण कार्य निश्चित विधि के अनुसार किया जाये। यदि अध्यक्ष किसी प्रश्न को रद्द कर दे तो उसका फैसला आखिरी होता है और उस पर सदन में विवाद नही हो सकता। अध्यक्ष का काम यह देखना है कि कार्यवाही कार्यविधि के अनुसार चलाई जाये। उस काम मे हरेक सदस्य को उसकी सहायता करनी चाहिए। ये सब साधारण (normal) बातें दिखाई देती हैं लेकिन संकटकाल में अध्यक्ष की शक्ति और उसका संसद् पर प्रभाव एकत्रित हो जाता है।

संसद् के दोनों सदनों का सम्बन्ध (Relations between two Houses of Parliament)—संसद् के दोनों सदनों से सम्बन्ध रखने वाली संविधान की व्यवस्थाओं को सरसरी निगाह से देखने से ही पता चलता है कि दोनों सदनों के अधिकार समान नही हैं। वे बराबरी के स्तर पर नही हैं। अलग-अलग मदो के अधीन उनके आपसी सम्बन्धों पर विचार करना आवश्यक है।

(१) धन विधेयकों (Money Bills) के सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से बताया गया है कि धन-विधेयक केवल लोक सभा में ही लाये जा सकते हैं। जब लोक सभा किसी धन विधेयक को पास कर देती है तो उसे राज्य सभा को सिफारिश करने के लिए भेजा जाता है। राज्य सभा को प्राप्त होने के १४ दिन के अन्दर अपनी सिफारिशें करके

लोक सभा को लौटाना होता है। लोक सभा राज्य सभा की किसी या सभी सिफारिशों को स्वीकार और रद्द कर सकती है। यदि लोक सभा राज्य सभा के किसी संशोधन को स्वीकार कर लेती है तो धन विधेयक उन संशोधनों के साथ पास किया हुआ समझा जाता है। यदि लोक सभा राज्य सभा की सुझायी गई सिफारिशों को नहीं मानती तो विधेयक को उसी रूप में पास समझा जाता है जिस रूप में पहली बार लोक सभा ने उसे पास किया था। यदि लोक सभा से किसी धन विधेयक को पास करके राज्य सभा मे भेजा जाता है लेकिन वह धन विधेयक १४ दिन के अन्दर लोक सभा को नहीं लौटाया जाता तो १४ दिन बीतने के बाद यह मान लिया जाता है कि धन विधेयक दोनों सदनों मे उसी रूप में पास हो गया जैसा कि लोक सभा ने पास किया। ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि धन विधेयकों के सम्बन्ध में राज्य सभा को न तो उनको आरम्भ करने की शक्ति प्राप्त है और न वह उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार साँचे मे ढाल सकती है। राज्य सभा धन विधेयक को केवल १४ दिन तक कानून बनने से रोक सकती है, इससे अधिक वह कुछ नही कर सकती। यह ध्यान देने की बात है कि लार्ड-सभा भी धन विधेयकों के सम्बन्ध में शक्तिहीन है लेकिन उसे विचार करने के लिये १४ दिन के स्थान पर एक मास मिलता है।

(२) साधारण विधेयकों (non-money bills) के सम्बन्ध में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर हैं। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि किसी विधेयक को कानून का रूप लेना है तो उसे दोनों सदनों में पास होना चाहिए। लोक सभा को राज्य सभा को हटाने की शक्ति नही है। यह स्पष्ट है कि इस मामले मे राज्य सभा को ठोस शक्तियाँ प्राप्त है।

(३) धारा १०८ यह व्यवस्था करती है कि यदि किसी विधेयक के सदन में पास होने तथा दूसरे सदन को पहुँचने के बाद दूसरे सदन द्वारा वह विधेयक रद्द कर दिया जाता है या विधेयक में किए जाने वाले संशोधनों पर दोनों सदन अन्तिम रूप से असहमत (disagree) हो चुके हैं या विधेयक को मिलने की तारीख के बिना इसको पास किए, दूसरे सदन को ६ मास से अधिक गुजर चुके हैं, तो राष्ट्रपति अधि-सूचना (*notify*) द्वारा दोनों सदनों की संयुक्त बैठक करने के लिए दोनों सदनों को बुलाने की इच्छा प्रकट कर सकता है। ऐसी सूचना सन्देश या लोक-अधिसूचना द्वारा दी जा सकती है। यदि राष्ट्रपति दोनों सदनो की संयुक्त बैठक करने के लिए सूचना दे चुका हो, तो कोई सदन विधेयक पर आगे कार्यवाही न करेगा। इसके बाद राष्ट्रपति किसी समय सदनों को अधिसूचना में बताये गये कार्य के लिये संयुक्त बैठक करने के लिए बुलायेगा। यदि सदनों की संयुक्त बैठक में विधेयक ऐसे संशोधनों सहित, जिनको संयुक्त बैठक में स्वीकार कर लिया गया है, दोनो सदनों के मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से पास हो जाता है, तो उसे दोनों सदनो से पास किया हुआ समझा जायेगा। दोनों सदनों की संयुक्त बैठक करने के लिए बुलावा देने की राष्ट्रपति की अधिसूचना के बाद, यद्यपि लोक सभा भंग हो चुकी हो तो भी संयुक्त बैठक हो सकेगी तथा उसमें विधेयक पास हो सकेगा। यह साफ है कि संयुक्त बैठक में लोक सभा की ही विजय होगी;

क्योंकि उसकी संख्या अधिक है। ऐसा मालूम होता है कि इन व्यवस्थाओं को आस्ट्रेलिया के संविधान तथा भारत सरकार अधिनियम सन् १९३५ से लिया गया है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत की राज्य सभा इंगलैंड के हाउस ऑफ लार्ड्ज की नाई अप्रधान या गौण स्थान नही रखती। इसका स्थान लोक सभा से भी ऊँचा है।

(४) कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control on the Executive) रखने के बारे में भी लोक सभा की स्थिति अधिक मजबूत है। कारण स्पष्ट है। संविधान के अनुसार मन्त्री संयुक्त रूप से केवल लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी हैं और दोनों सदनों के नही। लेकिन यह भी सच है कि राज्य सभा के कुछ सदस्य मन्त्रि-परिषद् के सदस्य हो सकते हैं और असल मे वे श्री लाल बहादुर शास्त्री के मन्त्रिमण्डल मे हैं भी। राज्य सभा मे मन्त्रियो से प्रश्न पूछने मे कोई रोक नही है। सरकार की नीति की निन्दा करने के लिए प्रस्ताव पास किया जा सकता है। इस प्रकार, राज्य सभा कई ढग से सरकार को प्रभावित कर सकती है, किन्तु वह लोक सभा की तरह सरकार को पद छोड़ने के लिए मजबूर नही कर सकती। यह विशेषाधिकार केवल लोक सभा को ही प्राप्त है।

लोक सभा और राज्य सभा में राजनैतिक दलों की स्थिति समान है। दोनों सदनों का सामाजिक गठन भी एक जैसा है। यह नही कहा जा सकता कि राज्य सभा के सदस्य लोक सभा के सदस्यों से अधिक वयोवृद्ध और अनुभवी हैं। दोनों सदनों की कार्य-प्रणाली भी बिलकुल एक ही है। किन्तु इसका आकार लोक सभा से छोटा है और कार्य-भार भी कम है। इसके सदस्यों को विचार करने की अधिक स्वतन्त्रता है। राज्य सभा ने स्वतन्त्र सदस्यों के प्रस्तावों पर विचार करने के लिये ढाई घंटे प्रतिदिन के अतिरिक्त शुक्रवार का सारा दिन इस कार्य के लिए रखा है। राज्य सभा एक प्रभावशाली पुनर्विचार सदन के रूप में असफल रही है। १९५२ के चुनावो के पश्चात् लोक सभा ने २५ विधेयक स्वीकार किये और राज्य सभा ने इन विधेयकों में से केवल एक पर संशोधन किया है। दूसरे अधिवेशन मे १६ विधेयक लोक सभा ने पारित किये और राज्य सभा ने इनमें एक का भी संशोधन नही किया। तीसरे अधिवेशन मे लोक सभा द्वारा स्वीकृत २६ विधेयकों पर राज्य सभा ने केवल एक ही संशोधन किया। चौथे अधिवेशन मे लोक सभा द्वारा पारित ४ विधेयकों में से एक का भी संशोधन नही किया। पाँचवें अधिवेशन में लोक सभा द्वारा स्वीकृत १५ विधेयको मे से केवल एक का ही संशोधन किया है। राज्य सभा द्वारा किये गए तीनों संशोधन लोक सभा ने मान लिये।

भारत सरकार की राज्य सभा में उत्तरोत्तर अधिक संख्या में विधेयक प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रही है। १९५२ के प्रथम चुनावों के बाद सरकार ने राज्य सभा में चार विधेयक, दूसरे अधिवेशन में तीन, तीसरे और चौथे अधिवेशनों मे प्रत्येक मे ग्यारह विधेयक और पाँचवें अधिवेशन में आठ विधेयक प्रस्तुत किए। कानून की दृष्टि में राज्य सभा की स्थिति दृढ़ होने पर भी इसने लोक सभा का प्रतिद्वन्द्वी बनने का

प्रयास किया है। किन्तु लोक सभा में राज्य सभा की इस अनधिकार चेष्टा के विरुद्ध घोर प्रतिक्रिया हुई है।

२९ अप्रैल, १९५३ को राज्य सभा ने लोक सभा द्वारा पारित आयकर (संशोधन) विधेयक १९५२ [Income Tax (Amendment) Bill, 1952] विचारार्थ लिया। लोक सभा के अध्यक्ष ने इस विधेयक को वित्त-विधेयक (Money Bill) प्रमाणित किया था। राज्य सभा के विचार से यह विधेयक वित्त विधेयक नहीं था। राज्य सभा के नेता विधि मन्त्री (Law Minister) श्री विश्वास ने कहा कि यदि यह स्पष्ट रूप से कह दिया जाय कि लोक सभा के अध्यक्ष ने पूर्ण और निष्पक्ष निर्णय के पश्चात् यह प्रमाणित किया है तो राज्य सभा को इस विधेयक के विषय में पूर्ण विश्वास हो जाएगा। यह मामला लोक सभा में उठाया गया और यह समझा गया कि विधि-मन्त्री के ये शब्द लोक सभा के अध्यक्ष के सम्मान के लिए युक्तियुक्त तथा न्यायपूर्ण नहीं है। यह भी आदेश दिया कि जब इस मामले पर लोक सभा विचार करे तो विधि मन्त्री भी उपस्थित हो। राज्य सभा ने यह प्रस्तावित किया कि "सदन के नेता को आदेश दिया जाता है कि वह किसी भी पद के अन्तर्गत लोक सभा में उक्त अवसर पर उपस्थित न हो।" विधि मन्त्री लोक सभा मे उपस्थित थे, जिस समय उपाध्यक्ष ने राज्य सभा के अध्यक्ष का यह सन्देश पढ़कर सुनाया कि "यह किसी की भी इच्छा नहीं थी, सदन के नेता की तो बिलकुल भी यह इच्छा नही थी कि अध्यक्ष के सम्मान और निष्पक्षता पर किसी भी प्रकार का सन्देह किया जाए। इस सदन मे हमें यह चिन्ता है कि हम पूर्ण शक्ति से अध्यक्ष और दूसरे सदन के सम्मान और विशेषाधिकार की रक्षा करें। हम उनसे आशा करते है कि वे हमारे सम्मान और विशेषाधिकारों का संरक्षण करेंगे।" विधि मन्त्री ने भी इस वक्तव्य का समर्थन किया और उपाध्याक्ष ने भी इस बात पर अधिक जोर देना उचित नहीं समझा। किन्तु लोक सभा के सदस्यों ने विधि मन्त्री को किए गए आदेश की चर्चा की कि "वह लोक सभा में उपस्थित न हों।" इस पर झगड़ा हुआ। इस बात को जोरदार शब्दों में कहा गया कि मन्त्रिगण लोक सभा के प्रति उत्तरदायी हैं। अतः राज्य सभा को इस प्रकार का प्रस्ताव भेजने का अधिकार नही था। परिणामतः विधि मन्त्री को लोक सभा के सदस्यों से क्षमा माँगनी पड़ी और प्रधान मन्त्री को लोक सभा के सदस्यों से प्रार्थना करनी पड़ी कि वे मामले को छोड़ दें। इस प्रकार यह विवाद समाप्त हुआ।

जनवरी, १९५३ में राज्य सभा ने लोक सभा को एक संयुक्त सार्वजनिक लेखा-समिति (Joint Public Accounts Committee) बनाने की सलाह दी और प्रस्ताव किया कि सार्वजनिक लेखा-समिति (Public Accounts Committee) के १५ सदस्यों ७ सदस्य राज्य सभा के सम्मिलित कर लिये जायें। लोकसभा की नियम समिति (Rules Committee) ने इस सुझाव पर विचार किया और वह इस निर्णय पर पहुँची कि संयुक्त समिति अथवा पृथक् राज्य सभा की समिति, सार्वजनिक लेखा पर संविधान के सिद्धान्तों के विरुद्ध होगी और इस कारण यह सुझाव अमान्य है। वित्तीय मामलों में लोक सभा विशेषतः उत्तरदायी है और यह स्थिति राज्य सभा की

नहीं है। अधिक-से-अधिक इस बात की छूट दी जा सकती है कि राज्य सभा 'सार्वजनिक लेखा-समिति' नही अपितु एक अस्थाई समिति (*Ad hoc* Committee) बना सकती है जो इसे वित्तीय मामलों पर सलाह दे सके। जब यह मामला लोक सभा मे विचारार्थ आया तो प्रधान मन्त्री ने एक प्रस्ताव रखा कि राज्य सभा लोक सभा की सार्वजनिक लेखा-समिति में भाग लेने के लिए अपने सात सदस्य भेजे। इस प्रस्ताव की कांग्रेस के सदस्यो ने बड़ी आलोचना की और मामला थोड़े दिनो के लिए छोड़ दिया गया। यह प्रस्ताव अन्त मे दिसम्बर १९५३ मे स्वीकार कर लिया गया और राज्य सभा ने इस समिति मे १९५४ में भाग लिया।

संयुक्त समितियाँ (Joint Committees) बनाने के सम्बन्ध में कुछ कठिनाइयाँ रही हैं। दिसम्बर १९५३ में राज्य सभा की ओर से एक संयुक्त समिति बनाने का सुझाव दिया गया जिसके कारण लोक सभा के सदस्यों ने अपना अपमान समझा। 'संविधान को उलटा जा रहा है', 'असभ्य व्यवहार है' इत्यादि कठोर वाक्यो का प्रयोग किया गया और मामले को रोक देना पड़ा। प्रधान मन्त्री ने पुनः हस्तक्षेप किया और अपील की कि लोक सभा के सदस्य सुझाव को मान लें। अन्त में सुझाव स्वीकार कर लिया गया।

१९५४ मे प्रसिद्ध वकील श्री एन० सी० चटर्जी जो तत्कालीन लोक सभा के सदस्य थे, ने एक सार्वजनिक मीटिंग में कहा कि "यह उच्च सदन जिसे एक वयोवृद्धो की सभा माना जाना चाहिये, छोकरों की टोली की तरह व्यवहार कर रहा प्रतीत होता है।" मामला राज्य सभा में उठाया गया और सचिव को तथ्य का पता लगाने के लिये कहा गया। सचिव ने चटर्जी को लिखा कि क्या यह तथ्य सत्य है? लोक सभा में सचिव के पत्र के औचित्य के विषय मे प्रश्न उठाया गया। लोक सभा के अध्यक्ष ने कहा कि यह पत्र एक आक्षेप की तरह है। अतः वह दोनों सदनों की संयुक्त विशेषाधिकार समिति को सौंपने के पक्ष मे हैं। राज्य सभा ने इसे स्वीकार किया। अन्त में यह मामला समाप्त हो गया।

संसद् की शक्तियाँ (Powers of Parliament)—भारत के सुप्रीम कोर्ट के शब्दों में, "भारत के संविधान ने संसद् को उचित स्थानों तथा अनुसूचियों मे बताए गए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दिया है और कुछ दूसरी धाराओं के अधीन, खास कर मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले भाग ३ के अधीन उसके अधिकारो और शक्तियो को कम किया है। इसमे कोई संदेह नहीं कि इन प्रतिबन्धों तथा कण्ट्रोलों को मानते हुए उन मामलो के सम्बन्ध मे जिन पर इसको कानून बनाने का अधिकार है, संसद् सर्वोच्च है और इसकी शक्तियाँ भरपूर हैं।"

'(१) भारत की ससद् को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार है जो संघ सूची (Union List) और समवर्ती सूची (Concurrent List) मे रखे गए हैं। संघ सूची मे ९७ और समवर्ती सूची में ४७ विषय हैं। संघ सूची के प्रमुख विषय भ.. की प्रतिरक्षा (Defence), नौ, स्थल तथा विमान बल (Naval, Military and Force) तथा संघ के कोई अन्य सशस्त्र बल (Armed Forces), छावनी क्षेत्रों

परिसीमन (delimitation), नौ, स्थल और विमानबल की कार्यशालाएँ (workshops), शस्त्रास्त्र, अग्न्यस्त्र, युद्धोपकरण और विस्फोटक (Arms, Firearms, Ammunition, and Explosives), अणुशक्ति (Atomic Energy), केन्द्रीय गुप्त वार्ता और अनुसन्धान विभाग (Central Bureau of Intelligence and Investigation), व्यक्तियों का निवारक निरोध (Preventive Detention), विदेशी कार्य, राजनयिक (Diplomatic), वाणिज्य-दूतक तथा व्यापारिक प्रतिनिधित्व (Consular and Trade Representation), संयुक्त राष्ट्रसंघ, संघ-सूचना संघटन (Union Information Organization), अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेना और उनके फैसलों को लागू करना, विदेशों से संधि तथा समझौते करना और उन सन्धियों तथा समझौतों को लागू कराना, युद्ध और शान्ति, विदेशी क्षेत्राधिकार (foreign Jurisdiction), नागरिकता, प्रत्यर्पण (Extradition), पासपोर्ट और वीसा, रेलें, सड़कें, समुद्रों (High Seas) पर किये गए अपराध, जहाजरानी और जहाजी यात्रा, लाइट हाउसेज, पोर्ट, वायुपथ (Airways), विमान और/या जहाजरानी, डाक, तार, टेलीफोन, वायरलैस और ब्रॉडकास्टिंग, राष्ट्रीय कर्जा, मुद्रा (currency), विदेशी कर्जा, रिजर्व बैंक आफ इन्डिया, अन्तर्राज्यीय व्यापार बैंकिंग, विदेशों से व्यापार, बीमा, श्रेष्ठि-चत्वर और वादा बाजार (Stock Exchanges), एकस्व (patents), आविष्कार और रूपांकन (Design), कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, पण्यचिन्ह (Merchandise Marks), बाट और नाप, टकसाल, जन-गणना, संघीय लोक सेवा आयोग (Public Service Commission), विधानमण्डलों के चुनाव, संघ तथा राज्यों की हिसाब की जाँच, सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट, अन्तर्राज्य प्रव्रजन (migration), आदि, आदि हैं।

(२) समवर्ती सूची में प्रमुख विषय फौजदारी कानून और विधि (procedure), विवाह और तलाक, दिवाला और शोधाक्षमता (Insolvency), न्यास और न्यासी (trust and trustees), सिविल कानून, आर्थिक तथा सामाजिक योजना, व्यापारिक और औद्योगिक एकाधिकार (Commerce and Industrial Monopolies), व्यापार यूनियन, औद्योगिक और श्रमिक झगड़े, सामाजिक सुरक्षा, नौकरी और बेकारी, मजदूरों की ट्रेनिंग, कानूनी, डाक्टरी और अन्य धन्धे, मूल्य नियन्त्रण, कारखाने, बिजली, समाचारपत्र, पुस्तकें और छापाखाने आदि हैं।

उपर्युक्त वर्णन से प्रकट है कि अत्यधिक महत्वपूर्ण विषय केन्द्र को दिये गए हैं और इसलिए उस क्षेत्र में कानून बनाने के बारे में संसद् बहुत अधिक शक्तियों का प्रयोग कर सकती है। यदि किसी विधान मण्डल का कानून किसी संघीय कानून से मेल न खाता हो वह अपनी प्रतिकूलता की सीमा तक गैर-कानूनी हो जाता है।

(३) संविधान व्यवस्था करता है कि कुछ मामलों में संसद् उन विषयों पर भी कानून बना सकती है जो राज्यों को दिये गए हैं। धारा २४९ के अनुसार, संसद् राज्य सूची के किसी विषय पर कानून बना सकती है यदि राज्य सभा अपने उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अधिक संख्या द्वारा प्रस्ताव पास करके घोषणा करे कि अमुक विषय राष्ट्रीय हित का है। धारा २५० के अनुसार, संकटकाल

विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करे। इसी प्रकार संसद् के सदस्य मन्त्रियों से प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। संसद् मन्त्रियों के विधेयकों को रद्द कर सकती है। लोक सभा मन्त्रिमंडल में अपना अविश्वास प्रकट करने के लिए किसी विशेष मन्त्रालय के अनुदानों या बजट के सम्बन्ध में प्रतीक कटौती का प्रस्ताव पास कर सकती है। स्थगन प्रस्ताव (adjournment motions) भी सरकार की आलोचना करने के लिए लाये जा सकते है।

प्रत्येक दिन की बैठक का पहला घण्टा लोक सभा में संसद् के सदस्यों द्वारा भिन्न-भिन्न सचिवालयों के मन्त्रियों से प्रश्न पूछने के लिए नियुक्त होता है। पृथक्-पृथक् सचिवालयों के प्रश्नो के लिए पृथक्-पृथक् दिन नियुक्त हैं। सारे सचिवालयो के तीन समूह बना दिए गये हैं और प्रत्येक समूह के सचिवालयों को एक विशेष दिन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है। विदेश मन्त्रालय, वैज्ञानिक अनुसंधान, व्यापार और उद्योग, पूर्ति, श्रम, विधि और पुनर्वास एक समूह में हैं। कृषि, संचार, खाद्य, रेलवे, यातायात, निर्माण, खान और विद्युत्-शक्ति दूसरे समूह में तथा वित्त, स्वास्थ्य, गृह, प्रसार तीसरे समूह मे हैं।

प्रत्येक प्रश्न के लिए पूर्व नियुक्त सूचना देनी पड़ती है। इसका कारण यह है कि सूचना संग्रह करने के लिए समय लगता है। किन्हीं आधारों पर कुछ प्रश्नों को अस्वीकार कर दिया जाता है। कोई भी प्रश्न जिसकी सूचना उपलब्ध साहित्य में प्राप्त हो सकती हो स्वीकार नही किया जाता। प्रश्न किसी मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश के व्यवहार के विषय में नही उठाया जा सकता।

मंत्री से पूछे गए प्रश्नों का उचित उत्तर देना उसका कर्त्तव्य है। यदि वह प्रश्न का उत्तर न दे सके तो सदस्य पूरक प्रश्न पूछ कर सूचना ग्रहण कर सकता है। किसी प्रश्न के उत्तर के लिए कुछ दिनों की सूचना देनी पड़ती है किन्तु पूरक प्रश्नो के लिए कोई सूचना नहीं देनी पड़ती। किसी सूचना को प्राप्त करने के लिए कितने ही पूरक प्रश्न पूछे जाते हैं।

एक मन्त्री यह कहकर कि 'यह सर्वसाधारण की भलाई में नही है कि प्रश्न का उत्तर दिया जाए' प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर सकता है। किन्तु इस प्रकार का उत्तर सारे प्रश्नों के लिए नही दिया जा सकता। ऐसा कभी-कभी बहुत ही विशेष प्रश्नों के लिए कहा जाता है।

साधारणतः प्रश्नों के पूछने का तात्पर्य सर्वसाधारण के महत्त्व की बातों के विषय में सूचना ग्रहण करना होता है। लेकिन कभी सत्ताधारी दल की न्यूनताओं को नंगा करने के लिए भी प्रश्न पूछे जाते हैं। कार्यमण्डल की स्वेच्छाचारिता पर प्रश्नो द्वारा सरकार की आलोचना ही रोक लगा सकती है। इसमें आश्चर्य नहीं कि प्रश्न विभिन्न मन्त्रालयों की कार्यवाही पर फेंकी हुई प्रकाश किरण (search-light) है। किसी भी सदस्य के माध्यम से प्रश्न कराकर सरकार द्वारा की गई त्रुटियों पर जनता का ध्यान केन्द्रित करने का नागरिकों के पास बहुमूल्य साधन है।

संसद् में प्रस्ताव (Resolutions) प्रस्तुत करना भी संसद् पर नियन्त्रण करने का एक साधन है। प्रश्नों की तरह प्रस्ताव प्रतिदिन नही रखे जा सकते। आवश्यक और पूर्व महत्त्व (priority) प्राप्त किए बिना कोई भी प्रस्ताव प्रस्तुत नही किया जा सकता। प्रस्ताव पेश करने की इच्छा करने वाले सभी सदस्यो को यह अवसर प्राप्त नही होता। पुनश्च, प्रस्ताव का आशय किसी विषय पर सूचना प्राप्त करना नहीं बल्कि सरकार को एक विशिष्ट कार्य-प्रणाली अपनाने का सुझाव देना होता है। किसी प्रस्ताव पर बहस के दौरान इस पर संशोधन प्रस्तावित किए जा सकते है। यदि सरकार के विरोध पर भी कोई प्रस्ताव स्वीकार हो जाए तो यह समझा जायेगा कि सरकार का सदन में आवश्यक बहुमत नही है और इसे त्यागपत्र देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। प्रस्ताव की बहस सरकार के लिए एक परेशानी का कारण होता है।

प्रश्न-समय के तुरन्त बाद में 'काम-रोको' प्रस्ताव (Adjournment Motions) रखे जाते है। ऐसा उस समय होता है जब प्रश्नों और पूरक प्रश्नों के उत्तर सन्तोषजनक नही होते। इस प्रकार के प्रस्ताव किसी तात्कालिक घटना पर भी हो जाते है। इसका आशय देश की किसी महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार करना भी हो सकता है। यदि काम-रोको प्रस्ताव आवश्यक समस्या पर न हो, या वह देश के लिए महत्त्वपूर्ण न हो अथवा संघ के कार्यों से सम्बन्धित न हो, तो इसे अस्वीकार भी कर दिया जाता है। यदि अध्यक्ष किसी 'काम-रोको' प्रस्ताव की आज्ञा दे दे तो इस पर उस दिन की बैठक के उत्तरार्द्ध के समय बहस होती है। यदि यह प्रस्ताव सरकार के विरोध करने पर भी स्वीकार हो जाता है तो इसे सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव माना जाता है और इसे त्यागपत्र देना पड़ता है। बहुधा सरकार इन प्रस्तावों को बातों मे टाल देती है। प्रस्ताव के लिए दी गई अवधि में इस पर मतदान नहीं होने देती। सरकार या तो अपने बहुमत से हरा देती है या इस बात का आश्वासन देकर सुलझा लेती है कि शिकायत को हटा दिया जायेगा।

संसद् शासन को बहस (Debates) के द्वारा नियंत्रित करती है। परिपाटी यह है कि विरोधी पक्ष का नेता प्रधान-मन्त्री से देश के महत्त्वपूर्ण मामले पर बहस करने के लिए कहता है। प्रधान-मन्त्री इस कार्य के लिए समय नियुक्त करता है। परिणामतः सरकार को अपनी नीति की व्याख्या करके इसकी पुष्टि करनी होती है। कभी-कभी सरकार अगुआ बनती है और बहस के लिए एक दिन नियुक्त किया जाता है। इससे सरकार की इच्छा उस विषय में जनमत की शक्ति तोलने की और संसद् की अपनी नीति का समर्थन कराने की होती है। ऐसा नेहरू की निलिप्त सहयोग की विदेश नीति का समर्थन कराने के लिए कई बार हुआ है। ऐसे अवसरों पर विरोधी पक्ष को सरकार की कमजोरियाँ प्रकट करने का मौका मिल जाता है और कभी-कभी इसे किसी विशेष दिशा में संचालन करने का सुझाव दिया जाता है। बहस के रुख को देखकर सरकार द्वारा अपनी नीति मे हेर-फेर करने की बड़ी भारी सम्भावना रहती है।

यह स्पष्ट है कि भारत की संसद् को कानून बनाने, अर्थ तथा प्रशासन-क्षेत्र में पर्याप्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। देश की संसद् सदस्यों की इच्छा के अनुसार चलाई जानी चाहिए जो कि राष्ट्र के प्रतिनिधि हैं और इसलिए उनसे यह आशा की जाती है कि वे जानें कि जनता सरकार से क्या चाहती है।

विधायी विधि (Legislative Procedure)—धारा १०७ से १२२ का सम्बन्ध कानून बनाने से है और उनमें संसद् में विधेयक के पास करने का वर्णन है। विधेयक धन विधेयक (Money Bills) या साधारण विधेयक (Ordinary Bills) हो सकते हैं। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। किन्तु कोई साधारण विधेयक तब तक पास नहीं समझा जाता जब तक दोनों सदन उसे पास न कर दें। दोनों सदनों में मतभेद होने पर राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है। यदि विधेयक संयुक्त बैठक में बहुमत से पास हो जाये तो यह मान लिया जाता है कि दोनों सदनों ने उसे विचार कर पास कर दिया है। इसके बाद विधेयक राष्ट्रपति के पास स्वीकार करने के लिए भेजा जाता है। राष्ट्रपति उसे स्वीकार कर सकता है, उसे स्वीकार करने से इनकार भी कर सकता है, स्वीकार करने में देर भी कर सकता है अथवा संसद् को दोबारा विचार करने के लिए लौटा सकता है। यदि विधेयक दोबारा विचार करने के लिए संसद् को लौटाया जाता है और संसद् उसे वैसा ही या संशोधन के साथ दोबारा पास कर देती है तब राष्ट्रपति के पास कोई शक्ति नहीं कि उसे स्वीकार न करे। उसका 'वीटो' (Veto) पूर्ण न होकर केवल कुछ समय के टालने के लिए (suspensory) है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि उस समय क्या होगा जबकि राष्ट्रपति किसी विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार किए बिना रोक ले। इस मामले में संविधान कुछ नहीं कहता। संविधान केवल यही कहता है कि या तो राष्ट्रपति उसे स्वीकार करने का ऐलान करेगा या उसे रद्द करेगा या दोबारा विचार के लिए संसद् को लौटाएगा। राष्ट्रपति किसी विधेयक को स्वीकार करने या रद्द करने के लिए बंधा नहीं है। राष्ट्रपति देर करने को इस आधार पर ठीक कह सकता है कि संसद् के बाहर जनता में प्रबल आन्दोलन है। किन्तु यदि भारत में जनतन्त्री सरकार को स्थिर रखना है तो राष्ट्रपति को सभी मामलों में मन्त्रिमण्डल का परामर्श मानना चाहिए। उसे विधेयक को रोकने या संसद् को दोबारा विचार करने के लिए लौटाने के मामले में मन्त्रिमण्डल की सलाह से काम करना चाहिए। यह अजीब-सा लगता है कि जो मन्त्रिमंडल विधेयक को संसद् में पास कराता है वही राष्ट्रपति को उसे 'वीटो' करने की सलाह देता है। इंगलैंड के राजा का अनुभव प्रकट करता है कि पिछली दो शदियों में 'वीटो' का प्रयोग नहीं किया गया। यही बात भारत पर भी लागू हो सकती है। साधारण विचार यह है कि देश में कानून बनाने के बारे में राष्ट्रपति का कार्य केवल औपचारिक बात है और उसमें व्यक्तिगत निर्णय के लिए स्थान नहीं है।

संसद् के द्वारा बनाए गए नियम दोनों सदनों की समान कार्यविधि की व्यवस्था करते हैं। प्रत्येक विधेयक को कानून बनने से पहले प्रत्येक सदन में पाँच

स्थितियों से गुजरना पड़ता है और उसकी तीन रीडिंगें (Readings) होती हैं। पहली रीडिंग, दूसरी रीडिंग, प्रवर समिति की स्थिति, प्रतिवेदन काल (Report Stage) और तीसरी रीडिंग ही पाँच स्थितियों (stages) के नाम से पुकारी जाती है।

(१) प्रथम वाचन (First Reading)—इस स्थिति में विधेयक ससद् में पुरःस्थापित किया जाता है और भारत के गजट मे प्रकाशित किया जाता है। सामान्य विधेयक को कोई भी सदस्य एक मास का नोटिस देने के वाद पुर.स्थापित कर सकता है। नोटिस के साथ विधेयक का मूल, उसके उद्देश्यो और कारणों, विवरण, आवर्ती (recurring) तथा अनावर्ती (non-recurring), ध्येय को प्रकट करने वाले अनुबोधक (memorandum) तथा राष्ट्रपति की आज्ञा (यदि उसकी आवश्यकता हो) नत्थी होनी चाहिए। राष्ट्रपति की आज्ञा उन विधेयकों के बारे में आवश्यक होती है जिनका उद्देश्य 'क' या 'ख' भाग के राज्यों की सीमा में हेर-फेर करना या उनका पुनर्गठन करना तथा संविधान आरम्भ होने के १५ वर्ष के अन्दर भारत के सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयो तथा विधेयकों की सरकारी भाषा को बदलना हो। सदस्य विधेयक को प्रस्तुत करने से पूर्व सदन की आज्ञा माँगता है। उसे विधेयक का शीर्षक पढ़ना पड़ता है। यदि विधेयक के पुर.स्थापन का विरोध किया जाता है तो अध्यक्ष प्रस्तावक और विरोधी को व्याख्यात्मक (explanatory) भाषण देने की आज्ञा दे सकता है। मत लिए जाते हैं और यदि बहुमत उसके पक्ष में हो तो उसे पुरःस्थापित समझ लिया जाता है। पुरःस्थापित होने के पश्चात् विधेयक 'गजट ऑफ इंडिया' में प्रकाशित किया जाता है।

(२) द्वितीय वाचन (Second Reading)—प्रस्तावक तीन विकल्पों में से किसी एक को अपना सकता है। वह प्रस्ताव कर सकता है कि सदन तुरन्त ही या अन्य किसी निश्चित तिथि पर जो प्रस्ताव में बताई गई हो, विधेयक पर विचार करे। वह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक एक प्रवर समिति को सौंपा जाए। अन्तिम रूप से वह प्रस्ताव कर सकता है कि विधेयक को उसकी वाछनीयता या अन्य प्रकार के विचार जानने के लिए प्रसारित किया जाए। बहुत ही कम अवसरो पर विधेयक पर तुरन्त ही उस समय विचार किया जाता है जबकि विधेयक अत्यन्त आवश्यक या अविवादास्पद (non-controversial) हो। विवादास्पद विषयों से सम्बन्धित विधेयक उस विषय पर जनमत लेने के लिए प्रसारित किए जाते है। साधारण विधि विधेयक को प्रवर समिति को सौंपना है। द्वितीय वाचन में विधेयक से सम्बद्ध सिद्धान्तो पर सदन के सदस्य विचार-विमर्श करते हैं। उस के समर्थक उसके लाभों और विरोधी हानियों या कमियों पर प्रकाश डालते हैं। विधेयक की व्यवस्थाओं पर विस्तृत विचार नही किया जाता। संशोधन उपस्थित करने का अवसर नही होता। सम्पूर्ण विधेयक पर विचार किया जाता है।

(३) समिति स्थिति (Committee Stage)—यदि विधेयक के आधारभूत सिद्धान्त (fundamentals) स्वीकृत हो जाएँ तो विधेयक की तृतीय स्थिति आती है जिसे समिति स्थिति कहते हैं। विधेयक साधारण रूप से एक प्रवर समिति के

किया जाता है जिसमें अन्य सदस्यों के अतिरिक्त विधेयक का इन्चार्ज और पदेन सदस्य अर्थात् विधि-मन्त्री (Law Minister) शामिल होते हैं। समिति के अध्यक्ष को स्पीकर मनोनीत करता है। यदि उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) किसी समिति का सदस्य हो, तो उसे ही चेयरमैन नियुक्त करना पड़ता है। समिति स्थिति में विधेयक पर धारानुसार विचार किया जाता है। सब प्रकार की सूचना एकत्रित की जाती है। विधेयक के गुणों और दोषों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। प्रवर समिति उसमें इच्छानुसार परिवर्तन कर सकती है।

(४) प्रतिवेदन स्थिति (Report Stage)—समिति स्थिति के बाद प्रतिवेदन स्थिति आती है। समिति के सदस्यों को प्रतिवेदन में अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक सदस्य पृथक् प्रतिवेदन लिख सकता है यदि उसकी इच्छा हो। साधारण रूप से एक बहुमत का प्रतिवेदन होता है और दूसरा अल्पमत का। सदन के सचिव का कर्त्तव्य समिति के प्रतिवेदन और उसकी संक्षिप्त कार्यवाही को प्रकाशित करना है। जब प्रतिवेदन सदन में उपस्थित कर दिया जाता है, तब विधेयक का प्रस्तावक यह प्रस्ताव कर सकता है कि प्रवर समिति के द्वारा उपस्थित विधेयक पर विचार किया जाए या उपस्थित विधेयक को आदेशों (instructions) या बिना आदेशों के साथ प्रवर समिति को वापस भेजा जाए, या उपस्थित विधेयक को जनता के विचार जानने के लिए प्रसारित या पुन: प्रसारित किया जाए। यदि सदन प्रवर समिति द्वारा उपस्थित विधेयक पर विचार करने के लिए तैयार हो जाता है तो विधेयक पर धारानुसार विचार-विनिमय होता है और सदस्यों को संशोधन उपस्थित करने की छूट होती है। यह अध्यक्ष पर निर्भर है कि वह उन संशोधनों को प्रस्तुत करने की आज्ञा दे या न दे। यदि बहुत अधिक संशोधन हों तो वह निर्णय कर सकता है कि किन संशोधनों पर विचार हो और किन पर न हो। प्रत्येक धारा पर मत लिए जाते हैं या कई धाराओं पर एक साथ विचार किया जा सकता है और उन सबके लिए एक बार ही मत ले लिया जाता है।

(५) तृतीय वाचन (Third Reading)—जब विधेयक पर इस प्रकार विचार कर लिया जाता है तब यह पाँचवीं स्थिति—तृतीय वाचन—में आता है। सम्पूर्ण विधेयक के पक्ष या विपक्ष में तर्क उपस्थित किए जाते हैं। इस स्थिति में केवल मौखिक संशोधनों की ही छूट होती है। यदि सदन के उपस्थित और मत देने वाले सदस्य उस विधेयक को बहुमत से पास कर देते हैं तो विधेयक सदन के द्वारा स्वीकृत हो जाता है। यह सब कुछ हो चुकने के बाद लोक सभा में अध्यक्ष और राज्य सभा में चेयरमैन को उसे प्रमाणित करना पड़ता है। प्रमाणित करने का कार्य सदन का सचिव (Secretary) भी कर सकता है।

जब विधेयक एक सदन में स्वीकृत हो जाता है तब उसे दूसरे सदन में भेजा जाता है। प्रथम सदन की प्रक्रिया दूसरे सदन में दोहराई जाती है। जब विधेयक दोनों सदनों में पास हो जाता है तब राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि दोनों सदनों में मतभेद हो तो उसके लिए संयुक्त बैठक का विधान है। राष्ट्रपति

विधेयक को स्वीकार कर सकता है या उसे सिफारिशों के साथ पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है। किन्तु यह स्वीकार किया जा सकता है कि दोनों सदनों में विधेयक के पास हो जाने के बाद राष्ट्रपति विधेयक को निषेध (Veto) करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि भारत में जनतन्त्रीय सरकार है और राष्ट्रपति जनता के प्रतिनिधियों पर अपनी इच्छा लादने का साहस नहीं करेगा।

कमेटी व्यवस्था (Committee System)—संसद् के दोनों सदनों की कानून बनाने के लिए कई कमेटियाँ हैं। केवल लोक सभा की एक दर्जन से भी अधिक कमेटियाँ हैं। उन कमेटियों के विभिन्न नाम हैं। एक सदन में अनेक सिलेक्ट कमेटियाँ (Select Committees) होती हैं। उनकी संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि कितने विधेयक सिलेक्ट कमेटी को सौंपे गए हैं। सिलेक्ट कमेटी के अध्यक्ष को लोकसभा का स्पीकर मनोनीत करता है। यदि डिप्टी स्पीकर किसी सिलेक्ट कमेटी का सदस्य होता है तो वह उसका अध्यक्ष भी होता है। यदि कोई मन्त्री किसी सिलेक्ट कमेटी का सदस्य नहीं भी होता तो भी वह कमेटी के कार्य में भाग ले सकता है, परन्तु उसे मत देने का अधिकार नहीं होता। यह भी हो सकता है कि जब सदन अपना कार्य कर रहा हो उस समय भी कोई सिलेक्ट कमेटी पृथक् रूप से अपना कार्य कर रही हो। सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाह अपनी शहादत दे सकते हैं। सिलेक्ट कमेटी को सदन के सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश करनी होती है। Committee on Privileges, Business Advisory Committee तथा Committee on Private Members Bills and Resolutions अपने-अपने कार्य करती है।

Public Accounts Committee का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात की जाँच-पड़ताल करे कि जो रुपये संसद् ने सरकार के विभिन्न विभागों के लिए पास किए थे वे उसी प्रकार से व्यय किए गए हैं या नहीं। इस कमेटी का कर्त्तव्य है कि जहाँ-जहाँ इसे त्रुटियाँ दिखाई दें, उनकी रिपोर्ट वह संसद् को करे ताकि उसके कान खींचे जा सकें और भविष्य में गलती की सम्भावना न रहे।

Rules Committee का यह कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि सदन का कार्य नियमों के अनुसार होता है या नहीं। इस कमेटी का अध्यक्ष स्पीकर महोदय होता है। यह कमेटी कार्य-प्रणाली का संशोधन करने के लिए प्रस्ताव पेश कर सकती है।

Committee on Government Assurances का यह कर्त्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि विभिन्न मन्त्रियों ने सदन के सामने जो प्रतिज्ञाएँ की थी या वचन दिये थे या विश्वास दिलाए थे, उन्होंने उन्हें पूरा किया है या नहीं। यह कमेटी इस बात पर जोर देती है कि जो कोई वचन दिया जाए वह दो मास के अन्दर पूरा किया जाए। यदि कोई मन्त्री ऐसा नहीं करता तो उसे कमेटी के सामने उत्तर देना पड़ता है। यह कमेटी बहुत अच्छा कार्य कर रही है।

Committee on Subordinate Legislation के १५ सदस्य होते हैं और उन्हें स्पीकर मनोनीत करता है। उसका अध्यक्ष भी उसी द्वारा मनोनीत होता है।

इस कमेटी का यह कर्त्तव्य है कि वह देखे कि जो कानून या रूल किसी कानून के अन्तर्गत बनाए गए है यथा वे कानून के अनुसार हैं या नहीं। इसके अनेक कर्त्तव्य हैं। उन सब का उद्देश्य केवल यह है कि इस बात का ध्यान रखा जाए कि कार्य-पालिका कोई ऐसा रूल तो नही बनाती जिसका अधिकार कानूनन उसे न दिया गया हो।

Estimates Committee का यह कर्त्तव्य है कि वह बजट की पूरी तरह से जाँच-पड़ताल करे। इस कमेटी का कर्त्तव्य है कि वह इस बात को देखे कि जितने रुपये भिन्न-भिन्न मन्त्रियों ने बजट में माँगे हैं, उनकी आवश्यकता भी है या नही, वे उचित भी हैं या नही। यह कमेटी इस बात की सिफारिश कर सकती है कि कहाँ रुपये कम खर्च किए जाएँ और कहाँ अधिक।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कानून बनाने में कमेटियाँ अत्यन्त सहायक हैं। उनके बिना संसद् का कार्य ही नही चल सकता। यदि कार्य चले भी तो बहुत थोडा कार्य संसद् कमेटियों के बिना कर सकती है। संसार मे सभी विधान सभाओ का कार्य इतना बढ़ गया है कि वे बहुत सी कमेटियों के बिना अपना कार्य सम्पन्न ही नहीं कर पाती। कमेटियों के सदस्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे सरकार की प्रत्येक बात मे हाँ में हाँ न मिलाएँ और देश की भलाई को सदा अपने सामने रखें।

धन विधेयक (Money Bills)—धन विधेयक की परिभाषा धारा ११० में की गई है। उसके अनुसार, कोई विधेयक धन विधेयक समझा जाएगा, यदि उसमे निम्नलिखित विषयों मे से सभी अथवा किसी एक से सम्बन्ध रखने वाली व्यवस्थाएँ (provisions) हैं—

(१) कर लगाना, कर हटाना, कर में कमी करना, कर में उलट-फेर करना, अथवा कानून बनाना।

(२) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने, या गारण्टी देने या भारत सरकार द्वारा लिए गए या लिए जाने वाले किन्ही वित्तीय आभारों (financial obligations) से सम्बन्ध रखने वाले कानून के संशोधन का कानून बनाना।

(३) भारत की संचित निधि या आकस्मिक निधि (contingency) की रक्षा, ऐसी किसी निधि में डालना या उसमें से निकालना।

(४) भारत की संचित राशि से धन का उपयोग (appropriation)।

(५) किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना या ऐसी किसी मद की राशि को बढ़ाना।

(६) भारत की संचित निधि के या भारत के लोक लेखे (Public Account of India) के मध्य धन प्राप्त करना या ऐसे धन की रक्षा या खर्च करना या संघ या राज्य के हिसाबों की जाँच करना।

(७) उपखण्ड १ से ६ तक मे बताए गये विषयों मे प्रासंगिक (incidental) विषय।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि कोई विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नही माना जाएगा कि वह जुर्माना या आर्थिक सजा देने, फीस लेने या लाइसेन्सों के लिए फीस देने की व्यवस्था करता है या इस कारण किसी स्थानीय प्राधिकारी (local authority) या निकाय (body) द्वारा स्थानीय कार्यों के लिए किसी कर को लगाने, हटाने, कमी करने, या बदलने की व्यवस्था की जाए। यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नही तो उस पर लोक सभा के अध्यक्ष का फैसला अन्तिम होगा।

धन विधेयक केवल लोक सभा मे ही पहले लाया जा सकता है, राज्य सभा में नहीं। जब धन विधेयक लोक सभा में पास हो जाता है तब वह राज्य सभा को १४ दिन के अन्दर अपनी सिफारिश करने के लिए भेजा जाता है। यह जरूरी नही है कि लोक सभा राज्य सभा की सिफारिशों को माने। यदि लोक सभा राज्य सभा की सिफारिशों को मानने से इन्कार करती है तो विधेयक अपनी असली शक्ल मे ही पास हो जाता है। यदि लोक सभा राज्य सभा की सिफारिशों को स्वीकार कर लेती है तो विधेयक संशोधन के साथ पास हो जाता है। यदि राज्य सभा विधेयक को १४ दिन मे नहीं लौटाती तब विधेयक अपने मूल रूप में ही पास हो जाता है। स्पष्ट रूप से, राज्य सभा का धन विधेयकों पर कोई कन्ट्रोल नहीं है।

अध्यादेश (Ordinances)—राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अध्यादेश के द्वारा कानून बनाने की रीति का भी वर्णन किया जा सकता है। धारा १२३ के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि एक दम कार्यवाही करने के लिए मजबूर करने वाले हालात वर्तमान हैं तो वह ऐसे अध्यादेश जारी कर सकेगा जो उन हालात में ठीक हों। ऐसे अध्यादेश की वही शक्ति तथा प्रभाव होगा जो संसद् के कानून का होता है। किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश संसद् के दोनों सदनों के सामने रखा जाएगा तथा संसद् के दोबारा बैठक शुरू करने से छः सप्ताह की समाप्ति पर समाप्त हो जाएगा। अध्यादेश उस समय भी समाप्त हो जाएगा यदि संसद् उक्त समय से पूर्व अध्यादेश के विरुद्ध प्रस्ताव पास कर देगी। राष्ट्रपति उसे किसी भी समय लौटा सकता है।

धारा २१३ राज्यपाल को अधिकार देती है कि यदि उसे किसी समय यह विश्वास हो जाए कि एकदम कार्यवाही करने के लिए उसे मजबूर करने वाले हालात पैदा हो गए है तो वह ऐसे आदेश जारी कर सकता है, जो उसे उस समय ठीक मालूम हो। लेकिन राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना राज्यपाल कोई ऐसा अध्यादेश जारी नही करेगा। यदि वैसे ही उपबन्ध रखने वाले विधेयक को विधानमंडल में लाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की आवश्यकता; या वैसे ही उपबन्ध रखने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए रखना वह जरूरी समझता या वैसे ही उपबन्ध रखने वाले राज्य के विधानमंडल का अधिनियम तब तक अमान्य (invalid) होता है जब तक कि राष्ट्रपति के विचार के लिए रखे जाने पर उसे राष्ट्रपति की मंजूरी नहीं मिल जाती है। धारा २१३ के अधीन जारी किए गये अध्यादेश का वही बल तथा प्रभाव

होगा जो राज्य विधानमंडल द्वारा पारित तथा राज्यपाल द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। ऐसा प्रत्येक अध्यादेश राज्य विधानमंडल के सामने रखा जायेगा और यदि उसकी मियाद पहले समाप्त नहीं होती तो राज्य विधानमंडल की दुबारा बैठकें आरम्भ करने के छः सप्ताह बाद समाप्त हो जाएगी। इसके अलावा राज्यपाल अध्यादेश को किसी भी समय लौटा सकता है।

वित्तीय विधि (Financial Procedure)—भारतीय संसद् की वित्तीय विधि ब्रिटिश संसद् की वित्तीय विधि के अनुसार है। धारा ११२ निश्चित करती है कि राष्ट्रपति प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए संसद् के दोनों सदनों के सामने भारत सरकार का उस वर्ष के लिए अनुमानित आय और व्यय का ब्यौरा रखवायेगा। व्यय की मदों में भारत की संचित निधि पर भारित व्यय तथा भारत की संचित निधि से किये जाने वाले अन्य व्ययों को पूरा करने के लिये आवश्यक धन अलग-अलग दिखाया जायेगा। राजस्व (revenue) मद पर होने वाले खर्च का अन्य खर्चों से भेद किया जायेगा।

'संचित निधि' नाम का शब्द ब्रिटिश संवैधानिक व्यवहार से लिया गया है। इसका तात्पर्य है कि सघ की सारी निधियों की एक सामान्य निधि बना दी गई है जिसमें सारे राजस्वों को जमा किया जाता है और जिसमें से सारा सामान्य व्यय किया जाता है। निधि का उद्देश्य खजाने तथा संसद् को संघ के सारे राजस्वों के साथ सम्बन्ध रखने के योग्य बनाने का है बजाय इसके कि किसी खास कर को किसी खास खर्चे के लिए निश्चित कर दिया जाये। धारा ११२ (३) के अनुसार, नीचे के खर्चे भारत की संचित निधि पर भारित खर्चे होंगे :

(१) राष्ट्रपति की उपलब्धियाँ तथा भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित खर्चे।

(२) राज्य परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन तथा भत्ते।

(३) ऐसे ऋण-भार (debt-charges) जिनकी जिम्मेदारी भारत सरकार पर है, तथा ब्याज, डूबने वाली निधि का भार (Sinking Fund Charges) और मोचन भार (redemption) भी होंगे।

(४) भारत के नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor General of India) को दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और सेवा-वृत्तियाँ।

(५) भारत के सर्वोच्च न्यायालय, संघीय न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को दिये जाने वाले वेतन, भत्ते तथा सेवा-वृत्तियाँ।

(६) किसी न्यायालय या स्वेच्छाचारी न्यायालय (arbitral tribunal) के फैसले, डिग्री अथवा पुरस्कार को सन्तुष्ट करने के लिए चाहा गया धन।

(७) संविधान अथवा संसद् द्वारा, कानून द्वारा घोषित किया हुआ इस प्रकार से भारित खर्चे।

यह कहा जा सकता है कि भारत की संचित निधि पर भारित खर्चों को संसद

के फैसले के लिए नही रखा जाएगा। परन्तु संसद् का कोई सा भी सदन इस खर्चे के अनुमान पर बहस करने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। दूसरे प्रकार के खर्चे लोक सभा को अनुदानों की माँगों की तरह भेजे जायेंगे। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना किसी भी अनुदान की माँग न की जायेगी।

जब लोक सभा द्वारा अनुदान दिए गए हों तब एक विधेयक लोक सभा द्वारा किए गए अनुदानों के लिए अभीष्ट समस्त धन के विनियोग (appropriation) के लिये पेश किया जायेगा। इस प्रकार किए गए किसी अनुदान के धन मे हेर-फेर करने का अथवा अनुदान के लक्ष्य को बदलने का प्रभाव रखने वाला सशोधन का विधेयक ससद् के किसी सदन मे प्रस्तावित नहीं किया जाएगा। यदि स्वायत्तीकरण अधिनियम (Appropriation Act) से प्रमाणित किया गया धन काफी नही है तो राष्ट्रपति संसद् के सामने उस खर्चे की अनुमानित राशि को दिखाने वाला दूसरा ब्यौरा रखेगा।

लोक सभा को, किसी वित्तीय वर्ष के भाग के लिए अनुमानित खर्चे के बारे में किसी अनुदान को स्वायत्तीकरण अधिनियम को पास होने के लिए पड़े रहने तक पेशगी देने की तथा ऐसे अनुदान के लिए मत लेने और ऐसे खर्चे के सम्बन्ध में इस अधिनियम के पास करने की, भारत के स्रोतों पर अप्रत्याशित माँग की पूर्ति के लिए अनुदान करने की और अपवादानुदान (exceptional grant) करने की शक्ति होगी।

संसद् किसी संशोधन अथवा किसी धन विधेयक के बारे में पहल नही कर सकती है। संसद् किसी कर को खत्म करने अथवा कम करने के लिए प्रस्ताव पास कर सकती है। कोई भी विधेयक, जो भारत की संचित निधि मे खर्च किए जाने से सम्बन्ध रखता हो, संसद् के किसी भी सदन द्वारा पास नही किया जा सकेगा जब तक कि राष्ट्रपति इसके विचार के लिए सिफारिश न करे।

भारत में संसदीय गणतन्त्र
(Parliamentary Democracy in India)

भारत में गणतन्त्र राज्य है जहाँ विधान सभा कार्यपालिका (Executive) के प्रति उत्तरदायी है। प्रश्न पैदा होता है क्या संसदीय गणतन्त्र राज्य भारत में सफल रहा है?

संसदीय संस्थाओं के सफल होने के लिए कुछ अनुकूल अवस्थाओं का होना जरूरी है। सबसे जरूरी इसके लिए जनता की मनोभावनाएँ हैं। प्रो० लास्की के कथनानुसार सरकार के जरूरी कार्यों के प्रति जनता की सहानुभूति आवश्यक है। इसमें इतनी एकता होनी चाहिए कि सरकार बदलने का विचार सिवाए इने-गिने लोगों के राष्ट्र इस ओर ध्यान न दे। जनता का यह विश्वास होना चाहिए कि सिवाए विधान के अनुसार वे सरकार को नही बदल सकते। संसदीय राज्य केवल वहीं सफल हो सकता है जहाँ जनता का विश्वास विधान के अन्तर्गत कार्य करने का हो। जनता इसके लिए

तैयार हो कि दूसरा दल भले जीत जाए लेकिन विधान न टूटे। लोगों में सहन व समझौता करने की आदत होनी चाहिए। सरकार को बहुसंख्यक ही चलाएँगे लेकिन उन्हें अल्पसंख्यकों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। बहुमत यदि अल्पमत पर अत्याचार करेगा तो इसका परिणाम गणतन्त्र का विनाश होगा। अल्पमत को भी चाहिए कि वह बहुमत के राज्याधिकार को स्वीकार करे।

यह ठीक है कि ऊपर की सब बातें हमारे देश में नहीं पाई जातीं लेकिन यह मानना पड़ेगा कि उनमें से बहुत सी बातें और पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। दो सार्वजनिक चुनाव (general elections) जो देश में हो चुके हैं वे इसका प्रमाण है कि संसदीय गणतन्त्र राज्य यहाँ सफल रहा है। कुछ भूलें भी हुई हों लेकिन सब मिल-मिला कर अच्छा रहा है।

यह भी कहा जाता है कि संसदीय प्रणाली को सफल बनाने के लिए एक विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण का होना बहुत जरूरी है। यह ठीक है कि देश में कानूनी अमन है। नर्बदा की घाटी में कुछ डाकू जरूर हैं लेकिन वे देश के एक छोटे कोने में है। इसके अलावा देश में कानून का दौर-दौरा है। कांग्रेस सरकार बहुमत में होने के कारण बहुत मजबूत है इसलिए देश में शान्ति रखने में सहायता मिलती है।

संसदीय प्रणाली के लिए उन्नत शिक्षा-कार्यक्रम भी जरूरी है। इससे जनता को अपने आंतरिक विचारों को व्यक्त करने का अवसर मिलता है। विचारों को दबाना प्रजातन्त्र के लिए आत्मघातक है। सरकार का शिक्षा कार्यक्रम पर कोई नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। विश्वविद्यालयों के कार्यों में इसे कम से कम दखल देना चाहिए। सुयोग्यतम व्यक्तियों को शिक्षा कार्यक्रम की ओर आकर्षित करना चाहिए जिससे देश को उनके ज्ञान, नेतृत्व व मार्ग-दर्शन से लाभ मिले।

वाणी की स्वतन्त्रता भी संसदीय संस्थाओं के लिए आवश्यक है। जनता को अपने आंतरिक विचारों को व्यक्त करने का अवसर मिलना चाहिए। यह भाषण देने से या पत्रिकाओं में लिखने से हो सकता है। इन मौलिक अधिकारों पर कुछ रुकावटें रखी गई हैं परन्तु उनका अभिप्राय जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा करना है न कि उसमें रुकावट डालना है। लेख लिखना (Press) भारत में वास्तविक रूप में स्वतन्त्र है। इस पर बहुत रुकावटें नहीं हैं। यह देश का एक बहुमूल्य धन है। भारत में प्रेस बहुत ताकतवर है और सरकार प्रायः इसकी आलोचनाओं से आशंकित रहती है।

संसदीय गणतंत्र के लिए एक और जरूरी शर्त यह है कि साम्प्रदायिक भावना को छोड़ कर राष्ट्र की भावना हो। जनता राष्ट्रीयता की भावना से सींची हुई हो जिसमें राज्य, भाषा, धर्म व जाति-पाँति के विचार वहाँ न पनप सकें। यह ठीक है कि बहुत सी अपकेन्द्रीय शक्तियाँ (Centrifugel forces) देश में काम करती हैं और हम धर्म, भाषा, सम्प्रदाय व इलाके के छोटे विचारों से दबे रहते हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं कि देश में राष्ट्रीयता का अभाव है। हो सकता है यह इतनी दृढ़ न हो जितनी हम चाहते हैं। लेकिन जिस तरह लोगों ने सरकार की दुंदुभी का अक्तूबर-नवम्बर '६२ में

जवाब दिया उससे देश राष्ट्रीयता की भावना रखने वालों को धीरज होना चाहिए।

संसदीय गणतंत्र के सफल बनाने में सामाजिक समानता और आर्थिक न्याय भी जरूरी समझा जाता है। यह मानना पड़ता है कि सामाजिक समानता की राह पर हमने काफी रास्ता तय कर लिया है। जात-पांत की दीवारें गिर रही हैं। वर्तमान के विचार लोगों के दिलों में जा रहे हैं। छूत-छात बन्द है और इसे कानूनी जुर्म बना दिया गया है। यह ठीक है अभी हमें इस ओर बहुत कुछ करना है परन्तु हम सामाजिक समानता के पथ पर चल रहे हैं इसमें कोई संदेह नहीं। लोगों की गरीबी के कारण आर्थिक समानता नहीं है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका के साधन देने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जा रहा है। जनता का आलस्य भले इस ओर तेजी से बढ़ने में रुकावट बने परन्तु अन्त में इन रुकावटों को पार करके जनता में आर्थिक विषमता का उन्मूलन हो जाएगा।

यह भी कहा जाता है कि संसदीय प्रणाली को सफल बनाने के लिए कुछ राजनैतिक संस्थाओं का होना जरूरी है। सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि मजबूत राजनैतिक दल हों। यह मानना पड़ेगा कि इंडियन नेशनल कांग्रेस एक मजबूत पोलीटिकल पार्टी है। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का दूसरा स्थान है। जनसंघ का भी प्रभाव है। संसदीय संस्थाओं के सफलतापूर्वक काम करने के लिए जरूरी है कि विधान सभा में एक दृढ़ विरोधी दल हो। यह विरोधी दल बहुत लाभदायक होता है। इसका वहाँ होना ही सरकार को सदैव सतर्क बनाए रखता है। यही कारण है कि इंगलैंड मे विरोधी दल के नेता को राष्ट्रकोष से वेतन मिलता है। भारतीय पद्धति की इसलिए आलोचना की जाती है कि यहाँ कोई दृढ़ विरोधी दल नही है क्योंकि इंडियन नैशनल कांग्रेस का केन्द्र व राज्यों में बहुमत है। इस भारी बहुमत के कारण वह मन-मानी करती है; इस प्रकार वह जनमत की अवहेलना भी करती है। इस पर भी परिणाम इतना बुरा नहीं होता जितनी आशा की जाती है। कांग्रेस पार्टी के सदस्य सदैव अपने दल की आलोचना करने के लिए तैयार रहते है और इससे व्यवहार में कोई आपत्ति भी नही होती। इस प्रकार वे विरोधी दल का भी कार्य करते हैं। भारत के नेताओं का देश प्रेम ही भारतीय विधान के जन्मदाताओं द्वारा स्थापित की हुई संसदीय संस्थाओं को कलंकित न होने देगा। इसके साथ-साथ प्रखर, निष्पक्ष और निर्मल जनसेवाएं (Publio Services) भी संसदीय गणतंत्र को सफल बनाने के लिए जरूरी हैं। यह मानना होगा कि इनमें से बहुत सी बातें देश मे पाई जाती हैं। सरकारी कर्मचारी बहुधा लोक सेवा आयोगों द्वारा चुने जाते हैं और सद्व्यवहार तक पदारूढ़ रहते हैं। सरकारी नौकरों की तनख्वाहें भले ही बहुत ऊँची न हों लेकिन उन्हें कोई शिकायत नही हो सकती क्योंकि दूसरों को उनसे ज्यादा नहीं मिलता। मंत्रियो को प्रशासन की दैनिक क्रियाओं में ह... करना चाहिए। सरकारी कर्मचारियों को अपने निजी लाभ के लिए राज्य के लिए काम नहीं करना चाहिए।

संसदीय गणतंत्र के लिए न्यायाधीशों का भी स्वतन्त्र होना जरूरी है। न्यायाधीश किसी के अधीन नही होने चाहिएँ। उनकी नौकरी प्रशासकों की मर्जी पर निर्भर नही होनी चाहिए। उनकी तनखाहें और भत्ते भी प्रशासको (executive) की मर्जी पर नही मिलने चाहिएँ। हमारे देश में भी न्याय विभाग (Judiciary) स्वतन्त्र है, विशेषतया सुप्रीम कोर्ट व हाई कोर्ट के जज। सरकार को चाहिए कि पदपूर्ति के पश्चात् जजो को नौकरी नही देनी चाहिए। सर फजल अली सुप्रीमकोर्ट के जज रहे, उन्हें फिर राज्यपाल बना दिया गया। श्री चागला बम्बई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे उसके बाद उन्हें राजदूत बना कर अमरीका भेज दिया गया। वहाँ से उनकी इंगलैंड मे नियुक्ति हुई। तत्पश्चात् उनको केन्द्र मे शिक्षा मंत्री का पद दिया गया है। श्री जे० एल० कपूर को तो सुप्रीम कोर्ट से रिटायर होने से पहले ही ला कमीशन का चेयरमैन बना दिया गया था। यह प्रथा न्याय विभाग (Judiciary) की स्वतन्त्रता के विचार के विरुद्ध है।

संसदीय प्रणाली के लिए स्वस्थ आत्म-शासकीय स्थानीय संस्थाओं का होना भी जरूरी है। पहले तो सरकार का स्थानीय संस्थाओं पर कड़ा नियन्त्रण होता था परन्तु अब उन्हें सब प्रकार से स्वतन्त्र बनाने का प्रयत्न हो रहा है। इन संस्थाओं की कुछ कठिनाइयाँ ये है—आर्थिक न्यूनता, जनता की अपने कार्यों के प्रति उदासीनता, कर्मचारियो मे घूसखोरी और परस्पर द्वेष। यह हर्ष की बात है कि सरकार ने ग्राम पंचायतो को उन्नत करने के लिए विशेष ध्यान दिया है।

संसदीय गणतंत्र यह भी माँग करता है कि विधान के अन्तर्गत राज्य का एक मुखिया (Head) भी होना चाहिए। राज्यपाल का राज्य के शासन मे प्रवेश नही होना चाहिए। उसे केवल एक प्रतीक होना चाहिए।

यह भी माँग की जाती है कि संसदीय गणराज्य के लिए संसद् में एक निष्पक्ष सभापति होना चाहिए। यह स्वीकार करने में किसी को आपत्ति न होगी कि श्री मावलंकर जब संसद् के अध्यक्ष (Speaker) थे तो सदैव तटस्थ रहे और अपनी पार्टी की बैठकों में भी नही जाते थे। उनके बाद श्री आयंगर व श्री हुकमसिंह ने भी उनका अनुकरण किया है। इस ओर एकान्त का स्तर जितना ऊँचा इंग्लैंड में स्थापित हुआ है वहाँ तक हम नही पहुँच सके।

Suggested Readings

Chanda, A. K. : Indian Administration.

Chitaley and Rao : The Constitution of India, Vol. I, pp. 942—1008 and Vol. II, pp. 1009—1046.

Gauntlet, Sir Frederic : Memorandum on the Work of the Public Accounts Committee in India.

Kailash Chandra : India's Parliament (1958).

Lal A. B. (Ed.) : The Indian Parliament, 1956.

May, Sir Thomas Erskine : The Law, Privileges, Proceedings and Usage of Parliament.

More, S. S. : Practice and Procedure of Indian Parliament (Bombay, 1960).

Morris-Jones, W. H. : Parliament in India, 1957.

Mukherjee, A. R. : Parliamentary Procedure in India (1958).

Wattal, P. K : Parliamentary Financial Control n India, 1953.

अध्याय ४५

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

(SUPREME COURT OF INDIA)

न्यायपालिका (Judiciary) का संघीय संविधान में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका कारण यह है कि संघीय संविधान में केन्द्रीय सरकार और सदस्य प्रदेशों की सरकारों के बीच अधिकारों का बँटवारा होता है और एक-दूसरे के कार्य-क्षेत्र पर हस्तक्षेप करने के अवसर आते रहते हैं। भारत का संविधान संघीय सरकार की व्याख्या करता है और इस कारण सर्वोच्च न्यायालय और प्रादेशिक उच्च न्यायालयों का महत्व स्वयमेव अत्यधिक हो जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय का संगठन (Composition of Supreme Court)—धारा १२४ यह व्यवस्था करती है कि भारत का एक सर्वोच्च न्यायालय हो, जिसमें एक महान्यायाध्यक्ष (Chief Justice) और अधिक-से-अधिक सात की संख्या तक दूसरे न्यायाध्यक्ष हों। संसद् के कानून द्वारा न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने की व्यवस्था की गई है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय तथा राज्यों के उच्च न्यायालय के उन न्यायाधीशों से सलाह करने के बाद नियुक्त करेगा जिनको वह जरूरी समझेगा। प्रत्येक न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु होने तक अपने पद पर रहेगा। चीफ जस्टिस की नियुक्ति के मामले के अलावा प्रत्येक मामले में भारत के चीफ जस्टिस से सलाह अवश्य ली जाएगी। कोई न्यायाधीश राष्ट्रपति के नाम अपने हस्ताक्षर तथा लेख द्वारा अपने पद को छोड़ सकता है। उसे अपने पद से हटाया भी जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अपने पद तब तक नहीं हटाया जायेगा जब तक कि प्रमाणित दुर्व्यवहार (misbehaviour), असमर्थता (incapacity) के लिए उसे हटाये जाने के लिए प्रत्येक सदन की समस्त सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित और मतदाताओं के कम-से-कम दो-तिहाई के बहुमत द्वारा पास समावेदन (Address) राष्ट्रपति के सामने संसद् के प्रत्येक सदन द्वारा उसी सत्र में रखे जाने पर राष्ट्रपति ने आदेश न दिया हो। संसद् कानून द्वारा 'एड्रेस' के रखे जाने तथा न्यायाधीश के दुर्व्यवहार या असमर्थता की छानबीन तथा सिद्ध करने की विधि (procedure) को तय कर सकेगी।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किये जाने के लिए कोई आदमी तब तक योग्य न माना जायेगा जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो तथा किसी उच्च न्यायालय का अथवा दो न्यायालयों का लगातार कम-से-कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीश न रह चुका हो, या किसी उच्च न्यायालय का अथवा ऐसे दो या दो से अधि न्यायालयों का, लगातार कम-से-कम दस वर्ष तक वकील न रह

चुका हो, या राष्ट्रपति की राय मे कुशल विधिवेत्ता[1] (Jurist) न हो।

कोई आदमी, जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के नाते काम कर चुका हो, भारत के भीतर किसी न्यायालय मे या किसी प्राधिकारी (authority) के सामने वकालत या काम न करेगा। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिये जायेंगे जैसे कि दूसरी अनुसूची (Second Schedule) मे दिये गये है। उनके अनुसार भारत के चीफ जस्टिस को ५,००० रु० मासिक वेतन मिलता है। दूसरे जजो को ४,००० रु० वेतन प्रतिमास मिलता है। लेकिन यदि किसी आदमी को, सर्वोच्च न्यायालय का सदस्य बनने के समय, भारत सरकार की या उसकी पूर्ववर्ती (predecessor) सरकारो में से किसी की या राज्य की सरकार की या उसकी पूर्ववर्ती सरकारों मे से किसी की पूर्व सेवा के बारे मे कोई पेंशन मिलती हो तो सर्वोच्च न्यायालय में सेवा के बारे में उसके वेतन मे से पेंशन की राशि घटा दी जायेगी। सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को बिना किराया दिये सरकारी मकान के उपयोग का अधिकार होगा। सर्वोच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत के भीतर अपने कर्त्तव्य पालन मे की गई यात्रा मे किये गए खर्चे को पूरा करने के लिए ऐसे उचित भत्ते पायेगा तथा यात्रा के बारे में उसे ऐसी सुविधाएँ दी जायेंगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर निश्चित करेगा। परन्तु किसी न्यायाधीश के विशेषाधिकारों, भत्तों और अनुपस्थिति छुट्टी (leave of absence) या पेंशन के बारे में उसके विशेषाधिकारों में उसकी नियुक्ति के बाद उसके हितो के विरुद्ध परिवर्तन नही किया जायेगा। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति छुट्टी (जिसके अन्दर छुट्टी सम्बन्धी भत्ते भी हैं) तथा पेंशन के बारे में अधिकार उन व्यवस्थाओ के अनुसार होंगे, जो इस संविधान के आरम्भ से ठीक पहले संघीय कोर्ट के न्यायाधीशों को प्राप्त थे।

जब भारत के चीफ जस्टिस का पद खाली हो या जब चीफ जस्टिस, गैर-हाजिरी या किन्ही अन्य कारणो से पद के कार्यों को न निभा सके तब न्यायालय के दूसरे न्यायाधीशों मे ऐसा एक, जिसे राष्ट्रपति उस काम के लिये नियुक्त करे, उस पद के कर्त्तव्यों का पालन करेगा।

नया संविधान 'एडहॉक' (*ad hoc*) न्यायाधीशों की नियुक्ति की नई विधि (novel procedure) की व्यवस्था करता है। धारा १२७ के अनुसार, यदि किसी समय सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों को चालू रखने के लिए उस न्यायालय के न्यायाधीशों का 'कोरम' पूरा न हो तो राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति से तथा सम्बन्ध रखने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह करके भारत का चीफ जस्टिस किसी उच्च न्यायालय के किसी ऐसे न्यायाधीश से, जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर कार्य करने की योग्यता रखता हो, न्यायालयों की बैठकों में भाग लेने की लिखित प्रार्थना कर सकेगा। इस प्रकार नामोदिष्ट (designated) न्यायाधीश का

---

१. इस प्रकार कोई कानून का प्राध्यापक (professor) भी सर्वोच्च न्यायालय का न्यायधीश नियुक्त हो सकता है।

कर्त्तव्य होगा कि अपने पद के अन्य कर्त्तव्यों को प्राथमिकता (priority) देकर सर्वोच्च न्यायालय की बैठकों में उस समय, तथा उस समय के लिए उपस्थित हो जिसके लिए उसकी उपस्थिति की जरूरत है और जब वह इस प्रकार से बैठको में भाग ले तब उसको सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के सब क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के कर्त्तव्यों को निभायेगा।

धारा १२८ के अनुसार, भारत का चीफ जस्टिस किसी भी समय राष्ट्रपति की पूर्व सलाह से किसी व्यक्ति से, जो सर्वोच्च न्यायालय या संघीय न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर कार्य कर चुका हो, सर्वोच्च न्यायालय मे न्यायाधीश के रूप मे बैठने और कार्य करने की प्रार्थना कर सकेगा। उस आदमी को जिससे इस तरह प्रार्थना की जाती है, इस प्रकार बैठने और कार्य करने के काल में ऐसे भत्तों का जैसे कि राष्ट्रपति आदेश द्वारा तय करे तथा उस न्यायालय के न्यायाधीश के भी क्षेत्राधिकारों, शक्तियों और विशेषाधिकारों का अधिकार प्राप्त होगा। किन्तु, वह सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश न समझा जायेगा। इसके अलावा, इस काम के लिए रिटायर्ड न्यायाधीश की आज्ञा होना भी आवश्यक है। किसी व्यक्ति को उसकी इच्छाओं के विपरीत कार्य करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

धारा १३० व्यवस्था करती है कि सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में या ऐसी दूसरी जगह या जगहों में बैठेगा जिन्हें भारत का चीफ जस्टिस राष्ट्रपति की राय से समय समय पर निर्धारित करेगा।[1]

धारा १२९ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of Record) होगा तथा उसे अपनी मान-हानि के लिए सजा देने की शक्ति को मिलाकर ऐसे न्यायालयों की सभी शक्तियाँ प्राप्त होंगी। प्रचलित अर्थों में अभिलेख न्यायालय उस ऊँची अदालत (superior court) को कहते हैं, जिसके फैसले और न्यायिक विधि (judicial procedure) हमेशा के लिए याद रखने योग्य हों। इन रिकार्डों का प्रामाणिक मूल्य (evidentiary value) होता है और उन पर सन्देह नहीं किया जा सकता जब वे किसी न्यायालय के सामने रखे जाएँ।

सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ (Powers of Supreme Court)—सर अल्लादी कृष्णा स्वामी अय्यर के अनुसार, "भारत में सर्वोच्च न्यायालय को दुनिया के किसी भी सर्वोच्च न्यायालय की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त हैं।" सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर तीन शीर्षकों के अधीन विचार किया जा सकता है — आरम्भिक, अपीलीय तथा परामर्शदायी (Original, Appellate and Advisory)।

(१) **आरम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)**—सर्वोच्च न्यायालय का आरम्भिक क्षेत्राधिकार भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच

१. बकाया काम को निबटाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी बैठकें हैदराबाद और गर में कीं।

या एक ओर भारत सरकार और किसी राज्य या राज्यों तथा दूसरी ओर एक या एक से अधिक राज्यों के बीच या दो या दो से अधिक राज्यों के बीच के किसी विवाद में होगा। यदि और जहाँ तक उस विवाद से ऐसा कोई प्रश्न उलझा हुआ है [चाहे तो कानून का चाहे तथ्य (fact) का] जिस पर किसी कानूनी अधिकार का मौजूद रहना या विस्तार निर्भर है; किन्तु आरम्भिक क्षेत्राधिकार में वे विवाद नहीं आयेंगे जिसमें भाग 'ख' में से कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, इकरार, वचनबन्ध (engagement), सनद या दूसरे उसी तरह के पत्र के उपबन्धों से पैदा हुआ हो जो इस संविधान के आरम्भ होने से पहले लिखा गया हो। वे विवाद भी इसके आरम्भिक क्षेत्राधिकार में नहीं आयेंगे, जिसमें कोई राज्य एक पक्ष है, यदि वह विवाद किसी ऐसी संधि, करार, इकरार, वचन-बन्ध, सनद या अन्य लिखित पत्र की किसी व्यवस्था से पैदा हुआ हो जो व्यवस्था करती है कि वैसा क्षेत्राधिकार ऐसे विवाद पर लागू न होगा।

धारा ३२ सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों को लागू कराने के लिए निर्देश, आदेश या बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पृच्छा (*Quo Warranto*), उत्प्रेषण (*Certiorari*), लेखों (Writs) मे से किसी एक को जो भी ठीक हो, निकालने की शक्ति देती है।

(२) अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction)—सर्वोच्च न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार को तीन शीर्षकों अर्थात् संवैधानिक, दीवानी और फौजदारी अभियोगों के अधीन रखा जा सकता है।

(क) संवैधानिक अभियोग (Constitutional Cases)—धारा १३२ के अनुसार, यदि उच्च न्यायालय यह तसदीक कर दे कि मामला संविधान के अर्थ लगाने के असली प्रश्न से सम्बन्ध रखता है तो भारत क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के फैसले, डिग्री या अन्तिम आदेश की अपील सर्वोच्च न्यायालय में की जायेगी, चाहे उसका सम्बन्ध दीवानी, फौजदारी या दूसरी कार्यवाहियों के बारे में ही क्यों न हो। जहाँ उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाणपत्र देना नामंजूर कर दिया हो वहाँ सर्वोच्च न्यायालय यह विश्वास होने पर भी कि किसी मामले में संविधान का अर्थ लगाने का असली प्रश्न उपस्थित है, स्वयं अपील की विशेष आज्ञा दे सकता है। जहाँ ऐसा प्रमाण-पत्र या ऐसी स्वीकृति दे दी गई हो वहाँ मामले में कोई पक्ष ऐसे किसी प्रश्न के गलत फैसले के आधार पर, तथा सर्वोच्च न्यायालय की इजाजत से किसी अन्य आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकेगा।

(ख) दीवानी अभियोग (Civil Cases)—धारा १३३ के अनुसार, भारत राज्य क्षेत्र (territory) के किसी उच्च न्यायालय (High Court) की दीवानी कार्यवाही के किसी फैसले, डिग्री या अन्तिम आदेश की अपील सर्वोच्च न्यायालय में होगी, यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करे कि विवाद विषय (subject matter of the dispute) का मूल्य या राशिगत न्यायालय में बीस हजार रुपये या ऐसी अन्य

राशि (sum) से, जो इस बारे में संसद् कानून बनाकर निर्णय करे, से कम न थी और अपील मे उससे कम नही है; या निर्णय, डिग्री या अन्तिम आदेश में उतनी राशि या मूल्य की जायदाद से सम्बन्ध रखने वाला कोई दावा या प्रश्न प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे (directly or indirectly) विवाद का विषय है; या मामला सर्वोच्च न्यायालय मे अपील करने लायक है। जहाँ अपील किये हुए निर्णय, डिग्री या अन्तिम आदेश किसी नीचे के न्यायालय के फ़ैसले को ठीक बनाता है, वहाँ उच्च न्यायालय को यह भी प्रमाणित करना होगा कि अपील में कोई विशेष कानूनी प्रश्न (substantial question of law) मौजूद है। केवल तब ही अपील की आज्ञा दी जाती है। इसके अलावा उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश के फैसले, डिग्री या अन्तिम आदेश की अपील सर्वोच्च न्यायालय में न होगी जब तक संसद् कानून द्वारा कोई और व्यवस्था न करे।

(घ) फौजदारी अभियोग (Criminal Cases)—धारा १३४ के अनुसार, भरत राज्य-क्षेत्र (torritory) में किसी उच्च न्यायालय के किसी फ़ौजदारी के मामले मे दिये हुए निर्णय, डिग्री, अन्तिम आदेश या सजा की आज्ञा की सर्वोच्च न्यायालय मे अपील होगी यदि उच्च न्यायालय ने अपील मे से किसी अपराधी आदमी को छोड़ने की आज्ञा को उलट दिया है और उसको मौत की सज़ा दी है; या उच्च न्यायालय ने अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले की जाँच करने के लिए अपने पास मँगा लिया है या ऐसी जाँच में अपराधी ठहराया है और मौत की सजा दी है या उच्च न्यायालय प्रमाणित करता है कि मामला सर्वोच्च न्यायालय में अपील किये जाने लायक है। संसद् कानून द्वारा ऐसी शर्तों और परिसीमाओं (limitations) के अधीन जिनका वर्णन कानून मे किया जाय, सर्वोच्च न्यायालय को भारत राज्य-क्षेत्र के किसी उच्च न्यायालय के फ़ौजदारी में दिये गए किसी निर्णय, डिग्री या अन्तिम आदेश या सज़ा की आज्ञा की अपील लेने और सुनने की और भी शक्ति दे सकती है।

प्रीतम सिंह और सरकार के मुकदमे मे यह निर्णय हुआ था कि साधारणतः सर्वोच्च न्यायालय फौजदारी के मुकदमों में अपील करने की विशेष आज्ञा नही देगा जब तक कि यह सिद्ध न किया जाय कि अभूतपूर्व तथा विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, वास्तविक रूप से घोर अन्याय हुआ है और विचारणीय मुकदमे मे पर्याप्त गम्भीर हालात हैं जिनके कारण निर्णय के विरुद्ध की गई अपील पर पुनर्विचार अत्यावश्यक हो गया है; जबकि अभियोग पक्ष की हत्या की कहानी जो न असम्भव है और न अविश्वसनीय, पांच साक्षियों ने समर्पित की है। इन साक्षियों में मृत व्यक्ति की माता भी सम्मिलित है और इनकी गवाहियाँ अशक्त होने पर भी न्याय सभा और नीचे के दो न्यायालयों में प्रभावशाली रही हैं। इन न्यायालयो ने इनकी विश्वसनीयता को मानते हुए इस मुकदमे के कुछ बड़े तथ्यो को महत्त्व दिया है, जो उनके विचार से षड्यन्त्र रचने के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। इसलिये यह पूर्वसिद्ध और सिद्धान्तों के विरुद्ध होगा कि सर्वोच्च न्यायालय अपने को एक तीसरा तथ्य-न्यायालय (Court of fact) बना डाले और साक्षियों को दुबारा तोलकर प्रथम न्यायाधीश

ग्रौर प्रादेशिक उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के विरुद्ध निर्णय पर पहुँचते है। यह धारणा बिलकुल ग्रमान्य है कि ग्रपील विशेष ग्राज्ञा द्वारा स्वीकार हुई है, सारा मुकदमा नवीन हो गया ग्रौर प्रार्थी सारे तथ्यों को चुनौती दे सकता है ग्रौर वे सारे दोष दिखाए, जो कि प्रादेशिक उच्च न्यायालय (High Court) मे बताए जा सकते थे। इस न्यायालय के सामने केवल उन्ही मामलों पर विचार किया जा सकता है जो कि प्रथम ग्रवस्था मे जब कि ग्रपील प्रस्तुत की जाए, उपयुक्त हो। एक ही मुकदमे की दो ग्रवधियों में भिन्न-भिन्न मान (standard) ग्राधारित करना नितान्त ग्रयुक्ति-युक्त होगा।

(३) परामर्शदायी क्षेत्राधिकार (Advisory Jurisdiction)—धारा १४३ के ग्रनुसार यदि, किसी समय राष्ट्रपति को विश्वास हो कि कानून या तथ्य का कोई ऐसा प्रश्न पैदा हुग्रा है या उसके उठने का डर है, जो इस प्रकार ग्रौर ऐसे सार्वजनिक महत्त्व का है कि उस पर सर्वोच्च न्यायालय की राय जानना ग्रच्छा है, तो वह उस प्रश्न को सर्वोच्च न्यायालय को विचार करने के लिए सौंप सकेगा तथा *वह न्यायालय, उचित सुनवाई के बाद, राष्ट्रपति को उस पर ग्रपनी राय दे सकेगा।* राष्ट्रपति धारा १३१ में किसी बात के होते हुए भी, उस धारा मे बताए गए प्रकार के विवाद को सर्वोच्च न्यायालय को राय देने के लिए सौप सकेगा तथा सर्वोच्च न्यायालय उचित सुनवाई के बाद राष्ट्रपति को ग्रपनी राय देगा। किन्तु स्मरण रहे कि राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय की राय को मानने के लिए मजबूर नही है। इस विषय पर लार्ड हैलडेन (Lord Haldane) ने ये विचार प्रकट किये हैं—"इसके ग्रधीन प्रश्न किए जा सकते हैं, जिनका सन्तोषजनक उत्तर देना नामुमकिन है; बिना ग्रसली तथ्यो के सम्बन्ध या प्रसंग (reference) के किसी ग्रमूर्त्त रूप (abstract form) में न्यायालय के द्वारा सिद्धान्तो को स्थिर किए जाने से केवल मुकदमा चलाने वाले हितों को ही ठेस नहीं पहुँचती वरन् उन ठीक तथ्यों की पहले से जांच किए बिना जिन पर कि उसे लागू करना है, किसी सिद्धान्त की ठीक तरह ग्रौर निडरता से परिभाषा करना व्यावहारिक रूप से नामुमकिन भी हो जाता है। इसलिए, यह घटित हो चुका है कि मौजूदा प्रकार के मामलों में बहुधा माननीय न्यायाधीश ने उन सब प्रश्नों का उत्तर देने में ग्रसमर्थता ग्रनुभव की है जो उनसे किए गए ग्रौर ग्रपने उत्तरों को सीमित ग्रौर सम्भालकर देना ग्रावश्यक समझा है।" यह उल्लेखनीय है कि भारत सरकार के १९३५ के कानून (Government of India Act, 1935) में धारा २१३ मे इस प्रकार की व्यवस्था थी। न्यायमण्डल समिति कानून, १८३४ (Judicial Committee Act of 1834) में भी ऐसा ही विधान था। किन्तु ग्रमेरिका में ऐसी परिपाटी नही है। इतिहास बताता है कि प्रधान वाशिंगटन ने प्रस्तावित सन्धि के विषय में ग्रनेक प्रश्न पूछे लेकिन न्यायाधीशों ने उस समय तक उत्तर देने से इनकार कर दिया, जब तक कि वे प्रश्न *न्यायालय के सम्मुख ग्रभियोग* के रूप मे प्रस्तुत न हो। ग्रमेरिका के ग्रनेक राज्यों ने ग्रपने संविधान में सर्वोच्च न्यायालय को सम्मति देने के ग्रधिकार दिए हैं। इन मामलों में उनके विधानमण्डल

का शासक अपने राज्य के सर्वोच्च न्यायालय से सलाह ले सकता है। कोलोरेडो राज्य (Colorado State) को छोड़कर सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति कहीं भी लागू नहीं होती।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय को सलाहकार का कार्य करना चाहिए अथवा नहीं, इस विषय में बड़ा मतभेद है। इस विषय में दो विचारधाराएँ हैं। एक के अनुसार, देश के सर्वोच्च न्यायालय को तत्कालीन कार्यमण्डल की सलाहकार संस्था बनाना अनुचित है। कानून के प्रश्नों पर, जब तक ये न्यायालय के सम्मुख वास्तविक मुकद्दमों के रूप में नही आते, तब तक न्यायालय का इन पर सम्मति प्रकट करना ठीक नहीं। यदि न्यायालय काल्पनिक प्रश्नों पर अपनी सम्मति प्रकट करता है तो भविष्य में मुकद्दमों का निर्णय अलिप्त नही रह पाता। यह विचार प्रिवी कौंसिल के न्यायाधीश ने ओन्टेरियो के महान्यायवादी और कनाडा के महान्यायवादी के मुकद्दमों में प्रकट किए थे।

दूसरी विचारधारा के अनुसार सम्मति देने में कोई हानि नही है। इस प्रकार की व्यवस्था से कुछ विशेष लाभ है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई कानून अनेक वर्षों प्रचलित रहा किन्तु मुकद्दमों के निर्णय में न्यायालय ने इसे अवैध घोषित कर दिया। इससे लाखों व्यक्तियों के अधिकारों पर बुरा प्रभाव पड़ा। न्यायालय के निर्णय के अनुसार उन्हें आदेश हुआ कि सारे पिछले मामलों पर पुनर्विचार किया जाए। इसलिए यह धारणा उपयुक्त प्रतीत होती है कि यदि देश के सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति संसद् द्वारा कानून बनाने के पहले ही ले ली जाती, तो व्यर्थ हानिकारक कानूनों से जनता की रक्षा हो सकती।

यहाँ पर वरदाचारी (Vardachariar) समिति की उस रिपोर्ट का उल्लेख करना ठीक होगा जो भारत की संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत की गई थी। रिपोर्ट में कहा गया था, "न्यायशास्त्रियो और राजनीतिक पण्डितो में इस प्रश्न पर बड़ा मतभेद है कि सर्वोच्च न्यायालय देश के प्रमुख कानून सम्बन्धी जटिल प्रश्नो पर सलाह दे या न दे। विरोधी मत होने के अतिरिक्त वर्तमान विधान की धारा २१३ के अनुसार संघीय न्यायालय को सम्मति देने का कार्य सौंपा गया है। हम विरोध और पक्ष के तर्कों पर गम्भीरता से विचार करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि नए संविधान में भी इस व्यवस्था को रहने देना सर्वांगीण रूप से ठीक ही होगा। यह मान लिया जाना चाहिये कि इस व्यवस्था का प्रयोग शायद ही कभी करना पड़े। जैसा कि हमने प्रस्तावना की है कि न्यायालय में दस या ग्यारह न्यायाधीश हों, और सम्मति सर्वसम्मति से ही दी जाए तो इसकी सलाह को हम श्रेष्ठ अधिकारपूर्ण कह सकेंगे। इस प्रकार की व्यवस्था हमारे विचार से न्यायालय में होनी चाहिए।"

राष्ट्रपति ने सर्वोच्च न्यायालय से दिल्ली-कानून ऐक्ट (*Delhi Laws Act*) में विधान सभा के विषय में पूछा था। सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के महान्यायवादी और प्रादेशिक न्यायवादियों को बुलाकर पूरी संख्या में बैठकर विचार किया और तब निर्णय दिया। राष्ट्रपति ने केरल शिक्षा विधेयक को भी सर्वोच्च न्यायालय के पास

सम्मति के लिए भेजा। अन्य विषयों के अतिवित, यह भी प्रश्न पूछा गया था कि क्या केरल शिक्षा कानून की व्यवस्था संविधान की किसी धारा, विशेषतः तीसरे भाग में व्यवस्थित मौलिक अधिकारों पर तो आक्षेप नही करती। मई, १९५८ मे सर्वोच्च न्यायालय ने अपना निर्णय दिया। न्यायालय के मतानुसार केरल शिक्षा विधेयक की धारा ३ (५) जिसके अनुसार नए स्कूलो के खोलने और उच्च शिक्षा की श्रेणियां बढ़ाने की व्यवस्था है संविधान की धारा ३ (५) का उल्लघन करती है जहाँ तक ऐंग्लो-इंडियनों का सम्बन्ध है। अन्य अल्पसंख्यको की शिक्षा-सस्थाओं के विषय में, धारा ३ (५) इस प्रकार की संस्थाओ को धारा १४ और १५ के अन्तर्गत नियन्त्रित करती है, और सरकार इन शिक्षा-सस्थाओ का प्रबन्ध अपने हाथो मे लेने का अधिकार देती है। यह व्यवस्था संविधान की धारा ३० (१) का उल्लघन करती है। धारा ३ (५) के अनुसार, विधेयक के कानून बन जाने के पश्चात् नए स्कूलों को धारा २० के अधिकार में रखती, जिसके अनुसार सरकारी और अन्य सारे प्राथमिक स्कूलों में फीस नही ली जाएगी, संविधान की धारा ३० का उल्लघन करती है। धारा ३ (५) और १५ भेद-भाव नही करती, इसलिए सविधान की धारा १४ पर आक्षेप नहीं करती—जिसके अनुसार सर्वसाधारण को कानून के समक्ष सब को समान रक्षा मिलती है। विधेयक की धारा ३२ जिसके अनुसार न्यायालयों से अस्थायी रोक अथवा अन्तरिम आज्ञा देने का अधिकार छीन लिया गया है, संविधान की धारा २२६ के अन्तर्गत है।

(४) **अपील की विशेष आज्ञा देने की शक्ति** (Special Leave to Appeal)—धारा १३६ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय अपनी बुद्धि से भारत राज्य क्षेत्र के किसी न्यायालय या ट्रिब्यूनल द्वारा किसी झगड़े या विषय मे दिए हुए किसी निर्णय, डिग्री, अन्तिम आदेश, सजा की आज्ञा या आदेश की अपील के लिए विशेष आज्ञा दे सकेगा। शस्त्र बलों (Armed Forces) से सम्बन्ध रखने वाले किसी कानून के द्वारा कायम या किसी न्यायालय या ट्रिब्यूनल द्वारा किए गए किसी निर्णय, डिग्री, सजा की आज्ञा या आदेश पर यह धारा लागू नही होगी। यद्यपि धारा १३६ सर्वोच्च न्यायालय को अपील करने की विशेष आज्ञा देने की शक्ति देती है तो भी यह निश्चित किया जा चुका है कि न्यायालय इन शक्तियों का प्रयोग बहुत कम और केवल उन मामलों में करेगा जहाँ कि विशेष हालात मौजूद हों।

१९५० के प्रीतमसिह और राज्य के मुकद्दमे में (Pritam Singh v. State) सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्यवस्था की कि संविधान की धारा १३६ को पूर्वगत धाराओं के साथ अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जो विशाल स्वाधिकार इस न्यायालय को दिये गए है, वे बहुत कम और अभूतपूर्व मामलों मे ही प्रयोग किये जाने चाहिएं। इस धारा के अनुसार, जहाँ तक सम्भव हो सके, बहुत से मामले जो हमारे सामने पेश किए जाते हैं उनमें अपील की विशेष आज्ञा देते समय मानदण्ड रखा जाए। इस धारा के अनुसार, हम दीवानी, फौजदारी, आय-कर, त्रि-सदस्य न्यायालय शाखा (Tribunal) तथा अन्य मामलों में विशेष आज्ञा (Special Leave)

दे सकते हैं। जो सर्वसाधारण मानदण्ड (Standard) हमारे विचार से इन परिस्थितियों में स्थिर किया जा सकता है वह यह है कि जिन मुकद्दमों में महत्त्वपूर्ण और विशेष हालात हों उन्हें ही अपील की विशेष आज्ञा दी जाए। फौजदारी के मामलों में अपील की विशेष आज्ञा देने के विषय में प्रिवी काउन्सिल ने समय-समय पर सिद्धान्त स्थापित करने का प्रयत्न किया है। संघ-न्यायालय ने इन सिद्धान्तों की पुनःस्मृति १९५० के कपिलदेव बनाम सम्राट् मुकद्दमे में की है। हमारे लिए इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि हम इनको कठोरता से पालन करने के लिए बाध्य नही हैं क्योंकि वैधानिक और प्रशासनिक कारण जिन्हें प्रिवी काउन्सिल महत्त्व देती थी, हमारे लिए महत्त्वपूर्ण नही हैं। तथापि इनमें से कुछ सिद्धान्त बहुत से मुकद्दमों मे एक ठोस आधार का निर्देशन करते हैं जिसके अनुसार हम विशेष आज्ञा दे सकते हैं। साधारणतः यह न्यायालय उस समय तक अपील करने की विशेष आज्ञा नहीं देगा, जब तक यह सिद्ध नही किया जाएगा कि अभूतपूर्व तथा विशेष परिस्थितियाँ उस मुकद्दमे में हैं, तथा वास्तविक और गम्भीर अन्याय हुआ है और विचारणीय मुकद्दमे में गम्भीर तथ्य हैं जिनके कारण निर्णय पर पुनर्विचार करना आवश्यक है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपील करने की विशेष आज्ञा अभूतपूर्व मामलो में ही दी है। यह बड़ी मनोरंजक बात है कि अपील की प्रार्थना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आम तौर पर अस्वीकार कर दी जाती है। मुकद्दमे वाले इस बात को नही समझते कि उनकी प्रार्थना के स्वीकार होने की बहुत कम आशा रह गई है।

(५) पुनरवलोकन की शक्ति (Power of Review)—धारा १३७ के अनुसार, संसद् द्वारा बनाये गये किसी कानून की व्यवस्थाओं के या धारा १४५ के अधीन बनाए गये किसी कानून के अधीन रहते हुए, सर्वोच्च न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए निर्णय या दिए गए आदेश पर पुनरवलोकन करने का अधिकार होगा। यह शक्ति यू० एस० ए० के सुप्रीम कोर्ट को भी प्राप्त है।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की वृद्धि (Enlargement of Jurisdiction)—धारा १३८ सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की वृद्धि के बारे में है। इसके अनुसार, संघ सूची (Union List) के विषयों में से किसी के बारे में सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ प्राप्त होगी जैसे संसद् कानून बना कर तय करेगी। यदि संसद् न्यायालय के लिए ऐसे क्षेत्राधिकार और शक्तियों के प्रयोग की कानून द्वारा व्यवस्था करे तो किसी विषय के बारे में सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे और क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ होंगी जिन्हें भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार विशेष करार द्वारा सौंपे। धारा १३९ के अनुसार, संसद् कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को धारा ३२ में बताये गए कार्यों से भिन्न कार्यों के लिए ऐसे निर्देश, आदेश या लेख जिनमें बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण के प्रकार के लेख भी हैं, या इनमें से किसी को भी जारी करने की शक्ति दे सकती है। यह बताया जा चुका है कि धारा ३२ का सम्बन्ध संविधान के भाग ३ में नियुक्त किये गये मौलिक अधिकारों पर लागू करने से है। धारा १४० के अनुसार संसद् कानून द्वारा सर्वोच्च

न्यायालय को ऐसी पूरक शक्तियाँ (supplementary powers) दे सकेगी जैसी कि उस न्यायालय को इस संविधान के द्वारा या अधीन दिये गए क्षेत्राधिकार के अधिक अच्छी तरह प्रयोग करने के योग्य बनाने के लिए आवश्यक या वांछनीय मालूम हों और इस संविधान की व्यवस्थाओं में से किसी के खिलाफ न हो।

विविध व्यवस्थाएँ (Miscellaneous Provisions)—भारत राज्य-क्षेत्र में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित किया हुआ कानून सभी न्यायालयों पर लागू होगा।

धारा १४२ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय ऐसी डिग्री या आदेश दे सकेगा जैसा कि उसके सामने आए हुए किसी मुकद्दमे या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो। इस प्रकार दी हुई डिग्री या आदेश भारत राज्य-क्षेत्र में सभी जगहों पर लागू होगा। संसद् द्वारा इस बारे में पास किए गए किसी कानून की शर्तों के अधीन रहते हुए, सर्वोच्च न्यायालय को भारत के सारे राज्य-क्षेत्र के बारे में किसी आदमी को हाजिर कराने, किन्हीं दस्तावेज़ों को प्रकट या पेश कराने या किसी अपमान (contempt) की जाँच कराने या सजा देने के लिए कोई आदेश देने की पूरी और प्रत्येक शक्ति होगी। भारत राज्य-क्षेत्र के सब प्रशासकीय तथा न्यायिक प्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय की सहायता करेंगे।

धारा १४५ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय समय-समय पर राष्ट्रपति की स्वीकृति से न्यायालय की कार्य-प्रणाली और व्यवहार (practice and procedure) को साधारण रूप से पूरा करने के लिए कानून बना सकेगा जिसमे कार्यवाहियों को रोकने, जामिन की मंजूरी तथा तुच्छ या तंग करने वाली (frivolous and vexatious) अपीलों को निपटाने के नियम भी हैं।

सर्वोच्च न्यायालय कोई निर्णय खुले न्यायालय के सिवाय नहीं सुनायेगा। कोई निर्णय या राय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मामले की सुनवाई में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के बहुमत की सहमति के बिना न दी जायेगी। किन्तु कोई न्यायाधीश अपना भिन्न निर्णय या राय दे सकता है।

धारा १४६ के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के अफसरों और नौकरों की नियुक्तियाँ भारत का चीफ जस्टिस या उसके द्वारा नियुक्त उस न्यायालय का दूसरा न्यायाधीश या अफसर करेगा। लेकिन राष्ट्रपति नियम द्वारा यह अपेक्षा कर सकेगा कि कुछ हालात मे किसी ऐसे व्यक्ति को जो पहले ही न्यायालय में लगा हुआ नहीं है न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाले किसी पद पर संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) से सलाह किये बिना नियुक्त न किया जायेगा। सर्वोच्च न्यायालय के अफसरों तथा सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसी कि भारत का चीफ जस्टिस नियम बनाकर नियुक्त करे लेकिन ऐसे नियमों का राष्ट्रपति द्वारा मंजूर किया जाना जरूरी है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रशासन व्यय (administrative expenses), जिनमे उस न्यायालय के अफसरों और सेवकों को दिये जाने वाले सभी वेतन, भत्ते और पेंशनें भी है, भारत की संचित निधि पर भारित (Charged) होंगे।

सर्वोच्च न्यायालय संविधान की अन्तिम व्याख्या करने वाला व्याख्याता (interpreter) है। उसे यह घोषित करना पड़ता है कि किसी विशेष धारा का क्या अर्थ है और क्या नही। यद्यपि उच्च न्यायालयों को भी संविधान की धाराओं का अर्थ लगाने का अधिकार है तथापि वह संविधान की व्याख्या करने की अन्तिम अदालत है। सर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को वैध या अवैध (ultra vires or intra vires) घोषित कर सकता है।

कुछ मामलों पर न्यायालय विचार नही कर सकता और उनमे से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) उन कानूनों में जिनमें व्यक्तियों को पकड़ाने, कैद करने और मौत की सजा देने की प्रणाली व्यवस्थित की गई हो, सर्वोच्च न्यायालय या और न्यायालय हस्तक्षेप नही कर सकता। किन्तु यदि इन कानूनों में कोई व्यवस्था संविधान के विरुद्ध हो तो इन्हें सर्वोच्च न्यायालय और अन्य न्यायालय अवैध घोषित कर सकते हैं।

(२) सरकार द्वारा प्राप्त की गई सम्पत्ति के मुआवजे सम्बन्धी किसी भी कानून को सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य कोई न्यायालय इस आधार पर चुनौती नहीं दे सकता कि मुआवजा अन्यायपूर्ण, अनुपयुक्त या अनुचित है। कानून में व्यवस्थित मुआवजा अन्तिम होगा।

(३) सर्वोच्च न्यायालय और अन्य न्यायालयों के क्षेत्र से परे कुछ चुनाव सम्बन्धी मामले भी हैं। क्षेत्रों के पुनर्गठन और सदस्यों की संख्या निर्धारित करने के सम्बन्ध में पारित कानून सर्वोच्च न्यायालय और अन्य न्यायालयों की अधिकार सीमा से बाहर हैं।

सर्वोच्च न्यायालय को स्वतन्त्र बनाने की पूरी-पूरी कोशिश की गई है। जज अच्छे व्यवहार के समय तक (during good behaviour) अपने पद पर रहते हैं, राष्ट्रपति के कृपाकाल (pleasure) में नहीं। उनको हटाने का तरीका बड़ा कठिन है। इंगलैंड का अनुभव यह है कि कोई जज असल में हटाया नहीं जा सकता। यही बात उनके वेतन और भत्तों के बारे में भी है। उनके वेतन तथा भत्ते उनकी नौकरी के काल में कम नही किये जा सकते। उनके वेतन अमतापेक्षी (non-votable) है। इससे सर्वोच्च न्यायालय को पूरी स्वतन्त्रता (जैसी अमेरिका में है) मिलती है "सुप्रीम कोर्ट तथा निम्न न्यायालयों के जज अच्छे व्यवहार के काल मे अपने पद पर रहेंगे। उनके वेतन तथा भत्ते उनके कार्यकाल में कम नही किए जायेंगे।"

श्री एम० सी० सीतलवाद ने जनवरी सन् १९५० मे सर्वोच्च न्यायालय के उद्घाटन पर यह विचार प्रकट किया था—"इस न्यायालय के लेख (Writ) सारे भारत के रहने वालों पर लागू होंगे। असल मे यह ठीक है कि इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार तथा शक्तियाँ अपने स्वभाव तथा विस्तार मे किसी राष्ट्रमण्डलीय देश अथवा अमेरिका की तुलना में अधिक है। मौलिक अधिकारों पर कौन-सी रुकावट ठीक है इसके लिए दिमाग और समझ की जरूरत है। सर्वोच्च न्यायालय का यह

अवैध या असंवैधानिक नहीं किये जा सकते। विधानमण्डल अपने क्षेत्र में सर्वशक्तिमान है। न्यायालय को इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं कि कानून अच्छा है या बुरा। भारतीय संविधान में न्यायमण्डल की नहीं अपितु विधानमण्डल की उच्चता पर जोर दिया गया है।

अमेरिका के संविधान के इस वाक्य 'Due process of law' 'कानून की परिपाटी' ने अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय को ऊँचे आसन पर स्थित कर दिया है। विधानमण्डल द्वारा स्वीकृत कोई भी कानून भले ही पूर्णतः विधान के अनुकूल हो किन्तु यदि यह 'कानून की परिपाटी' को पूरा नहीं करता तो इसे अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय अवैध घोषित कर सकता है। इस वाक्य Due process of law का अर्थ है प्राकृतिक न्याय का मानदण्ड (Standards of Natural Justice) तथा 'वास्तविक बुराई या भलाई' (inherent goodness or badness), यदि कोई कानून अनुचित हो तो उसे सर्वोच्च न्यायालय अवैध घोषित कर सकता है। इस कारण अमेरिका मे न्याय की महानता है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बहुमत से किसी भी कानून को अवैध घोषित कर सकते हैं।

इन दो न्यायालयो में एक और भी अन्तर है। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के पास सम्मति देने का (advisory) अधिकार-क्षेत्र है जो अमेरिका में नही है। अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यमण्डल को सलाह देना अस्वीकार कर दिया, किन्तु भारतवर्ष में सर्वोच्च न्यायालय का यह कर्त्तव्य है कि यदि सरकार उससे सम्मति मांगे तो उसे अपनी राय देनी पड़ेगी। भारत अधिनियम, १९३५ में यह अधिकार संघ न्यायालय को दिया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय की कार्य-प्रणाली (Working of the Supreme Court)—पिछले आठ वर्षों की कार्यविधि से प्रकट है कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो ने सम्मान, निष्पक्षता और स्वतन्त्रता से कार्य किया है। उन्होंने अपने को कार्य-मण्डल के अधीनस्थ नहीं माना है। जब कभी भी अवसर आया है सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यमण्डल की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की है। इसने कई राज्यो की सरकारो द्वारा नजरबन्द व्यक्तियों को मुक्ति दिलाई और सम्बन्धित पदाधिकारियों की निन्दा करने में भी यह नही चूका। इसने कार्यमण्डल की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाने का भरसक प्रयत्न किया है। किन्तु जब कभी भी न्यायालय ने कार्यमण्डल के विरुद्ध कार्यवाही की है; बड़े संयम से काम किया है। इसने अपनी आलोचना को अनर्गल नही, अपितु न्यायिक बनाया है। यह सत्य है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपना कर्त्तव्य बिना भय, बिना पक्षपात और बिना दुर्भावना के निभाया है।

सर्वोच्च न्यायालय जनता के मौलिक अधिकारों का संरक्षक है। इसने अपना कार्य प्रशंसनीय रीति से किया है। संविधान के तत्त्व के अनुसार जनता की स्वतन्त्रता का संरक्षण करने के लिए पूर्ण प्रयत्न किए गए हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के संरक्षण का कार्य भी किया है। अनेक अवसरो पर इसे केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा लागू अधिनियमों को अवैध (in-

valid) घोषित करने पर बाध्य होना पड़ा है। यह प्रसिद्ध है कि राज्यों द्वारा लागू किए गए जमींदारी उन्मूलन कानूनों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने गैर-कानूनी घोषित किया था। परिणामत. कार्यमण्डल घबरा गया। निर्णय को चुनौती नही दी गई, किन्तु राज्यों द्वारा लागू कानूनों को नियमित करने के लिए संविधान में संशोधन कर दिया गया। इस विषय में सरकार का व्यवहार प्रधान मन्त्री के इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि "हम अपने न्यायाधीशों का आदर करते हैं किन्तु हम किसी भी कानूनी हेर-फेर, कानूनन न्यायाधीश को जो हमारे मार्ग मे आये सहन नहीं करेंगे'''अन्त मे, इस प्रकार के सामाजिक सुधार में न्यायालयों को विधानमण्डल मे हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।" यह ध्यान रखने योग्य बात है कि सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ कानूनों को अथवा उनके कुछ अंशों को अवैध घोषित किया क्योंकि वे संविधान की व्यवस्था मे रोड़ा अटकाते थे, लेकिन यह नही समझा जा सकता कि कभी भी इसने तीसरा विधान सदन बनने का प्रयत्न किया हो। इसने वर्तमान कानूनों की व्याख्या करने के बहाने, नये कानून बनाने का प्रयत्न नहीं किया। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने बहुधा यही कहा कि हमारा कार्य संविधान की व्याख्या करना है, अपनी ओर से इसमे कुछ बढ़ाना नही है। जब कोई कानून संविधान की व्यवस्था से टकराता है तो वे इसे अवैध घोषित कर देते हैं, किन्तु जब संविधान में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संशोधन हो जाता है और कानून वैध हो जाता है तो सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित करने से इनकार कर देता है। यह श्रेय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ही है कि वे विधान-निर्माता नही बने और निरन्तर तथा विशेष परिस्थितियों मे भी संविधान के व्याख्याता ही रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय को राष्ट्र-हितो, राज्यों के हितो और जनसाधारण के हितों को व्यक्ति के हितों से मिलाप कराने का कार्य सौंपा गया था और यह कार्य इसने बड़ी शान से किया है। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों मे, सर्वोच्च न्यायालय और प्रादेशिक उच्च न्यायालय को विधान-निर्माताओं द्वारा बनाये गए कानूनो की वैधता पर आक्षेप लगाने वाले महत्त्वपूर्ण मुकद्दमों के निर्णय का कार्य दिया गया। सरकार के कार्यों को चुनौती दी गई और सरकार के विरुद्ध मौलिक अधिकारों की रक्षा की माँग की गई। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय बधाई के पात्र हैं कि वे सरकार के विरुद्ध निर्णय देते हुए झिझके नहीं।

अलैग्जेंड्रोविच (Alexandrowicz) के मतानुसार, "संविधान सभा के वाद-विवादों से पता चलता है कि संविधान के निर्माता एक संघीय प्रणाली के राष्ट्र मे न्यायमण्डल के अधिकारों के महत्त्व को भली प्रकार जानते हुए, न्याय द्वारा पुनर्विचार की सीमा यथासाध्य कठोरता से निर्धारित करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। संविधान के दौरान में न्यायाधीश और विधानमण्डल का मामला सर्वोपरि महत्व का बन गया था। विधान सभा को यह डर था कि यह न्यायालय एक तीसरा विधान सदन बनकर सत्ताधारी एक ही दल कांग्रेस ने राष्ट्र के तीनों अंगों मे अधिकारों के बँटवारे के विषय में जैसी व्यवस्था की है, उसे उलट-पलट देगा। इसके कारण न्यायाधीशों के

अधिकारों में क्रमशः कमी कर दी गई है जो विधान के मसविदा तैयार करने के समय विपुलता से इसे दिए गए थे। संविधान सभा के एक सदस्य के शब्दों में, 'कानून की परिपाटी' (Due process of law) वाक्य इस विवाद में सर्वप्रथम वलिवेदी पर चढा। धारा २१ से इस वाक्य के निकाल दिये जाने के कारण न्यायालयों से, भारत सुरक्षा नजरबन्दी कानून (Preventive Detention Act) जैसे 'कानून की परिपाटी' के विरुद्ध, कानूनों को अवैध घोषित करने वाले विशद अधिकार छिन गये। न्यायाधीशों ने संविधान के निर्माताओं की इच्छा का सम्मान किया। सरकार को, जो कानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिए चिन्तित थी, नजरबन्दी कानून के अधिकार का उपभोग करने दिया। उन्होंने धारा २१ की संवैधानिक व्याख्या न करके शाब्दिक व्याख्या की। यद्यपि उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध धारा २१ की 'सविधान की भावना' (Spirit of Constitution) में व्याख्या नही की तथापि दूसरी ओर धारा २२ को मनचाहे रूप से बदलने न देकर जो थोड़ा-बहुत परिपाटी (Procedure) की आड़ में नजरबन्दी का बचाव कर सकते थे, किया। परिणामतः अल्पसंख्यक विरोध-पक्ष के अतिरिक्त कभी भी धारा २१ और २२ के संशोधन का मामला नही उठा।"
(Constitutional Development in India. p. 125)

Suggested Readings

Alexandrowicz, C H. : Constitutional Development in India.
Chitaly and Rao : The Constitution of India, Vol. II, pp. 1046-1268.
Douglas, W. O. : From Marshall to Mukherjee : Studies in American and Indian Contitutional Law, 1956.
Hughes, C. E. : The Supreme Court of the United States.
Markose. A. T. : Judicial Control of Administrative Action in India.
Sharma, Sri Ram : The Supreme Court of India.

अध्याय ४६

संघ तथा राज्यों के सम्बन्ध

(RELATIONS BETWEEN UNION AND STATES)

भारतीय संविधान के ग्यारहवें भाग में सघ तथा राज्यों के सम्बन्धों के बारे मे व्यवस्था की गई है। सम्बन्धों को ठीक तरह से समझने के लिये यह वाछनीय है कि संविधान के उन उपबन्धों की ओर निर्देश किया जाय जो राज्यपाल, अखिल भारतीय सेवाएँ, केन्द्रीय अनुदान तथा संकटकालीन उपबन्धो से सम्बन्ध रखते हैं। संविधान की सातवी अनुसूची (Seventh Schedule) मे तीन सूचियाँ अर्थात् संघ सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूचियाँ (Concurrent List) दी गई है। सघ सूची मे ६७, राज्य सूची में ६६, तथा समवर्ती सूची मे ४७ विषय है।

कानूनी सम्बन्ध (Legislative Relations)—कानून बनाने के सम्बन्ध में, संघ सरकार संघ सूची में दिये गए मामलो पर कानून बना सकती है। यह उन मामलों पर भी कानून बना सकती है जो समवर्ती सूची में दिए गए है, किन्तु राज्य भी उन मामलों पर कानून बनाने की शक्ति रखते हैं। साफ तौर पर समवर्ती सूची के किसी मामले पर संसद् द्वारा पास किए गए कानून राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किये गए कानूनों के मुकाबले में ऊँची सत्ता रखते हैं। अवशिष्ट (residuary) शक्तियाँ भी सघको दी गई हैं।

संघ सूची तथा समवर्ती सूची में कहे गए मामलों पर अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के अलावा सघीय सरकार उन मामलों पर भी कानून बना सकती है जो राज्य सूची में दिये गए हैं। धारा २४६ के अनुसार यदि राज्य सभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अधिक संख्या के द्वारा समर्थित प्रस्ताव से ऐलान किया है कि राष्ट्रीय हित में यह जरूरी है कि संसद् राज्य सूची में गिनाए गए और उस संकल्प में कहे गए किसी विषय के बारे मे कानून बनाए तो जब तक वह संकल्प लागू है संसद् के लिए उस विषय के बारे मे समस्त भारत अथवा उसके किसी हिस्से के लिए कानून बनाना कानून के मुताबिक होगा। इस प्रकार पास किया हुआ संकल्प एक साल से ज्यादा समय तक वैध नही रह सकता, किन्तु दूसरे वर्ष के लिए दूसरा संकल्प पास किया जा सकता है। ऐसे विषय में संसद् द्वारा बनाया गया कानून संकल्प का समय खत्म होने के छ: महीने बाद खत्म हो जायेगा।

धारा २५० के अनुसार संसद् को जब तक संकटकालीन घोपणा प्रचलन में है, भारत के किसी हिस्से या सारे भारत के लिए राज्य सूची में दिए गए विषयों के ऊपर कानून बनाने की शक्ति होगी। ऐसे विषय में संसद् द्वारा बनाया गया कानून घोषणा के प्रचलन की समाप्ति के छः महीने के बाद खत्म हो जाएगा।

धारा २५१ के अनुसार, इस संविधान की धारा २४६ और २५० के अन्तर्गत संसद् द्वारा पास किए गए कानून के खिलाफ यदि राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई कानून है तो राज्य विधानमण्डल का वह कानून विरुद्धता (repugnancy) की सीमा तक प्रचलन में नही रहेगा।

धारा २५२ के अनुसार, यदि किन्ही दो या दो से अधिक राज्यों के विधानमण्डलों को यह वांछनीय प्रतीत हो कि उन विषयों में से (जिनके बारे में संसद् को उन राज्यों के बारे में कानून बनाने की शक्ति नही है) किसी विषय की व्यवस्था ऐसे राज्यों के लिए संसद् कानून द्वारा करे तथा यदि उन राज्यों के विधानमण्डलों के सब सदनों ने उसके लिये संकल्पों को पास किया है तो उस विषय का उसी के मुताबिक व्यवस्था करने के लिए कानून पास करना संसद् के लिये कानून होगा। इस तरह पास किया गया कोई कानून ऐसे राज्यो को लागू होगा तथा किसी दूसरे राज्य को, जो उसके बाद अपने विधानमण्डल के सदन अथवा सदनों मे से हरेक से उसके लिए पास किए गए संकल्प द्वारा उसको मन्जूर करे, लागू होगा। संसद् द्वारा इस तरह पास किया गया अधिनियम संसद् के अधिनियम से ही संशोधित या वापस लिया जा सकता है, किसी विधानमण्डल के कानून द्वारा नही।

धारा २५३ के अनुसार, संसद् को किसी दूसरे देश या देशों के साथ की हुई सन्धि, करार या अभिसमय (convention) अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन (International Conference), सभा (association) या किसी दूसरी संस्था में किए गए किसी फैसले का पालन करने के लिए सारे भारत अथवा उसके किसी हिस्से के लिए कानून बनाने की शक्ति है।

धारा २५४ के अनुसार यदि किसी राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाये गए कानून की कोई व्यवस्था संसद् द्वारा बनाये गए किसी कानून की किसी व्यवस्था के विरुद्ध है तो संसद् द्वारा बनाया गया कानून वैध होगा और राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाया गया कानून विरोध की सीमा तक अवैध होगा। जहाँ भाग 'क' या भाग 'ख' राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाए गये कानून में (जो समवर्ती सूची में गिने गये विषयो मे से एक के बारे मे है) कोई ऐसी व्यवस्था निहित हो जो संसद् द्वारा पहले बनाए गए कानून के अथवा उस विषय के बारे मे किसी मौजूदा कानून के खिलाफ है तो ऐसे राज्य के विधानमण्डल द्वारा उस तरह बनाया गया कानून उस राज्य मे वैध होगा यदि उसको राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित किया गया है और उस पर उसकी मन्जूरी मिल चुकी है। किन्तु, कोई शक्ति संसद् को राज्य के विधानमण्डल द्वारा इस प्रकार बनाये गए कानून को जोड़ने, सुधारने, बदलने अथवा तोड़ने से न रोक सकेगी।

धारा २५५ के अनुसार, भारतीय संसद् अथवा किसी राज्य की विधान सभा द्वारा पारित कोई अधिनियम इसलिए कानून के विरुद्ध नहीं समझा जायेगा क्योकि उसको संविधान के अनुसार कोई अनुमति नही दी गई। ऐसा तभी हो सकता है कि जबकि राज्यपाल या राष्ट्रपति ने उस अधिनियम की अनुमति दे दी हो।

प्रशासन सम्बन्ध (Administrative Relations)—संघ तथा राज्यों के सम्बन्ध में धारा २५६ के अनुसार हरेक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा, कि जिससे ससद् द्वारा बनाए गए कानूनो का तथा किन्हीं मौजूदा कानूनों का, जो उस राज्य में लागू हैं, पालन निश्चित रहे तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो कि भारत सरकार को उस मकसद के लिए जरूरी दिखाई दे।

धारा २५७ के अनुसार, हरेक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस तरह प्रयोग होगा कि जिससे संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग मे कोई अड़चन या खिलाफ असर न हो तथा संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक विस्तृत होगा जो भारत सरकार को उस मकसद के लिए जरूरी दिखाई दे। संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार राज्य को किसी ऐसे संचार साधनों (means of communication) के बनाने और बनाए रखने के लिए निर्देश देने तक भी विस्तृत होगा, जिनका राष्ट्रीय या सैनिक महत्त्व (importance) का होना उस निर्देश में घोषित किया गया हो। संसद् को किन्ही राजपथों (highways) या जल-पथों (waterways) को राष्ट्रीय राज-पथ या राष्ट्रीय जल-पथ घोषित करने की शक्ति प्राप्त है। संघ सरकार नौ-बल (naval), स्थल-बल (military) तथा विमान-बल फैक्ट्रियों से सम्बन्धित अपने कार्यों का भाग मानकर संचार साधनों को बनाए रख सकती है। संघ कार्यपालिका किसी राज्य को राज्य के अन्तर्गत रेलों की रक्षा के लिए किए जाने वाले उपायों के बारे में निर्देश दे सकती है। भारत सरकार राज्य को उपर्युक्त कर्तव्यों को पूरा करने में हुए अधिक खर्च के लिए मुआवज़ा देगी।

धारा २५८ के अनुसार, किसी राज्य की सरकार की सलाह से राष्ट्रपति, उस सरकार को या उसके अफसरों को ऐसे किसी मामले से सम्बन्ध रखने वाले काम, जिन पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, शर्तों के साथ या बिना शर्त सौंप सकेगा। सम्बन्ध रखने वाले राज्य को भारत सरकार द्वारा अधिक खर्चों के लिए मुआवजा दिया जायेगा।

धारा २५८ 'अ' १६५६ में सातवें संशोधनानुसार मिलाई गई। इसके अनुसार किसी राज्य को राज्यपाल भारतीय सरकार की अनुमति द्वारा किसी भी रूप से कोई भी ऐसा कार्य, जिस पर राज्य की व्यवस्थापिका (executive) शक्ति लागू होती हो, उस सरकार या सरकार के कर्मचारियों को सौंप सकता है।

धारा २६१ के अनुसार समस्त भारत में केन्द्रीय या प्रांतीय जनसम्बन्धी कार्यों, अभिलेखों तथा न्याय को पूर्ण महत्त्व तथा आश्वासन प्रदान किया जाएगा। संसद् द्वारा निर्मित नियम ही इस बात का निर्णय देंगे कि किन परिस्थितियों में इन कार्यों, अभिलेखों और इस क्रम का कैसा प्रभाव पड़ेगा। भारतवर्ष के किसी भी कोने में सिविल न्यायालयो के अन्तिम निर्णय या आदेश लागू किए जाएँगे।

धारा २६२ के अनुसार, संसद् कानून द्वारा किसी अन्तर्राज्य के नदी, या नदी-घाटी के जलों के प्रयोग, बँटवारे, या कन्ट्रोल के बारे में किसी झगड़े या फरियाद के

न्याय के फैसले के लिए व्यवस्था कर सकेगी। संसद् व्यवस्था कर सकेगी कि न तो हाईकोर्ट और न कोई दूसरी अदालत ऐसे किसी विवाद या फरियाद के बारे में क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) का प्रयोग करेगी।

धारा २६३ के अनुसार, यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह महसूस हो कि अन्तर्राज्य-परिषद् (Inter-State Council) की स्थापना से लोक-हितों (public interests) की सिद्धि होगी, जिस पर राज्यों के बीच जो झगड़े खड़े हो चुके हों उनकी जाँच करने और उन पर सलाह देने या ऐसे किसी मामले पर सिफारिश करने, और खास तौर से उस विषय के बारे में नीति और कार्यवाही के अधिकतर अच्छे समन्वय (co-ordination) के लिए सिफारिश करने की जिम्मेदारी हो तो राष्ट्रपति के लिए यह कानून होगा कि वह ऐसी परिषद् की स्थापना करे तथा उसके द्वारा किये जाने वाले कर्त्तव्य के स्वरूप (nature) को और उसके संगठन और कार्य-प्रणाली को बयान करे।

आर्थिक सम्बन्ध (Financial Relations)—नये संविधान के अन्तर्गत संघ तथा राज्यों के बीच आय के स्रोतों को उसी प्रकार बाँटा गया है जिस प्रकार भारत सरकार अधिनियम १६३५ के आधीन बाँटा गया था। जबकि कुछ कर पूरी तरह से संघ को दिए गए हैं और कुछ दूसरे प्रकार के कर राज्यों को पूरी तरह से दे दिए गए हैं। उसी प्रकार कुछ कर (tax) ऐसे भी हैं जिनको संघ सरकार लगाती है और संघ सरकार इकट्ठा करती है। कुछ ऐसे कर हैं, जिनको संघ सरकार लगाती है और इकट्ठा करती है, किन्तु ये राज्यों को दिए जाते हैं। कुछ विषयों मे, संघ सरकार को राज्यों को सहायता के रूप में अनुदान (grant-in-aid) देना होता है।

तटकर (custom), निगम कर (corporation tax), व्यक्तियों तथा कम्पनियों के सम्पत्ति पावने के पूँजी मूल्य कर (taxes on capital value of assets of individuals and companies), आयकर पर अधिभार (surcharge on *income-tax*), संघ सूची से सम्बन्ध रखने वाले विषयों के शुल्क, शराब, अफीम तथा दूसरी दवाइयों को छोड़कर तम्बाकू तथा अन्य दूसरी चीजों के उत्पादन (भारत में) पर उत्पादन कर संघ सरकार को दिए गए हैं।

भूमिकर, कृषि भूमि पर उत्तराधिकार कर (*succession duty*), भूमि तथा मकानों पर कर, खनिज कर, अफीम तथा भारतीय दवाओं पर कर, बिजली के उपभोग (consumption) तथा बिक्री पर कर, चुंगी, सड़क या नहर द्वारा आने वाले मुसाफिरों पर कर, यान (vehicles) कर, व्यवसाय कर, व्यापार तथा मनोरंजन कर, बिक्री कर आदि राज्यों को सौंपे गए हैं।

धारा २६६ के अनुसार, निम्न करों को भारत सरकार लगाती है और इकट्ठा करती है परन्तु ये राज्यों को सौंपे जाते हैं :

(१) कृषि-भूमि से दूसरी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में शुल्क।

(२) कृषि-भूमि से दूसरी सम्पत्ति के बारे में जागीर कर (*estate duty*)।

(३) रेल, समुद्र या वायु से ले जाई जाने वाली वस्तुएँ तथा यात्रियो पर सीमाकर (terminal tax)।

(४) रेल-भाड़ों और वस्तु-भाड़ों (freights) पर कर।

(५) स्टाक एक्सचेञ्ज (stock exchanges) और वायदा बाजारों के सौदो पर मुद्राक-शुल्क (stamp duty) के अलावा दूसरे कर।

(६) समाचारपत्रों के क्रय-विक्रय तथा उनमे छपने वाले विज्ञापनों (advertisements) पर कर।

धारा २७० व्यवस्था करती है कि कृषि आय के अलावा दूसरे आयकरो (income tax) को भारत सरकार लगायेगी और इकट्ठा करेगी, संघ तथा राज्यों के बीच बाँटेगी।

धारा २७१ के अनुसार, धारा २६६ और २७० में किसी बात के होते हुए भी संसद् उन धाराओं में कहे गये शुल्कों या करों में से किसी की भी किसी समय संघ के प्रयोजनों (purposes) के लिए अधिभार (surcharge) द्वारा बढ़ोतरी कर सकेगी और ऐसे किसी अधिभार की सारी आमदनी भारत की संचित निधि का हिस्सा होगी।

धारा २७२ के अनुसार, संघ सूची में कही गई दवाइयों से सम्बन्ध रखने वाली और प्रसाधन सामग्री (toilet) पर उत्पादन शुल्क के अलावा संघ-उत्पादन-शुल्क भारत सरकार द्वारा लगाये तथा इकट्ठे किए जायेंगे, किन्तु यदि संसद् कानून द्वारा यह व्यवस्था करे तो शुल्क लगाने वाला कानून जिन राज्यों पर लागू होता हो, उन राज्यों को भारत की संचित निधि में से उस शुल्क की ठीक पूरी आमदनी के या किसी हिस्से के बराबर रकम दी जायेगी और उन रकमों को उन राज्यों के बीच कानून द्वारा बनाये गए बँटवारे के नियमों के मुताबिक बाँटा जायेगा।

धारा २७३ के अनुसार जूट या जूट से बनी हुई चीजों पर निर्यात शुल्क (export duty) के बदले असम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल के राज्य अनुदान प्राप्त करेंगे।

धारा २७५ के अनुसार, ऐसी राशियाँ, जो संसद् कानून द्वारा निश्चित करे, उन राज्यों के राजस्वों (revenues) के सहायक अनुदान के रूप मे हर साल भारत की संचित निधि पर भारित होंगी जिन राज्यों के बारे में संसद् यह तय करे कि उन्हें सहायता की जरूरत है। इस प्रकार अलग-अलग राज्यों के लिए अलग-अलग राशियाँ हो जायेंगी। परन्तु किसी राज्य के राजस्वों के सहायक अनुदान के रूप में भारत की संचित निधि में से वैसी पूँजी तथा दुबारा खर्च होने वाली राशियाँ दी जायेंगी जैसी कि उस राज्य को उन विकास योजनाओं के खर्चों के उठाने मे समर्थ बनाने के लिए जरूरी हों, जो उस राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित आदिम जातियों (Scheduled Tribes) के कल्याण की उन्नति करने के उद्देश्य से या उस राज्य के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों (Scheduled areas) के शासन-स्तर को उस राज्य के बाकी क्षेत्रों

के प्रशासन-स्तर तक उन्नत करने के मकसद से उस राज्य ने भारत सरकार की मंजूरी (approval) से हाथ में ली हों। यदि असम सरकार भारत सरकार की अनुमति से किसी विकास योजना को अपने अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन स्तर को उठाने के ध्येय से लेती है तब भारत सरकार को असम राज्य को उस ध्येय के लिए मुआवजा देना पड़ेगा।

धारा २७६ के अनुसार, किसी राज्य के विधानमण्डल का ऐसे करों के सम्बन्ध में कोई कानून, जो उस राज्य या किसी नगरपालिका, जिला-मण्डली (District Board), स्थानीय मण्डली (Local Board), या उसमें दूसरे स्थानीय अफसर के हित साधन के लिए वृत्तियों (emoluments), व्यापारों, आजीविकाओं (professions) या नौकरियों के बारे में लागू होता है, इस आधार पर गैर-कानूनी न होगा कि यह आय पर कर है। राज्य को या उसमें किसी नगरपालिका, जिला-मण्डली, स्थानीय मण्डली या दूसरे स्थानीय अफसर को किसी एक व्यक्ति के बारे में वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर करों के द्वारा दी जाने वाली सारी राशि दो सौ पचास रुपए प्रतिवर्ष से ज्यादा न होगी। वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर के बारे में कानून बनाने की राज्य विधानमण्डल की शक्ति का यह मतलब न लगाया जायेगा कि वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों से उत्पन्न या बढ़ी हुई आय पर करों के बारे में कानून बनाने की संसद् की शक्ति किसी तरह सीमित कर दी गई है।

धारा २७७ के अनुसार, जो कर, शुल्क, उपकर (cesses) या फीस, २६ जनवरी, १९५० से पहले किसी राज्य की सरकार द्वारा, अथवा किसी नगरपालिका या किसी दूसरे स्थानीय अफसर या संस्था (body) द्वारा उस राज्य, नगर, जिला अथवा दूसरे किसी स्थानीय क्षेत्र के मतलब के लिए कानून लगाये जा रहे थे, वे कर, शुल्क, उपकर या फीस संघ सूची में होने पर भी लगाये जाते रहेंगे तथा उन्हीं मतलबों के लिए काम में लाये जा सकेंगे जब तक संसद् कानून द्वारा इसके खिलाफ व्यवस्था न करे।

आलोचना (Criticism)—संघ तथा राज्यों के सम्बन्ध को तय करने वाले संविधान की व्यवस्थाओं की कई प्रकार की आलोचना की गई है। शुरू में डा० जैनिंग्ज (*Dr. Jennings*) के विचारों की ओर संकेत किया जा सकता है। डा० जैनिंग्ज ने धारा २५३ की आलोचना की है, जो कि संघ संसद् को किसी सन्धि, समझौता, अभिसमय या "किसी फैसले को जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संस्था या किसी संघ ने किया हो, *लागू करने के लिए कानून बनाने की आज्ञा देती है। वह बताते* हैं कि धारा साफ तौर से सम्मेलनों, संस्थाओं और दूसरे संघों (जो कि सरकारों का प्रतिनिधित्व करें) की ओर इशारा नहीं करती, और पहली दृष्टि में यह केवल अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों, *विश्वविद्यालयों या ट्रेड यूनियनों पर ही लागू हुई मालूम होती है।* संगठन को सिर्फ सलाह देने का ही अधिकार हो सकता है।" उनको ही उद्धृत करते हुए "यदि यही ठीक व्याख्या है, संघीय सरकार विश्वविद्यालय की शिक्षा को हस्तगत कर लेगी केवल

इस कारण कि भारत के अन्तर-विश्वविद्यालय अधिकरण (Inter-University Board of India) के साधारण फैसले को लागू करना है, क्योंकि यह संस्था अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है क्योंकि इसमें बर्मा तथा लंका के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं। किसी के अनुसार कमिन फार्म (Cominform) और चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय (Fourth International) भी अन्तर्राष्ट्रीय संघ है। यह राज्यों के अधिकार पर चौंकाने वाला आक्रमण है, जो एक धारा के अन्त में कुछ शब्द जोड़ने की वजह से पैदा हो गया है। क्योंकि हरेक कोई इसकी सच्चाई में शंका करता है।" डा० जैनिग्ज ने २५६ और २५७ धाराओं की भी आलोचना की है। उसके अनुसार "वे धाराएँ कम मूल्य रखती हुई मालूम होती हैं। यह कल्पना कठिन नहीं है कि केन्द्रीय कांग्रेस सरकार तथा राज्य की किसी दूसरे दल की सरकार मे झगड़ा हो। यद्यपि प्रश्न की खोज की जानी चाहिए, किसी राज्य के विपरीत परमादेश (Mandamus) प्राप्त करना सम्भव होगा जिसने किसी निर्देश को मानने से इनकार कर दिया है। लेकिन क्या राज्य सरकार की अदालत को मानहानि करने के कारण जेल भेजने का प्रस्ताव किया जाता है? शायद राज्यपाल के लिए यह उपाय होगा कि वह मन्त्रिमण्डल को पदच्युत कर दे। यद्यपि धारा २५६ और २५७ जैसी धाराओं की व्यवस्थाओं के न होने पर भी यह हो सकता था, जैसा कि आस्ट्रेलिया ने दिखाया है। इसके अलावा मन्त्रियों को पदच्युत करने का असर निर्वाचकों की मर्जी पर निर्भर करता है कि वे आने वाले चुनावों मे किसी को भी शासक न बनायें जो कि सभी मामलों में जरूरी है।"

डॉ० जैनिग्ज ने धारा २६३ के सम्बन्ध में कहा है कि "संविधान पर लिखित एक अर्वाचीन पुस्तक में परिषद् के अनुसंधान सम्बन्धी तथा मन्त्रणा सम्बन्धी कार्यों के विवरण के पश्चात् लिखा गया है कि इस प्रकार की परिषद् प्रान्तों के पारस्परिक विरोधों को शान्त करने मे भी महत्त्वपूर्ण भाग लेगी। बहुधा संविधान सम्बन्धी वकील आशावादी नहीं होता। कारण स्पष्ट है कि वह केवल संविधान का ही अध्ययन नहीं करता वरन् उन लोगों का भी अध्ययन करता है जो कि संविधान के निर्माता है। यदि यह कहा जाए कि यह पद्धति संसार के किसी अन्य देश में सफल नहीं हुई अतः भारत में भी सफल नहीं हो सकती तो यह एक भारी भूल और अपने निराशा-वाद का परिचय देना होगा। प्रधान मन्त्री और प्रान्तीय उच्च मन्त्रियों की बैठक कभी सार्थक और कभी निरर्थक होती है किन्तु जातीय मामलो से सम्बन्धित मन्त्रियों तथा कर्मचारियों की बैठक से सहयोग की सम्भावना हो सकती है। इसके लिए संविधान के किसी आदेश की आवश्यकता नही होती। धारा २६३ को व्यर्थाक्षर (dead letter) की संज्ञा भी दी जा सकती है।"

वित्तीय व्यवस्थाओं (financial provisions) के बारे में डॉ० जैनिग्ज कहते है कि "दूसरी जगहों के अनुभव ने बताया है कि इस तरह की व्यवस्थाएँ अक्सर १० या कुछ ही वर्षों के बाद असन्तोषजनक साबित होती हैं। भारत की तरह का मजबूत तरीका जल्दी ही अच्छी तरह से काम न करने वाला साबित हो सकता है। अमल में संविधान सभा ने माफ करने योग्य विनय से, धारा २८० में वित्त आयोग की

व्यवस्था दो वर्ष मे, तथा बाद में हरेक पाँचवें वर्ष करने का उल्लेख किया है। हालाँकि मामूली तौर से इन बातों को आयोग तय नहीं करता, लेकिन वोटों की गम्भीर समस्या है। आयोग प्रस्ताव करता है, राजनीतिज्ञ उसका विरोध करते हैं और राजनीतिज्ञ वोटों पर निर्भर करते हैं। इसका कोई सबूत नही कि भारत में इसके विपरीत क्या किया जायेगा।"

अन्य आलोचकों का कहना है कि यद्यपि मामूली तौर पर केन्द्र राज्यों को निर्देश दे सकता है जिससे केन्द्रीय कानून ठीक तरह से लागू किए जाएँ, इसको इन्हें केवल प्रशासकीय इकाई नही बना देना चाहिए। राज्यों को अपने राजनीतिक कार्यों, साधनों तथा जरूरतों के लिए अपनी आमदनी को बढ़ाने की आज्ञा होनी चाहिए। राज्यों को स्वतन्त्रता देने के स्थान पर केन्द्र अपनी राय राज्यों पर लागू कराने की कोशिश करता है। संघ तथा राज्यों के अधिकारियों का सम्मेलन एक नियन्त्रित कार्य बन गया है। मुख्य मन्त्रियों, राज्यपालों, वित्त-मन्त्रियों आदि की बैठकें होती ही रहती हैं। यह कहा जाता है कि केन्द्रीय स्कूल के मास्टर, प्रचार मन्त्री तथा टेक्नीकल विशेषज्ञ बन गए हैं। इनके अलावा योजना आयोग (Planning Commission), जिसकी व्यवस्था न संविधान ने ही और न संसद् के किसी कानून ने ही की, राज्यों पर काफी कन्ट्रोल रखता है। सिद्धान्ततः यह फूंस के बने पुतले (dummy) की छाया है किन्तु व्यावहारिक रूप में "ऐसे छोटे साये ने संसार में कही भी इतने बड़े पदार्थ (substances) का प्रतिनिधित्व नही किया।" योजना आयोग मन्त्रिमण्डल से भी ऊँचा हो गया है। यह सारे महत्त्वपूर्ण फैसलो को करता है तथा केन्द्रीय मन्त्री उनको केवल रजिस्टर करते हैं। राज्यों के मन्त्रिमण्डल केन्द्र के फैसलों को लागू करने वाले कार्यकर्ता बन गए हैं। यह सुझाया गया है कि योजना आयोग केवल समन्वय (co-ordinating) कराने वाली संस्था हो तथा योजना के आरम्भ को राज्यों को करने दे। यह राज्यों को अपनी सेवाएँ सौंप दे कि यह उनकी कठिनाइयों को हल करेगा। राज्य मन्त्रिमण्डलों को केन्द्रीय फैसलों को स्वतन्त्र रूप से मान्यता देने वाला बना दिया जाए तथा उसका काम सिर्फ पैसे का इन्तजाम करना (विधानमण्डलों को स्वीकार करना) और अधिकारियों को काम बाँटना रह जाए, यह वांछनीय नही है।

आलोचक धारा ३५६ के प्रयोग के विषय पर भी आपत्ति करते हैं। यह सत्य है कि केन्द्र का कर्त्तव्य राज्यों में संविधान को लागू करना है लेकिन संविधान की यह भावना है कि राज्य के वोटर अपनी सरकार चुनने में स्वतन्त्र हों। केन्द्र को सिर्फ आखिर में ही हस्तक्षेप करना चाहिए। पंजाब के राज्यपाल तथा पेप्सू के राजप्रमुख को दूसरा मन्त्रिमण्डल (alternate ministries) बनाने की कोशिश करनी चाहिए थी। मद्रास मे १९५१ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनाने मे श्री प्रकाश, तथा ट्रावनकोर-कोचीन में विधान सभा को राजप्रमुख द्वारा भंग किए जाने के कार्यों की भी आलोचना की जाती है। यह कहा जाता है कि उन्होने दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाने के विषय में सोचा भी नही। संविधान की माँग है कि उन्हें वैसा नही करना चाहिए था जैसा कि उन्होने किया।

झगड़ों का निपटारा (Settlement of Disputes)—संविधान में केन्द्रीय

सरकार तथा राज्यों के मध्य एवं राज्यों के पारस्परिक झगड़ो को सुलझाने की व्यवस्था की गई है। ऐसे झगड़ों का निर्णय करने के लिए सुप्रीम कोर्ट को अधिकार दिया गया है। धारा २५७ में लिखा है कि यदि कोई झगड़ा भारत सरकार और किसी राज्य की सरकार के मध्य हो तो उसका निर्णय ऐसा मध्यस्थ करेगा जिसे सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने ही मनोनीत किया हो। उसका निर्णय दोनों पार्टियों को मानना पड़ेगा। धारा २६३ में एक Inter-State Council की व्यवस्था की गई है। उसका कर्त्तव्य राज्यों के मध्य झगड़ों को निपटाना है। १९५६ के State Reorganisation Act ने भारत में ५ प्रादेशिक कौंसिलें (Zonal Councils) स्थापित की। उन कौंसिलों का यह कर्त्तव्य है कि वे विभिन्न राज्यों के झगड़ो को निपटाएँ तथा एक राज्य के कार्य को दूसरे राज्य के कार्य से सम्बद्ध करें।

Suggested Readings

Adarkar, B. P. : The Principles and Problems of Public Finance.

Chitaley and Rao : The Constitution of India, Vol. III, Articles 245 to 263.

Ebb, L. F. (Ed.) : Public Law Problems in India, pp. 122-25 and 160-80.

Gledhill, A. : The Republic of India.

Gadgil, D. R. : The Federating India.

Jennings, I. : Some Characteristics of the Indian Constitution.

राज्यपाल तथा उसके मन्त्री

(GOVERNOR AND HIS MINISTERS)

राज्यपाल (Governor)—प्रस्तावित संविधान में निर्वाचित राज्यपाल (elective Governor) की व्यवस्था की गई थी, परन्तु इस व्यवस्था की कड़ी आलोचना की गई थी। आलोचकों ने कहा था कि यदि मन्त्री तथा राज्यपाल दोनों ही जनता द्वारा सीधे चुने गए तब प्रत्येक राज्य में संवैधानिक अवरोध की दशा (constitutional deadlock) होने की हर तरह की सम्भावना होगी। कारण स्पष्ट था। जब राज्यपाल और मन्त्री दोनों ही जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करते, तब राज्यपाल तथा मन्त्री दोनों में से कोई भी किसी मामले में आत्म-समर्पण के लिए तैयार न होता। आखिरकार यह निश्चित किया गया कि राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होना चाहिये। किन्तु नियुक्ति के पूर्व राज्य के मुख्य मन्त्री से परामर्श किया जा सकता है। राज्यपाल राष्ट्रपति द्वारा अभीष्ट काल तक ही अपने पद पर रह सकेगा, किन्तु यह राष्ट्रपति को सम्बोधित करके अपना त्याग-पत्र दे सकता है। साधारणतः राज्यपाल अपने पद पर पाँच वर्ष तक रहेगा। वह उस समय तक अपने पद पर रहता है, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी उसका पद ग्रहण करता है।

ऐसी परिपाटी (*convention*) चालू की जा रही है कि एक राज्य के राज्यपाल को साधारण रूप से दूसरे राज्य से लिया जाए। इस परिपाटी का उल्लंघन केवल उस समय किया गया जब डॉ० मुखर्जी को पश्चिमी बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया गया। साधारणतया अवकाशप्राप्त न्यायाधीशों, जरनैलों, लोकसेवकों तथा राजनैतिक नेताओं को राज्यपाल नियुक्त किया जाता है। बहुत से राज्यपाल वे लोग थे जिनका कांग्रेस के साथ पहले ही से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

धारा १५३ यह व्यवस्था करती है कि कोई व्यक्ति उस समय तक राज्यपाल नहीं बन सकता जब तक वह भारत का नागरिक न हो और उसकी उम्र ३५ वर्ष से कम हो।

धारा १५८ के अनुसार, राज्यपाल संसद् के किसी सदन या किसी राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं होगा और यदि संसद् या विधानमण्डल का कोई सदस्य राज्यपाल नियुक्त किया जाए तब उसके पद ग्रहण करने के समय से वह उस सदन का सदस्य नहीं रहेगा। वह अपने कार्यकाल में किसी दूसरे लाभ के पद पर नियुक्त नहीं किया जा सकता। उसे बिना किराया दिए सरकारी राजभवन को इस्तेमाल में लाने का हक होगा तथा उसके वेतन, भत्ते तथा विशेषाधिकार उसके कार्य-काल में कम नहीं किए जा सकते। प्रत्येक राज्यपाल उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सामने अपने पद की शपथ लेगा या निश्चय करेगा।

धारा १६० व्यवस्था करती है कि राष्ट्रपति किसी राज्य के राज्यपाल के लिए ऐसे आकस्मिक कार्य के लिए व्यवस्था, जैसा वह उचित समझे, कर सकता है। जिन का वर्णन अध्याय २ भाग ६ भारतीय संविधान में नहीं किया गया है।

न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)—धारा १६१ के अनुसार, जिस मामले पर राज्य की कार्यपालिका की शक्ति का विस्तार है उस मामले से सम्बन्धित किसी कानून के खिलाफ किसी जुर्म के लिए साबित हुए किसी व्यक्ति के दण्ड को माफ, कुछ काल के लिए स्थगित (reprieve), विलम्बित (respite) अथवा कम करने, या परिहार (suspend) करने की या दण्ड के हुक्म को परिहार, या कम करने की, राज्यपाल को शक्ति होगी।

बम्बई उच्च न्यायालय के डिविज़न बैंच ने मार्च, १९६० में कमाण्डर नानावती को प्रेम भगवानदास आहूजा की हत्या के अपराध में आजीवन कारावास का दण्ड दिया। उच्च न्यायालय ने एक लेख (writ) जारी किया कि नानावती को, जो उस समय नौसेना की अभिरक्षा में था, हिरासत में ले लिया जाय। लेकिन अधिपत्र (warrant) कार्यान्वित किये बगैर ही लौटा दिया गया क्योंकि बम्बई के राज्यपाल ने संविधान की धारा १६१ के अधीन आज्ञा जारी कर दी जिसके अनुसार दण्ड को स्थगित कर दिया गया तथा नानावती को सर्वोच्च न्यायालय में की जाने वाली प्रार्थना के निर्णय देने तक नौसेना की अभिरक्षा में ही रखने की आज्ञा भी दी गई। प्रश्न यह था कि राज्यपाल की कार्यवाही वैधानिक थी या नहीं। बम्बई के उच्च न्यायालय के फुल बैन्च ने निर्णय किया कि राज्यपाल के दण्ड स्थगित कर देने की आज्ञा पूर्णतः वैधानिक तथा विधि अनुसार थी।

केरल उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री संकरण ने विद्रोहियों की भीड़ पर पुलिस द्वारा की गई गोलाबारी के अभियोग की जाँच करते हुए क्षमा प्रदाता तथा दण्ड को न्यून करने वाली शक्तियों पर सीमा लगाने की बात कही थी। उनके अनुसार प्रांतीय सरकारों से शक्तियाँ छीन ली जानी चाहिए। यह बात राष्ट्रपति पर छोड़ देनी चाहिए कि वह क्षमा प्रदान करने की शक्ति का कहाँ तक प्रयोग करता है। न्यायाधीश ने गत १० वर्षों में इस शक्ति का स्वच्छन्दता से प्रयोग करने वाली सरकारों का हवाला दिया। यह स्वच्छन्द प्रयोग एक प्रकार का नियमित पक्षपात है। इस प्रकार की स्थिति दण्ड के प्रभाव को ही विनष्ट कर देती है। इस प्रकार की प्रथा इस बात की द्योतक है कि कोई भी विशेष राजनीतिक दल बलशाली होने पर क्षमा प्राप्त कर सकेगा। कुछ आलोचकों का मत है कि यदि संविधान में यह परिवर्तन लाया भी गया तो भी यह बुराई आमूल नष्ट नहीं की जा सकेगी। चिरस्थायी नीति केवल एक ही हो सकती है और वह यह कि न्याय को राजनीतिक दबाव से मुक्त कर दिया जाय और क्षमा-याचना केवल उसी दशा में स्वीकार की जाय जबकि नियम की भावना का कण्ठ दबोच लिया गया हो। इस प्रकार के लक्ष्य की प्राप्ति संवैधानिक समझौते के आधार पर की जा सकती है।

कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Powers)—धारा १५४ व्यवस्था करती

है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल (Governor) में निहित होगी तथा वह इसका प्रयोग इस संविधान के मुताबिक या तो अपने आप या अपने नीचे के अफसरों के द्वारा करेगा।

धारा १६३ के अनुसार, जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके आधीन राज्यपाल से यह आशा की जाती है कि वह अपने कामों अथवा उनमें से किसी को अपनी बुद्धि से करे, उन बातो को छोड़ कर राज्यपाल के अपने कार्यों को करने मे सहायता और सलाह देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् की नियुक्ति करेगा जिसका प्रधान मुख्य मन्त्री (Chief Minister) होगा। यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई मामला ऐसा है या नही कि जिसके बारे मे, इस संविधान के द्वारा या आधीन राज्यपाल से आशा की गई है कि वह अपनी बुद्धि से कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेक से किया हुआ निश्चय आखिरी होगा तथा राज्यपाल द्वारा किए गए निश्चय पर इस कारण से कोई आपत्ति न की जायेगी कि उसे अपने विवेक से कार्य करना था या न करना चाहिए था। क्या मन्त्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी, इस प्रश्न पर किसी अदालत में जांच नही की जायेगी।

धारा १६४ के अनुसार, मुख्य मन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और दूसरे मन्त्रियो की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमन्त्री की सलाह से करेगा। राज्यपाल की इच्छा के अन्तर्गत मन्त्री अपने पद पर रह सकेंगे। यद्यपि वास्तविक व्यवहार में वे अपने पद पर उस समय तक रह सकेंगे जब तक कि उनको विधानमण्डल के निचले सदन का विश्वास प्राप्त है।

धारा १६६ के अनुसार, किसी राज्य की सरकार की सारी कार्यपालिका कार्यवाही राज्यपाल के नाम से की हुई समझी जायेगी। राज्यपाल के नाम से दी गई आज्ञाओं और दूसरे लेखों (instruments) को उसी तरह से सही किया जायेगा जो राज्यपाल द्वारा बनाये जाने वाले नियमों में कहे गये हों तथा इस तरह सही किए गए आदेश या लिखित पर सन्देह इस बात पर न किया जायेगा कि वह राज्यपाल द्वारा दिया गया आदेश लिखित नहीं है। राज्य की सरकार का काम अधिक सहूलियत से किये जाने के लिए और जहाँ तक वह काम ऐसा काम नहीं है जिसके बारे में इस सविधान के द्वारा या आधीन जरूरी है कि राज्यपाल अपने विवेक से काम करे वहाँ तक उक्त काम के बँटवारे के लिये राज्यपाल नियम बनायेगा।

धारा १६७ व्यवस्था करती है कि प्रत्येक राज्य के प्रमुख मन्त्री का, राज्य कार्यों के प्रशासन के बारे में मन्त्रि-परिषद् के सारे निश्चय और कानून बनाने के लिए प्रस्तावो (proposals) को राज्यपाल को पहुँचाने का, राज्य-कार्यों के प्रशासन के बारे मे तथा कानून बनाने के लिए प्रस्तावो के बारे मे जिस जानकारी को राज्यपाल मँगावे, उसको देने का तथा किसी विषय को, जिस पर अलग-अलग मन्त्रियों ने निश्चय कर लिया हो, किन्तु मन्त्रि-परिषद् ने विचार न किया हो, राज्यपाल के चाहने पर परिषद् के सामने विचार के लिए रखने का कर्त्तव्य होगा।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—धारा २१३ राज्यपाल को अधिकार देती है कि राज्यपाल उस समय अध्यादेश प्रचलित कर सकता है जब विधान सभा का अधिवेशन न हो रहा हो। इसके अनुसार, यदि किसी समय राज्यपाल को यह यकीन हो जाए कि ऐसा समय आ गया है कि उसे तुरन्त कदम उठाना चाहिए, वह परिस्थिति के मुताबिक अध्यादेश प्रचलित कर सकता है। किन्तु राज्यपाल ऐसा अध्यादेश राष्ट्रपति की मंजूरी के बिना प्रचलित नही करेगा यदि उन्ही व्यवस्थाओ से युक्त विधेयक के लिए राष्ट्रपति की मंजूरी पहले लेनी जरूरी हो या उन व्यवस्थाओं से युक्त विधेयक को राष्ट्रपति ने रद्द कर दिया हो, उस राज्य के विधानमण्डल का कानून गैर-कानूनी करार दे दिया गया हो, उसे राष्ट्रपति की मजूरी के लिए रोक लिया गया हो। धारा २१३ के अनुसार, प्रचलित किए गए अध्यादेश की वही शक्ति होगी जो उस राज्य के विधानमण्डल के कानून की हो। ऐसा हरेक अध्यादेश राज्य विधान-मण्डल के अधिवेशन (session) में रखा जाएगा, नही तो अधिवेशन शुरू होने के ६ हफ्ते के बाद वह अध्यादेश अपने आप खत्म हो जाएगा। विधानमण्डल इससे पहले भी प्रस्ताव पास करके अध्यादेश को समय से पहले भी खत्म कर सकता है। इसके अलावा राज्यपाल कभी भी अध्यादेश को लौटा सकता है।

आलोचकों का कहना है कि अध्यादेश प्रचलित करना जनतन्त्र की रीतियो के खिलाफ है और खास तौर पर उस समय जब व्यवस्थापिकाएँ किसी भी तरह से समय की हानि किए बगैर, जब कोई सच्ची जरूरत उठ खडी हो, बुलाई जा सकती है। अतः मौजूदा झुकाव को हरेक कीमत पर रोका जाना चाहिए।

धारा १७४ के अनुसार, राज्यपाल विधानमण्डल के सदन या सदनों को ऐसे स्थान तथा ऐसे समय पर, जिसे वह ठीक समझे, बुलाएगा परन्तु एक अधिवेशन की आखिरी बैठक तथा अगले अधिवेशन की नियत तारीख के बीच ६ महीने का फर्क नही होगा। राज्यपाल समय-समय पर किसी भी सदन को स्थगित या विधान सभा को भग कर सकता है।

धारा १७५ के अनुसार, राज्यपाल विधान सभा अथवा दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है और उसके लिए सदस्यों की हाजिरी की आज्ञा कर सकता है। वह किसी भी सदन अथवा सदनो को सदेश भेज सकता है जो कि उस विधेयक के बारे मे हो सकता है, जिस पर सदन को विचार करना है या किसी कार्य के बारे मे सम्बन्ध रखने वाले सदन को उस संदेश पर विचार करना होगा।

धारा १७६ व्यवस्था करती है कि आम चुनावो के बाद पहले अधिवेशन और हरेक साल के शुरू मे होने वाली दोनों सदनों की पहली बैठक की शुरुआत राज्यपाल के भाषण से शुरू होगी। राज्यपाल दोनों सदनों की मिली-जुली बैठक भी बुला सकता है और विधानमण्डल को बुलाने का कारण भी बतलावेगा।

विधानमण्डल का पास किया गया हरेक कानून राज्यपाल के पास मंजूरी के लिए भेजा जायेगा। राज्यपाल उसे मंजूर करने के लिए मजबूर नही है। वह उसे मंजूर या नामजूर कर सकता है या उसे राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

वह विधेयक को फिर से विचार करने के लिए अपने संदेश के साथ विधानमण्डल को लौटा सकता है। राज्यपाल विधेयक में कुछ संशोधनों का प्रस्ताव भी कर सकता है। और विधानमण्डल का यह फर्ज है कि वह उस पर तुरन्त ही बिना किसी विलम्ब के विचार करे। किन्तु यदि विधानमण्डल फिर से विचार करने के बाद भी उस विधेयक को उसी रूप मे अथवा संशोधित रूप में मंजूर कर ले और राज्यपाल के पास भेजे, *तब राज्यपाल को उसे मंजूर करना ही होगा।* वह ऐसे अवसर पर उसे नामंजूर नहीं कर सकता। किन्तु यदि राज्यपाल के खयाल मे उस विधेयक से उच्च न्यायालय की शक्तियों को खतरा हो जो कि *उसे संविधान ने दी हैं तो वह उस विधेयक को राष्ट्रपति* की मंजूरी के लिए रोक सकता है। राष्ट्रपति उसे मंजूर कर सकता है या अपने संदेश के साथ राज्यपाल को विधानमण्डल को फिर से विचार करने के लिए लौटाने के लिए आदेश दे सकता है। राज्य विधानमण्डलों को उस सन्देश पर छः महीने के अन्दर विचार करना चाहिए।

धारा २०२ के अनुसार, राज्यपाल हरेक वित्तीय वर्ष (financial year) के बारे मे राज्य विधानमण्डल के सदन अथवा सदनों के सामने उस राज्य की उस साल के लिए अनुमानित आमदनी और खर्चों का ब्यौरा रखेगा। कोई भी अनुदानों की माँग राज्यपाल की सिफारिशों के अलावा नही की जायेगी। धारा २०५ के अन्तर्गत, राज्यपाल पूरक (supplementary), अतिरिक्त (additional) या अधिक अनुदानों की माँग राज्य विधानमण्डल से कर सकता है।

राज्यपालों की स्थिति (Position of Governors)—*संविधान के अन्तर्गत* राज्यपालों की वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। सुनीलकुमार बोस विपरीत *प्रमुख सचिव, पश्चिमी बंगाल के केस में कलकत्ता हाईकोर्ट ने फैसला दिया था* कि "संविधान के मुताबिक राज्यपाल मन्त्रियों की सलाह से ही काम करते है। भारत सरकार अधिनियम १९३५ मे यह बात भिन्न थी। राज्यपाल कुछ काम अपने विवेक से कर सकता था अर्थात् मन्त्रियो से सलाह लिए बगैर वह अपनी व्यक्तिगत सामर्थ्य (individual capacity) के मुताबिक भी कार्य कर सकता था अर्थात् वह अपने मन्त्रियों से सलाह तो लेता है परन्तु उनकी सलाह को मानने के लिए मजबूर नही था। नए संविधान के मुताबिक अपनी सामर्थ्य तथा विवेक से काम करने के अधिकार राज्यपाल से ले लिए गए है। अतः राज्यपाल को मन्त्रियों की सलाह से काम करना चाहिए। महान्यायवादी ने इस वैधानिक स्थिति की व्याख्या की है और हम इस विचार को स्वीकार करते है।"

श्री एच० पी० मोदी, जो पहले उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, ने अपनी स्थिति *का बयान इन शब्दों में किया है: "यह बताए जाने पर* कि मुझे वैधानिक स्थिति के अनुसार कार्य करना है, राज्यपाल को बहुत ही कम काम करना पड़ता है। इसलिए इस तरह का काम मेरी जिन्दगी मे, जैसी कि मैं बिता चुका हूँ, पूरी तरह से मुश्किल से ही होता है। इसलिए मैंने काम पैदा करने के लिए कोशिश की और अपने लिए तथा अपने कर्मचारियों के लिए बहुत-सा काम पैदा किया।

"मैंने किसी भी फाइल को बिना पढ़े उस पर दस्तखत नही किए। अगर मैं किसी मामले को समझ न पाता या किसी मामले पर व्याख्या की जरूरत होती, तब पन्तजी के सौजन्य से मैं सदैव ही विभागीय सचिव (Departmental Secretary) को बुलाने में समर्थ होता था। वे विभागीय अध्यक्ष इस प्रकार हैं—मुख्य सचिव (Chief Secretary), विभिन्न विभागों के व्यक्तिगत सचिव और विभागीय अध्यक्ष। मैं यह बात जानता हूँ कि दूसरे राज्यो में यह रिवाज न तो लागू है और न मान्य ही, किन्तु मैं इसके लिए, (जो बहुत से कामों में से एक है) पन्तजी (Pant) का आभारी हूँ। उन्होंने कभी आपत्ति और सन्देह नही किया। मैंने व्यापारी होने के नाते, व्यापारी ढंग से ही सोचा कि मन्त्रियों को परेशान करना ठीक नही था जो पहले ही अधिक काम से दबे हुए थे और मेरे पास बुलाने पर केवल इसलिए आते कि मैं राज्यपाल हूँ। इसलिए व्यक्तिगत सचिवों और विभागीय अध्यक्षों को बुलाते समय मैंने कहा—'क्यों न मैं ऐसे मामलों में उनसे अपने आप पूछताछ करूँ जो मुझे सीधे बता सकते हैं'।"

श्रीप्रकाश (Sri Prakasa), भूतपूर्व राज्यपाल, ने अपनी स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया है "मुझे पूरा विश्वास है कि मुझे बिन्दुओं से चिन्हित लाइन पर दस्तखत सिर्फ वैधानिक राज्यपाल के नाते करने हैं। किन्तु मैंने अपने आपको 'निरंकुश' (autocrat) पाया क्योंकि घटना ऐसी हुई कि कार्यमुक्त होकर जाने वाले मुख्य मन्त्री ने मुझे कोई परामर्श नही दिया और नये मुख्य मन्त्री ने अपना स्थान ग्रहण नही किया था। मैं नहीं जानता कि श्री अय्यर ने ऐसी हालत को कभी सोचा भी है या नही। यदि वह मुझे यकीन दिला सकें कि जो कुछ मैंने किया, ठीक था तो इससे मुझे बहुत आराम मिलेगा।"

मध्य प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल स्व० श्री पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार, "राज्यपाल का फर्ज मेहमानों की इज्जत करना, उनको चाय, भोजन, दावत देने के अलावा कुछ नही है।" अपने बारे में बतलाते हुए उन्होंने कहा कि "मेरा सब से पहला काम मेहमानों और बुलाए गए लोगों की लिस्ट ठीक करना है। कभी-कभी वे पाते हैं कि पति-पत्नियों को अलग-अलग बुलाया गया है। यदि पति और पत्नी को बुलाया गया तो बच्चो को शरारत करने की वजह से छोड़ दिया गया। भोजन तथा दावत के मेहमनों में भी फर्क रहता था। यह कहा गया कि पाक्षिक रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजनी होती है किन्तु मनोरंजन के अतिरिक्त और कुछ था ही नही जो रिपोर्ट में लिखकर भेजा जाता।"

जब श्री गिरि (Giri) उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बने तो उन्होंने यह घोषणा की वे अपने मन्त्रियों के केवल परामर्शदाता ही होंगे, इससे अधिक कुछ नही। डा० सम्पूर्णानन्द, जो कि इस राज्य के मुख्य मन्त्री थे, का यह विचार था कि मन्त्री महोदय ही राज्यपाल को परामर्श दे सकते थे, किन्तु राज्यपाल मन्त्रियों को नहीं। श्री गिरि का उत्तर यह था कि यह आवश्यक नही कि राज्यपाल सदा सोता ही रहे। वह कुछ

कार्य भी कर सकता था यद्यपि उसको अपना कार्य सावधानी से करना चाहिए ताकि कोई बुरा न मनाए।

वी० पी० मेनन (V. P. Menon) के मतानुसार, राज्यपाल के अधिकार केवल नाममात्र हैं। *सब को उससे मिलने का अधिकार है। एक प्रतिष्ठित राज्यपाल ने* उसे बताया कि उसका कार्य एक होटल के मालिक के समान था। उसको शासन का कोई ज्ञान न था और न ही उससे कोई सम्बन्ध। श्री मेनन का अपना अनुभव उड़ीसा राज्य में भिन्न था। प्रधान मन्त्री को चाहिए था कि वह कई वर्ष पूर्व राज्यपालों को ऐसा सन्देश भेजता कि वे अपने व्यर्थ के ठाठ-बाट को छोड़कर राज्य के कार्य में हाथ बँटाएँ।

मध्य प्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्कर के अनुसार, उन्हें दलीय तथा निर्वाचन सम्बन्धी बैठकों को छोड़कर किसी भी सार्वजनिक अथवा राजनीतिक समारोह में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है। इस कथन से तात्पर्य यह है कि वे स्वेच्छापूर्वक अथवा निमन्त्रित किए जाने पर किसी भी राजनीतिक दल की सभा में भाग ले सकते हैं। राज्यपाल के कर्त्तव्यों और कार्यों के सम्बन्ध मे पुराने विचारों का आमूल उच्छेदन *करना होगा। आधुनिक युग में राज्यपाल राज्य का पालक होने के साथ-साथ उसका* रक्षक भी है। इस नाते उसका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हर बात को सुने, देखे और निरीक्षण करे। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह राजकीय दल के अतिरिक्त राष्ट्र के अन्य राजनीतिक दलों को भी मन्त्रणा दे।

प्रधान मन्त्री नेहरू के अनुसार, राज्यपाल विभिन्न दलों और समूहों का संयोजक और जनता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वह तनाव को कम करने में महत्त्वपूर्ण भाग लेने वाला राज्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। यद्यपि वह स्पष्ट रूप से सरकार के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता तो भी उसकी मन्त्रणा हर समय सुलभ रहती है। उसे किसी समय यदि संविधान का अतिक्रमण होते दीखता है तो वह राष्ट्रपति को इस बात की सूचना दे सकता है। यह ठीक है कि साधारण रूप से *निर्णय सरकार* के होते हैं तो भी सरकार को चाहिए कि वह राज्यपाल के साथ निकटतम सम्बन्ध स्थापित किए रहे और नियमानुसार उससे समय-समय पर मन्त्रणा प्राप्त करे। भूतकाल में राज्यपाल और मुख्य मन्त्री में प्रत्येक प्रकार का सम्बन्ध रहा है। कभी तो वे एक-दूसरे के अत्यधिक निकट रहे हैं और कभी बात इसके सदा विपरीत रही है। एक प्रसिद्ध व्यक्ति अल्प समय के लिए राज्यपाल के पद पर रहने के पश्चात् यह अनुभव कर सका कि राज्यपाल का कार्य व्यवहार कितने महत्त्व का है। किन्तु यह सभी कुछ राज्यपाल के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है।

उत्तर प्रदेश में जुलाई १९६३ में जब वन मंत्री अलगूराय शास्त्री के *त्याग-पत्र पर मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त से तनाव हो गया तो उस समय* राज्यपाल विश्वनाथ दास ने एक महत्त्वपूर्ण काम किया। यद्यपि मुख्यमंत्री ने श्री शास्त्री से तत्काल त्यागपत्र देने के लिए कहा तथापि श्री शास्त्री ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया और राज्यपाल ने भी उसे ऐसा करने के लिए विवश नहीं किया। राज्यपाल को नई दिल्ली से बुलाया

आने पर वे यहाँ आए और केन्द्र से एक दीर्घ विचार-विमर्श किया। अन्त में श्री शास्त्री से त्याग-पत्र दिलवाने में सफल हुए।

ऐसा कहा जाता है कि कुछ राज्यों में राज्यपाल के दौरे के प्रोग्राम पर भी कड़ा कन्ट्रोल रहता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि राज्यपाल एक बड़े शून्य (great cipher) की तरह काम कर रहे हैं जितना कि संविधान परिषद् ने भी नहीं सोचा था। राज्यपाल तथा मुख्य मन्त्री की समानुपातिक शक्ति इस बात पर निर्भर है कि मुख्य मन्त्री का केन्द्र में कितना प्रभाव है।

धारा १६३ (१) का हवाला बताता है कि यह आशा नहीं की जा सकती कि राज्यपाल हमेशा मन्त्रियों की सलाह पर काम करेगा। यह बात खास तौर पर तय की गई है कि मन्त्रियों की परिषद् राज्यपाल के कार्यों में सलाह तथा सहायता देगी सिवाय उन मामलों के जिनमें राज्यपाल संविधान के अनुसार अपनी समझ से काम करेगा। साधारण परिस्थितियों (normal conditions) में राज्यपाल को अधिक विवेकी शक्तियाँ प्राप्त नहीं है। किन्तु असम का राज्यपाल कुछ कबीलों के क्षेत्र तथा सीमान्त क्षेत्रों (Tribal Areas and Frontier Tracts) के प्रशासन में विवेक से काम करेगा। इस व्यवस्था का कारण यह है कि वहाँ पर राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेन्ट की तरह काम करता है। इसके अलावा राज्यपाल मुख्य मन्त्री के चुनाव में विवेक से काम करेगा। इस शक्ति का तब तक कोई महत्त्व नहीं रहता जब कि विधान सभा में एक दल का साफ तौर से बहुमत हो और कोई दूसरा दल सरकार न बना सकता हो, ऐसी हालत में राज्यपाल को बहुमत दल के नेता को सरकार बनाने के लिए बुलाना पड़ता है। राज्यपाल अपने विवेक से विधान सभा को भंग भी कर सकता है तथा राष्ट्रपति को वैधानिक यन्त्र के नाकामयाब होने की खबर भी देता है।

यदि किसी समय राज्यपाल राष्ट्रपति के एजेन्ट की तरह काम करे, तब वह अपने मन्त्रियों की सलाह के मुताबिक काम नहीं करेगा। यह केवल संकट-काल में ऐसा करता है। संकट-काल तीन प्रकार का होता है। पहला संकट तब होता है जब देश अथवा उसके किसी भाग पर बाहरी हमले का खतरा हो या कोई अन्दरूनी गड़बड़ी हो। दूसरा संकट तब आता है जब किसी राज्य का शासन संविधान के मुताबिक न चल सके और राष्ट्रपति उस राज्य के काम को सम्भाल लें। ऐसे समय में मन्त्री हटा दिए जाते है और विधान सभा से कुछ नहीं पूछा जाता। सारे बोझ को राष्ट्रपति उठाता है और राज्यपाल उसके एजेन्ट की तरह काम करता है। यह साफ है कि ऐसे समय में राज्यपाल ही सब कुछ होता है। मन्त्रिमण्डल का कोई स्थान नहीं होता। तीसरे प्रकार का संकट तब पैदा होता है जब भारत की साख अथवा आर्थिक दृढ़ता (financial stability or credit of India) को खतरा हो।

श्री दुर्गादास बसु के मतानुसार, केवल आसाम के राज्यपाल को ही स्वाधिकार को प्रयोग करने की छूट है। उनके अनुसार, धारा १६३ के शब्द राज्यपाल को स्वाधिकार का प्रयोग करने की एक सर्वसाधारण छूट देते प्रतीत होते हैं, किन्तु यह

एक शाब्दिक हेर-फेर है। किन्तु सभी राज्यों में इस प्रकार की परिस्थिति हो सकती है कि राज्यपालों को अपने स्वाधिकार का प्रयोग करना पड़े। इस प्रकार की परिस्थिति उस समय उपस्थित होती है जब राज्यपाल को केन्द्र के आदेशानुसार उस नीति का पालन करना पड़ता है जो राज्य सरकार को रुचिकर नही होती। इस प्रकार की परिस्थिति मे राज्यपाल और मन्त्रिमण्डल में तनाव हो जाता है और राज्यपाल को बड़ी नीति से इस प्रकार की परिस्थिति को सम्भालना पड़ता है।

भूतपूर्व राज्यपाल श्री आर० आर० दिवाकर का विचार है कि राज्यपाल व्यर्थ मे नही है और ऐसा नहीं कह सकते कि उससे कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नही होता। सबसे बड़ा कार्य उसका यह है कि वह किसी एक व्यक्ति या दल का प्रतिनिधि न होकर राज्य की निराकार सत्ता का प्रतिनिधित्व करता है और सब दल समान रूप से उससे मेल-जोल रख सकते है। उसका किसी दल व पार्टी से लगाव नही होना चाहिए। जब विधान की सामान्य गति में कोई बाधा आ जाए तो उस समय उसका महत्त्व प्रगट होता है। वह तत्काल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि का रूप धारण करता है और जब तक अवस्था सुधर नहीं जाती, शासन को अपने हाथों मे लेकर उसे चलाता है। पिछले कुछ वर्षों में ऐसी आपतित घटनाएँ केरल, उड़ीसा इत्यादि में घटी जबकि राज्यपाल ने नए चुनाव होने तक शासन को सम्भाला। यदि इस पद पर नियुक्त व्यक्ति जनता की सेवा करना चाहता है और कर्मपरायण है तो राजनीति व शासन के क्षेत्रों के बाहर भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है। राज्यपाल सरकारी कार्यों के अतिरिक्त समाज के कल्याण व संस्कृति सम्बन्धी कार्य भी सुचारु रूप से कर सकता है, क्योंकि सब राज्यों का आधार जनकल्याण है इसलिए प्रत्येक राज्य में समाज के हित के लिए सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा कार्य किए जा सकते है। लोक हितकारी राज्य में ऐसे कार्यों का होना स्वाभाविक है। बाल समितियाँ, महिला परिषद्, रैड क्रास सोसाइटी, साहित्यिक व दूसरी कला सम्बन्धी समितियाँ, धर्मार्थ औषधालय, शारीरिक व सांस्कृतिक मण्डल, अध्ययन व गवेषणा संघ इनके कुछ उदाहरण हैं। यदि राज्यपाल इन क्षेत्रों में रुचि दिखाना चाहे तो इसके लिए उसके पास विशेष सुविधाएँ है। वह राज्य का सर्वोच्च पदाधिकारी है और उसका मुखिया है। प्रायः वह वयोवृद्ध व अनुभवी व्यक्ति होता है और सब उसका आदर व मान करते है। वह राज्य में सबसे अधिक वेतन प्राप्त करता है। उसके पास सारे राज्यों में आने-जाने और संगठन करने की जितनी सुविधाएँ है वह किसी दूसरे को प्राप्त नही हैं। राज्य का मुख्य मन्त्री व दूसरे अधिकारी भी इन क्षेत्रों में अधिक रुचि व समय देंगे यदि राज्यपाल उन्हे प्रोत्साहित करेगा। यदि राज्यपाल और मुख्य मन्त्री में परस्पर सहयोग की भावना है और लोक कल्याण के हेतु राज्यपाल का लाभ उठाने की प्रबल इच्छा है तो बहुत से शुभ कार्यों का श्री गणेश किया जा सकता है और स्थायी लाभ उठाया जा सकता है। इसके विपरीत राजभवन यदि एक निर्जन स्थान बना हुआ है और राज्यपाल जनता के जीवन में प्रवेश नही कर पाता तो इससे अधिक दुर्भाग्य क्या हो सकता है। राज्यपाल चाहे किसी दूसरे इलाके व प्रांत से क्यों न आया हो, जनता से एकता पैदा करना

उसका कर्तव्य है । क्योंकि उसे वहाँ पाँच वर्ष रहना है इसलिए उसे वहाँ की भाषा जाननी चाहिए, उनकी भावनाओं को भाँपना चाहिए और उनका भला करने का प्रयत्न करना चाहिए। मुख्य मन्त्री व जनता को भी चाहिए कि वे राज्यपाल के प्रति आत्मीयता की भावनाएँ बढ़ाएँ और उसे सरकारी कारोबार करने के अलावा जन सेवा का अवसर दें। राज्यपाल के पद को केवल विधान के अनुकूल बनाने का यह एकमात्र तरीका ही नही बल्कि लाभदायक बनाने का भी है।

आचार्य कृपलानी के कथनानुसार "स्वराज्य मे राज्यपालों का अब वही स्थान है जो उनके पहले शाही गवर्नरो का था। प्रायः बड़े शहरों में जहाँ स्थान की कमी होती है इनके रहने का मकान एक मुरब्बा मील घेरे रहता है। गांधी जी ने कहा था कि स्वराज्य में यह भवन गरीबों के लिए अस्पताल बना दिए जाएँगे। लेकिन अब वे बूढे, थके व चुनाव में हारे हुए राजनीतिज्ञों के लिए आरामगाहें बना दी गई है। यह सरकारी भवन अब विदेशों से आने वाले सब प्रकार के अतिथियों के लिए होटल बन गए हैं।"

राज्य-मन्त्रियों की स्थिति (Position of State Ministers)—संविधान की धारा १६३ के अनुसार जिन बातों मे इस संविधान द्वारा या इसके आधीन राज्यपाल से यह आशा की जाती है कि वह अपने कामों अथवा उनमे से किसी को अपनी समझ से करे, उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कामो के करने में सहायता तथा सलाह देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्य मन्त्री होगा। यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई मामला ऐसा है या नही कि जिसके बारे में, इस संविधान के द्वारा या आधीन राज्यपाल से आशा की जाती है कि वह अपनी समझ से कार्य करे तो राज्यपाल का अपनी समझ से किया हुआ निश्चय आखिरी होगा तथा राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की वैधता (validity) पर इस कारण से कोई शंका न की जाएगी कि उसे अपनी समझ से काम करना या न करना चाहिए था। मन्त्रियों ने राज्यपाल को क्या सलाह दी और दी तो क्या दी, इस प्रश्न पर किसी भी अदालत में जाँच नही की जाएगी।

धारा १६४ व्यवस्था करती है कि मुख्य मन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्य मन्त्री की सलाह से करेगा और राज्यपाल की इच्छा के समय मे मन्त्री अपने पद पर रह सकेंगे। परन्तु उड़ीसा, बिहार और मध्य प्रदेश के राज्यों में आदिमजातियों की भलाई के लिए एक मन्त्री इंचार्ज होगा और जो साथ-साथ अनुसूचित जातियो और पिछड़े हुए वर्गों (Scheduled Tribes and Backward Classes) की भलाई या किसी दूसरे काम का भी इंचार्ज हो सकेगा। मन्त्रि-परिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी (collectively responsible) होगी। किसी मन्त्री के अपने पद ग्रहण करने से पहले राज्यपाल उसको पद की और गोपनीयता की शपथ दिलाएगा। कोई मन्त्री जो लगातार छः महीने तक के समय तक राज्य के विधान मण्डल का मेम्बर न रहा हो, उस समय के खत्म होने पर मन्त्री न रहेगा। मन्त्रियों के वेतन तथा भत्ते ऐसे होंगे जैसे समय-समय पर उस राज्य का विधानमण्डल कानून द्वारा तय करे।

धारा १६७ के अनुसार, हरेक राज्य के मुख्य मन्त्री का, राज्य-कार्यों के प्रशासन के सम्बन्ध में मन्त्रि-परिषद् के सारे फैसले तथा कानून बनाने के लिए प्रस्तावों को राज्यपाल को पहुँचाने का, राज्य-कार्यों के प्रशासन के बारे में तथा कानून बनाने के प्रस्तावों के बारे में, जिस जानकारी को राज्यपाल मँगावे, उसको देने का, तथा किसी मामले को, जिस पर मन्त्री ने निश्चय कर लिया हो, किन्तु मन्त्रि-परिषद् ने विचार नहीं किया हो, राज्यपाल के माँगने पर परिषद् के सामने विचार के लिए रखने का फर्ज होगा।

मुख्य मन्त्री की स्थिति (Position of Chief Minister)—एक राज्य के मुख्य मन्त्री की वही स्थिति होती है जो प्रधान मन्त्री की केन्द्र में। वह सत्ताधारी दल का नेता होता है। राज्यपाल उसे ही मन्त्रिमंडल बनाने के लिए निमन्त्रण देता है क्योंकि उसे बहुमत-दल का समर्थन प्राप्त होता है। राज्यपाल उसे और वह मन्त्रियों को चुनता है। जब मुख्य मन्त्री त्यागपत्र देता है उस समय सारे मन्त्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है। अपने मन्त्रिमण्डल से किसी भी मन्त्री को निकालने तथा लेने का उसे पूर्ण अधिकार है। किसी भी व्यक्ति को राज्यपाल उसकी सिफारिश से मन्त्री नियुक्त करता है अथवा निकालता है। वह मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष होता है और यदि वह विरोध करे तो कोई प्रस्ताव स्वीकार नहीं हो सकता। किन्तु यह आशा की जाती है कि वह अपने सहकारियों के विचारों को, जिनके कारण उसे सत्ता प्राप्त हुई है, अवश्य ध्यान में रखेगा। मुख्य मन्त्री को यह नहीं भूलना चाहिए कि वह एक खिलाड़ियों के दल के नेता (Captain) की तरह है, तानाशाह नहीं है। नेता की शक्ति अपने दल के सदस्यों के समर्थन पर निभर होती है और दल की शक्ति उनके नेता पर निर्भर है।

वह राज्य की विधान सभा का नेता होता है। अपने दल के बहुमत पर उसे विश्वास होता है कि वह जो विधेयक चाहे पारित करा लेगा। वह राज्य सरकार की नीति का निर्माण करता है और विधान सभा उस नीति का समर्थन करती है। वह राज्य सरकार की नीति के विषय में विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। भले ही किसी भी मन्त्री से प्रश्न या पूरक प्रश्न पूछे जाएँ, किन्तु मुख्य मन्त्री—जो भी मन्त्री आलोचना से त्रस्त हो—उसकी सहायता करता है। मन्त्रिमण्डल उसका दल है और उसे इसके सदस्यों की सहायता करनी चाहिए। राज्य के सारे विभागों में ताल-मेल रखने और साधारण प्रबन्ध के अधिकार मुख्य मन्त्री को प्राप्त होते हैं। यदि मन्त्रियों में मतभेद होता है तो उसे इसका निर्णय करना पड़ता है। उसका निर्णय अन्तिम होता है और जो उसे न माने उसे मन्त्रिमण्डल छोड़ना पड़ता है। राज्य सरकार का वह मुख्य वक्ता है और उसके वक्तव्य और आश्वासन अधिकारपूर्ण होते हैं।

उसे विशाल अधिकार प्राप्त हैं। यह सत्य है कि जैसे राज्य-सेवा-आयोग (State Public Service Commission) का प्रभाव बढ़ता है, वैसे ही मुख्य मन्त्री का प्रभाव कम होता जाता है। लेकिन तथ्य यह है कि उसे वर्तमान परिस्थितियों में बड़े अधिकार प्राप्त हैं। बहुत-सी नियुक्तियाँ इस प्रकार की होती हैं जिनमें सेवा

आयोग की सलाह लेने की आवश्यकता ही नहीं होती। ऐसा विशेषतः छोटी नौकरियों में होता है लेकिन मुख्य न्यायवादी तथा सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति में उसका हाथ होता है।

मुख्य मन्त्री राज्यपाल और मन्त्रि-परिषद् के बीच की कड़ी है। मुख्य मन्त्री की अनुमति के बिना कोई भी मन्त्री राज्यपाल से नहीं मिल सकता। राज्य के प्रशासन के विषय में कोई भी सूचना यदि राज्यपाल माँगे तो अपने मन्त्रि-परिषद् के निर्णयों की सूचना राज्यपाल को देना मुख्यमन्त्री का कर्त्तव्य है।

कार्य रूप से मुख्य मन्त्री ही राज्य का वास्तविक शासक है; केवल वही व्यक्ति ही शासन सँभालने वाला है। मुख्य मन्त्री की वास्तविक स्थिति उसके व्यक्तित्व और उसके दल के समर्थन पर निर्भर होती है। यह कांग्रेस की मुख्य कार्यकारिणी में मुख्य मन्त्री की पहुँच पर भी निर्भर होती है।

राज्यपाल और मन्त्री (Governors and Ministers)—कुछ सामान्य विचार मन्त्रिमण्डल, राज्यपाल तथा विधानमण्डल के बारे मे रखे जा सकते हैं। राज्यपाल बहुमत दल के नेता को सरकार बनाने के लिए बुलाता है। यदि विधान सभा मे बहुत से दल हैं और किसी पार्टी का साफ तौर पर बहुमत नही है तब राज्यपाल अपने विवेक से किसी दल के नेता को बुलाकर सरकार बनाने की आज्ञा दे सकता है। किन्तु यदि एक पार्टी का साफ तौर से बहुमत हो तब उसके हाथ बँधे होते हैं। ऐसी हालत में राज्यपाल को बहुमत दल के नेता को बुलाना ही पड़ता है। राज्यपाल मन्त्रियों को विभाग (portfolio) बाँटने मे विवेक से कार्य नहीं कर सकता। यह काम मुख्य मन्त्री का है कि वह देखे कि उसके साथी किस तरह टीम के नाते काम कर सकते हैं। राज्यपाल अपनी मर्जी से किसी भी व्यक्ति को मुख्य मन्त्री पद थोप सकता है जिसे मुख्य मन्त्री न चाहे। इस बात को नामंजूर नहीं किया जा सकता कि मन्त्री अपने काम के लिए विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हैं कि राज्यपाल के प्रति। यह निश्चय है कि यदि राज्यों में संसदीय संस्थाओं को कामयाब बनाना है तो राज्यपालों को रोजमर्रा के कामो में टाँग नहीं अड़ानी चाहिये। यदि मन्त्री गलतियाँ करते हैं तो उन्हें गलती करके सीखने का मौका मिलना चाहिये।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि सिर्फ संकटकाल मे ही मन्त्रिमण्डल की सलाह की लापरवाही की जा सकती है। यह उपबन्ध सिर्फ देश की भलाई के लिए रखा गया है। यह सच है कि संकट समय में मन्त्री खत्म हो जाते है और सरकार को राष्ट्रपति राज्यपाल द्वारा चलाता है किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि संकट के समय भी राष्ट्रपति मन्त्रियों की सलाह से काम करता है। दूसरे शब्दों में, राज्य का इन्तजाम संकट-काल में भी जनता के नुमाइन्दों के जरिये चलाया जाता है क्योंकि ये लोग संसद् में बैठते हैं।

मन्त्री तथा विधानमण्डल (Ministers and Legislature)—जहाँ तक मन्त्रियों का राज्य विधानमण्डल से सम्बन्ध है, इसके विषय मे संविधान में निश्चित रूप से कहा गया है कि मन्त्रियों का चुनाव विधानमण्डल के मेम्बरों में से किया

जायेगा और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी होंगे। धारा १६४ के अनुसार मन्त्री सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। यदि किसी मन्त्री की विधान सभा में हार होती है, तब सब को इस्तीफा देना चाहिए। इसका फल यह होता है कि वे एक दूसरे की मदद करते है। मेम्बर मन्त्रियों से प्रश्न, पूरक प्रश्न पूछकर उनकी गलतियों को जाहिर कर सकते है, और इस तरह उन पर कण्ट्रोल रखते हैं। स्थगन तथा अविश्वास के प्रस्ताव भी लाये जा सकते हैं। बजट में प्रतीक कटौती (token cut) का प्रस्ताव रखा जा सकता है। मन्त्रिमण्डल के किसी भी विधेयक को नामंजूर किया जा सकता है। यह इसी बात की ओर इशारा है कि विधानमण्डल मे मन्त्रियों का बहुमत नही है।

जब कोई मन्त्रिमण्डल विधान सभा में हार जाता है तब मुख्य मन्त्री राज्यपाल को विधान सभा को भंग करने के लिए कह सकता है। आम तौर पर, राज्यपाल मुख्य मन्त्री की प्रार्थना को मजूर कर लेता है। यदि सत्ताधारी दल (party in power) चुनावों में बहुमत प्राप्त करता है तव मन्त्रिमण्डल बना रहता है। यदि निर्वाचकगण मन्त्रिमण्डल में अपना विश्वास प्रकट नही करते और अपनी नाराजगी को खिलाफ वोट देकर व्यक्त करते है तब मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल का मुकाबला किए बगैर ही त्यागपत्र दे देता है।

राज्य महाधिवक्ता (Advocate-General for the State)—संविधान की धारा १६५ के अनुसार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखने वाले व्यक्ति को प्रत्येक राज्य का राज्यपाल राज्य का महाधिवक्ता नियुक्त करेगा। एक हाईकोर्ट के जज की योग्यताएँ यह है कि उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, और उसे भारत में दस वर्ष तक न्यायिक पद पर काम किया हुआ होना चाहिए। महाधिवक्ता का फर्ज होगा कि वह उस राज्य की सरकार को ऐसे कानून सम्बन्धी मामलों पर सलाह दे तथा ऐसे दूसरे कानूनी कामों का पालन करे जो राज्यपाल उसे, समय-समय पर, भेजे या सौपे तथा उन कामों को करने के, जो उसे इस संविधान अथवा उस समय लागू कानून द्वारा या आधीन दिये गये हो। महाधिवक्ता राज्यपाल के अभीष्ट काल तक ही पद पर रहेगा और राज्यपाल द्वारा तय पारिश्रमिक (remuneration) पायेगा।

Suggested Readings

Deshpande. N. R. : The Role of the Governor (The Indian Journal of Political Science, 1959. pp. 15-22).

Halppa, G.S. (Ed.) : Studies in State Administration, 1963.

राज्य विधानमण्डल

(STATE LEGISLATURES)

धारा १६८ के अनुसार कुछ राज्यों में द्विसदनी विधानमण्डल होंगे तथा कुछ अन्य राज्यों में केवल एक ही सदन होगा। इस प्रकार आन्ध्र प्रदेश, बिहार, मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, मध्य प्रदेश, पंजाब, उत्तरप्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में राज्य विधान मण्डल के दो सदन है और दूसरे राज्यों में केवल एक ही सदन है। जहाँ राज्य में दो सदन हैं, उनको विधान सभा तथा विधान परिषद् के नाम से जाना जाता है। जहाँ केवल एक ही सदन है वहाँ पर उसे विधान सभा की संज्ञा दी गई है।

धारा १६९ राज्यों में विधान परिषदों को हटाने अथवा स्थापित करने की व्यवस्था करती है। इसके अनुसार, संसद् किसी राज्य में से विधान परिषद् को तोड़ने अथवा स्थापित करने के लिए कानून बनाकर व्यवस्था कर सकती है, यदि इस कार्य के लिए राज्य विधान सभा अपने सम्पूर्ण सदस्यों के बहुमत तथा उपस्थित एवं मत देने वाले सदस्यों के $\frac{2}{3}$ बहुमत से ऐसा करने के लिए प्रस्ताव पास करे।

बनावट (Composition)—जहाँ तक राज्य विधान सभाओं की बनावट का प्रश्न है धारा १७० के अनुसार प्रत्येक राज्य की विधान सभा का चुनाव प्रत्यक्ष चुनाव (direct election) से होगा। चुनाव इस प्रकार से किए जाते है कि एक सदस्य ७५,००० जनसंख्या से अधिक को प्रतिनिधित्व करे। विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या अधिक से अधिक ५०० और कम से कम ६० है।

विधान परिषद् की बनावट के विषय में धारा १७१ व्यवस्था करती है कि परिषद् की संख्या विधान सभा के सदस्यों की संख्या के $\frac{1}{3}$ से अधिक नहीं होगी किन्तु कभी भी उसके सदस्यों की संख्या ४० से कम न होगी। उसके सदस्यों का चुनाव इस प्रकार से किया जाएगा—

(१) कुल संख्या का $\frac{1}{3}$ नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं, जिनको संसद् निश्चित करे, के निर्वाचकगणों में से चुने जायेंगे।

(२) लगभग $\frac{1}{12}$ भाग उस राज्य में निवास करने वाले ऐसे व्यक्तियों से मिल कर बने हुए निर्वाचकमण्डलों द्वारा चुन जायेगा, जो भारतीय क्षेत्र के किसी विश्वविद्यालय के कम-से-कम तीन वर्ष से स्नातक हैं अथवा, जो कम-से-कम तीन वर्ष से ऐसी योग्यताओं को धारण किए हुए हैं जो संसद् द्वारा बनाए गए किसी कानून के द्वारा या वैसे किसी विश्वविद्यालय के स्नातक की योग्यताओं के बराबर स्वीकार की गई हों।

(३) लगभग १/१२ भाग, ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बने निर्वाचकमण्डलों द्वारा चुना जायेगा, जो राज्य के भीतर माध्यमिक पाठशालाओं से नीचे के स्तर की (lower in standard) ऐसी शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ाने के काम में कम-से-कम तीन वर्ष से लगे हुए है जैसा कि संसद् द्वारा बनाए गए कानून के द्वारा या आधीन स्वीकार की जायें।

(४) लगभग १/३ भाग, राज्य की विधान सभा के सदस्यों द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से चुना जायगा, जो सभा के सदस्य नहीं हैं।

(५) शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा मनोनीत (nominated) होंगे। मनोनीत महानुभाव, साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारिता आन्दोलन (Co-operative Movement) तथा सामाजिक सेवा में निपुण होने चाहिएँ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि राज्य पुनर्गठन अधिनियम, १९५६ द्वारा मध्य प्रदेश के राज्य के लिए विधान परिषद् की व्यवस्था की गई और इस तरह जिन राज्यों में विधान परिषदें हैं उनकी संख्या बढ़कर आठ हो गई। बाद में आन्ध्र प्रदेश की विधान सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा उस राज्य के लिए विधान परिषद् की स्थापना करने की सिफ़ारिश की। संविधान के सातवें संशोधन द्वारा राज्य विधान परिषद् की सदस्य संख्या की अधिकतम सीमा राज्य विधान सभा की सदस्य संख्या के एक-चौथाई से बढ़ाकर एक-तिहाई कर दी गई। संसद् के कुछ सदस्यों और कुछ राज्य सरकारों द्वारा यह आवेदन किया गया कि विधान सभाओं की तुलना में विधान परिषदों की गण-शक्ति बहुत थोड़ी है, इसलिए इसे संवैधानिक संशोधन द्वारा बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार के प्रस्ताव बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के विधान मण्डलों में पास किये गए।

इन परिस्थितियों के अन्तर्गत भारतीय संसद् ने विधान परिषद् अधिनियम, १९५७, पास किया और ८ सितम्बर, १९५७ को उन्हें इस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई। यह अधिनियम आन्ध्र प्रदेश के लिए विधान परिषद् की स्थापना करता है और शेष राज्यों में विधान परिषदों की गण-शक्ति बढ़ाने की व्यवस्था करता है। पहले विधान परिषद् की गण-शक्ति का जनसंख्या या विधान सभा की गण-शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं था। नये अधिनियम द्वारा प्रत्येक विधान परिषद् की गण-शक्ति गत विधान सभा की गण-शक्ति की लगभग ३०% है। केवल उत्तर प्रदेश और बम्बई मे, जहाँ कि सबसे बड़ी विधान सभाएँ हैं और पंजाब में जहाँ कि सबसे छोटी विधान सभा है, ऐसा अनुपात नहीं है।

अधिनियम यह व्यवस्था करता है कि राष्ट्रपति के आदेश द्वारा नियत तिथि से आन्ध्र प्रदेश के लिए ९० सदस्यों की एक विधान परिषद् होगी। बिहार की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या ७२ से बढ़ाकर ९६ कर दी जाएगी। बम्बई की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या बढ़ाकर १०८ कर दी जाएगी। मध्य प्रदेश की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या ७२ से बढ़ाकर ९० कर दी जाएगी। मद्रास की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या ५० से बढ़ाकर ६३ कर दी जाएगी। मैसूर की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या बढ़ाकर ६३ कर दी जाएगी। पंजाब की विधान

परिषद् की कुल सदस्य-संख्या बढ़ाकर ५१ कर दी जाएगी। उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या ७२ से बढ़ाकर १०८ कर दी जाएगी। पश्चिमी बंगाल की विधान परिषद् की कुल सदस्य-संख्या ५१ से बढ़ाकर ७५ कर दी जाएगी।

निम्न तालिका में विभिन्न राज्यों मे विधान परिषदों की वर्तमान स्थिति दिखाई गई है—

राज्य का नाम	कुल सदस्य संख्या	नगरपालिका व जिला परिषदों द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या	विश्वविद्यालयों के स्नातकों द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या	अध्यापकों द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या	विधान सभा द्वारा निर्वाचित सदस्यों की संख्या	राज्यपाल द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्यों की संख्या
आन्ध्र प्रदेश	९०	३१	८	८	३१	१२
बिहार	९६	३४	८	८	३४	१२
मध्य प्रदेश	९०	३१	८	८	३१	१२
मद्रास	६३	२१	६	६	२१	९
महाराष्ट्र	७८	२२	७	७	३०	२२
मैसूर	६३	२१		६	२१	९
पंजाब	५१	१७	४	४	१८	८
उत्तर प्रदेश	१०८	३९	९	९	३९	१२
पश्चिमी बंगाल	७५	२७	६	६	२७	९

अवधि (Tenure)—राज्य विधानमण्डलों की अवधि के विषय में, धारा १७२ व्यवस्था करती है कि प्रत्येक राज्य सभा पहली बैठक से नियुक्त होने की तिथि से ५ वर्ष तक कार्य कर सकती है इससे अधिक नहीं। पांच वर्ष के समाप्त होते ही विधान सभा भंग हो जाती है। किन्तु विधान सभा को पहले भी भंग किया जा सकता है। संसद् एक बार में विधान सभा की अवधि कानून बनाकर एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है तथा संकट काल के समाप्त होने के ६ मास बाद तक के लिए बढ़ाई जा सकती है। राज्य विधान परिषद् स्थायी (permanent) संस्था है। इसे भंग नहीं किया जा सकता, किन्तु इसके ⅓ सदस्य हर दूसरे वर्ष अलग हो जाते हैं।

राज्य विधानमण्डलों की सदस्यता की योग्यताओं के विषय में धारा १७३ व्यवस्था करती है कि राज्य विधानमण्डल का सदस्य वह व्यक्ति बन सकता है जो भारत का नागरिक हो तथा उसकी आयु विधान सभा के लिए २५ वर्ष से कम तथा

विधान परिषद् के लिए ३० वर्ष से कम न हो, तथा उन योग्यताओं को रखता हो जो समय-समय पर निश्चित की जायें।

धारा १७४ के अनुसार, राज्यपाल विधानमण्डल के किसी सदन अथवा दोनों सदनो की बैठकें उस स्थान तथा उस समय पर बुलाएगा, जहाँ और जिस समय वह उचित समझेगा। किन्तु दो अधिवेशनों की अन्तिम तथा प्रथम बैठक में ६ मास से अधिक का अन्तर नही डाला जा सकता है। राज्यपाल समय-समय पर किसी या दोनों सदनों को स्थगित कर सकता है अथवा विधान सभा को भंग कर सकता है।

धारा १७५ व्यवस्था करती है कि राज्यपाल विधान सभा को, अथवा राज्य विधान मण्डल के साथ इकट्ठे दोनों सदनों को सम्बोधित (address) कर सकेगा तथा इसके लिए सदस्यों की उपस्थिति की अपेक्षा (require) कर सकेगा। वह विधानमण्डल के किसी अथवा दोनों सदनों को विचार किए जाने वाले विधेयक अथवा और किसी विषय पर सन्देश भेज सकता है। सदन, जिसको सन्देश भेजा गया है, सन्देश पर अपनी सुविधानुसार विचार करेगा।

धारा १७६ व्यवस्था करती है कि आम चुनावों के पश्चात् प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन तथा प्रति वर्ष के प्रथम अधिवेशन के प्रथम दिन राज्यपाल विधान सभा अथवा दोनों सदनो को संयुक्त रूप से सम्बोधित करेगा और राज्य विधानमण्डल के बुलाने के कारणों पर प्रकाश डालेगा।

धारा १७७ के अनुसार, राज्य के प्रत्येक मन्त्री तथा महाधिवक्ता (Advocate General) को अधिकार होगा कि वह राज्य की विधान सभा मे बोले तथा दूसरे प्रकार से उसकी कार्यवाहियों में भाग ले तथा विधान मण्डल की किसी समिति में, जिसमे उसका नाम सदस्य के रूप में दिया गया हो, बोले तथा दूसरे प्रकार से कार्यवाहियों में भाग ले, किन्तु इस धारा के आधार पर उसको मत देने का अधिकार न होगा।

राज्य के विधानमण्डल के पदाधिकारी (Officers of State Legislature)—प्रत्येक विधान सभा को एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष रखना होगा। अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष विधान सभा का सदस्य भी होता है। यदि किसी प्रकार वह विधान सभा का सदस्य बनना न चाहे तो उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। वह अपना पद किसी भी समय छोड़ सकता है तथा सदन के कुल सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पास करने पर भी हटाया जा सकता है। ऐसे प्रस्तावों को पास करने के लिए १४ दिन की अवधि का नोटिस अनिवार्य है। जब कभी विधान सभा भंग हो जाती है और नई विधानसभा की प्रथम बैठक नही होती तब तक वह अपने पद पर रहता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कर्त्तव्यो का पालन उपाध्यक्ष करेगा। जब अध्यक्ष का स्थान रिक्त होगा तब भी समस्त कार्य उपाध्यक्ष को ही करने होगे। जब अध्यक्ष को हटाने के प्रस्ताव पर विवाद होगा उसमे उसे भाग लेने का अधिकार है। उस समय उसे वोट देने का भी अधिकार है, परन्तु बराबर मत होने पर वह अपना मत नही दे सकता।

राज्य विधान परिषद् का एक सभापति तथा एक उपसभापति होता है। परिषद् की सदस्यता से पृथक् होने पर वे अपना पद छोड़ देते हैं। वे स्वेच्छा से अपना पद त्याग सकते हैं। विधान परिषद् अपनी कुल संख्या के बहुमत से प्रस्ताव पास करके भी उन्हें हटा सकती है। अध्यक्ष (Speaker) की भाँति इसके लिए भी १४ दिन का नोटिस मिलना आवश्यक है। सभापति की अनुपस्थिति अथवा पद के रिक्त होने पर उपसभापति सभापति का आसन ग्रहण करेगा। जब उनमें से किसी को हटाने के प्रस्ताव पर विचार होता है तब वह सभापति के आसन पर नहीं बैठ सकता, किन्तु विवाद में भाग ले सकता है। समान मत (tie) होने पर उसे मत देने का अधिकार नहीं है।

सदस्यों की अयोग्यताएँ (Disqualifications of Members)—धारा १६० के अनुसार, कोई सदस्य दोनों सदनों का सदस्य नहीं रह सकता। यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य चुना जाता है तब उसे किसी एक सदन की सदस्यता से पृथक् होना पड़ता है। यदि कोई सदस्य भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के आधीन किसी लाभ के पद को स्वीकार करता है तब धारा १६१ के अनुसार वह किसी सदन का सदस्य नहीं बन सकता। किन्तु यह धारा उन पदों पर लागू नहीं होती जिनको विधानमण्डल ने 'लाभ के पद' स्वीकार न किया हो। यदि सदस्य पागल, दिवालिया हो जाए, भारत की नागरिकता छोड़ दे अथवा किसी देश की नागरिकता स्वीकार कर ले अथवा किसी विदेशी राज्य के प्रति भक्ति की शपथ ले ले और संसद् उसको अयोग्य घोषित कर दे, तब वह विधानमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता। कोई भी सदस्य शपथ लिए बिना विधानमण्डल की बैठक में भाग नहीं ले सकता। यदि कोई अयोग्य घोषित हुआ सदस्य अथवा शपथ न लेकर भाग लेने वाला सदस्य अथवा कोई अन्य व्यक्ति विधान मण्डल के कार्य में भाग लेता है, तब धारा १६३ के अनुसार उसे दण्ड दिया जा सकता है।

विधानमण्डल के सदस्यों के विशेषाधिकार (Privileges of Members)—धारा १६४ के अनुसार प्रत्येक राज्य के विधान मण्डल में भाषण की स्वतन्त्रता होगी। सदन अथवा बैठक में दिए गए भाषण के आधार पर मुकदमा नहीं चलाया जाएगा। यदि सदन कोई भाषण, कार्यवाही अथवा कोई और बात प्रकाशित करता है, उसके लिए किसी सदस्य को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। सदस्यों तथा कमेटी के सदस्यों की शक्तियाँ, विशेषाधिकार तथा सुविधाएँ समय-समय पर विधानमण्डल निश्चित करेगा और जब तक कानून पास न हो तब तक ब्रिटेन के हाउस ऑफ कामन्स के सदस्यों को मिलने वाले अधिकार, शक्तियाँ तथा सुविधाएँ प्राप्त होंगी। विधानमण्डल समय-समय पर सदस्यों के वेतन तथा भत्ते निश्चित करेगा।

विधायी विधि (Legislative Procedure)—धन विधेयक केवल विधान सभा में ही आरम्भ किये जा सकते हैं। विधान सभा में पास होने पर विधेयक विधान-परिषद् में अपनी सिफारिशें करने के लिए भेजा जाता है। विधान परिषद् विधेयक प्राप्त होने की १४ दिन की अवधि में अपनी सिफारिशें करेगी। विधान सभा परिषद् की सिफारिशों को रद्द कर सकती है, स्वीकार कर सकती है, कुछ को स्वीकार तथा

अन्य को अस्वीकार कर सकती है। यदि विधान सभा परिषद् की कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर लेती है तब विधेयक संशोधित रूप में पास होता है। यदि विधान सभा परिषद् की सिफारिशों को नामंजूर करती है तब विधेयक मूल रूप (original form) में ही पास हुआ समझ लिया जाता है। यदि धन विधेयक १४ दिन में सभा को वापस नहीं मिलता तब भी विधेयक को दोनों सदनों से उस रूप में पास हुआ समझ लिया जाता है जिस रूप में विधान सभा ने पास किया था।

धारा १९९ के अनुसार, धन विधेयक वह विधेयक है जो निम्न विषयों में से किसी एक अथवा सब विषयों से सम्बन्धित हो :—

(१) किसी कर को लगाना, कम करना, बढ़ाना, हटाना।

(२) ऋण देना अथवा सरकार द्वारा गारन्टी करना अथवा किसी आर्थिक जिम्मेदारी को लेने अथवा निभाने के लिए कानून बनाना अथवा संशोधन करना।

(३) संचित निधि तथा आकस्मिक निधि की रक्षा तथा उक्त कोषों में धन जमा करना अथवा निकालना।

(४) राज्य संचित निधि से व्यय के लिए राशियाँ स्वीकार करना।

(५) किसी खर्च को संचित निधि पर डालना अथवा किसी मद की राशि को बढ़ाना।

(६) राज्य संचित निधि के लिए धन वसूल करना, सार्वजनिक कोष (Public Account) के लिए धन एकत्रित करना तथा कोष की रक्षा करना।

(७) कोई विधेयक सिर्फ इस वजह से धन विधेयक नहीं बनेगा, क्योंकि उसमें जुर्माना करने, आर्थिक दण्ड देने अथवा लाइसेन्स अथवा सेवाओं की फीस देने का इन्तजाम किया गया है। यदि इस पर झगड़ा खड़ा हो कि कोई खास विधेयक धन विधेयक है या नहीं तो विधान सभा के अध्यक्ष का फैसला आखिरी होगा। विधेयक तभी कानून बनता है जब राज्यपाल उस पर अपने दस्तखत कर दे।

धन विधेयकों के अलावा, दूसरे विधेयक विधानमण्डल के किसी भी सदन में शुरू किये जा सकते हैं। यदि कोई विधेयक किसी सदन में पड़ा रहे और सदन *स्थगित* हो जाए, तब भी विधेयक खत्म नहीं होता। यदि किसी विधेयक पर विधान परिषद् में विचार हो चुका हो और विधान *सभा भंग हो जाए तब भी विधेयक खत्म नहीं* होता है। किन्तु विधान सभा में पड़ा विधेयक समाप्त हो जायेगा।

यदि किसी विधेयक को विधान सभा ने मंजूर करके विधान परिषद् को भेजा हो और उसे विधान परिषद् रद्द कर दे अथवा उसे ३ मास व्यतीत हो जाएँ अथवा विधेयक ऐसे संशोधनों सहित पास किया जाए जो विधान सभा को मंजूर न हों, तब विधान सभा विधेयक को संशोधनों के साथ अथवा मूल रूप में ही फिर पास कर सकती है और फिर से विधान परिषद् को भेज सकती है। जब कोई विधेयक दुबारा विधान परिषद् को भेजा जाता है तब यह मान लिया जाता है कि विधेयक उस रूप में दोनों में मंजूर हो गया है जैसा कि विधान सभा ने दुबारा पास किया था, चाहे

परिषद् विधेयक को नामंजूर करे या कुछ संशोधनों के साथ मंजूर करे या ३ मास तक विचार करके न लौटावे।

जब कोई विधेयक राज्य विधान मण्डल द्वारा मंजूर हो जाता है तब राज्यपाल इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकता है अथवा उसे राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए रोक सकता है। राज्यपाल को यह हक है कि वह अपनी सिफारिशों के साथ विधेयक को फिर विचार करने के लिए व्यवस्थापिका को लौटा दे। जब इस प्रकार विधेयक लौटाया जाता है, विधानमण्डल उस पर विचार करता है तथा पास करके राज्यपाल की मंजूरी के लिए भेजता है। जब विधेयक दूसरी बार राज्यपाल को भेजा जाता है तब वह अपनी मंजूरी को रोक नहीं सकता।

जब विधेयक को राष्ट्रपति की मजूरी के लिए रोका जाता है तब राष्ट्रपति ऐलान करता है कि वह उसे मजूर करता है या नही। राष्ट्रपति राज्यपाल को फिर से विचार करने के सन्देश के साथ लौटा सकता है। ऐसी हालत मे व्यवस्थापिका का यह काम होगा कि उस बिल पर विचार करे तथा राष्ट्रपति के पास मजूरी को भेजे।

राज्य विधान-परिषद् की स्थिति (Position of Legislative Council)—राज्य विधान परिषद् के बारे में जो व्यवस्थाएँ (provisions) है उनका आलोचनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि परिषदें बहुत कमजोर हैं। वे केवल दूसरे सदन नहीं हैं बल्कि *गौण भी हैं। उनका विधेयकों पर कोई कन्ट्रोल नहीं हैं।* वे केवल १४ दिन तक विधेयक को रोक सकती है। विधान सभा विधान परिषद् की सिफारिशों को मानने के लिए मजबूर नही है। इंगलैंड मे लार्ड सभा को बजट पर विचार करने के लिए एक महीने का समय दिया जाता है। भारत की विधान परिषदें लॉर्ड सभा से भी कमजोर हैं जो कि अपनी कमजोरी के लिए मशहूर है।

धन विधेयकों को छोड़कर दूसरे विधेयकों में भी विधान सभाएँ परिषदों के निर्णयों को कुचलने की शक्तियाँ रखती हैं। यह सच है कि साधारण बिल शुरू मे किसी भी सदन में लाये जा सकते है परन्तु इसका मतलब यह कभी नहीं होता कि बिलो के निवर्तन (disposal) मे परिषद् को बराबर अधिकार मिले हैं। यदि विधान सभा किसी बिल को पास करके विधान परिषद् को भेजती है और विधान परिषद् उसे नामंजूर कर देती है, किन्तु विधान सभा दुबारा पास करके उसी बिल को विधान परिषद् को भेजे, तब चाहे परिषद् उसे मंजूर करे या नामंजूर, बिल को राज्यपाल के पास भेज दिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विधान परिषदें सिर्फ 'सलाह देने वाली सस्थाएँ' हैं। वे लोकप्रिय विधान सभाओं द्वारा मंजूर किए हुए बिलो के रास्ते में रोडे बनकर नही आ सकतीं। यह याद रखें कि इगलैंड मे साधारण बिल को लॉर्ड सभा के निषेधाधिकार (Veto Power) को बेकार करने के लिए तीन बार पास होना पड़ता है किन्तु भारत में यदि विधान सभा किसी बिल को दो बार पास कर दे तब वह कानून बन जाता है, *फिर इस बात की चिन्ता नहीं की जाती कि विधान परिषद् उससे*

सहमत है या नहीं। इसके अलावा इंगलैंड में, पहले अधिवेशन में दूसरी रीडिंग तथा तीसरे अधिवेशन में तीसरी रीडिंग के बीच में एक वर्ष का अन्तर होना अनिवार्य है, किन्तु भारत में ऐसी कोई सीमा नहीं है। इस देश में यह समय मुश्किल से ४ महीने है। इसका नतीजा यह है कि परिषदें देरी करने में भी समर्थ नही है। नामजद सदस्यों की हाजिरी तथा अप्रत्यक्ष चुनाव (indirect election) परिषदों को और भी कमजोर बनाते हैं।

राज्य विधानमण्डलों की शक्तियां (Powers of State Legislatures)—यह पहले ही कहा जा चुका है कि राज्य विधानमण्डल राज्य-सूची मे दिए गए मामलों पर कानून बना सकते है। यह केवल उनका अपना क्षेत्र है। प्रभावी विषय जैसे सार्वजनिक सुरक्षा, पुलिस, न्याय, प्रशासन, कारागृह, सुधार-स्थान, स्थानीय स्वशासन, जन-स्वास्थ्य तथा सफाई, तीर्थ-यात्रा, कृषि, सचार, शिक्षा पुस्तकालय, वन, मछली पकड़ना, बाजार और मेले, सट्टा और जुआ, आदि राज्यों को प्राप्त हैं।

किन्तु इस सूची के अतिरिक्त राज्यों को समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है। समवर्ती सूची के प्रमुख विषय नागरिक तथा फौजदारी विधि (Civil and Criminal Procedure), नजरबन्दी, विवाह तथा सम्बन्ध-विच्छेद, सम्पत्ति परिवर्तन, ठेके, न्याय के खिलाफ नीलामी, दिवालियापन, ट्रस्ट (न्यास) और ट्रस्टी, न्यायालय की मान-हानि, आवारागर्दी, खाद्य-पदार्थों में मिलावट, व्यापार संघ, उद्योग तथा श्रम के झगड़े, बेरोजगारी तथा काम-धन्धा, डाक्टरी तथा दूसरे व्यवसाय, आर्थिक तथा सामाजिक योजना, वस्तु-नियन्त्रण, कारखाने, बिजली, समाचार-पत्र, पुस्तकें तथा मुद्रणालय (printing presses) आदि है। यह सच है कि जिस विषय पर संघ संसद् कानून बनाती है उस विषय पर राज्य विधानमण्डल कानून नही बना सकता। किन्तु यदि विधानमण्डल ने समवर्ती विषयों पर कानून बना दिया है और संघ संसद् भी उस पर कानून बना देती है, ऐसी दशा में राज्य कानून उस सीमा तक गैर-कानूनी होगा जहाँ तक यह सघ के कानून से मेल नही खाता। किन्तु यदि राज्य कानून राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज दिया गया हो और राष्ट्रपति ने उसे मंजूर कर लिया हो तब यही लागू रहेगा।

राज्य विधानमण्डल की शक्तियों पर ये कुछ प्रतिबन्ध (limitations) लगाए गए हैं :

(१) राज्य के कुछ कानून गैर-कानूनी होंगे यदि उनको राष्ट्रपति के पास भेजकर मंजूर नही कराया जाता। वे भूमि पाने (धारा ३१) से सम्बन्धित होते हैं। जन-समुदाय के लिए जरूरी चीजों की बिक्री तथा खरीद पर लगाए जाने वाले टैक्सों के कानून भी इसके (धारा २८६) अन्तर्गत आते हैं। यही प्रतिबन्ध समवर्ती विषयों के कानूनों पर लागू होता है, यदि वे संसद् के कानून के विपरीत होते हैं—धारा २५४।

(२) जब राष्ट्रपति यह ऐलान कर दे कि राज्य मे वैधानिक शासन-तन्त्र (Constitutional Rule) नाकामयाब हो गया है, तब वह राज्य के लिए कानून बना सकता है। राज्य व्यवस्थापिका अनुलम्बित (Suspend) कर दी जाती है।

(३) राज्य सभा अपने २/३ बहुमत से प्रस्ताव पास करके ऐलान कर सकती है कि अमुक विषय पर संसद् कानून बना सकती है, क्योंकि देश के हितों के लिए ऐसा करना आवश्यक है। संघ संसद् उन विषयों पर कानून बना सकती है। किन्तु ये कानून स्थायी नहीं होते।

(४) कुछ बिलों को विधानमण्डल में लाने से पहले राष्ट्रपति की पूर्व-स्वीकृति लेना जरूरी होता है। ऐसी जरूरत उन बिलों के लिए होती है जो जनता की भलाई के लिए व्यापार, वाणिज्य तथा एक राज्य के दूसरे राज्य के साथ व्यापार करने पर रुकावट पैदा करें।

(५) धारा २५० के अनुसार संकट-काल की घोषणा होने पर संघ संसद् सारे देश के लिए या देश के किसी भाग के लिए कानून बना सकती है।

राज्यों में दूसरे सदन की समस्या (Problem of Second Chamber in States)—दीर्घकाल से भारत में यह विवाद चलता आ रहा है कि राज्यों में दूसरा सदन होना चाहिए या नहीं। जब भारत सरकार अधिनियम १९३५ पास हो रहा था, तब इस सवाल पर बहुत ज्यादा बहस हुई। उसके बाद भी इस विषय पर बहस जारी है। देश के विद्वानों ने सर्वसम्मत फैसला नहीं दिया है। नए संविधान में भी दूसरे सदन के स्थापित करने तथा हटाने की व्यवस्थाओं के बनाने का यही मतलब है कि अभी तक दूसरे सदन फायदेमन्द हैं अथवा नहीं, यह निर्णय नहीं हुआ है, किन्तु दूसरे सदन के लाभ तथा हानियों पर विचार किया जा सकता है।

(१) दूसरे सदन के समर्थकों का कथन है कि निचले सदन पर अवरोध की जरूरत है। उनका कहना है कि भारत में उनकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है, क्योंकि करोड़ों अपठित लोगों को वोट का अधिकार दिया गया है। यदि प्रजातन्त्र को अपठित लोगों की चपलता से रोकना है, तब दूसरे सदन स्थापित करने चाहिएँ ताकि उन पर अवरोध हो सके। "निम्न सदन को सारी शक्ति देने का पागलपन बर्बादी की ओर ले जाएगा। यह शक्ति उनको सौंपनी चाहिए जो शिक्षित हैं और बुद्धि से निर्णय कर सकते हैं।" परिषद् के कुछ सदस्य विशेषज्ञ होंगे, कुछ स्नातकों (graduates) के प्रतिनिधि होंगे। यह आशा की जाती है कि विधान परिषदों में सब प्रकार के लोग होंगे, जिनका प्रयोग देश-हित में किया जा सकता है।

(२) दूसरा लाभ यह है कि ये शीघ्र व्यवस्थापन (hasty legislation) को रोकते हैं। "एक सदन कठोर एक-पक्षीय तथा भावुक हो सकता है। यदि दो सदन हों, तब एक सदन द्वारा पास किए हुए कानून में दूसरा सदन संशोधन कर सकता है। इसका फल यह होगा कि कानून बनने से पूर्व उस पर पर्याप्त तथा क्रमबद्ध विचार किया जा सकेगा।"

(३) दूसरे सदन का उपयोग अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए भी किया जा सकता है तथा व्यापारियों एवं दूसरे आर्थिक वर्गों (economic groups) को प्रतिनिधित्व मिल सकता है। फल यह होगा कि उनके हितों का भी संरक्षण हो

जाएगा। ऐसा तब नहीं हो सकता जब कि एक लोकतन्त्रीय सदन हो। अल्पसंख्यकों की गिनती इतनी कम हो सकती है कि उनको सम्भवतः प्रतिनिधित्व भी न मिल सके।

(४) दूसरे सदन के समर्थकों का कथन है कि दूसरा सदन हानिकारक नहीं है। ये गतिरोध उत्पन्न नहीं कर सकते, चाहे ये विधानसभा के पास किए हुए बिल को रद्द कर दें। ये केवल विधान सभा को सलाह देते है और यह विधान सभा का फर्ज है कि उस सलाह को माने अथवा रद्द कर दे।

(५) यदि कुछ ऐसे व्यक्ति है जो समाज के हित-चिन्तक हैं, किन्तु चुनाव लड़ना नही चाहते, उनकी सेवाओं का उपयोग उनको दूसरे सदन में स्थान देकर किया जा सकता है।

दूसरी ओर दूसरे सदन के आलोचकों का मत है कि दूसरे सदन को स्थापित करना बेकार है, क्योकि वह शक्तिशाली नहीं है। विधान परिषद् की शक्ति अत्यधिक सीमित है। वे विधान सभाओं पर स्वस्थ अवरोध (healthy check) भी नही बन सकते। इसका नतीजा यह है कि कोई बिल अच्छा है या बुरा है, यदि विधानसभा चाहे तो वह अवश्य पास होगा। परिषदों को ऐसे अधिकार नही हैं कि वे बिल को इतने समय तक रोक सकें कि जनता उन पर भली प्रकार विचार कर ले। विधान सभा किसी बिल को दुबारा पास करके विधान परिषद् के निषेधाधिकार को अमान्य कर सकती है। परिषद् धन विधेयक को केवल १४ दिन के लिए रोक सकती है। इसके अतिरिक्त संसार का अनुभव है कि दूसरे सदन प्रतिक्रियावादी (reactionary) होते हैं। उच्च सदन के सदस्यो का अपने हित साधन मे लगे रहने के कारण जनता मे अच्छा प्रभाव नही होगा। वे प्रगतिशील कानूनो के मार्ग में अवरोधक बन सकते है जिनको उनके प्रतिनिधि विधान सभा मे लाते है। यह कहा जाता है कि दूसरे सदन के बनाये रखने मे धन का अपव्यय होता है। बहुत-सा धन बचाया जा सकता है जो विधान परिषदों के चुनावो मे खर्च होता है।

प्रादेशिक कमेटियाँ (Regional Committees)—संविधान की धारा ३७१ मे ऐसी व्यवस्था की गई है कि राष्ट्रपति आंध्र प्रदेश तथा पंजाब के राज्यों के लिए प्रादेशिक कमेटियाँ स्थापित करे। प्रादेशिक कमेटियों का उद्देश्य प्रादेशिक भाषाओं की रक्षा करना है। राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह विधान सभाओं के नियमों मे परिवर्त्तन कर सके। वह राज्यपाल को प्रादेशिक कमेटी के ठीक तरह काम करने के लिए उत्तरदायी बना सकता है। इस धारा के अनुसार राष्ट्रपति ने पंजाब और आंध्र प्रदेश के लिए पृथक्-पृथक् आर्डर जारी किए हैं।

पंजाब प्रादेशिक कमेटी-आर्डर (Order) १९५७ मे जारी किया गया। इस आर्डर के अनुसार पंजाब विधान सभा की दो प्रादेशिक कमेटियाँ बनाई गई हैं। एक कमेटी तो पंजाबी प्रदेश के लिए है और दूसरी हिन्दी प्रदेश के लिए। मुख्य मन्त्री और स्पीकर किसी भी प्रादेशिक कमेटी के सदस्य नही हैं। हिन्दी प्रदेश मे काँगड़ा, शिमला, करनाल, रोहतक, गुड़गाँवा, हिसार, अम्बाला इत्यादि जिले हैं। पंजाबी प्रदेश में

कमेटी दूसरी प्रादेशिक कमेटी से कह सकती है कि दोनों प्रादेशिक कमेटियों की एक सम्मिलित उपसमिति बनाई जाये। दूसरी प्रादेशिक कमेटी हाँ भी कर सकती और न भी।

आंध्र प्रदेश प्रादेशिक कमेटी आॅर्डर, १९५८ में जारी किया गया। इस आॅर्डर मे तेलङ्गाना प्रदेश के लिए कमेटी बनाने की व्यवस्था की गई है। मुख्य मन्त्री और स्पीकर इस प्रादेशिक कमेटी के सदस्य नहीं हैं। प्रत्येक मन्त्री को प्रादेशिक कमेटी मे बोलने का अधिकार है, परन्तु वोट देने का अधिकार केवल उस मन्त्री को है जो उस प्रदेश से निर्वाचित किया गया है।

प्रादेशिक कमेटी को उन सभी विषयो पर अधिकार है, जोकि सूची में लिखे गए हैं। वे विषय निम्नलिखित हैं :—स्थानीय स्वायत्त शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्थानीय अस्पताल, प्राइमरी और सैकण्डरी शिक्षा, नशाबन्दी, जमीनों का बेचना, लघु उद्योग-धन्धे, मण्डियाँ, मेले, कोआपरेटिव सोसाइटियाँ, आर्थिक योजनाएँ इत्यादि।

क्षेत्रीय समितियों का बड़ा उद्देश्य क्षेत्रीय हितों की रक्षा करना है। पंजाब में जिन इलाकों में सिक्ख भारी संख्या में हैं उनका उद्देश्य उनके हितों की रक्षा करना है। क्षेत्रीय योजना एक समझौता है। पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने लोक सभा में कहा था "यह एक भली सुचारु स्वस्थ योजना है जिससे जनता में और उसके सब अंगो में भी परस्पर प्रेम, एकता, कल्याण व विकास की भावनाएँ उत्पन्न होंगी।" जब मास्टर तारा सिंह ने क्षेत्रीय योजना को स्वीकार किया तो उन्होंने माना कि यह आपस में एक समझौता है। उनके विचार में यह योजना "सब कुछ है और कुछ भी नहीं। यह सब कुछ होगी यदि हम सिक्खों के अन्दर से घृणा, तनाव व भय दूर करने में सफल हो और हिन्दुओं के अन्दर भी यह भाव न घुसने दें। लेकिन यह कुछ भी नहीं होगी यदि हम हिन्दुओं व सिक्खों के बिगड़े हुए सम्बन्धों में सुधार नहीं ला सकते।"

क्षेत्रीय योजना के समालोचक इसमें कुछ दोष बताते है। इस योजना के अनुसार राज्य विधान सभा के अधिकार क्षेत्रों में बँटवारा हो जाता है परन्तु शासन को दो हिस्सों में बाँटना असम्भव है। क्षेत्रीय सीमाओं का देश की उन्नति पर बुरा प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। क्षेत्रीय समितियों और विधान सभा का प्रतिद्वन्द्वी बनने की सम्भावना है और यह अच्छा नहीं। प्रो० व्हीरे के अनुसार "एक समिति के विचार में ही यह निहित है कि वह एक ऐसी संस्था है जो किसी प्रकार से या किसी हद तक उस व्यक्ति या संस्था के प्रति अन्त में उत्तरदायी या अधीन है जिसने उसे बनाया और शक्ति व कर्त्तव्य सौंपा है। समिति के विचार मे यह निहित है कि उसे सत्ता किसी ने प्रदान की है या वह किसी पर इसके लिए निर्भर है; उसका अपना स्वतंत्र कोई आधार नहीं है। वह किसी दूसरे की ओर से या दूसरे के प्रति उत्तरदायी बन कर कार्य करती है। क्षेत्रीय योजना राज्यपाल के लिए भी कठिनाई पैदा कर सकती है। संसदीय सरकार का राज्य-मुखिया होने के नाते राज्यपाल को मंत्रियों की मंत्रणा के अनुसार चलना होता है। ऐसा भी हो सकता है कि कभी-कभी गवर्नर का फैसला इलाकाई मामलों पर कैबिनिट के खिलाफ हो। यह अच्छा न होगा।"

सरकार के विचार मे तो क्षेत्रीय समितियाँ पंजाब में ठीक काम कर रही है। लेकिन अकाली उससे संतुष्ट नही हैं। उन्होंने फिर पंजाबी सूबे की मांग की है। सरकार क्षेत्रीय समितियों के अधिकार-क्षेत्रो को बढ़ा कर सिक्खो की मांग पूरा करने के लिए तैयार है, लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है सिक्ख इसको न मानेंगे। ऐसा जान पड़ता है पंजाब में यह इलाकाई कमेटियो की स्कीम कामयाब नही रही।

Suggested Reading

Mukherjee, A. R. : Parliamentary Procedure in India.

अध्याय ४९

राज्य न्यायपालिका

(STATE JUDICIARY)

उच्च न्यायालय (High Court)—संविधान की धारा २१४ से २३७ तक का सम्बन्ध राज्य न्यायपालिका से है। धारा २१४ के अनुसार, प्रत्येक राज्य में एक उच्च न्यायालय होगा। धारा २१५ के अनुसार, प्रत्येक उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Court of Record) होगा तथा उसे अपने अपमान के लिए सजा देने की शक्ति के साथ ऐसे न्यायालय की सब शक्तियाँ प्राप्त होगी।

प्रत्येक उच्च न्यायालय मुख्य न्यायाधीश तथा ऐसे दूसरे न्यायाधीशों से मिल कर बनेगा, जिन्हे राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझे। परन्तु इस प्रकार नियुक्त न्यायाधीश उस अधिकतम संख्या से अधिक न होगे जिसे राष्ट्रपति समय-समय पर उस न्यायालय के बारे मे आदेश द्वारा नियत करेगा।

राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा (Seal) के साथ 'वारण्ट' (अधिपत्र) द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को भारत के चीफ जस्टिस, उस राज्य के राज्यपाल, मुख्य न्यायाधीश को छोडकर अन्य न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में उस राज्य के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से नियुक्त करेगा। जज ६२ वर्ष की आयु होने तक अपने पद पर रह सकता है। किन्तु वह अपने हस्ताक्षर और लेख के द्वारा राष्ट्रपति को अपना त्याग-पत्र दे सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के हटाने की रीति से कोई न्यायाधीश अपने पद से राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। किसी न्यायाधीश का पद राष्ट्रपति द्वारा उसे सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किये जाने पर या राष्ट्रपति द्वारा उसे भारत के किसी दूसरे न्यायालय को तबादला कर दिए जाने पर खाली कर दिया जायगा।

कोई भी व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नही बनाया जा सकता, जब तक कि वह भारत का नागरिक न हो और दस वर्ष तक भारत में किसी न्याय सम्बन्धी पदवी पर आसीन न रहा हो अथवा दस वर्ष तक प्रथम अनुसूची के अन्तर्गत किसी प्रान्त के उच्च न्यायालय में वकालत न कर चुका हो या इसी प्रकार के दो न्यायालयों में वकालत न कर चुका हो।

धारा २१९ के अनुसार, कोई व्यक्ति जो किसी राज्य में उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया गया है, राज्यपाल के सामने अपने पद की शपथ या प्रतिज्ञान (Oath or affirmation) करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा।

संशोधित धारा २२० के अनुसार, यदि किसी व्यक्ति ने २६ जनवरी, १९५० के बाद किसी हाईकोर्ट की जजी की है तो उसे अपनी हाईकोर्ट में वकालत करने की आज्ञा नही।

धारा २२१ के अनुसार, प्रत्येक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ऐसे वेतन दिए जायेंगे जैसे कि दूसरी अनुसूची (schedule) में दिए गए हैं। अनुसूची के अनुसार, भाग 'क' के राज्यों के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ३,५०० रु० मासिक वेतन मिलता है। मुख्य न्यायाधीशों को ४,००० रु० मिलता है। उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश भारत के भीतर अपने कर्त्तव्य-पालन में की गई यात्रा मे किए गए खर्चे को पूरा करने के लिए ऐसे उचित भत्ते पायेगा तथा यात्रा-सम्बन्धी उसे ऐसी सुविधाएं दी जाएँगी जैसी कि राष्ट्रपति समय-समय पर निश्चित करेगा। किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की अनुपस्थिति की छुट्टी (leave of absence) (जिसमे छुट्टी के भत्ते भी है) और पेंशन के बारे मे अधिकार उन व्यवस्थाओं के अनुसार होंगे जो कि संविधान लागू होने के ठीक पहले उस प्रान्त के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशो पर लागू थे, लेकिन संसद् कानून बनाकर उसको बदल भी सकती है, परन्तु किसी न्यायाधीश के न तो भत्ते और न उसकी अनुपस्थिति, छुट्टी या पेंशन के उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के बाद उसके हितों के विपरीत परिवर्तन किया जाएगा।

हाई कोर्ट के जजों के लिए पेंशन का प्रबंध किया गया है और उसके लिए एक क्रम भी निश्चित है। जो जज भारतीय सिवल सर्विस के सदस्य हैं उनके लिए विशेष व्यवस्था की गई है। जिन जजों को चोट लग जाती है या उसके कारण उनकी मौत हो जाती है उस हालत में उन्हें ज्यादा पेंशन दी जाती है। सालाना पेंशन और बखशीश (gratuity) भी विधवाओं को और बच्चों को केवल सालाना पेंशन दी जाती है। जजों के दो वर्ग हैं। पहला चीफ जस्टिस और दूसरे जजों के लिए है। सालाना पेंशन मिला कर चीफ जस्टिस के लिए २०,००० रु० से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और हाई कोर्ट के दूसरे जजों के लिए १६,००० रु० से अधिक नही होनी चाहिए। अगर कोई जज पेंशन का हकदार न भी हो तो भी २६-१-६० के बाद रिटायर होने वाले जज को ६००० रु० सालाना पेंशन मिलेगी। इसका कारण यह है कि नए विधान के अनुसार हाई कोर्ट का कोई जज रिटायर होने के बाद कानूनी पेशा अखतियार नहीं कर सकता।

राष्ट्रपति भारतीय मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of India) के परामर्श से जज को एक हाई कोर्ट से दूसरी हाई कोर्ट में भेज सकता है। जब एक जज को इस तरह तबदील किया जाता है तो जितना समय वह दूसरी हाई कोर्ट में काम करता है उसे अपने वेतन के अतिरिक्त क्षतिपूरक भत्ता मिलता है। यह भत्ता पार्लियामेंट द्वारा कानून बना कर दिया जाता है और जब तक ऐसा नहीं किया जाता, राष्ट्रपति ऐसा भत्ता निश्चित कर देता है।

जब एक हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस की जगह खाली होती है या जब कोई चीफ जस्टिस अपना काम नही कर सकता तो राष्ट्रपति हाई कोर्ट के दूसरे जजो में से एक कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करता है।

धारा २२४ के अनुसार, यदि कार्य के बढने के कारण पिछला काम इकट्ठा

हो जाने से हाई कोर्ट के जजों की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता हो तो राष्ट्रपति ऐसे जज दो वर्ष तक के लिए मनोनीत कर सकता है। यदि हाई कोर्ट का कोई जज अपना कार्य न कर सके तो राष्ट्रपति उसके स्थान पर नया जज लगा सकता है।

धारा २२४क में यह व्यवस्था की गई है कि हाई कोर्ट का चीफ जस्टिस राष्ट्रपति की अनुमति ले कर किसी व्यक्ति को, जो पहले उस न्यायालय में या किसी दूसरे उसी तरह के न्यायालय में न्यायाधीश का कार्य कर चुका हो, उस राज्य के उच्च न्यायालय में बैठने और न्यायाधीश का कार्य करने के लिए कह सकता है। ऐसे व्यक्ति को, इस प्रकार पद निर्वाह करते समय राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किया हुआ वेतना मिलेगा। यद्यपि उसे अधिकार इत्यादि सब होंगे तथापि वह उस न्यायालय का न्यायाधीश न समझा जाएगा।

लॉ कमीशन (Law Commission) का ऐसा विचार है कि जजों को नियुक्त करने की वर्तमान पद्धति असंतोषजनक है। कमीशन ने यह चेतावनी दी है कि यदि न्यायाधीशों का चुनाव केवल योग्यता के आधार पर न किया गया तो देश को बहुत हानि होगी। कमीशन ने यह सिफारिश की है कि हाई कोर्ट के न्यायाधीशों को वहाँ के चीफ जस्टिस की सिफारिश पर ही नियुक्त करना चाहिए। यदि ठीक समझा जाए तो भारत के चीफ जस्टिस की अनुमति भी ली जा सकती है। न्यायाधीशों को सम्पूर्ण देश से चुनना चाहिए न कि किसी एक राज्य से। किसी न्यायाधीश को तब तक हाई कोर्ट का चीफ जस्टिस न बनाया जाये जब तक कि वह अपने आप को उस कार्य के लिए योग्य सिद्ध न कर दे। कमीशन ने यह भी सिफारिश की है कि हाई कोर्ट के जजों को रिटायर करने की आयु ६० वर्ष की बजाये ६५ वर्ष होनी चाहिए। अवकाश-प्राप्ति के बाद हाई कोर्ट के किसी जज को वकालत करने की आज्ञा न दी जानी चाहिए और न ही उसको कोई नौकरी सरकार में दी जानी चाहिए। केवल इसी प्रकार से ही वे निष्पक्ष हो कर अपने कार्य को कर सकते हैं।

हाई कोर्ट के अधिकार (Powers of High Courts)—धारा २२५ के अनुसार, हाई कोर्टों के वही अधिकार होंगे जोकि २६ जनवरी, १९५० से पूर्व उसके थे। जो प्रतिबन्ध उनके अधिकारों पर माल के मुकदमों के सम्बन्ध में थे, वे नये संविधान में दूर कर दिए गये हैं।

२६ जनवरी, १९५० से पूर्व कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के हाई कोर्टों के निम्नलिखित अधिकार थे :—

जहाँ तक उनके प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का सम्बन्ध है वे उन सब मुकदमों को सुन सकते थे जो कि उनके क्षेत्र में पैदा हुए हों। वे उन मुकदमों को भी सुन सकते थे जो कि उन न्यायालयों ने सुने हों जो कि उनके अधीन थे। दीवानी और फौजदारी मुकदमों में वे अपीलें भी सुनते थे। ईसाइयों के विवाह सम्बन्धी मुकदमे भी वे सुन सकते थे। दीवालिए के मुकदमे भी वे सुनते थे। वे कई प्रकार के लेख (writs) भी जारी कर सकते थे। हाई कोर्टों को केवल अपील के अधिकार

हीं न थे बल्कि वे अपने अधीन न्यायालयों के निर्णयों की जाँच-पड़ताल भी कर सकते थे। नए विधान में कई पुरानी पाबन्दियाँ दूर कर दी गई है।

धारा २२६ के अनुसार, प्रत्येक हाई कोर्ट को कई प्रकार के लेख (writs) जारी करने का अधिकार दिया गया है। उन लेखों के नाम Habeas Corpus, Mandamus, Prohibition, Quo Warranto और Certiorari हैं। ये लेख न केवल मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए ही जारी किये जा सकते हैं बल्कि अन्य कार्यों के लिए भी। ऐसी ही व्यवस्था सुप्रीम कोर्ट के लिए सविधान की धारा ३२ में की गई है।

(३) धारा २२७ अनुसार, प्रत्येक उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार मे स्थित न्यायालयों और ट्रिब्यूनलों की निगरानी करेगा। उच्च न्यायालय ऐसे न्यायालयों से विवरण पत्र (returns) माँग सकेगा। ऐसे न्यायालयों की कार्य-प्रणाली और कार्यवाहियों को निबटाने के लिए साधारण नियम बना और जारी कर सकेगा तथा उन ढंगों को नियुक्त कर सकेगा जिनके अनुसार न्यायालयों के पदाधिकारी पुस्तकों, इन्दराजों तथा हिसाब को रखें। उच्च न्यायालय ऐसे न्यायालयों के शेरिफों, क्लर्कों और पदाधिकारियों, न्यायवादियों (attorneys), अधिवक्ताओं (advocates) और वकीलों की फीसों को नियुक्त कर सकेगा। उच्च न्यायालय के द्वारा करार बताई गई शक्तियों का प्रयोग करने से पहले राज्यपाल से अनुमति लेना आवश्यक होगा। सशस्त्र बलों (Armed Forces) से सम्बन्ध रखने वाले किसी कानून के आधीन या द्वारा बने किसी न्यायालय या ट्रिब्यूनल की निगरानी करने का अधिकार उच्च न्यायालय को नहीं होगा।

जब धारा २२७ के आधार पर प्रार्थनापत्र दिया जाता है तब हाई कोर्ट को यह अधिकार नहीं कि वह अपना निर्णय अधीनस्य न्यायालय पर थोप सके। इस धारा का उद्देश्य केवल यह है कि हाई कोर्ट अपनी तसल्ली कर सके कि उसके आधीन न्यायालय ने कानून के अनुसार और अपनी शक्ति के भीतर ही निर्णय दिया है। इसके अतिरिक्त हाईकोर्ट धारा २२७ के आधार पर मुकद्दमे के दोषों अथवा गुणों की जाँच-पड़ताल नही कर सकती। यह शक्ति हाई कोर्ट को इसलिए प्रदान नहीं की गई कि वह अपने आधीन न्यायालयों के निर्णयों मे गलतियाँ निकाले। यदि कोई न्यायालय बिलकुल कानून के विपरीत निर्णय देता है तो हाई कोर्ट उसमें हस्तक्षेप कर सकता है। यदि कोई ऐसी कानून की बात खड़ी हो जाती है, जिसका सर्वसाधारण पर प्रभाव हो, वहाँ भी हाईकोर्ट धारा २२७ के आधीन हस्तक्षेप कर सकता है।

धारा २२८ के अनुसार, यदि उच्च न्यायालय को विश्वास हो जाए कि उसके आधीन न्यायालय में विचाराधीन किसी मामले को इस सविधान का अर्थ करने की अपेक्षा है और किसी मामले को निपटाने के लिए उसका निर्णय होना जरूरी है तो वह उस मामले को अपने पास मँगा लेगा तथा या तो मामले को स्वयं निपटा सकेगा या उस कानूनी प्रश्न को सुलझाएगा और अपने निर्णय की कापी के साथ उसी न्यायालय

को लौटाएगा। उस न्यायालय का कर्तव्य होगा कि उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार ही अपना निर्णय दे।

धारा २२६ के अनुसार, उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों तथा सेवकों की नियुक्तियाँ न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नियुक्त उस न्यायालय का कोई न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा। किन्तु राज्य का राज्यपाल ऐसा नियम बना सकेगा कि कुछ अवस्थाओं में किसी ऐसे व्यक्ति को, जो पहले न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय से सम्बन्ध रखने वाले किसी पद पर राज्य लोक सेवा आयोग (State Public Service Commission) से परामर्श किए बिना नियुक्त न किया जाएगा। उच्च न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की सेवा की शर्तें ऐसी होंगी जैसी कि उस न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या न्यायालय का ऐसा कोई न्यायाधीश या पदाधिकारी जिसे मुख्य न्यायाधीश ने उस कार्य पर लगाया हो, नियम द्वारा निश्चित करे। वेतनों, भत्तों, छुट्टी या पेंशनों से सम्बन्ध रखने वाले नियमों का राज्य के राज्यपाल द्वारा मंजूर किया जाना जरूरी है। उच्च न्यायालय के प्रशासकीय खर्चे राज्य की संचित निधि पर भारित होते हैं।

धारा २३० के अनुसार, संसद् कानून द्वारा किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को बढ़ा सकती है या पहली अनुसूची में बताए गए किसी राज्य मे से उसके क्षेत्राधिकार को कम कर सकती है।

धारा २३१ किसी राज्य मे स्थित उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को राज्य के बाहर बढ़ाने वाले कानूनो के बारे मे विधानमण्डलों पर प्रतिबन्ध लगाती है।

जिला जज (District Judge)—धारा २३३ के अनुसार, किसी राज्य मे जिला जज नियुक्त होने वाले व्यक्ति की नियुक्ति तथा उसकी पदस्थापना और वृद्धि उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्य का राज्यपाल करेगा। कोई व्यक्ति जो संघ या राज्य की सेवा मे पहले से नहीं लगा हुआ है, तभी जिला जज नियुक्त हो सकेगा जब कि वह सात से अधिक वर्षों तक अधिवक्ता या वकील रह चुका हो और उसकी नियुक्ति के लिए उच्च न्यायालय ने सिफारिश की हो।

धारा २३४ के अनुसार, जिला जजों के अलावा दूसरे व्यक्तियों की राज्य की न्यायिक सेवा (Judicial Service) मे नियुक्ति राज्यपाल राज्य लोक सेवा आयोग और उच्च न्यायालय से सलाह करने के बाद करेगा जो उस राज्य के सम्बन्ध मे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता हो।

उच्च न्यायालयों का नियन्त्रण (Control of High Courts)—धारा २३५ के अनुसार, जिला न्यायालयों तथा उसके आधीन न्यायालयों का नियन्त्रण (जिला जज के पद से नीचे किसी पद पर काम करने वाले राज्य की न्यायिक सेवा के व्यक्तियों को लगाना, तरक्की और छुट्टी देने को मिलाकर) उच्च न्यायालय को प्राप्त होगा। किन्तु इस धारा की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि मानो वह किसी ऐसे व्यक्ति से उसके अपील के अधिकार को छीनती है या उच्च न्यायालय को

कानून के आधीन शर्तों के अनुसार अधिकार देती है कि वह उसकी सेवा की ऐसे व्यवहार करे।

धारा २३७ के अनुसार, राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना (Public notification) द्वारा निर्देश दे सकेगा कि इसके पूर्वगामी (foregoing) उपबन्ध तथा उनके आधीन बनाए गए कोई नियम ऐसी तारीख से जो कि वह उस बारे में नियत करे, राज्य के किसी प्रकार या प्रकारो के मजिस्ट्रेटों के सम्बन्ध मे ऐसे अपवादो और रूप-भेदों (exceptions and modifications) के आधीन रहकर जिनका वर्णन अधिसूचना मे हो, वैसे ही लागू होगे जैसे कि वे राज्य की न्यायिक सेवा में लगे व्यक्तियों के बारे में लागू होते हैं।

विधि आयोग (Law Commission) ने न्यायाधीशों के सम्बन्ध मे बहुत से नीचे दिए गए सुझाव दिए है। सुयोग्य युवक स्नातको को न्याय विभाग की ओर आकर्पित करने के लिए एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा (All India Judicial Service) स्थापित करनी चाहिए और राज्यो में न्यायिक सेवा के पहली श्रेणी के ४० प्रतिशत पद इसके द्वारा भरे जाने चाहिएँ। इस सर्विस के अफसर भारतीय प्रशासकीय सेवा (I. A .S.) की नाईं अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा चुने जाने चाहिएँ। इसके उम्मीदवार २१-२५ वर्ष के बीच के विधि स्नातक होने चाहिएँ। उनके लिए कम से कम दो ऐच्छिक परीक्षा-पत्र कानूनी होने चाहिएँ। उनके लिए वकालत कर चुकने की शर्त नही होनी चाहिए। इनके वेतन सब राज्यों में एक जैसे होने चाहिएँ। तरक्की अकेले नौकरी में सालो की वजह से नही होनी चाहिए। नौकरी पूरे होने की आयु ५८ वर्ष होनी चाहिए। नौकरी पूरी करने के बाद अफसरो को सरकार में फिर से नौकरी करने की इजाजत नही होनी चाहिए।

ला कमीशन ने कोर्ट फीस घटाने की भी सिफारिश की है; यूनाइटिड स्टेट्स की तरह फीस नाममात्र होनी चाहिए। कहा यह जाता है कि दीवानी मुकदमा करने वालो पर फौजदारी मुकदमों का खर्च नही होना चाहिए। जैसा इगलैंड मे है न्याय विभाग का खर्च सब टैक्स देने वालों पर नही होना चाहिए। प्रमाणित प्रतिलिपियाँ, दस्तावेज इत्यादि लेने के लिए कोर्ट फीस नही होनी चाहिए।

ला कमीशन ने मुनासिब कानूनी इमदाद देने पर जोर दिया है। इंगलैंड की तरह इमदाद देने की इसने सिफारिश की है। इसने सुझाव दिया है कि वकीलों को चाहिए कि अपनी खुशी से कुछ काम करने के लिए आगे बढ़ें। ला कमीशन ने यह भी सिफारिश की है कि जिन अपराधियों के पास वकील करने की ताकत नही है उन्हें सैशन कोर्ट में पेश होते वक्त या सजा होने से पहले आखिरी अपील के सुनते समय सरकार को अपने खर्च पर वकील रख देना चाहिए। जिस आदमी की एक हजार रु० से ज्यादा की जायदाद नही, वह कंगाल बनकर मुकदमा दायर कर सके और उसी तरह अपना बचाव भी कर सके। हाईकोर्टों के नियम ऐसे होने चाहिएँ जिनमे हाईकोर्ट व नीची अदालतों को गरीबों के लिए वकील रख देने का अधिकार हो।

यह मानना पड़ेगा कि मुकदमे निपटाने के लिए अभी बहुत समय लगता है। "न्याय देर से मिलने का मतलब है न मिलना।" मुकदमों का फैसला देर से होने के बहुत से कारण हैं जैसे आबादी का बढ़ना और उसके कारण मुकद्मेबाजी, ऐसे कानूनों की भारी तादाद जिनसे मुकदमे अदालतों में दायर किए जा सकते हैं, ऐसी दरखास्तें जिनसे बुनियादी हकूक लागू होते हैं, ऐसी दरखास्तें जिनसे परवाने जारी करने के लिए प्रार्थना की जाती है। ऐसा सुझाया जाता है कि अपीलों का लेना कम कर दिया जाए जिससे अदालतों का काम कम हो जाए। यह भी सुझाव है कि प्रशासकीय न्यायालय (Administrative Tribunals) बना देने से अदालतों का काम कम हो जायगा। इससे मालूम पड़ता है कि काम को कम करने का एक मात्र तरीका यह है कि जजों की संख्या बढ़ाई जाए। वे ही काम को कम कर सकते हैं और उसे बढ़ने से रोक सकते है। अपीलों की संख्या को कम करना ठीक नहीं। उससे अन्याय की सम्भावना है। इससे जज भी लापरवाह हो सकते हैं और अगर अपीलें भी न हो सकें तो फिर इन्साफ मिलने के लिए कोई बचाव न होगा और यह कदाचित् न होना चाहिए। एक समय सरकार प्रशासकीय न्यायालय बनाने के लिए तैयार हो गई थी। लेकिन मालूम होता है अब उसका ऐसा विचार नही है। उसका कारण यह विश्वास था कि लोगों को मामूली अदालतों मे ज्यादा इन्साफ मिलेगा।

Suggested Readings

Chitaley and Rao : The Constitution of India. Vol. II, pp. 1395-2144.

Das, B. Jagannadha : The Judiciary in India (AIR 1955, Journal, pp. 42-6).

Iyer, T. S. : Review of Administrative Action by Writ Petitions (AIR 1960, Journal, pp. 107-113).

Ramaswami, V. : The Concept of Administrative Law (AIR, 1957, Journal, pp. 51-54, 58-61).

Rao, K. Suba : Some Problems affecting our Judicial System (AIR 1951, Journal pp. 9-11, 17-19).

Umamaheshwaram, K. : Role of the Judiciary under the Constitution, (AIR 1960, Journal, pp. 5-8).

अध्याय ५०

राज्यों का पुनर्गठन

(REORGANISATION OF STATES)

स्वतन्त्र होने से पूर्व भारत में राज्य बड़ी सख्या मे थे । इनमें से कुछ बड़े थे और कुछ छोटे थे। इन में प्रगति का भिन्न-भिन्न स्तर था। इन पर भारत सरकार की सार्वभौमता उसके राजनीतिक विभाग के द्वारा प्रयुक्त होती थी। भारतीय राजाओं को देश में राजनैतिक चेतना का बढ़ना पसन्द नही था क्योंकि उन्हें इस बात का अत्यधिक भय था कि भारत से ब्रिटिश शासन के समाप्त होते ही उन्हें भी राष्ट्रीयता जड़ से उखाड़ देगी। जब बटलर कमेटी स्थापित की गई तो इन लोगों की ओर से क्राउन (Crown) के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। यह कहा गया कि भारतीय राजाओं का भारत सरकार से कोई सम्बन्ध नही है बल्कि उनका इंगलैण्ड की ब्रिटिश सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है । अतः भारत सरकार अधिनियम १९३५, द्वारा भारतीय राज्यों के भारत संघ में सम्मिलन की व्याख्या कर दी गई। परन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण इसका कोई फल न निकला। भारतीय राजाओं से अधिक-से-अधिक सहायता लेने के लिए भारत सरकार ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि उनकी स्वीकृति के बिना भारत के राष्ट्रवादी तत्वों से कोई समझौता नहीं किया जाएगा। यह परिस्थिति द्वितीय महायुद्ध के सारे काल में रही और १९४६ के मन्त्रिमण्डल नियोग (Cabinet Mission) के आने तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

मन्त्रिमण्डल नियोग योजना ने राज्यों की समस्याओं का सविस्तार अध्ययन न किया। "संविधान सभा (Constituent Assembly) में राज्यों का प्रतिनिधित्व कितना होगा ? उनके प्रतिनिधि किस स्तर पर सविधान सभा में सम्मिलित होंगे ? इन राज्यों की स्थिति आगामी संघ मे क्या होगी ?" ये तथा दूसरे प्रश्न राजाओं के तथा संविधान सभा व भारत के मुख्य राजनीतिक दलों के बीच में बातचीत द्वारा भविष्य में सुलझाये जाने के लिए छोड़ दिए गए थे। संविधान सभा द्वारा राज्यों से बातचीत करने के लिए स्थापित कमेटी तथा राजाओ की विनिमय समिति के बीच बातचीत द्वारा राज्यों के प्रतिनिधि चुनने की विधि, विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि संख्या का निर्धारण और उनके संविधान सभा में सम्मिलित होने से सम्बन्धित दूसरे विषयों के बारे में प्रबन्ध तय हो गया। इस समझौते के अनुसार विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने संविधान सभा में सदस्यता ग्रहण की।

भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, १९४७, द्वारा यह व्यवस्था की "ब्रिटिश सम्राट् का आधिपत्य भारतीय राज्यों पर से समाप्त हुआ तथा ही वे तमाम सन्धियाँ और समझौते, जो कि उस तिथि को अपना ५...

समाप्त हुए।" इस व्यवस्था के कारण भारतीय राज्य बिल्कुल स्वाधीन हो गये और भारत सरकार व पाकिस्तान सरकार को पिछली भारत सरकार के अधिकार व प्राधिकार प्राप्त नही हुए। अधिनियम द्वारा राज्यो की समस्या को सुलझाने का कोई प्रयत्न नहीं था बल्कि यह समस्या नए अधिराज्यो पर ही छोड़ दी गई थी। अधिनियम बनाने वालों को सम्भवतः इस बात का ध्यान नही था कि भारतीय राज्य इस प्रकार स्वाधीन हो जाएँगे और भारत की एकता को छिन्न-भिन्न करेंगे। इंगलैण्ड के महान्याय-वादी (Attorney-General of England) सर हार्टले शॉक्रास ने संसद् में मत प्रकट किया कि "हम राज्यों को पन्द्रह अगस्त को अलग अन्तर्राष्ट्रीय सत्ताओं के रूप में मान्यता देने की प्रस्थापना नही कर रहे है।" इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्री श्री ऍटली ने भी यह विचार प्रकट किया कि "हमारे सम्बन्धो का एक पक्ष यह है कि उन्हें (राज्यों को) अखिल भारत के समान कोई अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता नही दी गई है। इन सन्धियों और समझौतो की समाप्ति के साथ ही राज्य दोबारा स्वाधीन हो जाएँगे। पर वे भौगोलिक भारत के भाग है तथा उनके शासक व वहाँ की जनता मे भी उतनी ही तीव्र देश-भक्ति की भावना है जितनी कि ब्रिटिश भारत के वासियों मे। इसलिए मैं सोचता हूँ कि यह दुर्भाग्य होगा यदि साम्राज्य के सार्वभौमिक सम्बन्ध विच्छेद के कारण ये शेष भारत से कट कर पृथक् रह जाए। उनके वर्तमान सम्बन्धों के विच्छेदन के फलस्वरूप इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होना आवश्यक नहीं। वस्तुतः अभी कई राज्यों ने नये अधिराज्यो के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की है और कुछ ने भारत की सविधान सभा मे प्रतिनिधित्व किया है। साम्राज्य सरकार को यह आशा है कि यथेष्ट काल तक सारे राज्य ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के एक या दूसरे अधिराज्य में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर लेंगे।"

इससे पहले कि हम इस विचार पर करें कि ३० जून की योजना के पश्चात् कांग्रेस द्वारा किस प्रकार राज्यों की समस्या का समाधान किया गया, यह उचित ही होगा कि कांग्रेस की १९४७ से पहले की नीति पर दृष्टि डालें। कांग्रेस के १९३८ के हरिपुरा के अधिवेशन में निम्न प्रस्ताव पास हुआ—

"कांग्रेस सारे राज्यों में वैसी ही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता की इच्छुक है जैसी कि शेष भारत मे, और वह राज्यों को भारत का ऐसा अविभाजनीय भाग मानती है जो कि पृथक् नहीं हो सकता। पूर्ण स्वराज्य, जो कि कांग्रेस का ध्येय है, राज्यो समेत समस्त भारत के लिए है क्योकि स्वाधीनता में भी भारत की सम्पूर्णता और एकता उसी प्रकार से होनी चाहिए जैसी कि पराधीनता मे थी। कांग्रेस को उसी प्रकार का संघ स्वीकार होगा जिसमें कि राज्य स्वतन्त्र इकाइयों के रूप में सम्मिलित हों तथा शेष भारत के समान ही लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता उन्हें भी प्राप्त हो। इसलिए कांग्रेस, राज्यों मे उत्तरदायी सरकार तथा पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता के पक्ष में है तथा इनमें बहुत से राज्यों के अन्दर वर्तमान पिछड़ी हुई दशा तथा स्वतन्त्रता का पूर्ण निषेध और नगर-स्वतन्त्रता का हनन आदि जो परिस्थितियाँ हैं, उनकी निन्दा करती है।"

इस नयी नीति का परिणाम यह हुआ कि राज्यो और प्रदेशों मे स्वतन्त्रता आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ।

१५ जून, १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भारतीय राज्यों के लिए नीति निर्धारित की। जो राजा तब तक संविधान सभा मे सम्मिलित नहीं हुए थे उन्हें ऐसा करने का आमंत्रण दिया गया कि वे भी "ऐसे स्वतन्त्र भारत का सावैधानिक ढाँचा बनाने में सहयोग दें जिसमें कि संघ की दूसरी इकाइयों की भांति राज्य भी समान और स्वायत्त-शासित सम्भागी होंगे।" कांग्रेस ने राज्यों पर जोर डाला कि वे उत्तरदायी सरकार की ओर शीघ्रता से अग्रसर हों "जिससे वह भारत में तीव्रता से परिवर्तित होती परिस्थिति के साथ रह सकें और साथ-ही-साथ अपनी जनता में शांति तथा आत्म-निर्भरता उत्पन्न करें।" कांग्रेस ने राज्यो के स्वाधीन होने के दावे को अस्वीकार कर दिया। कांग्रेस के प्रस्ताव मे कहा गया था—"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी किसी भी भारत के राज्य को यह अधिकार नहीं दे सकती कि वह अपने को स्वतन्त्र घोषित करे और शेष भारत से पृथक् हो जाए। यह भारतीय इतिहास के प्रत्यक्ष मार्ग और आज की भारतीय जनता के आदर्शों के विपरीत होगा।"

"अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को विश्वास है कि राज्यों के शासक वर्तमान परिस्थिति को पूर्णतया समझेंगे और अपनी जनता के साथ पूरा सहयोग देकर भारतीय संघ में जनतांत्रिक इकाइयों के रूप में सम्मिलित हो जायेंगे और इस प्रकार वे अपनी जनता तथा समस्त भारत के ध्येय की पूर्ति मे भाग लेंगे।

"यह कमेटी ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिपादित तथा प्रचारित प्रभुता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करती। और यदि उसे स्वीकार कर भी लिया जाए तो प्रभुता के विच्छेदन का परिणाम बड़ा ही सीमित होगा। प्रभुता के विच्छेदन से राज्यों और सरकार के बीच वर्तमान प्राधिकारो तथा दायित्वो और अधिकारों पर किसी भाँति भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ सकता। अधिकारों तथा दायित्वों को पृथक् ही देखा जाएगा और ये पारस्परिक सहमति से ही नवीकृत अथवा परिवर्तित हो सकते हैं। प्रभुता के विच्छेदन से भारत सरकार और राज्यो के बीच का सम्बन्ध समाप्त नहीं हो जाता। विच्छेदन का परिणाम राज्यों की स्वाधीनता नही। १२ मई के ज्ञापन के अन्तर अर्थों के दृष्टिकोण और १६ मई, १९४६ के दृष्टिकोण से तथा आज के संसार की जनता के सर्वमान्य अधिकारो के प्रमाण से भी यह स्पष्ट है कि राज्यों की जनता का अपने से सम्बन्धित कोई निर्णय करने मे प्रधान अधिकार है। यह मानी हुई बात है कि प्रभुत्व शक्ति का वास जनता में है। अत. यदि प्रभुता के विच्छेदन का परिणाम साम्राज्य और राज्यो के सम्बन्धों की समाप्ति है तो जनता के स्वाभाविक अधिकारों पर कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ सकता।"

इस अवसर पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि राज्यों की स्वाधीनता के लिए दावा ठहरता ही नहीं क्योंकि स्वतन्त्रता किसी राज्य घोषणा द्वारा ही नही निर्धारित होती बल्कि मौलिक रूप से, दूसरे राज्यों की मान्यता प्राप्ति से होती है। ब्रिटिश साम्राज्य की प्रभुता के विच्छेदन से भारतीय राज्य स्वाधीन नहीं हुए। उसके कथना-

नुसार, "भारत सरकार में भी एक प्रकार की प्रभुता अन्तःस्थित है जिसका कभी विच्छेदन नही हो सकता। भारत के प्रधान राष्ट्र में यह अन्तःस्थित प्रभुता भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सुरक्षा आदि कारणों से अवश्य रहनी चाहिए और इन्ही कारणों से इसका उद्‌गम उस समय हुआ जबकि ब्रिटिश सत्ता का भारत पर आधिपत्य स्थापित हुआ।" श्री नेहरू ने स्पष्ट किया कि राज्यों के सामने केवल दो विकल्प हैं या तो वे भारत सघ मे सम्मिलित होकर सामान्य तथा स्वतन्त्र भागीदार बन जाएँ या फिर वे भारत संघ की प्रभुता को मान लें क्योंकि वे शून्य में नही रह सकते। "इस परिस्थिति में तीसरा मार्ग कोई नही था। तीसरे मार्ग से अभिप्राय स्वाधीनता तथा विदेशी सत्ता से विशेष सम्बन्ध है।" श्री नेहरू ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारत संघ किसी प्रभुता का इच्छुक नही है। वह भारतीय राज्यो को विदेशी सत्ताओं के साथ मनमाने समझौते करने की किसी कीमत पर भी आज्ञा नही दे सकता। "हम भारत में किसी राज्य में कोई ऐसी बातें नहीं होने दे सकते जिसके कारण मौलिक रूप से सुरक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध मे या विदेशी सत्ता से मेल-जोल के सम्बन्ध में भारत की सुरक्षा पर कुप्रभाव पड़ता हो।" नेहरू ने अन्त में यह चेतावनी दी—"मैं यह कहना चाहता हूँ और दूसरे देशों को बताना चाहता हूँ कि हम भारत के किसी राज्य की स्वतन्त्रता की मान्यता नही देंगे और किसी विदेशी सत्ता द्वारा इस प्रकार की स्वतन्त्रता की मान्यता को हम अमैत्रिक कार्य समझेंगे।"

राज्यों का प्रवेशन (Accession of States)—कांग्रेस भारतीय राज्यों की समस्या को सन्तोषजनक रूप से सुलझा पाई और इसका सेहरा सरदार पटेल, लार्ड माउण्टबेटन तथा श्री वी० पी० मेनन के सिर पर है। सरदार पटेल के सुझाव अनुसार राज्य मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई तथा वह स्वय इसके मुख्य बने। एक प्रवेश लेख्य (Instrument of Accession) तैयार किया गया और यह राजाओं को भी स्वीकार था। उन्हें भारतीय संघ को केवल सुरक्षा, विदेशी सम्बन्ध तथा यातायात के विषय सौंपने थे। दूसरे विषयों में उनकी स्वाधीनता का पूरा-पूरा विचार रखा जाना था। सरदार पटेल ने राजाओं को यह स्पष्ट कर दिया कि कांग्रेस की इस बात की बिलकुल इच्छा नही कि वह राज्यों के घरेलू कारोबार मे दखल दे। उसने भारतीय राजाओं की देशभक्ति को आह्वान करते हुए कहा—"हम इस समय भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्तर पर हैं। एक साथ यत्न करके हम देश को महत्ता के नवीन स्तर पर ले जा सकते हैं। परन्तु एकता की अनुपस्थिति से हमारे ऊपर नयी कठिनाइयाँ भी पड सकती हैं। मैं आशा करता हूँ कि भारतीय राजा इस बात को ध्यान में रखेंगे कि सार्वजनिक हित के लिए सहयोग न देने पर बड़े और छोटे सबकी अराजकता तथा अव्यवस्था के कारण तबाही होगी। अगर हम साधारण कार्य करने मे भी एकत्रित नही हो सकते तो यह तबाही अवश्य होगी। यह न हो कि आगामी नसलें हमें कोसें कि अवसर प्राप्त होने पर भी हमने उनका एक एक-दूसरे के लाभ के लिए उपयोग न किया। हमें चाहिए कि हम अपने पीछे पारस्परिक लाभदायक सम्बन्ध छोड़ने का श्रेय प्राप्त करें जिससे कि इस पवित्र भूमि को संसार के राष्ट्रों में उचित स्थान प्राप्त

मुसलमान शासक ने पाकिस्तान में प्रवेश कर दिया। राज्य के लोगों ने शासक के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। हर स्थान पर गड़बड़ फैल गई। परिस्थिति इतनी बिगड़ गयी कि शासक का जीवन भी सुरक्षित नहीं था और वह पाकिस्तान को भाग गया। राज्य के मुसलमान दीवान को ९ नवम्बर, १९४७ को भारत सरकार को आमन्त्रित करने के लिए विवश होना पड़ा जिससे कि वह व्यवस्था की पुनर्स्थापना का प्रबन्ध करे। फरवरी, १९४८ में राज्य में परिपृच्छा (referendum) हुई जो कि पूर्णतया भारत मे प्रवेश के पक्ष में थी। राज्य के प्रतिनिधियों ने अपने आपको काठियावाड़ संघ में समावेश करने का निश्चय किया और यह समावेशन २० जनवरी, १९४९ को हुआ।

हैदराबाद (Hyderabad)—जहाँ तक हैदराबाद का सम्बन्ध है यह भारतवर्ष का सबसे बड़ा राज्य था। इसका क्षेत्रफल ८२,३१३ वर्गमील था तथा जनसंख्या १८६ लाख थी। इसकी जनसंख्या का अधिकांश (८९%) हिन्दू था पर इसका शासक मुसलमान था। यह राज्य भारत संघ के बीचों-बीच था तथा चारों ओर से भारत द्वारा घिरा हुआ था। भारत सरकार ने हैदराबाद के निजाम को भी इस बात का निमन्त्रण दिया कि उनका राज्य १५ अगस्त, १९४७ से पहले-पहले भारत संघ में प्रवेश कर जाए। पर निजाम के ऊपर रजाकारों और इतिहाद-उल्-मुसलमीन—जिनका नेता कासिम रिजवी था—का नियन्त्रण था। फलस्वरूप निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया गया। परन्तु निजाम ने भारत सरकार के साथ २९ नवम्बर, १९४७ को विराम सन्धि की। लार्ड माउण्टबेटन द्वारा हैदराबाद की समस्या का हल ढूँढने का हर प्रकार से प्रयत्न किया गया, पर असफल रहा। निजाम विवेक की बात सुनने को तैयार नही था। पाकिस्तान की सहायता से निजाम ने एक सेना एकत्रित करने का प्रयत्न किया जिससे कि वह भारत के साथ लड़ाई कर सके। परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने राज्य के विरुद्ध पुलिस-कार्यवाही करने का निश्चय कर लिया। पुलिस-कार्यवाही १३ सितम्बर, १९४८ को आरम्भ हुई और ३ दिन के अन्दर ही निजाम ने आत्मसमर्पण कर दिया। निजाम को पदच्युत नहीं किया गया पर राज्य को कुछ काल के लिए सैनिक प्रशासन के अन्तर्गत कर दिया गया। १ नवम्बर, १९४८ को हैदराबाद ने भारतीय संघ में प्रवेश कर लिया। बाद मे राज्य के अन्दर एक जनतांत्रिक सरकार बनायी गयी और निजाम उसका सांवैधानिक अधिपति बना।

कश्मीर (Kashmir)—जहाँ तक कश्मीर का सम्बन्ध है इसका क्षेत्रफल ८४,४७१ वर्गमील तथा इसकी जनसंख्या ४४ लाख है। इसकी जनसंख्या का तीन-चौथाई मुसलमान थे और शेष हिन्दू, सिक्ख तथा बौद्ध थे। राज्य का शासक हिन्दू था। लार्ड माउण्टबेटन की सलाह के विपरीत १५ अगस्त, १९४७ से पहले उसने किसी डोमीनियन में प्रवेश नही किया। लार्ड माउण्टनबेटन ने महाराजा को यह सलाह दी थी कि "परिपृच्छा (referendum), जनमत संग्रह, चुनाव द्वारा या यदि ये विधियाँ अव्यावहारिक हों तो प्रतिनिधि जलसों द्वारा ही अपनी जनता की इच्छा जानने का प्रयत्न किए बिना" किसी भी डोमीनियन मे प्रविष्ट न होना चाहिए। उन्होंने उसे

यह विश्वास दिलाया कि यदि वह पाकिस्तान में प्रवेश करेगा तो भारत सरकार इसे प्रमैत्रिक कार्य नही समझेगी। इतने पर भी महाराजा ने कोई निश्चय न किया। पर पाकिस्तान के साथ उसने विराम संधि वास्तव में कर भी डाली। इसके बावजूद पाकिस्तान द्वारा आवश्यक पदार्थों की पूर्ति बन्द कर दी गई और पाकिस्तान ने १५ अगस्त, १६४७ के एक दम बाद ही राज्य के विरुद्ध सीमा आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। जब कबायली, जिनकी पाकिस्तान सहायता करता था, श्रीनगर पर कब्जा करने लगे तो महाराजा ने भारत सरकार से सहायता के लिए प्रार्थना की तथा २६ अक्तूबर, १६४७ को प्रवेशन लेख्य पर हस्ताक्षर कर दिये।

कश्मीर की समस्या अभी तक उलझी हुई है। भारत और पाकिस्तान के बीच अब भी कश्मीर विवाद का विषय है। इस समस्या को सुलझाने के लिए आज तक किए गए सारे प्रयत्न विफल रहे हैं। जम्मू और कश्मीर की नेशनल कान्फ्रेंस व कश्मीर की संविधान सभा दोनों ने भारत में प्रवेशन के पक्ष में अपने निर्णय की घोषणा कर दी है। राज्य में लोकतान्त्रिक सरकार की स्थापना कर दी गई है तथा युवराज कर्णसिंह इस सरकार के सांवैधानिक अधिपति है।

राज्यों का समेकन तथा लोकतन्त्रण (Integration and Democratisation of States)—राज्यों के प्रवेश से राज्यो की समस्या का केवल आंशिक समाधान हुआ। राज्य की जनता में अभी भी बेचैनी थी तथा वह भी प्रशासन मे भाग लेने की इच्छा को लिए हुए थी। भारत सरकार उसकी इस इच्छा-पूर्ति के पक्ष में थी। भारतीय राज्यो के प्रशासन को नवीकरण करने की आवश्यकता थी। अतः भारतीय राज्यों के समेकन, लोकतन्त्रण तथा आधुनिकीकरण का कार्य एक साथ किया गया, समेकन करने के लिए छोटे राज्यों का पड़ोसी प्रदेशों या राज्यो मे समावेश करने या उनको मिलाकर संघ बनाकर बड़ी राजनीतिक इकाइयाँ बनाने की आवश्यकता थी जिससे कि कुछ स्थिर और परिमाणात्मक इकाइयाँ बन जातीं। समेकन के साथ "समस्त भारत के लिए ऐसे केन्द्र की स्थापना जो कि अखिल भारतीय कार्य की आवश्यकता वाले विषयों में प्रदेशों और राज्यों सब मे एकसार प्रदक्षता से काम कर सके" यह प्रश्न भी सम्बन्धित था। राज्यों के बारे मे जो कच्चा चिट्ठा (White Paper) छापा गया उसके शब्दों के अनुसार "आदर्श यह है कि देश के सारे तत्त्वों का स्वतन्त्र, सुसंगठित और लोकतांत्रिक भारत के रूप में समेकन किया जाए।"

(१) जहां तक कि सबसे छोटे राज्यों का पड़ोसी प्रदेशों या राज्यों में समावेश का सम्बन्ध है, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के राज्यों का सर्वप्रथम समावेश हुआ। ये राज्य संख्या में ३६ थे तथा इनकी जनसंख्या ७० लाख थी और क्षेत्रफल ५६,००० वर्गमील था। व्यक्तिगत रूप मे ये राज्य आधुनिक प्रशासन विधि के लिए बहुत छोटे थे। इनके समावेश की बातचीत १४ और १५ दिसम्बर, १६४७ को सरदार पटेल ने की। समावेशन की व्यवस्था के अनुसार शासक राजाओं ने डोमीनियन सरकार को "अपने राज्यों के अभिशासन के तथा उससे सम्बन्धित सम्पूर्ण व असम्बन्धित रूप में प्राधिकार अधिकार क्षेत्र और सत्ता" का समर्पण किया और एक जनवरी, १६४८ को प्रशासन का

हस्तान्तरण करना स्वीकार कर लिया । १ जनवरी, १९४८ को ये राज्य उड़ीसा और मध्य प्रदेश के भाग बन गए । १६ दिसम्बर, १९४७ को सरदार पटेल ने इस प्रकार कहा—"यह हर एक को स्पष्ट होना चाहिए कि लोकतन्त्र और लोकतांत्रिक संस्थाएँ भी वहीं प्रदक्षता से कार्य कर सकती हैं जहाँ कि वे इकाइयाँ—जिन पर कि ये कार्यान्वित हों—पर्याप्त स्वतन्त्रता में स्थित रह सकें । जहाँ पर कि परिमाण में छोटे होने के फलस्वरूप, इसकी स्थिति के पृथक्त्व के कारण, पड़ौसी प्रदेश या बड़ा राज्य जो भी स्वायत्तशासी क्षेत्र हो उसके साथ सामान्य जीवन के सारे आर्थिक विषयों का सम्बन्ध न होने के कारण, उसकी आर्थिक सम्भाव्यताओं को बढ़ाने के लिए पर्याप्त साधन न होने के कारण, वहाँ की जनता के पिछड़ेपन के कारण या स्वायत्त प्रशासन का भार उठाने की ही अयोग्यता के कारण कोई राज्य आधुनिक पद्धति की सरकार स्थापित करने में असमर्थ हो, वहाँ स्पष्ट और अविवादास्पद रूप से लोकतन्त्र और समेकन की आवश्यकता होती है ।" हमे भारतीय महाराजाओं का इस बात के लिए अभिवादन करना पड़ता है कि उन्होने प्रसन्नता से और स्वेच्छा से अपनी अधिकार-सत्ताओं का समर्पण कर दिया ।

इससे अगला समावेशन दक्षिण के राज्यो का था जिनकी संख्या १७ थी । मार्च, १९४८ मे उनका बम्बई में समावेश कर दिया गया । कोल्हापुर का बाद में समावेश हुआ । इस प्रकार बम्बई प्रेज़ीडेन्सी में १०,८६० वर्गमील क्षेत्र और २७ लाख जनसंख्या का समावेश हुआ । जून, १९४८ मे गुजरात के २८९ राज्य बम्बई प्रेज़ीडेन्सी में समाविष्ट हुए । इन राज्यो का क्षेत्रफल १७,९८० वर्गमील था और जनसंख्या २७ लाख थी । मई, १९४९ में बड़ौदा का बम्बई प्रेज़ीडेन्सी में समावेश हुआ । इसका क्षेत्रफल ८,२३६ वर्गमील और जनसंख्या ३० लाख थी । पंजाब के कुछ छोटे-छोटे राज्य, मद्रास के बगनपल्ली पुदकोट्टी और सन्दूर, पश्चिमी बंगाल का कूच-बिहार, आसाम के खासी पर्वत राज्य, और उत्तर प्रदेश के टिहरी-गढ़वाल, बनारस और रामपुर के राज्य १९४८ और १९४९ मे पास वाले प्रदेशों में समाविष्ट किये गये ।

प्रायः सारे राज्यों के साथ समावेशन समझौते की एक जैसी शर्तें थी । समावेशित राज्य जिस प्रदेश में मिलाये गये वे उसका ही भाग बन गये । समावेशित राज्यों की जनता को प्रादेशिक विधानमण्डल में प्रतिनिधित्व दे दिया गया । दूसरे भारतीय प्रदेशों की भाँति ही भारतीय सरकार अधिनियम १९३५, (संशोधित) इन पर भी लागू हुआ ।

(२) राज्यों के समेकन का एक और रूप **राज्यों का केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों में एकीकरण** (Consolidation of States into Centrally Administered Areas) था । हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, बिलासपुर, भोपाल, त्रिपुरा और मणिपुर के विषय में ऐसा किया गया । पूर्वी पंजाब के २१ राज्यों का एकीकरण करके हिमाचल प्रदेश का संघ बनाया गया । इन राज्यों का क्षेत्रफल १०,६०० वर्गमील और जनसंख्या १० लाख थी । इस संघ का प्रतिष्ठापन १५ अप्रैल, १९४८ को हुआ । बुन्देलखण्ड और भागेलखण्ड के ३५ राज्यों का एकीकरण करके विन्ध्य प्रदेश बनाया गया । इन

राज्यों का क्षेत्रफल २४,६०० वर्गमील और जनसंख्या ३६ लाख थी। राज्य संघ विन्ध्य प्रदेश का एक उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल सहित प्रतिष्ठापन अप्रैल १९४८ में हुआ। पर बाद में भारतीय सरकार द्वारा इसकी सरकार हस्तगत कर ली गई। कच्छ को, जिसका क्षेत्रफल १७,२४६ वर्गमील और जनसंख्या ५ लाख थी, मई १९४८ में चीफ कमिश्नर का प्रदेश बना दिया गया। पंजाब में बिलासपुर राज्य को १२ अक्तूबर, १९४८ को भारतीय सरकार ने ले लिया। भोपाल राज्य को भारतीय सरकार ने १ जून, १९४९ को लिया। त्रिपुरा का राज्य भारत सरकार द्वारा १५ अक्तूबर, १९४९ को लिया गया।

(३) समेकन का एक और रूप राज्य संघों का प्रतिष्ठापन (Formation of State Unions) था। इन संघों की स्थापना इनकी जनता के "भौगोलिक, भाषा सम्बन्धी, सामाजिक तथा सांस्कृतिक" सम्बन्धों को ध्यान में रखकर की गई। इनके शासक राजप्रमुख बने।

१५ फरवरी, १९४८ को काठियावाड के संयुक्त राज्यो (सौराष्ट्र) का प्रतिष्ठापन हुआ। इस संघ में २२२ राज्य, जागीरें अथवा ताल्लुके थे। इसका क्षेत्रफल २१,४५१ वर्ग था और जनसंख्या ४१ लाख थी। इसके महत्वपूर्ण राज्य नवांनगर और भावनगर थे। प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार राज्यों ने अपने क्षेत्रों का संयोजन और समेकन एक ऐसे राज्य के रूप में करना स्वीकार कर लिया था जिसके कि कार्यांग, विधानांग और न्यायांग सामान्य हो। शासकों की परिषद्, जिसके प्रधानमण्डल में पाँच सदस्य हों, बनानी थी। शासकों द्वारा प्रधानमण्डल के प्रधान और उप-प्रधान का चुनाव होना था। प्रधान को संघ का राजप्रमुख बनना था। सारी कार्यकारी शक्ति राजप्रमुख के हाथों में सौंपी गई पर उसकी सहायता और सलाह के लिए मन्त्रि-परिषद् थी। दूसरे अर्थों में उसे एक सांवैधानिक अधिपति के रूप में कार्य करना था। प्रतिज्ञा-पत्र द्वारा शासकों की राज-वृत्ति भी निश्चित कर दी गई थी, उनकी निजी सम्पत्ति, निजी अधिकारों और प्रवेशन अधिकारों की भी रक्षा की गई।

१८ मार्च, १९४८ को संयुक्त राज्य मत्स्य की स्थापना हुई। इसमें अलवर, भरतपुर आदि सम्मिलित थे। ४ अप्रैल, १९४८ को विंध्य प्रदेश संघ बना। ग्वालियर, इन्दौर और मालवा अथवा मध्य भारत के संयुक्त राज्य की स्थापना २८ मई, १९४८ को हुई। इसकी जनसंख्या ८० लाख और क्षेत्रफल ४६,७१० वर्गमील। पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ (पॅप्सू) की स्थापना २० अगस्त, १९४८ को हुई। इसमें पटियाला, नाभा, कपूरथला आदि सात बड़े राज्य सम्मिलित थे। इसका क्षेत्रफल १०,९९९ वर्गमील और जनसंख्या ३५ लाख थी। राजस्थान संयुक्त राज्य की स्थापना तीन अवस्थाओं में हुई। प्रथम राजस्थान संयुक्त राज्य की स्थापना १८ अप्रैल, १९४८ को हुई। इसमें मेवाड़ और राजपूताने के ६ छोटे राज्य सम्मिलित थे। राज्य मे जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर को मिलाकर उसकी पुनः रचना हुई। १५ मई, १९४९ को राजस्थान में मत्स्य संयुक्त राज्य सम्मिलित किया गया। १ जुलाई,

१९४९ को ट्रावनकोर-कोचीन संयुक्त राज्य का निर्माण हुआ। इसका कुल क्षेत्रफल ९१५५ वर्गमील था और जनसंख्या ९३ लाख थी।

इस प्रकार समेकन का कार्य देशवासियों की प्रसन्नता और इच्छा अनुसार किया गया।

भारतीय राजाओं के आधिपत्य में रियासतों में एकतन्त्रात्मक सरकारें थी। जनता को राज्यों के प्रशासन में किंचित् मात्र भी अधिकार प्राप्त नहीं था, राजा जो चाहते थे, करते थे। शासक राजाओं की निजी आय और राजस्व में कोई भेद नहीं किया जाता था।

पर भारत की स्वतन्त्रता और राज्यों के समेकन के बाद इस प्रकार की स्थिति नही रह सकती थी। राज्यों की जनता प्रशासन में भाग लेना चाहती थी और भारत सरकार की उनके साथ पूरी सहानुभूति थी। अतः इसमे कोई हैरानी की बात नही कि जब राज्यों का प्रदेशों में समावेश हो गया तो उन राज्यों की जनता को भी सम्बन्धित राज्यो की जनता की समता प्राप्त हो गई। जब भारत सरकार ने केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की रचना की तो इन राज्यों की जनता को भी प्रशासन में सम्मिलित कर लिया गया। जहाँ-जहाँ राज्यो के संघ बने, वहाँ-वहाँ सम्पूर्ण उत्तरदायी सरकारें बनाई गईं। यह बात ठीक है कि जो लोग केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों में रहते हैं उन्हें अपने प्रशासन पर पूर्णतया नियन्त्रण नहीं है पर दूसरे भारतीय राज्यों की जनता के लिए पूर्णतया उत्तरदायी सरकारें स्थापित की गईं। राज्यों में विधानांग की स्थापना की गई और उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल उनको दिए गए। राजप्रमुखों को राज्यों का सांवैधानिक अधिपति बनाया गया।

राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission)—चिरकाल से यह माँग की जा रही थी कि भारत के प्रदेशों का भाषाओं के आधार पर पुनर्गठन होना चाहिए। यह कहा जाता था कि तत्कालीन प्रदेश ब्रिटिश सरकार द्वारा किसी वैज्ञानिक आधार पर नही बनाए गए थे। समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार इनकी रचना की गई थी। १९४८ में भाषा सम्बन्धी प्रदेश समिति (*Linguistic* Provinces Committee), जिसे दार समिति (Dar Committee) कहा जाता था, की स्थापना की गई कि वह इस विषय में खोज करे। समिति ने प्रस्ताव के विरुद्ध रिपोर्ट पेश की। समिति का विचार था कि राष्ट्रवाद और उपराष्ट्रवाद दोनों इस प्रकार की भावात्मक अनुभूतियाँ है जिनमें से एक का विकास एक-दूसरे के ह्रास द्वारा होता है। दार समिति की तजवीजों पर विचार के लिए एक समिति बिठाई गई। इस समिति में जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और डा० पट्टाभि सीतारामय्या थे। आन्ध्र में श्रीरामुलू के देहान्त के कारण परिस्थिति बहुत तनावपूर्ण हो गई थी अतः भारत सरकार ने न्यायपति वांचू को इस विषय के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए नियत किया। इन परिस्थितियो मे आन्ध्र में पहला भाषा सम्बन्धी राज्य स्थापित हुआ। इससे भाषा सम्बन्धी राज्यो के विचार के समर्थकों का साहस बढ़ा और आखिरकार प्रधान मन्त्री पं० नेहरू ने २२ दिसम्बर, १९५३ को संसद् में यह

वक्तव्य दिया कि भारतीय संघ के राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न पर "विषयात्मक और निष्पक्ष रूप से" विचार करने के लिए एक आयोग की स्थापना की जायेगी "जिससे कि हर एक निर्वाचक इकाई के लोगों का और सामूहिक रूप से सारे राष्ट्र का हित हो।" भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा गृह मंत्रालय के अन्तर्गत एक आयोग की स्थापना हुई। श्री फ़ज़लअली आयोग के अध्यक्ष नियत किए गए। इसके शेष दो सदस्य पं० हृदयनाथ कुंजरू और सरदार के० एम० पणिक्कर थे।

उपरिलिखित प्रस्ताव के पैरा ७ में लिखा है—"आयोग समस्या की परिस्थितियों, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वर्तमान स्थिति और सारे महत्त्वपूर्ण तथा सम्बन्धित तत्त्वों का इस पर प्रभाव आदि इन सब बातों के बारे में छानबीन करेगा। वह पुनर्गठन के सम्बन्ध की किसी तजवीज़ पर भी विचार करने के लिए स्वाधीन है। सरकार यह आशा करती है कि पहले तो आयोग तफ़सीलों में नहीं जाएगा बल्कि समस्या के हल को नियन्त्रित करने वाले मोटे सिद्धान्तों के बारे में अपनी सिफ़ारिशें देगा......। एक क्षेत्र की भाषा और वहाँ की संस्कृति का बड़ा महत्त्व होता है क्योंकि ये वहाँ के सामान्य रहन-सहन के ढंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। राज्यों के पुनर्गठन के बारे में विचार करते समय और भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं जिनका ध्यान रखना पड़ेगा। सर्वप्रथम आवश्यक व ध्यान-योग्य बात भारत की सुरक्षा और एकता का बचाव और उनकी वृद्धि है। वित्तीय, आर्थिक और प्रशासनात्मक बातें भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं, हर एक राज्य के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि सारे राष्ट्र के लिए। भारतवर्ष अपनी आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक उन्नति के लिए एक बड़ी व्यवस्थित योजना पर कटिबद्ध है, और जो-जो परिवर्तन इस राष्ट्रीय योजना को सफल रूप से कार्य रूप में परिणत होने में बाधा डालते हैं, वे राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक हैं।

३० सितम्बर, १९५५ को आयोग ने अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत कर दी और १० अक्तूबर, १९५५ को यह प्रकाशित कर दी गयी। आयोग ने सिफ़ारिश की कि भारत संघ में वर्तमान २७ के स्थान पर १६ राज्य होने चाहिएँ और ३ केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र होने चाहिएँ। जिन राज्यों का लोप होना था वे ट्रावनकोर कोचीन, मैसूर, कुर्ग, सौराष्ट्र, कच्छ, मध्य भारत, भोपाल, विन्ध्य प्रदेश, पेप्सू, हिमाचल प्रदेश, अजमेर और त्रिपुरा थे। कुछ अवस्थाओं में पूरा राज्य और कुछ अवस्थाओं में केवल कुछ भाग का पड़ोसी राज्य अथवा राज्यों में समावेश होना था। पेप्सू और हिमाचल प्रदेश पंजाब के भाग बन गए। आयोग की सिफ़ारिश के अनुसार १६ राज्यों के नाम इस प्रकार थे—मद्रास, केरल, कर्नाटक, हैदराबाद, आन्ध्र, बम्बई, विदर्भ, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, आसाम, उड़ीसा और जम्मू-कश्मीर। दिल्ली, मणिपुर और अन्डेमान व निकोबार केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र घोषित किए गए। सारे 'ग' भाग के राज्यों को समाप्त कर दिया गया। 'क' और 'ख' राज्यों के अन्तर को समाप्त कर दिया गया।

आयोग ने राजप्रमुखों की व्यवस्था को भी समाप्त करने की सिफ़ारिश की। अल्पसंख्यक भाषा-भाषियों के लिए विशेष संरक्षणों की व्यवस्था की गयी। अल्पसंख्यकों

को प्राथमिक शिक्षा-स्तर में अपनी मातृ-भाषा में प्रशिक्षण का अधिकार दिया गया। आयोग ने कुछ अखिल भारतीय सेवाओं के अर्थात् भारतीय चिकित्सा और स्वास्थ्य-सेवा के राष्ट्रीय एकता और अच्छे प्रशासन के दृष्टिकोण से पुनर्गठन की सिफारिश भी की, तथा इसी ध्येय को लेकर आयोग ने यह सिफारिश की कि सामान्य नियम के रूप में अखिल भारतीय सेवाओं की नई भरती का ५० प्रतिशत सम्बन्धित राज्य के बाहर से होना चाहिए और केन्द्र व राज्यों में नियमित तब्दीलियों की व्यवस्था होनी चाहिए। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों में से कम-से-कम एक-तिहाई राज्य के बाहर के होने चाहिएँ जिससे प्रशासन में विश्वास उत्पन्न हो और क्षेत्रवादी संकुचित झुकावों को रोका जा सके। आयोग ने हिन्दी को छोड़कर दूसरी भारतीय भाषाओं के शिक्षण को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर बल दिया। उसने यह भी सिफारिश की कि आगामी कुछ काल तक हिन्दी को और दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं को भी सरकारों और शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिए ग्रहण करने के पश्चात् भी अंग्रेजी को विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा की संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान पर आरूढ़ रखना चाहिए।

इस आयोग की सिफारिशों के विरुद्ध बड़ा संघर्ष हुआ। सम्बन्धित दलों ने देश के अन्दर एक अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। महाराष्ट्रियों ने बम्बई नगर के बारे में बड़ा शोर किया। कांग्रेस हाई कमाण्ड ने घोषणा की कि वह आयोग की सिफारिशों में परिवर्तन करने को तैयार है, यदि तमाम सम्बन्धित दल किसी विकल्प को स्वीकार कर लें। लम्बे-चौड़े विचार-विनिमय हुए और आयोग की सिफारिशों में कई परिवर्तन हुए पर बम्बई नगर की समस्या से सब घबरा उठे। उस समय भी जबकि राज्य पुनर्गठन विधेयक संसद् को भेजा गया महाराष्ट्रवासी बिलकुल असन्तुष्ट थे। परन्तु जब यह विधेयक लोकसभा में विचाराधीन था तो समिति के कारण यह निर्णय हो गया कि महाराष्ट्र और सौराष्ट्र के सारे क्षेत्रों को मिलाकर द्विभाषी बम्बई राज्य की स्थापना की जाये और इसकी राजधानी बम्बई हो। यह विधेयक लोकसभा और राज्य सभा दोनों सभाओं द्वारा पारित हुआ और ३१ अगस्त, १९५६ को राष्ट्रपति ने भी इस पर अपनी अनुमति दे दी।

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, १९५६ (States Reorganisation Act, 1956)—इस ऐक्ट के द्वारा पुराने आंध्र प्रदेश में कुछ इलाके मिला कर आंध्र प्रदेश का नया राज्य बनाया गया। हैदराबाद के राज्य से बहुत सा इलाका लिया गया। कुछ इलाके मद्रास राज्य से मिलाए गए। पहले ट्रावनकोर कोचीन राज्य के इलाकों से केरल का नया राज्य बनाया गया। एक नया तीसरे वर्ग का राज्य लकादीव, मिनिकाय और अमीन दिवी द्वीपों के नाम से बनाया गया। कुछ इलाके हैदराबाद, मद्रास, बम्बे और कुर्ग से लेकर मैसूर के पुराने राज्य में मिला दिए गए। मौजूदा बम्बई सौराष्ट्र और कच्छ के राज्यों में हैदराबाद और मध्य प्रदेश के कुछ इलाके मिला कर नया बम्बई राज्य बनाया गया। वर्तमान मध्य प्रदेश, विन्ध्यप्रदेश, भोपाल और कुछ इलाका राजस्थान से लेकर मध्यप्रदेश का नया राज्य बनाया गया। अजमेर राजस्थान में मिला दिया गया। पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्यों का संघ पंजाब राज्य में मिला दिया गया।

संविधान की पहली अनुसूची (Schedule) को सुधारा गया। 'क' वर्ग के १३ राज्य आंध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, बम्बई, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश और पश्चिमी बंगाल बनाए गए। 'ख' वर्ग का एक राज्य और पांच केन्द्रीय इलाके दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मनीपुरा, त्रिपुरा और लका दिव, मिनिकाय और अमीन दिव द्वीप बनाए गए।

भारत को पांच क्षेत्रों में बांटना था और प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक क्षेत्रीय परिषद् बननी थी। उत्तरीय क्षेत्र में पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश इत्यादि होने थे। केन्द्रीय क्षेत्र में उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश थे। पूर्वी क्षेत्र में बिहार, पश्चिमी बंगाल, उडीसा, आसाम, मनीपुर और त्रिपुरा थे। पश्चिमी क्षेत्र में बम्बई और मैसूर के राज्य थे। दक्षिणी क्षेत्र में आंध्र प्रदेश, मद्रास और केरल थे। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत एक केन्द्रीय मन्त्री, प्रत्येक राज्य का मुख्य मन्त्री और दो मन्त्री होने थे। प्रत्येक परिषद् में केन्द्रीय मंत्री उसका अध्यक्ष बनता और राज्यों के मुख्य मन्त्री बारी-बारी उपाध्यक्ष एक-एक साल के लिए बनते। हर एक परिषद् की सहायता के लिए कुछ सलाहकार भी होते। परिषद् की बैठकों की तिथि अध्यक्ष द्वारा नियत की जाती थी। ये बैठकें परिषद् के क्षेत्र के राज्यों में बारी-बारी की जाती। सब निर्णय बहुमत से किए जाते। बराबर वोटों की अवस्था में अध्यक्ष अपने निर्णायक मत का निर्वाह करता। प्रत्येक बैठक की कार्यवाही केन्द्रीय सरकार व सम्बन्धित राज्य सरकार को भेजनी होती थी। प्रत्येक परिषद् के पास कार्यकर्ताओं का एक कार्यालय होता था जिसमें एक सचिव, एक संयुक्त सचिव, व दूसरे कार्यकर्ता, जिन्हें अध्यक्ष जरूरी समझे, रखे जाते थे। राज्यों के मुख्य सचिव, जिनका प्रतिनिधित्व भी इन परिषदों में होना था, वे बारी-बारी एक-एक साल के लिए इनके सचिव बनते। इन परिषदों के कार्यालय परिषद् की इच्छा के अनुसार क्षेत्र में जहाँ वे चाहते, स्थापित करते। केन्द्रीय सरकार इन कार्यालयों का सारा खर्च बर्दाश्त करती। क्षेत्रीय परिषद् परामर्शदात्री संस्था का काम देती और जिन राज्यों के प्रतिनिधि परिषद् में होते उन सब मामलों पर जिनमें सब राज्यों की रुचि होती, विचार-विमर्श करती। परिषद् केन्द्रीय व राज्य सरकारों को ऐसे मामलों की सूचना देती थी जिनमें उनको कुछ कार्यवाही करनी होती। आर्थिक, सामाजिक, भाषाई सीमा, योजना, अल्पसंख्या सम्बन्धी झगड़ों व अन्तर-प्रदेशीय यातायात के मामलों पर विचार-विमर्श कर सकती थी और अपने सुझाव भी भेज सकती थी। क्षेत्रीय परिषदों की सम्मिलित बैठकें भी हो सकती थी।

केन्द्रीय सरकार ने एक परिसीमन आयोग (Delimitation Commission) बनाना था। मुख्य निर्वाचन आयुक्त को अपने पदाधिकार से इसका एक सदस्य बनना था, दो और सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने थे। केन्द्रीय सरकार इन सदस्यों में से किसी एक को उसका अध्यक्ष बनाती। आबादी के आधार पर कमीशन आंध्र प्रदेश, बम्बई, केरल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मैसूर, पंजाब और राजस्थान में अनुसूचित जातियों (Scheduled Castes Tribes) के लिए लोक सभा में और राज्य विधान

सभाओं में प्रतिनिधियों व ो संख्या निर्धारित करता। इस आयोग को संसद् व विधान सभाओं के निर्वाचन क्षेत्र बनाने थे जिनमें प्रत्येक नए राज्य को बांटा जाना था, प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में सदस्यों ी और अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करनी थी। प्रत्येक नए रा ज्य में आई० ए० एस० व आई० पी० एस० का राज्य सेवा वर्ग (State Cadre) बन ाना था। इन दोनों वर्गों की मौलिक बनावट व संख्या का निर्धारण केन्द्र सरकार द्व ारा होना था।

तीसरे वर्ग के राज्य सरकारों के ऐक्ट १६५१ को पहली नवम्बर १६३६ में बदल दिया गया। प्रत्येक राज्य के लिव लोक सभा व विधान सभाओं में कितने-कितने सदस्य नियत किये गए, उनका विवरण राज्य पुनर्गठन अधिनियम १६३६ की तीसरी अनुसूची में मिलता है।

संघीय क्षेत्र (Union Territories)—१६५८ में संशोधित संविधान के भाग ८ में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक संघीय क्षेत्र का प्रशासन राष्ट्रपति, जहाँ तक वे उचित समझेंगे एक प्रशासक द्वारा करेंगे जिसे वे नियुक्त करेंगे और उचित पद संज्ञा (designation) देंगे। राष्ट्रपति चाहे तो वे एक राज्यपाल को साथ के संघीय क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त कर दें और उस अवस्था में वह राज्यपाल प्रशासक के रूप में उस संघीय क्षेत्र के लिए अपने मंत्रिमंडल से स्वतन्त्र कार्य करेगा। राष्ट्रपति संघीय क्षेत्र अंडमान, निकोबार द्वीपों और लकादिव, मिनिकाय और अमिनदिव द्वीपों की शान्ति, प्रगति व सुशासन के लिए नियम बना सकते हैं। मौजूदा कानून या संसद् के अधिनियम, जो किसी संघीय क्षेत्र में पहले लागू होते हों, उनको राष्ट्रपति द्वारा दिए हुए निर्देश निर्मूल कर सकते हैं या बदल सकते हैं। जब राष्ट्रपति उन्हें लागू करेंगे तो उनमें वही बल होगा जो संसद् के किसी अधिनियम का उस संघीय क्षेत्र पर होता है।

संघीय क्षेत्र प्रशासन अधिनियम १६६३ संसद् द्वारा पारित हुआ और उसे १० मई, १६६३ को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। इससे संघीय क्षेत्रों में विधान सभाओं की व्यवस्था की गई है। एक विधान सभा के सदस्यों की संख्या ३० से कम और ४० से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। तीन से अधिक सदस्य मनोनीत नहीं किए जाने चाहिएँ। सभा का जीवन तीन वर्ष है। एक अध्यक्ष और एक उप-अध्यक्ष की व्यवस्था की गई है। संघीय क्षेत्र के प्रशासक को विधान सभा को संदेश भेजने और सम्बोधन करने का अधिकार है। प्रत्येक मन्त्री विधान सभा में बोल व भाग ले सकता है। संविधान की सातवीं अनुसूची में दी हुई राज्य सूची व समवर्ती सूची (State list and Concurrent list), जिनका सम्बन्ध संघीय इलाकों से है उसके अनुसार संघीय क्षेत्र की विधान सभा सारे क्षेत्र के लिए या उसके किसी हिस्से के लिए कानून बना सकती है। यदि संघीय क्षेत्र की विधान सभा कोई कानून बना दे, जो संसद् द्वारा बनाए हुए किसी कानून का विरोध करती है, तो उस हालत में विधान सभा का कानून निरर्थक होगा और संसदीय कानून ही सिद्ध होगा। नीचे दिए हुए विषयों पर कोई विधेयक या संशोधन विधान सभा में बिना प्रशासक की पहले स्वीकृति लिए प्रस्तुत न किया जा सकेगा :

(१) न्याय आयुक्त के न्यायालय को आयोजित व संगठित करना।

(२) न्याय आयुक्त के न्यायालय को संविधान की सातवी अनुसूची में दी हुई राज्य सूची व समवर्ती सूची के अनुसार नियत करना।

यदि कोई विधेयक या संशोधन नीचे दिए हुए विषयों के सम्बन्ध मे होगा तो वह बिना प्रशासक की स्वीकृति के विधान सभा मे पेश नही किया जा सकेगा :

कर लगाना, उतारना, बन्द, तबदील या स्थिर करना, ऐसे कानून का जिसमे संघीय क्षेत्र की सरकार के पहले या होने वाले वित्तीय आभारों (Financial obligations) का संशोधन, संघीय क्षेत्र की सचित निधि (Consolidated Fund) मे से धन का व्यय करना, किसी खर्च को संघीय क्षेत्र की सचित निधि में डालना, या ऐसे किसी खर्च को बढाना या सचित निधि मे किसी रकम को जमा करना, खर्च करना या सुरक्षित रखना।

जब विधान सभा द्वारा एक विधेयक पारित किया गया है तो उसे प्रशासक के सम्मुख रखा जाएगा जो उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए रख लेता है।

राष्ट्रपति उसे स्वीकार या अस्वीकार करते है या उस पर पुन. विचार करने के लिए विधान सभा को लौटा देते हैं।

राष्ट्रपति की स्वीकृति लेकर संघीय इलाके के प्रत्येक वर्ष के खर्च व आमदनी का तखमीना विधान सभा के सामने रखना प्रशासक का कर्त्तव्य होता है।

प्रत्येक संघीय क्षेत्र के लिए एक मन्त्रिमंडल और एक मुख्य मन्त्री की व्यवस्था की गई है जो प्रशासक को उसके कर्त्तव्य-पालन में सहायता करने के लिए मंत्रणा देता है। यह मन्त्रणा प्रशासक को केवल उन विषयों के सम्बन्ध में होती है जिनमे विधान सभा को विधेयक बनाने का अधिकार है, दूसरे न्याय या अर्ध न्याय सम्बन्धी कर्तव्य, जिनका पालन प्रशासक के विवेक पर निर्भर है, उनमें मन्त्रिमण्डल की मन्त्रणा का प्रवेश नही होता। जब कभी प्रशासक व मन्त्रिमण्डल में मतभेद होता है तो प्रशासक उसका निर्णय राष्ट्रपति द्वारा कराता है और उस निर्णय के अनुसार कार्य किया जाता है। राष्ट्रपति मुख्य मन्त्री को नियुक्त करता है और मन्त्रिमंडल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मुख्य मन्त्री की मंत्रणा के अनुसार होती है। मन्त्री राष्ट्रपति की प्रसन्नता तक पद धारण करता है। विधान सभा के प्रति मन्त्रिमण्डल की सामूहिक जिम्मेवारी है। मंत्रियों के वेतन व भत्ते विधान सभा द्वारा नियत किए जाते हैं।

प्रशासक और उसके मन्त्रिमंडल को समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा दिए हुए आदेशों का पालन करना होता है।

यदि किसी अवस्था में संघीय क्षेत्र में वैधानिक यंत्र क्रियाहीन हो जाए तो उस अवस्था के लिए भी उचित व्यवस्था की गई है।

राज्यों को पुनर्गठित करने का आधार—राज्यो को पुनर्गठित करते समय कुछ मौलिक विचार हमें ध्यान में रखने चाहिएँ। सब से पहले देश की एकता का ध्यान होना चाहिए। ऐसी कोई योजना, जिससे खेंचातानी व तनाव की सम्भावना हो, उसे रद्द कर

देना चाहिए। अपकेन्द्रीय शक्तियों को राष्ट्र की एकता के रास्ते में खड़े नहीं होने देना चाहिए। प्रादेशिक व भाषाई जनून को दूर करना होगा। ऐसे अवसर मिलने चाहिएँ जिससे प्रत्येक दल में मेधा का संचार हो। इसी तरह राज्यों को फिर से संगठित करते समय आर्थिक आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। *प्रत्येक राज्य में आत्मनिर्भरता* व विकास के लिए उचित आर्थिक साधन होने चाहिएँ। आत्मनिर्भर इकाइयाँ होनी चाहिएँ ताकि अपने साधनों द्वारा वे अपना व्यय निकाल सकें। केन्द्रीय सरकार पर आर्थिक निर्भरता नहीं होनी चाहिए।

पुनर्गठन का मुख्य उद्देश्य प्रशासकीय सुविधा होनी चाहिए। पुनर्गठन से व्यापार व उद्योग में सुविधा होनी चाहिए। इलाके बाँटते समय लोगों के विचारों का ध्यान रखना चाहिए। इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रत्येक अंग को अपना स्थान चुनने का अधिकार दिया जाएगा। भारतीय संघ के अंगों के लिए अपने लिए स्थान निश्चित करने का सवाल ही नहीं उठता।

राज्यों को फिर से गठित करते समय हमें यह कदाचित् न भूलना होगा कि प्रत्येक राज्य का उचित इलाका होना चाहिए। छोटे राज्यों के पक्षपातियों के विचार में जनता प्रशासन के निकट रहती है। जनता को अपनी जरूरतों और सरकार को उनकी समस्याओं से सामीप्य प्राप्त होता है। लोग और उनके नुमाइन्दे आपस में जुड़े हुए होते हैं। *सामुदायिक योजनाओं के लिए जन सहयोग अधिक रहता है।* छोटे राज्यों के प्रतिवादियों के विचार में छोटे राज्य योजना कार्यों में बाधा होते हैं। जन सहयोग राज्य के इलाके व आबादी पर निर्भर नहीं है। छोटे राज्यों में खर्च अधिक और आय कम होती है। यह भी कहा जाता है कि प्रशासन में सफलता राज्य के छोटे होने पर निर्भर नहीं है। अनुभव से देखा गया है कि बड़े राज्यों में प्रशासन सब से अच्छा है।

भाषाई राज्यों के पक्षपातियों के विचार में राज्यों को भाषाओं के आधार पर गठित करने में ही लाभ है। उनके विचार में भाषाई राज्यों में संयुक्त (Composite) राज्य की अपेक्षा गणतन्त्र राज्य अधिक सफल रहेगा। भाषाई राज्य में सामाजिक *एकता* होगी जो गणतन्त्र के लिए परम आवश्यक है। इसके बिना अवस्था विकट रहती है। *जहाँ जनता में एकता नहीं, वहाँ गणतन्त्र प्रणाली अनुकूल नहीं रहती।* अनेकता की अवस्था में राज्य में पक्षपात, प्रमाद और एक दल के द्वारा दूसरे का अहित होने की सम्भावना है। पक्षपात रहित शक्ति को योग्यता के आधार पर व्यय करने के स्थान पर एक दल के हित में व्यय किया जाता है। भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करने में भाषाओं का भी विकास होगा। भारत जैसे संघ (Federal Union) में यह स्पष्ट है कि इसके अंग केवल प्रशासन की सुविधा के लिए ही आपस में नहीं जोड़ दिए गए। संघ के अंगों में भी एकता आवश्यक है, यदि संघ को चिरंजीवी होना है। *यह एकता केवल तब सम्भव है जब राज्यों का संगठन प्रत्येक राज्य में एक भाषा के आधार* पर किया जाए, क्योंकि भाषा द्वारा ही मनुष्य अपने विचारों व भावों को व्यक्त करता है और *भाषा के द्वारा* एकता का संचार होता है। भाषा ही राज्यों के पुनर्गठन का आधार होनी चाहिए।

यह भी कहा जाता है कि शासन क्षेत्रीय भाषा में चलाना चाहिए। बहुत भाषाएँ शासन को कमजोर व निकम्मा करती हैं। यदि विधान सभा में सदस्यो की अच्छी संख्या सभा की कार्यवाही को भाषा की भिन्नता के कारण न समझ सके तो विचार-विमर्श कठिन हो जाता है। जनता की सहानुभूति पर शासन की सफलता निर्भर है और वह तब प्राप्त होगी जब लोग एक ही भाषा को लिखेंगे और बोलेंगे। क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षण में भी सहायता कर सकती हैं। भाषाई राज्यों की मांग केवल सांस्कृतिक उद्धार के लिए नहीं है। उसे भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले दलों के लिए राजनैतिक व आर्थिक न्याय भी दिलाना होगा। बहुभाषाई राज्यो मे राजनैतिक नेतृत्व व शासकीय सत्ता उस दल के हाथो में रहती है जिन्हें भाषा के आधार पर बहुमत प्राप्त है और इस प्रकार भाषाई अल्पमत वाले पीड़ित रहते हैं। परिणाम यह होता है कि परस्पर प्रेम व सहयोग जो गणतन्त्र को सफल बनाने के लिए परमावश्यक हैं, उनका लोप हो जाता है।

संयुक्त राज्य तब सम्भव है जब भिन्न-भिन्न भाषाई दलों को भिन्न-भिन्न राज्यों में वितरित कर दिया जाए। तथ्य यह है कि कुछ इलाकों में कुछ भाषाओं का प्रभाव है। संयुक्त राज्यों मे भाषाई भेद ने सारे शासन को दूषित कर दिया है। ऊँचे शासकीय पद प्रबल भाषाई दलों द्वारा सम्भाल लिए गए है और नियुक्ति व प्रगति में शासकीय शुद्धि व निष्पक्षता का अभाव हो गया है। पहले ही अधिकांश राज्य एक भाषा के आधार पर बने हुए है, इसलिए यह कहना कि भाषाई राज्यो को बनाना कष्टप्रद और राष्ट्रीय एकता में बाधा बनेगा, निरर्थक है।

भाषाई राज्यों के विरोधियों का कहना है कि भाषाई राज्यो का सबसे पहला दुष्परिणाम यह होगा कि जितने दल हैं उतने राष्ट्र अपनी भाषा व जाति का अहंकार लिए पैदा हो जाएँगे। विधान सभा राष्ट्रों की सभा का रूप लेगी। राजनैतिक अवज्ञा को जन्म देगी। भाषाई राज्य केन्द्र और राज्य सरकारों में आवश्यक शासकीय सम्बन्धो के लिए घातक है। यदि प्रत्येक राज्य अपनी-अपनी भाषा को सरकारी भाषा का स्तर दे दे तो केन्द्र को उतनी भाषाओं में पत्र-व्यवहार करना होगा, जितने राज्य हैं। प्रत्येक राज्य में न्यायालय वहाँ की हाईकोर्ट समेत राज्य की भाषा मे काम करेंगे। क्योंकि हाईकोर्ट की अपील सुप्रीमकोर्ट में की जाती है, इसलिए सुप्रीमकोर्ट के जजो को भी उतनी भाषाएँ सीखनी होगी, जितने राज्य हैं। यह असम्भव होगा। एकता के स्थान पर देश का बँटवारा हो जाएगा।

लेखा परीक्षा (Account and auditing) की दृष्टि से भी भाषाई राज्य उचित नहीं है। अखिल भारतीय स्तर पर लेखा परीक्षा में समानता व समन्वय लाने मे कठिनाई होगी। यह कठिनाई बहुभाषाई राज्य में यद्यपि बिलकुल दूर न होगी, तो कम जरूर होगी।

एक और कठिनाई यह होगी कि एक-भाषाई राज्यों का बनाना भी सदैव सम्भव न होगा। कितना भी प्रयत्न इस ओर किया जाए, तो भी पूर्णरूपेण एक-भाषाई राज्य बनाने में सफलता इसलिए न होगी क्योंकि बहुत से ऐसे इलाके हैं जिनमें

एक से ज्यादा भाषाएँ बोली जाती हैं। हम लोगों को एक स्थान पर स्थिर रहने के लिए भी नही कह सकते है। ऐसा यदि करेंगे तो इससे देश की अवनति होगी।

एक भाषा का सिद्धान्त ही निर्मूल है, क्योंकि इससे लोगों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में बाधा होगी। इससे मानसिक उन्नति भी रुँध जाएगी। इससे अखिल भारतीय नेतृत्व का भी विकास न होगा। फिर भाषाई राज्य में यह भावना व्याप्त रहती है कि उस राज्य का सारा इलाका उनकी मिलकियत है। इससे उस भाषाई राज्य के अन्दर अल्पसंख्यक और उसके बाहर के लोग सम्भवतः पराये समझे जाएँ। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि पूर्ण स्वराज्य की माँग की जाने लगे। कुछ राज्यों में ऐसा देखने में भी आया कि अपने राज्य की स्वतन्त्रता के लिए शिक्षा द्वारा ऐसी भावनाओं को दृढ करने की चेष्टा की गई। प्रभावशाली भाषाई दल की प्रशंसा मे गीत सिखाए गए। उनकी भूतपूर्व सफलताओं के सम्बन्ध मे अतिशयोक्तियों का उल्लेख किया गया। बहुधा राज्यों में इनके कारण असहयोग होना स्वाभाविक है। इसलिए राज्यों का भाषाओं के आधार पर पुनर्गठन देश के हित के विरुद्ध है।

अध्याय ५१

सार्वजनिक सेवाएँ

(PUBLIC SERVICES)

धारा ३१३ व्यवस्था करती है कि जब तक इस संविधान के आधीन अन्य व्यवस्था नहीं की जाती तब तक इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले सब लागू कानून (जो किसी ऐसी लोक-सेवा या पद को, जो इस संविधान के आरम्भ के बाद अखिल भारतीय सेवा के या संघ या राज्य के आधीन सेवा या पद के रूप में बने रहते हैं) लागू हों, वहाँ तक लागू रहेंगे जहाँ तक कि वे इस संविधान की व्यवस्थाओं के संगत हो। जब तक विधानमण्डल कोई अधिनियम बनाकर अन्य व्यवस्था करें तब तक राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल सार्वजनिक सेवा की शर्तों और भर्ती के नियम बनाने मे समर्थ होंगे।

धारा ३१० के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति जो संघ की प्रतिरक्षा सेवा (Defence) या नागरिक सेवा (Civil Service) या अखिल भारतीय सेवा (All India Service) का सदस्य है अथवा संघ के आधीन प्रतिरक्षा से सम्बन्धित किसी पद अथवा किसी नागरिक पद (Civil Post) पर नियुक्त है, राष्ट्रपति की इच्छानुसार पद पर रह सकता है तथा वह प्रत्येक व्यक्ति जो राज्य की नागरिक सेवा का सदस्य है अथवा राज्य के आधीन किसी नागरिक पद को धारण करता है, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की इच्छा के अन्तर्गत पद धारण करता है। इस बात के होते हुए भी कि संघ या राज्य के आधीन नागरिक पद को धारण करने वाला कोई व्यक्ति राष्ट्रपति अथवा राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की इच्छा के अन्तर्गत पद धारण करता है और संविदा (contract), जिसके अन्तर्गत कोई व्यक्ति, जो प्रतिरक्षा-सेवा या अखिल-भारतीय सेवा अथवा संघ या राज्य की नागरिक सेवा का सदस्य (member) नही है, ऐसे किसी पद को धारण करने के लिए इस संविधान के आधीन नियुक्त होता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल या राजप्रमुख विशेष योग्यता रखने वाले किसी व्यक्ति की सेवा को प्राप्त करने के लिए यह जरूरी समझें तो करार किए हुए काल के समय के खत्म होने से पहले उस पद को खत्म कर दिया जाता है अथवा उससे उस पद को खाली करने को कहा जाता है। किन्तु पद छोड़ने वाले को समय से पूर्व पद छोड़ने के लिए मुआवजा दिया जावेगा।

धारा ३११ के अनुसार, जो व्यक्ति संघ की नागरिक सेवा या अखिल भारतीय सेवा या राज्य की नागरिक सेवा का सदस्य है, अथवा संघ के या राज्य के आधीन नागरिक पद को धारण करता है, वह अपनी नियुक्ति करने वाली शक्ति (authority) से निचली शक्ति द्वारा पदच्युत नही किया जायेगा अथवा पद से हटाया नहीं जाएगा।

इस प्रकार कोई व्यक्ति तब तक पदच्युत नहीं किया जायेगा, अथवा पद से हटाया नहीं जाएगा, अथवा प्रास्थिति (rank) में कम नहीं किया जायेगा, जब तक कि उसके बारे में की जाने वाली कार्यवाही के खिलाफ कारण दिखाने का उचित अवसर न दे दिया गया हो। परन्तु यह धारा उस जगह लागू न होगी जहाँ पर किसी व्यक्ति को ऐसे आचार के आधार पर पदच्युत किया गया या हटाया गया या प्रास्थिति मे कम किया गया है जिसके लिए उस पर दोष फौजदारी न्यायालय में लगाया गया हो, या जहाँ किसी व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या प्रास्थिति कम करने की शक्ति रखने वाले प्राधिकारी (authority) का समाधान हो जाता है कि किसी कारण से, जो उस प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध (recorded in writing) किया जाएगा, यदि व्यवहार में उचित नही है कि उस व्यक्ति को कारण दिखाने का अवसर दिया जाए; अथवा जहाँ राष्ट्रपति या राज्यपाल को विश्वास हो जाए कि यदि उस व्यक्ति को ऐसा अवसर दिया जाए तो राज्य की सुरक्षा के हित में यह अच्छा नही होगा। यदि कोई प्रश्न पैदा होता है कि क्या किसी व्यक्ति को ऐसा कारण दिखाने का मौका देना उचित रूप से व्यावहारिक (practical) है अथवा नहीं तो ऐसे व्यक्ति को पदच्युत करने या पद से हटाने या उसकी प्रास्थिति कम करने की शक्ति वाले प्राधिकारी का उस पर फैसला आखिरी होगा।

संविधान की धारा ३३६ के अनुसार संविधान के लागू होने के पश्चात् प्रथम दो वर्षों में आङ्गल-भारतीय सदस्यों की रेलवे, सीमा-शुल्क (Customs), डाक-तार (Postal and Telegraph) विभागों में नियुक्तियाँ उसी प्रकार होंगी, जिस प्रकार १५ अगस्त १९४७ से पूर्व हुआ करती थीं। प्रत्येक आगामी दो वर्षों में उक्त जाति के उक्त विभागों मे सुरक्षित स्थान दस प्रतिशत कम कर दिये जाएँगे। संविधान के लागू होने के दस वर्ष बाद अर्थात् १९६० मे इस प्रकार के आरक्षण समाप्त कर दिये जाएँगे। किन्तु आङ्गल-भारतीय यदि योग्यता में अन्य जातियों के सदस्यों की अपेक्षा अधिक योग्य हैं तो उन्हे सुरक्षित स्थानों से अधिक स्थान भी प्राप्त हो सकेंगे।

लोक सेवा आयोग (Public Service Commissions)—धारा ३१५ में व्यवस्था की गई है कि संघ के लिए एक लोक सेवा आयोग तथा प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा। दो या अधिक राज्य यह क़रार कर सकेंगे कि राज्यो के उस समूह के लिए एक ही लोक सेवा आयोग होगा तथा उस उद्देश्य का प्रस्ताव (resolution) उन राज्यो में से प्रत्येक के विधानमण्डलों द्वारा पास कर दिया जाता है तो संसद् उन राज्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कानून द्वारा संयुक्त लोक सेवा आयोग (Joint Public Service Commission) की नियुक्ति की व्यवस्था कर सकेगी। यदि किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख, संघ के लोक सेवा आयोग से ऐसा करने की प्रार्थना करे तो राष्ट्रपति की मंजूरी से वह उस राज्य की सभी या कुछ एक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम करना मंजूर कर सकेगा।

संविधान की धारा ३१६ के अनुसार, लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति यदि वह संघ आयोग (Union Commission) या संयुक्त आयोग

(Joint Commission) है तो राष्ट्रपति द्वारा तथा, यदि वह राज्य आयोग है तो, राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा की जाएगी। परन्तु प्रत्येक लोक सेवा आयोग के सदस्यों में से आधे के लगभग ऐसे व्यक्ति होंगे जो अपनी-अपनी नियुक्तियों की तारीख पर भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन दस वर्ष तक नौकरी कर चुके हों। लोक सेवा आयोग का सदस्य, अपने पद प्राप्त करने की तारीख से छः वर्ष की अवधि (term) तक, अथवा यदि वह संघ आयोग है तो पैंसठ वर्ष की आयु के प्राप्त होने तक तथा यदि वह राज्य आयोग या संयुक्त आयोग है तो, साठ वर्ष की आयु को प्राप्त होने तक अपने पद पर रह सकेगा। लोक सेवा आयोग का कोई भी सदस्य अपने पद से पूर्व ही इस्तीफा दे सकता है। वह अपने पद से हटाया भी जा सकता है। रिटायर (retirement) होने के पश्चात् लोक सेवा आयोग का कोई भी सदस्य उस पद पर फिर से नियुक्त होने के योग्य नहीं होगा।

धारा ३१७ के अनुसार, लोक सेवा आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य अपने पद से केवल राष्ट्रपति द्वारा दुराचरण के आधार पर दी गई आज्ञा पर ही हटाया जाएगा, जो कि उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) से राष्ट्रपति द्वारा निर्देश किए जाने पर उस न्यायालय द्वारा की गई जाँच तथा प्रतिवेदन के पश्चात् सभापति या किसी ऐसे सदस्य को ऐसे आधार पर हटा दिया जाना चाहिए। राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल या राजप्रमुख सभापति या अन्य किसी सदस्य को जांच के समय के लिए पद से अलग कर सकेगा। लोक सेवा आयोग के सभापति (chairman) या किसी अन्य सदस्य को राष्ट्रपति पदच्युत कर सकता है यदि सभापति या अन्य कोई सदस्य कानून द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो, या अपनी नौकरी के समय में अपने पद के कर्त्तव्यों से बाहर कोई वैतनिक नौकरी (paid employment) करता है अथवा राष्ट्रपति की राय में मानसिक या शारीरिक कमजोरी के कारण अपने पद पर रहने में असमर्थ है। यदि लोक सेवा आयोग का सभापति या अन्य कोई सदस्य भारत सरकार के या राज्य सरकार के द्वारा या राज्य सरकार की ओर से किए गए किसी संविदे या करार (contract or agreement) में संयुक्त कम्पनी (incorporated company) के सदस्य के नाते तथा उसके अन्य सदस्यों के साथ-साथ के अलावा किसी प्रकार से भी सम्बन्धित या पक्षपाती (concerned or interested) है या हो जाता है अथवा किसी प्रकार से उस लाभ से उत्पन्न किसी फायदे या उपलब्धि (emoluments) में भाग लेता है तो वह दुराचरण का अपराधी समझा जायेगा।

धारा ३१८ के अनुसार, राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख कानून (regulations) द्वारा आयोग के सदस्यों की संख्या तथा उनकी सेवाओं की शर्तों को तय कर सकेंगे; तथा आयोग के अधिकारी सदस्यों (members of the staff) की संख्या तथा उनकी सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ (provisions) कर सकेंगे। परन्तु लोक सेवा आयोग के सदस्य की सेवा की शर्तों के सम्बन्ध में उनकी नियुक्ति (appointment) के बाद अलाभकारी (disadvantageous) परिवर्तन नहीं किया जाएगा।

धारा ३१९ यह व्यवस्था करती है कि संघ लोक सेवा आयोग का सभापति,

अपने पद पर न रहने पर; भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी भी नियुक्ति या नौकरी के लिए अयोग्य (ineligible) होगा। राज्य के लोक सेवा आयोग का सभापति संघ लोक सेवा आयोग के सभापति या अन्य सदस्य के रूप में अथवा किसी अन्य राज्य के लोक सेवा आयोग के सभापति के रूप में नियुक्त होने के योग्य होगा। परन्तु भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी अन्य नौकरी के लिए अधिकारी न होगा।

लोक सेवा आयोगों के कार्य (Functions of Public Service Commissions)—लोक सेवा आयोगों के कर्त्तव्यों के बारे में धारा ३२० व्यवस्था करती है कि संघ तथा राज्य के लोक सेवा आयोगों का कर्त्तव्य होगा कि क्रमशः संघ की सेवाओं तथा राज्य की सेवाओं में नियुक्तियों के लिए परीक्षाओं का संचालन (conduct examinations) करें। यदि संघ लोक सेवा आयोग से कोई दो या अधिक राज्य ऐसा करने के लिए प्रार्थना करें तो उसका कर्त्तव्य होगा कि ऐसी किन्हीं सेवाओं के लिए जिनके लिए, विशेष योग्यता वाले सदस्य जरूरी हैं, मिली-जुली भर्ती की योजनाओं को बनाने तथा चलाने के लिए उन राज्यों की सहायता करे। संघ तथा राज्य लोक सेवा आयोगों से निम्नलिखित पर परामर्श लिया जाएगा :—

(१) असैनिक सेवाओं (civil services) में और असैनिक पदों के लिए भर्ती की रीतियों (methods) से सम्बन्धित विषय।

(२) असैनिक सेवाओं और पदों पर नियुक्त करने के, तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नति (promotions) और बदली करने (transfer) के, तथा सदस्यों की ऐसी नियुक्ति, पदोन्नति अथवा बदली की उपयुक्तता (suitability) के बारे में अनुसरण (followed) किये जाने वाले सिद्धान्त।

(३) ऐसे व्यक्ति, जो भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार की असैनिक हैसियत (civil capacity) से सेवा कर रहे हैं, असर डालने वाले अनुशासन विषयों (disciplinary matters) से जो अभ्यावेदन या याचिकाओं (memorials or petitions) से सम्बद्ध हैं उनके साथ सभी ऐसे अनुशासन विषय।

(४) 'ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन या भारत-सम्राट् (Crown in India) के अधीन या देशी राज्य की सरकार के अधीन असैनिक हैसियत से कार्य कर रहा है या कर चुका है, अथवा वैसे व्यक्ति के सम्बन्ध में किया गया जो कोई दावा है कि अपने कर्त्तव्य-पालन में किए गए; या किए जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में उसके खिलाफ चलाई गई किन्हीं कानूनी कार्यवाहियों (legal proceedings) में जो खर्चा उसे अपनी हिफाजत के लिए करना पड़ा है, परिस्थिति के अनुसार (as the case may be) भारत या राज्य की संचित निधि (Consolidated Fund) में से दिया जाना चाहिए', उपरोक्त प्रकार के दावे।

(५) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार या सम्राट् के अधीन अथवा किसी देशी राज्य की सरकार के अधीन असैनिक हैसियत से सेवा करते समय किसी

व्यक्ति को हुई क्षति के बारे में सेवा-वृत्ति (pensions) पुरस्कार दिये जाने के दावे तथा ऐसी दी जानेवाली राशि (amount) क्या हो, इस प्रकार के प्रश्न।

राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल द्वारा इसको भेजे गये किसी ऐसे विषय पर परामर्श देने का लोक सेवा आयोग का कर्त्तव्य होगा। यथास्थिति राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल उन विषयों का उल्लेख (specifying) करने वाले विनियम (regulations) बना सकेगा, जिनमें साधारणतया अथवा विशेष रूप से लोक सेवा आयोग का परामर्श लिया जाना आवश्यक न होगा। परन्तु राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा बनाए गए ऐसे समस्त विनियम (regulations) परिस्थिति के अनुसार ससद् के प्रत्येक सदन, अथवा राज्य के विधानमण्डल के सामने चौदह दिन से कम की अवधि से पूर्व ही रखे जाएँगे। ये विनियम ऐसे सुधारों के अधीन होगे जैसे कि संसद् के दोनो सदन अथवा राज्य विधान-मण्डल उस सत्र (session) में करे, जिसमे कि वे इस प्रकार रक्खे गए हो।

किसी भी जन-सेवा-आयोग (Public Service Commission) द्वारा मंत्रणा नहीं ली जावेगी जहाँ तक कि धारा १६ (४) धारा ३३५ की व्यवस्था और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रश्न है। धारा १६ (४) के अनुसार यदि किसी प्रातीय सरकार को सरकारी नौकरियों में दलित वर्ग के प्रति अन्याय होता नजर आता है तो उसे यह अधिकार है कि वह दलित वर्ग के व्यक्तियों के लिए स्थान सुरक्षित कर सके। धारा ३३५ के अनुसार केन्द्रीय और प्रांतीय सरकारो से सम्बन्धित नौकरियों को वितरित करते समय शासन में कार्यक्षमता का ध्यान रखते हुए दलित वर्ग और पिछड़ी जातियों के अधिकारों को भी ध्यान मे रखा गया है।

धारा ३२१ के अनुसार, संसद् अथवा राज्य के विधानमण्डल द्वारा बनाया गया कोई अधिनियम (act) संघ लोक सेवा आयोग या राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा संघ अथवा राज्य की सेवाओं के बारे में, तथा किसी स्थानीय प्राधिकारी (local authority) अथवा कानून द्वारा बनाई गई सयुक्त सस्था (corporate body) अथवा किसी सार्वजनिक संस्था (public institution) की सेवाओं के बारे में सहायक कर्त्तव्यों (*additional functions*) *के प्रयोग के लिये व्यवस्था कर* सकेगा।

धारा ३२२ व्यवस्था करती है कि संघ के, या राज्य के, लोक सेवा आयोग व्यय जिसके अन्तर्गत आयोग के सदस्यों तथा अधिकारी सदस्यो (members of the staff) को दिये जाने वाले वेतन, भत्ते और सेवा-वृत्तियाँ भी हैं, परिस्थिति के अनुसार भारत की संचित निधि या राज्य की संचित निधि पर पड़ेंगे।

धारा ३२३ व्यवस्था करती है कि संघ लोक सेवा आयोग का कर्तव्य होगा कि राष्ट्रपति को आयोग द्वारा किए गए काम के बारे में प्रतिवर्ष सूचित करे, तथा ऐसी सूचना के मिलने पर राष्ट्रपति उस सूचना की प्रतिलिपि (copy) संसद् के प्रत्येक सदन के सामने रखवाएगा। वह इस बात को भी स्पष्ट करेगा कि किन हिस्सों पर सरकार द्वारा कार्य किया गया है और किन हिस्सों पर

नहीं किया गया है। यही बात संयुक्त आयोग, या राज्य लोक सेवा आयोग के विषय में है। उनके विषय में सूचना राज्य विधानमण्डल के सामने रखी जाएगी।

अप्रैल १९५१ से अप्रैल १९५८ की अवधि पर संघीय सार्वजनिक आयोग की दूसरी और तीसरी रिपोर्ट से पता चलता है कि आयोग को सरकार के कामों की निन्दा करनी पड़ी है। यह बताया गया कि कई मामलों में सरकार ने आयोग की सिफारिशों को नही माना। इसे एक दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण माना गया है। आयोग ने सरकार की इस मनोवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाने की आवश्यकता पर बल दिया है। आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि एक कानून बनाया जाय जिसके अनुसार किसी भी राज्य कर्मचारी को तब तक अवकाश वेतन (pension) प्राप्त न हो जब तक कि वह एक प्रमाण-पत्र न दिखाये कि उसकी नियुक्ति आयोग द्वारा हुई थी। आयोग ने अपने द्वारा उत्तीर्ण उम्मीदवारों की नियुक्ति में की गई देरी के विषय में भी आलोचना की है। यह उल्लेखनीय है कि एक बार फरवरी १९५१ में परिणाम घोषित हुए किन्तु सितम्बर १९५१ तक जब दूसरी प्रतियोगिता हुई, उत्तीर्ण व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया गया। परिणामतः सफल उम्मीदवारों को पुनः इस डर से परीक्षा मे बैठना पड़ा कि कहीं वे छोड न दिये जाएँ। आयोग ने यह सिफारिश की है कि आयोग द्वारा परिणाम घोषित करने के पश्चात् सरकार को रिक्त स्थानों में नियुक्तियाँ करने मे देर नही करनी चाहिए।

आयोग ने अनुपयुक्त रीति से अस्थायी नियुक्तियाँ करने की आलोचना की है। यह सुझाव दिया गया था कि एक वर्ष से अधिक अस्थायी नियुक्ति न की जाए और यदि की जाए तो इस सम्बन्ध मे आयोग की अनुमति ले ली जाए। आयोग के शब्दों में अधिकार का यह अनुचित उपयोग है कि अस्थायी नियुक्तियाँ की जाएँ और इस विषय में जनता की ओर से बड़ी शिकायतें हैं।

अगस्त, १९५८ में भारत सरकार के राज्य सरकार मंत्रालय के भूतपूर्व परामर्शदाता श्री वी० पी० मेनन ने एक सभा में भाषण देते हुए सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध मे कुछ बातें कही। जब अगस्त, १९४७ में देश को सत्ता प्राप्त हुई तो उस समय भारतीय सिविल सर्विस में सदस्यों की संख्या लगभग ११५० थी। देश का बटवारा होने से जब अंग्रेज अफसर घर लौट गए और मुसलमान अफसर पाकिस्तान चले गए तो इस आहिनी चौखट में कमजोरी आ गई। कुछ अंग्रेज अफसरों ने यहाँ ठहरना मान लिया। उस समय सब अधिकारियों की संख्या मिला कर ४५० से ज्यादा न थी। लगभग वही अवस्था भारतीय पोलिस सर्विस की भी थी। लड़ाई के दिनों मे कोई भर्ती नहीं की गई लेकिन एक अच्छी बात यह थी कि केन्द्र व राज्यों में हमारी निचली सेवाएँ अच्छी थीं। सिवाए बंगाल व पंजाब के और आंशिक रूप में उत्तर प्रदेश के उनकी संख्या मे विशेष कमी न थी।

भारतीय सिविल सर्विस के अफसरों की थोडी संख्या में से भी बहुत से विदेश मंत्रालय मे राजदूत बन कर चले गए। कुछ अफसरों को रियासतों के मिलने के बाद

राज्य सरकारों मे नियुक्त कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि बहुत थोड़े भारतीय सिविल सर्विस के अफसर राज्य सरकारों व केन्द्र में बच गए। राजनीतिज्ञ, जिन्होंने सत्ता सम्हाली थी, वे इनके प्रति आशंकित रहते थे और इनको भी उससे अच्छा व्यवहार मिलने में शंका बनी रहती थी।

सरदार पटेल का यह विचार था कि रियासतों का मामला सीधा हो जाने पर वे शासन को दृढ़ बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। यदि वे दो तीन साल और जी जाते तो यह सेहरा भी इनके सिर होता। सरदार पटेल भी बिना सोचे-समझे सब उद्योगों का राष्ट्रीयकरण न चाहते थे। वे कहते थे कि यदि कोई उद्योग जनता द्वारा सफलतापूर्वक चलाया जा रहा है तो उसे सरकार के सम्भालने का कोई अभिप्राय नहीं क्यों कि सरकार के पास तो इतने आदमी भी नहीं जो उन्हें सम्हाल सकें।

श्री वी० पी० मेनन ने यह भी कहा कि देश मे अभी तक भारतीय सेवाओं में भर्ती करने के लिए अच्छी सामग्री है। पिछले दस सालों में हमारी शिक्षण नीति ठीक न होने के कारण हमें उचित आदमी नहीं मिल सके। उन्होंने भारत सरकार से ऊँचे स्तर का ऐसा एक कमीशन मुकर्रर करने के लिए प्रार्थना की, जिसका उद्देश्य हमारे वर्तमान समाजवादी नमूने का समाज स्थापित करने की नीति के अनुकूल जिला स्तर से ऊँचे अफसरों को व्यवस्थित करने के तरीके बताना हो। कमीशन को चाहिए कि रिपोर्ट तैयार करने में बहुत समय न लगाए। उनके भाषण के अन्तिम शब्द ये थे 'हमारे पास अच्छे अफसर हैं। हमारे पास आदमियों की कमी नहीं है। हमारा एक पुरातन इतिहास है। सच तो यह है सिवाए गोलमाल करने वाले नीतिकारों के सब कुछ हमारे अनुकूल है। जिस चीज को हमें समझना है—और उसे जितना जल्दी समझेंगे उतना अच्छा होगा—वह यह है कि अन्तिम छानबीन में जो चीज देश को बचाएगी वह उसकी जनता है न कि संस्थाएँ।"

अध्याय ५२

विविध प्रकरण

(MISCELLANEOUS PROVISIONS)

वित्त आयोग (Finance Commission)—धारा २८० के अनुसार राष्ट्रपति संविधान आरम्भ होने के दो वर्ष के पश्चात् तथा उनके बाद में प्रत्येक पाँचवें वर्ष या उससे पहले एक वित्त आयोग की नियुक्ति करेगा जिसमें अध्यक्ष के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य होंगे। संसद् आयोग के सदस्यों की योग्यता तथा उनके चुनाव की विधि नियम बनाकर निश्चित कर सकती है।

आयोग का निम्न विषयों पर राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशें देने का कर्त्तव्य होगा—

(१) केन्द्र तथा राज्यों के बीच में कर-आय (proceeds of taxes) का बँटवारा करना। करों को विभाजित करना जो लगाए जाते हैं अथवा लगाए जा सकते हैं अथवा करों (taxes) से प्राप्त धन को केन्द्र तथा राज्यों में किस अनुपात से बाँटें।

(२) भारत के संचित कोष (Consolidated Fund of India) तथा राजस्व (Revenue) में से राज्यों को सहायता देने के क्या सिद्धान्त हों।

(३) राज्यों से हुए समझौतों की शर्तों को चलते रहने अथवा परिवर्तन करने के सम्बन्ध में।

(४) आयोग उस पर भी विचार करेगा जो विषय राष्ट्रपति दृढ़ अर्थ-व्यवस्था (sound finance) के हित में आवश्यक समझे।

आयोग अपनी कार्य-विधि का निर्णय करेगा तथा अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति में ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा जिनको राष्ट्रपति कानून द्वारा उसको प्रदान करे।

धारा २८१ के अनुसार, राष्ट्रपति वित्त आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश का प्रतिवाद तथा उस पर किए गए कार्य के लिए व्याख्यात्मक स्मृति-पत्र (explanatory memorandum) दे सकता है, जिसको संसद् के प्रत्येक भवन के समक्ष प्रस्तुत किया जाता हो।

भारत की राज्य-भाषा (Official Language of India)—संविधान की ३४३ से ३५१ तक की धाराएँ राज्य-भाषा के विषय में हैं। धारा ३४३ में निश्चित किया गया है कि संघ (Union) की राज्य-भाषा देवनागरी लिपि (script) में लिखित हिन्दी होगी। भारतीय हिन्दी अंक अपने अन्तर्राष्ट्रीय रूप में प्रयुक्त किए जायेंगे, किन्तु, संविधान आरम्भ होने के १५ वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग संघ के समस्त कार्यों

के लिए होता रहेगा, जिनके लिए इसको संविधान लागू होने के पहले प्रयुक्त किया जाता था। १५ वर्ष के बीच मे राष्ट्रपति अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के प्रयोग की भी व्यवस्था कर सकता है। राष्ट्रपति देवनागरी अंकों के भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ प्रयोग की, आज्ञा दे सकता है। १५ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात्, संसद् कानून द्वारा अंग्रेजी भाषा या अंकों के देवनागरी रूप की, जैसे कि कानून द्वारा वर्णित किए जा सकें, व्यवस्था कर सकती है।

धारा ३४४ के अनुसार, राष्ट्रपति सविधान लागू होने के ५ वर्ष तथा १० वर्ष पश्चात् एक आयोग नियुक्त करेगा जिसमें चेयरमैन तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं के प्रतिनिधि सदस्य होंगे तथा आदेश मे आयोग की कार्य-विधि भी बताई जाएगी। आयोग का कर्त्तव्य निम्नलिखित विषयों पर अपनी सिफारिशें (मत) देना होगा :—

(१) 'संघीय' कार्यों में हिन्दी का क्रम से प्रयोग बढ़ाना।

(२) अंग्रेजी के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना।

(३) निम्न कार्यों के लिए किस भाषा का प्रयोग किया जाए—सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) तथा उच्च न्यायालय (High Court) के निर्णयो में, संसद् तथा विधान सभाओं में विधेयक आरम्भ करना; विधान सभा द्वारा पारित नियमों का मूल रूप तथा सरकार के आदेश तथा कानूनों का मूल रूप।

(४) किसी विशेष तथा अन्य कार्यों के लिए अंको का प्रयोग।

(५) राष्ट्रपति द्वारा दिया गया अन्य कार्य।

आयोग अपना मत देते समय व्यापारिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र मे भारत के विकास तथा अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों के निवासियो के उचित अधिकारों तथा हितों का ध्यान रखेगा।

धारा ३४४ के अनुसार, ३० सदस्यों की एक समिति बनाई जाएगी, जिसमें २० लोकसभा तथा १० राज्य-सभा के सदस्य होगे। समिति आयोग की सिफारिशों की जाँच करके राष्ट्रपति को उस पर अपना मत देगी।

किसी राज्य की विधान सभा धारा ३४५ के अनुसार भी निश्चय कर सकती है कि राज्य में एक या अधिक प्रचलित भाषा या हिन्दी भाषा का प्रयोग उस राज्य के समस्त अथवा कुछ कार्यो के लिए किया जाएगा। यदि विधान सभा निश्चय नही करती तब अंग्रेजी का प्रयोग सभी राज्य-कार्यों के लिए होता रहेगा, जिनके लिए यह संविधान लागू होने से पूर्व प्रयुक्त होती थी।

धारा ३४६ मे व्यवस्था की गई है कि कुछ समय तक केन्द्र तथा राज्यों, तथा एक राज्य तथा दूसरे राज्य के बीच लिखा-पढ़ी के लिए, तथा केन्द्र मे समस्त राज्य-कार्यों के हेतु अंग्रेजी का प्रयोग राज्य-भाषा के रूप मे किया जाएगा। यदि दो या अधिक राज्य निश्चय कर लें कि उनके पारस्परिक सम्बन्ध हिन्दी के माध्यम से हों, हिन्दी का प्रयोग कर सकते हैं।

धारा ३४७ बताती है कि मांग होने पर यदि राष्ट्रपति को विश्वास हो जाए कि राज्य की पर्याप्त जनता किसी भाषा का, जो कि उनके द्वारा बोली जाती हो, उस राज्य के द्वारा अंगीकार किए जाने की इच्छा करती है तब राष्ट्रपति ऐसी भाषा को सम्पूर्ण राज्य अथवा उस के किसी विशेष क्षेत्र के लिए मान्यता दे सकता है।

धारा ३४८ मे उल्लेख किया गया है जब तक संसद् कोई अन्य कानून पारित नही करती तब तक निम्न कार्य अंग्रेजी मे ही होते रहेंगे—सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालयों के कार्य, विधान सभा तथा संसद् द्वारा पास कानूनों का मूल रूप, राज्यपाल, राजप्रमुख अथवा राष्ट्रपति के विशेष आदेश (Ordinances), संविधान के आधीन बनाए गए नियम तथा उपनियम (By-laws), किसी राज्य का राज्यपाल या राजप्रमुख राष्ट्रपति से पूर्व अनुमति (Consent) प्राप्त करके अपने राज्य में सरकारी कार्यों तथा उच्च न्यायालय की भाषा हिन्दी अथवा अन्य कोई भाषा निश्चित कर सकता है, किन्तु यह आदेश उच्च न्यायालय के निर्णयों, डिग्रियो तथा आदेशों पर लागू नही होगा। जिस राज्य में विधान सभा ने अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को राजकीय कार्यो में प्रयोग करने के लिए घोषित किया है उसका राज्यपाल अंग्रेजी मे भी कानून आदि का प्रामाणिक (authoritative) अनुवाद प्रकाशित करेगा।

धारा ३४६ मे व्यवस्था की गई है कि १५ वर्ष तक के काल मे, कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति के बिना, उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों तथा संसद् के किसी भवन की भाषा के सम्बन्ध में संसद् के किसी भी सदन मे प्रस्तुत नही किया जा सकेगा। राष्ट्रपति ऐसे विषय में भाषा आयोग (Language Commission) की सिफारिशों पर विचार किए बिना अपनी स्वीकृति नहीं देगा।

प्रत्येक व्यक्ति को धारा ३५० अधिकार देती है कि वह केन्द्र अथवा राज्य सरकारों को किसी भी भाषा मे प्रतिवेदन तथा आवेदन दे सकता है।

धारा ३५१ केन्द्रीय सरकार को हिन्दी के विकास तथा प्रसार के लिए आदेश देती है *ताकि हिन्दी इतनी समर्थ हो सके कि सांस्कृतिक तत्त्वों (elements of culture) को समझाया जा सके तथा दूसरी भाषाओं के विचारो को अपने में पचा सके।* शब्द-कोष की पूर्ति पहले संस्कृत से तथा दूसरी अन्य भाषाओं से की जाए।

धारा ३४४ के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने जून, १९५५ मे एक २१ सदस्यों का आयोग नियुक्त किया जिसका नाम 'सरकरी भाषा आयोग' रखा गया। श्री बी० जी० खेर इसके अध्यक्ष थे। ६ अगस्त, १९५६ को राष्ट्रपति के सम्मुख इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

कमीशन की खास-खास सिफारिशें ये हैं:—

(१) भारतीय राज्य-पद्धति का आधार गणतन्त्र होने के कारण भारतीय जनता की भाषा अंग्रेजी होना सम्भव नहीं। "अखिल भारत के लिए भाषायी माध्यम हिन्दी है।"

(२) यह कहना न सम्भव है और न ही जरूरी कि १९६५ तक अंग्रेजी का स्थान हिन्दी ले सकेगी। जितना प्रयत्न इस ओर किया जायेगा उस पर यह निर्भर है।

(३) संविधान में जो ढीली व्यवस्था इसके लिए की गई है उसके कारण अंग्रेजी को १५ साल के बाद भी रखा जा सकेगा और जैसी व्यवस्था होगी उसके अनुसार संविधान में कोई तबदीली किये बिना व्यवस्था हो सकेगी।

(४) हिन्दी अंग्रेजी का एक हद तक स्थान ले सकेगी। इलाकाई भाषाओं को अपना-अपना स्थान मिल जाने के कारण हिन्दी अंग्रेजी का पूरा-पूरा स्थान न ले सकेगी।

(५) इस समय केन्द्र में अंग्रेजी के इस्तेमाल मे कोई रुकावट न डालनी चाहिए। जब तक जरूरी है अंग्रेजी को भी साथ-साथ चलते देना चाहिए। काफी समय की सूचना पहले देकर इसे बन्द करना चाहिए।

(६) संघ की भाषा के अतिरिक्त देश की दूसरी भाषाओं के लिए भी देवनागरी लिपि को अपनाना चाहिए।

(७) केन्द्रीय सरकार यदि पर्याप्त समय पहले सूचना दे दे तो नये सरकारी नौकर भर्ती करने के लिए हिन्दी जानने की शर्त लगाना ठीक होगा। इसके लिए हिन्दी का ज्ञान बहुत ऊँचा न होना चाहिए।

(८) जब तबदीली का समय आएगा तो सुप्रीमकोर्ट को केवल हिन्दी मे काम करना होगा, निचले स्तर की अदालतें इलाकाई भाषाओं में काम करेंगी। इस बहुभाषाई पद्धति का मिलान हाई कोर्ट के स्तर पर होगा।

(९) हिन्दी न बोलने वाले इलाकों में दसवी तक हिन्दी पढाना जरूरी होगा। उसके बाद जहाँ स्वेच्छा से स्वीकार हो, अंग्रेजी को एक साहित्यिक भाषा के रूप में पढ़ाना चाहिए।

(१०) कमीशन ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया कि भाषा-भाषी विद्यार्थियों को दूसरी स्थानीय भाषा सीखने के लिए विवश करते समय कुछ हर्जाना देना चाहिये।

(११) कमीशन ने यह सुझाव दिया कि भाषाएँ सिखाने के लिये एक राष्ट्रीय विद्यापीठ स्थापित करनी चाहिये, जिससे केन्द्रीय व क्षेत्रीय भाषाओं का विकास हो।

सरकारी भाषाओं का अधिनियम (Official Languages Act) १९६३ में लागू हुआ। इसमें निर्धारित किया गया है कि केन्द्रीय सरकार व संसद् के कार्यों में २६ जनवरी, १९६५ के बाद हिन्दी के साथ अंग्रेजी भी काम में लाई जा सकती है। उसमें केन्द्रीय अधिनियमों (Central Acts), आदेशों (Ordinances) व दूसरे कानूनी दस्तावेजों, विधेयकों (Bills) या उनके सुधार जो संसद् मे पेश होने हैं, उनका हिन्दी अनुवाद करने की व्यवस्था भी की गई है, राज्य सरकारों के अधिनियमों व आदेशों का हिन्दी मे अनुवाद छापना, अदालती फैसलों, डिगरियों और राष्ट्रपति की स्वीकृति के साथ हाईकोर्ट में आदेशों को हिन्दी व दूसरी सरकारी भाषाओं को काम मे लाने की स्वतन्त्रता भी दी है।

चुनाव-आयोग (Election Commission)—संविधान की धारा ३२४ में चुनावों की व्यवस्था के लिए 'चुनाव आयोग' का उल्लेख किया गया है। चुनाव संसद, राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति पद तथा विधान सभा आदि के लिए होंगे। चुनाव आयोग चुनावों के लिए 'मतदाता सूची' तैयार कराएगा तथा उसका निरीक्षण एवं निर्देशन करेगा। सूची तैयार करने के लिए उचित आदेश भी देगा। चुनाव आयोग का ट्रिब्यूनलों पर भी अधिकार होगा। चुनाव आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त (Chief Election Commissioner) तथा ऐसे अन्य कमिश्नर होंगे, जिनको राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करेगा। राष्ट्रपति 'मुख्य निर्वाचन आयुक्त' तथा अन्य निर्वाचन आयुक्तों को नियत करते समय संसद् द्वारा पास किए गए कानून का ध्यान रखेगा। जब इस प्रकार कोई अन्य निर्वाचन आयुक्त नियत किया गया हो तब 'मुख्य निर्वाचन आयुक्त' निर्वाचन आयोग के सभापति की भांति कार्य करेगा। राष्ट्रपति चुनाव आयुक्त के परामर्श पर आवश्यक क्षेत्रीय (regional) आयुक्तों को नियुक्त करेगा। ये क्षेत्रीय आयुक्त 'चुनाव कमीशन' को सहायता करेंगे।

चुनाव कमिश्नरों का कार्य-काल तथा नौकरी की शर्तें राष्ट्रपति नियमानुसार निश्चित करेगा। 'मुख्य निर्वाचन आयुक्त' के सेवा-काल तथा शर्तों में उसके हितों के विरुद्ध नियत होने के पश्चात् परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उसको उसी प्रकार हटाया जा सकता है जिस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को। अन्य 'चुनाव कमिश्नरों' को केवल 'मुख्य निर्वाचन आयुक्त' के कहने पर हटाया जा सकेगा।

'चुनाव आयोग' के कहने पर राष्ट्रपति और राज्यपाल कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए कर्मचारी देंगे। चुनाव आयोग से चुनाव कमिश्नर तथा क्षेत्रीय चुनाव कमिश्नर आदि अधिकारियों का अर्थ है।

भारत का महान्यायवादी (Attorney-General of India)—धारा ७६ के अनुसार, राष्ट्रपति भारत मे महान्यायवादी की नियुक्ति करेगा। महान्यायवादी वही व्यक्ति बन सकेगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता होगी। महान्यायवादी भारत सरकार को कानूनी सलाह देने वाला होगा। वह राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए अन्य कानूनी कर्त्तव्यों को पूरा करेगा। वह संविधान मे बताए गए कर्त्तव्यों का पालन करेगा। संसद् नियम पारित करके उसको अन्य कर्त्तव्य सौंप सकती है। उसे अपने कर्त्तव्यो को पूरा करते हुए भारत स्थित समस्त न्यायालयों मे उपस्थित होने का अधिकार है। महान्यायवादी राष्ट्रपति की इच्छानुसार ही अपने पद पर रह सकता है। महान्यायवादी राष्ट्रपति द्वारा निश्चत वेतन तथा भत्तों को प्राप्त करेगा। यह एक राजनीतिक पद है। अतः मन्त्रिमण्डल के परिवर्तन पर इसको बदला जा सक

नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor-General of India)—प्रशासन की कार्यकुशलता हिसाब की ठीक जाँच से ज्ञात होती है। इसी कारण संविधान की धारा १४८ मे नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की व्यवस्था की गई

है। राष्ट्रपति नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की नियुक्ति करता है, तथा उसको कार्य-मुक्त करने की वही विधि है, जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की होती है। संसद् उसका वेतन तथा सेवा की शर्तें नियम द्वारा निर्धारित करेगी। उसके कार्य-काल में उसके वेतन, अवकाश के नियम तथा सेवा-वृत्ति के नियमों में उसके हित के प्रतिकूल परिवर्तन नहीं किए जा सकते हैं। सेवावृत्ति पाने के पश्चात् वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार की नौकरी नही कर सकता। उसके ऊपर होने वाले व्यय को संचित-निधि (Consolidated Fund) से किया जाएगा।

धारा १४९ के अनुसार, उसे केन्द्र तथा राज्यों के हिसाब-किताब की जांच का अधिकार होगा। संसद् नियम द्वारा उसके कार्य-क्षेत्र को निर्धारित करेगी।

धारा १५० के अनुसार, नियन्त्रक महालेखा परीक्षक राष्ट्रपति की मान्यता प्राप्त करके केन्द्र तथा राज्यों में हिसाब-किताब रखने के सम्बन्ध में नियम बनायेगा। सरकारें उसी प्रकार आय-व्यय का ब्यौरा रखने को बाध्य होंगी।

धारा १५१ के अनुसार, राष्ट्रपति नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को संसद् के प्रमुख विचारार्थ प्रस्तुत करेगा। राज्यों के सम्बन्ध में नियन्त्रक महालेखा परीक्षक अपनी रिपोर्ट राज्यपाल को देगा और वे विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे।

संचित तथा आकस्मिक निधियाँ (Consolidated and Contingency Funds)—संविधान ने संचित तथा आकस्मिक निधियों की व्यवस्था की है। आकस्मिक निधि की इसलिए आवश्यकता है कि संसद् या विधान सभा की अनुमति मिलने पर ही धन व्यय किया जा सकता है। कभी-कभी ऐसी घटनाएँ होती है कि उनका बजट में उल्लेख नही होता। अतः उनके लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है। उस समय आकस्मिक निधि से धन लेकर व्यय किया जाता है। धारा २६७ के अनुसार, संसद् इस 'कोष' को स्थापित कर सकती है। इसमें समय-समय पर नियमानुसार धन जमा किया जाएगा। इस कोष से एक दम होने वाले खर्चों के लिए राष्ट्रपति को 'एडवांस' करने का अधिकार होगा। ध्यान रहे कि धन केवल उन कार्यों के लिए 'पेशगी' (advance) दिया जाएगा, जिनका बजट में वर्णन नही हुआ है।

धारा २६६ के अनुसार केन्द्र तथा राज्यों की संचित निधियाँ (Consolidated Funds) स्थापित की गई हैं। इस निधि में केन्द्र अथवा राज्य की सम्पूर्ण राजस्व आय (Revenue income) जमा होगी। यदि सरकारें कोई ऋण लेंगी या ट्रेजरी बिल (Treasury bill) जारी करें तथा ऋण या साध्य एवं साधन से प्राप्त एडवांस तथा उस सरकार को ऋण वसूल करने से प्राप्त समस्त धन राज्य की संचित निधि में जमा किए जाएँगे। भारत सरकार के स्थान पर या उसके द्वारा प्राप्त समस्त सार्वजनिक धन (public money) अथवा राज्य सरकारों को अन्य साधनों से प्राप्त धन केन्द्र अथवा राज्य के सार्वजनिक-लेखा (public accounts) में जाएगा।

केन्द्रीय अथवा राज्य की संचित निधि में से केवल उन कार्यों के लिए ही

लिया जा सकेगा जिनका संविधान मे उल्लेख है अथवा जिनकी नियम द्वारा व्यवस्था की गई है।

अन्तर्राज्य-परिषद् (Inter-State Council)—धारा २६३ के अनुसार, राष्ट्रपति ने सार्वजनिक (public) हित समझकर एक अन्तर्राज्य-सभा (Inter-State Council) का निर्माण नियमपूर्वक किया है। यह सभा उन समस्याओं तथा झगड़ों के कारणों की खोज करके उनके हल करने का उपाय सुझाती है, जो दो या अधिक राज्यों अथवा केन्द्र और राज्यों में हों। इस सभा का कर्त्तव्य है कि ऐसे उपाय सुझाये कि केन्द्र तथा राज्य तथा राज्यो मे परस्पर एक-सी नीति काम में लाई जा सके। सभा की कार्यविधि एव संगठन को राष्ट्रपति निश्चित करता है।

परिगणित जाति आयोग या 'पिछड़ी जातियों का कमीशन' (Commission for Investigation of Condition of Backward Classes)—धारा ३४० के अनुसार राष्ट्रपति अपने आदेश से 'परिगणित जाति आयोग' की नियुक्ति करेगा। वही व्यक्ति आयोग में लिए जाएँगे जिनको राष्ट्रपति उचित समझेगा। आयोग पिछड़ी जातियों की शिक्षा तथा सामाजिक कमियो के विषय में खोज करेगा। वह बतायेगा कि उनको किन-किन कठिनाइयो के बीच मे रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। वह अपनी सिफारिशों मे सुझाव देगा कि केन्द्र तथा राज्य उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए क्या 'पग' (step) उठाएँ, जिससे उनकी दशा सुधरे। वह सिफारिश करेगा कि केन्द्र तथा राज्य उनको ऊँचा उठाने के लिए किसे और कैसे सहायता दें। राष्ट्रपति नियम द्वारा आयोग की कार्यविधि निश्चित करेगा।

कमीशन का कर्त्तव्य होगा कि 'अनुसन्धान' (छानबीन) करके अपनी सिफारिशों के साथ अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को दे।

आयोग की रिपोर्ट मिलने पर राष्ट्रपति एक ज्ञापन (memorandum) तैयार करेगा, जिसमे लिखा होगा कि उन्होने आयोग की सिफारिशों पर क्या कार्य किया है तथा ज्ञापन एवं रिपोर्ट दोनों को ससद् के दोनो सदनो के समक्ष रखेगा।

भारत के राष्ट्रपति ने एक पिछड़ा वर्ग आयोग (Backward Classes Commission) की नियुक्ति की। इससे सामाजिक और शैक्षिक (educational) दृष्टिकोण से पिछड़े हुए वर्गों की अवस्था की पड़ताल की जा सके और यह मालूम किया जा सके कि उनकी क्या कठिनाइयाँ है तथा यह सुझाव कि उनकी कठिनाइयाँ दूर करके उनकी अवस्था का किस प्रकार सुधार किया जा सकता है। आयोग मे काका साहेब कालेलकर (अध्यक्ष), एन० एस० कजरोलकर, भीखा भाई, शिवलालसिंह चौरासिया, राजेश्वर पटेल, अब्दुल कयूम अन्सारी, जगन्नाथ, मरिअप्पा, आत्मासिंह नामधारी और अरुणांगशु डे थे।

अध्याय ५३

भारतवर्ष और राष्ट्रमण्डल

(INDIA AND THE COMMONWEALTH)

नये संविधान के अन्तर्गत भारत एक 'सार्वभौम लोकतन्त्री गणराज्य' है, परन्तु उसी समय वह राष्ट्रसंघ (Commonwealth of Nations) का सदस्य है। यह वर्णन करना वांछनीय है कि भारत ने इस प्रास्थिति (Status) को कैसे प्राप्त किया है।

यह सर्वविदित है कि जब लार्ड मॉर्ले (Lord Morley) ने सन् १९०८ के पर्यन्त (the end of 1908) में भारतीय परिषदीय अधिनियम (Indian Councils Act) को ब्रिटिश संसद् में प्रस्तावित किया और घोषित किया कि उसका भारतीय जनता को उत्तरदायी सरकार (responsible government) देने का कोई अभिप्राय न था। उसको ही उद्धृत करते हुए "यदि यह कहा जा सके कि सुधारों का यह प्रकरण प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भारत में ससदीय प्रणाली की स्थापना का नायकत्व करता है, तब मेरा व्यक्तिगत रूप में इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

लॉर्ड मिन्टो (Lord Minto) द्वारा इस प्रकार की विज्ञप्ति (statement) भारत में की गई। इसके होते हुए भी २० अगस्त, १९१७ को ब्रिटिश सरकार ने अपनी प्रसिद्ध घोषणा की और कहा कि भारत में ब्रिटिश सरकार का ध्येय इस देश में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। भारतीय सरकार अधिनियम १९१९ की प्रस्तावना (preamble) में कहा गया कि "संसद् की यह घोषित नीति है कि भारतीय प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र मे भारतीयों के समागम (association) को बढाने की व्यवस्था करना तथा स्वायत्त शासन-संस्थाओं (self-government institutions) का क्रमिक विकास इस दृष्टि से करना कि अंग्रेजी भारत (British India) क्रम से बढते हुए उत्तरदायी शासन को प्राप्त कर सके जो आंग्ल साम्राज्य का अविभाज्य अंग हो।"

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् भारत को पेरिस के शान्ति सम्मेलन (Peace Conference) में प्रतिनिधित्व दिया गया। उसको लीग ऑफ नेशन्स का भी सदस्य बनाया गया। उसको साम्राज्यीय सम्मेलनों (Imperial Conferences) में भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। इसके होते हुए भी वह अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट न था और उसने उसी प्रास्थिति की मांग की जो दूसरे अधिराज्यों को प्रदान की गई थी। सन् १९२९ में लार्ड इरविन (Lord Irwin), भारत के महाराज्यपाल, ने अपनी सरकार (His Majesty's Government) के नाम में घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारतीय जनता को अधिराज्य प्रास्थिति (Dominion Status) देना था। किन्तु इसने अखिल भारतीय कांग्रेस (Indian National Congress) को

सन्तुष्ट न किया और इसके लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का निश्चय किया गया। पूर्ण स्वराज्य के लिए संघर्ष बहुत वर्षों तक चलता रहा। यद्यपि भारत सरकार अधिनियम, १९३५ (Government of India Act, 1935) का मूल सिद्धान्त यह था कि भारत, समयानुसार, एक पूर्ण अधिराज्य बनेगा, परन्तु भारतीय जनता बिल्कुल सन्तुष्ट न थी। १९४१ के क्रिप्स प्रस्तावों में स्वीकार किया गया कि युद्ध के पश्चात् भारत को स्वतन्त्र होने तथा इच्छा होने पर ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल को छोड़ने का अधिकार भी होगा। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम १९४७ द्वारा भारत एक सम्पूर्ण अधिराज्य बना दिया गया और उसी अधिनियम के द्वारा भारतीय संविधान सभा को यह निर्णय करने की शक्ति दी गई कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहेगा अथवा नहीं। जब संविधान का आलेख (draft) तैयार हुआ तब यह स्पष्ट हो गया कि भारत एक गणराज्य बनेगा। प्रश्न उठा कि भारतीय गणराज्य किस प्रकार से ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य रह सकेगा। निस्सन्देह समस्या कठिन थी। राष्ट्रमण्डल के प्रधान मन्त्रियों का सम्मेलन (Commonwealth Prime Ministers' Conference) अप्रैल मास में लन्दन में हुआ और २७ अप्रैल को उस सम्मेलन ने निम्न विज्ञप्ति की "यूनाइटेड किंगडम, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका की सरकारों ने जो कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य हैं तथा क्राउन के स्वामिभक्त हैं जो कि उनका स्वतन्त्र समागम (association) का चिह्न है, भारत में होने वाले संविधानीय परिवर्तनों पर विचार किया है।"

"भारत सरकार ने राष्ट्रमण्डल की अन्य सरकारों को भारतीय जनता की भावनाओं से अवगत करा दिया है कि संविधान के अन्तर्गत, जो कि लागू किया जाना है, भारत सार्वभौम स्वतन्त्र गणराज्य बन जाएगा।

"किन्तु भारत सरकार ने घोषित तथा निश्चित किया है कि भारत राष्ट्रमण्डल का पूर्ण सदस्य रहेगा तथा राजा को स्वतन्त्र राष्ट्र सदस्यों के स्वतन्त्र समागम का प्रतीक तथा राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष (Head) स्वीकार करता है।

"राष्ट्रमण्डल की अन्य सरकारें, जिनकी राष्ट्रमण्डल की सदस्यता के आधार में कोई परिवर्तन नहीं होता, भारत को घोषित तथ्यों के आधार पर सदस्य स्वीकार करती हैं और मान्यता देती है।

"ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, साउथ अफ्रीका, भारत, पाकिस्तान तथा श्रीलंका घोषित करते हैं कि वे राष्ट्रमण्डल के स्वतन्त्र तथा समान सदस्यों की भांति संगठित रहेंगे तथा शान्ति, स्वतन्त्रता तथा प्रगति के लिए स्वेच्छा से कार्य करेंगे।"

संविधान सभा ने १७ मई, १९४९ को राष्ट्रमण्डल प्रधान मन्त्री सम्मेलन की घोषणा को स्वीकार किया। भारत अंग्रेजी राजा को स्वतन्त्र सदस्य राष्ट्रों के ऐच्छिक समागम का प्रतीक तथा राष्ट्रमण्डल का अध्यक्ष स्वीकार करने को सहमत हो गया। उसी मास राष्ट्र को सन्देश देते हुए पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"यह

स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रमण्डल किसी भी परिभाषा के अनुसार उच्च राज्य (Super State) नहीं है। हम राजा को स्वतन्त्र समागम का प्रतीकात्मक अध्यक्ष मानने को सहमत हुए हैं। लेकिन राष्ट्रमण्डल की उस प्रास्थिति में सरकार को कोई अनुलग्न कार्य नहीं करना है। जहाँ तक भारतीय संविधान का सम्बन्ध है, अंग्रेजी राजा का कोई स्थान नहीं है तथा हम उसके लिए कोई निष्ठा नहीं रखते हैं।"

भारत के नये संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है—

"यह २६ जनवरी, सन् १६५० का दिन कथित संविधान के लागू होने को निश्चित हुआ है—

"अतः अब यह घोषित किया जाता है कि २६ जनवरी, सन् १९५० को आज और भविष्य में भारत अर्थात् इण्डिया एक सर्व-सत्ता-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य होगा तथा संघ और उसकी प्रशासकीय इकाइयाँ, राज्य, कथित संविधान की व्यवस्थाओं के अनुसार, प्रशासन तथा सरकार की समस्त शक्तियों तथा कार्यों को कार्यान्वित करेंगे।"

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने ३१ जनवरी, १६५० को संसद् के उद्घाटन भाषण में कहा—"भारत सार्वभौम लोकतन्त्रीय गणराज्य है किन्तु उसने राष्ट्रमण्डल से सम्बन्धित रहने का निश्चय किया है। यह संविधानीय कानून तथा इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना है। इससे हम अपनी स्वतन्त्रता को किसी भी प्रकार मर्यादित नहीं करते, किन्तु हम राष्ट्रमण्डल के प्रतिनिधि राष्ट्रों के समूह से मित्रता तथा सहयोग की इच्छा को प्रकट करते हैं।

"यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत इंगलैंड के राजा अथवा रानी के लिए कुछ शक्तियाँ सुरक्षित किए बिना राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं रह सकता है। जनरल स्मट्स ने अप्रैल, १९४९ में यह कहा, "गणराज्य तथा क्राउन के मध्य कोई बीच का मार्ग नहीं है। यदि किसी बिना विशिष्ट आकार (nebulous) अथवा गड़बड़ी के मार्ग से, तुम इसके अन्दर और बाहर दोनों रह सकते हो तो राष्ट्रमण्डल का पूर्ण मन्तव्य ही समाप्त हो जाता है और जो कुछ अवशिष्ट रहता है वह सारहीन और नाममात्र है।"

किन्तु राष्ट्रमण्डल की धारणा के विकास के निर्देश से यह स्थिति अधिक अच्छी प्रकार से समझ में आ सकती है। १९२१ में आयरलैंड के प्रतिनिधियों ने लन्दन में समझौते की बातचीत के मध्य यह विचार सुझाया था कि आयरलैंड 'राष्ट्रमण्डल का बाह्य साथी' (external associate of the Commonwealth) होने के लिए तैयार था। राजभक्ति का कोई उल्लेख नहीं किया गया था। उनका कथन था कि आयरलैण्ड के प्रतिनिधि यह सिफारिश करने के लिए प्रस्तुत हैं कि अविभाजित आयरलैण्ड की स्वतन्त्र एवं निर्वाचित सरकार समागम के अभिप्राय से क्राउन को प्रतीक माने तथा सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों के समुदाय का अध्यक्ष स्वीकार करे। ब्रिटिश सरकार ने इस विचार को अस्वीकार कर दिया। साम्राज्य सम्मेलन १९२६ ने अधिराज्य (Dominion) का वर्णन किया "ब्रिटिश

साम्राज्य में स्वराज्याधीन जातियाँ प्रास्थिति में समान अपने आन्तरिक एवं बाह्य विषयों में प्रत्येक रूप मे एक-दूसरे से स्वाधीन किन्तु क्राउन के लिए सामान्य राज-भक्ति से संगठित तथा स्वेच्छा से मिले हुए ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य।" वैस्ट मिन्स्टर व्यवस्थापन १६३१ (Statute) ने १६२६ के विचारों को कानूनी रूप दिया। १९३७ में आयरलैण्ड ने एक संविधान का प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें आयरलैण्ड स्वतन्त्र राज्य का वर्णन किया गया था। डी वेलरा ने प्रतिपादित किया था कि आइरिश स्वतन्त्र राज्य गणराज्य था तथा इसके होते हुए भी अंग्रेजी सरकार ने आयरलैण्ड को राष्ट्रमण्डल का सदस्य स्वीकार किया और राजा का कोई निर्देश न था। भारतीय स्वतन्त्रता विधेयक पर बोलते हुए ब्रिटिश संसद् मे श्री बेवरले बैक्सटर (Mr. Beverlay Baxter) लोक-सभा (House of Commons) के सदस्य ने राष्ट्रमण्डल का वर्णन एक जीवित प्राणी की भाँति किया था तथा इसकी तुलना एक क्लब से की थी जिसके सदस्य साधारण, देशी (Country), साप्ताहिक तथा विदेशी हों।

यह ध्यान मे रखें कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के सदस्य 'ब्रिटिश' शब्द को हटाने के लिए सहमत हो गए तथा भारत की नई प्रास्थिति, 'सार्वभौम स्वतन्त्र गणराज्य', को स्वीकार कर लिया गया। भारतीय राष्ट्रमण्डल के साथ 'ब्रिटिश' शब्द के संयुक्त होने को नहीं चाहते।

डा० जैनिग्ज़ के अनुसार, "ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की नीव अंशतः भावनाओं तथा अंशतः पारस्परिक आत्म-हितों पर बनी है। कुछ अधिराज्यों में एक की महत्ता है तथा दूसरों में दूसरे को प्रधानता दी जाती है।" प्रामाणिक रूप से, भारत दूसरे वर्ग में है। वह राष्ट्रमण्डल का सदस्य है क्योंकि यह उसके हितों की माँग है। यह प्रसिद्ध है कि १६४६ में ब्रिटिश संसद् ने एक ऐसे विधेयक पर विचार किया, जिसका अभिप्राय भारत के गणराज्य होने पर भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य बने रहने के कारण भारत, व्यक्तियों तथा भारत की तथा उससे सम्बन्धित वस्तुओं के विषय मे कर्त्तव्य-पालन की कानूनी व्यवस्थाओं को बनाना था। अधिनियम, भारत अनुवर्ती व्यवस्था अधिनियम (Consequential Provisions) के नाम से प्रसिद्ध है। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि भारत के नागरिकों को उसके गणराज्य बनने पर कोई असुविधा न हो। उसकी पूर्णतः वही स्थिति होगी जैसी किसी अन्य राष्ट्रमण्डल के सदस्य के नागरिक की हो सकती है जबकि वह इंगलैंड में आए अथवा उसकी इंगलैंड में सम्पत्ति हो। भारतीय ब्रिटिश संसद् का सदस्य हो सकता है। वह देश मे किसी भी सार्वजनिक-पद पर कार्य कर सकता है। प्रत्येक भारतीय को इंगलैंड में आने तथा जाने का अधिकार प्राप्त है।

राष्ट्रमण्डल के दूसरे देशों मे भारतीयों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं। किन्तु ये पारस्परिक अनुग्रह पर आधारित हैं।

यद्यपि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य है, वह इंगलैड के राजा अथवा रानी के प्रति स्वामिभक्त नही है। यह उसे केवल राष्ट्रमण्डल समागम का प्रतीक मानता है।

राजा अथवा रानी को समागम के प्रतीक की भाँति स्वीकार करने को पृथक् नहीं किया जा सकता जब तक कि भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहना चाहता है। राजा अथवा रानी ही राष्ट्रमण्डल की केवल एक ऐसी शृखला है जो कि उसके समस्त सदस्यों के लिए सामान्य (common) है। भारत को राष्ट्रमण्डल का सदस्य नहीं माना जा सकता जब तक कि वह उस राजा अथवा रानी के प्रतीक को स्वीकार नहीं करता है।

इंगलैंड की सम्राज्ञी स्वतन्त्र सदस्यों के स्वेच्छा से सगठन का एक प्रतीक मात्र है। भारत की संसद् सम्राज्ञी को इसका प्रतीक मानने से इन्कार कर सकती है। यह मूल रूप से विदेशी-नीति की एक राजनैतिक क्रिया है। प्रकट रूप मे इसका कानूनी अथवा वैधानिक महत्त्व नहीं है।

कॉमनवैल्थ राष्ट्रों में नीति का मतभेद होना आवश्यक है। यद्यपि गम्भीर मतभेद निस्सन्देह दुर्भाग्यपूर्ण होंगे। किन्तु तथ्य रूप से स्वेच्छा से इस सगठन का होना तथा लगभग किसी भी प्रकार के प्रतिबन्धों का होना, जिसमें इस प्रकार के मतभेदों को नहीं गिना जाता, मौलिक रूप से शक्तिशाली सगठन का द्योतक है। इन सभी बातों पर ब्रिटिश विचारधारा, परिपाटियों और लगभग उनकी विद्वत्ता, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन की छाप है। सभी राष्ट्र इस समय राष्ट्र-निर्माण में संलग्न है और किसी की भी उपनिवेश प्राप्त करने की वृत्ति नहीं है। परिपाटी की भावना की शक्ति पूर्णतः स्पष्ट है कि भारत और पाकिस्तान दोनों ही कॉमनवैल्थ मे है यद्यपि इनके पारस्परिक व्यवहार खिचे है।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि पौण्ड-पावना गुट मे हमारी सदस्यता एक अलभ्य आर्थिक सुविधा है। किन्तु ब्रिटेन से हमें विशेष व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त है, क्योंकि हम कॉमनवैल्थ के सदस्य हैं। कॉमनवैल्थ का अपने सदस्य राष्ट्रों के सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने का अपना निजी कार्यक्रम है (जैसे कोलम्बो योजना)। इन सहायताओं के साथ कोई राजनैतिक सूत्र नहीं बँधे। कॉमनवैल्थ सुरक्षा सम्मेलनों (Commonwealth Defence Conferences) मे हमें बहुमूल्य सैनिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं तथा हमारे सैनिकों की इंगलैंड मे सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है। कॉमनवैल्थ सम्पर्क कार्यालय से हमें बहुमूल्य राजनैतिक सूचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। यह ठीक है कि किन्ही भी शक्ति-गुटों (Power Blocs) से जो सारे ही मित्रता करने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, यदि हम सौदा करें तो हमें भले ही अधिक लाभ हो, किन्तु इसके द्वारा प्राप्त लाभों का प्रतिदान शुभेच्छा और सहकारिता के सम्माननीय धन के रूप मे दिया जाता है, स्वतन्त्रता के टुकड़ों के रूप मे नहीं।

१९५४ में सिडनी में कॉमनवैल्थ के वित्त मन्त्रियों का जो सम्मेलन हुआ था, उसने कॉमनवैल्थ के संगठनो के विषय में इस प्रकार कहा था, हम पृथ्वी के सभी कोनों से आकर यहाँ एकत्रित हुए हैं। हम भिन्न-भिन्न भाषाओं के बोलने वाले, धर्मों और परिपाटियों को मानने वाले, प्रगतिशील अथवा पिछड़े देशों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो पर्वतों और समुद्रों द्वारा मौलिक रूप से पृथक्-पृथक् हैं। किन्तु हम

अजनबियों की तरह नहीं, अपितु मित्रों की तरह मिले हैं। हम यहाँ यह जानने के लिये नहीं आए कि हम सब किस प्रकार शक्तिशाली होकर अन्य देशों को जीत सकते हैं, अपितु एक राष्ट्रों के परिवार के रूप में मिले हैं। इसलिये हमें आत्मविश्वास, भविष्य पर विश्वास और एक-दूसरे की अखण्ड मित्रता पर विश्वास है।

"हमारा सम्मेलन यहीं समाप्त नहीं हो जाता। हमारी राष्ट्रों की कॉमनवैल्थ शेष संसार से युद्ध करने के लिये नहीं है अपितु यह सारे संसार के लिए है। स्वतन्त्र विश्व स्वतन्त्रता पर बना है। स्वतन्त्रता शक्ति से बनी है। हमारे सम्मेलन के विचार और भावना का मूल तत्त्व, हमारा प्रगाढ़ और संगठित विश्वास ही हमारी शक्ति है और यह शक्ति स्वतन्त्रता की शक्ति है। मुद्रा और व्यापार का खुला आदान-प्रदान हमारी मुद्रा की शक्ति तथा हमारे अपने व्यापार और उद्योग की प्रगति पर निर्भर है।

"हम व्यक्तिगत रूप से, तथा वे राष्ट्र जिनका प्रतिनिधित्व करना आज हमारा सौभाग्य है, प्रण करते हैं कि हम शान्ति, मैत्री एवं शान्तिपूर्ण व्यापार के समर्थक और धीरता के प्रचारक रहेंगे। हम उस दिन की प्रतीक्षा करते हैं जब हमारे राष्ट्रों की बढ़ी हुई सम्पत्ति अन्य सब की सेवा करेगी।"

न्यूज़ीलैंड के प्रधान मन्त्री की परिभाषा के अनुसार कॉमनवैल्थ की सदस्यता स्वतन्त्रता के साथ-साथ कुछ और भी है। इस सदस्यता के कारण, कोई लाभ कम नहीं होता और न कोई सम्मान या स्वतन्त्रता का बलिदान किया जाता है। किन्तु फिर भी हम इसमें वास्तविक आर्थिक, राजनैतिक, सैनिक और यहाँ तक कि बौद्धिक लाभ भी उठाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमें विशेष सम्मान प्राप्त होता है। यद्यपि कॉमनवैल्थ का ऐक्य अब एक बीती बात हो गई है फिर भी इसके नाम के साथ शक्ति और सम्मान जुड़ा है। यह कहना अधिक काल्पनिक नहीं होगा कि इस शक्तिशाली संस्था के महान् नाम से ही हमारे चारों ओर एक प्रकार की सुरक्षा की दीवार खड़ी हो जाती है। विश्व के कोने-कोने की जनता का यह एक अनोखा संगठन है जिसमें सब शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए एकत्रित हैं। भले ही इसमें कुछ भी अवगुण हों तथापि यह स्वेच्छा से सहकारिता का एक महान् उदाहरण है।

श्री लुई सेंट लॉरेन्ट (Mr. Louis St. Laurent) ने अधिक उपयुक्त किन्तु थोड़ी मनोरंजक रीति से कॉमनवैल्थ का वर्णन किया है। यह संस्था पूर्व और पश्चिम के बीच एक पुल बनाने का कार्य करती है। किन्हीं मामलों में भले ही अधिक संगठन की आवश्यकता हो किन्तु सब को सर्वस्व तो प्राप्त नहीं हो जाता। मनुष्य को स्वतन्त्रता और व्यवस्था में थोड़ा समझौता करना पड़ता है और वर्तमान व्यवस्था सम्पूर्ण रूप से बुरी भी नहीं है। कॉमनवैल्थ एक सज्जन व्यक्ति का वायदा है (gentleman's agreement)। भले ही यह कितना ही अस्पष्ट हो किन्तु आज के संसार में हमें इस प्रकार की वस्तुओं की अत्यधिक आवश्यकता है। इस संस्था की स्थिति और गुरुता से यह प्रतीत होता है कि संसार में एक तीसरा और पूर्ण संसार में फैलने वाला युद्ध शायद टाला जा सकेगा। कॉमनवैल्थ को छोड़ देना हमारे देश

के लिये तथा कॉमनवैल्थ के लिये हानिकारक सिद्ध होगा क्योंकि जिस शान्ति को हम अपने और संसार के लिये स्थापित करना चाहते है; उसकी प्राप्ति के लिये यह एक महान साधन् है।

प्रधान मंत्री नेहरू ने हमारे कॉमनवैल्थ में शामिल होने के विषय में ये शब्द कहे थे : "श्री हरेन्द्रनाथ मुखर्जी कॉमनवैल्थ और हमारा इसमे होना भूल नहीं सकते। उनके विचार से यह सारी बुराइयों की जड़ है। मेरे विचार से हम कॉमनवैल्थ में इसलिये है क्योंकि इसमें हमारी भलाई है और जिन सिद्धान्तों का हम समर्थन करना चाहते हैं उनके लिये भी अच्छी है। और क्योंकि यह सहायक है और हमारी नीति के मार्ग मे रोड़ा नही बनती। हम कॉमनवैल्थ मे इसलिए हैं क्योंकि हम सभी देशों से सब प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं यदि वे हमारी नीति में अड़चन न बनते हों। एशिया और यूरोप में हमारे अन्य देशो से भी सम्बन्ध है, जो कभी-कभी कॉमनवैल्थ के सदस्य राष्ट्रों से कही निकट के है। ये देश है बर्मा, इण्डोनेशिया और युगोस्लाविया। पुनश्च, कॉमनवैल्थ के सम्बन्ध मे रोक वाली कोई बात नहीं है और जो जैसा चाहे कर सकता है। मैं इस प्रकार के सम्बन्ध को—कॉमनवैल्थ के सम्बन्ध को—पसन्द करता हूँ कि यह सारे संसार में फैले। वास्तव मे यह सैनिक संधि से तो हर अवस्था मे अच्छा है क्योंकि यह किसी न किसी देश को चुनौती देती है और उस देश की अन्य देशों के साथ मैत्री की राह मे अड़चन बन जाती है। मैं इस सदन को यह आश्वासन दिलाता हूँ कि इसका सम्बन्ध, हमारे द्वारा किसी देश को चाहने अथवा न चाहने से नही है। कॉमनवैल्थ मे वे देश भी है जिन से वर्तमान मे हमारे सम्बन्ध बहुत अच्छे नही है। वह पाकिस्तान है। यह संभावना अवश्य है कि कभी न कभी हमारे सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होंगे। यह एक पड़ोसी देश है। दक्षिणी अफ्रीका से हमारा काफी सम्बन्ध है। दक्षिणी अफ्रीका से हमारे सम्बन्ध शून्य के बराबर हैं। किन्तु इनसे हमारे कॉमनवैल्थ मे होने या न होने से कोई प्रभाव नही पड़ता किसी व्यक्ति के लिये भी, राष्ट्र की बात तो दूर, अच्छी बात नही है कि वह एक उत्तेजना में अपना कार्य करे।" (The Hindustan Times, 30th March, 1956)

२० मार्च, १९५७ को संसद् मे कॉमनवैल्थ के सम्बन्धों की आलोचना करने वालों को प्रधान मन्त्री नेहरू ने इन शब्दो मे उत्तर दिया था : "अब मैं उन भावनाओं को भली प्रकार समझता हूँ, जो केवल इस सदन के सदस्यों में ही नहीं अपितु जन-साधारण में फैली हैं। हाल मे हुई घटनाओं के कारण लोग उत्तेजित हैं और यह पूछा जाता है कि क्या हमारा इस सम्बन्ध में बंधा रहना ठीक है? इसका क्या लाभ है? मैं इस प्रतिक्रिया को पूरी तरह समझता हूँ, किन्तु मैं इस प्रतिक्रिया को ठीक नहीं मानता। मैं नही कह सकता और न कोई अन्य व्यक्ति कह सकता है कि भविष्य मे किसी मामले में क्या होने वाला है। किन्तु मेरा सविनय निवेदन है कि हमें मामलों को मिलाना नही चाहिए क्योंकि कोई ऐसी बात हो चुकी है जिसमे हमें बड़ी उत्तेजना मिली है, इसलिये हम अपनी मूल नीति को बदल दें या उत्तेजना मे काम करें, बुद्धि-मत्ता नहीं है।"

श्री नेहरू ने कहा : "स्वयं कॉमनवैल्थ में परिवर्तन आ रहा है। घाना के *स्वतन्त्र सम्पूर्ण अधिकारसम्पन्न राष्ट्र का जन्म हो चुका है और वह कॉमनवैल्थ का* सदस्य है। दो या तीन मास में मलाया कॉमनवैल्थ का स्वतन्त्र सदस्य हो जायेगा। सारा चित्र ही बदल रहा है। कॉमनवैल्थ के मामले में मेरी दो कसौटियाँ हैं—प्रथम, क्या यह हमारी नीति के पालन में किसी प्रकार अड़चन बनी है। यदि यह अड़चन नहीं बनी तो फिर यह सोचना ठीक नहीं कि यह सम्बन्ध स्वतः ही बुरा है। दूसरा *पहलू है कि आज के संसार में इतनी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ हैं कि उन सम्बन्धों को* तोड़ना नहीं चाहता जिससे नये सम्बन्ध बनने की आशा है। मैं तो अधिक-से-अधिक मित्र बनाना चाहता हूँ। अनेक देशों से हमारे अनेक प्रकार के सम्बन्ध हैं। बर्मा से हमारी मित्रता, कॉमनवैल्थ के किसी देश की अपेक्षा अधिक गहरी है। मिश्र से भी हमारे घनिष्ठ सम्बन्ध हैं तथा अन्य एशिया और यूरोप के देशों से भी। हम अपने मित्रों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं और जब तक वे हमारे मार्ग में नहीं आयेंगे, हम उनसे पृथक् नहीं होंगे। कॉमनवैल्थ राष्ट्रों में घोर मतभेद है और अपने कार्यों तथा नीतियों में एक-दूसरे के बड़े विरुद्ध हैं।" (The Hindustan Times, dated 21-3-1957)

मार्च, १९५७ में श्री बेविन ने अपनी भारत-यात्रा के समय कॉमनवैल्थ के सम्बन्ध का बड़े जोरदार शब्दों में समर्थन किया था। उन्होंने कहा कि, "जब कोई कॉमनवैल्थ से सम्बन्ध तोड़ने की बात करता है तो मुझे बड़ी चोट लगती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इन दोनों देशों की बड़ी भारी भूल होगी। भारतवर्ष के जो लोग कॉमनवैल्थ को छोड़ने के पक्ष में हैं वे यह ध्यान में रखें कि कॉमनवैल्थ में बड़ा परिवर्तन हो गया है। *घाना सदस्य बन गया है। निकट भविष्य में नाइजीरिया, मलाया,* उगान्डा, टांगानीका भी थोड़े कष्ट के पश्चात् इसमें आ जायेंगे।

"इस घड़ी, जब जिस बात के लिये (उपनिवेशों की स्वतन्त्रता के लिये) आप लड़ते रहे, वह पूरी होने जा रही है, मैं पूछता हूँ कि क्या यह भारत की मूर्खता नहीं होगी यदि वह कॉमनवैल्थ से तटस्थ होकर इन नये राष्ट्रों पर से अपना प्रभाव हटा ले। वास्तव में यही तो समय है जब आप को कॉमनवैल्थ में रहकर इनको ठीक मार्ग पर चलाना है।"

"वास्तव में जब यह परिस्थिति उपस्थित होगी तो उन राष्ट्रों पर भारतवर्ष का जो प्रभाव होगा, प्रकट ही है। *भारत एक विश्वव्यापी शक्ति बन जायेगा।* ऐसा भारत के रंग, आकार (size), इतिहास और परिपाटी के कारण होना आवश्यक है।"

श्री बेविन ने कहा कि "श्री नेहरू ने कई अवसरों पर यह सुझाव दिया है कि कॉमनवैल्थ की कड़ी से 'ब्रिटिश' शब्द तब निकाल देना चाहिए। यह अब केवल पुराने साम्राज्यवादी नशे का खुमार मात्र है, तथापि इससे सदस्य राष्ट्रों की स्वतन्त्रता में कोई बाधा नहीं आती।"

श्री बेविन ने कहा कि "हमारे साथ असहमत होने के अधिकार का आपने उपभोग किया है तो अब हमारे द्वारा असहमत होने को आप लोगों को इतना बुरा

नही मानना चाहिए। यह अटल है कि कॉमनवैल्थ मे समय-समय पर हम परस्पर असहमत होते रहेंगे।

"मैं आशा करता हूँ कि कॉमनवैल्थ राष्ट्र परस्पर अधिक सलाह करके काम करेंगे। कोई कारण नही कि सलाह करने के पश्चात् असहमत न हुआ जाए किन्तु फिर भी विचार-विमर्श अधिक होना चाहिए।

"यह पूर्णतः स्पष्ट है कि यदि कॉमनवैल्थ मे पहले अन्तरग रूप से सलाह की गई होती तो हम मिस्र के मूर्खतापूर्ण मामले के भद्देपन से बच जाते।"

भारतवर्ष और ब्रिटेन के सम्बन्धों के विषय मे प्रधान मन्त्री नेहरू ने कहा था "आप लोग उस शानदार मिसाल को याद रखेंगे, जिस पर भारत और इगलैंड दोनों को गर्व है। हम दोनों ने बड़े लम्बे सघर्ष के बाद भी अपनी समस्याओं पर शान्ति की भावना से विचार किया और हमने उन्हे केवल सुलझाया ही नही, अपितु साथ-साथ एक पारस्परिक विचारशीलता और मैत्री का वातावरण भी बना दिया।"

हिन्दुस्तान का कॉमनवैल्थ का सदस्य होना लाभदायक है। इसका एक बहुत अच्छा प्रमाण अक्तूबर-नवम्बर-६२ मे मिला जब बर्तानिया व दूसरे कॉमनवैल्थ के मैम्बर जैसे कैनेडा, आस्ट्रेलिया, कम्युनिस्ट चीन के धोखे से हमला करने पर हिन्दुस्तान की इमदाद के लिए कूद पड़े। सहायता बड़ी उदारता से मिली और उसके लिए पहले कोई बातचीत नही हुई कि हिन्दुस्तान दी जाने वाली सामग्री की रकम किस तरह देगा।

भारतीय संविधान की आलोचना

(CRITICISM OF THE INDIAN CONSTITUTION)

मानव जाति द्वारा निर्मित कोई भी संविधान पूर्ण नही हो सकता और इस सामान्य नियम (general rule) का भारतीय संविधान भी अपवाद नहीं। कोई आश्चर्य नही, भारत के नये संविधान की अनेक व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से आलोचना की है।

(१) यह कहा जाता है कि मूलभूत अधिकार (Fundamental Rights), जिनकी व्यवस्था संविधान में की गई है, दिखावटी है, वास्तविक नही। उनके चारों ओर प्रतिबन्धो की इतनी झाड़ियाँ लगा दी गई हैं कि जनता को उनके संविधान में समावेश होने से कोई लाभ नही होता। किन्तु, यह निर्देशित किया जा सकता है कि मूलभूत अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबन्ध, जनता द्वारा उनके विस्तृत उपभोग के लिए, अत्यन्त आवश्यक हैं। समस्त व्यक्तियों द्वारा असीमित अधिकारों का उपभोग नही किया जा सकता। उन पर केवल कुछ का ही अधिकार रहता है लेकिन यह मानना होगा कि न्यायालय मौलिक अधिकारों को लागू कराने में यथेष्ट रूप से सचेत हैं। क्योंकि गत पाँच वर्षों का अनुभव बताता है कि सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court) तथा उच्च न्यायालयो (High Courts) दोनों ने ही मूलाधिकारों को प्रेरणा देने के विषय में व्यग्रता से (*enthusiastically*) कार्य किया है।

(२) संविधान अनावश्यक रूप से विस्तृत एवं प्रपंची (elaborate and prolix) है। निस्सन्देह, भारत का नया संविधान सम्भवतः सबसे लम्बा संविधान है। इसका अवरोधो को समाप्त करने के ध्येय से अधिक व्यापक होना, एक कमी है। हमारा संविधान अमेरिकी संविधान की सूक्ष्मता को नहीं रखता है और प्रशासकीय विवरणों से परिपूर्ण है जो कि अमेरिकन संविधान में नहीं पाए जा सकते। यह अच्छा होता यदि संविधान निर्माता अधिनियम १९३५ के अनुरूप विधान न बनाकर अमेरिकी रूप-रेखा पर चलते। संविधान निर्माताओं की इच्छा संविधान को पूर्ण सिद्ध (*fool proof*) बनाने की थी। उन्होंने उन समस्त कमियों को दूर करने का प्रयास किया जो कि दूसरे देशों को अनुभव हुईं। इसमे सभी सम्भावित घटनाओं का उपाय करने से संविधान विस्तृत हो गया है।

(३) लक्ष्मीनारायण साहू (Laxmi Narain Sahu) के अनुसार, "जनतन्त्र को दिल्ली के चारो ओर उसी प्रकार से केन्द्रित कर दिया गया जिस प्रकार पवित्रता को बनारस (Banaras) के चारों ओर।" शंकरराव देव (Shanker Rao Deo), काँग्रेस के १९४९-५० के प्रधान सचिव (*General Secretary*) के अनुसार, "जर्मनी

(Germany) के संविधान की भाँति, हमारा राष्ट्रपति एक वास्तविक तानाशाह (virtual dictator) बनने की शक्ति रखता है।" प्रो० के० टी० शाह के मतानुसार, "संविधान प्रधान मन्त्री को शक्तिशाली तानाशाह (potential dictator) बना देगा।" ए० सी० गुहा के अनुसार, "राष्ट्रपति के हाथों में निहित शक्ति अधिक थी और कुछ रिश (Reich) के राष्ट्रपति के अनुरूप थी जिनका हिटलर (Hitler) के आगमन पर स्वाद लिया गया।" ए० के० घोष के अनुसार, "राष्ट्रपति में निहित आपत्काल शक्तियों ने उसको शक्तिशाली तानाशाह बना दिया है।"

(४) आलोचकों का कथन है कि भारत के नये सविधान मे तनिक भी मौलिकता नही है। नये संविधान की बहुत-सी धाराएँ भारतीय सरकार अधिनियम १९३५ से नकल (copied) कर ली गई है। इसी प्रकार अनेक व्यवस्थाएँ (Provisions) ससार के देशो के संविधानों से ली गई हैं। इसमे अपने देश द्वारा उत्पन्न कोई व्यवस्था नही है। इसमें हिन्दू काल की सभा अथवा समिति का कही उल्लेख ही नहीं है। इसमें मध्यकालीन राजनैतिक सस्थाओं का भी वर्णन नही। किन्तु यह कहा जा सकता है कि दूसरे मे किसी चीज को लेना कोई गलती नही है, यदि ली गई वस्तु लाभदायक हो। इसी प्रकार राजनैतिक सस्थाओ के आदर्श को दूसरे देश से लेने मे कोई बुराई नही है यदि वह अच्छी प्रकार कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक भारत को प्राचीन राजनीतिक संस्थाओं के अनुरूप बनाना कठिन होता है। तो भी, संविधान सभा ने दूषित कानून बनाने के स्थान पर १९३५ के अधिनियम से उनको लेने का निश्चय किया, जो कि इंगलैंड के प्रमुख सावैधानिक अधिवक्ताओं द्वारा बनाया गया था। यह कहा जाता है कि नए संविधान मे कुछ भी स्वदेशी नहीं है। किन्तु यह निर्विवाद है कि भूतकाल में कोई राजनीतिक संस्था कितनी ही प्रभावपूर्ण एवं लाभदायक रही हो, परन्तु इस बात की कोई प्रामाणिकता नही है कि वह वर्तमान अवस्था में भी प्रभावपूर्ण कार्य करेगी।

(५) मूल अधिकार स्वीकृत होने के स्थान पर घोषित होने चाहिएँ। धारा ३२ (२) के अनुसार संविधान के भाग तृतीय के अन्तर्गत मूल अधिकारों को स्वीकृत किया गया है। यह कहा जाता है कि ऐसे अधिकारों की स्वीकृति की आवश्यकता नही, यह तो मनुष्य के स्वभाव के अनुसार ही स्थापित होते है, यदि यह स्वीकार किया जाए कि कोई व्यक्ति मूल अधिकार नहीं रख सकता जब तक कि वे संविधान के कानून द्वारा स्वीकृत न किए गये हों। यदि मूल अधिकार संविधान द्वारा स्वीकृत किये गए हों तो भी उनको सविधान के अन्तर्गत मूलाधिकारों में संशोधन करके वापस ले लिया जा सकता है। मूलाधिकारों के निर्मल स्वरूप के वर्णन का प्रयत्न अपने उद्देश्य में असफल रहेगा। तो भी, संविधान के भाग तृतीय में उन समस्त अधिकारों का समावेश नहीं है, जिन्हें मूलभूत कहा जा सके। आलोचकों का कथन है कि बिना सुनवाई के अपराधी न ठहराए जाने का अधिकार उतना ही मूलभूत है, जितने कि संविधान द्वारा प्रमाणित अन्य अधिकार। यद्यपि इस अधिकार का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है। यह कहा जाता है कि यह अच्छा होता यदि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने संवि-

धान में उल्लिखित मूलाधिकारों के उल्लंघन के विपरीत सुरक्षा के लिए अमेरिकन प्रणाली की नकल की होती। जनता द्वारा प्राप्त अन्य अधिकारों की गणना की व्याख्या अस्वीकार अथवा उपेक्षा करते हुए नहीं करनी चाहिए।

(६) यह कहा जाता है कि दूसरे अनेक संविधानों की भाँति भारतीय संविधान में ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए प्रार्थना नहीं की गई है। ईश्वर-पूजा के लिए विख्यात लोगों के संविधान में यह लोप और भी अधिक आश्चर्यजनक है। संविधान निर्माताओं ने सोच-समझकर धर्म का उल्लेख नहीं किया ताकि देश में निरपेक्ष राज्य की जड़ें पनप सकें। किन्तु यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि प्रस्तावना में 'गम्भीरता से निश्चय किया' (solemnly resolve) वाक्यांश ईश्वर के नाम आने की कमी को पूरा करता है। संविधान में 'गम्भीरता' शब्द का प्रयोग धार्मिकता का द्योतक है, जिससे आत्मशक्ति उत्पन्न होती है।

(७) यह कहा जाता है कि भारतीय संविधान वकीलों ने वकीलों के लिए बनाया था। संविधान को ऐसा सोच-समझकर बनाया गया है कि उसकी व्यवस्था में कठिनाई न हो। इसका उद्देश्य मुकद्दमेबाजी को बढ़ावा देकर वकीलों की चाँदी करना था।

डा० जैनिंग्ज (Dr. Jennings) के अनुसार "दुनिया के देशों की राजनीति की अपेक्षा भारत की राजनीति में वकील राजनीतिज्ञ (lawyer politicians) ने अधिक प्रमुख भाग लिया है। वकील होने के नाते मैं इस प्रथा के विरुद्ध आपत्ति नहीं उठा सकता, यद्यपि यह स्वीकार करना ही चाहिए कि इसमें खतरा है। क्योंकि कई बार वकील राजनीतिज्ञ न तो अच्छा वकील होता है, न अच्छा राजनीतिक कार्यकर्ता ही। यह इतिहास बताएगा कि संविधान सभा में वकीलों का आधिक्य अच्छा था या बुरा। आज यही कहा जा सकता है कि उन्होंने संविधान को पेचीदा बना दिया है। और कोई भी अंग्रेज वकील असाधारण अधिकारयुक्त आलेखों (prerogative writs) को संविधान में रखने की नहीं सोच सकता था। किन्तु संविधान सभा ने ऐसा किया। मुझे यह जानकर हर्ष होता है कि आलेखों की उन्नति से जो लाभ उठा रहे हैं उनमें से कुछ मेरे विद्यार्थी हैं। इन विभिन्न कारणों ने संविधान को अधिक पेचीदा बना दिया है। अपने व्यवसाय की ऐसी उन्नति पर हम वैधानिक वकील (constitution lawyers) स्वभाव की स्थिति के (equanimity) आश्चर्य कर सकते हैं। किन्तु संविधान सरकार के कार्य को सुविधानुसार चलाने के लिए होता है, वैधानिक वकीलों को फीस देने के लिए नहीं। जितना अधिक संक्षेप होता है उतना ही कार्य कठिन हो जाता है। भारत ने हम पर अधिक विश्वास किया है।"

उसी लेखक को उद्धृत करते हुए "यह कहा जाता है कि 'लिंकन्स इन' (Licoln's Inn) में चान्सरी वकील (Chancery lawyers) उस मनुष्य के नाम पर मदिरा पीते थे जो अपनी वसीयत (will) करता है। यदि वैधानिक वकीलों का अपना समाज होता तब वे उस आदमी का धन्यवाद करते जिसने 'उचित' को अधिकार-पत्र (Bill of Rights) में जोड़ा। धारा १९ में यह शब्द पाँच बार आता है। अतएव

भारतीय वैधानिक वकीलों को धारा १६ के प्रस्तावक की स्मृति कायम करनी चाहिए। न्याय धर्म का पर्यायवाची है और धर्म चान्सलर के पैर की लड़ाई के बराबर है। आधुनिक काल में जबकि मुकद्मेबाजी इतनी व्ययी हो गई है, यह उपमा ठीक नहीं बैठती। *यह केवल न्यायाधीश के पैर की लड़ाई के अनुसार नहीं बदलती, बल्कि वादी* की थैली और उसके कमरबन्द के अनुसार भी बदलती है। प्रत्येक वस्तु उस समय तक न्यायसंगत नहीं समझी जा सकती जब तक सर्वोच्च न्यायालय उसे उचित घोषित न कर दे।"

डा० जैनिंग्ज संविधान की धारा ३०१ और ३०२ की ओर भी निर्देश करते हैं। इस भाग की दूसरी व्यवस्थाओं के आधीन व्यापार तथा वाणिज्य की स्वतन्त्रता तथा सार्वजनिक हित इन पदों का प्रयोग मुकद्मेबाजी का क्षेत्र उत्पन्न करते हैं। इसका कौन निश्चय करेगा *कि यह सार्वजनिक हित के लिए आवश्यक है। यद्यपि विषय शंका* के परे नहीं है तथापि यह दिखाई देता है कि यह कठिन कार्य न्यायालयों को करना होगा। यदि यह व्यवस्था ठीक है तब ये व्यवस्थाएँ वकीलों की फीस का उत्पादक होंगी।

इस आलोचना के उत्तर में कि 'संविधान को वकीलों ने वकीलों के लिए बनाया है' यह कहा जाता है कि संविधान सभा के साधारण सदस्यों ने भी संविधान को बनाने में प्रमुख भाग लिया था। संविधान के आदर्श तथा भावनाएँ साधारण मनुष्य के स्वप्न एवं बुद्धि के अनुरूप हैं। ये वकील के सग्रहालय से नहीं आये। यह सत्य है कि डा० अम्बेडकर जिन्होंने संविधान को संविधान परिषद् में मार्ग दिखाया तथा जो उसके सहायक थे, सब वकील थे। किन्तु वे ऐसे व्यक्ति थे जिनको वकालत के फलों से कोई लगाव न था। यह कहना कि संविधान की व्यवस्थाएँ सोच-समझकर पेचीदा इसलिए बनाई गई कि वकील अधिक धन कमा सकें, सर अल्लादी जैसे सज्जनों के प्रति अन्याय होगा, जिन्होंने अपनी वकालत, जिसमें उनको पर्याप्त अर्थ-लाभ होता था, स्वेच्छा से इसलिए छोड़ी कि उनकी शिक्षा तथा अनुभव का देश के संविधान-निर्माण के महान् कार्य में उपयोग हो सके। यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि संविधान में सदैव ही पेचीदा लेख होते हैं तथा उनके लिए वकीलों की आवश्यकता होती है। कोई भी योग्य वकीलों की सहायता के बिना इस कार्य को करने का साहस नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त विधान के पेचीदे और सन्देहयुक्त प्रश्नों का हल वैधानिक वकीलों की सहायता तथा समर्थन के बिना नहीं हो सकता। संविधान की भाषा-शैली प्रस्तावकों (draftsmen) ने निश्चित की थी। यह कहना कठिन होगा कि वकीलों ने उनको घूँस दी कि वे उसे अस्पष्ट बना दें ताकि वे रुपया कमा सकें। भारतीय संविधान को वकीलों का स्वर्ग कहना ठीक नहीं। यह कहना अधिक ठीक होगा कि वकील और न्यायालय दोनों ही *भारतीय जनता की सहायता करेंगे, ताकि वे संविधान के नियुक्त अधिकारों तथा* स्वतन्त्रताओं का लाभ उठा सकें। यदि उस आवश्यक सेवा को करते हुए वकील कुछ रुपया कमा लें, तब किसी को अनिच्छा प्रकट नहीं करनी चाहिए। किन्तु कानून द्वारा

वकीलों की फीसें निर्धारित की जा सकती है। इससे जनता की शिकायतें दूर हो जायेंगी।

(८) यह ठीक है कि संविधान मे सर्वोच्च तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, लोक सेवा आयोग के सदस्य तथा नियन्त्रक महालेखा परीक्षक (Comptroller and Auditor-General) की स्वतन्त्रता का प्रबन्ध करने के लिए व्यवस्थाएँ हैं, किन्तु अधीनस्थ न्यायाधीशो को यह शिकायत है कि उनकी स्वतन्त्रता का कोई प्रबन्ध नही। संविधान में उसको केवल भुला दिया गया है। इसी प्रकार सरकारी नौकर भी संविधान मे अपनी प्रास्थिति (Status) से सन्तुष्ट नही है। कुछ विषयो में, अधिकारी को अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त अवसर न दिये जा सकें, ऐसा हो सकता है। यह उस अधिकारी पर निर्भर करता है जो सार्वजनिक सेवकों (Public servants) को हटाने की क्षमता रखता है, वही यह निश्चय करता है कि ऐसे अवसर दिये जायें या नही। उसका निर्णय अन्तिम होता है।

(९) राष्ट्रपति जब वाह्य आक्रमण होने अथवा उसकी सम्भावना होने पर राज्य-प्रशासन को स्थगित करता है तब तो इससे सम्बन्धित व्यवस्थाओं को रखने का औचित्य दिखाई देता है किन्तु आन्तरिक गड़बड़ी के समय उसको ऐसा पग उठाने की क्षमता देने वाली व्यवस्थाओं का समावेश नितान्त अवाछनीय है। इस प्रकार स्थायी शक्ति राष्ट्रपति को दुर्बल से दुर्बल कारण के लिए भी हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान करती है। इससे राज्यो का स्वायत्त-शासन केवल एक प्रहसन-मात्र बन जायेगा। यदि राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल के साथ, जिनका संसद् में बहुमत है, किसी राज्य को हस्तगत करने का मन में निश्चय करता है, तब वे इस गुप्त भावना से प्रभावित होकर राज्य सरकार के कार्य करने के सम्बन्ध में निराधार शिकायतों के ऊपर कोई भी पग उठा सकता है, सविधान मे उसकी रक्षा की कोई व्यवस्था नही है। जिस प्रकार केन्द्र ने पजाब और पेप्सू मे राष्ट्रपति का शासन स्थापित किया, उसे अच्छा नही समझा जाता है। आलोचकों का कथन है कि केन्द्र में शासन-तन्त्र के असफल हो जाने पर किसी उचित उपाय की व्यवस्था संविधान मे नही की गई।

(१०) राज्य के नीति-निर्देशक तत्त्वों को संविधान से भुलाया जा सकता था। इस प्रकार व्यक्तियों के लिए उनका कोई प्रभाव न होता। यह तथ्य कि उनको लागू नही किया जा सकता उनको प्रभावहीन बना देता है। एक राष्ट्र के लिए अपने आपको निर्देशन देने की आवश्यकता को देखना कठिन होता है। विशेषकर जब कि इन सिद्धान्तों का भविष्य मे कभी अवलम्बन करने की कोई प्रामाणिकता नही है। यह राज्य-नीति के निर्देशक तत्त्व रचनात्मक राजनीति के स्थान पर दार्शनिक राजनीति के अधिक हैं। यह आडम्बरी भावनाओं की कवायद है और वृथाभिमानी वाग्विस्तार (vainglorious verbiage) में वर्णित किए गये हैं। यह एक संवैधानिक आलोचना के लिए न्यून महत्त्व रखते हैं या यों कहें कि कुछ भी महत्त्व नही रखते। आधुनिक काल में, प्रत्येक मनुष्य कार्य-व्यापार की इच्छा एवं उद्देश्य रखता है तथा कोई भी व्यक्ति केवल व्यर्थ की प्रतिज्ञाओं से ही सन्तुष्ट नहीं होता, जिनको पूरा न किया जाये। शब्दो की व्यर्थता से

राष्ट्र शीघ्र ही मायावाद को प्राप्त होता है। राज्य-नीति निर्देशक तत्वों का उद्देश्य श्रद्धालु व्यक्तियों को व्यर्थ सन्तोष प्रदान करता है। समस्त नीति-निर्देशक तत्व व्यावहारिक दृष्टिकोण से स्वस्थ एवं उचित नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप, मद्य-निषेध से सम्बन्धित नीति-निर्देशक तत्व पूर्ण रूप मे प्रतिपादित नहीं किये जा सकते। बहुत से गम्भीर प्रकाशकों की आलोचना मे तथ्य है क्योंकि मद्य-निषेध के प्रयोग द्वारा व्यय की गई आय को सार्वजनिक उपयोगिता के अधिक आवश्यक एव अनिवार्य कार्यों पर अधिक लाभ के साथ प्रयोग किया जा सकता था। मद्य-निषेध की नीति मँहगी असफलता मे प्रतिफलित हुई है। सरकार ने एक बहुत अच्छी असामान्य आय के स्रोत को खो दिया है तथा मादक द्रव्यों के बनाने एवं मादक पेय पदार्थों के वितरण में अपराधों की, एक बहुत बड़ी सीमा में वृद्धि हुई है। मद्य-निषेध नीति से सम्बन्धित पदाधिकारियों (officials) मे भ्रष्टाचार की वृद्धि हो गई। व्यक्तियों ने उन मादक द्रव्यों को पीना शुरू कर दिया जो स्वास्थ्य के लिए उनसे अधिक हानिकारक थे जिनकी अनुमति प्राप्त दुकानों (licensed shops) पर व्यवस्था की गई थी।

(११) संविधान की इस व्यवस्था की पर्याप्त आलोचना की जाती है कि राष्ट्रपति किसी भी सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय के विचार जान सकता है। वे इसे आपत्तिजनक बताते हैं। सर्वोच्च न्यायालय को यह कार्य उसके उस महान् पद से गिराता है जो उसे राष्ट्र का सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय होने के कारण प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय उस समय अति व्याकुल हो जाता है जब वह प्रश्न दो दलों के अभियोग के रूप में आता है जिस पर उन्होंने अपना विचार राष्ट्रपति को पहले ही दे दिया था। प्रश्न यह है कि क्या सर्वोच्च न्यायालय अपने पूर्व विचारों से बँधा है? अच्छा होता यदि ऐसी व्यवस्था को छोड़ दिया जाता। राष्ट्रपति महान्यायवादी (Attorney-General) के विचार प्राप्त कर सकता है, जिससे आशा की जाती है कि वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश की योग्यताएँ रखता हो।

(१२) डा० जैनिंग्ज के अनुसार "भाग १३ संविधान की सबसे बड़ी कमी को प्रदर्शित करता है। इसमें व्यवस्थापिकामण्डल मे विश्वास करने मे अनिच्छा प्रकट की गई है तथा स्पष्ट एवं साधारण व्यवस्थाओं की व्यवस्था द्वारा उचित कानून बनाने में न्यायालय पर भी अविश्वास किया है। यदि संविधान-सभा के अतिरिक्त अन्य किसी पर कानून बनाने मे विश्वास नहीं करते, तब क्यों नहीं सब कानून बना देते और एक धारा का संविधान क्यों नहीं बना देते—'भारत का कानून कोई नहीं बदलेगा'।"

(१३) डा० जैनिंग्ज का कथन है कि भारतीय संविधान बहुत विस्तृत है और इसलिए बहुत बड़ी सीमा में कठिन (Rigid) है। संविधान की कठोरता का माप केवल संशोधन की विधि ही नहीं है। इसका माप वह पुस्तक (volume) है जिसको संशोधित करना है। हमारा संविधान दुनिया के संविधानों से लम्बा है और संशोधन विधि भी सरल नहीं है।

(१४) आलोचकों का कहना है कि "त्याग के लिए अपवाद के द्वारा विधि-निर्माण की प्रणाली सन्तोषजनक नहीं।" इस विधि-निर्माण की प्रणाली में संविधान

सभा समस्या के सार का व्यवहार करना ही भूल गई है।

(१५) समाजवादियों का कथन है कि संविधान सभा वास्तव में प्रतिनिधि संस्था नहीं थी, इसलिए यह भारतीयों के लिए संविधान बनाने की अधिकारिणी नहीं थी। संविधान लागू होने के प्रथम दिन २६ जनवरी, १९५० को श्री जयप्रकाश नारायण ने यह कहा था, "अन्त में हम यह न भूलें कि संविधान जो आज लागू होता है, तथा गणराज्य का आरम्भ करता है, अपने आप मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक न्याय के लिए वह सब से बड़े भय का स्रोत है—अतएव शीघ्र ही एक वास्तविक प्रतिनिधि संविधान सभा को बुलाकर नये संविधान का निर्माण कराया जाये जो सामाजिक न्याय तथा स्वतन्त्रता का उचित लेखा हो।" इस आपत्ति का निराकरण करने के लिए यह सुझाव दिया गया था कि प्रथम पाँच वर्षों तक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि संविधान में संशोधन साधारण बहुमत से किए जा सकें। ऐसा आयरलैंड में हो चुका था। यदि इस सुझाव को मान लिया जाता, तब वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित संसद् के प्रतिनिधि जनता तथा उनके अनुभव के आदेशानुसार परिवर्तन करने में समर्थ होते।

(१६) आलोचकों का कहना है कि भारतीय संविधान इतना केन्द्रित है कि व्यवहार में एकात्मक (unitary) संविधान है। आपत्काल में, राष्ट्रपति असामान्य शक्तियों (extraordinary powers) को धारण कर सकता है, जो राज्य की स्वतन्त्रता को समाप्त करने का प्रभाव रखती हैं। वह संवैधानिक यन्त्र के असफल होने के आधार पर किसी भी राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है। वह आर्थिक आपत्ति की घोषणा करके, राज्य के पदाधिकारियों के वेतन तथा भत्तो मे कमी की आज्ञा दे सकता है। वह राज्यों के राज्यपालों (Governors) की नियुक्ति तथा राजप्रमुखों को स्वीकृति प्रदान करता है। वह भारत के महालेखा-परीक्षक को भारतीय संघ तथा राज्यों के अर्थ पर नियन्त्रण रखने के लिए नियुक्त करता है। वह निर्वाचन आयोग (Election Commission) की भी नियुक्ति करता है जो संघीय संसद् एवं राज्य विधान सभाओं के निर्वाचनों पर नियन्त्रण रखता है। भारतीय प्रशासकीय सेवा (Indian Administrative Services) तथा अखिल भारतीय सेवाओं (All India Services) के सदस्यों की भर्ती केन्द्रीय सार्वजनिक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) के द्वारा होनी चाहिए। इन पदाधिकारियों को केन्द्र तथा राज्य दोनों ही में कार्य करना पड़ता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्ति होने के कारण वे पदोन्नति के लिए भी उसी की ओर देखते हैं। वे अपने साथ केन्द्रीय सरकार के पक्ष मे एकांगी दृष्टिकोण लेकर चलने को बाध्य हैं। भारतवर्ष में केवल एकरूप न्यायपालिका (Unified Judiciary) है। समस्त देश के लिए सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम अपीलीय न्यायालय है। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति भी केन्द्र से होती है। सर्वोच्च न्यायालय के आलेख तथा प्रणाली देश के प्रत्येक भाग तथा क्षेत्र में प्रभावपूर्ण है। न्यायिक आयुक्त (Judicial Commissioner) भी केन्द्र द्वारा नियुक्त किये जाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति पृथक्-पृथक्

राज्यों के लिये पृथक् एवं स्वतंत्र न्यायालयो के होने की कोई व्यवस्था नही है। कुछ विषयो के अतिरिक्त भारतीय ससद् राज्यो की विधान सभा की सहमति के बिना संविधान मे संशोधन कर सकती है। इससे प्रतीत होता है कि साधारणतः भारतीय संघ की इकाइयो का बिल्कुल महत्त्व नही है। सविधान केवल एकरूप नागरिकता की व्यवस्था करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की भाँति पृथक् नागरिकता का प्रत्येक राज्य के लिए होने की कोई व्यवस्था नही है। उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कुछ विशेष एकात्मक गुण रखता है।

(१७) संविधान के अनुसार राष्ट्रपति और राज्यपाल अध्यादेश प्रचलित कर सकते है। आलोचको का मत है कि ऐसी प्रथा जनतन्त्रीय व्यवस्था मे ठीक नहीं बैठती। इंगलैंड जैसे स्वतन्त्र देशों मे ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है तथा कोई कारण नही कि अध्यादेश प्रचलित करने की व्यवस्था को संविधान में रखा जाए। ऐसी व्यवस्था को तब तो न्यायसंगत ठहराया जा सकता था जब भारत मे विदेशी राज्य था, परन्तु जब भारत स्वतन्त्र हो गया है तब ऐसी व्यवस्था को रगडकर समाप्त कर देना चाहिए। श्री एच० पी० मोदी ने सरकार की अध्यादेश प्रचलित करने की शक्ति की इन शब्दो में आलोचना की है, "अध्यादेश एक आपत्कालीन व्यवस्था है और केवल उन विषयों मे सहायतार्थ प्रचलित किया जाना चाहिए जबकि किसी क्षेत्र के हितों की गम्भीरतापूर्वक गणना करने की किसी व्यवस्था मे निर्माण की देरी की गई हो। क्या कोई गम्भीरतापूर्वक सिद्ध कर सकता है कि गत दो वर्षो मे प्रसारित किए गए अध्यादेशों में उस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया है? अध्यादेश द्वारा व्यवस्थित किया गया अत्युत्तम उदाहरण वह था जो नवम्बर, १६५१ मे सार्वजनिक कोष की संस्था को शासित करने के लिए प्रसारित किया गया था। स्थायी श्रमिक समिति (Standing Labour Committee) की बैठक में दिए गए निश्चित विश्वास के अतिरिक्त भी भारतीय सरकार ने विषय पर एक अध्यादेश प्रचलित किया कि प्रत्येक विधेयक का मसविदा तैयार किया जायगा और सम्बन्धित हितों मे उसको घुमाया जाएगा।

"इस असामान्य पद (extraordinary step) के औचित्य के लिए प्रस्तावना (preamble) में कहा गया था कि संसद् का सत्र (session) नही हो रहा था और विद्यमान परिस्थितियों से राष्ट्रपति असन्तुष्ट था, जिसने उसके लिए तात्कालिक कार्यवाही (immediate action) को आवश्यक बना दिया था। इस आपत्काल की दलील पर सबसे अच्छी टीका यह है कि यह योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए पूरा वर्ष लेती है।

"इस कार्य व्यापार की प्रणाली की विशेष रूप से घृणित विशेषता यह है कि किसी विधेयक द्वारा प्रभावित हितो के लिए, जिसको विचारार्थ प्रचारित किया जाता है उस व्यवस्था में उनको (सम्बन्धित हितों) परिवर्तन तथा विरोध उपस्थित करने का कुछ अवसर देना चाहिए, जबकि उसको (विधेयक) संसद् के समक्ष अन्तिम रूप मे प्रस्तुत किया जाए।" परन्तु उस विधेयक मे सुधार के बहुत कम अवसर होते हैं अतः

उसे किसी अध्यादेश के स्थान पर लाया नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में, जब किसी व्यवस्थापन का स्रोत कोई अध्यादेश होता है केवल सरकार के दृष्टिकोण का मूर्तरूप (embodiment) होता है, जिस पर जनता की आलोचना का कोई प्रभाव नही होता।

(१८) डा० जैनिंग्ज के अनुसार भारतीय संविधान एक बहुत बड़ी सीमा मे ब्रिटिश शासन की उपज है। संयुक्त राज्यो (United States) का संविधान जार्ज तृतीय और लार्ड नार्थ की प्रतिक्रिया की उपज था और भारतीय संविधान मैकडोनल्ड (अपने अन्तिम तथा विकृत रूप मे), बाल्डविन (Baldwin), चैम्बरलेन तथा कुछ कम सीमा में चर्चिल की सरकार की प्रतिक्रिया (reaction) की उपज है। यह इस विचार से परिपूर्ण है कि कानून तथा सरकार भयानक है। इसलिए इसको काराशिवर (concentration camp) में रखा जाना चाहिए। सम्भवतः, यह जातीय तनावों (communal tensions) का स्पष्ट परिणाम है और शंका करता है कि क्या जनतन्त्र सदैव संसार के सबसे योग्य एवं सार्वजनिक हित (public spirit) से प्रेरित प्रतिनिधियो को उपस्थित करता रहेगा।

(१९) श्री वी. आर. मिश्र के मतानुसार, "भारत का संविधान एक केन्द्रस्थ संघीय संविधान है। संविधान के वित्तीय ढाँचे ने केन्द्र को १९३५ के विधान से कहीं अधिक शक्तिशाली बना दिया है। सम्भवतः देश के नये राजनैतिक ढाँचे में पृथकीकरण की वृत्ति पर रोक लगाने के लिये यह आवश्यक भी था। सीमित आर्थिक साधनों के कारण राज्यों को केन्द्र की ओर आर्थिक सहायता के लिये ताकना पड़ता है और इसलिये महत्त्वपूर्ण आर्थिक और राजनैतिक मामलों में केन्द्र के आदेशों का पालन भी करना पडता है। पुनः संविधान की सफलता जनता की इच्छा पर और सरकार को चलाने वाले राजनैतिक दलों के आर्थिक प्रोग्राम पर निर्भर है। जब तक जन-साधारण की आर्थिक अवस्था नही सुधर जाती, उस समय तक राष्ट्र की नीति के निदेशक सिद्धान्त एक कोरा स्वप्न-मात्र ही रहेंगे।" (Economic Aspects of the Indian Constitution, 1952, P. 71)

डा० जैनिंग्ज (Jennings) के शब्दों से हम इस परिच्छेद को समाप्त करते है कि "संविधान सभा ने भारतवर्ष को वह यंत्र दिया है जिसे चलाना ही चाहिए। यह उन लोगों के अनुभव पर आधारित है, भले ही उनकी कितनी ही कमियाँ हैं, जो अपने लोगों पर शासन करना जानते हैं। कालान्तर मे भारतवर्ष की जनता भी यह जान लेगी, जैसा कि आयरलैण्ड की जनता ने बहुत शीघ्र जान लिया कि यदि कुछ महत्त्वपूर्ण है तो वह यह यंत्र है या जनमत है। संविधान का अन्य आडम्बर उसी प्रकार अनावश्यक है जैसे शृंगार। शृंगार की तरह ये धन व्यय कराते हैं। एक सावैधानिक वकील जो सीधा सादा संविधान चाहे, ठीक उस प्रकार के साड़ी बनाने वाले की तरह है जो एक सादे रेशम से साड़ी का नमूना तयार करता है। यह उसे मानना पड़ेगा कि संविधान को उस समय सफल मानना चाहिए जबकि संविधान के वकीलों की उत्पत्ति में कमी हो जाए।

तथा राज्यों मे कांग्रेस बहुमत मे आई। प्रथम चुनाव के परिणामस्वरूप कांग्रेस को लोक सभा में ३६४ स्थान, साम्यवादी दल को १६, समाजवादी दल को १६, किसान मजदूर दल को ६, जनसंघ को ३, अनुसूचित जाति संघ को २, हिन्दू महासभा को ४, स्वतन्त्र ४१ और अन्य दलों को ३३ स्थान प्राप्त हुए। राष्ट्रपति ने लोक सभा में १० सदस्य भेजे। राज्य सभा मे कांग्रेस को १४६ स्थान, प्रजा-समाजवादी दल को १०, साम्यवादी दल को ६, जनसंघ को १, हिन्दू महासभा को १, अनुसूचित-जाति संघ को २, स्वतन्त्र ९, और अन्य दलों को १२ स्थान प्राप्त हुए। राष्ट्रपति ने राज्य सभा में १६ सदस्य भेजे।

राज्यों की विधान सभाओं में कांग्रेस को आसाम मे ७६ स्थान, समाजवादी दल को ४, किसान मजदूर दल को १, साम्यवादी दल को १, स्वतन्त्र को १४ तथा अन्य दलों को २ स्थान प्राप्त हुए। बिहार मे कांग्रेस को २४०, समाजवादी दल को २३, किसान मजदूर दल को १, स्वतन्त्रों को १३, और अन्य दलों को ५३ स्थान प्राप्त हुए। बम्बई में कांग्रेस को २६९, समाजवादी दल को ९, साम्यवादी दल को १, स्वतन्त्रों को १८ और अन्य दलों को १८ स्थान प्राप्त हुए। मध्य प्रदेश में कांग्रेस को १६४, समाजवादी दल को २, किसान मजदूर दल को ८, स्वतन्त्रों को २३ तथा अन्य दलों को ५ स्थान प्राप्त हुए। मद्रास मे कांग्रेस को १५२, समाजवादी दल को १३, साम्यवादियों को ६२, किसान मजदूर दल को ३५, स्वतन्त्रों को ६२ और अन्य दलो को ५१ स्थान प्राप्त हुए। उड़ीसा में कांग्रेस को ६७, समाजवादियों को १०, साम्यवादी दल को ७, स्वतन्त्रों को २१ और अन्य दलों को ३५ स्थान प्राप्त हुए। पंजाब में कांग्रेस को ९६, साम्यवादी दल को ४, स्वतन्त्रों को ४ और अन्य दलो को २२ स्थान प्राप्त हुए। उत्तर-प्रदेश में कांग्रेस को ३९०, समाजवादी दल को १९, किसान मजदूर दल को १, जनसंघ को २, स्वतन्त्रों को १४, और अन्य दलों को ४ स्थान प्राप्त हुए। पश्चिमी बंगाल मे कांग्रेस को १५०, साम्यवादी दल को २८, किसान मजदूर दल को १५, जनसंघ को ९, स्वतन्त्रों को १६, और अन्य दलो को २० स्थान प्राप्त हुए। हैदराबाद में कांग्रेस को ९३, समाजवादी दल को ११, स्वतन्त्रों को १४ और अन्य दलों को ५७ स्थान प्राप्त हुए। मध्य-भारत में कांग्रेस को ७५, समाजवाद दल को ४, जनसंघ को ४, स्वतन्त्रों को ३ और अन्य दलों को १३ स्थान प्राप्त हुए। मैसूर में कांग्रेस को ७४, समाजवादियो को ३, साम्यवादियो को १, किसान मजदूर दल को १, स्वतन्त्रों को ११ और अन्य दलों को २ स्थान प्राप्त हुए। पटियाला-पूर्वी-पंजाब-राज्य-संघ में कांग्रेस को २६, साम्यवादियों को २, किसान मजदूर दल को १, जनसंघ को २, स्वतन्त्रों को ८ और अन्य दलों को २१ स्थान प्राप्त हुए। राजस्थान मे कांग्रेस को ८२, समाजवादी दल को १, किसान मजदूर दल को १, जनसंघ को ८, स्वतन्त्रों को ३५ और अन्य दलों को ३३ स्थान प्राप्त हुए। सौराष्ट्र में कांग्रेस को ५५, समाजवादी दल को २, स्वतन्त्रों को २ और अन्य दलों को १ स्थान प्राप्त हुआ। त्रावणकोर-कोचीन में कांग्रेस को ४४, समाजवादी दल को ११, स्वतन्त्रों को ३७ और अन्य दलों को १६ स्थान प्राप्त हुए। तृतीय श्रेणी राज्यों में

अजमेर, भूपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, विन्ध्य प्रदेश, कच्छ, मणिपुर और त्रिपुरा में भी कांग्रेस का बहुमत रहा।

१९५७ के दूसरे चुनावों में भी कांग्रेस बड़े बहुमत से संसद में आई। केरल को छोड़कर, जहाँ साम्यवादी दल ने सरकार बनाई, अन्य सभी राज्यों में सत्ता कांग्रेस के हाथ में रही।

तीसरा आम चुनाव जो १९६२ में हुआ उसमें कांग्रेस पार्टी केन्द्र व राज्यो मे बहुसंख्या में आई। लोक सभा में इस के ३५६ उम्मीदवार चुने गए और इसे ४,४८७०२२७ वोट मिले। इससे दूसरे स्थान पर कम्युनिस्ट थे। उनके २९ उम्मीदवार लोक सभा में चुने गए। कांग्रेस ने सब राज्यो मे सरकारें बनाईं। चुनाव में अनुचित कार्यवाहियों की कुछ शिकायतें जरूर मिली, लेकिन उन में बहुत सचाई नही मालूम पड़ती। यह ठीक है कि कांग्रेस की जीत हुई, लेकिन उसके नेता उसके अन्दर मतभेद के कारण पीडित हैं। ऐसा प्रतीत होता है जो देश के स्वतन्त्रता संग्राम में अग्रसर थे, वे आज स्वार्थ का शिकार बन रहे हैं।